ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : संस्कृत ग्रन्थांक-३१

वादीभसिंह सूरि कृत

गद्यचिन्तामणि

हिन्दी प्रस्तावना, अनुवाद, संस्कृत टीका तथा परिशिष्ट आदि सहित

सम्पादक

पं० पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० संवत् २४९५
विक्रम संवत् २०२४
सन् १९६८

प्रथम संस्करण
मूल्य १२.००

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०

डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

•

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

•

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० • विक्रम सं० २००० • १८ फरवरी सन् १९४४



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी साहू शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ : Sanskrit Grantha No. 31

GADYACINTĀMAṆI

of

VĀDĪBHA SIṀHA SŪRI

With

Hindi Introduction, Translation, Sanskrit Ṭīkā Appendixes etc.

Edited by

Pt. Pannalal Jain,
Sāhityācārya

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

VĪRA SAṀVATA 2495
V. SAṀVATA 2024
1968 A. D.

First Edition
Price Rs. 12/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAMŚA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THESE RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

●

General Editors

Dr. Hiralal Jain, M. A., D. Litt.
Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

●

Bharatiya Jnanpitha

Head office : 9 Alipore Park Place, Calcutta-27.
Publication office : Durgakund Road, Varanasi-5.
Sales office : 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6.

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000.18th Febr. 1944

समर्पणम्

काशीस्थ-श्रीस्याद्वादमहाविद्यालयस्य भूतपूर्वसाहित्याध्यापकानां वाराणसेय-
संस्कृतविश्वविद्यालयस्य सेवानिवृत्तसाहित्यप्रमुखप्राध्यापकानां साहि-
त्याचार्यपदसमलंकृतानां सहृदयशिरोमणीनामनुपमपाठनकला-
पीयूषाप्यायितान्तेवासिचेतसां 'खिस्ते' कुलावतंसानां
महाविदुषां श्रीमुकुन्दशास्त्रिमहोदयानां करकम-
लयोरनन्तोपकारभारविनतेन तदन्तेवासिना
वशंवदेन पन्नालालेन सादरं समर्प्यतेऽयं
टीकाद्वयालङ्कृतो गद्यचिन्तामणिः।

प्रधान-सम्पादकीय

संस्कृतका गद्य-साहित्य उतना समृद्ध नहीं है जितना पद्य। भारतवर्षमें आदितः जो वेदोंकी रचना हुई वह पद्यात्मक ही थी। इसीसे पाणिनि आदि प्राचीन आचार्योंने वेदोंकी भाषाको छन्दस् नामसे ही निर्दिष्ट किया है। गद्यका प्रयोग पहले-पहल उन वेदों-सम्बन्धी कर्मकाण्डकी व्याख्या करनेवाले ब्राह्मण नामक ग्रन्थोंमें किया गया। तबसे भाष्य, टीका, टिप्पणी आदिके लिए गद्यके उपयोगकी परम्परा चली। किन्तु बौद्ध और जैन साहित्यके प्राचीनतम ग्रन्थ गद्यमें पाये जाते हैं, क्योंकि बुद्ध और महावीर-द्वारा जनताका सम्बोधन दृष्टान्तों और आख्यानोंसे प्रचुर गद्यमें ही किया जाता था और उनका ही संकलन उनके शिष्यों-द्वारा ग्रन्थोंके रूपमें किया गया। तभीसे कथाओं-द्वारा भौतिक व धार्मिक उपदेशोंकी परम्पराको बल मिला और एक विपुल कथा-साहित्य प्रकाशमें आया। बौद्धोंका त्रिपिटक व जैनियोंका अंग साहित्य अधिकांश गद्यमें ही ग्रन्थारूढ़ हुआ। आरम्भमें ये कथाएँ धार्मिक उपदेशोंके बीच किसी नीति व सदाचारके व्यावहारिक स्वरूप-को स्पष्ट करने-हेतु उदाहरण रूपसे प्रस्तुत की जाती थीं। क्रमशः वे स्वतन्त्र ग्रन्थारूढ़ भी होने लगीं और व्रत-कथाओं एवं कथाकोशोंके रूपमें प्रकट हुईं। पालिकी जातक कथाएँ सुप्रसिद्ध हैं। प्राकृतमें गुणाढ्यकृत बृहत्कथा अब नहीं मिलती, किन्तु उसके तीन संस्कृत रूपान्तर मिलते हैं—एक बुद्धस्वामीकृत श्लोकसंग्रह, दूसरा क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथा-मंजरी और तीसरा सोमदेव कृत कथासरित्सागर। वसुदेवहिण्डी व हरिषेणकृत बृहत्कथा-कोश भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। पंचतन्त्र और हितोपदेश-सहित उक्त प्रकारकी रचनाओंने पश्चात्कालीन समस्त संस्कृत साहित्यको प्रभावित किया है।

आगे चलकर एक-एक ऐतिहासिक, पौराणिक या कल्पित नायकका चरित्र सुव्यवस्थित शैली एवं अलंकारादि काव्य-गुणोंसे युक्त प्रबन्धोंमें लिखा जाने लगा। सुबन्धुकृत वासवदत्ता, दण्डीकृत दशकुमारचरित तथा बाणकृत कादम्बरी और हर्षचरित ऐसी ही कथात्मक रचनाएँ हैं जिनकी संस्कृत-साहित्यमें विशेष प्रतिष्ठा है और वे गद्यात्मक होनेपर भी काव्य गिने जाते हैं।

प्रस्तुत गद्यचिन्तामणि नामक कथा भी इसी कोटिके साहित्यमें प्रतिष्ठा पाने योग्य है, ग्रन्थका नाम ही यह प्रकट करता है कि रचयिताने इसे उत्कृष्ट गद्य शैलीमें प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया है। ऐसी ही रचनाओंके आधारसे संस्कृत साहित्यकी यह उक्ति सार्थक सिद्ध होती है, कि 'गद्य ही कवियोंकी प्रतिभाकी कसौटी है।' प्रस्तुत रचनाके सम्बन्धमें यह बात आजसे कोई चालीस वर्ष पूर्व तभी सिद्ध हो चुकी थी जब टी० एस० कुप्पू स्वामी शास्त्रीने इसको प्रथम बार सम्पादित कर प्रकाशित कराया था। इस ग्रन्थमें वर्णित जीवन्धरकी कथा इतनी लोकप्रिय हुई कि पश्चात् कालीन अनेक संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़ व हिन्दी भाषाके कवियोंने उसे काव्य व चम्पूका रूप देकर अपने-अपने साहित्यको परिपुष्ट किया है। स्वयं इसके रचयिता वादीभसिंहको यह आख्यान कितना प्रिय था यह इसी बातसे सिद्ध है कि उन्हे उसे उत्कृष्ट गद्यमें ही लिखकर सन्तोष नहीं हुआ, किन्तु उन्होंने उसे पद्यात्मक रूप भी प्रदान किया जो क्षत्रचूडामणि नामसे प्रसिद्ध है और जिसका प्रायः प्रत्येक श्लोक एक उपदेशात्मक सुभाषित कहा जा सकता है।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। इस ग्रन्थके उपविभागोंको 'लम्भ' कहा गया है, जबकि कथासरित्सागर आदि ग्रन्थोंमें 'लम्ब' या 'लम्बक' पाया जाता है। अर्थके औचित्यकी दृष्टिसे 'लम्भ' नाम ही उचित और सार्थक प्रतीत होता है क्योंकि उन प्रकरणोंमें प्रायः नायक-द्वारा किसी-न-किसी कन्याके लाभ-का वृत्तान्त पाया जाता है। अतः 'लम्ब' 'लम्भ' का ही विकृत रूप ज्ञात होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थको वर्तमान रूपमें सुसम्पादित कर ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशन योग्य बनानेके लिए हम पं० पन्नालालजी शास्त्रीके बहुत कृतज्ञ हैं। उन्होंने सात हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे पूर्व प्रकाशित कुप्पूस्वामीके संस्करणके अतिरिक्त चार अन्य हस्तलिखित कन्नड़ प्रतियोंका भी उपयोग किया है, संस्कृत टीकाका भी सम्पादन किया है तथा हिन्दी अनुवाद भी जोड़ा है जो इस कठिन गद्य ग्रन्थके समझने-समझानेमें बहुत सहायक होंगे। संस्कृतकी साहित्यिक गद्यशैली लम्बे वाक्यों, समास-बहुल पदों तथा प्रचुर अलंकारोंसे युक्त होती है जिन्हें जैसेके तैसे किसी भी अन्य भाषामें उतारना प्रायः असम्भव है। फिर भी पण्डितजीने यथाशक्ति हिन्दीमें मूलका अर्थ और भाव स्पष्ट करनेमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है।

प्राचीन साहित्यके संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश ग्रन्थोंको अनुवाद आदि सहित सुन्दर रूपमें प्रकाशित करनेवाले भारतीय ज्ञानपीठके संस्थापक तथा मन्त्री हमारे विशेष धन्यवादके पात्र हैं। उनकी इस ओर विशेष अभिरुचि और उदारताके बिना ऐसे ग्रन्थ-रत्नोंका इस रूपमें प्रकाशित होना कठिन था।

हीरालाल जैन
आ० ने० उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

प्रस्तावना

सम्पादन सामग्री

गद्यचिन्तामणिका सम्पादन नीचे लिखी प्रतियोंके आधारपर हुआ है—

१. 'क'—यह प्रति श्रीमान् पं० के० भुजबली शास्त्री मूडबिद्रीके सत्प्रयत्नसे श्रवणबेलगोलाके सरस्वतीभवनसे प्राप्त हुई थी। यह कन्नड लिपिमें ताड़पत्रोंपर लिखी हुई है। इसमें १४ × १$\frac{3}{4}$ इंचके ९७ पत्र हैं। प्रतिपत्रमें ८ पंक्तियाँ और प्रति पंक्तिमें ६६ के लगभग अक्षर हैं। दशा अच्छी है, अक्षर सुवाच्य हैं, बीच-बीचमें टिप्पण भी दिये हुए हैं। अन्तके २ श्लोक इस प्रतिमें नहीं हैं। अन्तिम लेख इस प्रकार है—

'परिधाविसम्बत्सरे माघमासे प्रथमपक्षे प्रतिपत्तिथौ रविवासरे बहुगुलापुरे लिखितम्।'

२. 'ख'—यह प्रति भी श्री पं० के० भुजबली शास्त्री मूडबिद्रीके सत्प्रयत्नसे प्राच्यविद्यामन्दिर मैसूरसे प्राप्त हुई थी। यह कन्नड लिपिमें कागजपर लिखी हुई है। इसमें १२ × ७$\frac{3}{4}$ इंचके १३१ पृष्ठ हैं। प्रति पृष्ठपर ३३ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्तिमें २७ के लगभग अक्षर हैं। रजिस्टरके रूपमें पक्की जिल्द है १८९९ दिसम्बरको नरसिंह शास्त्रीके द्वारा लिखी गयी है।

३. 'ग'—यह प्रति श्री पं० के० भुजबली शास्त्री मूडबिद्रीके सत्प्रयत्नसे प्राच्यविद्यामन्दिर मैसूरसे प्राप्त हुई थी। यह कागजपर आन्ध्र लिपिमें लिखी हुई है। इसमें १२ × ७$\frac{3}{4}$ इंचके १३० पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठमें २० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्तिमें २०–२१ अक्षर हैं। अन्तिम लेख इस प्रकार है—

'जय सम्वत्सर आश्विन बहुल १४ तिरुवल्लूर वीर राघवाचार्येण लिखितम्।'

दशा अच्छी है, रजिष्टरनुमा पक्की जिल्द है।

४. 'घ'—यह प्रति भी उक्त शास्त्रीजीके सौजन्यसे श्रवणबेलगोलाके सरस्वतीभवनसे प्राप्त हुई थी। यह कन्नड लिपिमें ताड़पत्रोंपर लिखी हुई है। इसमें १२ × १$\frac{1}{2}$ इंचके २१४ पत्र हैं। दशा अत्यन्त जीर्ण है, अधिकांश स्याही निकल जानेसे लिपि अवाच्य हो गयी है अतः इसका पूरा उपयोग नहीं हो सका है। लेखन-कालका पता नहीं चला। अन्तमें इस प्रकार लेख है—

'वासुपूज्यायनमः, कनकभद्राय नमः।'

५. 'म'—यह प्रति टी० एस्० कुप्पूस्वामी-द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित मुद्रित मूल प्रति है। इसका सम्पादन कुप्पूस्वामीने ७ प्राचीन प्रतियोंके आधारपर किया था अतः शुद्ध है। इसके दो संस्करण छप चुके हैं, पहले संस्करणकी अपेक्षा दूसरे संस्करणमें प्रेसकी असावधानीसे कुछ पाठ छूट गये हैं। यथा ३२ पृष्ठमें भुवन शब्दके बाद 'विबरव्यापिना—' आदि ७–८ पंक्तियाँ छूट गयी हैं।

दुःखकी बात है कि हमें गद्यचिन्तामणिकी नागरी लिपिमें लिखी हुई एक भी प्रति नहीं मिल सकी। आन्ध्र और कन्नड लिपिकी उक्त चार प्रतियोंसे पाठभेदोंका संकलन श्री पं० देवरभट्टजी, वाराणसीने किया है। श्रीमान् पं० अमृतलालजी जैन दर्शनाचार्य, वाराणसीने भी इसमें पूर्ण सहयोग दिया है अतः मैं इनका अत्यन्त आभारी हूँ। मैं स्वयं आन्ध्र और कन्नड लिपिका ज्ञाता नहीं अतः उक्त प्रतियोंसे स्वयमेव लाभ लेनेमें असमर्थ था।

जीवन्धरचरितकी लोकप्रियता

जीवन्धरस्वामीका चरित लोकोत्तर घटनाओंसे भरा हुआ है अतः उसके अंकनमें विविध लेखकोंने अपना गौरव समझा है।[1] अबतक जीवन्धर चरितके प्रख्यापक निम्नांकित ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं—

१. गद्यचिन्तामणि—वादीभसिंह सूरि-द्वारा विरचित गद्यकाव्य।
२. क्षत्रचूडामणि — ,, अनुष्टुप् छन्दोमय काव्य।
३. जीवंधरचरित—गुणभद्राचार्य रचित उत्तरपुराणके ७५वें पर्वका एक अंश।
४. जीवकचिन्तामणि—तिरुतक्क देवर-द्वारा रचित तमिलभाषाका एक प्रसिद्ध काव्य।
५. जीवंधर चरिउ—पुष्पदन्त कवि-द्वारा रचित अपभ्रंश महापुराणकी ९९वीं सन्धि।
६. जीवंधर चम्पू—महाकवि हरिचन्द्र-द्वारा रचित गद्य-पद्यमय संस्कृत चम्पू ग्रन्थ।
७. जीवंधरचरित—अपभ्रंश भाषामय रइधू कवि-द्वारा रचित १३ संधियोंका एक ग्रन्थ।
८. जीवंधरचरिते—बासवके पुत्र भास्करके द्वारा लिखित कन्नड भाषाका १८ अध्यायात्मक १००० श्लोकोंका एक ग्रन्थ।
९. जीवंधरसांगत्य—तेरक नम्बि बोम्मरसके द्वारा लिखित २० अध्यायात्मक १४४९ श्लोकोंका एक कन्नड भाषाका ग्रन्थ।
१०. जीवंधर षट्पदी—कोटीश्वरके द्वारा लिखित १० अध्यायात्मक ११८ श्लोकोंका एक कन्नड ग्रन्थ।
११. जीवंधरचरित—शुभचन्द्रके पाण्डव पुराणान्तर्गत एक अंश (संस्कृत)।
१२. जीवंधरचरिते—ब्रह्मकविका कन्नड भाषात्मक ग्रन्थ।
१३. जीवंधरचरित—कवि नथमल-द्वारा रचित हिन्दी छन्दोबद्ध रचना।

गद्यचिन्तामणिकी कथाका आधार

गद्यचिन्तामणि, क्षत्रचूडामणि, जीवकचिन्तामणि और जीवन्धरचम्पूकी कथा एक सदृश है। स्थानों तथा पात्रोंके नाम एक सदृश हैं। घटनाचक्र—वृत्तवर्णन भी तीनोंका समान है। परन्तु उत्तरपुराणका वर्णन जहाँ कहीं समानता रखता है तो अनेक स्थानोंपर असमानता भी। उसमें स्थान तथा पात्रोंके नाम भी जहाँ कहीं दूसरे-दूसरे हैं। बीच-बीचमें कुछ ऐसी घटनाएँ भी उपलब्ध हैं जिनका उक्त तीनों ग्रन्थोंमें उल्लेख नहीं है। गद्यचिन्तामणिकारने यद्यपि प्रारम्भिक वक्तव्यमें—

> निःसारभूतमपि बन्धनतन्तुजातं मूर्ध्ना जनो वहति हि प्रसवानुषङ्गात्।
> जीवंधरप्रभवपुण्यपुराणयोगाद्वाक्यं ममाप्युभयलोकहितप्रदायि॥

इस श्लोक-द्वारा जीवन्धरसे सम्बद्ध पुराणका उल्लेख किया है और विद्वान् लोग उनके इस पुराणसे गुणभद्रके उत्तरपुराणान्तर्गत जीवकचरितको समझते हैं पर कथामें भेद होनेसे ऐसा लगता है कि वादीभसिंहने अपने ग्रन्थोंका आधार उत्तरपुराणको न बनाकर किसी दूसरे ही पुराणको बनाया है। पुराणका काव्यीकरण तो हो सकता है और अनावश्यक कथाभाग छोड़ा भी जा सकता है। परन्तु स्थान और पात्रोंके नाम आदिमें परिवर्तन सम्भव नहीं दिखता। हाँ, जीवन्धरचम्पूकार महाकवि हरिचन्द्रने अपने ग्रन्थका आधार जहाँ गद्यचिन्तामणिको बनाया है वहाँ उत्तरपुराणके वृत्तवर्णनका भी कुछ उपयोग किया है। क्षत्रचूडामणिकी भूमिकामें दोनों ग्रन्थोंके उद्धरण देकर श्री टी० एस० कुप्पूस्वामीने यह सिद्ध किया है कि तमिळ भाषाके जीवकचिन्तामणिके कर्ता तिरुतक्कदेवने कथाभाग वादीभसिंहके ग्रन्थों—गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणिसे

१. देखो, 'जीवन्धरचम्पू' की डॉ० उपाध्ये व हीरालाल लिखित अँगरेजी प्रस्तावना (ज्ञानपीठ प्रकाशन)।

किया है। गद्यचिन्तामणिके 'जीवन्धरप्रभवपुण्यपुराणयोगात्' इस सामान्यपदसे उत्तरपुराणकी स्पष्टता होती भी तो नहीं है। श्लोकका सीधा अर्थ यह है कि 'जिस प्रकार फूलोंकी संगतिसे कारण लोग बन्धनमें उपयुक्त होनेवाले निःसार तन्तुओंको मस्तकपर धारण करते हैं उसी प्रकार चूँकि मेरे वचन भी जीवन्धर स्वामीसे उत्पन्न पवित्र पुराणके साथ सम्बन्ध रखते हैं—उसका वर्णन करते हैं। अतः दोनों लोकोंमें हित-प्रदान करनेवाले होंगे।'

इस परिप्रेक्ष्यमें गद्यचिन्तामणिके आधारस्तम्भकी खोज अपेक्षित है।

जीवन्धरस्वामीके चरितका तुलनात्मक अध्ययन

इस स्तम्भमें गद्यचिन्तामणि, उत्तरपुराण, तथा जीवन्धरचम्पू आदिके आधारपर जीवन्धरस्वामीके चरितका तुलनात्मक अध्ययन प्रकट किया जाता है।

एक बार मगध सम्राट् राजा श्रेणिक भगवान् महावीरके समवसरण सम्बन्धी आम्रादि चारों वनोंमें घूम रहे थे। वहींपर अशोक वृक्षके नीचे जीवन्धर मुनिराज ध्यानारूढ थे। महाराज श्रेणिक उनके अनुपम सौन्दर्य तथा अतिशय प्रशान्त ध्यानमुद्रासे आकृष्ट चित्त हो उनका परिचय प्राप्त करनेके लिए उत्सुक हो उठे। फलतः उन्होंने समवसरणके भीतर जाकर सुधर्माचार्य गणधर देवसे पूछा—'ये मुनिराज कौन हैं? जान पड़ता है अभी हाल कर्मोंका क्षय कर मुक्त हो जाने वाले हैं।' इसके उत्तरमें चार ज्ञानके धारक सुधर्माचार्य कहने लगे—

हे श्रेणिक! इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें हेमांगद नामका देश है और उसमें सुशोभित है राजपुर नगर। इस नगरका राजा सत्यन्धर था और उसकी दूसरी विजयलक्ष्मीके समान विजया नामकी रानी थी। राजा सत्यन्धरका काष्ठांगारिक नामका मन्त्री था और दैवजन्य उपद्रवोंको नष्ट करनेवाला रुद्रदत्त[1] नामका पुरोहित था। एक दिन विजया रानीने दो[2] स्वप्न देखे। पहला स्वप्न था कि राजा सत्यन्धरने मेरे लिए आठ घण्टाओंसे सुशोभित अपना मुकुट दिया है और दूसरा स्वप्न था कि वह जिस अशोक वृक्षके नीचे बैठी थी उसे किसीने कुल्हाड़ीसे काट दिया है और उसके स्थानपर एक छोटा-सा अशोकका वृक्ष उत्पन्न हो गया है। प्रातःकाल होते ही रानीने राजासे स्वप्नोंका फल पूछा। राजाने कहा कि मेरे मरनेके बाद तू शीघ्र ही ऐसा पुत्र प्राप्त करेगी जो आठ लाभोंको पाकर पृथिवीका भोक्ता होगा। स्वप्नोंका प्रिय और अप्रिय फल सुनकर रानीका चित्त शोक और हर्षसे भर गया। उसकी व्यग्रता देख राजाने उसे अच्छे शब्दोंसे सन्तुष्ट कर दिया जिससे दोनोंका काल सुखसे व्यतीत होने लगा।

उसी राजपुर नगरमें एक गन्धोत्कट नामक धनी सेठ रहता था, उसने एक बार तीन ज्ञानके धारक शीलगुप्त मुनिराजसे पूछा कि भगवन्! हमारे बहुत-से अल्पायु पुत्र हुए हैं क्या कभी दीर्घायु पुत्र भी होगा? मुनिराजने कहा कि हाँ, तू दीर्घायु पुत्र प्राप्त करेगा। किस तरह? यह भी सुन। तेरे एक मृत पुत्र उत्पन्न होगा उसे छोड़नेके लिए जब तू वनमें जायेगा तब वहीं किसी पुण्यात्मा पुत्रको पावेगा। वह पुत्र समस्त पृथिवीका उपभोक्ता हो अन्तमें मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त करेगा। जिस समय मुनिराज, गन्धोत्कटसे यह वचन कह रहे थे उसी समय वहाँ एक यक्षी बैठी थी। मुनिराजके वचन सुन यक्षीके मनमें होनहार राजपुत्रकी माताका उपकार करनेकी इच्छा हुई। निदान, जब राजपुत्रकी उत्पत्तिका समय आया तब वह यक्षी उसके पुण्यसे प्रेरित हो राजकुलमें गयी और एक गरुडयन्त्र[3]का रूप बनाकर पहुँची।

---

१. गद्यचिन्तामणि आदिमें इस पुरोहितका कोई उल्लेख नहीं है। २. गद्यचिन्तामणि आदिमें तीन स्वप्नोंकी चर्चा है—पहले स्वप्नमें एक विशाल अशोक वृक्ष देखा, दूसरे स्वप्नमें उस वृक्षको नष्ट हुआ देखा और तीसरे स्वप्नमें उस नष्ट वृक्षमें-से उत्पन्न हुए एक छोटे अशोक वृक्षको देखा जिसकी आठ शाखाओंपर आठ मालाएँ लटक रही थीं। ३. गद्यचिन्तामणिमें चर्चा है कि राजाने रानीका दोहला पूर्ण करनेके लिए कारीगरसे मयूरयन्त्र बनवाया था और उसमें बैठाकर उसे आकाशमें घुमाया था।

वसन्त ऋतुका समय था। एक[1] दिन रुद्रदत्त पुरोहित प्रातःकालके समय राजाके घर गया। उस समय रानी आभूषण-रहित बैठी थी। पुरोहितने पूछा कि राजा कहाँ है? रानीने उत्तर दिया कि अभी सोये हुए हैं इस समय उनके दर्शन नहीं हो सकते। रानीके इन वचनोंको अपशकुन समझ वह लौट आया और काष्ठांगारिक मन्त्रीके घर गया। पापबुद्धि पुरोहितने मन्त्रीसे एकान्तमें कहा कि तू राजाको मार डाल। मन्त्रीने पुरोहितकी बात माननेमें असमंजसता दिखायी तो पुरोहितने दृढ़ताके साथ कहा कि राजाके जो पुत्र होनेवाला है वह तेरा प्राणघातक होगा इसलिए इसका प्रतिकार कर। रुद्रदत्त इतना कहकर घर चला गया और रोगसे पीड़ित हो तीसरे दिन मरकर चिरकाल तक दुःख देनेवाली नरक गतिमें जा पहुँचा।

इधर काष्ठांगारिकने रुद्रदत्तके कहनेसे अपनी मृत्युकी आशंका कर राजाको मारनेकी इच्छा की। उसने धन देकर दो हजार शूरवीर राजाओंको अपने अधीन कर लिया। वह उन्हें साथ लेकर युद्धके लिए राजमन्दिरकी ओर चला। जब राजाको इस बातका पता चला तो उसने रानीको गरुडयन्त्रपर बैठाकर वहाँसे शीघ्र ही दूर कर दिया। काष्ठांगारिक मन्त्रीने पहले जिन राजाओंको अपने वश कर लिया था उन राजाओंने जब सत्यन्धरको देखा तो वे मन्त्रीको छोड़ राजाकी ओर हो गये। राजा सत्यन्धरने उन सबको साथ ले काष्ठांगारिक मन्त्रीपर आक्रमण किया और उसे खदेड़कर भयभीत कर दिया। काष्ठांगारिकके पुत्र कालांगारिकने जब पिताकी हारका समाचार सुना तब वह बहुत-सी सेना लेकर अकस्मात् वहाँ जा पहुँचा। उसकी सहायतासे काष्ठांगारिकने राजा सत्यन्धरको मार डाला और स्वयं राजा बन बैठा।

विजया रानी गरुडयन्त्रपर बैठकर श्मशानमें[2] पहुँची। वह शोकसे बहुत विह्वल थी परन्तु पूर्वोक्त यक्षी उसकी रक्षा कर रही थी। उसी श्मशानमें रात्रिके समय विजया रानीने पुत्रको जन्म दिया। पुत्र-जन्मका रानीको थोड़ा भी आनन्द उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु भाग्यकी प्रतिकूलतापर शोक ही उत्पन्न हुआ। [3]यक्षीने सारगर्भित शब्दोंमें उसे सान्त्वना दी।

गन्धोत्कट सेठ भी अपने मृत पुत्रको छोड़नेके लिए उसी श्मशानमें पहुँचा और शीलगुप्त मुनिराजके वचन स्मरण कर दीर्घायु पुत्रकी खोज करने लगा। रोनेका शब्द सुन विजया रानीके पुत्रकी ओर उसकी दृष्टि गयी। सेठने 'जीव जीव' कहकर उस पुत्रको दोनों हाथोंसे उठा लिया। विजया रानीने आवाजसे सेठको पहचान लिया और उसे अपना परिचय देकर कहा कि भद्र! तू मेरे इस पुत्रका इस तरह पालन करना कि जिससे किसीको पता नहीं चल सके।[4] 'मैं ऐसा ही करूँगा' यह कहकर सेठ उस पुत्रको घर ले आया। और अपनी पत्नी सुनन्दाको डाँट दिखलाने लगा कि तूने जीवित पुत्रको मृत कैसे कह दिया।[5] सुनन्दा उस पुत्रको पाकर बड़ी प्रसन्न हुई। सेठने जन्म-संस्कार कर उसका 'जीवक' अथवा 'जीवन्धर' नाम रखा। सेठके घर जीवन्धरका अच्छी तरह लालन-पालन होने लगा।

---

१. गद्यचिन्तामणि आदिमें इसकी कोई चर्चा नहीं है। २. यहाँ उत्तरपुराणमें श्मशानका वर्णन करते हुए गुणभद्र स्वामीने जलती चिताओंमें-से अधजले मुरदे खींचकर उन्हें खण्ड-खण्ड कर खाती हुई डाकिनियोंका वर्णन किया है और इसका अनुकरण कर जीवन्धरचम्पूकारने भी अच्छी गद्य लिखी है पर गद्यचिन्तामणिकारने मात्र श्मशानका उल्लेख कर छोड़ दिया है। उसमें डाकिनी-शाकिनी आदिका कोई उल्लेख नहीं किया है। डाकिनी आदि व्यन्तर देवोंका मांस-भक्षण शास्त्रसम्मत भी तो नहीं है। जिन्होंने वर्णन किया है वह सिर्फ कवि-सम्प्रदाय वश ही किया है। ३. गद्यचिन्तामणिकारने यक्षीको विजयारानीकी चम्पकमाला दासीके वेषमें प्रस्तुत किया है पर उत्तरपुराणमें इसकी चर्चा नहीं है। ४. गद्यचिन्तामणिकारने गन्धोत्कटके पहुँचनेपर रानीको वृक्षकी ओटमें अन्तर्हित कर दिया है और ज्योंही गन्धोत्कटने उस बालकको उठाया त्योंही आकाशमें 'जीव' इस शब्दका उच्चारण कराया है। ५. पराया पुत्र समझ सुनन्दा इसका ठीक-ठीक लालन-पालन नहीं करेगी, इस आशंकासे दूरदर्शी सेठने सुनन्दाके सामने यह भेद प्रकट नहीं किया कि यह किसी दूसरेका पुत्र है।

विजया रानी उसी गरुडयन्त्रमें बैठकर दण्डकवनमें स्थित तापसियोंके आश्रममें चली गयी[1] और वहाँ अपना परिचय न देकर तापसीके वेषमें रहने लगी। यक्षी बीच-बीचमें जाकर उसका शोक दूर करती रहती थी।

[2]राजा सत्यन्धरकी भामारति और अनंगपताका नामकी दो छोटी स्त्रियाँ और थीं। इन दोनोंने मधुर और वकुल नामके दो पुत्र प्राप्त किये। इन दोनों ही रानियोंने धर्मका स्वरूप सुन श्रावकके व्रत धारण कर लिये थे इसलिए ये दोनों ही भाई गन्धोत्कट[3] के यहाँ ही पालन-पोषणको प्राप्त हो रहे थे। उसी नगरमें विजयमति, सागर, धनपाल और मतिसागर नामके चार श्रावक और थे जो कि अनुक्रमसे राजाके सेनापति, पुरोहित, श्रेष्ठी और मन्त्री थे। इन चारोंको स्त्रियोंके नाम अनुक्रमसे जयावती, श्रीमती, श्रीदत्ता और अनुपमा थे। इनसे क्रमसे देवसेन, बुद्धिषेण, वरदत्त और मधुमुख नामके पुत्र उत्पन्न हुए थे। मधुमुख आदिको लेकर वे छहों पुत्र जीवन्धर कुमारके साथ ही वृद्धिको प्राप्त हुए थे। इधर, गन्धोत्कटकी स्त्री सुनन्दाने भी नन्दाढ्य नामका पुत्र उत्पन्न किया।

[4]एक दिन जीवन्धरकुमार नगरके बाहर अपने साथियोंके साथ गोली वँटा आदि खेल रहे थे कि इतनेमें एक तपस्वीने आकर पूछा कि यहाँसे गाँव कितनी दूर है? तपस्वीका प्रश्न सुन जीवन्धरकुमारने उत्तर दिया कि आप वृद्ध होकर भी अज्ञानी हैं? बालकोंकी क्रीड़ा देख कौन नहीं जान लेगा कि नगर पास ही है। जीवन्धरकी उत्तर देनेकी प्रणालीसे तपस्वी बहुत प्रसन्न हुआ और समझ गया कि यह कोई राजवंशका उत्तम बालक है। फिर भी परीक्षार्थ उसने कहा कि तुम मुझे भोजन दो। जीवन्धरकुमारने उसे भोजन देना स्वीकृत कर लिया और साथ लेकर घर आनेपर अपने पिता गन्धोत्कटसे कहा कि मैंने उसे भोजन देना स्वीकार किया है फिर आपकी जो आज्ञा हो। पुत्रकी विनम्रतासे गन्धोत्कट बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि तू भोजन कर, यह तपस्वी मेरे साथ भोजन कर लेगा। जीवन्धर भोजनके लिए भोजनशालामें बैठे। भोजन गरम था इसलिए रोने लगे। उन्हे रोते देख तपस्वीने कहा कि तू अच्छा बालक होकर भी क्यों रोता है? इसके उत्तरमें जीवन्धरकुमारने रोनेके अनेक गुण बता दिये। जिसे सुन हास्य गूँज उठा और प्रसन्नताका वातावरण छा गया।[5]

जब गन्धोत्कट भोजन कर चुका तब शान्तिसे बैठे हुए तपस्वीने कहा कि यह बालक बहुत होनहार है। मैं इसे पढाना चाहता हूँ। गधोत्कटने कहा कि मैं श्रावक हूँ इसलिए अन्य लिंगियोंको नमस्कार नहीं करता। नमस्कारके अभावमे आपको बुरा लगेगा इसलिए आपसे पढ़ाईका काम नहीं हो सकेगा। इसके उत्तरमे तपस्वीने अपना परिचय दिया कि मैं सिंहपुरका राजा था, आर्यवर्मा मेरा नाम था, वरीनन्दी मुनिसे

---

१. गद्यचिन्तामणिमें चर्चा है कि चम्पकमाला दासीका वेष रखनेवाली यक्षीने रानीके सामने भाईके घर चले आनेका प्रस्ताव रखा पर रानीने विपत्तिके समय स्वयं किसीके यहाँ जाना स्वीकृत नहीं किया। तब वह उसे दण्डकवनमें भेज आयी। २. यह चर्चा गद्यचिन्तामणि आदिमें नहीं है सिर्फ बुद्धिषेणका उल्लेख सुरमंजरीके प्रकरणमें अवश्य आया है। ३. गन्धोत्कट सेठ बड़ा बुद्धिमान् और दीर्घदर्शी था। उसने सोचा कि यदि काष्ठांगारिकसे अलग रहते हैं तो वह राजपुत्र जीवन्धरको कभी भी कुदृष्टिसे ताड़ सकता है इसलिए ऊपरसे वह उससे मिल गया और मिलकर उससे खूब धन प्राप्त किया। उसने सोचा कि राजपुत्रकी रक्षाके लिए यदि अलगसे सेना रखी जायेगी तो भेद जल्दी प्रकट हो जायेगा इसलिए उसने काष्ठांगारिककी आज्ञासे उस दिन नगरमें उत्पन्न हुए सब बालकोंको अपने घर बुला लिया और सबका पालन अपने ही घर कराने लगा। उसका ख्याल था कि बड़े होनेपर वे जीवन्धरके अभिन्न मित्र होंगे और वही एक छोटी-मोटी सेनाका काम देंगी।''''गद्यचिन्तामणिमें इसका अच्छा संकेत है। ४. इस घटनाका गद्यचिन्तामणिकारने कोई उल्लेख नहीं किया है। हाँ, जीवन्धरचम्पूकारने किया है और सुन्दरताके साथ किया है। ५. इस विनोद घटनाका भी गद्यचिन्तामणिमें कोई वर्णन नहीं है किन्तु जीवन्धरचम्पूमें बड़ी सरसताके साथ यह वर्णन किया गया है।

मैंने धर्मका स्वरूप सुन सम्यग्दर्शन धारण कर लिया और अपने धृतिषेण पुत्रको राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली। परन्तु भस्मक व्याधिसे पीड़ित होनेके कारण मैंने यह तपस्वीका वेष धारण कर लिया है, मैं सम्यग्दृष्टि हूँ, तुम्हारा धर्म-बन्धु हूँ। इस प्रकार तपस्वीके वचन सुन तथा उसकी परीक्षा कर गन्धोत्कट सेठने उसके लिए मित्रों-सहित जीवन्धर कुमारको सौंप दिया।[१] तपस्वीने थोड़े ही समयमें जीवन्धरकुमारको समस्त विद्याओंका पारगामी बना दिया। और स्वयं फिरसे संयम धारण कर मोक्ष प्राप्त किया।[२]

तदनन्तर कालकूट नामक भीलोंके राजाने अपनी सेनाके साथ नगरपर आक्रमण कर गायोंका समूह चुरा ले जानेका उपक्रम किया। काष्ठांगारिकने घोषणा करायी कि मैं गायोंको छुड़ानेवालेके लिए गोपेन्द्रकी स्त्री गोपश्रीसे उत्पन्न गोदावरी नामकी कन्या दूँगा। इस घोषणाको सुनकर जीवन्धरकुमार काष्ठांगारिकके पुत्र कालांगारिक तथा अन्य साथियोंके साथ कालकूट भीलके पास पहुँचे और उसे परास्त कर गायें वापस ले आये। इस घटनासे कुमारकी बहुत कीर्ति फैली। कुमारने अपने सब साथियोंसे कहा कि तुम लोग एक स्वरसे अर्थात् बिना किसी मतभेदके राजा काष्ठांगारिकसे कहो कि गौओंको नन्दाढ्यने जीता है। इस प्रकार राजाके पास सन्देश भेजकर उन्होंने पूर्व घोषित गोदावरी कन्या विवाहपूर्वक नन्दाढ्यको दिलवायी।[3]

भरतक्षेत्र-सम्बन्धी विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक गगनवल्लभ नगर है उसमें विद्याधरोंका राजा गरुडवेग राज्य करता था। दैवयोगसे उसके भागीदारोंने उसका अभिमान नष्ट कर दिया इसलिए वह भागकर रत्नद्वीपमें चला गया और वहाँ मनुजोदय पर्वतपर एक सुन्दर नगर बसाकर रहने लगा। उसकी रानीका नाम धारिणी था और उन दोनोंके गन्धर्वदत्ता नामकी पुत्री थी। जब वह विवाहके योग्य अवस्थामें पहुँची तब राजाने मन्त्रियोंसे वरके लिए पूछा। इसके उत्तरमें मन्त्रीने भविष्यके ज्ञाता मुनिराजसे जो सुन रखा था वह कहा—

[४]हे राजन्! मैंने एक बार सुमेरु पर्वतके नन्दन वनमें स्थित विपुलमति नामक चारणऋद्धिके धारक मुनिराजसे आपकी कन्याके वरके विषयमें पूछा था तो उन्होंने कहा था कि भरतक्षेत्रके हेमांगद देशमें एक राजपुरी नामकी नगरी है। उसके राजा सत्यन्धर और रानी विजयाके एक जीवन्धर नामका पुत्र हुआ है वह वीणाके स्वयंवरमें गन्धर्वदत्ताको जीतेगा। वही उसका पति होगा। राजाने उसी मतिसागर मन्त्रीसे पुनः पूछा कि भूमि गोचरियोंके साथ हम लोगोंका सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है? उसके उत्तरमें उसने मुनिराजसे जो अन्य बातें सुन रखी थी वे स्पष्ट कह सुनायीं—उसने कहा कि राजपुरी नगरीमें एक वृषभदत्त सेठ रहता था, उसकी स्त्रीका नाम पद्मावती था और उन दोनोंके एक जिनदत्त नामका पुत्र था। किसी एक

---

१. गद्यचिन्तामणि आदिमें गुरुने विद्याध्ययन समाप्तिके बाद अपना परिचय दिया है और कहा कि मैं विद्याधरोंके निवासस्थलमें लोकपाल नामका राजा था आदि।.... २. गद्यचिन्तामणि आदिमें वर्णन है कि तपस्वीने विद्याएँ पूर्ण होनेके बाद जीवन्धरको रत्नत्रयका उपदेश दिया और साथमें यह भी बता दिया कि तुम राजा सत्यन्धरके पुत्र हो। काष्ठांगारने तुम्हारे पिताको मार डाला था। यह सुन जीवन्धर-को काष्ठांगारपर बहुत क्रोध उठा और उसे मारनेको तत्पर हो गये परन्तु तपस्वीने समझाकर उसे एक वर्ष तक ऐसा न करनेके लिए शान्त कर दिया। ३. गद्यचिन्तामणि आदिमें उल्लेख है कि काष्ठांगारकी सेनाके हार जानेपर नन्दगोपने घोषणा करायी थी और विजयके बाद जब वह अपनी कन्या जीवन्धरको देने लगा तो उन्होंने न लेकर अपने मित्र पद्मास्यको दिलायी। ४. गद्यचिन्तामणि आदिमें गरुडवेगका नगर नित्यालोक बतलाया है तथा उसके भाग कर रत्नद्वीपमें बसनेका कोई उल्लेख नहीं है। वरके विषयमें मुनिराजकी भविष्यवाणी न देकर ज्योतिषियोंकी बात लिखी थी। जिनदत्त सेठके बदले श्रीदत्तसेठका उल्लेख है। काष्ठांगारिकके पुत्र कालांगारिककी कोई चर्चा नहीं है। किन्तु स्वयं काष्ठांगारने आगत राजकुमारोंको उत्तेजित किया है। श्रीदत्त समुद्रयात्राके लिए गया था, लौटते समय एक विद्याधरकी मायासे उसे लगा कि हमारा जहाज डूब गया है। वह उसके साथ विजयार्ध पर्वतपर स्थित नित्यालोक नगरमें पहुँचता है।

समय राजपुरीके उद्यानमें सागरसेन जिनराज पधारे थे उनके केवलज्ञानके उत्सवमें वह अपने पिताके साथ आया था। आप भी वहाँ पधारे थे इसलिए उसे देख आपका उसके साथ प्रेम हो गया था। वही जिनदत्त धन कमानेके लिए रत्नद्वीप आवेगा उसीसे हमारे इष्ट कार्यकी सिद्धि होगी।

इस तरह कितने ही दिन बीत जानेपर जिनदत्त रत्नद्वीप आया। राजा गरुड़वेगने उसका खूब सत्कार किया और उसे सब बात समझाकर गन्धर्वदत्ता सौंप दी। जिनदत्तने भी राजपुरी नगरीमें वापस आकर उसके मनोहर नामक उद्यानमें वीणा स्वयंवरकी घोषणा करायी। स्वयंवरमें जीवन्धरकुमारने गन्धर्वदत्ताकी सुघोषा नामक वीणा लेकर उसे इस तरह बजाया कि वह अपने-आपको पराजित समझने लगी तथा उसी क्षण उसने जीवन्धरके गलेमें वरमाला डाल दी। इस घटनासे काष्ठांगारिकका पुत्र कालांगारिक बहुत क्षुभित हुआ। वह गन्धर्वदत्ताको हरण करनेका उद्यम करने लगा, परन्तु बलवान् जीवन्धरकुमारने उसे शीघ्र ही परास्त कर दिया। गन्धर्वदत्ताके पिता गरुडवेगने अनेक विद्याधरोंके साथ आकर सबको शान्त कर दिया और विधिपूर्वक गन्धर्वदत्ताका जीवन्धरकुमारके साथ पाणिग्रहण करा दिया।

तदनन्तर इसी राजपुरी नगरीमें एक वैश्रवणदत्त नामक सेठ रहता था उसकी आम्रमंजरी नामक स्त्रीसे सुरमंजरी नामकी कन्या हुई थी। उस सुरमंजरीकी एक श्यामलता नामकी दासी थी, वसन्तोत्सवके समय श्यामलता, सुरमंजरीके साथ उद्यानमें आयी थी। वह अपनी स्वामिनीका चन्द्रोदय नामक चूर्ण लिये थी और उसकी प्रशंसा लोगोंमें करती फिरती थी। उसी नगरीमें एक कुमारदत्त सेठ रहता था, उसकी विमला नामक स्त्रीसे गुणमाला नामक पुत्री हुई थी। गुणमालाकी एक विद्युल्लता नामकी दासी थी। वह अपनी स्वामिनीका सूर्योदय नामका चूर्ण लिये थी और उसकी प्रशंसा लोगोंमें करती फिरती थी। चूर्णकी उत्कृष्टताको लेकर दोनों कन्याओंमें विवाद चल पड़ा। उस वसन्तोत्सवमें जीवन्धरकुमार भी अपने मित्रोंके साथ गये हुए थे। जब चूर्णकी परीक्षाके लिए उनसे पूछा गया तब उन्होंने सुरमंजरीके चूर्णको उत्कृष्ट सिद्ध कर बता दिया।[1]

नगरके लोग वसन्तोत्सवमें लीन थे। उसी समय कुछ दुष्ट बालकोंने चपलतावश एक कुत्तेको मारना शुरू किया।[2] भयसे व्याकुल होकर वह भागा और एक कुण्डमें गिरकर मरणोन्मुख हो गया। जीवन्धरकुमारने यह देख उसे अपने नौकरोंसे बाहर निकलवाया और उसे पंचनमस्कार मन्त्र सुनाया जिसके प्रभावसे वह चन्द्रोदय पर्वतपर सुदर्शन यक्ष हुआ। पूर्वभवका स्मरण कर वह जीवन्धरके पास आया और उनकी स्तुति करने लगा। अन्तमें वह जीवन्धरकुमारसे यह कहकर अपने स्थानपर चला गया कि दुःख और सुखमें मेरा स्मरण करना।

जब सब लोग क्रीड़ा कर वनसे लौट रहे थे तब काष्ठांगारिकके अशनिघोष नामक हाथीने कुपित होकर जनतामें आतंक उत्पन्न कर दिया। सुरमंजरी उसकी चपेटमें आनेवाली ही थी कि जीवन्धरकुमारने ठीक समयपर पहुँचकर हाथीको मद रहित कर दिया। इस घटनासे सुरमंजरीका जीवन्धरके प्रति अनुराग बढ़ गया और उसके माता-पिताने जीवन्धरके साथ उसका विवाह कर दिया।[3]

जीवन्धरकुमारका सुयश सब ओर फैलने लगा जिससे काष्ठांगारिक मन-ही-मन कुपित रहने लगा। 'इसने हमारे हाथीको बाधा पहुँचायी है' यह बहाना लेकर काष्ठांगारिकने अपने चण्डदण्ड नामक मुख्य रक्षकको आदेश दिया कि इसे शीघ्र ही यमराजके घर भेज दो। आज्ञानुसार चण्डदण्ड अपनी सेना लेकर जीवन्धरकी ओर दौड़ा परन्तु ये पहलेसे ही सावधान थे अतः उन्होंने उसे पराजित कर भगा दिया। इस

---

१. गद्यचिन्तामणिमें चर्चा है कि जीवन्धरकुमारने गुणमालाके चूर्णको उत्कृष्ट सिद्ध किया था, इसलिए सुरमंजरी नाराज होकर बिना स्नान किये ही घर वापस चली गयी थी। २. गद्यचिन्तामणि आदिमें चर्चा है कि भोजनको सूँघनेके अपराधसे कुपित ब्राह्मणोंने उस कुत्तेको दण्ड तथा पत्थर आदिसे इतना मारा कि वह मरणोन्मुख हो गया। ३. गद्यचिन्तामणि आदिमें यहाँ सुरमंजरीके साथ विवाह न कर गुणमालाके साथ विवाह करानेका उल्लेख है।

घटनासे काष्ठांगारिक और भी अधिक कुपित हुआ। अबकी बार उसने बहुत-सी सेना भेजी। परन्तु दयालु जीवन्धरकुमारने निरपराध सैनिकोंको मारना अच्छा नहीं समझा, इसलिए सुदर्शन यक्षका स्मरण कर सब उपद्रव शान्त कर दिया। सुदर्शन यक्ष उन्हें विजयगिरि हाथीपर बैठाकर अपने घर ले गया। जीवन्धरकुमारको यक्षके साथ जानेका समाचार गन्धर्वदत्ताको छोड़कर किसीको विदित नहीं था इसलिए सब लोग बहुत दुःखी हुए परन्तु गन्धर्वदत्ताने सबको सान्त्वना देकर स्वस्थ कर दिया।

जीवन्धरकुमार यक्षके घरमें बहुत दिन तक सुखसे रहे। तदनन्तर चेष्टाओं-द्वारा उन्होंने यक्षसे अपने जानेकी इच्छा प्रकट की। उनका अभिप्राय जान यक्षने उन्हें कान्तिसे देदीप्यमान, इच्छित कार्यको सिद्ध करनेवाली और मनचाहा रूप बना देनेवाली एक अंगूठी देकर पर्वतसे नीचे उतार दिया तथा सब मार्ग समझा दिया।[1]

[2]कुछ दूर चलनेपर जीवन्धर चन्द्राभनगर पहुँचे। वहाँ [3]धनपति नामका राजा था और तिलोत्तमा नामकी उसकी स्त्री थी। दोनोंके पद्मोत्तमा[4] नामकी पुत्री थी। एक बार वनविहारके समय पद्मोत्तमाको साँपने काट खाया। सर्प विषसे पद्मोत्तमा मूच्छित हो गयी। उपचार करनेपर भी जब अच्छी नहीं हुई तो राजा धनपतिने उसे अच्छी कर देनेवालेके लिए आधा राज्य और वही कन्या देनेकी घोषणा करायी। राजा धनपतिके सेवकोंके आग्रहसे जीवन्धरकुमार उसके घर गये और यक्षका स्मरण कर मन्त्र-द्वारा उन्होंने पद्मोत्तमका विष दूर कर दिया। राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसने जीवन्धरके लिए अपना आधा राज्य तथा पद्मोत्तमा कन्या दे दी। राजा धनपतिके लोकपाल आदि बत्तीस पुत्र थे। उन सबके स्नेह वश जीवन्धर वहाँ कुछ समय तक सुखसे रहे।

तदनन्तर चुपचाप वहाँसे चलकर क्षेम देशके क्षेमनगरमें पहुँचे। वहाँके बाह्य उद्यानमें सहस्रकूट जिनालय देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उनके पहुँचनेपर चम्पा फूल उठा, कोकिलाएँ बोलने लगीं, सूखा सरोवर भर गया तथा मन्दिरके द्वारके कपाट अपने-आप खुल गये। कुमारने सरोवरमें स्नान कर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र देवकी पूजा की और वहाँके सुभद्र सेठकी निर्वृति नामक स्त्रीसे उत्पन्न [5]क्षेमसुन्दरी कन्याके साथ विवाह किया। [6]एक दिन प्रसन्न होकर सुभद्र सेठने जीवन्धरसे कहा कि जब मैं पहले राजपुर नगरमें रहता था तब राजा सत्यन्धरने मुझे यह धनुष और ये बाण दिये थे, ये आपके ही योग्य हैं अतः आप ही ग्रहण कीजिए''' इस प्रकार कहकर वह धनुष और बाण दे दिये। जीवन्धरकुमार धनुष बाण लेकर बहुत सन्तुष्ट हुए। यहींपर उनकी प्रथम स्त्री—गन्धर्वदत्ता अपनी विद्याके द्वारा उनके पास गयी और उन्हें सुखसे बैठा देख किसीके जाने बिना वापस आ गयी।

[7]वहाँसे चलकर जीवन्धरकुमार [8]सुजन देशके हेमाभनगर पहुँचे। वहाँका राजा दृढ़मित्र था और उसकी स्त्रीका नाम नलिना[9] था। दोनोंके एक हेमाभा नामकी कन्या थी। हेमाभाके जन्मके समय किसी निमित्तज्ञानीने बताया था कि मनोहर नामक वनकी आयुधशालामें जिसका बाण लक्ष्य स्थानसे लौट-

---

१. गद्यचिन्तामणि आदिमें विष दूर करनेवाली, मनचाहा रूप बना देनेवाली और उत्कृष्ट मोहक संगीत करानेवाली तीन विद्याएँ दीं, ऐसा उल्लेख है। २. गद्यचिन्तामणि आदिमें चन्द्राभनगर पहुँचनेके पूर्व वनमें दावानलसे झुलसते हुए हाथियों और यक्षके स्मरणसे आकस्मिक वृष्टि-द्वारा उनका उपद्रव शान्त होनेका वर्णन है। ३. गद्यचिन्तामणि आदिमें राजाका नाम लोकपाल दिया है। ४. गद्यचिन्तामणि आदिमें कन्याका नाम पद्मा दिया है। ५. गद्यचिन्तामणि आदिमें कन्याका नाम क्षेमश्री है। क्षेमनगर पहुँचनेके पूर्व गद्यचिन्तामणि आदिमें एक तपोवनमें तापसियोंको समीचीन धर्मका उपदेश देनेका वर्णन है। ६. गद्यचिन्तामणि आदिमें धनुष-बाण देने तथा गन्धर्वदत्ताके पहुँचनेका कोई उल्लेख नहीं है। ७. गद्यचिन्तामणि आदिमें हेमाभनगर पहुँचनेके पूर्व अटवीमें एक विद्याधरीकी कामुकताका भी वर्णन है। ८. गद्यचिन्तामणि आदिमें मध्य देशका उल्लेख है। ९. गद्यचिन्तामणि आदिमें रानीका नाम नलिनी लिखा है।

कर पीछे आवेगा वही इस कन्याका पति होगा। अन्य धनुषधारियोंके कहनेसे जीवन्धर कुमारने भी अपना बाण छोड़ा और वह लक्ष्यको वेधकर वापस उनके पास आ गया। निमित्तज्ञानीके कहे अनुसार उनका हेमाभाके साथ विवाह हो गया।[1] गन्धर्वदत्ताकी सहायतासे नन्दाढ्य स्मरतरंगिणी नामक शय्यापर सोकर सौंपती विद्याके द्वारा जीवन्धर कुमारके पास पहुँच गया। राजा दृढ़मित्रके सुमित्र, धनमित्र, सुमित्र और धनमित्र आदि कितने ही पुत्र थे। उन सबके साथ जीवन्धर कुमारका समय सुखसे व्यतीत होता रहा। तदनन्तर उसी हेमाभ नगरमें श्रीचन्द्राके साथ युवक नन्दाढ्यका विवाह हुआ।[2] सरोवरका रक्षक एक विद्याधर मुनिराजके मुखसे सुनकर जीवन्धर स्वामीके पूर्वभवोंका वर्णन इस प्रकार करने लगा[3] —

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मेरुसम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती नामका देश है। उसकी पुण्डरीकिणी नगरीमें राजा जयन्धर राज्य करता था। उसकी जयावती रानीसे तू जयद्रथ नामका पुत्र हुआ था। किसी समय जयद्रथ क्रीड़ा करनेके लिए मनोहर नामके वनमें गया, वहाँ उसने सरोवरके किनारे एक हंसका बच्चा देखकर कौतुक वश चतुर सेवकोंके द्वारा उसे बुला लिया और उसके पालन करनेका प्रयत्न करने लगा। यह देख, उस बच्चेके माता-पिता शोकाकुल हो आकाशमें बार-बार करुण-क्रन्दन करने लगे। उनका शब्द सुन तेरे एक सेवकने कान तक धनुष खींचा और एक बाणसे उस बच्चेके पिताको नीचे गिरा दिया। यह देख, जयद्रथकी माताका हृदय दयासे आर्द्र हो गया और उसने पूछा कि यह क्या है? सेवकसे सब हाल जानकर वह पक्षीके पिताको मारनेवाले सेवकपर बहुत कुपित हुई तथा तुझे भी डाँटकर कहने लगी कि हे पुत्र! तेरे लिए यह कार्य उचित नहीं है, तू शीघ्र ही इसे इसकी मातासे मिला दे। इसके उत्तरमें तूने कहा कि यह कार्य मैंने अज्ञानता वश किया है। और जिस दिन बालकको पकड़वाया था उसके सोलहवें दिन उसकी मातासे मिला दिया। काल पाकर जयद्रथ भोगोंसे विरक्त हो साधु हो गया और अन्तमें सल्लेखना कर सहस्रार स्वर्गमें अठारह सागरकी आयुवाला देव हुआ और आयु समाप्त होनेपर तू जीवन्धर हुआ है तथा पक्षीको मारनेवाला सेवक काष्ठांगारिक हुआ है। और उसीने तुम्हारा जन्म होनेसे पूर्व तुम्हारे पिता राजा सत्यन्धरको मारा है। तुमने सोलह दिन तक हंसके बच्चेको उसके माता-पितासे अलग रखा था। उसीके फलस्वरूप तुम्हारा सोलह वर्ष तक माता तथा भाइयोंसे वियोग हुआ है। जीवन्धर कुमारने उस विद्याधरसे अपने पूर्वभव सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की।[4]

इधर जब नन्दाढ्य राजपुरी नगरीसे बाहर हुआ तब मधुर आदि मित्र शंकामें पड़ गये। उन्होंने गन्धर्वदत्तासे पूछा तो उसने स्पष्ट बताया कि इस समय जीवन्धर और नन्दाढ्य दोनों भाई सुजन देशके हेमाभनगरमें सुखसे रह रहे हैं। गन्धर्वदत्तासे पता आदि पूछकर सब मित्र उन दोनोंसे मिलनेके लिए चल पड़े।

चलते-चलते वे मार्गमें दण्डक वन सम्बन्धी तापसोंके उस आश्रममें ठहरे जहाँ कि विजयारानी रहती थी। अन्य तापसोंके साथ विजयारानीने उन सबको देखा और यह जानकर कि ये हमारे पुत्रके मित्र हैं कहा कि लौटते समय आप लोग जीवन्धरको भी साथ लेते आइए तथा यहाँ अवश्य ठहरिए। विजयाकी मुखाकृति जीवन्धरसे मिलती-जुलती थी इसलिए सबको सन्देह हुआ कि यह जीवन्धरकी माता है। दण्डक वनसे आगे चलनेपर उन्हें भीलोंकी सेनाने घेर लिया परन्तु अपनी शूर-वीरतासे ये उसे परास्त कर आगे निकल गये। तदनन्तर दूसरी भीलोंकी सेनाके साथ मिलकर वे हेमाभनगर पहुँचे और वहाँके सेठोंको

---

१. अन्यत्र कन्याका नाम कनकमाला लिखा है। गद्यचिन्तामणि आदिमें दृढ़मित्रके सुमित्र आदि पुत्रों-द्वारा एक आमका फल तोड़ना, उसमें सफल नहीं होना और जीवन्धर कुमारके द्वारा उसका तोड़ा जाना, इससे प्रभावित होकर सुमित्र आदिके द्वारा जीवन्धरको अपने घर ले जाना, उनसे शस्त्र विद्या सीखना और अन्तमें कनकमालाका विवाह कर देना आदिका वर्णन है। २. इसके पूर्व उत्तरपुराणमें एक विस्तृत कथा आती है जिसका गद्यचिन्तामणि आदिमें कोई उल्लेख नहीं है। ३. जीवन्धरके पूर्व भवोंका वर्णन गद्यचिन्तामणि आदिमें अन्यत्र दिया है तथा उसमें नाम आदिका बहुत भेद है। ४. गद्यचिन्तामणि आदिमें उल्लेख है कि जीवन्धर पूर्व भवमें धातकीखण्ड द्वीपके भूमितिलक नगरके राजा पवनवेगके यशोधर नामके पुत्र थे। हंसशिशुको पकड़नेपर पिताने जीवन्धरको उपदेश दिया।

लूटने लगे[1]। नगरवासी लोगोंकी चिल्लाहट सुन जीवन्धर कुमारने उन भीलोंका सामना किया तथा उनको परास्त कर दिया। अन्तमें मधुर आदि मित्रोंने अपने नामांकित बाण चलाकर जीवन्धरको अपना परिचय दिया। सबका सुखद-मिलन हुआ।

तदनन्तर कुमारको लेकर सब राजपुरीकी ओर चले, बीचमें उसी दण्डक वनके तपोवनमें ठहरे। वहाँ चिरकालसे बिछुड़ी माताके साथ जीवन्धरका मिलन हुआ। सुदर्शन यक्षने आकर बड़ा उत्सव किया। माताने आशीर्वाद देते हुए जीवन्धरको बताया कि बेटा! काष्ठांगारिकने तेरे पिताको मारकर तेरा राज्य छीन लिया है उसे अवश्य प्राप्त कर। जीवन्धर माताको सान्त्वना दे राजपुर नगर वापस आ गये। वहाँ उन्होंने अपने आनेकी खबर नहीं होने दी। राजपुर नगरमें उन्होंने सागरदत्त सेठकी कमला नामक स्त्रीसे उत्पन्न विमला नामक पुत्रीको प्राप्त किया और उसके बाद वृद्धका रूप रखकर [2]गुणमालाको चकमा दिया और उसके साथ विवाह किया। इस तरह कुछ दिन तक राजपुर नगरमें अज्ञातवास कर किसी शुभ दिन उन्होंने विजयगिरि नामक हाथीपर सवार हो बड़ी धूमधामसे गन्धोत्कटके घर प्रवेश किया।

इस घटनासे काष्ठांगारिकको बहुत बुरा लगा परन्तु उसके मन्त्रियोंने उसे शान्त कर दिया। विदेह देशके विदेह नामक नगरमें राजा गोपेन्द्र रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम पृथिवीसुन्दरी था और उन दोनोंके एक रत्नवती नामकी कन्या थी। उसकी प्रतिज्ञा थी कि जो चन्द्रकवेधमें चतुर होगा मैं उसीके साथ विवाह करूँगी[3] अन्य पुरुषके साथ नहीं। निदान, राजा गोपेन्द्र कन्याको लेकर राजपुर आया और वहाँ उसने उसका स्वयंवर रचा। स्वयंवरमें जीवन्धर कुमारने चन्द्रकवेधको वेध दिया था जिससे रत्नवतीने उनके गलेमें वरमाला डाल दी। इस घटनासे काष्ठांगारिक बहुत कुपित हुआ। उसने युद्धके द्वारा रत्नवतीको छीननेकी योजना बनायी। जब जीवन्धर कुमारको इसका बोध हुआ तब उन्होंने सत्यन्धर महाराजके सब सामन्तोंके पास दूत भेजकर सब हाल विदित कराया कि 'मैं राजा सत्यन्धरकी विजयारानीसे उत्पन्न पुत्र हूँ। काष्ठांगारिकको हमारे पिताने मन्त्री बनाया परन्तु इसने उन्हें भी मारकर राज्य प्राप्त कर लिया। आप लोग इस कृतघ्नको अवश्य नष्ट करें'।

जीवन्धर कुमारका सन्देश पाकर सब सामन्त इनकी ओर आ मिले। अन्तमें युद्ध कर जीवन्धरने काष्ठांगारको मारकर अपना राज्य प्राप्त कर लिया। सुदर्शन यक्षने सब लोगोंके साथ मिलकर जीवन्धरका राज्याभिषेक किया। गन्धोत्कट राज सेठ हुए। माता विजया और आठों रानियाँ सब एकत्रित हुईं। सबका सुखसे समय व्यतीत होने लगा।

एक बार जीवन्धर कुमारने सुरमलय नामक उद्यानमें वरधर्म नामक मुनिराजसे धर्मका स्वरूप सुना और व्रत लेकर सम्यग्दर्शनको निर्मल किया। नन्दाढ्य आदि भाइयोंने भी यथाशक्य व्रत आदि ग्रहण किये। तदनन्तर किसी एक दिन अपने अशोक वनमें गये। वहाँ लड़ते हुए दो बन्दरोंके झुण्डोंको देखकर संसारसे विरक्त हो गये। वहीं उन्होंने प्रशान्तवंक नामक मुनिराजसे अपने पूर्व भव सुने। उसी समय सुरमलय उद्यानमें भगवान् महावीरका समवसरण आया सुन वैभवके साथ वहाँ गये और गन्धर्वदत्ताके पुत्र [4]वसुन्धर

---

१. गद्यचिन्तामणि आदिमें गायोंके लूटनेका वर्णन है। २. गद्यचिन्तामणि आदिमें यहाँ सुरमंजरी-के साथ विवाह होनेकी चर्चा है। ३. गद्यचिन्तामणि आदिमें उल्लेख है कि विदेह देशमें राजा गोविन्द रहते थे, उन की वसुति रानीसे उत्पन्न लक्ष्मणा नामकी पुत्री थी। गोविन्द महाराज जीवन्धर कुमारके मामा थे अतः काष्ठांगारके ऊपर चढ़ाई करनेके पूर्व वे विचार-विमर्श करनेके लिए उनके पास गये थे। उसी समय काष्ठांगारका एक पत्र भी उन्हें राजपुरी बुलानेके विषयमें गया था। फलस्वरूप राजा गोविन्द पूरी तैयारीके साथ राजपुरीकी ओर चले। उनके साथमें उनकी लक्ष्मणा नामक पुत्री भी थी। राजपुरीमें उसका स्वयंवर हुआ था और उसने चन्द्रकवेधके वेधनेपर जीवन्धरको अपना पति बनाया था। ४. गद्यचिन्तामणि आदिमें गन्धर्वदत्ताके पुत्रका नाम सत्यन्धर लिखा है।

कुमारको राज्य दे नन्दाढ्य आदिके साथ दीक्षा धारण कर ली। महादेवी विजया तथा गन्धर्वदत्ता आदि रानियोंने भी चन्दना आर्याके पास दीक्षा ले ली।

सुधर्माचार्य राजा श्रेणिकसे कहने लगे कि अभी जीवन्धर मुनिराज महातपस्वी श्रुतकेवली हैं। परन्तु घातिया कर्मोंको नष्ट कर केवलज्ञानी होंगे और भगवान् महावीरके साथ विहार कर उनके मोक्ष चले जानेके बाद विपुलाचलसे मुक्ति प्राप्त करेंगे।

गद्य काव्य

'गदितुं योग्यं गद्यं' इस निरुक्तिसे गद्य शब्दकी निष्पत्ति 'गद व्यक्तायां वाचि' धातुसे होती है और उसका अर्थ होता है स्पष्ट कहनेके योग्य। मनुष्य जिसके द्वारा अपना अभिप्राय स्पष्ट कह सके वह गद्य है। मनुष्य पद्यमें मात्राओं और वर्णोंकी पराधीनतामें ऐसा जकड़ जाता है कि खुलकर पूरी बात कहनेकी उसमें सामर्थ्य ही नहीं रहती। कर्ता, कर्म, क्रिया और उनके विशेषणोंका जो स्वाभाविक क्रम होता है वह भी पद्यमें समाप्त हो जाता है। कर्ता कहीं पड़ा है कर्म कहीं है, क्रिया कहीं है और उसके विशेषण कहीं हैं। बिना अन्वयकी योजना किये पद्यका अर्थ लगाना भी कठिन हो जाता है परन्तु गद्यमें यह बेतुकापन नहीं रहता। हृदय यह स्वीकृत करना चाहता है कि भाषामें गद्य प्राचीन है और पद्य अर्वाचीन। शिशुके मुखसे जब वाणीका सर्व-प्रथम स्रोत फूटता है तब वह गद्य रूपमें ही फूटता है। पद्यका प्रवाह प्रबुद्ध होनेपर जिस-किसीके मुखसे ही फूट पाता है सबके नहीं। गद्य मानवकी निसर्ग-सिद्ध वाणी है और पद्य कृत्रिम।

इतना होनेपर भी पद्यके प्रति लोगोंका जो आकर्षण है उसका कारण है उसकी संगीत-प्रियता। मनुष्य चाहे पढ़ा हो चाहे बिना पढ़ा; संगीतकी स्वरलहरीमें नियमसे झूम उठता है। मनुष्यकी बात जाने दो पशु-पक्षी भी संगीत-सुधामें विनिमग्न हो जाते हैं। वीणाकी स्वरलहरी सुन छिपा हुआ सर्प बाहर आ जाता है और सस्यस्थलीपालक बालिकाओंके अल्हड़ गीत सुन मृग चित्र-लिखित-से स्थिर हो जाते हैं। कोयलकी कूकको आप बारीकीसे सुनें तो पता चलेगा—कभी वह अपनी वाणीकी मधुरिमा पंचम स्वरसे बिखेर रही है, तो कभी साधारण स्वरमें ही कूक रही है। भले ही मनुष्य संगीतका नाम और स्वर रत्ती-भर नहीं जानता हो फिर भी संगीत सुन उसका सिर हिलने लगेगा और ताल देनेके लिए कुछ नहीं होगा तो अपने हाथकी हथेलियाँ ही जंघाओंपर थपथपाने लगेगा। गद्यकी अपेक्षा पद्यमें संगीत है, किसीमें स्वर ताल स्पष्ट है और किसीमें अस्पष्ट। अपनी उसी संगीत-प्रियताके कारण मनुष्य पद्यकी ओर आकृष्ट हुआ। गद्यकी अपेक्षा रस-परिपाक भी पद्यमें अधिक दिखाई देता है। अन्त्यानुप्रास तथा अन्य अलंकार भी गद्यकी अपेक्षा पद्यमें ही अधिक खिलते हैं। जनताके इस आकर्षणसे पद्यकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि काव्य तो दूर रहा धर्म, दर्शन, ज्योतिष-आयुर्वेद, गज, अश्व-विज्ञान तथा शकुन आदि सभी शास्त्र पद्यमें ही लिखे जाने लगे। व्याकरण-जैसा नीरस विषय भी कहीं-कहीं कारिकाओंसे अलंकृत किया गया। इस प्रकार संस्कृत-साहित्यमें पद्यने गद्यको पीछे धकेल दिया। हिन्दी-साहित्यका प्रारम्भिक युग भी पद्यसे ही प्रचलित हुआ। फल यह हुआ कि शारदाका सदन पद्य-ग्रन्थ-रूप असंख्य दीपकोंके आलोकसे जगमगाने लगा और गद्य-ग्रन्थ-रूप दीपक उसमें निष्प्रभ हो टिमटिमाने लगे।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'

पद्य-साहित्यकी इतनी प्रचुरता और लोकप्रियताके होनेपर भी गद्य-साहित्य ही स्थिर ज्योतिः-स्तम्भके समान कल्पनाओंके अन्तरिक्षमें उड़नेवाले कवियोंको मार्ग-दर्शन कर रहा है। विद्वानोंकी विद्वत्ताकी परख कवितासे न होकर गद्यसे ही होती देखी जाती है। अब भी संस्कृत-साहित्यमें यह उक्ति जोरोंसे प्रचलित है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्य ही कवियोंकी कसौटी है। कविके वैदुष्यकी कमी कविता-कामिनीके अंचलमें सहज ही छिप सकती है पर गद्यमें कविको अपनी कमी छिपानेकी कोई गुंजाइश नहीं रहती। कवितामें छन्दकी परतन्त्रता कविकी रक्षाके लिए उन्नत प्राचीरका काम देती है पर गद्य-लेखककी रक्षाके लिए कोई प्राचीर नहीं रहती। उसे तो खुले मैदानमें ही जूझना पड़ता है। गद्य-साहित्यकी विरलता-

में उसकी कठिनाई भी एक कारण हो सकती है। क्योंकि गद्य लिखनेकी क्षमता रखनेवाले विद्वान् अल्प ही होते आये हैं। यही कारण है कि संस्कृत, साहित्यमें काव्यकी शैलीसे स्वतन्त्र गद्य लिखनेवाले लेखक अँगुलियों-पर गणनीय हैं। यथा वासवदत्ताके लेखक सुबन्धु, कादम्बरी और हर्षचरितके लेखक बाण, दशकुमार चरितके लेखक दण्डी, गद्यचिन्तामणिके लेखक वादीभसिंह सूरि, तिलकमंजरीके लेखक धनपाल और शिव-राज विजयके लेखक अम्बिकादत्त व्यास। चम्पू-साहित्यके रूपमें पद्योंके साथ गद्य लिखनेवाले, लेखक इनकी अपेक्षा कुछ अधिक हैं।

गद्यके भेद—साहित्यदर्पणकार विश्वनाथने साहित्यदर्पणके षष्ठ परिच्छेदमें श्रव्यकाव्यके भेदोंका वर्णन करते हुए गद्यकी निम्न प्रकार चर्चा की है—

वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च। भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ॥
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम्। अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तुर्यं चाल्पसमासकम् ॥

जिसमें छन्दकी गन्ध भी—लेश भी न हो उसे गद्य कहते हैं। इसके मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णकके भेदसे चार भेद हैं। जो लम्बे-लम्बे समासोंसे रहित है उसे मुक्तक कहते हैं। जैसे—

'गुरुर्वचसि पृथुरुरसि'—इत्यादि

जिसमें वृत्त—छन्दकी गन्ध हो उसे वृत्तगन्धि कहते हैं। जैसे—

'समरकण्डूलनिबिडभुजदण्डकुण्डलीकृतकोदण्डशिञ्जिनीटङ्कारोज्जागरितवैरनगर—' इत्यादि।

यहाँ 'कुण्डलीकृतकोदण्ड—' यह अनुष्टुप् वृत्तका पाद प्रतीत होता है।

जो उठती हुई तरंगोंके समान एकके बाद एक लम्बी पदावलीसे युक्त हो उसे उत्कलिकाप्राय कहते हैं। जैसे—

'अनिशविसृमरनिशितशरविसरविदलितसमरपरिगतप्रवरपरबल—' इत्यादि।

असमस्त अथवा छोटे-छोटे समस्त पदोंसे युक्त गद्यको चूर्णक कहते हैं। जैसे—

'गुणरत्नसागर, जगदेकनागर, कामिनीमदन, जनरञ्जन'—इत्यादि।

गद्य-काव्यके भेद—गद्यके उक्त चार भेदोंको प्रयोगात्मक रूप देनेवाले गद्य-काव्यके दो भेद हैं—१ कथा और २ आख्यायिका। कथाका लक्षण साहित्यदर्पणकारने इस प्रकार माना है—

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदेव भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके ॥
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।

कथामें समूची वस्तु सरस शैलीसे गद्यमें ही लिखी जाती है। परन्तु कहीं-कहीं आर्या और कहीं-कहीं वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्दोंका भी प्रयोग रहता है। ग्रन्थके प्रारम्भमें अनेक पद्यों-द्वारा इष्टदेवको नमस्कार तथा सुजनप्रशंसा और दुर्जननिन्दाका भी अवतरण रहता है। जैसे कादम्बरी, गद्यचिन्तामणि, तिलक-मंजरी आदि।

आख्यायिकाका लक्षण इस प्रकार है—

आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित् ॥
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित् ॥
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम् ॥

आख्यायिका भी कथाके ही समान होती है परन्तु उसमें कविके वंशका भी वर्णन रहता है। आख्यायिकामें अन्य कवियोंका चरित्र तथा पद्य भी कहीं-कहीं संदृब्ध रहते हैं। इसमें कथांशोंके विरामको

आश्वास कहते हैं और आश्वासके प्रारम्भमें आर्या, वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्दोंमें-से किसी छन्दके द्वारा अन्यके बहाने भावी अर्थकी सूचना दी जाती है। जैसे—हर्षचरित आदि।

कथा और आख्यायिकामें अन्तर बतलाते हुए किन्हीं-किन्हीं लोगोंने कहा है कि 'आख्यायिका नायकेनैव निबद्धव्या'—आख्यायिकाकी रचना नायकके द्वारा ही होती है और कथाकी रचना अन्य कविके द्वारा। परन्तु दण्डीने 'अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्' इस उल्लेख-द्वारा उक्त अन्तरकरणका निषेध किया है। गद्यके आख्यान, परिकथा, खण्डकथा आदि अनेक भेद हैं परन्तु उनका कथामें ही अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिए दण्डीका निम्न वचन द्रष्टव्य है—

'अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः'।

आख्यानमें पंचतन्त्र आदि आते हैं।

गद्यकी धारा—गद्यकी धारा सदा एक रूपमें प्रवाहित नहीं होती किन्तु रसके अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। रौद्र अथवा वीररसके प्रकरणमें जहाँ हम गद्यको समासबहुल गौडीरीतिप्रधान रचना देखते हैं वहाँ श्रृंगार तथा शान्त आदि रसोंके सन्दर्भमें उसे अल्पसमाससे युक्त अथवा समासरहित वैदर्भीरीतिप्रधान देखते हैं। संस्कृत गद्य-साहित्यमें बाणकी कादम्बरीका जो बहुमान है वह उसकी रसानुरूप शैलीके ही कारण है। नाटकोंमें और खासकर अभिनयके लिए लिखे हुए नाटकोंमें गद्यका दीर्घसमास रहित रूप ही शोभा पाता है। संस्कृत-साहित्यमें भवभूतिके मालतीमाधव और हस्तिमल्लके विक्रान्तकौरवका गद्य नाटच-साहित्यके अनुरूप नहीं मालूम होता। जिस गद्यको सुनकर दर्शकको झटिति भावावबोध न हो वह रसानुभूतिका कारण कैसे हो सकता है? भास और कालिदासकी भाषा नाटकोंके सर्वथा अनुरूप है।

गद्यचिन्तामणिके कर्ता वादीभसिंह सूरि

गद्यचिन्तामणिके प्रत्येक लम्भके अन्तमें दिये हुए पुष्पिकावाक्यों (इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरि-विरचिते गद्यचिन्तामणौ सरस्वतीलम्भो नाम प्रथमो लम्भः""आदि) से निर्भ्रान्त सिद्ध है कि यह महनीय कृति श्रीवादीभसिंह सूरिकी रचना है। गद्यचिन्तामणिके सम्पादनार्थ प्राप्त चार हस्तलिखित प्रतियोंमें-से तीन प्रतियोंके अन्तमें निम्नलिखित दो श्लोक और पाये जाते हैं—

श्रीमद्वादीभसिंहेन गद्यचिन्तामणिः कृतः।
स्थेयादोडयदेवेन चिरायास्थानभूषणः॥
स्थेयादोडयदेवेन वादीभहरिणा कृतः।
गद्यचिन्तामणिर्लोके चिन्तामणिरिवापरः॥

इन श्लोकोंमें प्रकट किया गया है कि श्रीमद्वादीभसिंह उपाधिके धारक ओडयदेवके द्वारा रची हुई यह गद्यचिन्तामणि जो कि सभाओंका आभूषण है चिरकाल तक विद्यमान रहे।....

वादिभसिंह ओडयदेवके द्वारा रचित यह गद्यचिन्तामणि जो कि लोकमें अद्वितीय चिन्तामणिके समान है चिरकाल तक स्थिर रहे।

समग्र प्रतियोंमें न पाये जानेके कारण सम्भव है कि ये श्लोक स्वयं वादीभसिंह सूरिके द्वारा रचित न हों, पीछेसे किसी विद्वान्ने जोड़ दिये हों परन्तु जब 'वादीभसिंह' इस नामकी निरुक्तिपर ध्यान जाता है तब ऐसा लगता है कि यह इनका जन्मजात नाम न होकर पाण्डित्योपार्जित उपाधि है। अतः 'ओडयदेव' यह इनका जन्मजात नाम है और 'वादीभसिंह' (वादीरूपी हाथियोंको जीतनेके लिए सिंह) यह उपाधि है। उक्त श्लोकोंमें उनके यथार्थ नामका उल्लेख उपाधिके साथ किया गया है अतः पीछेसे किसी अन्य विद्वान्-के द्वारा उल्लिखित होनेपर भी प्राह्य जान पड़ते हैं।

श्रवणबेलगोलाके शिलालेख नं० ५४ की मल्लिषेण प्रशस्तिमें वादीभसिंह उपाधिसे युक्त एक आचार्य अजितसेनका उल्लेख किया गया है,[1] बहुत कुछ सम्भव है कि यह उपर्युक्त वादीभसिंह ही हों और 'अजितसेन' यह उनका मुनि अवस्थाका नाम हो, क्योंकि अधिकतर दीक्षाके समय जन्मजात नामको परिवर्तित कर दूसरा नाम रख देनेकी परम्परा साधुओंमें बहुत समयसे प्रचलित है। प्रशस्तिमें दिया हुआ 'वादीभसिंह' पद उपाधि-सूचक ही है विशेषण-सूचक नहीं, क्योंकि 'मदवदखिलवादीभेन्द्रकुम्भप्रभेदी'—'मदयुक्त समस्त वादी-रूपी गजराजोंके गण्डस्थलोंको विदीर्ण करनेवाले' इस तृतीय पादसे विशेषणका कार्य गतार्थ हो चुकता है। श्री टी० एस० कुप्पुस्वामी,[2] श्री पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री[3] और पं० के० भुजबली शास्त्री[4] ने भी उक्त अभिप्राय प्रकट किया है।

गद्यचिन्तामणिकारने पूर्वपीठिकाके छठे श्लोकमें अपने गुरुका नाम पुष्पसेन घोषित किया है और कहा है कि उनकी शक्तिसे ही मेरे जैसा स्वभावसे मूढबुद्धि मनुष्य वादीभसिंहता और श्रेष्ठमुनिपनाको प्राप्त हो सका है। श्लोक इस प्रकार है—

श्रीपुष्पसेनमुनिनाथ इति प्रतीतो दिव्यो मनुर्हृदि सदा मम संविदध्यात्।
यच्छक्तितः प्रकृतिमूढमतिर्जनोऽपि वादीभसिंहमुनिपुङ्गवतामुपैति ॥६॥

ओडयदेव—अजितसेनको 'वादीभसिंह' यह उपाधि अपनी तार्किक प्रतिभाके कारण ही प्राप्त हुई होगी। उनकी तार्किक प्रतिभा उनके द्वारा रचित और माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे प्रकाशित 'स्याद्वाद-सिद्धि' ग्रन्थसे स्पष्ट हो जाती है। ग्रन्थके अन्तर्विलोडनसे विदित होता है कि वे दर्शनशास्त्रके अद्वितीय विद्वान् थे और अपनी वादशक्तिसे अन्य वादियोंका अभिमान चूर्ण करनेवाले थे। इन्होंने जिन पुष्पसेन गुरुका उल्लेख किया है उनका निर्देश उसी मल्लिषेण[5] प्रशस्तिमे अकलंकके सधर्मा—गुरुभाईके रूपमें किया गया है ऐसा जान पड़ता है। तार्किक लोगोंसे काव्यकी रचना होना असम्भव नहीं है। यशस्तिलकचम्पूके कर्ता सोमदेव-ने लिखा है[6] कि मेरी इस बुद्धिरूपी गायने जन्मसे लेकर सूखे तृणके समान तर्कशास्त्रका अभ्यास किया है तो भी पुण्यात्माओंके पुण्यसे उससे यह सूक्तिरूपी दूध उत्पन्न हो रहा है। वादीभसिंह भी यद्यपि न्यायशास्त्रके मर्मज्ञविद्वान् थे और उसी रूपमें उनकी प्रसिद्धि थी फिर भी यह 'गद्यचिन्तामणि' और 'क्षत्रचूडामणि' नामक गद्य और पद्य-काव्य उनकी दिव्य लेखनीसे प्रसूत हुए इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? पहले अधिकांश शास्त्रार्थ राजदरबारमें हुआ करते थे अथवा निश्चित वादशालाओंमें सम्पन्न होते थे और विजेता विद्वान् राजाओंके द्वारा सम्मान पाता था। जब वादीभसिंह प्रचण्ड वादीरूपी हस्तियोंको पराजयके गर्तमें गिरानेवाले थे तब राजाओंके द्वारा उनकी मान्यता स्वयं सिद्ध थी[7]। इस तरह श्रद्धेय प्रेमीजीकी उन मान्यताओंका आंशिक समाधान हो जाता है जिन्हें उन्होंने अजितसेन और वादीभसिंहके एक होनेमें उपस्थित किया है।[8]

---

१. सकलभुवनपालानम्रमूर्धावबद्धस्फुरितमुकुटचूडालीढपादारविन्दः। मदवदखिलवादीभेन्द्र-कुम्भप्रभेदी गणभृदजितसेनो भाति वादीभसिंहः ॥५७॥ शिलालेख संख्या ५४। २. टी० एस० कुप्पुस्वामी-गद्यचिन्तामणिकी प्रस्तावना। ३. न्यायकुमुदचन्द्रोदय प्र० भा०, प्रस्तावना पृष्ठ ११३। ४. जैन सिद्धान्तभास्कर, भाग ६, अंक २, पृष्ठ ७८–८७ और भाग ७, अंक १, पृष्ठ १–८। ५. श्रीपुष्पषेणमुनिरेव पदं महिम्नो देवः स यस्य समभूत् स महान् सधर्मा। श्रीविभ्रमस्य भवनं ननु पद्ममेव पुष्पेषु मित्रमिह यस्य सहस्रधामा ॥ मल्लिषेण प्रशस्ति। ६. आजन्मसमभ्यस्ताच्छुष्का-त्तर्कात्तृणादिव ममास्याः। मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपयः सुकृतिनां पुण्यैः ॥१३॥ य० च०। ७. मिथ्या-भाषणभूषणं परिहरेतौद्धत्यमुन्मुञ्चत स्याद्वादं वदता नमेत विनयाद्वादीभकण्ठीरवम्। नो चेत्तद्गुरुगर्जित-श्रुतिभयभ्रान्ताः स्थ यूयं यतस्तूर्णं निग्रहजीर्णकूपकुहरे वादिद्विपाः पातिनः ॥५५॥ मल्लिषेण प्रशस्ति। ८. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३२२, द्वितीय संस्करण।

वादीभसिंहका जन्मस्थान—यद्यपि वादीभसिंहके जन्मस्थानका कोई उल्लेख नहीं मिलता तथापि आपके ओडयदेव नामसे श्री पं० के० भुजबली शास्त्रीने अनुमान लगाया है कि आप मद्रास प्रान्तान्तर्गत तमिल प्रदेशके निवासी हैं और बी० शेषगिरि राव एम० ए० ने कलिंग (तेलुगु) के गंजाम जिलेके आसपासका निवासी होना अनुमित किया है। गंजाम जिला मद्रासके एकदम उत्तरमें है और अब उड़ीसामें जोड़ दिया गया है। वहाँ राज्यके सरदारोंकी ओडेय और गोडेय नामकी दो जातियाँ हैं जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध भी हैं अतएव उनकी समझमें वादीभसिंह जन्मतः ओडेय या उड़िया सरदार होंगे[1]।

श्री पं० के० भुजबली शास्त्रीने लिखा है कि यद्यपि आपका जन्म तमिल प्रदेशमें हुआ था तथापि इनके जीवनका बहुभाग मैसूर प्रान्तमें व्यतीत हुआ था और वर्तमान मैसूर प्रान्तान्तर्गत पोम्बुच्च ही आपके प्रचारका केन्द्र था। इसके लिए पोम्बुच्च एवं मैसूर राज्यके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उपलब्ध आपसे सम्बन्ध रखनेवाले शिलालेख ही ज्वलन्त साक्षी हैं[2]।

वादीभसिंहका समय—(१) वादीभसिंहने गद्यचिन्तामणिकी पूर्वपीठिकामें श्रीपुष्पसेनको अपना गुरु घोषित किया है। मल्लिषेण प्रशस्तिमें अकलंक-विषयक श्लोकोंके बाद ही निम्नलिखित श्लोक आता है—

> 'श्रीपुष्पषेणमुनिरेव पदं महिम्नो, देवः स यस्य समभूत्स महान् सधर्मा।
> श्रीविभ्रमस्य भवनं ननु पद्ममेव, पुष्पेषु मित्रमिह यस्य सहस्रधामा॥'

वह पुष्पषेण मुनि ही महिमाके स्थान थे जिनके कि वह महान् अकलंक देव सधर्मा गुरुभाई थे। निश्चयसे पुष्पोंमें वह कमल ही लक्ष्मीके विलासोंका घर होता है जिसका कि सूर्य मित्र होता है।

इस श्लोकमें पुष्पषेणको अकलंकका सधर्मा—गुरुभाई बतलाया है। सम्भवतः यह पुष्पषेण मुनि वही हैं जिन्हें गद्यचिन्तामणिके प्रारम्भमें वादीभसिंहने अपना गुरु बतलाया है। उसी मल्लिषेण प्रशस्तिमें वादीभसिंह उपाधिके धारक गणभृत् (आचार्य) अजितसेनका उल्लेख मिलता है जो वादीभसिंह ही जान पड़ते हैं यह पीछे लिख आये हैं। पुष्पषेण अकलंकके गुरुभाई थे और वादीभसिंह उनके शिष्य थे अतः वादीभसिंहका अस्तित्व अकलंकके बाद सिद्ध होता है।

(२) वादीभसिंहकी गद्यचिन्तामणिमें जीवन्धरके लिए उनके विद्यागुरु-द्वारा जो उपदेश दिया गया है वह बाणभट्टकी कादम्बरीके शुकनासोपदेशसे प्रभावित है। यही नहीं, गद्यचिन्तामणिके और भी कुछ स्थल उन्हीं बाणभट्टके श्रीहर्षचरितके वर्णनके अनुरूप हैं अतः यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि वादीभसिंह बाणभट्टके परवर्ती हैं। बाणभट्ट भी राजा हर्षके समकालीन [६१०—६५० ई०] थे।

(३) अकलंक देवके न्यायविनिश्चयादि ग्रन्थोंका भी वादीभसिंहकी स्याद्वादसिद्धिपर प्रभाव है अतः यह उनके उत्तरवर्ती विद्वान् हैं[3]।

(४) वादीभसिंहकी स्याद्वादसिद्धिके छठे प्रकरणकी १९वीं कारिकामें भट्ट और प्रभाकरका नामोल्लेख करके उनके अभिमत-भावनानियोग रूप वेदवाक्यार्थका निर्देश किया गया है तथा कुमारिल भट्टके मीमांसा-श्लोक वार्तिकसे कई कारिकाएँ उद्धृत कर उनकी आलोचना की गयी है। कुमारिल भट्ट और प्रभाकर समकालीन विद्वान् हैं तथा ईशाकी सातवीं शताब्दी उनका समय माना जाता है अतः वादीभसिंह उनके परवर्ती हैं[4]। इन सब कारणोंसे वादीभसिंहका समय आठवीं शतीका अन्त और नौवींका पूर्वार्ध सिद्ध होता है। विशिष्ट ऊहापोहके लिए पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्य, एम० ए० के द्वारा सम्पादित स्याद्वाद-सिद्धिकी प्रस्तावना देखें।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास : पृष्ठ ३२४, द्वितीय संस्करण। २. क्षत्रचूडामणि उत्तरार्धकी प्रस्तावना, पृष्ठ ४। ३. देखो, स्याद्वादसिद्धिकी प्रस्तावना, पृ० १९। ४. वही, पृ० १०–२०।

बाधकोंका परिहार—वादीभसिंहका उक्त समय स्वीकृत करनेमें निम्नलिखित बाधक कारण उपस्थित किये जाते हैं—

(१) गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणिमें जो जीवन्धर चरित्र निबद्ध है वह गुणभद्राचार्यके उत्तरपुराणसे लिया गया है और उत्तरपुराणकी रचना शकाब्द ७७० ईसाब्द ८४८ के लगभग हुई है अतः वादीभसिंह गुणभद्रसे परवर्ती हैं।

(२) वल्लाल कविने भोजप्रबन्धमें उल्लेख किया है कि एक बार किसीने कालिदासके सामने धारानरेश भोजकी झूठी मृत्युका समाचार सुनाया जिसे सुनकर कालिदासके मुखसे निकल पड़ा—

'अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते॥'

इसी झलकको लिये हुए वादीभसिंहने गद्यचिन्तामणिमें काष्ठांगारके द्वारा हस्तिताडनके अपराधमें जीवन्धरस्वामीको प्राणदण्ड घोषित किये जाने और श्मशानसे सुदर्शन यक्ष-द्वारा उनके गुप्तरूपसे स्थानान्तरित किये जानेपर पुरवासियोंकी चर्चाके रूपमें एक गद्य लिखा है—

'अद्य निराश्रया श्रीः, निराधारा धरा, निरालम्बा सरस्वती, निष्फलं लोकलोचनविधानम्, निःसंसारः संसारः, नीरसा रसिकता, निरास्पदा वीरता इति मिथः प्रवर्तयति प्रणयोद्गारिणीं वाणीम्....' गद्यचिन्तामणि, पृ० १३१।

इससे सिद्ध होता है कि वादीभसिंह भोजके परवर्ती हैं। धारानरेश भोजका समय १०१०—१०५० ई० निश्चित है।

(३) श्रुतसागर सूरिने सोमदेवकृत यशस्तिलक चम्पू (आश्वास २, श्लोक १२६) की अपनी टीकामें वादिराज कविका एक श्लोक उद्धृत करते हुए वादीभसिंह और वादिराजको गुरुभाई तथा सोमदेवका शिष्य बतलाया है। उल्लेख इस प्रकार है—

उक्तं च वादिराजेन कविना—

'कर्मणा कवलितोऽजनि सोऽजा तत्पुरान्तरजनङ्गमवाटे।
कर्मकोद्रवरसेन हि मत्तः किं किमेत्यशुभधाम न जीवः॥'

'स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम्' इति वचनात् स्वागता छन्द इदम्। स वादिराजोऽपि श्रीसोमदेवाचार्यस्य शिष्यः 'वादीभसिंहोऽपि मदीयशिष्यः श्रीवादिराजोऽपि मदीयशिष्यः' इत्युक्तत्वात्।'

इससे सिद्ध होता है कि वादीभसिंह सोमदेवसे परवर्ती हैं। सोमदेवने यशस्तिलककी रचना शकाब्द ८८१ (ई० ९५९) में की है और वादिराजने अपना पार्श्वचरित शकाब्द ९४७ (ई० १०२५) में समाप्त किया है।

उपर्युक्त बाधकोंका समाधान इस प्रकार है—

(१) 'जीवन्धर स्वामीके चरितका तुलनात्मक अध्ययन' नामक स्तम्भमें उत्तरपुराणकी संक्षिप्त कथावस्तु देकर यह स्पष्ट किया गया है कि वादीभसिंहकी गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणिका आधार गुणभद्रका उत्तरपुराण नहीं है। क्योंकि स्थान, पात्रोंके नाम और वृत्तवर्णनमें यत्र-तत्र भेद है। यह कथा उपन्यासकी तरह काल्पनिक नहीं कि लेखक अपनी इच्छानुसार पात्रोंके नाम आदि परिवर्तित करनेमें स्वतन्त्र हो; किन्तु सत्यकथा है। इसमें कवि अपना कवित्व ही प्रकट कर सकता है नाम, स्थान आदिमें परिवर्तन नहीं कर सकता। फुटनोटमें गद्यचिन्तामणिकी कथाका अन्तर भी दिया गया है जिससे उक्त कथनका समर्थन होता है। यद्यपि बाण कविने बृहत्कथामंजरीसे कादम्बरीकी कथा लेकर बहुत-से नामोंमें परिवर्तन किया है परन्तु वह कोरी काल्पनिक कथा है उसका इस सत्य कथामें उदाहरण ग्राह्य नहीं हो सकता।

(२) बल्लाल कविका भोजप्रबन्ध बहुत पीछेका (१६०० शताब्दीका) ग्रन्थ है और उसमें ऐतिहासिकताकी जो दुर्दशा की गयी उसे देखते हुए कोई भी इतिहासज्ञ उसके उल्लेखको प्रमाणकोटिमें रखनेमें हिचकिचाता है। क्या यह सम्भव नहीं है कि बल्लालके उक्त वचनोंपर वादीभसिंहका ही प्रभाव हो?

(३) भुवनसागर सूरिके व्यक्तित्वका पद्यकी टीकावाले उद्धरणका जबतक कहीं अन्य स्थलोंसे समर्थन नहीं होता तबतक उसे प्रमाणकोटिमें नहीं लिया जा सकता। न्यायविनिश्चयालंकारकी प्रशस्तिमें वादिराजने अपने गुरुका नाम मतिसागर बतलाया है और वादीभसिंह पुष्पसेनका स्मरण करते हैं तब उनकी सोमदेवकी शिष्यता निर्भ्रान्त कैसे हो सकती है[1] ?

इनके सिवाय श्री पं० के० भुजबली शास्त्रीने जैन सिद्धान्त भास्कर भाग ६ किरण २ में प्रकाशित 'क्या वादीभसिंह अकलंक देवके समकालीन हैं ?' शीर्षक लेखमें 'मद्रास और मैसूर प्रान्तके जैन स्मारकके १० शिलालेख उद्धृत कर उनमें उल्लिखित 'अजितसेन पण्डित देव', 'मुनिवादीभसिंह अजितसेन', 'अजितसेन पण्डितदेव वादिघरट्ट', 'अजित मुनिपति', 'अजितसेनभट्टारक और मुनि अजितसेन देव' को गद्यचिन्तामणिकार वादीभसिंह सूरि स्वीकृत कर उन्हें ११वीं शताब्दीका विद्वान् प्रकट किया है परन्तु उन उल्लेखोंमें एक भी उल्लेखसे उल्लिखित अजितसेनोंका गद्यचिन्तामणिका कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता। क्या यह सम्भव नहीं है कि वे अजितसेन दूसरे हों। उक्त शिलालेखोंमें 'उन्हें चरण धोकर भूमि दी' आदिका ही अधिकांश उल्लेख है अतः वे मठाधीश ही जान पड़ते हैं गणभृत् अथवा निःस्पृह सूरि नहीं। साथ ही उनमें उनके द्राविडसंघ तथा अरुंगलान्वय आदिका उल्लेख है जब कि वादीभसिंहके संघ तथा अन्वय आदिका कहीं उल्लेख नहीं है।

वादीभसिंहकी निःस्पृहता—वादीभसिंहका समग्र जीवन अत्यन्त पवित्र जान पड़ता है। उन्होंने अपने साहित्यमें जहाँ-तहाँ स्त्री पात्रका जो वर्णन किया है उससे विदित होता है कि सम्भव है वे बालब्रह्मचारी रहे हों और छोटी अवस्थामें ही उन्होंने गुरुजनोंके सम्पर्कमें रहकर अध्ययन किया हो। वादीभसिंह-जैसे बहुमुखी पाण्डित्यके लिए बाल्यावस्थासे ही गुरुजनोंका सम्पर्क अपेक्षित है।

वादीभसिंहकी रचनाएँ

वादीभसिंह बहुत ही प्रतिभाशाली आचार्य थे। आपके वाग्मित्व कवित्व और गमकत्वकी प्रशंसा जिनसेनाचार्य-जैसे महाकविने की है। आपके 'वादीभसिंह' नामसे जो कि एक उपाधि जान पड़ती है आप एक बड़े तार्किक जान पड़ते हैं। 'क्षत्रचूडामणि' और 'गद्यचिन्तामणि' इन दो ग्रन्थोंके प्रकाशमें आनेपर भी आपके नामकी सार्थकताके लिए प्रत्येक विद्वान्के हृदयमें यह आशंसा विद्यमान थी कि आपका कोई न्यायका भी ग्रन्थ होना चाहिए। पर सौभाग्यसे आपका वह न्यायग्रन्थ 'स्याद्वादसिद्धि' उपलब्ध हो गया है और उसके द्वारा आपके नामकी सार्थकता सिद्ध हो गयी है। इस तरह अब आपकी कृतियोंमें 'स्याद्वादसिद्धि', 'क्षत्रचूडामणि' और 'गद्यचिन्तामणि' ये तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। 'प्रमाणनौका' और 'नवपदार्थविनिश्चय' ये दो ग्रन्थ भी वादीभसिंहके माने जाते हैं, पर सामने न होनेसे उनके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता। हाँ, 'नवपदार्थ निश्चय' के विषयमें अनेकान्त वर्ष १० किरण ४-५ के आधारपर यह कहा जा सकता है कि वह इन, वादीभसिंह सूरिकी रचना नहीं है। उसके समाप्तिपुष्पिका वाक्यमें 'भट्टारक वादीभसिंहसूरि' की कृति प्रकट भी किया गया है।

उपलब्ध तीन कृतियोंका परिचय इस प्रकार है—

१. **स्याद्वादसिद्धि**—ग्रन्थके नामकी सार्थकता उसके प्रतिपाद्य विषयोंसे स्पष्ट है। इसके १ जीवसिद्धि, २ फलभोक्तृत्वाभावसिद्धि, ३ युगपदनेकान्तसिद्धि, ४ क्रमानेकान्तसिद्धि, ५ भोक्तृत्वाभावसिद्धि, ६ सर्वज्ञाभावसिद्धि, ७ जगत्कर्तृत्वाभावसिद्धि, ८ अर्हत्सर्वज्ञसिद्धि, ९ अर्थापत्तिप्रामाण्यसिद्धि, १० वेदपौरुषेयत्वसिद्धि, ११ परतःप्रामाण्यसिद्धि, १२ अभावप्रमाणदूषणसिद्धि, १३ तर्कप्रामाण्यसिद्धि और १४ गुणगुणी अभेदसिद्धि इन १४ अधिकारों-द्वारा अनुष्टुप् छन्दमें प्रतिपाद्य विषयोंका निरूपण किया गया है। अधिकारोंके अन्तमें जो पुष्पिकावाक्य हैं उनमें वादीभसिंह-द्वारा रचित होनेकी स्पष्ट सूचना है, ग्रन्थ अपूर्ण है। माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

---

१. देखो, न्यायकुमुदचन्द्रोदयकी प्रस्तावना, पृष्ठ ११२ और 'जैनसाहित्य और इतिहास' पृष्ठ १२१, द्वितीय संस्करण।

बम्बईकी ओरसे इसका प्रकाशन हुआ है। समाजके प्रतिष्ठित विद्वान् श्रीदरबारीलालजी न्यायाचार्य, एम० ए०-द्वारा पाण्डित्यपूर्ण सम्पादन हुआ है। माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके नियमानुसार यह मूलमात्र ही प्रकाशित हुआ है किसी अन्य प्रकाशन संस्थाकी ओरसे इसका हिन्दी अनुवाद-सहित प्रकाशन होना अपेक्षित है।

२. क्षत्रचूडामणि—यह भगवान् महावीर स्वामीके समकालीन राजा सत्यन्धरकी विजयारानीके पुत्र जीवन्धर कुमारका वृत्तवर्णन है। इनका जीवनवृत्त अनेक घटनाओंसे भरा हुआ है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका फल प्रदर्शन करनेमें अद्वितीय है। ग्रन्थकी रचना ग्यारह लम्बोंमें अनुष्टुप् छन्द-द्वारा हुई है। खास विशेषता यह है कि प्रायः इसके प्रत्येक पद्यके पूर्वार्धमें कथाका वर्णन कर कवि उत्तरार्धमें अर्थान्तरन्यास-द्वारा नीतिका वर्णन करता चलता है। इस शैलीसे लिखा हुआ यह नीतिका ग्रन्थ समग्र संस्कृत-साहित्यमें बेजोड़ है। कौआ, चूहा, मृग आदिकी काल्पनिक कहानियोंके द्वारा बालकोंमें नीतिकी भावना भरनेवाले पंचतन्त्र आदि ग्रन्थ जहाँ बालकों तक ही सीमित रह जाते हैं वहाँ सत्य घटनाके द्वारा नीतिकी भावना उत्पन्न करनेवाला यह ग्रन्थ आबालवृद्ध—सबके लिए उपयोगी बन पड़ा है। सर्वप्रथम टी० एस० कुप्पुस्वामी-द्वारा इसका तुलनात्मक टिप्पणके साथ मूलरूपमें प्रकाशन हुआ था। पीछे चलकर पाठ्य-ग्रन्थ हो जानेसे स्व० पं० निद्धामलजी तथा पं० मोहनलालजी काव्यतीर्थ-द्वारा इसके अनुवाद भी प्रकाशित किये गये हैं पर इन अनुवादोंमें भी यदि कुप्पुस्वामीकी सम्पादन-शैलीको ही स्थान मिलता तो वे अधिक हितावह होते।

३. गद्यचिन्तामणि—गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणिका कथानक एक है, कथानायक एक है, पात्र, स्थान आदि एक हैं। यहाँतक कि लम्भ भी दोनोंके ग्यारह-ग्यारह ही है। घटनाका सादृश्य भी दोनों-का मिलता-जुलता है। इसके प्रारम्भमें जिनेन्द्रदेव, गणधर, जिनधर्म और स्यात्पदसे चिह्नित जिनवाणीकी मंगल स्तुति करनेके अनन्तर समन्तभद्रादि पूर्व मुनियोंका स्मरण किया गया है। वादीभसिंह स्वयं वाद-कलामें निपुण थे और स्याद्वादवाणीकी गर्जनासे बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानोंका मदध्वंस करनेवाले थे अतः उन्होंने समन्त-भद्रादि मुनियोंके अन्य गुणोंको गौण करते हुए 'वाग्वज्रनिपातपाटितप्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः' विशेषण-द्वारा उनकी वादनिपुणताका ही उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि वे समन्तभद्रादि मुनीश्वर जयवन्त हों जो सरस्वतीके स्वतन्त्र विहारकी भूमि हैं और जिन्होंने अपने वचनरूप वज्रके निपातसे विरुद्ध सिद्धान्तरूपी पर्वतोंके शिखरोंको विदीर्ण कर दिया है[1]। तदनन्तर अपने गुरु पुष्पसेनका स्मरण कर सज्जन-प्रशंसा और दुर्जन निन्दाकी पद्धतिको पूरा करते हुए श्रेणिकके प्रश्नपर सुधर्म गणनायकके द्वारा जीवन्धरकी कथाका श्रीगणेश किया गया है।

गद्यचिन्तामणि गद्य काव्य है और पूराका पूरा प्रौढ़ गद्यमें लिखा गया है। दो-तीन स्थलोंपर कुछ पद्य भी दिये गये हैं जो स्तुति आदिके रूपमें आवश्यक प्रतीत होते हैं। गद्यचिन्तामणिके विशिष्ट गुणोंकी चर्चा करते हुए इसके प्रथम पुरस्कर्ता श्रीकुप्पुस्वामीने बड़ी सुन्दर पंक्तियाँ लिखी हैं—

'अस्य काव्यपथे पदानां लालित्यं श्राव्यः शब्दसंनिवेशः निरर्गला वाग्वैखरी सुगमः कथासारावगमश्चित्त-विस्मापिकाः कल्पनाश्चेतःप्रसादजनको धर्मोपदेशो धर्माविरुद्धा नीतयो दुष्कर्मणो विषमफलाप्तिरिति विलसन्ति विशिष्टगुणाः'[2]।

अर्थात् 'इनके काव्यपथमें पदोंकी सुन्दरता, श्रवणीय शब्दोंकी रचना, अप्रतिहत वाणी, सरल कथासार, चित्तको आश्चर्यमें डालनेवाली कल्पनाएँ, हृदयमें प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला धर्मोपदेश, धर्मसे अविरुद्ध नीतियाँ और दुष्कर्मके फलकी प्राप्ति आदि विशिष्ट गुण सुशोभित हैं।'

---

१. सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः समन्तभद्रप्रमुखा मुनीश्वराः। जयन्तु वाग्वज्रनिपातपाटित-प्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः ॥५॥ ग० चि०। २. गद्यचिन्तामणि-प्रस्तावना।

श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, विरोधाभास तथा उल्लेख आदि अलंकारोंके पुटने गद्यकी शोभामें चार चाँद लगा दिये हैं। बाणने श्रीहर्षचरितमें [1]आदर्श गद्यके जिन गुणोंका वर्णन किया है वे नवीन अर्थ, अग्राम्य जाति, स्पष्ट श्लेष, स्फुटरस और अक्षरकी विकटबन्धता गद्यचिन्तामणिमें सबके सब अवतीर्ण हैं। अटवीमें झाड़-झंखाड़ोंका कोई व्यवस्थित क्रम नहीं रहता परन्तु मनुष्यकृत उद्यानमें पुष्पित-पल्लवित लताओं, हरे-भरे वृक्षों और आवश्यकतानुसार निर्मित पादपकेदारिकाओंका एक व्यवस्थित और सुन्दर क्रम रहता है जिससे उसकी शोभा निखर उठती है। गद्य और पद्य काव्यमें भी कवि अपनी वर्णनीय वस्तुओंको इस सुन्दर क्रमसे सजा-सजाकर रखता है कि वह एकदम सहृदय मनुष्योंके हृदयको आह्लादित करनेवाली हो जाती हैं। हम प्रतिदिन देखते हैं कि प्राचीमें सूर्योदय हो रहा है, आकाशमें रात्रिके समय असंख्य तारोंका समूह और उज्ज्वल चन्द्रमा चमक रहा है, कल-कल करती हुई नदियाँ बह रही हैं, वनके हरे-भरे मैदानोंमें हरिणोंके झुण्ड चौकड़ियाँ भर रहे हैं, मकानके छज्जोंपर बैठे कबूतरोंको पकड़नेकी घातमें बिल्ली दुबककर बैठी हुई है, पूँछ हिलाता और लीद करता हुआ एक घोड़ा हिनहिना रहा है और बिजली-की कौंधसे बच्चे तथा स्त्रियाँ भयभीत हो रही हैं, पर उन सब दृश्योंमें आह्लाद कहाँ? दर्शकके हृदयमें रस कहाँ उत्पन्न होता है? किन्तु यही सब वस्तुएँ जब किसी कविकी लेखनीरूपी तूलिकासे सजाकर रख दी जाती हैं तो काव्य बन जाती हैं और श्रोताओंके हृदयमें एक अजीब-सा रस—आह्लाद उत्पन्न करने लगती हैं। गद्यचिन्तामणिमें भी कविने इन सब चीजोंको ऐसा सँभालकर रखा है कि देखते ही हृदय आनन्दसे भर जाता है। कवि जहाँ स्त्री-पुरुषोंका नख-शिख वर्णन करता हुआ उनके बाह्य सौन्दर्यका वर्णन करता है वहाँ उनकी आभ्यन्तर पवित्रताका भी वर्णन करता चलता है। 'राजा सत्यन्धरका पतन उनकी विषयासक्तिका परिणाम है' यह बतलाकर भी कवि उनकी श्रद्धा और धार्मिकताके विवेकको अन्त तक जागृत रखता है। युद्धके मैदानमें भी वह सल्लेखना धारण कर स्वर्ग प्राप्त करता है।

गद्यचिन्तामणिकी रीढ़—जो विजया प्रातःकाल राज्य-महिषीके पदपर आरूढ थी वही राजा सत्यन्धरका पतन हो जानेपर सायंकाल श्मशानमें पड़ी है और रात्रिके घनघोर अन्धकारमें मोक्षगामी कथानायक जीवन्धरको जन्म देती है। रानी विजयाकी आँखोंमें अपने पुत्रके जन्मोत्सवकी झाँकी झूल रही है और वर्तमानकी दयनीय दशापर नेत्रोंसे आँसू बरस रहे हैं। उस समयका वह दृश्य कितना करुणावह और कितना वैराग्यजनक बन पड़ा है इसे प्रत्येक सहृदय व्यक्ति समझ सकता है। अपने सद्योजात पुत्रको दूसरेके लिए सौंपनेपर भी उसके हृदयमें वह विकलता कविने नहीं आने दी है जो अन्य माताओंमें देखी जाती है। विजया अपने भाई विदेहाधिप गोविन्दके घर जाकर अपमानके दिन बिताना पसन्द नहीं करती है किन्तु दण्डक वनके तपोवनमें तापसीके वेषमें रहकर अपने विपत्तिके दिन काटना उचित समझती है। [2]क्षत्रचूड़ामणिमें कविने बहुत सुन्दर कहा है कि, 'जो रानी पहले शय्यापर पड़े फूलकी बौंडीसे भी कराह उठती थी वह आज घास-फूसकी शय्याको बड़ा मान रही है। और तो क्या अपने हाथसे काटा हुआ नीवार—जंगली धान्य ही उसका आहार है।'.....यह सब विपत्ति वह भोग रही है फिर भी अपने मनोमन्दिरमें जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण-कमलोंका ध्यान करती रहती है। माताका वात्सल्यसे परिपूर्ण हृदय चाहता है कि मैं अपने पुत्रको खिला-पिलाकर आनन्दका अनुभव करूँ। दण्डकवनमें विजया माता हरी-हरी दूबके अंकुरोंको उखाड़कर हरिणोंके बच्चोंको खिला-खिलाकर हृदयमें यथा-कथंचित् सन्तोष धारण करती है। आगे चलकर उसी दण्डकवनमें जीवन्धरके सखा-साथियोंसे जब काष्ठांगारके द्वारा उसके प्राणदण्डका अपूर्ण समाचार सुनती है तब उसका हृदय भर आता है; आँखोंसे सावनकी झड़ी लग जाती है और दण्डकवनका तपोवन एक आकस्मिक करुण क्रन्दनसे गूँजने लगता है। पुत्रके प्रति माताकी ममताको मानो कविने उड़ेल

---

१. नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषः स्पष्टः स्फुटो रसः। विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥ हर्षचरित। २. अनल्पतूलतल्पेऽपि सुप्तप्रसवादपि। निर्भरं हन्त सद्योऽस्यै दर्भशय्याप्यरोचत ॥१०३॥ स्वहस्तलूननीवारोऽप्याहारोऽस्याः परेण किम्। अवश्यं ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१०४॥

—क्षत्रचूड़ामणि, लम्ब १

कर रख दिया है। अन्तमें पूर्ण समाचारके सुननेपर उसका हृदय सन्तोषका अनुभव करता है। सखाओं-द्वारा माताके जीवित रहनेका समाचार प्राप्त कर जीवन्धरका हृदय भी माताका पवित्र दर्शन करनेके लिए अधीर हो उठता है। वे सास-श्वसुर और श्वसुरालयके सभी लोगोंके रोकनेपर भी अपने सखाओंके साथ माताके पास द्रुतगतिसे आते हैं और माताके दर्शन कर गद्गद हो जाते हैं। यह प्रकरण गद्यचिन्तामणिकी रीढ़ है। कविने इतनी कुशलतासे इसका वर्णन किया है कि पाठकका हृदय आनन्दसे विभोर हो जाता है।

गद्यचिन्तामणिका प्रकृति-वर्णन—संस्कृत साहित्यमें प्रकृति-वर्णनके लिए महाकवि भवभूतिकी प्रसिद्धि है, परन्तु जब हम गद्यचिन्तामणिका प्रकृति-वर्णन देखते हैं तब कहीं उससे भी अधिक आनन्दका अनुभव होता है। निर्मल 'अन्तरिक्षमें फैली हुई चाँदनी, रात्रिका घनघोर अन्धकार, सूर्योदय, सूर्यास्त, लहराता हुआ समुद्र, प्रातःकालका मन्द-शीतल और सुगन्धित समीर, पक्षियोंका कलरव, हरे-भरे कानन, आकाशमें छायी हुई श्यामल घनघटा; दावानल और उसके बीचमें रुके हुए हाथियोंके झुण्ड, जन-जनके मानसमें आनन्द उत्पन्न करनेवाला वसन्त, मेघवृष्टिके बाद बहता हुआ पानीका प्रवाह, ग्रीष्मके रूक्ष दिन और प्रावृषके सरस दिन—इन सबका कविने जितना सरस वर्णन किया है उतना हम अन्यत्र कम पाते हैं। सबके उद्धरण देना यहाँ सम्भव नहीं है, फिर भी कुछ 'पंक्तियाँ उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं कर सक रहा हूँ। देखिए छठे लम्बमें जीवन्धर कुमार एक तपोवनसे आगे चलकर कतिपय काननोंको दृष्टिगोचर कर रहे हैं।

'विहितप्रवेशनविधिस्ततो विनिर्गत्य सात्यन्धरिरन्धकारितपरिसराणि—स्वयमदलितकदम्बकवलित-शिखरकुसुमतुङ्गतरुसहस्राणि, विमुक्तकूलसैकतकुरङ्ग-खुरपुटमुद्रितसिकतिलस्थलाभिरम्याणि, स्वच्छसलिलसरः-समुद्भिन्नकुमुदकुवलयमनोज्ञानि, विमलवनापगापुलिनपुञ्जितकलहंसरवितरञ्जितश्रवणानि, दृप्यच्छम्बरशृङ्ग-कोटिविघटनविषमिततुङ्गकच्छानि, विविधसुमनःपरिमलमांसलसमीरसंचारसुरभीकृतानि, कानिचित्काननानि नयनयोरुपायनीचकार।'

गद्यचिन्तामणिका रस परिपाक—शब्द और अर्थ काव्यके शरीर हैं, तो रस उसकी आत्मा है। साहित्यमें शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस हैं। भरत मुनिने वात्सल्य नामक दसवाँ रस भी माना है। इन सभी रसोंका गद्यचिन्तामणिमें अच्छा परिपाक हुआ है। कथानायक जीवन्धर कुमारकी गन्धर्वदत्ता आदि आठ नयी नवेली वधुएँ हैं। उनके साथ पाणिग्रहणके बाद शृंगारका अच्छा परिपाक हुआ है पर खास बात यह है कि कविने उस शृंगारवर्णनमें कहीं भी अश्लीलता नहीं आने दी है। नवम लम्भमें जीवन्धर कुमार एक जर्जरकाय वृद्धका रूप बनाकर जब सुरमंजरीके घर पहुँचते हैं और 'कुमारीतीर्थको प्राप्तिके लिए घूम रहा हूँ' इन शब्दों-द्वारा अपने आगमनका प्रयोजन बतलाते हैं तब मानो हास्यका झरना ही फूट पड़ता है। वे अपने दिव्य संगीतसे सुरमंजरीको प्रभावित कर तथा मनचाहा वर प्रदान करनेका प्रलोभन दे अनंगगृहमें ले जाते हैं और अनंग प्रतिमाके सामने सुरमंजरीके द्वारा चिरकांक्षित जीवन्धरके प्राप्त होनेकी प्रार्थना की जाती है तथा छिपे हुए बुद्धिषेणके द्वारा 'लब्धो वरः' का उच्चारण होनेपर जब जर्जर-शरीर वृद्ध, जीवन्धर कुमारके वेषमें प्रकट होता है तब रोती मुद्रावाले मनहूस पाठक भी एक बार खिलखिला उठते हैं। विजया माताके चित्रणमें तथा द्वितीय लम्भमें भीलों-द्वारा गोपोंकी गायोंके चुरा लिये जानेपर कविने जो गोपोंकी वसतिका वर्णन किया है तथा माताओं-के अभावमें भूखसे पीड़ित गायोंके दुधमुँहे बछड़े जब गोपियोंके स्तनोंपर अपने मुख लगा देते हैं तब करुण रसका परिपाक सीमाके बाँधको लाँघ जाता है और वज्रादपि कठोर मनुष्यके नेत्रोंसे शोकके गरम-गरम आँसू निकल पड़ते हैं। काष्ठांगारकी क्रूरता जब हितावह मार्गका प्रदर्शन करनेवाले धर्मदत्त आदि सचिवोंका वध करता है तथा अपने उपकारी राजा सत्यन्धरको मारकर अपनी कृतघ्नताका परिचय देता है तब रौद्र-रस अपनी उग्रतासे सत्पुरुषोंके हृदयमें भय उत्पन्न कर देता है। गन्धर्वदत्ता तथा लक्ष्मणाके स्वयंवरके बाद जीवन्धर कुमारने युद्धोंमें जो अपनी शूरता दिखायी है और काष्ठांगारको मारनेके बाद भी उसके परिवारको

जो राजमहलमें ही रहनेकी उदारता प्रदर्शित की है उससे वीररसका उत्तम परिपाक हुआ है। चतुर्थ लम्भमें वनक्रीड़ासे लौटते समय काष्ठांगारका अशनिघोष हाथी रुष्ट होकर गुणमालाके प्रति झपटा चला आ रहा है। भयसे भीत हो उसके सखा-साथी तथा शिविकाके वाहक भी भाग गये हैं, और भयसे काँपती हुई गुणमालाका एक वृद्धा धायके पीछे खड़ी-खड़ी अनाशंसित मृत्युकी प्रतीक्षा कर रही है""यह भयानक रसका कितना स्पष्ट वर्णन है। श्मशानमें जलती हुई चिताओं और उनकी लपटमें जलते हुए नर-शवोंका वर्णन बीभत्स रसका दृश्य सामने रखता है तो लक्ष्मणाके स्वयंवरमें जीवन्धर कुमारके द्वारा सहसा चन्द्रकवेधका होना अद्भुत रसको उपस्थित कर देता है। अन्तिम लम्भमें वनपालके द्वारा वानरीके हाथसे तालफल छीन लिया जाता है इस दृश्यको देखकर जीवन्धरके मुखसे निकल पड़ता है—'मद्यते वनपालोऽयं काष्ठाङ्गारायते हरिः' और उनका हृदय संसारकी दशा देख वैराग्यसे सराबोर हो जाता है। मुनिराजके मुखसे धर्मोपदेश होता है और जीवन्धर स्वामी सब राज्यपाट छोड़ दैगम्बरी दीक्षा धारण कर लेते हैं यह सब शान्त-रसका चरम परिपाक है। इस तरह गद्यचिन्तामणिमें अंगीरस शान्तरस है और अंगरूपमें शेष आठ रस स्थान-स्थानपर अपनी गरिमा प्रकट कर रहे हैं। विजयाके चरित्र-चित्रणमें वात्सल्य रस भी अपनी आभा दिखला रहा है।

गद्यचिन्तामणि तथा क्षत्रचूडामणिपर अन्य कवियोंका प्रभाव—गद्यचिन्तामणि तथा क्षत्रचूडामणिको देखनेसे लगता है कि काव्यके विषयमें इनपर पूर्ववर्ती कालिदास, बाण, सुबन्धु तथा दण्डी आदिका प्रभाव है तो धर्म और दर्शनमें समन्तभद्र, पूज्यपाद, शिवार्य और अकलंकका प्रभाव परिलक्षित है। यहाँ कुछ तुलनात्मक उद्धरण देखिए—

१. 'प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि। स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः' ॥

—रघुवंश सर्ग, १, श्लोक २४

'सुखदुःखे प्रजाधीने तदाभूतां प्रजापतेः। प्रजानां जन्मवर्ज हि सर्वत्र पितरो नृपाः ॥'

—क्षत्र०, लम्भ ११, श्लोक ४

'रात्रिंदिवविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम्। तत्सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः ॥'

—रघुवंश सर्ग, १७, श्लोक ४९

'रात्रिंदिवविभागेषु नियतो नियतिं व्यधात्। कालातिपातमात्रेण कर्तव्यं हि विनश्यति ॥'

—क्षत्र०, लम्भ ११, श्लोक ७

'स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम्। अनन्यशासनामुर्वी शशासैकपुरीमिव ॥'

—रघुवंश, सर्ग १, श्लोक ३०

'प्रबुद्धेऽस्मिन् भुवं कृत्स्नां रक्षत्येकपुरीमिव। राजन्वती च भूरासीदन्वर्थं रत्नसूरपि ॥'

—क्षत्र०, लम्भ ११, श्लोक ९

२. 'अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः। अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान् षट्पूर्वमजयद्रिपून् ॥४५॥
कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम्। अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः ॥४७॥
न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः। अदृष्टमभवत्किंचिद्व्यभ्रस्येव विवस्वतः ॥४८॥
रात्रिंदिवविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम्। तत्सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः ॥४९॥
कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः। यस्य कार्यः प्रतीकार्यः स तन्नैवोदपादयत् ॥५०॥'

—रघुवंश, सर्ग १७

'असौ राजा बाह्यममित्रजातमध्रुवमतिविप्रकृष्टं चेत्यात्मनिष्ठमरिषड्वर्गं व्यजेष्ट। असहाया नीतिः कातर्यावहा शौर्यं च श्वापदचेष्टितमित्यभीष्टसिद्धिमन्विताभ्यामुभाभ्यामकाङ्क्षीत्। सप्रणिधानं प्रहित-

प्रणिधिनेत्रः शत्रुमित्रोदासीनमण्डलेषु तैरज्ञातमप्यज्ञासीत्। रात्रिंदिवविभागेषु यदनुष्ठेयमिदमित्थमन्वतिष्ठत्। जातमपि सद्यः शमयितुं शक्तोऽपि सदा प्रबुद्धतया प्रतीकारयोग्यं नाजीजनत्। किं बहुना राजन्वतीमवनिमतानीत् ॥''

—गद्यचिन्तामणि, लम्ब ११, पैराग्राफ ३

३. 'सेकान्ते मुनिकन्याभिः कारुण्योज्झितवृक्षकम्। विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥५१॥
आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः। मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गणभूमिषु ॥५२॥

—रघुवंश, प्रथम सर्ग

'वासरावसानसंक्षिप्तनीवाराङ्गणनिषादिमृगगणनिर्वर्तितरोमन्थम्, आलवालाम्भःपानलम्पटविहगपेटकविश्वासकृते सेकान्तविसृष्टवृक्षमूलमुनिकन्यकाविवृतकारुण्यम्, दण्डकारण्याश्रममधिवसन्तीम्'।

गद्यचिन्तामणि, लम्भ ८, पैराग्राफ १३

४. 'मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥
तप्ताङ्गारसमा नारी घृतकुम्भसमः पुमान्। तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः ॥'

—मानवीयधर्मशास्त्र

'अङ्गारसदृशी नारी नवनीतसमा नराः। तत्तत्सान्निध्यमात्रेण द्रवेत् पुंसां हि मानसम् ॥४१॥
संलापवासहासादि तद्वर्ज्यं पापभीरुणा। बालया वृद्धया मात्रा दुहित्रा वा व्रतस्थया ॥४२॥'

—क्षत्रचूड़ामणि, लम्भ ७

५. 'तात चन्द्रापीड! विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। दारुणो लक्ष्मीमदोऽत्यन्ततीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। अमन्त्रगम्यो विषयो विषयविषास्वादमोह इत्यतो विस्तरेणाभिधीयसे'। —कादम्बरी, पृष्ठ २२१

'वत्स, बलनिषूदन पुरोधसमपि स्वभावतीक्ष्णया धिषणया धिक्कुर्वति सर्वपथीनपाण्डित्ये भवति पश्यामि नावकाशमुपदेशानाम्। तदपि कलशभवसहस्रेणापि कवलयितुमशक्यः प्रलयतरणिपरिषदाप्यशोष्यो यौवनजन्मा मोहमहोदधिः। अशेषभेषजप्रयोगवैफल्य-निष्णातदक्षो लक्ष्मीकटाक्षविक्षेपविसर्पीदर्पज्वरः। पुरोवर्त्यपि वस्तु न विलोकयितुं प्रभवतः प्रभूतैश्वर्यमदकाचकञ्चुकितरोचिषी चक्षुषी। मन्दीकृतमणिमन्त्रौषधिप्रभावः प्रभावनाटकनटनसूत्रधारः स्मयापस्मार इति किंचिदिह शिक्ष्यसे'।

—गद्यचिन्तामणि, लम्भ २, पैरा० १३

कादम्बरीका शुकनासोपदेश अत्यन्त प्रसिद्ध प्रकरण है। उसे निर्णयसागर बम्बईसे प्रकाशित अष्टम संस्करणके पृष्ठ २२१ से पृष्ठ २३८ तक देखें और उसके बाद गद्यचिन्तामणिके पैराग्राफ ५९ से ६७ तक आर्यनन्दी गुरुके द्वारा जीवन्धरके लिए दिया हुआ उपदेश देखें। दोनोंमें बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होनेपर भी एक विभिन्न प्रकारकी विचित्रता अनुभवमें आती है।

वासवदत्ता और गद्यचिन्तामणि—संस्कृत गद्य लेखकोंमें सुबन्धु कालकी दृष्टिसे प्रथम गद्य लेखक माने जाते हैं। आपकी 'वासवदत्ता' राजकुमार कन्दर्पकेतु और वासवदत्ताकी प्रेम-कथा है। कथानक अत्यन्त संक्षिप्त है फिर भी कविने अपने काव्य-कौशलसे उसे अलंकृत और विस्तृत किया है। वासवदत्ताका श्लेष संस्कृत-साहित्यमें अत्यन्त प्रसिद्ध है। बाणभट्टने उसकी आलोचनामें लिखा है कि[1] 'वासवदत्ताके द्वारा कवियोंका गर्व निश्चित ही गल गया था'। यह सब होनेपर भी कथाकी अत्यल्पता और अलंकारोंको

---

१ 'कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया। शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥'

भरमारने उसके सौन्दर्यका घात किया है परन्तु गद्यचिन्तामणिमें हम यह बात नहीं देखते। उसकी कथा रोचक और उत्तम घटनाओंसे युक्त है। जिस प्रकार किसी शुभ्रवदना युवतीके शरीरपर परिमित और उज्ज्वल अलंकार शोभा देते हैं उसी प्रकार गद्यचिन्तामणिकी सरस गद्य-धारापर सारगर्भित अलंकार सुशोभित हो रहे हैं। आखिर अलंकार अलंकार ही हैं प्राण नहीं।

कादम्बरी और गद्यचिन्तामणि—बाणभट्टका संस्कृत गद्य-लेखकोंमें कालकी दृष्टिसे दूसरा नम्बर है। इनके हर्षचरित और कादम्बरी—दो ग्रन्थ अत्यन्त गौरवको प्राप्त हैं। इनके देशाटनने इनका अनुभव बढ़ाया था। आप राजा हर्षवर्धनके सम्मान्य कवि थे। आपकी उज्ज्वल और सरस गद्य-शैलीसे वादीभसिंह प्रभावित जान पड़ते हैं और ऐसा लगता है कि इनके उक्त ग्रन्थोंसे ही वादीभसिंहको गद्यचिन्तामणि लिखनेकी प्रेरणा मिली होगी। परन्तु कादम्बरीकी अल्पकाय कथा, लम्बायमान विशेषण बहुल गद्योंमें उलझी हुई जान पड़ती है। बाणने विन्ध्याटवी, राजद्वार, इन्द्रायुध, अश्व, अच्छोद सरोवर, महाश्वेता तथा कादम्बरी, आदि जिस-किसीका भी वर्णन किया है उसे विशेषणोंकी तहमें इतना तिरोहित कर दिया है कि पाठकको उसकी बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। भाषाके द्वारा रसकी अभिव्यक्ति होना चाहिए न कि उसका तिरोभाव। वेबरने बाणकी शैलीकी आलोचना करते हुए लिखा है कि 'यह एक भारतीय जंगल है। इसमें यात्री जबतक अपने लिए स्वयं झाड़ियोंको काटकर मार्ग न बनावें, तबतक उसके लिए मार्ग मिलना असम्भव है। इसके बाद भी अप्रचलित शब्दोंके रूपसे भयंकर जंगली पशु उसको भयान्वित करते हुए प्राप्त होते हैं। गद्यचिन्तामणिमें हम यह बात नहीं देखते। कविने उसके भाषाके प्रवाहको उतना ही प्रवाहित किया है जिससे रसवृक्ष सींचा तो गया है परन्तु डुबाया नहीं जा सका है।

दशकुमारचरित और गद्यचिन्तामणि—संस्कृत-साहित्यमें दण्डी कवि अपने पद-लालित्यके लिए प्रसिद्ध हैं। इनका 'दशकुमार चरित' यह एक ही ग्रन्थ उपलब्ध है। इसमें दशकुमारोंका चरित्र-चित्रण है। जिनमें अपहारवर्मा आदिका चरित्र इतनी घटनाओंसे भर दिया है कि पाठकको उसका अवधारण करना भी कठिन हो जाता है। ग्रन्थके प्रारम्भमें भाषाका जो प्रवाह प्रदर्शित है वह उत्तरोत्तर क्षीण होता गया है और अन्तमें तो सिर्फ कथानकका अस्थिजाल ही शेष रह गया है परन्तु गद्यचिन्तामणिमें इस बातका ध्यान रखा गया है[1]। इसका कथानक पौराणिक होनेपर भी कविने उसे काव्यकी ललित वेष-भूषामें ही प्रस्तुत किया है और भाषाके प्रवाहको महानदीके प्रवाहके समान प्रारम्भसे लेकर अन्त तक अखण्डधारामें प्रवाहित किया है।

गद्यचिन्ताणिका शब्द-वैभव—पद्यमें नपे-तुले शब्द रहते हैं अतः लेखकका शब्द-भाण्डार सीमित होनेपर भी वह अपने कार्यमें सफल हो जाता है परन्तु गद्य-काव्यके लेखकका शब्द-भाण्डार जबतक अपरिमित नहीं होता तबतक उसे अपने कार्यमें सफलता नहीं मिलती। शब्दोंकी पुनरुक्तता लेखककी शाब्दिक दरिद्रताको सूचित करती है और रसके प्रतिकूल शब्द-विन्यास भक्त-कवलके साथ दाँतोंके नीचे आये हुए कंकड़के समान खटकने लगता है। शब्दोंकी पुनरुक्ततासे बचनेके लिए गद्य-लेखकको नये-नये शब्द गढ़ने पड़ते हैं। वादीभसिंहको भी गद्यचिन्तामणिकी शाब्दिक सुषमा सुरक्षित रखनेके लिए नये-नये शब्द गढ़ने पड़े हैं। जैसे चन्द्रमाके लिए यामिनीवल्लभ, निशाकान्त, सूर्यके लिए नलिन-सहचर, इन्द्रके लिए बलनिषूदन, पृथिवीके लिए अम्बुधिनेमि और मुनिके लिए यमधन आदि। ऐसे शब्दोंके अर्थ समझनेके लिए मात्र कोषके सहारे संस्कृत पढ़नेवाले कठिनाईका अनुभव करते हैं पर जो काव्य-विषयक पठन-पाठनमें अभ्यस्त हैं उनके लिए कुछ भी कठिनाई नहीं रहती। गद्यचिन्तामणिमें कुछ ऐसे भी शब्द आये हैं जिनका उपलब्ध प्रसिद्ध कोषोंमें उल्लेख नहीं है सिर्फ प्रकरणकी संगति देखते हुए उनका अर्थ करना पड़ता है जैसे खजूरी, तिरोफल नाफल चिक्रोड, कृतक्ष, शीफर प्रतिष्क आदि परन्तु ऐसे शब्द अत्यन्त अल्प हैं।

---

१ देखो, संस्कृत साहित्यका इतिहास, पृष्ठ १५१ (रामनारायण लाल, इलाहाबाद)

गद्यचिन्तामणिके प्रमुख पात्र

१. महाराज सत्यन्धर—हेमांगद देश और राजपुरी नगरीके राजा थे। कथानायक जीवन्धर-के पिता हैं। प्रजा तथा मन्त्री आदि मूलवर्गको अपने अधीन रखते थे, अत्यन्त शूर-वीर थे, यशस्वी थे और अपनी दान-वीरतासे कल्पवृक्षकी गरिमाको भी मन्द करनेवाले थे, कुरुवंशके शिरोमणि थे। शत्रुओं-को जीतकर जब अपने राज्यको स्थिर कर चुके तब विषयासक्तिके कारण राज्य-कार्यसे विमुख हो गये। राज्यका कार्य काष्ठांगार मन्त्रीके स्वायत्त कर आप राग-रंगमें मस्त हो गये। राजाके भविष्यको समझने-वाले धर्मदत्त आदि मन्त्री राजाको हितावह उपदेश देते हैं और काष्ठांगारका भरोसा न करनेकी प्रार्थना करते हैं परन्तु विषयासक्तिकी प्रबलता और काष्ठांगारके ऊपर जमे हुए अपने विश्वासके कारण मन्त्रियोंके हितकर उपदेशको उपेक्षित कर देते हैं। अन्तमें काष्ठांगारकी दुरभिसन्धिके शिकार हो मृत्युको प्राप्त होते हैं। राजाको धर्म, अर्थ और कामका पारस्परिक विरोध बचाते हुए प्रवृत्ति करना चाहिए। जहाँ इनके विरोधकी उपेक्षा होती है वहाँ पतन निश्चित होता है। राजा सत्यन्धर इसके उदाहरण हैं।

२. विजयारानी—विजयारानी विदेहके राजा गोविन्द महाराजकी बहन और राजा सत्यन्धर-की प्रमुख रानी थी। 'यद्यपि राजा सत्यन्धरकी भामारति और अनंगपताका नामकी दो रानियाँ और भी थीं[1] परन्तु पतिका अगाध प्रेम इसे ही प्राप्त था। इसने तीन स्वप्न देखे जिनमें प्रथम स्वप्नका फल राजाकी मृत्यु थी। उसे सुनकर बहुत दुःखी हुई परन्तु राजाके उपदेशसे प्रणय-लीला पूर्ववत् चलती रही। राजा सत्यन्धरका पतन होनेपर श्मशानमें पुत्रकी उत्पत्ति हुई। विजयारानीका जीवन बड़ा कष्ट सहिष्णु और विपत्तिमें व्यग्र नहीं होनेवाला दिखता है। आत्मगौरवकी तो वह प्रतीक ही जान पड़ती है। राजाकी मृत्यु और सद्योजात पुत्रका गन्धोत्कट सेठके यहाँ स्थानान्तरण होनेपर जब यक्षी उसे अपने भाईके घर जानेकी सलाह देती है तब वह आत्मगौरवकी रक्षाके लिए उस सलाहको ठुकरा देती है और दण्डक वनके एक तपोवनमें तापसीके वेषमें रहना पसन्द करती है। उसमें एक नीति यह भी मालूम होती है कि सुदूरवर्ती प्रदेशमें वेषान्तरसे रहनेमें काष्ठांगारको उसका पता न चल सके। अन्यथा उसके रहते काष्ठांगार सदा संशयालु रहता और उसके नाशका प्रयत्न करता रहता। अन्तमें पुत्रके साथ माताका मिलन होता है। पुत्र, पिताका राज्यसिंहासन पुनः प्राप्त करता है और विजयारानी पुनः अपने महलोंमें प्रवेश करती है। अन्तमें विजयारानी आर्यिकाके व्रत धारण करती है। विजयारानीके जीवनमें सुख और दुःखका बड़ा सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है।

३. काष्ठांगार—काष्ठांगार बड़ा कृतघ्न मन्त्री है। राजा सत्यन्धरने जिसे मन्त्री पदपर आसीन किया और अन्तमें अपना सारा राज्य-पाट भी जिसके स्वाधीन कर दिया उसका इस तरह कृतघ्न होना नीचताकी पराकाष्ठा है। केवल राज्य प्राप्त कर स्वायत्त होनेकी आकांक्षा मनुष्यका इतना पतन नहीं करा सकती इसका दूसरा कारण भी होना चाहिए, जिसे उत्तरपुराणमें गुणभद्राचार्यने स्पष्ट किया है। महाराज सत्यन्धरका एक रुद्रदत्त नामका पुरोहित था, जो भविष्यवक्ता भी था। उसने काष्ठांगारको बतलाया था कि राजा सत्यन्धरकी विजया रानीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र तुम्हारा प्राण-घातक होगा। राजा सत्यन्धरके रहते वह विजया और उसके भावी पुत्रको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं था अतः उसने सर्व-प्रथम राजा—सत्यन्धरको ही नष्ट करनेका उपाय रचा। सत्यन्धरको मारकर वह उनके राज्यका अधि-कारी हो गया। श्मशानमें उत्पन्न पुत्र उसी रात्रिको गन्धोत्कट सेठके आधीन हो गया और रानी विजया सुदूरवर्ती दण्डक वनमें तापसीके वेषमें रहने लगी। काष्ठांगारने समझा कि राजाको मैंने मार डाला है और रानी मयूर यन्त्रमें बैठकर गयी थी अतः गिरनेपर उसका और उसके गर्भस्थ बालकका प्राणघात स्वयं हो गया होगा। इस प्रकार वह निश्चिन्त होकर अपना राज्य-शासन चलाता है। आतंकसे किसीकी अकीर्ति दबती

---

१. उत्तरपुराणके आधारपर।

नहीं है उलटी पड़ती है। काष्ठांगारकी भी अकीर्ति राजघातकके रूपमें सर्वत्र फैल गयी अतः वह अन्तमें विजयारानीके भाई गोविन्द महाराजके पास सन्देश भेजता है कि राजाका घात एक उन्मत्त हाथीने किया है और उसका कलंक मुझे लगाया जा रहा है आप आकर हमारे इस कलंकका परिमार्जन कर दीजिए। तबतक जीवन्धर भी वयस्क होकर अपने मातुल गोविन्द महाराजके घर पहुँच चुके थे। काष्ठांगारके कपट पत्रका उपयोग करते हुए मित्रके नाते एक बड़ी सेना साथ लेकर गोविन्द महाराज काष्ठांगारके यहाँ आये। वहाँ उन्होंने अपनी पुत्री लक्ष्मणसेनाका स्वयंवर रचा। जीवन्धरने चन्द्रकवेधको वेध कर, लक्ष्मणाकी वरमाला प्राप्त की। इससे उत्तेजित हो काष्ठांगार भड़क उठा। इधर युद्धकी तैयारी पूरी थी अतः युद्ध हुआ और काष्ठांगार उसमें मारा गया। गद्यचिन्तामणिमें काष्ठांगारका उल्लेख प्रतिनायकके रूपमें है।

४. जीवन्धर—आप महाराज सत्यन्धर और विजयारानीके पुत्र हैं। उत्तर पुराणके उल्लेखानुसार पूर्वभवमें इन्होंने एक हंसके बच्चेको उसके माता-पिताके पाससे पकड़वा लिया था। बच्चेका पिता हंस इस दुःखसे दुःखी होकर आकाशमें क्रेंकार कर रहा था अतः उसे इन्होंने अपने किसी सेवकसे मरवा दिया था। पीछे चलकर गद्यचिन्तामणिके अनुसार पिताके और उत्तर पुराणके अनुसार माताके उपदेशसे इन्होंने सोलह दिन बाद उस हंसशिशुको उसकी माताके पास भेज दिया। करनीका फल सबको मिलता है, जीवन्धरको भी उसके फलस्वरूप उत्पत्तिके पूर्व ही पिताकी मृत्यु तथा मातासे सोलहवर्ष तकका विछोह सहन करना पड़ा। जीवन्धर मोक्षगामी पुरुष थे, करुणा इनकी रग-रगमें भरी थी। कालकूट भीलके द्वारा गायोंके चुरा लिये जानेपर जब गोपोंके परिवार काष्ठांगारके द्वारपर रोते हैं और उसकी अकर्मण्य सेना जब पराजित होकर लौट आती है तब आप अपने सखाओंके साथ जाकर भीलको परास्त करते हैं और गोपोंका पशुधन वापस लाकर उन्हें देते हैं। एक मरणोन्मुख कुक्कुरको देखकर उनकी करुणा जाग उठती है और वे उसे पंचनमस्कार मन्त्र सुनाकर कृतकृत्य करते हैं। कुत्तेका जीव मरकर सुदर्शन यक्ष होता है और वह कृतज्ञके रूपमें जीवन्धर कुमारके साथ बड़ा उपकार करता है। कृतघ्न काष्ठांगार और कृतज्ञ सुदर्शन यक्ष दोनोंके जीवनमें स्वर्ग और नरकके समान अन्तर दिखाई देता है। शीलमूर्ति गुणमालाकी रक्षाके लिए अकेले ही एक उन्मत्त हाथीसे जूझ पड़ते हैं। सर्पदंशसे मूर्च्छित कन्याका विष-हरण करनेके लिए एक मान्त्रिकके रूपमें सामने आते हैं तो काष्ठांगारकी मृत्युके बाद बारह वर्ष तक पृथिवीको करभारसे मुक्त कर देशवासियोंके लिए एक कल्पवृक्षके रूपमें दिखाई देते हैं। आपका जीवन बड़ा ही पवित्र और परोपकारमय रहा है। इनके जीवनकी विशेषतासे प्रभावित होकर ही वादीभ-सिंहने इन्हें क्षत्रचूडामणि—क्षत्रियोंके शिरोमणि अथवा राजराज—राजाओंके राजा जैसे शब्दोंसे संज्ञित किया है। शलाकापुरुष न होनेपर भी पुराणकारोंने अपने पुराणोंमें इनका चरित्र अंकित किया है और कवियोंने इनपर गद्य-पद्यात्मक काव्य लिखे हैं। जीवन्धर चम्पूकारने तो स्पष्ट ही घोषित किया है—'जीवन्धरस्य चरितं दुरितस्य हन्तृ'—जीवन्धरका चरित पापको नष्ट करनेवाला है। आपने भगवान् महावीरके समवसरणमें दीक्षा धारण कर राजगृहीके निकटवर्ती विपुलाचलसे मोक्ष प्राप्त किया है। जीवन्धर गद्यचिन्तामणिके नायक हैं।

५. गन्धोत्कट—जीवन्धरके जीवनमें गन्धोत्कटको उनके पिताका स्थान प्राप्त है जिसे उसने बड़ी कुशलतासे निभाया है। यह राजपुरीका एक बड़ा सेठ था। इसके पुत्र अल्पायु होते थे अतः मुनिमहाराज-से इसने पूछा—क्या कभी हमारे भी दीर्घायुपुत्र होगा? मुनिराजने उसे सन्तोष दिलाया और कहा कि जब तुम अपने मृत पुत्रको छोड़नेके लिए श्मशान जाओगे तब तुम्हें एक भाग्यशाली उत्तम पुत्र प्राप्त होगा। ऐसा ही हुआ। जीवन्धरके बाद उसकी सुनन्दा स्त्रीसे एक स्वयंका भी नन्दाढ्य नामका पुत्र हो गया पर उसके जीवनमें कभी यह देखनेको नहीं मिलता कि नन्दाढ्य उसका निजका पुत्र है और जीवन्धर दूसरेका। उसकी स्त्री सुनन्दा भी बड़ी उदात्त महिला है। इसके नीतिकौशलके विषयमें पीछे पादटिप्पणमें लिख आया हूँ। इसके विषयमें एक लोकोक्ति याद आती है 'बानियोंसे सयानो सो दीवानो जानियो'।

६. गन्धर्वदत्ता—यह जीवन्धरकी प्रथम और प्रमुख पत्नी है। विद्याधर गरुडवेगकी पुत्री है, संगीतकी मर्मज्ञ है और जीवन्धरके भ्रमणकालमें अपनी विद्याओंके उपयोगसे सबको शान्त्वना देती रहती है। गन्धर्वदत्ताके कारण जीवन्धरका विद्याधरोंके साथ सम्बन्ध बढ़ा है।

७. गुणमाला—यह राजपुरीके सेठकी पुत्री थी। हाथीके उपद्रवसे जीवन्धरकुमारने इसकी रक्षा की थी। उसी समयसे इसका जीवन्धरके प्रति और जीवन्धरका इसके प्रति अनुराग बढ़ गया था। अनुरागकी पूर्तिके लिए जीवन्धरने शुकके द्वारा प्रणयपत्र भेजा और उसने भी प्रतिपत्र भेजा। अन्तमें दोनोंका विवाह हुआ। श्रीहर्षके द्वारा नैषध काव्यमें नल और दमयन्तीके बीचमें हंसका दूत बनाया जाना इसी शुक-दूतकी कल्पनाका प्रसार है।

८. सुरमंजरी—यह राजपुरीके एक सेठकी पुत्री है। और अपने सुगन्धित चूर्णके विषयमें गुणमालासे पराजित होनेपर जीवन्धरमें इसकी आस्था बढ़ गयी। इतनी अधिक कि उसने अपने अन्तःपुरमें अन्य पुरुषोंका प्रवेश भी निषिद्ध कर दिया। परिभ्रमणसे वापस आनेपर जीवन्धरको इस बातका पता चला तब वे एक वृद्धके रूपमें उसके घर गये। गद्यचिन्तामणिका यह प्रकरण हास्यरसका अच्छा उदाहरण है। अन्तमें दोनोंका विवाह हुआ।

जहाँ जीवन्धर और नन्दाढ्यमें सौभ्रात्र है वहाँ जीवन्धरकी आठों रानियोंमें भी सौमनस्य दृष्टिगोचर होता है। पारिवारिक सुख-शान्तिके लिए इसका होना अत्यन्त आवश्यक है। समग्र पात्रोंका परिचय परिशिष्टमें दिया गया है। यहाँ कुछ प्रमुख पात्रोंके जीवनपर ही विचार प्रकट किया गया है।

गद्यचिन्तामणिका धर्मोपदेश

कथाग्रन्थोंमें दिया हुआ धर्मोपदेश अल्पपरिमाणमें ही शोभा देता है। जहाँ-कहीं वह आवश्यकतासे अधिक बढ़ जाता है वहाँ कथाकी सरसता खण्डित हो जाती है और पाठकका मन उस प्रकरणको छोड़ देना चाहता है, जैसा कि वरांगचरित और जिनसेनके हरिवंश पुराणमें हुआ है। चन्द्रप्रभचरितके द्वितीय सर्गका न्यायवर्णन भी इसी प्रकारका है। किन्तु गद्यचिन्तामणिमें बीच-बीचमें और खासकर अन्तिम लम्भमें चारणर्षियुगलके द्वारा भवभीरु जीवन्धरके लिए जो धर्मोपदेश दिया गया है तथा उसके अन्तर्गत नरकादि गतियोंकेदुःखका वर्णन किया गया है वह कथाग्रन्थके सर्वथा अनुरूप है। सरल, संक्षिप्त और भाववर्धक। चतुर्गतिके दुःखोंका वर्णन भगवती आराधनाके चतुर्गतिवर्णनसे प्रभावित ज्ञात पड़ता है। भगवती आराधना प्राचीन ग्रन्थ है, ज्ञानार्णवके कर्ता शुभचन्द्रने उसके कितने ही प्रकरण अपने ज्ञानार्णवमें आत्मसात् किये हैं।

जीवन्धरका हेमांगददेश और उनका भ्रमणक्षेत्र

इस स्तम्भमें हम हेमांगददेश राजपुरी नगरी चन्द्रोदयपर्वत तथा दक्षिणके उन देशोंका आधुनिक नामोंके साथ परिचय देना चाहते थे जिनमें जीवन्धर कुमारने भ्रमण किया है, परन्तु सहायक-सामग्रीके अभावमें पूर्ण निर्णय नहीं हो सकनेसे असमर्थता है। फिर भी इस दिशामें विद्वानोंने जो अबतक प्रयत्न किया है उसकी संक्षिप्त जानकारी देना उचित समझते हैं।

सर्व-प्रथम कनिंघम साहबने 'एंशिएंट जागरफी ऑव इण्डिया'में हेमांगद देशपर प्रकाश डालते हुए उसे मैसूर या उसका निकटवर्ती कोई भूभाग ही हेमांगददेश बतलाया है। उसीके आधारपर बाबू कामताप्रसादजीने भी 'संक्षिप्त जैन इतिहास' द्वितीय भागके प्रथम खण्डमें मैसूर या उसके निकटवर्ती भूभागको हेमांगद देश कहा है। कनिंघम साहबके कथनमें हेमांगदके पास सुवर्णकी खानें, मलय पर्वत तथा समुद्र आदिका होना कारण बतलाया गया है। परन्तु पं० के० भुजबली शास्त्री मूडबिद्रीने इसपर आपत्ति करते

हुए अपना मन्तव्य जाहिर किया है कि हेमांगददेश दक्षिणमें न होकर विन्ध्याचलका उत्तरवर्ती कोई प्रदेश होना चाहिए[1]। यहाँ मेरा तुच्छ विचार है यदि क्षत्रचूडामणिके—

'इहास्ति भारते खण्डे जम्बूद्वीपस्य मण्डने। मण्डलं हेमकोशाभं हेमांगदसमाह्वयम् ॥४॥ प्रथम लम्ब' श्लोकके 'हेमकोशाभं' इस विशेषणपर जोर दिया जावे और इसका समास 'जैसा कि स्व० विद्वान् गोविन्दरायजी काव्यतीर्थ' किया करते थे 'हेमकोशानां स्वर्णनिधानानामाभा यस्मिस्तत्'—जहाँ सुवर्णके खजानों-खानोंकी आभा है' की जावे तो कनिघमकी युक्तिका समर्थन प्राप्त होता है। साथ ही राजपुरीके सेठ [2]श्रीदत्तकी समुद्र-यात्राका वर्णन क्षत्रचूडामणि, जीवन्धरचम्पू, गद्यचिन्तामणि और उत्तरपुराणमें समानरूपसे पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि राजपुरी समुद्रके निकटस्थ होना चाहिए। विन्ध्योत्तर प्रदेशमें न सुवर्णकी खानें हैं और न समुद्रकी निकटता। मैसूरसे दण्डक वन भी न अति दूर न अति समीप है। दण्डक वनमें विजया रानीका तापसीके वेषमें अपना परिचय दिये बिना छिपकर रहना राजनीतिका विषय है। क्योंकि उत्तरपुराणके अनुसार रुद्रदत्त पुरोहितने काष्ठांगारिकको बतलाया था कि राजा सत्यन्धरकी विजया रानीसे जो पुत्र होनेवाला है वह तुम्हारा प्राणघातक होगा। इसी प्रेरणासे काष्ठांगारिकने सत्यन्धरका घात किया था और उनकी रानी विजया तथा उसके पुत्रका घात करना चाहता था। विजया अपने भाईके घर नहीं गयी इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि काष्ठांगारिक वहाँ उसे अनायास खोज सकता था। गद्यचिन्तामणिमें हेमांगदका वर्णन करते समय [3]सुपारीके बाग तथा उपजाऊ जमीनकी अधिकताके कारण सदा उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके धानोंसे—गाँवोंके उपशल्यों—निकटवर्ती प्रदेशोंका भी वर्णन किया गया है। श्रेष्ठ सुपारीके बाग दक्षिणमें ही हैं विन्ध्योत्तर प्रदेशमें नहीं। और जलकी अधिकतासे दक्षिणमें ही सदा धानके हरे-भरे खेत दिखाई देते हैं विन्ध्योत्तर प्रदेशमें नहीं। यदि जीवन्धर उत्तर भारतके होते तो समकालीन राजा श्रेणिक उनसे अपरिचित न रहते और न मुनि अवस्थामें देख उनमें देवकी शंका कर सुधर्माचार्यसे प्रश्न करते[4]—यह वर्णन मात्र कवि-संप्रदायके अनुसार नहीं है किन्तु यथार्थ रूपमें है क्योंकि कवि-संप्रदायके अनुसार तो किसी भी वृक्षका वर्णन हो सकता था पर अन्य वृक्षोंका वर्णन न कर खासकर कविने सुपारी ही के वृक्षोंका वर्णन किया है। मिथिलाके राजा गोविन्द महाराजकी बहन विजयाका विवाह दूरवर्ती राजा सत्यन्धरके साथ होना असंभव बात नहीं है क्योंकि जब विद्याधरोंके साथ भी विवाह सम्बन्ध हो सकते हैं तब उत्तर और दक्षिण भारतकी कोई बड़ी दूरी नहीं है। यही बात दक्षिणसे जीवन्धरकी विपुलाचल तक पहुँचने की है।......जो कुछ भी हो विद्वद्गण विचार करें। दुःख इस बातका है कि हम २५०० वर्ष पूर्ववर्ती देश और नगरका पता लगानेमें भी समर्थ नहीं हो सक रहे हैं।

सुदर्शन यक्ष जीवन्धर कुमारको अपने निवास-स्थान चन्द्रोदय पर्वतपर ले गया है और वहाँसे उतरकर उन्होंने पल्लव आदि देशोंमें परिभ्रमण किया है, इससे पता चलता है कि चन्द्रोदय पर्वत दूर नहीं

---

१. देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर, भाग २, किरण ३ 'महाराज जीवन्धरका हेमांगददेश और क्षेमपुरी' शीर्षक लेख। २. उत्तरपुराणकी अपेक्षा जिनदत्त। ३. 'क्वचिद्दिवाप्रभकाशितपरिसराभिः मरकतपरिघपरिभावुकस्तम्भपरिरम्भरमणीयाभिः पूगवाटिकाभिः प्रकटीक्रियमाणाकाण्डप्रावृडारम्भेण सर्वकालसुलभप्राचुर्यया प्रथमानबहुविधसस्यसारेण ग्रामोपशल्येन निःशल्यकुटुम्बिवर्गः' गद्यचिन्तामणि—प्रथम लम्भ०, पैराग्राफ १।

४. नानाभोगपयोधिमग्नमतयो वैराग्यदूरोज्झिता
देवा न प्रभवन्ति दुःसहतमां वोढुं मुनीनां धुरम्।
इत्याहुः परमागमस्य परमां काष्ठामधिष्ठास्नव—
स्त्वद्देवो मुनिवेषमेव कथमनुदृश्येत कस्मादपि ॥'—गद्यचिन्तामणि पीठिका

है। क्या यह सम्भव नहीं है कि दक्षिणका चन्द्रगिरि ही चन्द्रोदय हो सुदर्शन यक्ष व्यन्तर देव हैं, व्यन्तरोंका निवास जहाँ-कहीं भी होता है और उनकी इच्छानुसार मनुष्योंकी दृष्टिके अगोचर भी रह सकता है।

जीवन्धर कुमारके विहार-स्थलोंमें-से क्षेमपुरीके विषयमें श्री पं० के० भुजबली शास्त्रीने अपने उसी लेखमें प्रकट किया है कि यह वर्तमान बम्बई प्रान्तान्तर्गत उत्तरकन्नड जिलाका गेरुसोप्पे ही प्राचीन क्षेमपुरी या क्षेमपुर था। गेरुसोप्पेका दूसरा नाम भल्लातकीपुर है। यह होन्नावरसे पूर्व अठारह मील दूरपर अवस्थित है। जो भी हो शास्त्रीजी दक्षिण प्रान्तके हैं और वहाँके स्थानोंसे अत्यन्त परिचित हैं।

गद्यचिन्तामणिसे ध्वनित सामाजिक स्थिति

वैवाहिक—१. एक[1] पुरुषके अनेक विवाह होते थे।

२. [2]क्षत्रिय और वैश्यवर्णके बीच विवाह होते थे।

३. [3]शूद्रवर्णके साथ उच्चवर्णवालोंका विवाह नहीं होता था।

४. [4]अपरिपक्व अवस्थामें भी विवाह होते थे।

५. [5]पिताके द्वारा कन्याका दिया जाना तथा स्वयंवर-प्रथाके द्वारा वरका चुनाव होना''''ये विवाहकी रीतियाँ थीं। कदाचित् गन्धर्व विवाह भी होता था।

६. वरके अन्वेषणमें लोग प्रायः निमित्तज्ञानियोंकी भविष्यवाणीको ही महत्त्व देते थे।

७. विवाह अग्निकी साक्षीपूर्वक होता था, लकड़ीके खामकी आवश्यकता नहीं रहती थी।

८. [6]मामाकी लड़कीके साथ भी विवाह होता था। इस तरह विवाहमें सिर्फ़ एक सांक बचायी जाती थी।

परिधान—वस्त्र, अल्पसंख्यामें उपयुक्त होते थे। पुरुष अधोवस्त्र और उत्तरच्छद रखते थे। राजा-महाराजा आदि मुकुटका भी उपयोग करते थे। स्त्रियाँ अधोवस्त्र और उत्तरच्छदके अतिरिक्त स्तनवस्त्र भी पहनती थीं। दक्षिणके कवियोंने स्त्रियोंके अवगुण्ठन—घूँघटका वर्णन नहीं किया है और न पादकटकका। हाथमें मणियोंके वलय और कमरमें सुवर्ण अथवा मणिखचित मेखला पहनती थीं। गलेमें अधिकांश मोतियोंकी माला पहनी जाती थी। स्त्रियोंके हाथोंमें काँचकी चूड़ियोंका कोई वर्णन नहीं मिलता।

राजनयिक—राजा अपनी आवश्यकताके अनुसार ४-६ मन्त्री रखता था, उनमें एक प्रधान मन्त्री रहता था, धार्मिक कार्यके लिए एक पुरोहित या राजपण्डित भी रहता था। राज्यदरबारमें रानी-का भी स्थान रहता था। राजा अपना उत्तराधिकारी युवराजके रूपमें निश्चित करता था। खास अपराधोंके न्याय राजा स्वयं करता था।

---

१. जीवन्धरके स्वयं आठ विवाह हुए। २. जीवन्धरने क्षत्रियवर्ण होकर गुणमाला, क्षेमश्री, विमला और सुरमंजरी इन चार वैश्य कन्याओंके साथ विवाह किया। ३. जीवन्धरने नन्दगोपकी कन्या गोदावरीके साथ स्वयं विवाह न कर पद्मास्य मित्रके साथ उसका विवाह किया। क्षत्रचूडामणिमें वादीभसिंहने 'महद्योग्ये स्पृहा सताम्' इस सूक्तिसे उनकी इस क्रियाका समर्थन किया। ४. जीवन्धर कुमारका १६ वर्षकी अवस्थामें माताके साथ मिलान हुआ था पर उसके पूर्व उनके पाँच विवाह हो चुके थे। ५. जीवन्धरने गन्धर्वदत्ता और लक्ष्मणाको स्वयंवर-विधिसे प्राप्त किया था और शेषको पिता या अग्रज-के दिये जानेपर। पद्मा कन्याको जीवन्धरने पहले गन्धर्व-विवाहसे और बादमें अग्रज—लोकपालके द्वारा प्रदत्त होनेपर विवाहा था। ६. लक्ष्मणा, जीवन्धरके मामाकी लड़की थी।

युद्ध—आवश्यकता पड़नेपर युद्ध होता था और अधिकतर धनुष-बाणसे उसका काम लिया जाता था। खास अवस्थामें तलवारका भी उपयोग होता था। युद्धमें रथ, घोड़े और हाथियोंकी सवारी-का उल्लेख मिलता है। अन्य समय शिविका—पालकीका भी उपयोग होता था। इसका उपयोग अधिकांश स्त्रियाँ करती थीं।

शैक्षणिक—बालक-बालिकाएं दोनों ही शिक्षा ग्रहण करती थीं। शिक्षा गुरु-कृपापर निर्भर रहती थी। विद्यार्थी गुरुभक्त रहते थे और गुरु सांसारिक माया-ममतासे विरक्त।

यातायात—यातायातके साधन अत्यन्त सीमित थे। मार्गमें भीलों आदिके उपद्रवका डर रहता था अतः लोग सार्थ–झुण्ड बनाकर चलते थे।

धार्मिक—वैदिक धर्म और श्रमणधर्म—दोनों ही प्रचलित थे।

आभार प्रदर्शन

भारतवर्षमें भारतीय ज्ञानपीठ एक उच्चकोटिकी प्रकाशन संस्था है और अपने उच्चकोटिके प्रकाशनोंसे उसने अल्पसमयमें ही बड़ी ख्याति प्राप्त की है। यह सब उदारमना साहु शान्तिप्रसादजीकी उदारताका फल है। इसी संस्थाकी ओरसे इसका प्रकाशन हो रहा है। अतः संस्थाके सम्पादक और संचालक धन्यवादके पात्र हैं। लम्बे-लम्बे समासोंसे युक्त संस्कृत गद्य-काव्यकी—संस्कृत टीका लिखना उतना कठिन नहीं है जितना कि हिन्दी टीका। यदि समासके अनुसार अर्थ किया जाता है तो भाषाका सौन्दर्य नष्ट होता है और भाषाके सौन्दर्यकी ओर दृष्टि रखी जाती है तो ग्रन्थका हार्द प्रकट नहीं हो पाता। हिन्दी टीका लिखते समय मैं बड़े असमंजसमें पड़ा, फिर भी जैसा कुछ बन सका मैंने दोनोंको सँभालनेका प्रयत्न किया है।

आभारके प्रकरणमें मैं सर्वप्रथम टी० एस्० कुप्पु स्वामीके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने कि जीवन्धरसे सम्बद्ध संस्कृत-साहित्यको सुसम्पादित कर प्रकाशमें लानेका सर्वप्रथम उपक्रम किया था। सन् १९२५ में जब मैंने क्षत्रचूडामणि पढ़ी थी तब अबोध दशाके कारण मैं आदरणीय कुप्पु स्वामीके सम्पादन-श्रमका मूल्य नहीं आँक सका था पर आज मुझे लगता है कि उसके सम्पादनमें उन्होंने भारी श्रम किया था। आज उनकी सम्पादित क्षत्रचूडामणि उपलब्ध नहीं। क्या ही अच्छा हो कोई प्रकाशन-संस्था उसे हिन्दी अनुवादके साथ पुनः प्रकाशमें लानेकी उदारता दिखावे।

गद्यचिन्तामणिके इस संस्करणके तैयार करानेमें श्री पं० के० भुजबली शास्त्रीका महान् प्रयत्न है। चारोंकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ आपने ही जुटाकर भेजनेकी कृपा की थी तथा प्रस्तावना आदिके विषयमें उचित परामर्श हमें आपसे प्राप्त होते रहे हैं। आप सुदूरवर्ती स्थानमें रहकर भी प्रत्येक पत्रका उत्तर देते हैं और महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया करते हैं। वादीभसिंह सूरिके समय निर्धारण करनेमें श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीकी न्यायकुमुद चन्द्रोदय प्र० भा०की प्रस्तावना, और पं० दरबारीलालजी कोठिया न्यायाचार्यकी स्याद्वादसिद्धिकी प्रस्तावनासे पर्याप्त साहाय्य प्राप्त हुआ है। इसी विषयमें श्रीभुजबली शास्त्रीके जैन सिद्धान्त भास्करमें तथा स्व० आदरणीय प्रेमीजीके जैन-साहित्य और इतिहासमें प्रकाशित लेख कम सहायक नहीं हुए हैं। जीवन्धर चम्पूमें प्रकाशित आदरणीय डॉ० ए० एन० उपाध्येजी तथा डॉ० हीरालालजीकी अँगरेजी प्रस्तावनासे भी मुझे उचित दिशा प्राप्त हुई है। संस्कृत कर्णाटक और आन्ध्र भाषाके विद्वान् श्रीदेवरभट्ट तथा हमारे अनन्य स्नेही पं० अमृतलालजी जैन दर्शनाचार्य, वाराणसीने भी इसके पाठभेद संकलित कर उचित सहायता पहुँचायी है अतः मैं उक्त समस्त विद्वानोंके प्रति अपनी नम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

समय आदिके निर्धारणमें मैंने उपलब्ध सामग्रीके आधारपर मात्र अपने विचार प्रकट किये हैं आग्रह नहीं। अपनी योग्यता और साधन-सामग्रीके अनुसार मैंने इस संस्करणको संस्कृत-हिन्दी टीका, प्रस्तावना, तथा परिशिष्टोंसे लाभदायक बनानेका प्रयत्न किया है। मेरे इस साहित्यिक अनुष्ठानसे अध्येता और अध्यापकोंको अध्ययन और अध्यापनमें कुछ भी सहायता प्राप्त हुई तो मैं अपने प्रयासको सफल समझूंगा।

अन्तमें अपनी अल्पज्ञताके कारण हुई त्रुटियोंपर क्षमा-याचना करता हुआ प्रस्तावनालेख समाप्त करता हूँ।

'सूरिर्वादीभसिंहोऽसावखिलागमवारिधिः।
काव्यशास्त्ररहस्यज्ञः क्षमतां स्खलितं मम॥

वर्णीभवन, सागर
दीपमालिका
वीरनिर्वाण संवत् २४९३

विनम्र
पन्नालाल जैन

सम्पादनमें उपयुक्त ग्रन्थ तथा पत्र-पत्रिकाएँ

१. क प्रति

२. ख प्रति

३. ग प्रति

४. घ प्रति

५. म प्रति

६. अमर कोष (निर्णय सागर, बम्बई)

७. मेदिनी कोष (वाराणसीसे प्रकाशित)

८. विश्वलोचन कोष (निर्णय सागर, बम्बई, १९१२)

९. सिद्धान्त कौमुदी (निर्णय सागर, बम्बई)

१०. मूलाराधना-भगवती आराधना (सोलापुरका संस्करण)

११. सर्वार्थसिद्धि (कोल्हापुरका संस्करण, द्वितीयावृत्ति)

१२. राजवार्तिक (जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता सन् १९१५)

१३. अष्टशती-आत्म-मीमांसा (जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता सन् १९१५)

१४. न्यायकुमुद चन्द्रोदय प्रथम भागकी प्रस्तावना—पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री (माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई)

१५. स्याद्वादसिद्धि और उसकी प्रस्तावना—पं० दरबारीलालजी कोठिया (माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई)

१६. क्षत्रचूड़ामणि 'कुप्पुस्वामी' (बम्बई)

१७. क्षत्रचूडामणि उत्तरार्धं (पं० मोहनलालजी, जबलपुर)

१८. कादम्बरी, (निर्णय सागर, बम्बई)

१९. श्रीहर्षचरित (निर्णय सागर, बम्बई)

२०. रघुवंश (निर्णय सागर, बम्बई)

२१. वासवदत्ता (चौखम्भा सं० सीरिज, वाराणसी)

२२. दशकुमार चरित (निर्णय सागर, बम्बई)

२३. यशस्तिलक चम्पू (निर्णय सागर, बम्बई)

२४. अनेकान्त (वर्ष १०, किरण ४-५, वीर सेवा मन्दिर, (भाग ६, किरण ३), (भाग २ किरण ३ सरसावा)

२५. जैन सिद्धान्त भास्कर, पं० के० भुजबली शास्त्री, (जैन सिद्धान्त भवन, आरा

२६. कादम्बरी : एक अध्ययन, (वासुदेव शरण अग्रवाल, वाराणसी)

२७. अपभ्रंश महापुराण; महाकवि पुष्पदन्त (माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई)
२८. जीवन्धर चम्पू और उसकी अँगरेजी प्रस्तावना, डॉ० हीं० ला० जैन, आ० ने० उपाध्याय
२९. जैन साहित्य और इतिहास स्व० प्रेमीजी (हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई) (द्वि० संस्करण)
३०. संस्कृत साहित्यका इतिहास : डॉ० बलदेव उपाध्याय
३१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, रामनारायण लाल (इलाहाबाद)
३२. भोजप्रबन्ध : बल्लाल कवि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई (सन् १९२१)
३३. मनुस्मृति (बम्बई)
३४. जैन संदेश शोधांक १४ (मथुरा)
३५. उत्तरपुराण (भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी)
३६. वराङ्ग चरित (माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई)
३७. हरिवंशपुराण (भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी)
३८. चन्द्रप्रभचरित (निर्णयसागर, बम्बई)

उक्त साहित्य एवं उसके निर्माताओंके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

विषयानुक्रमणिका

द्वितीय लम्भ

४६–४८. विशाल विद्यामण्डपमें आर्यनन्दी गुरुने जीवन्धरको अनेक विद्याएँ प्रदान कर अल्प-कालमें ही श्रेष्ठ विद्वान् बना दिया। ८९–९३

४९–६६. एक दिन एकान्तमें आर्यनन्दी गुरुने जीवन्धरको अपना वृत्तान्त बतलाते हुए कहा कि मैं विद्याधर लोकमें लोकपाल नामका राजा था। संसारसे विरक्त हो मैंने मुनिदीक्षा धारण की परन्तु भस्मकव्याधि मुझे हो गयी। तब मुनिपद छोड़ एक अन्य साधुके वेषमें रहने लगा। गन्धोत्कटकी भोजनशालामें तुम्हारे हाथसे दिये हुए ग्रासको खाकर मैं रोग रहित हुआ और प्रत्युपकारके रूपमें तुम्हें विद्या प्रदान कर कृतकृत्य हुआ हूँ। साथ ही उन्होंने जीवन्धरको राजा सत्यन्धरका पुत्र बतलाया तथा एक वर्ष तक शान्त रहनेका उपदेश देकर राजनीतिका सुन्दर उपदेश प्रदान किया। ९४–११८

६७–६८. आर्यनन्दी गुरुने पुनः मुनिदीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया ११८–१२०

६९–७७. इसी बीचमें भीलोंके एक दलने राजपुरीके गोपालोंकी गायोंका अपहरण कर लिया। वे रोते-चीखते काष्ठांगारके पास आये। द्वारपालने काष्ठांगारको सूचना दी और काष्ठांगारने रक्षाके लिए सेनाको आदेश दिया, पर अकर्मण्य सेना भीलोंके दलसे पराजित होकर वापिस आ गयी। इस घटनासे गोपालोंमें बहुत बेचैनी बढ़ गयी। गोपालोंके प्रमुख नन्दगोपने नगरमें घोषणा करायी कि, 'मैं हमारी गायोंको वापिस ला देनेवालेके लिए सुवर्णकी सात पुतलियोंके साथ अपनी पुत्री दूँगा'। १२१–१३२

७८–८८. इस घोषणाके बावजूद भी जब कोई वीर आगे नहीं आया तब जीवन्धरने अपने मित्रोंके साथ जाकर भीलोंके दलको परास्त कर उनसे गोपालोंकी गायें वापिस छीन लीं। इससे जीवन्धरका सुयश सर्वत्र फैल गया। नन्दगोपने घोषणाके अनुसार अपनी पुत्री जीवन्धर-को देनी चाही पर उन्होंने स्वयं पुत्रीको न ले पद्मास्य मित्रको पुत्री प्रदान करायी। पद्मास्य गोविन्दाको प्राप्त कर प्रसन्न हुआ। १३३–१४४

तृतीय लम्भ

८९–९१. जब पद्मास्य गोविन्दाको प्राप्त कर प्रसन्न था और जीवन्धर कुमार अपनी शौर्यशक्ति-को बढ़ानेमें संलग्न थे तब राजपुरीका रहनेवाला श्रीदत्त वैश्य अर्थोपार्जनकी भावनासे लहराते हुए समुद्रमें जहाज द्वारा यात्रा कर रत्नद्वीप गया और वहाँसे बहुत भारी सम्पत्तिका संचय कर वापस लौटा। वह इस किनारेपर आनेवाला ही था कि समुद्रमें जोरदार तूफान उठा। जहाजके यात्री उद्विग्न हो उठे। श्रीदत्तने सबको सान्त्वना दी। अन्तमें जहाज डूब गया और श्रीदत्त एक लकड़ीके मस्तूलके सहारे तैरकर किसी द्वीपमें पहुँचा। १४५–१५०

९२–९८ संसारकी असारताका विचार करता हुआ श्रीदत्त वहाँ बैठा था कि उसकी दृष्टि एक धर नामक विद्याधरपर पड़ी। उसकी प्रेरणासे श्रीदत्त एक मायामयी ऊँटपर बैठकर आकाश-मार्गसे चला और विजयार्ध पर्वतपर जा पहुँचा। धर विद्याधरने उसे समुद्रमें तूफान उत्पन्न करनेकी माया तथा विजयार्धपर लाये जानेका प्रयोजन बतलाया। उसने कहा कि यहाँ नित्या-लोक नगरके राजा गरुड़वेगकी धारिणी नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुई गन्धर्वदत्ता नामकी पुत्री है। निमित्तज्ञानियोंने उसका विवाह सम्बन्ध राजपुरीमें वीणा वादनके द्वारा विजय प्राप्त करनेवाले किसी युवाके साथ बतलाया है, राजपुरीका श्रीदत्त वैश्य राजा गरुड़वेगका परिचित है इसलिए उसे तूफानके छलसे यहाँ लानेका उपक्रम किया गया है। राजा गरुड़वेगने श्रीदत्त वैश्यका बहुत सत्कार किया और अपनी कन्या उसे सौंपते हुए कहा कि आप वीणास्वयंवरका आयोजन कर इसका विवाह कर दें। १५०–१६१

९९–१०९. श्रीदत्त, शुभमुहूर्तमें प्रस्थान कर गन्धर्वदत्ताके साथ राजपुरी आया और वीणा स्वयंवरकी तिथि निश्चित कर राजकुमारोंके पास निमन्त्रण भेजने लगा। निमन्त्रण पाकर अनेक राजकुमार स्वयंवर मण्डपमें आये। सजधजके साथ गन्धर्वदत्ता भी स्वयंवर मण्डपमें पहुँची। उसने परिचारिकाके हाथसे वीणा लेकर बजायी तो सब राजकुमार चकित रह गये। कोई भी उसकी तुलना नहीं कर सका। जीवन्धर कुमार भी स्वयंवरमें सम्मिलित होनेके लिए घरसे निकले। १६१–१७७

११०–११४. जीवन्धरकी सुन्दरता और चाल-ढालसे सब राजकुमार प्रभावित हुए। जीवन्धरने गन्धर्वदत्ताकी वीणामें अनेक दोष बताकर उससे दूसरी निर्दोष वीणा बुलवायी और उसे बजाकर सबको चकित कर दिया। गन्धर्वदत्ताने अपनी पराजय स्वीकृत कर जीवन्धर कुमारके गलेमें वरमाला डाल दी। १७७–१८०

११५–१२० काष्ठांगारने ईर्ष्यावश उपस्थित राजकुमारोंको जीवन्धरके विरुद्ध उकसाया, फलस्वरूप युद्ध हुआ पर जीवन्धरने सबको परास्त कर दिया। जीवन्धर, गन्धर्वदत्ताके साथ गन्धोत्कट के घर पहुँचे। वहाँ उत्तम मुहूर्तमें पाणिग्रहण संस्कार हुआ और श्रीदत्त वैश्यके द्वारा प्रदत्त गन्धर्वदत्ताको प्राप्त कर कृतकृत्य हुए। १८१–१८८

चतुर्थ लम्भ

१२१–१२६. जीवन्धर, गन्धर्वदत्ताके साथ सुखानुभव करने लगे। इसी बीच वसन्तऋतु आ गयी। वनकी शोभा निराली हो गयी। वनक्रीडाके लिए नागरिक लोग अपनी-अपनी प्रेयसियोंके साथ विविध वाहनोंपर आरूढ़ होकर घरोंसे निकले। जीवन्धर कुमार भी अपने सखाओंके साथ वन-महोत्सवमें गये। वहाँ एक कुत्ताको कुछ ब्राह्मणोंने इतनी निर्दयतापूर्वक पीटा था कि वह मरणोन्मुख दशामे कराह रहा था। जीवन्धरने उसे पञ्चनमस्कार मन्त्र सुनाया। उसके प्रभावसे वह चन्द्रोदय पर्वतपर सुदर्शन यक्ष हुआ। उसने आकर जीवन्धरकुमारको अपना परिचय देते हुए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। और विपत्तिके समय स्मरण करनेकी प्रार्थना की। प्रार्थना कर यक्ष चला गया। १९८–१९७

१२७–१२८. उसी समय राजपुरीके प्रमुख सेठोंकी पुत्रियों—गुणमाला और सुरमंजरीमे अपने-अपने चूर्णोंकी उत्कृष्टताको लेकर विवाद चल पड़ा और शर्त यह हुई कि जो इसमें पराजित होगी वह नदीमें स्नान नहीं करेगी। चूर्णोंकी परीक्षाका अन्तिम निर्णय देते हुए जीवन्धरने गुणमालाके चूर्णको सर्वोत्कृष्ट बतलाया। शर्तके अनुसार सुरमंजरी स्नानके बिना वापस लौट गयी। उसे लगा कि जीवन्धरने गुणमालाका पक्ष लिया है। फलस्वरूप उसने अपने अन्तःपुरके पास पुरुषमात्रका आना बन्द कर दिया। उसकी आन्तरिक इच्छा जीवन्धरको ही वल्लभके रूपमें प्राप्त करने की थी। १९७–२०१

१२९–१४१. काष्ठांगारका उपद्रवी हाथी गुणमालाकी ओर बढ़ा आ रहा था। उसके सब साथी उसे छोड़ भाग गये थे। मात्र एक वृद्धा धाय उसके आगे खड़ी रह गयी। इस दयनीय अवस्थाको देख जीवन्धरने हाथीसे द्वन्द्व कर उसे वशमें किया और गुणमालाकी प्राणरक्षा की। इस संदर्भमें गुणमाला और जीवन्धरका परस्पर अनुराग हो गया। दोनों विप्रयोग शृङ्गारका अनुभव करने लगे। गुणमालाने जीवन्धरके पास क्रीडा शुकके द्वारा पत्र भेजा। जीवन्धरने उसका उत्तर दिया। चर्चा दोनोंके माता-पिता तक पहुँची। अन्तमें सबकी संमतिसे शुभमुहूर्तमें दोनोंका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। २०१–२१४

पंचम लम्भ

१४२–१४७. इधर गुणमालाको पाकर जीवन्धर कामकलाका अनुभव करने लगे। उधर काष्ठांगारका हाथी जीवन्धरके हाथकी करारी चोट खाकर मन-ही-मन बहुत दुःखी हो रहा था। उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया। महावतोंने इसकी शिकायत काष्ठांगारसे की। काष्ठांगारने जीवन्धरको पकड़नेके लिए योद्धा भेजे। योद्धाओंने गन्धोत्कटका घर घेर लिया, परन्तु अकेले जीवन्धरने सब योद्धाओंकी अच्छी मरम्मत की। अन्तमें गन्धोत्कट जीवन्धरको लेकर स्वयं काष्ठांगारके पास गया। काष्ठांगारने गन्धोत्कटकी क्षमा याचनाकी उपेक्षा कर दी और जीवन्धरके प्राणघात करनेका आदेश किंकरोंको दे दिया। किंकर जीवन्धरको वध्य स्थान-पर ले जाने लगे। इस घटनासे समस्त राजपुरीमें शोक छा गया। २१५–२२२

१४८–१४९. जीवन्धरने सुदर्शन यक्षका स्मरण किया और वह एक आकस्मिक रीतिसे जीवन्धरको अपहृत कर अपने निवास-स्थानपर ले गया। किंकरोंने जीवन्धरके प्राणघातका झूठा समाचार देकर काष्ठांगारको प्रसन्न किया। सुदर्शन यक्षने महोपकारी जीवन्धर कुमारका बड़ा सम्मान किया। कुछ दिन वहाँ रहकर जीवन्धर कुमारका तीर्थयात्राके उद्देश्यसे चल पड़े। यक्ष उन्हें मार्ग बतलाकर अटवीके बीहड़ पथसे बाहर कर गया। २२२–२२६

१५०–१५२. आगे चलकर जीवन्धरने घनघोर जंगलमें दावानलसे घिरे हुए हाथियोंके झुण्डको देख उनकी रक्षाके अर्थ सुदर्शनयक्षका स्मरण किया। स्मरण करते ही यक्षने मेघोंसे जलवर्षा कर हाथियोंकी प्राणरक्षा कर दी। अब जीवन्धर एक पर्वतपर स्थित जिनमन्दिरकी वन्दना कर तथा वहाँ रहनेवाली यक्षीके द्वारा भोजनवस्त्र प्राप्तकर पल्लव देश पहुँचे। २२७–२३३

१५३–१५७. जब जीवन्धर पल्लव देशके चन्द्राभनगरमें पहुँचे तब वहाँके लोगोंको शोकनिमग्न देख जीवन्धरने शोकका कारण पूछा। लोगोंने बतलाया कि यहाँके राजा लोकपालकी एक पद्मा नामकी छोटी बहिन है उसे साँपने काटा है। प्रयत्न करनेपर भी विषका प्रभाव कम नहीं हो रहा है। राजाने घोषणा की है कि जो पद्माको अच्छा करेगा उसे आधे राज्यके साथ पद्मा दी जायेगी। लोगोंकी प्रार्थना तथा दीनतासे द्रवीभूत हो जीवन्धर राजभवनमें गये और सुदर्शन यक्षके द्वारा प्रदत्त विषापहारी मन्त्रके द्वारा उन्होंने पद्माको तत्काल निर्विष कर दिया। पद्माने उठकर पास बैठे हुए सब लोगोंको पहचान लिया। लोकपालने जीवन्धरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। परस्परके स्पर्श तथा अवलोकनसे जीवन्धर और पद्माके हृदयमें कामबाधाका संचार हुआ। लोकपालने मन्त्रियोंके साथ कन्याके विवाहकी मन्त्रणा की। २३३–२३९

१५८–१६०. मन्त्रियोंने लोकपालके इस प्रस्तावका कि 'चूँकि जीवन्धरने कन्याको निर्विष किया है तथा इसके शरीरका स्पर्श किया है इसलिए यह कन्या इनके लिए ही दी जाये' समर्थन किया। अन्तमें बड़े समारोहके साथ दोनोंका पाणिग्रहण संस्कार हो गया। २३९–२४२

षष्ठ लम्भ

१६१–१६६. नववधू पद्माके साथ ग्रीष्मऋतुके दिनोंको सुखसे व्यतीत करते हुए जीवन्धर कुछ दिन लोकपालके राजभवनमें रहे। तदनन्तर बिना कुछ कहे ही अन्तःपुरसे रात्रिके समय बाहर निकल पड़े। पतिके विरहमें पद्मा चीख उठी। उसकी चीख सुन परिवारके लोग एकत्रित हो गये। सबने सान्त्वना दी। लोकपालने जीवन्धरकी खोजके लिए आदमी दौड़ाये पर कोई उन्हें प्राप्त न कर सका। २४३–२५३

१६७–१७२. चलते-चलते जीवन्धर तापसोंके तपोवनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने उन्हें हिंसामय तपसे विरक्त होनेका उपदेश दिया। तापसोंने उनका उपदेश सुन जैनधर्म स्वीकृत किया। उन्होंने यहीं रात्रि व्यतीत की। तदनन्तर अनेक सघन वनोंको देखते हुए वे एक मन्दिरमें पहुँचे। उनके पहुँचते ही मन्दिरके किवाड़ स्वयं खुल गये। भक्तिविभोर होकर जीवन्धरने जिनेन्द्रदेवकी स्तुति की। २५३–२५९

१७३–१७८. ज्यों ही वे पूजन कर बाहर आये त्यों ही एक मनुष्य उनके चरणोंमें आ पड़ा। पूछनेपर उसने अपना परिचय दिया कि यहाँसे समीप ही क्षेमपुरीमें नरपतिदेव राजा रहते हैं। उनके राजश्रेष्ठीका नाम सुभद्र है। सुभद्रके क्षेमश्री नामकी पुत्री है। निमित्तज्ञानियोंने बतलाया था कि जिसके आनेपर मन्दिरके किवाड़ स्वयं खुल जावें वही इसका पति होगा। उसीकी खोजमें मैं यहाँ रहता हूँ। मेरा नाम गुणभद्र है। अब मैं राज्यश्रेष्ठीको खबर देनेके लिए जाता हूँ। गुणभद्र-द्वारा जीवन्धरके आनेका समाचार सुनकर राज्यश्रेष्ठी सुभद्र सपरिवार मन्दिरमें आया और जीवन्धरसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा बड़े वैभवके साथ उन्हें अपने घर ले गया। वहाँ सुभद्रने अपनी पुत्री क्षेमश्रीका जीवन्धरके साथ पाणिग्रहण कराया। २५९–२६९

सप्तम लम्भ

१६९–१८४. जीवन्धरकुमार क्षेमश्रीके साथ सुखोपभोगमें निमग्न हो गये। धीरे-धीरे पावस ऋतु आ गयी। आकाशमें घनघटा छा गयी। जीवन्धरका अनुराग क्षेमश्रीके प्रति और भी अधिक बढ़ गया। एक दिन जीवन्धर रात्रिके तृतीय प्रहरमें क्षेमश्रीको छोड़ अचानक बाहर निकल पड़े। उनके विरहमें क्षेमश्री बहुत दुःखी हुई, परन्तु अन्तमें माता-पिताके आश्वासनसे जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण-कमलोंका हृदयमें ध्यान करती हुई रहने लगी। २७०–२७७

१८५–१९०. जीवन्धर कुमार एक हरे-भरे वनमें पहुँचे। चहकते हुए पक्षियोंकी बोली-द्वारा वह वन मानो इनका स्वागत ही कर रहा था। वहाँ एक किसान मिला। उसे उन्होंने गृहस्थ धर्मका उपदेश देकर अपने सब आभूषण दानमें दे दिये। आगे चलकर एक विद्याधरी मिली जो कि जीवन्धरकी सौन्दर्यसुधाका पान कर उनपर मोहित हो गयी थी। उससे बचकर तथा उसके असली पतिको हितका उपदेश देकर जीवन्धर आगे बढ़े। २७७–२८५

१९१–१९५ तदनन्तर हेमाभपुरी नगरीके निकट पहुँचे। वहाँ एक राजपुत्रको उन्होंने देखा कि वह बाणोंके द्वारा एक आम्रफलको तोड़ना चाहता है पर तोड़ नहीं पा रहा है। जीवन्धरने उसके हाथसे धनुष-बाण लेकर अनायास ही आम्रफल तोड़ दिया। राजपुत्र इनके कौशलसे बहुत प्रभावित हुआ और किसी तरह प्रार्थना कर अपने घर ले गया। वहाँ राजपुत्रके पिता दृढ़मित्रने जीवन्धर कुमारको बड़ी विनयके साथ रखा तथा उनसे अपने पुत्रोंको बाण विद्याकी शिक्षा दिलायी। राजा दृढ़मित्र जीवन्धरसे इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने अपनी पुत्री कनकमालाका इनके साथ विवाह कर दिया। २८५–२९२

अष्टम लम्भ

१९६–२०१. जीवन्धर वहाँ सुखसे रह रहे थे। नन्दाढ्य भी वहीं जा पहुँचा। नन्दाढ्यके द्वारा जीवन्धरके वंश वैभवको जानकर राजा दृढ़मित्रके यहाँ बड़ी प्रसन्नता हुई। जीवन्धरके पूछनेपर नन्दाढ्यने बताया कि मैं गन्धर्वदत्ताकी मन्त्रशय्यापर शयन कर यहाँ आया हूँ। नन्दाढ्यके साथ गन्धर्वदत्ताने एक पत्र भी भेजा था, जिसमें गुणमालाकी विरह दशाके व्याजसे अपनी विरह दशाका वर्णन किया था। उस पत्रको पढ़कर उन्होंने अपने घर वापिस आनेका निश्चय किया। २९३–३०१

२०२–२०९. इसी बीच जीवन्धरके मित्र पद्मास्य वगैरह गायोंके अपहरणका व्याज करते हुए वहाँ आ पहुँचे। सब मित्रोंसे मिलकर जीवन्धरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन मित्रोंसे उन्हें यह भी मालूम हुआ कि मेरी माता विजया दण्डक वनके तपोवनमें विद्यमान है। माताका समाचार पाकर जीवन्धरका हृदय मातृ-दर्शनके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठा और वे सब मित्रोंके साथ चलकर माता विजयाके पास जा पहुँचे। चिर विमुक्त माता पुत्रके मिलनने तपोवनका वातावरण आनन्दमय कर दिया। तदनन्तर माताको अपने मामाके घर भेजकर जीवन्धर राजपुरीकी ओर चल पड़े। ३०१–३१२

२१०–२१३. तदनन्तर राजपुरीमें एक सेठके घरके सामने निकलते समय उन्होने मकानकी छत से किसी कन्याके हाथसे नीचे पड़ती हुई गेंद देखी। गेंदको देखकर ज्योंही उनकी दृष्टि उस कन्यापर पड़ी त्योंही उसके प्रति उनका अनुराग बढ़ गया। वे वहीं रुक गये। उनके पुण्य प्रभावसे कन्याके पिता सागरदत्त सेठके वह रत्न जो बहुत समयसे पड़े थे बिक गये। सेठ सागरदत्त उन्हें बड़े सम्मानके साथ भीतर ले गया और कहने लगा कि मेरी कन्या विमला है। निमित्त-ज्ञानियोंने कहा था कि जिसके आनेपर तुम्हारे रत्न बिक जायेंगे वही इसका पति होगा। आपके भवनके निकट आते ही मेरे सब रत्न बिक गये। इसलिए आप इस कन्याको स्वीकृत कीजिए। सागरदत्त सेठकी प्रार्थना स्वीकृत कर उन्होंने विमलाके साथ पाणिग्रहण किया। ३१३–३१७

नवम लम्भ

२१४–२२४. विमलाके साथ रात्रि व्यतीत कर जब जीवन्धर अपने मित्रोंके पास पहुँचे तब सब मित्र इनके सौभाग्यकी प्रशंसा करने लगे। परन्तु एक बुद्धिषेण मित्रने व्यंग्य कसते हुए कहा कि जिन्हें कोई नहीं पूछता था ऐसी लड़कियोंके विवाह लेनेमें क्या सौभाग्यकी बात है। यदि ये सुरमंजरीको विवाह लें तो इन्हें सौभाग्यशाली समझा जाये। जीवन्धरको बुद्धिषेणकी बात लग गयी और वे एक वृद्धका रूप बनाकर सुरमंजरीके घर पहुँचे। प्रतिहारियोंके रोकने पर भी ये भवनके भीतर घुस गये। प्रतिहारियोंने सुरमंजरीके पास इसकी खबर भेजी। सुरमंजरीने वृद्धवेषी जीवन्धरको प्रेमसे भोजन कराया। भोजनके बाद वह वहीं सो गये। मध्यरात्रिके समय इन्होंने मधुर संगीत छेड़ा। इनके संगीतसे प्रभावित होकर सुरमंजरीने पूछा कि जिस तरह आपका संगीतपर अद्भुत अधिकार है इसी तरह अन्य कार्योंपर भी होगा? उन्होंने कहा कि है। तब सकुचाती हुई उसने कहा कि जीवन्धरके साथ मेरा सम्बन्ध होना क्या शक्य है? जीवन्धरने उत्तर दिया कि यदि मेरी बात माननेमें तत्पर होओ तो अवश्य शक्य है और बात यह है कि समस्त वरदानोंके देनेमें दक्ष कामदेवका मन्दिर है। वहाँ आप चलें। वहाँ तुम्हारा सब मनोरथ पूर्ण होगा। जीवन्धरकी बात सुनकर सुरमंजरी कामदेवके मन्दिरमें जानेके लिए तत्पर हो गयी। ३१८–३३३

२२५–२२८. वृद्धवेषी जीवन्धरके साथ सुरमंजरी कामदेवके मन्दिरमें पहुँची और कामदेवकी प्रतिमाके समक्ष विनीतभावसे प्रार्थना करने लगी कि मुझे जीवन्धरकी प्राप्ति हो। वहाँ पहलेसे ही छिपे हुए एक मित्रने आकाशवाणीके रूपमें प्रकट किया कि तुम्हें 'तुम्हारे इष्ट वरकी प्राप्ति हो चुकी' इसी समय वृद्धवेषी जीवन्धर अपना वृद्धवेष छोड़ असली वेषमें प्रकट हो गये। सुरमंजरी जीवन्धरको सामने खड़ा देख सहम गयी। अन्तमें सुरमंजरीके साथ जीवन्धरका विवाह उल्लासपूर्वक हुआ। सुरमंजरीका पिता कुबेरदत्त सेठ भी अपनी पुत्रीके इस सम्बन्धसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ। ३३३–३३६

दशम लम्भ

२२९–२३२. तदनन्तर जीवन्धर सुमतिकी पुत्री सुरमंजरीको सुखोपभोगसे सन्तुष्ट कर अपने मित्रोंसे प्रशंसित होते हुए गन्धोत्कट और सुनन्दासे मिले। गन्धर्वदत्ता और गुणमालाको प्रसन्न

किया। राजपुरीमें कुछ दिन रहनेके बाद जीवन्धरने अपने मामा गोविन्दराजके पास जानेका विचार किया और गन्धोत्कटसे आज्ञा लेकर विदेह देशकी ओर प्रस्थान कर दिया। गोविन्द-राजने अपने भानजेका आगमन सुन बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और बड़े वैभवके साथ उनका धरणीतिलक नामक राजधानीमें प्रवेश कराया। ३३७–३४३

२३३–२४० धरणीतिलक राजधानीके लोगोंने जीवन्धरके प्रति बहुत भारी अनुराग प्रकट किया। इसी बीच गोविन्द महाराजके पास काष्ठांगारका पत्र आया कि सत्यन्धरके मरणके विषयमें राजपुरीकी जनता मुझे व्यर्थ ही कलंकित करती है। एक उन्मत्त हाथीके द्वारा यह कुकृत्य हुआ था। आप हमारे मित्र हैं अतः राजपुरी आकर हमारे इस कलंकका परिमार्जन करें। इस पत्रका गोविन्द महाराजकी सभामें वाचन हुआ और राजपुरीके पहुँचनेका यह अतर्कित निमन्त्रण स्वीकृत कर लिया गया। गोविन्द महाराज अपने भानजे जीवन्धरको साथ ले युद्धकी पूरी तैयारीके साथ हेमांगद देशकी ओर चल पड़े। ३४३–३५३

२४१–२४५. काष्ठांगारने बड़े सम्मानके साथ गोविन्द-महाराजकी अगवानी की। वहाँ जाकर गोविन्द महाराजने अपनी पुत्री लक्ष्मणाके स्वयंवर करनेका विचार किया और इस स्वयंवरके व्याजसे देश-देशके राजाओंको बुलाकर राजपुरीमें एकत्रित कर लिया। स्वयंवरमें कन्या प्राप्तिकी शर्त चन्द्रक यन्त्रसे नियन्त्रित वराहोंके तीन पुतलोंको बाणसे एक साथ वेध देना था। साढ़े छह दिन तक स्वयंवर मण्डपमें राजकुमारोंके उद्योग चलते रहे पर कोई भी इस शर्तको पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हो सका। अन्तमें जीवन्धर कुमारने शर्तके अनुसार एक ही बाणके द्वारा वराहोंके तीनों पुतलोंको वेधकर नीचे गिरा दिया। ३५३–३६३

२४६–२४९. इस कार्यसे जीवन्धर कुमारका शौर्य वृद्धिगत हो गया। इसी अवसरपर गोविन्द महाराजने सब राजाओंके सामने प्रकट किया कि यह जीवन्धर राजा सत्यन्धरका पुत्र है। काष्ठांगारने राजद्रोह कर छलसे इनका घात किया था। गोविन्दराजकी इस घोषणाको सुन-कर काष्ठांगारको लेनेके देने पड़ गये। सब राजाओंने जीवन्धरके प्रति बड़ा सम्मान प्रकट किया और पद्मास्य आदि जीवन्धरके मित्रोंने काष्ठाङ्गारसे राज्य परित्यागका आग्रह किया। राज्य परित्याग न कर वह युद्धके लिए तैयार हो गया। निकृष्ट राजा काष्ठांगारकी ओर और विशिष्ट राजा जीवन्धरकी ओर हो गये। तदनन्तर भयंकर युद्ध हुआ और उसमें जीवन्धरने काष्ठांगारको मार डाला। जीवन्धरकी विजय पताका फहरा उठी। उन्होंने गोविन्द महा-राज तथा अन्य राजाओंको प्रसन्न किया। ३६३–३७२

२५०–२५८. तदनन्तर जीवन्धरने बड़े वैभवके साथ राजपुरीमें प्रवेश किया। सर्व प्रथम जिनालय-में जाकर भगवान् जिनेन्द्रके दर्शन किये। उनका महाभिषेक कराया। याचकोंको मनचाहा दान दिया। उसी समय सुदर्शन यक्षने आकर जीवन्धर कुमारको सिंहासनारूढ कर उनका राज्याभिषेक कराया। तत्पश्चात् जयलक्ष्मी नामक हस्तिनीपर सवार हो राजमार्गसे नगरीमें परिभ्रमण कर उन्होंने राजभवनमें प्रवेश किया। जीवन्धरके दर्शनके लिए नगरीकी समस्त स्त्रियाँ उमड़ पड़ीं। उन्होंने काष्ठांगारके अन्तःपुरके लोगोंकी रक्षा की जाये, उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न दिया जाये यह घोषणा की तथा अन्य कैदियोंको बन्धनसे मुक्त कराया। गन्धोत्कटको राजश्रेष्ठी-का पद दिया, नन्दाढ्यको युवराज बनाया और पद्मास्य आदिको महामन्त्री आदिके पद दिये तथा बारह वर्ष तकके लिए लगान माफ कर दिया। ३७२–३८३

२५९–२६३. प्रजामें सुमंगलकी घोषणा की गयी। लक्ष्मणाके विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। माता विजयाका हृदय अपार आनन्दमें निमग्न हो रहा था। वह बड़ी लगनके साथ विवाहकी

तैयारियाँ करा रही थी। शुभ मुहूर्तमें जीवन्धरने लक्ष्मणाका वरण किया। लक्ष्मणाकी माताका नाम नवुलि था। ३८३-३९४

एकादश लम्भ

२६४-२६८. राजा जीवन्धर निष्कण्टक राज्यका उपभोग करने लगे। सब देवियोंको बुलाकर उन्होंने प्रसन्न किया। तदनन्तर विजया महादेवी और सुनन्दाने आर्यिकाकी दीक्षा ले ली इसलिए सबको इष्टवियोगका दुःख हुआ परन्तु धीरे-धीरे संसारका प्रवाह अपनी धारासे चलने लगा। ३९५-४०१

२६९-२७४. किसी समय जीवन्धर क्रीडासरसीमें जलक्रीडाके लिए गये। स्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा करनेके बाद उन्होंने वानरोंकी लीला देखी। एक वानरी वानरसे रुष्ट हो गयी तब वानर यह कहकर अचेत पड़ गया कि यदि तुम मुझे नहीं चाहती हो तो मैं मरता हूँ। वानरी उसे सचमुच मृत समझ उसका आलिंगन करने लगी। प्रणयकोप समाप्त होनेके उपलक्ष्यमें वानरने एक पनसफल तोड़कर वानरीके लिए दिया, किन्तु वनपालने आकर वानरीसे वह पनसफल छीन लिया। इस घटनासे जीवन्धरको वैराग्य आ गया। उन्होंने समझा कि जिस प्रकार इस वनपालने वानरीसे पनसफल छीन लिया है उसी प्रकार मैंने काष्ठांगारसे राज्य छीन लिया है। विषय-भोगोंसे उनका चित्त विरक्त हो गया। उन्होंने मुनिराजके मुखसे धर्मोपदेश श्रवण करनेकी भावना प्रकट की तथा कर्मचारियोंको जिनपूजाकी सामग्री तैयार करनेका आदेश दिया। ४०१-४०८

२७५-२८२. मन्दिरमें जाकर उन्होंने गद्‌गदवाणीसे भगवान्‌का स्तवन कर पूजा की तथा दो मुनिराजोंके दर्शन कर उनसे धर्मोपदेशकी प्रार्थना की। प्रधान मुनिराजने चतुर्गति रूप संसारके दुःखोंका वर्णन करते हुए उससे छूटनेका उपाय बतलाया। इसी संदर्भमें जीवन्धर महाराजने मुनिराजसे अपने पूर्वभव पूछे। ४०८-४२०

२८३-२८६. मुनिराजने कहा कि तुम पूर्वभवमें धातकीखण्ड द्वीपके भूमितिलक नगरके राजा पवनवेगके यशोधर नामक पुत्र थे। तुमने अज्ञानवश हंसके एक बच्चेको पकड़वाकर उसे माता-पितासे वियुक्त किया था। पीछे पिताके कहनेसे तुमने उसे छोड़कर माताके पास भेज दिया था। इसी पापके कारण तुम्हें प्रारम्भसे ही माता-पिताका वियोग सहन करना पड़ा है। मुनिराजके मुखारविन्दसे अपने पूर्वभव तथा धर्मोपदेश सुनकर जीवन्धरका वैराग्य प्रवाह और भी तीव्रवेगसे बहने लगा। उन्होंने गन्धर्वदत्ताके पुत्र सत्यन्धरको राज्य दिया तथा सब स्त्रियोंको संसारकी स्थितिसे परिचित कराया। इससे सब स्त्रियाँ भी दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हो गयीं। अन्तमें नन्दाढ्य और अपनी सब स्त्रियोंके साथ उन्होंने भगवान् महावीर स्वामीके समवसरणकी ओर प्रयाण किया। ४२०-४२७

२८७-२९७. समवसरणमें पहुँचकर उन्होंने भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति की तथा दीक्षाकी प्रार्थना की। तदनन्तर दीक्षा धारण कर उन्होंने परमसंयम स्वीकृत किया। उसी समय सुदर्शन यक्षने आकर इनकी स्तुति की। अन्तमें कठिन तपश्चर्या कर इन्होंने निर्वाण प्राप्त किया और देवियोंने यथा योग्य स्वर्गपद प्राप्त किया। ४२७-४३७

परिशिष्ट

वादीभसिंहसूरि-विरचितः

गद्यचिन्तामणिः

[संस्कृतटीकया हिन्दी-अनुवादेन च सहितः]

[प्रथमो लम्भः]

श्रियः पतिः पुष्यतु वः समीहितं त्रिलोकरक्षानिरतो जिनेश्वरः ।
यदीयपादाम्बुजभक्तिशीकरः सुरासुराधीशपदाय जायते ॥१॥
प्रणम्रगीर्वाणकिरीटभानुभिः प्रफुल्लपादाम्बुरुहान् गणेश्वरान् ।
प्रणौमि येषां स्तुतिरेव भारती कवित्वशक्त्यै भुवि कल्पते नृणाम् ॥२॥

[संस्कृत-टीका]

श्रेयः श्रियं दिशतु मे वीरो विज्ञानभासितस्वात्मा । रागद्वेषविमुक्तो निखिलजनानन्दहितदेष्टा ॥१॥
शेषा अपि तीर्थकराः संसारध्वान्तनाशने रवयः । तिमिरं हरन्तु सद्यो मन्मानसमन्दिरावसथम् ॥२॥
स्यात्पदभ्राजिता जीयाज्जैनी वाणी सुखावनिः । तत्त्वोपदेशनिष्णाता सर्वकल्याणकारिणी ॥३॥
गुरवः कुन्दकुन्दाद्या रत्नत्रयविभूषिताः । दर्शयन्तु सदा पथ्यं पन्थानं मां शिवश्रियाः ॥४॥
गद्यचिन्तामणिरयं सत्यं चिन्तामणीयते । जीवकोदन्तविभ्राजी काव्यपीयूषपायिनाम् ॥५॥

वादीभसिंहो जितवादिसिंहो जीयादसौ वादकलाप्रवीणः ।
निर्माय यो श्लोकमिमं महान्तं ग्रन्थं बुधश्लाघ्यतमो बभूव ॥६॥

गद्यचिन्तामणिमहं विवृणोमि समासतः । वादीभसिंहसूर्यात्मा साहाय्यं विदधातु मे ॥७॥

अथानवद्यगद्यपद्यरचनानुपमचातुरीचमत्कृताखिलसूरिः श्रीवादीभसिंहसूरिः प्रारिप्सितग्रन्थनिर्विघ्नसमाप्त्यर्थं स्वेष्टदेवतामभिष्टोतुमाह—श्रियः पतिरिति—श्रियः अनन्तचतुष्करूपाया अन्तरङ्गाया अष्टप्रातिहार्यरूपायाश्च बहिरङ्गाया लक्ष्म्याः पतिः, त्रिलोकरक्षायां निरतस्तत्परः स जिनेश्वरोऽर्हत्परमात्मा, वो युष्माकं समीहितं मनोरथं पुष्यतु यदीयपादाम्बुजयोर्भक्त्याः शीकरः कणः सुरासुराधीशपदाय देवदानवेन्द्रपदप्राप्तये (तादर्थ्ये चतुर्थी) जायते ॥१॥ प्रणम्रेति—प्रणम्रगीर्वाणानां नतामराणां किरीटभानुभिर्मुकुटमरीचिभिः प्रफुल्ले पादाम्बुरुहे येषां तान् विकसितचरणारविन्दान् गणेश्वरान् वृषभसेनादिगणधरान् प्रणौमि प्रकर्षेण स्तौमि येषां गणधराणां स्तुतिरेव भारती स्तुत्यात्मिका वाणी भुवि पृथिव्यां नृणां लोकानां कवित्वशक्त्यै कवितानिर्माणशक्त्यै कल्पते जायते ॥२॥

[हिन्दी अनुवाद]

महावीरपदद्वन्द्वं वन्दित्वा पद्मसंनिभम् । गद्यचिन्तामणिग्रन्थं सटीकं विदधाम्यहम् ॥

जो अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरंग लक्ष्मी और अष्टप्रातिहार्य रूप बहिरंग लक्ष्मीके स्वामी हैं, तीनों लोकोंकी रक्षामें तत्पर हैं और जिनके चरणकमलोंकी भक्तिका एक कण सुरेन्द्र एवं असुरेन्द्रका पद प्रदान करनेवाला है, वे जिनेन्द्र देव तुम सबके मनोरथको पुष्ट करें ॥ १ ॥ नम्रीभूत देवोंके मुकुटरूपी सूर्योंसे जिनके चरणकमल विकसित हो रहे थे एवं जिनकी स्तुतिरूपी वाणी पृथिवीपर मनुष्योंके लिए कवित्व-शक्ति प्रदान करती है उन गण-

अतिस्थिरं स्वस्य पदं मनोगृहे स धर्मचिन्तामणिरातनोतु मे ।
यदाश्रिताः शाश्वतसंपदं बुधाः श्रयन्ति भव्या गतसंसृतिश्रमाः ॥३॥
अशेषभाषामयदेहधारिणी जिनस्य वक्त्राम्बुरुहाद् विनिर्गता ।
सरस्वती मे कुरुतादनश्वरीं जिनश्रियं स्यात्पदलाञ्छनाञ्चिता ॥४॥
सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः समन्तभद्रप्रमुखा मुनीश्वराः ।
जयन्तु वाग्वज्रनिपातपाटितप्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः ॥५॥
श्रीपुष्पसेनमुनिनाथ इति प्रतीतो दिव्यो मनुर्मम सदा हृदि संनिदध्यात् ।
यच्छक्तितः प्रकृतिमूढमतिर्जनोऽपि वादीभसिंहमुनिपुङ्गवतामुपैति ॥६॥

अतिस्थिरमिति—स प्रसिद्धो धर्मचिन्तामणिर्मे मनोगृहे स्वस्यातिस्थिरं दृढतमं पदं स्थानं 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः, आतनोतु करोतु यदाश्रिता यद्धर्मचिन्तामणिशरणं प्राप्ता बुधा विवेकिनो भव्या भव्यप्राणिनो गतो विनष्टः संसृतिश्रमश्चतुर्गतिभ्रमणक्लेशो येषां ते तथाभूताः सन्तः शाश्वतसंपदं स्थायिसंपत्तिं मुक्तिमित्यर्थः श्रयन्ति प्राप्नुवन्ति ॥३॥ अशेषेति—अशेषभाषामयदेहधारिणी निखिलभाषारूपपरिणमनस्वभावा, जिनस्यार्हतो वक्त्राम्बुरुहान्मुखकमलाद् विनिर्गता विनिःसृता प्रकटीभूता स्यात्पदलाञ्छनेन कथंचिदर्थकस्यात्पदचिह्नेनाञ्चिता शोभिता स्याद्वादरूपेत्यर्थः सरस्वती वाणी दिव्यध्वनिरिति यावत् मे मम अनश्वरीमविनाशिनीं जिनश्रियं पारमैश्वर्यविभूतिं कुरुतात् ॥४॥ एवं देवगुरुधर्मशास्त्रस्तवनानन्तरं वर्तमानसूरीन् स्तोतुमाह—सरस्वतीति—सरस्वत्या वाण्याः स्वैरविहारभूमयः स्वच्छन्दविहारावनयो विविधवाणीविज्ञा इति यावत् । वागेव वज्रमिति वाग्वज्रं वचनदम्भोलिस्तस्य निपातेन पाटिता विदारिता प्रतीपराद्धान्तमहीध्राणां विरुद्धसिद्धान्तपर्वतानां कोटयो यैस्ते तथाभूताः । समन्तभद्रः प्रमुखो येषां ते तथाभूता मुनीश्वरा यतीन्द्रा जयन्तु जयवन्तो भवन्तु । उत्कर्षेण वर्तन्तामिति यावत् ॥५॥ अथ स्वगुरुं स्तोतुमाह—श्रीपुष्पसेनेति—श्रीपुष्पसेनश्चासौ मुनिनाथश्चेति श्रीपुष्पसेनमुनिनाथः । इतीत्थं पूर्वोक्तनाम्ना प्रतीतः प्रसिद्धो दिव्योऽलौकिको मनुर्मम ग्रन्थकर्तुः हृदि हृदये 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः, सदा संनिदध्यात् संनिहितो भूयात् । यच्छक्तितो यस्य सामर्थ्यात् प्रकृत्या मूढमतिरिति प्रकृतिमूढमतिः निसर्गमूर्खोऽपि जनः । वादिन एवेभा वादीभास्तेषां सिंह इति वादीभसिंहः स चासौ मुनिपुङ्गवश्चेति वादीभसिंहमुनिपुङ्गवस्तस्य भावस्तां वादिगजविदारणकण्ठीरवसदृशश्रेष्ठमुनिताम् । उपैति प्राप्नोति । यत्प्रभावेण स्वभावदुर्बुद्धिरप्यहमोदयदेवो महाविद्वानभूवं स पुष्पसेननामा गुरुः सदा मम हृदये वर्ततामिति भावः ॥ ६ ॥

धरोंकी मैं बार-बार स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥ वह धर्मरूपी चिन्तामणि मेरे मन-मन्दिरमें अपना अत्यन्त स्थिर पद स्थापित करे जिसकी शरणमें पहुँचे हुए विवेकी भव्यजीव संसार-भ्रमणका श्रम दूर कर शाश्वतपद-निर्वाण धामको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ जो समस्त भाषारूप शरीरको धारण करनेवाली है, जिनेन्द्र भगवान्‌के मुखकमलसे निकली है और 'स्यात्' पदरूप चिह्नसे सुशोभित है वह सरस्वती–जिनवाणी मेरे लिए जिनलक्ष्मी–वीतराग विज्ञानरूपी लक्ष्मी प्रदान करे ॥ ४ ॥ जो सरस्वतीके स्वच्छन्द विहार करनेकी भूमि हैं और जिनके वचनरूपी वज्रके गिरनेसे विरुद्ध सिद्धान्तरूपी पर्वतोंके शिखर चूर-चूर हो गये हैं वे समन्तभद्र आदि मुनिराज जयवन्त हों ॥ ५ ॥ स्वभावसे मन्दबुद्धि मनुष्य भी, जिनकी शक्तिसे वादीरूपी हाथियोंको नष्ट करनेके लिए सिंहकी समानता रखनेवाले मुनियोंमें श्रेष्ठताको प्राप्त हो जाता है (पक्षमें जिनकी सामर्थ्यसे मुझ-जैसा मन्द बुद्धि मनुष्य भी 'वादीभसिंह' पदका धारक श्रेष्ठ मुनि बन गया) वे श्री पुष्पसेन मुनीन्द्र नामसे प्रसिद्ध दिव्य मनु

स्नेहप्रयोगमनपेक्ष्य दशां च पात्रं धुन्वंस्तमांसि सुजनापररत्नदीपः ।
मार्गप्रकाशनकृते यदि नाभविष्यत्सन्मार्गगामि जनता खलु नाभविष्यत् ॥७॥
त्यक्तानुवर्तनतिरस्करणौ प्रजानां श्रेयः परं च कुरुतोऽमृतकालकूटौ ।
तद्वत्सदन्यमनुजावपि हि प्रकृत्या तस्मादपेक्ष्य किमुपेक्ष्य किमन्यमेति ॥८॥

अथ सुजनं स्तोतुमाह—स्नेहप्रयोगमिति—स्नेहप्रयोगं प्रीतिप्रयोगं पक्षे तैलप्रयोगम् । दशामवस्थां पक्षे वर्तिकाम् । पात्रं शिष्यं पक्षे भाजनम् । अनपेक्ष्यापेक्षितमकृत्वा तमांसि अज्ञानानि पक्षे तिमिराणि धुन्वन् नाशयन् सुजन एवापररत्नदीप इति सुजनापररत्नदीपः सज्जनापरमणिमयदीपः । मार्गप्रकाशनकृते चिरन्तनकविमार्गप्रदर्शनाय यदि नाभविष्यत्तर्हि खलु निश्चयेन सन्मार्गगामिनी चासौ जनता चेति सन्मार्गगामिजनता निर्दोषमार्गगमनशीलो जनसमूहो नाभविष्यत् । हेतुहेतुमद्भावे लृङ् । यथा किल मणिमयो दीपस्तैलप्रयोगं वर्तिकां पात्रं चानपेक्ष्य स्वकीयप्रभाभारेण तिमिरं नाशयति तथा सुजनोऽपि स्नेहप्रयोगादिकमनपेक्ष्य सर्वेषामज्ञानतिमिरं नाशयतीति भावः ॥७॥ अथ सज्जनेन सह दुर्जनस्यापि निसर्गं वर्णयितुमाह—त्यक्तेति—अनुवर्तनं च तिरस्करणं चेत्यनुवर्तनतिरस्करणे त्यक्ते अनुवर्तनतिरस्करणे ययोस्तौ त्यक्तानुवर्तनतिरस्करणौ दूरीकृतसमादरतिरस्कारौ । अमृतश्च कालकूटश्चेत्यमृतकालकूटौ पीयूषगरलौ प्रजानां जनानाम् । श्रेयः कल्याणं परम् अकल्याणं च कुरुतो विधत्तः । यद्वदिति शेषः । तद्वत् संश्च अन्यश्चेति सदन्यौ, तौ च तौ मनुजौ चेति सदन्यमनुजौ, सज्जनदुर्जनावपि त्यक्तानुवर्तनतिरस्करणौ सन्तौ प्रकृत्या स्वभावेन श्रेयोऽश्रेयश्च कुरुतः । तस्मात् किम् अपेक्ष्य, किम् उपेक्ष्य, अन्यं जनम् । एति प्राप्नोति जन इति शेषः । यथा किलामृतं त्यक्तानुवर्तनमपि लोकानां कल्याणमाकलयति कालकूटश्च त्यक्ततिरस्करणोऽप्यकल्याणमाकलयति तथा सज्जनोऽपि त्यक्तानुवर्तनोऽपि जनानां हितमुत्पादयति दुर्जनश्च त्यक्ततिरस्करणोऽप्यहितमुत्पादयति । अत एव दुर्जनमुपेक्ष्य सज्जनस्यापेक्षणं व्यर्थमस्तीति भावः ॥ ८ ॥

सदा मेरे हृदयमें विद्यमान रहें ॥ ६ ॥ जो स्नेह प्रयोग-प्रीतिका प्रकृष्ट संयोग (पक्षमें तेलका संयोग) दशा-अवस्था (पक्षमें बत्ती) और पात्र-व्यक्ति (पक्षमें भाजन) की अपेक्षा न कर अज्ञानान्धकारको नष्ट करता है ऐसा सज्जनरूपी श्रेष्ठ रत्नमय दीपक, मार्गको प्रकाशित करनेके लिए यदि नहीं होता तो निश्चयसे जनता सन्मार्गमें गमन करनेवाली नहीं होती। भावार्थ—यहाँ रूपकालंकार-द्वारा सज्जनको रत्नमय दीपक बतलाते हुए कविने कहा है कि चूँकि सज्जन रूपी रत्नदीपक अन्य दीपकोंके समान तेल बत्ती तथा पात्रकी अपेक्षा न रख (स्नेह अवस्था और व्यक्तिकी हीनाधिकताका विकल्प न कर) सबको अज्ञान-तिमिरको दूर करता है इसीलिए जनता समीचीन मार्गपर चलती है ॥ ७ ॥ जिस प्रकार अमृत और कालकूट विष, आदर तथा तिरस्कारकी अपेक्षा छोड़ क्रमसे प्रजाका कल्याण और अकल्याण करते हैं उसी प्रकार सज्जन और दुर्जन भी आदर और तिरस्कारकी अपेक्षा न कर प्रजाका कल्याण और अकल्याण करते हैं। अतः किसकी अपेक्षा कर और किसकी उपेक्षा कर किसको प्राप्त होऊँ ? भावार्थ—अमृतका कोई आदर न करे तब भी वह लोगोंका कल्याण करता है और कालकूटका कोई तिरस्कार न करे, सन्मान करे तब भी वह लोगोंका अकल्याण ही करता है। इसी प्रकार सज्जनका कोई सत्कार न करे तब भी वह स्वभावसे ही दूसरोंका कल्याण करता है और दुर्जनका कोई तिरस्कार न करे, सन्मान करे तब भी वह स्वभावसे ही दूसरोंका अकल्याण करता है। ऐसी स्थितिमें किसीकी अपेक्षा या उपेक्षा कैसे

निःसारभूतमपि बन्धनतन्तुजातं मूर्ध्ना जनो वहति हि प्रसवानुषङ्गात् ।
जीवन्धरप्रभवपुण्यपुराणयोगाद्वाक्यं ममाप्युभयलोकहितप्रदायि ॥९॥

गीर्वाणाधिपचोदितेन धनदेनास्थायिकामादरात्सृष्टां द्वादशयोजनायततलां नानामणिद्योतिताम् ।
अध्यास्त त्रिदशेन्द्रमस्तकमिलत्पादारविन्दद्वयः प्राग्देवो विपुलाचलस्य शिखरे श्रीवर्धमानो जिनः॥१०॥

तत्रासीनममुं त्रिलोकजनतासंसारजीर्णाटवीदावं दुर्मतधर्मतापहरसद्धर्मामृतस्राविणम् ।
राजा श्रेणिक इत्यशेषभुवनप्रख्यातनामा नमन्दूरानम्रकिरीटताडिततलस्तुष्टाव हृष्टाशयः ॥११॥

अथाभिधेयप्रभावमाविर्भावयितुमाह—निःसारेति—हि यस्मात् कारणात् जनः प्रसवानुषङ्गात् पुष्पसंबन्धात् निःसारभूतमपि बन्धनतन्तुजातं बन्धनसूत्रसमूहं मूर्ध्ना शिरसा वहति । ततो ममापि वाक्यम् । जीवन्धरः प्रभवो यस्य तदिति जीवन्धरप्रभवम्, तच्च तत् पुण्यपुराणं चेति जीवन्धरपुण्यपुराणं तस्य योगस्तस्मात् सात्यन्धरिकारणकपवित्रपुराणयोगात उभयलोके–इहागामिनि च लोके हितं प्रददातीत्येवं शीलम् । वर्तत इति शेषः ॥ ९ ॥ अथ प्रारिप्सितग्रन्थोपोद्घातं वर्णयितुमाह—गीर्वाणेति—प्राक् पूर्वं त्रिदशेन्द्राणां देवेन्द्राणां मस्तकैर्मूर्धभिर्मिलत् पादारविन्दद्वयं चरणकमलयुगलं यस्य तथाभूतः । श्रीवर्धमानो जिनः पश्चिमतीर्थंकरः । विपुलाचलस्य–एतन्नामगिरेः शिखरे शृङ्गे गीर्वाणाधिपेन पुरन्दरेण चोदितेन प्रेरितेन धनदेन कुबेरेण आदरात्सादरं सृष्टां रचिताम्, द्वादशयोजनायतं तलं यस्यास्तां द्वादशयोजनविस्तृताम् । प्रथमतीर्थंकरस्य वृषभदेवस्य समवसरणविस्तारो द्वादशयोजनपरिमितो बभूव श्रीवर्धमानस्य त्वेकयोजनपरिमित एवासीदतोऽत्र द्वादशयोजनायततलामिति विशेषणं चिन्त्यम् । नानामणिभिरनेकरत्नैर्द्योतितां प्रकाशिताम् । आस्थायिकां समवसरणभूमिम् । अध्यास्त तत्र स्थितोऽभूत् । 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इत्याधारे कर्मत्वम् ॥१०॥ तत्रेति—तत्रास्थायिकायाम् । आसीनमुपविष्टं त्रिलोकजनताया ऊर्ध्वाधोमध्याभिधलोकत्रयजनसमूहस्य संसार एव चतुर्गतिसंसरणमेव या जीर्णाटवी पुराणावनी तस्या दावं दावानलं तथाभूतम् 'दव दावौ वनानले' इति हैमः । दुर्मतमेव मिथ्यामतमेव यो धर्मस्तस्य तापस्तस्य हरं यत्सद्धर्म एवामृतं तत्स्रावयतीति तथाभूतम् । अमुं श्रीवर्धमानजिनम् । 'श्रेणिक' इति, अशेषभुवने निखिलसंसारे प्रख्यातं नाम यस्यासौ तथाभूतो राजा नमन् नमस्कुर्वन् दूरानम्रेण दूरविनतेन किरीटेन मकुटेन ताडितं तलं येन तथाभूतः सन्, किं च हृष्ट आशयो यस्य तथाभूतः सन् । तुष्टाव स्तवनं चकार ॥११॥

की जाये ? ॥ ८ ॥ बन्धनके तन्तुओंका समूह यद्यपि निःसार होता है तथापि फूलोंके सम्बन्धसे मनुष्य उसे शिरपर धारण करता है इसी प्रकार मेरे वचन यद्यपि निःसार हैं तथापि जीवन्धर स्वामीसे उत्पन्न पवित्र पुण्यके साथ संयोग होनेसे वे दोनों लोकोंमें हित प्रदान करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ पहलेकी बात है कि श्री वर्धमान जिनेन्द्र, विपुलाचलके शिखरपर इन्द्रके द्वारा प्रेरित कुबेरसे आदरपूर्वक निर्मित बारह[1] योजन विस्तृत एवं नानाप्रकारके मणियोंसे प्रकाशित समवसरण सभामें विराजमान थे । उस समय उनके दोनों चरणकमल इन्द्रके नम्रीभूत मस्तकसे मिल रहे थे ॥१०॥ समवसरणमें विराजमान भगवान्, तीन लोककी जनताके संसाररूपी जीर्ण अटवीको नष्ट करनेके लिए दावानल थे और मिथ्यामतरूपी घामके सन्तापको हरनेवाले सद्धर्मरूपी अमृतको झरानेवाले थे । उसी समय समस्त संसारमें जिसका 'श्रेणिक' यह नाम प्रसिद्ध था, दूरसे ही नम्रीभूत मुकुटसे जो पृथिवीतलको ताड़ित कर रहा था और जिसका हृदय अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा राजा नमस्कार कर उनकी स्तुति करने

१. समवसरणका यह विस्तार सामान्य समवसरणकी अपेक्षा लिखा जान पड़ता है क्योंकि वर्धमान स्वामीके समवसरणका विस्तार एक योजन प्रमाण था बारह योजन प्रमाण नहीं ।

तत्रस्थं चतुराश्रमस्थपुरुषानुष्ठेयधर्मस्थितिव्याख्याव्यापृतिदृश्यमानदशनालोकं गणाधीश्वरम् ।
वन्दित्वा मकुटावतंसकुसुमामोदेन लिम्पन्महीमप्राक्षीत्किमपि क्षमापतिरथ स्पष्टीभवत्कौतुकः ॥१२॥
नानाभोगपयोधिमग्नमतयो वैराग्यदूरोज्झिता देवा न प्रभवन्ति दुःसहतमां वोढुं मुनीनां धुरम् ।
इत्याहुः परमागमस्य परमां काष्ठामधिष्ठास्नवस्तद्देवो मुनिवेषमेष कलयन्दृश्येत कस्मादिति ॥१३॥
इत्थं पृच्छति पार्थिवे गणधरस्तद्वृत्तमाख्यातवान् राजन्नेष सुरः पुरा नरपतिर्विश्वंभराविश्रुतः ।
वैराग्येण तृणाय राज्यमतुलं मत्वा विमुच्याशु तत्प्राविक्षत्पदवीं तपोधनगतां गीर्वाणतुल्याकृतिः॥१४॥

तत्रस्थमिति—अथ वर्धमानजिनस्तवनानन्तरम् । स्पष्टीभवत्कौतुकं यस्य तथाभूतः । क्षमापतिः श्रेणिकः । तत्रस्थं समवसरणस्थितं चतुर्ष्वाश्रमेषु तिष्ठन्ति चतुराश्रमस्थास्ते च पुरुषास्तैरनुष्ठेया या धर्मस्थितिस्तस्या व्याख्याव्यापृतौ वर्णनकार्ये दृश्यमानो दशनालोको दन्तप्रकाशो यस्य तं तथाभूतं गणाधीश्वरं गौतमगणधरं वन्दित्वा मकुटावतंसकुसुमामोदेन मौल्यलङ्कारपुष्पसुरभिणा महीं लिम्पन् सन् किमपि । अप्राक्षीत् ॥ १२ ॥ नानाभोगेति—नानाभोगपयोधौ विविधभोगसागरे मग्ना मतिर्येषां ते तथाभूताः । वैराग्येण दूरोज्झिता वैराग्यं धर्तुमसमर्था इति यावत् । देवाः सुराः, दुःसहतमामतिकठिनां मुनीनां धुरं यतीनां भारं वोढुं धर्तुं न प्रभवन्ति न समर्था जायन्ते । इतीत्थं परमागमस्योत्तमजिनशास्त्रस्य परमां चरमां काष्ठां सीमानम् अधिष्ठास्नवोऽधिष्ठानशीलाः परमशास्त्रपारंगता इति यावत् आहुः कथयन्ति तत् पुनः, एष देवो दृश्यमानः सुरो मुनिवेषं यतिमुद्रां कलयन् दधत् कस्माद्धेतोः दृश्यते । इति श्रेणिको महीपालो गौतमं गणीन्द्रं पप्रच्छेति संबन्धः । इत्थमिति—इत्थमनेन प्रकारेण पृथिव्या अधिपः पार्थिवस्तस्मिन् श्रेणिकभूपतौ पृच्छति सति गणधरो गौतमः, तद्वृत्तं पूर्वोक्तमुन्युदन्तम् आख्यातवान् । हे राजन्, एष दृश्यमानो मुनिः सुरो देवो नास्ति । अयं पुरा दीक्षाग्रहणात्पूर्वम् । विश्वम्भरायां विश्रुत इति विश्वम्भराविश्रुतः पृथिवीप्रसिद्धो नरपती राजा । आसीदिति शेषः । वैराग्येण विरागस्य भावः कर्म वा वैराग्यं तेन । अतुलमनुपमं राज्यं तृणाय मत्वा तृणवत्तुच्छं मत्वा 'मन्यकर्मण्यनादरे' इति चतुर्थी । आशु झगिति तद् राज्यं विमुच्य त्यक्त्वा तपोधनगतां मुनिगतां पदवीं मार्गं प्राविक्षत् प्रविवेश । गीर्वाणेन देवेन तुल्याकृतिर्यस्य स इति मुनि विशेषणम् । नायं सुरः किंतु सुर इव भातीति

लगा ॥११॥ उसी समवसरणमें ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षु इन चार आश्रमोंमें स्थित मनुष्योंके द्वारा करने योग्य धर्मस्थितिकी व्याख्या करते समय जिनके दाँतोंका प्रकाश दिखाई दे रहा था ऐसे गणधर भगवान् विराजमान थे। राजा श्रेणिकने मुकुट-सम्बन्धी मालाके फूलोंकी सुगन्धसे पृथिवीतलको व्याप्त कर उन्हें भी नमस्कार किया और कौतूहल प्रकट करते हुए कुछ पूछा ॥ १२ ॥ भगवन् ! 'नानाप्रकारके भोगरूपी सागरमें जिनकी बुद्धि निमग्न है तथा वैराग्यने जिन्हें दूरसे ही छोड़ रखा है ऐसे देव मुनियोंका अत्यन्त दुःसह भार धारण करनेके लिए समर्थ नहीं हैं' ऐसा परमागमको परमसीमाको प्राप्त उत्कृष्ट ज्ञाता आचार्य कहते हैं फिर यह देव मुनिवेषको धारण करता हुआ क्यों दिखाई दे रहा है ? ॥१३॥ इस प्रकार राजा श्रेणिकके पूछनेपर गणधर भगवान्ने उन मुनिका वृत्तान्त कहा और बतलाया कि हे राजन् ! यह देव नहीं है। दीक्षा लेनेके पूर्व यह समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध राजा था। इसकी आकृति देवोंके तुल्य है। यह वैराग्यसे अतुल्य राज्यको तृणके समान तुच्छ समझ उसे शीघ्र ही छोड़ तपस्वियोंके मार्गमें प्रविष्ट हुआ है ॥१४॥

इत्येवं गणनायकेन कथितं पुण्यास्रवं शृण्वतां तज्जीवन्धरवृत्तमत्र जगति प्रख्यापितं सूरिभिः ।
विद्यास्फूर्तिविधायि धर्मजननीवाणीगुणाभ्यर्थिनां वक्ष्ये गद्यमयेन वाङ्मयसुधावर्षेण वाक्सिद्धये॥१५॥

§ १. अस्ति खलु निखिलजलधिपरिक्षेपविलसदनेकद्वीपकमलकर्णिकारूपस्य जम्बूद्वीपस्य दक्षिणभागभाजि भारते खण्डे पुण्डरीकासनायाः क्रीडागृहमिव लक्ष्यमाणः, प्रक्षीणमोहजनितजिनचरणपक्षपातैः अक्षूणमतिमन्दरमथितविद्यासागरसमासादिततत्त्वावबोधसुधारसैः अहरहरुपचितसुकृतमुकुलितपरलोकभयैः अभ्यागतसंविभक्तविभवविजृम्भमाणवितरणगुणगरिमनिमीलदमरमहीरुहमाहात्म्यैः ममतामर्थेष्वनाकलयद्भिः आत्मचरितापहसितकलिविलसितैः, आवसद्भिः सद्भिरारोपित-

भावः ॥१४॥ इत्येवमिति—इत्येवमनेन प्रकारेण गणनायकेन गणस्वामिना गौतमेन कथितं ख्यातं शृण्वतामाकर्णयतां पुण्यास्रवं पुण्यकर्मास्रवकारणम् । अत्र जगति संसारेऽस्मिन् सूरिभिराचार्यैः प्रख्यापितं प्रसिद्धिं प्रापितम् । धर्मस्य जननी या वाणी तस्या गुणाभ्यर्थिनां गुणाभिलाषिणाम् । विद्यायाः स्फूर्तिं विदधातीत्येवं शीलमिति विद्यास्फूर्तिविधायि विद्याविकासकारणं तत् जीवन्धरवृत्तं जीवन्धरचरितं गद्यमयेन गद्यरूपेण वाङ्मयसुधावर्षेण वाङ्मयपीयूषवृष्ट्या वाचां सिद्धिस्तस्यै वाक्सिद्ध्यै । वक्ष्ये कथयिष्यामि ॥१५॥

§ १. अस्तीति—खलु निश्चयेन, निखिलजलधीनां सकलसागराणां परिक्षेपेण परिधिना विलसन्ति यान्यनेकद्वीपकमलानि नानाद्वीपारविन्दानि तेषां कर्णिकाया इव रूपं यस्य तथाभूतस्य जम्बूद्वीपस्य दक्षिणभागभाजि दक्षिणभागं भजतीति तथाभूते भारते खण्डे भरतक्षेत्रे हेमाङ्गदनामा जनपदोऽस्तीति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथ तमेव विशिनष्टि—पुण्डरीकासनाया लक्ष्म्याः क्रीडागृहमिव केलिनिकेतनमिव लक्ष्यमाणो दृश्यमानः । प्रक्षीणो नाशं प्राप्तो यो मोहो मिथ्यात्वप्रकृतिस्तेन जनितः समुत्पादितो जिनचरणयोर्वीतराग-सर्वज्ञ-जिनेन्द्रचरणयोः पक्षपातो भक्तिर्येषां तैः । अक्षूणेन पूर्णेन मतिमन्दरेण बुद्धिमन्थाचलेन मथितो विलोडितो यो विद्यासागरस्तस्मात्समासादितः प्राप्तस्तत्त्वावबोध एव सुधारसो यैस्तैः । अहरहः प्रतिदिनम् उपचितेन संचितेन सुकृतेन पुण्येन मुकुलितं दूरीभूतं परलोकभयं येषां तैः । अभ्यागतेभ्योऽतिथिभ्यः संविभक्तः कृतविभागो यो विभवो धनं तेन विजृम्भमाणो वर्धमानो यो वितरणगुणगरिमा दानगुणमहिमा तेन निर्मीलत् संकुचत् अमरमहीरुहाणां कल्पवृक्षाणां माहात्म्यं यैस्तैः । अर्थेषु वित्तेषु ममतां ममत्वबुद्धिम् अनाकलयद्भिरप्राप्नुवद्भिः । आत्मचरितेन स्वकीयपवित्राचरणेनापहसितं तिरस्कृतं कलिविलसितं कलिकालचेष्टितं यैस्तैः । एवंभूतैः आवसद्भिः समन्तात्कृतनिवासैः । सद्भिः सत्-

इस प्रकार श्रोताओंके लिए पुण्य कर्मका आस्रव करनेवाला जो चरित गणधर भगवान्‌ने कहा है, अनेक आचार्योंने संसारमें जिसे प्रख्यापित किया और जो धर्मको उत्पन्न करनेवाली वाणीके गुणोंके अभिलाषी मनुष्योंकी विद्याकी स्फूर्तिको करनेवाला है जीवन्धर स्वामीके उस चरितको मैं वाणीकी सिद्धिके लिए वाङ्मयमें अमृतकी वर्षा करनेवाले गद्यमय सन्दर्भसे कहूँगा ॥१५॥

§ १. समस्त समुद्रोंके घेरेसे सुशोभित अनेक द्वीपरूपी कमलोंकी कर्णिकारूप जम्बूद्वीपके दक्षिण भागमें स्थित भरत क्षेत्रमें एक हेमाङ्गद नामका देश था। वह देश लक्ष्मीके क्रीड़ागृहके समान जान पड़ता था और सब ओर निवास करनेवाले उन सज्जनोंसे उसका गौरव बढ़ रहा था जिनका मोह अत्यन्त क्षीण हो जानेसे जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंमें पक्षपात उत्पन्न हो रहा था, अखण्ड बुद्धिरूपी मन्दराचलसे मथित विद्यारूपी सागरसे जिन्हें तत्त्वज्ञानरूपी सुधारस प्राप्त हुआ था, प्रतिदिन बढ़ते हुए पुण्यसे जिनका परलोक-सम्बन्धी भय दूर हो गया था, अतिथियोंके लिए प्रदत्त वैभवसे बढ़ते हुए दान गुणकी महिमासे जिन्होंने कल्पवृक्षोंका माहात्म्य कुण्ठित कर दिया था, जो धनमें कभी

गरिमा, दिशि दिशि दृश्यमानकनकमयविमानतिलकितवियन्मध्यैः ध्यानपरयमधराध्युषितवेदिकोपशोभिताशोकपादपच्छायालङ्घनचकितभव्यलोकवक्रितप्रदक्षिणभ्रमणैः परहितनिरतमुनिवरपरिषदभिहितधर्मानुकथनकर्मठशुककुलवाचालोद्यानशाखिशाखापरिष्कृतपरिसरैः उपसरत्संसृतेरुपरतिमुपजनयद्भिः जिनालयैरुपशोभितः, सततविनिहितसलिलसेकजनितशैत्यविनिर्गतपुलकतुलितमुकुलदन्तुरितेन वहदनिलकम्पितैर्विटपबाहुभिरतिदुर्धरं फलभरं दातुमाह्वयतेव प्रत्यग्रकन्दलीदलनदुर्ललितकोकिलकलालापच्छलेन मनसिजविजयभोगावलीमिव पठता सहकारतरुषण्डेन कृतमण्डनैः मधुकरनिकर-

पुरुषैः । आरोपितो गरिमा यस्य स वर्धितगौरवो हेमाङ्गदजनपदः । पुनश्च, दिशि दिशि प्रतिदिशं दृश्यमानैः कनकमयविमानैः वन्दनार्थमागच्छतां देवविद्याधराणां सौवर्णव्योमयानैस्तिलकितं व्याप्तं वियन्मध्यं गगनमध्यभागो यैस्तैः । ध्यानपरा ध्याननिमग्ना ये यमधरा मुनयस्तैरध्युषिता अधिष्ठिता या वेदिकास्ताभिरुपशोभिता येऽशोकपादपाः कङ्केलिवृक्षास्तेषां छायाया लङ्घनादतिक्रमणाच्चकिता भीता ये भव्यलोकास्तैर्वक्रितं कुटिलितं प्रदक्षिणभ्रमणं परिक्रमाभ्रमणं येषां तैः । परहितनिरतानां परोपकारासक्तानां मुनिवराणां परिषदा समूहेनाभिहितस्य कथितस्य धर्मस्यानुकथने पुनरुच्चारणे कर्मठानि शक्तियुक्तानि यानि शुककुलानि कीरसमूहास्तैर्वाचाला मुखरा या उद्यानशाखिशाखा उपवनतरुशाखास्ताभिः परिष्कृतः शोभितः परिसरः समीपप्रदेशो येषां तैः । उपसरतां समीपमागच्छतां संसृतेः संसारस्य उपरतिं समाप्तिम् उपजनयद्भिः कुर्वद्भिः । जिनालयैरुपशोभितो हेमाङ्गदजनपदः । पुनश्च, सततविनिहितेन निरन्तरकृतेन सलिलसेकेन जलसेचनेन जनितं यच्छैत्यं तेन विनिर्गतैः पुलकैः रोमाञ्चैस्तुलितानि यानि मुकुलानि मञ्जरीकुड्मलानि तैर्दन्तुरितेन व्याप्तेन । वहता अनिलेन कम्पितास्तैर्वहमानपवमानचलितैः । विटपा एव बाहवस्तैः शाखाभुजैः । अतिदुर्धरम् अतिदुःखेन धर्तुं शक्यं विपुलप्रमाणमिति यावत् । फलभरं फलसमूहं दातुमाह्वयतेवाकारयतेव । प्रत्यग्रकन्दलीनां नूतनमञ्जरीणां दलनेन खण्डनेन दुर्ललिताः सुभगा ये कोकिलास्तेषां कलालापच्छलेनाव्यक्तमधुरालापव्याजेन मनसिजविजयस्य कामविजयस्य भोगावलीं कीर्तिप्रशस्तिं पठतेव सहकारतरुषण्डेनातिसौरभाम्रवृक्षसमूहेन 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः । कृतमण्डनैः कृतालङ्कारैः शोभितैरिति यावत् । मधुकरनिकरो भ्रमरसमूह एव

ममता नहीं रखते थे और अपने आचरणसे जिन्होंने कलिकालके वैभवकी हँसी उड़ायी थी। वह उन जिनमन्दिरोंसे सुशोभित था जिन्होंने प्रत्येक दिशामें दिखाई देनेवाले सुवर्णमय विमानोंसे आकाशके मध्यको व्याप्त कर रखा था, ध्यानमें तत्पर मुनियोंसे अधिष्ठित चबूतरोंसे सुशोभित अशोक वृक्षकी छाया लाँघनेसे भयभीत भव्यजीवोंके द्वारा जिनकी प्रदक्षिणाका फेरा टेढ़ा हो रहा था, परहितमें तत्पर उत्तम मुनिसमूहके द्वारा कथित धर्मवाक्योंके पुनरुच्चारण करनेमें निपुण तोताओंके समूहसे शब्दायमान बाग-बगीचोंके वृक्षोंकी शाखाओंसे जिनका समीपवर्ती प्रदेश सुशोभित था, और जो समीपमें आनेवाले जीवोंके संसारकी समाप्ति कर रहे थे। जिन उद्यानोंके द्वारा वहाँके मनुष्योंके नेत्र विनोदको प्राप्त होते रहते थे वे सुगन्धित आम्र वृक्षोंके उस समूहसे सदा अलंकृत रहते थे जो सदा किये गये जलके सिञ्चनसे उत्पन्न शीतसे निकले हुए रोमाञ्चोंके समान मौरकी बोंडियोंसे व्याप्त था, बहती हुई हवासे कम्पित शाखारूप भुजाओंके द्वारा जो मानो अत्यन्त वजनदार फलसमूहको बाँटनेके लिए लोगोंको बुला रहा था और नूतन मौरकी कलिकाओंके खानेसे सुन्दर कोयलोंकी मधुर ध्वनिके बहाने कामदेवकी विजय-विरुदावलीका ही मानो पाठ कर रहा था।

१ म० – यमधन- ।

कज्जलाकलङ्किताः कामविजयनीराजनदीपिका इव कुसुममञ्जरीः पिञ्जरितदशदिशो दर्शयता चम्पकचक्रेण चारुतामुद्वहद्भिः प्रसवोत्कण्ठमानकामिनीगण्डूषमधुधारासेकनिष्पन्नपुष्परिञ्छोली[1]धवलितवपुषा हसतेव युवतिजनलालनविधुरानितरधरणीरुहान्बकुलतरुवाटेन वर्धितशोभैः तरुणीचरणप्रहारानन्तरमन्तःप्ररूढकोपकृपीटयोनिमिव कृकवाकुचूडापाटलं पल्लवापीडमुद्गिरता प्रत्यङ्गं कङ्केलिजालेन जातनयनातिथ्यैः अन्यलताश्लेषावकाशहरणाभिनिवेशादिव गाढाश्लिष्टनिःशेषकुरबकतरुभिर्माधवीभिराधीयमानमदनबलैः[2] उन्मीलितकुसुमावचय[3]कौतुकमिलितमहिलानिर्विशेषलता[4]-

कज्जलस्तेनाकलङ्किता अमलिनाः। कामस्य विजयनीराजनदीपिका इव विजयारात्रिकदीपिका इव। पिञ्जरिताः पीतवर्णीकृता दश दिशो याभिस्तास्तथाभूताः। कुसुममञ्जरीः पुष्पस्रजो दर्शयता चम्पकचक्रेण चाम्पेयतरुसमूहेन चारुतां सौन्दर्यम् उद्वहद्भिः। प्रसवेषु पुष्पेषूत्कण्ठमाना उत्का याः कामिन्यस्तासां गण्डूषमधुधारासेकेन कुरलकमधुधारासेचनेन निष्पन्ना समुत्पन्ना या पुष्परिञ्छोली कुसुमपङ्क्तिस्तया धवलितं शुक्लीकृतं वपुः शरीरं यस्य तेन 'पादाघातादशोको विकसति बकुलो योषितामास्यमद्यैः' इति कविसमयः। अत एव युवतिजनलालनविधुरान् तरुणीजनलालनरहितान्। इतरे च ते धरणीरुहाश्च तथाभूतान् अन्यवृक्षान्। हसतेव हास्यं कुर्वतेव बकुलतरुवाटेन बकुलमहीरुहमार्गेण वर्धिता शोभा येषां तैस्तथाभूतैः। तरुणीनां युवतीनां चरणप्रहारानन्तरं पादाघातानन्तरम्*—अन्तः प्ररूढो मध्ये समुत्पन्नः कोप एव कृपीटयोनिरग्निस्तमिव। कृकवाकुचूडापाटलं ताम्रचूडचूडेषद्रक्तवर्णं पल्लवापीडं किसलयसमूहम्। प्रत्यङ्गम् अङ्गे अङ्गे उद्गिरता प्रकटयता कङ्केलिजालेनाशोकसमूहेन जातं समुत्पन्नं नयनानां नेत्राणामातिथ्यं येषु तैः। अन्यलतानामितरवल्लीनामाश्लेषावकाशस्य लिङ्गनावकाशस्य यो हरणाभिनिवेशो दूरीकरणाभिप्रायस्तस्मादिव गाढं यथा स्यात्तथाश्लिष्टा आलिङ्गिता निःशेषाः समग्राः कुरबकतरवो याभिस्ताभिः। माधवीभिर्वासन्तीलताभिः आधीयमानं समुत्पाद्यमानं मदनबलं मनसिजसामर्थ्यं येषु तैः। उन्मीलितानि

भ्रमर समूहरूपी कज्जलसे कलंकित मदन-विजयके आरती दीपकोंके समान दशों दिशाओंको पीतवर्ण करनेवाली पुष्पमंजरियोंको दिखलानेवाले चम्पकवृक्षोंके समूहसे वे उद्यान सुन्दरताको धारण कर रहे थे। फूलोंके लिए उत्कण्ठित स्त्रियोंके कुरलेकी मधुधाराके सिंचनसे उत्पन्न पुष्पोंकी पंक्तिसे जिसका शरीर सफेद-सफेद हो रहा था और इसी लिए जो तरुण स्त्रियोंके लालनसे रहित अन्य वृक्षोंकी मानो हँसी ही कर रहा था ऐसे बकुल वृक्षोंके मार्गसे उन उद्यानोंकी शोभा बढ़ रही थी। तरुण स्त्रियोंके चरण प्रहारके बाद जिसके अङ्ग-अङ्गसे मुर्गाकी चोटीके समान लाल-लाल पल्लवोंका समूह प्रकट हो गया था और उससे जो हृदयमें उत्पन्न हुई क्रोधरूपी अग्निको धारण करता हुआ-सा जान पड़ता था ऐसा अशोक वृक्षोंका समूह उन उद्यानोंमें मनुष्योंके नेत्रोंका आतिथ्य-अतिथि-सत्कार करता था। 'अन्य लताओंको आलिंगनका अवकाश न रहे' इस अभिप्रायसे ही मानो जिन्होंने समस्त कुरबकके वृक्षोंका गाढ़ आलिंगन कर रखा था ऐसी माधवी लताएँ उन उद्यानोंमें कामदेवको बल प्रदान

१ ख० रिञ्छोलि-। २ -रयमानमदनबलैः क० ख० ग० (प्राप्त)। ३ क० ख० ग० -कुसुमापचय।
४ म० ललिताभिरामैः। * अशोकबकुलयोः स्त्रीपादताडनगण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धिः। तथा हि—

स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता-
च्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकारः॥

भिरामैः आरामैर्विनोदितलोकलोचनः, प्रतिफलिततटरुहतरुनिवहनिभेन जलनिधिजिगीषया स्वयमपि कल्पतरूनिव कतिचन जठरे धारयद्भिः उद्दण्डकमलविष्टरोपविष्टकादम्बकदम्बकैः[1] उत्फुल्लकल्हारनिःस्यन्दिमकरन्दमेदुरितपाथोभिः पवनोद्धूतकल्लोलपटलकबलितवियदवकाशैः पाथोराशिपरिबुभूषया सागरमहिषीं मन्दाकिनीं बन्दीकर्तुमन्तरिक्षमुत्पतद्भिरिव प्रेक्ष्यमाणैः समन्तादुन्मिषदुत्पलजालजटिलैः जनपदलक्ष्मीदिदृक्षया सहस्राक्षतामिव बिभ्रद्भिः शुभ्रसलिलभरितजठरैः जलाशयैर्दर्शितानेकसागरमहिमा, क्वचित्पाककपिशकणिशभरविनमितशिरोभिः आत्मरोहावकाशदायिनीं मेदिनीमभिवादयमानैरिव शालिस्तम्बैः शुम्भितशालेयेन क्वचिद्विहरमाणकमलाचरणतुलाकोटिक्व-

विकम्पितानि यानि कुसुमानि तेषामवचयस्य त्रोटनस्य कौतुकेन मिलिताः समागता या महिला नार्यस्तासां निर्विशेषा तुलिता या लता वल्लर्यस्ताभिरभिरामैर्मनोहरैः। आरामैरुपवनैः विनोदितानि लोकलोचनानि जननयनानि यस्मिन् तथाभूतो हेमाङ्गदजनपदः। पुनश्च, प्रतिफलितः प्रतिबिम्बितो यस्तटरुहतरूणां तीरोत्पन्नवृक्षाणां निवहः समूहस्तस्य निभेन व्याजेन जलनिधिजिगीषया सागरं विजेतुमिच्छया स्वयमपि स्वतोऽपि कल्पतरूनिव देवानोकहानिव कतिचन कियतोऽपि जठरे मध्ये धारयद्भिः, उद्दण्डेषून्नतेषु कमलविष्टरेषु पद्मासनेषूपविष्टानि कादम्बकदम्बकानि कलहंससमूहा येषु तैः। उत्फुल्लकल्हारेभ्यो विकसितश्वेतकमलेभ्यो निःस्यन्दिभिः प्रक्षरद्भिर्मकरन्दैः कौसुमैर्मेदुरितानि वृद्धिङ्गतानि पाथांसि जलानि येषां तैः। पवनेनोद्धूता उत्थापिता ये कल्लोलास्तरङ्गास्तेषां पटलेन समूहेन कबलितो ग्रस्तो वियदवकाशो गगनान्तरं यैस्तैः। अत एव पाथोराशेः सागरस्य परिबुभूषया पराभवेच्छया। सागरमहिषीं सागरपट्टराज्ञीं मन्दाकिनीं वियद्गङ्गां बन्दीकर्तुं कारागृहे धर्तुम् अन्तरिक्षं गगनम् उत्पतद्भिरिव प्रेक्ष्यमाणैः। समन्तात् परितः उन्मिषतां विकसतामुत्पलानां नीलकमलानां जालेन समूहेन जटिलैर्व्याप्तैः, अत एव, जनपदलक्ष्मीदिदृक्षया जनपदश्रीदर्शनेच्छया सहस्राक्षतां सहस्रमक्षीणि येषां ते सहस्राक्षास्तेषां भावस्तत्तां बिभ्रद्भिरिव। शुभ्रसलिलेन धवलजलेन भरितं जठरं येषां तैः। एवंभूतैर्जलाशयैः कासारैः दर्शितः प्रकटितोऽनेकसागराणां नानाम्बुधीनां महिमा येन स तथाभूतो हेमाङ्गदनामा जनपदः। पुनश्च, क्वचित्कुत्रापि पाकेन परिणामेन कपिशाः पिङ्गलवर्णा ये कणिशा धान्यमञ्जर्यस्तेषां भरेण समूहेन विनमितानि शिरांसि

करती थीं तथा खिले हुए पुष्पोंके चयन-सम्बन्धी कौतूहलसे इकट्ठी हुई महिलाओंके समान लताओंसे वे उद्यान सुन्दर थे। प्रतिबिम्बित किनारेके वृक्षोंके समूहके बहाने जो समुद्रको जीतनेकी इच्छासे स्वयं ही मानो अपने उदरमें कुछ कल्पवृक्षोंको धारण कर रहे थे, जिनके ऊँची दण्डीवाले कमलोंके आसनपर कलहंसोंके समूह बैठे थे, खिले हुए सफेद कमलोंसे झरनेवाले मकरन्दसे जिनका पानी मिला हुआ था, वायुसे उठती हुई तरंगोंके समूहसे जिन्होंने आकाशके अवकाशको व्याप्त कर रखा था और इसीलिए जो समुद्रका पराभव करनेकी इच्छासे उसकी स्त्री आकाशगंगाको बन्दी बनानेके लिए मानो आकाशमें उछलते हुए-से दिखाई देते थे, जो सब ओर खिले हुए नीलकमलोंके समूहसे व्याप्त थे और इसीलिए जो देशकी लक्ष्मीको देखनेकी इच्छासे ही मानो हजार नेत्र धारण कर रहे थे तथा जिनका मध्य-भाग उज्ज्वल जलसे भरा हुआ था, ऐसे तालाबोंसे वह देश अनेक सागरोंकी महिमा दिखला रहा था। उस देशके निकटवर्ती गाँवोंके समीपवर्ती प्रदेश कहीं तो पक जानेसे पीली-पीली दिखनेवाली बालोंके भारसे जिनके शिर नम्रीभूत हो रहे थे और उनसे जो अपनी उत्पत्तिके लिए अवकाश देनेवाली पृथिवीको नमस्कार करते हुए-से जान पड़ते थे, ऐसे धानके पौधोंसे सुशोभित खेतोंसे युक्त थे। कहीं घूमती हुई लक्ष्मीके चरण नूपुरोंकी झनकारके

[1] म० –कादम्बकदम्बैः ।

णितैरिव स्थलकमलकाननकेलीकलितदोहलीना कलहंसीनामारसितैः आपाद्यमानश्रवणपारणेन क्वचिदनवरतविधीयमानशुश्रूषाहृष्यदुर्वीसर्वाङ्गनिर्गच्छदतुच्छरोमाञ्चसहचरितरुचिभिः कतिपयदिवसप्ररूढैः रूढहरितिमकवलितहरिदन्तरालैः प्रशस्यैः सस्यकन्दलैः कण्ठकथितकेदारसारगुणेन क्वचिन्निकटरूढपुण्ड्रेक्षुदण्डविघटितपर्वपुटनिपतितमुक्ताफलपटलशर्करिलसारणीतीरसंचारखेदितकृषीवलचरणतलेन क्वचिदतिगम्भीरक्षेत्ररभसनिपतदभ्यर्णसारणीसलिलसमुड्डीनशफरजिघृक्षाजनितपरस्परकलहविधूतबकोटपक्षपुटदर्शितस्थलपुण्डरीकविभ्रमेण क्वचिद्दिवाप्यन्धकारितपरिसराभिः मरकतपरिघपरिभावुकरम्भापरिरम्भरमणीयाभिः प्रक्रीडच्चिक्रोडविघटितकोहलपतितकेसरसंकटाभिः

येषां तैः। अत एव, अवकाशदायिनीमवगाहप्रदात्रीं मेदिनीं क्षेत्रभूमिम् अभिवादयमानैरिव नमस्कुर्वद्भिरिव शालिस्तम्बैः सस्यसमूहैः शुम्भितशालेयेन शोभितधान्यक्षेत्रेण ग्रामोपशल्येन ग्रामनिकटवर्तिप्रदेशेन इति विशेष्यम्। क्वचित्कुत्रापि विहरमाणा यत्र तत्र संचरन्ती या कमला लक्ष्मीस्तस्याश्चरणतुलाकोटीनां पादनूपुराणां क्वणितैरिव शिञ्जितैरिव, स्थलकमलकाननेषु पाटलवनेषु केल्यां क्रीडायां कलितदोहलीनां धृतमनोरथानां कलहंसीनां कादम्बमरालीनाम् आरसितैर्मन्दशब्दैः आपाद्यमाना प्राप्यमाणा श्रवणयोः पारणा विशेषभोजनं यत्र तेन। क्वचित्, अनवरतं निरन्तरं विधीयमाना या शुश्रूषा सेवा तया हृष्यन्ती प्रहृष्टा भवन्ती या उर्वी पृथिवी तस्याः सर्वाङ्गेभ्यो निखिलावयवेभ्यो निर्गच्छद्भिरतुच्छरोमाञ्चैर्दीर्घदीर्घपुलकैः सहचरिता सदृशी रुचिर्येषां तैः। कतिपयदिवसाः प्ररूढानां येषां तैः। रूढेन वृद्धिंगतेन हरितिम्ना हरितत्वेन कवलितं हरिदन्तरालं दिगन्तरं यैस्तैः प्रशस्यैः प्रशंसनीयैः सस्यकन्दलैर्धान्याभिनवाङ्कुरैः कण्ठकथितः स्वैरेव प्रकटितः केदारसारगुणः क्षेत्रसारगुणो यत्र तेन। क्वचित्, निकटरूढानां समीपसमुत्पन्नानां पुण्ड्रेक्षुदण्डानां विघटितेभ्यः खण्डितेभ्यः पर्वपुटेभ्यः ग्रन्थिप्रदेशेभ्यो निपतितानि यानि मुक्ताफलानि तेषां पटलेन समूहेन शर्करिले शर्करायुक्ते सारणीतीरे कुल्यातटे यः संचारो यतस्ततो भ्रमणं तेन खेदितानि दुःखितानि कृषीवलचरणतलानि कृषकपतलानि यत्र तेन। क्वचित् अतिगम्भीरक्षेत्रेऽत्यगाधक्षेत्रे रभसेन वेगेन निपतत् यत् अभ्यर्णसारणीसलिलं निकटस्थकुल्याजलं तस्मात्समुड्डीनः समुत्पतितः यः शफरो मीनस्तस्य जिघृक्षया ग्रहीतुमिच्छया जनितः समुत्पादितो यः परस्परकलहोऽन्योन्यसंघर्षस्तेन विधूतैः कम्पितैर्बकोटपक्षपुटैर्बकपक्षप्रदेशैर्दर्शितः प्रकटितः स्थलपुण्डरीकाणां स्थलश्वेतकमलानां विभ्रमः संदेहो यत्र तेन। क्वचित् दिवापि दिवसेऽपि अन्धकारितस्तिमिरितः परिसरो निकटवर्तिप्रदेशो यासां ताभिः। मरकतपरिघाणां हरितमणिनिर्मितार्गलानां परिभावुकास्तिरस्कारिका या रम्भा मोचास्तासां परिरम्भेण विस्तारेण रमणीया मनोहरास्ताभिः। प्रक्रीडद्भिश्चिक्रोडैर्मृदुपिच्छैः 'गिलहरी' इति प्रसिद्ध-

समान स्थलकमलोंके वनमें क्रीड़ा करनेकी भावना रखनेवाली कलहंसियोंके मधुर शब्दोंसे कानोंके लिए पारणा करा रहे थे। कहीं निरन्तर की जानेवाली शुश्रूषासे प्रसन्न पृथिवीके सर्वाङ्गसे निकलते हुए बड़े-बड़े रोमाञ्चोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले, कुछ-एक दिनके उत्पन्न, एवं प्राप्त हरियालीसे दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करनेवाले धान्यकी प्रशंसनीय कोपलोंसे उसके खेतोंका श्रेष्ठ गुण मानो कण्ठसे ही कहा जा रहा था। कहीं निकटमें उत्पन्न हुए पौंढ़ और ईखके दण्डोंकी टूटी पोरोंके समूहसे गिरे मोतियोंके समूहसे कंकरीली नहरोंके तटपर घूमनेसे वहाँ किसानोंके चरणतल खेदको प्राप्त हो रहे थे। कहीं अत्यन्त गहरे खेतमें वेगसे पड़ते हुए नहरके जलसे उछटी हुई मछलीको पकड़नेकी इच्छासे उत्पन्न परस्परकी कलहसे फड़फड़ाते हुए बगलोंके पंखोंके समूहसे वहाँ सफेद गुलाबोंका संशय दिखलाया जा रहा था। कहीं, जिनके समीपवर्ती प्रदेश दिनमें भी अन्धकारसे युक्त थे, जो मरकत मणियोंसे निर्मित अर्गलाओंका तिरस्कार करनेवाले कदलीवृक्षोंके विस्तारसे मनोहर थीं तथा जो खेलती हुई गिलहरियोंके द्वारा विघटित सुपारीके फूलोंसे गिरी केशर

पूगवाटिकाभिः प्रकटीक्रियमाणाकाण्डप्रावृडारम्भेण सर्वकालमुर्वराप्रायत्वा। प्रथमानबहुविधसस्यसारेण ग्रामोपशल्येन निःशल्यकुटुम्बिवर्गः, सलिलदेवतानाभिमण्डलसनाभिसंनिवेशैः स्फटिकविशदसलिलपूरितोदरैः घनघटितसुधालेपधवलभित्तिपरिवेष्टितमुखतया हसद्भिरिव निरुपयोगसलिलभरभरितमपांनिधिम् अम्भःकुम्भोत्क्षेपपतितपयोबिन्दुरूढशाद्वलतृणश्यामलितानूपैः कूपैरुपेतपर्यन्ताभिः अनतितुङ्गमञ्चिकाप्रतिष्ठितसलिलघटपरिपाटीविलोकनमुषितपथिकजनपरिश्रमाभिः जलाधिवासघृष्यमाणपाटलीशर्करापरिमलबहलिमविद्रावितनिदाघवैभवाभिः अप्रविष्टतरणिकिरणशिशिरखलूरीपरिसरनिद्राणाध्वन्योदन्यादैन्यशमनचतुरप्रभावाभिः प्रपाभिः प्रतिहतघर्मविजृम्भितः, प्रत्यग्ररोहासि-

जन्तुभिः विघटितेभ्यः खण्डितेभ्यः कोहलेभ्यः क्रमुकपुष्पेभ्यः पतितैः केसरैः किञ्जल्कैः संकटा व्याप्तास्ताभिः । पूगवाटिकाभिः क्रमुकवनीभिः । प्रकटीक्रियमाणोऽकाण्डेऽसमये प्रावृडारम्भो वर्षाप्रारम्भो यत्र तेन । सर्वकालं निरन्तरम् । उर्वराप्रायतया प्रायेण सर्वसस्याढ्यभूमितया । प्रथमानः प्रसिद्धो बहुविधसस्यसारो नानाविधधान्यसारो यत्र तेन । एवंभूतेन ग्रामोपशल्येन निःशल्या निश्चिन्ताः कुटुम्बिवर्गा गृहिसमूहा यत्र सः । तथाभूतो हेमाङ्गदनामा जनपदः । पुनश्च, सलिलदेवतानां नाभिमण्डलैः सनाभिः सदृशः संनिवेशो येषां तैः, स्फटिकविशदेनार्कोपलोज्ज्वलेन सलिलेन पूरितमुदरं मध्यं येषां तैः । घनं प्रचुरं यथा स्यात्तथा घटितो विहितो यः सुधालेपश्चूर्णलेपनं तेन धवलाभिः शुक्लाभिः भित्तिभिः परिवेष्टितं परिवृतं मुखमग्रभागो येषां ते, तेषां भावस्तत्ता तया, निरुपयोगेन निरर्थकेन सलिलभरेण जलसमूहेन भरितम्, अपां निधिं सागरम्, हसद्भिरिव तस्य हास्यं कुर्वद्भिरिव, अम्भःकुम्भानां जलभृतकलशानामुत्क्षेपणोन्नमनेन पतितपयोबिन्दुभिः स्खलितजलशीकरैः रूढाः समुत्पन्ना ये शाद्वलतृणा हरितघासास्तैः श्यामलितं हरितहरितीकृतमनूपं समीपप्रदेशो येषां तैः । एवंभूतैः कूपैः उपेतः पर्यन्तः पार्श्वप्रदेशो यासां ताभिः । प्रपाभिः पानीयशालाभिरिति विशेष्यम् । अनतितुङ्गासु किंचिदुन्नतासु मञ्चिकासु वेदिकासु प्रतिष्ठिताः स्थापिता ये सलिलघटा जलभृतकलशास्तेषां परिपाटी परम्परा तस्या विलोकनेन मुषितोऽपहृतः पथिकजनानां परिश्रमो याभिस्ताभिः । जलाधिवासेन—उशीरेण घृष्यमाणा या पाटलीशर्करा 'गुलाब' इति प्रसिद्धपुष्पसुवासितशर्करा तस्याः परिमलस्य सौगन्ध्यस्य बहलिमा प्राचुर्यं तेन विद्रावितं दूरीकृतं निदाघवैभवं ग्रीष्मसामर्थ्यं याभिस्ताभिः । अप्रविष्टास्तरणिकिरणाः सूर्यांशवो येषु, अत एव शिशिराः शीतला ये खलूरीपरिसराः सेनाभ्यासस्थानसमीपवर्तिनः प्रदेशास्तेषु निद्राणा गृहीतनिद्रा येऽध्वन्याः पथिकास्तेषामुदन्या तृड्बाधा तया दैन्यं तस्य शमने चतुरः प्रभावः सामर्थ्यं यासां ताभिः प्रपाभिः पानीयशालाभिः

व्याप्त थीं, ऐसी सुपारीकी हरी-भरी बगियोंसे वहाँ असमयमें ही वर्षा ऋतुका प्रारम्भ प्रकट हो रहा था। और अधिकांश उपजाऊ भूमि होनेसे वहाँ सदा नाना प्रकारके श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न होते रहते थे। इस प्रकारके गाँवोंके समीपवर्ती प्रदेशोंसे उस देशके गृहस्थ सदा निःशल्य रहते थे—आजीविकाकी चिन्तासे उन्मुक्त रहते थे, जिनकी रचना जलदेवताके नाभिमण्डलके समान थी, जिनके मध्यभाग स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरे हुए थे, गाढ़ी-गाढ़ी कलई (चूना)के लेपसे सफेद मनघटोंकी दीवालोंसे घिरे हुए होनेके कारण जो अनुपयोगी जलके भारसे भरे समुद्रकी मानो हँसी ही कर रहे थे और जलसे भरे घड़ोंके ऊपर उठानेसे गिरी जलकी बूँदोंसे उत्पन्न घाससे जिनके आस-पासकी भूमि हरी-भरी दिख रही थी ऐसे कुओंसे जिनकी समीपवर्ती भूमि व्याप्त थी। कुछ ऊँचे मंचपर रखे हुए जलभृत घड़ोंका समूह देखनेसे ही जो पथिकजनोंके परिश्रमको दूर कर रही थीं, खसके साथ घिसे हुए गुलाबसे सुवासित शक्करकी सुगन्धिकी अधिकतासे जिन्होंने गरमीका वैभव दूर कर दिया था और सूर्यकी किरणोंका प्रवेश न होनेसे ठण्डे सेनाभ्यासके समीपवर्ती प्रदेशोंके समीप सोते हुए पथिकोंकी प्यास-जनित दीनताके शान्त करनेमें जिनका प्रभाव चतुर था, ऐसी प्याऊओंके द्वारा उस देशमें गरमीका विस्तार

तत्तृणकरीरकवलनमुदितैः अवनितलविलुठितबालधि[1]पल्लवैः अग्रचलितबलवदुक्षदर्शनभयधावदध्वगैः गतिरभसरणितमणिकिङ्किणीरवमुखरितभुवनविवरैः स्मरणपथविहरमाणतर्णकवमितदुग्धधाराधौतधरातलैः कठिनखुरपुटखननसमुत्पतदविरलपरागपटलच्छलेन गोशब्दसाम्यसमाविर्भूतस्नेहतया भूतधात्र्येव दीयमानानुयात्रैः स्वभावकुण्डलितशिखरभीषणविषाणव्याजेन दुष्टसत्त्वसमुत्सारणाय कार्मुकमिव कलयद्भिः प्रशस्तकर्मसाधनैः गोधनैः पवित्रीकृतसीमा, हेमाङ्गदनामा जनपदः ।

§ २. यश्च दौर्गत्यनिवासपरिजिहीर्षयेव निरवकाशयत्यात्मानमभितो घटितैर्धान्यकूटैः । यं च

प्रतिहतं खण्डितं घर्म-विजृम्भितमातपविस्तारो यत्र सः । तथाभूतो हेमाङ्गदनामा जनपदः । पुनश्च, गाव एव धनानि गोधनानि तैर्गोधनैः पवित्रीकृता सीमा यस्य सः । अथ गोधनविशेषणान्याह—प्रत्यग्रेति—प्रत्यग्रप्ररोहेण नूतनोत्पत्त्या अलितानां हरितहरितानां तृणकरीराणां शष्पाङ्कुराणां कवलनेन खादनेन मुदिताः प्रसन्नास्तैः । अवनितले पृथिवीतले विलुठिता बालधिपल्लवाः पिच्छान्ता येषां तैः । अग्रे चलितो यो बलवान् उक्षा तस्य दर्शनस्य भयेन धावन्तोऽध्वगाः पथिका येषां तैः । गतिरभसेन गतिवेगेन रणिता रणरणशब्दं कुर्वन्त्यो या मणिकिङ्किण्यः मणिमयक्षुद्रघण्टिकास्तासां रवेण शब्देन मुखरितं वाचालितं भुवनविवरं लोकमध्यं यैस्तैः । स्मरणपथे स्मृतिमार्गे विहरमाणा विहारं कुर्वाणा ये तर्णका वत्सास्तेभ्यो वमिता या दुग्धधाराः क्षीरसंततयस्ताभिर्धौतं धरातलं यैस्तैः । कठिनैः कठोरैः खुरपुटैः शफाग्रैः खननेन समुत्पतन् समुद्गच्छन् योऽविरलः सततिबद्धः परागपटलो धूलिसमूहस्तस्य छलेन व्याजेन गोशब्दसाम्येन यथा गोधनानि गोशब्देन कथ्यन्ते तथा भूतधात्र्यपि गोशब्देन कथ्यते । इत्थं गोशब्दसादृश्येन समाविर्भूतः प्रकटितः स्नेहो यस्याः सा तस्या भावस्तत्ता तया, भूतधात्र्येव पृथिव्येव, दीयमानानुयात्रा येभ्यस्तैः क्रियमाणानुगमनैः । स्वभावेन कुण्डलितं कुण्डलाकारं यच्छिखरमग्रं तेन भीषणानां भयंकराणां विषाणानां शृङ्गाणां व्याजेन छलेन, दुष्टसत्त्वानां सिंहादीनां समुत्सारणाय दूरीकरणाय कार्मुकमिव धनुरिव, कलयद्भिर्दधद्भिः । प्रशस्तकर्माणि यज्ञादीनि तेषां साधनानि तैः । एवंभूतैर्गोधनैः पवित्रीकृतसीमा हेमाङ्गदनामा जनपदः ।

§ २. यश्चेति—यश्च हेमाङ्गदनामा जनपदः । दौर्गत्यनिवासस्य दारिद्र्यनिवासस्य परिजिहीर्षयेव परिहरणेच्छयेव । अभितः समन्तात् घटितैर्योजितैः । धान्यकूटैर्धान्यराशिभिः । आत्मानं निरवकाशयति

नष्ट हो रहा था—जगह-जगह बनी हुई प्याऊओंसे वहाँ किसीको गरमीका अनुभव नहीं होता था । और नयी-नयी उत्पन्न हरी घासके अङ्कुरोंके खानेसे जो प्रसन्न हो रहे थे, जिनकी पूँछोंके छोर पृथिवीतलपर लोट रहे थे, जिनके आगे-आगे चलनेवाले बलवान् साँड़ोंके देखनेके भयसे पथिक दौड़ रहे थे, गतिसंबन्धी वेगसे शब्दायमान मणिमयी क्षुद्रघण्टियोंके शब्दसे जिन्होंने संसारके मध्यभागको मुखरित—शब्दायमान कर दिया था, स्मरणके मार्गमें विहार करनेवाले बछड़ोंके लिए झरते हुए दूधकी धारासे जिन्होंने पृथिवीतलको धो डाला था, कठोर खुरोंसे खुद जानेके कारण उड़ती हुई अत्यधिक धूलिके बहाने गो शब्दकी समानतासे उत्पन्न हुए स्नेहके कारण पृथिवी ही मानो जिनके पीछे-पीछे चली आ रही थी, स्वभावसे ही कुण्डलाकार शिखरोंसे भयंकर सींगोंके बहाने जो दुष्ट जीवोंको दूर करनेके लिए मानो धनुष ही धारण कर रहे थे, और जो होम आदि पवित्र कार्योंके साधन थे ऐसे गोधनोंसे उस देशकी सीमा पवित्र थी ।

§ २. उस देशमें चारों ओर धान्यकी बड़ी-बड़ी राशियाँ लगी रहती थीं, उनसे

१ बालपल्लवैः म०

दिशि दिशि दृश्यमानजिनालयलाञ्छनपञ्चाननविलोकनचकिता इव नोपसर्पन्त्युपद्रवकरिणः । येन च विप्रकीर्णविविधमणिगणमरीचिमालिना जलनिधिविरहविषादः परिह्रियते पङ्कजासनायाः । यस्मै च[1] स्पृहयन्ति निःस्पृहा अपि निर्वाणसुधानिःस्यन्दचन्द्रमसे[2] मुनयः । यस्माच्च सततजाज्वल्यमानजिनपूजाचरुपचनपावकादुपजातभीतिरिव दूरं[3] पलायत कलिः[4] । यत्र च संकल्पसमयावर्जितैर्दानजलप्रवाहैः प्रक्षालित इव प्रलयं प्राप किल्बिषपङ्कः ।

§ ३. तत्र चास्ति समस्तभुवनविख्यातसंपदाभोगा, भोगावतीव भुजङ्गचरितोद्वेगेन भित्त्वा भुवमुत्थिता, नमुचिमथननगरीव निरालम्बनतया नभःस्थलान्निपतिता, माधुर्यकुलभूमिः फल-

निरवकाशं करोति । यत् च जनपदम्, दिशि दिशि प्रतिदिशम्, दृश्यमाना अवलोक्यमाना ये जिनालयास्तेषां लाञ्छनपञ्चाननां चिह्नभूतसिंहानां विलोकनेन चकिता इव भीता इव, उपद्रव एव करिण इत्युपद्रवकरिणो विभ्रमतङ्गजाः । नोपसर्पन्ति न समीपं प्रयान्ति । विप्रकीर्णा यत्र तत्र पतिता ये मणिगणास्तेषां मरीचीनां माला, सास्ति यस्य तेन येन जनपदेन पङ्कजासनाया लक्ष्म्याः । जलनिधिविरहविषादः पितृभूतसागरवियोगदुःखं परिह्रियते दूरीक्रियते । निर्वाणमेव सुधा तस्या निःस्यन्दस्तस्य चन्द्रमास्तस्मै मोक्षप्राप्तिकारयेति यावत् । यस्मै जनपदाय च निःस्पृहा वीतरागा मुनयोऽपि स्पृहयन्ति वाञ्छन्ति 'स्पृहेरीप्सितः' इति चतुर्थी । सततं निरन्तरं जाज्वल्यमानः प्रदह्यमानो जिनपूजाचरुपचनपावको यस्मिन् तस्मात् यस्मात् जनपदाच्च, उपजातभीतिरिव उपजाता भीतिर्यस्य तथाभूत इव कलिः कलिकालः दूरं विप्रकृष्टं पलायत अधावत । यत्र च जनपदे संकल्पसमये प्रतिज्ञावसरं आवर्जिता गृहीतास्तैः दानजलप्रवाहैस्त्यागसलिलधाराभिः प्रक्षालित इव धौत इव किल्बिषपङ्कः पापकर्दमः प्रलयं प्राप नाशमगमत् ।

§ ३. अथ नगरीं वर्णयितुमाह—तत्रेति—तत्र च हेमाङ्गदजनपदे च राजपुरी नाम राजधानी अस्तीति क्रियाकारकसंबन्धः । तद्विशेषणान्याह—समस्तेति—समस्तभुवने निखिललोके विख्यातः प्रसिद्धः संपदाभोगः संपत्तिविस्तारो यस्याः सा । भुजङ्गचरितस्य नागेन्द्रचेष्टितस्योद्वेगेन भुवं पृथिवीं भित्त्वा विदार्य, उत्थिता भोगावतीव पातालपुरीव । निरालम्बनतया निराधारतया नभःस्थलात्

वह ऐसा जान पड़ता था मानो 'दरिद्रताको रहनेके लिए स्थान ही न रहे' इस इच्छासे अपने-आपको अवकाश-रहित कर रहा था। प्रत्येक दिशामें दिखाई देनेवाले जिनालयोंके चिह्नस्वरूप सिहोंके देखनेसे भयभीत होकर ही मानो उपद्रव-रूपी हाथी उस देशके समीप नहीं आते थे। उस देशमें जहाँ-तहाँ नानाप्रकारके मणियोंके समूह-रूपी सूर्य बिखरे हुए थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो वह लक्ष्मीका समुद्रके विरहसे उत्पन्न हुआ विषाद ही दूर कर रहा था। जो निर्वाणरूपी अमृतको झरानेके लिए चन्द्रमाके समान था ऐसे उस देशकी निःस्पृह मुनि भी इच्छा करते थे। उस देशमें जिनेन्द्र देवकी पूजाका नैवेद्य बनानेके लिए सदा अग्नि प्रज्वलित रहती थी इसलिए उससे भयभीत होकर ही मानो कलिकाल दूर भाग गया था और उस देशमें संकल्पके समय गृहीत दान जलके प्रवाहसे धुल जानेके कारण ही मानो पापरूपी कीचड़ नष्ट हो गयी थी।

§ ३. उस हेमाङ्गद देशमें राजपुरी नामकी राजधानी थी। उस राजधानीकी सम्पत्तिका विस्तार समस्त संसारमें प्रसिद्ध था। वह शेषनागके चरित्रसे भयभीत हो पृथिवीको फोड़कर

१ क० ख० ग० प्रतिषु चकारो नास्ति । २ म० चन्द्रमसो मुनयः । ३ क० ख० ग० दूरमपलायत । ४ ग० रविः ।

मञ्जरीव भारतवर्षभूरुहस्य, भवनवलभीमण्डनमुक्तासरमरीचिनिचयकर्बुरिता कर्णचामरिकेव हेमाङ्गदमतङ्गजस्य, मरकतमणिकुट्टिममयूखपत्त्रला पद्मसरसीव कमलाकलहंसीविहारस्य, पातालवासिभिरप्यनालोकितमूलेन गगनचरैरप्यलक्षितशिखरेण पराजितपरनरपतिकरदीकृतकनकोपलपटलघटितेन विघटितकुलगिरितटाभिर्दिगन्तदन्तावलदशनकुलिशकोटिभिरप्यभेद्यसंस्थानेन स्तम्भितजगदुपरमसमयसमीरसंरम्भेण त्रिभुवनलक्ष्मीकनकपादकटककान्तितस्करेण प्राकारेण परिवृता[1] कलशभवकवलितजलनिधिजनितानुशयेन कुशेशयभुवा सावधानमनवधिसलिलमापादितेनेव

निपतिता नमुचिमथननगरीव नमुचिमथन इन्द्रस्तस्य नगरीव स्वर्गपुरीव, माधुर्यस्य कुलभूमिरिति माधुर्यकुलभूमिर्माधुर्यस्य सुनिश्चितस्थानमिति यावत्। अत एव भारतवर्षमेव भूरुहस्तस्य भरतक्षेत्रवृक्षस्य फलमञ्जरीव फलश्रेणिरिव। भवनानां वलभ्य इति भवनवलभ्यो गृहगोपानस्यस्तासां मण्डनान्यलंकारभूता ये मुक्तासरा मौक्तिकमालास्तासां मरीचिनिचयेन किरणकलापेन कर्बुरिता व्याप्ता। अत एव हेमाङ्गद एव मतङ्गजस्तस्य हेमाङ्गदजनपदगजस्य कर्णचामरिकेव श्रवणसमीपस्थचामरिकेव। मरकतमणिकुट्टिमस्य हरितमणिखचितक्षित्याभोगस्य मयूखैः किरणैः पत्त्रला पत्त्रयुक्ता, अत एव कमलैव लक्ष्मीरेव कलहंसी मराली तस्या विहारस्य पद्मसरसीव कमलसरसीव। प्राकारेण वलयेन परिवृता परिवेष्टिता। अथ प्राकारस्य विशेषणान्याह—पातालेति—पाताले वसन्तीत्येवं शीलास्तैरधोलोकनिवासिभिरपि। अनालोकितं मूलं यस्य तेन अदृष्टनिम्नेण। गगने चरन्तीति गगनचरास्तैर्देवविद्याधरैरपि। अलक्षितमनवलोकितं शिखरं यस्य तेन। पराजितपरनृपतिभिः पराभूतप्रत्यर्थिपार्थिवैः करदीकृता राजस्वरूपेण समर्पिता ये कनकोपलाः सुवर्णपाषाणास्तेषां पटलेन समूहेन घटितो रचितस्तेन। विघटितानि खण्डितानि कुलगिरितटानि कुलाचलतीराणि याभिस्ताभिः। दिगन्तदन्तावलानां दिग्गजानां या दशनकुलिशकोटयो रदनपव्यग्रभागास्तैरपि। अभेद्यं संस्थानं यस्य तेनाखण्डिताकारेण। स्तम्भितः प्रतिरुद्धो जगदुपरमसमयस्य जगत्प्रलयकालस्य समीरसंरम्भो वायुप्रकोपो येन तेन। त्रिभुवनलक्ष्म्यास्त्रिजगच्छ्रिया यः कनकपादकटकः सौवर्णपादवलयस्तस्य कान्त्यास्तस्करश्चौरस्तेन परिखाचक्रेण खातवलयेन परिष्कृता परिवृता। अथ परिखाचक्रस्य विशेषणान्याह—कलशेति—कलशभवेनागस्त्येन कवलितो ग्रस्तो यो जलनिधिस्तेन जनितः समुत्पन्नोऽनुशयः पश्चात्तापो यस्य तेन। कुशेशयभुवा ब्रह्मणा सावधानं

ऊपर उठी हुई पातालपुरीके समान जान पड़ती थी अथवा निराधार होनेके कारण आकाशसे गिरी हुई इन्द्रकी नगरी – अमरावतीके समान मालूम होती थी। भारतवर्षरूपी कल्पवृक्षके फलकी मञ्जरीके समान मधुरताकी कुलभूमि थी। महलोंकी छपरियोंको सुशोभित करनेवाली मोतियोंकी मालाओंके समूहसे व्याप्त होनेके कारण हेमाङ्गद देशरूपी हाथीके कानोंके समीप ढुलनेवाली चमरीके समान जान पड़ती थी। वह लक्ष्मी रूपी कलहंसीके विहार करनेके लिए उपयुक्त उस कमलकलित सरोवरके समान जान पड़ती थी जो मरकत मणियोंसे निर्मित फर्शकी किरणोंसे कमल दलसे युक्त था। पातालवासी भी जिसका मूल नहीं देख सके थे और आकाशगामी विद्याधर भी जिसका शिखर नहीं देख सके थे, जो पराजित शत्रु-राजाओंके द्वारा करमें दिये हुए सुवर्णमय पाषाणके समूहसे निर्मित था, कुलाचलोंके तटोंको तोड़नेवाले दिग्गजोंके दाँतरूपी वज्रकी कोटियोंसे भी जिसका आकार अभेद्य था, प्रलय कालकी वायुके प्रकोपको जिसने रोक दिया था, एवं जो त्रिभुवनकी लक्ष्मीके सुवर्णमय पायजेबकी कान्तिका चोर था ऐसे प्राकार—कोटसे वह राजधानी घिरी हुई थी। अगस्त्य ऋषिके

१ म० ख० ग० प्रतिषु प्रावृता

फणभृदावासविश्रान्तगाम्भीर्येण स्नानावतरदवनीपतिमदवारणकपोलतलविगलितदानजलवेणिकाव्याजेन जलनिधिसमुत्कण्ठया यमुनयेव विगाह्यमानेन[1] निजाभोगविस्मयनिपतितैरुपरिचरयुवतिनयनैरिव नीलकुवलयापीडैरकाण्डेऽपि निशां दर्शयता प्रतिफलितभवननिवहभरितजठरतया कुपितसुरपतिकरकल्पितकुलिशपतनभयमग्नमहामहीधरमुदधिमवधीरयता परिखाचक्रेण परिष्कृता, विकसदभिनवसुमनःपरागविसरधूसरितवासरालोकैः पतितपचेलिमफलरसपिच्छिलतलस्खलितपुष्पलावीजनैः अनिभृतपरभृतकूजितमुखरितसहकारैः प्रसवपरिमलतरलमधुकरनिकरान्धकारितैः

यथा स्यात्तथा। अनवधिसलिलमपरिमिततोयम्। आपादितेनेव प्रापितेनेव। फणभृदावासे पाताले विश्रान्तमवसितं गाम्भीर्यमगाधत्वं यस्य तेन। स्नानायावतरन्तो येऽवनीपतिमदवारणा महीपतिमत्तमतङ्गजास्तेषां कपोलतलेभ्यो गण्डस्थलेभ्यो विगलिता पतिता या दानजलवेणिका मदजलसंततिस्तस्या व्याजेन मिषेण। जलनिधिसमुत्कण्ठया सागरोत्सुकया यमुनया गाह्यमानेनेव प्रविश्यमानेनेव। परिखाचक्रं सागरं मत्वा राजमदवारणमदधाराव्याजेन यमुना मिलितेति भावः। निजाभोगेन स्वकीयविस्तारेण यो विस्मय आश्चर्यं तेन निपतितानि तैः। उपरिचरयुवतीनां गगनचरतरुणीनां नयनानि नेत्राणि तैरिव। नीलकुवलयापीडैर्नीलोत्पलसमूहैः। अकाण्डेऽप्यसमयेऽपि निशां रजनीं दर्शयता। प्रतिफलितेन प्रतिबिम्बितेन भवननिवहेन गृहसमूहेन भरितं जठरं मध्यं यस्य, तस्य भावस्तत्ता तया। कुपितेन सुरपतिना करे कल्पितं धृतं यत्कुलिशं वज्रं तस्य पतनभयेन मग्ना ब्रुडिता महीधराः पर्वता यस्मिन् तं तथाभूतम्। उदधिं सागरम्, अवधीरयता तिरस्कुर्वता। उपवनैरुद्यानैरुद्भासमाना शोभमाना। अथोपवनविशेषणान्याह—विकसदिति—विकसतां प्रफुल्लीभवतामभिनवसुमनसां नूतनकुसुमानां परागविसरेण रजःसमूहेन धूसरितो मलिनीकृतो वासरालोको दिनप्रकाशो येषु तैः। पतितेति—पतितानि स्खलितानि यानि पचेलिमानि पक्वानि फलानि तेषां रसेन पिच्छिलं पङ्कयुक्तं यत्तलं भूपृष्ठं तत्र स्खलिताश्छलेन पतिताः पुष्पलावीजना येषु तैः। अनिभृतेति—अनिभृतं चञ्चलं मध्ये मध्ये जायमानमिति यावत् यत् परभृतकूजितं कोकिलकलरवस्तेन मुखरिताः शब्दायमानाः सहकारा आम्रा येषु तैः। प्रसवेति—प्रसवपरिमलेन पुष्पसौगन्ध्येन तरलाश्चपला यतस्ततः संचरन्त इति यावत् ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां निकरेण समूहेनान्ध-

द्वारा पिये हुए समुद्रसे जिन्हें पश्चात्ताप उत्पन्न हो रहा था, ऐसे ब्रह्माजीने बड़ी सावधानीके साथ जिसे मानो अपरिमित जल प्राप्त कराया था, जिसकी गहराई पाताल तक चली गयी थी, स्नानके लिए उतरते हुए राजाके मदोन्मत्त हाथियोंके कपोलतलसे झरे मद-रूपी जलकी धाराके बहाने जो ऐसी जान पड़ती थी मानो उसे समुद्र समझ उत्कण्ठासे यमुना ही आ मिली हो, अपने विस्तारके विस्मयसे प्रतिबिम्बित आकाशगामी स्त्रियोंके नेत्रोंके समान दिखनेवाले नील कमलोंके समूहसे जो असमयमें ही रात्रिको दिखला रही थी, और जो प्रतिबिम्बित महलोंके समूहसे मध्यभागके व्याप्त होनेके कारण कुपित इन्द्रके हाथमें स्थित वज्रके पतनके भयसे छिपे हुए बड़े-बड़े पर्वतोंसे युक्त समुद्रका तिरस्कार कर रही थी ऐसी परिखासे वह राजधानी सुशोभित थी। खिले हुए नूतन फूलोंकी परागके समूहसे जिनमें दिनका प्रकाश धूसरित—मटमैला हो रहा था, गिरे हुए पके फलोंके रससे पङ्किल तलमें जहाँ फूल तोड़नेवाली स्त्रियाँ फिसल-फिसलकर गिर रही थीं, निरन्तर होनेवाली कोयलोंकी कुहू-कुहूसे जहाँ आमके वृक्ष शब्दायमान हो रहे थे, फूलोंकी सुगन्धिसे चञ्चल भ्रमरोंके

[1] म० ग० विगाह्यमानेन।

पाकसुरभितपनसफलहेलाच्छोटनकुपितमर्कटीकोपशमनचतुरशाखामृगलीलाजनितकुतूहलैः पारावतपरस्परसांपरायपतितपुष्पस्तबकतारकिततरुमूलैः उद्वेलवहमानमकरन्दकूलंकषकुल्यालोकनमुदितसेककर्मान्तिकैर्लावण्यतरङ्गितदिगङ्गनामुखैः शिलीमुखपदभग्नवृन्तलम्बमानचम्पकपाटलपुंनागकेसरप्रसवैः कन्दर्पकनकातपत्रकमनीयकर्णिकारहारिभिः वनदेवताधरबन्धुबन्धुरबन्धुजीवबन्धुरैः[2] कुरवकपादपपरिष्वङ्गसफलमाधवीलतायौवनैः उपवनैरुद्भासमाना, मरकतदृषदुपरचिततटाभिः पद्मरागशिलाघटितसोपानपङ्क्तिभिः जलदेवताकुचकलशकौशलमलिम्लुचकमलमुकुलाभिः उन्मिषदसितोत्प-

कारितैस्तिमिरितैः। पाकेति—पाकेन परिणामेन सुरभितं सुगन्धितं यत्पनसफलं तस्य हेलया क्रीडाभावेन यत् आच्छोटनं स्वायत्तीकरणं तेन कुपिता क्रुद्धा या मर्कटी वानरी तस्याः कोपस्य क्रोधस्य शमने दूरीकरणे चतुरो विदग्धो यः शाखामृगो वानरस्तस्य लीलया जनितं कुतूहलं येषु तैः। पारावतेति—पारावतानां कपोतानां परस्परसांपरायेण परस्परकलहेन पतिता ये पुष्पस्तबकाः कुसुमगुच्छकास्तैस्तारकितानि व्याप्तानि तरुमूलानि येषु तैः। उद्वेलेति—उद्वेलं तटमतिक्रान्तं वहमानं यन्मकरन्दं पुष्परसस्तेन कूलंकषा तटोद्घर्षिणी या कुल्या कृत्रिमसरित् तस्या आलोकनेन मुदिताः प्रहृष्टाः सेककर्मान्तिकाः सेचनकर्मकरा येषु तैः। लावण्येति—दिश एवाङ्गना दिगङ्गनास्तासां मुखानि दिगङ्गनामुखानि लावण्येन सौन्दर्येण तरङ्गितानि व्याप्तानि दिगङ्गनामुखानि काष्ठाकामिनीवदनानि येषु तैः। शिलीमुखेति—शिलीमुखानां भ्रमराणां पदैर्भग्नेभ्यः खण्डितेभ्यो वृन्तेभ्यः पुष्पबन्धनेभ्यो लम्बमानाः स्रंसमानाश्चम्पकपाटलपुंनागकेसरप्रसवाः चाम्पेयस्थलारविन्दपुंनागबकुलपुष्पाणि येषु तैः। कन्दर्पेति—कन्दर्पस्य कामदेवस्य कनकातपत्रमिव सुवर्णच्छत्रमिव कमनीयानि मनोहराणि यानि कर्णिकाराणि कर्णिकारपुष्पाणि तैर्हारिभिर्मनोहरैः। वनदेवतेति—वनदेवतानां वनदेवीनामधरबन्धवोऽधरसदृशा बन्धुरा नतोन्नता ये बन्धुजीवा बन्धूकपुष्पाणि तैर्बन्धुरैः सुन्दरैः। कुरवकेति—कुरवकपादपानां कुरवकवृक्षाणां परिष्वङ्गेन समाश्लेषेण सफलं माधवीलतानां यौवनं येषु तैः। विभ्रमदीर्घिकाभिर्विलासवापीभिः दीर्घीकृतं सौभाग्यं यस्याः सा। अथ विभ्रमदीर्घिकाणां विशेषणान्याह—मरकतेति—मरकतदृषद्भिर्हरितमणिभिरुपरचितानि तटानि यासां ताभिः। पद्मेति—पद्मरागशिलाभिर्लोहितमणिशिलाभिः घटिता रचिता सोपानपंक्तिर्यासां ताभिः। जलेति—जलदेवतानां जलदेवीनां कुचकलशकौशलस्य स्तनकलशसौन्दर्यस्य मलिम्लुचाश्चोराः कमल-

---

समूहसे जिनमें अन्धकार फैल रहा था, पक जानेसे सुगन्धित कटहलके फलको अनायास छीन लेनेसे कुपित वानरीका क्रोध शान्त करनेमें चतुर वानरकी लीलासे जिनमें कुतूहल उत्पन्न हो रहा था, कबूतरोंकी परस्परकी लड़ाईसे गिरे फूलोंके गुच्छोंसे जहाँ वृक्षोंके तल व्याप्त हो रहे थे, वेलाको लाँघकर बहनेवाली मकरन्दकी परिपूर्ण नहरके देखनेसे जहाँ सिंचाईका काम करनेवाले सेवक प्रसन्न हो रहे थे, जहाँ दिशा-रूपी स्त्रियोंके मुख सौन्दर्यसे व्याप्त हो रहे थे, भ्रमरोंके पदाघातसे टूटी बोंड़ियोंमें जहाँ चम्पा, गुलाब और नागकेशरके फूल लटक रहे थे, जो कामदेवके स्वर्णमय छत्रके समान सुन्दर कनेरके फूलोंसे मनोहर थे, जो वनदेवियोंके अधरोष्ठके समान सुन्दर दुपहरियाके फूलोंसे नतोन्नत थे, और जहाँ कुरवक वृक्षोंके आलिङ्गनसे माधवी लताओंका यौवन सफल हो रहा था ऐसे उपवनोंसे वह राजधानी सुशोभित हो रही थी। जिनके तट मरकत मणिमय शिलाओंसे निर्मित थे, जिनकी सीढ़ियोंकी पंक्तियाँ पद्मरागमणिमय शिलाओंसे घटित थीं, जिनके कमलोंकी बोंड़ियाँ जलदेवियोंके स्तनकलशोंकी शोभाका अपहरण कर रही थीं, खिले हुए नीलकमलवनके अन्ध-

---

१ म० संपराय। २ म० ग०—बन्धुबन्धुजीवबन्धुरैः।

लवनान्धकारेण दिवसेऽपि रजनीविभ्रमविघटितरथाङ्गमिथुनाभिः अभिषेकदोहलावतरदबलाचरणनूपुररणितश्रवणोद्ग्रीवकलहंसाभिः उड्डीयमानजलचरविहगविधूतपक्षपुटपतितपयःकणकोरकिततटतरुशिखराभिः मृणालसंदोहसंदेहिकादम्बखण्डयमानफेनकलिकादन्तुरतरङ्गाभिः प्रतिफलननिभेन गगनतलपरिभ्रमणरभसजनितपिपासाशमनकौतुककृतावतरणेनेव तरणिना रमणीयतां बिभ्राणाभिः विभ्रमदीर्घिकाभिर्दीर्घीकृतसौभाग्या, क्वचित्पुरोनिहितविष्टरपुञ्जितं स्फुरितकरनखमयूखसंपर्कपुनरुदीरितं निजवदनजनिततुहिनकरशङ्कासमुपनततारकानिकरमिव दृश्यमानं प्रसूनराशिम् आरणितमणिपारिहार्यवाचालबाहुलतिकाविभ्रमाभिराममाबध्नन्तीभिः[1] व्याजीकृत्य पुष्पक्रयं वक्रोक्तिमभि-

मुकुला यासु ताभिः। उन्मिषदिति—उन्मिषद् विकसद् यदसितोत्पलवनं नीलोत्पलकाननं तदेवान्धकारस्तेन दिवसेऽपि रजनीविभ्रमेण रजनीसंदेहेन विघटितानि वियुक्तानि रथाङ्गमिथुनानि चक्रवाकयुगलानि यासु ताभिः। अभिषेकेति—अभिषेकदोहलेन स्नानवाञ्छयावतरन्तीनामबलानां चरणनूपुराणां पादमञ्जरिकाणां रणितस्य शब्दस्य श्रवणेनोद्ग्रीवा ऊर्ध्वग्रीवाः कलहंसाः कादम्बा यासु ताभिः। उड्डीयेति—उड्डीयमानानामुत्पततां जलचरविहगानां जलचरपक्षिणां विधूतेभ्यः कम्पितेभ्यः पक्षपुटेभ्यो गरुत्प्रदेशेभ्यः पतितैः पयःकणैः शीकरैः कोरकितानि संजातकुड्मलानि तटतरुशिखराणि तीरवृक्षाग्राणि यासां ताभिः। मृणालेति—मृणालसंदोहस्य बिससमूहस्य संदेहिभिः कादम्बैः कलहंसैः खण्ड्यमाना विदार्यमाणा याः फेनकलिकाः डिण्डीरखण्डानि तैर्दन्तुरास्तरङ्गा यासु ताभिः। प्रतिफलनेति—प्रतिफलननिभेन प्रतिबिम्बव्याजेन गगनतले व्योममध्ये परिभ्रमणं संचरणं तस्य रभसेन वेगेन जनिता समुत्पादिता या पिपासा तृड् तस्याः शमनस्य शान्तीकरणस्य कौतुकेन कृतमवतरणं येन तथाभूतेनेव तरणिना सूर्येण रमणीयतां सुन्दरतां बिभ्राणाभिर्दधतीभिः। विपणिपथेन आपणमार्गेण कुड्मलितं संकोचितं कुबेरनगरगौरवमलकापुरीमाहात्म्यं यया सा। अथ विपणिपथस्य विशेषणान्याह—क्वचिदिति—क्वचित् कुत्रापि पुरोनिहितमग्रे स्थापितं यद् विष्टरमासनं तत्र पुञ्जितं राशीकृतम्। स्फुरितेति—स्फुरितानां देदीप्यमानां करनखमयूखानां हस्तनखरकिरणानां संपर्केण पुनरुदीरितं पुनरुक्तम्। निजेति—निजवदनैः स्वकीयमुखैर्जनिता समुद्भाविता या तुहिनकरशङ्का शशिसंदेहस्तया समुपनतः समुपस्थितो यस्तारकानिकरो नक्षत्रसमूहस्तमिव दृश्यमानं प्रसूनराशिं पुष्पपुञ्जम्। आरणितेति—आरणितानि शब्दायमानानि यानि मणिपारिहार्याणि रत्नवलयानि तैर्वाचालाः शब्दायमाना या बाहुलतिका भुजवल्लर्यस्तासां विभ्रमैर्विलासैरभिरामं यथा स्यात्तथा

कारसे जहाँ दिनमें भी रात्रिका भ्रम होनेसे चकवा-चकवियोंके युगल बिछुड़ गये थे, स्नानकी इच्छासे उतरती हुई स्त्रियोंके नूपुरोंकी झनकार सुननेसे जहाँ कलहंस पक्षी ऊपरको गर्दन उठाने लगते थे, उड़ते हुए जलचर पक्षियोंके फड़फड़ाते हुए पङ्खोंकी पुटसे गिरे जलके कणोंसे जिनके तटवर्ती वृक्षोंके शिखर फूलोंकी बोंड़ियोंसे युक्तके समान जान पड़ते थे, मृणालके समूहका सन्देह करनेवाले कलहंसोंके द्वारा खण्डित फेनकी कलिकाओंसे जिनकी तरङ्गें व्याप्त थीं और प्रतिबिम्बके बहाने आकाशतलमें परिभ्रमण-सम्बन्धी वेगसे उत्पन्न प्यासको शान्त करनेके कौतुकसे ही मानो जिसने नीचे अवतरण किया था ऐसे सूर्यसे जो सुन्दरताको धारण कर रही थीं उन विलासवापिकाओंसे उस राजधानीका सौभाग्य निरन्तर बढ़ रहा था। वह राजधानी जिस बाजारसे अलकापुरीके वैभवको तिरस्कृत कर रही थी वह कहीं, सामने बिछाये हुए आसनपर एकत्रित, चमकते हुए हाथके नाखूनोंकी किरणोंसे पुनरुक्त और अपने मुखमें चन्द्रमाकी शङ्कासे उपस्थित ताराओंके समूहके समान दिखनेवाले फूलोंकी राशिको जो शब्दायमान मणिमय आभूषणोंसे शब्द करनेवाली भुज-लताओंके हाव-भावसे सुन्दरता

१ म० –माबध्नतीभिः।

दधता धूर्तलोकेन विस्मृतहस्ताङ्गुलिन्यस्तसुमनोबन्धनाभिरपि कुसुमसौरभादधिकपरिमलैरात्मनिःश्वासैराकुलीक्रियमाणमधुकरमालाभिः मालाकारपुरन्ध्रीभिर्नीरन्ध्रितेन क्वचिद्विशङ्कटपेटकप्रसारितैः प्रसरदविरलसौरभसंपादितघ्राणपारणैर्युगपदुपलक्ष्यमाणैर्निखिलर्तुफलैः फलितलोकलोचननिर्माणेन क्वचित्सौरभलुब्धभुजङ्गसगृह्यमाणैर्मलयजैर्विडम्बितमलयगिरिपरिसरारण्येन क्वचित्प्रसार्यमाणस्फारकर्पूरपरागपाण्डुरतया[1] लहरीपवनसमुत्क्षिप्तशुक्तिपुटमुक्तमुक्ताफलपुलकितामुदधिवेलां विहसता क्वचिद्वदान्यजनताजटिला नगरीयमिति वितरणकलापरिचयाय धरणीतलमवतीर्णैः कालमेघैरिव कृष्णकम्बलैस्तिमिरितेन-क्वचित्क्रेतृहृदयरुचिवर्धनाय प्रसार्यमाणैः शारदपयोधरावधीरणधुरीणै

आबध्नन्तीभिः गुम्फन्तीभिः। पुष्पक्रयं व्याजीकृत्य वक्रोक्तिं कुटिलवाणीम् अभिदधता कथयता धूर्तलोकेन विदग्धजनेन विस्मृतं निर्ध्यातं हस्ताङ्गुलिन्यस्तानां कराङ्गुलिस्थापितानां सुमनसां पुष्पाणां बन्धनं ग्रन्थनं याभिस्ताभिः। तथाभूताभिरपि कुसुमसौरभात्पुष्पसौगन्ध्यात् अधिकः परिमलो येषां तैः, आत्मनिःश्वासैः स्वकीयश्वासोच्छ्वासैः। आकुलीक्रियमाणा व्यग्रीक्रियमाणा मधुकरमाला भ्रमरपङ्क्तिर्याभिस्ताभिः मालाकाराणां पुरन्ध्र्यस्ताभिर्मालासृक्पत्नीभिः नीरन्ध्रितेन व्याप्तेन। क्वचिद्विशङ्कटेति—कुत्रापि विशङ्कटपेटकेषु विशालकरण्डकेषु प्रसारितानि विस्तारितानि तैः। प्रसरता अविरलसौरभेण निरन्तरसौगन्ध्येन संपादिता घ्राणपारणा नासाभोजनानि यैस्तैः। युगपदेककालावच्छेदेन, उपलक्ष्यमाणैर्दृश्यमानैः। निखिलाश्च ते ऋतव इति निखिलर्तवस्तेषां फलानि तैः षड्ऋतुफलैः फलितं लोकलोचनानां नरनयनानां निर्माणं यत्र तेन। क्वचिदिति—क्वचित्, सौरभलुब्धैः सौगन्ध्यलुब्धैर्भुजङ्गैः सर्पैः संगृह्यमाणैः मलयजैश्चन्दनैः, विडम्बितं तिरस्कृतं मलयगिरिपरिसरारण्यं मलयाचलनिकटवनं येन तेन। क्वचित्प्रसार्यमाणेति—क्वचित्, प्रसार्यमाणेन स्फारकर्पूरपरागेण प्रचुरघनसारधूल्या या पाण्डुरता धवलता तया। लहरीपवनेन तरङ्गवायुना समुत्क्षिप्तानि समुन्नमितानि यानि शुक्तिपुटानि तेभ्यो मुक्तानि पतितानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तैः पुलकितां व्याप्ताम् उदधिवेलां सागरतटीं विहसता। क्वचिद्वदान्येति—क्वचित् इयं नगरी जनानां समूहो जनता वदान्या चासौ जनता चेति वदान्यजनता तया जटिला दानशीलजनसमूहव्याप्ता। इति हेतोः वितरणकलाया दानकलायाः परिचयोऽभ्यासस्तस्मै। धरणीतलं पृथिवीपृष्ठम्। अवतीर्णैरवतीर्य स्थितैः कालमेघैरिव श्यामलघनैरिव कृष्णकम्बलैः तिमिरितेन संजातं तिमिरं यत्र तेन ध्वान्तव्याप्तेन। क्वचित् क्रेतृहृदयेति—क्वचित् क्रेतॄणां क्रायकाणां हृदयस्य या रुचिरिच्छा तस्या वर्धनाय प्रसार्यमाणैः विस्तार्यमाणैः। शरदि भवाः शारदास्ते च ते पयोधराश्च तेषामवधीरणे धुरीणानि तैः शरन्मेघतिरस्कारनिपुणैः।

प्रकट करती हुई गूँथ रही थीं, फूल खरीदनेके बहाने कुटिल शब्द कहनेवाले धूर्त जनोंके कारण जो हाथकी अंगुलियोंमें स्थित फूलोंका गूँथना भूल गयी थीं और फूलोंकी सुगन्धिसे भी अधिक सुगन्धित अपने श्वासोच्छ्वाससे जो भ्रमरोंके समूहको आकुल कर रही थीं, ऐसी मालिनियोंसे ठसाठस भरा था। कहीं बड़ी-बड़ी टोकरियोंमें फैलाकर रखे हुए, फैलती हुई बहुत भारी सुगन्धिसे नासिकाको पारणा करानेवाले एवं एक साथ दिखाई देनेवाले समस्त ऋतुओंके फलोंसे मनुष्योंके नेत्रोंकी रचनाको सफल कर रहा था। कहीं सुगन्धिसे लुभाये हुए सर्पोंसे अङ्गीकृत चन्दनके द्वारा मलयाचलके तटवर्ती वनका अनुकरण कर रहा था। कहीं फैलाये जानेवाले अत्यधिक कपूरकी परागसे सफेद-सफेद होनेके कारण तरङ्गोंकी वायुसे उछली सीपोंकी पुटसे गिरे मोतियोंसे व्याप्त समुद्रकी वेलाकी हँसी कर रहा था। कहीं 'यह नगरी उदार मनुष्योंसे व्याप्त है' यह सुनकर दानकी कला सीखनेके लिए पृथिवीतलपर उतरे हुए काले-काले मेघोंके समान कृष्ण-कम्बलोंसे अन्धकार उत्पन्न कर रहा था। कहीं खरीद-

---

१ म० पाण्डरतया।

पराजितपारिजातदुकूलैरनुकूलस्पर्शसुखसंपादनक्षमैः क्षौमैरुन्मिषत्क्षीरोदशङ्केन क्वचित्पुनर्मथनचकितजलधिढौकितैरिव गाढोद्गच्छदतुच्छमहःस्तबकितैः कौस्तुभप्रतिमल्लैरनुपलक्षितत्रासकलङ्कादिदोषैः अहिमकरकुटुम्बडिम्भैरिव क्षितितलचङ्क्रमणकुतूहलादम्बरतः कृतावतारैर्माणिक्यैर्मध्यदिनेऽप्यनुज्झितदिवसमुखलावण्येन क्वचित्प्रतिफलिततरणिकिरणधारा[1]मरीचिनिर्गमप्रतिहतजननयनपरिस्पन्दैः परस्परसंघट्टजनितक्रेङ्काराराववाचालैः कांस्यमण्डलैः समसमयसमुदितानेकदिनकरकरनिकरविराजितस्य प्रलयसमयस्यानुकुर्वता विपणिपथेन कुड्मलित[2]कुबेरनगरगौरवा, सान्द्रीकृतवर्णसुधाच्छुरणधवलिततोरणवितर्दिकैः अनुद्वारदेशनिहितकदलीपूगकथितमहोत्सवप्रबन्धैः उत्तप्त-

पराजितानि तिरस्कृतानि पारिजातदुकूलानि कल्पवृक्षवस्त्राणि यैस्तैः। अनुकूलस्पर्शेन सुखस्य संपादने क्षमाणि तैः। एवंभूतैः क्षौमैः क्षौमवस्त्रैः। उन्मिषन्ती क्षीरोदशङ्का यत्र तेन प्रकटीभवत्क्षीरसागरसंदेहेन। क्वचित्पुनरिति—क्वचित्, पुनर्मथनाच्चकितो भीतो यो जलधिस्तेन ढौकितानि समर्पितानि तैरिव। गाढं सान्द्रं यथा स्यात्तथोद्गच्छत् यद् अतुच्छमहो विपुलतेजस्तेन स्तबकितैर्व्याप्तैः। कौस्तुभप्रतिमल्लैः कौस्तुभमणिसदृशैः। अनुपलक्षिता अदृष्टास्त्रासकलङ्कादिदोषा मणिगतदोषविशेषा येषु तैः। क्षितितले पृथिवीतले चङ्क्रमणस्य कुतूहलं तस्मात्। अम्बरतो गगनात् कृतावतारैर्विहितावतरणैः। अहिमकरकुटुम्बडिम्भैरिव अहिमकरः सूर्यस्तस्य कुटुम्बस्य परिजनस्य डिम्भा बालकास्तैरिव 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः। माणिक्यैर्मणिभिः। मध्यदिनेऽपि मध्याह्नेऽपि अनुज्झितमत्यक्तं दिवसमुखस्य प्रत्यूषस्य लावण्यं यत्र तेन। क्वचित्प्रतिफलितेति—क्वचित् प्रतिफलितानां प्रतिबिम्बितानां तरणिकिरणानां सूर्यरश्मीनां या धारा मरीचयः संततिबद्धकिरणास्तासां निर्गमेन प्रतिहतः प्रतिविघ्नितो जननयनानां लोकलोचनानां परिस्पन्दो यैस्तैः। परस्परसंघट्टेन मिथोऽभ्याघातेन जनितो यः क्रेङ्कारारावः शब्दविशेषस्तेन वाचालानि शब्दायमानानि तैः। कांस्यमण्डलैः कांस्यनिर्मितभाजनसमूहैः। समसमयं युगपत् समुदिता येऽनेकदिनकरास्तेषां करनिकरेण किरणकलापेन विराजितस्य शोभितस्य प्रलयसमयस्य प्रलयकालस्य अनुकुर्वता विपणिपथेन। प्रासादैः सौधैः प्रसाधिता समलंकृता। अथ प्रासादानां विशेषणान्याह—सान्द्रीकृतेति—सान्द्रीकृतः सघनीकृतो वर्णो यस्याः सा तथाभूता या सुधा चूर्णकं तस्याश्छुरणेन लेपनेन धवलिता शुक्लीकृता तोरणवितर्दिका बहिर्द्वारवेदिका येषां तैः। अनुद्वारेति—द्वारदेशं द्वारदेशं प्रत्यनुद्वारदेशं तत्र निहितेन स्थापितेन कदलीपूगेन रम्भास्तम्भसमूहेन कथितो निवेदितो महोत्सवप्रबन्धो येषु तैः।

दारोंके हृदयकी रुचि बढ़ानेके लिए फैलाये हुए, शरद् ऋतुके मेघोंका तिरस्कार करनेमें निपुण, कल्पवृक्षोंसे प्राप्त उत्तम वस्त्रोंको पराजित करानेवाले एवं अनुकूल स्पर्श जन्य सुखके प्राप्त करानेमें समर्थ क्षौम वस्त्रोंसे क्षीर समुद्रकी शङ्का प्रकट कर रहा था। कहीं पुनर्मथनके भयसे भयभीत समुद्रके द्वारा भेजे हुए, अत्यधिक निकलते हुए विशाल तेजसे व्याप्त, कौस्तुभमणिके समकक्ष, त्रास-कलङ्क आदि दोषोंसे रहित, एवं पृथिवीतलपर घूमनेके कुतूहलसे नीचे उतरे हुए सूर्यके कुटुम्बके बालकोंके समान मणियोंसे मध्याह्नकालमें भी प्रातःकालसम्बन्धी सौन्दर्यको नहीं छोड़ रहा था और कहीं प्रतिबिम्बित सूर्यकी किरणोंसे सफेद-सफेद दिखनेवाली किरणोंके निकलनेसे मनुष्योंके नेत्रोंके संचारको रोकनेवाले, तथा परस्परकी टक्करसे उत्पन्न क्रेङ्कार ध्वनिसे शब्दायमान कांस्यनिर्मित वस्तुओंके समूहसे एक साथ उदित अनेक सूर्योंकी किरणोंके समूहसे सुशोभित प्रलय कालका अनुकरण कर रहा था। अत्यन्त गाढ़ी कलई (चूने)के लेपसे जिनके तोरण और वेदिकाएँ सफेद थीं, द्वारोंके समीप खड़े किये हुए कदली वृक्षोंके समूहसे जिनके बड़े-बड़े उत्सव प्रकट हो रहे थे, जो तपाये हुए स्वर्णसे निर्मित

१. म. किरणधवलमरीचि। २ ख. ग. कुद्मलित।

हाटकघटितकवाटयुगलभूषिते. योषिदङ्गलावण्यचन्द्रिकाचर्वणवितृष्णचकोरावहेलितचन्द्रमरीचिसमुद्गमैः संगीतशालाप्रहतमृदङ्गमन्द्रघोषजनितजलधरनिनदशङ्कताण्डवितकेलिशिखावलैः ज्वलदनलकीलसंदेहिलीलाकुरङ्गशावकपरिह्रियमाणरत्नकुट्टिममहःपल्लवैः पवनचलितशिखरकेतुपटताडिततपनरथकूबरैः उपरितलखचितवलभिदुपलनीलिमशैवलितसुरसरिदम्बुपूरैः निर्यूहनिहितानेकरत्नभुवा मयूखकन्दलेन महेन्द्रशरासनशोभामम्भोदसमयमन्तरेणापि पयोधरेभ्यः प्रतिपादयद्भिः मणिमयभित्तितया प्रसरद्भिः उभयतः किरणलतावितानैर्विबुधराजमन्दिरविजिगीषया विहायसमुत्पतितुमाबद्धपक्षैरिव[1] लक्ष्यमाणैः शृङ्गनिखातकेतुदण्डच्छलेन पुरयुवतिवदनसौकुमार्यचोरं

उत्तप्तेति—उत्तप्तं निष्टप्तं यद् हाटकं सुवर्णं तेन घटितानि यानि कवाटयुगलानि तैर्भूषितैः। योषिदङ्गेति—योषितां ललनानामङ्गस्य शरीरस्य लावण्यमेव सौन्दर्यमेव चन्द्रिका ज्योत्स्ना तस्याश्चर्वणेनास्वादनेन वितृष्णा संतुष्टा ये चकोरा जीवंजीवास्तैरवहेलितोऽनादृतश्चन्द्रमरीचीनामिन्दुदीधितीनां समुद्गमो येषु तैः। संगीतेति—संगीतशालासु प्रहतानां ताडितानां मृदङ्गानां मुरजानां मन्द्रघोषेण गम्भीरशब्देन जनिता समुत्पादिता या जलधरनिनदशङ्का घनगर्जनसंशयस्तया ताण्डविताः कृतताण्डवाः केलिशिखावलाः क्रीडामयूरा येषु तैः। ज्वलदिति—ज्वलन्तो देदीप्यमाना येऽनलकीला ज्वलनज्वालास्तान् संदिहन्तीत्येवंशीला ये कुरङ्गशावका हरिणपोतास्तैः परिह्रियमाणा मुच्यमाना रत्नकुट्टिमस्य मणिखचितक्षित्याभोगस्य महःपल्लवास्तेजःकिसलया येषु तैः। पवनेति—पवनेन चलितं शिखरं यस्य तथाभूतेन केतुपटेन वैजयन्तीवस्त्रेण ताडितस्तपनरथस्य सूर्यस्यन्दनस्य कूबरो दण्डो यैस्तैः। उपरितलेति—उपरितले ऊर्ध्वप्रदेशे खचिता निःस्यूता ये वलभिदुपला इन्द्रनीलमणिविशेषास्तेषां नीलिम्ना शैवलितं जलनीलीयुतं सुरसरितो मन्दाकिन्या अम्बुपूरं जलप्रवाहो यैस्तैः। निर्यूहेति—निर्यूहेषु मत्तवारणेषु निहितानि खचितानि यान्यनेकरत्नानि तेभ्यो भवतीति तथाभूतेन मयूखकन्दलेन किरणकलापेन। अम्भोदसमयमन्तरेणापि वर्षाकालं विनापि पयोधरेभ्यो मेघेभ्यो महेन्द्रशरासनशोभां सुरेन्द्रचापसुषमां प्रतिपादयद्भिः। मणिमयेति—मणिमय्यो भित्तयो येषां ते मणिभित्तयस्तेषां भावस्तत्ता तया रत्नमयकुड्यत्वेन, उभयतः प्रसरद्भिः किरणलतावितानैर्मयूखवल्लीसमूहैः। विबुधानां देवानां राजा विबुधराजस्तस्य मन्दिरस्य भवनस्य विजिगीषया विजेतुमिच्छया विहायसं गगनम्। उत्पतितुमाबद्धपक्षैरिव गृहीतगरुद्भिरिव लक्ष्यमाणैर्दृश्यमानैः। शृङ्गेति—शृङ्गेषु शिखरेषु निखातो यः केतुदण्डः पताकादण्डस्तस्य छलेन, पुरयुवतीनां नगरतरुणीनां वदनसौकुमार्यस्य

किवाड़ोंकी जोड़ियोंसे सुशोभित थे, स्त्रियोंके शरीरकी सुन्दरतारूपी चन्द्रिकाके पानसे तृष्णारहित चकोर जहाँ चन्द्रमाकी किरणोंके उदयकी अवहेलना करते थे, संगीत शालाओंमें ताड़ित मृदङ्गोंके गम्भीर शब्दसे उत्पन्न मेघ गर्जनाकी शङ्कासे जिनमें क्रीडाके मयूर ताण्डव नृत्य कर रहे थे, जलती हुई अग्निकी ज्वालाओंका सन्देह करनेवाले क्रीड़ा मृग जिनमें रत्नमयी फर्शोंके कान्तिरूप पल्लवोंको दूरसे ही छोड़ रहे थे, जिनके शिखरपर लगी हुई वायुकम्पित पताकाओंके वस्त्रसे सूर्यके रथका धुरा ताड़ित होता रहता था, जिनके ऊपरी भागमें खचित इन्द्रनील मणियोंकी नीलिमासे आकाशगङ्गाका जलप्रवाह शैवालसे युक्तके समान जान पड़ता था, जो शिखरोंमें लगे अनेक रत्नोंसे उत्पन्न किरणोंके समूहसे वर्षा ऋतुके विना ही मेघोंके लिए इन्द्रधनुषकी शोभा प्रदान कर रहे थे, मणिमयी दीवालोंके होनेसे दोनों ओर फैलनेवाली किरणरूपी लताओंके समूहसे जो इन्द्रके मन्दिरको जीतनेकी इच्छासे आकाशमें उड़नेके लिए पङ्खोंको धारण करते हुए के समान जान पड़ते थे, शिखरोंपर लगे पताका दण्डके बहाने जो

१ क० आबद्धयक्षैरिव।

चन्द्रमसं ग्रहीतुमुत्तम्भितबाहुस्तम्भैरिव शुम्भद्भिः दुर्धरधरणीधारणखेदितमेदिनीपतिबाहुमाराधयितुमागतैः कुलगिरिभिरिव गुरुभिः प्रासादैः प्रसाधिता, आकर्णकुण्डलितकुसुमशरकोदण्डनिपतितविशिखभिन्नहृदयगलितरुधिरपटलपाटलकुङ्कुमपङ्किलपयोधरभराभिः कान्तिसलिलशीकरपरिपाटीमनोहरं हारमुद्वहन्तीभिर्विलासहसितविसर्पिणा दशनकिरणविसरेण त्र्यम्बकललाटाम्बकनिर्यदनलदग्धं रतिपतिममृतेनेव सिञ्चन्तीभिः[1] गरुत्मदुपलताटङ्कतरलरश्मिपलाशपेशलमुखकमलाभिः अयुग्मशरसमरनासीरभटान् विवेकजलधिमथनमन्दरान् मन्थरमधुरपरिस्पन्दानिन्दीवरकलिकानुकारिणः कटाक्षान्विक्षिपन्तीभिः मदनमहाराजधवलातपत्रबन्धुचन्दनतिलकभासमानभालरेखाभिः

मुखमार्दवस्य चोरस्तं चन्द्रमसं ग्रहीतुम्, उत्तम्भिता उत्थापिता बाहुस्तम्भा यैस्तथाभूतैरिव शुम्भद्भिः शोभमानैः। दुर्धरेति—दुर्धरा गुरुत्वेन दुर्भरा या धरणी पृथिवी तस्या धारणेन खेदितः खेदं प्रापितो यो मेदिनीपतिबाहुर्नृपतिभुजस्तम् आराधयितुं सेवितुम् आगतैः कुलगिरिभिरिव कुलाचलैरिव गुरुभिर्विशालैः प्रासादैः। वारवामनयनाभिर्वेश्याभिर्विराजिता। अथ वारवामनयनानां विशेषणान्याह—आकर्णेति—आकर्णं कर्णपर्यन्तं कुण्डलितं वक्रीकृतं यत् कुसुमशरकोदण्डमदनशरासनं तस्मान्निपतितैर्निःसृतैर्विशिखैर्बाणैर्भिन्नं खण्डितं यद् हृदयं तस्माद् गलितं निःसृतं यद् रुधिरपटलं रक्तसमूहस्तद्वत् पाटलं रक्तवर्णं यत् कुङ्कुमं केशरं तेन पङ्किलः पङ्कयुक्तः पयोधरभरो वक्षोजभरो यासां ताभिः। कान्तीति—कान्तिरेव सलिलमिति कान्तिसलिलं दीप्तिनीरं तस्य शीकराणां कणानां या परिपाटी परम्परा तद्वन्मनोहरं हारं मौक्तिकमालाम् उद्वहन्तीभिर्दधतीभिः। विलासेति—विलासहसितेन विभ्रमहास्येन विसर्पति प्रसरतीत्येवंशीलस्तेन दशनकिरणविसरेण दन्तदीधितिसमूहेन, त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य स त्र्यम्बकः शिवस्तस्य ललाटाम्बकाद् भाललोचनात् निर्यन् निर्गच्छन् योऽनलस्तेन दग्धो भस्मसात्कृतस्तम् रतिपतिं कामम्, अमृतेन पीयूषेण सिञ्चन्तीभिरिव। गरुत्मदिति—गरुत्मदुपलानां गरुडमणीनां यानि ताटङ्कानि कर्णाभरणानि तेषां तरलरश्मयश्चञ्चलमयूखा एव पलाशानि तैः पेशलं मनोहरं मुखकमलं यासां ताभिः। अयुग्मेति—अयुग्मशरो मदनस्तस्य समरस्य युद्धस्य नासीरभटाः प्रधानयोधास्तान्, विवेक एव जलधिः सागरस्तस्य मथने मन्दरा मन्दराचलास्तान्, मन्थरो मन्दो मधुरो मनोहरश्च परिस्पन्दो येषां तान्, इन्दीवरकलिका उत्पलदलान्यनुकुर्वन्तीत्येवंशीलास्तान् कटाक्षान् केकरान् विक्षिपन्तीभिश्चालयन्तीभिः। मदनेति—मदनमहाराजस्य कामभूपालस्य यद् धवलातपत्रं श्वेतच्छत्रं तस्य बन्धुः सदृशं यच्चन्दनतिलकं तेन भासमानाः शोभमाना

नगरकी स्त्रियोंके मुखकी सुकुमारताको चुरानेवाले चन्द्रमाको पकड़नेके लिए भुजरूप स्तम्भको ऊपर उठाये हुए के समान सुशोभित हो रहे थे, और जो पृथिवीका गुरुतर भार धारण करनेसे खेदित राजभुजाकी सेवाके लिए आये हुए कुलाचलोंके समान जान पड़ते थे····ऐसे बड़े-बड़े महलोंसे वह राजधानी सुशोभित थी। और कानों तक खींचे हुए कामदेवके धनुषसे निकले बाणोंसे खण्डित हृदयसे झरते रुधिर समूहके समान लाल-लाल केशरसे जिनके स्तनोंका भार पङ्किल हो रहा था, जो कान्ति रूपी जलके छींटोंकी परम्पराके समान मनोहर हारको धारण कर रही थीं, जो विलासपूर्ण हास्यके समय फैलनेवाले दाँतोंकी किरणोंके समूहसे महादेवके ललाटसम्बन्धी नेत्रसे निकली अग्निसे जले कामदेवको अमृतके द्वारा ही मानो सींच रही थीं, गरुडमणियोंसे निर्मित कर्णाभरणकी चञ्चल किरणरूपी पत्तोंसे जिनके मुखरूपी कमल अत्यन्त सुन्दर जान पड़ते थे, जो कामदेवके युद्धस्थलके सुभट, विवेकरूपी समुद्रको मथनेके लिए मन्दरगिरि, मन्द और मनोहर संचारसे युक्त, तथा नीलकमलकी कलिकाओंका अनुकरण करनेवाले कटाक्षोंको चला

[1] म० सिञ्चतीभिः।

आननविनिहितनवनलिनसंदेहनिपतदलिकुलनीलकुन्तलाभिः अनादरनहनशिथिलकबरीभरनिरवकाशितपश्चाद्भागाभिः वारवामनयनाभिर्विराजिता, राजपुरी नाम राजधानी।

§ ४. यस्यां च परितोभासमानभगवदर्हदालयलङ्घनभयादपहाय विहायसा गतिमधःसंचरमाण इव भवनमणिकुट्टिमेषु प्रतिमानिभेन विभाव्यते भानुमाली। यस्यां च नीरन्ध्रकालागुरुधूमतिमिरितायां[1] वासरेऽप्यभिसारमनोरथाः फलन्ति पक्ष्मलदृशाम्। यत्र च नितम्बिनीवदनचन्द्रमण्डलेषु न निवसति कदाचिदभ्यर्णकर्णपाशजनितनहनशङ्क इव कलङ्करूपः कुरङ्गः। यस्याश्च सालः परिखासलिलसिक्तमूलतया कुसुमितमिव वहति मिलदुडुनिकरमनोहरं शिखरम्[2]। यस्याश्च प्रतापविनतपरनर-

भालरेखा यासां ताभिः। आननेति—आनने मुखे विनिहितो यो नवनलिनस्य नूतनारविन्दस्य संदेहो विभ्रमस्तेन निपतता पर्यापततालिकुलेन भ्रमरसमूहेन नीलाः कुन्तलाः अलका यासां ताभिः। अनादरेति—अनादरं यथा स्यात्तथा नहनेन बन्धनेन शिथिलो यः कबरीभरो धम्मिलसमूहस्तेन निरवकाशितः पश्चाद्भागो पृष्ठांशो यासां ताभिः। एवंभूताभिर्वेश्याभिर्विराजिता शोभिता राजपुरी नाम राजधानी।

§ ४. अथ तामेव नगरीं वर्णयितुमाह यस्यामिति—यस्यां च राजपुर्यां परितः समन्ताद् भासमानाः शोभमाना ये भगवदर्हतामालया मन्दिराणि तेषां लङ्घनस्यातिक्रमणस्य भयं तस्मात् विहायसा गगनेन गतिमपहाय त्यक्त्वा भवनमणिकुट्टिमेषु भवनानां मणिकुट्टिमानि तेषु प्रासादमणिखचितक्षित्याभोगेषु प्रतिमानिभेन प्रतिबिम्बव्याजेन भानुमाली सूर्योऽधःसंचरमाण इवाधो भ्रमन्निव विभाव्यते प्रतीयते। यस्यां चेति—नीरन्ध्रेण सान्द्रेण कालागुरुधूमेन तिमिरितान्धकारिता तस्यां यस्यां नगर्यां वासरेऽपि दिवसेऽपि पक्ष्मला दृशो यासां तास्तासां नारीणाम्, अभिसारस्य मनोरथा इत्यभिसारमनोरथा भर्तृगृहाभिगमनाभिलाषा फलन्ति सफला जायन्ते। यत्र चेति—यत्र च नगर्यां नितम्बिनीनां नारीणां वदनान्येव मुखान्येव चन्द्रमण्डलानि तेषु कदाचिदपि जातुचिदपि, अभ्यर्णकर्णपाशेन निकटस्थकर्णालंकाररज्जुना जनिता समुत्पादिता नहनशङ्का बन्धनसंशीतिर्यस्य तथाभूत इव कलङ्करूपो लाञ्छनमयः कुरङ्गो मृगो न निवसति। यस्याश्चेति—यस्याश्च नगर्याः सालः प्राकारः परिखासलिलेन सिक्तं मूलं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया कुसुमितमिव पुष्पितमिव मिलता-उडुनिकरेण नक्षत्रनिचयेन मनोहरं सुन्दरं शिखरमग्रभागं वहति। यस्याश्चेति—यस्या नगर्याः, प्रतापेन तेजसा विनता नम्रीभूता ये परनरपतयः शत्रुभूपालास्तैः करदीकृताः करत्वेन प्रदत्ता ये करिणो गजास्तेषां करटेभ्यो गण्डस्थलेभ्यो निर्यत् निःसरत् यन्मदजलं दानसलिलं तेन जम्बालिताः

रही थीं, कामदेव रूपी महाराजके सफेद छत्रकी समानता करनेवाले चन्दनके तिलकसे जिनके ललाटकी रेखाएँ शोभायमान थीं, जिनके नीले-नीले कुन्तल, मुखमें उत्पन्न नूतन कमलके सन्देहसे गिरते हुए भ्रमरसमूहके समान जान पड़ते थे और अनादरपूर्वक बाँधनेसे नीचेकी ओर लटकती हुई चोटीके भारसे जिनका पिछला भाग अवकाशरहित हो रहा था, ऐसी वेश्याओंसे वह राजधानी अत्यन्त सुशोभित थी।

§ ४. जिस नगरीके भवनोंके मणिमयी फर्शोंपर पड़ते हुए प्रतिबिम्बके बहाने सूर्य ऐसा जान पड़ता था मानो सब ओर शोभायमान जिनमन्दिरोंके लाँघनेके भयसे आकाशगमनको छोड़ नीचे पृथिवीपर ही चलने लगा हो। जिस नगरीमें निरन्तर कालागुरुकी धूपसे अन्धकार फैला रहता था इसलिए दिनमें भी स्त्रियोंके अभिसारके मनोरथ पूर्ण होते रहते थे। जिस नगरीमें स्त्रियोंके मुखरूपी चन्द्रमण्डलोंमें निकटवर्ती कर्णरूपी पाशसे बँध जानेकी शङ्का उत्पन्न होनेसे ही मानो कलङ्करूप मृग कभी निवास नहीं करता है। जिस नगरीका प्राकार मिलते हुए नक्षत्रोंके समूहसे मनोहर शिखरको धारण करता है और उससे वह शिखर ऐसा जान

१. म० ख० धूपतिमिरितायां, २. क० मनोहरशिखरं,

पतिकरद्रीकृतकरिकरटनिर्यदविरलमदजलजम्बालिताः प्रविशदनेकराजन्यजनितमिथःसंघट्टविघटितहारनिपतितमुक्ताफलशकलवालुकापूरैराश्यानतामनीयन्तादृष्टशिखरगोपुरद्वारभुवः। या च शिखरकलितमुक्ताफलमरीचिवीचिच्छलादपहसन्तीव[1] धर्मधनजननिवासजनितगर्वा[2] दुर्विनीतदशवदनचरितकलङ्कां लङ्काम्। यस्यां च भक्तिपरवशभव्यजनवदनविगलदविरलस्तवनकलकलमांसलैः प्रतिक्षणप्रहतपटहपटुरवपरिरम्भमेदुरैः पूर्यमाणासंख्यातशङ्खघोषपरिष्वङ्गकरालैः धारालकाहलाकलरसित[3]मांसलीभवदारम्भैः जृम्भमाणजनकोलाहलपल्लवितैः उल्लसद्वीणावेणुरणितरमणीयैः आरटित-

पङ्किलाः। अदृष्टमुच्चतरत्वेनानवलोकितं शिखरं येषां तान्यदृष्टशिखराणि तथाभूतानि यानि गोपुरद्वाराणि नगरप्रधानद्वाराणि तेषां भुवः। प्रविशन्तः प्रवेशं कुर्वाणा येऽनेकराजन्या राजपुत्रास्तैर्जनितेन समुत्पादितेन मिथःसंघट्टेन परस्परविमर्देन विघटितास्त्रुटिता ये हारा मुक्तायष्टयस्तेभ्यो निपतितानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां शकलानां खण्डानां या वालुकाः सिकतास्तासां पूरैः समूहैः। आश्यानतां शुष्कताम्। अनीयन्त प्रापिताः। या चेति—धर्म एव धनं येषां ते धर्मधनास्ते च ते जनाश्च धर्मधनजना धार्मिकपुरुषास्तेषां निवासेन जनितो गर्वो दर्पो यस्यास्तथाभूता या राजपुरी नगरी शिखरेष्वग्रभागेषु कलितानि खचितानि यानि मुक्ताफलानि तेषां मरीचिवीचयः किरणसंततयस्तासां छलं तस्मात्। दुर्विनीतश्चासौ दशवदनश्चेति दुर्विनीतदशवदनो दुष्टरावणस्तस्य चरितेन कलङ्को यस्यास्तां लङ्कां रावणपुरीम्। अपहसन्तीव तस्या हास्यं कुर्वाणेव बभूव। यस्यां चेति—नगर्यां, जिनमहोत्सवतुमुलरवैर्जिनपूजोत्सवप्रचण्डशब्दैः परिभूत इव तिरस्कृत इव कदापि कल्याणेतरपिशुनोऽमङ्गलसूचकः शब्दो नाकर्ण्यते न श्रूयते। अथ जिनमहोत्सवतुमुलरवैरित्यस्य विशेषणान्याह—भक्तिपरवशेति—भक्त्या परवशा परायत्ता ये भव्यजनास्तेषां वदनेभ्यो मुखेभ्यो विगलत्प्रकटीभवद् यद् अविरलस्तवनं निरन्तरस्तोत्रं तस्य कलकलेन मांसलाः परिपुष्टास्तैः। प्रतीति—प्रतिक्षणं प्रतिसमयं प्रहतानां ताडितानां पटहानां ढक्कानां यः पटुरव उच्चैःशब्दस्तस्य परिरम्भेण मेदुरा मिलितास्तैः। पूर्यमाणेति—पूर्यमाणा मुखवायुना भ्रियमाणा येऽसंख्यातशङ्खा अगणितशङ्खास्तेषां घोषस्य शब्दस्य परिष्वङ्गेण कराला भयंकरास्तैः। धारालेति—धारालं संततिबद्धं यत् काहलानां धत्तूरपुष्पाकारमुखवादित्रविशेषाणां कलमव्यक्तमधुरमारसितं शब्दस्तेन मांसलीभवन् आरम्भो येषां तैः। जृम्भमाणेति—जृम्भमाणो वर्धमानो यो जनकोलाहलो लोककलकलशब्दस्तेन पल्लवितैर्वृद्धिंगतैः। उल्लसदिति—उल्लसत्प्रकटीभवद् यद् वीणावेणूनां विपञ्चीवंशवाद्यानां रणितं मधुरध्वनिस्तेन रमणीयैर्मनो-

पड़ता है मानो परिखाके जलसे मूल भागका सिञ्चन होते रहनेके कारण उसमें फूल ही आ लगे हों। जिनके शिखर नहीं दिखाई देते थे, ऐसे उस नगरीके गोपुर-द्वारोंकी निकटवर्ती भूमियाँ, प्रतापसे नम्रीभूत शत्रु-राजाओंके द्वारा करमें दिये हुए हाथियोंके गण्डस्थलोंसे निकलते अविरल मदरूपी जलसे कोचड़युक्त हो जाती थीं और प्रवेश करते हुए अनेक राजकुमारोंकी पारस्परिक धक्का-धूमीसे टूटे हारोंसे गिरे मोतियोंके चूर्णरूप बालूके समूहसे पुनः शुष्कताको प्राप्त हो जाती थीं। शिखरोंपर लगे मोतियोंकी किरणोंके बहाने जो राजधानी, धर्मात्माजनोंके निवाससे उत्पन्न गर्वसे दुर्विनीत – दुराचारी रावणके चरितसे कलंकित लंकाकी मानो हँसी ही उड़ा रही थी। जो भक्तिसे परवश भव्यजनोंके मुखकमलसे निकलते हुए अविरल स्तवनोंकी कलकल ध्वनिसे पुष्ट थे, प्रत्येक क्षण बजते हुए नगाड़ोंके जोरदार शब्दोंके सम्बन्धसे व्याप्त थे, फूँके गये असंख्यात शंखोंके शब्दके संसर्गसे विकराल थे, लगातार बजनेवाली तुरहियोंकी ध्वनिसे जिनका आरम्भ परिपुष्ट हो रहा था, मनुष्योंके बढ़ते हुए कोलाहलसे जो व्याप्त थे, वीणा और बाँसुरीके प्रकट होते हुए शब्दोंसे मनोहर थे, निरन्तर बजते

१. म० अपहसतीव। २. म० जनितगर्वदुर्विनीत। ३. म० काहलारसित।

ढक्काझल्लरीझंकारकृताहंकारैः अभङ्गुरकरणबन्धबन्धुरलास्यलासिविलासिनीमणिभूषणशिञ्जितमञ्जुलैः किसलयितभरतमार्गमनोहारिसंगीतसंगतैः संभृतमहोदधिमथनघोषमत्सरैः जिनमहोत्सवतुमुलरवैः परिभूत इव नावकर्ण्यते कदापि कल्याणेतरपिशुनः शब्दः[1] यत्र च स्त्रीणामधरपल्लवेष्वधरता कुचतटेषु कठिनता कुन्तलेषु कुटिलता मध्येषु दरिद्रता कटाक्षेषु कातरता विनयातिक्रमो मानग्रहेषु निग्रहः प्रणयकलहेषु प्रार्थनाप्रणामः पञ्चबाणलीलासु वञ्चनावतारः परमभूत् ।

हरैः । आरटितेति—आरटिताः कृतशब्दा या ढक्काझल्लर्य आनकघण्टास्तासां झंकारेण झंकृतोऽहंकारो येषु तैः । अभङ्गुरेति—अभङ्गुरा दीर्घकालस्थायिनो ये करणबन्धा नृत्यासनविशेषास्तैर्बन्धुरं मनोहरं यल्लास्यं नृत्यं तेन लसन्तीत्येवंशीला या विलासिन्यो रूपाजीवास्तासां यानि मणिभूषणानि तेषां शिञ्जितेन शब्देन मञ्जुला मनोहरास्तैः । किसलयितेति—किसलयितेन वृद्धिंगतेन भरतमार्गेण नाट्येन मनोहारि चेतोहरं यत्संगीतं तेन संगतैः सहितैः । संभृतेति—संभृतो धृतो महोदधिमथनस्य महासागरमथनस्य घोषेण मत्सरो यैस्तैः । यत्र चेति—यत्र च नगर्याम् अधरता दशनच्छदता परं मात्रं स्त्रीणाम् अधरपल्लवेषु नीचैरोष्ठकिसलयेषु अभूत्, अन्यत्राधरता नीचता नाभूत् । कठिनता कठिनस्पर्शवत्त्वं स्त्रीणां कुचतटेषु स्तनतटेषु परमभूत्, अन्यत्र कठिनता निर्दयता नाभूत् । कुटिलता भङ्गुरत्वं स्त्रीणां कुन्तलेषु केशेषु परमभूत्, अन्यत्र कुटिलता मायाजनितवक्रता नाभूत् । दरिद्रता कृशता स्त्रीणां मध्येषु कटिप्रदेशेषु परमभूत्, अन्यत्र दरिद्रता निर्धनता नाभूत् । कातरता चपलता स्त्रीणां कटाक्षेष्वपाङ्गेषु परमभूत्, अन्यत्र कातरता भीरुता नाभूत् । विनयातिक्रमो विनयोल्लङ्घनं स्त्रीणां रतेषु संभोगेषु परमभूत्, अन्यत्र विनयातिक्रम उद्दण्डाचरणं नाभूत् । निग्रहो निराकरणं स्त्रीणां मानग्रहेषु प्रणयकोपेषु परमभूत्, अन्यत्र निग्रहो दमनं नाभूत् । प्रार्थनाप्रणामः प्रार्थनार्थं रतियाचनार्थं प्रणाम इति प्रार्थनाप्रणामः स्त्रीणां प्रणयकलहेषु कृत्रिमकोपेषु परमभूत्, अन्यत्र प्रार्थनाप्रणामो याचनादैन्यं नाभूत् । वञ्चनावतारो दम्भाश्रयणं स्त्रीणां पञ्चबाणलीलासु कामकेलिषु परमभूत्, अन्यत्र वञ्चनावतारः प्रतारणवृत्त्याश्रयो नाभूत् । परिसंख्यालंकारः ।

हुए तबले और झाँझोंकी झंकारसे जिनका गर्व बढ़ रहा था, जल्दी-जल्दी नष्ट नहीं होनेवाली नृत्य मुद्राओंके बन्धसे मनोहर नृत्योंसे सुशोभित नृत्यकारिणियोंके मणिमय आभूषणोंकी झनकारसे जो मनोहर थे, बढ़ती हुई नृत्यकलासे मनोहर संगीतसे संगत थे और जो महासागरके मथनकालीन शब्दके साथ मात्सर्यभाव धारण किये हुए थे ऐसे जिनेन्द्रदेवके महोत्सवोंमें होनेवाले उच्चनादसे तिरस्कृत हुए के समान जिस राजधानीमें कभी अकल्याणको सूचित करनेवाला शब्द सुनाई ही नहीं पड़ता था । एवं जिस नगरीमें अधरता – नीचेका ओठपना स्त्रियोंके अधरपल्लवोंमें ही था अन्य मनुष्योंमें अधरता – नीचता नहीं थी । कठिनता – स्पर्श सम्बन्धी कठोरता स्त्रियोंके स्तनोंमें ही थी वहाँके मनुष्योंमें कठिनता – क्रूरता नहीं थी । कुटिलता – बाँकपना स्त्रियोंके केशोंमें ही था वहाँके मनुष्योंमें कुटिलता – माया नहीं थी । दरिद्रता – पतलापन स्त्रियोंकी कमरमें ही था वहाँके मनुष्योंमें दरिद्रता – निर्धनता नहीं थी । कातरता – चंचलता स्त्रियोंके कटाक्षोंमें ही थी वहाँके मनुष्योंमें कातरता – भीरुता नहीं थी । विनयातिक्रम – विनयका उल्लंघन स्त्रियोंके सम्भोगमें ही होता था अन्य मनुष्योंमें नहीं था । निग्रह – बन्धन स्त्रियोंकी मानदशामें ही होता था अन्य मनुष्योंका निग्रह – तिरस्कार नहीं होता था । प्रार्थना सम्बन्धी प्रणाम, स्त्रियोंकी प्रणय कलहमें ही होता था अन्य मनुष्योंमें याचना सम्बन्धी प्रणाम नहीं होता था और वंचनाका अवतरण – छलका अवतरण स्त्रियोंकी काम-क्रीड़ामें ही होता था अन्य मनुष्योंमें वंचना – धोखादेहीका अवतरण नहीं होता था ।

---

१. क० ग० पिशुनशब्दः ।

§ ५. तस्यां चैवंविधायां विधेयीकृतप्रकृतिः, प्रतापविनमदवनीपतिमकुटमणिवलभीविटङ्क-संचारितचरणनखकान्तिचन्द्रातपः करतलकलितकरालकरवालमयूखतिमिराभिसरदाहवविजय-लक्ष्मीलक्षितसौभाग्यः, समरसागरमथनसंभृतेन सुधारसेनेव प्रतापदहनदन्दह्यमानप्रतिभटविपिन-जनितभसितराशिनेव निजभुजविटपिविनिर्गतकुसुमस्तबकेनेव परिपन्थिपार्थिवपङ्कजाकरसंकोच-कौतुकसंचितेन चन्द्रमरीचिनिचयेनेव खड्गकालिन्दीसंजातेन फेनपटलेनेव पाण्डुरेण यशसा प्रकाशितदिगन्तः, मन्दीकृतमन्दरमहीभृति निजांसपीठे बहुनरपतिबाहुशिखरसमारोहणावरोहण-परिखेदिनीं चिराय विश्रामयन्, अश्रान्तपरिचोद्यमानेन वनीपकचातकपरिषद्विपादविघटनघना-

§ ५. अथ राजानं वर्णयितुमाह—तस्यामिति—तस्यां चैवंविधायां राजपुर्यां सत्यंधरो नाम राजाभूदिति कर्तृक्रियासंबन्धः। इदानीं राज्ञो विशेषणान्याह—विधेयीकृतप्रकृतिः—विधेयीकृता स्वानुकूलीकृता प्रकृतिर्मन्त्र्यादिवर्गः प्रजा वा येन सः। प्रतापेति—प्रतापः कोषदण्डजं तेजः 'स प्रभावो प्रतापश्च यत्तेजः कोषदण्डजम्' इत्यमरः। तेन विनमन्तो नम्रीभवन्तो येऽवनीपतयो राजानस्तेषां मकुटान्येव मणिवलभ्यो रत्ननिर्मितगोपानस्यस्तासां विटङ्केषु कपोतपालीषूर्ध्वभागेष्विति यावत् संचारितश्चरणनख-कान्तिरेव चन्द्रातपो ज्योत्स्ना येन सः। करतलेति—करतले पाणितले कलितो धृतो यः करालकरवालो भयंकरकृपाणस्तस्य मयूखाः किरणा एव तिमिरं ध्वान्तं तस्मिन् अभिसरन्ती समागमाय समीपमागच्छन्ती या विजयलक्ष्मीस्तया लक्षितं प्रकटितं सौभाग्यं यस्य सः। अथ यशोविशेषणान्याह—समरेति—समर एव युद्धमेव सागरस्तस्य मथनेन विलोडनेन संभृतस्तेन सुधारसेनेव पीयूषरसेनेव। प्रतापेति—प्रताप एव दहनोऽग्निस्तेन दंदह्यमानानि पुनःपुनरतिशयेन वा दह्यमानानि यानि प्रतिभटविपिनानि शत्रुकाननानि तैर्जनितो यो भसितराशिर्भस्मपुञ्जस्तेनेव। निजेति—निजभुज एव स्वकीयबाहुरेव विटपी वृक्षस्तस्माद् विनिर्गतः प्रकटितः यः कुसुमस्तबकः पुष्पगुच्छकस्तेनेव। परिपन्थीति—परिपन्थिपार्थिवा एव शत्रुनृपा एव पङ्कजाकराः कमलसमूहास्तेषां संकोचस्य कौतुकेन संचितस्तेन चन्द्रमरीचिनिचयेनेव शशिरश्मिसमूहेनेव। खड्गेति—खड्ग एव कालिन्दी खड्गकालिन्दी कृपाणयमुना तया संजातेन समुत्पन्नेन फेनपटलेनेव डिण्डीर-पिण्डेनेव। पाण्डुरेण धवलेन यशसा कीर्त्या प्रकाशितदिगन्तः प्रकाशिता दिगन्ता येन सः। मन्दीकृतेति—मन्दीकृतस्तिरस्कृतो मन्दरमहीभृत् सुमेरुपर्वतो येन तस्मिन्, निजांसपीठे स्वस्कन्धासने बहुनरपतीनां भूरिनृपाणां बाहुशिखरेषु भुजाग्रेषु समारोहणावरोहणाभ्यामारोपावरोपाभ्यां परिखिद्यत इत्येवंशीला तां तथाभूतां मेदिनीं भूमिं चिराय चिरकालपर्यन्तं विश्रामयन्। अश्रान्तेति—अश्रान्तमनवरतं यथा स्यात्तथा परिचोद्यमानोऽभ्यस्य-

§ ५. ऐसी उस नगरीमें सत्यन्धर नामका राजा था। उस राजाने मन्त्रियों अथवा नगरवासियोंको अपने अधीन कर रखा था। प्रतापसे नमस्कार करते हुए राजाओंके मुकुटरूपी मणिमयी वलभियोंके अग्रभागपर उसके चरण सम्बन्धी नखोंकी कान्तिरूपी चाँदनी फैली रहती थी। हाथमें लिये हुए भयंकर कृपाणकी किरणोंसे उत्पन्न अन्धकारमें अभिसार करनेवाली विजयलक्ष्मीसे उसका सौभाग्य प्रकट हो रहा था। जो युद्धरूपी सागरके मथनसे उत्पन्न हुए सुधारसके समान जान पड़ता था, अथवा प्रतापरूपी अग्निसे अत्यधिक जलते हुए शत्रुरूपी अटवीसे उत्पन्न भस्मके समूहके समान प्रतीत होता था, अथवा अपनी भुजारूपी वृक्षसे निकले फूलोंके गुच्छोंके समान मालूम होता था, अथवा शत्रु राजारूपी कमलाकरको निमीलित करनेके कौतुकसे एकत्रित हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान जान पड़ता था अथवा तलवाररूपी यमुनासे उत्पन्न फेन पटलके समान दिखाई देता था ऐसे धवल यशसे उसने समस्त दिशाओंके अन्तको प्रकाशित कर दिया था। अनेक राजाओंके कन्धोंपर चढ़ने-उतरनेके कारण खेद-खिन्न हुई पृथिवीको वह मन्दराचलको तिरस्कृत करनेवाले अपने कन्धे-

रम्भेण कर्णकीर्तिकैरविणीनिमीलनबालातपेन कविकुलकलहंसकलस्वनश्रवणशरदवतारेण वितरणगुणेन मन्दयन्मन्दारगरिमाणम्, रणजलधितरणपोतपात्रेण कृपाणविषधरविहारचन्दनविपिनेन[1] क्षत्रधर्मदिनकृदुदयपर्वतेन पराक्रमेण क्रीतार्णवाम्बरः, प्रयाणसमयचलदलघुचमूभारविनमितेन महीनिवेशेन फणाचक्रं फणाभृतां चक्रवर्तिनो जर्जरयन् दिशि दिशि निहितजयस्तम्भः कुमार इव शक्तिशकलितभूभृद्विग्रहः, शतमख इव सुमनसामेकान्तसेव्यः, सुमेरुरिव राजहंसलालितपादः,

मानस्तेन। वनीपका याचका एव चातकास्तेषां परिषद् समूहस्तस्या विषादविघटने खेदापहरणे घनारम्भो मेघारम्भस्तेन। कर्णो दाने प्रसिद्धो नृपविशेषस्तस्य कीर्तिरेव कैरविणी कुमुदिनी तस्या निमीलने संकोचने बालातपः प्रातःकालिकघर्मस्तेन। कविकुलान्येव कलहंसास्तेषां कलस्वनस्य मधुरास्फुटशब्दस्य श्रवणं तस्मै शरदवतारः शरदृतुप्रारम्भस्तेन। एवंभूतेन वितरणगुणेन दानगुणेन मन्दारगरिमाणं कल्पवृक्षमाहात्म्यं मन्दयन् अल्पीकुर्वन्। रणेति—रणजलधेः समरसागरस्य तरणे पोतपात्रं नौकायानं तेन। कृपाण एव विषधरो भुजङ्गस्तस्य विहाराय चन्दनविपिनं मलयजकाननं तेन। क्षात्रधर्म एव दिनकृत्सूर्यस्तस्योदयपर्वतः पूर्वाचलस्तेन। एवंभूतेन पराक्रमेण क्रीता स्वायत्तीकृता अर्णवाम्बरा पृथिवी येन सः। प्रयाणेति—प्रयाणं विजययात्रा तस्य समये चलन् योऽलघुचमूभारो विपुलसैन्यसमूहस्तेन विनमितेन महीनिवेशेन फणाभृतां चक्रवर्तिनः शेषनागस्य फणाचक्रं सहस्रफणासमूहं जर्जरयन्। दिशि दिशि प्रतिदिशं निहिता निखाता जयस्तम्भा येन सः। कुमार इव कार्तिकेय इव शक्त्या शक्तिनामकशस्त्रेण शकलितः खण्डितः भूभृतः क्रौञ्चगिरेर्विग्रहः शरीरं येन सः। नृपतिपक्षे शक्त्या पराक्रमेण शकलिताः खण्डिताः भूभृतां राज्ञां विग्रहाः शरीराणि येन सः। शतमख इव पुरन्दर इव सुमनसां देवानां नृपतिपक्षे विदुषाम् एकान्तसेव्यो नियमेन सेव्यः। सुमेरुरिव रत्नसानुरिव राजहंसैर्मरालविशेषैर्लालिताः सेविताः पादाः प्रत्यन्तपर्वता यस्य सः।

पर चिरकालके लिए विश्राम करा रहा था। जिसका उसे निरन्तर परिचय प्राप्त था, याचकरूपी चातकोंके खेदको दूर करनेके लिए जो मेघके आरम्भके समान था, राजा कर्णकी कीर्तिरूपी कुमुदिनीको निमीलित करनेके लिए जो प्रातःकालके सुनहले घामके समान था, और कवियोंके समूहरूपी कलहंसोंकी मधुरध्वनि सुननेके लिए जो शरद् ऋतुके अवतारके समान था ऐसे दानरूप गुणके द्वारा वह कल्पवृक्षकी महिमाको मन्द कर रहा था अर्थात् कल्पवृक्षसे भी कहीं अधिक दानी था। जो रणरूपी सागरको तरनेके लिए जहाजके समान था, तलवाररूपी सर्पके विहारके लिए चन्दनवृक्षोंका वन था और क्षत्रिय धर्मरूप सूर्यके उदयके लिए उदयाचल स्वरूप था ऐसे पराक्रमसे उसने समस्त पृथिवीको खरीद लिया था। जब वह दिग्विजयके लिए चलता था तब प्रयाणकालमें चलती हुई बहुत बड़ी सेनाके भारसे झुके हुए भूमण्डलके द्वारा वह शेषनागके फणाओंके समूहको जर्जर कर देता था और प्रत्येक दिशामें विजयस्तम्भ खड़े करता जाता था। वह राजा कुमार – कार्तिकेयके समान था क्योंकि जिस प्रकार कार्तिकेय शक्ति-शकलित भूभृद्विग्रह – शक्ति नामक शस्त्रसे क्रौञ्च पर्वतके शरीरको खण्ड-खण्ड करनेवाला था उसी प्रकार वह राजा भी शक्ति-शकलित भूभृद्विग्रह – पराक्रमसे राजाओंके शरीर अथवा युद्धको नष्ट करनेवाला था। अथवा इन्द्रके समान था क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र सुमनसामेकान्तसेव्यः – देवोंका एकान्त सेवनीय होता है उसी प्रकार वह राजा भी सुमनसामेकान्तसेव्य – विद्वानोंका एकान्त सेवनीय था। अथवा सुमेरुके समान था क्योंकि जिस प्रकार सुमेरु राजहंसलालितपाद – लाल चोंच और लाल चरणवाले हंसोंसे सेवित प्रत्यन्त पर्वतोंसे युक्त होता है उसी प्रकार वह राजा भी राजहंसलालित-

१ म० चन्दनविटपिवनेन।

दुर्योधन इव कर्णानुकूलचरितः, चन्द्र इव कुवलयानन्दिकरप्रचारः[1], चण्डदीधितिरिव कमलाकरसुखायमानपादः, पारिजात इव परिपूर्णार्थिजनमनोरथः, राजा राज्याश्रमगुरुः कुरुकुलधुरंधरः सत्यंधरो नामाभूत्[2]।

§ ६. यस्य च[3] प्रसरदविरलकीर्तिचन्द्रातपशीतलामंसवलभीमधिशयाना मेदिनी शेषफणाविष्टरनिवासानुबन्धिनीं विषोष्मवेदनामत्यजत्। यस्मिन्परिपालयति पयोधिरशनावच्छेदिनीं मेदिनीं[4] कुसुमपरिमलचौर्येण चाकित्यमुद्वहन्त इव मातरिश्वानो न क्वापि लभन्ते स्थितिम्।

दुर्योधन इव कर्णस्याङ्गाधिपस्यानुकूलं चरितं यस्य सः। नृपतिपक्षे कर्णानां श्रवणानामनुकूलं प्रियं चरितं यस्य सः। चन्द्र इव कुवलयानन्दी नीलकमलविकासी करप्रचारः किरणप्रचारो यस्य सः। नृपतिपक्षे कुवलयानन्दी महीमण्डलानन्दी करप्रचारः राजस्वप्रसारो यस्य सः। चण्डदीधितिरिव सूर्य इव कमलाकरस्य पद्मसमूहस्य सुखायमानाः सुखदायकाः पादाः किरणा यस्य सः। नृपतिपक्षे कमलाया लक्ष्म्याः करयोर्हस्तयोः सुखायमानौ पादौ चरणौ यस्य सः। पारिजात इव कल्पवृक्ष इव परिपूर्णा अर्थिजनानां मनोरथा येन सः। उभयत्र समानम्। श्लिष्टोपमालंकारः। राज्यमेवाश्रमो राज्याश्रमस्तस्य गुरुः। कुरुकुलधुरंधरः कुरुवंशश्रेष्ठः।

§ ६. यस्य चेति—यस्य च सत्यंधरमहीपालस्य। प्रसरन्ती सर्वत्र संचरन्ती या विरला कीर्तिः सैव चन्द्रातपः कौमुदी तेन शीतलां शिशिराम्, अंसवलभीं स्कन्धगोपानसीम्। अधिशेत इत्यधिशयाना तत्र वसन्ती मेदिनी पृथिवी शेषस्य फणाविष्टरे निवासेनानुबध्नातीत्येवंशीला तां विषोष्मवेदनां गरलोष्णतापीडाम् अत्यजत्। यस्मिन्निति—यस्मिन् भूपाले पयोधिरेव रशना मेखला तयावच्छेदिनी विशिष्टा ताम् मेदिनीं परिपालयति सति। कुसुमानां परिमलस्य सौगन्ध्यस्य चौर्यं तेन। चाकित्यं भीरुत्वम् उद्वहन्त इव दधत इव मातरिश्वानो वायवः क्वापि कुत्रापि स्थितिं स्थैर्यं न लभन्ते। उत्प्रेक्षा। यस्य चेति—

पाद – श्रेष्ठ राजाओंसे सेवित चरणोंसे युक्त था। अथवा दुर्योधनके समान था क्योंकि जिस प्रकार दुर्योधन कर्णानुकूलचरित – राजा कर्णके अनुकूल चरितसे सहित था उसी प्रकार वह राजा भी कर्णानुकूलचरित – कानोंको आनन्द देनेवाले चरितसे सहित था। अथवा चन्द्रमाके समान था क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा कुवलयानन्दिकरप्रचार – नील कमलोंको आनन्दित करनेवाली किरणोंके प्रचारसे सहित होता है उसी प्रकार वह राजा भी कुवलयानन्दिकरप्रचार - पृथिवी मण्डलको आनन्द देनेवाले टैक्सोंके प्रचारसे सहित था। अथवा सूर्यके समान था क्योंकि जिस प्रकार सूर्य कमलाकरसुखायमानपाद – कमलवनको सुखी करनेवाली किरणोंसे युक्त होता है उसी प्रकार वह राजा भी कमलाकरसुखायमानपाद – लक्ष्मीके हाथोंको सुखी करनेवाले चरणोंसे युक्त था। अथवा कल्प वृक्षके समान था क्योंकि जिस प्रकार कल्प वृक्ष परिपूर्णार्थिजनमनोरथ – याचक जनोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाला होता है उसी प्रकार वह राजा भी याचक जनोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाला था। राजा सत्यन्धर राज्य रूपी आश्रयका गुरु और कुरुवंशका शिरोमणि था।

§ ६. उस राजाकी फैलती हुई अविरल कीर्तिरूपी चाँदनीसे शीतल कन्धे रूपी छपरीमें शयन करनेवाली पृथिवीने शेषनागके फणारूपी बिष्टरपर निवास करनेसे सम्बन्ध रखनेवाली विषजन्य गरमीकी वेदनाको छोड़ दिया था। उस राजाके समुद्रान्त पृथिवीको पालन करनेपर फूलोंकी सुगन्धिकी चोरीसे भयभीतताको धारण करते हुएके समान वायु कहीं भी स्थिरताको

१ क० ख० ग० कुवलयानन्दितप्रचारः। २ क० ख० ग० नामाभवत्। ३ म० ख० ग० प्रतिपु चकारो नास्ति। ४ क० ख० ग० मेदिनीमपि।

यस्य च निहितहारोपधानमधरितकनकगिरिशिलातलविशालं[1] वक्षःस्थलमधिशयाना स्वभावसंकटकमलकोटरकुटीरदुरासिकादुःखमत्याक्षील्लक्ष्मीः। यस्य च प्रलयसमयविलसदनेकदिनकरकिरणदुःसहे प्रसर्पति प्रतापानले, जलनिधिजलमध्यघटितां प्राक्तनीं स्थितिं बह्वमन्यत मधुसूदनः। यस्य च दुःसहप्रतापेऽपि सुखोपसेव्यता सौकुमार्येऽप्यार्यवृत्तिः अतिसाहसेऽप्यखिलजनविश्वास्यता विश्वंभरावहनेऽप्यखिन्नता सततवितरणेऽप्यक्षीणकोशता परपरिभवाभिलाषेऽपि परमकारुणिकता पञ्चशरपारतन्त्र्येऽपि पाकशालिता परमदृश्यत। यस्य चारम्भमभिमतावाप्तिः, प्रज्ञां विद्याधिगमः, पराक्रमं परिपन्थिपरिक्षयः, परहितनिरतिं जनानुरागः, प्रतापं दुराक्रमता, त्यागं भोगावली, काव्यरसाभिज्ञतां कविसंग्रहः, कल्यसंधतां कल्याणसंपत्तिः, न्यायनेतृतां

यस्य च राज्ञो निहितं स्थितं हार एवोपधानं यत्र तत्। अधरितं तिरस्कृतं कनकगिरिशिलातलं सुमेरुशिलातलं येन तत् तथाभूतं विशालं विस्तृतं वक्षःस्थलमुरःस्थलम् अधिशयाना लक्ष्मीः स्वभावेन संकटं संकीर्णं यत्कमलकोटरं तदेव कुटीरं ह्रस्वा कुटी तस्मिन् दुरासिकया दुर्निवासेन यद् दुःखं तत् अत्याक्षीत् मुमोच। यस्य चेति—यस्य च राज्ञः प्रलयसमये संहारसमये विलसन्तो विभ्राजमाना येऽनेकदिनकरास्तेषां किरणा इव दुःसहस्तस्मिन् प्रतापानले प्रतापपावके प्रसर्पति सति मधुसूदनो नारायणः। जलनिधिमध्यघटितां समुद्रमध्ययोजितां प्राक्तनीं पूर्वां स्थितिं बह्वमन्यत श्रेष्ठाममन्यत। यस्य चेति—यस्य राज्ञश्च दुःसहश्चासौ प्रतापश्च दुःसहप्रतापस्तस्मिन् सत्यपि सुखोपसेव्यता सुखेनोपसेव्यता सुखाराधनीयता। सौकुमार्येऽपि कष्टसहनसामर्थ्याभावेऽपि आर्यवृत्तिः श्रेष्ठजनाचारः। अतिसाहसेऽपि प्रचण्डसत्त्वेऽपि अखिलजनविश्वास्यता निखिलजनविश्वासपात्रता। विश्वम्भरावहनेऽपि पृथिवीभारधारणेऽपि अखिन्नता खेदाभावः। सततवितरणेऽपि निरन्तरदानेऽपि अक्षीणकोशता असमाप्तकोशता। पदपरिभवाभिलाषेऽपि शत्रुतिरस्कारमनोरथेऽपि परमकारुणिकता परमदयालुता 'स्याद् दयालुः कारुणिकः' इत्यमरः। पञ्चशरपारतन्त्र्येऽपि मदनपारवश्ये सत्यपि पाकशालिता निष्ठाशालिता ब्रह्मचर्यमित्यर्थः। परमत्यन्तम् अदृश्यत। 'पाको जरापरीपाके स्थाल्यादौ क्लेदनिष्ठयोः' इति विश्वलोचनः। यस्य चेति—यस्य च राज्ञ आरम्भं कार्यप्रारम्भम्, अभिमतावाप्तिरिष्टवस्तुप्राप्तिः, प्रज्ञां बुद्धिं विद्याधिगमो विद्यानामान्वीक्षिक्यादीनामधिगमो ज्ञानं प्राप्तिर्वा, पराक्रमं परिपन्थिपरिक्षयः शत्रुसंहारः परहितनिरतिं परहिते निरतिस्तां परहिततत्परतां जनानुरागो लोकप्रीतिः, प्रतापं तेजो दुराक्रमता दुर्धर्षता, त्यागं दानं भोगावली बिरुदावली,

प्राप्त नहीं हो रही थी। जिसपर हार रूपी तकिया रखा हुआ था और जिसने सुमेरु पर्वतके शिलातलको तिरस्कृत कर दिया था ऐसे उस राजाके विशाल वक्षस्थलपर शयन करनेवाली लक्ष्मीने स्वभावसे ही संकीर्ण कमलकी कोटर रूपी कुटियामें कष्टपूर्वक रहनेका दुःख छोड़ दिया था। प्रलय कालमें सुशोभित अनेक सूर्योंकी किरणोंके समान दुःसह उस राजाकी प्रताप रूपी अग्निके फैलनेपर नारायण समुद्रके जलके बीचमें स्थित अपनी पुरानी स्थितिको ही अच्छा मानते थे। दुःसह प्रतापके रहनेपर भी उस राजामें सुखोपसेव्यता, सुकुमारता रहनेपर भी आर्यजनोंके योग्य उत्तम आचार, अत्यधिक साहसके रहते भी समस्त मनुष्योंकी विश्वासपात्रता, पृथिवीका भार धारण करनेपर भी अखिन्नता, निरन्तर दान देनेपर भी भण्डारको अक्षीणता, शत्रुओंके तिरस्कारकी अभिलाषा होनेपर भी परम दयालुता और कामकी परतन्त्रता होनेपर भी अत्यधिक पवित्रता देखी जाती थी। इष्टफलकी प्राप्ति उसके कार्यारम्भको, विद्याकी प्राप्ति बुद्धिको, शत्रुओंका क्षय पराक्रमको, मनुष्योंका अनुराग परहितकी तत्परताको, अनाक्रमण प्रतापको, विरुदावली दानको, कवियोंका संग्रह काव्यरसकी

१ म० क० ग० शिलातलं विशालं।

निजकृत्यानुल्लङ्घिलोकता, तत्त्वज्ञानितां धर्मशास्त्रशुश्रूषा, दुरभिमानहीनतां मुनिजनपदप्रह्वता, माननीयतां दानजलार्द्रीकृतकरः, परमधार्मिकतां परमेश्वरसपर्या, नीतिनिपुणतां निष्कण्टकता निरक्षरं निरन्तरं[1] निवेदयति ।

§ ७. तस्य चाभवदद्भुताचाररूपा रूपसंपदिव विग्रहिणी, गृहिणीधर्मस्थितिरिव साक्षात्क्रियमाणा, समरविजयलक्ष्मीरिव पुष्पधनुषः, संकोचितसपत्ननारीवदनकमला कौमुदीव विधुंतुदकवलनभयादपहाय रजनीकरमवनिमवतीर्णा, रामणीयकचन्द्रोदयपिशुनेन संध्यारागेणेव मनसिजमदकरिकुम्भमण्डनसंभृतेन गैरिकपङ्काङ्गरागेणेव नवनलिननिपतितेन तरुणतरणिकिरण-

काव्यरसस्याभिज्ञता तां कविसंग्रहः कवीनां संग्रहः स्वसमीपे स्थापनम्, कल्याणसम्पत्तिं सदभिप्रायं कल्याणसंपत्तिः कल्याणमेव संपत्तिः श्रेयःसंपत्तिः, न्यायनेतृत्वं न्यायस्य नेता तस्य भावस्तां न्यायप्रवर्तकत्वं निजकृत्यानुल्लंघिलोकता स्वकार्याविरोधिजनता, तत्त्वज्ञानितां तत्त्वज्ञतां धर्मशास्त्रशुश्रूषा धर्मग्रन्थश्रवणेच्छा, दुरभिमानहीनतां दुष्टदर्पाभावं मुनिजनपदप्रह्वता यतिजनचरणनम्रता, माननीयतां समादरणीयतां दानजलेनार्द्रीकृतः कर इति दानजलार्द्रीकृतकरः दानपरता, परमधार्मिकतां श्रेष्ठधार्मिकत्वं परमेश्वरसपर्या अर्हत्परमेष्ठिपूजा, नीतिनिपुणतां नीतिकौशलं निष्कण्टकता निःशत्रुता निरक्षरं यथा स्यात्तथा निरन्तरं सततं निवेदयति सूचयति ।

§ ७. अथ राज्ञीं वर्णयितुमाह—तस्येति—तस्य च सत्यंधरमहाराजस्य विजया नाम महिषी कृताभिषेका राज्ञी पट्टराज्ञीति यावत् अभवदिति कर्तृक्रियासंबन्धः । साम्प्रतं तस्या विशेषणान्याह—आचारश्च रूपं चेत्याचाररूपे अद्भुते आचाररूपे यस्याः साद्भुताचाररूपा विग्रहिणी शरीरधारिणी रूपसंपदिव सौन्दर्यसंपत्तिरिव, साक्षात्क्रियमाणा दृश्यमाना गृहिणीधर्मस्थितिरिव नारीधर्ममर्यादेव, पुष्पधनुषो मदनस्य समरविजयलक्ष्मीरिव युद्धविजयश्रीरिव, संकोचितानि निमीलितानि सपत्ननारीणां वदनकमलानि मुखारविन्दानि यया सा तथाभूता अतएव विधुन्तुदेन कवलनं तस्य भयं तस्माद्राहुग्रासभीतेः रजनीकरं चन्द्रमसमपहाय त्यक्त्वा अवनिं पृथिवीमवतीर्णा कौमुदीव चन्द्रिकेव । चरणयुगलं दधाना । अथ तस्यैव विशेषणान्याह—रामणीयकं सौन्दर्यमेव चन्द्रोदयस्तस्य पिशुनेन सूचकेन संध्यारागेणेव पितृप्रसूलोहितिम्नेव, मनसिज एव मदकरी मदस्राविहस्ती तस्य कुम्भयोर्गण्डयोर्मण्डनाय संभृतस्तेन गैरिकपङ्कोऽरुणवर्णो मृद्विशेषस्तस्याङ्गरागेणेव, नवनलिनेषु नूतनकमलेषु निपतितेन तरुणतरणिकिरणानां बालसूर्य-

अभिज्ञताको, कल्याणरूप सम्पत्ति दृढ़प्रतिज्ञताको, लोगोंके द्वारा अपने-अपने कार्योंका उल्लंघन नहीं होना न्यायपूर्ण नेतृत्वको, धर्मशास्त्रके श्रवण करनेकी इच्छा तत्त्वज्ञानको, मुनिजनोंके चरणोंमें नम्रता दुष्ट अभिमानके अभावको, दानके जलसे गीला किया हुआ हाथ माननीयताको, जिनेन्द्रदेवकी पूजा परम धार्मिकताको, और क्षुद्र शत्रुओंका अभाव नीतिनिपुणताको चुपचाप निरन्तर सूचित करता रहता था ।

§. ७. उस राजाकी विजया नामकी पट्टरानी थी। वह रानी अद्भुत आचार और रूपको धारण करनेवाली थी इसलिए शरीरधारिणी सौन्दर्य रूप सम्पत्तिके समान जान पड़ती थी। साक्षात् दिखनेवाली स्त्रीधर्मकी स्थितिके समान, कामदेवके युद्धकी विजय लक्ष्मीके समान अथवा शत्रुस्त्रियोंके मुखकमलको संकोचित करनेवाली एवं राहुके ग्रसनेके भयसे चन्द्रमाको छोड़कर पृथिवीपर उतरी हुई चाँदनीके समान दिखलाई देती थी। वह उस चरणयुगलको धारण कर रही थी जो सौन्दर्यरूपी चन्द्रोदयको सूचित करनेवाली सन्ध्याकालिक लालिमाके समान, कामदेवरूपी हाथीके गण्डस्थलको सजानेके लिए इकट्ठे

१ क० ख० ग० प्रतिषु निरन्तरमिति पदं नास्ति ।

कलापेनेव स्वभावपाटलेन प्रभापटलेन विनाप्यलक्तकरसानुलेपनमुपपादिततलाकल्पशोभम् अनवरतविनमदवनीपतियोषिदलकापीडनिपतितैः सुमनोभिरिव मनोहराङ्गुलिपर्यायशुक्तिपुटवमितैर्मुक्ताफलैरिव प्रकृतिचतुरचङ्क्रमकलाशिक्षणकुतूहलनिषेवमाणैः कलहंसशावकैरिव सततमुद्गच्छता स्तनमण्डलेन मा पीडय वदनतुहिनमहसमिति कृतप्रणामैस्तारकागणैरिव तारुण्योष्मकठिनीभवत्कान्तिसलिलबिन्दुसंदोह[1]संदेहदायिभिर्नखमणिभिरवतंसितम् अनुपजातपङ्कपरिचयम् अज्ञातमधुपपरिषदुपसर्पणमालिन्यम् अहर्निशविभागविधुरविकासम् अननुभूतपूर्वमम्भोरुहयमलमिव चरणयुगलं दधाना, मदनतूणीवैगुण्यजल्पाकेन कान्तिजलधिजलवेणिकानुकारिणा जङ्घाद्वयेन

रश्मीनां कलापः समूहस्तेनेव, स्वभावेन पाटलं तेन प्रभापटलेन कान्तिसमूहेन अलक्तकरसानुलेपनं विनापि उपपादिता तलाकल्पस्य तलाभरणस्य शोभा यस्य तत् अतिरक्ततलमिति यावत्। अनवरतेति—अनवरतं निरन्तरं विनमन्त्यो नमस्कुर्वन्त्यो या अवनीपतियोषितो नरेन्द्रनार्यस्तासामलकापीडेभ्यः केशसमूहेभ्यो निपतितानि तैः सुमनोभिरिव पुष्पैरिव। मनोहरेति—मनोहराङ्गुलयः पर्याया येषां तानि तथाभूतानि यानि शुक्तिपुटानि तेभ्यो वमितैः प्रकटितैः मुक्ताफलैरिव मौक्तिकैरिव। प्रकृतीति—प्रकृत्या निसर्गेण चतुरं यः चंक्रमो गमनं तस्य कला तस्याः शिक्षणकुतूहलेन शिक्षाकौतुकेन निषेवमाणाः सातिशयं सेवां कुर्वाणास्तैः कलहंसशावकैरिव कादम्बशिशुभिरिव। सततमिति—सततमुद्गच्छता यौवनातिरेकेण समुत्तिष्ठता स्तनमण्डलेन वदनतुहिनमहसं मुखचन्द्रं मा पीडय, इति हेतोः कृतप्रणामैर्विहितनमस्कारैस्तारकागणैरिव नक्षत्रसमूहैरिव। तारुण्येति—तारुण्यस्योष्मणा निदाघत्वेन कठिनीभवन् यः कान्तिसलिलबिन्दुसंदोहो दीप्तितोयशीकरसमूहस्तस्य संदेहं ददतीत्येवंशीलास्तैः। एवंभूतैर्नखमणिभिर्नखा एव मणयस्तैरुज्ज्वलनखैरिति यावत् अवतंसितं शोभितम्। अनुपजातेति—अनुपजातोऽनुत्पन्नः पङ्कपरिचयो यस्य तत्, अज्ञातमननुभूतं मधुपपरिषदो भ्रमरसंततेरुपसर्पणेन समीपागमनेन मालिन्यं येन तत्। अहर्निशविभागेन दिवसरजनीविभागेन विधुरो रहितो विकासो यस्य तत्। पूर्वं नानुभूतमित्यननुभूतपूर्वम्। अम्भोरुहयमलमिव कमलयुगलमिव। मदनेति—मदनस्य तूणी मदनतूणी कामेषुधिस्तस्या वैगुण्यं निर्गुणत्वं तस्य जल्पाकं निवेदकं तेन। कान्तिरेव जलधिजलं तस्य वेणिकां प्रवाहमनु-

किये हुए गेरूके अंगरागके समान अथवा नवीन कमलपर पड़ी प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंके समूहके समान स्वभावसे ही गुलाबी प्रभा पटलके द्वारा माहुरके लेपके बिना ही तलभागमें उत्तम शोभाको धारण कर रहा था। उसका वह चरणयुगल जिन नखरूपी मणियोंसे सुशोभित था वे निरन्तर नमस्कार करती हुई राज-स्त्रियोंके केशसमूहसे गिरे फूलोंके समान अथवा मनोहर अंगुलियोंरूपी सीपोंके पुटसे उगले हुए मोतियोंके समान अथवा स्वभावसे ही सुन्दर गमन कलाको सीखनेके कौतूहलसे सेवा करनेवाले कलहंसोंके बच्चोंके समान, अथवा 'निरन्तर उठते हुए स्तनमण्डलसे मुखरूपी चन्द्रमाको पीड़ित न करो' यह प्रार्थना करनेके लिए प्रणाम करनेवाले ताराओंके समूहके समान अथवा जवानीकी गरमीसे कड़े होते हुए कान्तिरूपी जलकी बूँदोंके समूहके समान जान पड़ते थे। उसका वह चरणयुगल पहले कभी अनुभवमें न आये हुए उस कमलयुगलके समान जान पड़ता था जिसका कभी पंकके साथ परिचय नहीं हुआ था, जिसने मधुप – भ्रमर समूह (पक्षमें मद्यपायी) के पास आनेसे उत्पन्न मलिनताका कभी ज्ञान नहीं किया और जिसका विकास रात-दिनके विभागसे रहित था। कामदेवके तरकसकी निर्गुणताको कहनेवाले एवं कान्तिरूपी समुद्रके जलके प्रवाहका

१ क० ख० ग० प्रतिषु 'सन्दोह'पदं नास्ति।

प्रतिपादिताधोमुखकमलनालशोभा, सुनासीरदन्तावलशुण्डागरिमलुण्टाकेन कुसुमशरनिवासनितम्बप्रासादमण्डनमणितोरणरामणीयकधुरीणेन मदनमातङ्गनहनालानस्तम्भसविभ्रमेण स्वभावपीवरेणोरुकाण्डद्वयेन कामपि कमनीयतां कथयन्ती, कन्दर्पसाम्राज्यसिंहासनेन कठिनविशालेन प्रतिक्षणमुच्छ्वसता श्रोणिमण्डलेन शिथिलीकृतनीवीनहनाभ्यासखेदितकरा, मणिकिङ्किणीरणितच्छलेन भङ्गभयान्नितम्बविष्टरमिवाभिष्टुवता चिरपरिचयपल्लवितप्रेमतया पतनशीलस्य मध्यस्य मन्देतरमरीचिवीचिसमुद्गमव्याजेन हस्तदानमिव प्रयच्छता प्रतप्तकाञ्चनकल्पितेन काञ्चीवलयेन परिवेष्टितनितम्बचन्द्रबिम्बा, विडम्बितरशनालंकारमरकतमणिमयूखलेखया त्रिभुवनविजयसंनह्यदनङ्गसुभटकरकलितकृपाणलतालावण्यापहासिन्या रोमराजिकया विराजन्ती, रामणीयकसरिदा-

करोतीत्येवं शीलं तेन जङ्घाद्वयेन प्रसृतायुगलेन प्रतिपादिता प्रकटिता अधोमुखकमलनालयोः शोभा यया सा। सुनासीरेति—सुनासीरदन्तावल ऐरावतो गजस्तस्य शुण्डाया गरिमा गुरुत्वं तस्य लुण्टाकमपहारकं तेन, कुसुमशरस्य कामस्य निवासो यस्मिन् स कुसुमशरनिवासस्तथाभूतो यो नितम्बप्रासादस्तस्य मण्डनमाभरणं यन्मणितोरणं तस्यैव रामणीयकेन सौन्दर्येण धुरीणं श्रेष्ठं तेन। मदनमातङ्गस्य कामगजस्य नहनं बन्धनं तस्य य आलानस्तम्भस्तस्य सविभ्रमं सदृशं तेन। स्वभावपीवरेण—निसर्गस्थूलेन ऊरुकाण्डद्वयेन सक्थियुगलेन कामप्यद्भुतां कमनीयतां मनोज्ञतां कथयन्ती। कन्दर्पेति—कन्दर्पस्य कामस्य साम्राज्यं तस्य सिंहासनं तेन। कठिनं च तद्विशालं च तेन कठोरस्थूलेन। प्रतिक्षणं प्रतिसमयम् उच्छ्वसतोत्स्फुरता श्रोणिमण्डलेन नितम्बबिम्बेन शिथिलीकृता या नीवी कटिवस्त्रग्रन्थिस्तस्या नहनाभ्यासेन बन्धनाभ्यासेन खेदितौ करौ यस्याः सा। मणिकिङ्किणीति—मणिकिङ्किणीनां रत्नमयक्षुद्रघण्टिकानां रणितस्य रुणझुणशब्दस्य छलेन व्याजेन भङ्गस्य भयं तस्मात् त्रोटनभीतेः नितम्बविष्टरं नितम्बासनम् अभिष्टुवतेव स्तुतिं कुर्वाणेनेव। चिरपरिचयेन पल्लवितं वृद्धिंगतं प्रेम यस्य तस्य भावस्तत्ता तया पतनशीलस्य कृशत्वात्पतनोन्मुखस्य मध्यस्य मन्देतरा विपुला या मरीचिवीचयः किरणसंततयस्तासां समुद्गमस्य व्याजेन हस्तदानं करावलम्बनं प्रयच्छतेव प्रददतेव। प्रतप्तेन काञ्चनेन भर्मणा कल्पितं रचितं तेन काञ्चीवलयेन मेखलामण्डलेन परिवेष्टितं नितम्बमेव चन्द्रबिम्बं यस्याः सा। विडम्बितेति—विडम्बिता तिरस्कृता रशनालंकारमरकतमणीनां मेखलाभरणहरितमणीनां मयूखलेखा किरणरेखा यया तया। त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य विजयाय संनह्यन् समुद्यतो भवन् योऽनङ्गसुभटो मदनयोधस्तस्य करे कलिता या

अनुकरण करनेवाले पिण्डरियोंके युगलसे वह रानी उस कमलनालकी शोभाको प्रकट कर रही थी जिसका कि कमल नीचेकी ओर था। जो इन्द्रके हाथीकी सूँड़ सम्बन्धी गौरवको लूट रहा था, कामदेवके निवासभूत नितम्बरूपी महलको सुशोभित करनेवाले मणिमय तोरणोंकी सुन्दरतासे श्रेष्ठ था, कामरूपी हाथीके बाँधनेके खम्भेके समान जान पड़ता था और स्वभावसे ही स्थूल था ऐसी श्रेष्ठ जाँघोंके युगलसे वह किसी अनिर्वचनीय सुन्दरताको प्रकट कर रही थी। जो कामदेवके राज्यसिंहासनके समान था, कठिन और विशाल था तथा प्रतिक्षण वृद्धिंगत हो रहा था ऐसे नितम्बमण्डलसे उसकी धोतीकी गाँठ ढीली पड़ जाती थी और उसके बार-बार कसनेके अभ्याससे उसके हाथ खेद खिन्न हो रहे थे। तपाये हुए स्वर्णसे निर्मित जिस मेखलाके घेरासे उसका नितम्बरूपी चन्द्रमण्डल घिरा हुआ था वह मणिमय क्षुद्रघण्टिकाओंके शब्दके बहाने ऐसा जान पड़ता था मानो टूट जानेके भयसे नितम्बरूपी सिंहासनकी स्तुति ही कर रहा हो अथवा चिरकालके परिचयसे बढ़े हुए प्रेमके कारण पतनोन्मुख मध्यभागको अत्यधिक किरणावलीके ऊपर उठनेके बहाने मानो हाथका सहारा ही दे रहा हो। जिसने मेखलामें लगे हुए मरकत-मणियोंकी किरणावलीका उपहास

वर्तमण्डलेन मदनमतङ्गजनिगलकटकेन कान्तनयनशफरविहरणतडागेन[1] सौन्दर्यमहानिधिगर्तसनाभिना नाभिचक्रेण[2] चरितार्थीकृतलोकलोचना, नितान्तपीवरनितम्बनिष्पादनजनितपरिखेदपरिणततन्द्रालुभावेन कमलसद्मना कृशतरमुपपादितेनेव दुर्वहपयोधरयुगलवहनकातरतया नाभिह्रदनिमग्नेनेवानुपलक्षितरूपेणातितनीयस्तया घटितपटबन्धेनेव त्रिवलीव्याजेन मध्यदेशेन दर्शितसौभाग्या, सौकुमार्यसरश्चक्रवाकमिथुनेनेव[3] मीनकेतनकरिकुम्भसहचरेण शृङ्गारनटरङ्गपीठेन विलाससरसीसमुत्पन्नसरसिजमुकुलाकोमलेन कुचद्वयेन किंचिदवनतपूर्वकाया, कदर्थितकमलमृणाल-

कृपाणलता खड्गवल्ली तस्या लावण्यमपहसतीत्येवं शीला तया रोम्णां राजिका तया उदरस्थलोमपङ्क्त्या विराजन्ती शोभमाना। रामणीयकेति—रामणीयकमेव सौन्दर्यमेव सरित्तस्या आवर्तमण्डलं तेन, मदनमतङ्गजस्य कामकरिणो निगलकटकेन बन्धनवलयेन, कान्तस्य वल्लभस्य नयनशफराणां नेत्रमीनानां विहरणाय तडागस्तेन, सौन्दर्यमेव महानिधिस्तस्य गर्तस्य सनाभिना सदृशेन नाभिचक्रेण नाभिमण्डलेन चरितार्थीकृतानि लोकलोचनानि यया सा। नितान्तेति—नितान्तपीवरस्यातिस्थूलस्य नितम्बस्य कटिपश्चाद्भागस्य निष्पादनेन निर्माणेन जनितः समुत्पन्नो यः परिखेदस्तेन परिणतः प्राप्तस्तन्द्रालुभाव आलस्यं यस्य तेन कमलसद्मना ब्रह्मणा कृशतरं यथा स्यात्तथा उपपादितेनेव रचितेनेव, दुर्वहं दुःखेन वोढुं शक्यं यत्पयोधरयुगलं तस्य वहने धारणे कातरतया भीरुतया, नाभिरेव ह्रदस्तस्मिन् निमग्नेनेवानुपलक्षितरूपेणादृष्टाकारेण, अतिशयेन तनुः इत्यतितनीयान् तस्य भावस्तया अतिकृशतया त्रिवलीव्याजेन रेखात्रितयव्याजेन घटितो विहितः पटबन्धो यस्य तेन तथाभूतेनेव मध्यदेशेन कटिप्रदेशेन दर्शितं सौभाग्यं यस्याः सा। सौकुमार्येति—सौकुमार्यमेव मृदुत्वमेव सरः कासारस्तस्य चक्रवाकयोर्मिथुनेनेव युगेनेव, मीनकेतनकरिणो मदनमतङ्गजस्य कुम्भौ गण्डौ तयोः सहचरेण सदृशेन, शृङ्गार एव नटस्तस्य रङ्गपीठेन नृत्यस्थलेन, विलाससरस्यां विभ्रमकासारे समुत्पन्ने ये सरसिजमुकुले कमलकुड्मले तद्वदकोमलेन कठिनेन कुचद्वयेन स्तनयुगलेन किंचिदवनतो मनाग्भुग्नः पूर्वकायो यस्याः सा। कदर्थितेति—कदर्थितं तिरस्कृतं

किया था और जो त्रिभुवनकी विजयके लिए तैयार हुए कामरूपी योद्धाके हाथमें स्थित तलवाररूपी लताके सौन्दर्यकी खिल्ली उड़ा रही थी ऐसी रोमराजीसे सुशोभित थी। जो सौन्दर्यरूपी नदीकी भँवरके समान जान पड़ता था, कामरूपी हाथीकी बेड़ीके कड़ेके समान था, पतिके नेत्ररूपी मछलियोंका क्रीड़ासरोवर था अथवा सौन्दर्यरूपी महानिधिके गर्तके समान था ऐसे नाभिचक्रसे वह मनुष्योंके नेत्रोंको चरितार्थ कर रही थी। वह जिस दुबलीपतली कमरसे अपना सौभाग्य दिखला रही थी वह ऐसी जान पड़ती थी मानो अत्यन्त स्थूल नितम्बोंके बनानेसे उत्पन्न थकावटसे आलस्य आ जानेके कारण ब्रह्माने उसे अत्यन्त कृश बना दिया था अथवा बहुत भारी स्तन युगलको धारण करनेसे भीरु होनेके कारण मानो वह नाभिरूपी सरोवरमें डूबी जा रही थी। अत्यन्त कृश होनेके कारण उसका स्वरूप दिखाई नहीं देता था तथा त्रिवलिके बहाने वह वस्त्रकी पट्टी बाँधे हुएके समान जान पड़ती थी। जो सौन्दर्यरूपी सरोवरके चकवा-चकवीके मिथुनके समान थे, कामदेवरूपी हाथीके दो गण्डस्थलोंके समान थे, शृंगाररूपी नटकी रंगभूमि स्वरूप थे, और विलासरूपी सरोवरमें उत्पन्न कमलकी बोंड़ीके समान थे ऐसे दोनों स्तनोंसे उसके शरीरका ऊर्ध्वभाग कुछ-कुछ नीचेकी ओर झुक रहा था। जिन्होंने कमलके मृणाल सम्बन्धी सौकुमार्यको तिरस्कृत कर दिया था, जो

१ क० ख० ग० तटाकेन। २ क० सनाभिनाभिचक्रेण। ३ म० ख० मिथुनेन।

सौकुमार्येण माणिक्यपारिहार्यमरीचिपटलकवचितेन स्तबरकनिचुलितकुसुमशरविलासोपधानसौभाग्येन प्रवालकोमलाङ्गुलिना सुरभिशरीरपर्यायपटीरविटपिसंगिभुजंगेन भुजद्वयेन भूषिता, दूषितकम्बुसंपदाडम्बरेण वदननलिननालकाण्डेन कण्ठेन खण्डिततरुणपूगकन्धराहंकारा, प्रतिभटतुहिनकिरणविजयकौतुकेन कार्मुकमिव भ्रूलतानिभेन बिभ्रता सहजशशधरशङ्कागतं कौस्तुभमिव स्निग्धपाटलमनोहरमधरं दधता सुधाकरकलत्रमिति कौमुदीमिव बन्दीकृत्य मन्दहसितच्छलेन दर्शयता युवतिवदनसाम्राज्यचिह्नमिव धवलातपत्रमलकलतानिपतितमिव कुसुममाभिरूप्यदर्शनदोहलधृतमिव दर्पणं चन्दनतिलकमुद्वहता ललाटार्धचन्द्रबिम्बविगलदमृतधारासंदेहदायिन्या नासिकया सीमन्तितेन सुरासुरपरिषदपहृतसारः समुद्गतकालकूटगरलदूषितः क्षीरजलनिधिरिति

कमलमृणालयोः सौकुमार्यं येन तेन, माणिक्यपारिहार्याणां रत्नाभरणानां मरीचिपटलेन किरणकलापेन कवचितं व्याप्तं तेन, स्तवरकेण वस्त्रावरणेन निचुलितं व्याप्तं यत् कुसुमशरस्य मदनस्य विलासोपधानं विभ्रमोपधानं तद्वत्सौभाग्यं यस्य तेन; प्रवालकोमलाः पल्लवमृदुला अङ्गुलयो यस्मिन् तेन, सुरभिशरीरं सुगन्धिशरीरं पर्यायो यस्य स चासौ पटीरविटपी चन्दनवृक्षस्तस्य संगिभुजंगः संश्लिष्टसर्पस्तेन भुजद्वयेन बाहुयुगलेन भूषिता। दूषितेति—दूषितो निन्दितः कम्बुसंपदः शङ्खसंपत्तेराडम्बरो विस्तारो येन तेन, वदननलिनस्य मुखकमलस्य नालकाण्डेन नालदण्डेन कण्ठेन शिरोधरेण खण्डितस्तिरस्कृतस्तरुणपूगस्य तरुणक्रमुकपादपस्य कन्धराया ग्रीवाया अहंकारो यथा सा। मुखेन मदनमपि कामममपि मदयन्ती मत्तं कुर्वन्ती। अथ मुखस्य विशेषणान्याह—प्रतिभटेति—प्रतिभटः प्रतिस्पर्धी यस्तुहिनकिरणश्चन्द्रस्तस्य विजयस्य कौतुकेन भ्रूलतानिभेन भ्रुकुटिवल्लीव्याजेन कार्मुकं धनुर्बिभ्रतेव दधतेव। सहजेति—सहजश्चासौ शशधरश्चेति सहजशशधरः सहोत्पन्नचन्द्रस्तस्य शङ्कया संदेहेनागतस्तं कौस्तुभमिव कौस्तुभाख्यमणिविशेषमिव स्निग्धश्चासौ पाटलश्च स्निग्धपाटलः अतएव मनोहरस्तमधरं दशनच्छदं दधता। सुधाकरेति—सुधाकरस्य कलत्रं सुधाकरकलत्रं चन्द्रपत्नीति हेतोः कौमुदीं चन्द्रिकां बन्दीकृत्य कारावरुद्धां कृत्वा मन्दहसितच्छलेन स्मितव्याजेन दर्शयतेव प्रकटयतेव। युवतीति—युवतिवदनानां तरुणीमुखानां साम्राज्यस्य चिह्नं धवलातपत्रमिव शुक्लच्छत्रमिव अलकलतानिपतितं चूर्णकुन्तलवल्लीस्खलितं कुसुममिव, आभिरूप्यं सौन्दर्यं तस्य दर्शनदोहलेन विलोकनमनोरथेन धृतमवलम्बितं दर्पणमिव मुकुरमिव चन्दनतिलकं मलयजस्थासकम् उद्वहता दधता। ललाटेति—ललाटमेवार्धचन्द्रबिम्बं भालार्धशशधरमण्डलं तस्माद् विगलन्ती या अमृतधारा तस्याः संदेहं ददातीत्येवंशीला तया नासिकया सीमन्तितेन कृतवेशितेन। सुरासुरेति—

मणिमय आभूषणोंकी किरणावलीसे व्याप्त थीं, आवरणसे युक्त कामदेवके विलाससम्बन्धी तकियाके समान सौभाग्यको धारण कर रही थीं, जिनकी अंगुलियाँ प्रवालके समान कोमल थीं और जो सुगन्धित शरीररूपी चन्दनके वृक्षसे लिपटे साँपोंके समान जान पड़ती थीं ऐसी दोनों भुजाओंसे वह सुशोभित थी। जिसने शंखकी सौन्दर्य रूप सम्पत्तिके आडम्बरको दूषित कर दिया था, एवं जो मुखरूपी कमलकी नालके समान जान पड़ता था ऐसे कण्ठसे उसने सुपारीके तरुण वृक्षकी ग्रीवाके अहंकारको खण्डित कर दिया था। जो अपने प्रतिद्वन्द्वी चन्द्रमापर विजय प्राप्त करनेके कुतूहलसे भ्रकुटिरूप लताके बहाने मानो धनुषको धारण कर रहा था, जो अपने सहभावी चन्द्रमाकी शंकासे पासमें आये हुए कौस्तुभमणिके समान चिकने गुलाबी एवं सुन्दर अधरोष्ठको धारण कर रहा था, जो मन्द-मन्द मुसकानके छलसे 'यह चन्द्रमाकी स्त्री है' यह समझ चाँदनीको ही मानो कैद कर दिखला रहा था, जो तरुण स्त्रियोंके मुखके साम्राज्यचिह्न सफेद छत्रके समान अथवा चूर्ण-कुन्तलरूपी लतासे गिरे हुए फूलके समान, अथवा सौन्दर्यको देखनेकी अभिलाषासे धारण किये हुए दर्पणके समान

जलसद्मना सादरमुपपादितमनपहार्यकटाक्षशृङ्गाररत्नरमणीयमाभिरूप्यलक्ष्मीजन्ममहितमसितभ्रूलतातमालवनलेखापरिष्कृतपक्ष्मवेलं विलोचनमयं दुग्धसागरयुगलमुपदर्शयता मुखेन मदनमपि मदयन्ती, मन्मथविलासदोलायमानेन प्रकृतितरलनयनहरिणनहनपाशसवर्णेन कर्णपाशेन बद्धशोभा, निशामुखेन कुसुमतारकास्फुरणानामभिनवजलधरेण विलासविद्युदुन्मेषाणामुन्मिषदन्धकारमेचकरुचा मुखशशिसंभोगकौतुकसंनिहितशर्वरीशङ्कावहेन केशहस्तेनापहसितबर्हिबर्हाडम्बरा, प्रतिनिधिरिव लक्ष्म्याः, प्रतापपूर्तिरिव सौभाग्यस्य, समाप्तिभूमिरिव सौन्दर्यपरमाणूनाम्, मनोरथसिद्धिरिव

क्षीरजलनिधिः क्षीरसागरः सुरासुराणां परिषदापहृतः सारो यस्य सः, समुद्गतेन कालकूटगरलेन तन्नामप्रचण्डविषेण दूषित इति हेतोः जलसद्मना जलनिवासिना कुबेरेणेत्यर्थः सादरं यथा स्यात्तथा उपपादितं निर्मापितम्, अनपहार्याणि केनाप्यपहर्तुमयोग्यानि यानि कटाक्षशृङ्गाररत्नानि तै रमणीयम्, आभिरूप्यं सौन्दर्यमेव लक्ष्मीस्तस्या जन्मना महितं शोभितम्, असितया श्यामया भ्रूलतातमालवनलेखया भ्रकुटिलतापिच्छवनरेखया परिष्कृता शोभिता पक्ष्मवेला निमेषतटी यस्य तत्, विलोचनमयं नेत्रात्मकं दुग्धसागरयुगलं क्षीरसागरयुगम्, उपदर्शयता प्रकटयता मुखेन। मन्मथेति—मन्मथस्य कामस्य विलासदोलेवाचरतीति तथा तेन, प्रकृत्या निसर्गेण तरले चपले नयने एव हरिणौ तयोर्नहनाय बन्धनाय पाशसवर्णः पाशसदृशस्तेन। कर्णपाशेन बद्धा शोभा यस्याः सा। निशामुखेनेति—कुसुमान्येव तारका उडूनि तासां स्फुरणानां समुदयानां निशामुखेन रजनीमुखेन, विलासा एव विद्युतस्तासामुन्मेषाः स्फुरणानि तेषाम् अभिनवजलधरेण नूतनमेघेन, उन्मिषत् प्रकटीभवत् यदन्धकारं तद्वत् मेचका कृष्णा रुक् यस्य तेन, मुखशशिना वदनचन्द्रेण सह संभोगस्य रतेः कौतुकेन संनिहिता समीपमागता या शर्वरी तस्याः शङ्कावहः संशयोत्पादकस्तेन केशहस्तेन केशपाशेन, अपहसितो निन्दितो बर्हिबर्हाडम्बरो मयूरपिच्छविस्तारो यया सा। प्रतिनिधिरिवेति—लक्ष्म्याः प्रतिनिधिरिव, सौभाग्यस्य प्रतापपूर्तिरिव, सौन्दर्यस्य परमाणवस्तेषां समाप्तिभूमिरिवावसानक्षेत्रमिव, पातिव्रत्यस्य सतीत्वस्य मनोरथसिद्धिरिव

चन्दनके तिलकको धारण कर रहा था, जो ललाटरूपी अर्धचन्द्र बिम्बसे झरती हुई अमृतकी धाराका सन्देह उत्पन्न करनेवाली नासिकासे विभाजित था, 'क्षीर समुद्रका सार सुर और असुरोंका समूह हरकर ले गया है साथ ही वह उत्पन्न हुए कालकूट विषसे दूषित है' इस भावनासे ब्रह्माने बड़े आदरसे जिसकी रचना की थी, जो हरण न किये जानेवाले कटाक्ष तथा शृंगाररूपी रत्नोंसे रमणीय था, सौन्दर्यरूपी लक्ष्मीके जन्मसे सुशोभित था, और श्यामल भृकुटिलता रूप तमाल वनकी रेखासे जिसकी बिरूनी रूपी वेला सुशोभित थी ऐसे नेत्ररूपी क्षीरसागरके युगलको दिखला रहा था ऐसे मुखसे वह विजया रानी कामदेवको भी मदसे मत्त कर रही थी। जो कामदेवके विलासके झूलाके समान जान पड़ता था और स्वभावसे ही चपल नेत्ररूपी हरिणोंको बाँधनेके लिए पाशके समान मालूम होता था ऐसे कर्णरूपी पाशसे वह सुशोभित थी। जो फूलरूपी ताराओंके विकासके लिए रात्रिके प्रारम्भ भागके समान था, विलासरूपी बिजलीके कौंधनेके लिए जो नूतन मेघके समान था, उठते-हुए अन्धकारके समान जो काली कान्तिको धारण कर रहा था, अथवा जो मुखरूपी चन्द्रमाके साथ सम्भोग करनेके कौतुकसे पासमें आयी रात्रिकी शंका उत्पन्न कर रहा था ऐसे केशपाशसे वह मयूरपिच्छके आडम्बरकी हँसी कर रही थी। वह विजया मानो लक्ष्मीकी प्रतिनिधि थी, सौभाग्यके प्रतापकी पूर्ति थी, सौन्दर्यके परमाणुओंकी समाप्तिका स्थान थी, पाति-

१ क० ख० ग० विद्युदुन्मेषिणां। २ क० ख० केशहस्तेनापहसित।

पातिव्रत्यस्य, प्रकर्षरेखेव स्त्रीत्वस्य, मूर्तिरिव दाक्षिण्यस्य, कीर्तिरिव चारित्रस्य, विजयपताकेव पञ्चशरस्य विजया नाम महिषी ।

§ ८. तस्यां सौन्दर्यपुनरुक्ताभरणानामबलानां वर्गे सत्यपि निसर्गत एव नरपतेररमतान्तःकरणम् । अथ स राजा रजनीकरकिरणकन्दलविपक्षैः क्षीरजलधिजठरलुठितफेनपटलविशदैर्यशःपल्लवैरापादितदिशाविलासिनीकर्णपूरः पूरितमनीषिजनमनोरथः प्रतिबलजलधिमथनमन्दरेण वसुंधरामयूरीनिवासविटपेन वीरलक्ष्मीकरेणुकालानेन भुजस्तम्भदम्भोलिना खण्डितभूभृन्मण्डलः कर्तव्यमपरमपश्यन्नवश्येन्द्रियः कुसुमचापचापलानि सफलयितुं सर्वाकाराभिरामया रामया सहाभिलषन् स्वभावनिशितधिषणावधीरितपुरुहूतपुरोधसि यथावदवगतराजनीतिवर्त्मनि फलित-

स्त्रीत्वस्य प्रकर्षरेखेव चरमरेखेव, दाक्षिण्यस्य सरलताया मूर्तिरिव, चारित्रस्य सदाचारस्य कीर्तिरिव, पञ्चशरस्य कामदेवस्य विजयपताकेव विजयवैजयन्तीव ।

§ ८. तस्यामिति—सौन्दर्येण लावण्येन पुनरुक्तान्याभरणानि यासां तासाम्, अबलानां नारीणां वर्गे समूहे सत्यपि नरपतेः सत्यंधरमहाराजस्य अन्तःकरणं हृदयं तस्यामेव विजयायामेव, अरमताक्रीडत् प्रीतमासीदिति भावः । अथेति—अथानन्तरं स राजा सत्यंधरः रजनीकरकिरणकन्दलानां विपक्षास्तैः चन्द्रमरीचिमण्डलादपि धवलैरिति भावः, क्षीरजलधिजठरे क्षीरसागरमध्ये लुठितं यत्फेनपटलं डिण्डीरराशिस्तद्वद् विशदास्तैः । यशःपल्लवैः कीर्तिकिसलयैः, आपादितानि प्रापितानि दिशाविलासिनीनां काष्ठाकामिनीनां कर्णपूराणि कर्णाभरणानि येन सः, पूरिता मनीषिजनानां विद्वज्जनानां मनोरथा येन सः प्रतिबलजलधेः शत्रुसागरस्य मथने विलोडने मन्दरेण मन्दराचलेन, वसुंधरा पृथिव्येव मयूरी तस्या निवासविटपो निवासशाखा तेन, वीरलक्ष्मीर्वीरश्रीरेव करेणुका हस्तिनी तस्या आलानो बन्धनस्तम्भस्तेन, भुजस्तम्भदम्भोलिना बाहुस्तम्भवज्रेण खण्डितं भूभृतां राज्ञामेव भूभृतां पर्वतानां मण्डलं येन सः, अपरमन्यत् कर्तव्यं कार्यम् अपश्यन् अवश्यानीन्द्रियाणि यस्य सोऽस्वाधीनीकृतहृषीकः, सर्वाकारेण निखिलाकारेणाभिरामा सुन्दरी तया, रामया सह, कुसुमचापस्य मदनस्य चापलानि सफलयितुं सफलानि कर्तुम्, अभिलषन् वाञ्छन्, स्वभावेन प्रकृत्या निशिता तीक्ष्णा या धिषणा बुद्धिस्तयावधीरितोऽनादृतः पुरुहूतपुरोधा इन्द्रपुरोहितो बृहस्पतिरिति यावद् येन तस्मिन्, यथावद् याथार्थ्येनावगतं ज्ञातं राजनीतिवर्त्म

व्रत्य धर्मके मनोरथकी सिद्धि थी, स्त्री पर्यायकी श्रेष्ठताकी रेखा थी, सरलताकी मूर्ति थी, चारित्रकी कीर्ति थी, और कामदेवकी मानो विजयपताका थी ।

§ ८. सौन्दर्यके कारण जिनके आभूषण पुनरुक्त हो रहे थे ऐसी स्त्रियोंका समूह विद्यमान रहनेपर भी राजा सत्यंधरका हृदय स्वभावसे उसी एक विजयामें रमण करता था। अथानन्तर चन्द्रमाकी किरणरूप कन्दलके प्रतिद्वन्द्वी एवं क्षीरसागरके मध्यमें लोटते हुए फेनपटलके समान सफेद यशरूपी पल्लवोंके द्वारा जिसने समस्त दिशारूपी स्त्रियोंके कानोंमें कर्णफूल पहना रखे थे, शत्रुओंकी सेनारूपी समुद्रको मथनेके लिए मन्दरगिरि, पृथिवीरूपी मयूरीके निवास करनेके लिए वृक्षकी शाखा, एवं वीरलक्ष्मीरूपी हस्तिनीको बाँधनेके लिए स्तम्भस्वरूप भुजारूप वज्रके द्वारा जिसने समस्त राजाओं (पक्षमें पर्वतों) के मण्डलको खण्ड-खण्ड कर दिया था ऐसा राजा सत्यंधर करने योग्य अन्य कार्यको न देख इन्द्रियोंको स्वाधीन न रख सका। इसलिए सर्वाकारसे सुन्दर रानी विजयाके साथ कामसम्बन्धी चपलताओंको सफल करनेकी अभिलाषा रखता हुआ, काष्ठाङ्गार नामक उस मन्त्रीपर राज्यका भार रखनेको तैयार हो गया जिसने अपने स्वभावसे ही तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा इन्द्रके पुरोहित—बृहस्पतिको तिरस्कृत कर दिया था, जो राजनीतिके मार्गको अच्छी तरह

चतुरुपायविजृम्भितयशसि पराक्रममृगपतिनिवासजङ्गमजगतीभृति गभीरिमगुणगर्हितोदन्वति[1] स्थैर्यपरिहसितकुलशिखरिणि कुलिशकठिनमनसि संकटेऽप्यखेदिनि निखिलारिचक्राक्रमणनिष्ठे काष्ठाङ्गारनामनि निरस्ततन्द्रे मन्त्रिणि निवेशयितुं राज्यभारमारभत ।

§ ९. तथा प्रारभमाणे च राजनि राजनीतिकुशलाः कुटिलेतरबुद्धयः कुलक्रमागतिभाजः कुत्सितकर्मपराचीनचेतोवृत्तयः शमिनि वयसि वर्तमानाः कतिचन सचिवाः समेत्य कृतप्रणामाः सप्रणयं व्यजिज्ञपन्—'देव, देवेनाविदितं किंचिदस्तीति न प्रस्तुमहे कथयितुम् । तदपि देवपादयोरनितरसाधारणी भक्तिरस्मान्मुखरयति । तदुचितमनुचितं वा प्रणयपरवशैरस्माभिरभिधीयमानमाकर्णयितुमर्हति स्वामी । देव, स्वहृदयमपि राज्ञा न विस्रम्भणीयम् । किमुतापरे । इयं

राजनयमार्गो येन तस्मिन्, फलितैः सफलीभूतैश्चतुरुपायैः सामदानदण्डभेदैर्विजृम्भितं यशो यस्य तस्मिन्, पराक्रम एव मृगपतिः सिंहस्तस्य निवासाय जङ्गमजगतीभृद् गतिशीलपर्वतस्तस्मिन्, गभीरिमगुणेन गाम्भीर्यगुणेन गर्हितो निन्दित उदन्वान्सागरो येन तस्मिन् 'उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान्सागरोऽर्णवः' इत्यमरः, स्थैर्येण दाढर्येन परिहसितस्तिरस्कृतः कुलशिखरी येन तस्मिन्, कुलिशवत्कठोरं कठिनं मनो यस्य तस्मिन्, संकटेऽपि व्यसनेऽपि, अखेदिनि खेदरहिते, निखिलारिचक्रे समग्रशत्रुसमूहे आक्रमणे निष्ठा समादरो यस्य तस्मिन्, काष्ठाङ्गारनामनि, निरस्ततन्द्रे निरालस्ये मन्त्रिणि सचिवे राज्यभारं निवेशयितुम् आरभत तत्परोऽभूत् ।

§ ९. तथेति—तथा तेन प्रकारेण राजनि प्रारभमाणे सति राजनीतिकुशला नृपनीतिनिष्णाताः, कुटिलेतरबुद्धयः सरलप्रज्ञाः, कुलक्रमादागतिं भजन्तीति तथा, कुत्सितकर्मणो निन्दितकार्यात्पराचीना विमुखाश्चेतोवृत्तिर्येषां ते, शमिनि वयसि वृद्धावस्थायां वर्तमानाः कतिचन केऽपि सचिवा अमात्याः समेत्य कृतः प्रणामो यैस्तथाभूताः सन्तः सप्रणयं सस्नेहं व्यजिज्ञपन् निवेदितवन्तः । देव, हे राजन्, देवेन भवता अविदितमज्ञातं किंचिदस्तीति हेतोः कथयितुं न प्रस्तुमहे नोद्यता भवामो वयमिति शेषः । तदपि तथापि देवपादयोर्भवच्चरणयोः अनितरसाधारणी अनुपमा भक्तिः, अस्मान्मुखरयति वाचालयति कथयितुं प्रेरयतीति यावत् । तत्तस्मात् प्रणयपरवशैः स्नेहाधीनैः अस्माभिरभिधीयमानं कथ्यमानं वच उचितं युक्तमनुचितमयुक्तं वा भवतु, आकर्णयितुं श्रोतुमर्हति योग्योऽस्ति स्वामी । देव, राजन्, राज्ञा स्वहृदयमपि न विस्रम्भणीयं न विश्वसनीयं किमुतापरेऽन्ये जना विस्रम्भणीयाः । इयं हि स्वभावेन

जानता था, सफलताको प्राप्त हुए साम आदि उपायोंसे जिसका यश बढ़ रहा था, पराक्रमरूप सिंहके निवास करनेके लिए जो चलता-फिरता पर्वत था, गाम्भीर्यरूप गुणसे जिसने समुद्रको निन्दित कर दिया था, अपनी स्थिरतासे जिसने कुलाचलकी खिल्ली उड़ायी थी, जिसका मन वज्रके समान कठोर था, जो संकटके समय भी कभी खेदखिन्न नहीं होता था, जो समस्त शत्रुदलपर आक्रमण करनेके लिए तैयार बैठा था एवं अनुत्साहको जिसने दूर भगा दिया था ।

§. ९. जब राजा यह करनेके लिए तत्पर हुआ तब राजनीतिमें कुशल, सरल बुद्धिके धारक, कुलक्रमागत, खोटे कार्योंसे विमुखहृदय एवं वृद्ध अवस्थामें वर्तमान कितने ही मन्त्रियोंने आकर प्रणाम करते हुए बड़े स्नेहसे इस प्रकार प्रार्थना की—'हे देव ! आपके द्वारा कुछ अविदित है इसलिए हम कहनेके लिए उद्यत नहीं हो रहे हैं। फिर भी आपके चरणोंमें जो असाधारण भक्ति है वह हम लोगोंको मुखरित कर रही है—कुछ कहनेके लिए प्रेरित कर रही है। अतः उचित हो चाहे अनुचित, स्नेहके वशीभूत हुए हम लोगोंके द्वारा कही हुई

१ क० ख० ग० गम्भीरिम ।

हि स्वभावसरलनिजहृदयजनिता सर्वविश्वासिता विश्वानर्थकन्दः। क्षमापतयः शैलूषा इव मन्त्रिषु नाटयन्ति विस्रम्भं न तु बध्नन्ति मनसा। यतश्चिरपरिचयसमुपचितेन विस्रम्भेण मन्त्रिषु निवेशितराज्यभारा राजानस्तैरेव व्यापादिता इति लोकप्रवादा मुखरयन्ति नः श्रोत्रपथम्। अपि च सर्वथायमनर्थानुबन्धी परिहृतनिखिलेतरव्यापारः पक्ष्मललोचनायामत्यासंगः। यतः सुरासुरसमरकण्डूलदोर्दण्डमण्डली[1] हेलोल्लासितकैलासकण्ठोक्तपराक्रमः प्रतापभयविनमदनेकविद्याधरमकुटमणिपादपीठविलुठितचरणोऽपि रावणः प्रणयभरेण जनकदुहितरि जनितपारवश्यः समरशिरसि दशरथतनयनिधनाय निजकरविमुक्तेन रणलक्ष्मीमुखकमलविकासदिवसकरसहचरेण चक्रेण यशःशेषतामनीयत। अपि च तपश्चरन्नतिदुश्चरमरविन्दसद्मा शङ्कितवलमथनप्रेषितवार-

सरलं यन्निजहृदयं तेन जनिता समुत्पादिता सर्वविश्वासिता निखिलजनविश्वासकारिता विश्वानर्थकन्दः समस्तानर्थमूलं वर्तते इति शेषः। क्षमापतयो राजानः शैलूषा इव नटा इव मन्त्रिषु विस्रम्भं विश्वासं नाटयन्ति प्रदर्शयन्ति मनसा तु न बध्नन्ति। यतो यस्मात्कारणात् चिरपरिचयेन समुपचितस्तेन विस्रम्भेण मन्त्रिषु निवेशितो राज्यभारो यैस्ते तथाभूता राजानस्तैरेव मन्त्रिभिरेव व्यापादिता मारिता इति लोकप्रवादा नोऽस्माकं श्रोत्रपथं मुखरयन्ति। एवं मन्त्रिणामविश्वास्यतां प्रदर्श्य कामासक्तेर्दोषान् वर्णयति। अपि चेति—किंच, परिहृतास्त्यक्ता निखिलेतरव्यापाराः सर्वान्यकार्याणि यस्मिन् सः, पक्ष्मललोचनायां स्त्रियाम् अयमत्यासंगोऽत्यासक्तिः सर्वथा सर्वप्रकारेण अनर्थानुबन्धी अनर्थोत्पादकः अस्ति। यतो यस्मात् कारणात् सुरासुरैर्देवदानवैः सह समरो युद्धं तेन कण्डूला खर्जयुक्ता या दोर्दण्डमण्डली भुजदण्डमण्डली तया हेलयानायासेनोल्लासित उत्खातो यः कैलासस्तेन कण्ठोक्तः पराक्रमो यस्य सः। प्रतापभयेन विनमन्तो येऽनेकविद्याधरास्तेषां मुकुटमणय एव पादपीठानि तेषु विलुठितौ चरणौ यस्य तथाभूतोऽपि रावणो दशास्यः जनकदुहितरि सीतायां प्रणयभरेण स्नेहातिरेकेण जनितं पारवश्यं यस्य तथाभूतः सन् समरशिरसि रणाग्रे दशरथतनयस्य निधनं तस्मै लक्ष्मणविघाताय निजकरविमुक्तेन स्वपाणित्यक्तेन रणलक्ष्म्या मुखकमलस्य विकासाय यो दिवसकरस्तस्य सहचरं सदृशं तेन चक्रेण यशःशेषतां मृत्युम् अनीयत प्रापितः। अपि चेति—अतिदुश्चरमतिकठिनं तपश्चरन् तपः कुर्वन् अरविन्दसद्मा ब्रह्मा शङ्कितेन

प्रार्थनाको आप सुननेके योग्य हैं। हे देव! राजाको अपने हृदयका भी विश्वास नहीं करना चाहिए फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है? यह जो आपकी स्वभावसे सरल अपने हृदयसे उत्पन्न सब लोगोंके विश्वास करनेकी आदत है वह समस्त अनर्थोंका मूल है। राजा लोग नटोंके समान मन्त्रियोंके ऊपर अपने विश्वासका अभिनय करते हैं परन्तु हृदयसे उनपर विश्वास नहीं करते। क्योंकि चिरकालके परिचयसे बढ़े हुए विश्वासके कारण मन्त्रियोंपर राज्यका भार रखनेवाले राजा उन्हीं मन्त्रियोंके द्वारा मारे गये हैं ऐसी लोककथाएँ हम लोगोंके कर्णपथको शब्दायमान कर रही हैं। दूसरी बात यह है कि अन्य समस्त कार्य छोड़कर स्त्रीमें ही अत्यन्त आसक्त रहना यह समस्त अनर्थोंसे सम्बन्ध जोड़नेवाला है। देखिए, समस्त सुर और असुरोंके साथ युद्धकी खाज रखनेवाले भुजदण्डकी मण्डलीसे अनायास उठाये हुए कैलास पर्वतके द्वारा जिसका पराक्रम कण्ठोक्त था—कण्ठसे कहे हुएके समान प्रकट था और प्रतापके भयसे नमस्कार करनेवाले अनेक विद्याधरोंके मुकुटरूप मणिमय पाद चौकियोंपर जिसके चरण लोट रहे थे—विद्यमान थे ऐसा रावण भी स्नेहातिरेकसे सीताके विषयमें विवश हो रणके अग्रभागमें राजा दशरथके पुत्र—लक्ष्मणको मारनेके लिए अपने हाथसे छोड़े हुए रणलक्ष्मीके मुखकमलको विकसित करनेके लिए सूर्यके सदृश चक्र-

---

१ क० ख० ग० दोर्मण्डली।

योषिद्भिरचितविलासविलोकनविगलितधृतिरनुभवन्नात्मभुवश्चापलमभजदपहास्यताम् । तथा तथागतोऽपि कदाचित्कामशरपतनपरवशकरभपरिषदहमहमिकया परिग्रहपर्याकुलां कामपि बालेयीमालोकयन् करुणारसतरलितमतिराविर्भवदनेकशतभगशबलितकरभोवेषः क्षणमस्थादिति नास्तिकचूडामणेर्महीयान्ननु कलङ्कस्तस्य । तदित्थमयशःपङ्कपयोधरागमे धर्मकमलाकरनिमीलननिशामुखे द्वितीयपुरुषार्थपरुषराजयक्ष्मणि जडजनजनितसंबाधे विवेकिलोकनिन्दिते कन्दर्पवर्त्मनि न निर्भरं निदधति कृतधियः पदम् । तदविरोधेन धर्मार्थयोरनुभवन्कामसुखमजहदवनीपतिधर्मं पन्नगपरिवृढपरिभावुकेन बाहुना पालय पयोनिधिरशनालंकारिणीं धरणीम्' इति प्रणयस्वरूपसाक्षात्करणमणिदर्पणाभानि बहुविधनिदर्शनसंवादितार्थानि प्रेक्षावदेकान्तहृद्यानि

स्वपदापहरणभीतेन बलमथनेन शक्रेण प्रेषिता या वारयोषित् स्ववेश्या तया विरचितानां विलासानां विलोकनेन विगलिता नष्टा धृतिर्यस्य सः, आत्मभुवो मदनस्य चापलं चपलतामनुभवन् अपहास्यतां हास्यभाजनताम् अभजत् प्रापत् । तथेति—किंच तथागतोऽपि बुद्धोऽपि कदाचित् कामशराणां मदनबाणानां पतनेन परवशा पराधीना या करभपरिषद् उष्ट्रसमूहस्तयाहमहमिकया अहंपूर्विकात्वेन परिग्रहेण पर्याकुला व्यग्रा तां कामपि बालेयीमुष्ट्रीम् आलोकयन् पश्यन् करुणारसेन तरलिता मतिर्यस्य तथाभूतः सन्, आविर्भवन् प्रकटीभवन् अनेकशतभगशबलितो नानायोनिचित्रितः करभीवेष उष्ट्रीवेषो यस्य सः क्षणमस्थात् इति नास्तिकचूडामणेरनात्मवादिनस्तस्य तथागतस्य ननु निश्चयेन महीयान् कलङ्को भूयानपवादः । तदित्थमिति—तस्मात् इत्थम् अयशःपङ्कस्याकीर्तिकर्दमस्य पयोधरागमे वर्षर्तुरूपे, धर्म एव कमलाकरस्तस्य निमीलनाय निशामुखं रजनीप्रारम्भभागस्तस्मिन्, द्वितीयपुरुषार्थोऽर्थपुरुषार्थस्तस्य परुषराजयक्ष्मा कठिनराजरोगस्तस्मिन् जडजनैर्मूर्खैर्जनितः संबाधसंमर्दो यस्मिन् तस्मिन्, विवेकिलोकनिन्दिते विवेकज्ञजनजुगुप्सिते कंदर्पवर्त्मनि काममार्गे कृतधियो विद्वान्सो निर्भरं सातिशयं पदं न निदधति न स्थापयन्ति । तदविरोधेनेति—तत्तस्मात्, धर्मार्थयोः अविरोधेन विरोधमकृत्वा कामसुखमनुभवन्, अवनीपतिधर्मं राजधर्ममजहत् अमुञ्चन्, पन्नगपरिवृढस्य शेषनागस्य परिभावुकस्तिरस्कारकस्तेन बाहुना भुजेन पयोनिधिरेव सागर एव रशना मेखला तयालङ्कारिणीं धरणीं भूमिं पालय रक्ष । इतीति—इतीत्थं प्रणयस्वरूपस्य स्नेहरूपस्य साक्षात्करणे प्रत्यक्षावलोकने मणिदर्पणस्येवाभा येषां तानि, बहुविधैर्नाना-

---

रत्नसे यशःशेषताको प्राप्त करा दिया गया—मार डाला गया । अथवा अतिशय कठिन तपश्चर्या करनेवाला ब्रह्मा, शंकासे युक्त इन्द्रके द्वारा भेजी गयी उत्तम स्त्रियोंके द्वारा रचित हाव-भाव पूर्ण चेष्टाओंके देखनेसे धैर्यरहित हो कामसम्बन्धी चपलताका अनुभव करता हुआ हँसीको प्राप्त हुआ । अथवा किसी समय कामके बाणोंके पतनसे विवश अनेक ऊँटोंको अहंप्रथमिकाके कारण जो अत्यन्त व्याकुल हो रही थी ऐसी किसी उष्ट्रीको देखकर करुणारससे चंचलचित्त होकर बुद्ध भी प्रकट हुई अनेक शतयोनियोंसे चित्रित उष्ट्रीका वेष रख क्षण-भरके लिए स्थित हुए थे । यह अनात्मवादियोंमें शिरोमणि बुद्धका सबसे बड़ा कलंक है । इसलिए इस तरह जो अपयशरूपी पंकको उत्पन्न करनेके लिए वर्षाऋतुके समान है । धर्मरूपी कमल वनको निमीलित करनेके लिए रात्रिके प्रारम्भके समान है, जो अर्थ पुरुषार्थको नष्ट करनेके लिए कठोर राजयक्ष्माके समान है, मूर्ख जनोंसे जिसमें भीड़भाड़ उत्पन्न की जाती है, और विवेकी जन जिसकी निन्दा करते हैं ऐसे कामके मार्गमें बुद्धिमान् मनुष्य कभी अपना स्थिर पैर नहीं रखते । अतः आप भी धर्म और अर्थका विरोध न कर कामसुखका उपभोग करते और राजधर्मको न छोड़ते हुए शेषनागको तिरस्कृत करनेवाली भुजासे समुद्ररूपी मेखलासे अलंकृत पृथिवीका पालन करो ।'

तदात्वकटुकान्यप्युदर्कमधुराणि मन्त्रिवचनानि वनितोपभोगकुतूहलजालजटिलिते जननाथचेतसि निरवकाशतयेव न पदमलभन्त ।

§ १०. अथ भाविपरिभवचकितस्वान्तेषु सामन्तेषु कर्तव्याभावेन मूकीभवत्सु, शोककृशानुपरामर्शमर्मरितमनसि सीदति चिरंतने राजपरिजने, पर्यश्रुनयनेषु प्रवृत्तवनगमनश्रद्धेषु पौरवृद्धेषु पार्थिवस्तावन्मात्रतया धरित्रीराज्योपभोगादृष्टानां तथाभावितया तस्य वस्तुनः, दुर्निवारतया मकरध्वजस्य, दुरतिक्रमतया च नियतेर्निरन्तरनिपतदनङ्गशरशकलीकरणभयादिव पलायितविवेकः, प्रकृतिनिष्ठुरे काष्ठाङ्गारे निजभुजादवतार्य राज्यभारम्, राजीवदृशा सह रन्तुमारभत ।

प्रकारैर्निदर्शनैरुदाहरणैः संवादितः समर्थितोऽर्थो येषां तानि । प्रेक्षावतां बुद्धिमतामेकान्तहृद्यानि सर्वथाप्रियाणि, तदात्वे तत्काले कटुकान्यपि अप्रियाण्यपि, उदर्के फलकाले मधुराणि प्रियाणि, मन्त्रिवचनानि सचिवसुभाषितानि वनितोपभोगस्य रमणीरमणस्य कुतूहलजालेन कौतुकपाशेन जटिलिते व्याप्ते जननाथचेतसि सत्यंधरनृपहृदये निरवकाशतयेव स्थानाभावतयेव पदं स्थानं 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः, नालभन्त न प्राप्नुवन् ।

§ १०. अथेति—अथानन्तरं भाविना भविष्यता परिभवेनानादरेण चकितं स्वान्तं चित्तं येषां तेषु 'अनादरः परिभवः परिभावस्तिरस्क्रिया' इत्यमरः, सामन्तेषु मण्डलेश्वरेषु कर्तव्याभावेन उपायाभावेन मूकीभवत्सु तूष्णींभूतेषु सत्सु शोककृशानोः शोकानलस्य परामर्शेन संस्पर्शेन मर्मरितं शुष्कं मनो यस्य तथाभूते चिरंतने प्राचीने राजपरिजने नृपतिपरिवारे सीदति दुःखीभवति सति । पर्यश्रूणि नयनानि येषां तेषु साश्रुलोचनेषु पौरवृद्धेषु वृद्धनागरिकेषु प्रवृत्ता समुद्गता वनगमने श्रद्धा येषां तेषु सत्सु । पार्थिवो नृपो धरित्रीराज्यस्य पृथिवीराज्यस्योपभोगास्तेषामदृष्टानि दैवानि तेषां तावन्मात्रतया तत्परिमाणत्वेन, तस्य वस्तुनस्तथा भावितया तथाभवतीत्येवं शीलं तथाभावि तस्य भावस्तत्ता तया, मकरध्वजस्य कामस्य, दुर्निवारतया, नियतेर्भवितव्यतायाः दुरतिक्रमतया च दुर्लङ्घ्यतया च, निरन्तरमनवरतं निष्पतद्भिरनङ्गशरैः कामबाणैः शकलीकरणस्य खण्डनस्य भयं तस्मादिव पलायितो विवेको यस्य तथाभूतः सन् प्रकृत्या निसर्गेण निष्ठुरो दुष्टस्तस्मिन् काष्ठाङ्गारे निजभुजात् राज्यभारमवतार्य राजीवदृशा कमललोचनया विजयया सह रन्तुं क्रीडितुम् आरभत तत्परोऽभूत् ।

इस प्रकार जो स्नेहका स्वरूप साक्षात् दिखलानेके लिए मणिमय दर्पणके समान थे, नाना प्रकारके उदाहरणोंसे प्रतिपाद्य अर्थको धारण कर रहे थे, बुद्धिमान् मनुष्योंको अत्यन्त प्रिय थे, और तत्कालमें कटु होनेपर भी जो फलकालमें मधुर थे ऐसे मन्त्रियोंके वचन, स्त्रीसम्बन्धी उपभोगके कुतूहल रूपी जालसे व्याप्त राजा सत्यन्धरके चित्तमें अवकाश न होनेके कारण ही मानो स्थान प्राप्त नहीं कर सके ।

§. १०. तदनन्तर आगे चलकर होनेवाले अनादरसे जिनके हृदय भयभीत थे ऐसे सामन्त लोग कर सकने योग्य कुछ उपाय न देख जब चुप हो रहे । शोकरूपी अग्निके सम्बन्धसे जिनके हृदय तुषानलसे व्याप्त हो गये थे—ऐसे प्राचीन राजसेवक जब दुःखी हो रहे थे । और जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे ऐसे नगरवासी वृद्ध जन जब वनमें जानेकी भावना रखने लगे तब पृथिवीके राज्योपभोग सम्बन्धी अदृष्टके उतने ही होनेसे, अथवा उस वस्तुकी वैसी होनहार होनेसे, अथवा कामके दुर्निवार होनेसे, अथवा भाग्यचक्रके अनुल्लंघनीय होनेसे, 'निरन्तर पड़ते हुए कामके बाणोंसे कहीं खण्ड-खण्ड न हो जाऊँ' इस भयसे ही मानो जिसका विवेक दूर भाग गया था ऐसा राजा सत्यन्धर राज्यके भारको अपनी भुजासे उतार स्वभावसे तीक्ष्ण काष्ठाङ्गारपर रख कमललोचना विजयाके साथ रमण करने लगा ।

§ ११. कदाचित्प्रहतमृदुमृदङ्गं रङ्गमधिवसन्विलासिनीनामतिचतुरकरणबन्धबन्धुरमनङ्गतन्त्रशिक्षाविचक्षणविटविदूषकपरिषदुपास्यं लास्यमवालोकिष्ट। कदाचिदनुगतवीणावेणुरणितरमणीयं रमणीनां गीतमाकर्णयन्कर्णपारणामकार्षीत्। कदाचिद्विकचकुसुमपरिमलतरलमधुकरकलरवमुखरिते लतामण्डपे विरचितनवकिसलयशयने कृशोदरीमरीरमत्। कदाचिद्वनकरीव करिणीसखः सह दीर्घदृशा विहरन्विहारदीर्घिकां बलवदास्फालनभयादिव समुत्तरत्तरङ्गलङ्घितमणिसोपानपथां परस्परलीलाप्रहारदोहलावचितनलिनशयनसमुड्डीनकलहंसधवलपक्षपटलमुहूर्तघटितवियद्वितानामतानीत्। कदाचिच्चन्द्रशालातलप्रसारितशयनमध्यं तनुमध्यया सहाधिवसन्वसन्तयामिनीषु निरन्तरमाविर्भवद्भिरमृतकरकिरणकन्दलैः कंदर्पदन्तावलकर्णतालावचूलचामरै-

§ ११. अथ तस्य क्रीडाप्रकारं वर्णयितुमाह—कदाचिदिति—कदाचित् जातुचित् प्रहतं ताडितं मृदुमृदङ्गं मन्थरमुरजं यस्मिन् तत् तथाभूतं रङ्गं नृत्यस्थानम् अधिवसन् अधितिष्ठन् 'उपान्वध्याङ्वसः' इति द्वितीया, विलासिनीनां रूपाजीवानाम् अतिचतुरैरतिकुशलैः करणबन्धैर्नृत्यमुद्राविशेषैर्बन्धुरं मनोज्ञम्, अनङ्गतन्त्रस्य कामशास्त्रस्य शिक्षायां विचक्षणा निपुणा ये विटविदूषका शृङ्गारसहायकपात्रविशेषास्तेषां परिषदा समूहेनोपास्यं सेवनीयम् लास्यं नृत्यम् अवालोकिष्ट अपश्यत्। कदाचिदिति—कदाचिज्जातुचित् अनुगतं लयक्रमेण सहितं यद् वीणावेणूनां विपञ्चीवंशवाद्यानां रणितेन शब्देन रमणीयं मनोहरं गीतं गानम् आकर्णयन् कर्णपारणां श्रवणभोजनं श्रवणतृप्तिमिति यावत् अकार्षीत्। कदाचिदिति—कदाचिद् विकचकुसुमानां प्रफुल्लपुष्पाणां परिमलेन सौगन्ध्यातिशयेन तरलाश्चपला ये मधुकरा द्विरेफास्तेषां कलरवेण मधुरास्फुटशब्देन मुखरिते वाचालिते लतामण्डपे निकुञ्जे विरचितं निर्मितं यत्किसलयशयनं पल्लवशय्या तस्मिन् कृशोदरीं विजयामरीरमत् क्रीडयामास। कदाचिदिति—करिण्याः सखेति करिणीसखः करेणुका सहितः 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच्समासान्तः। वनकरीव काननवारण इव दीर्घे दृशौ यस्यास्तया-विशाललोचनया विजयया सह विहरन्क्रीडन् विहारदीर्घिकां क्रीडावापीम्, बलवदत्यधिकं यदास्फालनं ताडनं तस्य भयादिव त्रासादिव समुत्तरद्भिः समुत्तिष्ठद्भिस्तरङ्गैर्भङ्गैर्लङ्घितं मणिसोपानपथं रत्नश्रेणिमार्गं यस्यास्ताम्, परस्परमन्योऽन्यं लीलाप्रहारस्य केलीताडनस्य दोहलेन वाञ्छयावचितानि त्रोटितानि यानि नलिनशयनानि कमलासनानि तेभ्यः समुड्डीनाः समुत्पतिता ये कलहंसाः कादम्बास्तेषां धवलपक्षपटलेन शुक्लपक्षसमूहेन मुहूर्तं घटिकाद्वयं यावद् घटितं रचितं वियद्वितानं गगनचन्द्रोपकं यस्यां तथाभूताम् अतानीत्। कदाचिदिति—चन्द्रशालातले हर्म्योपरिभागे प्रसारितं विस्तारितं यच्छयनं तस्य मध्यम् तनुमध्यया कृशावलग्नया वल्लभया सहाधिवसन् सार्धमधिशयानो वसन्तयामिनीषु ऋतुराजरजनीषु निरन्तरं निरन्तरायं यथा स्यात्तथा, आविर्भवद्भिः प्रकटीभवद्भिः कन्दर्पदन्तावलस्य कामकरिणः कर्णतालयो-

§. ११. वह कभी तो जिसमें धीमा-धीमा तबला ठुक रहा था ऐसी रंगभूमिमें बैठ, वेश्याओंके अत्यन्त चतुर नृत्यासनोंसे सुन्दर, और कामशास्त्रकी शिक्षामें निपुण विट और विदूषकोंके समूहसे सेवनीय नृत्य देखता था। कभी अनुकूल वीणा और बाँसुरीके स्वरसे सुन्दर, स्त्रियोंका संगीत सुनता हुआ कानोंको सन्तुष्ट करता था। कभी खिले हुए फूलोंकी सुगन्धिसे चपल भौंरोंकी मधुर ध्वनिसे शब्दायमान निकुंजमें नये-नये पल्लवोंसे विरचित शय्यापर कृशोदरी विजयाको रमण कराता था। कभी हस्तिनीसे सहित जंगली हाथीके समान दीर्घलोचना विजयाके साथ क्रीड़ावापीमें विहार करता हुआ उसे जोरदार आस्फालनके भयसे ही मानो उठती हुई तरंगोंसे लंघित मणिमयी सीढ़ियोंसे युक्त, एवं पारस्परिक लीला प्रहारकी इच्छासे तोड़े हुए कमलरूपी शय्यासे उड़े कलहंसोंके सफ़ेद-सफ़ेद पंखोंके समूहसे जिसके आकाशमें मुहूर्त-भरके लिए चँदोवा बाँध दिया गया था ऐसी करता था। और कभी राजमहलके उपरितन खण्डमें बिछायी हुई शय्याके मध्यमें कृशांगी विजयाके साथ

नयनचकोरयोरातिथेयीमनल्पामकल्पिष्ट ।

§ १२. तदेवं मनोरथपथातिवर्तिष्वमर्त्यलोकसुलभेषु विषमेषु बिलाससाफल्यसंपादितविषयसुखेषु निमज्जति निकामविजृम्भितरजसि राजनि, कदाचित्कस्यांचन निशीथिन्यामनेन सह सौधशिखरभाजि पर्यङ्के पञ्चशरकेलीपरिचयपौनःपुन्यजन्मना परिश्रमेण परवशा महिषी सुष्वाप ।

§ १३. ततश्चटुलचकोरचञ्चुपुटकबलनादिव विरलमहसि चन्द्रमसि निखिलनिशाजागरणजातया सुषुप्सयेव प्रविशति चरमगिरिगुहागह्वरम्, अवतरदनूरुसारथिसपर्यापर्याकुलेन[1] सप्तर्षिलोकेन विकचकुसुमकुतूहलादवचितं[2] इव विचेयतामुपेयुषि ज्योतिषां गणे, गतप्राये रज-

रवचूलचामरालम्बमानबालव्यजनास्तैः अमृतकरकिरणकन्दलैः अमृतकरश्चन्द्रस्तस्य किरणकन्दलैर्मयूखमण्डलैः नयनचकोरयोर्लोचनजीवंजीवयोः 'जीवंजीवश्चकोरकः' इत्यमरः, अनल्पामत्यधिकाम् आतिथेयीमातिथ्यम् अकल्पिष्ट ।

§ १२. तदेवमिति—निकाममत्यर्थं विजृम्भितं वृद्धिंगतं रजो गुणविशेषो यस्य तस्मिन् राजनि सत्यंधरे मनोरथपथातिवर्तिषु अचिन्त्येषु मर्त्यलोकानां सुलभा न भवन्तीत्यमर्त्यलोकसुलभास्तेषु मनुष्यमात्रदुर्लभेषु विषमेषोः कामस्य विलासस्तस्य साफल्येन संपादितानि प्रापितानि यानि विषयसुखानि तेषु निमज्जति सति, कदाचित् कस्यांचन निशीथिन्यां रजन्याम् अनेन राज्ञा सह सौधशिखरभाजि हर्म्याग्रस्थिते पर्यङ्के पञ्चशरो मदनस्तस्य केल्याः क्रीडाया परिचयः समभ्यासस्तस्य पौनःपुन्येन भूयोभूयः प्रवृत्त्या जन्म यस्य तेन परिश्रमेण खेदेन परवशा पराधीना श्रान्तेति यावत् महिषी राज्ञी सुष्वाप ।

§ १३. तत इति—ततस्तदनन्तरं चटुलानि चपलानि यानि चकोराणां चञ्चुपुटानि तैः कवलनं ग्रसनं तस्मादिव विरलं महो यस्य तस्मिन्नल्पतेजसि चन्द्रमसि निखिलनिशां समग्ररजनीं जागरणेन जाता समुत्पन्ना तया सुषुप्सया शयनवाञ्छया चरमगिरेरस्ताचलस्य गुहागह्वरं गुहाविवरं प्रविशति सति । अवतरदिति—अवतरन् उदयाचलादागच्छन् योऽनूरुसारथिः सूर्यस्तस्य सपर्यायां पूजायां पर्याकुलो व्यग्रस्तेन सप्तर्षिलोकेन विकचानि प्रफुल्लानि यानि कुसुमानि तेषां कुतूहलात्, अवचित इव त्रोटित इव ज्योतिषां ताराणां गणे समूहे विचेयतां विरलताम् उपेयुषि प्राप्तवति सति । रजन्यास्तुर्यप्रहरे चतुर्थयामे

एकान्तवास करता हुआ वसन्तकी रात्रियोंमें कामरूपी हाथीके कानोंके पास झूमनेवाले चमरोंके समान निरन्तर प्रकट होती हुई चन्द्रमाकी किरणोंसे नेत्ररूपी चकोरोंका अत्यधिक आदर-सत्कार करता था ।

§. १२. इस प्रकार जिसका रजोगुण अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ऐसा राजा सत्यंधर जब मनोरथोंके मार्गसे परे, मनुष्योंके लिए दुर्लभ, (अथवा देवजन सुलभ) काम विलासकी सफलतासे प्राप्त विषय-सुखोंमें निमग्न हो रहा था तब किसी समय किसी रात्रिमें इसके साथ महलके शिखरपर स्थित पलंगपर कामक्रीड़ाके बार-बार सेवनसे समुत्पन्न परिश्रमके परवश हुई विजया रानी शयन कर रही थी ।

§. १३. तदनन्तर चंचल चकोरोंके चञ्चुपुटोंसे कवलित होनेके कारण ही मानो जिसका तेज मन्द पड़ गया था ऐसा चन्द्रमा जब सम्पूर्ण रात्रि-भर जागते रहनेसे उत्पन्न शयन करनेकी इच्छासे ही मानो अस्ताचलके गुहागर्तमें प्रवेश करने लगा, उतरते हुए सूर्यकी पूजामें व्यग्र सप्तर्षियोंके द्वारा फूले हुए फूलोंके कुतूहलसे तोड़े गयेके समान जब ताराओंका

---

१. क० ख० ग० सपर्याकुलेन । २. क० ख० ग० अपचित इव ।

न्यास्तुर्यप्रहरे, राज्ञी स्वप्नत्रयमद्राक्षीत् । अत्याक्षीच्च तत्क्षण एव सा संजातशोकप्रसादविद्राविता निद्राम् । अश्रौषीच्च प्रबुध्यमानभवनकलहंसरवमांसलं वचो मङ्गलपाठकानाम् । समुदस्थाच्च सत्वरसमुपसृतयामिकयुवतिजनप्रसारितहस्तावलम्बना[1] प्रलम्बमानकेशहस्तविन्यस्तवामहस्ता शनैः शनैः शयनतलात् । उदमीमिलच्च विकचोत्पलविभ्रममुषी चक्षुषी सकलदोषपरिहारिणी भगवदर्हत्परमेश्वरस्य श्रीमुखाम्भोजे । प्राणंसीच्च प्रचुरभक्त्या बद्धाञ्जलिः प्रशिथिलितकबरीचुम्बितमहीतला निखिलभवक्लेशहरं भगवन्तम् । व्यचीचरच्च विगलितनिद्राकृतालस्या किमस्य फलं स्वप्नस्येति । व्यधाच्च मनो[2] भर्तुर्मुखादस्य फलश्रुतौ ।

गतप्राये सति राज्ञी विजया स्वप्नत्रयं वक्ष्यमाणम् अद्राक्षीत् । तत्क्षण एव च सा संजाताभ्यां शोकप्रसादाभ्यामहर्षहर्षाभ्यां विद्रावितामपसारितां निद्रामत्याक्षीत् । मङ्गलपाठकानां मागधानां च प्रबुध्यमानानां जाग्रियमाणानां भवनकलहंसानां प्रासादकादम्बानां रवेण शब्देन मांसलं परिपुष्टं वचो वचनं 'वाग्वचो वचनं वाणी भारती गीः सरस्वती' इति धनंजयः, अश्रौषीदाकर्णयामास । सत्वरं शीघ्रं समुपसृताः समन्तात्समीपं समागता ये यामिकयुवतिजनाः प्राहरिकतरुणीजनास्तैः प्रसारिता हस्ता अवलम्बनानि यस्याः सा, प्रलम्बमाने स्रंसमाने केशहस्ते केशपाशे विन्यस्तो वामहस्तो यया सा तथाभूता सती शनैःशनैर्मन्दं मन्दं शयनतलात् विष्टरपृष्ठात् समुदस्थाच्च समुत्तिष्ठति स्म । विकचोत्पलयोः प्रफुल्लकुवलययोर्विभ्रमं मुष्णीत इति विकचोत्पलविभ्रममुषी चक्षुषी भगवदर्हत्परमेश्वरस्य भगवतोऽर्हत्परमेष्ठिनः सकलदोषापहारिणि निखिलदोषक्षयकारिणि श्रीमुखाम्भोजे श्रीवदनारविन्दे उदमीमिलच्च उन्मीलयामास प्रहृष्टाभ्यां चक्षुर्भ्यां भगवतोऽर्हतो दर्शनं चकारेति भावः । बद्धाञ्जलिः प्रशिथिलितया स्रस्तया कबर्या चूडया चुम्बितं संस्पृष्टं महीतलं यया तथाभूता सती निखिलभवक्लेशहरं समग्रसंसारसंक्लेशापहारकं भगवन्तं जिनेन्द्रं प्राणंसीच्च नमश्चकार च । विगलितं व्यपगतं निद्राकृतमालस्यं जाड्यं यस्यास्तथाभूता सती अस्य स्वप्नस्य फलं किं स्यादिति व्यचीचरच्च विचारयामास च । भर्तुर्वल्लभस्य मुखादस्य स्वप्नस्य फलश्रुतौ फलश्रवणे मनो व्यधाच्च चकार च ।

समूह विरलताको प्राप्त हो गया और जब रात्रिका चौथा पहर प्रायः समाप्त होनेको आया तब विजया रानीने तीन स्वप्न देखे । उसी समय उसने समुत्पन्न शोक और प्रसन्नतासे दूर हुई निद्राका परित्याग किया । राजमहलके जागते हुए कलहंसोंकी ध्वनिसे परिपुष्ट मंगलपाठकोंके वचन सुने । तदनन्तर शीघ्रतासे समीप आयी हुई पहरेपर खड़ी तरुण स्त्रियोंने जिसे हाथका सहारा दिया था और नीचे लटकते हुए केशपाशपर जिसका बायाँ हाथ स्थित था ऐसी विजया रानी धीरे-धीरे शय्यातलसे उठी । उठते ही उसने खिले नील कमलकी शोभाका अपहरण करनेवाले नेत्र, समस्त दोषोंका परिहार करनेवाले श्री भगवान् अर्हन्त परमेश्वरके मुखकमलपर खोले । तत्पश्चात् अत्यधिक भक्तिसे अञ्जलि बाँधकर—हाथ जोड़कर ढीली चोटीसे पृथिवी तलका स्पर्श करती हुई रानीने संसारके समस्त क्लेशोंको हरनेवाले भगवान्‌को प्रणाम किया । निद्रासम्बन्धी आलस्यके दूर होनेपर उसने विचार किया कि इस स्वप्नका फल क्या होगा ? विचारके अनन्तर उसने प्राणनाथके मुखसे स्वप्नोंका फल सुननेका मन किया ।

---

१. क० ख० ग० हस्तावलम्बन । २. क० विदधाम: सफलं मनो ।

§ १४. अथ रजनीविरहजनितमसहमान इव परितापमपरजलनिधिजलमवगाहमाने यामिनीप्रणयिनि, तरणिरथतुरगखरखुरपुटपरिपतनभयेन क्वापि गत इवानुपलक्ष्यमाणे तारागणे, गगनपयोनिधिजठररूढविद्रुमलतावितानविडम्बिनि प्रथमगिरिपरिसरवनदावविभ्रममुषि प्रत्यग्रजनितप्रत्यूषगर्भरुधिरपटलपाटलिमद्रुहि पल्लवयति बलमथनदिशामुखमरुणकिरणकलापे, तपनदर्शनरसादिव विकसिततामरसदृशि विकचितदलनिचयकवचितककुभि कमलाकरे, प्रबुध्यमानपङ्कजिनीनिःश्वाससब्रह्मचारिणि प्रसृमरतुहिनसलिलकणनिकरपरिचयसमुपचितजडिमनि[1] घटमानरथाङ्गमिथुनविहिताशिषि विरहिनयनजलवर्षिणि विसृमरकुसुमपरिमलवासितहरिति वातुमारब्धवति मरुति

§ १४. अथेति—अथानन्तरं रजन्या निजनायिकाया विरहेण जनितं समुत्पन्नं परितापं संतापं, असहमान इव सोढुमसमर्थ इव यामिनीप्रणयिनि रजनीरमणे चन्द्र इत्यर्थः अपरजलनिधिजलं पश्चिमसागरसलिलम् अवगाहमाने प्रविशति सति। तरणीति—तरणिरथस्य सूर्यस्यन्दनस्य तुरगा अश्वास्तेषां खरखुरपुटानां तीक्ष्णशफपुटानां परिपतनं तस्य भयं तेन तारागणे नक्षत्रनिचये क्वापि गत इवानुपलक्ष्यमाणेऽदृश्यमाने सति। गगनेति—गगनमेव पयोनिधिरिति गगनपयोनिधिराकाशार्णवस्तस्य जठरे मध्ये रूढाः समुत्पन्ना या विद्रुमलताः प्रवालवल्लर्यस्तासां वितानं विस्तारं विडम्बयतीत्येवं शीलस्तस्मिन्, प्रथमगिरिः पूर्वाचलस्तस्य परिसरवनस्य निकटकाननस्य दावो वनानलस्तस्य विभ्रमं सन्देहं मुष्णातीति तथा तस्मिन् प्रत्यग्रजनितो नवीनोत्पन्नो यः प्रत्यूषोऽहर्मुखं तस्य गर्भरुधिरपटलस्य गर्भरक्तसमूहस्य यः पाटलिमा अरुणिमा तस्य द्रुहि द्रोहकारके, अरुणस्य किरणानां कलापस्तस्मिन् बालसूर्यरश्मिसमूहे बलमथनस्य दिशा बलमथनदिशा प्राची तस्या मुखमग्रभागं पल्लवयति रञ्जयति सति। तपनेति—तपनस्य सूर्यस्य दर्शने रसः प्रीतिस्तस्मादिव विकसिता उन्मीलितास्तामरसदृशः कमललोचनानि येन तथाभूते कमलाकरे कमलसरोवरे, विकचितदलानां विकसितकलिकानां निचयेन समूहेन कवचिता व्याप्ताः ककुभो दिशो येन तथाभूते सति। प्रबुध्यमानेति—प्रबुध्यमाना विकसन्त्यो याः पङ्कजिन्यो नलिन्यस्तासां निःश्वासस्य सब्रह्मचारी सदृशस्तस्मिन्, प्रसृमराः प्रसरणशीला ये तुहिनसलिलकणा हिमजलबिन्दवस्तेषां निकरस्य समूहस्य परिचयेन समुपचितो वृद्धिंगतो जडिमा शैत्यं यस्य तस्मिन्, घटमानैः परस्परं मिलद्भी रथाङ्गमिथुनैश्चक्रवाकयुगलैः विहिता आशीर्यस्य तस्मिन्, विरहिणां विप्रयुक्तानां नयनजलमश्रु-वर्षयत्येवं शीलं तस्मिन्, विसृमरेण प्रसरता कुसुमपरिमलेन पुष्पसौगन्ध्येन वासिता आमोदिता हरितो दिशा येन तस्मिन् 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः, वैभातिके प्रातःकालिके मरुति

§. १४. अथानन्तर जब चन्द्रमा रात्रिरूपी रमणीके विरहसे उत्पन्न सन्तापको नहीं सहन करता हुआ ही मानो पश्चिम समुद्रके जलमें प्रवेश करने लगा, सूर्यके रथके घोड़ोंकी टापोंके पड़नेके भयसे ही मानो जब ताराओंका समूह कहीं जा छिपा, आकाशरूपी समुद्रके मध्यमें उत्पन्न मूँगाकी लताओंके समूहका अनुकरण करनेवाला, उदयाचलके निकटवर्ती वनमें लगी दावानलकी शोभाको अपहरण करनेवाला, और अभी हालमें उत्पन्न प्रातःकालके गर्भसम्बन्धी रक्तके समूहकी लालिमाके साथ द्रोह करनेवाला प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंका समूह जब पूर्व दिशाके अग्रभागको पल्लवित करने लगा—लाल-लाल नयी कोपलोंसे ही मानो युक्त करने लगा, सूर्यके देखनेके अनुरागसे ही मानो जब तालाबने कमलरूपी नेत्र खोल दिये एवं दिशाओंको खिली हुई कमलकलिकाओंके समूहसे व्याप्त कर दिया, खिलती हुई कमलिनियों (पक्षमें पद्मिनी स्त्रियों) के निश्वासके समान, फैले हुए हिममिश्रित जलकणोंके परिचयसे शीतल, मिलते हुए चकवा-चकवियोंके द्वारा प्रदत्त आशीर्वादसे युक्त विरही मनुष्योंके

१. क० ख० ग० जडिम्नि।

वैभातिके, निजसुहृदभिभावुकदिनकृदुदयदर्शनपरिजिहीर्षयेव घटितदलकवाटमुद्रे निद्राम- भिलषति कैरवाकरे, वाराकरचिरनिवासजनितजडिमविघटनविधृतारुणकम्बल इव विभाव्यमाने दिवसभुजंगफणारत्ने गगनमुरभिदाभरणकौस्तुभे गभस्तिमालिनि महःस्तोमैः स्तबकयति पूर्व- मचलम्, अनुष्ठितदिवसमुखविधेया विजया विहितवैभातिककृत्यं कृतजिनचरणसपर्यं पर्यङ्कि- कानिषण्णं सविनयमभ्येत्य राजानमर्धासनमध्यासिष्ट। पुनरभाषिष्ट च मुखाकृतिसूचिताकूता जिज्ञासापरवशपार्थिवकृतानुयोगा पङ्कजाक्षी—'आर्यपुत्र स्वप्ने विकसितकुसुमसौरभसंभ्रमद- लिकुलमुखरितहरिदवकाशमहिमकररथमार्गलङ्घनजङ्घालविटपनिबिडितवियदाभोगमभिनवघनपरि-

वायौ वातुमारब्धवति तत्परे सति। निजसुहृदिति—निजसुहृदश्चन्द्रमसोऽभिभावुकस्तिरस्कर्ता यो दिनकृत् सूर्यस्तस्योदयस्तस्य दर्शनं तस्य परिजिहीर्षा परिहारेच्छा तयेव घटिता दलकवाटानां मुद्रा येन तस्मिन् कैरवाकरे कुमुदसमूहे निद्रां स्वापमभिलषति सति। वाराकरेति—वाराकरे समुद्रे चिरनिवासेन समग्रां रात्रिं यावन्निवासेन जनितः समुत्पन्नो यो जडिमा शैत्यं तस्य विघटनाय दूरीकरणाय धृतः परिहितोऽरुणकम्बलो रक्तकम्बलो येन तथाभूत इव विभाव्यमाने प्रतीयमाने, दिवस एव भुजङ्गस्तस्य फणारत्नं भोगमणिस्तस्मिन्, गगनमेव मुरभिन्नारायणस्तस्याभरणमलङ्कारो यः कौस्तुभमणिविशेषस्तस्मिन् गभस्तिमालिनि सूर्ये महःस्तोमैस्तेजोराशिभिः पूर्वमचलमुदयगिरिं स्तबकयति सगुच्छं कुर्वति सति। अनुष्ठितेति—अनुष्ठितानि विहितानि दिवसमुखविधेयानि प्रत्यूषकालकार्याणि स्नानादीनि यया सा विजया राज्ञी कृता जिनचरणयोः सपर्या पूजा येन तम् 'पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः' इत्यमरः, पर्यङ्किकायां निषण्णस्तं सिंहासनासीनं राजानं सत्यंधरमहाराजम् अभ्येत्य संमुखं गत्वा, अर्धासनमध्यासिष्ट 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति द्वितीया। पुनरिति—पुनरनन्तरं मुखाकृत्या वदनचेष्टया सूचितमाकूतमभिप्रायो यस्याः सा, जिज्ञासा ज्ञातुमिच्छा तया परवशेन पार्थिवेन नृपेण कृतोऽनुयोगः प्रश्नो यस्याः सा तथाभूता पङ्कजाक्षी कमललोचना विजया अभाषिष्ट च जगाद च। आर्यपुत्रेति— 'हे आर्यपुत्र हे नाथ! स्वप्ने विकसितानि प्रफुल्लानि यानि कुसुमानि तेषां सौरभेण सौगन्ध्येन संभ्रमता संचरतालिकुलेन भ्रमरसमूहेन मुखरितः शब्दितो हरिदवकाशो दिगन्तरं येन तम्, अहिमकरो दिवाकर- स्तस्य रथमार्गस्य स्यन्दनवर्त्मनो लङ्घनेऽतिक्रमणे जङ्घालाः शीघ्रगामुका ये विटपाः शाखास्तैर्निबिडितः

नेत्रोंसे जल वर्षा करनेवाला, और फूलोंकी फैलती हुई सुगन्धिसे दिशाओंको व्याप्त करनेवाला प्रातःकालका पवन जब बहने लगा, अपने मित्र चन्द्रमाका तिरस्कार करनेवाले सूर्यके उदयको देखनेका परिहार करनेकी इच्छासे ही मानो जब कुमुद वन कलिकारूपी किवाड़ोंको बन्द कर नींद लेनेकी इच्छा करने लगा, समुद्रके भीतर चिरकाल तक निवास करनेसे उत्पन्न ठण्डकी बाधाको दूर करनेके लिए ही मानो जिसने लाल कम्बल ओढ़ रखा था, अथवा जो दिन रूपी सर्पके फणाके रत्नके समान था और आकाशरूपी मुरारिके आभूषण—कौस्तुभ मणिके तुल्य था ऐसा सूर्य जब अपने तेजःपुञ्जसे पूर्वाचलको आच्छादित करने लगा तब प्रातःकाल सम्बन्धी कार्योंको पूरा करनेवाली विजयारानी, प्रातःकालीन कार्योंसे निवृत्त, एवं जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणकमलोंकी पूजा कर पलंगियापर बैठे हुए राजाके पास विनयपूर्वक जाकर अर्धासनपर बैठ गयी। तदनन्तर मुखकी आकृतिसे जिसका अभिप्राय सूचित हो रहा था, और आगमनका कारण जाननेकी इच्छासे विवश राजाने जिससे प्रश्न किया था—आगमन- का कारण पूछा था, ऐसी कमललोचना विजयाने कहा—हे आर्यपुत्र! आज मैंने स्वप्नमें अशोकका कोई एक ऐसा वृक्ष देखा है जिसने खिले हुए फूलोंकी सुगन्धिसे सब ओर मँडराते हुए भ्रमरोंके समूहसे दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त कर रखा था, सूर्यके रथके मार्गको

षदभिभावुकपलाशपटलकवचितवपुषमरुणकिरणशोणकिसलयप्रसूनदर्शिताकालसंध्यं कमप्यशोकशाखिनमवालोकिषि। स च क्षणेन क्षोणीरुहः कुलधरणीधर इव कुलिशपतनेन शतधा शकलीकृततनुरपतदवनीपृष्ठे। समुदतिष्ठच्च तस्य तरोर्मूलादकठोरदलपुटलुठितेन लोहितिम्ना लिम्पंल्लोचनपथमधरितदिवसकरबिम्बेन जाम्बूनदघटितेन किरीटेन शोभितशिखरभागस्तुङ्गविशालविटपकवलितवियदन्तरालः कोऽपि कङ्केलिः। तत्र च प्रालम्बिष्ट प्रथमानपरिमलतरलमधुकरमालं मालाष्टकम्। तथाविधं तमनुभूय स्वप्नवृत्तान्तं प्रवृत्तहर्षविषादा च तत्क्षण एव निद्राममुञ्चम्। आचक्ष्व फलममुष्य' इति ॥

सान्द्रीकृतो वियदाभोगो गगनविस्तारो येन तम्, अभिनवा नूतना सजलेति यावत् या घनपरिषद् मेघसमूहस्तस्या अभिभावुकेन तिरस्कारकेण पलाशपटलेन पत्रप्रचयेन कवचितं व्याप्तं वपुर्यस्य तम्, अरुणकिरण इव बालसूर्यरश्मिरिव शोणा रक्तवर्णानि यानि किसलयप्रसूनानि पल्लवपुष्पाणि तैर्दर्शिताऽकालसंध्याऽकाण्डपितृप्रसूर्येन तम्, कमप्यनिर्वचनीयम् अशोकशाखिनं कङ्केलिपादपम् अवालोकिषि अदर्शम्। स चेति—स च क्षोणीरुहोऽशोकपादपः क्षणेन कुलिशपतनेन पविपातेन कुलधरणीधर इव कुलाचल इव शतधा शकलीकृता तनुर्यस्य तथाभूतः खण्डितशरीरः सन् अवनीपृष्ठे भूतले अपतत्। समुदतिष्ठच्चेति—तस्य पूर्वोक्तस्य तरोर्मूलात् अकठोरदलपुटेषु कोमलपत्रपुटेषु लुठितो व्याप्तस्तेन, लोहितिम्ना रक्तत्वेन लोचनपथं नयनमार्गं लिम्पन्, अधरितं दिवसकरबिम्बं येन तेन तिरस्कृतादित्यमण्डलेन जाम्बूनदघटितेन काञ्चनरचितेन किरीटेन मकुटेन शोभितो लोहितः शिखरभागो यस्य तम्, तुङ्गा उन्नता विशाला विस्तृताश्च ये विटपाः शाखास्तैः कवलितं व्याप्तं वियदन्तरालं गगनाभ्यन्तरं येन तथाभूतः कोऽपि कश्चित् कङ्केलिरशोकतरुः समुदतिष्ठच्च समुत्थितश्चाभूत्। तत्र चेति—तत्र च तस्मिन् च कङ्केल्यनोकहे प्रथमानेन प्रसरता परिमलेन सौगन्ध्यातिशयस्तेन तरला चपला सतृष्णीकृतेति यावत् मधुकरमाला भ्रमरश्रेणिर्येन तत् तथाभूतं मालाष्टकं स्रगष्टकं प्रालम्बिष्ट प्रलम्बते स्म। तथाविधमिति—तथाविधं तादृशं तं पूर्वोक्तं स्वप्नवृत्तान्तम् अनुभूय प्रवृत्तौ संजातौ हर्षविषादौ यस्यास्तथाभूता चाहं तत्क्षण एव तत्काल एव निद्रां स्वापम् अमुञ्चम्। 'अमुष्य स्वप्नस्य फलं साध्यम् आचक्ष्व कथय' इति।

लाँघनेके लिए बड़े वेगसे ऊपरकी ओर बढ़ती हुई शाखाओंसे जिसने आकाशके मैदानको व्याप्त कर दिया था, नूतन मेघसमूहको तिरस्कृत करनेवाले पत्तोंके समूहसे जिसका शरीर व्याप्त था, और प्रातःकालिक सूर्यकी किरणोंके समान लाल-लाल पल्लवों एवं फूलोंके समूहसे जो असमयमें ही सन्ध्याको दिखला रहा था। जिस प्रकार वज्रके गिरनेसे कुलाचलके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं उसी प्रकार वज्रके गिरनेसे वह अशोक वृक्ष भी क्षण भरमें खण्ड-खण्ड हो पृथ्वीपर गिर पड़ा और गिरे हुए उस अशोक वृक्षकी जड़से जो कोमल-कोमल पत्तोंकी पुटमें बिखरी हुई लालिमासे नेत्रोंके मार्गको लिप्त कर रहा था, सूर्यबिम्बको तिरस्कृत करनेवाले स्वर्णनिर्मित मुकुटसे जिसके शिखरका अग्र भाग सुशोभित हो रहा था, और जिसने अपनी ऊँची विशाल शाखाओंसे आकाशके अन्तरालको व्याप्त कर रखा था ऐसा कोई अशोकका वृक्ष उठकर खड़ा हो गया। उस अशोक वृक्षपर फैलती हुई सुगन्धिसे चपल भ्रमरोंके समूहसे युक्त आठ मालाएँ लटक रही थीं। उस प्रकारके स्वप्नको देखकर हर्ष और विषादका अनुभव करती हुई मैंने उसी क्षण निद्राका परित्याग कर दिया। आप उस स्वप्नका फल कहिए।

§ १५. तदनु नरपतिरवनीरुहपतनदर्शनादकुशलमात्मनि शङ्कमानोऽपि चामीकरकिरीटनिरीक्षणनिवेदितेन तनयलाभेन मुदमुद्वहन्नधिकविकसितवदनतामरसः सरसीरुहासनविलासिनीचरणनखमणिचन्द्रिकामिव दशनकिरणकन्दलीं दर्शयन्स चतुरमवोचत् ।

§ १६. देवि, पक्वमद्य नश्चिरविरचितेन जिनपादपङ्केरुहसपर्याप्रबन्धेन । फलन्ति च सकलभुवनमहनीयतपसामवितथवचसामत्रभवतामृषीणामाशिषः । तथा हि—कथयति कनकमकुटः कल्याणि, ते तनयम् । तस्योदयमावेदयति पतितपादपमूलरूढः कठोरेतरः स कङ्केलिः । अमुष्य च वधूः सूचयन्ति ताः पुष्पस्रजः' इति ।

§ १७. दयितवचनामृतपरितोषितस्वान्ता सीमन्तिनी 'महीरुहपातः किमभिधत्ते ?'

---

§ १५. तदन्विति—तदनु विजयामुखात्स्वप्नश्रवणानन्तरम् स नरपतिः सत्यंधरमहाराजः अवनीरुहस्याशोकपादपस्य यत्पतनं तस्य दर्शनं तस्मात्, आत्मनि स्वस्मिन् विषये । सप्तमी अकुशलममङ्गलं शङ्कमानोऽपि संदिहानोऽपि चामीकरकिरीटस्य स्वर्णमकुटस्य निरीक्षणेन निवेदितं तेन तनयलाभेन पुत्रप्राप्त्या मुदं प्रीतिं 'मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः' इत्यमरः, उद्वहन् दधत् अधिकं सातिशयं विकसितं प्रसन्नं वदनतामरसं मुखकमलं यस्य तथाभूतः सन् सरसीरुहासनस्य ब्रह्मणो विलासिनी स्त्री सरस्वतीति यावत् तस्याश्चरणयोर्नखमणिचन्द्रिकामिव नखरमणिकौमुदीमिव एतेन नखमणीनां चन्द्रत्वमारोप्यते, दशनकिरणकन्दलीं रदनरश्मिसन्ततिं दर्शयन् प्रकटयन् स इत्यस्य नरपतिना सह संबन्धः चतुरं यथा स्यात्तथा अवोचत् कथयामास—

§ १६. देवीति—देवि ! प्रिये ! अद्येदानीम्, नोऽस्माकं चिरविरचितेन दीर्घसमयविहितेन जिनस्य पादपङ्केरुहयोश्चरणकमलयोर्यः सपर्याप्रबन्धः पूजायोगस्तेन पक्वं परिणतम्, भावे क्तप्रयोगः । सकलभुवने निखिललोके महनीयं पूजनीयं तपो येषां तेषाम् अवितथं सत्यं वचो येषाम् अत्र भवतां मान्यानाम् ऋषीणां मुनीनाम् आशिष आशीर्वचनानि फलन्ति च सफला जायन्ते च । तथाहि—कल्याणि ! श्रेयसि ! संबुद्धिप्रयोगः कनकमकुटः स्वर्णमौलिः ते तव तनयं पुत्रं कथयति निवेदयति । पतितपादपस्य पतितवृक्षस्य मूले रूढः समुत्पन्नः कठोरेतरो मृदुलः स कङ्केलिर्बालाशोकतरुः तस्य तनयस्य उदयमभ्युदयं वैभवमिति यावत् आवेदयति कथयति । ता दृष्टाः पुष्पस्रजश्च सुमनोमालाश्च अमुष्य पुत्रस्य वधूर्भार्याः सूचयन्ति कथयन्ति, इत्यस्यावोचदित्यनेन संबन्धः ।

§ १७. दयितेति—दयितस्य वल्लभस्य वचनमेवामृतं तेन परितोषितं स्वान्तं मनो यस्याः सा

---

§ १५. तदनन्तर वृक्षका पतन देखनेसे अपने आपके विषयमें अमंगलकी आशंका करनेपर भी सुवर्ण मुकुटके देखनेसे सूचित पुत्रकी प्राप्तिसे जो हर्षको धारण कर रहा था, ऐसा राजा सत्यंधर, अत्यधिक विकसित मुखकमलके भीतर निवास करनेवाली लक्ष्मीके चरणोंके नखरूप मणियोंकी चाँदनीके समान दाँतोंकी किरणावलीको दिखलाता हुआ बड़ी चतुराईसे बोला—

§ १६. देवि ! हम लोगोंने जो चिरकालसे जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण-कमलोंकी पूजा की है वह आज फलीभूत हो रही है और समस्त संसारसे पूजनीय तपके धारक सत्यवादी माननीय ऋषियोंके आशीर्वाद आज अपना फल दे रहे हैं। हे कल्याणवति ! सुवर्णका मुकुट कह रहा है कि तुम्हारे पुत्र होगा। गिरे हुए अशोक वृक्षकी जड़से जो कोमल अशोक वृक्ष उत्पन्न हुआ है वह उसी पुत्रके अभ्युदयको सूचित करता है और फूलोंकी मालाएँ उसीकी स्त्रियोंकी सूचना दे रही हैं।

§ १७. पतिके वचनरूपी अमृतसे जिसका चित्त संतुष्ट हो रहा था ऐसी रानीने राजासे

इति महीक्षितमप्राक्षीत् । 'तदपि किमपि मे निवेदयत्यमङ्गलमवनिरुहपतनम्' इति कथयति जगतीपतावपतदनिलरयहता वनलतेव महीतले महिषी । ततः क्षितितलविलुठितवपुषं विगलदविरलबाष्पजलपूरतरत्तरलतारकदृशं शिथिलितनहनविसृमरकेशमसृणितभुवमविरतनिःश्वसितमरुदूष्ममर्मरितदशनच्छदकिसलयां[1] विधुंतुदकबलितमिव तुहिनकिरणबिम्बमन्तर्गतविषादविषवेगश्याममाननमुद्वहन्तीं [2]दवदहनशिखापरामर्शपरिम्लानामिव वनलतां वनकरिसमुत्पाटितां दिनकरमरीचिपरिचयपचेलिमामिव मृणालिनीं मानिनीं[3] मन्युभरपरवशः पृथ्वीपतिरवतीर्य पर्यङ्कादधरितभुजंगपति[4]भोगसौभाग्येन भुजद्वयेन समुत्क्षिप्य स्वाङ्कमारोपयन्नतित्वरितपरिजनो-

'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' सीमन्तिनी सीमन्तः केशवेशोऽस्ति यस्याः सा सीमन्तिनी वधूः 'स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः, 'महीरुहपातो वृक्षपतनं किं फलम् अभिधत्ते कथयति 'अभ्युपसर्गबलात् दुधाञ् धारणपोषणयोः' इत्यस्य धातोः कथनेऽर्थे प्रयोगः अचिन्त्यो ह्युपसर्गस्य प्रभावः "उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यः प्रतीयते । प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्" इति वचनात् । इतीत्थं महीक्षितं राजानम् अप्राक्षीत् । तदपीति—'तद् दृष्टम् अवनिरुहपतनमपि वृक्षपातोऽपि मे मम किमप्यवाच्यम् अमङ्गलमनिष्टं निवेदयति कथयति' इतीत्थं जगतीपतौ नृपे कथयति सति महिषी पट्टराज्ञी, अनिलस्य रयेण पवनस्य वेगेन हता ताडिता वनलतेव वनवल्लीव महीतले पृथिवीतलेऽपतत् पतिता । तत इति—ततस्तदनन्तरं क्षितितले पृथिवीपृष्ठे विलुठितं वपुर्यस्यास्तां विगलति निःसरति अविरलबाष्पजलपूरे निरन्तराश्रुसलिलपूरे तरन्त्यौ तारके ययोस्ते तथाभूते दृशौ यस्यास्ताम्, शिथिलितं श्लथीभूतं यन्नहनं बन्धनं तेन विसृमराः प्रसरणशीला ये केशास्तैर्मसृणिता स्निग्धीकृता भूर्यया ताम् । श्वसितमरुतः श्वासोच्छ्वासपवनस्योष्मणा निदाघत्वेन मर्मरितौ शुष्कौ दशनच्छदकिसलयौ ओष्ठपल्लवौ यस्यास्ताम्, विधुंतुदेन राहुणा कबलितं ग्रस्तं तुहिनकिरणबिम्बमिव चन्द्रमण्डलमिव, अन्तर्गतविषाद एव विषं गरलं तस्य वेगेन श्यामं मलिनम् आननं मुखम् उद्वहन्तीं बिभ्रतीम्, दवदहनस्य वनाग्नेः शिखाया ज्वालायाः परामर्शेन संबन्धेन परिम्लानां वनलतामिव, वनकरिणा काननकरिणा समुत्पाटितां समुत्खातां दिनकरस्य सूर्यस्य मरीचिपरिचयेन किरणसंपर्केण पचेलिमां पक्तुमर्हां मृणालिनीमिव पद्मिनीमिव मानिनीं विजयां मन्युभरपरवशः शोकसमूहविवशः पृथ्वीपतिः पर्यङ्कादासनात् अवतीर्य भूमिभागस्य अधरितस्तिरस्कृतो भुजंगपतेः शेषनागस्य भोगस्य शरीरस्य सौभाग्यं येन तथाभूतेन भुजद्वयेन बाहुयुगलेन

पूछा कि वृक्षका पतन क्या कह रहा है ?' राजाने इसके उत्तरमें ज्यों ही यह कहा कि 'वह वृक्षका पतन भी मेरे विषयमें कुछ अमंगल कह रहा है त्यों ही वायुके वेगसे ताडित वनकी लताके समान रानी पृथिवीतलपर गिर पड़ी । तदनन्तर पृथिवीतलपर जिसका शरीर लोट रहा था, लगातार झरते हुए अश्रुजलके पूरमें जिसके नेत्रोंकी चंचल कनीनिकाएँ—पुतलियाँ तैर रही थीं, बन्धनके शिथिल होनेसे फैले हुए केशोंसे जिसने पृथिवीको चिकना कर दिया था, जो निरन्तर निकलनेवाली श्वासोच्छ्वाससम्बन्धी वायुकी उष्णतासे सूखे हुए ओष्ठपल्लवसे युक्त, अतएव राहुके द्वारा ग्रस्त चन्द्रमण्डलके समान, अन्तर्गत विषादरूपी वेषके वेगसे श्याम मुखको धारण कर रही थी, जो दावानलकी शिखाओंके परामर्शसे म्लान वनलताके समान अथवा जंगली हाथीके द्वारा उखाड़ी और सूर्यकी किरणोंके सम्बन्धसे पाकोन्मुख मृणालिनीके समान जान पड़ती थी ऐसी विजयाको देख राजा स्वयं शोकके भारसे परवश हो गया । उसने पलंगसे नीचे उतरकर शेषनागके शरीरकी सुन्दरताको तिरस्कृत

१. म० किसलयं । २. क० ख० ग० प्रतिषु दवपदं नास्ति । ३. क० ख० ग० प्रतिषु मानिनीम् इति नास्ति । ४. क० ख० ग० प्रतिषु भुजगपतिपाठोऽस्ति ।

पनीतैर्मलयजमृणालघनसारतुषारप्रमुखैः शिशिरोपचारपरिकरप्रकरैः प्रत्युत्पन्नसंज्ञामकार्षीद् व्याहार्षीच्च—

§ १८. 'भीरु, केयमाकस्मिककातरता तरलयति भवतीम् ? केन जगति स्वप्नानामवितथफलतान्वभावि ? भावि वा वस्तु कथमस्तु प्रतिबद्धम् ? पुराकृतसुकृतेतरकर्मपरिपाकपराधीनायां विपदि विषादस्य कोऽवसरः ? विषाद. किं नु विपदमपनुदति ? प्रत्युत विपदामेव भवे भवे [1]प्रबन्धमनुबध्नाति। तदेवमुभयलोकविरोधी विषादः [2]किमत्याद्रियते ? यश्च समुपस्थितायां विपदि विषादस्य परिग्रहः सोऽयं चण्डातपचकितस्य दावहुतभुजि पातः। ततो हि कृतधियस्तत्त्वचिन्तया विपदामेव विपदं वितन्वन्ति। किं चावयोरनन्ताः खल्वतीता भवाः।

समुत्क्षिप्य समुत्थाप्य स्वाङ्कं निजोत्संगम् आरोपयन्स्थापयन् अतित्वरा शैघ्र्यातिशयः संजाता येषां तेऽतित्वरिताः ते च ते परिजनास्तैरुपनीतैरुपस्थापितैः मलयजश्च मृणालं च घनसारश्च तुषारश्चेति मलयजमृणालघनसारतुषाराः चन्दनबिसकर्पूरप्रालेयाः ते प्रमुखा येषु तैः, शिशिरोपचारपरिकरस्य शीतलोपचारसामग्र्या प्रकराः समूहास्तैः प्रत्युत्पन्ना संज्ञा यस्यास्तां पुनरानीतचेतनाम् अकार्षीत् व्याहार्षीच्च जगाद च।

§ १८. भीर्विति—भीरु ! अयि कातरे ! इयम् एषा का आकस्मिककातरता सहसोत्पन्नभीरुता भवतीं त्वां तरलयति तरलां करोति। जगति लोके स्वप्नानाम् अवितथफलता सत्यपरिपाकता केन जनेन अन्वभावि अनुभूता। कर्मणि प्रयोगः अनुपूर्वस्य भवतेः सकर्मकत्वात्। वा अथवा भावि भविष्यत् वस्तु प्रतिबद्धं प्रतिरुद्धं कथं केन प्रकारेण अस्तु भवतु। पुराकृतयोः सुकृतेतरकर्मणोः पुण्यपापकर्मणोः परिपाकेनोदयेन पराधीना तस्यां विपदि विषादस्य शोकस्य अवसरः कः प्रस्तावः कः। विषादः शोकः किं विपदं विपत्तिम् अपनुदति दूरीकुरुते न्विति वितर्के। प्रत्युत भवे भवे जन्मनि जन्मनि विपदामेव विपत्तीनामेव प्रबन्धं सन्ततिम् अनुबध्नाति। तत्तस्मात् एवमित्थम् उभयलोकयोर्विरोध इत्युभयलोकविरोधः सोऽस्ति यस्य सः विषादः खेदः किं केन कारणेन अत्याद्रियते अतिसात्क्रियते। यश्च समुपस्थितायां प्राप्तायां विपदि विषादस्य परिग्रहः स्वीकारः सोऽयं चण्डातपचकितस्य तीक्ष्णघर्मभीतस्य दावहुतभुजि वनानले पातः। निदर्शना। ततस्तस्मात् कारणात् हि निश्चयेन कृतधियो बुद्धिमन्तो जनास्तत्त्वचिन्तया तत्त्वविचारेण विपदामेव विपदं विपत्तिं विनाशमिति यावत्, वितन्वन्ति कुर्वन्ति। किंच अन्यच्च, आवयोर्द्वयोः खलु निश्चयेन अनन्ता अन्तातीता भवाः पर्याया अतीता व्यपगताः न तेषु संगतिः संयोगः यथातीतेषु भवेष्वा-

करनेवाली दोनों भुजाओंसे उठाकर उसे अपनी गोदमें रख लिया और अत्यन्त शीघ्रतासे युक्त परिजनोंके द्वारा लाये हुए चन्दन, मृणाल, कपूर और बर्फ आदि शीतलोपचारकी सामग्रीके समूहसे उसे सचेत किया। साथ ही निम्नांकित वचन कहे—

§ १८. 'हे भीरु ! यह कौन-सा आकस्मिक भय आपको चंचल कर रहा है ? संसारमें स्वप्नोंका वास्तविक फल किसने भोगा है ? अथवा जो वस्तु जैसी होनेवाली है वह कैसे रोकी जा सकती है ? पूर्वकृत पाप कर्मके उदयसे परवश विपत्तिमें विषादका अवसर ही क्या है ? क्या विषाद विपत्तिको दूर कर देता है ? बल्कि वह भव-भवमें विपत्तियोंकी सन्ततिको ही बढ़ाता है। फिर इस तरह दोनों लोकोंसे विरोध रखनेवाले विषादका आदर क्यों किया जा रहा है ? विपत्तिके उपस्थित होनेपर जो विषादको स्वीकृत करता है वह तीव्र घामसे भयभीत मनुष्यका मानो दावानलमें गिरना है। इसीलिए तो बुद्धिमान् मनुष्य तत्त्वचिन्तनके द्वारा विपत्तियोंकी ही विपत्ति बढ़ाते हैं—विपत्तियोंको नष्ट करते हैं। दूसरी बात यह है कि हम दोनोंके अनन्त भव बीत चुके। जिस प्रकार

१. म० भवप्रबन्ध—। २. म० किमित्याद्रियते।

न तेषु संगतिस्तथैव भाविन्यपि भवप्रबन्धे। ततस्तदन्तरालगतकतिपयदिवसपर्यवसायिनि संगमेऽस्मिन्कस्तवायमाग्रहः ? संसृतौ हि वियोगः संयोगिनां नियोगेन भविता। त्वमपि किमेतन्न जानासि ? किमवगाहितजिनशासनः कृतो जनो विपदि संपदि वा बाह्य इव मोमुह्यते ? कः स्यादेवंकृते कृतिनामविशेषज्ञाद्विशेषः ? किं तु विशेषतस्त्वमशेषदोषहरं भगवन्तमतः परमाराधयेः। कुर्वीथाश्च पात्रदानादिना पवित्रमात्मानम्। किमन्यदात्मनामस्ति शरणम् ? अस्ति चेदायुष शेषः शेषैव[१] जिनपादाम्भोजलब्धा भवाब्धौ भव्यानामुपप्लवमुपशमयेत्। तस्माद्विवेकविधुरजनविषयाद्विषादान्निवर्तयितुमात्मानमर्हसि' इति। ततः प्रियतमवदनतुहिनकिरणमण्डलविनिर्यदमलवचनामृतनिर्वापितविषादविषानला विलासिनी शरदि सरसीव शनैः शनैः प्रसादं प्रत्यपद्यत। प्रावर्तत च

बयोरन्योन्यं संयोगो नाभूदित्यर्थः। तथैव तेनैव प्रकारेण भाविन्यपि भवप्रबन्धे जन्मनि न स्यादिति योज्यम्। ततस्तस्मात् तेषामनन्तभवानामन्तरालं मध्यं गताः प्राप्ता ये कतिपयदिवसा अल्पवासरास्तेषु पर्यवसायिनि समापिनि अस्मिन् संगमे तवायं क आग्रहो हठः। संसृतौ हि संसारे हि संयोगिनां संयुक्तानां वियोगो विरहो नियोगेन नियमेन भविता भविष्यति। त्वमपि किम् एतद् न जानासि नावबुध्यसे। अवगाहितं जिनशासनं येन स विलोडितजिनसिद्धान्तः कृती कुशलो जनो विपदि संपदि वा किं बाह्य इव साधारणजन इव मोमुह्यते अत्यर्थं मुह्यति। एवंकृते सति अविशेषज्ञान्मूर्खात् कृतिनां कुशलानां को विशेषः किं नाम वैशिष्ट्यं स्यात्। किं तु त्वम् अतः परम् एतद्दिवसानन्तरम् अशेषदोषाणां हरन्तं निखिलदोषापहारकं भगवन्तं जिनेन्द्रं विशेषत आधिक्येन आराधयेः सेवेथाः। पात्रदानादिना सत्कर्मणा आत्मानं स्वं पवित्रं पूतं कुर्वीथाश्च। आत्मनां जीवानाम् अन्यत् शरणं रक्षकं 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः, किमस्ति न किमपीत्यर्थः। आयुषो जीवितस्य शेषोऽस्ति चेत् तर्हि जिनपादाम्भोजयोरर्हच्चरणारविन्दयोर्लब्धा प्राप्ता शेषैव शेषाक्षता एव भवाब्धौ संसारसागरे भव्यानां सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यन्तीति भव्यास्तेषाम् उपद्रवमापदम् उपशमयेत् शान्तं कुर्यात्। तस्मात्कारणात् विवेकविधुरजनविषयादविवेकज्ञजनगोचरात् विषादात् खेदात् आत्मानं निवर्तयितुं दूरीकर्तुमर्हसि। 'इति' पदस्य 'व्याहार्षीच्च' इति पदेन सह सम्बन्धः। ततस्तदनन्तरं प्रियतमस्य वल्लभस्य वदनं मुखमेव तुहिनकिरणमण्डलं चन्द्रबिम्बं तस्मात् विनिर्यन्निर्गच्छद् यद् अमृतवचनामृतं निर्मलवचनपीयूषं तेन निर्वापितो विध्यापितो विषाद एव विषानलो गरलाग्निर्यस्यास्तथाभूता विलासिनी विजया शरदि शरदृतौ सरसीव कासार इव 'कासारः सरसी सरः'

उनमें संगति नहीं होगी—मेल नहीं होगा—तुम कहीं जाओगी और मैं कहीं जाऊँगा। इसलिए उन अनन्त भवोंके मध्य कुछ ही दिनोंमें समाप्त होनेवाले इस संगममें तुम्हारा यह कौन-सा आग्रह है ? 'संसारमें जिनका संयोग होता है उनका वियोग नियमसे होगा' तुम भी क्या यह नहीं जानती ? जिनशासनमें प्रवेश करनेवाला बुद्धिमान् मनुष्य क्या साधारण मनुष्यके समान विपत्ति और संपत्तिमें अत्यन्त मोहको प्राप्त होता है ? ऐसा होनेपर बुद्धिमान् मनुष्योंमें सामान्य मनुष्यकी अपेक्षा विशेषता ही क्या रही ? अब तुम्हें शोक नहीं किन्तु विशेष रूपसे समस्त दोषोंको हरनेवाले भगवान् जिनेन्द्रकी आराधना करनी चाहिए और पात्रदान आदिके द्वारा आत्माको पवित्र बनाना चाहिए। इसके सिवाय जीवोंको अन्य शरण है ही क्या ? यदि आयु शेष है तो जिनेन्द्र भगवान्के चरणकमलोंसे प्राप्त आशीर्वाद ही संसार सागरमें भव्य जीवोंके उपद्रवको शान्त कर सकता है। इस विवेकशून्य मनुष्योंमें पाये जानेवाले विषादसे अपने आपको दूर करनेके लिए योग्य हो'। तदनन्तर पतिके मुखरूपी चन्द्रमण्डलसे निकलते हुए निर्मल वचनामृतसे जिसकी विषादरूपी विषाग्नि

---

१. क० सेवैव।

यथापुरमवनिपुरंदरमनुवर्तितुम्[1] ।

§ १९. अथ कतिपयदिवसापगमे परिणतशरकाण्डपाण्डुना कपोलयोः कान्तिमण्डलेन तुहिनमहसमिव वासवीयदिशा[2] शंसति स्म गर्भे गर्भरूपस्य परिणामं हरिणाक्षी। काष्ठाङ्गारकाननदिधक्षया ज्वलिष्यतः सुतप्रतापानलस्य धूमकन्दल इव कालिमा कुचचूचुकयोरदृश्यत। तनयमनसः प्रसाद इव बहिः प्रसृतश्चक्षुषोरलक्ष्यत धवलिमा। निखिलजनदौर्गत्यदुःखद्रुहि गतवति गर्भमर्भके बिभ्रतीव भीतिमुदरादतिदूरं दरिद्रता प्राद्रवत। बुद्ध्वेव भाविनं स्नुषाभावमभवदवनौ पदन्यासपराङ्मुखी। गरिम्णा गर्भे समुपेयुषि दुर्धरतां क्लेशिताधरपल्लवाश्चामरपवना इव दौहृद-

इत्यमरः, शनैः शनैर्मन्दं मन्दं प्रसादं प्रसन्नतां स्वच्छतां च प्रत्यपद्यत प्रापत्। यथा पुरं पूर्ववत् अवनिपुरंदरं महीमहेन्द्रं नृपमिति यावत, अनुवर्तितुं सेवितुं प्रावर्तत च प्रवृत्ता चाभूत्।

§ १९. अथेति—अथानन्तरं कतिपयदिवसानामपगमस्तस्मिन् कतिचिद्दिवसानन्तरं हरिणाक्षी मृगनेत्री विजया तुहिनमहसं चन्द्रमसं वासवीयादिशेव प्राचीव परिणतशरकाण्डवत् परिपक्वतृणविशेषशाखावत् पाण्डु धवलं तेन कपोलयोर्गण्डयोः कान्तिमण्डलेन दीप्तिसमूहेन गर्भे गर्भरूपस्य परिणामं परिपक्वतां पूर्णतामिति यावत् शंसति स्म सूचयति स्म। काष्ठाङ्गारेति—काष्ठाङ्गार एव काननं तस्य दिधक्षा दग्धुमिच्छा तया ज्वलिष्यतः सुतस्य प्रताप एवानलस्तस्य पुत्रप्रतापपावकस्य धूमकन्दल इव धूमश्रेणिरिव कुचचूचुकयोः स्तनाग्रयोः कालिमा मेचकत्वम् अदृश्यत। तनयेति—तनयमनसः पुत्रस्वान्तस्य बहिःप्रसृतः प्रसाद इव नैर्मल्यमिव चक्षुषोर्नयनयोः धवलिमा शौक्ल्यम् अलक्ष्यत। निखिलेति—निखिलजनानां सकललोकानां यद् दौर्गत्यदुःखं दारिद्र्यदुःखं तस्मै द्रुह्यति तथाभूते अर्भके शिशौ गर्भं भ्रूणं गतवति प्राप्तवति भीतिं भयं बिभ्रतीव दधतीव दरिद्रता निर्धनता पक्षे कृशता अतिदूरमतिविप्रकृष्टं प्राद्रवत् पलायाञ्चक्रे। बुद्ध्वेति—भाविनं भविष्यन्तं स्नुषाभावं वधूत्वं बुद्ध्वेव ज्ञात्वेव अवनौ पृथिव्यां पदन्यासपराङ्मुखी चरणनिक्षेपविमुखा अभवत् गर्भभारेण पृथिव्यां चलितुमसमर्थाभूदिति भावः। गरिम्णेति—गर्भे भ्रूणे गरिम्णा गुरुत्वेन दुर्धरतां दुर्भरतां समुपेयुषि प्राप्तवति सति दौहृदश्रियो गर्भ-

बुझ गयी थी ऐसी विजया शरद् ऋतुकी सरसीके समान धीरे-धीरे प्रसन्नताको प्राप्त हो गयी और पहलेके समान ही राजाके अनुकूल आचरण करने लगी।

§ १९. तत्पश्चात् कुछ दिन व्यतीत होनेपर मृगलोचना विजया पके हुए तृणकी शाखाके समान सफ़ेद गालोंकी कान्तिसे उदरके भीतर स्थित गर्भके परिपाकको उस तरह सूचित करने लगी जिस प्रकार कि पूर्वदिशा सफ़ेद कान्तिसे अपने भीतर स्थित चन्द्रमाको सूचित करती है। स्तनोंके अग्रभागमें कालिमा दिखाई देने लगी सो वह ऐसी जान पड़ती थी मानो आगे चलकर प्रज्वलित होनेवाले पुत्रके प्रतापरूप अग्निका धुआँ ही हो। नेत्रोंमें सफ़ेदी प्रकट हो गयी सो वह ऐसी दिखाई पड़ती थी मानो पुत्रके मनकी प्रसन्नता ही बाहर फैल गयी हो। उसके उदरसे दरिद्रता—कृशता बहुत दूर भाग गयी सो ऐसी जान पड़ती थी मानो समस्त मनुष्योंके दारिद्र्यसम्बन्धी दुःखसे द्रोह करनेवाले बालकके गर्भमें आनेपर भयको धारण करती हुई ही भाग गयी थी। 'पृथ्वी तो हमारी पुत्रवधू होनेवाली है' यह जानकर ही मानो वह पृथ्वीपर पैर रखनेसे विमुख हो गयी थी। गुरुताके कारण जब गर्भ दुर्धर अवस्थाको प्राप्त हो गया तब अधर पल्लवको क्लेशित करनेवाले श्वासोच्छ्वास प्रतिसमय फैलने लगे। उसके वे श्वासोच्छ्वास ऐसे जान पड़ते थे मानो गर्भ-

१. क० अनुवर्तयितुम्। २. म० वासवीया दिशा।

श्रियः[1] प्रतिक्षणं निःश्वासाः प्रासरन् । निखिलभुवनवास्तव्यानां वस्तूनां भोक्तारमात्मजमावेदयन्तीव विविधरसास्वादलालसा समजनि राज्ञी। परिजनवनिताकरपल्लवात्पादयुगलमाकृष्य पार्थिवमकुटमणिशिलाशयनेषु शाययितुमचकमत कमलाक्षी । अपि भूषणानामुद्वहने क्लाम्यदङ्गयष्टिस्त्रयाणामपि विष्टपानां भारमंसशिखरे निवेशयितुमुदकण्ठत कम्बुकण्ठी ।

§ २०. तदेवमुपचितदौहृदलक्षणामेणाक्षीमालोक्य कदाचिदतनुत नरपतिरन्तश्चिन्ताम्—'आपन्नसत्त्वेयमावेदयति फलमभ्युदयशंसिनः स्वप्नस्य । किमेवमपरोऽप्यशिवशंसी फलिष्यति ? केन वा विनिश्चेतुं पार्यते ? भवितव्यता फलतु वा कामम् । का तत्र प्रतिक्रिया ? न हि पुराकृतानि पुरुषैः पौरुषेण शक्यन्ते निवारयितुम् । किं तु दुष्कृतपरिपाकभाविना दुर्निवारेण

लक्ष्म्याश्चामरपवना बालव्यजनवायव इव क्लेशितोऽधरपल्लवो यैस्ते तथाभूता निश्वासाः श्वासोच्छ्वासपवनाः प्रतिक्षणं प्रतिसमयं प्रासरन् । निखिलेति—आत्मजं पुत्रं निखिलभुवनवास्तव्यानां सकललोकस्थितानां वस्तूनां भोक्तारमनुभवितारम् आवेदयन्तीव सूचयन्तीव राज्ञी विजया विविधरसानामास्वादेऽनुभवने लालसा वाञ्छा यस्यास्तथाभूता समजनि । परिजनेति—कमलाक्षी कमले इवाक्षिणी यस्याः सा तथाभूता विजया परिजनवनितायाः परिकरपुरन्ध्र्याः करपल्लवात्पाणिकिसलयात् पादयुगलं चरणयुगम् आकृष्य पार्थिवमकुटानि राजमौलय एव मणिशिलाशयनानि तेषु शाययितुं शयनं कारयितुम् अचकमत अवाञ्छत् । अपीति—कम्बुकण्ठी शङ्खग्रीवा राज्ञी भूषणानामलङ्काराणामपि किमुतान्यवस्तूनाम् उद्वहने धारणेऽपि क्लाम्यन्ती अङ्गयष्टिर्यस्यास्तथाभूता श्रान्तशरीरा सती त्रयाणामपि विष्टपानां जगतां भारम् अंसशिखरे स्कन्धे निवेशयितुं स्थापयितुम् उदकण्ठत उन्मना बभूव ।

§ २०. तदेवमिति—तदेवं तदित्थम्, उपचितानि वृद्धिंगतानि दौहृदलक्षणानि गर्भचिह्नानि यस्यास्ताम्, एणाक्षीं विजयामालोक्य कदाचिज्जातुचित् नरपतिः सत्यंधरो राजा अन्तश्चेतसि चिन्तां विचारमतनुत विस्तारयामास आपन्नसत्त्वा अन्तर्वत्नी गर्भिणीयं विजया अभ्युदयं पुत्रोत्पत्तिवैभवं शंसति सूचयतीत्येवं शीलं तस्य स्वप्नस्य फलमावेदयति प्रकटयति । किम् एवमित्थम् अशिवशंसी मदीयमृत्युसूचकः अपरोऽपि स्वप्नः फलिष्यति फलं दास्यति । वा अथवा केन विनिश्चेतुं पार्यते । को निश्चयं कर्तुं समर्थो विद्यते । भवितव्यता वा अदृष्टं वा कामं यथा स्यात्तथा फलतु सफला जायते । का तत्र प्रतिक्रिया कस्तत्र प्रतिकारः । पुरुषैः पुराकृतानि पूर्वविहितानि कर्माणि पौरुषेण पुरुषार्थेन निवारयितुं न शक्यन्ते । किंतु

रूप लक्ष्मीके ऊपर दुलनेवाले चामरोंका पवन ही हो। उसे नाना रसोंको खानेकी इच्छा होने लगी सो उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो 'हमारा पुत्र समस्त लोकमें विद्यमान वस्तुओंका उपभोग करनेवाला होगा' यही सूचित कर रही थी। वह कमललोचना परिजनकी स्त्रियोंके हस्त पल्लवसे दोनों पैर झटककर राजाओंके मुकुटोंमें खचित मणिमयी शिलारूप शय्याओंपर उन्हें सुलानेकी इच्छा करती थी। भूषणोंके धारण करनेमें भी जिसका शरीर थक जाता था ऐसी विजया तीनों लोकोंके भारको अपने कन्धेके अग्रभागपर धारण करनेके लिए उत्कण्ठित हो रही थी।

§ २० तदनन्तर इस प्रकार गर्भके चिह्नोंसे युक्त मृगनेत्री विजयाको देख किसी समय राजा सत्यंधर अपने मनमें विचार करने लगा—कि यह गर्भवती, अभ्युदयको सूचित करनेवाले स्वप्नका फल तो प्रकट करने लगी है क्या इसी तरह अमंगलको सूचित करनेवाला दूसरा स्वप्न भी अपना फल दिखलावेगा। अथवा निश्चय करनेके लिए कौन समर्थ है? होनहार इच्छानुसार फल दिखलावे। इसका प्रतिकार ही क्या है? क्योंकि पूर्वकृत कर्म

१. क० ख० ग० हृदयश्रियम् ।

दुःखेन यद्यपि वयमभिभूयेमहि तदपि कुरुकुलनिरन्वयविनाशपरिहाराय परिरक्षणीया प्रयत्नेन पत्नीयमन्तर्वत्नी' इति । ततश्च विश्रुतविश्वशिल्पकौशलं विश्वकर्माणमिव प्रत्यक्षं तक्षकमाहूय गर्भदोहलजनितकेलीवनविहरणमनोरथां मनोरमां विनोदयितुमभिमतदेशगमनकौशलशालिनं कमपि यन्त्रकलापिनं कल्पयेति महीक्षिदादिक्षत् । अद्राक्षीच्च सत्वरशिल्पिकल्पितमकल्पितनिर्विशेषमशेषजननयनहर्षदायिनं शिखिनम् । अदाच्च तस्मै विस्मयमानमना मानवेश्वरो मनोरथपथातिवर्ति कार्तस्वरादिकम् । व्यहरच्च मनोहरेषु विहारोपवनेषु वनितामारोप्य मयूरयन्त्रे नरेन्द्रः ।

§ २१. इत्थं गमयति कालं कामसुखसेवारसेन राजनि राजीवदृशश्च क्रमादभिवृद्धे गर्भे निर्भरराज्योपभोगनिष्ठः काष्ठाङ्गारोऽप्याकृतिमिव कृतघ्नतायाः साक्षात्कारयन्नयशःशरीरमिवाकल्प-

---

दुष्कृतस्य पापकर्मणः परिपाकेन समुदयेन भवतीति तेन दुर्निवारेण निवारयितुमशक्येन दुःखेन यद्यपि वयम् अभिभूयेमहि परिभूता भवेम तदपि कुरुकुलस्य यो निरन्वयविनाशः समूलविच्छेदस्तस्य परिहाराय, इयमन्तर्वत्नी गर्भिणी प्रयत्नेन प्रयत्नपूर्वकं परिरक्षणीया परितो रक्षितुं योग्या वर्तत इति योज्यम् । इतीत्यस्य चिन्तामतनुत इत्यनेन संबन्धः । ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च महीक्षिद्राजा विश्रुतं प्रसिद्धं विश्वशिल्पेषु निखिलकलासु कौशलं नैपुण्यं यस्य तथाभूतं प्रत्यक्षं साक्षात् विश्वकर्माणमिव ब्रह्माणमिव तक्षकं स्थपतिम् आहूय गर्भदोहलेन गर्भकालिकवाञ्छया जनितः केलीवने क्रीडावने विहरणमनोरथो विहाराभिलाषो यस्यास्तां मनोरमां प्रियां विनोदयितुम् अभिमतदेशे स्वेष्टस्थाने गमनमेव कौशलं तेन शालते शोभत इत्येवशीलं कमपि यन्त्रकलापिनं मयूराकृतियन्त्रं कल्पय रचय, इतीत्थम् आदिक्षत् आज्ञपयामास । सत्वरं शीघ्रं यथा स्यात्तथा शिल्पिना स्थपतिना कल्पितं निर्मितम्, अकल्पितनिर्विशेषमकृत्रिमसदृशं स्वाभाविकमयूरमिवेत्यर्थः अशेषजनानां निखिललोकानां नयनेभ्यो हर्षं ददातीत्येवं शीलस्तं शिखिनं मयूरम् अद्राक्षीच्च ददर्श च । विस्मयमानमाश्चर्यचकितं मनो यस्य स एवंभूतो मानवेश्वरः सत्यंधरमहीपालस्तस्मै शिल्पिने मनोरथपथमतिवर्तत इत्येवंशीलमभिलाषाभ्यधिकं कार्तस्वरादिकं सुवर्णादिकम् अदाच्च ददौ च । नरेन्द्रो मयूरयन्त्रे वनितां विजयाम् आरोप्य स्थापयित्वा मनोहरेषु रमणीयेषु विहारोपवनेषु केलीकाननेषु व्यहरच्च विजहार च ।

§ २१. इत्थमिति—इत्थमनेन प्रकारेण राजनि सत्यंधरे कामसुखस्य सेवायां रसः स्नेहस्तेन कालं गमयति, राजीवदृशश्च कमललोचनाया विजयायाश्च गर्भे दौहृदे क्रमात् अभिवृद्धे सति निर्भरं सातिशयं

पुरुषोंके द्वारा पुरुषार्थसे रोके नहीं जा सकते। फिर भी यद्यपि हम पापकर्मके उदयसे होनेवाले दुर्निवार दुःखसे अभिभूत हो रहे हैं तथापि कुरुवंशका समूल नाश बचानेके लिए प्रयत्नपूर्वक इस गर्भवती पत्नीकी रक्षा करनी चाहिए। तदनन्तर उसने समस्त विद्याओंमें जिसका कौशल प्रसिद्ध था, और जो प्रत्यक्ष विश्वकर्मा—विधाताके समान जान पड़ता था ऐसे बढ़ईको बुलाकर गर्भकालिक दोहलासे क्रीड़ावनमें विहार करनेकी इच्छा रखनेवाली विजयारानीको बहलानेके लिए इच्छित देशोंमें जानेवाले कौशलसे सुशोभित कोई एक मयूर यन्त्र बनाओ''''यह आदेश दिया। और शीघ्रतासे युक्त शिल्पी—कारीगरके द्वारा निर्मित, अनुपम एवं समस्त मनुष्योंके नेत्रोंको हर्ष देनेवाला मयूर देखा। जिसका चित्त आश्चर्यसे युक्त था ऐसे राजा सत्यंधरने शिल्पीके लिए उसकी कल्पनासे भी अधिक सुवर्ण आदिक पुरस्कारमें दिया। तदनन्तर राजा उस मयूर यन्त्रपर रानीको बैठाकर मनोहर क्रीड़ावनोंमें विहार करने लगा—घूमने लगा।

§ २१. इस प्रकार जब राजा सत्यंधर कामसुखके उपभोगसे समय व्यतीत कर रहा था और कमलनेत्री रानी विजयाका गर्भ जब क्रमसे वृद्धिको प्राप्त हो रहा था तब सातिशय

मवस्थापयन्सज्जनसरणिमिव खिलीकुर्वन्सर्वजननिग्राह्यतामिव प्रतिगृह्णन्प्रकृतिमिव अनच्छताया: प्रदर्शयन्पृथिवीपतावुचितेतरमुपरचयितुमुपाक्रंस्त, प्राक्रंस्त च प्रतिदिनमेवं चिन्तयितुम्।

§ २२. विहरदश्वीयखुरपुटविघटितधरणीतलोत्थितधारालरजःपटलघटितरिपुमण्डलोत्पातपांसुवर्षेण समरहर्षलमदवदिभकपोलतटविगलितमदजलदर्शितापरकालिन्दीप्रवाहेण विलसदसिमरीचिजालमेचकितदशदिशामुखेन युद्धोन्मुखसुभटभुजदण्डकुण्डलितकोदण्डविडम्बितपितृपतिवक्त्रकुहरेण भुवनविवरव्यापिना बलेन शशासिरे शत्रवः। आमहेन्द्रमदावलकलभकर्णतालपवनविधूतपादप-

राज्यस्योपभोगे निष्ठा यस्य तथाभूतः अयं काष्ठाङ्गारः, कृतं हन्तीति कृतघ्नस्तस्य भावस्तत्ता तस्या अनुपकारज्ञताया आकृतिं संस्थानं साक्षात्कारयन्निव प्रत्यक्षं दर्शयन्निव, आकल्पं कल्पं कल्पकालमभिव्याप्येत्याकल्पम् अयश एव शरीरं तदकीर्तिकायम् अवस्थापयन्निव, सज्जनानां सरणिं मार्गं 'वर्त्माध्वा सरणिः पन्था मार्गः प्रचरसंचरौ' इति धनञ्जयः। खिलीकुर्वन्निव उपद्रवयन्निव, सर्वजनैर्निखिलमानवैर्निग्राह्यतां तिरस्कार्यतां प्रतिगृह्णन्निव स्वीकुर्वन्निव, अनच्छताया मलिनतायाः प्रकृतिं स्वभावं प्रदर्शयन्निव प्रकटयन्निव, पृथिवीपतौ सत्यंधरमहाराजे विषयार्थे सप्तमी, उचितेतरमनुचितम् अनुचितम् उपरचयितुं कर्तुम् उपाक्रंस्त तत्परोऽभूत् प्रतिदिनम् एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण चिन्तयितुं विचारयितुं प्राक्रंस्त च समुद्यतोऽभवत्। 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्' इत्युभयत्रात्मनेपदम्।

§ २२. विहरदिति—अश्वानां समूहोऽश्वीयं 'केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्' इति समूहार्थे छप्रत्ययः। विहरद् यदश्वीयं हयसमूहस्तस्य खुरपुटैः सफप्रान्तैर्विघटितं विदारितं यद् धरणीतलं पृथ्वीतलं तस्मादुत्थितं धारालं धारावद् यद् रजःपटलं धूलिसमूहस्तेन घटितं कृतं रिपुमण्डलेषु शत्रुराष्ट्रेषु उत्पातायोपद्रवाय पांसुवर्षं धूलिवर्षणं येन तेन। समरेण युद्धेन हर्षला हर्षयुक्ता ये मदवन्तो मदस्राविण इभा गजास्तेषां कपोलतटेभ्यो गण्डप्रदेशेभ्यो विगलितं पतितं यन्मदजलं दानसलिलं तेन दर्शितः प्रकटीकृतोऽपरकालिन्द्या अपरयमुनायाः प्रवाहो येन तेन। विलसता स्फुरता असिमरीचिजालेन कृपाणकिरणकलापेन मेचकितानि श्यामलीकृतानि दशदिशामुखानि येन तेन। युद्धोन्मुखाः समरं कर्तुं तत्परा ये सुभटा योधास्तेषां भुजदण्डैः कुण्डलितानि वक्रीकृतानि यानि, कोदण्डानि धनूंषि तैर्विडम्बितं तिरस्कृतं पितृपतेर्यमस्य वक्त्रकुहरं मुखकन्दरं येन तेन। भुवनस्य लोकस्य विवरे व्याप्नोतीत्येवं शीलं तेन। बलेन सैन्येन शत्रवः शासिताः वशीकृता इति यावत्। आ महेन्द्रेति—महेन्द्रस्य देवेन्द्रस्य यो मदावलो मत्तमतङ्गज ऐरावण इति यावत् तस्य कलभानां शावकानां कर्णतालपवनेन कर्णताडपत्रपवनेन विधूताः कम्पिता ये पादपा

राज्यके उपभोगमें लीन वह काष्ठांगार भी जो कि कृतघ्नताकी आकृतिको मानो साक्षात् दिखला रहा था, अपने अपयशरूपी शरीरको कल्पकाल तक स्थिर रखता रहा था, सज्जनोंके मार्गको कण्टकाकीर्ण बना रहा था, समस्त मनुष्योंके तिरस्कारको मानो स्वीकृत कर रहा था और तुच्छताका मानो स्वभाव ही दिखला रहा था....राजाके विषयमें कुछ अनुचित कार्य करनेके लिए उद्यत हुआ। तथा प्रतिदिन ऐसा विचार करने लगा—

§ २२. कि अहो! घूमनेवाले अश्व समूहकी टापोंसे खुदी पृथिवी तलसे उठी पंक्तिबद्ध धूलिके पटलसे जिसने शत्रुओंके देशमें उत्पातसूचक धूलिकी वर्षा करना शुरू की है, युद्धसे हर्षित मदोन्मत्त हाथियोंके गण्डस्थलसे झरते हुए मदजलसे जिसने दूसरी यमुनाका प्रवाह दिखलाया है, चमकती हुई तलवारोंकी किरणोंसे जिसने दशों दिशाओंके अग्रभागको श्यामल कर रखा है, युद्धके लिए उद्यत योद्धाओंके भुजदण्डोंमें स्थित कुण्डलाकार धनुषोंसे जिसने यमराजके मुख-कन्दराका अनुकरण रखा है, और जो संसारके मध्यको व्याप्त करनेवाली है, ऐसी सेनासे शत्रु नष्ट हो चुके हैं। इन्द्रके मदोन्मत्त ऐरावत हाथीके कानरूपी तालपत्रोंकी

कुसुमधूलिधूसरितपरिसरवनादुदयगिरेराखेलद्वरुणरमणीचरणन्यासमिलदविरलयावकपल्लवितप्रस्तरादस्तगिरेराशैल राजदुहितृ करनखलूनपल्लवभरकृतावनीरुह शिखरोल्लासात्कैला सादानिशिचरकुलप्रलयधूमकेतोः सेतोरवनतमकुटमणितटलुठितैर्माणिक्यमहःपल्लवैरर्चयन्ति नश्चरणौ धरणीभुजः । एवं फलितसकलमनोरथस्य सर्वोर्वीपालमौलिविनिवेशितचरणस्य शौर्यशालिनो मादृशस्य परनिर्देशकरणमयशःकारणम्। नहि चेतयमाना मानिनः परशासनं शिरसा धारयन्तो वहन्ति जीवितम् । सकलभुवनाधिपत्योपभोगसुखितमपि दुःखयति हि पारतन्त्र्यम् । तत्केनापि व्याजेन व्यापाद्य राजानं व्यपगतपारतन्त्र्यशोकशङ्कुर्निःशङ्क एव महीं मदेकशासनां विधास्यामि' इति ।

महीरुहास्तेषां कुसुमानां पुष्पाणां धूल्या धूसरितं मलिनं परिसरं वनं तटारण्यं यस्य तस्मात् उदयगिरेः पूर्वाचलात् आ इति मर्यादायाम्। आ खेलदिति—खेलन्त्यो या वरुणरमण्यः पाशिपुरन्ध्रयस्तासां चरणन्यासेन पादनिक्षेपेण मिलद् यद् अविरलयावकं निरन्तरालक्तकं तेन पल्लविताः किसलयवदरुणवर्णीकृताः प्रस्तरा यस्मिन् स तस्मात् अस्तगिरेः अस्ताचलात् आ । आ शैलेति—शैलराजस्य हिमालयस्य या दुहिता पुत्री पार्वतीत्यर्थस्तस्याः करनखैर्हस्तनखैर्लूनश्छिन्नो यः पल्लवभरः किसलयसमूहस्तेन कृतो विहितोऽवनीरुहशिखराणां वृक्षाग्रभागानामुल्लास उल्लासो यस्मिन् तस्मात् कैलासात् हराचलात् आ । आ निशिचरेति—निशिचराणां राक्षसानां कुलस्य प्रलयो विनाशस्तस्मै धूमकेतुस्तस्मात् सेतोर्दक्षिणार्णवपुलिनात् आ । धरणीभुजो राजानः अवनतेभ्यो नम्रीभूतेभ्यो मुकुटमणितटेभ्यो मौलिमणिमयप्रान्तेभ्यो लुठितैरधःपतितैः माणिक्यमहःपल्लवैर्मणितेजःकिसलयैः । नोऽस्माकं चरणौ अर्चयन्ति पूजयन्ति । एवमिति—एवमनेन प्रकारेण फलिताः सफलीभूताः सकलमनोरथा यस्य तस्य । सर्वोर्वीपालानां निखिलराजानां मौलिषु मुकुटेषु विनिवेशिताः स्थापिताश्चरणा यस्य तस्य । शौर्यशालिनः पराक्रमेण शोभमानस्य मादृशस्य मत्सदृशजनस्य परनिर्देशकरणं पराज्ञासंपादनम् अयशःकारणमकीर्तिनिदानम् । अस्तीति शेषः । हि यतः चेतयमानाश्चेतनशीला मानिनः परशासनं परकीयनिदेशं शिरसा मूर्ध्ना धारयन्तो जीवितं न वहन्ति । सकलभुवनस्य निखिलजगतो यदाधिपत्यं स्वामित्वं तस्योपभोगेन सुखितमपि पारतन्त्र्यं परायत्तजीवनं हि निश्चयेन दुःखयति दुःखं करोति । तत्तस्मात्कारणात् केनापि व्याजेन राजानं सत्यंधरमहीपालं व्यापाद्य मारयित्वा व्यपगतो दूरीभूतः पारतन्त्र्यशोकशङ्कुः परायत्तत्वशोककीलो यस्य तथाभूतः सन् महीं ममैकं शासनं यस्यां तथाभूतां विधास्यामि करिष्यामि । इति ।

वायुसे कम्पित वृक्षोंकी पुष्पसम्बन्धी परागसे जिसके निकटवर्ती वन धूसरित हो रहे हैं ऐसे उदयाचलसे, खेलती हुई वरुणकी स्त्रियोंके चरण निक्षेपसे प्राप्त महावरके अविरल रंगसे जिसके पाषाण लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त हो रहे हैं, ऐसे अस्ताचलसे, पार्वतीके हाथके नाखूनोंसे तोड़े हुए पल्लवोंके भारसे जिसके वृक्षोंके शिखर ऊपरकी ओर उठ रहे हैं ऐसे कैलास पर्वतसे, और रावणके वंशको नष्ट करनेके लिए प्रलयकालीन अग्निके समान सेतुबन्धसे लेकर आये हुए राजा, नम्रीभूत मुकुटोंके मणिमय तटोंमें लौटनेवाले माणिक्योंके तेजरूप पल्लवोंसे हमारे चरणोंकी पूजा करते हैं। इस प्रकार जिसके समस्त मनोरथ फलीभूत हो रहे हैं, समस्त राजाओंके मुकुटोंपर जिसके चरण स्थित हैं, एवं जो पराक्रमसे सुशोभित है, ऐसे मेरे लिए दूसरेकी आज्ञापालन करना अपयशका कारण है। वास्तवमें चेतनाशील मानी मनुष्य सिरसे दूसरेकी आज्ञाको धारण करते हुए जीवित नहीं रहते। मेरी बात जाने दो, जो समस्त संसारके स्वामित्वके उपभोगसे सुखी हो रहा है उसे भी परतन्त्रता दुःखी करती है। इसलिए किसी बहाने राजाको मारकर परतन्त्रताजन्य शोकरूपी कीलके निकल जानेसे निःशंक होकर ही मैं पृथिवीको एक अपने ही शासनसे युक्त करूँगा।

§ २३. इत्थमनुवर्तमानमनोरथम्, कदाचित्कनकगिरिशिलातलविशालस्य विमलदुकूलवितानविराजिनः प्रलम्बमानकदलिकाकलापस्य काञ्चनशिलास्तम्भशुम्भतो महतो मण्डपस्य मध्यभागनिवेशिनि निष्टप्ताष्टापदनिर्मितवपुषि विचित्रास्तरणशोभिनि सिंहासने समासीनम्, पृष्ठतः स्थापितेन राजलक्ष्मीनिवासपुण्डरीकपाण्डुरेण[1] धवलातपत्रेण तिलकितमूर्धानम्, उभयतः स्थिताभिरनुक्षणरणितमणिपारिहार्यमुखरबाहुलतिकाभिर्वारवामनयनाभिः सविलासविधूयमानविमलचामरमरुदान्दोलितकुसुमदामसुरभितवक्षःस्थलम्, मूर्तिमन्तमिव शौर्यगुणम्, विग्रहवन्तमिवावलेपम्, आत्मदेहप्रभाकवचितकाष्ठं काष्ठाङ्गारं परिवार्य प्रकटितप्रश्रयाः समन्तादासिषत सामन्ताः ।

§ २४. अथ तानालोक्य कपटकर्मपटिष्ठः काष्ठाङ्गारः स्वहृदयविपरिवर्तमानार्थसमर्थनः

§ २३. इत्थमिति—इत्थमनेन प्रकारेण अनुवर्तमाना भूयो-भूयो भवन्तो मनोरथा यस्य तम् । कदाचिज्जातुचित् कनकगिरेः स्वर्णाचलस्य शिलातलवद्विशालस्तस्य, विमलदुकूलस्य निर्मलदुकूलवस्त्रस्य वितानेन चन्द्रोपकेन विराजिनः शोभिनः, प्रलम्बमानः कदलिकाकलापो ध्वजसमूहो यस्मिन् तस्य, काञ्चनशिलास्तम्भैः स्वर्णशिलास्तम्भैः शुम्भतः शोभमानस्य महतो मण्डपस्य मध्यभागे निविशत इत्येवंशीलस्तस्मिन् मध्यस्थित इत्यर्थः, निष्टप्तं संतप्तं यदष्टापदं स्वर्णं तेन निर्मितं वपुर्यस्य तस्मिन्, विचित्रेण विविधवर्णेन आस्तरणेन शोभत इत्येवंशीलं तस्मिन् सिंहासने समासीनं स्थितम् । पृष्ठतः पश्चात् स्थापितेन राजलक्ष्म्या निवासभूतं यत्पुण्डरीकं तद्वत् पाण्डुरं पाण्डुवर्णं तेन धवलातपत्रेण श्वेतच्छत्रेण तिलकितो मूर्धा यस्य तम् । उभयतः स्थिताभिः, अनुक्षणं प्रतिसमयं रणितैः शब्दायमानैः पारिहार्यैराभूषणैर्मुखराः शब्दायमाना बाहुलतिका भुजवल्लर्यो यासां ताभिः वारवामनयनाभिर्वेश्याभिः सविलासं यथा स्यात्तथा विधूयमानयोः प्रकीर्यमाणयोर्विमलचामरयोर्निर्मलबालव्यजनयोर्मरुता पवनेनान्दोलितं कम्पितं यत्कुसुमदाम पुष्पस्रक् तेन सुरभितं सुगन्धितं वक्षःस्थलं यस्य तम्, मूर्तिमन्तं शौर्यगुणमिव पराक्रमगुणमिव, विग्रहवन्तं शरीरधारिणमवलेपमिव गर्वमिव, आत्मदेहस्य स्वकीयशरीरस्य प्रभया कवचिता व्याप्ताः काष्ठा दिशो येन तम्, एवंभूतं काष्ठाङ्गारं परिवार्य परिवेष्ट्य प्रकटितः प्रदर्शितः प्रश्रयो विनयो यैस्ते तथाभूताः सामन्ता मण्डलेश्वराः समन्तात्परितः आसिषत स्थिता अभूवन् ।

§ २४. अथेति—अथानन्तरं तान् सामन्तान् आलोक्य कपटकर्मणि मायाकर्मणि पटिष्ठश्चतुरतरः काष्ठाङ्गार एतन्नामसचिवः स्वहृदये स्वकीयचेतसि विपरिवर्तमानो योऽर्थस्तस्य समर्थने चतुरं किमपि वचन

§ २३. इस प्रकारके मनोरथ रखनेवाला काष्ठांगार किसी समय सुमेरु पर्वतके शिलातलके समान विशाल, निर्मल रेशमी चँदोवेसे सुशोभित, लटकती हुई ध्वजाओंके समूहसे युक्त, और स्वर्णमय शिलाके खम्भोंसे शोभायमान बड़े भारी मण्डपके मध्यभागमें स्थित, तपाये हुए स्वर्णसे निर्मित एवं रंग-बिरंगे बिस्तरसे सुशोभित सिंहासनपर बैठा था। पीछेकी ओर रखे हुए राजलक्ष्मीके निवासभूत कमलके समान सफेद छत्रसे उसका मस्तक सुशोभित था। दोनों ओर खड़ी एवं क्षण-क्षणमें खनकते हुए मणिमय आभूषणोंसे शब्दायमान भुजलताओंकी धारक वेश्याओंके द्वारा विलासपूर्वक ढोरे हुए निर्मल चमरोंकी वायुसे हिलती फूलोंकी मालाओंसे उसका वक्षःस्थल सुगन्धित हो रहा था। वह ऐसा जान पड़ता था मानो मूर्तिधारी पराक्रमरूप गुण ही हो अथवा शरीरधारी अहंकार ही हो। अपने शरीरकी कान्तिसे उसने दिशाओंको व्याप्त कर रखा था। विनयको प्रकट करनेवाले सामन्त गण उसे घेरकर चारों ओर बैठे हुए थे।

§ २४. तदनन्तर उन सामन्तोंको देख कपट कार्यमें निपुण काष्ठांगार अपने हृदयमें

[1] क० ख० ग० पाण्डरेण ।

चतुरं किमपि वचनमचीकथत्—'किमपि विविक्षतामेव नः क्षीणतामयासिषुरनेके दिवसाः । अद्यापि लज्जमानमिव मानसमन्तराकर्षति रसनाम् । परिवादपविपतनभीतेव गलकुहरान्न निःसरति सरस्वती । पातकपङ्कपतनातङ्कादिव कम्पते कायः । किमेतत्स्वन्तं दुरन्तं वेति स्वान्तं न मुञ्चति चिन्ता । तदपि दैवादेशलङ्घनभयोत्खातशङ्काशङ्कुनिरङ्कुशेन मनसा समावेद्यते । स्वप्ने केनापि पार्थिवपरिपन्थिना दैवतेन 'निहत्य राजानमात्मानं रक्ष'[1] इति निरनुक्रोशेन समावेद्यते । कात्र प्रतिक्रिया ? किं वात्र प्रयुज्यते ? यदिहास्माभिर्विधीयेत तदभिधीयताम् ।' इति पापिष्ठेन काष्ठाङ्गारवचनेन कुपितकण्ठीरवकण्ठनिःसृतेन स्वनेन वनकरिण इव कांदिशीकाः, निष्कृपनिषादनिर्दयाकृष्टिनिष्ठ्यूतेन चापटङ्कारेण रङ्का इव धृतातङ्काः, प्रमादप्रवृत्तेन प्राणि-

मचीकथत् कथयामास । 'कथ वाक्यप्रबन्धे' इत्यस्याग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावाभावे 'अचीकथत्' इति-प्रयोगोऽपाणिनीयः । तत्सम्मतं तु 'अचकथत्' इति रूपम् । किमपि विवक्षतामेव वक्तुमिच्छतामेव नोऽस्माकम् अनेके दिवसाः क्षीणतां नश्वरताम् अयासिषुः प्रापुः । वक्तुमिच्छतामेव नोऽनेके दिवसा व्यतीता इति भावः । अद्यापि सांप्रतमपि लज्जमानमिव त्रपमाणमिव मानसं हृदयं रसनां जिह्वाम् अन्तः अभ्यन्तरम् आकर्षति । सरस्वती वाणी परिवाद एव पविस्तस्य पतनं तस्माद् भीतेव लोकनिन्दावज्रपतन-त्रस्तेव गलकुहरात्कण्ठकन्दरात् न निःसरति न बहिर्निर्गच्छति । पातकं पापमेव पङ्कः कर्दमस्तस्मिन् पतनं तस्यातङ्को भयं तस्मादिव कायः कम्पते । किमेतत् स्वन्तं सुखान्तं दुरन्तं दुःखान्तं वा, इति चिन्ता स्वान्तं चित्तं न मुञ्चति । तदपि तथापि दैवादेशस्य लङ्घनाद् यद्भयं तेनोत्खातो यः शङ्काशङ्कुस्तेन निरङ्कुशं तेन एवंभूतेन मनसा समावेद्यते कथ्यते । 'स्वप्ने पार्थिवपरिपन्थिना नृपतिविरोधिना केनापि दैवतेन देवेन 'राजानं निहत्य मारयित्वा आत्मानं रक्ष' इति निरनुक्रोशेन निर्दयेन सता समावेद्यते कथ्यते । अत्र का प्रतिक्रिया प्रतिकारः किं वात्र प्रयुज्यते प्रयोगः क्रियते । इह विषये अस्माभिर्यद् विधीयेत क्रियेत तद् अभिधीयतां कथ्यताम्' इति पापिष्ठेन पापतमेन काष्ठाङ्गारवचनेन कुपितश्चासौ कण्ठीरवश्चेति कुपित-कण्ठीरवः क्रुद्धमृगराजस्तस्य कण्ठात् निःसृतस्तेन स्वनेन शब्देन 'शब्दो निनादो निनदो ध्वनिध्वानरव-स्वनाः' इत्यमरः । वनकरिण इव काननद्विरदा इव कांदिशीका भीताः, निष्कृपनिषादेन निर्दयकिरातेन या निर्दयाकृष्टिस्तया निष्ठ्यूतः प्रकटितस्तेन चापटङ्कारेण कोदण्डशब्देन रङ्का इव दीना इव धृतातङ्का धृतभयाः,

चलते हुए अर्थके समर्थन करनेमें चतुर कुछ वचन बोला । वह कहने लगा कि कुछ कहनेकी इच्छा रखते हुए ही हमारे अनेक दिन बीत गये । आज भी लज्जित होते हुएके समान हृदय भीतर ही भीतर जिह्वाको खींच रहा है । अपवादरूपी वज्रके पतनसे भयभीत हुई-की तरह वाणी कण्ठरूप कन्दरासे बाहर नहीं निकल रही है । पापरूप पंकमें गिरनेके भयसे ही मानो शरीर काँप रहा है । 'इसका परिणाम अच्छा होगा या बुरा' यह चिन्ता चित्तको नहीं छोड़ रही है । फिर भी दैवकी आज्ञाके उल्लंघनके भयसे शंकारूपी कीलके उखड़ जानेसे निःशंक चित्तके द्वारा कुछ कहा जा रहा है । 'राजाका विरोधी कोई निर्दय देवता स्वप्नमें प्रतिदिन कहता है कि राजाको मारकर अपनी रक्षा करो' । मैं आप लोगोंसे जानना चाहता हूँ कि 'इसका क्या प्रतिकार है ? इस स्थितिमें क्या किया जाना चाहिए ? यहाँ हमारे द्वारा जो कुछ किया जा सकता हो वह कहिए ।' इस प्रकार अत्यन्त पापपूर्ण काष्ठांगारके वचनोंसे मन्त्रीगण तत्काल उस तरह भयभीत हो उठे, जिस तरह कि क्रुद्ध सिंह-के कण्ठसे निकले शब्दसे भागते हुए जंगली हाथी भयभीत हो उठते हैं अथवा निर्दय भीलके द्वारा निर्दयतापूर्वक खींचकर छोड़ी हुई धनुषकी टंकारसे जिस प्रकार दीन मृग आतंकित

१. क० ख० ग० रक्षेत् ।

वधेन तपोधना इव सद्यःसंजातभयाः, सर्वंकषशोकपावकपच्यमानतनवः, संतापकृशानुधूममिव श्यामलिमानमाननेन दर्शयन्तः, पातालतलप्रवेशाय दातुमवकाशमर्चयन्त इव विकचकमलदल[1] निचयेन मेदिनीमवनमितदृशः, प्रसृमरनिःश्वासनिर्भरोष्णमर्मरिताधराः, करनखरशिखरविलिखितास्थानभूमयः स्वान्तचिन्त्यमाननरपतिदुश्चरितदूयमानाः दुःखभरभज्यमानमनोवृत्तयः कर्तव्यमपरमपश्यन्तः पश्यन्तश्च परस्परमुखानि, मूकीभावेन दर्शितदुरवस्थमवास्थिषत मन्त्रिणः ।

§ २५. ततस्तूष्णींभावविवृतविसंवादेषु स्वेदसलिलनिवेदितवेदनानुबन्धेषु[2] चित्रगतेष्विव निष्कम्पनिखिलाङ्गेषु मन्त्रप्रभावनिरुद्धवीर्येष्विव विषधरेषु विगतप्रतीकारतया हूत्कुर्वाणेषु सचि-

प्रमादेन प्रवृत्तस्तेन प्राणिवधेन तपोधना इव संयता इव सद्यः संजातं भयं येषां ते समुत्पन्नभीतिकाः सर्वंकषेण शोकपावकेन शोकाग्निना पच्यमाना तनुर्येषां ते, आननेन मुखेन संताप एव कृशानुर्वह्निस्तस्य धूममिव श्यामलिमानं मालिन्यं दर्शयन्तः, पातालस्य तले प्रवेशस्तस्मै अवकाशं दातुं विकचकमलदलानां निचयः समूहस्तेन मेदिनीं पृथिवीम् अर्चयन्तः पूजयन्त इव अवनमिता दृशो येषां ते नीचैः पतितनेत्राः, प्रसृमराः प्रसरणशीला ये निःश्वासास्तैर्निर्भरमत्यन्तमुष्णा मर्मरिताश्च शुष्काश्चाधरा दशनच्छदा येषां तथाभूताः, करनखराणां हस्तनखानां शिखरेण विलिखिताः खण्डिता आस्थानभूमिः सभाभूमिर्यैस्ते तथाभूताः, स्वान्ते चेतसि चिन्त्यमानं विचार्यमाणं यत् नरपतेर्दुश्चरितं तेन दूयमानाः परितप्यमानाः, दुःखभरेण भज्यमाना मनोवृत्तिर्येषां ते, अपरमन्यत् कर्तव्यमपश्यन्तः करणीयोपायमनवलोकयन्तः परस्परमुखानि मिथोवदनानि पश्यन्तश्च विलोकमानाश्च मन्त्रिणः सचिवा मूकीभावेन तूष्णींभावेन दर्शिता दुरवस्था यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अवास्थिषत अवस्थिता अभूवन् ।

§ २५. तत इति—ततस्तदनन्तरं तूष्णींभावेन मौनमुद्रया विवृतः प्रकटितो विसंवादो यैस्तेषु, स्वेदसलिलेन प्रस्वेदजलेन निवेदितः सूचितो वेदनानुबन्धः पीडासंबन्धो येषां तेषु, चित्रगतेष्विवालेख्यलिखितेष्विव निष्कम्पानि निखिलानि अङ्गानि येषां तेषु निश्चलाखिलावयवेषु, मन्त्रस्य प्रभावेण निरुद्धं प्रतिहतं वीर्यं शक्तिर्येषां तेषु विषधरेष्विव नागेष्विव विगतप्रतीकारतया प्रतिकाररहितत्वेन सचिवेषु मन्त्रिषु हूत्कुर्वाणेषु हूदिति शब्दं कुर्वाणेषु सत्सु धर्मे एकताना बुद्धिर्यस्य तथाभूतो धर्मदत्तो नामामात्य-

हो जाते हैं। जिस प्रकार प्रमादसे हुए प्राणि बधके कारण तपस्वीजन तत्काल भययुक्त हो जाते हैं। सबको नष्ट करनेवाली शोकरूपी अग्निसे उनका शरीर पकने लगा और सन्तापरूपी अग्निके धुआँके समान वे मुखसे कालिमा दिखलाने लगे। सबकी दृष्टि नीचेकी ओर हो गयी, और उससे वे ऐसे जान पड़ने लगे मानो पाताल तलमें प्रवेश करनेके लिए अवकाश देनेके अर्थ वे खिले हुए कमलदलके समूहसे पृथिवीकी पूजा ही कर रहे थे। फैलते हुए श्वासोच्छ्वासकी अत्यधिक उष्णतासे उनके ओठ सूख गये थे, हाथके नाखूनोंके अग्रभागसे वे सभाकी भूमिको कुरेद रहे थे, हृदयमें विचारे हुए राजाके दुश्चरित्रसे अत्यन्त दुःखी हो रहे थे, दुःखके भारसे उनकी मनोवृत्ति टूट रही थी और दूसरे कर्तव्यको वे नहीं देख पा रहे थे, अतः परस्पर एक दूसरेका मुख देखते हुए चुपचाप अपनी दुःखपूर्ण अवस्थाको दिखाते हुए बैठे रहे।

§१ २५. तदनन्तर मौन भावसे जिन्होंने विरोध प्रकट किया था, पसीनारूपी जलसे जो वेदनाकी सन्ततिको प्रकट कर रहे थे, चित्रलिखितके समान जिनके समस्त अंग निश्चल थे और मन्त्रके प्रभावसे जिनकी शक्ति रुक गयी है, ऐसे सर्पोंके समान जो प्रतिकार न होनेके कारण मात्र हू-हू शब्द कर रहे थे ऐसे मन्त्रियोंमें एक धर्मदत्त नामका प्रमुख मन्त्री था।

१. क० ख० ग० 'दल'पदं नास्ति। २. क० ख० ग० स्वेदसलिलनिवेदनानुबन्धेषु।

वेषु, धर्मदत्तो नाम धर्मैकतानबुद्धिरमात्यमुख्यः प्रज्ञाप्रदीपदृष्टकाष्ठाङ्गारहृदयगतार्थोऽपि पार्थिव-[1]पक्षपातादनपेक्षितप्राणः सधीरमभाणीत्—

§ २६. आयुष्मन्, नैकदोषतिमिरविहरणरजनीमुखं राजद्रोहं दौरात्म्यादुपदिशति दैवतेऽस्मिन्नाकस्मिकः कोऽयमादरः ? पश्य विश्वम्भरापतयो ह्यतिशयितविश्वदेवताशक्तयः । तथाहि—'यस्त्वपकरोति देवताभ्यः स पुनः परत्र विपद्येत वा न वा । मनसापि वैपरीत्यं राजनि चिकीर्षतां चिन्तासमसमयभाविनी विपदिति नैतदाश्चर्यम् । यदेकपद एव सह सकलसंपदा संपनीपद्यते प्रलयः स्वकुलस्यापि । परत्रापि पापीयसस्तस्याधोगतिरपि भवितेति शंसन्ति शास्त्राणि । तद्विवेकविधुर-जनगतागतक्षुण्णमयशःपङ्कपटलपिच्छिलमभितःप्रसरदपायकण्टककोटिसंकटमशेषजनविद्वेषविषधर-

मुख्यः प्रज्ञैव प्रदीपः प्रज्ञाप्रदीपस्तेन दृष्टः काष्ठाङ्गारहृदयगतोऽर्थो येन तथाभूतोऽपि सन् पार्थिवः सत्यंधरो महाराजस्तस्य पक्षे पातस्तस्मात् अनपेक्षिताः प्राणा येन तादृक् सन् सधैर्यं यथा स्यात्तथा अभाणीत् कथयामास—

§ २६. आयुष्मन्निति—हे आयुष्मन् हे दीर्घायुष्क । नैकदोषा एव तिमिरं तस्य विहरणाय भ्रमणाय रजनीमुखं प्रदोषः रात्रिप्रारम्भभाग इति यावत् । इत्थंभूतं राजद्रोहं दौरात्म्यात् दुष्टतया उपदिशति कथयति अस्मिन् दैवतेऽस्मिन् दैवे कोऽयम् आकस्मिकः सहसोद्भूत आदरः सत्कारः ? पश्य, विश्वंभरापतयो राजानो हि अतिशयिता अतिक्रान्ता विश्वदेवतानां शक्तिर्यैस्ते तथाभूताः सन्तीति शेषः । तथाहीति—तथाहि शब्देन तदेव स्पष्टीकरोति । यो जनो देवताभ्यः देवेभ्यः स्वार्थे तल् अपकरोति स पुनः परत्र परलोके विपद्येत विपन्नो भवेत् न वा भवेत्, किन्तु मनसापि चेतसापि राजनि वैपरीत्यं विपरीतभावं चिकीर्षतां कर्तुमिच्छतां जनानां विपद् चिन्तायाः समसमये भवतीत्येवं शीलेत्येतदाश्चर्यं विस्मयस्थानं न । यद् यस्मात् एकपद एव युगपदेव सकलसंपदा निखिलसम्पत्त्या सह स्वकुलस्यापि प्रलयो विनाशः संपनी-पद्यते संपन्नो भवति परत्रापि परभवेऽपि तस्य पापीयसः प्रचुरपापस्याधोगतिः अधोगतिर्भवितेति शास्त्राण्यपि शंसन्ति कथयन्ति । तद्विवेकेति—तत् तस्मात्कारणात् विवेकेन हिताहितबोधेन विधुरा रहिता ये जनास्तेषां गतागताभ्यां क्षुण्णं मर्दितम्, अयशोऽपकीर्तिरेव पङ्कपटलं कर्दमसमूहस्तेन पिच्छिलं विजिलं स्खलपातकारणमिति यावत् 'स्यात्पिच्छिलं तु विजिलम्' इत्यमरः, अभितः तटद्वये प्रसरन्तो येऽपायकण्टका

उसकी बुद्धि धर्ममें ही संलग्न रहती थी। वह यद्यपि प्रज्ञारूपी दीपकके द्वारा काष्ठांगारके हृदयगत पदार्थको देख चुका था तथापि राजा सत्यन्धरके पक्षपातसे अपने प्राणोंकी परवाह न कर धीरताके साथ बोला—

§ २६. आयुष्मन् ! दुर्भावनासे अनेक दोषरूपी अन्धकारके विहारके लिए रात्रिके प्रारम्भ भागके समान राजद्रोहका उपदेश देनेवाले इस दैवपर यह आपका कौन-सा अकस्मात् प्रकट होनेवाला अत्यन्त आदर है ? देखिए, राजा लोग समस्त देवताओंकी शक्तिको अतिक्रान्त करनेवाले होते हैं। बात स्पष्ट है क्योंकि जो देवताओंका अपकार करता है, वह परभवमें विपत्तिको प्राप्त होता भी है और नहीं भी होता, परन्तु जो राजाके विषयमें मनसे भी विपरीत चेष्टा करना चाहते हैं उनपर चिन्ताके समय ही विपत्ति आ टूटती है यह आश्चर्यकी बात नहीं। समस्त सम्पत्तिके साथ-साथ राजद्रोही मनुष्यके अपने कुलका भी संहार एक साथ हो जाता है। यह तो इस लोककी बात रही, परन्तु परलोकमें उस पापीकी अधोगति होती है ऐसा शास्त्र सूचित करते हैं। इसलिए अविवेकी मनुष्योंके यातायातसे जो खुदा हुआ है, अपयशरूपी कीचड़के समूहसे गीला है, जो दोनों ओर फैलते हुए दुःखरूपी

१. क० ख० ग० 'पार्थिवपक्ष' पदं नास्ति ।

विहारभीषणमपर्यवसायिपरिवादपर्यायदावपावकपरीतं पार्थिवविरुद्धमध्वानं सुधियः के नाम वगाहन्ते[1]। प्रकृतिमूढमतयः प्रेक्षाविहीना हि मुञ्चन्तः सौजन्यं संचिन्वन्तः सर्वदोषानुत्सारयन्तः कीर्तिमुररीकुर्वाणा अवर्णवादं विनाशयन्तः कृतं व्याक्रोशयन्तः कृतघ्नतां परिहृत्य प्रभुतामनुप्रविश्य बालिश्यमनारोप्य गरिमाणमारोप्य लघिमानमनर्थमप्य[2]भ्युदयममङ्गलमपि कल्याणमकृत्यमपि कृत्यमाकलयन्ति। भवादृशां पुनरीदृशेषु[3] विषयेषु कः प्रसंगः' इति। पृथिवीपतिसङ्गपिशुनं धर्मदत्तवचनं काष्ठाङ्गारस्य मदपरिणतवारणस्येव निवारणार्थं निष्ठुरनिशितसृणिपतनं परवादिवर्गस्येव [4]निसर्गनिर्दोषानेकान्तसमर्थनं प्रकृष्टकुलजातस्येव प्रमादसंभवदनिवार्यात्मस्खलितमरुन्तुदमभूत्।

दुःखशूलास्तेषां कोट्या संकटं व्याप्तम्, अशेषजनानां निखिललोकानां विद्वेषा एव विषधराः सर्पास्तेषां विहारेण भीषणं भयङ्करम्, अपर्यवसायिनोऽनन्ताः परिवादा निन्दा एव पर्याया येषां तथाभूता दावपावका वनानलास्तैः परीतं व्याप्तं पार्थिवविरुद्धं नृपतिप्रतिकूलम् अध्वानं मार्गं के नाम सुधियो विद्वांसो वगाहन्ते प्रविशन्ति, अपि तु न केऽपीत्यर्थः। प्रकृतिमूढेति—प्रकृत्या निसर्गेण मूढा मतिर्येषां ते स्वभावमूर्खाः प्रेक्षाविहीना विमर्शशक्तिशून्या हि जनाः, सौजन्यं सजनतां मुञ्चन्तस्त्यजन्तः, सर्वदोषान् निखिलावगुणान् संचिन्वन्तः संगृह्णन्तः, कीर्तिं यशः उत्सारयन्तो दूरीकुर्वन्तः, अवर्णवादं निन्दाम् उररीकुर्वाणाः स्वीकुर्वाणाः, कृतं विनाशयन्तोऽमन्यमानाः कृतघ्नतामनुपकारज्ञताम् व्याक्रोशयन्त उच्चैःस्वरेण घोषयन्तः, प्रभुतां परिहृत्य परित्यज्य, बालिश्यं मौर्ख्यम् अनुप्रविश्य स्वीकृत्य, गरिमाणं गौरवम् अनारोप्याधृत्वा, लघिमानं क्षुद्रताम् आरोप्य धृत्वा, अनर्थमप्यनिष्टमपि अभ्युदयं वैभवम्, अमङ्गलमपि कल्याणं मङ्गलरूपं, अकृत्यमपि अकरणीयमपि कृत्यं करणीयं आकलयन्ति मन्यन्ते। भवादृशां लोकोत्तरवैदुष्यशालिनां पुनः ईदृशेषु मूर्खाभिमतेषु विषयेषु कः प्रसङ्गः काऽऽसक्तिः इति। पृथिवीपतीति—पृथिवीपतिः सत्यंधरमहाराजस्तस्य संगस्य संपर्कस्य पिशुनं सूचकं धर्मदत्तवचनं धर्मदत्तसचिवशासनं काष्ठाङ्गारस्य कृतघ्नस्य मदपरिणतवारणस्य मदस्राविमत्तगजस्य निवारणार्थं दूरीकरणार्थं निष्ठुरनिशितसृणिपतनं अतितीक्ष्णाङ्कुशपतनमिव, परवादिवर्गस्य परवादिसमूहस्य निसर्गेण स्वभावेन निर्दोषो योऽनेकान्तस्तस्य समर्थनमिव, प्रकृष्टकुलजातस्य श्रेष्ठवंशोत्पन्नस्य प्रमादेनानवधानतया संभवद् यद् अनिवार्यमात्मस्खलितं तदिव अरुन्तुदं मर्मव्यथकम् अभूद्।

करोड़ों कण्टकोंसे संकीर्ण है, समस्त मनुष्योंके विद्वेषरूपी साँपोंके संचारसे भयंकर है और अनन्त निन्दारूपी दावानलसे व्याप्त है, ऐसे राजविरुद्ध मार्गमें कौन बुद्धिमान् मनुष्य प्रवेश करते हैं? जो मनुष्य स्वभावसे ही मूर्ख अथवा विचारहीन हैं, वे ही सौजन्यको छोड़ते हुए, समस्त दोषोंका संग्रह करते हुए, कीर्तिको दूर हटाते हुए, अपकीर्तिको स्वीकार करते हुए, किये हुए कार्यको नष्ट करते हुए, कृतघ्नताको चिल्लाते हुए, प्रभुताको छोड़कर, मूर्खताको अपनाकर, गौरवको दूरकर, लघुताको चढ़ाकर, अनर्थको भी अभ्युदय, अमंगलको भी मंगल और अकृत्यको कृत्य—अकार्यको कार्य समझते हैं। आप जैसे लोगोंका ऐसे विषयोंमें क्या पड़ना है?' इस प्रकार राजाकी संगतिको सूचित करनेवाला धर्मदत्तका कथन काष्ठांगारको उस प्रकार पीड़ा पहुँचानेवाला हुआ जिस प्रकार कि मदोन्मत्त हाथीको रोकनेके लिए प्रवृत्त अत्यन्त तीक्ष्ण अंकुशका पतन, परवादियोंके समूहके लिए जिस प्रकार स्वभावसे ही निर्दोष अनेकान्त मतका समर्थन और उत्कृष्ट कुलमें उत्पन्न मनुष्यके लिए प्रमादसे होनेवाला अपना अनिवार्य स्खलनाचार पीड़ा पहुँचानेवाला होता है।

१. क० ख० ग० नावगाहन्ते। २. क० ख० ग० अपि पदं नास्ति। ३. क० ख० ग० पुनरीदृशविषयेषु। ४. क० ख० ग० निसर्गपदं नास्ति।

§ २७. तद्वचनमधिक्षिप्य क्षेपीयः क्षितितलादुत्तिष्ठन्काष्ठाङ्गारस्य श्यालः सालप्रांशुकायः कन्द इव हेयतायाः काष्ठेव काठिन्यस्य काङ्क्षितकाश्यपीपतिनिधनो मथनः 'कथयन्तु कामं काका इव वराकाः। न कदाचिदपि देवेन देवतादेशलङ्घिना भवितव्यम्। भवितव्यताबलं तु पश्चात्पश्येम। किं च किंकराः खलु नरा देवतानाम्। यदिह देवताः परिभूयन्ते नरापचारचाकित्येन सोऽयं पाशदर्शनभयपलायितस्य फणिनि पदन्यासः, करिकलभभीतस्य कण्ठीरवकण्ठारोहः' इति रोषपरुषमभाषिष्ट। तद्वचनं तु तस्य हृदयं तस्करस्येव कर्णीसुतमतप्रदर्शनं सौगतस्येव शून्यवादस्थापनं परिणतकरिण इवाधोरणानुगुण्यमतितरां प्रीणयामास।

§ २८. तत्र समीहितसाधनाय काष्ठाङ्गारः सचिवेषु प्रतीपगामिषु कतिचिदवधीदपधीः।

---

§ २७ तद्वचनमिति—तद्वचनं धर्मदत्तसचिववचनम् अधिक्षिप्य तिरस्कृत्य, क्षेपीयः शीघ्रं क्षितितलात्पृथिवीपृष्ठात् उत्तिष्ठन् काष्ठाङ्गारस्य श्यालः साल इव सर्जतरुरिव प्रांशुः समुन्नतः कायो यस्य तथाभूतः, हेयतायाः त्याज्यतायाः कन्द इव मूलमिव, काठिन्यस्य नैष्ठुर्यस्य काष्ठेव सीमेव, काङ्क्षितं काश्यपीपतेर्निधनं यस्य सोऽभिलषितसत्यंधरमहाराजमरणः, मथन एतन्नामा काका वायसा इव वराका दीनाः कामं यथेच्छं कथयन्तु यद्यपि तथापि देवेन भवता देवतादेशलङ्घिना देवाज्ञाव्यतिक्रमकारिणा कदाचिदपि जातुचिदपि न भवितव्यम्। भवितव्यताया बलं भाग्यप्रभावं तु पश्चात् पश्येम अवलोकेमहि। किंचान्यत् खलु निश्चयेन नरा देवतानां किङ्कराः सेवकाः सन्ति। नरापचारचाकित्येन मनुष्यापकारभीत्या इह लोके यद् देवताः परिभूयन्ते तिरस्क्रियन्ते सोऽयं पाशस्य रज्जोर्दर्शनं तस्माद् भयं तेन पलायितस्तस्य तथाभूतस्य जनस्य फणिनि सर्पे पदन्यासश्चरणनिक्षेपः, करिकलभभीतस्य सिंहशावकत्रस्तस्य जनस्य कण्ठीरवकण्ठारोहो मृगेन्द्रग्रीवारोहणम् इतीत्थं रोषपरुषं क्रोधतीक्ष्णं यथा स्यात्तथा अभाषिष्ट जगाद। तद्वचनमिति—तद्वचनं तु मथनवचस्तु तस्य काष्ठाङ्गारस्य हृदयं स्वान्तं कर्णीसुतमतप्रदर्शनमिव कर्णीसुतश्चौर्यशास्त्रप्रदर्शकस्तस्य मतस्य सिद्धान्तस्य प्रदर्शनं प्रकटीकरणं तस्करस्येव चोरस्येव, शून्यवादस्थापनं शून्यवादसमर्थनं सौगतस्येव बौद्धस्येव, आधोरणानुगुण्य हस्तिपकानुकूल्यं आधोरणा हस्तिपका 'हस्त्यारोहा निषादिनः' इत्यमरः। परिणतकरिणा इव तिर्यग्दन्तप्रहारासक्तगजस्येव अतितरां सातिशयं प्रीणयामास तर्पयामास।

§ २८. तत इति—ततस्तदनन्तरम्, अपगता धीर्यस्य सोऽपधीर्बुद्धिशून्यः काष्ठाङ्गारः समीहितसाधनाय वाञ्छितसिद्ध्यर्थं प्रतीपं प्रतिकूलं गच्छन्तीति प्रतीपगामिनस्तेषु तथाभूतेषु सचिवेषु मन्त्रिषु

---

§ २७. उसकी बात काटकर शीघ्र ही पृथिवीसे उठता हुआ काष्ठांगारका साला मथन, जो कि सागौनके वृक्षके समान ऊँचा था, हेयताका—घृणाका मानो कन्द था, कठोरताकी मानो अन्तिम सीमा था, और राजा सत्यन्धरका मारा जाना जिसे अभीष्ट था, क्रोधसे कर्कश स्वरमें बोला कि 'कौओंके समान दीन मनुष्य इच्छानुसार कुछ भी कहते रहें पर आपको देवताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला कभी नहीं होना चाहिए। भवितव्यताका बल पीछे देख सकते हैं। फिर मनुष्य तो देवताओंके किंकर हैं। मनुष्य कृत अपकारके भयसे यहाँ जो देवताओंका तिरस्कार करना है, वह पाश देखनेके भयसे भागते हुए मनुष्यका साँपके ऊपर पैर रखना है, अथवा हाथीके बच्चेसे भयभीत मनुष्यका सिंहकी ग्रीवापर आरूढ़ होना है।' जिस प्रकार कर्णीसुतके मनका प्रदर्शन चोरके हृदयको, शून्यवादका स्थापन बौद्धके हृदयको और महावतका अनुकूलाचरण मदोन्मत्त हाथीके हृदयको अत्यन्त सन्तुष्ट करता है, उसी प्रकार मथनके उक्त कथनने काष्ठांगारके हृदयको अत्यन्त सन्तुष्ट किया।

§ २८. तदनन्तर दुर्बुद्धि काष्ठांगारने अपना मनोरथ सिद्ध करनेके लिए, विरुद्ध जाने-

कतिचन कालायसनिगलचुम्बितचरणांश्चकार चोरवत्कारागृहे। जगृहे च राजगृहमपि तत्क्षण एव क्षोणीं क्षोभयता बलेन प्रबलेन।

§ २९. अनन्तरमष्टापदनिर्मिते महति पर्यङ्के पाकशासनमिव सुमेरुशिरसि निषण्णम्, अपरवियदाशङ्काकृतावताराभिस्तारकापङ्क्तिभिरिव व्याकोशकुसुमनिचयविरचिताभिः प्रालम्बमालिकाभिः सुरभितवक्षःस्थलम्, अधरितशारदपयोधरकुलेन दुकूलेन मन्दरमिव मथनसमयमिलितेन फेनपटलेन पाण्डुरितनितम्बम्, परिचुम्बितदशदिशावकाशेन पद्मिनीसहचरमरीचिवीचिपरिभावुकेन सहजेन तेज प्रसरेण प्रतप्तचामीकरपरिकल्पितेन प्राकारेणेव परिवृतम्, शेखरकुसुमपरिमलतरलमधुकरकलापपुनरुदीरितकुन्तलकालिमकवचितमूर्धानम्, उभयसविधगत[1]वारयुवतिकरतल-

कतिचिद् कांश्चित् अवधीत् जघान। कतिचन कांश्चित् कारागृहे वन्दीनिकेतने चोरवत् कालायसनिगलेन कृष्णलोहनिगडेन चुम्बिता युक्ताश्चरणाः पादा येषां तान् चकार। तत्क्षण एव तत्कालमेव क्षोणीं भूमिं क्षोभयता चलयता, प्रबलेन प्रकृष्टबलशालिना बलेन सैन्येन राजगृहं नरेन्द्रमन्दिरं च जगृहे परिरुरोध।

§ २९. अनन्तरमिति—अनन्तरं पश्चात्, प्रतीहारो द्वारपालो मानवेश्वरमभिप्रणम्य, सप्रश्रयं सविनयम् अब्रवीदिति संबन्धः। मानवेश्वरं वर्णयितुमाह—अष्टापदेति—अष्टापदेन स्वर्णेन निर्मिते रचिते महति विशाले पर्यङ्के मञ्चे 'शयनं मञ्चपर्यङ्कपल्यङ्काः खट्वया समम्' इत्यमरः, सुमेरुशिरसि मेरुशिखरे पाकशासनमिव पुरन्दरमिव निषण्णं समासीनम्, अपरवियत इतरगगनस्याशङ्कया सन्देहेन कृतोऽवतारो याभिस्ताभिः तारकापङ्क्तिभिरिव नक्षत्रमालिकाभिरिव व्याकोशकुसुमानां प्रफुल्लपुष्पाणां निचयेन समूहेन विरचिता निर्मितास्ताभिः प्रालम्बमालिकाभिः ऋजुलम्बिस्रग्भिः 'प्रालम्बमृजुलम्बि स्यात्' इत्यमरः, सुरभितं सुगन्धितं वक्षःस्थलं यस्य तम्। अधरितं तिरस्कृतं शारदपयोधरकुलं शरदृतुमेघसमूहो येन तेन दुकूलेन क्षौमेण मथनसमये मथनवेलायां मिलितं तेन फेनपटलेन डिण्डीरपिण्डेन मन्दरमिव मन्दराचलमिव पाण्डुरितं नितम्बं यस्य तं शुक्लीकृतकटिपश्चाद्भागम्। परिचुम्बिता व्याप्ता दशदिशानामवकाशोऽन्तरालं येन तेन, पद्मिनीसहचरस्य सूर्यस्य मरीचिवीचीनां किरणसन्ततीनां परिभावुकस्तिरस्कारकस्तेन, सहजेन नैसर्गिकेण तेजःप्रसरेण तेजःपुञ्जेन प्रतप्तचामीकरेण निष्टप्तकनकेन परिकल्पितो रचितस्तेन प्राकारेण सालेन परिवृतमिव परिवेष्टितमिव। शेखरकुसुमानाम् आपीडपुष्पाणां परिमलेन सौगन्ध्येन तरलाश्चपला ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां कलापेन समूहेन पुनरुदीरितः पुनरुक्तो यः कुन्तलकालिमा केशकार्ष्ण्यं तेन कवचितो

वाले मन्त्रियोंमें-से कितने ही मन्त्रियोंको तो मार डाला और कितने ही को काले लोहेकी बेड़ियोंसे बद्धचरण कर चोरकी तरह कारागृहमें डाल दिया तथा उसी क्षण पृथिवीको कम्पित करनेवाली प्रबल सेनासे राजमहलको घेर लिया।

§ २९. तदनन्तर जो सुवर्ण निर्मित बड़े भारी पलंगपर स्थित होनेसे सुमेरुके शिखरपर स्थित इन्द्रके समान जान पड़ता था। पश्चिम आकाशकी आशंकासे अवतीर्ण ताराओंकी पंक्तियोंके समान सुन्दर खिले हुए फूलोंके समूहसे निर्मित लम्बी-लम्बी मालाओंसे जिसका वक्षःस्थल सुगन्धित हो रहा था। शरद् ऋतुके मेघ-समूहका तिरस्कार करनेवाले दुकूल वस्त्रसे जिसका नितम्ब शुक्लवर्ण दिख रहा था और उससे जो मथनके समय लगे हुए फेनके समूहसे मन्दर गिरिके समान जान पड़ता था। दशों दिशाओंके अवकाशको व्याप्त करनेवाले एवं सूर्यकी किरणावलीको तिरस्कृत करनेवाले स्वाभाविक तेजके प्रसारसे जो सन्तप्त-स्वर्ण निर्मित कोटसे घिरा हुआ-सा जान पड़ता था। सेहरेके फूलोंकी सुगन्धिसे चंचल भ्रमर-समूहसे पुनरुक्त अभिम बालोंकी कालिमासे जिसका शिर व्याप्त हो रहा था। दोनों

१. क० ख० ग०—उभयसाविधगत'''।

विधुतधवलचमरबालपवननर्तितचेलाञ्चलम्, अन्तिकमणिदर्पणप्रतिबिम्बनिभेनानङ्गसुखानुभवाय[1] नालमेकेनेति देहान्तरमिव धारयन्तम्, अनवरतताम्बूलसेवाद्विगुणितेन स्फुटितबन्धुजीवलोहितिमसुच्छायेन दशनच्छदालोकेन प्रभूततया मनस्यमान्तं रागसंभारमिव बहिरुद्वमन्तम्, निजमुखलक्ष्मीदिदृक्षोपनतेन क्षीरजलराशिनेव स्निग्धधवलगम्भीरेण कटाक्षेण विकसितपुण्डरीकदलनिवहधवलितमिव तं प्रदेशं दर्शयन्तम्, नृत्तरङ्गमिव शृङ्गारनटस्य निवासप्रासादमिव विलासस्य साम्राज्यमिव सौभाग्यस्य संकल्पसिद्धिक्षेत्रमिव कंदर्पस्य सारमिव संसारस्य दृश्यमानं मानवेश्वरं विश्वंभरातलविनमितमौलिरभिप्रणम्य प्रतीहारः सप्रश्रयमब्रवीत्—

व्याप्तो मूर्धा यस्य तम्। उभयसविधगतयोस्तटद्वयस्थितयोर्वारयुवत्योर्विलासिन्योः करतलाभ्यां विधुताः कम्पिता ये धवलचमरवालाः शुक्लचमरकेशास्तेषां पवनेन वायुना नर्तितानि चेलाञ्चलानि वस्त्राञ्चलानि यस्य तम्। अन्तिके समीपे विद्यमानो यो मणिदर्पणस्तस्मिन् प्रतिबिम्बं प्रतिफलनं तस्य निभेन व्याजेन अनङ्गसुखानुभवाय कामसुखोपभोगाय एकेन देहेन अलं समर्थो न इति हेतोः देहान्तरं शरीरान्तरं धारयन्तमिव। अनवरतं निरन्तरं ताम्बूलसेवया नागवल्लीदलभक्षणेन द्विगुणितस्तेन, स्फुटितानां विकसितानां बन्धुजीवानां रक्तवर्णपुष्पविशेषाणां यो लोहितिमा रक्तिमा तस्य सुच्छायेन सुन्दरेण, दशनच्छदालोकेन ओष्ठारुणप्रकाशेन प्रभूततया प्रचुरतया मनसि चेतसि अमान्तं रागसंभारं बहिरुद्वमन्तमिव प्रकटयन्तमिव। निजमुखस्य स्वकीयवदनस्य या लक्ष्मीः क्षीरोदजा तस्या दिदृक्षया अवलोकनेच्छयोपनतः समुपस्थितस्तेन क्षीरजलराशिनेव क्षीरसागरेणेव स्निग्धधवलगम्भीरेण मसृणशुक्लगभीरेण कटाक्षेण अपाङ्गेन तं प्रदेशं तत्स्थानं विकसितानां पुण्डरीकदलानां श्वेतपयोजपत्राणां निवहेन समूहेन धवलितं शुक्लीकृतमिव दर्शयन्तम्। शृङ्गार एव नटस्तस्य शृङ्गाररसशैलूषस्य नृत्तरङ्गमिव लास्यस्थानमिव, विलासस्य चेष्टाविशेषस्य निवासप्रासादमिव निवासमन्दिरमिव। 'यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्। विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना'। इति साहित्यदर्पणे विलासलक्षणम्। सौभाग्यस्य वनिताजनप्रेम्णः साम्राज्यमिव, कन्दर्पस्य कामस्य संकल्पानां सिद्धिक्षेत्रमिव साफल्यस्थानमिव, संसारस्य सारमिव दृश्यमानमवलोक्यमानम् मानवेश्वरं नरेन्द्रं सत्यंधरमहाराजम्, विश्वम्भरातले महीपृष्ठे विनमितो मौलिर्मूर्धा यस्य तथाभूतः सन् अभिप्रणम्य नमस्कृत्य प्रतीहारो द्वाःस्थः सप्रश्रयं सविनयम् अब्रवीत्।

ओर स्थित वेश्याओंके करतलसे कम्पित चमरोंकी मन्द-मन्द पवनसे जिसके वस्त्रके छोर हिल रहे थे। समीपमें स्थित मणिमय दर्पणमें पड़ते हुए प्रतिबिम्बके बहाने जो 'काम सुखके उपभोगके लिए एक शरीर पर्याप्त नहीं है,' इसलिए मानो दूसरा ही शरीर धारण कर रहा था। निरन्तर पान खानेसे द्विगुणित खिले हुए दुपहरियाके फूलकी लालिमासे सुन्दर ओठके प्रकाशसे जो प्रचुरताके कारण हृदयमें नहीं समाते हुए रागके समूहको मानो बाहर ही उगल रहा था। अपने मुखकी लक्ष्मीको देखनेकी इच्छासे उपस्थित क्षीरसागरके समान स्निग्ध, सफ़ेद एवं गम्भीर कटाक्षोंसे जो उस प्रदेशको खिले हुए सफ़ेद कमलकी कलिकाओंके समूहसे सफ़ेद जैसा दिखला रहा था। जो शृंगाररूपी नटके नृत्यकी रंगभूमिके समान, विलासके निवासभवनके समान, सौभाग्यके साम्राज्यके समान, कामदेवके संकल्पसम्बन्धी सिद्धिके क्षेत्रके समान, और संसारके सारके समान दिखाई देता था, ऐसे राजा सत्यन्धरको पृथ्वीतलमें मस्तक झुकानेवाले द्वारपालने प्रणाम कर विनय-पूर्वक कहा—

---

१. क० ख० ग०—अनुभवनाय।

§ ३०. देव कुरुकुलकमलमार्तण्ड रिपु[1] महीपालबलपयोधिमथनमन्दरायमाणदोर्दण्डदुःसहशौर्यबाधितपरचक्र[2] विक्रमाक्रान्तसकलदिगन्त, समन्तादागतेन सरभसचलिततुरगखरखुरशिखरदारितधरापरागपांसुलनभोमण्डलेन मण्डलाग्रमरीचितिमिरितहरिदन्तरालेन सिन्धुरवरकरटवहदविरलमदजलजम्बालितजगतीतलेन गगननीलोत्पलविपिनविडम्बिकुन्तदन्तुरेण वीरलक्ष्मीविर[3]चितभ्रुकुटिकुटिलकार्मुकतरङ्गितेन प्रलयवेलाविशृङ्खलजलधिजलपूरभयंकरेण निखिलजगदाक्रमणचतुरेण[4] 'चतुरङ्गबलेन प्रत्यवतिष्ठते काष्ठाङ्गारः' इति ।

---

§ ३०. देवेति—हे देव, हे राजन्, कुरुकुलमेव कमलं तस्य मार्तण्डस्तत्संबुद्धौ हे कुरुकुलकमलमार्तण्ड ! हे कुरुवंशसरोजसूर्य ! रिपुमहीपालानां शत्रुसैन्यानां बलमेव सैन्यमेव पयोधिः सागरस्तस्य मथने विलोडने मन्दरायमाणौ मन्दराचलायमानौ यौ दोर्दण्डौ भुजदण्डौ तयोर्दुःसहेन शौर्येण बाधितं पीडितं परचक्रं परसैन्यं येन तत्संबुद्धौ, विक्रमेण पराक्रमेणाक्रान्ताः सकलदिगन्ता येन तत्संबुद्धौ एवम्भूत हे देव, समन्तात्परितः आगमेन, सरभसं सवेगं यथा स्यात्तथा चलिता ये तुरगास्तेषां खरखुराणां तीक्ष्णशफानां शिखरेण दारिता खण्डिता या धरा भूमिस्तस्याः परागेण पांसुलं नभोमण्डलं येन तेन, मण्डलाग्राणां कृपाणानां मरीचिभिस्तिमिरितं मलिनीकृतं हरिदन्तरालं काष्ठान्तरालं येन तेन, सिन्धुवराणां श्रेष्ठगजानां करटेभ्यो गण्डस्थलेभ्यो वहद् यद् अविरलं धारावद्धं मदजलं तेन जम्बालितं जगतीतलं येन तेन, गगने वियति विद्यमानं यद् नीलोत्पलविपिनं कुवलयकाननं तस्य विडम्बिभिः कुन्तैः प्रासैर्दन्तुरं व्याप्तं तेन, वीरलक्ष्म्या वीरश्रिया विरचिता या भ्रुकुटिस्तद्वत् कुटिलानि वक्राणि यानि कार्मुकाणि धनूंषि तैस्तरङ्गितं व्याप्तं तेन, प्रलयवेलायां कल्पान्तकाले विशृङ्खलो निर्मर्यादो यो जलधिस्तस्य जलस्य पूरमिव भयंकरं तेन, निखिलजगतः सकलसंसारस्याक्रमणे चतुरं तेन, एवम्भूतेन चतुरङ्गबलेन चत्वारि हस्त्यश्वरथपदातिरूपाणि अङ्गानि यस्य तत् चतुरङ्गं तच्च यद् बलं चेति चतुरङ्गबलं तेन, काष्ठाङ्गारः प्रत्यवतिष्ठते प्रतिकूलो भूत्वा तिष्ठति विरुणद्धीति भावः ।

---

§ ३०. हे देव ! आप सूर्यवंशरूपी कमलको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान हैं, राजाओंकी सेना रूपी सागरको मथन करनेके लिए आपके भुजदण्ड मन्दर गिरिके समान हैं, दुःसह पराक्रमसे आपने शत्रुओंके सैन्यदलको नष्ट कर दिया है और पराक्रमसे आपने समस्त दिशाओंके अन्तको व्याप्त कर रखा है। फिर भी हे महाराज ! जो सब ओरसे आयी हुई है, वेगसे चलते हुए घोड़ोंके तीक्ष्ण खुरोंके शिखरसे खुदी पृथिवीकी परागसे जिसने आकाश-मण्डलको धूलि धूसरित कर दिया है, तलवारोंकी किरणोंसे जिसने दिशाओंके अन्तरालको अन्धकारसे आच्छादित कर रखा है, बड़े-बड़े हाथियोंके गण्डस्थलसे लगातार बहते हुए मदरूपी जलसे जिसने पृथिवीतलको सेवालसे युक्त-जैसा बना रखा है, जो आकाशरूपी नीलकमलोंके वनको विडम्बित करनेवाले भालोंसे व्याप्त है, जो वीरलक्ष्मीके द्वारा विरचित भ्रकुटियोंके समान कुटिल धनुषोंसे व्याप्त है, जो प्रलयके समय तटको लाँघकर बहनेवाले समुद्रके जलप्रवाहके समान भयंकर है एवं जो समस्त जगत्पर आक्रमण करनेमें चतुर है, ऐसी चतुरंगसेनासे काष्ठांगार आपके प्रतिपक्षमें खड़ा है।

---

१. म० रिपुपदं नास्ति । २. क० ख० ग० साधितपरचक्र । ३. म० लक्ष्मीभ्रूविरचित । ४. क० ख० ग० आक्रमचतुरेण ।

§ ३१. अथ तेनाश्रुतपूर्वेण वचनेन 'कथं कथं कथय कथय' इति पृच्छन्प्रतीहारं झटिति घटितकोपग्रन्थिरन्धीभवन्, पर्यङ्कपरिसरनिहितमहितकुलप्रलयधूमकेतुकरालं करवालं करे कुर्वन्, अखर्वगर्वसमुत्क्षिप्तदक्षिणचरणाधिष्ठितवामोरुकाण्डः, चण्डरोषाट्टहासविसरदमलदशनकिरणधवलितवदनशशिमण्डलः, स्फुटितगुञ्जाफलपुञ्जपिञ्जरेण क्रोधरागरूषितेन चक्षुषः, प्रभापटलेन परितः प्रसर्पता[1] प्रसर्पत्प्रतिभटमनोरथरोधिनमनलप्राकारमिव प्रवर्तयन्, प्रस्विन्नदेहप्रतिबिम्बिताभिर्भवनभित्तिचित्रयुवतिभिः 'अतिसाहसं मा कृथाः' इति गृहदेवताभिरिव प्रणयपर्याकुलाभिः परिरभ्यमाणः, क्षुद्रनरेन्द्राक्रमणकोपवमितविष इव विषधरस्तत्क्षणमन्यादृश इवादृश्यत काश्यपीपतिः। आदिशच्च प्रतीहारम् 'आनय त्वरितमहितचमूसमूहनिवारणान्वारणानप्रतिहतजवविरा-

§ ३१. अथेति—अथ प्रतीहारवचनश्रवणानन्तरम् पूर्वं न श्रुतमित्यश्रुतपूर्वं तेन वचनेन 'कथं-कथं कथय-कथय' इति, संभ्रमे द्वित्वं प्रतिहारं द्वारपालं पृच्छन् काश्यपीपतिर्नृपः झटिति शीघ्रं घटिता कोपग्रन्थिर्यस्य तथाभूतः अन्धीभवन् रोषान्धः सन्, परिसरे निकटे निहितमिति परिसरनिहितम्, अहितकुलस्य शत्रुवंशस्य प्रलयो विनाशस्तस्मै धूमकेतुरिवाग्निरिव करालो भयंकरस्तम् करवालं कृपाणं करे कुर्वन् हस्ते निदधत्, अखर्वगर्वेण महाभिमानेन समुत्क्षिप्तः समुत्थापितो यो दक्षिणचरणस्तेनाधिष्ठितः सहितो वामोरुकाण्डो सव्यसक्थिकाण्डो यस्य तथाभूतः, चण्डरोषेण तीव्रकोपेन योऽट्टहासस्तेन विसरद्भिरमलदशनकिरणैर्निर्मलदन्तदीधितिभिर्धवलितं शुक्लीकृतं वदनशशिमण्डलं मुखचन्द्रबिम्बं यस्य सः, स्फुटितानां विकसितानां गुञ्जाफलानां काकचिञ्चीफलानां यः पुञ्जस्तद्वत् पिञ्जरं रक्तपीतवर्णं तेन, क्रोधेन रागस्तेन रूषितं तेन, परितः समन्तात् प्रसरता प्रसरणशीलेन चक्षुषो नयनस्य जातावेकवचनम् प्रभापटलेन कान्तिकलापेन प्रसर्पतां पलायमानानां प्रतिभटानां शत्रुयोद्धृणां मनोरथं रुणद्धीत्येवं शीलं तम्, अनलप्राकारमग्निपरिधिं प्रवर्तयन्निव रचयन्निव, प्रस्विन्ने स्वेदयुक्ते देहे प्रतिबिम्बिताः प्रतिफलितास्ताभिः भवनभित्तिषु निकेतनकुड्येषु विद्यमाना याश्चित्रयुवतय आलेख्याङ्गनास्ताभिः 'अतिसाहसं मा कृथाः' 'युक्तरूपं साहसं मा कृथाः' इति प्रणयपर्याकुलाभिः स्नेहव्यग्राभिः गृहदेवताभिः परिरभ्यमाण इवालिङ्ग्यमान इव, क्षुद्रनरेन्द्रेण क्षुद्रविषवैद्येन यदाक्रमणं तेन यः कोपस्तेन वमितः प्रकटितो विषो येन तथाभूतो विषधर इव तत्क्षणं तत्कालम् अन्यादृश इव विभिन्न इव अदृश्यत। 'नरेन्द्रो वार्तिके राज्ञि विषवैद्ये च कथ्यते' इति विश्वः। आदिशच्चेति—प्रतीहारम् आदिशच्च

§ ३१. तदनन्तर पहले कभी सुननेमें नहीं आये हुए द्वारपालके उस कथनसे राजाके हृदयमें शीघ्र ही क्रोधकी गाँठ लग गयी। वह 'क्या क्या, कहो कहो' इस प्रकार द्वारपालसे पूछता हुआ क्रोधसे अन्धा हो गया। उसने शत्रुओंके कुलको नष्ट करनेके लिए प्रलयाग्निके समान, पलँगके पास रखी तलवार उठाकर हाथमें ले ली। अत्यधिक अभिमानसे दाहिना पैर उठाकर बाँयी जाँघपर रख लिया। तीव्र क्रोध और अट्टहाससे फैलती हुई दाँतोंकी किरणोंसे उसका मुखरूपी चन्द्रमण्डल सफेद हो गया। चटकी हुई गुमचियोंके समूहके समान लाल-पीले क्रोधके रागसे दूषित एवं सब ओर फैलनेवाले नेत्रोंकी लाल-लाल प्रभाके समूहसे वह प्रतियोद्धाओंके भागनेके मनोरथको रोकनेवाले अग्निमय कोटको ही मानो प्रवृत्त कर रहा था। उसके पसीनासे तर शरीरमें भवनकी दीवालोंपर बनी चित्रमय तरुण स्त्रियोंका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो 'अधिक साहस मत करो' यह कहनेके लिए प्रेमसे व्याकुल गृहदेवियाँ उसका आलिंगन कर रही थीं। और क्षुद्र विषवैद्यके आक्रमणजनित क्रोधसे विषको उगलनेवाले साँपके समान वह ऐसा

१. म० प्रतिभटपलायन—।

जिनो वाजिनोऽसमसमरसाहसलम्पटान्भटान्भग्नरिपु[1]नृपतिमनोरथान् रथानपि' इति । अथ निजभुजदम्भोलिविस्रम्भादनपेक्षितसहायः सरभसमुत्तिष्ठन्नर्धासनभ्रष्टामुत्कम्पमानकायां समुच्छिन्नमूलामुर्वीतलपतितामिव लतामुत्क्रान्तजीवितामिव निःस्पन्दकरणग्रामां धरणीतलशायिनीं शातोदरीमालोक्य बहुविधनिदर्शनसहितवस्तुस्वभावोपन्यासप्रयासैरप्यनासादितस्वास्थ्याम् 'अस्थाने केयं कातरता । क्षत्रिये, मद्विरहकातरापि कुरुकुलमूलकन्दगर्भरक्षणाय क्षणादितो गन्तुमर्हसि । शपामि जिनपादपङ्केरुहस्पर्शेन' इत्यभिदधान एव[2] निधाय तां मयूरयन्त्रे नरेन्द्रः स्वयमेव तद्भ्रमयांचकार[3] । चकोरेक्षणामादाय क्षणेन गगनमुड्डीने यन्त्रशिखण्डिनि खण्डयितुं प्रतिभटान्कर-

निर्दिदेश च त्वरितं शीघ्रम् अहितस्य शत्रोश्चमूसमूहस्य निवारणं यैस्तान् तथाभूतान् वारणान् गजान्, अप्रतिहतेन अखण्डितेन जवेन वेगेन विराजन्त इत्येवं शीलास्तान् वाजिनोऽश्वान्, असमश्चासौ समरसाहसश्चेत्यसमसमरसाहसस्तस्मिन् लम्पटास्तान् भटान् योद्धॄन्, भग्नः खण्डितो रिपुनृपतीनां मनोरथो यैस्तान् एवंभूतान् रथान् आनय, इति । अथ निजेति—अथानन्तरं निजभुज एव स्वबाहुरेव दम्भोलिर्वज्रं तस्य विस्रम्भाद् विश्वासाद् अनपेक्षितः सहायो येन तथाभूतो नरेन्द्रः सरभसं सवेगम् उत्तिष्ठन् अर्धासनाद् भ्रष्टा ताम्, उत्कम्पमानः कायो यस्यास्तां समुच्छिन्नमूलां समुत्खातमूलाम् उर्वीतलपतितां पृथिवीपृष्ठपतितां लतामिव, उत्क्रान्तं निःसृतं जीवितं यस्यास्तामिव निःस्पन्दकरणग्रामां निश्चेष्टेन्द्रियसमूहां धरणीतलशायिनीं पृथिवीतलशायिनीं शातोदरीं कृशोदरीं विजयामिति यावत् आलोक्य बहुविधनिदर्शनैर्नानोदाहरणैः सहितो यो वस्तुस्वभावस्तस्योपन्यासस्य प्रस्तुतीकरणस्य प्रयासा उपायास्तैरपि, अनासादितमप्राप्तं स्वास्थ्यं यस्यास्ताम्, 'अस्थाने अनवसरे इयं का कातरता भीरुता । हे क्षत्रिये, हे क्षत्रियकुलाङ्गने, मद्विरहकातरापि मद्वियोगभीरुरपि कुरुकुलस्य कुरुवंशस्य मूलकन्दो यो गर्भस्तस्य रक्षणाय त्राणाय, क्षणात् अल्पेनैव कालेन इतः स्थानात् गन्तुमर्हसि । जिनपादपङ्केरुहस्पर्शेन जिनचरणारविन्दस्पर्शेन शपामि' इत्यभिदधान इव कथयन्नेव तां विजयां मयूरयन्त्रे पूर्वनिर्मापितशिखण्डियन्त्रे निधाय स्थापयित्वा स्वयमेव तद् यन्त्रं भ्रमयाञ्चकार भ्रमयामास । चकोरेक्षणामिति—यन्त्रशिखण्डिनि यन्त्रमयूरे चकोरेक्षणां विजयाम् आदाय गृहीत्वा क्षणेन गगनं नभ उड्डीने समुत्पतिते सति,

दिखाई देने लगा जैसा अन्य ही हो। उसने तत्काल द्वारपालको आज्ञा दी कि शीघ्र ही शत्रुओंकी सेनाके समूहको रोकनेवाले हाथी, अखण्डित वेगसे सुशोभित घोड़े, अनुपम युद्धके साहससे लम्पट सुभट और शत्रुके मनोरथोंको नष्ट करनेवाले रथ लाओ। तत्पश्चात् अपने भुजदण्डरूपी वज्रके विश्वाससे वह सहायकोंकी अपेक्षा न कर वेगसे ज्योंही उठा त्योंही उसकी दृष्टि उस विजया रानीपर पड़ी जो अर्धासनसे नीचे गिर पड़ी थी, जिसका शरीर काँप रहा था, जड़ उखड़ जानेसे जो पृथिवीपर पड़ी लताके समान जान पड़ती थी, निर्जीवकी तरह जिसकी इन्द्रियोंका समूह निश्चेष्ट था, जो पृथिवीतलपर पड़ी थी, एवं जिसका उदर अत्यन्त क्षीण था। उसने नाना प्रकारके उदाहरणोंसे सहित वस्तु स्वभावको रखनेवाले उपायोंसे उसे स्वस्थ करना चाहा पर वह स्वस्थ नहीं हुई। अन्तमें 'तेरी यह अनुचित स्थानमें कौन-सी कातरता है? हे क्षत्रिये! मेरे विरहसे कातर होनेपर भी तू कुरुवंशके मूलभूत गर्भकी रक्षाके लिए इसी क्षण यहाँसे जानेके योग्य है। मैं तुझे जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणकमलोंके स्पर्शकी शपथ देता हूँ।' यह कहते हुए राजाने उसे मयूर यन्त्रमें बैठाकर स्वयं ही यन्त्रको घुमा दिया। अथानन्तर चकोरलोचना विजयारानीको लेकर जब मयूर

१. क० भग्नारिनृपति । २. क० ख० ग० एवम् । ३. तं भ्रमयाचकार ।

कलितकरवालः काश्यपीपतिः कण्ठीरव इव गिरिकन्दरान्मन्दिरान्निरगात् । निर्गते च तस्मिन्विस्मयनीयविक्रमे विघूर्णितकृपाणविराजिनि राजनि, मृगराजदर्शन इव करिकलभयूथमन्धकारमिव च दिनकृदुदये तदनीकमनेकसंख्यमतिदूरं पलायत[1] । पलायमानं बलं बलात्प्रतिनिवर्त्य स्वयमेव प्रार्थयमाने पार्थिवं कार्तघ्न्यकाष्ठां गते काष्ठाङ्गारे राजा तु दारितमत्त[2]करिकुम्भकूटः, पाटितरथकड्यः, खण्डितसुभटभुजदण्डसंहतिः, संहृततुरगचमूसमूहः, ससंभ्रमं समरशिरसि विहरन्, विविधकरिरथतुरगखण्डनरभसकुण्ठितमण्डलाग्रः, किमनेन कृपाविकलजनसमुचितेन सकलप्राणिमारणविहरणरसेनेति जनितवैराग्यभरः,

प्रतिभटान् रिपून् खण्डयितुं शकलयितुं करे कलितो धृतः करवालः कृपाणो येन तथाभूतः सन् काश्यपीपतिः सत्यन्धरमहीपालो गिरिकन्दरात्पर्वतगुहायाः कण्ठीरव इव सिंह इव मन्दिराद् निरगात् निरियाय । निर्गते चेति—विस्मयनीय आश्चर्यकरो विक्रमो यस्य तस्मिन्, विघूर्णितेन भ्रमितेन कृपाणेन विराजत इत्येवं शीलस्तस्मिन्, तथाभूते राजनि निर्गते च मृगराजस्य दर्शनं तस्मिन् सिंहावलोकने करिकलभयूथमिव हस्तिशावकसमूह इव, दिनकृदुदये च सूर्योदये च अन्धकारमिव तिमिरमिव, अनेकसंख्यं तदनीकं काष्ठाङ्गारसैन्यं दूरं पलायत पलायांचक्रे 'परा पूर्वस्य अयधातोर्लङि रूपं 'उपसर्गस्यायतौ' इति लत्वम् । पलायमानमिति—कृतघ्नस्य भावः कार्तघ्न्यं तस्य काष्ठान्तिमावधिस्तां गते काष्ठाङ्गारे पलायमानं धावमानं बलं सैन्यं बलाद् हठात् प्रतिनिवर्त्य प्रतिनिवृत्तं कृत्वा स्वयमेव पार्थिवं सत्यंधरनृपं प्रार्थयमाने अभियाति सति 'याञ्चायामभियाने च प्रार्थना कथ्यते बुधैः' इति केशवः । राजा तु सत्यन्धरनृपस्तु दारिताः खण्डिता मत्तकरिणां मत्तगजानां कुम्भकूटा गण्डाग्रभागा येन सः, रथानां समूहो रथकड्या पाटिता रथकड्या येन स तथाभूतः, खण्डिता शकलीकृता सुभटानां योद्धॄणां भुजदण्डसंहतिर्बाहुदण्डसमूहो येन सः, तथाभूतः, संहृतः संहारं प्रापितस्तुरगचमूनां हयसेनानां समूहो येन सः, ससंभ्रमं सक्षोभं यथा स्यात्तथा समरशिरसि रणाग्रे विहरन्, करिणश्च रथाश्च तुरगाश्चेति करिरथतुरगं विविधं नैकविधं यत्करिरथतुरगं तस्य खण्डनस्य विदारणस्य रभसेन वेगेन कुण्ठितो मण्डलाग्रः कृपाणो यस्य तथाभूतः कृपाविकला निर्दया ये जनास्तेषां समुचितस्तेन, अनेन सकलप्राणिमारणविहरणरसेन निखिलजन्तुमारणविहारानुरागेण किं प्रयोजनम्, इति जनितः समुत्पन्नो वैराग्यभरो यस्य तथाभूतः सन्

यन्त्र क्षण-भरमें उड़ गया तब शत्रुओंके खण्ड-खण्ड करनेके लिए तलवार लेकर राजा राजभवनसे उस तरह निकल पड़ा जिस तरह कि पर्वतकी गुहासे सिंह निकलता है। आश्चर्यजनक पराक्रमके धारक एवं घूमती हुई तलवारसे सुशोभित राजा ज्योंही बाहर निकला त्योंही सिंहके दिखते ही हाथियोंके बच्चोंके समूहके समान अथवा सूर्यका उदय होनेपर अन्धकारके समान वह बहुत भारी सेना बहुत दूर भाग गयी। उधर कृतघ्नताकी चरम सीमाको प्राप्त हुआ काष्ठांगार भागती सेनाको जबर्दस्ती लौटाकर स्वयं ही राजाके सम्मुख आया और इधर जिसके मदोन्मत्त हाथियोंके गण्डस्थल रूपी शिखरोंको विदीर्ण कर दिया था जिसने, रथोंके समूह चीर डाले थे, योद्धाओंके भुजदण्डोंका समूह खण्डित कर दिया था, घोड़ोंकी सेनाओंके समूहका संहार कर दिया था, जो संभ्रमके साथ रणके अग्रभागमें घूम रहा था, और नाना हाथी, रथ तथा घोड़ोंको खण्ड-खण्ड करनेके वेगसे जिसकी तलवार भोथली हो गयी थी ऐसा राजा सत्यन्धर यह विचार कर विरक्त हो गया कि निर्दय मनुष्योंके योग्य इस समस्त प्राणियोंको मारनेवाली क्रीड़ामें रस लेनेसे क्या प्रयोजन है? 'हे आत्मन्! यह

१. क० ख० दूरमपलायत । २. क० ख० ग० दारितमदकरिकुम्भकूटः ।

'विषयासङ्गदोषोऽयं त्वयैव विषयीकृतः। साम्प्रतं वा विषप्रख्ये मुञ्चात्मन्विषये स्पृहाम् ॥'

इति भावयन्, परित्यक्तसकलपरिग्रहः, स्वहृदयमणिपीठप्रतिष्ठापितजिनचरणसरोजः, काष्ठाङ्गाराय काश्यपीमतिसृज्य त्रिदशसौख्यमनुभवितुममरलोकमारुरोह।

§ ३२ आरूढवति भूभृति[1] भुवनमनिमिषाणामुन्मिषद्विषादविषविधुराणां पौराणां पङ्किलयति बाष्पजलप्रवाहे महीम्, मुखरयति मुखानि दशदिशां[2] निर्दयोरःस्थलताडनजन्मनि रवे निरवधिकवेपथूनां पुरवधूनाम्, अवधूतकलत्रपुत्राद्यनुवर्तनेषु निवृत्तिसुखरसाविष्टेषु विशिष्टेषु, काष्ठाङ्गारस्य काठिन्यं कथयति मिथः सुजने जने, निरूपयति दुरन्ततां कन्दर्पपारतन्त्र्यस्य पदार्थपारमार्थ्यपरिज्ञानशालिनि विवेकिवर्गे, व्यग्रगतिर्गगनपथेन गतः स कृत्रिमशिखण्डी निजनगरोप-

विषयेति—हे आत्मन्, अयम् विषयेषु आसङ्गो विषयासङ्गस्तस्य दोषः त्वयैव विषयीकृतः साक्षात्कृतः। साम्प्रतं वा इदानीं वा विषप्रख्ये गरलतुल्ये विषये स्पृहामभिलाषं मुञ्च त्यज। दुष्फलानुभूतौ सत्यां परित्यागे को विलम्ब इति भावः। इतीति—इतीत्थं भावयन् चिन्तयन् परित्यक्तः सकलपरिग्रहो येन सः, *स्वहृदयमेव मणिपीठस्तस्मिन् प्रतिष्ठापिते समारोपिते जिनचरणसरोजे जिनेन्द्रपादारविन्दे येन* तथाभूतः सन्, काष्ठाङ्गाराय कृतघ्नशिरोमणये काश्यपीं क्षोणीम् अतिसृज्य त्यक्त्वा त्रिदशसौख्यं स्वर्गसुखम् अनुभवितुम् अमरलोकं स्वर्गम् आरुरोह।

§ ३२. आरूढवतीति—भूभृति सत्यन्धरमहाराजे अनिमिषाणां देवानां भुवनं लोकं स्वर्गमिति यावत् आरूढवति सति उन्मिषता प्रकटीभवता विषादविषेण खेदगरलेन विधुरा दुःखितास्तेषां पौराणां नागरिकाणां बाष्पजलप्रवाहेऽश्रुसलिलपूरे महीं पङ्किलयति कर्दमयुक्तां कुर्वति सति, निरवधिकवेपथूनामपरिमितकम्पानां पुरवधूनां नगरनारीणाम्, निर्दयं यथा स्यात्तथोरःस्थलस्य ताडनं तस्माज्जन्म यस्य तस्मिन् रवे शब्दे दशदिशां पूर्वादिदशकाष्ठानां मुखानि मुखरयति शब्दायमाने सति, अवधूतं तिरस्कृतं कलत्रपुत्रादीनां स्त्रीसुतप्रमुखानामनुवर्तनमनुकूलीकरणं यैस्तेषु विशिष्टेषु सत्पुरुषेषु निवृत्तिसुखस्य त्यागानन्दस्य रसेनाविष्टाः सहितास्तेषु सत्सु, सुजने जने मिथोऽन्योन्यं काष्ठाङ्गारस्य काठिन्यं निर्दयत्वं कथयति सति, पदार्थस्य पारमार्थ्यं तस्य परिज्ञाने न शालते शोभत इत्येवंशीलस्तस्मिन् विवेकिवर्गे विवेकिसमूहे कंदर्पपारतन्त्र्यस्य मदनविवशतायाः अति कामुकत्वस्येति यावत् दुरन्ततां दुष्फलतां निरूपयति सति, व्यग्रा गतिर्यस्य स विसंस्थुलगत्युपेतः स कृत्रिमशिखण्डी यन्त्रमयूरो निजनगरस्योपकण्ठं

विषयासक्तिका दोष तूने ही स्वयं देख लिया—अनुभव कर लिया। अब तो विषतुल्य विषयमें इच्छाको छोड़।' ऐसी भावना भाते हुए उसने समस्त परिग्रहका त्याग कर दिया और अपने हृदय रूपी मणिमय सिंहासनपर जिनेन्द्र भगवान्के चरणकमलोंको विराजमान कर काष्ठांगारके लिए पृथिवी छोड़ दी और स्वयं देवोंका सुख भोगनेके लिए वह देवलोकमें जा पहुँचा।

§ ३२. तदनन्तर जब राजा सत्यन्धर देवलोकको प्राप्त हो चुका, प्रकट होते हुए विषादरूपी विषसे दुखी नगरवासियोंके अश्रुजलका प्रवाह जब पृथिवीको कीचड़से युक्त करने लगा, अत्यधिक काँपती हुई नगरकी स्त्रियोंके वक्षःस्थलके निर्दयतापूर्वक ताड़न करनेसे उत्पन्न शब्द जब दशों दिशाओंके अग्रभागको शब्दायमान करने लगा, विशिष्ट-विवेकी मनुष्य जब स्त्री पुत्रादिकी अनुकूलताको छोड़ निवृत्तिके सुखमें आनन्द मानने लगे, सज्जन पुरुष जब परस्पर काष्ठांगारकी कठोरताकी चर्चा करने लगे और पदार्थके वास्तविक ज्ञानसे सुशोभित विवेकी मनुष्योंका समूह जब कामकी परतन्त्रताके दुःखदायी फलका निरूपण करने लगा तब व्यग्र गतिसे युक्त, आकाश मार्गसे गये हुए उस मयूर यन्त्रने अपने नगरके समीप-

१. क० ख० ग० भूभुजि। २. म० मुखरयति दश दिशां मुखानि।

कण्ठभाजि परेतवासे पार्थिवप्रेयसीमपातयत् ।

§ ३३. अत्रान्तरे [1]वृत्तान्तमिममतिदारुणमम्बरमणिरनुसंधातुमक्षममाण इव ममज्ज मध्येसागरम् । साक्षात्कृतनरपतिमरणाया वरुणदिशः शोकानल इव जज्वाल संध्यारागः । न लोकयतु लोकः प्रेयसीं पृथिवीपतेरितीव कालः काण्डपटिकामिव घटयति स्म दिङ्मुखेषु निरन्तरमन्धकारम् ।

§ ३४. अथ नरपतिसमरधरणीसमुद्गतपरागपटलपरिष्वङ्गपांसुलमङ्गमिव क्षालयितुमपरसागरसलिलमवतीर्णे किरणमालिनि, महीपत्यनुमरणकण्डनसंभृतरक्तचन्दनाङ्गराग[2] इव वसुंधरायाः [3]क्षरितजननयनाश्रुनिर्झरक्षालनादिव क्षयमुपेयुषि ज्योतिषि सांध्ये, सार्वभौमविरहविषादवेगविधूयमानदिशावधूकेशकलाप इव मेचके कवचयति भुवनमभिनवे तमसि, नरेशविनाशशोकादिव

भजतीति निजनगरोपकण्ठभाक् तस्मिन् स्वनगरनिकटस्थिते परेतवासे श्मशाने पार्थिवप्रेयसीं धरावल्लभवल्लभां विजयामिति यावत् अपातयत् पातयामास ।

§ ३३. अत्रान्तर इति—अत्रान्तरे एतन्मध्ये, अम्बरमणिः सूर्यः अतिदारुणं कठोरतरम् इमं वृत्तान्तम् अनुसंधातुमवेक्षितुम् अक्षममाण इव असमर्थ इव सागरस्य मध्ये मध्ये सागरं 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' इति समासः । ममज्ज निमग्नोऽभूत् । साक्षात्कृतं समवलोकितं नरपतिमरणं यया तस्याः वरुणदिशः पश्चिमदिशः शोकानल इव शोकाग्निरिव संध्यारागः पितृप्रसूलौहित्यं जज्वाल । लोको जनः पृथिवीपते राज्ञः प्रेयसीं प्रियाङ्गनां न लोकयतु न पश्यतु इतीव हेतोः कालो दिङ्मुखेषु काष्ठाग्रभागेषु काण्डपटिकामिव यवनिकामिव निरन्तरं निर्व्यवधानम् अन्धकारं तिमिरं घटयति स्म योजयामास ।

§ ३४. अथेति—अथानन्तरं किरणमालिनि सूर्ये नरपतेः सत्यन्धरमहीपालस्य समरधरणी युद्धभूमिस्तस्याः समुद्गतः समुत्थितो यः परागपटलो धूलिसमूहस्तस्य परिष्वङ्गेण संपर्केण पांसुलं धूलियुक्तं तथाभूतम् अङ्गं शरीरं क्षालयितुं प्रक्षालितं कर्तुमिव अपरसागरसलिलं पश्चिमार्णवतोयम् अवतीर्णे सति, वसुन्धरायाः पृथिव्याः महीपते राज्ञोऽनुमरणमण्डने संभृतो धृतश्चन्दनाङ्गराग इव मलयजविलेपन इव सांध्ये संध्याकालभवे ज्योतिषि क्षरितानां निःसृतानां जननयनाश्रूणां लोकलोचनजलानां निर्झरेण क्षालनं धावनं तस्मादिव क्षयं विनाशम् उपेयुषि प्राप्तवति सति, सार्वभौमः सर्वस्या भूमेरधिपः सत्यन्धरमहाराजस्तस्य विरहेण यो विषादस्तस्य वेगेन विधूयमानाः कम्प्यमाना ये दिशावधूकेशाः काष्ठाकामिनी-

वर्ती श्मशानमें विजयारानीको गिरा दिया ।

§ ३३. इसी बीचमें सूर्यास्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो इस अत्यधिक भयंकर वृत्तान्तको देखनेके लिए असमर्थ होता हुआ वह समुद्रके मध्यमें डूब गया था। पश्चिम दिशामें सन्ध्याकी लालिमा दिखने लगी, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो राजाके मरणको साक्षात् देखनेवाली पश्चिम दिशाके हृदयमें शोकरूपी अग्नि ही भभक उठी थी। दिशाओंमें निरन्तर अन्धकार फैल गया, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो राजाकी प्रिय वल्लभाको मनुष्य देख न सकें इस उद्देश्यसे कालने एक कनात ही लगा दी थी।

§ ३४. तदनन्तर राजाकी युद्ध भूमिसे उड़ी धूलिके संसर्गसे मलिन शरीरको धोनेके लिए ही मानो जब सूर्य पश्चिम सागरके जलमें उतर गया, राजाके पीछे मरनेके लिए उद्यत पृथिवी रूपी स्त्रीके द्वारा आभूषणके रूपमें धारण किये हुए लाल चन्दनके अंगरागके समान सन्ध्याकालकी ज्योति जब मनुष्यके नेत्रोंसे झरनेवाले अश्रुरूपी निर्झरोंके द्वारा धुल जानेसे ही मानो क्षयको प्राप्त हो गयी, राजाके विरहजन्य विषादके वेगसे हिलते हुए दिशा-

१. क० ख० ग० इममिति पदं नास्ति । २. क० ख० ग–०चन्दनाङ्गरागाया इव । ३. क० ग० क्षतजनयनाश्रु ।

संचरत्सायंतनसमीरनिभेन निःश्वसन्त्यां निशायाम्, तनुतरबिसलताभङ्गिमुपहसतीव विकसति विकचदलनिचयधवलितदशदिशि कुमुदाकरे, कुमारोदयसमयसमुन्मेषिहर्षपरवशसुरसंतानिते संतानकुसुमप्रकर इव तारकानिकरे निरन्तरयत्यम्बरम्, आविर्भवदवनिपतनयातपत्र इव पाकशासनदिशि दृश्यमाने यामिनीप्रणयिनि प्राप्तवैजननमासा महिषी सा प्राणनाथविरहदुःखभारान्तरितप्रसववेदना तस्मिन्नेव पितृनिवासे बालचन्द्रमसमिव पश्चिमाशा विपश्चिल्लोकनयनहारिणं हरिताश्वमिव पूर्वकाष्ठा काष्ठाङ्गारपर्यायतिमिरध्वंसिनं सूनुमसूत ।

§ ३५. सुतसुधासूतिदर्शनसमासादितजीवितवहनवात्सल्या तज्जन्ममहोत्सवसंभ्रमाभावपुनरुक्तविषादा पुत्रमङ्के निधाय प्रलपितुमारभत—'यस्य जन्मवार्तानिवेदनमुखरा हरिष्यन्ति

कचास्तेषां कलापे समूह इव मेचके कृष्णे, अभिनवे नूतने तमसि तिमिरे भुवनं लोकं कवचयति व्याप्नुवति सति, निशायां रजन्यां नरेशविनाशशोकादिव नरेन्द्रमरणखेदादिव संचरन् यः सायन्तनसमीरः सायंकालिकपवनस्तस्य निभेन व्याजेन निःश्वसन्त्यां सत्याम्, विकचदलानां प्रफुल्लपत्राणां निचयेन धवलिताः शुक्लीकृता दश दिशो येन तस्मिन् तथाभूते कुमुदाकरे, तनुतरा अतिशयेन कृशा या बिसलता मृणालवल्ली तद्वद् भङ्गिनीं नश्वरां संसारभङ्गीं भवपरम्पराम् उपहसतीव विकसति सति, तारकानिकरे नक्षत्रनिचये कुमारस्य जीवन्धरस्योदयो जन्म तस्य समये समुन्मेषी प्रकटितो यो हर्षस्तस्य परवशा विवशा ये सुरा निलिम्पास्तैः संतानिते प्रसारिते संतानकुसुमप्रकर इव कल्पपादपप्रसूनप्रचय इव अम्बरं गगनं निरन्तरयति सति, पाकशासनदिशि प्राच्याम्, यामिनीप्रणयिनि निशापतौ चन्द्र इति यावत्, आविर्भवन् प्रकटीभवन् योऽवनिपतनयो महीपतिपुत्रस्तस्यातपत्र इव छत्र इव दृश्यमाने विलोक्यमाने सति, प्राप्तो वैजननो मासो यया सा समुपलब्धप्रसूतिसमया सा महिषी विजया, प्राणनाथस्य विरहेण वियोगेन यो दुःखभारस्तेनान्तरिता प्रसववेदना प्रसूतिपीडा यस्या तथाभूता सती तस्मिन्नेव पूर्वोक्त एव पितृनिवासे श्मशाने पश्चिमाशा प्रतीची बालचन्द्रमसमिव बालशशिनमिव, विपश्चिल्लोकनयनहारिणं विद्वज्जननयनवशीकरणधुरीणं पूर्वकाष्ठा प्राची हरिताश्वमिव दिवाकरमिव काष्ठाङ्गारः पर्यायो यस्य तत् तथाभूतं तिमिरं ध्वंसयतीत्येवं शीलं सूनुम् असूत उत्पादयामास ।

§ ३५. सुतसुधासूतीति—सुत एव सुधासूतिश्चन्द्रस्तस्य दर्शनेन समासादितं प्राप्तं जीवितवहने जीवनधारणे वात्सल्यं यया सा, तस्य पुत्रस्य जन्ममहोत्सवस्य संभ्रमः संक्षोभस्तस्याभावेन पुनरुक्तो

रूप स्त्रियोंके केश समूहसे काला नूतन अन्धकार जब संसारको व्याप्त करने लगा, राजाके मरणरूपी शोकके कारण सब ओर चलती हुई सायंकालीन वायुके बहाने मानो जब रात्रि श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगी, खिली कलिकाओंके समूहसे दशों दिशाओंको सफ़ेद-सफ़ेद करनेवाला कुमुद वन जब अत्यन्त सूक्ष्म मृणालरूपी लताके समान टूट जानेवाली संसारकी पद्धतिका मानो उपहास कर रहा था, कुमारके जन्मके समय प्रकट होनेवाले हर्षसे विवश देवोंके द्वारा फैलाये हुए कल्पवृक्षके पुष्प समूहके समान जब ताराओंका समूह आकाशको व्याप्त कर रहा था, और प्रकट होते हुए राजपुत्रके छत्रके समान पूर्व दिशामें जब चन्द्रमा दिखाई देने लगा तब दशवें मासको प्राप्त एवं प्राणनाथके विरहजन्य दुःखके भारसे जिसकी वेदना दब गयी थी ऐसी विजया रानीने उसी श्मशान भूमिमें जिस प्रकार पश्चिम दिशा विद्वानोंके नेत्रोंको हरनेवाले बाल चन्द्रमाको और पूर्व दिशा अन्धकारको नष्ट करनेवाले सूर्यको उत्पन्न करती है, उसी प्रकार काष्ठांगाररूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया ।

§ ३५. तदनन्तर प्रभारूपी चन्द्रमाके देखनेसे जिसे जीवन धारण करनेका स्नेह प्राप्त हुआ था और पुत्रके जन्म सम्बन्धी महोत्सवके समय होनेवाले संभ्रमके अभावसे जिसका

पूर्णपात्रं धात्रीजना जननाथेभ्यः, यस्मिन् च कृतावतारे काराध्यक्षकरत्रोटितशृङ्खला विशृङ्खलगतयश्चिरकालकृतधरणीशयनमलिनितवपुषो वन्दीपुरुषाः पलायमाना इव कलिसैन्याः समन्ततो धावेयुः, यस्मिन् च जातवति जातपिष्टातकमुष्टिवर्षपिञ्जरितहरिन्मुखमुन्मुखकुब्जवामनहठाकृष्यमाणनरेन्द्राभरणं प्रणयभरप्रणृत्तवारयुवतिवर्गवल्गनरणितमणिभूषणनिनदभरितहरिदवकाशं निर्मर्यादमदपरवशपण्ययोषिदाश्लेषलज्जमानराजवल्लभं वर्धमानमानसपरितोषपरस्परपरिरब्धपार्थिवभुजान्तरसंघट्टविघटितहारपतितमौक्तिकस्थपुटितास्थानमणिकुट्टिमतटं कुट्मलितसौविदल्ल-

विषादो यस्यास्तथाभूता सती विजया पुत्रम् अङ्के क्रोडे निधाय स्थापयित्वा प्रलपितुं प्रलापं कर्तुम् आरभत तत्पराऽभूत्। यस्येति—यस्य पुत्रस्य जन्मवार्तायाः प्रसूतिसमाचारस्य निवेदनेन सूचनेन मुखराः शब्दं कुर्वाणाः धात्रीजना उपमातृसमूहाः जननाथेभ्यो लोकपतिभ्यः पूर्णपात्रं बलात्प्राप्यमाणं पुरस्कारं हरिष्यन्ति। 'वर्धापकं यदानन्दादलंकारादिकं पुनः। आकृष्य गृह्यते पूर्णपात्रं पूर्णानकं च तत्' इति हारावली। यस्मिन् चेति—यस्मिन् च पुत्रे कृतावतारे गृहीतजन्मनि सति, काराध्यक्षस्य वन्दीगृहस्वामिनः करेण त्रोटिताश्छेदिताः शृङ्खला येषां ते तथाभूताः, विशृङ्खला स्वच्छन्दा गतिर्येषां ते चिरकालकृतेन दीर्घकालं यावत्कृतेन धरणीशयनेन पृथिवीस्वापेन मलिनितं वपुर्येषां ते तथाभूता बन्दीपुरुषाः पलायमाना धावमानाः कलिसैन्या इव कलिकालसैनिका इव समन्ततः परितो धावेयुः वेगेन गच्छेयुः। यस्मिन् च जातवतीति—यस्मिन् च पुत्रे जातवति सति राजकुलं राजगृहम् अवलोक्येत दृश्येत। कथंभूतमिति राजकुलस्यैव विशेषणान्याह—जातं समुत्पन्नं यत्पिष्टातकस्य पिष्टातकचूर्णस्य मुष्टिवर्षं मुष्टिभिर्वर्षणं तेन पिञ्जरितानि पीतवर्णीकृतानि हरिन्मुखानि दिङ्मुखानि यस्मिन् तत्। उन्मुखैरुद्वक्त्रैः कुब्जवामनैः कुब्जखर्वपुरुषैर्हठेनाकृष्यमाणानि नरेन्द्राभरणानि यस्मिन् तत्। प्रणयभरेण स्नेहभरेण प्रणृत्ता नृत्यं कुर्वाणा या वारयुवतयो वेश्यास्तासां वर्गः समूहस्तस्य वल्गनेन चलनेन रणितानि शब्दायमानानि यानि मणिभूषणानि रत्नालंकरणानि तेषां निनदेन शब्देन भरिता हरिदवकाशा दिगन्तरालानि यस्मिन् तत्। निर्मर्यादमदेन निःसीममदेन परवशाः परायत्ता याः पण्ययोषितो वेश्यास्तासामाश्लेषेण समालिङ्गनेन लज्जमानास्त्रपमाणा राजवल्लभा नृपतिप्रियजना यस्मिन् तत्। वर्धमानेन समेधमानेन मानसपरितोषेण हृदयानन्देन परस्परं परिरब्धानि समाश्लिष्टानि यानि पार्थिवभुजान्तराणि भूभृद्वक्षांसि तेषां संघट्टेन विघटितास्त्रुटिता ये हारास्तेभ्यः पतितैर्मौक्तिकैर्मुक्ताफलैः स्थपुटितं नतोन्नतं आस्थानमणिकुट्टिमतटं सभाभवनमणिखचिततलं यस्मिन् तत्। कुट्मलितः संकोचितो यः सौविदल्लानां कञ्चुकीनां निरोधसंलापः

खेद पुनरुक्त हो गया था ऐसी विजया रानी पुत्रको गोदमें रख इस प्रकार प्रलाप करने लगी—जिसकी जन्म सम्बन्धी वार्ताको सूचित करनेके लिए शब्द करनेवाली धायें राजाओंसे जबर्दस्ती पुरस्कार प्राप्त करतीं, जिसके जन्म लेते ही बन्दीगृहके स्वामियोंके द्वारा अपने हाथसे जिनकी जंजीरें तोड़ दी जातीं, जो स्वच्छन्द गतिसे चलते और चिरकाल तक पृथिवीमें शयन करनेसे जिनके शरीर मलिन होते ऐसे बन्दीजन भागते हुए कलिकालके सैनिकोंके समान सब ओर दौड़ते। जिसके उत्पन्न होते ही जहाँ गुलालकी मुट्ठियाँ बरसानेसे दिशाओंके अग्रभाग लाल पीले रंगके हो जाते, जहाँ ऊपरको ओर मुख किये हुए कुबड़े और बौने मनुष्योंके द्वारा राजाओंके आभूषण जबर्दस्ती खींचे जाते, स्नेहभारके प्रकट करनेमें प्रवृत्त वेश्याओंके इधर-उधर चलनेसे शब्दायमान मणिमय आभूषणोंकी झनकारसे जहाँ दिशाओंका मध्यभाग भर रहा होता, अत्यधिक नशासे विवश वेश्याओंके आलिंगनसे जहाँ राजाके प्रेमीजन लज्जित हो रहे हैं, बढ़ते हुए मानसिक सन्तोषसे परस्पर आलिंगित राजाओंके वक्षःस्थलके संघटनसे टूटे हुए हारोंसे गिरे मोतियोंके द्वारा जहाँ सभा-भूमिके मणिमय फर्श ऊँचे-नीचे होते, कंचुकियोंकी निषेधाज्ञाके हटा लेनेसे स्वतन्त्रतापूर्वक प्रवेश करनेवाले समस्त

निरोधसंलापनिरङ्कुशप्रविष्टाशेषजानपदजनितसंबाधं सादरदीयमानकनकमणिमौक्तिकोत्पीडमुद्घाटितकवाटरत्नकोशप्रविशदचकितलोकलुप्यमानवस्तुसार्थमर्थिगणगवेषणादेशनिर्गतानेकशतप्रतीहारानीतवनीपकलोकमुल्लोकहर्षविहितमहार्हजिनमहामहमहमहमिकाप्रविष्टविशिष्टजनप्रस्तूयमानस्वस्तिवादं सौवस्तिकविधीयमानमंगलाचारमाचारचतुरपुराणपुरंध्रीपरिषदभ्यर्च्यमानगृहदैवतं दैवज्ञगणगृह्यमाणलग्नगुणविशेषमशेषजनहर्षतुमुलरवसंकुलं राजकुलमवलोकयेत[2], स त्वमारसदशिवशिवावक्त्रकुहरविस्फुरदनलकणजर्जरिततमसि समीरपूरितविवरवाचाटनृकरोटिकर्परकलितभुवि[4] डामरडाकिनीगणसंपातचकितपुरुषपरिहृतपरिसरे पच्यमानशवपिशितविस्रगन्धकटुके कल्याणेतर-

प्रवेशनिषेधपरकवार्तालापस्तेन निरङ्कुशं निर्बाधं यथा स्यात्तथा प्रविष्टा येऽशेषजानपदा निखिलदेशीयजनास्तैर्जनिता संबाधा यस्मिन् तत्। सादरं ससत्कारं दीयमानः कनकमणिमौक्तिकानां स्वर्णरत्नमुक्ताफलानामुत्पीडः समूहो यस्मिन् तत्। उद्घाटिताः कवाटा अररा यस्य तथाभूतो यो रत्नकोशो मणिनिधानालयस्तस्मिन् प्रविशन्तः प्रवेशं कुर्वाणा अचकिता भयरहिता ये लोकास्तैर्लुप्यमानो ह्रियमाणो वस्तुसार्थो यस्मिन् तत्। अर्थिगणस्य याचकसमूहस्य गवेषणादेशेन मार्गणाज्ञया निर्गता येऽनेकशतप्रतीहारास्तैरानीता वनीपकलोका यस्मिन् तत्। उल्लोकेन सीमातीतेन हर्षेण विहितो महार्हजिनानां महामहो पूजाविशेषो यस्मिन् तत्। अहमहमिकया प्रविष्टैर्विशिष्टजनैः प्रस्तूयमानः प्रारभ्यमाणः स्वस्तिवादो यस्मिन् तत्। स्वस्ति पृच्छन्तीति सौवस्तिकास्तैर्विधीयमानो मङ्गलाचारो यस्मिन् तत्। आचारचतुराणां गृहविधिनिपुणानां पुराणपुरन्ध्रीणां स्थविरस्त्रीणां परिषदा समूहेनाभ्यर्च्यमाणं पूज्यमानं गृहदैवतं यस्मिन् तत्। दैवज्ञगणेन ज्योतिर्वित्समूहेन गृह्यमाणो लग्नस्य गुणविशेषो यस्मिन् तत्। अशेषजनानां निखिलजनानां हर्षेण यस्तुमुलरव उच्चैःशब्दस्तेन संकुलं व्याप्तं राजकुलम्। स त्वमिति—स त्वम्, आरसन्त्यः शब्दं कुर्वन्त्यो या अशिवशिवा अमाङ्गलिकशृगाल्यस्तासां वक्त्रकुहरेभ्यो मुखगह्वरेभ्यो विस्फुरन्तो येऽनलकणा अग्निकणास्तैर्जर्जरितं तमो यस्मिन् तथाभूते, समीरेण वायुना पूरितैर्विवरैश्छिद्रैर्वाचाटा जल्पाका या नृकरोटयो नरशिरांसि तेषां कर्परैः कापालैः कलिता युक्ता भूर्यस्मिन् तस्मिन्, डामराः समुत्कटा ये डाकिनीगणाः पिशाचीसमूहास्तेषां संपातेन चकितैर्भीतैः पुरुषैः परिहृतः परिसरः समीपप्रदेशो यस्य तस्मिन्, पच्यमानानि

देशवासी लोगोंकी जहाँ भीड़ इकट्ठी हो रही होती, जहाँ आदरके साथ सुवर्ण, मणि और मोतियोंकी राशियाँ प्रदान की जातीं, खुले किवाड़ोंसे युक्त रत्नोंके खजानेमें प्रवेश करनेवाले निर्भय मनुष्योंके द्वारा जहाँ अभीष्ट वस्तुओंके समूह लूटे जाते, याचक समूहको खोजनेकी आज्ञासे निकले सैकड़ों द्वारपालोंके द्वारा जहाँ याचक लोग लाये जाते, अत्यधिक हर्षके कारण जहाँ महापूज्य जिनेन्द्र भगवान्की महापूजा की जाती, जहाँ प्रथम प्रवेश करनेकी प्रतिस्पर्धासे प्रविष्ट विशिष्ट मनुष्योंके द्वारा स्वस्तिवाचन प्रारम्भ किया जाता, जहाँ कुशल समाचार पूछनेवालोंके द्वारा मंगलाचार किये जाते, जहाँ आचारमें चतुर वृद्ध-सौभाग्यवती स्त्रियोंके समूहसे गृहदेवताओंकी पूजा की जा रही होती, जहाँ ज्योतिषियोंका समूह लग्नके विशिष्ट गुणोंको ग्रहण कर रहे होते, और जो समस्त मनुष्योंकी जोरदार हर्षध्वनिसे व्याप्त होता, ऐसा राजकुल दिखाई देता, वह आज उस श्मशानमें किसी तरह उत्पन्न हुआ है जहाँ सब ओर शब्द करनेवाली अमांगलिक शृगालियोंकी मुखकन्दरासे निकलनेवाले अग्नि कणोंसे अन्धकार जर्जर हो रहा है, वायुपूर्ण छिद्रोंसे शब्द करनेवाली मनुष्योंकी खोपड़ियोंसे जहाँ भूमि मलीन हो रही है, भयंकर डाकिनियोंके समूहके आक्रमणसे भयभीत मनुष्योंने जिसके

१. क० ख० ग० अशेषपदं नास्ति। २. क० ख० ग० राजकुलमवालोकयेत। ३. क० ख० ग० स त्वं मारसदृशीव। ४. क० ख० ग० कर्परकलितभुविदमरडाकिनीगण।

चिताभस्मसंकटे[1] प्रेतवाटे[2] जात, कथमपि जातः[3] कथमनुपलक्षितरक्षाप्रकारे प्रणयिजनशून्ये प्रतिभटनगरपरिसरपरेतवासे वसन्वर्धिष्यसे वा[4]। इत्थमपगतकरुणमतिदारुणमाकस्मिकमप्रतिक्रियमननुभूतपूर्वमतिदुःसहं विधिविलसितं विलोकयन्त्या न मे प्राणाः प्रयान्ति[5]। किमिह करोमि। किं वा व्याहरामि। यदि त्यजामि जीवितं जीवितेश्वरवचनलङ्घनजन्मा महान् दोषः' इत्येवं चान्यथा विलपन्तीं विगतपरिकरां परितापविह्वलामबलाम् 'अलमलमतिप्रलापेन' इति कथयन्ती कापि देवता सुतसुकृतपरिपाकप्रेरिता परिचारिकायाश्चम्पकमालाया वेषमास्थाय संन्यधात्। तिरोऽधाच्च तद्दर्शनेन जाताश्वासायास्तस्याः पुनस्तन्मुखाकर्णितभर्तृवियोगविनिश्चयेन

दह्यमानानि यानि शवपिशितानि मृतकमांसानि तेषां विस्रगन्धेन दुर्गन्धेन कटुकस्तस्मिन्, कल्याणेतराणि यानि चिताभस्मानि चितारक्षास्तैः संकटस्तस्मिन्, प्रेतवाटे श्मशाने कथमपि केनापि प्रकारेण जातः समुत्पन्नः स त्वं हे जात, हे पुत्र, अनुपलक्षितो रक्षाप्रकारो यस्मिन् तस्मिन्, प्रणयिजनशून्ये स्नेहिजनरहिते, प्रतिभटनगरस्य शत्रुनगरस्य परिसरे निकटे विद्यमानो यः परेतवासः श्मशानं तस्मिन् वसन् त्वम् कथं वर्धिष्यसे वा। इत्थमिति—इत्थमनेन प्रकारेण अपगतकरुणं निर्दयम्, अतिदारुणमतिभयंकरम्, आकस्मिकमकस्माज्जातम्, अप्रतिक्रियं प्रतिकाररहितम्, पूर्वं नानुभूतमित्यननुभूतपूर्वम्, अतिदुःसहं कठिनतरं विधिविलसितं दैवचेष्टितं विलोकयन्त्याः पश्यन्त्या मे प्राणा न प्रयान्ति। इह श्मशाने किं करोमि। किं वा व्याहरामि कथयामि। यदि जीवितं त्यजामि प्राणघातं करोमि चेत् तर्हि जीवितेश्वरस्य प्राणनाथस्य वचनलङ्घनाज्जन्म यस्य तथाभूतो महान् दोषः स्यादिति शेषः। इत्येवं चान्यथा विलपन्तीं विलापं कुर्वन्तीं विगतपरिकरां विगतसहायां परितापेन संतापेन विह्वला ताम् अबलां विजयाम्, 'अति प्रलापेन अलमलं व्यर्थं व्यर्थम्' इति कथयन्ती कापि देवता स्वार्थे तल्, सुतस्य पुत्रस्य सुकृतपरिपाकेन पुण्योदयेन प्रेरिता सती परिचारिकायाः सेविकायाः चम्पकमालाया एतन्नामधेयाया वेषम् आस्थाय धृत्वा संन्यधात् सन्निहिताभवत्। तद्दर्शनेन तदवलोकनेन जाताश्वासायाः समुत्पन्नसंतोषायास्तस्या राज्याः पुन-

---

समीपवर्ती प्रदेशोंको छोड़ दिया है, जो पकते हुए मुर्दोंके मांसकी दुर्गन्धसे दुःखदायी है, और जो चिताओंके अमांगलिक भस्मसे व्याप्त है। हाय बेटा! जहाँ रक्षाका कुछ भी साधन दिखाई नहीं देता तथा जो प्रेमीजनोंसे शून्य है ऐसे शत्रुनगरके निकटवर्ती श्मशानमें निवास करता हुआ तू किस प्रकार बढ़ सकेगा? इस प्रकार मैं विधिकी वह लीला देख रही हूँ जो दयासे रहित है, अत्यन्त भयंकर है, अचानक प्राप्त है, प्रतिकारसे रहित है, पहले कभी भोगनेमें नहीं आयी, और अत्यन्त दुःसह है। इसे देखते हुए मेरे प्राण क्यों नहीं निकल रहे हैं? मैं यहाँ क्या करूँ? क्या कहूँ? यदि जीवनका त्याग करती हूँ—प्राण छोड़ती हूँ तो प्राणनाथकी आज्ञाके उल्लंघनसे होनेवाला महान् दोष होता है। इस तरह तथा अन्य अनेक प्रकारसे विलाप करती, सहायकोंसे रहित, सन्तापसे विह्वल, अबला विजयारानी श्मशानमें स्थित थी कि उसी समय पुत्रके पुण्योदयसे प्रेरित कोई देवी, चम्पकमाला नामक सेविकाका वेष रख 'बस, अधिक विलाप करना व्यर्थ है' यह कहती हुई उसके निकट आयी। उसके देखनेसे प्रथम तो उसे सान्त्वना प्राप्त हुई, परन्तु पीछे उसके मुखसे प्राणनाथके वियोगका

---

१. क० ख० ग० भस्मकण्टके। २. क० ग० प्रेतवाटके ख० प्रेतवाटजात। ३. ख० कथमभिजातः। ४. क० वसन्तं त्वां कथं वर्धयिष्ये। ख० वसत् वर्धयिष्यसे व। ५. क० मम प्राणाः प्रयान्ति ख० विलोकयन्त्यामधरप्राणाः प्रयान्ति। ग० विलोकयन्त्या मासमिमे प्राणाः प्रयान्ति।

चैतन्यम् । देवताशक्तिस्तु प्राणप्रयाणं न्यरौत्सीत् । अरोदीच्चातिदुःसहं लब्धचेतना । प्रालापीच्च बहुप्रकारम् ।

§ ३६. एवमवचनगोचरमापदमनुभवन्तीमात्मजपरिरक्षणपराङ्मुखीमात्मत्यागाभिमुखीं च तामालोक्य चम्पकमाला 'किमेवं देवि, खिद्यसे । पश्य तव तनयस्य तरुणतामरससोदरयोश्चरणयोरुणरेखारूपाणि रथकलशपताकादीनि साम्राज्यचिह्नानि । इयं च बिभ्रती स्पष्टतरतामष्टमीचन्द्रसौन्दर्यहासिनि ललाटपट्टे मुक्तकण्ठमूर्णा वर्णयत्यर्णवाम्बराधिपत्यम् । अयमभिनवजलधरनिनदगम्भीररुदितध्वनिः स्वराज्यस्वीकारमङ्गलशङ्खघोषश्रियमभिव्यनक्ति । तद्भविष्यति भगीरथादीनपि महारथानधरयन्धरायाः पतिरयम् । परित्यज्यतां च परित्राणचिन्ता । चिन्तामणिकल्पः कोऽपि वणिजामधिपतिरधुनैवागत्य तव तनयं ग्रहीष्यति वर्धयिष्यति च महा-

रतस्या मुखेनाकर्णितः श्रुतो यो भर्तृवियोगः पतिमरणं तस्य निश्चयेन दृढप्रत्ययेन चैतन्यं तिरोऽधात् अन्तरधात् । मूर्च्छिता बभूवेति भावः । तु किन्तु देवताशक्तिः प्राणानां प्रयाणमिति प्राणप्रयाणं जीवननिःसरणं न्यरौत्सीत् निरुद्धं चकार । लब्धचेतना प्राप्तसंज्ञा च, अतिदुःसहमतिकठिनम् अरोदीत् । बहुप्रकारं प्रालापीच्च प्रलापमकार्षीच्च ।

§ ३६. एवमिति—अवचनगोचरं शब्दातीताम् आपदमनुभवन्तीम् आत्मजस्य पुत्रस्य परिरक्षणे पराङ्मुखी ताम्, आत्मनस्त्यागेऽभिमुखा तत्परा तादृशीं च तां विजयामालोक्य चम्पकमाला चम्पकमालावेषप्रच्छन्ना देवता 'एवमनेन प्रकारेण हे देवि, हे राज्ञि, किं खिद्यसे । पश्य तव तनयस्य तरुणतामरससोदरयोस्तरुणकमलसदृशयोश्चरणयोः अरुणरेखारूपाणि लोहितलेखारूपाणि रथश्च कलशश्च पताका चेति रथकलशपताकास्ता आदौ येषां तानि साम्राज्यचिह्नानि साम्राज्यसूचकलक्षणानि सन्तीति शेषः । अष्टम्याश्चन्द्रस्य सौन्दर्यं हसतीत्येवंशीले ललाटपट्टे निटिलफलके स्पष्टतरतां बिभ्रती इयम् ऊर्णा च आवर्तविशेषश्च अर्णवाम्बरायाः पृथिव्या आधिपत्यं स्वामित्वं मुक्तकण्ठं यथा स्यात्तथा वर्णयति प्रकटयति । अयं श्रूयमाणः अभिनवजलधरस्य प्रत्यग्रपयोदस्य निनद इव शब्द इव गम्भीरो रुदितध्वनी रोदनशब्दः स्वराज्यस्य स्वीकारे स्वसात्करणे यो मङ्गलशङ्खघोषस्तस्य श्रियं शोभाम् अभिव्यनक्ति । तत्तस्मात् कारणात् अयं बालो भगीरथादीनपि महारथान् अधरयन् तिरस्कुर्वन् धरायाः पती राजा भविष्यति । परित्राणस्य चिन्ता परित्राणचिन्ता संरक्षणचिन्ता च परित्यज्यताम् । ईषदूनश्चिन्तामणिरिति चिन्तामणिकल्पः कोऽपि

निश्चय सुन उसकी चेतनाशक्ति अन्तर्हित हो गयी—वह मूर्छित हो गयी। इतना अवश्य रहा कि देवताकी शक्तिने उसके प्राणोंके प्रस्थानको रोक लिया—उसे मरने नहीं दिया। चेतना प्राप्त होनेपर वह अत्यन्त दुःसह रोदन करने लगी तथा अनेक प्रकारका विलाप करने लगी।

§ ३६. इस प्रकार जो वचन-अगोचर आपत्तिका अनुभव कर रही थी। तथा पुत्रकी रक्षासे विमुख हो आत्मघातके सम्मुख हो चुकी थी। ऐसी विजया रानीको देख चम्पकमालाने कहा कि 'हे देवि ! इस तरह खेद क्यों कर रही हो ? देखो, तुम्हारे पुत्रके तरुण कमलके सदृश चरणोंमें लालरेखा रूप रथ, कलश तथा पताका आदि साम्राज्यके चिह्न विद्यमान हैं। अष्टमीके चन्द्रमाके सौन्दर्यकी हँसी उड़ानेवाले ललाटपट्टपर अत्यन्त स्पष्टताको धारण करनेवाली यह भँवर स्पष्ट कह रही है कि यह समुद्रान्त पृथिवीका अधिपति होगा। और चूँकि यह नूतन मेघकी गर्जनाके समान इसके रोनेका शब्द, अपने राज्यकी प्राप्तिके समय बजनेवाले माङ्गलिक शङ्खके शब्दकी शोभाको प्रकट कर रहा है इसलिए यह अवश्य ही भगीरथ आदि महारथियोंको तिरस्कृत करनेवाला पृथिवीका अधिपति होगा। इसके संरक्षण-

राजसुतोऽयमिति' इति चतुरतरवचोभिश्चिरपरिचयजनितविश्वासां महिषीमाश्वासयामास। तत्क्षण एव क्षणदान्धकारमभिनवधौतधाराधारालकिरणेन कृपाणेन दारयन्दारकमादाय मृतं सूनृतवचसां मुनिवराणां वचसि विश्वासादेकाकी समागच्छन्नतुच्छतेजाः प्रत्यदृश्यत कोऽपि वैश्यः। पश्यन्ती च तं चम्पकमाला 'पश्य देवि, मदुक्तोऽयमागतः। विश्वस्यतामेवमन्यदपि मद्वचनम्। यावदयमेनमादाय[1] कुमारमपसरति तावदन्तरितया त्वया स्थातव्यम्' इत्यभ्यधात्।

§ ३७. तदुक्तमुत्तमाङ्गना सापि विश्वसन्ती निःश्वसन्ती च विषादेन विगतरक्षणाभ्युपायतया तथाभावितया च तस्य वस्तुनः प्रस्नुतस्तनी स्तन्यं पाययित्वा च भूतले भूपलाञ्छन-

वणिजामधिपतिर्वैश्यवरः अधुनैव साम्प्रतमेव तव तनयं पुत्रं ग्रहीष्यति वर्धयिष्यति च। अयमेष महाराजस्य सुत इति महाराजसुतः पृथिवीपतिपुत्रो वर्तत इति शेषः।' इति पूर्वोक्तप्रकारैः, चतुरतराणि अतिशयेन चतुराणि चतुरतराणि तथाभूतानि वचांसि चतुरतरवचांसि तैश्चातुर्यपूर्णवचनैः चिरपरिचयेन जनितो विश्वासः प्रत्ययो यस्यास्तां तथाभूतां महिषीं विजयाराज्ञीम् आश्वासयामास सान्त्वयामास। तत्क्षण इति— तत्क्षण एव तस्मिन्नेव काले अभिनवधौता प्रत्यग्रप्रक्षालिता या धारा तस्या धारालाः सन्ततिबद्धाः किरणा यस्य तेन तथाभूतेन कृपाणेन करवालेन क्षणदान्धकारं रजनीतिमिरं दारयन् खण्डयन् मृतं दारकं नन्दनं 'नन्दनो दारकोऽर्भकः' इति धनंजयः आदाय गृहीत्वा सूनृतवचसां सत्यप्रियवचनानां मुनिवराणां यतिश्रेष्ठानां वचसि वचने विश्वासात् प्रत्ययात् एकाकी एककः 'एकादाकिनिच्चासहाये' इत्याकिनच्प्रत्ययः अतुच्छतेजा विपुलप्रतापः कोऽपि वैश्यः प्रत्यदृश्यत दृष्टः। तं वैश्यं पश्यन्ती च चम्पकमाला 'हे देवि, पश्य मदुक्तोऽयं वणिजामधिपतिरागतः एवमेतादृशमेव अन्यदपि मद्वचनं विश्वस्यतां प्रतीयताम्। यावद् यावता कालेन अयं वैश्यवर एनं कुमारम् आदाय अपसरति दूरीभवति तावत् तावत्कालपर्यन्तं त्वयान्तरितया तिरोहितया स्थातव्यम्' इति अभ्यधात् जगाद।

§ ३७ तदुक्तमिति—तस्या देवताया उक्तं तदुक्तं विश्वसन्ती प्रतियती विषादेन खेदेन निःश्वसन्ती च सा उत्तमाङ्गनापि विगतरक्षणाभ्युपायतया रक्षोपायराहित्येन तस्य वस्तुनः कार्यस्य पुत्रत्यागरूपस्येति यावत् तथाभावितया तद्रूपतया प्रस्नुतौ स्तनौ यस्यास्तथाभूता सती स्तन्यं दुग्धं

की चिन्ता छोड़िए। चिन्तामणिके समान कोई वैश्यपति अभी हाल आकर तुम्हारे पुत्रको ले जायेगा और 'यह महाराजका पुत्र है' यह समझकर उसको बढ़ावेगा—उसका लालन-पालन करेगा। इस प्रकारके अत्यन्त चतुर वचनोंके द्वारा चम्पकमालाने चिर कालके परिचयसे उत्पन्न विश्वाससे युक्त विजया रानीको सान्त्वना दी। उसी क्षण नूतन धुली हुई धाराकी सन्ततिबद्ध किरणोंसे युक्त तलवारके द्वारा रात्रिके अन्धकारको चीरता हुआ मृत पुत्रको लेकर सत्यवादी मुनियोंके वचनमें विश्वास होनेसे अकेला आता अतुच्छ तेजका धारक कोई वैश्य दिखाई दिया। उसे देखती हुई चम्पकमालाने रानीसे कहा कि 'हे देवि! देखो, मेरे द्वारा कहा हुआ वह वैश्यपति आ पहुँचा। इसी प्रकार मेरे अन्य वचनोंका भी विश्वास कीजिए। जब तक यह वैश्य इस कुमारको लेकर जाता है तब तक तुम्हें छिपकर खड़ी रहना चाहिए।'

§ ३७. चम्पकमालाके कथनका विश्वास करनेवाली विजया रानीने खेदसे एक लम्बी श्वास छोड़ी और रक्षाका अन्य उपाय न होनेसे अथवा उस वस्तुकी वैसी ही होनहार होनेसे उसने द्रवीभूत स्तनोंसे युक्त हो बालकको दूध पिलाया, पृथिवी तलपर सुलाया, उसके हाथमें

१. क० ग० यावदेनमेवमादाय।

महितं महार्हमङ्गुलीयकमस्य करे न्यस्य सप्रणामम् 'रक्षन्तु जिनशासनदेवताः' इत्याचक्षाणा क्षोणीपतिपत्नी परिचारिकाप्रयत्नेन तनयपरिसरादपसरन्ती समीपतरवर्तिनः कस्यचन तरोर्मूले तिरोधाय तस्थौ ।

§ ३८. तावता समुपेत्य स वणिक्पतिरपगतासुमात्मसुतं प्रेतावासे परित्यज्य पार्थिवतनयमन्वेषमाणः क्षोणीतलशायिनम्, नैशान्धकारपटलभेदिना देहप्रभाप्रतानेन प्रदर्शयन्तमात्मानम्, राहुग्रहणभयेन धरण्यामुद्यन्तमिव मार्तण्डम्, मन्द्रतारेण रुदितरवेण मुखरयन्तमाशामुखम्, सहजप्रतापविस्फुलिङ्गशङ्काकरेण रत्नाङ्गुलीयकमरीचिजालेन किसलयितकरम्, अविरलगर्भरागपाटलवपुषमङ्गारकमिव भूगर्भान्निर्गतम्, दुर्गत इव दुर्लभं धनं धरापतितनयमालोक्य

पाययित्वा च तं भूतले पृथिवीपृष्ठे भूपस्य लाञ्छनेन नाम्ना महितं श्लाघितं महार्हं महामूल्यम् अङ्गुलीयकमङ्गुल्याभरणभूतां मुद्रिकाम्, अस्य कुमारस्य करं न्यस्य निक्षिप्य सप्रणामं सनमस्कारं 'जिनशासनदेवता 'जिनशासनप्रभावकदेव्यो रक्षन्तु' इत्याचक्षाणा कथयन्ती क्षोणीपतिपत्नी राज्ञी परिचारिकायाः प्रयत्नस्तेन चम्पकमालाप्रयासेन तनयपरिसरात् पुत्रसमीपाद् अपसरन्ती समीपतरेवर्तिनोऽतिनिकटस्थस्य कस्यचन तरोः कस्यापि वृक्षस्य मूले तिरोधायान्तर्धाय तस्थौ ।

§ ३८. तावतेति—तावता तावत्कालेन समुपेत्य समागत्य स वणिक्पतिर्गन्धोत्कटः अपगता असवो यस्य तं मृतम् आत्मसुतं स्वसुतं प्रेतावासे श्मशाने परित्यज्य पार्थिवतनयं नृपेन्द्रनन्दनम् अन्वेषमाणो मार्गमाणः, निशाया इदं नैशं तच्च तदन्धकारपटलं चेति नैशान्धकारपटलं तस्य भेदिना हारिणा देहप्रभाप्रतानेन शरीरसुषमासन्दोहेन आत्मानं स्वं प्रदर्शयन्तमवलोकयन्तम्, राहुग्रहणभयेन विधुन्तुदाक्रमणभीत्या धरण्यां पृथिव्याम् उद्यन्तं समुदीयमानं मार्तण्डमिव सूर्यमिव, मन्द्रतारेण उच्चगभीरेण रुदितरवेण रोदनशब्देन आशामुखं दिङ्मुखं मुखरयन्तं शब्दायमानम्, सहजश्चासौ प्रतापश्चेति सहजप्रतापः स्वाभाविकतेजस्तस्य विस्फुलिङ्गाः कणास्तेषां शङ्कायाः करं तेन रत्नाङ्गुलीयकमरीचिजालेन मणिमुद्रामरीचिमण्डलेन किसलयितः पल्लवितः करो यस्य तम्, अविरलो निरन्तरो यो गर्भरागो गर्भारुणिमा तेन पाटलमीषद्रक्तं वपुर्यस्य तम्, अतएव भूगर्भान्महीमध्यान्निर्गतम् अङ्गारकमिव, धरापतितनयं राजपुत्रं

राजाके नामसे श्रेष्ठ अत्यन्त प्रशस्त अंगूठी पहनायी और प्रणामपूर्वक कहा कि 'जिन शासनके देवता इसकी रक्षा करें।' इतना सब कर चुकनेके बाद रानी, परिचारिकाके प्रयत्नसे पुत्रके पाससे हटकर किसी समीपवर्ती वृक्षके नीचे छिपकर खड़ी हो गयी।

§ ३८. उसी समय वह वैश्यपति अपने मृत पुत्रको श्मशानमें छोड़कर राजपुत्रको खोजता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। तदनन्तर कुछ ही समयमें उसने उस राजपुत्रको देखा जो पृथिवीतलपर शयन कर रहा था, रात्रिसम्बन्धी अन्धकारके पटलको भेदन करनेवाले शरीरकी कान्तिके समूहसे जो अपने आपको दिखला रहा था, जो राहुके ग्रहणके भयसे पृथिवीतलपर उदित होता हुआ मानो सूर्य ही था, गम्भीर एवं उच्च रोनेके शब्दसे जो दिशाओंके अग्रभागको शब्दायमान कर रहा था, साथ ही साथ उत्पन्न हुए प्रतापके तिलगोंकी शंका करनेवाली रत्नमयी अँगूठीकी किरणावलीसे जिसका हाथ पल्लवसे युक्त जैसा जान पड़ता था, और गर्भसम्बन्धी अविरल लालिमासे युक्त शरीर होनेके कारण जो पृथिवीके गर्भसे निकले हुए अंगारके समान जान पड़ता था। देखते ही जिस प्रकार दरिद्र मनुष्य दुर्लभ धनको बड़े आदरके साथ उठाता है उसी प्रकार उसने उस राजपुत्रको बड़े

हर्षकण्टकिताभ्यां कराभ्यामत्यादरमादत्त। आदीयमान एव स कुमारः क्षुतमकरोत्। अश्रावि च तत्क्षणमन्तरिक्षे 'जीव' इति जातजीवितदैर्घ्यशंसी शब्दः। तेन च दिव्यवचनेन नितरां प्रीतः स वैश्यः काश्यपीपतितनयस्य तदेव नाम संकल्पयन्ननल्पविभवमात्मभवनमासाद्य 'कथमनुपरतं सुतमुपरत इति कथितवती' इति कृतकरोषेण पत्नीं भर्त्समानो[1] वत्समस्याः करे समार्पिपत्। सा च गन्धोत्कटभार्या सुनन्दा चन्द्रमसमिव हृदयानन्दनमानन्दबाष्पवारिमुचा चक्षुषा क्षालयन्तीव क्षितितलमिलितधूलीधूसरं तदङ्गमनङ्गमिव रतिरचितचिरसमाराधनमुदितपुरमथनपुनःप्रतिपादितशरीरं कुमारमादरादाददे।

§ ३९. सा च धात्रीवेषधारिणी देवता दयितमरणेन तनयवियोगेन च विजृम्भमाणदारुणशोकदहनदह्यमानहृदयामनभिमतजीवितां विजयां निजानुभावादाश्वास्य तामनभि-

दुर्लभं दुष्प्राप्यं धनं दुर्गत इव दरिद्र इव आलोक्य दृष्ट्वा, हर्षकण्टकिताभ्यां प्रमोदपुलकिताभ्यां कराभ्याम् अत्यादरं भूरिसंमानसहितं यथा स्यात्तथा आदत्त जग्राह। आदीयत इत्यादीयमान एव स कुमारो राजपुत्रः क्षुतं छिक्काम् अकरोत्। तत्क्षणं तत्समये च अन्तरीक्षे गगने 'जात' इति जातस्य पुत्रस्य जीवितं तस्य दैर्घ्यं तच्छंसतीत्येवंशीलो जातजीवितदैर्घ्यसूचकः 'जीव' इति शब्दः अश्रावि श्रुतः। तेन च दिव्यवचनेन अलौकिकवचनेन नितरां सातिशयं प्रीतः प्रसन्नः स वैश्यः काश्यपीपतितनयस्य पृथिवीपतिपुत्रस्य तदेव 'जीव' इत्येव नाम संकल्पयन् निश्चिन्वन् अनल्पविभवं प्रचुरवैभवोपेतं आत्मभवनं स्वसदनम् आसाद्य प्राप्य 'अनुपरतममृतं सुतं उपरतो मृत इति कथं कथितवती' इति कृतकरोषेण कृत्रिमकोपेन पत्नीं भर्त्समानो भर्त्सनां कुर्वाणः अस्याः पत्न्याः करे हस्ते वत्सं पुत्रं समार्पिपत् समर्पितवान्। सा च गन्धोत्कटभार्या सुनन्दा चन्द्रमसमिव चन्द्रमिव हृदयानन्दनं स्वान्ताह्लादकारकम्, रत्यारचितं यच्चिरसमाराधनं दीर्घकालसेवनं तेन मुदितः प्रसन्नो यः पुरमथनः शिवस्तेन पुनः प्रतिपादितं भूयः प्रत्यर्पितं शरीरं यस्य तथाभूतमनङ्गमिव मदनमिव कुमारं पुत्रम् आनन्दबाष्पमेव हर्षाश्रेव वारि जलं मुञ्चतीति तेन चक्षुषा क्षितितलात् पृथिवीतलात् मिलितया धूल्या धूसरं मलिनं तदङ्गं तत्तनुं क्षालयन्तीव आदराद् आददे जग्राह।

§ ३९. सा चेति—धात्रीवेषधारिणी चम्पकमालावेषधारिणी देवता पुत्रप्रणयप्रेरिता देवी दयितमरणेन वल्लभमृत्युना तनयवियोगेन च पुत्रविरहेण च विजृम्भमाणो वर्धमानो यो दारुण-

आदरके साथ, हर्षसे रोमांचित दोनों हाथोंसे उठा लिया। उठाते ही उस कुमारने छींका और उसी समय आकाशमें 'जीव'—जीवित रहो' इस प्रकार पुत्रकी आयुकी दीर्घताको सूचित करनेवाला शब्द सुनाई दिया। उस दिव्य वचनसे अत्यन्त प्रीतिका अनुभव करनेवाला वैश्यपति, राजपुत्रका वही—'जीवक' नाम रखनेका संकल्प करता हुआ अत्यधिक वैभवसे युक्त अपने घर आया और 'तुमने जीवित पुत्रको मरा हुआ कैसे कह दिया' इस प्रकार बनावटी क्रोधसे पत्नीको डाँटते हुए उसने वह पुत्र उसके हाथोंमें सौंप दिया। चन्द्रमाके समान हृदयको आनन्द देनेवाले एवं पृथिवीतलपर लेटनेसे लगी धूलिसे धूसर उस बालकके शरीरको जो हर्षाश्रुरूप जलको छोड़नेवाले नेत्रोंसे धोती हुई सी जान पड़ती थी ऐसी वैश्यपति गन्धोत्कटकी भार्या सुनन्दाने उस बालकको बड़े आदरसे ले लिया। उस समय वह बालक ऐसा जान पड़ता था मानो रतिके द्वारा की हुई चिरकाल तककी सेवासे प्रसन्न महादेवके द्वारा जिसका शरीर पुनः वापस दे दिया गया है ऐसा अनंग—कामदेव ही हो।

§ ३९. उधर धायके वेषको धारण करनेवाली देवीने पतिकी मृत्यु तथा पुत्रके वियोगसे बढ़ते हुए दारुण शोकानलसे जिसका हृदय जल रहा था एवं जिसे जीवित

१. म० भर्त्सयमानो।

नन्दितसनाभिगृहगमनामविदितकर्तव्यां विश्वसत्त्वविस्रम्भवितरणशौण्डदण्डकारण्यान्तःपातिनं पत्रलपरिसरपादपनिर्वासितपथिकपरिश्रमं तापसाश्रममनैषीत् । सा च तत्र संतापकृशानुकृशतरा कृशोदरी करेणुरिव कलभेन धेनुरिव दम्येन श्रद्धेव धर्मेण श्रीरिव प्रश्रयेण प्रज्ञेव विवेकेन तनुजेन विप्रयुक्ता विगतशोभा सती विमुक्तभूषणा तापसवेषधारिणी करुणाभिरिव मूर्तिमतीभिर्मुनिपत्नीभिरुपलाल्यमाना मनसि जिनचरणसरोजमात्मजवृद्धिं च ध्यायन्ती समुचितव्रतशीलपरित्राणपरायणा पाणितलविलूनाभिर्मरकतहरिताभिर्दूर्वामुष्टिभिर्मोदयन्ती नन्दनाभिवर्धनमनोरथविनोदनाय मुनिहोमधेनुवत्सानवात्सीत् । सा च साधितसमीहिता देवता तत्रैव तपोवने ताम-

शोक एव दहनो वह्निस्तेन दह्यमानं हृदयं यस्यास्ताम्, अनभिमतमनभिप्रेतं जीवितं यस्यास्तां विजयां निजानुभावात्स्वमहिम्ना आश्वास्य सान्त्वयित्वा अनभिनन्दितमननुमोदितं सनाभिगृहगमनं सहोदरगृहगमनं यया तथाभूतां अविदितकर्तव्यामज्ञातस्वकर्तव्यां तां विजयां विश्वसत्त्वेभ्यो निखिलप्राणिभ्यो विस्रम्भस्य विश्वासस्य वितरणे प्रदाने शौण्डं समर्थं यद् दण्डकारण्यं दण्डकवनं तदन्तःपातिनं तन्मध्यस्थितं पत्रलैः पत्रयुक्तैः परिसरपादपैस्तटतरुभिर्निर्वासितो दूरीकृतः पथिकपरिश्रमो यस्मिन् तं तापसाश्रमं तपोवनम् अनैषीत् नयति स्म 'अकथितं च' इति द्विकर्मकत्वम् । सा चेति—तत्र तापसाश्रमे संताप एव कृशानुस्तेन दुःखाग्निना कृशतरा अतिक्षीणा सा च कृशोदरी विजया कलभेन शावकेन विप्रयुक्ता करेणुरिव हस्तिनीव, दम्येन तर्णकेन विप्रयुक्ता धेनुरिव गौरिव, धर्मेण चारित्रेण विप्रयुक्ता श्रद्धेव रुचिरिव, प्रश्रयेण विनयेन विप्रयुक्ता श्रीरिव लक्ष्मीरिव, विवेकेन सदसज्ज्ञानेन विप्रयुक्ता प्रज्ञेव बुद्धिरिव तनुजेन पुत्रेण विप्रयुक्ता रहिता विगतशोभा नष्टश्रीः सती विमुक्तानि भूषणानि यया सा त्यक्तालङ्कारा तापसवेषधारिणी तपस्विवेषधारिका, मूर्तिमतीभिः शरीरधारिणीभिः करुणाभिरिवानुकम्पाभिरिव मुनिपत्नीभिस्तापसीभिः उपलाल्यमाना प्रसाद्यमाना मनसि चेतसि जिनचरणसरोजमर्हत्पादारविन्दम् आत्मजवृद्धिं च सुतवृद्धिं च ध्यायन्ती चिन्तयन्ती समुचितयो व्रतशीलयोः परित्राणे रक्षणे परायणा तत्परा, पाणितलविलूनाभिः स्वहस्ततलच्छिन्नाभिः मरकतहरिताभिर्मरकतमणिसदृशहरितवर्णाभिः दूर्वामुष्टिभिः शतपर्वमुष्टिभिः, नन्दनस्य दारकस्याभिवर्धनमनोरथाः पालनाभिप्रायास्तेषां विनोदनाय दूरीकरणाय मुनिहोमधेनुवत्सान् तापसहोमगोतर्णकान् मोदयन्ती प्रसादयन्ती,

---

रहना इष्ट नहीं था ऐसी विजया रानीको अपने प्रभावसे आश्वासन देकर शान्त किया। तदनन्तर जिसने अपने भाईके घर जाना स्वीकृत नहीं किया था, और अपने कर्तव्यका भी जिसे बोध नहीं था ऐसी विजया रानीको वह देवी, समस्त जीवोंको विश्वास देनेमें समर्थ दण्डक वनके अन्तर्गत, हरे-भरे तटवर्ती वृक्षोंसे पक्षियोंका भय दूर करनेवाले तापसोंके आश्रममें ले गयी। सन्तापसे जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था, ऐसी कृशोदरी विजया रानी उस आश्रममें बच्चेसे रहित हस्तिनीके समान, बछड़ेसे रहित गायके समान, और विवेकसे रहित प्रज्ञाके समान पुत्रके बिना सुशोभित नहीं हो रही थी। उसने सब आभूषण उतारकर दूर कर दिये तथा तपस्विनीका वेष धारण कर लिया। जो मूर्तिमती दयाके समान जान पड़ती थीं ऐसी मुनिपत्नियाँ बड़े प्रेमसे उसका लालन करती थीं। वह सदा हृदयमें जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण कमल और पुत्रकी वृद्धिका ध्यान करती रहती थी। अपने योग्य व्रत और शीलकी रक्षामें सदा तत्पर रहती थी तथा पुत्रकी वृद्धिसम्बन्धी मनोरथको बहलानेके लिए मुनियोंकी गायोंके बछड़ोंको अपने हस्ततलसे काटी हुई मरकत मणिके समान दूब की हरी-

वस्थाप्य 'सुतावस्थामवगम्यागमिष्यामि' इत्यभिधाय तिरोऽधात् ।

§ ४०. गन्धोत्कटश्च हर्षोत्कटेन मनसा समसमयप्रहतभेरीमृदङ्गमर्दलकाहलकांस्यताल-शङ्खघोषणमुषितेतरशब्दसमुन्मेषम्, तोषपरवशवंश्यजनजन्यमानसंमर्द[1]विकीर्यमाणपिष्टातकपांसु-धूसरीभवदहस्करालोकम्, उल्लोकवितीर्यमाणवित्तमुदितार्थिवर्गविधीयमानाशीर्वादम्, वचनावचन-विवेकविधुरपरिजनप्रवर्त्यमानलीलालापकलकलसंकुलम्, समन्तादावर्ज्यमानतैलधारापिच्छिल-धरातलस्खलितलोकम्, प्रमोदमयमिव प्रदानमयमिव प्रसूनमयमिव सत्कारमयमिव संगीतमयमिव संमर्दमयमिव लास्यमयमिव लावण्यमयमिव लक्ष्मीमयमिव लक्ष्यमाणमात्मजजन्ममहोत्सवमन्वभूत् ।

अवात्सीत निवासं चकार । साधितं पूर्णं समीहितं यस्यास्तथाभूता सा देवता च तां विजयां तत्रैव तपोवने दण्डकवनान्तःपातिनि तापसाश्रमे, अवस्थाप्य 'सुतावस्थां पुत्रदशाम् अवगम्य ज्ञात्वा आगमिष्यामि' इत्यभिधाय कथयित्वा तिरोऽधात् अन्तर्हिता बभूव ।

§ ४०. गन्धोत्कटश्चेति—गन्धोत्कटश्च तन्नामवैश्यपतिश्च हर्षोत्कटेन प्रमोदनिर्भरेण मनसा समसमयं युगपत् प्रहतास्ताडिता भेर्यादयो वादित्रविशेषास्तेषां घोषणेन शब्देन मुषितोऽपहृत इतरशब्दाना-मन्यशब्दानां समुन्मेषो विकासो यस्मिन् तम्, तोषेण हर्षेण परवशाः परायत्ता ये वंश्यजनाः, कुटुम्बिजना-स्तैर्जन्यमानः क्रियमाणो यः संमर्दो जनसमूहस्तस्मिन् विकीर्यमाणेन प्रक्षिप्यमाणेन पिष्टातकपांसुना पिष्टा-तकनामचूर्णेन धूसरीभवन्मलिनीभवन् अहस्करालोकः सूर्यप्रकाशो यस्मिन् तम्, उल्लोकं प्रचुरतरं यथा स्यात्तथा वितीर्यमाणेन दीयमानेन वित्तेन धनेन मुदिताः प्रसन्ना येऽर्थिवर्गा याचकसमूहास्तैर्विधीयमान आशीर्वादो यस्मिन् तम्, वचनावचनयोर्वक्तव्यावक्तव्यशब्दयोर्विवेकेन बोधेन विधुरा रहिता ये परिजनास्तैः प्रवर्त्यमानो यो लीलालापः क्रीडाभाषणं तस्य कलकलेन कोलाहलेन संकुलस्तम्, समन्तात्परित आवर्ज्य-माना या तैलधारा तया पिच्छिले पङ्किले धरातले स्खलिता लोका यस्मिन् तम्, प्रमोदमयमिवानन्दमयमिव प्रदानमयमिव प्रकृष्टदानमयमिव, प्रसूनमयमिव पुष्पमयमिव, संगीतमयमिव मधुरगीतमयमिव, संमर्द-मयमिव जनसमूहमयमिव, लास्यमयमिव नृत्यमयमिव, लावण्यमयमिव सौन्दर्यमयमिव, लक्ष्मीमयमिव श्रीमयमिव लक्ष्यमाणम् आत्मजस्य जन्ममहोत्सवस्तम् अन्वभूत् । उपसर्गवशाद्भवतेः सकर्मकत्वम् ।

हरी मुट्ठियोंसे सदा प्रसन्न करती हुई रहती थी। इस प्रकार मनोरथको सिद्ध करनेवाली देवी, विजया रानीको उस तपोवनमें ठहरा कर 'मैं पुत्रकी अवस्था जानकर आऊँगी' यह कह अन्तर्हित हो गयी।

§ ४०. इधर वैश्यपति गन्धोत्कटने हर्षसे परिपूर्ण हृदयसे पुत्र जन्मके उस महोत्सवका अनुभव किया जिसमें एक साथ ताड़ित भेरी, मृदङ्ग, मर्दल, काहल, झाँझ, और शङ्खोंके शब्दसे अन्य शब्दोंका उन्मेष अपहृत हो गया था, आनन्दसे विवश कुटुम्बी जनोंके द्वारा की हुई भीड़पर फेंकी जानेवाली गुलालकी धूलिसे जिसमें सूर्यका प्रकाश धूसर हो रहा था, अत्यधिक मात्रामें दिये जानेवाले धनसे प्रसन्न याचकोंके समूह जिसमें आशीर्वाद दे रहे थे, 'कहना चाहिए या नहीं कहना चाहिए'⋯इसके विवेकसे रहित परिजनोंके द्वारा किये जानेवाले विनोदपूर्ण वार्तालापकी कल-कलसे जो व्याप्त था, सब ओर छोड़ी जानेवाली तेलकी धारासे पङ्किल पृथिवीतलपर जहाँ लोग फिसल-फिसलकर गिर रहे थे, तथा जो हर्षमयके समान, दानमयके समान, पुष्पमयके समान, सत्कारमयके समान, संगीतमयके समान, भीड़से तन्मयके समान, नृत्यमयके समान, सौन्दर्यमयके समान, और लक्ष्मीमयके समान दिखाई देता था।

१. क० ख० ग० वंश्यजनसमानसंमर्दम् ।

§ ४१. अज्ञः[1] स तु[2] काष्ठाङ्गारः स्वराज्यलाभजन्मना हर्षेण विहितोऽयमुत्सव इति मन्वानस्तस्मै सगौरवं कुरुकुलमहीपालपरम्परापरिपालितमखिलमपि राजकोशमदिशत् । आदिशच्च तदपेक्षया तत्क्षणे तन्नगरजांश्च जातान्गन्धोत्कटगृह एव तत्सुतेन सह संवर्धयितुम् । तदेवं स्वापतेयेनैव स्वकीयेन सहितस्याह्नि सप्तमे सप्तसप्तिसमतेजसस्तनयस्य जीवन्धर इति प्रथमसंकल्पितं नाम चकार चक्रवर्ती वणिजाम् ।

§ ४२. ततश्च[3] क्रमेण तैश्च समानवयोभिर्वयस्यैरनुजेन सुनन्दानन्दनेन नन्दाढ्येन सममाढ्यपरिबृढस्य गन्धोत्कटस्य सद्मनि वर्त्मनि दिविषदामोषधीनाथ इव नक्षत्रैः, पाकशासनवेश्मनि[4] पारिजात इव कल्पद्रुमैः, उदन्वति कौस्तुभ इव मणिभिरनुवासरं वर्धमानलावण्यः पुण्येन

§ ४१. अज्ञः स त्विति—तु किन्तु अज्ञो विवेकशून्यः स काष्ठाङ्गारः स्वराज्यस्य लाभाज्जन्म यस्य तेन स्वकीयराज्यप्राप्तिसमुत्पन्नेन हर्षेण अयमुत्सवो विहितः कृत इति मन्वानो मन्यमानस्तस्मै गन्धोत्कटाय कुरुकुलस्य कुरुवंशस्य महीपालपरम्परा भूपालसन्ततिस्तया परिपालितं रक्षितम् अखिलमपि समग्रमपि राजकोशं नृपतिनिधानम् अदिशत् ददौ । तदपेक्षया गन्धोत्कटानुरोधेन च तत्क्षणे तत्समये तन्नगरजान् तन्नगर्युत्पन्नान् जातान् पुत्रान् गन्धोत्कटगृह एव तत्सुतेन श्मशानप्राप्तेन सह संवर्धयितुं पोषयितुम् आदिशत् आज्ञपयामास । तदेवं तदित्थं स्वकीयेनैव स्वापतेयेन धनेन सहितस्य सप्तसप्तिसमं सूर्यसदृशं तेजो यस्य तस्य तनयस्य सप्तमेऽह्नि दिवसे वणिजां चक्रवर्ती प्रधानो गन्धोत्कटो वणिक्पतिरिति यावत् 'जीवन्धर' इति प्रथमसंकल्पितं पूर्वनिश्चितं नाम चकार ।

§ ४२. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च क्रमेण समानं वयो येषां तैर्वयस्यैः सखिभिः अनुजेन लघुसहोदरेण सुनन्दाया गन्धोत्कटपत्न्या नन्दनस्तेन नन्दाढ्येन तन्नाम्ना समं सार्धम् आढ्यपरिबृढस्य वैश्यपतेः गन्धोत्कटस्य सद्मनि भवने दिविषदां देवानां वर्त्मनि मार्गे गगन इत्यर्थः नक्षत्रैः समम् ओषधीनाथ इव चन्द्र इव, पाकशासनस्य पुरन्दरस्य वेश्मनि भवने कल्पद्रुमैः सार्धं पारिजात इव कल्पवृक्ष इव, उदन्वति सागरे मणिभिः सह कौस्तुभ इव कौस्तुभमणिरिव अनुवासरं वासरं वासरं प्रति अनुवासरं वर्धमानं लावण्यं यस्य स एवंभूतो जीवन्धरः प्रजानां पुण्येन अवर्धत वृद्धिं जगाम । प्रतिदिवसं प्रतिवासरम्

§ ४१. उधर मूर्ख काष्ठांगारने समझा कि यह उत्सव हमारे लिए राज्यकी प्राप्तिसे उत्पन्न हर्षके कारण किया गया है इसलिए उसने कुरुवंशकी राजपरम्परासे परिपालित सबका-सब राजखजाना गन्धोत्कटको दे दिया। साथ ही गन्धोत्कटके कहे अनुसार उसने यह आज्ञा भी दे दी कि उस समय उस नगरमें जितने बालक उत्पन्न हुए हों उन सबका गन्धोत्कटके घरमें ही उसके पुत्रके साथ लालन-पालन हो। इस प्रकार अपने ही धनसे सहित एवं सूर्यके समान तेजके धारक उस पुत्रका वैश्यपतिने सातवें दिन पहलेसे ही संकल्पित 'जीवन्धर' यह नाम रखा।

§ ४२. तदनन्तर क्रमसे समान अवस्थावाले उन मित्रों और छोटे भाई सुनन्दाके पुत्र नन्दाढ्यके साथ वैश्यशिरोमणि गन्धोत्कटके घर, जीवन्धर, प्रजाओंके पुण्यसे उस प्रकार बढ़ने लगे जिस प्रकार कि आकाशमें नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमा बढ़ता है, इन्द्रके घर कल्पवृक्षोंके साथ पारिजात बढ़ता है, और समुद्रमें अनेक मणियोंके साथ कौस्तुभ मणि बढ़ता है। उस

१. क० ख० ग० अथाज्ञः । २. क० 'स तु' नास्ति । ३. क० ख० ग० चकारो नास्ति । ४. क० ख० ग० पाकशासनपारिजात इव ।

प्रजानामवर्धत जीवन्धरः। तेन च प्रतिदिवसमुदयमासादयता जलनिधिरिव चन्द्रेण कमलाकर इव दिवसकरेण नितरामैधिष्ट गन्धोत्कटः।

§ ४३. प्रमदोत्कटे गच्छति काले कलहंसपोत इव कमलात्कमलं दर्पणमिव करात्करं धात्रीणामुपसर्पन्, प्रसर्पता निर्हेतुकहसितचन्द्रालोकेन बन्धुजनहृदयकुमुदाकरमुल्लासयन् उन्मीलिते निखिलभुवनव्यापिनि निजतेजसि किमनेनेति गृहप्रदीपान्निर्वापयितुमिव स्प्रष्टुमिच्छन्, अतुच्छरत्नशिलाघटितभवनभित्तिसंनिवेशदृश्यमानमात्मप्रतिबिम्बमद्वितीयताभिनिवेशेन नाशयितुमिव परिमृशन्, भाविभर्तृभावावबोधिन्या मेदिन्येव विहारधूलीव्याजेनालिङ्गितशरीरः, समीरतरलिताग्रैरलिकतटविलुलितैरलिनिचयमेचकैः कचपल्लवैर्बालभाव एव वल्लभत्वमभिलषन्त्याः

उदयमभ्युदयम् आसादयता प्राप्नुवता तेन च पुत्रेण गन्धोत्कटः चन्द्रेण जलनिधिरिव सागर इव दिवसकरेण सूर्येण कमलाकर इव पद्मवनमिव नितरां सातिशयम् ऐधिष्ट ववृधे।

§ ४३. प्रमदोत्कट इति—प्रमदेन हर्षेणोत्कटस्तस्मिन् 'मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः' इत्यमरः। कालेऽनेहसि गच्छति सति, कमलात्कमलं कलहंसपोत इव कादम्बशावक इव, दर्पणमिव मुकुन्दमिव धात्रीणामुपमातणां करात्करं हस्ताद्धस्तमुपसर्पन्, प्रसर्पता प्रसरता, निर्हेतुकं निर्निमित्तं हसितमेव चन्द्रालोक इन्दुप्रकाशस्तेन बन्धुजनहृदयकुमुदाकरं बन्धुजनमनःकैरवकाननम् उल्लासयन् विकासयन्, निखिलभुवनं कृत्स्नलोकं व्याप्नोतीत्येवं शीलं तस्मिन् निजतेजसि स्वप्रतापे उन्मीलिते प्रकटिते सति अनेन किं प्रयोजनमिति हेतोः गृहप्रदीपान् निर्वापयितुं विध्यापयितुमिव स्प्रष्टुमिच्छन्, अतुच्छाभिर्विशालाभी रत्नशिलाभिर्घटिता रचिता या भवनभित्तयस्तासां संनिवेशे दृश्यमानमवलोक्यमानम् आत्मप्रतिबिम्बं स्वप्रतिकृतिम् अद्वितीयताया अभिनिवेशस्तेन सदाहमद्वितीयः स्यामित्यभिप्रायेणेव नाशयितुं परिमृशन् स्पृशन्, भावी चासौ भर्तृभावश्चेति भाविभर्तृभावो भाविपतिभावस्तस्याव-बोधिनी तया मेदिन्येव पृथिव्येव विहारधूलीव्याजेन क्रीडापरागदम्भेन आलिङ्गितं शरीरं यस्य तथाभूतः, समीरेण वायुना तरलितं चञ्चलीकृतमग्रं येषां तैः अलिकतटे भालतटे विलुलितास्तैः अलिनिचय इव भ्रमर-

समय उनका सौन्दर्य प्रतिदिन बढ़ता जाता था। जिस प्रकार प्रतिदिन उदयको प्राप्त होनेवाले चन्द्रमासे समुद्र और सूर्यसे कमलोंका समूह बढ़ता है उसी प्रकार प्रतिदिन अभ्युदयको प्राप्त होनेवाले जीवन्धर कुमारसे गन्धोत्कट भी अत्यन्त बढ़ता जाता था—ऐश्वर्यसे सम्पन्न होता जाता था।

§ ४३. तदनन्तर हर्षसे परिपूर्ण समयके व्यतीत होनेपर जिस प्रकार कलहंसका बच्चा एक कमलसे दूसरे कमलपर और दर्पण एकके हाथसे दूसरेके हाथमें जाता है, उसी प्रकार जीवन्धर कुमार भी धायोंके एक हाथसे दूसरे हाथमें जाने लगा। वह फैलते हुए अकारणक हास्यरूपी चन्द्रमाके प्रकाशसे बन्धुजनोंके हृदयरूपी कुमुद-वनको उल्लसित करने लगा। वह कभी घरमें जलते हुए दीपकोंको छूनेकी इच्छा करता था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त संसारमें व्याप्त अपने तेजके प्रकट होनेपर अब इसकी क्या आवश्यकता है? यह विचारकर उन्हें बुझाना ही चाहता था। बड़ी-बड़ी रत्नोंकी शिलाओंसे निर्मित भवनकी दीवालोंमें दिखाई देनेवाले अपने प्रतिबिम्बका स्पर्श करता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो स्वयं अद्वितीय रहनेकी भावनासे उसे नष्ट ही करना चाहता हो। 'यह आगे चलकर हमारा पति होगा' यह जानकर ही मानो क्रीड़ाधूलिके बहाने पृथिवी उसके शरीरका आलिंगन करती थी। वायुसे जिनका अग्रभाग हिल रहा था ऐसे ललाट तटपर

श्रियः क्रीडाभिसरणमनोरथपूरणाय निशामिव दिवसेऽपि निष्पादयन्, कलमधुरगम्भीरेण कर्णामृतवर्षिणा स्वरेण सरस्वतीप्रवेशमङ्गलशङ्खध्वनिमिव सूत्रयन्, लोकनेत्रचकोरपीयमानलावण्यामृतनिःस्यन्दश्चन्द्र इव दिने दिने दर्शितरूपातिशयः, शनैः शनैः शैशवमत्यक्रमीत् । आक्रमीच्च पञ्चमं वयः ।

§ ४४. ततः पुण्येऽह्नि महनीयमुहूर्ते राजपुरीमध्यमध्यासितस्य निष्टप्ताष्टापदघटितेष्टकानिर्मितमूलभित्तेः, उत्तमप्रमाणोज्ज्वलस्य, निखिलावयवशिखरनिहितमणिमौक्तिकनिकरेण तारागणेनेव सततसंचारसंजातश्रमच्छेदाय यथेष्टं निवसता दिवापि दर्शितरजनीशङ्कस्य, पाटितजलधरक्रोडाग्रविन्यस्तचूडामणिमयस्तूपिकाखमणिना शङ्कितसदातनमध्यंदिनस्य, मरकतमणि-

---

समूह इव मेचकाः श्यामास्तैः कचपल्लवैः केशपल्लवैः बालभाव एव शैशवावस्थायामेव वल्लभत्वं पतित्वम् अभिलषन्त्या । वाञ्छन्त्याः श्रियो लक्ष्म्याः क्रीडाभिसरणस्य मनोरथस्तस्य पूरणाय दिवसेऽपि निशां रजनीं निष्पादयन्निव रचयन्निव, कलमधुरगम्भीरेण अव्यक्तमधुरमन्द्रेण कर्णयोरमृतं वर्षतीत्येवंशीलस्तेन श्रवणपीयूषवर्षिणा स्वरेण शब्देन सरस्वत्या ब्राह्म्याः प्रवेशे मङ्गलशङ्खध्वनिमिव मङ्गलकम्बुशब्दमिव सूत्रयन् प्रकटयन्, लोकनेत्राणि जननयनान्येव चकोरा जीवंजीवास्तैः पीयमानो लावण्यामृतस्य सौन्दर्यसुधाया निःस्यन्दो यस्य तथाभूतश्चन्द्र इव दिने दिने प्रतिदिनं दर्शितः प्रकटितो रूपातिशयो यस्य तथाभूत इव शनैः शनैर्मन्दं मन्दं शैशवं बालभावम् अत्यक्रमीत् व्यपगमयामास । आक्रमीच्च प्राप च पञ्चमं वयः पञ्चवर्षात्मिकांवस्थाम् ।

§ ४४. तत इति—ततस्तदनन्तरं पुण्ये पवित्रे अहनि दिवसे महनीयमुहूर्ते प्रशस्तमुहूर्ते श्रीजिनालयस्य श्रीजिनमन्दिरस्येति दूरान्वयः । श्रीजिनालयस्य विशेषणान्याह । राजपुरीति—राजपुर्या नगर्या मध्यम् अध्यासितस्याधिष्ठितस्य, निष्टप्तेन संतप्तेनाष्टापदेन स्वर्णेन घटिता निर्मिता या इष्टकास्ताभिर्निर्मिता मूलभित्तयः मूलकुड्या यस्य तस्य, उत्तमप्रमाणेनोज्ज्वलस्तस्य, निखिलावयवानां समस्ताङ्गानां शिखरेषु निहितानि यानि मौक्तिकानि मुक्ताफलानि तेषां निकरः समूहस्तेन, सततसंचारेण निरन्तरगमनेन संजातः समुत्पन्नो यः श्रमः खेदस्तस्य छेदाय दूरीकरणाय यथेष्टं यथेच्छं निवसता निवासं कुर्वता तारागणेनेव नक्षत्रनिवयेनेव दिवापि दिवसेऽपि दर्शिता प्रकटिता रजनीशङ्का रात्रिसंशीतिर्येन तस्य, पाटितो विदारितो जलधराणां मेघानां क्रोडो मध्यभागो येन तथाभूतेऽग्रे विन्यस्ता स्थापिता या चूडामणिमयी स्तूपिका राशिः सैव खमणिः सूर्यस्तेन शङ्कितं सदातनं सर्वदा विद्यमानं मध्यंदिनं येन तस्य, मरकतमणिमये

लटकते हुए भ्रमर समूहके समान काले-काले केशोंसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो बाल्य अवस्थामें ही पति बनानेकी इच्छा करनेवाली लक्ष्मीके क्रीड़ाविषयक अभिसारके मनोरथको पूर्ण करनेके लिए दिनमें भी रात्रिका निर्माण कर रहा था। अव्यक्त, मधुर, गम्भीर और कानोंमें अमृतकी वर्षा करनेवाले स्वरसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो सरस्वतीके प्रवेशके समय बजनेवाले माङ्गलिक शंखोंकी ध्वनि ही प्रकट कर रहा हो। मनुष्यके नेत्ररूपी चकोरोंके द्वारा जिसके सौन्दर्यरूपी अमृतका निष्यन्द पिया जा रहा है ऐसे चन्द्रमाके समान वह दिन-प्रतिदिन अपने रूपके अतिशयको दिखला रहा था। इस तरह धीरे-धीरे उसने बाल्यावस्था व्यतीत की और पाँचवें वर्षकी अवस्थामें पदार्पण किया।

§ ४४. तदनन्तर पुण्य दिवसके श्लाघनीय मुहूर्तमें, जो राजपुरीके मध्य भागमें स्थित था, जिसकी मूल दीवालें तपाये हुए स्वर्णसे निर्मित ईंटोंसे बनी हुई थीं, जो उत्तम प्रमाणसे देदीप्यमान था, अपने समस्त अवयवोंके शिखरों पर खचित मणि और मोतियोंके समूहसे जो ऐसा जान पड़ता था मानो निरन्तर घूमते रहनेसे उत्पन्न थकावटको दूर करनेके लिए इच्छानुसार निवास करनेवाले ताराओंके समूहसे दिनमें भी रात्रिकी शङ्का दिखला रहा था,

मयाजिरपृष्ठप्रसारिभिर्मौक्तिकवालुकाजालैः प्रतिफलितमिव सतारं तारापथं दर्शयतः, स्फाटिकशिलाघटितबलिपीठोपकण्ठप्रतिष्ठितमहार्हमणिमयमानस्तम्भस्य, संस्तवव्याजेन शब्दमयमिव सर्वं जगत्कुर्वता[1] मस्तकन्यस्तहस्ताञ्जलिनिवहनिभेन भगवन्तमर्चयितुमाकाशेऽपि कमलवनमापादयतेव भव्यलोकेन भासितोद्देशस्य, हाटकघटितसालपक्षपुटेन वीक्षितुमन्तरिक्षपर्यवसानमुड्डयनमिव कर्तुमुद्यतेन रजतघटितकवाटपुटविनिर्गच्छन्त्या निसर्गशुचिशुक्लध्यानदेश्यया रश्मिनिकरवेत्रलतया ध्यानपरयमधर[2]सविधवि[3]निर्गच्छदेनोनिकरमिवान्धकारमतिदूरमुत्सारयता शिखरखचितपद्मराग-प्रभया प्रसर्पन्त्या वहिर्गच्छदतुच्छभव्यभक्तिरागमिव प्रदर्शयता सततसंभवदहमहमिकाप्रवेशनि-

नीलमणिनिर्मितेऽजिरपृष्ठेऽङ्गणतले प्रसारितैर्विकीर्णैः मौक्तिकवालुकानां मुक्ताफलकणानां जालानि समूहास्तैः प्रतिफलितं प्रतिबिम्बितं सतारं सनक्षत्रं तारापथं गगनं दर्शयत इव प्रकटयत इव, स्फटिकशिलाभिः श्वेतोपलविशेषैर्घटितानि रचितानि यानि बलिपीठानि पूजास्थण्डिलानि तेषामुपकण्ठे समीपे प्रतिष्ठिताः स्थापिता महार्हमणिमया महामूल्यमणिनिर्मिता मानस्तम्भा यत्र तस्य, समन्तात्स्तवः संस्तवस्तस्य व्याजेन सर्वं निखिलं जगत् शब्दमयमिव ध्वनिमयमिव कुर्वता विदधता मस्तकेषु शिरःसु न्यस्ताः स्थापिता ये हस्ताञ्जलयस्तेषां निवहस्य समूहस्य निभेन व्याजेन भगवन्तं जिनेन्द्रम् अर्चयितुं पूजयितुमाकाशेऽपि कमलवनमापादयतेव स्थापयतेव भव्यलोकेन सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यतीति भव्यः स चासौ लोकस्तेन भासितः शोभित उद्देशः स्थानं यस्य तस्य, हाटकघटितः स्वर्णरचितो यः साल एव प्राकार एव पक्षपुटो गरुत्पुटस्तेन अन्तरिक्षपर्यवसानं गगनान्तं वीक्षितुं द्रष्टुम् उड्डयनं समुत्पतनं कर्तुमुद्यतेनेव विधातुं तत्परेणेव रजतघटितेभ्यो दुर्वर्णनिर्मितेभ्यः कवाटपुटेभ्यो विनिर्गच्छन्ती विनिःसरन्ती तया निसर्गेण प्रकृत्या शुचि पवित्रं यच्छुक्लध्यानं ईषदूनं तदिति निसर्गशुचिशुक्लध्यानदेश्या तया रश्मिनिकरः किरणकलाप एव वेत्रलता तया ध्यानपरा ध्यानोद्यता ये यमधना मुनयस्तेषां सविधात्समीपान्निर्गच्छन् निःसरन् य एनोनिकरः पापप्रचयस्तमिव अन्धकारं तिमिरम् अतिदूरं विप्रकृष्टतरम् उत्सारयता, प्रसर्पन्त्या प्रसरणशीलया शिखरखचितानां शृङ्गनिस्यूतानां पद्मरागाणामरुणमणिविशेषाणां प्रभा दीप्तिस्तया भव्यानां भक्तिराग इति भव्यभक्तिरागः अतुच्छो विपुलो यो भव्यभक्तिराग इति अतुच्छभव्यभक्तिरागः बहिर्गच्छन् बहिर्निःसरन् योऽतुच्छभव्यभक्तिरागस्तं प्रदर्शयतेव प्रकटीकुर्वतेव, सततं शश्वत् संभवन्

मेघके मध्यभागको चीरनेवाले अग्रभागमें रखे हुए चूडामणि सदृश कलशा रूपी सूर्यसे जहाँ सदा मध्याह्न कालकी शंका उत्पन्न होती रहती थी, मरकतमणियोंसे निर्मित आंगनमें फैलाये हुए मोतियोंके कणोंसे जो ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओंके साथ प्रतिबिम्बित आकाश को ही दिखला रहा था, जिसकी स्फटिककी शिलाओंसे निर्मित पूजाकी चौकीके समीप अत्यन्त श्रेष्ठ मणियोंसे निर्मित मानस्तम्भ प्रतिष्ठित था, स्तवनके बहाने जो मानो समस्त जगत्को शब्दमय कर रहे थे और मस्तकपर रखे हुए हस्ताञ्जलि समूहके बहाने जो मानो भगवान् की पूजा करनेके लिए आकाशमें भी कमलवन दिखला रहे थे ऐसे भव्यजीवोंके द्वारा जिसका स्थान सुशोभित था, स्वर्णनिर्मित कोटरूपी पङ्खोंकी पुटसे युक्त होनेके कारण जो आकाशका अन्त देखनेके उद्देश्यसे उड़ान भरनेके लिए ही मानो उद्यत थे, जो चाँदीसे निर्मित किवाड़ोंकी पुटसे निकलने वाली, स्वभावसे निर्मल पवित्र शुक्ल ध्यानके तुल्य किरणावली रूपी छड़ोंसे ध्यानमें तत्पर मुनिजनोंके समीपसे निकलते हुए पापसमूहरूपी अन्धकारको बहुत दूर हटा रहे थे, जो शिखरोंपर खचित पद्मराग मणियोंकी फैलती हुए प्रभासे ऐसे जान पड़ते थे मानो बाहर निकलते हुए भव्यजीवोंके भक्तिरूपी रागको ही दिखला रहे थे, और

१. म० सर्वजगत् कुर्वता। २. ग० यमधन। ३. क० ख० ग० 'वि' नास्ति।

विड्वरणिपमकुटकोटिकषणमसृणितमणिभित्त्युदरभासुरेण गोपुरचतुष्टयेनाधिष्ठितस्य, कोमलप्रवालदण्डाग्रग्रथितानामविरतयथार्हसपर्याप्रमोदसततसंनिहितसर्वदेवतानिःश्वासनिभेन मातरिश्वना सलीलं कम्पितानां पताकानां किंचित्कुञ्चितैरग्रहस्तैरास्तिकलोकमिव समर्पयितुं धर्मामृतमाह्वयतः, प्रतिप्रदेशव्यवस्थापितसमस्तदेवताप्रतिमाप्रकरेण प्रचुरभक्तिचोदितशतमखमुखाखिलमखभुगागमनमिवादर्शयतः, प्रकृतिशान्तैर्मन्त्रमयीभूतवाङ्मयसर्वस्वैः संसारकान्तारदावदहनज्ञानध्यानपरैः परहितनिरतस्वान्तैरेकान्तमताभिषङ्गभुजंगदंशनिरंशक्षीणजगदनेकान्तसंजीवनसमर्पणपरं परमागममुपदिशद्भिर्मुनिवरैरलंकृतमुनिनिकायविराजितस्य, राजपुरीपर्यायपारिजातभूरुहप्ररोहबीजभूतस्य,

योऽहमहमिकाप्रवेशः 'अहं पूर्वं प्रविशामि' इत्येवं प्रवेशस्तेन निविडाः संमर्देनोपस्थिता ये धरणिपा राजानस्तेषां मुकुटकोटीनां मौल्यग्रभागानां कषणेन संघर्षणेन मसृणिताः स्निग्धा या मणिभित्तयो रत्नकुड्यास्तासामुदरेण मध्यभागेन भासुरं देदीप्यमानं तेन गोपुरचतुष्टयेन प्राकारस्थितप्रधानद्वारचतुष्केण अधिष्ठितस्य सहितस्य, कोमलश्चासौ प्रवालदण्डश्च विद्रुमदण्डश्चेति कोमलप्रवालदण्डस्तस्याग्रे ग्रथितास्तासाम्, अविरतं निरन्तरं या यथार्हसपर्या यथायोग्यनमस्या तस्याः प्रमोदेन प्रहर्षेण सततं सर्वदा संनिहिता निकटस्थिता याः सर्वदेवतास्तासां निश्वासस्य श्वासोच्छ्वासस्य निभेन सदृशेन मातरिश्वना वायुना सलीलं यथा स्यात्तथा कम्पितानां धूतानां पताकानां वैजयन्तीनां किंचित्कुञ्चितैरीषन्मोटितैः अग्रहस्तैरग्रभागपाणिभिः आस्तिकलोकं श्रद्धालुजनं धर्मामृतं धर्मसुधां समर्पयितुमिव प्रदातुमिव आह्वयतः आमन्त्रयतः, प्रतिप्रदेशं प्रतिस्थानं व्यवस्थापिता याः समस्तदेवतानां प्रतिमास्तासां प्रकरेण समूहेन प्रचुरभक्त्या प्रबलानुरागेण चोदिताः प्रेरिता ये शतमखमुखा इन्द्रमुख्या अखिलमखभुजो देवास्तेषामागमनमिव आदर्शयतः प्रकटयतः 'मुखं तु वदने मुख्यारम्भे द्वाराभ्युपाययोः' इति यादवः। प्रकृत्या शान्तास्तैर्निसर्गोपशान्तैः, मन्त्रमयीभूतं मन्त्ररूपेण परिणतं वाङ्मयमेव शब्दजातमेव सर्वस्वं सारधनं येषां तैः, संसारकान्तारस्य भवारण्यस्य दावदहनो दावाग्निस्तद्रूपे ये ज्ञानध्याने तयोः परास्तैः, परेषां हिते कल्याणे निरतं लीनं स्वान्तं येषां तैः, एकान्तमताभिषङ्ग एकान्तमतासक्तिरेव भुजङ्गो नागस्तस्य दंशेन निरंशं यथा स्यात्तथा सर्वांशतयेति यावत् क्षीणं नश्यद् यद् जगत् तस्यानेकान्त एव संजीवनं संजीवनौषधं तस्य समर्पणे परं लीनं परमागमं वीतरागसर्वज्ञजिनेन्द्रप्रणीतपरमशास्त्रम् उपदिशद्भिर्मुनिवरैर्यतिश्रेष्ठैः अलंकृतो यो मुनिनिकायो यतिसमूहस्तेन विराजितस्य शोभितस्य, राजपुरीपर्यायो यस्य स राजपुरीपर्यायस्तथाभूतो यो भूरुहप्ररोहो वृक्षाङ्कुरस्तस्य बीजभूतस्य बीजरूपस्य, कुरुकुलक्षत्रियपुत्राणां

जो निरन्तर होनेवाले अहंप्रथमिका रूप प्रवेशसे सान्द्र राजाओंके मुकुटोंकी कोटीके घिसनेसे चिकनी-चिकनी दिखनेवाली मणिमयी दीवालोंके मध्यभागसे देदीप्यमान थे ऐसे चार गोपुरोंसे जो युक्त था, कोमल मूँगाओंके दण्डके अग्रभागमें गुम्फित एवं निरन्तर यथायोग्य पूजाके हर्षसे सदा निकटस्थ रहनेवाले समस्त देवोंके श्वासोच्छ्वासके समान वायुसे लीला पूर्वक कम्पित पताकाओंके कुछ कुछ संकोचे हुए अग्रभाग रूपी हाथोंसे जो धर्मरूपी अमृतको प्रदान करनेके लिए मानो श्रद्धालुजनोंको बुलाता रहता था, स्थान-स्थानपर रखे हुए समस्त देवोंकी प्रतिमाओंके समूहसे जो मानो तीव्रभक्तिसे प्रेरित इन्द्र आदि समस्त देवोंके आगमनको ही दिखला रहा था, जो स्वभावसे शान्त थे, जिनका वाङ्मय रूप सर्वस्व मन्त्र तुल्य था, जो संसाररूपी अटवीको जलानेके लिए दावानलके समान ज्ञान और ध्यानमें निमग्न थे, जिनका हृदय परहितमें लीन रहता था, जो एकान्तमतके आक्रमणरूपी सर्पके काटनेसे अत्यन्त क्षीण होनेवाले जगत्को अनेकान्तरूपी संजीवन औषधिके समर्पण करनेमें तत्पर परमागमका उपदेश दे रहे थे ऐसे उत्तममुनियोंसे अलंकृत मुनिसङ्घोंसे जो सुशोभित

कुरुकुलक्षत्रियपुत्रार्हाध्ययनाभिषेकाद्यारम्भभूमेर्महतः श्रीजिनालयस्य हरिताश्वोदयहरिद्भाजि भासुरमणिमौक्तिकमालाञ्चिते काञ्चनसजलकलशभृङ्गारप्रमुखबहलपरिच्छदलाञ्छितवेदिकोपशोभिनि [प्रलम्बमाननानाविधप्रसूनदामसुरभितककुभि दामशङ्काश्रितस्फाटिकस्तम्भादुत्पतदलिकुलझंकारसूचितमङ्गलपाठकवचसि भित्तिलिखितचित्रदर्शितसुकृतेतरपरिपाकफलभवप्रबन्धप्रचुरभक्तिप्रेरितभव्यसार्थप्रस्तूयमानसंस्तवकलकलमुखरितवियति] प्रान्त[1]प्रलम्बमानवन्दनादामनि प्रत्यग्रगोमयोपलेपहरितभुवि विप्रकीर्णमङ्गललाजकुसुमहसितहरिति हरहसितधवलवितानवाससि

कुरुवंशराजसूनूनामर्हाणि योग्यानि यान्यध्ययनाभिषेकाद्यानि तेषामारम्भभूमेरारम्भस्थानस्य श्रीजिनालयस्य श्रीजिनमन्दिरस्य हरिताश्वोदयहरिद्भाजि सूर्योदयकाष्ठास्थिते महति विद्यामण्डपे विद्यालय इति दूरेणान्वयः। तस्यैवान्यविशेषणान्युच्यन्ते—भासुरा देदीप्यमाना या मणिमौक्तिकमाला रत्नमुक्ताफलपङ्क्तयस्ताभिरञ्चिते शोभिते, काञ्चनसजलकलशभृङ्गारप्रमुखैः स्वर्णनिर्मितसजलघटकनकालुकाप्रधानैः बहलपरिच्छदैरनेकोपकरणैर्लाञ्छिता सहिता या वेदिका वितर्दिका तयोपशोभत इत्येवं शीलस्तस्मिन् 'भद्रकुम्भः पूर्णकुम्भो भृङ्गारः कनकालुका' इत्यमरः [प्रलम्बमानैः स्रंसमानैर्नानाविधप्रसूनदामभिर्विविधवर्णपुष्पस्रग्भि सुरभिताः सुगन्धिताः ककुभो दिशो यस्मिन् तस्मिन्, दामशङ्कया सितकुसुमस्रक्सन्देहेन श्रितः सेवितो यः स्फटिकस्तम्भः श्वेतोपलविशेषनिर्मितस्तम्भस्तस्मात् उत्पततः समुड्डीनस्य अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य झङ्कारेणाव्यक्तशब्देन सूचितानि मङ्गलपाठकानां चारणानां वचांसि यस्मिन् तस्मिन्, भित्तिषु कुड्येषु लिखितैरङ्कितैश्चित्रैर्दर्शितः प्रकटितं सुकृतेतरयोः पुण्यपापयोः फलं येषु तथाभूता ये भवप्रबन्धाः पर्यायोपाख्यानानि तेषां प्रचुरभक्त्या गाढानुरागेण प्रेरितश्चोदितो यो भव्यसार्थो भविकजनसमूहस्तेन प्रस्तूयमानैः प्रारभ्यमाणैः संस्तवकलकलैः स्तोत्रध्वनिभिर्मुखरितं व्याप्तं वियद् गगनं यस्मिन् तस्मिन्] प्रान्ते प्रलम्बमानानि स्रंसमानानि वन्दनादामानि वन्दनास्रजो यस्मिन् तस्मिन्, प्रत्यग्रगोमयस्य नव्यगव्यस्योपलेपेन हरिता हरिद्वर्णा भूर्यस्मिन् तस्मिन्, विप्रकीर्णैर्यत्र तत्र प्रक्षिप्तैर्मङ्गललाजकुसुमैर्मङ्गलोद्देश्यकभर्जितधान्यपुष्पकुसुमैर्हसिताः श्वेतायमाना हरितो दिशा यस्मिन् तस्मिन्, हरहसितमिव शिवाट्टहास इव धवलं शुक्लं वितानवास उल्लोचचेलं यस्मिन् तस्मिन्, वसुधासुरैर्विप्रैः प्रवर्तितं प्रारब्धं

था, जो राजपुरीरूपी कल्पवृक्षकी उत्पत्तिके लिए बीजस्वरूप था, और जो कुरुवंशके क्षत्रियपुत्रोंके योग्य अध्ययनसम्बन्धी अभिषेक आदिकी प्रारम्भ भूमि था ऐसे विशाल जिनमन्दिरकी पूर्व दिशामें एक बहुत बड़ा विद्यामण्डप स्थित था। वह विद्यामण्डप देदीप्यमान मणि और मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित था, जलसे परिपूर्ण स्वर्णमय कलश और झारी आदि अत्यधिक उपकरणोंसे युक्त वेदिकासे सुशोभित था, लटकती हुई नाना प्रकारकी पुष्पमालाओंसे उसकी दिशाएँ सुगन्धित हो रही थीं, पुष्पमालाओंकी आशङ्कासे आश्रित स्फटिकके खम्भोंसे उड़ते हुए भ्रमर समूहकी झंकारसे उसमें मङ्गलपाठ करनेवालोंके वचन सूचित हो रहे थे—भ्रमरावलीकी गुनगुनाहटसे ऐसा जान पड़ता था मानो उसमें मङ्गल पाठक मङ्गलोच्चारण ही कर रहे थे, दीवालोंपर लिखित चित्रोंके द्वारा उसमें पुण्य और पापके उदय जन्य फलसे युक्त संसारकी दशा दिखलायी गयी थी, अत्यधिक भक्तिसे प्रेरित भव्यसमूहके द्वारा प्रारम्भ किये हुए स्तवनोंकी कल-कलसे वहाँका आकाश शब्दायमान हो रहा था, उसके समीप ही बन्दनवार लटक रहे थे, नवीन गोबरके लीपनेसे वहाँकी भूमि हरी-हरी दिख रही थी, बिखेरी हुई माङ्गलिक लाई और फूलोंसे उसकी दिशाएँ हँस रही थीं—सफेद-सफेद हो रही थीं, वहाँके चँदोवाका वस्त्र महादेवके अट्टहासके समान सफेद था, ब्राह्मणोंके द्वारा

१. क० ख० ग० प्रकोष्ठान्तर्गतः पाठो नास्ति। २. क० ख० ग० प्रलम्बितप्रान्तप्रलम्बमान...।

वसुधासुरप्रवर्तितपुण्याहकर्मणि कालागुरुधूपधूमपटलनिमीलितातपसंपदि[1] सत्क्रियमाणसकलमनीषिणि प्रहतपटहपटुरवभरितदशदिशि संख्यातीतशङ्खकाहलतालोत्तालरवबधिरितश्रवसि संगीतारम्भपुनरुक्तस्फुरितसौन्दर्ययुवतिलोकोद्योतिनि महति विद्यामण्डपे महेन्द्रमकुटपादपीठलुठितचरणसरोरुहस्य स्याद्वादामृतवर्षिदिव्यागमपयोदनिर्वापितसंसारदावानलस्य भगवतो जिनेश्वरस्य यथाविधि विधीयमाने महार्हे महामहे स्वतःप्रकाशितनिरतिशयसारस्वतेन निखिलशास्त्रशाणोपलकषणनिशितशेमुषीमुषितपुरुहूतपुरोहितगर्वेण दुर्वारवादिपरिषदवलेपपर्वतपाटनपाटवप्रकटितस्याद्वादवज्रेणार्यनन्द्याचार्येण गलिततुषखण्डेष्वखण्डेषु तण्डुलेषु पत्रेषु च भर्मनिर्मितेष्ववतार्य सप्रणयं प्रति-

पुण्याहकर्मस्वस्तिविधानं यस्मिन् तस्मिन्, कालागुरुधूपस्य धूमपटलेन धूम्रसमूहेन निमीलिता तिरोहिताऽऽतपसंपद् घर्मशोभा यस्मिन् तस्मिन्, सत्क्रियमाणा आद्रियमाणाः सकलमनीषिणो निखिलविद्वान्सो यस्मिन् तस्मिन्, प्रहतपटहस्य ताडितभेर्याः पटुरवेण तीव्रशब्देन भरिता व्याप्ता दश दिशो यस्मिन् तस्मिन्, संख्यातीतानामपरिमितानां शङ्खकाहलतालानां शङ्खादिवादित्रविशेषाणामुत्तालरवेण समुत्कटशब्देन बधिरितानि श्रवांसि श्रोत्राणि यस्मिन् तस्मिन्, संगीतारम्भेण पुनरुक्तस्फुरितं भूयो भूयः प्रकटितं सौन्दर्यं लावण्यं यस्य तथाभूतो यो युवतिलोकस्तरुणीसमूहस्तेनोद्योतते प्रकाशत इत्येवं शीलं तस्मिन् महति विशाले विद्यामण्डपे विद्यायतने महेन्द्रस्य मकुट एव मौलावेव पादपीठे लुठिते चरणसरोरुहे पादारविन्दे यस्य तस्य, स्याद्वाद एवामृतं पीयूषं तस्य वर्षीयो दिव्यागम एव पयोदो मेघस्तेन निर्वापितो विध्यापितः संसार एव दावानलो येन तस्य, भगवतो जिनेश्वरस्य परमैश्वर्यवतो जिनेन्द्रस्य महार्हे महाश्रेष्ठे महामहे महापूजायां यथाविधि विधिमनतिक्रम्य विधीयमाने क्रियमाणे सति, स्वतः स्वयमेव प्रकाशितं प्रकटितं निरतिशयं सारस्वतं वाङ्मयं यस्य तेन, निखिलशास्त्राण्येवोपलाः पाषाणास्तेषु कषणेन निशिता तीक्ष्णा या शेमुषी बुद्धिस्तया मुषितोऽपहृत. पुरुहूतपुरोहितस्य बृहस्पतेर्गर्वो दर्पो येन तेन, दुर्वारो दुःखेन वारयितुं शक्यो यो वादिपरिषदो वादिसमूहस्यावलेपपर्वतो गर्वगिरिस्तस्य पाटने विदारणे यत्पाटवं चातुर्यं तेन प्रकटितं स्याद्वादवज्रं यस्य तेन, आर्यनन्द्याचार्येण तन्नामाचार्येण गलिततुषखण्डेषु दूरीकृतपुलाकशकलेषु तण्डुलेषु शालेयेषु भर्मनिर्मितेषु स्वर्णरचितेषु पत्रेषु च अवतार्य

उसमें पुण्याहवाचन हो रहा था, कृष्णागुरुकी धूपके धूम्रपटलसे वहाँ घामका प्रभाव रुक गया था, उसमें समस्त विद्वानोंका सत्कार होता रहता था, ताडित भेरियोंके जोरदार शब्दसे उसकी दशों दिशाएँ भर गयी थीं, असंख्यात शंख, काहल और तालोंके उच्च शब्दसे वहाँ कान बहरे हो रहे थे, और संगीतके प्रारम्भमें पुनरुक्त रूपसे देदीप्यमान सौन्दर्यसे युक्त तरुणस्त्रियोंके उद्योतसे युक्त था। उस विद्यामण्डपमें जब इन्द्रके मुकुटरूपी पादपीठपर लोटते हुए चरणकमलोंसे युक्त, एवं स्याद्वादरूपी अमृतकी वर्षा करनेवाले दिव्य आगमरूपी मेघसे संसाररूपी दावानलको बुझानेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌की अतिशय प्रशस्त महामह नामक पूजा विधिपूर्वक की जा रही थी तब जिन्हें असाधारण वाङ्मय स्वतः प्रकाशित हुआ था, समस्त शास्त्ररूपी कसौटीपर कसनेमें अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा जिन्होंने इन्द्रके पुरोहित—बृहस्पतिका गर्व हर लिया था, और दुःखसे निवारण करने योग्य वादिसमूहके गर्वरूपी पर्वतको विदारण करनेवाले चातुर्यसे जिन्होंने स्याद्वादरूपी वज्र प्रकट किया था ऐसे आर्यनन्दी आचार्यके द्वारा, छिलकोंके टुकड़ोंसे रहित अखण्ड चावलों और स्वर्णनिर्मित पत्तोंपर अव-

१. क० ख० ग० धूमपटलमिलितातपसंपदि।

पादितां सिद्धपरमेश्वरदिव्यसंनिधौ 'सिद्धं नमः' इति पूर्वपदप्रशस्तां सिद्धमातृकारूपिणीं वाणीं जीवंधरः सप्रणामं प्रत्यग्रहीत् ॥

§ ४५. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ
सरस्वतीलम्भो नाम प्रथमो लम्भः[1] ।

■

सप्रणयं सस्नेहं प्रतिपादितां प्ररूपितां 'सिद्धं नमः' 'सिद्धपरमेष्ठिनं प्रति नमः' इति पूर्वपदेन आद्यपदेन प्रशस्ता श्रेष्ठा तां सिद्धमातृकारूपिणीं वर्णमालारूपिणीं वाणीं सरस्वतीं सिद्धपरमेश्वरस्य विगताष्टकर्मकदम्बकस्य सिद्धपरमेष्ठिनः सन्निधौ समीपे सिद्धप्रतिमासमीप इति यावत्, जीवन्धरः सात्यन्धरिः सप्रणामं सनमस्कारं प्रत्यग्रहीत् स्वीचक्रे ।

§ ४५. इति श्रीमता वादीभसिंहसूरिणा विरचितस्तस्मिन् गद्यचिन्तामणौ एतन्नामगद्यकाव्ये सरस्वत्या लम्भो यस्मिन् सरस्वतीलम्भ एतन्नामा प्रथम आद्यो लम्भः प्रकरणं समाप्तः । इति शब्दः समाप्त्यर्थसूचकः 'इति हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिषु' इत्यमरः ।

■

तरण कराकर सिद्ध परमेष्ठीके दिव्य संनिधानमें स्नेहके साथ प्रदान की हुई "सिद्धं नमः" इस प्रथमपदसे प्रशस्त वर्णसमाम्नायरूप वाणीको जीवन्धर कुमारने प्रणाम पूर्वक ग्रहण किया ।

§ ४५. इस प्रकार श्रीमान् वादीभसिंह सूरिके द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें
सरस्वतीलम्भ नामका पहला लम्भ समाप्त हुआ ।

■

१. क० ग० म० लम्बः ।

द्वितीयो लम्भः

§ ४६. अथ महार्हे रत्नशिलाघटिततले स्फटिकदृषदुपरचितभित्तिभासुरे वासरालोकपरिभाविमहेन्द्रनीलनिर्मिताङ्गणभुवि दुग्धजलधिफेनधवलवितानविभ्राजिनि विराजमानसरस्वतीप्रतिमाञ्चितचित्रपटे संचितसकलग्रन्थकोशे कोशनिहितनैकशतनिस्त्रिंशनिरन्तरे स्तबरकनिचोलचुम्बितचारुचापदण्डे कुण्डलितशिखरमनोहरचण्डयष्टिनि निष्टप्तहाटकघटितदण्डकान्तकुन्ते प्रान्तपुञ्जितनिशितशरप्रकरे प्रासतोमरभिण्डिपाल प्रमुखनिखिलायुधनिरवकाशितखलूरिकोद्देशे कुशेशयासनकुटुम्बिनीकोशगृह इव दृश्यमाने महति विद्यामण्डपे पाण्डित्यपयोधिपारदृश्वना विश्रुतप्रभावेण

---

§ ४६. अथेति—अथ सिद्धमातृकाग्रहणानन्तरं महार्हे महाश्रेष्ठे रत्नशिलाभिर्घटितं खचितं तलं यस्य तस्मिन् 'स्वरूपानूर्ध्वयोस्तलम्' इत्यमरः स्फटिकदृषद्भिः श्वेतोपलविशेषैरुपरचिता निर्मिता या भित्तयः कुड्यास्ताभिर्भासुरे देदीप्यमाने वासरालोकस्य दिनप्रकाशस्य परिभाविभिस्तिरस्कारिभिर्महेन्द्रनीलैर्नीलवर्णमणिविशेषैर्निर्मिता रचिताङ्गणभूश्चत्वरभूमिर्यस्य तस्मिन्, दुग्धजलधेः क्षीरसागरस्य फेनवत् डिण्डीरवद् धवलेन श्वेतेन वितानेन चन्द्रोपकेण विभ्राजते शोभत इत्येवं शीलस्तस्मिन्, विराजमाना शोभमाना या सरस्वतीप्रतिमा ब्राह्मीप्रतिकृतिस्तयाञ्चितः शोभितश्चित्रपटो यस्मिन् तस्मिन् संचितः संगृहीतः सकलग्रन्थानां निखिलशास्त्राणां कोशो निधिर्यस्मिन् तस्मिन्, कोशेषु खड्गपिधानेषु निहिताः स्थापिता ये नैकशतनिस्त्रिंशा बहुशतखड्गास्तैर्निरन्तरे व्याप्ते, स्तबरकनिचोलैरावरकवस्त्रविशेषैश्चुम्बिताश्चारुचापदण्डाः सुन्दरकोदण्डदण्डा यस्मिन् तस्मिन्, कुण्डलितेन वक्राकारेण शिखरेणाग्रभागेन मनोहरा चण्डयष्टयस्तीक्ष्णदण्डविशेषा यस्मिन् तस्मिन्, निष्टप्तहाटकेन संतप्तस्वर्णेन घटिता निर्मिता ये दण्डास्तैः कान्ता मनोहरा कुन्ताः प्रासा यस्मिन् तस्मिन्, प्रान्ते समीपे पुञ्जितो राशीकृतो निशितशरप्रकरस्तीक्ष्णबाणसमूहो यस्मिन् तस्मिन्, प्रासतोमरभिण्डिपालप्रमुखैर्निखिलायुधैः सकलशस्त्रैर्निरवकाशितो निरन्तरीकृतः खलूरिकोद्देशः शस्त्राभ्यासस्थानं यस्मिन् तस्मिन्, कुशेशयासनस्य ब्रह्मणो या कुटुम्बिनी वल्लभा सरस्वतीति यावत् तस्याः कोशगृह इव भाण्डारगृह इव दृश्यमाने विलोक्यमाने महति विशाले विद्यामण्डपे विद्यालये। पाण्डित्यमेव पयोधिस्तस्य पारं दृष्टवानिति तेन वैदुष्याम्बुधिपारदर्शिना, विश्रुत:

---

§ ४६. अथानन्तर जो अतिशय प्रशस्त था, रत्नोंकी शिलाओंसे जिसका फर्श खचित था, जो स्फटिक पाषाणसे निर्मित दीवालोंसे देदीप्यमान था, दिनके प्रकाशको तिरस्कृत करनेवाले महेन्द्र नीलमणिसे जिसके आँगनकी भूमि निर्मित थी, जो क्षीरसागरके फेनके समान धवल-चँदोवासे सुशोभित था, जिसके चित्रपट सरस्वतीकी शोभायमान प्रतिमाओंसे युक्त थे, जहाँ समस्त शास्त्रोंके भाण्डार संचित थे, जो म्यानोंमें रखी हुई सैकड़ों तलवारोंसे व्याप्त था, जहाँ सुन्दर धनुष दण्ड उत्तमोत्तम आवरोंसे युक्त थे, जहाँकी तीक्ष्ण लाठियाँ कुण्डलाकार शिखरोंसे मनोहर थीं, जहाँके भाले तपाये हुए स्वर्णसे खचित दण्डोंसे सुन्दर थे, जिसके एक छोरपर तीक्ष्ण बाणोंका समूह इकट्ठा किया गया था, जिसके शस्त्राभ्यासका स्थान प्रास, तोमर, भिण्डीपाल आदि समस्त शस्त्रोंसे अवकाश रहित था—व्याप्त था और जो सरस्वतीके खजानेके समान दिखाई दे रहा था, ऐसे बड़े भारी विद्यामण्डपमें पाण्डित्यरूपी सागरके

---

१. क० ख० ग० भिण्डिबाल।

विश्वव्यवहारशिक्षाविचक्षणेन प्रत्यक्षिताचार्यरूपेणार्यनन्द्याचार्येण समस्तमपि विद्यास्थलं सानुजमित्राय तस्मै सस्नेहमुपादेशि ।

§ ४७. ततः सप्रश्रयशुश्रूषाप्रहृष्टमनसः प्रकृतिशीतलशीलादाचार्यात्प्रचुरप्रतापोष्मले तस्मिंश्चन्द्रमस इव चण्डतेजसि कलाकलापः क्रमेण समक्रमीत् । अत्युल्बणजराजर्जरितमनवरतजनितकम्पमम्बुजासनमुखचतुष्टयमाविष्टेव पतनभिया विहाय भारती तरुणतामरससोदरं तदाननमास्पदीचकार । तथा हि—अपरिमितार्थोपलब्धिमूलभूतपदरत्नराशिरोहणं व्याकरणम्, दुर्गमदुर्मतमहाकर्दमशोषणप्रवणार्कं तर्कशास्त्रम्, याथात्म्याञ्चितप्रपञ्चपञ्चास्ति-

प्रभावो यस्य तेन प्रसिद्धमाहात्म्येन विश्वव्यवहाराणां निखिलव्यवहाराणां शिक्षासु विचक्षणो निपुणस्तेन प्रत्यक्षितं प्रत्यक्षरूपेण दर्शितमाचार्यरूपं येन तेन, आर्यनन्द्याचार्येण तन्नामोपाध्यायेन समस्तमपि निखिलमपि विद्यास्थलं विद्यायतनं सानुजमित्राय अनुजमित्रैः सह विद्यमानः सानुजमित्रस्तस्मै लघुभ्रातृसुहृत्सहिताय तस्मै जीवंधराय सस्नेहं सप्रणयं यथा स्यात्तथा उपादेशि समुपदिष्टम् कर्मणि प्रयोगः ।

§ ४७. तत इति—ततस्तदनन्तरं सप्रश्रयशुश्रूषया सविनयसेवया प्रहृष्टं प्रसन्नं मनो यस्य तस्मात्, प्रकृत्या निसर्गेण शीतलं शान्तं शीलं स्वभावो यस्य तस्मात्, आचार्यात् उपाध्यायात्, प्रचुरप्रतापेण प्रकृष्टतेजसा ऊष्मलस्तीक्ष्णस्वभावस्तस्मिन्, तस्मिन् जीवंधरे, चन्द्रमसः चण्डतेजसीव सूर्य इव कलाकलापः कलासमूहः 'कला तु षोडशांशे स्यादिन्दोरप्यंशमात्रके । मूलार्थवृद्धौ शिल्पादौ कलना कालभेदयोः' इति विश्वलोचनः, क्रमेण समक्रमीत् संक्रान्तोऽभूत् । अत्युल्बणेति—अत्युल्बणा अत्युत्कटा या जरा वार्धक्यावस्था तया जर्जरितं जीर्णम्, अनवरतं निरन्तरं जनितः कम्पो यस्मिन् तत्, अम्बुजासनस्य ब्रह्मणो मुखचतुष्टयं वक्त्रचतुष्कम्, पतनभिया पतनभयेन आविष्टेव सहितेव भारती सरस्वती विहाय त्यक्त्वा तरुणतामरससोदरं प्रोत्फुल्लपयोजप्रतिमं तदाननं जीवन्धरवदनम् आस्पदीचकार स्वस्थानं चकार । तथाहि—अपरिमितानां बहूनामर्थानामुपलब्धेः प्राप्तेर्मूलभूतानि यानि कारणभूतानि यानि पदरत्नानि शब्दसमूहमणयस्तेषां राशिः समूहस्तस्य रोहणं रोहणगिरिरूपं व्याकरणं शब्दशास्त्रम्, दुर्मतानि दुष्टमतान्येव महाकर्दमा इति दुर्मतमहाकर्दमा मिथ्यामतमहापङ्काः दुर्गमा दुःखेन गन्तुं शक्या ये दुर्मतमहाकर्दमास्तेषां शोषणे प्रवणार्कं समर्थसूर्यरूपं तर्कशास्त्रं न्यायशास्त्रम्, याथात्म्येन यथार्थस्वरूपेण अञ्चितः शोभितः प्रपञ्चो

पारदर्शी, प्रसिद्ध प्रभावसे युक्त, समस्त व्यवहारकी शिक्षामें निपुण, तथा आचार्यके स्वरूपको प्रत्यक्ष दिखलानेवाले आर्यनन्दी आचार्यने छोटे भाई और मित्रोंसे सहित जीवन्धर कुमारके लिए स्नेहपूर्वक समस्त विद्याओंके स्थलका उपदेश दिया ।

§ ४७. तदनन्तर सविनय शुश्रूषासे जिसका चित्त प्रसन्न हो रहा था तथा जो स्वभावसे ही शीतल—शान्त शीलके धारक थे ऐसे उन आचार्यसे कलाओंका समूह क्रम-क्रमसे प्रचुर प्रतापकी ऊष्मासे युक्त जीवन्धरकुमारमें उस तरह संक्रान्त हो गया जिस तरह कि शीतल स्वभावके धारक चन्द्रमासे उसकी कलाओंका समूह प्रचण्ड तेजके धारक सूर्यमें संक्रान्त हो जाता है। अत्यधिक बुढ़ापेसे जर्जरित तथा निरन्तर काँपते हुए ब्रह्माजीके चारों मुखोंको पतनके भयसे युक्त हुई के समान छोड़कर सरस्वतीने तरुण कमलके समान जीवन्धर कुमारके मुखको अपना स्थान बना लिया था। जैसे कि—अपरिमित अर्थोंकी प्राप्तिमें मूलभूत पदरूपी रत्नोंकी राशिको उत्पन्न करनेवाले रोहणगिरिके समान व्याकरणको, दुर्गम मिथ्यामतरूपी बहुत बड़ी कीचड़को सुखानेमें निपुण सूर्यके समान तर्कशास्त्रको और यथार्थतासे विस्तारवाले पञ्चा-

कायवस्तुवास्तवावबोधसिद्ध्युपायमपि सिद्धान्तं यथावदध्यैष्ट । अधिष्ठाय पृष्ठपीठमतिकठोरकुम्भतटनिवेशिताङ्कुशनखरः कुर्वन्नुर्वीधरमिव जङ्गमं मातङ्गमपगतमदचापलमात्मवशगामिनमनन्यसुलभपराक्रमपरिशङ्कितां प्रकटीचकार राजसिंहतां राजकुमारः । अतिरभसचटुलखुरपुटविदलितधरणीरङ्गेण तुरङ्गेण युगपदाक्रमन्दिशां चक्रमक्रमेण[1] निखिलनिजराज्यहरणक्षममात्मानमनक्षरमभाषिष्ट । अनवरतयोग्यापरेण कुमारेणारूढः प्रतिभटमनोरथानपि धरामिव दारयिष्याम्यचिरादिति कथयन्निव रथश्चक्रचीत्कारव्याजेन व्यराजिष्ट । आकर्णाकृष्टः कर्णे समुपदिशन्निव मौर्वीस्वनेन समरश्रिजयकलामविरलशरासारवर्षी राजसूनोरलक्ष्यत लक्ष्यभेदचतुरस्य चापदण्डः । आरम्भसमय

विस्तारो येषां तथाभूता ये पञ्चास्तिकाया जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशद्रव्याणि त एव वस्तूनि पदार्थास्तेषां वास्तवावबोधस्य यथार्थज्ञानस्य या सिद्धिस्तस्या उपायं हेतुभूतं सिद्धान्तमपि सिद्धान्तशास्त्रमपि यथावत् यथार्थम् अध्यैष्ट पठितवान् । अधिष्ठायेति—पृष्ठपीठं पृष्ठासनम् अधिष्ठाय तत्र स्थितो भूत्वा अतिकठोरेऽतिकर्कशे कुम्भतटे गण्डस्थलपार्श्वे निवेशितं स्थापितमङ्कुशनखरं सृणिभूतनखं येन तथाभूतः सन् जङ्गमं गतिशीलम् उर्वीधरमिव पर्वतमिव विशालमिति यावत्, मातङ्गं गजम् अपगतं विनष्टं मदचापलं मदजन्यचाञ्चल्यं यस्य तम्, आत्मवशं गच्छतीत्येवं शीलस्तं तथाभूतं कुर्वन् राजकुमारो जीवंधरः, अनन्यसुलभेन इतरजनदुष्प्राप्येण पराक्रमेण सामर्थ्येन परिशङ्कितां शङ्काविषयीकृतां राजसिंहतां नृपतिश्रेष्ठतां प्रकटीचकार प्रकटयामास । अतिरभसेति—अतिरभसेन तीव्रवेगेन चटुलैश्चपलैः खुरपुटैः शफपुटैर्विदलितः खण्डितो धरणीरङ्गो भूमितलं येन तेन तुरङ्गेण हयेन युगपदेककालावच्छेदेन दिशां चक्रं काष्ठानां वलयम् आक्रमत् आक्रान्तं कुर्वन् आत्मानं स्वम्, अक्रमेण युगपत्, निखिलं समस्तं यन्निजराज्यं स्वकीयसाम्राज्यं तस्य हरणे स्वायत्तीकरणे दक्षं समर्थम्, अनक्षरम् एकमप्यक्षरमनुक्त्वेति यावत् अभाषिष्ट कथयामास । अनवरतेति—अनवरतं निरन्तरं योग्यायां गुणनिकायां पुनः पुनरभ्यासकरण इति यावत् परेण सक्तेन कुमारेण जीवंधरेण आरूढोऽधिष्ठितो रथः, चीत्कारव्याजेन अव्यक्तशब्दविशेषच्छलेन धरामिव पृथिवीमिव प्रतिभटमनोरथानपि शत्रुवाञ्छितान्यपि अचिराच्छीघ्रमेव दारयिष्यामि खण्डयिष्यामि, इति कथयन्निव व्यराजिष्ट शुशुभे । आकर्णाकृष्ट इति—लक्ष्याणां शरव्याणां भेदे विदारणे चतुरो विदग्धस्तस्य राजसूनो नरेन्द्रनन्दनस्य जीवंधरस्य अविरलशरासारं निरन्तरबाणसंपातं वर्षतीत्येवं शील चापदण्डो धनुर्दण्डः कर्णमभिव्याप्ये-

---

स्तिकाय आदि वस्तुओंके वास्तविक तत्त्वज्ञानकी सिद्धिके उपायभूत सिद्धान्तशास्त्रको भी उन्होंने अच्छी तरह पढ़ा था। जब कभी राजकुमार हाथीकी पीठरूपी आसनपर बैठकर उसके अत्यन्त कठोर गण्डस्थलके तटमें तीक्ष्ण अंकुशके समान नाखूनको गड़ा देते थे और चलते-फिरते पर्वतके समान उस हाथीको मदसम्बन्धी चपलतासे रहित एवं इच्छानुकूल गमन करनेवाला बनाकर अनन्य सुलभपराक्रमसे शंकित अपनी श्रेष्ठ सिंहता अथवा श्रेष्ठ राजताको प्रकट करते थे। भावार्थ—इनके अन्यजन दुर्लभ पराक्रमको देखकर लोग शंका करने लगते थे कि क्या यह राजाका पुत्र है? अत्यन्त चञ्चल खुरपुटके द्वारा पृथिवी तलको खोदनेवाले घोड़ेसे एक साथ समस्त दिशाओंपर आक्रमण करता हुआ वह अपने-आपको चुपचाप अपने समस्त राज्यके छीनने में समर्थ बतलाता था। निरन्तर अभ्यासमें तत्पर कुमारके द्वारा अधिष्ठित रथ, चक्रके चीत्कार शब्दके बहाने 'मैं पृथिवीके समान शत्रुओंके मनोरथोंको भी शीघ्र ही विदीर्ण कर दूँगा' यह कहता हुआ सुशोभित होता था। लक्ष्यके भेदनेमें चतुर राजपुत्र जीवन्धर कुमारका कान तक खिंचा एवं लगातार बाणोंकी वर्षा करने-

---

१. क० चक्रमनुक्रमेण ।

एव गुणनिकायाः[1] केशानप्यतिसूक्ष्मान्पाटयितुं पटुः पार्थिवसुतेन पाणौ कृतः कृपाणः कृशेतरनखमरीचिसंपर्कादासन्नविनिपातपरिज्ञानविधुरमहसदिव काष्ठाङ्गारम् ॥

§ ४८. एवं क्रमादभ्यस्तसाहित्यं साधितशब्दशासनं समालोकितवाक्यविस्तरं विजृम्भितप्रमाणनैपुणं निर्णीतनीतिशास्त्रहृदयं शिक्षितलक्ष्यभेदं विधेयीकृतविविधायुधव्यापारं पारदृश्वानमश्वारोहणविद्याया विश्रुतवारणारोहणवैयात्यं वीणावेणुप्रमुखवादनप्रथमोपाध्यायं विदितभक्तमार्गं नैसर्गिकनृत्यविज्ञानवैशारद्यविस्मापितशैलूषलोकमुल्लोकनिखिलनिजचरित्रविराजमानं राजकुमारं कुसुममिव गन्धः क्रीडावनमिव वसन्तश्चन्द्रमसमिव शरदागमः कुमुदाकरमिव कौमुदीप्रवेशः

त्वाकर्णम् आकर्णमाकृष्ट इत्याकर्णकृष्टः, मौर्वीस्वनेन प्रत्यञ्चाशब्देन कर्णे श्रवणे समरविजयकलां युद्धविजयचातुरीं समुपदिशन्निव कथयन्निव अलक्ष्यत अदृश्यत। आरम्भसमय इति—गुणनिकाया योग्याया 'योग्या गुणनिकाभ्यास.' इत्यमरः, आरम्भसमय एव प्रारम्भवेलायामेव अतिसूक्ष्मान् सूक्ष्मतरान् केशानपि कचानपि पाटयितुं विदारयितुं पटुः समर्थः, पार्थिवसुतेन नृपतिनन्दनेन जीवन्धरकुमारेण पाणौ कृतो हस्ते गृहीतः कृपाणः खड्गः कृशेतरनखमरीचीनामकृशनखरकिरणानां संपर्कस्तस्मात् आसन्नो निकटस्थितो यो विनिपातो मरणं तस्य परिज्ञानेन विधुरं रहितं काष्ठाङ्गारं नृपतिहन्तारम् अहसदिव तस्य हास्यमिव चकार।

§ ४८. एवं क्रमादिति—एवमनेन प्रकारेण क्रमात् अभ्यस्तं साहित्यं येन तम् शिक्षितकाव्यशास्त्रम्, साधितं स्वायत्तीकृतं शब्दशासनं व्याकरणं येन तम्, समालोकितः समभ्यस्तो वाक्यविस्तरो वाक्यसमूहो येन तम्, विजृम्भितं वृद्धिंगतं प्रमाणे न्यायशास्त्रे नैपुणं चातुर्यं यस्य तम्, निर्णीतं सम्यक्प्रकारेण निःसंशयीकृतं नीतिशास्त्रहृदयं नीतिशास्त्ररहस्यं येन तम्, शिक्षितो लक्ष्यभेदो येन तम्, विधेयीकृता अनुकूलीकृता विविधायुधव्यापारा नानाशस्त्रव्यापारा येन तम्, अश्वारोहणविद्याया हयाधिष्ठानविद्यायाः पारदृश्वानं पारदर्शिनम्, विश्रुतं प्रसिद्धं वारणारोहणे गजारोहणे वैयात्यं धाष्टर्यं यस्य तम्, वीणावेणुप्रमुखानां तन्त्रीवंशीप्रभृतिवादित्राणां वादने प्रथमोपाध्यायम् आद्याध्यापकम्, विदितो विज्ञातो भक्तमार्गो येन तम्, नैसर्गिकं स्वाभाविकं यत् नृत्यविज्ञाने वैशारद्यं नैपुण्यं तेन विस्मापिताः शैलूषलोका नटसमूहा येन तम्, उल्लोकेन लोकोत्तरेण निखिलेन संपूर्णेन निजचरित्रेण स्वाचारेण विराजते शोभत इति तथाभूतं राजकुमारं जीवंधरं कुसुमं पुष्पं गन्ध इव सुरभिरिव, क्रीडावनं केलिकाननं वसन्त इव

वाला धनुर्दण्ड डोरीके शब्दके बहाने ऐसा जान पड़ता था मानो कानमें युद्ध विजय प्राप्त करनेकी कला ही सिखा रहा हो। शस्त्राभ्यासके प्रारम्भ समयमें ही जीवन्धर कुमारने अत्यन्त सूक्ष्म बालोंको भी चीरनेमें समर्थ जो तलवार हाथमें ली थी वह नखोंकी विशाल किरणोंके सम्पर्कसे निकटवर्ती मरणके ज्ञानसे रहित काष्ठाङ्गारकी मानो हँसी ही उड़ा रही थी।

§ ४८. इस प्रकार जिन्होंने क्रमसे साहित्यका अभ्यास किया था, व्याकरणको सिद्ध किया था, वाक्यसमूहका अच्छी तरह अवलोकन किया था, जिनकी न्यायशास्त्रकी चतुराई बढ़ रही थी, जिन्होंने नीतिशास्त्रके सारका अच्छी तरह निर्णय कर लिया था, सीखे हुए लक्ष्यभेदसे जिन्होंने नाना प्रकारके शस्त्र चलानेकी क्रियाको अपने अधीन कर लिया था, जो घोड़ेपर चढ़नेकी विद्याके पारदर्शी थे, जिनकी हाथीपर चढ़नेकी धृष्टता प्रसिद्ध थी, जो वीणा बाँसुरी आदि प्रमुख वादित्रोंके बजानेमें अद्वितीय पण्डित थे, जिन्हें भक्तिका मार्ग विदित था, स्वाभाविक नृत्य विज्ञानकी निपुणतासे जिन्होंने नटोंको आश्चर्यमें डाल दिया था और जो अपने लोकोपरि समस्त चरित्रसे सुशोभित थे ऐसे राजकुमार जीवन्धरको

---

१. क० ख० ग० गुणिनिकायाः।

करिकलभमिव मदोद्गमो यौवनावतारः परं दर्शनीयतामनैषीत्। तथा हि—प्रविविक्षन्त्याः प्रतिभटराजलक्ष्म्याः सुखासिकादानमिव विधातुं वितस्तार वक्षःस्थलम्[1]। दिशि दिशि चलित-स्निग्धधवलदीर्घवपुषः कटाक्षाः कान्तिलक्ष्मीजन्मदुग्धजलधिविभ्रमं बिभ्रति स्म। अंसवल-भीसमर्पणाय धरणीमादातुमिव जानुलम्बिनौ बभूवतुर्भुजौ। स्पर्धयेव परस्परं वर्धमानाभ्यां प्रतापकान्तिभ्यामशिशिर-शिशिरकिरणयोरद्वैतमिव राजसूनुरदीदृशत्।

§ ४९. एकदा तु तमिकान्ते प्रान्ते निवसन्तमन्तेवासिनमालोक्याचार्यः प्रज्ञाप्रश्रयबलेन हेलया संजातां विद्यापरिणतिं विमृशन्करतलसंस्पर्शेन सादरं संभाव्य निरवसानव्यसनप्रसूनदायि-

ऋतुराज इव, चन्द्रमसं शशिनं शरदागम इव जलदान्तागमनमिव, कुमुदाकरं कुमुदसमूहं कौमुदीप्रवेश इव ज्योत्स्नाप्रवेश इव, करिकलभं गजशावकं मदोद्गम इव दानोद्भव इव यौवनावतारस्तारुण्यप्रारम्भः परं सातिशयं दर्शनीयतां सुन्दरताम् अनैषीत् प्रापयामास। तथा हि—प्रविविक्षन्त्याः प्रवेष्टुमिच्छन्त्याः प्रतिभटराजलक्ष्म्याः शत्रुराजश्रियाः सुखासिकादानं सुखकरवसतिकादानं विधातुमिव कर्तुमिव वक्षःस्थलं वितस्तार विस्तीर्णं बभूव उत्प्रेक्षा। दिशि दिशि प्रतिदिशं चलितं स्निग्धधवलं मसृणसितं दीर्घं वपुराकारो येषां ते कटाक्षाः अपाङ्गदर्शनानि कान्तिरेव लक्ष्मीरिति कान्तिलक्ष्मीः दीप्तिश्रीस्तस्या जन्मने जनुषे दुग्धजलधिः क्षीरसागरस्तस्य विभ्रमः सन्देहस्तं बिभ्रति स्म दधति स्म। भुजौ बाहू अंसौ स्कन्धावेव वलभ्यौ गोपानस्यौ तत्र समर्पणाय स्थापनाय धरणीं पृथिवीम् आदातुमिव गृहीतुमिव जानुलम्बिनौ जङ्घापर्यन्तलम्बिनौ बभूवतुः। परस्परं स्पर्धयेव मत्सरेणेव वर्धमानाभ्यां प्रतापकान्तिभ्यां तेजोदीप्तिभ्याम् अशिशिरश्च शिशिरश्चेत्यशिशिरशिशिरौ तथाभूतौ किरणौ ययोस्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः अद्वैतमिव ऐक्यमिव राजसूनुर्नृपतिपुत्रः, अदीदृशत् दर्शयामास। ण्यन्तप्रयोगः।

§ ४९. एकदेति—एकदा तु एकस्मिन् समये तु एकान्ते विजने प्रान्ते प्रदेशे निवसन्तं विद्यमानं तं पूर्वोक्तम् अन्तेवासिनं विद्यार्थिनम् आलोक्य दृष्ट्वा आचार्य आर्यनन्दी गुरुः प्रज्ञा च प्रश्रयश्चेति प्रज्ञा-प्रश्रयौ बुद्धिविनयौ तयोर्बलेन सामर्थ्येन हेलया अनायासेन संजातां समुद्भूतां विद्यापरिणतिं विद्या-

यौवनके अवतारने उस तरह अत्यधिक सुन्दरता प्राप्त करा दी जिस तरह कि फूलको सुगन्धि, क्रीडावनको वसन्त, चन्द्रमाको शरद् ऋतुका आगमन, कुमुद-समूहको चाँदनीका प्रवेश और हाथीके बच्चेको मदका उत्पन्न होना परम सुन्दरता प्राप्त करा देता है। उस समय उनका वक्षःस्थल विस्तीर्ण हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवेश करनेकी इच्छुक शत्रु राजाओंकी लक्ष्मीको सुखपूर्ण आवास देनेके लिए ही विस्तीर्ण हो गया था। प्रत्येक दिशा-में चलते हुए, स्निग्ध, सफेद एवं लम्बे-लम्बे उनके कटाक्ष कान्तिरूपी लक्ष्मीको जन्म देने-वाले क्षीरसागरका विभ्रम धारण करते थे। उनकी दोनों भुजाएँ कन्धे रूप अट्टालिकाओंमें रखनेके उद्देश्यसे पृथिवीको उठानेके लिए ही मानो घुटनों तक लम्बी हो गयी थीं। और परस्परकी स्पर्धासे बढ़नेवाले प्रताप और कान्तिके युगलसे वे मानो सूर्य और चन्द्रमाके अद्वैत-को ही दिखला रहे थे।

§ ४९. तदनन्तर एक दिन एकान्त स्थानमें निवास करते हुए विद्यार्थी जीवन्धर कुमारको देखकर आचार्य आर्यनन्दी विचार करने लगे कि इसे बुद्धिबल और विनयबलसे अनायास ही विद्याओंकी पूर्णता प्राप्त हुई है। वे हस्ततलके स्पर्शसे आदरपूर्वक स्नेह प्रकट

१. क० ग० विस्तारितवक्षःस्थलम्।

संसृतिलताच्छेदकुठारं निरतिशयपरमानन्दपदप्राप्तिसाधनं सम्यक्त्वधनं समर्पयितुमस्मै कालोऽयमित्याकलय्य गुरुशुद्धिप्रदर्शनेन सविस्रम्भमस्य मनः कर्तुं स्ववृत्तान्तमन्यकथाव्यावर्णनव्याजेन व्याजहार—

§ ५०. 'वत्स, वन्दमानविद्याधरमकुटताडितपादपीठकण्ठोक्तमहिमा महीपतिरभूदभूतपूर्वः सर्वविद्यासाम्राज्यसंपदुन्मेषविभ्राजिनि विद्याधरलोके लोकपालो नाम । स तु कदाचिदागमे पयोमुचामम्बराभोगमलिम्लुचं महेन्द्रनीलमणिवातायनतिलकितं सौधवलभीमध्यं सुमध्याभिः सहाधिवसन्घनसमयलक्ष्मीकुन्तलविभ्रमं किमपि नवाभ्रमपश्यत् । पश्यत्येव तस्मिन्विस्मयस्तिमितचक्षुषि तत्क्षण एव ननाश नैशान्धकारसोदरः स पयोधरः । तदवलोकनजनितनिर्वेदः 'सर्वथा

परिपाकं विमृशन् विचारयन् करतलसंस्पर्शेन हस्ततलसम्यक्स्पर्शेन सादरं संभाव्य सत्कृत्य निरवसानानि निरन्तानि यानि व्यसनप्रसूनानि दुःखकुसुमानि तानि ददातीत्येवंशीला या संसृतिलता संसारवल्ली तस्याः छेदे कुठारः परशुस्तत्, निरतिशयं निरनुपमं यत्परमानन्दपदं परमसुखस्थानं तस्य प्राप्तेः साधनमुपायभूतम्, सम्यक्त्वमेव धनमिति सम्यक्त्वधनं सम्यग्दर्शनधनम् अस्मै जीवंधराय दातुम् अयं कालो योग्यः समय इतीत्थम् आकलय्य निश्चित्य गुरुशुद्धिप्रदर्शनेन गुरुपावित्र्यप्रकटनेन अस्य कुमारस्य मनः सविस्रम्भं सप्रत्ययं कर्तुम् अन्यस्य इतरजनस्य कथाया व्यावर्णनं निरूपणं तस्य व्याजेन छलेन स्ववृत्तान्तं स्वकीयं चरितं व्याजहार कथयामास ।

§ ५०. वत्सेति—वत्स ! तात ! सर्वविद्यानां निखिलगगनगामिन्यादिविद्यानां साम्राज्यमेव सम्पद् तस्या उन्मेषेण प्रकटीभावेन विभ्राजते शोभत इत्येवंशीले विद्याधरलोके खेचरनिवासक्षेत्रे विजयार्धपर्वत इति यावत् वन्दमानानां नमस्कुर्वाणानां विद्याधराणां खगानां मकुटैर्मौलिभिस्ताडितेन पादपीठेन कण्ठोक्तो महिमा यस्य तथाभूतः पूर्वं न भूत इत्यभूतपूर्वः लोकपालो नाम महीपती राजा अभूत् । स त्विति—स तु लोकपालः कदाचिज्जातुचित् पयोमुचां मेघानामागमे वर्षाकाल इत्यर्थः अम्बराभोगस्य गगनविस्तारस्य मलिम्लुचं चौरं विस्तृततरमिति यावत् महेन्द्रनीलमणिवातायनैर्गरुडमणिनिर्मितगवाक्षैस्तिलकितं व्याप्तं सौधवलभीमध्यं प्रासादगोपानसीमध्यभागं सुमध्यमाभिः सुन्दरकटिविभ्राजमानाभिः प्रियाभिः सहाधिवसन् घनसमयलक्ष्म्या वर्षाकालश्रियाः कुन्तलानां केशानामिव विभ्रमो विलासो यस्य तत् तथाभूतं किमप्यनिर्वचनीयं नवाभ्रं नवीनवारिदम् अपश्यत् । पश्यत्येवेति—विस्मयेन स्तिमिते

करते हुए सोचने लगे कि यह समय, इसके लिए अनन्त दुःखरूपी फूलोंको देनेवाली संसाररूपी लताको काटनेके लिए कुल्हाड़ी एवं अद्वितीय परमानन्द पदकी प्राप्तिका साधन सम्यग्दर्शन रूपी धन देनेके लिए अत्यन्त उपयुक्त है। यह सोचकर गुरुशुद्धिको दिखानेसे इनके मनको विश्वास युक्त करनेके लिए वे किसी अन्य पुरुषकी कथाके वर्णनके बहाने अपना वृत्तान्त कहने लगे।

§ ५०. उन्होंने कहा कि वत्स ! समस्त विद्याओंके साम्राज्य रूपी सम्पत्तिके उद्रेकसे सुशोभित विद्याधरोंके लोकमें वन्दना करनेवाले विद्याधरोंके मुकुटसे ताड़ित पैर रखनेकी चौकीके द्वारा जिसकी महिमा स्पष्ट कही जाती थी ऐसा लोकपाल नामका एक अभूतपूर्व राजा था। किसी समय वह राजा वर्षा ऋतुमें आकाशके विस्तारको अपहृत करनेवाले, एवं इन्द्रनीलमणियोंके झरोखोंसे सुशोभित राजमहलकी छपरीके मध्यमें अपनी स्त्रियोंके साथ बैठा था। उसी समय उसने वर्षाऋतुकी लक्ष्मीके आगेके केशोंकी शोभाको धारण करनेवाले किसी नूतन मेघको देखा। आश्चर्यसे निश्चल नेत्रोंको धारण करनेवाला राजा उस मेघको देख ही रहा था कि रात्रिके अन्धकारके समान वह मेघ उसी समय नष्ट हो

सलिलबुद्बुदसहचरा न सन्ति चिरावस्थायिनः संसारविभ्रमाः। तरुतलपुञ्जिताः पर्णराशय इव प्रबलपवनपरिस्पन्देन सुकृतपरिक्षयेण तत्क्षण एव नश्यन्ति संगताः संपदः। पाकशासनशरासनमिव विशरारु नानारागपल्लवोल्लासविलासोपवनं यौवनम्। जीवितं तु किमिदानीमुद्भाविन्यपि समये स्थायीति जगति न केनापि निश्चेतुं पार्यते। कथमपि कालं कंचिदवस्थितिभाजोऽप्यायुषः क्षय एव नियतः। तदेतत्सर्वं स्वयमेव यास्यति। वयमेव निरस्यामः' इति विचार्य विनश्वरश्रीविलास-पराङ्मुखः परनिरपेक्षं निरवधिकमनुपाधिकं[1] च सुखमनुभवितुमिच्छन्[2] पुत्रशिरसि निवेश्य राज्यभारं भवसंज्वरपरिहरणविचक्षणां जिनदीक्षां प्राविक्षत्।

चक्षुषी यस्य तस्मिन् शोभातिशयदर्शनसमुत्थविस्मयनिभृतनयने तस्मिन् लोकपाले पश्यत्येव विलोकमान एव नैशान्धकारस्य रजनीतिमिरस्य सोदरः सहोदरः सदृश इति यावत् स पयोधरो जलधरः तत्क्षण एव दर्शनकाल एव ननाश नष्टोऽभूत्। तदवलोकनेति—तस्य पयोधरस्यावलोकनेन जनितो निर्वेदो वैराग्यं यस्य तथाभूतः स नृपः 'सर्वथा सर्वप्रकारेण सलिलबुद्बुदसहचरा जलबुद्बुदसदृशाः संसारविभ्रमा भव-विलासाः चिरावस्थायिनो दीर्घकालस्थायिनो न सन्ति। तरुतले वृक्षाधस्तात् पुञ्जिता राशीभूताः पर्णराशयः शुष्कपत्रसमूहाः प्रबलपवनस्य प्रबलसमीरस्य परिस्पन्देनेव संचारेणेव सुकृतपरिक्षयेण पुण्य-विनाशेन संगताः प्राप्ताः संपदः तत्क्षण एव तत्काल एव नश्यन्ति नष्टा भवन्ति। नानारागाः पुत्रमित्र-कलत्रप्रभृत्यनुरागा एव पल्लवाः किसलयास्तेषामुल्लासे नवनवीकरणे विलासोपवनं केलिकाननं तथाभूतं यौवनं तारुण्यं पाकशासनशरासनमिव शक्रधनुरिव विशरारु नश्वरम्। जीवितं तु जीवनमपि, इदानीं किं सांप्रतं किम् उद्भाविन्यपि आगामिन्यपि समये स्थायि स्थिरम् इति न केनापि जनेन निश्चेतुं पार्यते शक्यते। कथमपि केनापि प्रकारेण कंचित्कालं कमपि समयं यावत् अवस्थितिभाजोऽपि स्थिरस्यापि आयुषो जीवनस्य क्षय एव विनाश एव नियतो निश्चितः। तत् तस्मात् कारणात् एतद् दृश्यमानं स्वयमेव स्वत एव यास्यति गमिष्यति नंक्ष्यतीत्यर्थः। वयमेव निरस्यामः त्यजाम' इति विचार्य विमृश्य विनश्वरश्रिया भङ्गुरराजलक्ष्म्या विलासात्पराङ्मुखो विमुखः सन् परनिरपेक्षं स्वायत्तं निरवधिकं निरन्तम् अनुपाधिकमुपाधिरहितं सुखम् अनुभवितुमिच्छन् पुत्रशिरसि सुतमूर्ध्नि राज्यभारं निवेश्य स्थापयित्वा भवसंज्वरस्य भवव्याधेः परिहरणे विचक्षणा निपुणा तां तथाभूतां जिनदीक्षां निर्ग्रन्थमुद्रां प्राविक्षत् प्रविवेश स्वीचकारेति यावत्।

गया। उस नश्वर मेघके देखनेसे जिसे वैराग्य उत्पन्न हो गया था ऐसा राजा विचार करने लगा कि 'ये संसारके विषय सर्वथा पानीके बबूलेके समान हैं इनमें कोई भी चिरकाल तक स्थिर रहनेवाले नहीं हैं। जिस प्रकार प्रबल पवनके चलनेसे वृक्षके नीचे स्थित पत्तोंकी राशियाँ नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार पुण्यके क्षीण होनेसे प्राप्त संपत्तियाँ तत्काल नष्ट हो जाती हैं। नाना प्रकारके रागरूपी पल्लवोंको उल्लसित करनेके लिए क्रीड़ावनके समान जो यौवन है वह इन्द्रधनुषके समान नश्वर है। जीवन इस समयकी क्या बात आगामी समयमें भी स्थिर रह सकेगा यह निश्चय किसीके द्वारा नहीं किया जा सकता? जो किसी तरह कुछ काल तक स्थित रहता भी है उसकी भी आयुका क्षय निश्चित होता है। क्योंकि यह सब स्वयं ही नष्ट हो जायेगा इसलिए ही इसे हम छोड़ देते हैं' इस प्रकार विचारकर विनश्वर राजलक्ष्मीके विलाससे विमुख हो परनिरपेक्ष, सीमारहित और स्वाभाविक सुखके उप-भोगकी इच्छा करता हुआ वह राजा पुत्रके शिरपर राज्यका भार रख संसाररूप ज्वरको दूर करनेमें निपुण जिनदीक्षामें प्रविष्ट हुआ—उसने जिनदीक्षा ले ली।

१. ग० अनुपादिकम्। २. क० सुखमनुभवितुमिच्छुः।

§ ५१. प्राप्तजिनदीक्षः प्रणष्टतमांसि तपांसि चरन्प्राग्जन्मार्जितदुर्जरपापपरिपाकपरिणतेन भक्षितमखिलं तत्क्षण एव भस्मसात्कुर्वता च[1] भस्मकेन पर्यभूयत। परिभूतश्च तेनाविच्छिन्नचरितो[2]ऽप्यशक्यतया दुर्गत इव दुर्लभं धनं परमं तपः पर्यत्यजत्। अवर्तिष्ट च यथेष्टं स्वैरविहरणावकाशप्रदानपण्डितेन पाषण्डिवेषेण। स पुनरङ्गार इव भस्मना भस्मकमहारोगेण तिरोहितदीप्तिः सम्यक्त्वपूतमतिस्तत इतो विहरन्ननवरतजृम्भमाणदारुणबुभुक्षाक्षोभितमतिः कदाचिदधरितकुबेरवैभवस्य गन्धोत्कटस्य सततविघटितकवाटपुटमुत्तम्भितमणिस्तम्भशुम्भिताभ्यन्तरं[3] निरन्तरविप्रकीर्णमणिगणशर्करिलभूतलमगस्त्यकबलितजलपूरमिव रत्नाकरमाखण्डलकुलिशपुनःपतनभयपरि-

§ ५१. प्राप्तेति—प्राप्ता जिनदीक्षा येन तथाभूतो धृतनिर्ग्रन्थमुद्रः प्रणष्टं तमो यैस्तानि दूरीकृतमोहतिमिराणि तपांसि द्वादशविधानि चरन् कुर्वन् स लोकपालः प्राग्जन्मार्जितस्य पूर्वजन्मोपार्जितस्य दुर्जरपापस्य प्रगाढपापस्य परिपाकेन समुदयेन परिणतं समुपस्थितं तेन भक्षितं भुक्तम् अखिलं समग्रपदार्थं तत्क्षण एव तत्काल एव भस्मसात्कुर्वता च जीर्णं कुर्वता च भस्मकेन भस्मकव्याधिना पर्यभूयत अभ्यभूयत। कर्मणि प्रयोगः। तेन भस्मकेन परिभूतश्च तिरस्कृतश्च स लोकपालमुनिः अविच्छिन्नमखण्डितं चरितं यस्य तथाभूतोऽपि सन् अशक्यतया असहनीयतया दुर्गतो निर्धनो दुर्लभं धनमिव दुष्प्राप्यं वित्तमिव परमं श्रेष्ठं तपो निर्ग्रन्थतपश्चरणं पर्यत्यजत् तत्याज। यथेष्टं यथेच्छं यथा स्यात्तथा स्वैरविहरणाय स्वच्छन्दविहारायावकाशस्य प्रदाने पण्डितो निपुणस्तेन तथाभूतेन पाषण्डिवेषेण कुतापसवेषेण अवर्तिष्ट च प्रववृते च। स पुनरिति—स पुनरनन्तरम् भस्मना भूत्या अङ्गार इव भस्मकमहारोगेण भस्मकाख्यमहाव्याधिना तिरोहिता दीप्तिर्यस्य तथाभूतः, सम्यक्त्वेन पूता मतिर्यस्य तादृशः, तत इतो यतस्ततो विहरन् अनवरतं निरन्तरं जृम्भमाणा वर्धमाना या दारुणबुभुक्षा कठिनबुभुक्षा तया क्षोभिता विचलिता मतिर्बुद्धिर्यस्य तादृक् सन् कदाचित् जातुचित् अधरितकुबेरवैभवस्य तिरस्कृतधनपतिवैभवस्य गन्धोत्कटस्य वैश्यपतेः हर्म्यं सौधम् अविशत् प्रविवेश। अथ हर्म्यस्य विशेषणान्याह—सततेति—सततं सर्वदा विघटितं कपाटपुटमररपुटं यस्य तत्, उत्तम्भितैस्त्थापितैर्मणिस्तम्भै रत्नमयस्तम्भैः शुम्भितं शोभितमभ्यन्तरमबहिःप्रदेशो यस्य तत्, निरन्तरं निरवकाशं यथा स्यात्तथा विप्रकीर्णैः प्रसारितैर्मणिगणै रत्नसमूहैः शर्करिलं शर्करायुक्तं भूतलं पृथिवीतलं यस्मिन् तत् अत एव अगस्त्येन कुम्भोद्भवेन ऋषिणा कबलितं जलपूरं यस्य तादृशं रत्नाकरमिव सागरमिव, आखण्डलकुलिशस्य सहस्राक्षवज्रस्य पुनःपतनभयेन भूयः पतनभीत्या

§ ५१. जिनदीक्षा प्राप्त कर वह अज्ञान अथवा मोहको नष्ट करनेवाले तप तपने लगा। परन्तु पूर्व जन्ममें अर्जित दुर्जर पापके उदयसे उत्पन्न उस भस्मक व्याधिने जो खाये हुए समस्त भोजनको उसी क्षण भस्म कर देता था उसे धर दबाया। उक्त व्याधिसे आक्रान्त होनेपर यद्यपि उसने अपने चरित्रमें बट्टा नहीं आने दिया था तथापि अशक्तिके कारण जिस प्रकार दरिद्र मनुष्य दुर्लभ धनको छोड़ देता है उसी प्रकार उसने उत्कृष्ट तप छोड़ दिया। और स्वच्छन्द विहारके लिए अवकाश देनेमें निपुण पाषण्डीके वेषसे इच्छानुसार प्रवृत्ति करने लगा। जिस प्रकार अङ्गार भीतर देदीप्यमान रहता है परन्तु ऊपर भस्मसे उसकी कान्ति तिरोहित हो जाती है उसी प्रकार वह साधु भीतर तो सम्यग्दर्शनसे पवित्र बुद्धिका धारक था परन्तु ऊपर उस भस्मक महारोगसे उसकी कान्ति तिरोहित हो गयी थी। एक दिन निरन्तर बढ़ती हुई भयंकर भूखसे जिसकी बुद्धि क्षोभित—चंचल हो रही थी—ऐसा वह साधु यहाँ-वहाँ विहार करता हुआ कुबेरके वैभवको तिरस्कृत करनेवाले गन्धोत्कटके उस भवनमें जा प्रविष्ट हुआ जिसके कि किवाड़ सदा खुले रहते थे, ऊँचे खड़े किये हुए मणिमय खम्भोंसे

१. क० ख० ग० 'च' नास्ति। २. क० ख० ग० तेनावच्छिन्नमप्यशक्यतया। ३. म० अभ्यन्तर।

वृत्तवेषमिव रोहणशिखरिणमभिनवशष्पशङ्कातरलितगृहहरिणपोतलिह्यमानगरुत्मदुत्पलघटित-तलमयूखपटलमतिचटुलपरिचारकचरणपुटरटितरत्नसोपानमवलम्बितमुक्तादामपुलकितवलभीनिवेश-मितस्ततो दृश्यमानचामीकरपर्यङ्कपरिहसितमेरुशिलातलमभिनवसुधालेपधवलितोपरिभागरम्यं हर्म्य-मविशत् ।

§ ५२. तत्र च प्रसार्यमाणसौवर्णामत्रविडम्बितमित्रमण्डले त्वरमाणपरिजनवनिताकर-प्रमृज्यमानमणिचषकशुक्तिसंचये संमूर्च्छदतुच्छपाटलपरिमलसुरभि पानीयभरिततपनीयभृङ्गारके लिख्यमानमङ्गलचूर्णरेखानिवेद्यमानभोजनभुवि समुद्घाटितपञ्जरकवाटविनिर्गतक्रीडाशुकसारिका-

परिवृत्तो वेषो येन तथाभूतं रोहणशिखरिणमिव रोहणगिरिमिव, अभिनवशष्पाणां हरितहरितनूतनघासानां शङ्कया सन्देहेन तरलिताः सतृष्णीकृता ये गृहहरिणपोता गृहमृगशिशवस्तैर्लिह्यमानमास्वाद्यमानं गरुत्मदु-पलघटिततलस्य नीलमणिनिर्मितभूपृष्ठस्य मयूखपटलं किरणपटलं यस्मिन् तत्, अतिचटुलैश्चपलतरैः परि-चारकाणां सेवकानां चरणपुटै रटितानि शब्दितानि रत्नसोपानानि मणिमयपादावतारिका यस्मिन् तत्, अवलम्बितैः स्रस्तैर्मुक्तादामभिर्मौक्तिकस्रग्भिः पुलकिता युक्ता वलभीनिवेशा गोपानसीनिवेशा यस्मिन् तत्, इतस्ततो यत्र तत्र दृश्यमानैरवलोक्यमानैश्चामीकरपर्यङ्कैः स्वर्णासनैः परिहसितानि मेरुशिलातलानि यस्मिन् तत्, अभिनवेन नूतनेन सुधालेपेन चूर्णकद्रवलेपेन धवलितः शुक्लीकृतो य उपरिभाग उपरितन-प्रदेशस्तेन रम्यं रमणीयं हर्म्यं सौधम् अविशत् इति पूर्वोक्तम् ।

§ ५२. तत्र चेति—तत्र च हर्म्ये प्रसार्यमाणैर्विस्तार्यमाणैः सौवर्णामत्रैः कनकभाजनैर्विडम्बितं तिरस्कृतं मित्रमण्डलं सूर्यबिम्बं यस्मिन् तस्मिन्, त्वरमाणाः शीघ्रतां कुर्वाणाः याः परिजनवनिताः परि-चारिकास्तासां करैः पाणिभिः प्रमृज्यमानः स्वच्छीक्रियमाणो मणिचषकशुक्तिसंचयो रत्नमयपानपात्र-शुक्तिसमूहो यस्मिन् तस्मिन्, संमूर्च्छन् वर्धमानोऽतुच्छः प्रचुरो यः पाटलस्य स्थलारविन्दस्य परिमलः सौगन्ध्यं तेन सुरभि सुगन्धि यत्पानीयं जलं तेन भरिताः पूर्णास्तपनीयभृङ्गारकाः स्वर्णकलशा यस्मिन् तस्मिन्, लिख्यमानाभिर्मङ्गलचूर्णरेखाभिर्निवेद्यमाना सूच्यमाना भोजनभूर्यस्मिन् तस्मिन्, समुद्घाटितेभ्यः

सुशोभित भीतरी भागमें निरन्तर फैलाये गये मणियोंके समूहसे जहाँकी भूमि शर्करासे युक्त थी और इसीलिए जो, अगस्त्य ऋषिने जिसका सब पानी पी लिया था ऐसे रत्नाकर-सागरके समान जान पड़ता था, जो इन्द्रके वज्रके पुनः गिरनेके भयसे वेष बदलनेवाले रोहण गिरिके समान था, नूतन घासकी शंकासे चंचल पालतू हरिणोंके बच्चे जिसके गरुड़ मणियोंसे निर्मित फर्शसे निकलनेवाली किरणोंके समूहको चाँट रहे थे, अत्यन्त चंचल परि-चारकोंके चरणपुटसे जहाँ रत्नोंकी सीढ़ियाँ शब्द करती रहती थीं, लटकती हुई मोतियोंकी मालाओंसे जिसकी छपरियाँ पुलकित हो रही थीं, जहाँ-तहाँ दिखाई देनेवाले स्वर्णके पलंगोंसे जहाँ सुमेरुके शिलातलोंकी हँसी उड़ायी जा रही थी, और नूतन कलईके लेपसे उज्ज्वल ऊपरी भागसे जो रमणीय था ।

§ ५२. वहाँ जैन जनोंका सर्वस्व होनेके कारण वह गन्धोत्कटकी उस भोजनशालामें निःशंक होकर प्रवेश करने लगा जिसमें कि फैलाये जानेवाले सुवर्णमय पात्रोंसे सूर्यमण्डल-की विडम्बना हो रही थी, शीघ्रता करनेवाली परिजनकी स्त्रियोंके हाथोंसे जहाँ मणिमय प्याले और तश्तरियोंके समूह साफ किये जा रहे थे, जहाँ बढ़ती हुई गुलाबकी बहुत भारी सुगन्धिसे सुगन्धित जलसे स्वर्णनिर्मित लोटे भरे जा रहे थे, जहाँ लिखी जानेवाली मांगलिक चूर्णकी रेखाओंसे भोजनकी भूमि सूचित हो रही थी, पिंजड़ोंके किवाड़ खोल

---

१०. क सुरभित ।

हूयमानपौरोगवे प्रवेश्यमानबुभुक्षितजने प्रदीयमानपङ्क्तिभोजनामत्रकदलीपत्रे प्रत्यग्रपाकजनितसौरभ्यलुभ्यद्घ्राणे समन्ततश्चलिततालवृन्तग्राहिणीचरणनूपुररणितभरितदिशि [1]भोजनास्थानमण्डपे जैनजनसर्वस्वतया निःशङ्कं प्रविशन्नातिदूरनिविष्टैर्निबिडभूषणमणिप्रभातरङ्गिततनुभिरतनुकायकान्तिभिरात्मनः प्रतिबिम्बैरिव समानवयोरूपलावण्यैर्वयस्यैरुपास्यमानमुडुगणपरिवृतमिव बालचन्द्रमसमायुष्मन्तमपश्यत् ।

§ ५३. भवानपि बाल्येऽप्याकृतिज्ञतया प्रकृतिसुलभकृपाप्रेरितहृदयतया च तस्य तादृशीं बुभुक्षामालक्ष्य 'भोज्यतामयमभिमतैर्भोज्यैः' इति पुरःस्थितं पौरोगवाध्यक्षमादिक्षत् । भिक्षुरपि

पञ्जरकवाटेभ्योऽयःशलाकागृहाररेभ्यो विनिर्गता याः क्रीडाशुकसारिकाः केलिकीरमदनिकास्ताभिर्हूयमाना आकार्यमाणाः पौरोगवाः पाचका यस्मिन् तस्मिन्, प्रवेश्यमाना बुभुक्षितजनाः क्षुधातुरपुरुषा यस्मिन् तस्मिन्, प्रदीयमानानि वितीर्यमाणानि भोजनामत्राय भोजनपात्राय कदलीपत्राणि रम्भादलानि यस्मिन् तस्मिन्, प्रत्यग्रपाकेन नूतनपाकेन जनितं समुत्पादितं यत्सौरभ्यं तेन लुभ्यद् घ्राणं नासेन्द्रियं यस्मिन् तस्मिन्, समन्ततः परितश्चलिता यास्तालवृन्तग्राहिण्यो व्यजनधारिण्यस्तासां चरणनूपुराणां पादमञ्जरिकाणां रणितेन शब्देन भरिता व्याप्ता दिशो यस्मिन् तस्मिन्, भोजनास्थानमण्डपे भोजनशालामण्डपे जैनजनानां सर्वस्वता तया निःशङ्कं यथा स्यात्तथा प्रविशन् लोकपालतापसो नातिदूरनिविष्टैः समीपस्थितैः निबिडभूषणमणीनां सान्द्राभरणरत्नानां प्रभया दीप्त्या तरङ्गिता व्याप्ता तनुर्येषां तैः, अतनुकायस्य कामकलेवरस्येव कान्तिर्येषां तैः, आत्मनः स्वस्य प्रतिबिम्बैरिव प्रतिकृतिभिरिव समानानि सदृशानि वयोरूपलावण्यानि अवस्थावर्णसौन्दर्याणि येषां तैः वयस्यैर्मित्रैः उपास्यमानं सेव्यमानम् अत एव उडुगणपरिवृतं नक्षत्रनिचयव्याप्तं बालचन्द्रमसमिव द्वितीयेन्दुमिव आयुष्मन्तं भवन्तम् अपश्यत् ।

§ ५३. भवानपि आयुष्मानपि बाल्येऽपि बालावस्थायामपि आकृतिज्ञतया आकारज्ञत्वेन प्रकृत्या निसर्गेण सुलभा या कृपा दया तया प्रेरितं हृदयं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया च तस्य तापसस्य तादृशीं तथाभूतां बुभुक्षां क्षुधाम् आलक्ष्य दृष्ट्वा 'अयं तापसः अभिमतैरिष्टैः भोज्यैर्भोजनैः भोज्यताम्' इतीत्थं पुरोऽग्रे स्थितं पौरोगवाध्यक्षं प्रधानपाचकम् आदिदेश आज्ञपयामास । भिक्षुरपि—भिक्षुरपि तापसोऽपि कटाक्ष-

देनेसे निकले हुए पालतू तोता मैनाओंके द्वारा जहाँ रसोइया बुलाये जा रहे थे, जहाँ भूखे मनुष्योंको प्रविष्ट कराया जा रहा था, जहाँ पंक्तिभोजनके लिए पात्रके रूपमें केलेके पत्ते दिये जा रहे थे, जहाँ नूतन पाकसे उत्पन्न सुगन्धिके कारण घ्राणेन्द्रिय लुभा रही थी और जहाँ सब ओर चलती हुई पंखा झलनेवाली स्त्रियोंके चरणोंके नूपुरोंकी झनकारसे दिशाएँ भर गयी थीं । वहाँ प्रवेश करते ही उसने, जो समीपमें बैठे हुए थे, सान्द्रभूषणोंके मणियोंकी प्रभासे जिनके शरीर लहरा रहे थे, जिनके शरीरकी कान्ति कामदेवके समान थी अथवा जो अत्यधिक शरीरकी कान्तिसे युक्त थे जो अपने ही प्रतिबिम्बोंके समान जान पड़ते थे, और जो समान अवस्था, समान रूप तथा समान सौन्दर्यके धारक थे ऐसे मित्रगणोंसे सेवित आपको देखा । उस समय अनेक मित्रगणोंसे घिरे हुए आप नक्षत्रोंके समूहसे घिरे बाल चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ।

§ ५३. यतश्च आप बाल्य अवस्थामें भी आकृतिका ज्ञान रखते थे और आपका हृदय स्वभावसुलभ दयासे प्रेरित था अतः आपने उस पाषण्डी साधुकी वैसी भूख देख सामने खड़े रसोइयाको आज्ञा दी कि 'इसे इच्छानुकूल खाद्य पदार्थोंसे भोजन कराया जाये ।'

१. म० भोजनस्थानमण्डपे ।

कटाक्षपातक्षणसंनिहितसलिलकर्मान्तिककरावर्जितकनकभृङ्गारगर्भगलितधारासलिल[1] क्षालितचरणः प्रसारितवेत्रासने मणिकुट्टिमे समुपविश्य पुरोनिहितपृथुतरामत्रपातितममलदुग्धजलधिफेनपटलधवलं संपन्नमन्नराशिमविरलघृतसिता[2]संपातद्विगुणितमाधुर्येण मौद्गकद्रवे[3]ण कबलीकृत्य मधुररसभरितोदरेण विडम्बितकनकपालिकेन पचेलिमेन पनसफलेन पाकपाटलितत्वचा [4]मोचाफलेन शातकुम्भकुम्भसदृशाकारेण सहकारफलेन च प्राज्याज्यप्रचुरमरीचानुगुणलवणमधुरनालिकेरपयःपल्लवितरसेन बृहद्बृहतीप्रमुखेनाञ्जनशिखरिदेशीयेन व्यञ्जनजातेनाप्यभिव्यञ्जितरसं निमेषमात्रेण निरवशेषमभ्यवाहृत। पुनरप्यहृष्टमनसे प्रचुरमन्नमह्नाय भोक्तुमभिलषते तस्मै विस्मयस्तिमित-

पातस्वापाङ्गपातस्य क्षणे समये संनिहितो निकटस्थितो यः सलिलकर्मान्तिको जलकार्यकरस्तस्य करेणावर्जितो गृहीतो यः कनकभृङ्गारस्तस्य गर्भात् मध्याद् गलितं नि.सृतं यद् धारालं धारावद्धं सलिलं तेन क्षालितौ चरणौ यस्य तथाभूत. सन् प्रसारितानि वेत्रासनानि यस्मिन् तस्मिन्, मणिकुट्टिमे रत्नखचितभूपृष्ठे समुपविश्य स्थितो भूत्वा पुरोनिहिते पुरस्तात्स्थापिते पृथुतरेऽतिविस्तीर्णेऽमत्रे पात्रे पातितं तथाभूतम्, अमलं निर्मलं यद् दुग्धजलधिफेनपटलं क्षीरसागरडिण्डीरपिण्डं तद्वद् धवलं शुक्लम्, संपन्नं परिपक्वम् अन्नराशिं भोज्यसमूहम्, अविरलं निरन्तरं यथा स्यात्तथा घृतसितयो. सर्पिःशर्करोपलयोः संपातेन द्विगुणितं माधुर्यं यस्य तेन तथाभूतेन मौद्गकद्रवेण मुद्गदालीद्रवेण कबलीकृत्य ग्रासीकृत्य भुक्त्वेत्यर्थः, मधुररसेन भरितमुदरं मध्यं यस्य तेन, विडम्बितास्तिरस्कृताः कनकपालिकाः स्वर्णफक्किका येन तेन, पचेलिमेन परिपक्वेन पनसफलेन 'कटहल' इति प्रसिद्धफलेन, पाकेन पाटलिता मनागरक्तवर्णीकृता त्वक् यस्य तेन तथाभूतेन मोचाफलेन कदलीफलेन, शातकुम्भकुम्भस्य स्वर्णघटस्य सदृशः समान आकारो यस्य तेन तथाभूतेन सहकारफलेन च अतिसौरभाम्रफलेन च प्राज्याज्येन प्रकृष्टघृतेन प्रचुराणि यानि मरिचानि तैरनुगुणमनुरूपं यत् लवणं क्षारं तेन मधुरं यत् नालिकेरपयो नालिकेराभ्यन्तरस्थितसलिलं तेन पल्लवितो वृद्धिंगतो रसो यस्य तेन, बृहद्बृहतीप्रमुखेन विशालकर्कटिकाप्रधानेन अञ्जनशिखरिदेशीयेन अञ्जनगिरितुल्येन व्यञ्जनजातेनापि शाकसमूहेनापि अभिव्यञ्जितः प्रकटितो रस. स्वादो यस्य तम् अन्नराशिं निरवशेषं सम्पूर्णं निमेषमात्रेण अभ्यवाहृत भक्षयामास। पुनरपि—पुनरपि प्रचुरान्नराशिभक्षणानन्तरमपि अहृष्टं मनो यस्य तस्मै अप्रसन्नचेतसे प्रचुरं विपुलम् अन्नं खाद्यम् अह्नाय झटिति भोक्तुमभिलषते खादितुमिच्छते तस्मै भिक्षवे विस्मयेनाश्चर्येण स्तिमितं निश्चलं मनो यस्य तेन तथाभूतेन त्वया समादिष्टा

कटाक्ष पातके क्षण ही समीपमें स्थित पानीके कार्यमें स्थित सेवकके हाथमें धारण किये हुए स्वर्णमय लोटाके मध्यसे गिरते हुए धाराप्रवाह जलसे जिसके पैर धुलाये गये थे ऐसा साधु भी बिछायी हुई बेतकी चटाइयोंसे युक्त मणिमय फर्शपर बैठकर सामने रखे विशाल पात्रमें परोसी, निर्मल क्षीर सागरके जलके फेनपटलके समान धवल, परिपक्व अन्नकी राशिको अत्यधिक घी और मिश्रीके डालनेसे जिसकी मधुरता दूनी हो गयी थी ऐसी मूँगकी दालके साथ खाकर मधुर रससे परिपूर्ण मध्यभागसे युक्त, स्वर्णकी फाँकको तिरस्कृत करनेवाले पके कटहलसे, पक जानेके कारण लाल पीली त्वचासे युक्त कदलीफलसे, स्वर्णघटके सदृश आकारको धारण करनेवाले आमसे, अत्यधिक घीसे परिपूर्ण मिर्चके अनुरूप नमकसे मधुर नारियलके जलसे वृद्धिंगत रससे और अञ्जनगिरिके समान बैंगन आदिकी बहुत भारी शाकसे जिसका स्वाद प्रकट हो रहा था ऐसे समस्त भोज्य पदार्थोंको निमेषमात्रमें खा गया। उतना सब खा लेनेके बाद भी जिसका मन प्रसन्न नहीं हुआ था, और जो शीघ्र ही बहुत सारा अन्न खानेकी इच्छा रखता था ऐसे उस साधुके लिए, आश्चर्यसे चकित हृदयको धारण

१. क० ग० धारासलिल। २. क० ख० ग० सितसंपात। ३. क० ख० ग० मौद्गवेन। ४. क० ख० ग० मोचफलेन।

मनसा त्वया समादिष्टाः पौरोगवाः पूर्वनिष्पन्नं तद्भवनवासिनिखिलजनभोक्तव्यं विविधमन्धःसंभारं समर्पयामासुः । स भिक्षुरक्षीणबुभुक्षुस्तदशेषमशनमम्भोधिपयःसंभारमिव कल्पान्तकालानलः कवलयन् कदाचिदताप्सीत् ।

§ ५४. एवं पूर्वनिष्पन्नैस्तदात्वसंपादितैरपरिमितैश्च पायसदाधिकसार्पिष्काद्यमृतपिण्डैरपूपैर-[1]ऽपूर्णजठरमाशार्णवमिव वर्णिनमालोक्य चित्रीयाविष्टस्त्वमनासादिताहारो निवसन्भिक्षोर्व्याधेः परिक्षयकालतया वा कुमारकारुण्यवैभवेन वा तथाभवितव्यतया वा तस्य वस्तुनः स्वहस्तावलम्बितं कलमकवलमत्यादराददिथाः । तदास्वादनमात्रेण[2] तृष्णापयोधिरिव भगवत्या परमनिवृत्त्या क्षण

आज्ञप्ताः पौरोगवाः पाचकाः पूर्वं निष्पन्नं पूर्वनिष्पन्नं प्राक्सिद्धम् तद्भवनवासिभिर्निखिलैर्जनैर्भोक्तव्य-मिति तथा विविधं नानाप्रकारम् अन्धःसम्भारं खाद्यसमूहं समर्पयामासुः । अक्षीणा बुभुक्षा यस्य सोऽन्यूनभोजनाभिलाषः स भिक्षुः तत्समर्पितम्, अशेषं निखिलम् अशनं भोजनम् अम्भोधेः पयःसंभार इत्यम्भोधिपयःसंभारस्तमिव सागरसलिलसमूहं कल्पान्तकालानल इव प्रलयवेलापावक इव कवलन् ग्रसन् न कदाचिज्जातुचित् अताप्सीत् संतुष्टोऽभूत् ।

§ ५४. एवमिति—एवमित्थं पूर्वनिष्पन्नैः प्राक्पक्वैः तदात्वसंपादितैस्तत्कालसाधितैश्च अपरिमितैः भूयोभिः पयसा संस्कृतं पायसं, दध्ना संस्कृतं दाधिकं, सर्पिषा संस्कृतं सार्पिष्कं पायसं च दाधिकं च सार्पिष्कं चेति पायसदाधिकसार्पिष्काणि तान्यादौ येषां तथाभूतानि यानि अमृतपिण्डैर्मधुरभोजनैः अपूपैर्भक्ष्य-विशेषैरपि अपूर्णजठरमभृतोदरम् आशार्णवमिव तृष्णातोयनिधिमिव वर्णिनं भिक्षुम् आलोक्य दृष्ट्वा चित्रीयाविष्टो विस्मयोपेतः त्वम् अनासादितोऽगृहीत आहारो येन तथाभूतो निवसन् सन् भिक्षोस्तापसस्य व्याधेर्भस्मकरोगस्य परिक्षयकालतया विनाशसमयतया वा कुमारस्य भवत. कारुण्यवैभवेन दयाप्रभावेण वा तस्य वस्तुनः कार्यस्य तथा भवितव्यतया वा तादृक्परिणतेरवश्यं भावितया वा स्वहस्तावलम्बितं स्वकीयपाणिसंधारितं कलमकवलं भक्तग्रासम्, अत्यादरात् संमानातिशयात् अदिथाः दत्तवान् । तदास्वादनेति—तस्य कलमकवलस्यास्वादनमेवेति तदास्वादनमात्रं तेन भगवत्या सातिशयप्रभावपूर्णया परमनिवृत्त्या दिगम्बरदीक्षया तृष्णापयोधिरिव तृष्णासागर इव तस्मिन्नेव क्षणे तत्काल एव वर्णिनस्तापस-

---

करनेवाले आपके द्वारा आज्ञाको प्राप्त हुए रसोइयोंने पहलेसे तैयार किये हुए एवं उस घरके सब लोगोंके द्वारा खाने योग्य नाना प्रकारकी भोजन सामग्री समर्पित कर दी। जिस प्रकार कल्पान्त कालकी अग्नि समुद्रके समस्त जलको ग्रहण करती हुई भी कभी तृप्त नहीं होती है उसी प्रकार अक्षीण भूखको धारण करनेवाला वह साधु उस समस्त भोजनको खाता हुआ भी कभी तृप्त नहीं हुआ।

§ ५४. इस प्रकार पहलेके बने और तत्काल बनाये हुए अपरिमित दूध, दही तथा घीसे निर्मित अमृतके पिण्डके समान पुओंसे भी जिसका पेट नहीं भर सका था और जो आशाके सागरके समान जान पड़ता था ऐसे उस ब्रह्मचारी-साधुको देखकर आप आश्चर्यमें पड़ गये तथा स्वयं भोजन किये बिना ही बैठे रहे। उस समय साधुकी बीमारीके क्षयका समय आ पहुँचा था, अथवा आपकी दयाका माहात्म्य था अथवा वह कार्य ही वैसा होने-वाला था इसलिए आपने अपने हाथमें स्थित धानके चावलोंका एक ग्रास बहुत ही आदरके साथ उसे दिया। उसे खाते ही साधुका पेट उसी क्षण उस प्रकार पूर्ण हो गया जिस प्रकार-

---

१. क० ख० ग० अपूपैश्च। २. क० ख० ग० तत्स्वादनमात्रेण।

एव तस्मिन्पूर्णे वर्णिनो जठरमभूत् । आसीच्चास्य सौहित्यम् । अतृपच्चायमतितराम् । नितरां व्यस्मेष्ट प्रकृष्टतपसां सुलभेन भवन्माहात्म्येन । निरणैषीच्च भवल्लक्षणेन भवन्तमन्यादृशम् । अतर्कयच्च पुनरमान्तं स्वान्तसंकटकुटीरे बहिरपि विहारयन्निव रोमाञ्चनिभेन हर्षभरम्— 'आसीदयमपहसितमारः कुमारो मारकोऽस्मद्भस्मकव्याधेः । काऽत्र कर्तव्या प्रत्युपकृतिः ? न हि प्रतिकृतिसव्यपेक्षाः प्रेक्षावतामुपकृतयः । तथापि किमप्युपकृत्य प्रतिकृतिमता मया भवितव्यम्' इति सुचिरं विचिन्त्याप्यन्यां प्रतिकृतिमनालोकयन्नुभयलोकहितहेतुभूतमभूतपूर्वमहिमानमनवद्याभिर्विद्याभिरेवमलमकुरुत भवन्तम्' इति ।

§ ५५. एवं विदितगुरुवृत्तान्ततया मुदितमानसं प्रलयाभिमुखीभवदेनसं चरमदेहधारिणं कुमारं सूरिः श्रीरत्नत्रयविशुद्धिसंपादनाय तत्त्वमबूबुधत्—'वत्स, तवाधिगतगृहमेधिधर्मयाथात्म्य-

स्य जठरमुदरं पूर्णमभूत । अस्य भिक्षोः सुहितस्य भावः सौहित्यम् उल्लाघत्वंञ्च अभूत् । अयं भिक्षुः अतितरां सातिशयम् अतृपच्च तृप्तश्च बभूव । प्रकृष्टं तपो येषां तेषां सुलभेन भवन्माहात्म्येन त्वदीयमहिम्ना नितरां सातिशयं व्यस्मेष्ट विस्मितोऽभूत् । भवतो लक्षणं तेन त्वल्लक्षणेन भवन्तम् अन्यादृशमनुपमं निरणैषीच्च निर्णीतवान् । अतर्कयच्चेति—पुनरनन्तरं स्वान्तं चित्तमेव संकटकुटीरस्तस्मिन् अमान्तं स्थानमलभमानं हर्षभरं प्रमोदप्रचयरोमाञ्चनिभेन पुलकव्याजेन बहिरपि विहारयन्निव भ्रमयन्निव अतर्कयच्च व्यचारयच्च—'अपहसितो मारो मदनो येन सोऽपहसितमारः अयम् कुमारः अस्मद्भस्मकव्याधेः मद्भस्मकाख्यरोगस्य मारकोऽपहर्ता आसीत् अत्र का किन्नामधेया प्रतिकृतिः प्रत्युपकारः कर्तव्या विधातव्या । यद्यपि प्रेक्षावतां बुद्धिमतां प्रत्युपकृतयः प्रतिकृतिसव्यपेक्षाः प्रतिकारतन्त्रा न हि भवन्ति तथापि किमपि किंचिदपि, उपकृत्य समुपकारं विधाय मया प्रतिकृतिमता प्रत्युपकारयुक्तेन भवितव्यम्' इतीत्थं सुचिरं चिरकालपर्यन्तं विचिन्त्यापि विचार्यापि अन्यामितरां प्रतिकृतिम् अनालोकयन् उभयलोकहितहेतुभूतं लोकद्वयहितकारणभूतम् अभूतपूर्वो महिमा यस्य तमेवंभूतं भवन्तम्, अनवद्याभिर्निर्दुष्टाभिर्विद्याभिः एवम् अलमकुरुत अलंचकार' इति ।

§ ५५. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण विदितो विज्ञातो गुरुवृत्तान्तो येन तस्य भावस्तत्ता तया मुदितं मानसं यस्य तं प्रलयाभिमुखीभवत् विनाशोन्मुखमेनः पापं यस्य तं चरमदेहधारिणं तद्भवमोक्षगामिनं कुमारं जीवंधरं सूरिराचार्यः, श्रीरत्नत्रयस्य सम्यग्दर्शनादिरत्नस्य विशुद्धिस्तस्याः संपादनाय प्रापणाय तत्त्वं वस्तुस्वरूपम् अबूबुधत् बोधयति स्म । वत्सेति—'वत्स, तात, अधिगतः

की भगवती दैगम्बरी दीक्षासे तृष्णाका सागर पूर्ण हो जाता है । साधुको परम तृप्ति हुई और अपनी पूर्व प्रवृत्तिसे वह अत्यधिक लज्जित होने लगा । प्रकृष्ट तपस्या करनेवाले मनुष्योंके लिए सुलभ आपके माहात्म्यसे वह अत्यन्त आश्चर्य करने लगा । उसने आपके लक्षण देखकर निर्णय कर लिया कि आप अनुपम पुरुष हैं । मनरूपी छोटी-सी कुटियामें नहीं बननेवाले हर्षके समूहको रोमांचोंके बहाने बाहर भी घुमाता हुआ वह विचार करने लगा— कि 'कामकी हँसी उड़ानेवाला यह सुकुमार हमारी भस्मक व्याधिको नष्ट करनेवाला हुआ है अतः इसका क्या प्रत्युपकार करना चाहिए ? यद्यपि बुद्धिमानोंके उपकार प्रत्युपकारकी अपेक्षा नहीं रखते तथापि मुझे क्या उपकार करके प्रत्युपकारसे युक्त होना चाहिए ?' इस तरह चिरकाल तक विचार करनेके बाद भी जब वह अन्य प्रत्युपकारको नहीं देख सका तब उसने दोनों लोकोंमें हितके कारण एवं अभूतपूर्व महिमाके धारक आपको इस प्रकार निर्दोष विद्याओंसे अलंकृत कर दिया ।'

§ ५५. इस प्रकार गुरुका वृत्तान्त जाननेसे जिनका मन प्रसन्न हो रहा था, जिनके पाप विनाशके सम्मुख थे और जो चरम शरीरको धारण करनेवाले थे ऐसे जीवन्धर कुमारको

प्रतिपादनप्रकारविलसदुपासकाध्ययनपरमागमस्य नोपदेष्टव्यमस्ति । तथाप्युपदेशमूलाया एव सकलकर्मप्रवृत्तेः सफलत्वात्संगृह्य किंचिदुपदिश्यते । श्रवणग्रहणधारणानुस्मरणप्रमुखविविधप्रयाससाध्यस्य शास्त्रावगमस्य प्रयोजनं पुंसां हेयोपादेयपरिज्ञानस्वरूपपुरुषार्थसिद्धिस्तन्मूलत्वादपवर्गप्राप्तेः। सा चेन्न स्याद्व्रीहिखण्डनायास इव तण्डुलत्यागिनः, कूपखननप्रयास इव नीरनिरपेक्षिणः, कर्णशुक्तिरिव[1] शास्त्रशुश्रूषापराङ्मुखस्य, द्रविणार्जनक्लेश इव वितरणगुणानभिज्ञस्य, तपस्याश्रम इव नैरात्म्यवादिनः, शिरोभारधारणश्रान्तिरिव जिनेश्वरचरणप्रणामबहुमतिबहिष्कृतस्य, प्रव्रज्याप्रारम्भ इवेन्द्रियदासस्य विफलः सकलोऽप्ययं प्रयासः स्यात् । इह केचन कोमलप्रज्ञाः प्राज्ञजन-

सम्यक्प्रकारेण विज्ञातो गृहमेधिधर्मस्य गृहस्थधर्मस्य याथात्म्यप्रतिपादनप्रकारेण यथार्थस्वरूपनिरूपणपद्धत्या विलसन् शोभमान उपासकाध्ययनपरमागमः सत्समाङ्कपरमागमो येन तथाभूतस्य तव उपदेष्टव्यं प्रतिपादनीयं नास्ति, यद्यपीति योज्यम् । तथापि उपदेशो मूलं यस्यास्तथाभूताया एव सकलकर्मप्रवृत्तेर्निखिलकार्यप्रवृत्तेः सफलत्वात् संगृह्य किंचित् किमपि उपदिश्यते । श्रवणेति—श्रवणं च ग्रहणं च धारणं अनुस्मरणं चेति श्रवणग्रहणधारणानुस्मरणानि तानि प्रमुखानि प्रधानानि येषु तथाभूता ये विविधप्रयासा नानाप्रयत्नास्तैः साध्यस्य प्रापणीयस्य शास्त्रावगमस्य शास्त्रज्ञानस्य प्रयोजनमुद्देश्यं पुंसां पुरुषाणां हेयोपादेययोर्गृहणीयागृहणीयतत्त्वयोः परिज्ञानं स्वरूपं यस्य तथाभूतो यः पुरुषार्थस्तस्य सिद्धिः अस्तीति शेषः अपवर्गप्राप्तेर्मोक्षप्राप्तेः तन्मूलत्वात्तत्कारणत्वात् । सा पूर्वोक्तपुरुषार्थसिद्धिः चेद्यदि न स्यात्तर्हि तण्डुलत्यागिनः शालेयपरित्यागिनो व्रीहिखण्डनायास इव धान्यखण्डनप्रयास इव, नीरनिरपेक्षिणो जलनिःस्पृहस्य कूपखननप्रयास इव प्रहिखननप्रयत्न इव, शास्त्रशुश्रूषायाः शास्त्रश्रवणेच्छायाः पराङ्मुखस्तस्य कर्णशुक्तिरिव कर्णशुक्तिस्तद्वत् श्रवणशुक्तिरिव अत्र कर्णपाश इव कर्णशुक्तिरिति पदप्रयोगो बोध्यः, वितरणगुणानभिज्ञस्य दानगुणापरिचितस्य द्रविणार्जनक्लेश इव धनोपार्जनायास इव, नैरात्म्यवादिन आत्माभाववादिनः तपस्याश्रम इव तपश्चरणक्लेश इव, जिनेश्वरचरणयोर्जिनेन्द्रपादारविन्दयोः प्रणाम एव बहुमतिः सत्कारातिशयस्तेन बहिष्कृतो दूरीभूतस्तस्य, शिरोभारधारणश्रान्तिरिव मूर्धरूपभारधारणश्रम इव, इन्द्रियदासस्य हृषीकानुचरस्य प्रव्रज्याप्रारम्भ इव दीक्षाप्रारम्भ इव सकलोऽपि निखिलोऽपि अयं प्रयासः खेदो विफलो मोघः स्यात् । इहेति—इह लोके कोमलप्रज्ञा मन्दबुद्धयः केचन जनाः

आर्यनन्दी आचार्यने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयमें विशुद्धता प्राप्त करानेके लिए तत्त्वका उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि 'वत्स! तू गृहस्थधर्मकी यथार्थताके प्रतिपादनसे सुशोभित उपासकाध्ययन नामक परमागमको जाननेवाला है अतः यद्यपि तुझे उपदेश देनेके योग्य कुछ भी बात नहीं है तथापि उपदेशमूलक ही समस्त कार्योंकी प्रवृत्ति सफल होती है इसलिए संग्रह कर कुछ उपदेश दिया जाता है। पुरुष, सुनना, ग्रहण करना, धारण करना और बार-बार स्मरण करना आदि नाना प्रकारके उपायोंसे जो शास्त्रज्ञान प्राप्त करते हैं उसका प्रयोजन हेय और उपादेय तत्त्वके परिज्ञान रूप आत्म-तत्त्वकी सिद्धि करना है क्योंकि मोक्ष-प्राप्तिका मूल कारण वही है। यदि आत्म-तत्त्वकी सिद्धि नहीं हुई तो चावलोंका त्याग करनेवालेके धान कूटनेके प्रयासके समान, जलसे निरपेक्ष मनुष्यके कुआँ खोदनेके प्रयासके समान, शास्त्रश्रवण करनेकी इच्छासे विमुख मनुष्यके कणादकी उक्ति-न्यायशास्त्रके अध्ययनजन्य श्रमके समान, दानगुणसे अनभिज्ञ मनुष्यके धनोपार्जनके क्लेशके समान, अनात्मवादीके तपस्याके श्रमके समान, जिनेन्द्रभगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करनेकी सद्बुद्धिसे रहित मनुष्यके शिरका भार धारण करनेसे उत्पन्न थकावटके समान,

---

१. म० कणादोक्तिरिव ।

गर्हितं क्षयैकशरणशरीरजीविकामात्रमास्थानवशीकरणचतुरचतुर्विधपाण्डित्यलाभं च शास्त्रावगतेः प्रयोजनमाकलयन्तः केवलं विक्रीणानाः प्रकृष्टमूल्यानि मुष्टयन्धसे मुक्ताफलानि नाफला इव विफलप्रयासाः प्रेक्षावदुपेक्ष्यतां कक्षीकुर्वन्ति । दुर्लभाः खलु हेयोपादेयपरिज्ञानफलाः शास्त्रावगतीर्निश्चिन्वाना विपश्चितः । ततः प्रत्यासन्नभव्यो भवान्भवान्धकारविहरणरजनीमुखं रागद्वेषादिरूपं हेयं विलयविरहितनिरवधिकानन्दमूलकन्दं श्रीरत्नत्रयाभिधानं धनमुपादेयं च यथावदवगम्य गार्हस्थ्यधर्मार्हमनुष्ठेयमनुष्ठातुमर्हति' इति ।

§ ५६. एवं गुरूपदेशपरिगृहीतसमुचितसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्य सकलरहस्योपदेशनिक्षेप-

---

प्राज्ञजनगर्हितं विद्वज्जननिन्दितं क्षय एव विनाश एव एकं शरणं यस्य तथाभूतं यच्छरीरं तस्य जीविकामात्रं भरणोपायमात्रम्, आस्थानस्य सभाया वशीकरणे चतुरं निपुणं यच्चतुर्विधपाण्डित्यं चतुर्मुखवैदुष्यं तस्य लाभस्तं च शास्त्रावगतेः शास्त्रज्ञानस्य प्रयोजनम् आकलयन्तो मन्यमानाः केवलं मात्रं मुष्टयन्धसे मुष्टिप्रमितान्नाय प्रकृष्टमूल्यानि महार्घाणि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि विक्रीणाना नाफला इव व्याधा इव विफलप्रयासा मोघप्रयत्नाः सन्तः प्रेक्षावतां बुद्धिमताम् उपेक्ष्यतामनादरणीयताम् कक्षीकुर्वन्ति अङ्गीकुर्वन्ति । दुर्लभा इति—हेयोपादेययोस्त्याज्यात्याज्यपदार्थयोः परिज्ञानमेव फलं प्रयोजनं यासां ताः शास्त्रावगतीः शास्त्रज्ञानानि निश्चिन्वानाः प्रतियन्तो विपश्चितो विद्वांसः खलु निश्चयेन दुर्लभाः सन्तीति शेषः । ततस्तस्मात् कारणात् प्रत्यासन्नभव्यो निकटभव्यो भवान्, भव एव संसार एवान्धकारस्तिमिरं तस्य विहरणाय रजनीमुखं प्रदोषं रागद्वेषादिरूपम् इष्टपदार्थेष्वनुकूलपरिणामो रागः, अनिष्टपदार्थेषु प्रतिकूलपरिणामो द्वेषः तदादिरूपं हेयं त्याज्यं विलयविरहितोऽविनाशी निरवधिकश्च सीमातीतश्च य आनन्दस्तस्य मूलकन्दं मूलनिमित्तं श्रीरत्नत्रयाभिधानं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्रनामधेयं धनम् उपादेयं ग्राह्यं च यथावद् यथार्थतया अवगम्य बुद्ध्वा गार्हस्थ्यधर्मार्हं गृहिधर्मानुकूलम् अनुष्ठातुं योग्यमनुष्ठेयम् आचारम् अनुष्ठातुं कर्तुम् अर्हति योग्यो वर्तते' इति ।

§ ५६. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण गुरूपदेशेन परिगृहीतानि सम्यक्प्रकारेण धृतानि समुचितानि योग्यानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि येन तथाभूतस्य, सकलरहस्योपदेशानां निखिलगूढतत्त्वोपदेशानां

और इन्द्रियोंके दासके दीक्षाके प्रारम्भके समान यह समस्त प्रयास व्यर्थ है। इस संसारमें कोमल बुद्धिको धारण करनेवाले कितने ही लोग, बुद्धिमानोंके द्वारा निन्दित, नश्वर शरीरकी जीविका मात्र और सभाको वश करनेमें चतुर चार प्रकारके पाण्डित्यकी प्राप्ति कर लेना ही शास्त्रज्ञानका प्रयोजन समझते हैं। ऐसे लोग केवल मुट्ठी-भर अन्नके लिए बहुमूल्य मुक्ताफलोंको बेचनेवाले किरातोंके समान निष्फल प्रयत्न होते हुए विद्वानोंकी उपेक्षाको स्वीकृत करते हैं—विद्वानोंकी दृष्टिमें अनादरके पात्र होते हैं। वास्तवमें हेय और उपादेयके परिज्ञान रूप फलसे युक्त शास्त्रज्ञानका निश्चय करनेवाले विद्वान् दुर्लभ हैं—जो विद्वान् शास्त्रज्ञानका प्रयोजन हेय और उपादेयका ज्ञान होना मानते हैं वे दुर्लभ हैं। अतः आप संसार रूप अन्धकारके फैलनेके लिए रात्रिके प्रारम्भके समान राग-द्वेषादि रूप हेय और अविनाशी-अनन्त आनन्दके मूल कारण रत्नत्रय रूप धनको उपादेय समझकर गृहस्थ धर्मके अनुरूप आचरण करनेके योग्य हैं। आप निकट भव्य हैं।'

§ ५६. इस प्रकार गुरुके उपदेशसे जिन्होंने अनुरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको अच्छी तरह ग्रहण किया था तथा जो समस्त रहस्यका उपदेश रखनेके क्षेत्रके

क्षेत्रस्य तस्य राजकुमारतामावेद्य राज्ञां चरितमभिधित्सन्नादितः प्रभृति कार्त्स्न्येन तदुदन्तमिदन्तया सस्नेहमुपह्वरे सूरिरुपन्यास्थत् । उदस्थाच्च महीपृष्ठाद्गुरुमुखावगतनिजचरितप्रपञ्चः, पञ्चाननपोत इव मदवदरण्यदन्तावलदर्पपरिभूतः, प्रभूतकोपपावककपिलकपोलमण्डलव्याजेन प्रत्यर्थिविनाशसूचिनमुत्पाततरणिबिम्बमिव दर्शयन्, प्रतिभटविपिनदिधक्षया रोषरूषितस्य चक्षुषः प्रभाजालेन प्रतिदिशं प्रसर्पता प्रेषयन्निवाशुशुक्षणिम्, अविरलघर्मोदबिन्दुपुलकिते क्रोधलक्ष्मीकटाक्षकुटिलभ्रूकुटिभीषणे भालपट्टे प्रथीयसि प्रतिबिम्बितमाचार्यमाहवविजयाय मूर्धनि कुर्वन्, समरदेवताराधनाय कुसुमनिचयमिव कोपाट्टहासमरीचिचन्द्रिकाच्छलेन संचिन्वन्, दशनच्छदेन मुहुर्मुहुः स्फुरता वैरियशःक्षीरपानकौतुकमिव प्रकटयन्, प्रकटितात्मवैभवः कुमारः । ततो

निक्षेपक्षेत्रं न्यासस्थानं तथाविधस्य तस्य जीवंधरस्य राजकुमारतां राजपुत्रताम् आवेद्य प्रकटय्य राज्ञां चरितं कर्तव्यम् अभिधित्सन् अभिधातुमिच्छन् सूरिराचार्यः आदितः प्रभृति प्रारम्भत आदाय कार्त्स्न्येन समग्ररूपेण तदुदन्तं तद्वृत्तान्तम् इदन्तया अनेन प्रकारेण सस्नेहं प्रीतियुतं यथा स्यात्तथा उपह्वरे एकान्ते उपन्यास्थत् प्रास्तावीत् । उदस्थाच्चेति—गुरुमुखादाचार्यवदनात् अवगतो विज्ञातो निजचरितप्रपञ्च आत्मोदन्तविस्तारो येन तथाभूतः कुमारो मदवान् मदस्रावी योऽरण्यदन्तावलः काननकरी तस्य दर्पेण गर्वेण परिभूतस्तिरस्कृतः पञ्चाननपोत इव सिंहशावक इव, महीपृष्ठाद् भूतलात् उदस्थाच्च उत्थितोऽभूच्च । अथ तस्यैव वैशिष्ट्यमाह—प्रभूतेति—प्रभूतकोपपावकेन भूयिष्ठक्रोधानलेन कपिलं रक्तपीतवर्णं यत्कपोलमण्डलं तस्य व्याजेन छलेन प्रत्यर्थिविनाशसूचितं शत्रुक्षयनिवेदकम् उत्पाताय तरणिबिम्बमित्युत्पाततरणिबिम्बमुत्पातसूचकसूर्यमण्डलं दर्शयन्निव प्रकटयन्निव, प्रतिदिशं दिशि दिशि प्रसर्पता प्रसरणशीलेन रोषरूषितस्य क्रोधारुणस्य चक्षुषो लोचनस्य प्रभाजालेन कान्तिकलापेन प्रतिभटविपिनदिधक्षया शत्रुवनदहनेच्छया आशुशुक्षणिमग्निं प्रेषयन्निव, अविरलैर्निरन्तरैर्घर्मोदबिन्दुभिः स्वेदसलिलपृषद्भिः पुलकिते व्याप्ते क्रोधलक्ष्म्याः कटाक्ष इव कुटिला वक्रा या भ्रूकुटिस्तया भीषणे भयावहे प्रथीयसि विस्तृते भालपट्टे ललाटतटे प्रतिबिम्बितं प्रतिफलितम् आचार्यं गुरुदेवम् आहवविजयाय युद्धविजयाय मूर्धनि शिरसि कुर्वन्, कोपेन अट्टहासः कोपाट्टहासस्तस्य मरीचयः किरणा एव चन्द्रिका कौमुदी तस्याश्छलेन समरदेवताराधनाय युद्धदेवतासेवायै कुसुमनिचयं पुष्पसमूहं संचिन्वन्निव, मुहुर्मुहुः भूयोभूयः स्फुरता कम्पमानेन दशनच्छदेन ओष्ठेन वैरियश एव शत्रुकीर्तिरेव क्षीरं दुग्धं तस्य पानस्य कौतुकं कुतूहलं प्रकटयन्निव, प्रकटितं प्रदर्शितम्

समान थे ऐसे जीवन्धर कुमारकी राजकुमारताको बतलाकर—आप 'राजा सत्यन्धरके पुत्र हैं' यह प्रकट कर राजाओंका चरित बतलानेकी इच्छा रखते हुए गुरु महाराजने एकान्तमें स्नेहपूर्वक आदिसे लेकर उनका सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। तदनन्तर गुरुके मुखसे अपने चरितका प्रपंच जानकर जीवन्धर कुमार, मदोन्मत्त जंगली हाथीके गर्वसे तिरस्कृत सिंहके बच्चाके समान पृथिवीतलसे उठकर खड़े हो गये। उस समय वे अत्यधिक क्रोधाग्निसे लाल-पीले कपोल-मण्डलके बहाने शत्रुओंके नाशको सूचित करनेवाले उत्पातकालिक सूर्यके बिम्बको ही मानो दिखला रहे थे। शत्रुरूपी वनको जलानेकी इच्छासे कुपित नेत्रोंकी सब दिशाओंमें फैलनेवाली प्रभाके द्वारा अग्निको ही मानो भेज रहे थे। उस समय पसीनाकी अविरल बूँदोंसे पुलकित, क्रोधरूपी लक्ष्मीके कटाक्षोंके समान कुटिल भौंहोंसे भयंकर उनके विशाल ललाट तटपर आचार्यका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिए आचार्य महाराजको अपने शिरपर ही धारण कर रहे थे। वे क्रोधकृत अट्टहासकी किरणावलि रूप चाँदनीके छलसे ऐसा जान पड़ते थे मानो युद्धके देवताकी आराधना करनेके लिए पुष्प-समूहका संचय ही कर रहे हों। बार-बार

निकटवर्तिनं कोदण्डदण्डमकाण्डकोपघटितकृतान्तभ्रूभङ्गविडम्बिनमविलम्बेन गृह्णन्गृहीतकतिपयकाण्डः काष्ठाङ्गारवधे विधाय संरम्भं ससंभ्रममुदतिष्ठत। तथोत्तिष्ठमानं च तमुत्पाततपनमिव दुःसहतेजसमुल्बणविषमिव भुजङ्गराजमशेषभुवनभयंकरं राजकुमारम् 'अलमलमकाण्डसंरम्भेण' इति निवारयन्नाचार्यः, प्रज्वलत्प्रकोपदहनजनितदाहभय इव शिष्यहृदयमनुपसर्पति निजवचसि, 'वत्स, वत्सरमात्रं क्षमस्व। गुरुदक्षिणेयम्' इति सप्रणयमयाचिष्ट। स च कोपाविष्टमतिरपि[2] गुरुणा गुरुप्रणयेन तादृशमाचार्यवचनमतिलङ्घयितुमक्षमः प्रतिषिद्धप्रसरेण रोषहुतभुजा भुजंगम इव नरेन्द्रप्रभावप्रतिबद्धपराक्रमः प्रकाममदह्यत।

आत्मवैभवं येन तथाभूतः। तत इति—ततस्तदनन्तरम् निकटवर्तिनं समीपस्थितम्, अकाण्डकोपेन असामयिकरोषेण घटितो योजितो यः कृतान्तभ्रूभङ्गः कालभ्रुकुटिभङ्गस्तस्य विडम्बिनं तिरस्कारकं कोदण्डदण्डं धनुर्दण्डम् अविलम्बेन सद्यो गृह्णन् गृहीतानि हस्ते धृतानि कतिपयकाण्डानि कतिपयशरा येन तथाभूतः सन् काष्ठाङ्गारवधे संरम्भं संकल्पं विधाय कृत्वा ससंभ्रमं सत्वरं यथा स्यात्तथा उदतिष्ठत उत्थितोऽभूत्। तथेति—तथा तेन प्रकारेण उत्तिष्ठत इत्युत्तिष्ठमानस्तथाभूतं तम् उत्पाततपनमिव उत्पातसूचकसूर्यमिव दुःसहतेजसम् उल्बणविषमुत्कटगरलं भुजङ्गराजमिव नागराजमिव अशेषभुवनभयंकरं निखिललोकभयावहं राजकुमारम्, 'अकाण्डसंरम्भेण अकालकोपेन अलमलं पर्याप्तं पर्याप्तं—व्यर्थमिति यावत्' इति निवारयन् प्रतिषेधयन् आचार्य-आर्यनन्दी प्रज्वलत्कोपेन देदीप्यमानरोषेण दहनं ज्वलनं तेन जनितं समुत्पादितं दाहभयं यस्य तथाभूत इव निजवचसि स्वकीयवचने शिष्यहृदयं राजकुमारचेतः अनुपसर्पति सति, 'वत्स, वत्सरमात्रं वर्षमात्रं क्षमस्व' इति सप्रणयं सस्नेहम् अयाचिष्ट याचते स्म। स चेति—स च जीवंधरकुमारः कोपाविष्टमतिरपि सरोषधिषणोऽपि गुरुणा श्रेष्ठेन गुरुप्रणयेन गुरुस्नेहेन तादृशं पूर्वोक्तविधम् आचार्यवचनम् अतिलङ्घयितुमतिक्रमितुम् अक्षमोऽसमर्थः सन् प्रतिषिद्धः प्रसरो यस्य तेन विरुद्धवेगेन रोषहुतभुजा क्रोधाग्निना नरेन्द्रस्य विषवैद्यस्य प्रभावेण सामर्थ्येन प्रतिबद्धः पराक्रमो यस्य तथाभूतो भुजङ्गम इव प्रकाममत्यन्तम् अदह्यत दग्धोऽभूत्।

काँपते हुए ओठसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शत्रुओंके यशरूपी दूधके पीनेका कौतुक ही प्रकट कर रहे थे। उस समय आत्म-वैभव प्रकट हो रहा था। तदनन्तर असामयिक क्रोधसे रचित यमराजकी भौंहके भंगको विडम्बित करनेवाले निकटवर्ती धनुषको शीघ्र ही ग्रहण कर जिन्होंने कुछ बाण ले रखे थे ऐसे जीवन्धरकुमार काष्ठांगारके वधके लिए क्रोध कर संभ्रमपूर्वक उठ खड़े हुए। उस तरह उठते हुए जीवन्धरकुमारको उत्पात सूचक सूर्यके समान दुःखसे सहन करने योग्य तेजसे युक्त अथवा तीव्रविषसे युक्त शेषनागके समान समस्त संसारको भय उत्पन्न करनेवाले देख 'बस, बस रहने दो यह असामयिक क्रोध व्यर्थ है' इस प्रकार निवारण करते हुए आचार्यने जब देखा कि हमारे वचन देदीप्यमान क्रोधाग्निसे उत्पन्न दाहके भयसे युक्त हुएके समान शिष्यके हृदय तक नहीं पहुँच रहे हैं तब उन्होंने 'हे वत्स! एक वर्ष तक क्षमा करो, यह गुरु दक्षिणा है' इस प्रकार स्नेहपूर्वक याचना की। यद्यपि जीवन्धर कुमार क्रोधसे आकुलित बुद्धि थे तथापि वे गुरुके स्नेहवश गुरुके उक्त वचनोंका उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं हो सके और इसीलिए वे गुरुके द्वारा जिसका प्रसार रुक गया था ऐसी क्रोधाग्निसे भीतर ही भीतर उस साँपके समान अत्यन्त जलने लगे जिसका कि पराक्रम विषवैद्यके प्रभावसे रुक गया था।

१. क० ख० ग० रोष। २. क० ख० स च सकोपाविष्टमतिरपि, म० स कोपाविष्टमतिरपि।

§ ५७. अथ शिक्षावचनतीक्ष्णाङ्कुशनिपातनिवृत्तसंरम्भमेनं समदमिव मातङ्गं प्रियवचनेन प्रकृतिमानीय विनतविरोधियौवनवित्तमत्तजनानर्थप्रदर्शनपटीयसीं वाचमाचार्यः स चतुरमभिधातुमारेभे ।

§ ५८. वत्स, बलनिषूदनपुरोधसमपि स्वभावतीक्ष्णया धिषणया धिक्कुर्वति सर्वपथीनपाण्डित्ये भवति पश्यामि नावकाशमुपदेशानाम् । तदपि कलशभवसहस्रेणापि कबलयितुमशक्यः प्रलयतरणिपरिषदाप्यशोष्यो यौवनजन्मा मोहमहोदधिः । अशेषभेषजप्रयोगवैफल्यनिष्पादनदक्षो लक्ष्मीकटाक्षविक्षेपविसर्पी दर्पज्वरः । पुरोवर्त्यपि वस्तु न विलोकयितुं प्रभवतः प्रभूतैश्वर्यमदकाचकञ्चुकितरोचिषी चक्षुषी । मन्दीकृतमणिमन्त्रौषधिप्रभावः प्रभावनाटकनटनसूत्रधारः स्मयाप-

---

§ ५७. अथेति—अथानन्तरम् शिक्षावचनमेव तीक्ष्णाङ्कुशो निशितसृणिस्तस्य निपातेन निवृत्तो दूरीभूतः संरम्भः क्रोधो यस्य तं तथाभूतम् एनं जीवंधरं समदं मदस्राविणं मातङ्गमिव गजमिव प्रियवचनेन प्रीतिपूर्णवाचा प्रकृतिं स्वस्थताम् आनीय प्रापय्य विनयविरोधिभ्यां यौवनवित्ताभ्यां तारुण्यधनाभ्यां मत्ता उद्दण्डस्वभावा ये जनास्तेषामनर्थानां प्रदर्शने प्रकटने पटीयसीमतिशयेन पट्वीं वाचं वाणीम्, स पूर्वोक्त आचार्यो गुरुः चतुरं यथा स्यात्तथा अभिधातुं कथयितुम् आरेभे तत्परोऽभूत् ।

§ ५८. वत्सेति—वत्स, स्वभावेन निसर्गेण तीक्ष्णा तया तथाभूतया धिषणया बुद्ध्या बलनिषूदनस्य पुरन्दरस्य पुरोधास्तमपि पुरोहितमपि धिक्कुर्वति तिरस्कुर्वति सर्वपथीनं सर्वतोमुखं पाण्डित्यं यस्य तस्मिन् भवति मवद्विषये उपदेशानां हितवाक्यानाम् अवकाशमवसरं न पश्यामि यद्यपीति शेषः । तदपि तथापि यौवनाज्जन्म यस्य तथाभूतो मोहमहोदधिः मोहमहासागरः कलशभवसहस्रेणापि अगस्त्यर्षिसहस्रेणापि कबलयितुम् अशक्यः प्रलयतरणिपरिषदापि कल्पान्तसूर्यसमूहेनापि अशोष्यः शोषयितुमनर्हः । लक्ष्म्या राज्यश्रियाः कटाक्षाणां विक्षेपेण विसर्पतीत्येवंशीलो दर्पज्वरो गर्वज्वरः अशेषभेषजानां निखिलौषधानां प्रयोगस्य वैफल्यं नैरर्थक्यं तस्य निष्पादने दक्षः समर्थः अस्तीति शेषः । प्रभूतस्य विपुलस्य ऐश्वर्यस्य मद एव काचो नेत्ररोगविशेषस्तेन कञ्चुकितं समावृतं रोचिर्दीप्तिर्ययोस्ते तथाभूते चक्षुषी लोचने पुरोवर्त्यपि पुरस्ताद् वर्तमानमपि वस्तु विलोकयितुं न प्रभवतः समर्थे न जायेते । स्मय एवापस्मार इति स्मयापस्मारः गर्वापस्मारो मन्दीकृतो मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावो येन तथाभूतः, प्रभाव एव नाटकं तस्य

---

§ ५७. तदनन्तर शिक्षावचन रूप तीक्ष्ण अंकुशके पड़नेसे जिनका क्रोध दूर हो गया था ऐसे मदसहित हाथीके समान कुमारको प्रिय वचनोंसे शान्त कर आचार्य महाराज बड़ी चतुराईके साथ, विनयके विरोधी यौवन और धनसे मत्त मनुष्योंके ऊपर आनेवाले अनर्थोंके दिखानेमें अत्यन्त निपुण वचन कहने लगे—

§ ५८. उन्होंने कहा कि वत्स ! आप स्वभावसे तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा इन्द्रके पुरोहित—बृहस्पतिको भी तिरस्कृत कर रहे हैं तथा आप सर्वपथीन—सर्व पदार्थोंको विषय करनेवाले पाण्डित्यसे सहित हैं अतः आपमें उपदेशोंका अवकाश नहीं देख रहा हूँ। तथापि यौवनसे उत्पन्न मोहरूपी महासागर, हजारों अगस्त्य ऋषियोंके द्वारा भी नहीं पिया जा सकता और प्रलय कालीन सूर्योंके समूहसे भी नहीं सुखाया जा सकता। लक्ष्मीके कटाक्षोंके प्रसारसे फैलनेवाला गर्व रूपी ज्वर, समस्त औषधियोंके प्रयोगको निष्फलता करनेमें समर्थ है। अत्यधिक ऐश्वर्यसे उत्पन्न गर्व रूपी काचसे—व्याधिविशेषसे जिनकी कान्ति रुक गयी है ऐसे नेत्र सामने रखी हुई भी वस्तुको देखनेके लिए समर्थ नहीं होते हैं। प्रभाव रूपी नाटकके अभिनयके लिए

स्मारः[1] पातालविवरपतितविश्वंभरासमुद्धरणधीरो मुरारिरपि वराहरूपो नालमुद्धर्तुमुदर्कविषमविषयाभिलाषबहुलजम्बालजालमग्नं मनः। सकलसागरसलिलपूरेणापि न पार्यते क्षालयितुमुत्तालरागपरागपटलपरिष्वङ्गसङ्गि मालिन्यम्। अनास्थाविषमविषमोक्षभीषणा राजलक्ष्मीभुजंगी। इति किंचिदिह शिक्ष्यसे।

§ ५९. अविनयविहङ्गलीलावनं यौवनमनङ्गभुजंगनिवासरसातलं सौन्दर्यं स्वैरविहारशैलूषनृत्तास्थानमैश्वर्यं पूज्यपूजाविलङ्घनलघिमजननी महासत्त्वता च प्रत्येकमपि प्रभवति जनानामनर्थाय। चतुर्णां पुनरेतेषामेकत्र संनिपातः सद्म सर्वानर्थानामित्यर्थेऽस्मिन्कः संशयः। स्फटि-

---

नटनस्याभिनयस्य सूत्रधारः प्रवर्तकः। अत्रेदमपस्मारलक्षणम्—'मनःक्षेपस्त्वपस्मारो ग्रहाद्यावेशनादिजः। भूपातकम्पप्रस्वेदफेनलालादिकारकः॥' सूत्रधारलक्षणमिदम्—'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते। सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥' उदर्के फलकाले विषमो यो विषयाभिलाषः स एव बहुलजम्बालजालं प्रचुरजलनीलीसमूहस्तस्मिन् मग्नं मनः उद्धर्तुं निष्कासयितुं पातालविवरे रसातलच्छिद्रे पतिता या विश्वम्भरा पृथिवी तस्याः समुद्धरणे निष्कासने धीरो दक्षो वराहरूपी वराहरूपयुक्तो मुरारिरपि नारायणोऽपि नालं न समर्थः। उत्तालराग उत्कटराग एव परागपटलो धूलिसमूहस्तस्य परिष्वङ्गसङ्गः प्रगाढसंसर्गः स विद्यते यस्य तत् एवंभूतं मालिन्यं सकलसागराणां समग्रसमुद्राणां सलिलपूरेणापि जलप्रवाहेनापि क्षालयितुं दूरीकर्तुं न पार्यते। राज्यलक्ष्मीरेव भुजङ्गी राज्यश्रीनागी अनास्था अनास्तिक्यबुद्धिरेव विषमविषं तस्य मोक्षेण मोचनेन भीषणा भयावहा। इति हेतोः इह किंचित् शिक्ष्यसे।

§ ५९. अविनयेति—अविनयविहङ्गानामौद्धत्यपक्षिणां लीलावनं क्रीडावनं यौवनं तारुण्यं, अनङ्ग एव मदन एव भुजङ्गो नागस्तस्य निवासाय रसातलं पातालं 'अधोभुवनपातालं बलिसद्म रसातलम्' इत्यमरः सौन्दर्यं रामणीयकं, स्वैरविहारः स्वच्छन्दविहार एव शैलूषो नटस्तस्य नृत्तस्य नाट्यस्य आस्थानं रङ्गभूमिः ऐश्वर्यं वैभवम्, पूज्यानामर्चनीयानां पूजाया विलङ्घनमेव लघिमा क्षुद्रता तस्य जननी समुत्पादिका महासत्त्वता च लोकोत्तरपराक्रमवत्ता च प्रत्येकमपि पृथक् पृथगपि जनानां लोकानामनर्थायानिष्टकरणाय प्रभवति। चतुर्णां पुनरेतेषां यौवनसौन्दर्यैश्वर्यमहासत्त्वतानाम् एकत्र एकस्मिन् जने संनिपातः संमेलनं सर्वे च तेऽनर्थाश्च सर्वानर्थास्तेषां निखिलानिष्टानां सद्म स्थानम् इत्यस्मिन्नर्थे कः संशयः। न

सूत्रधारका काम देनेवाला जो गर्व रूपी अपस्मार मिरगीकी बीमारी,मणि मन्त्र और औषधिके प्रभावको फीका कर देनेवाली है। पातालके विवरमें पड़ी पृथिवीके उद्धार करनेमें समर्थ वराह रूपके धारक नारायण भी, फल कालमें विषम विषयाभिलाषा रूपी अत्यधिक शेवालके जालमें फँसे हुए मनको उद्धार करनेके लिए समर्थ नहीं हैं। तीव्र रागरूपी धूलीपटलके समागमसे उत्पन्न होनेवाली मलिनता समस्त समुद्रोंके जलके प्रवाहसे भी नहीं धोयी जा सकती और यह राजलक्ष्मी रूपी नागिन अवस्थाओंमें विषय विषके छोड़नेमें भयंकर है इसलिए यहाँ कुछ शिक्षा दी जा रही है।

§ ५९. अविनय रूपी पक्षियोंके क्रीडावन स्वरूप यौवन, कामरूपी सर्पके निवासके लिए रसातल स्वरूप सौन्दर्य, स्वच्छन्दाचरण रूप नटके नृत्यकी रंगभूमि स्वरूप ऐश्वर्य, और पूज्य मनुष्योंकी पूजाका उल्लंघन करनेवाली क्षुद्रताको जन्म देनेवाली बलवत्ता ये एक एक भी मनुष्योंके अनर्थके लिए पर्याप्त हैं फिर इन चारोंका एक स्थानपर समागम होना समस्त

---

१. अवस्था म०।

कोपलविमलमपि मनो मानवानां यौवनलक्ष्मीपादपल्लवन्यासेनेव समुद्वहति रागम् । शास्त्रशाणोपलकषणमुषितमासृण्यापि मतिरवतरदभिनवयौवनवनिताचरणसमुपस्थापितेनेव[1] रजसा धूसरीभवति । हितमहितं च नावगच्छत्यतुच्छधियामपि यौवने निर्व्याजमदमधुपानमत्तेव चित्तवृत्तिः । कतिचिदेव कथमपि कर्णधारीकृत्य विवेकमुपभोगरणरणिकातरङ्गमनङ्गावर्तदुस्तरं तरन्ति तारुण्यजलनिधिम् । यौवनशरदागममत्तानां विघटितविवेकनिगलानां विषयवनविहारिणामिन्द्रियकरिणामङ्कुशीभवन्ति गुरूपदेशाः । भवद्विधा एव भव्यास्तादृशगुरूपदेशबीजप्ररोहभूमयः । नवसुधालेपधवलिमभाजि सौधतले किरणकन्दला इव चन्द्रमसः स्वभावसुलभविवेकविद्रावितमसि मनसि

कोऽपीत्यर्थः । स्फटिकोपलेति—स्फटिकोपलविमलमपि स्फटिकमणिवन्निर्मलमपि मानवानां लोकानां मनो यौवनलक्ष्म्यास्तारुण्यश्रियाः पादपल्लवानां चरणकिसलयानां न्यासेनेव निक्षेपेणेव रागं लौहित्यं समुद्वहति दधाति । शास्त्र एव शाणोपले निकषपाषाणे कषणेन संघर्षणेन मुषितमपहृतं मासृण्यं स्नैग्ध्यं यस्यास्तथाभूतापि मतिर्बुद्धिः अवतरत् प्रकटीभवत् अभिनवयौवनं नूतनतारुण्यमेव वनिता ललना तस्याः चरणाभ्यां पादाभ्यां समुपस्थापितं प्रस्तावितं तेन तथाभूतेनेव रजसा रेणुना धूसरीभवति मलिनीभवति । अतुच्छा धीर्येषां तेषामपि विशालबुद्धीनामपि चित्तवृत्तिर्मनोवृत्तिः यौवने निर्व्याजमद एव स्वाभाविकदर्प एव मधु मद्यं तस्य पानेन मत्तेव हितमहितं च श्रेयोऽश्रेयश्च नावगच्छति नो जानाति । कतिचिदेव केचिदेव विरला एव कथमपि केनापि प्रकारेण विवेकं सदसज्ज्ञानं कर्णधारीकृत्य नाविकीकृत्य 'कर्णधारस्तु नाविकः' इत्यमरः उपभोगरणरणिकैव भोगसमुत्सुकतैव तरङ्गाः कल्लोला यस्मिन् तम्, अनङ्ग एव काम एवावर्तो भ्रमरस्तेन दुस्तरं दुःखेन तरितुं शक्यं तारुण्यजलनिधिं यौवनवारिधिं तरन्ति । यौवनमेव तारुण्यमेव शरद् तस्यागमेन मत्तानां संहृष्टानां विघटितस्त्रोटितो विवेकनिगलो विवेकनिगडो यैस्तेषां, वनविहारिणां काननसंचारिणाम् इन्द्रियकरिणां हृषीकहस्तिनां गुरूपदेशा गुरुशिक्षावचनानि अङ्कुशीभवन्ति सृणीभवन्ति । भवद्विधा एव त्वत्सदृशा एव भव्याः तादृशगुरूपदेशबीजानां तादृशगुरुशिक्षावचनबीजानां प्ररोहभूमयोऽङ्कुरभूमयः सन्तीति शेषः । नवसुधालेपेन नूतनचूर्णकविलेपेन धवलिमानं शौक्ल्यं भजतीत्येवं शीले सौधतले प्रासादतले चन्द्रमसः किरणकन्दला इव रश्मिसमूहा इव स्वभावसुलभेन निसर्गप्रापणीयेन

अनर्थोंका घर है इसमें क्या संशय है ? मनुष्योंका मन स्फटिक पाषाणके समान निर्मल होनेपर भी यौवन रूप लक्ष्मीके चरण रूपी पल्लवोंके पड़नेसे ही मानो राग (पक्षमें लालिमा) को धारण करने लगता है । शास्त्र रूपी कसौटीके पत्थरपर घिसनेसे जिसकी चिकनाई दूर हो गयी है ऐसी बुद्धि भी उतरती हुई नवयौवन रूपी स्त्रीके चरणोंसे उठी धूलिसे ही मानो मटमैली हो जाती है ।[1] बड़े-बड़े बुद्धिमान् मनुष्योंकी भी मनोवृत्ति यौवनके समय वास्तविक नशासे युक्त मदिराके पीनेसे उन्मत्त होकर ही मानो हित और अहितको नहीं समझती है । कुछ थोड़े ही पुरुष किसी तरह विवेकको कर्णधार बनाकर उपभोग सम्बन्धी उत्कण्ठा रूप तरङ्गोंसे युक्त एवं कामरूपी भँवरोंसे दुस्तर यौवन रूपी सागरको तैर पाते हैं । यौवन रूपी शरद्‌के आनेसे मत्त, विवेक रूपी बेड़ियोंको तोड़ देनेवाले, और विषय रूपी वनमें विहारकरनेवाले इन्द्रिय रूपी हाथियोंको वशमें करनेके लिए गुरुओंके उपदेश अंकुशका काम देते हैं । आप जैसे भव्य ही गुरुओंके तथाविध उपदेश रूपी बीजोंकी उत्पत्तिकी भूमि हैं । नयी कलईके लेपसे सफ़ेद कान्तिको धारण करनेवाले महलकी छतपर जिस प्रकार चन्द्रमाकी किरणें सुशोभित होती है उसी प्रकार स्वभावसुलभ विवेकसे जिसका मोह दूर हो गया है ऐसे मनमें

१. समुत्थापितेनेव म० ।

विलसन्ति गुरूणां गिरः । प्रबलतमतमःकालायसकङ्कटिनि जडधियां हृदि प्रवेश्यमाना। शकलीभवन्ति हितानुशासनवचनपर्याया: पत्रिणः ।

§ ६०. उपदेशवचनं नाम मर्त्यानाममन्दर[1]मथनपरिश्रमसाध्यममृतपानम्, हृदयगुहागर्भनिर्भरमूर्च्छदनच्छतमश्छटाविघटनचण्ड[2]मचण्डभानवीयमंशुजालम्, अविवेकविपिनभस्मीकरणपाण्डित्यपात्रमचित्रभानवीयं चेष्टितम्, परिपाकपयोधिविजृम्भणैककारणमशिशिरकिरणीयमभीशुजातम्, अरत्नशिलाभरणभारधारणायासमाकल्पान्तरम् । विश्वंभराभर्तॄणां तु विशेषत इदं दुरासदम् । तेषां हिताहितमुपदिशन्तः सन्तो हि सुदुर्लभाः । खलजनकण्टकखिलीकृताः[3] खलु मही-

विवेकेन विद्रावितं दूरीकृतं तमोध्वान्तं यस्मिन् तस्मिन् मनसि गुरूणां हितोपदेष्टॄणाम् गिरो भारत्यो विलसन्ति शोभन्ते । प्रबलतमः सुदृढतमः तम एव मोहतिमिरमेव कालायसकङ्कटः कृष्णलोहवर्म यस्मिन् तस्मिन् जडधियां मूर्खाणां हृदि प्रवेश्यमाना हितानुशासनस्य हितोपदेष्टुर्वचनपर्याया वचनस्वरूपाः पत्रिणो बाणाः शकलीभवन्ति खण्डीभवन्ति ।

§ ६०. उपदेशवचनं नाम—उपदेशवचनं शिक्षावचनं नामेति संभावनायाम् 'नाम प्रकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने' इत्यमरः । मर्त्यानां मन्दरेण मन्दराचलेन मथनं विलोडनं तस्य परिश्रमस्तेन साध्यं तथा न भवतीत्यमन्दरमथनपरिश्रमसाध्यम् अमृतपानं पीयूषपानम् । हृदयमेव चित्तमेव गुहागह्वरं तस्या गर्भे मध्ये निर्भरं यथा स्यात्तथा मूर्च्छद् वर्धमानं यद् अनच्छतमो मलिनमोहतिमिरं तस्याश्छटाया विघटने विध्वंसने चण्ड तीक्ष्णम् अचण्डभानवीयं चण्डभानोः सूर्यस्येदं न भवतीत्यचण्डभानवीयम् अंशुजालं किरणकदम्बकम् । अविवेकोऽज्ञानमेव विपिनं वनं तस्य भस्मीकरणे दहने यत्पाण्डित्यं तस्य पात्रं भाजनम् चित्रभानोरग्नेरिदं न भवत्यचित्रभानवीयं चेष्टितं कार्यम् । परिपाकः शुभोदय एव पयोधिः सागरस्तस्य विजृम्भणस्य वर्धनस्यैककारणं प्रमुखनिमित्तम् शिशिरकिरणस्य चन्द्रमस इदं न भवतीत्यशिशिरकिरणीयम् अभीशुजातं मरीचिमण्डलम् । रत्नशिला मणिशिलैव आभरणं तस्य भारस्तस्य धारणस्यायासः खेदः स न भवति, यस्मिन् तथाभूतम् आकल्पान्तरम् आभूषणान्तरम् । विश्वंभराभर्तॄणां तु पृथिवीपतीनां तु विशेषतः प्रमुखरूपेण इदमुपदेशवचनं दुरासदं दुर्लभम् । तत्कारणं दर्शयितुमाह—तेषामिति—हि यतः तेषां

गुरुओंके वचन सुशोभित होते हैं । अत्यन्त तीव्र मोह रूपी काले लोहसे निर्मित कवचसे युक्त मूर्ख मनुष्योंके हृदयमें प्रविष्ट कराये जानेवाले हितोपदेशी जनोंके वचन रूपी पक्षी खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ।

§ ६०. मनुष्योंके लिए उपदेश रूप वचन, मन्दराचलके मथनसे उत्पन्न परिश्रमके बिना ही प्राप्त होनेवाला अमृतपान है । हृदय रूपी गुहाके भीतर अत्यधिक रूपसे बढ़ते हुए मलिन मोह रूपी अन्धकारके समूहको दूर करनेमें समर्थ सूर्यसे भिन्न पदार्थकी किरणोंका समूह है । अविवेक रूपी वनको भस्म करनेवाले पाण्डित्यका पात्र अग्निसे भिन्न पदार्थका व्यापार है, परिपाक रूपी सागरकी वृद्धिका प्रमुख कारण चन्द्रमासे भिन्न पदार्थकी किरणोंका समूह है और रत्नमयी शिलाओंसे निर्मित आभूषणोंका भार धारण करनेके खेदसे रहित दूसरा आभूषण है । परन्तु यह उपदेश रूप वचन राजाओंके लिए विशेषकर दुर्लभ हैं । क्योंकि उनके लिए हित-अहितका उपदेश देनेवाले सज्जन मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ रहते हैं । यथार्थमें

१. क० ग० अमन्दमथन, ख० अमन्थन । २. चण्डिम क० । ३. खिलीकृताः शिथिलीकृताः, इति टिप्पणी ।

भृतामास्थानमण्डपोद्देशाः। सुजनास्तत्र कथमत्रस्ताः पदं निधातुं पारयन्ति ? पारयन्तोऽपि स्वकार्यपारवश्यनश्यद्विवेकाः काश्यपीभुजां पार्श्वं कथमप्याश्रयितुमाश्रयाशातिशायिशक्तिप्रज्वलद्स्थानरोषभीषणां तेषां वाचं वाचस्पतिदेश्या अपि शुका इव स्वयमनुवदन्ति। वदन्ति चेदपि चेतस्विनः[1] परितः परहितपरतया विरसीकृत्य निरसनैकतानं वचनं वचनीयधुराधरणक्षमाः क्षमापतयः क्षितितलप्राप्तिक्षणसमारोपितप्रतापज्वररयबधिरितकर्णा इव तन्नावकर्णयन्ति। कथंचिदाकर्णयन्तोऽपि मधुमदमत्तमत्तकाशिनीवदनशीधुसंपर्कशिथिलितचित्तवृत्तय इव नूनमदत्तावधानाः खेदयन्तः स्वहितोपदेशकारिणः सूरीन् तदुक्तं नानुतिष्ठन्ति। अनुतिष्ठन्तोऽपि न फलपर्यन्तं

पृथिवीपतीनां हिताहितं श्रेयोऽश्रेयः उपदिशन्तो निगदन्तः सन्तः सज्जनाः सुदुर्लभा अतिशयेन दुष्प्राप्याः सन्ति। खलु निश्चयेन महीभृतां राज्ञाम् आस्थानमण्डपोद्देशाः सभामण्डपस्थानानि खलजनकण्टकैदुर्जनशल्यैः खिलीकृताः शिथिलीकृता उपद्रुता इति तथाभूताः सन्ति। तत्र खलशल्यखिलीकृते राजसभामण्डपे सुजनाः साधवः अत्रस्ता अभीताः सन्तः पदं चरणं निधातुं स्थापयितुं कथं पारयन्ति समर्था जायन्ते। न कथमपीत्यर्थः। पारयन्तोऽपि समर्था भवन्तोऽपि स्वकार्यस्य पारवश्येन परतन्त्रत्वेन नश्यन् विवेको येषां तथाभूताः सन्तः काश्यपीभुजां पृथिवीपतीनां पार्श्वं समीपं कथमपि केनापि प्रकारेण आश्रयितु प्राप्तुम् आश्रयाशोऽग्निस्तदतिशायिनी या शक्तिस्तया प्रज्वलन् देदीप्यमानो योऽस्थानरोषस्तेन भीषणां भयावहां तेषां पृथिवीपतीनां वाचं गिरं बृहस्पतिदेश्या अपि सुरगुरुकल्पा अपि शुका इव कीरविहगा इव स्वयम् अप्रेरिता एव अनुवदन्ति समर्थयन्ति। चेतस्विनो मनस्विनो जनाः चेदपि यद्यपि परितः समन्तात् परहितपरतया परकल्याणोन्मुखतया विरसीकृत्य स्नेहाभावं कृत्वा निरसनैकतानं तिरस्कारप्रधानं वचनं वदन्ति कथयन्ति तथापि वचनीयधुराया निन्दाभारस्य धरणे क्षमाः समर्थाः क्षमापतयो राजानः क्षितितलस्य पृथिवीतलस्य प्राप्तिक्षणे प्राप्त्यवसरे समारोपितः समुत्थितो यः प्रतापज्वरस्तस्य रयेण वेगेन बधिरितौ श्रवणशक्तिरहितौ कृतौ कर्णौ येषां तथाभूता इव तद् वचनं नावकर्णयन्ति न शृण्वन्ति। कथंचित्केनापि प्रकारेण आकर्णयन्तोऽपि शृण्वन्तोऽपि मधुमदेन मदिरामोहेन मत्ता या मत्तकाशिन्यः सुन्दर्यस्तासां वदनानि मुखानि तेषां शीधुसंपर्केण मदिरासंपर्केण शिथिलिता मन्दीभूता चित्तवृत्तिर्येषां तथाभूता इव नूनं निश्चयेन अदत्तावधाना अदत्तैकाग्रयाः स्वहितोपदेशकारिणः स्वकल्याणपथप्रदर्शकान् सूरीनाचार्यान् 'पण्डितः सूरिराचार्य' इति धनंजय, खेदयन्तो दुःखीकुर्वन्तः तदुक्तं सूर्युक्तं नानुतिष्ठन्ति न कुर्वन्ति। अनुतिष्ठन्तोऽपि

राजाओंके सभामण्डपोंके प्रदेश दुर्जन रूपी काँटोंसे व्याप्त रहते हैं अतः सज्जन पुरुष निःशंक होकर उनमें पैर रखनेके लिए कैसे समर्थ हो सकते हैं ? यदि समर्थ भी होते हैं तो अपने कार्यकी परवशतासे उनका विवेक नष्ट होने लगता है और वे बृहस्पतिके तुल्य होनेपर भी किसी तरह राजाओंके समीप आश्रय पानेके लिए अग्निको भी अतिक्रान्त करनेवाली शक्तिसे प्रज्वलित अनवसर क्रोधसे भयंकर उन्हींके वचनोंका तोताओंके समान स्वयं अनुवाद करने लगते हैं—उन्हींके स्वरमें अपना स्वर मिला देते हैं। यदि कोई तेजस्वी मनुष्य सब ओरसे परहितमें तत्पर होनेके कारण निराकरण प्रधान वचनोंकी उपेक्षा कर उपदेशके वचन कहते भी हैं तो निन्दाका भार धारण करनेमें समर्थ राजा, पृथिवीतलकी प्राप्तिके समय चढ़े हुए प्रताप रूप ज्वरके वेगसे कान बहरे हो जानेके कारण ही मानो उसे सुनते नहीं हैं। किसी तरह सुनते भी हैं तो मदिराके नशासे मत्त सुन्दरी स्त्रियोंके मुखकी मदिराके संपर्कसे चित्तवृत्तिके शिथिल हो जानेके कारण ही मानो उस ओर ध्यान नहीं देते और अपने लिए हितका उपदेश करनेवाले विद्वानोंको खेद-खिन्न करते हुए उनके कहे अनुसार आचरण नहीं करते। यदि करते

---

१. तेजस्विनः म०।

कुर्वन्ति कार्यम्। किमन्यदुदीर्यते? स्वाभाविकाहंकारस्फारश्वयथुजातवेपथुविह्वला हि महीभृतां प्रकृतिः। प्रकृत्या तथाभूतानियं दुराचारप्रिया हरिप्रिया तु सुतरां खलयति। इयं हि पारिजातेन सह जातापि लोभिनां धौरेयी, शिशिरकरसोदरापि परसंतापविधिपरा, कौस्तुभमणिसाधारणप्रभवापि पुरुषोत्तमद्वेषिणी, पापर्धिरियं पापर्धौ, वेश्येयं पारवश्यकृतौ, द्यूतानुसंधिरियमतिसंधाने, मृगतृष्णिकेयं तृष्णायाम्। तथा चेयं शर्वरीव तमोऽधिष्ठिता परप्रकाशासहिष्णुस्वभावा च, कुलटेव प्राप्तप्रद्वेषिणी परान्वेषिणी च, जलबुद्बुदाकृतिरिव जडप्रभावा क्षणमात्रदर्शितोन्नतिश्च,

कुर्वन्तोऽपि फलपर्यन्तं फलसिद्धिं यावत् कार्यं न कुर्वन्ति न विदधति। किमन्यत् किमितरत् उदीर्यते कथ्यते। हि निश्चयेन महीभृतां राज्ञां प्रकृतिः स्वभावः स्वाभाविकाहंकारस्य नैसर्गिकदर्पस्य यः स्फारश्वयथुरतिशैत्यं तेन जातो यो वेपथुः कम्पनं तेन विह्वला व्यग्रा भवतीति शेषः। प्रकृत्या निसर्गेण तथाभूतान् तादृक्षान् नृपान् दुराचारः प्रियो यस्यास्तथाभूता इयम् एषा हरिप्रिया 'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया' इत्यमरः तु सुतरां सातिशयं खलयति खलं करोति दुःखीकरोतीत्यर्थः। अथ लक्ष्म्या अवगुणान् वर्णयितुमाह—इयमिति। इयं हि लक्ष्मीः पारिजातेन कल्पानोकहेन सह जातापि सहोत्पन्ना अपि लोभिनां धौरेयी धुरां वहतीति धौरेयी प्रवीणा 'धुरो यड्ढकौ' इति ढक्। शिशिरकरसोदरापि चन्द्रसहोत्पन्नापि परसंतापविधिपरा अन्यजनसंतापकारिणी सातिशयसंतापोत्पादनपरा वा। कौस्तुभमणिस्साधारणस्तत्तुल्यः प्रभवो यस्यास्तथाभूतापि पुरुषोत्तमद्वेषिणी नारायणद्वेषिणी पक्षे श्रेष्ठजनद्वेषिणी, इयं लक्ष्मीः पापर्धौ दुरितैश्वर्ये पापर्धिराखेटम्, इयं पारवश्यकृतौ पारतन्त्र्यविधाने वेश्या, इयम् अतिसंधाने वञ्चनातिशये द्यूतानुसन्धिर्दुरोदरानुसंधिः, इयम् तृष्णायामलब्धकामेच्छायाम् मृगतृष्णिका मृगमरीचिका। तथा चेयमिति—तथा च किंच, इयं लक्ष्मीः शर्वरीव रजनीव तमोऽधिष्ठिता तिमिरेण युक्ता पक्षे तमोगुणेन सहिता, परप्रकाशस्योत्कृष्टालोकस्य पक्षेऽन्यजनवैभवस्यासहिष्णुः स्वभावो यस्यास्तथाभूता च, कुलटेव व्यभिचारिणीव प्राप्तं प्रद्वेष्टीत्येवंशीला पक्षे प्राप्तपुरुषेऽसंतुष्टा परान्वेषिणी चान्यजनमार्गिणी च, जलबुद्बुदाकृतिरिव जलस्फोटाकृतिरिव डलयोरभेदाज् जडे-जले प्रभावो यस्याः पक्षे जडेषु मूर्खेषु प्रभावो यस्यास्तथाभूता,

भी हैं तो फलकी प्राप्ति पर्यन्त कार्य नहीं करते। और क्या कहा जाय? राजाओंकी प्रकृति स्वाभाविक अहंकाररूपी अत्यधिक सूजनसे उत्पन्न कँपकँपीसे विह्वल हुआ करती है। स्वभावसे ही खल—दुर्जन-जैसा आचरण करनेवाले राजाओंको दुराचारसे प्रेम रखनेवाली लक्ष्मी और भी अधिक खल—दुर्जन बना देती है। यह लक्ष्मी कल्पवृक्षके साथ उत्पन्न होकर भी लोभियोंमें प्रमुख है, चन्द्रमाकी बहन होकर भी दूसरोंके लिए सन्ताप उत्पन्न करनेवाले कार्योंमें तत्पर है, कौस्तुभमणिके साथ उत्पन्न होकर भी पुरुषोत्तम—नारायण (पक्षमें श्रेष्ठ पुरुष) से द्वेष करनेवाली है। यह पापकी ऋद्धि बढ़ानेमें शिकार है, परवशता उत्पन्न करनेमें वेश्या है, ठगनेमें जुआके समान है, और तृष्णा बढ़ानेमें मृग-मरीचिका है। यह लक्ष्मी रात्रिके समान है क्योंकि जिस प्रकार रात्रि तम—अन्धकारसे सहित और दूसरेके प्रकाशको नहीं सहनेवाले स्वभावसे युक्त है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी तम—तमोगुणसे सहित और दूसरेके वैभवको नहीं सहनेवाले स्वभावसे युक्त है। अथवा यह लक्ष्मी कुलटा—व्यभिचारिणी स्त्रीके समान है क्योंकि जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री प्राप्त पुरुषसे द्वेष रखती हुई दूसरे पुरुषको खोजमें तत्पर रहती है उसी प्रकार लक्ष्मी भी प्राप्त पुरुषके साथ द्वेष रखती हुई दूसरे पुरुषकी खोजमें रहती है। अथवा पानीके बबूलाके समान है क्योंकि जिस प्रकार पानीका बबूला

१. क० ग० जडप्रभवा, ख० जडमानप्रभवा।

किंपाकमूर्तिरिव भोगकाङ्क्षाप्रवर्तनी कटुकपाका च।

§ ६१. एवं परगतिविरोधिन्या फलदव्ययबहिर्भूतया भूतचतुष्टयमयकायमात्रपुष्टिपरया परार्ध्यचरित्रचर्वण्या चार्वाकमतसब्रह्मचारिण्या राज्यश्रिया परिगृहीताः क्षितिपतिसुताः क्षण एव तस्मिन्नैयायिकनिर्दिष्टनिर्वाणपदप्रतिष्ठिता इव प्राक्तनमपि गुणप्रतानं वितानीकृत्य जडात्मतामेवात्मसात्कुर्वन्ति, कापिलकल्पितपुरुषा इव जडबुद्धेरेवात्मानं घटयन्ति, सदाहंकारसंगतप्रकृतयः प्रकृति-

क्षणमात्रमल्पकालपर्यन्तं दर्शिता उन्नतिरुच्चैस्त्वं पक्षे वैभवातिशयो यया तथाभूता च, किंपाकमूर्तिरिव विषफलाकृतिरिव भोगकाङ्क्षाया भोगाभिलाषस्य प्रवर्तनी कटुकपाका च कुत्सितपरिणामा च, अस्तीति शेषः।

§ ६१. एवं परगतिविरोधिन्येति—एवमित्थम् परगतिविरोधिन्या अन्यजनसंचारविरोधिन्या पक्षे स्वर्गादिपरलोकविरोधिन्या, फलदव्ययात्सार्थकव्ययाद् बहिर्भूतया निष्फलव्ययकोनयेति यावत्, भूतचतुष्टयमयकायमात्रस्य पृथिव्यादिभूतचतुष्कनिर्मितशरीरमात्रस्य पुष्टौ पोषणे परया सक्तया, पराध्यचरित्रचर्वण्या श्रेष्ठाचारविघातिन्या चार्वाकमतसब्रह्मचारिण्या लौकायतिकमतसदृक्षया राजश्रिया परिगृहीताः स्वीकृताः क्षितिपतिसुता राजपुत्रास्तस्मिन्नेव क्षणे राज्यश्रीप्रापणावसर एव नैयायिकैर्निर्दिष्टं प्रदर्शितं यन्निर्वाणपदं मोक्षपदं तस्मिन् प्रतिष्ठिता इव प्राप्तप्रतिष्ठा इव प्राक्तनमपि निर्वाणप्राक्कालिकमपि गुणप्रतानं बुद्धिसुखप्रभृतिगुणसमूहं शून्यीकृत्य पक्षे राज्यारोहणप्राक्कालिकमपि सौजन्यादिगुणसमूहं वितानीकृत्य शून्यीकृत्य जडात्मतामेव मूर्खतामेव पक्षे निर्गुणतामेव आत्मसात्कुर्वन्ति 'बुद्ध्यादिगुणोच्छेदो हि मोक्षः' इति नैयायिका मन्यन्ते कापिलकल्पितपुरुषा इव सांख्याङ्गीकृतपुरुषा इव जडबुद्धेरेव निश्चेतनबुद्धेरेव पक्षे

जडप्रभावा—जलप्रभावा—जलके ऊपर प्रभाव रखता है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी जडप्रभावा—मूर्ख जनोंपर प्रभाव रखती है और जिस प्रकार बबूला क्षण-भरके लिए अपनी उन्नति दिखलाता है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी क्षण-भरके लिए—थोड़े समयके लिए अपनी उन्नति दिखलाती है। अथवा यह लक्ष्मी किंपाकफलके समान है क्योंकि जिस प्रकार किंपाकफल भोगोंकी इच्छाको प्रवृत्त करता है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी भोगोंकी इच्छाको प्रवृत्त करती है—बढ़ाती है। किंपाकफल जिस प्रकार कटुकफला—मृत्यु रूप फलसे युक्त है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी कटुकफल—दुःखदायी परिणामसे सहित है।

§ ६१. इस प्रकार परगतिविरोधिनी—दूसरेकी उन्नतिसे विरोध रखनेवाली (पक्षमें स्वर्गादि परगतियोंसे विरोध रखनेवाली), फलदायक व्ययसे दूर रहनेवाली, पृथिवी आदि भूतचतुष्टयसे निर्मित शरीर मात्रके पोषणमें तत्पर रहनेवाली, और श्रेष्ठ चरित्रको नष्ट करनेवाली, चार्वाक मतके सदृश राजलक्ष्मीसे परिगृहीत राजपुत्र उसी क्षण नैयायिकोंके द्वारा निर्दिष्ट मोक्षपदको प्राप्त हुएके समान पूर्ववर्ती गुणसमूहको भी नष्ट कर केवल जडस्वरूपताको अपने आधीन करते हैं। भावार्थ—नैयायिक दर्शनमें मोक्षमें बुद्धि सुख आदि गुणोंका अभाव माना जाता है सो जिस प्रकार नैयायिक दर्शनमें निरूपित मोक्षको प्राप्त हुए मनुष्य अपने पूर्व गुणोंको नष्ट कर अपने आपको निर्गुण बना लेते हैं उसी प्रकार राजलक्ष्मीको प्राप्त राजपुत्र अपने पूर्ववर्ती दया दाक्षिण्य आदि गुणोंको नष्ट कर जड़ अवस्था—निर्गुण अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। अथवा सांख्योंके द्वारा कल्पित पुरुषोंके समान अपने-आपको जडबुद्धि—हिताहितके विवेकसे रहित बुद्धिसे युक्त करते हैं। भावार्थ—सांख्य दर्शनमें पुरुषको चैतन्यरूप तथा बुद्धिको जड—अचैतन्य रूप माना गया है और यह भी माना गया है कि संसार दशामें चैतन्य पुरुषका जड़बुद्धिके साथ सम्बन्ध रहता है और सांख्य दर्शनमें कल्पित पुरुषोंके समान

विकारपरं वचनं प्रतिपादयन्ति च।

§ ६२. स्वरूपव्यावर्णने ह्यर्णवनेमिस्वामिनाममरस्वामिनाप्यसंख्यवदनेन भवितव्यम्। ते हि सत्यपि राजभावे सद्भिर्न सेव्यन्ते, जीवत्यपि गोपतित्वे वृषशब्दं न शृण्वन्ति, नादितेऽपि नरेन्द्रत्वे मन्त्रिकृत्यं न सहन्ते। तथा महाबलान्वेषिणोऽप्यबलान्वेषिणः, प्रतापार्थिनोऽप्यसो-

मूर्खबुद्धेरेव आत्मानं स्वं घटयन्ति युक्तं कुर्वन्ति, सदा सर्वदाहंकारेण सांख्याभिमततत्त्वविशेषेण पक्षे गर्वेण च संगता सहिता प्रकृतिः सांख्याभिमततत्त्वविशेष. पक्षे स्वभावो येषां तथाभूताः सन्तः प्रकृतिविकारपरं प्रकृतिविकारप्रदर्शकं पक्षे स्वभावविकारप्रदर्शकं वचनं प्रतिपादयन्ति कथयन्ति। सांख्या हि मूलतः पुरुषः प्रकृतिश्चेति तत्त्वद्वयं मन्यन्ते। ते प्रकृतिं जडरूपां प्रतिपादयन्ति, पुरुषस्य प्रकृत्या सह संसर्गेण महदादितत्त्वानि समुत्पद्यन्ते। तेषां मते पुरुषः पुष्करपलाशवन्निर्लेपस्तिष्ठति निखिला विकारास्तु प्रकृतेः समुत्पद्यन्ते।

§ ६२. स्वरूपेति—हि निश्चयेन अर्णवो जलधिर्नेमिर्यस्याः सा अर्णवनेमिः पृथिवी तस्याः स्वामिनां राज्ञामिति यावत् स्वरूपवर्णने, अमरस्वामिनापि शक्रेणापि असंख्यवदनेन निःसंख्यमुखेन भवितव्यम्। एकमुख इन्द्रोऽपि राज्ञां गुणान् वर्णयितुं न शक्त इति भावः। विरोधाभासालंकारेण तदेव द्रढयति—ते हि महीपतयो राजभावे चन्द्रत्वे पक्षे महीपतित्वे सत्यपि सद्भिर्नक्षत्रैः पक्षे सत्पुरुषैर्न सेव्यन्ते 'राजा चन्द्रे नृपे शक्रे क्षत्रिये प्रभुयक्षयोः' इति विश्वलोचनः। गोपतित्वे धेनुपतित्वे पक्षे पृथिवीपतित्वे जीवत्यपि विद्यमानेऽपि वृषशब्दं बलीवर्दशब्दं पक्षे धर्मशब्दं न शृण्वन्ति। नरेन्द्रत्वे विषवैद्यत्वे पक्षे नृपतित्वे नादितेऽपि घोषितेऽपि मन्त्रिकृत्यं मन्त्रज्ञकार्यं पक्षे सचिवकार्यं न सहन्ते। तथा महाबलस्य बृहत्सैन्यस्य प्रबलपराक्रमस्य वा अन्वेषिणोऽपि अबलान्वेषिणो न सैन्यान्वेषिणो निर्बलजनान्वेषिण इति विरोधः पक्षे अबलान्वेषिणो योषिदन्वेषिण इति परिहारः, प्रतापार्थिनोऽपि प्रकृष्टतापाभिलाषिणोऽपि असोढा न क्षान्ताः प्रतापिनः प्रकृष्टतापयुक्ता यैस्तथाभूता इति विरोधः पक्षे कोशदण्डजतेजोऽभिलाषिणोऽपि न सोढा अन्ये प्रतापिनस्तेजस्विनो यैस्तथाभूता इति परिहारः, सश्रुतयोऽपि सकर्णा अपि अश्रुतयोऽकर्णा

ही सदा अहंकारसे संगत प्रकृतिसे युक्त होते हैं—अहंकार पूर्ण स्वभावसे युक्त होते हैं तथा प्रकृतिके विकारको सूचित करनेवाले—स्वभावके विकारको प्रकट करनेवाले वचन बोलते हैं। भावार्थ—सांख्य दर्शनमें पुरुष और प्रकृति ये दो मूल तत्त्व माने गये हैं। प्रकृतिसे महान् और अहंकार आदि तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है तथा वचन आदि सब प्रकृतिके विकार बतलाये गये हैं।

§ ६२. राजाओंका जो स्वरूप है उसके वर्णन करनेमें इन्द्रको भी असंख्य मुखोंका धारक होना चाहिए। यथार्थमें उनमें राजभाव—चन्द्रपना होनेपर भी वे सत्—नक्षत्रोंसे सेवित नहीं होते (परिहार पक्षमें—राजा होनेपर भी सत्—सज्जनोंसे सेवित नहीं होते। गोपतित्व—गायोंका पतिपना रहते हुए भी वे वृष—बैल शब्दको नहीं सुनते—गायोंका पति वृष—बैल कहलाता है पर वे गायोंके पति होकर भी वृष—बैल शब्दको नहीं सुनना चाहते। (परिहार पक्षमें गोपतित्व—पृथिवीपतित्व—पृथिवीका स्वामित्व होनेपर भी वे वृष—धर्म शब्दको नहीं सुनते—उन्हें धर्मका नाम सुनते ही चिढ़ उत्पन्न होती है। नरेन्द्रपना—विषवैद्यपना घोषित होनेपर भी—अपने-आपको नरेन्द्र—विषवैद्य घोषित करके भी वे मन्त्रिकृत्य—मन्त्रवादियोंके कार्यको सहन नहीं करते। (परिहार पक्षमें—नरेन्द्रपना—राजपना घोषित होनेपर भी अपने-आपको नरेन्द्र—राजा घोषित करके भी वे मन्त्रिकृत्य—मन्त्रियोंके कार्यको सहन नहीं करते—मन्त्रियोंकी बात नहीं मानते। वे महाबलान्वेषी—अत्यन्त बलवानोंकी खोज करनेवाले होकर भी अबलान्वेषी—निर्बलोंकी खोज करनेवाले हैं (पक्षमें अबला—स्त्रियोंकी खोज करनेवाले हैं)। प्रतापार्थी—अत्यधिक तापके इच्छुक होकर भी असोढप्रतापी—

ढप्रतापिनः, सश्रुतयोऽप्यश्रुतयः, अङ्गस्पृहा अप्यनङ्गस्पृहाः, अभिषिक्ता अप्यनार्द्रभावाः, जडसंसक्ता अप्यूष्मलस्वभावाः, सुलोचना अप्यदूरदर्शिनः, सुपादा अपि स्खलितगतयः, सुगोत्रा अपि गोत्रोन्मूलिनः, सुदण्डा अपि कुटिलदण्डाः, सिंहासनस्थिता अपि पतिताः, हिंसाप्रधानविध-

---

इति विरोधः पक्षे सकर्णा अपि अश्रुतयः शास्त्ररहिता इति परिहारः, अङ्गस्पृहा अपि शरीरस्पृहा अपि अनङ्गस्पृहा न विद्यतेऽङ्गस्पृहा येषां तथाभूता इति विरोधः पक्षे अङ्गस्पृहा अपि अनङ्गस्पृहा अनङ्गे मदने स्पृहा येषां तथाभूता इति परिहारः, अभिषिक्ता अपि राज्याभिषेककालेऽभिषिक्ता अपि जलस्नाता अपि अनार्द्रस्वभावा अक्लिन्नस्वभावा इति विरोधः पक्षे अनार्द्रो निर्दयः स्वभावो येषां तथाभूता इति परिहारः, जडसंसक्ता अपि डलयोरभेदाज्जलसंसक्ता अपि ऊष्मलस्वभावा उष्णस्वभावा इति विरोधः पक्षे जडसंसक्ता अपि मूर्खसंपर्कसहिता अपि ऊष्मलस्वभावाः क्रुद्धस्वभावा इति परिहारः, सुलोचना अपि सुष्ठुलोचनसहिता अपि अदूरदर्शिनो दूरं न पश्यन्तीत्येवंशीला इति विरोधः पक्षे अदूरदर्शिनो भविष्यज्ज्ञानरहिता इति परिहाराः, सुपादा अपि सुन्दरपादसहिता अपि स्खलिता पतनशीला गतिर्येषां तथाभूता इति विरोधः पक्षे स्खलिता दुराचारेण भ्रष्टा गतिः परलोको येषां तथाभूता इति परिहारः, सुगोत्रा अपि गां पृथिवीं त्रायन्त इति गोत्राः सुष्ठु गोत्रा येषां तथाभूता अपि गोत्रोन्मूलिनो गोत्रान्पृथिवीरक्षकानुन्मूलयन्तीत्येवंशीला इति विरोधः पक्षे सुगोत्राः सुष्ठु गोत्रं येषां तथाभूता अपि सुकुला अपि गोत्रोन्मूलिनः कुलोच्छेदका दुराचारेण स्वकुलं दूषयन्त इति परिहारः, सुदण्डा अपि सुष्ठु दण्डः सैन्यं येषां तथाभूता अपि कुटिलदण्डा वक्रसैन्या इति विरोधः पक्षे कुटिलदण्डा वक्रशासना इति परिहारः, सिंहासनस्थिता अपि पतिता अधोभ्रष्टा इति विरोधः पक्षे पतिता भ्रष्टचारित्रा इति परिहारः, हिंसाप्रधानविधयोऽपि हिंसाप्रधानो याज्ञिकहिंसाप्रमुखो विधिरनुष्ठानं येषां तथाभूता अपि

अत्यधिक तापसे युक्त पदार्थोंको सहन नहीं करनेवाले हैं (पक्षमें—प्रताप—तेजके इच्छुक होकर भी अन्य प्रतापी—तेजस्वी मनुष्योंको सहन नहीं करनेवाले हैं)। सश्रुति—कानोंसे सहित होकर भी अश्रुति—कानोंसे रहित हैं (पक्षमें सश्रुति-कानोंसे सहित होकर भी अश्रुति—शास्त्रोंसे रहित हैं)। अंगस्पृह—शरीरमें स्पृहा—इच्छा रखनेवाले होकर भी अनंगस्पृह—शरीरमें स्पृहा नहीं रखनेवाले हैं (पक्षमें—अंगस्पृह—शरीरमें स्पृहा रखनेवाले होकर भी अनंगस्पृह—काममें इच्छा रखनेवाले हैं)। अभिषिक्त—जलके द्वारा अभिषेकको प्राप्त होनेपर भी अनार्द्रभाव—आर्द्रपन—गीलापनसे रहित हैं (पक्षमें—अभिषेकको प्राप्त होनेपर भी अनार्द्रभाव—निर्दय अभिप्रायसे युक्त हैं)। जडसंसक्त—जलसंसक्त—जलसे सहित होनेपर भी ऊष्मल स्वभाव—गरम स्वभावको धारण करनेवाले हैं (पक्षमें—जडसंसक्त—मूर्खजनोंके संसर्गमें रहकर भी ऊष्मल स्वभाव—तेजस्वी प्रकृतिके धारक हैं)। सुलोचन—उत्तम नेत्रोंसे युक्त होकर भी अदूरदर्शी—दूर तक नहीं देखनेवाले हैं (पक्षमें सुलोचन—सुन्दर नेत्रोंसे युक्त होनेपर भी अदूरदर्शी—भविष्यके विचारसे रहित हैं)। सुपाद—उत्तम पैरोंसे युक्त होनेपर भी स्खलित गति—लड़खड़ाती चालसे सहित हैं (पक्षमें—सुपाद उत्तम पैरोंसे सहित होकर भी स्खलित गति—पतित दशासे युक्त हैं। सुगोत्र—उत्तम नामके धारक होकर भी गोत्रोन्मूली—नामका उन्मूलन करनेवाले हैं (पक्षमें सुगोत्र—उच्चकुलमें उत्पन्न होकर भी गोत्रोन्मूली—अपने कुलको नष्ट करनेवाले हैं)। सुदण्ड—अच्छे दण्डसे युक्त होकर भी कुटिल दण्ड—टेढ़े दण्डसे युक्त हैं (पक्षमें सुदण्ड—अच्छी सेनासे युक्त होकर भी कुटिल दण्ड—भयंकर सजा देनेवाले हैं)। सिंहासनपर स्थित होनेपर भी पतित—नीचे पड़े हुए हैं (पक्षमें सिंहासनारूढ होनेपर भी पतित—भ्रष्ट हैं) हिंसाप्रधान विधि—हिंसाप्रधान काय—हिंसा-

योऽपि मीमांसाबहिष्कृताः, ऐश्वर्यतत्परा अपि न्यायपराङ्मुखाश्च जायन्ते।

§ ६३. एवं क्षोदीयसः क्षुद्रतरनैकपुरुषपरिषदुपभुक्तोच्छिष्टक्षितिलवलाभानुबन्धिपट्टबन्धान्धीकृतान्विषयान्धकारसंचारिणः शरणशीलं शरीरं विनश्वरमैश्वर्यं दावगर्भारण्यमिव तारुण्यं विचार्यमाणे विशीर्यमाणं वीर्यमैन्द्रधनुरिव सौन्दर्यं प्रख्यापिततृणाग्रबिन्दुसख्यं सौख्यं च व्यवस्थितमाकलयतस्तानाढ्यताजातमौढ्यादधः स्वयं पतत इव यष्टिभिर्घातयन्तो निकृष्टा केचन सदस्याः स्वदास्यममीषां संपाद्य संपदाकर्षणलम्पटतया घटितकापटिकवृत्तयः सन्तः सन्त इव नटन्तश्चर-

मीमांसाबहिष्कृता इति विरोधः मीमांसका हि हिंसाप्रधानविधिं समर्थयन्ति पक्षे हिंसाप्रधान आखेटादिपरो विधिर्येषां तथाभूता अपि मीमांसाबहिष्कृता विचारशक्तिशून्या इति परिहारः, ऐश्वर्यतत्परा अपि ईश्वरस्य कर्म ऐश्वर्यं सृष्टिकर्तृत्वं तस्मिन् तत्परा अपि न्यायपराङ्मुखाश्च न्यायदर्शनविमुखाश्च इति विरोधः न्यायदर्शने हीश्वरस्य सृष्टिकर्तृत्वं समर्थितम् पक्षे ईश्वरस्य भाव ऐश्वर्यं प्रभुत्वं तस्मिन् तत्परा अपि न्यायपराङ्मुखा योग्यायोग्यविचाररहिताश्च जायन्ते इति परिहारः।

§ ६३. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण, अतिशयेन क्षुद्रा इति क्षोदीयान्सस्तान् क्षोदीयसः, क्षुद्रतरा अतिशयेन क्षुद्रा ये नैकपुरुषा नानामानवास्तेषां परिषदा समूहेनोपभुक्ता अतएवोच्छिष्टा या क्षितिस्तस्या लवस्तुच्छांशस्तस्य लाभानुबन्धिना पट्टबन्धेनान्धीकृतास्तान्, विषय एवान्धकारस्तस्मिन् संचरन्तीत्येवंशीलास्तान्, शरणशीलं नश्वरस्वभावं शरीरं, विनश्वरं भङ्गुरम् ऐश्वर्यं प्रभुत्वम्, दावगर्भारण्यमिव सदावानलवनमिव तारुण्यं यौवनम्, विचार्यमाणे विचारे प्रारब्धे विशीर्यमाणं नश्यद् वीर्यं पराक्रमम्, ऐन्द्रधनुरिव शक्रशरासनमिव सौन्दर्यं लावण्यं प्रख्यापितं तृणाग्रबिन्दुना सख्यं सादृश्यं येन तथाभूतं नश्वरमिति यावत् सौख्यं च विषयजानन्दं च व्यवस्थितं स्थिरम् आकलयतो जानतः, तान् राजपुत्रान् आढ्यतया धनवत्तया जातं समुत्पन्नं यन्मौढ्यं तस्मात् स्वयमधःपतत इव यष्टिभिर्दण्डैर्घातयन्तस्ताडयन्तः निकृष्टा नीचाः केचन सदस्याः स्वदास्यं स्वभृत्यत्वममीषां राजपुत्राणां संपाद्य कृत्वा संपदाकर्षणलम्पटतया संपत्त्याकर्षणलम्पाकतया घटिता कापटिकवृत्तिर्यैस्तथाभूताः सन्तो भवन्तः, सन्त इव साधव इव नटन्तोऽ-

पूर्ण यज्ञादिसे सहित होनेपर भी मीमांसाबहिष्कृत—मीमांसक दर्शन संमत मीमांसासे रहित हैं (पक्षमें हिंसापूर्ण कार्य करनेवाले होकर मीमांसा—विचार-शक्तिसे रहित हैं) और ऐश्वर्यमें तत्पर होकर भी न्यायपराङ्मुख—अत्यधिक आयसे विमुख हैं (पक्षमें ऐश्वर्य प्रधान होकर भी न्यायपराङ्मुख—योग्य निर्णयसे विमुख रहते हैं—उचित न्याय नहीं करते हैं।

§ ६३. इस प्रकार जो अत्यन्त क्षुद्र हैं, अनेक क्षुद्रतर मनुष्योंके समूहसे भोगकर छोड़े हुए पृथिवीके जरा-से टुकड़ेकी प्राप्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले पट्टबन्धसे जो अन्धे हो रहे हैं, जो विषयरूपी अन्धकारमें संचार करनेवाले हैं, जो गलन रूप स्वभावसे युक्त शरीरको, विनश्वर ऐश्वर्यको, दावानलसे युक्त वनके समान यौवनको, विचार करनेपर नष्ट होनेवाले पराक्रमको, इन्द्रधनुषके समान सौन्दर्यको, और तृणके अग्रभागपर स्थित पानीकी बूँदकी सदृशताको प्रख्यापित करनेवाले—अस्थायी सुखको स्थायी समझ रहे हैं और जो सम्पन्नताके कारण उत्पन्न मूढ़तासे स्वयं ही मानो पतन कर रहे हैं ऐसे उन क्षुद्र राजाओंको लाठियोंसे घायल करते हुएके समान कितने ही नीच सदस्य उन्हें अपना दास बनाकर सम्पत्तिके खींचनेमें लम्पट होनेसे कपटपूर्ण वृत्तिको धारण करते हुए सज्जनकी तरह चेष्टा कर 'चलते-फिरते

१. क० ख० पट्टबन्धाधिकृतान् ग० पट्टबन्धाधिक्षतान्।

लक्ष्यभेददक्षतायै मृगयेति संकटपतितकार्यविचारपाटवाय द्यूतक्रीडेति प्रतीकस्थैर्याय पिशिताशनमिति मनःप्रसादाय मधुपानमिति रतिनैपुण्याय पण्ययुवतिपरिष्वङ्ग इत्यभिनवरतिरसास्थानिरस्तये परस्त्रीपरिग्रह इति शौर्यस्फूर्तये चौर्यमिति केलिरसाय तरलवृत्तिरिति महासत्त्वतेति माननीयावधीरणं महानुभावतेति वन्द्यानभिवन्दनं महातेजस्वितेति तेजस्वितिरस्करणमित्युपदिश्य स्ववश्यान्कल्पयन्ति ।

§ ६४. वित्तमदाचान्तविवेकः स जन्तुरपि तथोपदिशन्तमधिकपापिनमपथदर्शिनमपथ्यशंसिनमकृत्यकारिणमुक्तानुवादिनमुत्कोचोपजीविनं परपीडामुदितमानसं पराभ्युदयखिन्नहृदयं पैशुन्यवार्तं धूर्तधुराशिक्षणविचक्षणं विटलोकमेव विदग्धमतिस्निग्धं च विभाव्य स्वगात्रं स्वकलत्रं

मिनयन्तः, वरलक्ष्यस्य भेदे या दक्षता तस्यै चलल्लक्ष्यभेदकुशलतायै मृगयेति आखेटमिति, संकटे पतितं यत्कार्यं तस्य विचारे यत् पाटवं तस्मै संकटापन्नकार्यविमर्शचातुर्याय द्यूतक्रीडेति दुरोदरकेलिरिति, प्रतीकस्थैर्याय शरीरदार्ढ्याय पिशिताशनं मांसभोजनमिति, मनःप्रसादाय चेतःप्रसन्नतायै मधुपानं मदिरासेवनमिति, रतौ नैपुण्यं तस्मै सुरतचातुर्याय पण्ययुवतिपरिष्वङ्गो रूपाजीवाश्लेष इति, अभिनवरतिरसे नूतनसुरतरसे याऽऽस्था तस्या निरस्तये दूरीकरणाय परस्त्रीपरिग्रह इतरस्त्रीस्वीकार इति, शौर्यस्फूर्तये पराक्रमविस्फारत्वाय चौर्यमिति, केलिरसाय क्रीडारसाय तरलवृत्तिः चञ्चलवृत्तिरिति, महासत्त्वता-महापराक्रमतेति हेतोः माननीयावधारणमादरणीयजनतिरस्करणम्, महानुभावता-महाशयतेति हेतोः वन्द्यानभिनन्दनं वन्दनीयजनानमनम्, महातेजस्वितेति महौजस्वितेति हेतोः तेजस्वितिरस्करणं महौजस्विजनानादर इत्युपदिश्य स्ववश्यान्स्वाधीनान् कल्पयन्ति ।

§ ६४. वित्तमदाचान्तेति—वित्तमदेन धनगर्वेणाचान्तो नष्टो विवेको योग्यायोग्यविचारो यस्य तथाभूत. स जन्तुरपि राजपुत्रोऽपि अनादरत्वप्रदर्शनाय जन्तुरिति सामान्यपदेनाभिधानम् । तथा पूर्वोक्तप्रकारेणोपदिशन्तम्, अधिकपापिनं पापातिशययुक्तम्, अपथदर्शिनं कुमार्गदर्शयितारम्, अपथ्यमहितं शंसतीत्येवंशीलं तम्, अकृत्यं करोतीत्येवंशीलम्-अकार्यकारिणम्, उक्तमितरजनाभिहितं योग्यमयोग्यं वानुवदतीत्येवंशीलस्तम्, उत्कोचेन लञ्चयोपजीवतीत्येवंशीलस्तम्, परपीडया अन्यजनकष्टेन मुदितं प्रसन्नं मानसं यस्य तम्, पराभ्युदयेन अन्यजनैश्वर्येण खिन्नं हृदयं यस्य तम्, पैशुन्यवार्तं खलत्ववार्तम्, धूर्तधुराशिक्षणे धूर्तभारशिक्षायां विचक्षणो निपुणस्तम्, एवंभूतं विटलोकमेव षिद्गजनमेव विदग्धं चतुरम्

लक्ष्यको भेदन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिए शिकार खेला जाता है, संकटमें पड़े कार्यके विचार करनेकी चतुरता प्राप्त करनेके लिए जुआ खेला जाता है, शरीरकी दृढ़ताके लिए मांस खाया जाता है, चित्तको प्रसन्न रखनेके लिए मदिरा पान किया जाता है, रति-सम्बन्धी चतुराई प्राप्त करनेके लिए वेश्याओंके साथ समागम किया जाता है, नूतन—अभुक्त स्त्रीके साथ रति रसमें आदर भाव दूर करनेके लिए परस्त्रीको स्वीकृत किया जाता है, शूरवीरताको बढ़ानेके लिए चोरी की जाती है, क्रीड़ा-सम्बन्धी रसकी प्राप्तिके लिए चंचलता धारण करना ठीक है, पूज्य पुरुषोंका तिरस्कार करना महासत्त्वता है, वन्दनीय मनुष्योंको वन्दना नहीं करना महानुभावता है और तेजस्वी मनुष्योंका तिरस्कार करना महातेजस्वीपना है, ऐसा उपदेश दे अपने अधीन कर लेते हैं।

§ ६४. धनके मदने जिसके विवेकको चाट लिया है—नष्ट कर दिया है ऐसा प्राणी भी उस प्रकारका उपदेश देनेवाले अधिक पापी, कुमार्गदर्शी, अहितोपदेशी, कुकृत्यकारी, कहे हुएका समर्थन करनेवाले, लांचसे जीवित रहनेवाले, दूसरेकी पीड़ासे प्रसन्नचित्त, दूसरेका अभ्युदय देखकर खिन्नचित्त, चुगुलखोर और धूर्त मनुष्योंका भार सीखनेमें निपुण

स्ववित्तं स्ववृत्तं च तदधीनं विदधाति पिदधाति च सुजनसमागमनद्वारम् ।

§ ६५. एवंविधदुःशिक्षाबलेन स्वचापलेन च राजसूनवः प्रायेण प्रागेवाविनयं पश्चात्तारुण्यं पुरस्तादेव जाड्यं तदनन्तरमभिषेकं पूर्वमेवाहंकारं तदनु सिंहासनाध्यासनं पुर एव कौटिल्यं ततः किरीटं च भजन्ते । भव्योत्तम, भवांस्तु तथा यततां यथा विबुधसेवाप्रशस्तामस्तमितामनस्यामभिवर्धितसौमनस्यामप्रार्थितागतजागरामचलामतुलां च वृत्तिमञ्जसा कल्पयितुं प्रगल्भेत, सौजन्यसागरप्रभवेण प्रत्युपकारनिरपेक्षवृत्तिना मर्त्यमात्रसुदुर्लभेन पुरोपार्जितसुकृतफलेन सुजनवचनामृतलाभेन सुचिरं तुष्टः पुष्टश्च भविता' इति ।

§ ६६. एवंविधैर्गुरुवदनतुहिनसानुमत्संभूतैरम्बरसरिदम्भःसंभारैरिव सारैरतिगम्भीरैरु-

---

अतिस्निग्धं स्नेहातिशययुक्तं च विभाव्य विचार्य स्वगात्रं स्वशरीरं स्वकलत्रं स्वदारान्, स्ववित्तं निजधनं स्ववृत्तं निजाचारं च तदधीनं विटलोकायत्तं विदधाति सुजनानां समागमनस्य द्वारं सज्जनागमप्रवेशमार्गं पिदधाति च आच्छादयति च ।

§ ६५. एवंविधेति—एवंविधाया इत्थम्भूताया दुःशिक्षाया बलेन स्वचापलेन च स्वकीयचपलतया च राजसूनवो राजपुत्राः प्रायेण प्रागेव पूर्वमेवाविनयमनम्रताम्, पश्चात्तारुण्यं यौवनं, पुरस्तादेव पूर्वमेव जाड्यं शैत्यं पक्षे मौर्ख्यं तदनन्तरमभिषेकं राज्यस्नपनम्, पूर्वमेवाहंकारं गर्वं तदनु सिंहासनाध्यासनं सिंहासनारोहणम्, पुर एव कौटिल्यं वक्रत्वं मायावित्वमिति यावत् ततः किरीटं मौलिं च भजन्ते । भव्योत्तम, भवान् तु जीवंधरस्तु तथा तेन प्रकारेण यततां यथा येन प्रकारेण विबुधानां विदुषां सेवया प्रशस्ता ताम्, अस्तमितं नष्टमामनस्यं यस्यां ताम्, अभिवर्धितं सौमनस्यं सौजन्यं यस्यां ताम्, अप्रार्थित आगता जागरो यस्यां ताम्, अचलां स्थिराम्, अतुलामनुपमां च वृत्तिम् अञ्जसा याथार्थ्येन कल्पयितुं प्रगल्भेत समर्थो भवेत् । सौजन्यमेव सागरः सौजन्यसागरः साधुतासमुद्रः स प्रभवः कारणं यस्य तेन प्रत्युपकारात् निरपेक्षा वृत्तिर्यस्य तेन, मर्त्यमात्रस्य सुदुर्लभस्तेन, पुरोपार्जितस्य सुकृतस्य फलं तेन प्रागर्जितपुण्यपरिपाकेण सुजनवचनमेवामृतं तस्य लाभस्तेन साधुवचनपीयूषप्राप्त्या सुचिरं सुदीर्घकालं यावत् तुष्टः पुष्टश्च भविता । इति गुरूपदेशः समाप्तः ।

§ ६६. एवंविधैरिति—एवंविधैः पूर्वोक्तप्रकारैः गुरुवदनमेव गुरुमुखमेव तुहिनसानुमान् हिमशैलस्तस्मात्संभूतैः समुत्पन्नैः, अम्बरसरितो मन्दाकिन्या अम्भःसंभारैर्जलसमूहैरिव सारैः श्रेष्ठैः अति-

---

गुण्डोंके समूहको अत्यन्त चतुर एवं अत्यन्त स्नेही समझकर अपना शरीर, अपनी स्त्री, अपना धन और अपना आचार—सब कुछ उनके अधीन कर देते हैं और सज्जनोंके समागम रूपी द्वारको बन्द कर देते हैं ।

§ ६५. इस प्रकारकी कुशिक्षाके बलसे और अपनी चपलतासे राजपुत्र प्रायः कर अविनयको पहले और यौवनको पीछे, जाड्य–शीत (पक्षमें मूर्खता) को पहले और अभिषेकको बादमें, अहंकारको पहले और सिंहासनपर अधिष्ठानको पीछे, कुटिलताको पहले और मुकुटको बादमें प्राप्त करते हैं । हे भव्योत्तम, आप ऐसा यत्न कीजिए कि जिससे विद्वानोंकी सेवासे प्रशस्त, मनहूसीसे रहित, सौमनस्यसे सहित, बिना प्रार्थना किये ही प्राप्त जागरणसे युक्त, अचल और अनुपम वृत्तिको यथार्थ रूपमें प्राप्त करनेके लिए सजग हो सको । सौजन्यरूपी सागरसे उत्पन्न, प्रत्युपकारकी भावनासे निरपेक्ष, मनुष्य मात्रके लिए दुर्लभ, पूर्वोपार्जित पुण्यके फलस्वरूप सज्जनोंके वचन-रूपी अमृतके लाभसे आप चिरकाल तक सन्तुष्ट और परिपुष्ट होते रहोगे ।

§ ६६. इस प्रकार गुरुदेवके मुखरूपी हिमालयसे उत्पन्न गंगा नदीके जलप्रवाहके समान

दारैर्मधुरैर्विचित्रैरतिपवित्रैर्वचोभिः कुरुकुलकुशेशयाकरभानोः सूनोः स्वान्ते नितान्तनिपुणवणिक्प्रवेकविहितवेकटकर्मणा मणाविव निसर्गनिर्मले निर्मलतरीभवति 'भवत्ययमस्माकं परगतिसाधनानुकूलः कालः' इति विचार्यार्यनन्द्याचार्यः स्वहृदयगतं हृदयविदां प्राग्रहराय जीवकस्वामिने सानुनयं समभ्यधत्त ।

§ ६७. पुनरयमपुनरावृत्तिप्रयाणपिशुनवचनपविपतनेन पन्नगपतेरिव विपन्नस्य जीवककुमारस्य निष्प्रतिक्रियतया बाष्पायमाणवदनजुषः प्रेमान्धस्य गन्धोत्कटप्रमुखबन्धुसमाजस्य च सीदतः प्रव्रज्याप्रेरितमतिः प्रसभं व्रजन्पञ्चानन इव पञ्जरपरिभ्रष्टः प्रहृष्टमनास्तपोवनमवगाह्यापोह्य बाह्येतरपरिग्रहान्स्वविग्रहेऽपि निरस्ताग्रहः समस्तदुरितध्वंसनदक्षां जिनदीक्षां भजन्भगवतः

गम्भीरैः प्रौढार्थसहितैः मधुरैर्मिष्टैः विचित्रैर्नानाप्रकारैः अतिपवित्रैरुज्ज्वलतरैः, वचोभिर्वचनैः कुरुकुलमेव कुशेशयाकरः पद्माकरस्तस्य भानोः सूर्यस्य सूनोर्जीवंधरस्य स्वान्ते हृदये नितान्तनिपुणेनातिशयचतुरेण वणिक्प्रवेकेण वणिक्श्रेष्ठेन विहितं वेकटकर्म शाणोल्लेखनकर्म तेन मणौ रत्न इव निसर्गनिर्मले स्वभावविमले निर्मलतरीभवति । अत्यर्थं समुज्ज्वले सति 'अयमेष कालोऽस्माकं परगतिसाधनानुकूलपरलोकसुधारयोग्यो भवति' इति विचार्य विमृश्य, आर्यनन्द्याचार्य एतन्नामसूरिः हृदयविदां हृदयज्ञानां प्राग्रहराय श्रेष्ठाय जीवकस्वामिने जीवंधरस्वामिने स्वहृदयगतं स्वकीयमनःस्थितं सानुनयं सप्रेम यथा स्यात्तथा समभ्यधत्त कथयामास ।

§ ६७. पुनरयमिति—पुनरनन्तरम् अयमार्यनन्द्याचार्यः न विद्यते पुनरावृत्तिः पुनरागमनं यस्य तथाभूतं यत्प्रयाणं गमनं तस्य पिशुनं सूचकं यद् वचनं तदेव पविर्वज्रं तस्य पतनेन पन्नगपतेरिव नागेन्द्रस्येव विपन्नस्य पीडितस्य जीवककुमारस्य निष्प्रतिक्रियतया प्रतिकारराहित्येन बाष्पायमाणं साश्रु भवद् यद् वदनं मुखं तज्जुषते तथाभूतस्य, प्रेम्णान्धस्तस्य गन्धोत्कटप्रमुखश्चासौ बन्धुसमाजस्तस्य च सीदतो दुःखीभवतः 'षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी प्रव्रज्यया दीक्षया प्रेरिता मतिर्यस्य तथाभूतः प्रसभं हठाद् व्रजन् पञ्जरभ्रष्टाद्यःशलाकागृहान्निःसृतः पञ्चानन इव सिंह इव प्रहृष्टमनाः प्रसन्नचेताः, तपोवनमवगाह्य प्रविश्य बाह्याश्चेतरे च बाह्येतरे ते च ते परिग्रहाश्च तान् बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहान् क्षेत्रवास्त्वादयो बाह्याः परिग्रहा मिथ्यात्वादयश्चाभ्यन्तरपरिग्रहाः, अपोह्य त्यक्त्वा स्वविग्रहेऽपि स्वशरीरेऽपि 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः निरस्त आग्रहो येन तथाभूतः सन् समस्तदुरितानां निखिलपापानां ध्वंसने दक्षा समर्था

सारभूत, अत्यन्त गम्भीर, उदार, मधुर, विचित्र और अत्यन्त पवित्र वचनोंसे कुरुवंश रूपी कमलवनको विकसित करनेके लिए सूर्यस्वरूप राजकुमार जीवन्धरका स्वभावसे निर्मल चित्त जब अत्यन्त चतुर श्रेष्ठ वणिक्के द्वारा किये हुए शाणोल्लेखनसे मणिके समान और भी अधिक निर्मल हो गया तब 'यह हमारा परभवको सुधारनेके अनुकूल समय है' ऐसा विचार कर आर्यनन्दी आचार्यने हृदयज्ञ मनुष्योंमें श्रेष्ठ जीवन्धर स्वामीके लिए स्नेहपूर्वक अपने हृदयका भाव कहा।

§ ६७, तदनन्तर जिसमें पुनः लौटकर नहीं आना है ऐसे गमनको सूचित करनेवाले वचनरूपी वज्रके पड़नेसे जीवन्धर कुमार, वज्रपातसे नागराजके समान दुःखी हो गये। कुछ प्रतिकार न सूझनेसे अश्रुयुक्त मुखको धारण करनेवाले एवं प्रेमसे अन्धे गन्धोत्कट आदि कुटुम्बी जन भी बहुत दुःखी हुए। उन सबकी उपेक्षा कर, दीक्षासे जिनकी बुद्धि प्रेरित हो रही थी, जो पिंजड़ेसे छूटे सिंहके समान हठपूर्वक आगे बढ़े जा रहे थे, जिनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न था, जिन्होंने तपोवनमें प्रवेश कर बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंका त्याग कर शरीरमें भी आग्रह छोड़ दिया था ऐसे आर्यनन्दी आचार्यने समस्त पापोंके नष्ट करनेमें समर्थ

पश्चिमतीर्थनायकस्यापश्चिमसौख्यसंपादनशीलं श्रीपादमूलं मूलबलीकृत्य मूलोत्तरभेदप्रभेदविशिष्टचारित्रभृतकबलपुष्टः कर्माष्टकरिपुराजसमष्टिं समूलकाषं कषन्कर्मारिनिर्मूलनप्रलयविधानातिशयमिलितपर्जन्यप्रमुखनिर्जरपरिषत्परिकल्पितपरिनिर्वृतिमहोत्सवपुरःसरं सारगुणोत्कर्षपक्षपातिपरमशुक्लध्यानाभिधानध्यानोत्तमप्रदत्तां लयपराचीनपरमानन्दवितरणविदग्धामविदग्धमुक्तां मुक्तिश्रियं शिश्रिये।

§ ६८. ततश्च तस्मिन्प्रसववेदनानभिज्ञमातरि निरर्थकाव्यक्तवचःश्रवणचरितार्थश्रोत्रदूरोज्झितपितरि निमेषोन्मेषनिरपेक्षनेत्रे लोकद्वयहितोपदेशिमित्रे बहिश्चरापरजीविते गुरौ तपस्योद्यते गते सति जातमपि शोकजातवेदसं तत्त्वज्ञानजलैर्निर्वाप्य गुणगणगरीयसा कनीयसानन्यो-

तां जिनदीक्षां दिगम्बरमुद्रां भजन् स्वीकुर्वन् भगवतो लोकोत्तरैश्वर्यसहितस्य पश्चिमतीर्थनायकस्य वर्धमानतीर्थकरस्य अपश्चिमं श्रेष्ठं यत्सौख्यं तस्य संपादनं शीलं यस्य तथाभूतं श्रीपादमूलं मूलबलीकृत्य मूलबलं विधाय मूलोत्तरभेदप्रभेदविशिष्टं यच्चारित्रं तदेव भृतकबलं पदातिसैन्यं तेन पुष्टः समर्थातिशयं प्राप्तः, महाव्रतगुप्तिसमितयश्चारित्रस्य मूलभेदाः अहिंसादीनि महाव्रतानि, मनोगुप्त्यादयो गुप्तयः, ईर्यादयः समितय इति चारित्रस्योत्तरभेदाः। कर्मणां ज्ञानावरणादीनामष्टकं कर्माष्टकं तदेव रिपुराजस्तस्य समष्टिः समूहस्ताम् समूलं कषित्वा समूलकाषं कषन् हिंसन् कर्मारीणां कर्मशत्रूणां निर्मूलनप्रलयस्य समूलविनाशस्य विधानातिशयेन करणातिशयेन मिलिताः समागता ये पर्जन्यप्रमुखा मेघकुमारप्रमुखा निर्जरास्तेषां परिषदा समूहेन परिकल्पितो विहितः परिनिर्वृतिमहोत्सवः मोक्षप्राप्तिमहोत्सवः पुरस्सरो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा सारगुणानां श्रेष्ठगुणानां य उत्कर्षस्तस्य पक्षपाति परमशुक्लाभिधानं व्युपरतक्रियानिवर्तिनामकचतुर्थशुक्लध्याननामधेयं ध्यानोत्तमं समुत्कृष्टध्यानं तेन प्रदत्ताम्, लयपराचीनो विनाशविमुखो यः परमानन्दस्तस्य वितरणे प्रदाने विदग्धां चतुराम् अविदग्धैरचतुरैर्मुक्तां त्यक्तां मुक्तिश्रियं मुक्तिलक्ष्मीं शिश्रिये श्रितवान् कर्माष्टकविनिर्मुक्तो मोक्षलक्ष्मीश्वरो बभूवेति भावः।

§ ६८. ततश्चेति—तदनन्तरं च प्रसववेदनाया अनभिज्ञा प्रसववेदनानभिज्ञा सा चासौ माता चेति प्रसववेदनानभिज्ञमाता तस्यां, निरर्थकानि अर्थशून्यानि-अव्यक्तानि-अस्पष्टानि यानि वचांसि तेषां श्रवणेन समाकर्णनेन चरितार्थे ये श्रोत्रे ताभ्यां दूरोज्झितः पिता तस्मिन्, निमेषोन्मेषयोः पक्ष्मणां विघटनोद्घटनयोर्निरपेक्षं नेत्रं तस्मिन्, लोकयोर्भवद्भविष्यतोर्द्वयं तस्य हितमुपदिशतीत्येवंशीलं मित्रं तस्मिन्, बहिश्चरं यदपरजीवितं तस्मिन्, तथाभूते गुरौ तपस्योद्यते गते सति जातमपि समुत्पन्नमपि शोकजातवेदसं शोकाग्निं तत्त्वज्ञानजलैस्तत्त्वज्ञानसलिलैः निर्वाप्य विध्यापितं कृत्वा गुणगणेन गुणसमूहेन गरीयान्

जिनदीक्षा धारण कर ली। और अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीके श्रेष्ठ सुखप्रदायक पादमूलको मूल बल बनाकर—उनकी शरणमें पहुँचकर मूल-उत्तर भेद-प्रभेदोंसे सहित चारित्र रूपी सैन्य बलसे पुष्ट हो अष्ट कर्मरूपी शत्रु-समूहको समूल नष्ट कर श्रेष्ठ गुणोंके उत्कर्षके पक्षपाती परम शुक्लध्यान नामक उत्तम ध्यानके द्वारा प्रदत्त, अविनाशी परमानन्दके देनेमें निपुण एवं मूर्खजनोंके द्वारा छोड़ी हुई मुक्ति रूपी लक्ष्मीको प्राप्त हो गये। उस समय कर्मरूप शत्रुओंका समूल क्षय करनेके अतिशयसे एकत्रित मेघकुमार आदि देवोंके समूहने उनका निर्वाण महोत्सव मनाया था।

§ ६८. तदनन्तर जो प्रसवकी वेदनासे अनभिज्ञ माता थे, निरर्थक एवं अस्पष्ट वचनोंके सुननेसे कृतकृत्य कानोंसे रहित पिता थे, बन्द करना और खोलना रूप क्रियासे निरपेक्ष नेत्र थे, दोनों लोकोंमें हितका उपदेश देनेवाले मित्र थे, और बाहर चलनेवाले दूसरे प्राण थे ऐसे गुरुके तपस्याके लिए उद्यत हो चले जानेपर जो शोकरूपी अग्नि उत्पन्न हुई थी उसे

पास्यैर्वयस्यैश्च समं वसुंधरायां सौन्दर्यवीर्याभ्यां मार इव कुमार इव च जीवककुमारे वारयुवतीनां पौरवृद्धानां च हृदि स्वाङ्गारोहणोपलम्भसंभावनाहृष्टानां करिरथतुरगप्रष्ठानां[1] पृष्ठेषु च सदा निवसति तदवसरे प्रस्तुतमुच्यते ।

§ ६९. अथ कदाचिदचलमचरममारूढवति भानुमति विधाय विधेयमहर्मुखसमुचित-महमहमिकापतदवनिपतिकिरीटरत्नकिरणनिकरविराजितं[2] राजविजयवर्णनचतुरचारणमुखरितहरि-तमनिलचलितकदलिकाकलापममलदुकूलवितानविलसदुपरिभागमुद्गच्छदनुच्छमरीचिनिचयनिचुलि-तमणिस्तम्भमास्थानमण्डपमाधवसन्तं समीपगतवारवामलोचनाचालितचामरमरुदान्दोलितकुन्तल-

श्रेष्ठस्तेन कनीयसा लघुसहोदरेण नन्दाढ्येन न विद्यन्तेऽन्य उपास्या येषां तैरसाधारणैर्वयस्यैर्मित्रैश्च समं वसुंधरायां पृथिव्यां सौन्दर्यवीर्याभ्यां क्रमेण मार इव मदन इव कुमार इव कार्तिकेय इव जीवककुमारे जीवंधरे वारयुवतीनां विलासिनीनां पौरवृद्धानां वृद्धनागरिकाणां च हृदि, स्वाङ्गेषु स्वशरीरेषु आरोहणो-पलम्भः समुच्चटनप्राप्तिरेव संभावना सत्कारस्तेन हृष्टानां प्रसन्नानां करिणश्च रथाश्च तुरगाश्चेति करिरथतुरगं तस्मिन् प्रष्ठानां श्रेष्ठानां पृष्ठेषु च सदा निवसति सति 'यस्य च भावे भावलक्षणम्' इति सप्तमी तदवसरे प्रस्तुतं प्रकृतम् उच्यते ।

§ ६९. अथेति—अथानन्तरं कदाचिद् जातुचित् भानुमति सूर्ये अचरममाद्यम् अचलं पर्वतम् उदयाचलमिति यावत् आरूढवति सति, अहर्मुखसमुचितं प्रातःकालयोग्यं विधेयं कार्यं विधाय कृत्वा अहमहमिकया-अहं पूर्वमहं पूर्वमिति बुद्ध्या पतन्ति विनमन्ति यानि अवनिपतीनां राज्ञां किरीटानि मुकुटानि तेषां रत्नानां किरणनिकरेण मयूखमण्डलेन विराजितं राजविजयस्य वर्णने चतुरा विदग्धा ये चारणास्तैर्मुखरिता हरितो दिशो यस्य तम्, अनिलेन चलितः कदलिकाकलापो ध्वजसमूहो यस्मिन् तम्, अमलदुकूलस्य निर्मलदुकूलवस्त्रस्य वितानेन चन्द्रोपकेन विलसन् उपरिभागो यस्य तम्, उद्गच्छता उपरिव्रजता अतुच्छमरीचिनिचयेन विशालकिरणसमूहेन निचुलिताः कृतावरणा मणिस्तम्भा यस्य तम्, एवंभूतमास्थानमण्डपं सभामण्डपम् अधिवसन्तं तत्र स्थितमित्यर्थः, समीपगताः पार्श्वस्थिता या वारवाम-लोचना वेश्यास्ताभिश्चालितानां चामराणां बालव्यजनानां मरुता पवनेनान्दोलितः कम्पितः कुन्तलकलापः

तत्त्वज्ञानरूपी जलके द्वारा बुझाकर गुणोंके समूहसे श्रेष्ठ छोटे भाई नन्दाढ्य और किसी दूसरेकी उपासना नहीं करनेवाले मित्रोंके साथ, पृथिवीपर सौन्दर्यसे कामदेवके समान और पराक्रमसे कार्तिकेयके समान जीवन्धर कुमार जिस समय वारयुवतियों और वृद्ध नागरिकोंके हृदयमें तथा अपने शरीरपर चढ़नेकी प्राप्ति रूप आदरसे हर्षित हाथी, रथ और श्रेष्ठ घोड़ोंकी पीठपर सदा निवास कर रहे थे उस समय जो प्रकृत बात हुई वह कही जाती है ।

§ ६९. अथानन्तर किसी समय सूर्यके उदयाचलपर आरूढ़ होनेपर प्रातःकालके योग्य क्रियाओंको कर काष्ठांगार उस सभामण्डपमें आसीन हुआ कि जो पहले प्रवेश करनेकी प्रति-स्पर्धासे आते हुए राजाओंके मुकुटसम्बन्धी रत्नोंकी किरणोंसे नीराजित था—जिसमें आरती उतारी जा रही थी, राजाकी विजयके वर्णन करनेमें चतुर चारणोंके द्वारा जिसमें दिशाएँ शब्दायमान हो रही थीं, जिसकी पताकाओंका समूह वायुसे हिल रहा था, जिसका ऊपरी भाग उज्ज्वल रेशमी चँदोवासे सुशोभित था, और जिसके मणिनिर्मित खम्भे ऊपरकी ओर उठती हुई बहुत बड़ी किरणोंके समूहसे आवरासे युक्त जान पड़ते थे। उस समय समीपमें स्थित वेश्याओंके द्वारा चलाये हुए चमरोंकी वायुसे काष्ठांगारके आगेके बालोंका

१. प्रष्ठानां श्रेष्ठानाम् इति टिप्पणी । २. म० किरीटरत्नकिरणनीराजितं ।

कलापमुल्लसदाभरणमणिमहःप्रसरकञ्चुकितसकलकाष्ठं काष्ठाङ्गारं धरणीपतिमकुटतटप्रहारजर्जरितशिखरेण निजाधिकारलक्ष्मीलताधिरोहणविटपेन वेत्रदण्डेन चण्डिमानमुद्वहन्प्रदर्शितमुखविकारः प्रतीहारः प्रविश्य सप्रश्रयं प्रणम्येदं व्यजिज्ञपत्[1]।

§ ७०. "देव, देवभुजपरिघपरिपालितपर्यन्तेषु कान्तारेषु तरुणतृणचरणरसाकुलं गोकुलमापत्य कुतोऽपि दिगन्तरालादविरलशरासारशकलितगोपवपुषः परुषवचसो नाफला बलादाहृत्य गता इति प्रतीहारस्थाने स्थिताः, प्रोतोद्धृतोभयपाणितलप्रणयिपल्लववंशदण्डाः कुञ्चिताग्रचरणस्पृष्टमहीपृष्ठा द्विगुणतरदीर्घीकरणतनुतरशरीराः परनिवेदनभयचकितशबरैः शाखासु

केशसमूहो यस्य तम्, उल्लसन्ति शोभमानानि यान्याभरणानि तेषां मणयो रत्नानि तेषां महसस्तेजसः प्रसरेण कञ्चुकिता व्याप्ताः सकलकाष्ठा निखिलदिशो येन तम्, काष्ठाङ्गारं तन्नामधेयं नृपाधमम्, धरणीपतीनां राज्ञां मकुटतटेषु प्रहारेण जर्जरितं शिखरं यस्य तेन, निजाधिकारलक्ष्मीरेव लतास्तस्या अधिरोहणविटप आश्रयशाखा तेन वेत्रदण्डेन चण्डिमानं तीक्ष्णत्वम् उद्वहन् प्रदर्शितो मुखविकारो येन तथाभूतः प्रतीहारो द्वारपालः प्रविश्य सप्रश्रयं सविनयं प्रणम्य नमस्कृत्य इदं वक्ष्यमाणं व्यजिज्ञपत् निवेदयामास—

§ ७०. देवेति—देव, राजन्, देवस्य भवतो भुजपरिघैर्बाह्वर्गलैः परिपालिता पर्यन्ता येषां तेषु कान्तारेषु वनेषु तरुणतृणानां हरितहरितशष्पाणां चरणरसेन भक्षणस्नेहेनाकुलं व्यग्रं गोकुलं धेनुसमूहं कुतोऽपि कस्मादपि अज्ञातादिति भावः दिगन्तरालात्काष्ठामध्यात् आपत्य आक्रम्य अविरलशरासारेण निरन्तरबाणवृष्ट्या शकलितानि खण्डितानि गोवपूंषि यैस्ते, परुषं वचो येषां ते कठोरभाषिणो नाफलाः किराता बलाद् हठाद् आहृत्य गता इति प्रतीहारस्थाने द्वारस्थाने स्थिताः केचन गोदुहो घोषाः क्रोशन्ति रुदन्ति इति। अथ गोदुहां विशेषणान्याह—प्रोतमन्योन्यासक्तम् उद्धृतमुपरिस्थापितं यदुभयपाणितलं हस्तद्वयतलं तस्य प्रणयिनः स्नेहयुक्तास्तत्र विद्यमाना इति यावत् पल्लववंशदण्डा पल्लवोपलक्षितवेणुदण्डा येषां ते, कुञ्चितैरवनमितैरग्रचरणैः स्पृष्टं महीपृष्ठं येषु ते, द्विगुणतरेण दीर्घीकरणेन आयतीकरणेन तनुतरं कृशतरं शरीरं येषां ते, परेभ्यो निवेदनं परनिवेदनं तस्य भयेन चकिता भीता ये शबराः पुलिन्दास्तैः

समूह हिल रहा था और आभूषणोंके मणियोंके उठते हुए तेजके समूहसे उसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर रखी थीं। राजाओंके मुकुटतटपर प्रहार करनेसे जिसका अग्रभाग जर्जरित हो गया था और जो अपनी अधिकार-लक्ष्मीरूपी लताको चढ़नेके लिए वृक्षकी शाखाके समान जान पड़ता था ऐसे वेत्रदण्डसे तीक्ष्णताको धारण करने एवं मुखके विकार को दिखानेवाला द्वारपाल प्रवेश कर तथा बड़ी विनयके साथ प्रणाम कर काष्ठाङ्गारसे यह निवेदन करने लगा कि—

§ ७०. 'हे देव! आपके भुजरूपी अर्गलदण्डोंसे सुरक्षित सीमाओंसे युक्त वनोंमें हरे-भरे तृणोंके चरनेमें आनन्दपूर्वक निमग्न गायोंके समूहको लगातार बाणोंकी वर्षासे उनका शरीर खण्डित करने एवं कठोर वचन बोलनेवाले भील किसी दिशासे आकर जबर्दस्ती हर ले गये हैं।' ऐसा द्वारपर खड़े कितने ही ग्वाल चिल्ला रहे हैं। उन ग्वालोंमें कितने ही ग्वाल परस्पर फँसी हुई दोनों हाथोंकी हथेलियाँ बाँसकी लाठियोंपर रखे हुए हैं और उनसे वे बाँसकी लाठियाँ लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त जैसी जान पड़ती हैं, कितने ही मुड़े हुए पैरोंके अग्र भागसे पृथ्वीतलका स्पर्श कर रहे हैं—पृथिवीपर घुटने टेक कर स्थित हैं, कितने ही लोगोंके शरीर पृथिवीपर अत्यधिक लम्बा पड़नेसे अत्यन्त कृश हो रहे हैं अर्थात् कितने ही लोग पृथिवीपर औंधा पड़कर प्रार्थना कर रहे हैं

[1] क० अजिज्ञपत्।

बद्धकराः प्रलम्बिता इवानुकम्प्यमानाः प्रम्लानवदनसूचितान्तःशोकप्राग्भाराः, प्रजृम्भमाणोत्थितस्थूलसिराजालजटिलितवपुषः, प्रकामविवृतास्यक्षरल्लालाजलापदेशेन पीतमपि पयःपूरममन्दस्वान्तसंतापादुद्वमन्त इव जुगुप्स्यमानाः केचन गोदुहः क्रोशन्ति'' इति ।

§ ७१. तथा शंसत्येव तस्मिन्नश्रुतपूर्वेण श्रवणकटुकतद्वचनेन धरणीपतिः फणिपतिरिव फणामण्डलप्रहारेण प्रज्वलितकोपाग्निः सत्वरोन्नमितपूर्वशरीरः, सुदूरोत्क्षिप्तवैकक्ष्यताडितोरःकवाटः, सोष्मस्थूलनिःश्वासतरलितवक्षःस्थलः संधुक्षयन्निव हृदयगतरोषाशुशुक्षणिम्, अतिमात्रगात्रभञ्जनत्रुटितोरःस्थलहारविनिर्गलदविरलमुक्ताफलप्रकरेण प्रयच्छन्निव समरदेवतायै प्रसू-

---

शाखासु बद्धकरा बद्धहस्ताः प्रलम्बिता इव दीर्घीकृता इवानुकम्प्यमानाः, प्रम्लानवदनैः निश्रीकमुखैः सूचितः प्रकटितोऽन्तःशोकप्राग्भारो हृदयस्थितशोकसमूहो यैस्ते, प्रजृम्भमाणोत्थितेन विस्तृतोत्थितेन स्थूलसिराजालेन स्थूलनाडीनिचयेन जटिलितं वपुर्येषां ते, प्रकाममत्यन्तं विवृतानि व्यात्तानि यान्यास्यानि मुखानि तेभ्यः क्षरद् यल्लालाजलं तस्यापदेशेन व्याजेन पीतमपि पयःपूरं जलप्रवाहम्, अमन्दस्वान्तसंतापात् प्रचुरचित्तसंतापाद् उद्वमन्त उद्गिरन्त इव जुगुप्स्यमाना जुगुप्साविषयीभूताः ।

§ ७१. तथेति—तस्मिन् प्रतीहारे तथा पूर्वोक्तप्रकारेण शंसत्येव कथयत्येव सति, पूर्वं न श्रुतमित्यश्रुतपूर्वं तेनानाकर्णितपूर्वेण श्रवणयोः कटुकं श्रवणकटुकं तस्य वचनं तद्वचनं श्रवणकटुकं यत्तद्वचनं तेन धरणीपतिः काष्ठाङ्गारः फणामण्डलप्रहारेण भोगचक्रवालकुट्टनेन फणिपतिरिव नागेन्द्र इव प्रज्वलितः कोपाग्निर्यस्य स प्रवृद्धक्रोधानलः, सत्वरं सशैघ्र्यमुन्नमितं पूर्वशरीरं येन सः, सुदूरोत्क्षिप्तेन वैकक्ष्येण मालाविशेषेण ताडित उरःकवाटो वक्षःकपाटो यस्य सः, 'प्रालम्बमृजुलम्बि स्यात्कण्ठाद्वैकक्षिकं तु तत् । यत्तिर्यक् क्षिप्तमुरसि' इत्यमरः, सोष्मणा सौष्ण्येन स्थूलनिश्वासेन दीर्घश्वासेन तरलितं चञ्चलं वक्षःस्थलं यस्य सः, रोष एवाशुशुक्षणिरिति रोषाशुशुक्षणिः हृदयगतश्चासौ रोषाशुशुक्षणिश्चेति हृदयगतरोषाशुशुक्षणिस्तं हृदयस्थितकोपानलं संधुक्षयन्निव प्रज्वलयन्निव, अतिमात्रमत्यधिकं गात्रभञ्जनेन शरीरभञ्जनेन त्रुटितः खण्डितो य उरःस्थलहारस्तस्माद्विनिर्गलन् संपतन् योऽविरलमुक्ताफलप्रकरो निरन्तरमौक्तिकसमूहस्तेन समरदेवतायै रणदेव्यै प्रसूनाञ्जलिं पुष्पाञ्जलिं प्रयच्छन्निव प्रददद्दिव, ललाटे निटिलतटे घटिता

और उससे उनके शरीर अत्यन्त क्षीण जान पड़ते हैं, 'कहीं ये जाकर दूसरोंको खबर न कर दें' इस भयसे भीत भीलोंने कितने ही ग्वालोंके हाथ वृक्षोंकी शाखाओंमें बाँधकर उन्हें नीचे लटका दिया था और इस कारण वे अत्यन्त दयाके पात्र जान पड़ते हैं। उनके मुरझाये हुए मुखोंसे अन्तःकरणमें स्थित शोकका समूह सूचित हो रहा है। बढ़ती एवं उभरी हुई मोटी नसोंके समूहसे उनके शरीर व्याप्त हैं तथा अत्यन्त खुले हुए मुखसे झरनेवाली लाररूपी जलके बहाने वे अत्यधिक हार्दिक सन्तापसे पहले पिये हुए भी जलके समूहको उगलते हुए के समान ग्लानिके पात्र हैं।

§ ७१. द्वारपालके ऐसा कहते ही उसके अश्रुतपूर्व कर्णकटुक वचनोंसे काष्ठाङ्गारकी क्रोधाग्नि उस तरह प्रज्वलित हो गयी जिस तरह कि फनपर प्रहार करनेसे नागराजकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठती है। उसने अपने शरीरका पूर्व भाग बड़ी शीघ्रतासे ऊपरकी ओर उठा लिया अर्थात् वह तनकर बैठ गया। बहुत दूर तक उठी हुई तिरछी मालाओंसे उसका किवाड़के समान चौड़ा वक्षःस्थल ताड़ित होने लगा, गर्म और मोटी श्वासोंसे उसका वक्षःस्थल चंचल हो उठा और उससे वह हृदयमें स्थित क्रोधरूपी अग्निको धौंकते हुएके समान जान पड़ने लगा। बहुत भारी अंगड़ाई लेनेसे टूटे हुए वक्षःस्थलके हारसे गिरनेवाले लगातार मोतियोंके समूहसे वह ऐसा जान पड़ने लगा मानो युद्धके देवताके लिए पुष्पाञ्जलि ही दे

नाञ्जलिम्, ललाटघटितभयावहभ्रुकुटिश्चापमिव स्वयं समराय दधत्, तीक्ष्णनिपातेन निरीक्षणपुङ्खिना पुरोऽवस्थितपुलिन्दसंदेहादिव प्रहितेन वित्रस्तपरिजनेन परिहृतपुरोभागः, प्रसर्पतः परितः प्रचुररोषलोहितलोचनरोचिषो मध्यमध्यासीनः क्षीबक्षोदीयोरचितनिजप्रतापक्षयमक्षमः सोढुमग्नौ निमग्न इव लक्ष्यमाणः,[1] श्रमजलबिन्दुदन्तुरशरीरयष्टिरन्तस्तापशमनाय स्नातोत्थित इव भासमानः, क्षणादतिपरिचितैरपि पार्श्वचरैस्तदानीमन्य इवामन्यत। नातिचिराच्च नर्तिताधरपल्लवनिर्यातारुणकिरणव्याजेन प्रजानुरागमिव प्रदर्शयन् 'प्रहीयतां तत्र दण्डः' इति भाविपरिभवपिशुनाशनिपतनसंदेहदायिना घोरतरेण स्वरेणादिश्य सौविदल्लं प्राहिणोत्।

भयावहा भ्रुकुटिर्यन सः, अत एव समराय युद्धाय स्वयं चापं धनुर्दधदिव, तीक्ष्णनिपातेन निशितनिपातेन वासनाधिक्यात् पुरोऽवस्थिता अग्रे विद्यमाना ये पुलिन्दाः शबरास्तेषां सन्देहादिव प्रहितेन प्रेरितेन निरीक्षणपुङ्खिना दृष्टिकृपाणेन वित्रस्तो विभीतो य परिजनस्तेन परिहृतस्त्यक्तः पुरोभागो यस्य सः, परितः समन्तात् प्रसर्पतः प्रसरतः प्रचुररोषेण तीव्रक्रोधेन लोहितयो रक्तयोर्लोचनयो यद् रोचिस्तस्य मध्यम् अध्यासीनोऽधिष्ठित. अत एव क्षीबक्षोदीयोभिर्मत्तक्षुद्रतरै रचितो विहितो यो निजप्रतापक्षयः स्वकीयतेजोऽपकर्षस्तं सोढुम् अक्षमोऽसमर्थः सन् अग्नौ वह्नौ निमग्न इव तन्मध्यस्थित इव लक्ष्यमाणो दृश्यमानः, श्रमजलबिन्दुभिः स्वेदकणिकाभिर्दन्तुरा व्याप्ता शरीरयष्टिर्यस्य सः अत एव अन्तस्तापशमनाय मनस्तापविध्यापनाय आर्द्रो स्नातः पश्चादुत्थित इति स्नातोत्थित इव भासमानः प्रतीयमानः, क्षणादल्पेनैव कालेन अतिपरिचितैरपि पार्श्वचरैः समीपस्थायिभिर्जनैः तदानीं तस्मिन् समयेऽन्य इव भिन्न इवामन्यत। क्षणादेव धरणीपतिः क्रोधाद्विकृतवेषोऽभूद् येन परिचिता अपि तं नो परिचिक्युरिति भावः। नातिचिराच्च क्षिप्रमेव च नर्तितः क्रोधेन प्रस्फुरितो योऽधरपल्लवो दशनच्छदकिसलयस्तस्मान्निर्याता निर्गता येऽरुणकिरणा रक्तमयूखास्तेषां व्याजेन प्रजानुरागं जनतास्नेहं प्रदर्शयन्निव प्रकटयन्निव 'तत्र कान्तारे दण्डः सैन्यं प्रहीयताम् प्रेष्यताम्' इतीत्थं भाविपरिभवस्य पिशुनं सूचकं यदशनिपतनं वज्रपतनं तस्य संदेहं ददातीत्येवंशीलं तेन घोरतरेण उच्चैस्तरेण स्वरेण आदिश्य आज्ञप्य सौविदल्लं प्रतीहारं प्राहिणोत् प्रजिघाय।

रहा हो। उसके ललाटपर भयंकर भौंह उठ खड़ी हुई और उससे वह ऐसा जान पड़ने लगा मानो युद्धके लिए स्वयं धनुष ही धारण कर रहा हो। 'सामने भील खड़े हैं' इस संदेहसे ही मानो उसने अपने नेत्ररूपी पैने बाण आगे चलाये थे और उससे भयभीत होकर ही सेवकजनोंने उसके आगेका स्थान छोड़ दिया था—सेवक भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये। वह सब ओर फैलनेवाली तीव्र क्रोधसे लाल नेत्रोंकी किरणोंके बीचमें बैठा था और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो पागल एवं क्षुद्र जनोंके द्वारा किये हुए अपने प्रतापके क्षयको सहनेके लिए असमर्थ होता हुआ अग्निके मध्यमें ही निमग्न हो गया हो। पसीनाकी बूँदसे उसका शरीर व्याप्त हो रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो अन्तःकरणके तापको शान्त करनेके लिए स्नान करके ही उठा हो। और अत्यन्त परिचित सेवकोंके द्वारा भी वह उस समय क्षण-भरमें अन्यका अन्य माना जाने लगा। उसने शीघ्र ही नाचते हुए—क्रोधातिरेकसे हिलते हुए अधररूप पल्लवसे निकली लाल-लाल किरणोंके बहाने प्रजाके अनुरागको प्रकट करते हुएके समान 'वहाँ शीघ्र ही सेना भेजी जाये', इस प्रकार होनहार पराजयके सूचक वज्रपातके संदेहको देनेवाले अत्यन्त गम्भीर स्वरसे आज्ञा देकर द्वारपालको वापस भेजा।

---

१. क० ख० ग० प्रलक्ष्यमाणः।

§ ७२. प्रतिलब्धप्राणेनेव भीतिकम्पितवपुषा प्रस्खलद्वचसा त्वरिततरमुपसरता[१] दौवारिकेण निवेदितकाष्ठाङ्गारनिदेशैश्चमूपतिभिश्चोदिता चमूश्चटुलतरचरणन्यासभारेण निबिडोच्छ्रितनिशितकुन्ताग्रेण परितःप्रसर्पदसिमुखेन च नमयन्ती भुवमुन्नमयन्ती दिवं विस्तारयन्ती च दिशं प्रतस्थे।

§ ७३. प्रस्थाय च प्रसभं प्रयान्ती च वाहिनी गोधनावस्कन्दितस्करांस्तिरोधायोपसृत्य ग्रहीतुमिव खरतरतुरगखुरशिखरोत्थितपरागपटलपटेन कृतावगुण्ठनासीत्। निरयासीच्च पुरः पुलिन्देभ्यः प्रकटयितुमिवास्याः कापटिकवृत्तिं निर्जितपर्जन्यगर्जितगाम्भीर्यः कलकलध्वनिः। तदुपदेशवशाविदितवृत्तान्तस्य शबरसैन्यस्य संनाहः संभविष्यतीत्याशङ्कया शुभेतरपिशुनशकुनसमुदी-

§ ७२. प्रतिलब्धेति—प्रतिलब्धाः प्राणा यस्य तेनेव, भीत्या कम्पितं वपुर्यस्य तेन, प्रस्खलन्ति वचांसि यस्य तेन, त्वरिततरं शीघ्रतरमुपसरता दौवारिकेण प्रतीहारेण निवेदितः सूचितः काष्ठाङ्गारस्य निदेशो येभ्यस्तैः चमूपतिभिः सेनापतिभिश्चोदिताः प्रेरिता चमूः पृतना चटुलतराणामतिचपलानां चरणानां न्यासस्य निक्षेपस्य भारस्तेन निबिडं सघनं यथा स्यात्तथोच्छ्रिता उत्थापिता ये निशितकुन्तास्तीक्ष्णप्रासास्तेषामग्रेण परितः समन्तात् प्रसर्पन्तो येऽसयः कृपाणास्तेषां मुखेन च (क्रमशः) भुवं पृथिवीं नमयन्ती दिवं गगनम् उन्नमयन्ती समुत्थापयन्ती दिशं काष्ठां विस्तारयन्ती च प्रतस्थे चचाल।

§ ७३. प्रस्थायेति—प्रस्थाय च प्रसभं हठाद् प्रयान्ती प्रगच्छन्ती च वाहिनी सेना गाव एव धनं गोधनं तस्यावस्कन्दिनोऽपहारका ये तस्कराश्चौरास्तान् तिरोधायान्तर्धाय गुप्तरूपेणेति यावत् उपसृत्य समीपं गत्वा ग्रहीतुमिव खरतरास्तीक्ष्णतरा ये तुरगखुरा हयशफास्तेषां शिखरेणाग्रभागेनोत्थितो यः परागपटलो धूलिसमूहः स एव पटस्तेन कृतमवगुण्ठनं यया तथाभूता आसीत्। निरयासीच्च—निरयासीच्च निरगमच्च पुरोऽग्रे पुलिन्देभ्यः शबरेभ्यः 'भेदाः किरातशबरपुलिन्दाम्लेच्छजातयः' इत्यमरः, अस्याः सेनायाः कापटिकवृत्तिं मायावितां प्रकटयितुमिव निर्जितं पराभूतं पर्जन्यगर्जितस्य मेघध्वनेर्गाम्भीर्यं येन तथाभूतः कलकलध्वनिः कलकलशब्दः। तदुपदेशवशेन विदितो विज्ञातो वृत्तान्तो यस्य तथाभूतस्य शबरसैन्यस्य पुलिन्दपृतनायाः संनाहो युद्धं संभविष्यतीति आशङ्कया संभावनया शुभेतरपिशुनानि अमङ्गलसूचकानि यानि शकुनानि तैः समुदारितो यो भाविपरिभवस्तस्य भीत्या भयेन च 'शकुनं मङ्गलाशंसि निमित्ते शकुनः

§ ७२. वापस आनेपर द्वारपालको ऐसा लगा मानो प्राण पुनः प्राप्त हुए हों। भयसे उसका शरीर काँप रहा था और वचन स्खलित हो रहे थे। उसने बड़ी शीघ्रतासे पास जाकर सेनापतियोंको काष्ठाङ्गारका आदेश सुनाया। तदनन्तर सेनापतियोंसे प्रेरित सेना, अत्यन्त चञ्चल चरणोंके रखनेके भारसे, सघनताके साथ ऊपर उठाये हुए तीक्ष्ण भालोंके अग्रभागसे और सब ओर लपकती हुई तलवारोंके अग्रभागसे पृथिवीको नीचे झुकाती, आकाशको ऊँचा उठाती और दिशाओंको विस्तृत करती हुई चल पड़ी।

§ ७३. प्रस्थान कर हठपूर्वक जाती हुई वह सेना घोड़ोंकी पैनी टापोंके अग्रभागसे उठी धूलिके समूहरूप वस्त्रसे ऐसी जान पड़ती थी मानो गोधनपर आक्रमण करनेवाले चोरोंको छिपे-छिपे पास जाकर पकड़नेके लिए उसने घूँघट ही निकाल रखा हो। सामने भीलोंसे मेघ गर्जनाके गाम्भीर्यको जीतनेवाला कलकल शब्द निकलने लगा सो उससे ऐसा जान पड़ता था मानो काष्ठाङ्गारकी इस सेनाकी कपट वृत्तिको प्रकट करनेके लिए ही कलकल शब्द निकल रहा हो। 'उसके उपदेशसे समाचार ज्ञात कर भीलोंकी सेनामें युद्धकी तैयारी हो जायेगी' इस आशङ्कासे और अशुभकी सूचना देनेवाले शकुनोंके द्वारा कथित भावी पराभवके

१. क० त्वरितमुपसरता।

रिलभाविपरिभवभीत्या च वरूथिनी रथकट्यावलनवशजनितचीत्काररवेण करिकरटतटनिर्यन्मदधारास्रस्नपितस्थलिका[1] प्रतिकूलवातकम्पितध्वजभुजलताताडितकेतुयष्टिवक्षःस्थलप्रदेशा भृशमिवारोदीत् ।

§ ७४. ततः क्षणादेवाभ्येत्य काष्ठाङ्गारचमूः काकपङ्क्तिः शृगालमिव स्वीकृतामिषमपहृतगोधनं व्याधसार्थं रुरोध । तदवलोकनजातक्रुधश्चमरवालरोमरचितरज्जूद्ग्रथितकेशपाशाः केकिपिच्छारचितमुण्डमाला व्याघ्रचर्मनिर्मिताधोंरुका वराटिकाभरणभूषितवपुषः परिगृहीतपादुकाः समारोपितकार्मुकाः पुरस्कृताभ्यर्थितचण्डिकाः कण्ठदघ्नपीतमधुमदलालसाः शबरीजन-

खगे' इति विश्वलोचनः, वरूथिनी सेना रथानां समूहो रथकट्या 'खलगोरथात्' इत्यधिकारे 'इनित्रकट्यचश्च' इत्यनेन समूहार्थे कट्यच्प्रत्ययः, तस्य वलनवशेन सञ्चरणवशेन जनितः समुत्पन्नो यश्चीत्काररवोऽनुकरणशब्दविशेषस्तेन करिणां गजानां करटतटेभ्यो गण्डस्थलतीरेभ्यो निर्यन्ती निर्गच्छन्ती या मदधारा सैवास्राणि अश्रूणि तैः स्नपिता स्थली वनभूमिर्यया सा 'अस्रः कोणे कचे पुंसि क्लीबमश्रुणि शोणिते' इति मेदिनी । प्रतिकूलवातेन विरुद्धवायुना कम्पिता वेपिता ये ध्वजाः केतवस्त एव भुजलता बाहुवल्लयस्ताभिस्ताडिताः केतुयष्टयः पताकादण्डा एव वक्षःस्थलप्रदेशा यया तथाभूता सती भृशमत्यर्थम् अरोदीदिव चक्रन्देव ।

§ ७४. तत इति—ततस्तदनन्तरं क्षणादेव अभ्येत्य सम्मुखमागत्य काष्ठाङ्गारचमूः काकपङ्क्तिर्वायसश्रेणिः स्वीकृतामिषं गृहीतमांसं शृगालमिव गोमायुमिव, अपहृतं गोधनं येन तं मुषितधेनुधनं व्याधसार्थं शबरसमूहं रुरोध । तस्याः काष्ठाङ्गारचम्वा अवलोकनेन जातक्रुधः समुत्पन्नकोपाः, चमराणां मृगविशेषाणां बालरोमभिः केशलोमभी रचितै रज्जुभिरुद्ग्रथिताः केशपाशा येषां ते, केकिपिच्छैर्मयूरपिच्छैरारचिता मुण्डमाला शिरःस्रजो यैस्ते, व्याघ्रचर्मभिर्निर्मितान्यधोंरुकाणि—अधोवस्त्राणि येषां ते, वराटिकानां कपर्दिकानामाभरणैर्भूषितानि वपूंषि येषां ते, परिगृहीताः पादुका उपानहो यैस्ते, समारोपितानि सप्रत्यञ्चीकृतानि कार्मुकाणि धनूंषि येषां ते, आदौ पुरस्कृता उपहारैः पूजिता पश्चादभ्यर्थिता याचिता चण्डी यैस्ते, कण्ठदघ्नं कण्ठप्रमाणं पीतं यन्मधु मद्यं तस्य मदे मोहे लालसा वाञ्छा येषां ते, शबरीजनैर्भिल्ली-

भयसे वह सेना, रथसमूहके चलनेसे उत्पन्न चीत्कार शब्दके द्वारा मानो अत्यधिक रो ही रही थी। हाथियोंके गण्डस्थलसे निकलनेवाली मदकी धारा रूप आँसुओंसे उसने आस-पासकी भूमिको आच्छादित कर लिया था और प्रतिकूल वायुके द्वारा कम्पित भुजलताके द्वारा वह पताकादण्डरूपी वक्षःस्थलके प्रदेशको ताडित कर रही थी।

§ ७४. तदनन्तर क्षण-भरमें सामने जाकर काष्ठाङ्गारकी सेनाने गोधनको अपहृत करनेवाले भीलोंके समूहको उस प्रकार रोक लिया जिस प्रकार कि कौओंकी पंक्ति मांसकी डली रखनेवाले सियारको रोक लेती है। तत्पश्चात् सेनाके देखनेसे जिन्हें क्रोध उत्पन्न हो रहा था, चमरी गायके बालरूपी रोमोंसे निर्मित रस्सीसे जिन्होंने बालोंका जूटा ऊपरकी ओर बाँध रखा था, जिनके मस्तकोंकी मालाएँ मयूरके पिच्छसे निर्मित थीं, जिनके अधोवस्त्र व्याघ्रके चमड़ेसे बनाये गये थे, जिनके शरीर कौड़ियोंके आभूषणोंसे सुशोभित थे, जिन्होंने पैरोंमें चप्पल पहन रखे थे, धनुष चढ़ा रखे थे, चण्डी देवीको भेंट देकर इष्ट वस्तुकी प्रार्थना कर रखी थी, कण्ठपर्यन्त पिये हुए मधुके नशामें जिनकी लालसा बढ़ रही थी—जो कण्ठपर्यन्त मदिरा पीकर उसके नशाकी प्रतीक्षा कर रहे थे, भिल्लियोंने जिन्हें आशीर्वाद

१. म० धारास्नपिहितस्थलिण्डा ।

प्रयुक्ताशिषः प्राप्तानुगुणनिमित्तप्रशंसिनः प्रकामव्यात्तास्यभीषणभाषणस्वनस्त्यानडिण्डिमशृङ्गरवप्रकटितप्रस्थानाः काष्ठाङ्गारबलमपरकाष्ठागतदिनकरमिव तिमिरनिकराः प्रतिगृह्य शिततरभल्लैः फुल्लैरिव पुलिन्दाः समरदेवतामाराधयितुमारेभिरे ।

§ ७५. अथ सुभटनटनाटयितव्यरणनाट्यरङ्गपटहपटुतररटितसदृक्षपक्षद्वयतुमुलसमाहूतविलोकनकौतूहलिनि निर्दयाकृष्टिप्रभववेपथुसहनाक्षमधनुराक्रन्दितानुकारिभीषणज्याघोषणश्रवणमात्रत्रस्तमृगयूथसब्रह्मचारिभटब्रुवमृग्यमाणप्रयाणाध्वनि ज्याकर्षणबलभावितश्रवणमूलाभ्यागमसंपादितसंदेशहरसंदेहहृदयभेदनचतुरशरनिवहविहितगमागमे मुषितजीवितसायकगवेषणमनीषा-

जनैः प्रयुक्ता आशीर्येभ्यस्ते, प्राप्तानि यानि अनुगुणनिमित्तानि अनुकूलशकुनानि तानि प्रशंसन्तीत्येवंशीलाः, प्रकाममत्यन्तं व्यात्तानि विघटितानि यान्यास्यानि मुखानि तैर्भीषणं भयङ्करं यद् भाषणं वार्तालापस्तस्य स्वनः शब्दस्तस्य स्त्यानं प्रतिध्वनिः, 'स्त्यानं स्निग्धे प्रतिध्वन्याम्' इति विश्वलोचनः, डिण्डिमा वाद्यविशेषाः शृङ्गरवाः शृङ्गशब्दा एषां सर्वेषां द्वन्द्वः तैः प्रकटितं सूचितं प्रस्थानं येषां ते, 'वाद्यप्रभेदा डमरुमड्डुडिण्डिमझर्झराः' इत्यमरः, पुलिन्दाः शबराः अपरकाष्ठागतदिनकरपश्चिमदिक्स्थितसूर्यं तिमिरनिकरा इव ध्वान्तसमूहा इव काष्ठाङ्गारबलं कृतघ्नसैन्यं प्रतिगृह्य संरुध्य फुल्लैरिव कुसुमैरिव शिततरभल्लैस्तीक्ष्णतरकुन्तैः समरदेवतां युद्धदेवताम् आराधयितुं सेवितुम् आरेभिरे प्रारब्धवन्तः ।

§ ७५. अथेति—अथानन्तरम्, केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तमिति केशाकेशि तस्य भावस्तत्ता तया युक्ते रणे प्रसजति सति इति संबन्धः। अथ युद्धस्य विशेषणान्याह—सुभटेति—सुभटा योद्धार एव नटाः शैलूषास्तैर्नाटयितव्यं यद् रणनाट्यं युद्धनाट्यं तस्य रङ्गपटहानां रङ्गभूमिवाद्यानां यत् पटुतररटितं तीव्रतरशब्दस्तस्य सदृशं समानं यत्पक्षद्वयस्य सैन्ययुगलस्य तुमुलं रणसंघट्टस्तेन समाहूता आकारिता विलोकनकौतूहलिनो दर्शनकुतुकिनो यस्मिन् तस्मिन्, निर्दयेति—निर्दयं निष्करुणमत्यन्तमिति यावत् यथा स्यात्तथा या कृष्टिस्तत्प्रभवस्तत्समुत्पन्नो यो वेपथुः कम्पनं तस्य सहनेऽक्षमाणि असमर्थानि यानि धनूंषि चापास्तेषामाक्रन्दितानुकारि रोदनध्वनिकल्पं यद् भीषणं भयावहं ज्याघोषणं प्रत्यञ्चाशब्दस्तस्य श्रवणमात्रेण त्रस्ता भीता ये मृगयूथसब्रह्मचारिणः कुरङ्गगणसदृशा भटब्रुवाः कातरयोद्धारस्तैर्मृग्यमाणमन्विष्यमाणं प्रयाणाध्व पलायनमार्गो यस्मिन् तस्मिन्, ज्याकर्षणेति—ज्याकर्षणस्य मौर्व्याकर्षणस्य बलेन शक्त्या भावितः प्रापितो यः श्रवणमूलाभ्यागमः कर्णमूलागमस्तेन संपादितो विहितो संदेशहरसंदेहो दूतविचिकित्सा यैस्तथाभूता हृदयभेदनचतुरा ये शरा बाणास्तेषां निवहेन समूहेन विहितो गमागमो यस्मिन् तस्मिन्, मुषितेति—

दिया था, जो प्राप्त हुए अनुकूल निमित्तोंकी प्रशंसा कर रहे थे और अत्यधिक खुले हुए मुखके भयंकर भाषणरूप शब्दसे वृद्धिगत—जोरदार शब्द करनेवाले डिण्डिम और सींगोंके शब्दसे जिनका प्रस्थान सूचित हो रहा था ऐसे भील पश्चिम दिशामें स्थित सूर्यको अन्धकारके समूहके समान रोककर फूलोंकी तरह सुशोभित अत्यन्त तीक्ष्ण भालोंसे युद्धदेवताकी आराधना करने लगे।

§ ७५. अथानन्तर योद्धारूपी नटोंके द्वारा खेलने योग्य युद्धरूपी नाटककी रङ्गभूमिमें बजनेवाले नगाड़ोंके जोरदार शब्दके सदृश दोनों पक्षके कलकल नादसे जिसमें देखनेके कुतूहली मनुष्य बुलाये गये थे, निर्दयतापूर्वक खींचनेसे उत्पन्न कम्पनको सहन करनेमें असमर्थ धनुषकी चिल्लाहटका अनुकरण करनेवाले डोरीके भयंकर शब्दके सुनने मात्रसे भयभीत मृगोंके झुण्डके समान कायर लोगोंके द्वारा जिसमें भागनेका मार्ग खोजा जा रहा था, डोरीके खींचनेके बलसे युक्त तथा कानोंके मूल तक आगमनसे सन्देशहर—दूतोंका सन्देह उत्पन्न करनेवाले हृदयके भेदनेमें चतुर बाणोंके समूह जिसमें यातायात कर रहे थे, प्राणा-

च्छलानुपतत्पदातिप्रचयप्रच्छादिताहवभुवि प्राक्तनहननसंधाभिपतदुपरतकरधृतकरवालदारितप्रत्यर्थिनि परुषतररोषदष्टोष्ठप्रेतमुखरौक्ष्यवीक्षणभयापक्रामत्क्रव्यादि पर्यायप्रवृत्तोभयबलविजयघोषहर्षितप्रहर्तृके करिघटापाटनस्फुटितमुक्ताफलतुलितास्तोकश्रमजलकलितहस्तवति भूरितिरी[1]फलधृतयथावस्थितवाजिनि शिलीमुखविद्धमुखवि[2]निर्यदविरलरुधिरधारापुनरुक्तसिन्दूरितद्विरदवपुषि निहतनियन्तृकतुरगोपनीतरथहरणलोलुपप्रतिबलकलकलरवमनोहारिणि काकपेयशोणितापगाप्रवाहप्रशमितरणरजसि परिभवनिरसनपरसमरदैवताभिमुखप्रतिशयितदेशीयशरशयनशायियोधके युद्धे केशाकेशितया प्रसजति, तद्दशायाम् 'स्वदेशगतः शशः कुञ्जरातिशायी' इति किंवदन्तीं

मुषितमपहृतं जीवितं यैस्तथाभूता ये सायका बाणा तेषां गवेषणस्यान्वेषणस्य या मनीषा बुद्धिस्तस्याश्छलेनानुपतन्तोऽनुगच्छन्तो ये पदातयो भृत्यास्तेषां प्रचयेन समूहेन प्रच्छादिताहवभूर्युद्धभूमिर्यस्मिन् तस्मिन्, प्राक्तनेति—प्राक्तना पूर्ववर्तिनी या हननसन्धा मारणाभिप्रायस्तेनाभिपतद्भिः संमुखमागच्छद्भिः उपरतकरधृतकरवालैर्मृतहस्तधृतकृपाणैर्दारिताः खण्डिताः प्रत्यर्थिनो रिपवो यस्मिन् तस्मिन्, परुषतरेति—परुषतरेण तीव्रतरेण रोषेण क्रोधेन दष्ट ओष्ठोऽधरो यस्मिन् तथाभूतं यत प्रेतमुखं मृतवदनं तस्य रौक्ष्यस्य वीक्षणमवलोकनं तस्य भयेनापक्रामन्तः क्रव्यादो मांसभोजिनो यस्मिन् तस्मिन्, पर्यायेति—पर्यायेण क्रमेण प्रवृत्तो जातो य उभयबलस्य विजयस्तस्य घोषेण हर्षिता प्रहर्तारो यस्मिन् तस्मिन् 'नद्यृतश्च' इति कप्, करीति—करिघटाया गजसमूहस्य पाटनेन विदारणेन स्फुटितानि प्रकटितानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तैस्तुलितानि यानि अस्तोकश्रमजलानि भूरिस्वेदजलबिन्दवस्तैः कलिता युक्ता हस्तवन्तः कुशलजना यस्मिन् तस्मिन्, भूरितिरीफलैः कविकारूपकण्टकैर्धृता अत एवावस्थिता एकत्रस्थिता वाजिनो हया यस्मिन् तस्मिन्, शिलीमुखेति—शिलीमुखैर्बाणैर्विद्धेभ्यो मुखेभ्यो विनिर्यन्ती या विरलरुधिरधारा तया पुनरुक्तं यथा स्यात्तथा सिन्दूरितानि द्विरदवपूंषि गजशरीराणि यस्मिन् तस्मिन्, निहतेति—निहतो मृतो नियन्ता सारथिर्येषां तथाभूतैस्तुरगैरुपनीयमानो यो रथस्तस्य हरणे स्वस्वात्करणे लोलुपं लम्पटं यत्प्रतिबलं शत्रुसैन्यं तस्य कलरवेण कलकलशब्देन मनो हरतीत्येवं शीलं तस्मिन्, काकपेयेति—काकपेया गभीरा याः शोणितापगा रुधिरनद्यस्तासां प्रवाहेण प्रशमितं रणरजो यस्मिन् तस्मिन्, परिभवेति—परिभवस्य तिरस्कारस्य निरसने दूरीकरणे परं तत्परं यत्समरदैवतं युद्धदेवता तस्याभिमुखं पुरस्तात् प्रति-

---

पहारी बाणोंके खोजनेकी बुद्धिसे छलपूर्वक इधर-उधर चलनेवाले सेवकोंके समूहसे जिसमें युद्धकी भूमि आच्छादित हो रही थी, मारनेके पूर्ववर्ती अभिप्रायसे सामने आनेवाले मृत मनुष्यके हाथमें स्थित तलवारसे जिसमें शत्रु विदीर्ण हो रहे थे, अत्यधिक तीक्ष्ण क्रोधसे ओठको डसनेवाले मृत मनुष्यके मुखकी रूक्षताके देखनेके भयसे जिसमें मांसभोजी जीव भाग रहे थे। क्रम-क्रमसे प्रवृत्त दोनों पक्षकी विजय घोषणासे जिसमें प्रहार करनेवाले हर्षित हो रहे थे, जहाँ हाथोंका कौशल दिखानेवाले मनुष्य हस्तियोंके समूह अथवा उनके गण्डस्थलोंके चीरनेसे निकले हुए मोतियोंके समान अत्यधिक पसीनासे युक्त थे, लगामरूप काँटोंके पकड़नेसे जहाँ बहुत भारी घोड़े यथास्थान स्थित थे, बाणोंके द्वारा घायल मुखसे निकलती हुई रुधिरकी अविरल धारासे जिसमें हाथियोंके सिन्दूरसे रँगे शरीर पुनरुक्त हो रहे थे, सारथिरहित घोड़ोंके द्वारा लाये हुए रथोंके छीननेके लोभी शत्रुसेनाकी कलकल ध्वनिसे जो मनोहर था, कौओंके द्वारा पीनेके योग्य खूनकी अगाध नदियोंसे जहाँ युद्धकी धूलि शान्त हो गयी थी, और जहाँ बाण-शय्यापर शयन करनेवाले योद्धा पराभवके दूर करनेमें समर्थ युद्ध-

---

१. तिरीफलं कण्टकम् इति टिप्पणी । २. क० ख० ग० 'वि' नास्ति ।

यथार्थी कर्तुमिच्छया वा तुच्छेतरजीवककुमारपराक्रमविषयस्य भावितया वा नाफलबलनिष्ठुरहुंकारभीतः काष्ठाङ्गारवाहिनीनिवहस्तिमिरपरिभूतः पश्चिमदिगङ्गनासंगतपतङ्ग इव प्रतापपराङ्मुखः प्रतिसंहृतकरव्यापृतिरपसर्तुमारभत ।

§ ७६. अथ गोधनेन समं यशोधनमपि व्याधेभ्यो विधाय निष्क्रयं निजनारीनयनाभिरामं तिरीफलमूरीकृत्य[1] प्रतिनिवृत्य यथेष्टं काष्ठाङ्गारचमूर्दृढतरकरमुष्टिव्याजेन वनचरभीत्या प्रयाणाभिमुखान्प्राणानिव पाणौ कुर्वती प्रविधूतमानभरतया लब्धलङ्घनलाघवेव सत्वरं धावन्ती तपस्येव

शयितदेशीयाः कृतशयनकल्पाः शरशयनशायिनो बाणशय्याशायिनो योधा यस्मिन् तस्मिन् । तद्दशायां तदवस्थायां 'स्वदेशगतः स्वस्थानस्थितः शशः कुञ्जरातिशायी गजानां पराभविता भवति' इति किंवदन्तीं जनश्रुतिं यथार्थां सार्थकां कर्तुं विधातुमिच्छया वा तुच्छेतरो विपुलो यो जीवककुमारस्य पराक्रमस्तस्य विषयस्य भावितया वा भवितव्यतया वा, नाफलबलस्य किरातसैन्यस्य निष्ठुरहुङ्कारेण भीतस्त्रस्तः काष्ठाङ्गारवाहिनीनिवहः काष्ठाङ्गारसेनासमूहः तिमिरेण ध्वान्तेन परिभूतस्तिरस्कृतः पश्चिमदिगङ्गनासंगतपतङ्ग इव पश्चिमकाष्ठाकामिनीसंगतदिनकर इव प्रतापात् प्रकृष्टघर्मात् पक्षे प्रचुरतेजसः पराङ्मुखो विमुखः सन् प्रतिसंहृता संकोचिता करव्यापृतिः किरणव्यापारः पक्षे हस्तचेष्टा येन तथाभूतः सन् अपसर्तुं पलायितुम् आरभत तत्पराभूत ।

§ ७६. अथ गोधनेनेति—अथानन्तरं गोधनेन समं सार्धं यशोधनमपि कीर्तिवित्तमपि व्याधेभ्यो नाफलेभ्यो विधाय कृत्वा दत्त्वेति यावत् निष्क्रयं मूल्यरूपं निजनारीनयनाभिरामं स्ववल्लभालोचनवल्लभं यथा स्यात्तथा तिरीफलम् कविकारूपं कण्टकम् ऊरीकृत्याङ्गीकृत्य अश्वान् त्यक्त्वा कविकामात्रमादाय प्रतिनिवृत्येति भावः प्रतिनिवृत्य प्रत्यागत्य यथेष्टं यथेच्छं काष्ठाङ्गारचमूः काष्ठाङ्गारसेना दृढतरा अतिशयेन दृढा याः करमुष्टयस्तासां व्याजेन छलेन वनचरभीत्या भिल्लभयेन प्रयाणाभिमुखान् पलायनोद्यतान् प्राणान् पाणौ कुर्वतीव हस्ते धृतवतीव, प्रविधूतो मानभरो यस्यास्तस्या भावस्तत्ता तया लब्धं प्राप्तं लङ्घनेऽतिक्रमणे लाघवं क्षिप्रत्वं येन तथाभूतेव सत्वरं शीघ्रं धावन्ती पलायमाना, कुपथगामिनी कुमार्ग-

देवताके सम्मुख सोते हुएके समान जान पड़ते थे ऐसा युद्ध जब केशाकेशि रूपसे—एक-दूसरेके बालोंकी धर-पकड़से जारी था तब उस दशामें 'अपने स्थानपर स्थित खरगोश भी हाथीको पराजित कर देता है' इस लोकोक्तिको सार्थक करनेकी इच्छासे अथवा जीवन्धर कुमारका बहुत भारी पराक्रम प्रकट होनेवाला था इसलिए भीलोंकी सेनाके निष्ठुर हुंकारसे भयभीत काष्ठाङ्गारकी सेनाका समूह, अन्धकारसे तिरस्कृत पश्चिम दिशारूपी स्त्रीसे संगत सूर्यके समान प्रतापसे विमुख और हाथों (पक्षमें किरणों) के व्यापारको संकुचित कर भागने लगा।

§ ७६. तदनन्तर काष्ठाङ्गारकी सेना गोधनके साथ-साथ यशरूप धनको भी भीलोंके लिए देकर और उसके मूल्यस्वरूप अपनी स्त्रियोंके नेत्रोंको आनन्दित करते हुए केवल तिरीफल—लगामोंको स्वीकार कर इच्छानुसार लौट आयी। वह सेना हाथोंकी अत्यन्त दृढ़ मुट्ठियाँ बाँधकर आ रही थी इसलिए उनके बहाने ऐसी जान पड़ती थी मानो भीलोंके भयसे भागनेके सम्मुख प्राणोंको हाथमें ही रखे हो। मानका भार छूट चुका था इसलिए चलनेमें लघुता प्राप्त कर बड़ी शीघ्रतासे दौड़ती आ रही थी। जिस प्रकार कुमार्गमें चलानेवाली तपस्या

१. कण्टकं स्वीकृत्य, इति टिप्पणी ।

कुपथगामिनी सामप्रयुक्तिरिव शठजनगोचरा परिश्रममात्रफला सती स्वगृहानतिनिभृतमाससाद। प्रससार च राजपुर्यां राजबलचापल्यविषयः संलापः।

§ ७७. ततः 'शबरप्राथितं पार्थिवबलमाघ्रातव्याघ्रगन्धमिव गोकुलममन्दावर्तमन्थेन दधीव मथ्यमानं शिथिलीबभूव' इत्यभिषङ्गविधुरैराभीरैरुदीरितमाकर्ण्य घोषवर्तिनि च महाघोषपरिपूरितहरिति वेपथुभरविह्वलकरतलताडितवक्षसि तारदारुणरोदनकर्षितानुधावत्तुकि वात्सल्याश्लिष्टवत्समुखाकृष्यमाणनिजकुचनिशामनपुनरुक्तशुच्यूधस्योत्सुकवत्सगलविगलदर्धग्रस्तस्वनश्रवणासहिष्णुतापिहितश्रवसि विवेकविकलबालोपलालनक्लेशताम्यद्दम्यदशाप्रेक्षणाक्षमताप्रच्छादितचक्षुषि

गामिनो तपस्येव प्रव्रज्येव, शठजनगोचरा धूर्तजनप्रयुक्ता सामप्रयुक्तिरिव सान्त्वनोक्तिरिव परिश्रममात्रं फलं यस्यास्तथाभूता खेदैकफला निष्फलेति यावत् सती अतिनिभृतमतिनिश्चलं यथा स्यात्तथा स्वगृहान् स्वकीयनिकेतनानि आससाद प्राप। प्रससार च प्रसृतो बभूव च राजपुर्यां तन्नामनगर्यां राजबलस्य राजसैन्यस्य चापल्यं विषयो यस्य तथाभूतः संलापः।

§ ७७. तत इति—ततस्तदनन्तरं 'शबरप्रार्थितं भिल्लजनाभिगतं 'पार्थिवबलं राजसैन्यम्, आघ्रातो नासाविषयीकृतं गोकुलमिव धेनुसमूह इव, अमन्द आवर्तो यस्य तथाभूतो यो मन्थो मन्थनदण्डस्तेन मथ्यमानं दधीव शिथिलीबभूव। इतीत्थम् अभिषङ्गः, पराभवस्तेन विधुरा दुःखितास्तैः 'अभिषङ्गो न पुंलिङ्गः पराभवाक्रोशशपथेषु' इति मेदिनी, आभीरैर्गोपालैः उदीरितं कथितमाकर्ण्य श्रुत्वा घोषवर्तिनि आभीरस्थायिनि च, गोपालयुवतिजने आभीरतरुणीजने गोकुलापायेन गोकुलस्य गोसमूहस्यापायो व्यपगमस्तेन पर्याकुलीभवति व्यग्रीभवति सति। अथ गोपालयुवतिजनस्य विशेषणान्याह—महाघोषेण महाक्रोशध्वनिना परिपूरिता हरितो दिशो येन तस्मिन्, वेपथुभरेण कम्पनातिशयेन विह्वलानि चपलानि यानि करतलानि हस्ततलानि तैस्ताडितं वक्षो येन तस्मिन्, तारं मन्द्रं दारुणं कठिनं च यद् रोदनं तेन कर्षिता अनुधावन्तः पश्चाद्धावन्तः तुक आत्मजा यस्य तस्मिन् 'तुक् तोकं चात्मजः प्रजा' इति धनंजयः, वात्सल्येन स्नेहातिशयेन आश्लिष्टान्यालिङ्गितानि यानि वत्समुखानि गोतर्णकवदनानि तैराकृष्यमाणा दुग्धपानेच्छया मुखेन ध्रियमाणा ये निजकुचाः स्वकीयस्तनास्तेषां निशामेन समवलोकनेन पुनरुक्ता शुक् शोको यस्य तस्मिन्, ऊधस्ये पयसि उत्सुका उत्कण्ठिता ये वत्सा गोतर्णकास्तेषां गलेभ्यः कण्ठेभ्यो विगलन् निःसरन् योऽर्धग्रस्तस्वनो मन्दस्वनस्तस्य श्रवणस्यासहिष्णुता असामर्थ्यं तेन पिहिते आच्छादिते श्रवसी यस्य तस्मिन्, विवेकविकला

और धूर्त जनोंके साथ की गयी शान्तिकी योजना परिश्रममात्र फलसे युक्त होती है—निष्फल रहती है उसी प्रकार काष्ठाङ्गारकी वह सेना भी परिश्रम मात्र फलसे युक्त थी--उसका सब प्रयास व्यर्थ गया। अन्तमें वह सेना निश्चिन्ततासे अपने घर आ गयी और उसकी चपलताका समाचार समस्त राजपुरीमें फैल गया।

§ ७७. तदनन्तर 'भीलोंने जिसका सामना किया था ऐसा राजाका दल, व्याघ्रकी गन्धको सूँघनेवाले गायोंके समूहके समान अथवा बहुत बड़ी मथानीसे मथे गये दहीके समान ढीला हो गया है, इस प्रकार पराभवसे दुःखी ग्वालोंके द्वारा कथित समाचारको सुन घोष--ग्वालोंकी बस्तीमें रहनेवाली स्त्रियोंकी दशा विचित्र हो गयी। उन्होंने अपनी चिल्लाहटके महाशब्दसे दिशाएँ व्याप्त कर दीं। कँपकँपीके भारसे विह्वल हथेलियोंसे वे अपनी छाती कूटने लगीं। उच्च एवं भयंकर रोनेकी आवाजसे खिंचकर आये हुए बच्चे उनके पीछे लग गये। स्नेहवश आलिङ्गित बछड़ोंके मुखसे खींचे जानेवाले अपने स्तनोंको देखनेसे उनका शोक दूना हो गया। दूधके लिए उत्सुक बछड़ेके गलेसे निकलती हुई अधदबी आवाजके सुननेकी सामर्थ्य न होनेसे उन्होंने अपने कान ढँक लिये। अविवेकी बालकोंके द्वारा खिलाने-सम्बन्धी

मातृविरहविघूर्णमानतर्णकप्रेमप्राग्भारप्रस्नवितनिभमथितदधिबिन्दुदन्तुरपयोधरे पारवश्यविलोठितस्थालीमुखनिर्यदूधस्योदश्विदाज्यदधिपङ्किलस्थलपरिस्खलत्पदे हृदयपरिस्फुरत्परितापविस्फूर्जितप्रशमनाभिप्रायप्रयुक्तमुक्तासंदेहदायिबाष्पबिन्दुसंदोहसंकलितवक्षसि शोकधूमध्वजधूमदेशीयशिथिलितोद्गतशिरोरुहशिरसि धूलीधूसरितवाससि कारुण्यावहवचसि प्रार्थ्यमानगभस्तिमालिनि प्रणम्यमानगृहदैवते पृच्छ्यमानदैवज्ञजने गोधनाजीविनि गोकुलापायेन पर्याकुलीभवति गोपालयुवतिजने, घोषवृद्धेष्वपि कर्तव्यमुग्धेषु महाराजसत्यंधरस्य स्मरत्सु 'पुरा खलु पुरस्क्रियार्होपायनपरिबर्हपुर:सरोपस्थितमुखप्रसादार्थिपार्थिवमकुटचूडामणिमरीचिवारिधारोन्मार्जितचरणराजीवरजसि

अज्ञानिनो ये बाला बालकास्तैरुपलालनमाक्रीडनं यस्य क्लेशेन ताम्यन्तो दुःखीभवन्तो ये दम्यास्तर्णकास्तेषां दशाप्रेक्षणेऽवस्थाविलोकने याऽक्षमता असामर्थ्यं तेन प्रच्छादिते चक्षुषी येन तस्मिन्, मातृविरहेण जननीविप्रयोगेण विघूर्णमाना इतस्ततो भ्रमन्तो ये तर्णका गोवत्सास्तेषु प्रेमप्राग्भारेण प्रीत्यतिशयेन प्रस्नवितनिभाः क्षरद्दुग्धसदृशा मथितदधिबिन्दुदन्तुराः तक्रदधिबिन्दुव्याप्ताः पयोधराः स्तना यस्य तस्मिन् 'उदश्विन्मथितं तक्रं कालशेयं पिबेद्गुरुः' इति धनंजयः, पारवश्येन विवशतया विलोठिता विपातिता या स्थाल्यो भाजनानि तासां मुखेभ्यो निर्यन्ति निर्गच्छन्ति यानि ऊधस्योदश्विदाज्यदधीनि दुग्धतक्रघृतदधीनि तैः पङ्किलानि कर्दमयुक्तानि यानि स्थलानि तेषु परिस्खलन्ति पदानि यस्य तस्मिन्, हृदये चेतसि परिस्फुरन् वर्धमानो यः परितापः संतापस्तस्य विस्फूर्जितमुद्रेकस्तस्य प्रशमनाभिप्रायेण विध्यापनमनीषया प्रयुक्ता धृता ये मुक्तासन्देहदायिनो मुक्ताफलसन्देहोत्पादका बाष्पबिन्दवोऽश्रुपृषतास्तेषां संदोहेन समूहेन संकलितं वक्षो यस्य तस्मिन्, शोकधूमध्वजस्य शोकाग्नेर्धूमदेशीया धूमकल्पाः शिथिलितोद्गताः शिरोरुहाः केशा येषु तथाभूतानि शिरांसि यस्य तस्मिन् धूलीभिर्धूसरितानि मलिनानि वासांसि वस्त्राणि यस्य तस्मिन्, कारुण्यावहानि दयोत्पादकानि वचांसि यस्य तस्मिन् प्रार्थ्यमानः 'अयि भोः सूर्यनारायण, मदीयं गोधनं प्रतिदीयतामिति याच्यमानो गभस्तिमाली सूर्यो येन तस्मिन्, प्रणम्यमानानि नमस्क्रियमाणानि गृहदैवतानि येन तस्मिन्, पृच्छ्यमाना अनुयुज्यमाना दैवज्ञजना ज्योतिर्विदो येन तस्मिन्, गोधनेनाजीवतीत्येवंशीलस्तस्मिन् । घोषवृद्धेष्वपि पल्लीवृद्धजनेष्वपि कर्तव्यमुग्धेषु किंकर्तव्यमिति विचारमूढेषु महाराजसत्यंधरस्य स्मरत्सु 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति षष्ठी, 'पुरा खलु पुरस्क्रियार्हाणि अग्रस्थापनयोग्यानि यान्युपायनपरिबर्हाणि प्राभृतोपकरणानि तेषां पुरस्सरेण उपस्थिताः पार्श्वे विद्यमाना मुखप्रसादार्थिनो वदनप्रसन्नताभिलाषिणो ये पार्थिवास्तेषां मुकुटचूडामणीनां

क्लेशसे छटपटाते हुए बछड़ोंकी दशा देखनेकी क्षमता न होनेसे उन्होंने अपने नेत्र ढँक लिये थे। उन स्त्रियोंके स्तन मथे गये दहीकी बूँदोंसे व्याप्त थे इसलिए ऐसे जान पड़ते थे मानो माताके विरहमें इधर-उधर घूमते हुए बछड़ोंके ऊपर प्रेमातिरेकके कारण उनसे दूध ही झरने लगा हो। विवशताके कारण लुढ़की हुई मटकियोंके मुखसे निकलते हुए दूध, मही, घी और दहीके कारण वहाँकी भूमिमें कीच मच गयी तथा उसमें उनके पैर फिसलने लगे। हृदयमें देदीप्यमान सन्तापकी अधिकताको शान्त करनेके अभिप्रायसे प्रयोगमें लाये हुए मोतियोंके सन्देहको देनेवाली अश्रुबिन्दुओंके समूहसे उनके वक्षःस्थल व्याप्त हो गये। शोकरूपी अग्निके धुआँके समान ढीले होकर ऊपरकी ओर बिखरे हुए बालोंसे उनके शिर युक्त थे। उनके वस्त्र धूलिसे धूसरित—मटमैले हो गये। उनके वचन करुणाको उत्पन्न करनेवाले थे। कभी वे सूर्यसे प्रार्थना करतीं, कभी घरके देवताओंको प्रणाम करतीं और कभी ज्योतिषियोंसे पूछतीं। गोधन ही उनकी आजीविका थी इसलिए उसके नष्ट होनेसे वे बहुत ही व्याकुल हो गयीं। उस बस्तीमें जो वृद्ध ग्वाल थे वे कर्तव्यविमूढ़ हो यह कहकर महाराज सत्यन्धरका स्मरण

राजनि राजति राजन्वती वसुधेयमकुतोभया वर्तेत[1] । तस्मिन्नस्माकं गर्भभरवहनक्लेशानभिज्ञमातरि जन्महेतुतामात्ररहितपितरि प्रतिषिद्धसिद्धमातृकोपदेशक्लेशगुरौ लोकद्वयहितनिर्वर्तननियतबन्धौ विद्राविलनिद्रोपद्रवनेत्रे शरीरान्तरसंचारिजीविते उदन्वदजातपारिजाते चिन्तानपेक्षितचिन्तामणौ विदितास्मत्कुलक्रमागतौ भक्तावबोधिनि भृत्यजनप्रिये व्रजप्रजारक्षणदीक्षिते शिक्षाप्रयोजनदण्डविधौ दण्डितारातिमण्डले मण्डलेश्वरे विनश्वरविषयाभिलाषविषवेगाददीर्घदर्शिनि दीर्घनिद्रामुपेयुषि पुनरप्यसुभिरवियुक्तैरस्माभिः किमेतावदनुभवनीयम् ।' इत्याधिक्षीणेष्वाचक्षाणेषु, शाकुनिके च प्रवयसि जने वदति 'वायसोऽयं सुस्वरः शबरावस्कन्दितमधुनैवास्मदधीनं भविता गोकुलमिति नि-

मौलिशिखामणीनां मरीचयः किरणा एव वारिधारा जलधारास्ताभिरुन्मार्जितं प्रक्षालितं चरणराजीवरजः- पादपद्मपरागो यस्य तस्मिन् राजनि सत्यंधरमहाराजे राजति शोभमाने सति राजन्वती सौराज्यवती इयं वसुधा न विद्यते कुतोऽपि भयं यस्यां तथाभूता अवर्तत। अस्माकमाभीराणाम्, गर्भभरस्य भ्रूणभारस्य वहने धारणे यः क्लेशस्तस्यानभिज्ञा सा चासौ माता च तस्मिन्, जन्महेतुता जन्मकारणतामात्रेण रहितः पिता तस्मिन्, प्रतिषिद्धो निवारितः सिद्धमातृकोपदेशस्य वर्णमालोपदेशस्य क्लेशो यस्य तथाभूतश्चासौ गुरुश्च तस्मिन्, लोकद्वयस्य हितनिर्वर्तने नियतो बन्धुस्तस्मिन्, विद्रावितो दूरीकृतो निद्रोपद्रवो यस्य तथाभूतं नेत्रं तस्मिन्, चिन्तया प्राप्तीच्छयाऽनपेक्षितश्चिन्तामणिस्तस्मिन्, विदिता विज्ञाता अस्मत्कुलक्रमस्यागतिर्येन तस्मिन्, भक्तानवबोधतीत्येवंशीलस्तस्मिन्, भृत्यजनप्रिये कर्मकरवत्सले, व्रजप्रजाया गोष्ठजनताया रक्षणे दीक्षितस्तस्मिन्, शिक्षाप्रयोजनो दण्डविधिर्यस्य तस्मिन्, दण्डितमनुशासितमरातिमण्डलं शत्रुसमूहो येन तथाभूते, तस्मिन् पूर्वोक्ते मण्डलेश्वरे सत्यंधरमहीपाले, विनश्वरविषयेषु भङ्गुरभोगेषु अभिलाष एव विषं तस्य वेगात्, अदीर्घदर्शिनि अदूरदर्शिनि दीर्घनिद्रां मृत्युम् उपेयुषि प्राप्तवति सति, पुनरपि असुभिः प्राणैः अवियुक्तैः अस्माभिः किम् एतावद् इयत्प्रमाणं महादुःखमनुभवनीयम्' इतीत्थम् आधिक्षीणेषु मनोव्यथाकृशेषु घोषवृद्धेषु आचक्षाणेषु कथयत्सु, 'शाकुनिके च शकुनज्ञे च प्रवयसि वृद्धजने' अयं सुस्वरः सुन्दरस्वरयुक्तो वायसो मौकुलिः शबरावस्कन्दितं शबरजनापहृतं गोकुलं धेनुवृन्दम्, अधुनैव साम्प्रतमेव

करने लगे कि पहले जब सामने रखने योग्य भेंटकी सामग्रीके साथ उपस्थित एवं मुखकी प्रसन्नताके इच्छुक राजाओंके मुकुट और चूड़ामणियोंकी किरणावली रूप जलधारासे जिनके चरण-कमलोंकी धूलि धोयी गयी थी ऐसे महाराज सत्यन्धर विराजमान थे तब उत्तम राजासे युक्त यह पृथिवी सब ओरसे निर्भय थी—इसे किसी ओरसे भय नहीं था। जो गर्भका भार धारण करनेके क्लेशसे अनभिज्ञ हमारी माता थे, जन्मकी कारण मात्रतासे रहित पिता थे, सिद्धमातृका-वर्णमालाके उपदेशके क्लेशसे रहित गुरु थे, दोनों लोकोंका हित करनेमें तत्पर बन्धु थे, निद्राके उपद्रवसे रहित नेत्र थे, दूसरे शरीरमें संचार करनेवाले प्राण थे, समुद्रमें उत्पन्न न होनेवाले कल्पवृक्ष थे, चिन्ताकी अपेक्षासे रहित चिन्तामणि थे, हमारी कुल-परम्पराकी आगतिको जानते थे, भक्तोंको समझनेवाले थे, सेवक जनोंके प्रेमपात्र थे, व्रजकी प्रजाकी रक्षा करनेमें संलग्न थे, शिक्षाके उद्देश्यसे ही दण्ड देनेवाले थे और शत्रु-समूहको दण्डित करनेवाले थे, ऐसे मण्डलेश्वर राजा सत्यन्धर विनाशी विषयोंकी अभिलाषा रूप विषके वेगसे दूर तककी बात नहीं सोच सके और मृत्युको प्राप्त हो गये फिर भी हम लोग प्राणरहित नहीं हुए। क्या हम लोगोंको यही दुःख भोगना था। इस प्रकार मानसिक व्यथासे क्षीण नगरके वृद्धजन कह रहे थे। शकुनको जाननेवाला कोई वृद्ध मनुष्य कष्टकर अवस्थाको प्राप्त तथा दयापूर्ण असहनीय प्रलाप करनेवाले ग्वालोंसे कह रहा था कि 'यह उत्तम स्वरसे

१. वर्तेत म० ।

राकुलमाचष्टे। मा भैष्ट यूयम्' इति, कष्टां दशामासेदुषः कारुणिकदुरुत्सहालापान्गोपानापदो गोपायिता गोपालग्रामणीर्नन्दगोपो नाम नन्दितकोविदः संतापमयकायः कोऽयमिह गोधनप्रत्यानयनकर्मण्युपायः। प्रायेण प्राणभृतां भागधेयविधेये सत्यपि शुभोदये सहायतां तत्र प्रतिपद्यत एव प्रयत्नोऽपि। तस्मिन्नपि दुष्कृतबलेन फलेन बहिष्कृते प्राप्तेऽनुद्वेग आत्मवताम्' इत्यमोघमतर्कयत्। अताडयच्च कटके 'विजित्य विपिनचरान्गोधनमस्मभ्यं प्रतिपादयितुं प्रभवते कृतहस्ताय दीयेत मे कल्याणिनी कन्या कल्याणमयसप्तपुत्रिकाभिः साकम्' इति गोसंख्यप्रकाण्डो डिण्डिमम्।

§ ७८. ततस्तथाविधमेतमुदन्तमुपश्रुत्य 'शबरविजये कः शक्तः शस्त्रोपजीविषु। किमस्ति मस्तकमणिं फणिपतेरपहर्तुं समर्थो जनः। को नाम पञ्चजनः पञ्चाननस्य वदनादामिषमाप्तु-

अस्मदधीनं मदायत्तं भविता भविष्यति, इति निराकुलमव्यग्रम् आचष्टे कथयति, मा भैष्ट यूयम् भयं मा कुरुत यूयम्' इति वदति निगदति सति 'यस्य च भावे भावलक्षणम्' इति सप्तमी। कष्टां दुःखकरीं दशामवस्थाम्, आसेदुषः प्राप्तवतः कारुणिकानां दयालूनां दुरुत्सहा आलापा येषां तान् गोपान् आपदो विपत्तेः गोपायिता रक्षिता गोपालग्रामणीर्गोपप्रमुखः नन्दिताः कोविदा येन प्रहर्षितबुधः, संतापमयः कायो यस्य तथाभूतो नन्दगोपो नाम इहाऽस्मिन् गोधनस्य प्रत्यानयनं तदेव कर्म तस्मिन् कोऽयम् उपायः। प्रायेण प्राणभृतां लोकानां भागधेयविधेये दैवानुकूले शुभोदये पुण्योदये सत्यपि तत्र कार्ये प्रयत्नोऽपि सहायतां प्रतिपद्यत एव प्राप्नोत्येव। दुष्कृतबलेन पापसामर्थ्येन तस्मिन्नपि प्रयत्ने फलेन बहिष्कृते सति निष्फले जाते आत्मवतामात्मज्ञानाम्, प्राप्ते समागते दुःखे इति शेषः अनुद्वेग एव उद्वेगाभाव एव करणीयः इति अमोघमव्यर्थम् अतर्कयद् विचारयामास। गोसंख्यप्रकाण्डो गोपप्रधानो नन्दगोपः कटके राजधान्यां 'कटकोऽस्त्री राजधान्यां सानौ सेनानितम्बयोः', इति विश्वलोचनः, इति डिण्डिमं वाद्यभेदम् अताडयच्च। इति किम्। विपिनचरान् किरातान् विजित्य पराभूय, अस्मभ्यं गोधनं प्रतिपादयितुं प्रभवते समर्थाय कृतहस्ताय कुशलकराय मे कल्याणिनी कल्याणवती कन्या कल्याणमयसप्तपुत्रिकाभिः सुवर्णमयसप्तपाञ्चालिकाभिः साकं दीयेत।

§ ७८. तत इति—ततस्तदनन्तरं तथाविधं तादृशम् एतमुदन्तं वृत्तान्तम् उपश्रुत्य भटाभावेऽप्यात्मानं भटं ब्रुवन्तीति भटब्रुवाः कातरभटाः इति अब्रुवन् निजगदुः। इतीति किम्। शस्त्रोपजीविषु सैनिकेषु शबरविजये कः शक्तः समर्थः। फणिपतेः शेषस्य मस्तकमणिं फणरत्नम् अपहर्तुं किं जनः

बोलनेवाला कौआ स्पष्ट कह रहा है कि भीलोंके द्वारा अपहृत हमारी गायोंका समूह अभी हाल हमारे अधीन हो जायेगा। अतः आप लोग भयभीत न हों।' उसी समय आपत्तिसे रक्षा करनेवाला, ग्वालोंका प्रधान, विद्वानोंको प्रसन्न करनेवाला तथा सन्तापमय शरीरसे युक्त नन्दगोप इस प्रकार विचार करने लगा कि यहाँ गायोंको वापस लानेके कार्यमें क्या उपाय हो सकता है? प्रायःकर प्राणियोंका अशुभोदय उनके भाग्यके अनुकूल रहता है तथापि प्रयत्न भी उसमें सहायताको प्राप्त होता है। यदि पापकी प्रबलतासे वह प्रयत्न भी निष्फल हो जाये तो फिर प्राप्त आपत्तिमें आत्मज्ञ मनुष्योंको उद्वेग नहीं करना चाहिए। वह विचार करके ही नहीं रह गया किन्तु नगरमें उसने यह घोषणा कराते हुए नगाड़ा भी बजवा दिया कि भीलोंको जीतकर हमारा गोधन हमारे लिए प्रदान करनेमें समर्थ कुशल मनुष्यके लिए स्वर्णमय सात पुतलियोंके साथ मेरी कल्याणकारिणी पुत्री दी जायेगी।

§ ७८. तदनन्तर उस प्रकारके इस वृत्तान्तको सुनकर कायर मनुष्य कहने लगे कि 'शस्त्रधारियोंमें ऐसा कौन है जो भीलोंको जीतनेमें समर्थ हो? क्या शेषनागके मस्तकपर

मभिलषति । अस्ति चेदमुष्मिन्कर्मण्यलंकर्मीणः कामं लभेत कन्यामन्यच्च' इत्यब्रुवन्भटब्रुवाः । 'हा कष्टम् । निकृष्टमिदं गार्हस्थ्यं कृत्यम् । तथा हि—दारिद्र्यादपि धनार्जने तस्मादपि तद्रक्षणे ततोऽपि तत्परिक्षये परिक्लेशः सहस्रगुणः प्राणिनाम् । ततो हि सुधियः संसारमुपेक्षन्ते' इत्यनुप्रेक्षामातेनुरात्मविदः । पराजितराजन्यसैन्यं वन्यं जनमन्यः को भवेदभिभवितुम् । अभियुक्तो नास्तीति वा निर्णेतुं कथं पार्यते । विस्तीर्णेयमर्णवनेमिः । अस्तोकशक्तिरस्तु वा यः कश्चन हस्तवतामग्रेसरः । पाटितानेकभटां करिघटां हरिरेक एक किं न विघटयति' इति विचारचतुरमाचचक्षिरे विचक्षणाः ।

§ ७९. जीवकस्वामी तु स्वामित्वेन वा भुवनस्य स्वभावत्वेन वा स्वकलत्रमिवामित्राधीनं

समर्थोऽस्ति । को नाम पञ्चजनः पुरुषः 'स्युः पुमांसः पञ्चजनाः पुरुषाः पूरुषा नराः' इत्यमरः । पञ्चाननस्य सिंहस्य वदनात् मुखात् आमिषं मांसम् आप्तुम् अभिलषति । अमुष्मिन्कर्मणि अलंकर्मीणो निपुणः अस्ति चेत् तर्हि कामं यथेच्छं कन्याम् अन्यच्च सुवर्णमयपाञ्चालिकादिकम् लभेत । आत्मानं विदन्तीत्यात्मविद आत्मज्ञा जना इति अनुप्रेक्षां भावनाम् आतेनुर्विस्तारयामासुः, इतीति किम् । 'हा कष्टं इदम् गृहस्थस्य भावः कर्म वा गार्हस्थ्यं कृत्यं निकृष्टमधमम् । तथा हि—प्राणिनां दारिद्र्यादपि निर्धनत्वादपि धनार्जने वित्तसंचये, तस्मादपि धनार्जनादपि तद्रक्षणे ततोऽपि तद्रक्षणादपि परिक्षये विनाशे सहस्रगुणः परिक्लेशो भवतीति शेषः । ततो हि सुधियो विद्वांसः संसारम् उपेक्षन्ते उपेक्षाविषयीकुर्वन्ति । विचक्षणा विपश्चितः विचारचतुरं विचारनिपुणं यथा स्यात्तथा इति आचक्षिरे कथयामासुः । इतीति किम् । पराजितं राजन्यसैन्यं येन तं पराभूतनृपतिपृतनं वने भवो वन्यस्तं वनचरं जनम्, अभिभवितुं पराभवितुम् अन्यः को जनो भवेत् । वा पक्षान्तरे अभियुक्तः समर्थो नास्तीति वा निर्णेतुं निश्चेतुं कथं पार्यते । इयम् अर्णवनेमिः पृथ्वी विस्तीर्णा अस्तोकशक्तिः प्रभूतसामर्थ्यो यः कश्चन जनो हस्तवतां कुशलानामग्रेसरोऽस्तु वा पाटिता विदारिता अनेकभटा अनेकयोधा यया तां करिघटां गजपङ्क्तिं किमेक एव हरिर्मृगेन्द्रो न विघटयति ।

§ ७९. जीवकस्वामीति—जीवकस्वामी तु सात्यंधरिस्तु भुवनस्य जगतः स्वामित्वेन वा स्वभावत्वेन वा स्वस्य, अमित्राधीनं शत्र्वायत्तं गोधनं स्वकलत्रमिव स्वस्त्रियमिव मेने । गोधनस्य

स्थित मणिको हरनेके लिए कोई समर्थ है ? कौन मनुष्य है जो सिंहके मुखसे मांस प्राप्त करनेकी इच्छा करता हो । यदि कोई उस कार्यमें समर्थ हो तो वह अच्छी तरह कन्या तथा अन्य सामग्रीको प्राप्त कर सकता है । जो आत्माको जाननेवाले विवेकी थे वे बार-बार इस प्रकारका चिन्तवन करने लगे कि 'हाय, बड़े कष्टकी बात है, यह गृहस्थीका कार्य अत्यन्त निकृष्ट है । देखो, दरिद्रताकी अपेक्षा धन कमानेमें, धन कमानेकी अपेक्षा उसकी रक्षामें और रक्षाकी अपेक्षा उसके नष्ट होनेमें प्राणियोंको हजार गुना क्लेश होता है । इसीलिए विद्वज्जन संसारकी उपेक्षा करते हैं' । विद्वान् मनुष्य विचारोंकी चतुराईके साथ इस प्रकार कहने लगे कि 'राजाकी सेनाको पराजित करनेवाले वनेचरोंको कौन मनुष्य जीतनेके लिए समर्थ हो सकता है ?अथवा कोई इस कार्यके करनेमें समर्थ नहीं है यह कैसे निर्णय किया जा सकता है ? यह पृथिवी बहुत बड़ी है । प्रबल शक्तिका धारक कोई हो भी सकता है जो कुशल मनुष्योंमें प्रधान होगा । अनेक योद्धाओंको चीरनेवाले हाथियोंकी पंक्तिको क्या एक ही सिंह नहीं खदेड़ देता है' ।

§ ७९. जीवन्धर स्वामीने संसारके स्वामी होनेसे अथवा स्वभावसे ही, शत्रुके अधीन गोधनको ऐसा माना मानो हमारी स्त्री ही शत्रुके अधीन हो गयी हो । उन्होंने उसी समय

गोधनं मेने । वितेने च संगरम् 'न चेदहमशरणानां शरण्योऽस्मि स्वामिद्रोहिणां धौरेयोऽस्मि' इति । आसीच्चास्य यौगपद्येन श्रवसि तदुदन्तश्रुतिर्मनसि रोषाग्निर्वचसि डिण्डिमनिरोधो ललाटे भ्रुकुटिश्चक्षुषोस्ताम्रता वपुषि स्वेदबिन्दुः सारथौ कटाक्षपातश्चरणयोः प्रयाणत्वरा तूर्तिर्धनुषि निषङ्गेऽपि करयुगं चेति । प्रतस्थे च सात्यंधरिर्जात्यनुगुणगुणकण्ठोक्तराजकण्ठीरवभावः सदा संगतैरसंकटखेदिभिरवस्थावेदिभिरनारोपितवैयात्यैराफलोदयकृत्यैरतिदूरप्रेक्षिभिरपथोपेक्षिभिरखिलगुणसनाथैरात्मीयमनोरथैरिव वयस्यैरमा रथमारुह्य पल्लिमभि प्रतिमल्लजिगीषया ।

§ ८०. ततश्च तस्मिन्पवनेनेव पवनसखे सखिजनवृन्देन भूभृन्नन्दने विपिनेचरविपिनदिधक्षया

शम्बाधीनत्वे स्वस्त्रियाः शम्बाधीनस्य इव संतापयुक्तो बभूवेति भावः । संगरं प्रतिज्ञां च वितेने विस्तारयामास—न चेदहमशरणानां शरणरहितानां शरणे साधुः शरण्योऽस्मि तर्हि स्वामिद्रोहिणां धुरं वहतीति धौरेयः 'धुरो यड्ढकौ' इति ढक् । प्रधानोऽस्मि इति । आसीच्च बभूव चास्य जीवंधरस्य यौगपद्येन एककालावच्छेदेन श्रवसि कर्णे तदुदन्तश्रुतिस्तद्वार्ताश्रवणं, मनसि रोषाग्निः क्रोधानलः वचसि वचने डिण्डिमनिरोधो वाद्यनिरोधो, ललाटे निटिले भ्रुकुटिः भ्रूः चक्षुषोर्नयनयोस्ताम्रता लोहितता वपुषि शरीरे स्वेदबिन्दुः श्रमजलपृषताः, सारथौ रथवाहके कटाक्षपातोऽपाङ्गावलोकनम्, चरणयोः पादयोः प्रयाणतूर्तिर्गमनशैघ्र्यं धनुषि चापे निषङ्गेऽपि कोशेऽपि करयुगं हस्तयुगलञ्चेति । प्रतस्थे चेति—प्रतस्थे च प्रययौ च सत्यंधरस्यापत्यं पुमान् सात्यंधरिर्जीवंधरः जातेः क्षत्रियजातेरनुगुणा अनुकूला ये गुणास्तैः कण्ठोक्तः स्पष्टं प्रकटितो राजकण्ठीरवभावो राजसिंहीभावो यस्य सः सदा शश्वत्संगतैरवियुक्तैः, न संकटखेदिन इत्यसंकटखेदिनस्तैः संकटकालिकव्यग्रतारहितैः, अवस्थां विदन्तीत्येवंशीलैः अनारोपितं वैयात्यं धाष्टर्यं येषां तैः फलोदयमभिव्याप्य कृत्यं कार्यं येषां तैः अतिदूरं प्रेक्षन्त इत्येवंशीलास्तैर्दीर्घदर्शिभिः अपथं कुमार्गमुपेक्षन्त इत्यपथोपेक्षिणस्तैः, अखिलगुणैः सनाथाः सहितास्तैः आत्मीयमनोरथैरिव स्वकीयाभिप्रायैरिव वयस्यैः सखिभिः अमा साकं रथं स्यन्दनमारुह्य समधिष्ठाय प्रतिमल्लजिगीषया शत्रुपराजयकाङ्क्षया पल्लिमभि आभीरवसतिमभि प्रतस्थे इति पूर्वेणान्वयः ।

§ ८०. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरञ्च, पवनेन पवनसख इव वह्निरिव, सखिजनवृन्देन मित्रसमूहेन तस्मिन् भूभृन्नन्दने सत्यंधरमहाराजसुते विपिनेचरा एव विपिनं तस्य दिधक्षा तया किरातकाननभस्मी-

---

प्रतिज्ञा की कि 'यदि मैं इन शरणरहित—दीनग्वालोंका रक्षक नहीं होता हूँ तो स्वामिद्रोहियोंमें अग्रसर कहलाऊँ । उस समय उनके कानोंमें उस वृत्तान्तका सुनना, मनमें क्रोधाग्नि, वचनमें नगाड़ेका रोकना, ललाटमें भ्रकुटि, आँखोंमें लालिमा, शरीरमें पसीनाका जल, सारथिपर कटाक्षोंका पड़ना, पैरोंमें गमनसम्बन्धी शीघ्रता और धनुष तथा तरकशपर दोनों हाथ—ये सब एक साथ हुए थे । तदनन्तर जातिके अनुरूप गुणोंसे जिनका राजसिंहपना स्पष्ट प्रकट हो रहा था ऐसे जीवन्धर कुमार अपने उन मित्रोंके साथ रथपर सवार हो शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे ग्वालोंकी बस्तीकी ओर चल पड़े कि जो सदा उनके साथ रहते थे, संकटके समय कभी खेदका अनुभव नहीं करते थे, अवस्थाके जानकार थे, धृष्टतासे रहित थे, फलकी प्राप्ति पर्यन्त कार्य करते थे, बहुत दूरकी बात देखते—सोचते थे, कुमार्गकी उपेक्षा करते थे, समस्त गुणोंसे सहित थे और अपने मनोरथोंके समान थे ।

§ ८०. तदनन्तर वायुसे अग्निके समान मित्रजनोंके समूहसे तीक्ष्ण तेजको धारण करनेवाले राजपुत्र—जीवन्धर कुमार, भीलरूपी वनको जलानेकी इच्छासे प्रस्थान कर जब बड़े

तीक्ष्णतेजसि प्रस्थाय तरसा प्रयाति, भाविविजयविवरणचतुरेण सहचरेण समीरेण समर्पितरंहसीव रथे मनोरथादपि जविनि व्रजति, तथाविधरयधावत्स्यन्दनचक्रस्य वक्राभिघातेन भूभृतां चक्रे शक्रातिशायिशक्तिप्राग्भारकुमारनिरीक्षणभीत्येव प्रसभं प्रकम्पमाने, प्रह्वीभावविमुखेषु शाखिषु शत्रुष्विव सद्यः समुद्धृतेषु, समुत्पाटितविटपिविलोकनभयचकितचेतसि चलितशिरसि प्रसूनापीडं सनीडमवदितरभूरुहनिकरे वितीर्य किसलयाञ्जलिबन्धेन प्रकामं प्रणमतीव प्रेक्ष्यमाणे, क्षीणप्रायप्राणानां निषादानां विषादं वितन्वदशुभचिह्नमह्नाय मुहुर्मुहुराविरभूत् ।

§ ८१. प्रादुरभूच्च भूरितरवल्लीवितानां पल्लीमभ्येत्य पल्लविततेजाः पर्याकुलितपाकसत्त्वः सत्वरसारथिचोदितरथधुर्यतुरगप्रष्ठः काष्ठाङ्गारबलाधिक्षेपक्षीबाणां क्षेपीयः प्रतिसरतां वनौकसां

करणेच्छया, तीक्ष्णं तेजो यस्य तिग्मप्रतापे प्रस्थाय तरसा वेगेन प्रयाति सति, भाविविजयस्य विवरणे चतुरस्तेन भविष्यद्विजयप्रकटीकरणनिपुणेन सहचरेण सहगामिना समीरेण वायुना समर्पितं प्रदत्तं रंहो वेगो यस्य तस्मिन्निव रथे मनोरथादपि जविनि वेगशालिनि व्रजति सति, तथाविधरयेण तादृशवेगेन धावद् यत्स्यन्दनचक्रं रथसमूहो रथरथाङ्गं वा तस्य वक्राभिघातेन कुटिलप्रहारेण भूभृतां चक्रे पर्वतानां समूहे राज्ञां वृन्दे वा शक्रातिशायी पुरन्दरातिक्रामी शक्तिप्राग्भारो यस्य तथाभूतो यः कुमारो जीवंधरस्तस्य निरीक्षणभीत्येव दर्शनत्रासेनेव प्रसभं हठात् प्रकम्पमाने सति, प्रह्वीभावान्नम्रीभावाद्विमुखास्तेषु शाखिषु वृक्षेषु शत्रुष्विव रिपुष्विव सद्यः शीघ्रं समुद्धृतेषु समुत्खातेषु, समुत्पाटिताः समुत्खाता ये विटपिनो वृक्षास्तेषां विलोकनभयेन दर्शनभीत्या चकितं चेतो यस्य तथाभूते चलितशिरसि प्रकम्पितशिखरे सनीडमवन्निकटीभवन् य इतरभूरुहनिकरोऽन्यवृक्षसमूहस्तस्मिन् प्रसूनापीडं पुष्पसमूहं वितीर्य किसलया एवाञ्जलयस्तेषां बन्धेन पल्लवाञ्जलिबन्धेन प्रकाममत्यन्तं प्रणमतीव नमस्कुर्वतीव प्रेक्ष्यमाणे दृश्यमाने, क्षीणप्रायाः प्राणा येषां तेषां निषादानां शबराणां विषादं खेदं वितन्वद् विस्तारयद् अशुभचिह्नममाङ्गलिकचिह्नम् अह्नाय झगिति मुहुर्मुहुर्भूयोभूयः आविरभूत् प्रकटितमभूत् ।

§ ८१. प्रादुरभूदिति—प्रादुरभूच्च प्रकटीबभूव च भूरितरो विपुलतरो वल्लीवितानो लतासमूहो यस्यां तां पल्लीं घोषम् 'घोष आभीरपल्ली स्यात्' इत्यमरः, अभ्येत्य संमुखं गत्वा पल्लवितं वृद्धिंगतं तेजो यस्य तथाभूतः पर्याकुलिता व्यग्रीकृताः पाकसत्त्वाः शबरा येन सः सत्वरेण सशैघ्र्येण सारथिना चोदिताः

वेगसे आगे बढ़ रहे थे। होनेवाली विजयको सूचित करनेमें चतुर सहगामी वायुके द्वारा जिसे वेग प्रदान किया गया था ऐसा रथ जब मनोरथसे भी अधिक वेगसे चल रहा था उस प्रकारके वेगसे दौड़ते हुए रथसमूह अथवा रथके पहियोंके कुटिल आघातसे जब पर्वतोंका समूह इन्द्रको अतिक्रान्त करनेवाली शक्तिके प्राग्भारसे युक्त जीवन्धर कुमारको देखनेके भयसे ही मानो हठपूर्वक कम्पित हो रहा था। नम्रीभावसे विमुख वृक्ष जब शत्रुओंके समान शीघ्र ही उखड़ रहे थे और उखाड़े हुए वृक्षोंके देखनेके भयसे जिसका चित्त चकित हो रहा था तथा जिसका शिर-अग्रभाग चञ्चल हो रहा था ऐसा समीपमें आनेवाले अन्य वृक्षोंका समूह जब पुष्पसमूहको प्रदान कर पल्लवरूपी अंजलिबन्धनसे अत्यधिक प्रणाम करता हुआ-सा दिखाई देता था तब नाशोन्मुख प्राणोंको धारण करनेवाले भीलोंके विषादको विस्तृत करता हुआ अशुभ चिह्न शीघ्र ही बार-बार प्रकट होने लगा।

§ ८१. अत्यधिक लतामण्डपोंसे युक्त घोषोंकी बस्तीकी ओर जिसका तेज बढ़ रहा था, जिन्होंने भीलोंको व्याकुल बना दिया था और रथके भारको धारण करनेवाले जिनके श्रेष्ठ घोड़े शीघ्रतासे युक्त सारथिके द्वारा प्रेरित हो रहे थे ऐसे सूर्यके समान वीरशिरोमणि जीव-

पुरः खमणिरिव वीरचूडामणिः कुमारः । पुनरकरोच्च तेषामयमधिज्यधन्वा श्रवसि ज्याघोषमुरसि शरासारं मनस्यावेगं चक्षुषि वेगविक्रमविजितालातचक्रेडयां रथकटयां च ।

§ ८२. एवमस्मिन्वीरदिनकरे व्यापारितकरे युगपदेव व्योमव्यापिभिर्वलक्षीकृतदिङ्मुखैः शिलीमुखैर्मयूखैरिव खण्डितैरन्धकारपिण्डैरिव गोधनलुण्टाकानां शिरोभिरधोऽवतीर्णैरास्तीर्णायामरण्यभुवि, बालातपौघ इव कूलंकषे प्रवहति शोणितसरित्प्रवाहे, तमःस्तोम इव निहतध्वस्तावशिष्टे पापिष्ठे जने[1] निजशौर्यधनेन गोधनमुत्सृज्य गिरिगह्वरमाश्रिते, विश्रुतो वीरः कुमारोऽपि 'मारितैः किमेतैर्मुधा कार्ये सिद्धे सति । कामं यान्तु काका इव वराकाः' इति विचार्य निजशौर्या-

प्रेरिता रथधुर्यस्य ज्येष्ठरथस्य तुरगप्रष्ठा अश्वश्रेष्ठा यस्य तथाभूतः, वीरचूडामणिः शूरशिरोमणिः कुमारः काष्ठाङ्गारबलस्य काष्ठाङ्गारसैन्यस्याधिक्षेपेण पराजयेन क्षीबा मत्तास्तेषां क्षेपीयो झटिति प्रतिसरतां संमुखमागतानां वनमोको येषां तेषां वनेचराणां पुरोऽग्रे खमणिरिव सूर्य इव । पुनरकरोच्चेति— पुनरनन्तरम् अधिज्यं समौर्वीकं धनुर्यस्य तथाभूतोऽयं जीवंधरः तेषां वनौकसां श्रवसि कर्णे ज्याघोषं प्रत्यञ्चानादम्, उरसि वक्षसि शरासारं बाणवृष्टिं मनसि चेतसि आवेगं व्याकुलतां चक्षुषि नयने वेगविक्रमेण विजिता पराभूता अलातचक्रस्येडया यया तां रथकटयां च स्यन्दनसमूहञ्च ।

§ ८२. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण अस्मिन् वीरदिनकरे वीरसूर्ये व्यापारितौ करौ हस्तौ पक्षे व्यापारिताः कराः किरणा यस्य तथाभूते सति, युगपदेव व्योम व्याप्नुवन्तीत्येवंशीलैः वलक्षीकृतानि धवलीकृतानि दिङ्मुखानि यैस्तैः शिलीमुखैर्बाणैः मयूखैरिव किरणैरिव खण्डितैश्छिन्नैः अन्धकारपिण्डैरिव तिमिरस्कन्धैरिव गोधनस्य लुण्टाकास्तेषां गोधनापहारिणां शबराणाम् अधोऽवतीर्णैरधःपतितैः शिरोभिः अरण्यभुवि वनवसुधायाम् आस्तीर्णायामाच्छादितायां सत्याम् बालातपौघ इव प्रातर्घर्मसमूह इव कूलंकषे शोणितसरित्प्रवाहे रुधिरापगापूरे प्रवहति सति तमःस्तोम इव तिमिरसमूह इव निहताश्च ध्वस्ताश्चेति निहतध्वस्ता मारितपीडितास्तेभ्योऽवशिष्टः शेषस्तस्मिन् पापिष्ठे पापीयसि जने निजशौर्यधनेन स्वशूरत्ववित्तेन सह गोधनमुत्सृज्य त्यक्त्वा गिरिगह्वरं पर्वतकन्दरम् आश्रिते सति प्रपलाय्य गिरिगुहास्वन्तर्हिते सतीत्यर्थः विश्रुतः प्रसिद्धो वीरः कुमारोऽपि जीवकस्वाम्यपि 'कार्ये सिद्धे सति मुधा निष्प्रयोजनं मारितैः एतैः किं प्रयोजनम्, काका इव वायसा इव एते वराका दयनीयाः कामं यथेच्छं यान्तु गच्छन्तु'

न्धरकुमार काष्ठांगारकी सेनाके तिरस्कारसे उन्मत्त एवं शीघ्र ही सामना करनेवाले वनवासी—भीलोंके सामने जा प्रकट हुए। प्रकट होते ही प्रत्यंचासहित धनुषको धारण करनेवाले जीवन्धरकुमारने उन भीलोंके कानमें प्रत्यंचाके शब्दको, वक्षःस्थलमें बाणोंकी वर्षाको, मनमें घबराहटको और नेत्रोंमें वेग तथा पराक्रमसे पराजित अलातचक्रके द्वारा स्तुत्य रथसमूहको प्रकट कर दिया।

§ ८२. इस प्रकार वीररूपी सूर्य जब अपने कर एवं हाथरूपी किरणोंको व्याप्त कर रहा था तब एक ही साथ आकाशव्यापी दिशाओंके अग्रभागको शुक्ल करनेवाली किरणोंसे खण्डित अन्धकारके समूहके समान, आकाशव्यापी एवं दिशाओंके अग्रभागको शुक्ल करनेवाले बाणोंसे खण्डित गोधनके लुटेरे-भीलोंके शिरोंने जब नीचे उतरकर वनकी वसुधाको व्याप्त कर दिया। प्रातःकालिक घामके समूहके समान किनारोंको घिसनेवाला खूनकी नदीका प्रवाह जब बहने लगा और अन्धकारके समूहके समान नष्ट-भ्रष्ट होनेसे बाकी बचे पापी–भील जब अपने पराक्रमरूप धनके साथ-साथ गोधनको छोड़कर पर्वतकी गुफाओंमें जा छिपे तब प्रसिद्धिको प्राप्त हुए जीवन्धरकुमार भी 'कार्य सिद्ध होनेपर व्यर्थ ही मारे हुए इन

१. क० ख० पापिष्ठजने ।

नुकूलं पलायमानविपिनेचरविशसनाद्विगतसंरम्भ आसीत् ।

§ ८३. पुनरशरणशरण्योऽयमरण्यान्याः प्रतिनिवृत्य प्रतिलब्धजीवितानां गोधनाजीविनामुच्चावचां प्रीतिवाचमुपशृण्वन्, विदारितद्विरदनखरायुधनखरादात्तैरवशिष्टासुप्रणयिशबरदत्तैर्मुक्ताप्रकरैरिव रणलक्ष्मीसंभोगसंभवामन्दस्वेदबिन्दुभिरलंकृतवक्षःस्थलः, मरुदान्दोलितकङ्केलिकोमलप्रवालैर्विपिनदाहिविपिनेचरजीवितहरणतृप्तवनलक्ष्मीवितीर्णैः प्रकीर्णकैरिव वीज्यमानः, खरतररथतुरगखुरपुटखननसमुद्भवदविरलधवलधूलीमण्डलेन चण्डांशोरंशुमभिभावुकेन भाविपतिवत्सलधात्रीसमर्पितधवलातपत्रेणेव समेतः, प्रथमतरोदयसंरम्भसाफल्यपल्लवितरागैरनारतमजहद्वृत्तिभिरंशैरिव

इति विचार्य निजशौर्यानुकूलं स्वकीयपराक्रमानुरूपं पलायमाना ये विपिनेचराः किरातास्तेषां विशसनं विघातस्तस्माद् विगतः संरम्भो यस्य विगतक्रोध आसीत् ।

§ ८३. पुनरिति—पुनरनन्तरम्, अशरणानां शरण्य इत्यशरणशरण्यः, अयं जीवंधरो महदरण्यमरण्यानी तस्याः प्रतिनिवृत्य प्रत्यागत्य प्रतिलब्धं पुनःप्राप्तं जीवितं येषां तेषां गोधनाजीविनां गोपालानाम् उच्चावचां समुत्कृष्टां प्रीतिवाचं स्नेहभारतीम् उपशृण्वन् आकर्णयन् विदारिता द्विरदा गजा यैस्ते तथाभूता ये नखरायुधाः सिंहास्तेषां नखराद् आत्तैर्गृहीतैः अवशिष्टानामसूनां प्राणानां प्रणयिनः स्नेहभाजो ये शबरास्तैर्दत्तैः, मुक्ताप्रकरैरिव मुक्ताफलसमूहैरिव, रणलक्ष्म्या रणश्रिया संभोगेन संभवाः समुत्पन्ना येऽमन्दाः स्वेदबिन्दवस्तैरलंकृतं वक्षःस्थलं यस्य सः, मरुता वनवायुना आन्दोलिताः कम्पिता ये कङ्केलीनामशोकानां कोमलप्रवाला मृदुलकिसलयास्तैः, विपिने दहन्तीत्येवंशीला विपिनदाहिनो वनदाहिनो ये विपिनेचराः किरातास्तेषां जीवितहरणेन प्राणापहारेण तृप्ता संतुष्टा या वनलक्ष्मीस्तया वितीर्णैः प्रदत्तैः प्रकीर्णकैरिव चामरैरिव वीज्यमानः प्रकीर्यमाणः, खरतरैस्तीक्ष्णतरै रथतुरगाणां खुरपुटैः खननेन समुद्भवत् समुत्पद्यमानं यद् अविरलं निरन्तरं धूलीमण्डलं तेन चण्डांशोः सूर्यस्य अंशुं किरणम् अभिभावुकेन तिरस्कारिणा 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' इति कृद्योगषष्ठीनिषेधः भाविपतौ भविष्यद्रमणे वत्सला स्नेहसम्पन्ना या धात्री मही तया समर्पितं प्रदत्तं धवलातपत्रं सितच्छत्रं तेनेव समेतः सहितः, उदयाय संरम्भ उदयसंरम्भोऽभ्युदयोद्योगः प्रथमतर आद्यतरो य उदयसंरम्भस्तस्य साफल्येन पल्लवितो वृद्धिंगतो रागः स्नेहो येषां तैः पक्षे प्रथमतरस्योदयसंरम्भस्य साफल्येन पल्लवितः किसलय-

---

लोगोंसे क्या प्रयोजन है ? कौओंके समान दीन-हीन लोग इच्छानुसार जावें' ऐसा विचारकर अपने पराक्रमके अनुरूप भागते हुए भीलोंकी हिंसासे निवृत्त हो गये।

§ ८३. तदनन्तर अशरणोंको शरण देनेवाले कुमार अटवीसे लौटकर नगरके समीप आ गये। उस समय वे जिन्हें मानो प्राण ही वापस मिल गये थे ऐसे गोपालोंके ऊँचे-नीचे प्रेमके वचन सुनते जा रहे थे। रणरूपी लक्ष्मीके संभोगसे उत्पन्न अत्यधिक पसीनाकी उन बूँदोंसे उनका वक्षःस्थल अलंकृत हो रहा था जो हाथियोंको विदीर्ण करनेवाले सिंहोंके नखोंसे छीने एवं मरनेसे बाकी बचे प्राणप्रेमी भीलोंके द्वारा दिये हुए मोतियोंके समूहके समान जान पड़ते थे। हवासे हिलते हुए अशोक के कोमल पल्लोंसे उन्हें हवा की जा रही थी जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो वनको जलानेवाले भीलोंके प्राण हरनेसे सन्तुष्ट वनलक्ष्मीके द्वारा दिये हुए चमरोंसे ही उन्हें हवा की जा रही थी। रथके घोड़ोंकी अत्यन्त तीक्ष्ण टापोंसे खुद जानेके कारण उठती हुई लगातार सफेद-सफेद धूलीके मण्डलसे वे सहित थे और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानो सूर्यकी किरणोंको तिरस्कृत करनेवाले, होनहार पतिके साथ स्नेह करनेवाली पृथिवीके द्वारा समर्पित सफेद छत्रसे ही मानो सहित थे। जिस प्रकार सूर्य, कभी अपना साथ न छोड़नेवाली लाल-लाल किरणोंसे दोषास्पद—रात्रिमें स्थित रहनेवाले राजा—चन्द्रमा-

मित्रैर्मित्र इवांशुभिर्मुषितदोषास्पदराजदीप्तिः, निष्प्रत्यूहसमीहितसिद्धि[1]रेवान्तरालकबहुकमध्वानं क्रमयन्नप्यविदितपरिश्रमः, क्रमेण पराक्रमकराकृष्टया[2]ऽभ्युद्गच्छतां पुरौकसामतुच्छरभसाङ्घ्रिसंघट्टकैः काश्यपीपृष्ठं काष्ठाङ्गारं च कम्पयन्कटकनिकट[3]माटीकते स्म।

§ ८४ पुनः पराक्रमपुनरुक्तप्रेक्षणीयं पुराभ्यन्तरमाश्रयन्तं वीरश्रिया अभिनववर[4]मालोकयितुमागतम्, आगमनपारवश्येन स्रस्तकेशहस्तविन्यस्तवामहस्तम्, हस्ताङ्गुलिनखमयूखपुनरुदीरितचिकुरपल्लवापीडम्, शिथिलितनीवीप्रदेशनिहितापरपाणिपल्लवं पल्लवितरागाद्यागतं कामि-

वर्धमानोऽतिशयितो रागोऽरुणिमा येषां तैः, अनारतं निरन्तरम् अजहती वृत्तिर्येषां तैः सततमजहद्भिरित्यर्थः, अंशैरवयवैरिव मित्रैः, अंशुभिः किरणैः मित्र इव सूर्य इव मुषिता समपहृता दोषास्पदराजस्य दुर्गुणस्थान-नृपस्य काष्ठाङ्गारस्येति यावत्, दीप्तिः शोभा येन सः, सूर्यपक्षे मुषिता दोषास्पदस्य रात्रिगोचरस्य राजश्चन्द्रस्य दीप्तिर्येन सः, निष्प्रत्यूहा निर्विघ्ना समीहितसिद्धिर्यस्य सः, अन्तरालेन बहुकमित्यन्तरालक-बहुकं दूरम् अध्वानं मार्गं क्रमयन्नपि अविदितः परिश्रमो येन सः, क्रमेण क्रमशः पराक्रम एव करस्तेनाकृष्टिस्तया, अभ्युद्गच्छतां संमुखमागच्छतां पुरौकसां नगरनिवासिनाम् अतुच्छरभसास्तीव्रवेगा येऽङ्घ्रिसंघट्टकाः पदाघातास्तैः काश्यपीपृष्ठं महीपृष्ठं काष्ठाङ्गारं च कम्पयन् कटकनिकटं राजधानीसमीपम् आटीकते स्म समाजगाम।

§ ८४. पुनः पराक्रमेति—पुनरनन्तरं पराक्रमेण शबरविजयरूपेण पुनरुक्तं भूयो भूयो यथा स्यात्तथा प्रेक्षणीयो दर्शनीयस्तं, पुराभ्यन्तरं नगराभ्यन्तरमाश्रयन्तं वीरश्रिया वीरलक्ष्म्या अभिनववरं नूतनपतिम्, जीवंधरम् आदरात् आलोकयितुं द्रष्टुमागतम् अबलारूपं नारीमयम् असंख्यमपरिमितम् अनङ्गबलं स्मरसैन्यं प्रतिप्रदेशं स्थाने स्थाने प्रत्यदृश्यत। अथ तस्यैव विशेषणान्याह—आगमनस्य पारवश्यं समुत्कण्ठाजनिता विवशता तेन, स्रस्ते बन्धनोन्मुक्तत्वादधोलम्बिते केशहस्ते केशपाशे विन्यस्तः स्थापितो वामहस्तो येन तत्, हस्ताङ्गुलीनां करशाखानां नखमयूखैर्नखरश्मिभिः पुनरुदीरिताश्चिकुरपल्लवापीडाः केशाञ्चितपल्लवशेखरा यस्य तत्, शिथिलिते उन्मुक्तबन्धनप्राये नीवीप्रदेशेऽधोवस्त्रग्रन्थिस्थाने निहितः स्थापितोऽपरपाणिपल्लवो येन तत्, अतएव पल्लवितरागाद् वृद्धिंगतप्रीत्या आगतं कामिजन-

की दीप्तिको अपहृत कर लेता है उसी प्रकार जीवन्धरकुमारने भी सर्वप्रथम युद्धकी सफलता-से जिनका राग–प्रेम बढ़ रहा था और जो निरन्तर साथ न छोड़नेसे अपने अंशोंके समान जान पड़ते थे ऐसे मित्रोंसे दोषास्पद—अनेक अवगुणोंके स्थान राजा—काष्ठाङ्गारकी दीप्तिको अपहृत कर लिया था। निर्विघ्न मनोरथकी सिद्धि हो जानेसे बहुत लम्बा मार्ग लाँघनेपर भी उन्हें परिश्रमका अनुभव नहीं हो रहा था। और क्रम-क्रमसे पराक्रमरूप हाथके खींचनेसे ही मानो सामने आते हुए नगरवासियोंके अत्यधिक वेगयुक्त चरणोंके आघातसे वे पृथिवी-तल तथा काष्ठाङ्गार दोनोंको कम्पित कर रहे थे।

§ ८४. तदनन्तर पराक्रमके द्वारा पुनः-पुनः दर्शनीय, नगरके भीतर आते हुए वीरलक्ष्मी-के नूतन पति जीवन्धरकुमारको आदरसे देखनेके लिए जगह-जगह अनेक स्त्रियोंका वह समूह इकट्ठा हो गया जो कामदेवकी असंख्य सेनाके समान दिखाई देता था। शीघ्र आनेकी विवशतासे उन स्त्रियोंके केशपाश खुल गये थे और उन्हें संभालनेके लिए उनपर उन्होंने अपना बायाँ हाथ रख छोड़ा था। हाथकी अँगुलियोंके नखोंकी किरणोंसे उनके केशोंमें गुँथे हुए पल्लवोंके समूह पुनरुक्त हो रहे थे। ढीली नीवीके स्थानपर उन्होंने अपना दूसरा हाथरूप

१. म० समीहितसिद्धे। २. क० ख० ग० पराक्रमकरकृष्टेः। ३. कटकनिकटं पत्तनसमीपमिति टिप्पणी। ४. क० ख० ग० अभिनवपरम्।

कामकृदयमिव करेण गृह्णत्, ईषदवगलितकुचांशुकं कुचकुम्भकुम्भिनो रतिरणसंरम्भाय घटयदिव मुखपटम्, विद्राविलविद्रुमच्छविना दन्तच्छदरागेण हृदयान्तर्गतरागप्राग्भारमिव प्रदर्शयत्, धवलितपुरोभागं सौभाग्यचन्द्रचन्द्रिकोदयमिव मन्दहसितममन्दादरादाचारलाजनिकरमिव विकिरत्, समारोपितचारुतरभ्रूलताचापं लक्ष्यभेददक्षतीक्ष्णकटाक्षशरमोक्षचतुरमबलाकल्पनकुवलमसंख्यं प्रतिप्रदेशं प्रत्यदृश्यत।

§ ८५. तदपि दर्शनप्रसादेनपरितोषयन्नुल्लोकहर्षलोकलोचनमनोभिरनुगम्यमानः परार्ध्यजन्मायं परिकल्पितानल्पमङ्गलार्हपरिबर्हविराजितं निजभवनमासाद्य सद्यःसमुपसृतपद्मपुखप्रमुख[2]द-

हृदयमिव कामुकजनमानसमिव करेण हस्तेन गृह्णत् दधत्, ईषद् मनाग् अवगलितं स्रस्तं कुचांशुकं स्तनवस्त्रं यस्य तत्, अतएव रतिरणसंरम्भाय सुरतयुद्धोद्योगाय कुचकुम्भकुम्भिनः कुचकलशकरिणो मुखपटं मुखवस्त्रं घटयदिव वितन्वदिव, विद्राविता दूरीकृता विद्रुमस्य प्रवालस्य 'मूँगा' इति हिन्द्यां प्रसिद्धस्य छविः कान्तिर्येन तेन दन्तच्छदरागेण अधरलौहित्येन हृदयान्तर्गतश्चासौ रागप्राग्भारश्च तं हृदयस्थितप्रीतिसमूहं प्रदर्शयदिव, धवलितः शुक्लीकृतः पुरोभागो यस्य तत्, सौभाग्यमेव चन्द्रस्तस्य चन्द्रिकोदयमिव ज्योत्स्नोदयमिव, मन्दहसितं मन्दहास्यम् अमन्दादराद् भूयिष्ठादराद् आचाराय प्रचलितपद्धतये लाजानां भर्जितधान्यपुष्पाणां निकरः समूहस्तं विकिरदिव प्रकीर्णं कुर्वदिव, समारोपितः सप्रत्यञ्चीकृतश्चारुतरभ्रूलताचापो येन तत्, लक्ष्यभेदे शरव्यभेदे दक्षाः समर्था ये तीक्ष्णकटाक्षा एव शरा बाणास्तेषां मोक्षे मोचने चतुरं विदग्धम्।

§ ८५. तदपीति—तदपि अनङ्गबलं दर्शनमेव प्रसादस्तेन दृष्टिप्रसादेन परितोषयन् संतुष्टं कुर्वन् उल्लोको हर्षो येषां त उल्लोकहर्षास्ते च ते लोकाश्च तेषां लोचनमनोभिर्नयनचेतोभिः अनुगम्यमानः, परार्ध्यं श्रेष्ठं जन्म यस्य सः, अयं जीवंधरः परिकल्पितै रचितैरनल्पमङ्गलार्हपरिबर्हैर्भूयिष्ठमङ्गलयोग्योपकरणैर्विराजितं शोभितं निजभवनं स्वसदनमासाद्य प्राप्य सद्यः शीघ्रं समुपसृतैः समीपागतैः पद्ममुखप्रमुखैः

पल्लव रख छोड़ा था जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो बढ़ते हुए रागसे आगत कामीजनोंके हृदयको अपने हाथसे पकड़ ही रही हों। उनके स्तनका वस्त्र कुछ-कुछ नीचेकी ओर खिसक गया था उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो रतिरूपी युद्धको प्रारम्भ करनेके लिए स्तनकलश रूप हाथीके मुखके वस्त्रको दूर ही कर रही थीं। मूँगाकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाली ओठोंकी लालीसे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो हृदयके भीतर स्थित रागकी वल्लभताको ही दिखला रही हों। अग्रभागको सफेद करनेवाले एवं सौभाग्यरूपी चन्द्रमाकी चाँदनीके उदयके समान दिखनेवाले मन्द हास्यको वे प्रकट कर रही थीं उनसे ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वागतके लिए लाईका समूह ही बिखेर रही हों। उन्होंने अत्यन्त सुन्दर भ्रकुटिलतारूपी धनुषको चढ़ा रखा था और वे लक्ष्यके भेदनेमें चतुर तीक्ष्ण कटाक्षरूपी बाणोंके छोड़नेमें चतुर थीं।

§ ८५. जो उन स्त्रियोंके समूहको भी दर्शनके प्रसादसे सन्तुष्ट कर रहे थे तथा अत्यधिक हर्षसे युक्त मनुष्योंके नेत्र और मनसे जो अनुगम्यमान थे ऐसे श्रेष्ठ जन्मके धारक जीवन्धर कुमार, रचे हुए अनेक मंगलमय उपकरणोंसे सुशोभित अपने घर पहुँचकर पर्वतसे सिंहके बच्चेके समान रथसे नीचे उतरे। शीघ्र ही सम्मुख आये हुए पद्मसुख आदि मित्रोंने उन्हें

१. क० ख० ग० अमन्दरागात्। २. क० 'प्रमुख' पदं नास्ति।

त्तपाणिः पाणौ कुर्वन्निव प्रभावश्रियं शिलोच्चयादिव केसरिकिशोरः स्यन्दनादवरुरोह । प्रणनाम च सविनयं पितरं मातरं च प्रेमसंभारेण । संभावयामास संमुखमागतं गाढालिङ्गितेन प्रौढवचसा मुग्धहसितेन स्निग्धनिरीक्षणेन शिरःकम्पनेन करप्रसारेण च यथाप्रधानं प्रथमानहृदयबन्धं बन्धुवर्गम् । पुनर्निसर्गचतुरः प्रणामाञ्जलिं पुरःपुञ्जितं[1] नियुञ्जानः स्यन्दनयुग्यांश्च विश्रमाय प्रश्रयशालिपरिजनं विशन्वेश्मोदरमादरकातर्यादुदश्रुमुख्या प्रस्नविन्या जनन्या निर्वर्तितनीराजनविधिरारुरोह हृच्छल्यविधानेन विद्विषां प्रेमबन्धेन बन्धूनां लावण्यातिशयेन पण्यनारीणां गुणगरिम्णा गुणलुब्धानां हृदयं सविलासनिवासेनासनस्य मध्यं च ।

§ ८६. अथ प्रथितयशसा तेजसां निधिना पुत्रेण पवित्रतपसां योग्यादहं कुतो भाग्यात्पुत्र-

पद्मास्यप्रभावैर्दत्तः पाणिर्यस्य तथाभूतः प्रभावश्रियं प्रभावलक्ष्मीं पाणौ कुर्वन्निव हस्ते विदधदिव शिलोच्चयात्पर्वतात् केसरिकिशोर इव सिंहबालक इव स्यन्दनाद् रथाद् अवरुरोह समवततार । सविनयं यथा स्यात्तथा प्रेमसंभारेण प्रीत्युद्रेकेण पितरं गन्धोत्कटं मातरं तत्पत्नीं च प्रणनाम नमश्चकार । संमुखमागतं प्रथमानो हृदयबन्धो यस्य तथाभूतं बन्धुवर्गं स्नेहिसमूहं यथाप्रधानं गाढालिङ्गितेन प्रगाढाश्लेषेण, प्रौढवचसा प्रकृष्टवचनेन, मुग्धहसितेन सुन्दरहास्येन, स्निग्धनिरीक्षणेन स्नेहाढ्यविलोकनेन, शिरःकम्पनेन मूर्धचालनेन करप्रसारेण च, संभावयामास सच्चकार च । पुनरनन्तरं निसर्गचतुरः प्रकृतिविदग्धो जीवंधरः, प्रणामाञ्जलिं प्रणामायाञ्जलयो यस्य तथाभूतं पुरःपुञ्जितमग्रे संगतं प्रश्रयशालिपरिजनं विनयविशोभिसेवकसमूहं स्यन्दनयुग्यांश्च रथवाहांश्च विश्रमाय नियुञ्जानो समाज्ञपयन्, वेश्मोदरं भवनमध्यं विशन्, आदरकातर्यात् उदश्रुमुख्या साश्रुवदनया प्रस्नविन्या क्षरत्कुचया जनन्या निर्वर्तितो नीराजनविधिर्यस्य तथाभूतोऽयं जीवंधरो हृदि शल्यस्य विधानं तेन चेतःशल्यसमुत्पादनेन विद्विषां शत्रूणां, प्रेमबन्धेन बन्धूनां स्नेहभाजाम्, लावण्यातिशयेन सौन्दर्याधिक्येन पण्यनारीणां रूपाजीवानां गुणगरिम्णा गुणगौरवेण गुणेषु लुब्धास्तेषां गुणज्ञानां हृदयं चेतः सविलासश्चासौ निवासश्च तेन सविलासनिवासेन आसनस्य विष्टरस्य च मध्यम् आरुरोह ।

§ ८६. अथेति—अथानन्तरं पितरि जनके पवित्रं तपो येषां तेषां पवित्रतपश्चारिणां योग्यात्

हाथका सहारा दिया जिससे वे प्रभावरूप लक्ष्मीको हाथमें करते हुए के समान जान पड़ते थे। उन्होंने रथसे उतरकर प्रेमातिरेकसे विनयपूर्वक पिता और माताको नमस्कार किया। तथा जिनके हृदयका बन्धन प्रसिद्ध था ऐसे सम्मुखागत बन्धु वर्गमें किसीको गाढ़ आलिंगनसे, किसीको प्रौढ़ वचनोंसे, किसीको सुन्दर हास्यसे, किसीको स्नेह-भरी दृष्टिसे, किसीको शिर हिलानेसे, और किसीको हाथ पसारनेसे जो जैसा प्रधान था उस तरह सत्कृत किया। तदनन्तर स्वभावसे ही चतुर जीवन्धर कुमारने प्रणाम करनेके लिए हाथ जोड़कर आगे खड़े हुए विनयावभासी परिजनोंको रथके घोड़ोंको विश्राम करानेकी आज्ञा दे महलके भीतर प्रवेश किया। वहाँ आदरकी कातरतासे जिसका मुख हर्षाश्रुओंसे व्याप्त था तथा जिसके स्तनोंसे दूध झर रहा था ऐसी माताने उनकी आरती उतारी। तदनन्तर वे हृदयमें शल्य करनेसे शत्रुओंके हृदयपर, प्रेमके बन्धनसे बन्धुओंके हृदयपर, सौन्दर्यकी अधिकतासे वेश्याओंके हृदयपर और विलासपूर्ण स्थितिसे आसनके मध्यभागपर आरूढ हुए।

§ ८६. तदनन्तर 'प्रसिद्ध यशके धारक तथा तेजके भाण्डारस्वरूप इस पुत्रसे मैं पवित्र

१. म० प्रणामाञ्जलिपुरःपुञ्जितम् ।

वानस्मीति विस्मयस्नेहमुखरे पितरि, वितर्कयति कथमुदर्कः स्यान्निसर्गवीरकुमारवीर्यस्येति विचारनिष्ठे काष्ठाङ्गारे, प्रतिदिशं प्रतिदेशं[1] प्रत्यगारं च कुरुकुलशिखामणेः कुवलयकुटीरसंकटनिवासनिबिडिताभोगां भोगावलीमुपलालयति बाले जरति यूनि च जने, रामभद्रमिव भ्रात्रा प्रलयसमयमिव मित्रमण्डलेन महीध्रमिव वंशजातेन चन्द्रमसमिव सद्भिः सकलगुणनिकरपरिपूरितैर्वयस्यैः परिवृतं कुमारमभिवन्द्य नन्दगोपः स्वसंतानस्य पुरातनतां राजकुलभृत्यतां[2] च पुरातनषण्मुखमुखविशिष्टानामविशिष्टजातिजाताङ्गनासंगमसंकथां च कथयन् 'भवद्विहितनिर्हेतुकोपकारस्य प्रत्युपकारमपश्यता मया दिश्यमानां परिणयतु मे कन्याम् । न मन्येतान्यत्' इति सदैन्यमयाचत । स च कुरुवंशनभोंऽशुमाली नीचकुलललनासंपर्कमविवेकिवर्गसुलभमाकलयन्

कुतो भाग्यात् भागधेयाद् अहं प्रथितयशसा प्रसिद्धकीर्तिना तेजसां प्रतापानां निधिना भाण्डारेण पुत्रेण जीवकेन पुत्रवान् सपुत्रोऽस्मीति विस्मयस्नेहाभ्यां मुखरस्तस्मिन् तथाभूते सति, निसर्गेण वीरो निसर्गवीरः स चासौ कुमारस्तस्य वीर्यस्य पराक्रमस्य उदर्कः परिणामः कथं कीदृक् स्यात् इति विचारनिष्ठे काष्ठाङ्गारे-वितर्कयति विचारयति सति, प्रतिदिशं प्रतिकाष्ठं, प्रतिदेशं प्रतिजनपदं प्रतिस्थानं वा प्रत्यगारं च प्रतिभवनं च बाले, जरति वृद्धे यूनि तरुणे च जने कुरुकुलशिखामणेः कुरुवंशशिरोरत्नस्य स्वामिनः, कुवलयं महीमण्डलमेव कुटीरं तत्र संकटनिवासेन संकीर्णावासेन निबिडितः सान्द्रीभूत आभोगो विस्तारो यस्यास्तां भोगावलीं कीर्तिगाथाम् उपलालयति सति, रामभद्रमिव दाशरथिमिव भ्रात्रा नन्दाढ्येन पक्षे लक्ष्मणादिना, प्रलयसमयमिव कल्पान्तकालमिव मित्रमण्डलेन सुहृत्समूहेन पक्षे सूर्यसमूहेन, महीध्रमिव पर्वतमिव वंशजातेन कुलोत्पन्नेन पक्षे वेणुसमूहेन, चन्द्रमसमिव चन्द्रमिव सद्भिः नक्षत्रैः पक्षे सज्जनैः, सकलगुणानां निखिलगुणानां निकरेण समूहेन परिपूरितास्तथाभूतैर्वयस्यैः परिवृतं कुमारं जीवंधरम् अभिवन्द्य नमस्कृत्य नन्दगोपः स्वसंतानस्य निजसंततेः पुरातनतां प्राचीनतां राजकुलस्य राजवंशस्य भृत्यतां दासतां च पुरातनाः पूर्वभवाः षण्मुखमुखाः षण्मुखप्रधाना ये विशिष्टा विशिष्टपुरुषास्तेषाम् अविशिष्टजातिजाताङ्गनानाम् असमानजातिसमुत्पन्ननारीणां संगमकथा या समागमवार्ता तां च कथयन् 'भवता विहितो यो निर्हेतुक उपकारस्तस्य प्रत्युपकारम् अपश्यताऽनवलोकमानेन मया दिश्यमानां प्रदीयमानां मे कन्यां परिणयतु विवहतु । अन्यत् अन्यथा न मन्येत' इति सदैन्यं यथा स्यात्तथाऽयाचत । कुरुवंशनभोंऽशुमाली कुरुवंश-

तपके धारक जनोंके योग्य किस भाग्यसे पुत्रवान् हुआ हूँ' इस प्रकार पिता गन्धोत्कट जब आश्चर्य और स्नेहसे मुखर हो रहे थे—उक्त शब्द प्रकट कर रहे थे। काष्ठांगार जब इस प्रकारके विचारमें निमग्न था कि स्वभावसे वीर जीवन्धर कुमारके पराक्रमका परिणाम किस प्रकार होगा ? दिशा-दिशामें, देश-देशमें और घर-घरमें जब बालक, बूढ़े और तरुण पुरुष कुरुवंशके शिरोमणि जीवन्धर कुमारकी उस बिरुदावलीकी प्रशंसा कर रहे थे कि जिसका विस्तार पृथिवीमण्डलरूपी छोटी-सी कुटियामें संकीर्णता पूर्ण निवास करनेसे सान्द्रताको प्राप्त हो रहा था। तदनन्तर जो रामचन्द्रजीके समान अपने भाईसे सहित थे, प्रलयकालके समान मित्रमण्डल–सूर्यमण्डल (पक्षमें मित्रगण) से युक्त थे, पर्वतके समान वंशजात–बाँसोंके समूह (पक्षमें उत्तम कुलोंके समूह) से सहित थे, चन्द्रमाके समान नक्षत्रों (पक्षमें सज्जनों) से युक्त थे और समस्त गुणोंके समूहसे परिपूर्ण मित्रोंसे घिरे हुए थे ऐसे जीवन्धर कुमारको नमस्कार कर नन्दगोपने बड़ी दीनतासे यह याचना की कि आप मेरी कन्याको स्वीकृत कीजिए–अन्यथा न समझिए। याचना करते समय उसने अपने वंशकी प्राचीनता बतलायी। मैं राज-

१. ख० प्रतिप्रदेशं, प्रतीपदेशम् । क० प्रतिदिशं प्रतीपदेशम् । ग० प्रतिदिशं प्रतिप्रदेशम् । २. म० राजकुलकुलभृत्यताञ्च ।

'अकमत्यर्थमर्थितया । माम, यथाभिमतम्'[1] इति स्वमतानुरूपमुदीरयामास ।

§ ८७. स च तावता तुष्टो गोपप्रष्ठस्तद्वचनमाकर्ण्य सुखार्णवे निमज्जंस्तर्णककुलचर्वितासन्नदूर्वागुच्छशबलितोपशल्यं निःशल्यः प्रविश्य गृहं गृहिण्या अनया वार्तया प्रवर्तयञ्छ्रवणोत्सवं दुहितृकल्याणमहोत्सवे महान्तमकुरुत संरम्भम् । अथ प्रथमानवीर्यधनकुमारसंबन्धेन गोधनोपलम्भादपि शंभरसंभ्रमैर्गोसंख्यानां मुख्यस्य गुणैः प्रवृद्धे द्विगुणितौत्सुक्यजनविहितविवाहोत्सवकर्मणि पल्लवितरागवल्लवरामाकरपल्लवसंपर्कपुनरुक्तरागरक्तमृदुपलिप्तभित्तौ रम्भास्तम्भ-

गगनसूर्यः स च जीवंधरो नीचकुलकलत्रैः अधमगोपालकस्त्रियाः संपर्कः सुलभम् अविवेकिनां मुग्धमनुष्याणां सुलभम् आकलयन् विचारयन् 'अत्यर्थं प्रचुरम् अर्थितया याचनया अलं पर्याप्तम् । हे माम ! यथाभिमतम् अभिमतमनतिक्रम्येति यथाभिमतं यथा तवेष्टं तथैव मे स्वीकृतमिति यावत्' इति स्वमतानुरूपं स्वाभिप्रायसदृशम्, उदीरयामास कथयामास ।

§ ८७. स चेति—तावता तावन्मात्रेण तुष्टः स च गोपप्रष्ठो नन्दगोपः तद्वचनं जीवंधरवचनम् आकर्ण्य श्रुत्वा सुखार्णवे सुखसागरे निमज्जन् बुडन् तर्णककुलैर्वत्ससमूहैश्चर्वितं भक्षितमग्रं येषां तथाभूता ये दूर्वागुच्छाः शतपर्वस्तबकास्तैः शबलितं चित्रितमुपशल्यं समीपप्रदेशो यस्य तथाभूतं गृहं सदनं निःशल्यः शल्यरहितः सन् प्रविश्य, अनया वार्तया अनेन समाचारेण गृहिण्या अपि भार्याया अपि श्रवणोत्सवं कर्णोल्लासं प्रवर्तयन् दुहितुः पुत्र्याः कल्याणमहोत्सवो विवाहमहोत्सवस्तस्मिन् महान्तं संरम्भमुद्योगम् अकुरुत । अथानन्तरम् प्रथमानं प्रथितीभवद् वीर्यमेव धनं यस्य तथाभूतो यः कुमारो जीवंधरस्तस्य संबन्धेन गोधनोपलम्भादपि गोधनप्राप्त्यपेक्षयापि शंभरः सुखोत्पादकः संभ्रमो येषां तैः गोसंख्यानां गोपानां मुख्यस्य गुणैः, द्विगुणितमौत्सुक्यं यस्य तथाभूता ये जनास्तैर्विहितं कृतं यद् विवाहोत्सवकर्म परिणयनोत्सवकर्म तस्मिन् प्रवृद्धे सति, पल्लवितेति—पल्लवितो वृद्धिंगतो रागो यासां तथाभूता या वल्लवरामा गोपगृहिण्यस्तासां करपल्लवानां हस्तकिसलयानां संपर्केण पुनरुक्तरागा पुनरुद्दीरितलौहित्या या रक्तमृद् लोहितमृत्तिका तयोपलिप्ता भित्तयः कुड्या यस्मिन् तस्मिन्, रम्भेति—

वंशका कुलपरम्परागत सेवक हूँ''' यह कहा और साथ ही उसने पण्मुख आदि विशिष्ट पुरुषोंका सामान्य जातिमें उत्पन्न स्त्रियोंके साथ समागम हुआ है यह कथा सुनायी । आपने मेरा अकारण उपकार किया है, मैं बदलेमें आपका दूसरा उपकार न देख अपनी कन्या समर्पित कर रहा हूँ''' यह भाव प्रकट किया ।

§ ८७. कुरुवंशरूपी आकाशके सूर्य जीवन्धरकुमार, 'नीचकुलकी स्त्रियोंके साथ सम्पर्क करना अविवेकी मनुष्योंके लिए सुलभ है' ऐसा विचार करते हुए बोले कि 'अत्यधिक याचना करना व्यर्थ है । मामाजी ! आप जो चाहते हैं वह मुझे इष्ट है' इस प्रकार कहकर उन्होंने अपने अभिप्रायकी अनुकूलता प्रकट की । गोपालोंका स्वामी नन्दगोप उतनेसे ही सन्तुष्ट हो गया । वह उनके वचन सुन सुखके सागरमें निमग्न हो गया । जिनका अग्रभाग बछड़ोंके द्वारा चबाया गया था ऐसी दूबाके गुच्छोंसे जिसका समीपवर्ती स्थान चित्रित था ऐसे घरमें निःशल्य भावसे प्रवेश कर उसने इस समाचारसे अपनी स्त्रीके भी कानोंको आनन्द उत्पन्न कराया । वह अपनी पुत्रीके विवाहोत्सवकी बड़ी-बड़ी तैयारियाँ करने लगा । तदनन्तर प्रसिद्ध पराक्रमरूपी धनके धारक जीवन्धर कुमारके साथ सम्बन्ध होनेसे, गोधनकी प्राप्तिकी अपेक्षा भी अधिक सुख और संभ्रमको धारण करनेवाले गोपपति—नन्दगोपके गुणोंसे जो अत्यधिक वृद्धिको प्राप्त हो रहा था, दुगुनी उत्सुकतासे युक्त मनुष्योंके द्वारा जहाँ विवाहोत्सवके कार्य किये गये थे, रागसे भरी गोपालस्त्रियोंके हस्तरूपी पल्लवोंके सम्पर्कसे पुनरुक्त लालिमासे

1. क० ख० ग० माम, नयथाभिमतम् ।

क्षुम्भितद्वारि संमर्दविघटितघटकटाहप्रवहदाज्यदधिदुग्धकर्दमितभुवि हरितगोमयोपलिप्तस्थल-निष्पादितदम्यशष्पाङ्कुरतृषि कोलाहलक्षुभितवत्सवात्सल्याकुलकुण्डोध्नीकुण्डलितविषाणकोटि-विघटितजनविमर्दे गोसंख्यमुख्यावासे स्नातानुलिप्तामलंकृतविस्मितामालोक्य विस्मयस्मेरमुखा-भिर्वल्लववल्लभाभिः 'अस्या वल्लभ एनां केन सुकृतेन क्षीरमधुरस्वरामपनीतनवनीतमार्दवा-डम्बरां तदात्वद्रुतसर्पिःसंकाशकायकान्ति मुकुलितयूथिकामुकुलधवलिम[1]सौकुमार्यदन्तपङ्क्ति निर्वासितवायसकालिमकचपल्लवामुद्भिद्यमानवृषककुदोपहासिकुचयुगलामनुभोक्तुं लब्धवान्' इति व्यक्तमुपलाल्यमानां गोदावरीदुहितरं गोविन्दामानीय नन्दगोपः कुमारकरकमले वारि समा-वर्जयत्। कुमारोऽपि 'अमूं मामेव गात्रमात्रभिन्नं मन्यस्व' इति वदन् 'पद्ममुखाय' इति

रम्भास्तम्भैर्मोचास्तम्भैः क्षुम्भितानि द्वारि यस्य तस्मिन्, संमर्देति—संमर्देन विघटिता या घटघटा घटश्रेणयस्ताभ्यः प्रवहद्भिः स्रवद्भिराज्यदधिभिर्दुग्धघृतदधिभिः कर्दमिता पङ्किला भूर्यस्मिंस्तस्मिन्, हरितेति—हरितगोमयेन हरिद्वर्णगोवरेणोपलिप्तैः स्थलैर्निष्पादिता दम्यानां वत्सकानां शष्पाङ्कुरतृड् हरितघासाङ्कुरतृष्णा यस्मिंस्तस्मिन्, कोलाहलेति—कोलाहलेन कलकलरवेण क्षुभिताः प्रासक्षोभा ये वत्सास्तेषां वात्सल्येनाकुलाः याः कुण्डोध्न्यो गावस्तासां कुण्डलितानि वक्रीकृतानि विषाणकोटिभिः शृङ्गाग्रभागैर्वि-घटितो विद्रावितो जनविमर्दो जनसमूहो यस्मिंस्तस्मिन् गोसंख्यमुख्यावासे नन्दगोपभवने, आदौ स्नाता पश्चादनुलिप्ता ताम्, अलंकृता चासौ विस्मिता च ताम् आलोक्य विस्मयेनाश्चर्येण स्मेरमुखास्ताभिः वल्लववल्लभाभिर्गोपाङ्गनाभिः 'अस्या वल्लभः क्षीरमिव मधुरः स्वरो यस्यास्ताम्, अपनीतो दूरीकृतो नवनीतमार्दवाडम्बरो यया ताम्, तदात्वद्रुतं तत्कालनिस्यन्दितं यत् सर्पिर्घृतं तस्य संकाशा काय-कान्तिर्देहदीप्तिर्यस्यास्ताम्, मुकुलिताः कुड्मलिता या यूथिकास्तासां मुकुलानां कुड्मलानामिव धवलिमा सौकुमार्यं च यस्यास्तथाभूता दन्तपङ्क्तिर्यस्यास्ताम्, निर्वासितो दूरीकृतो वायसानां काकानां कालिमा यैस्तथाभूताः कचपल्लवा यस्यास्ताम्, उद्भिद्यमानं प्रकटीभवद् वृषककुदोपहासि कुचयुगलं यस्यास्ताम्, एवंभूताम् एनां कुमारीम् अनुभोक्तुं केन सुकृतेन केन पुण्येन लब्धवान्' इति व्यक्तं यथा स्यात्तथा

युक्त लाल मिट्टीसे जहाँ दीवालें लीपी गयी थीं, जहाँ केलेके खम्भोंसे दरवाजे सुशोभित हो रहे थे,भीड़की अधिकतासे फूटे हुए घड़ोंके समूहसे निकलकर बहनेवाले दूध, घी और दहीके द्वारा जहाँकी भूमिमें कीचड़ मच रही थी, हरे-हरे गोबरसे लिपे हुए स्थलमें जहाँ बछड़ोंको घासके अंकुरोंकी तृष्णा उत्पन्न हो रही थी, और कोलाहलसे क्षुभित बछड़ोंके स्नेहसे व्यग्र गायोंके गोल-गोल सींगोंके अग्रभागसे जहाँ मनुष्योंकी भीड़ तितर-बितर की जा रही थी ऐसे नन्दगोपके भवनमें स्नानके अनन्तर लेपको धारण करनेवाली आभूषणोंसे सुसज्जित और आश्चर्यको उत्पन्न करनेवाली गोदावरीकी पुत्री गोविन्दाको देख आश्चर्यसे खिलनेवाले मुखोंसे युक्त गोपालक स्त्रियाँ उसकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगीं। जिसका स्वर दूधके समान मीठा है, जिसने मक्खनकी कोमलताका आडम्बर दूर कर दिया है, जिसके शरीरकी कान्ति तत्काल पिघलाये हुए घीके समान है, जिसके दाँतोंकी पंक्तिने जुहीकी बोंडियोंकी सफ़ेदी और सुकुमारताको तिरस्कृत कर दिया है, जिसके केशोंके अंचलने कौएकी कालिमाको दूर कर दिया है, और जिसके बैलकी काँदोलकी हँसी उड़ानेवाले स्तनोंकी जोड़ी उठ रही है ऐसी इस कन्याको उपभोग करनेके लिए इसके पतिने किस पुण्यसे प्राप्त किया है ? गोविन्दाको लाकर नन्दगोपने जीवन्धर कुमारके हस्तकमलमें जल छोड़ा। और कुमारने भी इसे शरीरमात्रसे

१. क० ख० ग० धवलितम।

पयोधारां पर्यग्रहीत् । पद्ममुखस्तदनु गोविन्दां प्रदक्षिणभ्रमणपिशुनितशुभोदर्कार्चिषः सप्तार्चिषः संनिधौ तदीयपाणिपल्लवस्पर्शपल्लवितरागस्तां पर्यणैषीत् ।

८८. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ
गोविन्दालम्भो नाम द्वितीयो लम्भः ।

■

उपलाल्यमानां प्रशस्यमानां गोदावरीदुहितरं गोविन्दामानीय नन्दगोपः कुमारकरकमले जीवंधरहस्तारविन्दे वारि समावर्जयन् ददौ । कुमारोऽपि 'अमुं पुरोवर्तमानं मामेव गात्रमात्रेण शरीरमात्रेण भिन्नं मन्यस्व' इति वदन् कथयन् 'पद्ममुखाय' इति वार्यहम् एतां वारिधारामहं पद्ममुखाय गृह्णामीति कथयित्वा पयोधारां जलधारां पर्यग्रहीत् । तदनु पद्ममुखस्तदीयपाणिपल्लवस्पर्शेन पल्लवितो वृद्धिंगतो रागो यस्य तथाभूतः सन् तां गोविन्दाम् प्रदक्षिणभ्रमणेन पिशुनितः सूचितः शुभोदर्को यैस्तथाभूतान्यर्चींषि ज्वाला यस्य तस्य सप्तार्चिषोऽग्नेः संनिधौ पर्यणैषीत् परिणीतवान् ।

§ ८८. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ गोविन्दालम्भो नाम द्वितीयो लम्भः ॥२॥

■

भिन्न मुझे ही समझो' यह कह पद्ममुखके लिए जलधारा ग्रहण की । तदनन्तर गोविंदाके हस्तरूपी पल्लवके स्पर्शसे जिसका राग बढ़ रहा था ऐसे पद्ममुखने, प्रदक्षिण भ्रमणसे शुभफलको सूचित करनेवाली ज्वालाओंसे युक्त अग्निके सान्निध्यमें उसे विवाहा ।

§ ८८. इस प्रकार वादीभसिंह सूरि-विरचित गद्यचिन्तामणिमें गोविन्दालम्भ (गोविन्दाकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला) नामका द्वितीय लम्भ पूर्ण हुआ ।

■

तृतीयो लम्भः

§ ८९. अथ परिस्फुरत्पङ्केरुहभङ्गिभासुरमुखे[1] पद्ममुखे पवनसखसाक्षिकं सानन्देन नन्दगोपेन दत्तामिन्दुमुखीं गोविन्दां परिणीय निजावर्जननैपुणपरिहृतपङ्कजशशाङ्कपरस्परविरोधपुनरावृत्तिशङ्कयेव तया सह सदा संगते रममाणे गोविन्दारमणे, वीरश्रीजीवितेश्वरे जीवककुमारेऽप्यनुदिनम् 'अनुजीवककुमारं वीर्यवन्तः शौर्यशालिनो मान्या वदान्याः प्राप्तरूपा अभिरूपाश्च' इति गुणलुब्धैरभिष्टूयमानगुणराशौ राजति,[2] राजपुरीवास्तव्यः समस्तगुणशेवधिरनवधिकश्रीः श्रीदत्तो नाम वैश्योत्तमो वित्तोपचये व्यासक्तमतिरेवं व्यचीचरत् ।

---

§ ८९. अथेति—अथानन्तरं परिस्फुरन्ती विकसन्ती या पङ्केरुहभङ्गिः कमलपरम्परा तद्वद्भासुरं मुखं यस्य तस्मिन् पद्ममुखे जीवंधरसुहृदि पवनसखो वह्निःसाक्षी यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात्तथा सानन्देन सप्रमोदेन नन्दगोपेन गोपालप्रमुखेन दत्तां समर्पिताम् इन्दुमुखीं चन्द्रवदनां गोविन्दां परिणीय विवाह्य निजावर्जननैपुणेन स्वकीयवशीकरणचातुर्येण परिहृतो दूरीकृतो यः पङ्कजशशाङ्कयोः कमलचन्द्रमसोः परस्परविरोधस्तस्य पुनरावृत्तेः शङ्का तयेव, पद्ममुखः पद्मसदृशमुखत्वेन पद्मरूपो गोविन्दा च चन्द्रमुखीत्वेन चन्द्ररूपा, लोके पद्मचन्द्रयोर्विरोधः प्रसिद्धः परन्तु पद्ममुखेन स्ववशीकरणपाटवेन स विरोधोऽपास्तः, स तया चन्द्रमुख्या सह मिलितः इत्थं दूरीकृतो विरोधः पुनरावृत्तो न भवेदिति शङ्कयेव स तया सह सदा संगतोऽभवदिति भावः। तया गोविन्दया सह सदा संगते मिलिते गोविन्दारमणे पद्ममुखे रममाणे सुरतानन्दमनुभवति सति, 'यस्य च भावे भावलक्षणम्' इति सप्तमी। वीरश्रिया वीरलक्ष्म्या जीवितेश्वरो वल्लभस्तस्मिन् जीवककुमारेऽपि अनुदिनं प्रतिदिवसं 'वीर्यवन्तः पराक्रमिणः शौर्यशालिनः शूरत्वशोभिनः मान्या आदरणीया वदान्या उदाराः प्राप्तरूपाः सुन्दरा अभिरूपाः कुलीनाश्च जीवककुमारमनु' 'हीने' इत्यनेन कर्मप्रवचनीयत्वादनुयोगे द्वितीया जीवन्धरकुमाराद् हीनाः सन्तीति शेषः, इतीत्थं गुणलुब्धैः अभिष्टूयमानो गुणराशिर्यस्य तस्मिन्, राजति शोभमाने सति, राजपुरीवास्तव्य एतन्नामराजधानीनिवासी, समस्तगुणानां शेवधिर्निधिः अनवधिका श्रीर्यस्य तथाभूतः श्रीदत्तो नाम वैश्योत्तम ऊरुजश्रेष्ठो वित्तोपचये धनार्जने व्यासक्ता मतिर्यस्य तथाभूतः सन् एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण व्यचीचरत् विचारयामास ।

---

§ ८९. अथानन्तर खिले हुए कमलकी शोभासे सुशोभित मुखसे युक्त पद्ममुख जब अग्निकी साक्षीपूर्वक हर्षित नन्दगोपके द्वारा प्रदत्त चन्द्रमुखी गोविन्दाको विवाह कर अपने वशीकरणकी चतुराईसे दूर किये हुए कमल और चन्द्रमाके पारस्परिक विरोधसम्बन्धी पुनरावृत्तिकी आशंकासे ही मानो उसके साथ सदा संगत रहकर क्रीड़ा करने लगा और वीरलक्ष्मीके स्वामी जीवन्धरकुमार भी जब प्रतिदिन गुणोंके लोभी मनुष्योंके द्वारा 'संसारमें जितने वीर्यवन्त, शक्तिवन्त, माननीय, उदार, रूपवन्त और कुलवन्त हैं वे सब जीवन्धरसे पीछे हैं—उनसे हीन हैं' इस प्रकार स्तुति किये जानेवाले गुणोंके समूहसे युक्त हो सुशोभित होने लगे तब राजपुरीमें रहनेवाला, समस्त गुणोंका भण्डार, असीमलक्ष्मीसे युक्त श्रीदत्त नामका वैश्य धनसंचय करनेमें आसक्तचित्त हो इस प्रकार विचार करने लगा।

---

१. क० ख० ग० भासुरतरमुखे। २. क० ख० ग० राजति अथ राजपुरीवास्तव्यः।

§ ९०. अस्मत्पितृपितामहादिभिरर्जितमस्तोकमस्ति चेदपि वस्तु स्वहस्तार्जितमिवोन्नतचित्तस्य न चित्तप्रसादमावहति । आवहतु वा । कथं तदायरहितं धनमव्ययं स्यात्, शश्वदुपभोगे गिरिरपि नश्यतीति जनवादश्रुतेः । वीतवित्ततायाश्च किमपरमरुन्तुदम् । असुभृतां हि दारिद्र्यमसुभिर्युक्तं मरणमशस्त्रसंपाद्यं हृच्छल्यमनात्मप्रशंसनं हास्यतानिदानमनाचारपरिक्षय उपेक्षाहेतुरपित्तोद्रेकजमुन्मादान्ध्यमक्षपास्फुरणममित्रतानिमित्तम् । किमपरमुदीर्यते । रिक्तस्य न[1] वचो जीवति, नाभिजात्यं जागर्ति, न पौरुषं परिस्फुरति, न विद्या विद्योतते, न शीलमुन्मीलति, न शेमुषी समुन्मिषति, न धार्मिकता संभाव्यते, नाभिरूप्यं निरूप्यते, न प्रश्रयः प्रशस्यते, न कारुण्यं गण्यते, पाकः पलायते, विवेको विनश्यति, किमन्यन्न भ्रश्यति । धनोपचये तु लोकद्व-

§ ९०. अस्मदिति—अस्मत्पितृपितामहादिभिर्यत्पूर्वपुरुषैरर्जितम् अस्तोकं विपुलं वस्तु वित्तम् अस्ति चेदपि तथापि स्वहस्तेनार्जितं संचितमिवोन्नतचित्तस्य उदाराशयस्य चित्तप्रसादं मनोहर्षं नावहति । आवहतु वा । आयरहितं वृद्धिरहितं तद्धनम् अव्ययं विनाशरहितं कथं स्यात् । शश्वदुपभोगे निरन्तरोपभोगे गिरिरपि पर्वतोऽपि नश्यतीति जनवादश्रुतेः लोकोक्तिश्रवणात् । वीतं वित्तं यस्य तस्य भावस्तस्या निर्धनतायाश्च अपरमन्यत् अरुंतुदं मर्मव्यथकं किम् । असुभृतां प्राणिनां हि दारिद्र्यं निर्धनत्वम् असुभिः प्राणैर्युक्तं मरणम् जीवितमरणतुल्यमित्यर्थः, न शस्त्रेण संपाद्यमित्यशस्त्रसंपाद्यं हृच्छल्यम्, न विद्यते आत्मप्रशंसनं यस्मिन् तत् अनात्मप्रशंसनम् आत्मश्लाघारहितं हास्यतानिदानं हास्यताकारणम्, न विद्यते आचारस्य परिक्षयो यस्मिन् तथाभूतं उपेक्षाहेतुरनादरनिमित्तम्, न पित्तस्योद्रेकेण जातमित्यपित्तोद्रेकजम् उन्मादान्ध्यमुन्मादजनितान्धत्वम्, न विद्यते क्षपायां निशायां स्फुरणं यस्य तथाभूतम् अमित्रतानिमित्तं सूर्याभावकारणं पक्षे शत्रुताकारणम् अपरं किम् उदीर्यते निगद्यते । रिक्तस्य दरिद्रस्य न वचो जीवति, न आभिजात्यं कुलीनत्वं जागर्ति प्रकटीभवति, न पौरुषं पुरुषत्वं परिस्फुरति द्योतते, न विद्या पाण्डित्यं विद्योतते प्रकाशते, न शीलं सौजन्यम् उन्मीलति प्रकटीभवति, न शेमुषी मनीषा समुन्मिषति विकसति, न धार्मिकता धर्मं चरति धार्मिकस्तस्य भावो धर्माचरणं संभाव्यतेऽनुमीयते, न आभिरूप्यमानुकूल्यं निरूप्यते, न प्रश्रयो विनयः प्रशस्यते श्लाघ्यते, न कारुण्यं दयालुता गण्यते आद्रियते, पाको निष्ठा मर्यादेत्यर्थः पलायते विद्रवति, 'पाको जरापरीपाके स्थाल्यादौ क्लेद-

§ ९०. यद्यपि हमारे पिता और पितामह आदिके द्वारा संचित बहुत धन विद्यमान है तथापि वह अपने हाथसे संचितके समान उदात्तचित्त मनुष्यके चित्तमें प्रसन्नता उत्पन्न नहीं करता । अथवा करे भी । परन्तु आयसे रहित वह धन अविनाशी कैसे हो सकता है । निरन्तर उपभोग होनेपर पर्वत भी नष्ट हो जाता है ऐसा लोगोंका कहना सुना जाता है । और निर्धनतासे बढ़कर मर्मको भेदन करनेवाली अन्य वस्तु क्या हो सकती है । यथार्थमें प्राणियोंकी दरिद्रता प्राणोंसे सहित मरण है, शस्त्रके बिना की हुई हृदयकी शल्य है, अपनी प्रशंसासे रहित हास्यका कारण है, आचरणके विनाशसे रहित उपेक्षाका कारण है, पित्तके उद्रेकके बिना ही होनेवाला उन्माद सम्बन्धी अन्धापन है और रात्रिके आविर्भावके बिना ही प्रकट होनेवाली अमित्रता (पक्षमें सूर्याभाव) का निमित्त है । अधिक क्या कहा जाये, दरिद्र मनुष्यका न वचन जीवित रहता है न उसकी कुलीनता जागृत रहती है, न उसका पुरुषार्थ देदीप्यमान रहता है, न उसकी विद्या प्रकाशमान रहती है, न शील प्रकट होता है, न बुद्धि विकसित रहती है, न उसमें धार्मिकताकी सम्भावना रहती है, न सुन्दरता देखी जाती है, न विनय प्रशंसनीय होती है, न दया गिनी जाती है, निष्ठा-श्रद्धा भाग जाती है, विवेक नष्ट हो

१. क० नहि वचो जीवति । ख० ग० रिक्तस्य हि वचो जीवति ।

योचितपुरुषार्थोऽप्यप्रार्थित एव स्वयमायाति । ततो यतितव्यं वित्ताय' इति विचारानन्तरमखिलान्तरायध्वंसनकृते कृतजिनसपर्याविधिविहितविविध[1]पात्रदानो यानपात्रमारुह्य रत्नाकरमगाहिष्ट, न्यवर्तिष्ट च निखिलद्वीपोपचितनिःसीमवसुराशिः, अशिश्रियच्च पारावारस्यावारपर्यन्तम् ।

'§ ९१. अत्रान्तरे नितान्तजवनपवनपथप्रापितपयोधिपयःसंभारस्थलावशेषितरत्नाकररत्ननिकरैस्तारकितमिव तारापथमधःप्रकटयन्स्फाटिकदण्डाकारनीरधारावलिधारासंपातः समाविरासीत् । पुनरुपर्युपरि प्रचुरतरीभवदासारेण स्फाररयेण समीरेण समुल्लासितसलिलनिधिकल्लोलकरास्फालनबलदलितदिनकृतीव तिमिरनिचये सूचीमुखनिर्भेद्ये सति, मन्देतरपरिभ्रमणमन्दरमन्थ[2]-

निष्ठयोः' इति विश्वलोचनः । विवेको योग्यायोग्यविज्ञानं विनश्यति, अन्यत् किं न भ्रश्यति नश्यति । अपि तु सर्वमेव भ्रश्यति । धनोपचये वित्तसंग्रहे तु लोकद्वयोचितपुरुषार्थेऽपि-उभयलोकार्हपुरुषार्थोऽपि अप्रार्थित एवायाचितोऽपि स्वयम् आयाति । ततो 'वित्ताय धनाय यतितव्यं चेष्टितव्यम्' विचारानन्तरम् अखिलाश्च तेऽन्तरायाश्च तेषां ध्वंसनकृते विनाशाय कृतो जिनस्य सपर्याविधिः पूजाविधिर्येन सः, विहितं सुकृतं विविधं नानाप्रकारं पात्रदानं येन तथाभूतः सन् यानपात्रं पोतम् आरुह्य रत्नाकरं सागरम् अगाहिष्ट प्रविवेश, निखिलद्वीपेषु समस्तद्वीपेषूपचितः समर्जितो निःसीमवसुराशिरसंख्यधनराशिर्येन तथाभूतः सन् न्यवर्तिष्ट च प्रत्याजगाम च, पारावारस्य सागरस्य अवारपर्यन्तम् एतत्तटम् अशिश्रियच्च प्राप्नोच्च ।

§ ९१. अत्रान्तर इति—अत्रान्तरे एतन्मध्ये नितान्तजवनेन तीव्रवेगेन पवनपथे गगने प्रापितो यः पयोधिपयःसंभारः सागरसलिलसमूहस्तेन स्थलावशेषितस्य रिक्तीकृतस्य रत्नाकरस्य सागरस्य रत्ननिकरा मणिसमूहास्तैः तारकाः संजाता यस्मिंस्तत् तथाभूतमिव नक्षत्रनिचयनिचितमिव तारापथं गगनम् अधः प्रकटयन् नीचैर्दर्शयन् स्फाटिकदण्डाकारा नीरधारावलयो यस्मिन् तथाभूतो यो धारासंपात आसारो घोरवृष्टिः समाविरासीत् प्रादुरभूत् । पुनरिति—पुनस्तदनन्तरम् उपर्युपरि अग्रेऽग्रे प्रचुरतरीभवन्नासारो यस्मिन्तेन दीर्घीभवद्धारासंपातेन स्फाररयेण तीव्रवेगेन समीरेण नभस्वता समुल्लासिताः समुत्क्षेपिता ये सलिलनिधिकल्लोलाः सागरतरङ्गास्त एव करा हस्तास्तेषामास्फालनबलेन प्रसारणबलेन दलितः खण्डितो दिनकृत् सूर्यो येन तस्मिन् तिमिरनिचये ध्वान्तसमूहे सूचीमुखनिर्भेद्ये प्रगाढे सति मन्देतरं तीव्रं परिभ्रमणं

जाता है अथवा और क्या नहीं नष्ट होता। इसके विपरीत धनका संचय रहनेपर दोनों लोकोंके योग्य पुरुषार्थ भी बिना प्रार्थना किये ही स्वयं आ जाता है। अतः धनके लिए यत्न करना चाहिए। इस प्रकारके विचारके अनन्तर समस्त विघ्नोंको नष्ट करनेके लिए जिसने जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की थी और नाना प्रकारके पात्रोंके लिए दान दिया था ऐसा श्रीदत्त जहाजपर बैठकर समुद्रमें प्रविष्ट हुआ और समस्त द्वीपोंमें असीम धन राशिका संचय कर लौट आया। लौटते समय वह समुद्रके इस तटके समीप आया।

§ ९१. इसी बीचमें स्फटिकके दण्डके समान बड़ी मोटी जलधाराओंके समूहसे युक्त मूसलधार वर्षा होने लगी। उसी समय समुद्रका समस्त जल तीव्र वेगसे आकाशमें पहुँच चुका था और स्थलमें समुद्रके रत्नोंका समूह ही शेष रह गया था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओंसे युक्त आकाशको वह नीचे ही प्रकट कर रही हो। सूचीमुखसे दुर्भेद्य—घनघोर अन्धकारका समूह फैल गया। उससे ऐसा जान पड़ता था मानो पुनः-पुनः ऊपर-ऊपर धाराबद्ध वृष्टिको अत्यन्त प्रचुर करनेवाले एवं तीव्र वेगसे युक्त वायुके द्वारा समुद्रकी लहरें रूप जो हाथ ऊपरकी ओर उल्लसित हो रहे थे उनके संचालनके बलसे सूर्य नष्ट ही हो गया था। समुद्रका

---

१. क० ख० ग० 'विविध' पदं नास्ति। २. क० 'मन्थ' पदं नास्ति।

मथनेनेव घूर्णमाने भृशमर्णवार्णसि, प्रपञ्चतरीभवत्प्रभञ्जनभञ्जनजनितजलनिधिकल्लोलनूतनशोणितकणपुञ्ज इव रञ्जितसनीडे पाटलविद्रुमलतापटले प्लवमाने, चटुलाचलपाटनपाटवस्फुटितपयोधिस्फीतास्थिसंघ इवासंख्यशङ्खनिवहे प्रेङ्खति, विशृङ्खलतोयाशयशोकफूत्कार इव श्रूयमाणे भीकरलहरीप्रहाररवे, निर्घृणसमीरणपीडितनीरधिरोषकृपीटयोनाविव बाडवानले परिस्फुरति, स्फीतबलान्धगन्धवहप्रतिग्रहणप्रवण इव जवनजलनिधिजलवेणीप्रयाणे[1] प्रेक्ष्यमाणे, प्रतिसरत्सलिलवेणीबलसमीपसंचारिणि चामरवितान इव बहलधवलफेनजाले प्रचलति, तुच्छेतरपयोराश्यावर्तगर्ते पयोदवृन्द इव पयःपूर्णे घूर्णमाने यानपात्रे, कर्णधारवदनग्लानिकण्ठोक्तपोतविनाशविनिश्चयेन

यस्य तथाभूतो मन्दरो मेरुरेव मन्थो मन्थनदण्डस्तेन मथनेनेव विलोडनेनेव अर्णवार्णसि सागरसलिले भृशमत्यन्तं घूर्णमाने सति भ्रमति सति, प्रपञ्चतरीभवन् दीर्घतरीभवन् यः प्रभञ्जनः प्रचण्डपवनस्तेन भञ्जनं त्रोटनं तेन जनितः समुत्पन्नो जलनिधिकल्लोलेषु तोयधितरङ्गेषु नूतनो नवीनो यः शोणितकणपुञ्जो रुधिरकणसमूहस्तद्वत्, रञ्जितसनीडे रक्तवर्णीकृतपार्श्वप्रदेशे पाटलमीषद्रक्तं यद् विद्रुमलतापटलं प्रवालवल्लीसमूहस्तस्मिन् प्लवमाने तरति सति चटुलानां वायुवशेन चलितानामचलानामन्तःस्थगिरीणां यत्पाटनपाटवं विदारणसामर्थ्यं तेन स्फुटितः प्रकटीकृतः पयोधेः सागरस्यास्थिसङ्घ इव कीकससमूह इव असंख्यशङ्खनिवहे प्रचुरकम्बुकलापे प्रेङ्खति सति चलति सति, विशृङ्खलेन वृद्धिंगतो यस्तोयाशयस्य जलनिधेः शोकस्तस्य फूत्कार इव रोदनध्वनाविव भीकरो भयोत्पादको यो लहरीप्रहारस्तरङ्गाघातशब्दस्तस्मिन् श्रूयमाणे निशम्यमाने, निर्घृणसमीरणेन निर्दयपवनेन पीडितो यो नीरधिस्तस्य रोषकृपीटयोनाविव क्रोधाग्नाविव बाडवानले वाडवाग्नौ परिस्फुरति देदीप्यमाने सति, स्फीतबलेन प्रचुरपराक्रमेणान्धो यो गन्धवहः पवनस्तस्य प्रतिग्रहणेऽवरुध्य परिग्रहणे प्रवण इव समर्थ इव जवनं वेगशालि यज्जलनिधिजलस्य सिन्धुसलिलस्य वेणीप्रयाणं प्रवाहप्रसरणं तस्मिन् प्रेक्ष्यमाणे दृश्यमाने प्रतिसरत् प्रतिगच्छद् यत्सलिलवेणीबलं जलप्रवाहसैन्यं तस्य समीपे निकटे संचरतीत्येवंशीलस्तस्मिन् चामरवितान इव बालव्यजनसमूह इव बहलं विपुलं धवलं सितं च यत्फेनजालं डिण्डीरसमूहस्तस्मिन् प्रचलति सति, तुच्छेतरो दीर्घतरो यः पयोराश्यावर्तः समुद्रभ्रम एव गर्तस्तस्मिन् पयोदवृन्द इव मेघसमूह इव पयःपूर्णे जलभृते यानपात्रे

जल अत्यधिक घूमने लगा और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो अत्यधिक परिभ्रमणसे युक्त मन्दराचल रूप मथानीसे मथे जानेके कारण ही घूमने लगा था। समीपवर्ती प्रदेशको लाल-लाल करनेवाला मूँगाकी श्वेतरक्त लताओंका समूह तैरने लगा और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो उत्तरोत्तर अत्यन्त प्रचण्ड होनेवाली आँधीके द्वारा की हुई टूट-फूटसे उत्पन्न समुद्रकी तरंगोंके नये-नये खूनके कणोंका समूह ही तैरने लगा था। असंख्यात शंखोंका समूह चलने लगा और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो चंचल पर्वतोंकी तोड़-फोड़ सम्बन्धी सामर्थ्यसे टूटी हुई समुद्रकी विस्तृत हड्डियोंका समूह ही चलने लगा था। भयंकर लहरोंके प्रहारसे उत्पन्न शब्द सुनाई देने लगा और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो बढ़ते हुए शोकके कारण समुद्र फुक्के ही मार रहा हो—जोर-जोरसे रो रहा हो। निर्दय वायुके द्वारा पीड़ित समुद्रकी क्रोधाग्निके समान सब ओर बडवानल चमकने लगी। समुद्रके जलके वेगशाली प्रवाह निकल-निकलकर बहते हुए दिखाई देने लगे और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो वे प्रवाह अत्यधिक बलसे अन्धे पवनको पकड़नेके लिए समर्थ ही हों। बहते हुए जल-प्रवाहके समीप चलनेवाला अत्यधिक सफेद फेनका समूह इधर-उधर चल रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो चमरोंका समूह ही चल रहा हो। और विशाल समुद्रकी भँवररूप गर्तमें मेघ-

१. क० जवनजलधिजल।

निश्चेतनगात्रान्यानपात्रप्रध्वंसनात्प्रागेव प्राप्तशोकसागरान्नाविकानालोक्याध्ययनमधीती जिनशासने स्वयमपगताधिरपास्तसकलसङ्गश्च भवन्सांयात्रिकः श्रीदत्तो दत्तहस्तावलम्बनः 'किं बत, बालिशा इव भवन्तः क्लिश्यन्ते। किं वा क्लिश्यमानान्न दैवतं क्लिश्नाति। न वा क्लिश्नातु तथाप्यापदागामिनीति मनसिकृत्य शोकवशीभवञ्जनः [1]स्वयमेवात्मानमास्तां भवान्तरे तदात्व एव विपदा घटयति। सर्वंकषविषादादविसह्या विपदपरा का भवेत्। अतो न विषादः कार्यः। किंतु धैर्यमविलम्बितमवलम्ब्यताम्। धृतिमन्तो हि निजोपान्तगतां पीडामेव पीडयन्तः परपीडामपि विभजेरन्' इति कारुण्यावर्जितमतिरभिदधे। तिरोदधे च तरणिः। संनिदधे च कोऽपि कूपखण्डः।

पोते घूर्णमाने सति भ्रमति सति, कर्णधारस्य नाविकस्य यद् वदनं मुखं तस्य ग्लानिर्निःश्रीकता तया कण्ठोक्तः स्पष्टप्रकटितो यः पोतविनाशनिश्चयो जलयानविनाशविनिर्णयस्तेन निश्चेतनं जडप्रायं गात्रं येषां तान्, यानपात्रस्य नौकायाः प्रध्वंसनं विनाशस्तस्मात् प्रागेव पूर्वमेव प्राप्तो लब्धः शोकसागरो यैस्तान् नाविकान् नौयायिन आलोक्य दृष्ट्वा, अयमेष जिनशासने विषयार्थे सप्तमी अधीतमनेनेत्यधीती जिनशास्त्राध्ययनकुशल इति यावत्, अपगतो नष्ट आधिर्मानसिकव्यथा यस्य तथाभूतः अपास्तस्त्यक्तः सकलसङ्गो निखिलपरिग्रहो येन तादृशश्च सन् सांयात्रिकः पोतवणिक् 'सांयात्रिकः पोतवणिक् कर्णधारस्तु नाविकः' इत्यमरः श्रीदत्तस्तन्नामवैश्यपतिः दत्तं हस्तावलम्बनं येन तथाभूतः सन् इतीत्थं कारुण्यावर्जितमतिर्दयाधीनबुद्धिः भवन् अभिदधे जगाद। इतीति किम्। बत इति खेदे भवन्तो बालिशा इवाज्ञानिन इव किं क्लिश्यन्ते दुःखीभवन्ति। किं वा क्लिश्यमानान् दुःखीभवतो जनान् दैवतं दैवं न क्लिश्नाति न पीडयति। वा पक्षान्तरे न क्लिश्नातु न दुःखीभवतु तथापि आपद् आपत्तिः आगामिनी इति मनसिकृत्य निश्चित्य शोकवशीभवन् शोकायत्तीभवन् जनः स्वयमेव आत्मानं स्वम् आस्तां दूरीभवतु भवान्तरेऽन्यस्मिञ्जन्मनि तदात्व एव तत्कालमेव विपदा विपत्त्या घटयति योजयति। सर्वंकषश्चासौ विषादश्चेति सर्वंकषविषादो निखिलोत्पीडिखेदस्तस्माद् अपरा भिन्ना अविसह्या सोढुमशक्या का विपद् भवेत्। न कापीत्यर्थः। अतोऽस्मात्कारणात् विषादः खेदो न कार्यः। किन्तु धैर्यम् अविलम्बितं विलम्बनं विना अवलम्ब्यतां स्वीक्रियताम्। धृतिमन्तो हि धैर्यशालिनो हि जना निजोपान्तगतां स्वसमीपायातां पीडामेव पीडयन्तः कदर्थयन्तः परपीडामपि अन्यजनदुःखमपि विभजेरन् विभक्तुं समर्था भवेयुः। तिरोदधे चान्त-

समूहके समान जलसे भरा जहाज घूमने लगा। तदनन्तर कर्णधार—केवटके मुखकी ग्लानिसे स्पष्ट कहे हुए जहाजके नाशका निश्चय हो जानेसे जिनके शरीर निश्चेतन—निश्चेष्ट हो गये थे तथा जहाजके नष्ट होनेके पूर्व ही जो शोकरूपी सागरको प्राप्त हो चुके थे ऐसे जहाजके अन्य साथियोंको देख जिनशासनका अध्ययन करनेवाला श्रीदत्त वैश्य स्वयं मानसिक पीड़ाको दूर कर तथा समस्त परिग्रहका त्याग कर हस्तावलम्बन देता हुआ उनसे इस प्रकार कहने लगा—अरे बड़े खेदकी बात है, आप लोग मूर्खोंके समान क्यों दुःखी हो रहे हैं? क्या दुःखी होनेवालोंको दैव दुःखी नहीं करता? अथवा न भी दुःखी करे तो भी 'आपत्ति आनेवाली है' ऐसा मनमें विचार कर जो मनुष्य शोकके वशीभूत होता है वह स्वयं ही अपने-आपको दूसरे भवकी बात जाने दो उसी भवमें तत्काल ही विपत्तिसे युक्त करता है। सर्वंकष—सबको नष्ट करनेवाले विषादसे बढ़कर असहनीय दूसरी आपत्ति क्या हो सकती है? इसलिए विषाद नहीं करना चाहिए। किन्तु शीघ्र ही धैर्य धारण करना चाहिए। क्योंकि धैर्यशाली मनुष्य अपने समीप आयी हुई पीड़ाको ही पीड़ित करते हुए दूसरेकी पीड़ाको भी विभक्त कर

[1] शोकवशी जनः।

ततश्चायमतर्कितागति तमधिरुह्य कमपि कमनीयोद्देशं द्वीपमविशत् ।

§ ९२. तत्र क्वचिदुपसागरं सिकतिलतले[1] निषण्णः किंचिदिव विषण्णोऽयं पोतवणिग्वरः

'संसारासारभावोऽयमहो साक्षात्कृतोऽधुना । यस्मादन्यदुपक्रान्तमन्यदापतितं पुनः ॥'

इति भावयन्पाकविघटितशुक्तिपुटमुक्तमुक्ताप्रकरं धारासंपातपतितकरकनिकरमिव कलयन्चलतरङ्गतरङ्गिणीपतितरङ्गपरम्पराविलुठदकठोरकर्कटकावलोकनसकौतुकं कादम्बकदम्बकमप्यालोकयन्कांचन कालकलां गमयांबभूव । बभूव च तत्र परत्रेव गच्छन्नतुच्छतेजो मनुजः कोऽपि वणिजस्तस्य नयनगोचरः । तदवलोकनेन जातसंप्रीतिः प्रसभमनुधावन्नुदधिवृत्तान्तमस्मै सविस्मय-

---

हितश्च तरणिर्नौः, संनिदधे च । निकटस्थश्च बभूव कोऽपि अतर्कितायातः कूपखण्डो नौकादण्डः । ततश्च तदनन्तरं च अयं श्रीदत्तः अतर्किता आगतिर्यस्य तं सहसोपस्थितं तं नौकादण्डम् आरुह्य कमप्यज्ञातं कमनीयोद्देशं सुन्दरस्थानं द्वीपम् अविशत् ।

§ ९२. तत्रेति—तत्र द्वीपे क्वचित् कस्मिंश्चित्स्थाने सागरस्य समीपमित्युपसागरं सिकताः सन्ति यस्मिन् तत् सिकतिलं तच्च तलं चेति सिकतिलतलं तस्मिन् वालुकामयभूपृष्ठे निषण्णः स्थितः किंचिदिव मनागिव विषण्णः खेदखिन्नोऽयं पोतवणिग्वरः श्रीदत्त इति भावयन् चिन्तयन् । इतीति किम् । संसारेति—अधुना साम्प्रतम् अयमेष संसारस्याजवञ्जवस्यासारभावो निःसारता साक्षात्कृतः स्वयमेवावलोकितः इत्यहो आश्चर्यम् । यस्माद्धेतोरन्यत् कार्यमुपक्रान्तं प्रारब्धं पुनरनन्तरम् अन्यद् आपतितं प्राप्तम् । पाकेति—पाकेन परिणामेन विघटितानि स्फुटितानि यानि शुक्तिपुटानि तेभ्यो मुक्तः पतितो मुक्ताप्रकरो मौक्तिकसमूहस्तं धारासंपातेन घोरवृष्ट्या पतितो यः करकनिकरो वर्षोपलसमूहस्तमिव कलयन् विचारयन्, चलाश्चपलास्तरंगाः कल्लोला यस्य तथाभूतो यस्तरंगिणीपतिः सागरस्तस्मात्पतिता उच्छलिता ये तरंगा ऊर्मयस्तेषां परम्परया श्रेण्या विलुठन्तो येऽकठोरकर्कटकाः कोमलकर्कास्तेषामवलोकने सकौतुकं कुतूहलाक्रान्तं कादम्बकानां कलहंसानां कदम्बकं समूहं 'निकुरम्बं कदम्बकम्' इति धनंजयः अपि आलोकयन्पश्यन् कांचन कामपि कालकलां समयमात्रां गमयांबभूव व्यजीगमत् । बभूव चासीच्च तत्र तटे परत्रेव अन्यत्रेव गच्छन् अतुच्छं तेजो यस्य विपुलप्रतापः कोऽपि मनुजो मर्त्यः तस्य वणिजः श्रीदत्तस्य नयनगोचरो दृष्टिविषयः । तदवलोकनेन तद्दर्शनेन जातसंप्रीतिः समुत्पन्नस्नेहः प्रसभं बलाद् अनुधावन् पश्चाद्धाव-

---

सकते हैं—बाँट ले सकते हैं। उस समय श्रीदत्तकी बुद्धि दयाके अधीन थी—बहुत भारी दयालुतासे उसने नावपर बैठे अन्य साथियोंको उपदेश दिया था। जहाज अन्तर्हित हो गया और एक मस्तूल समीपमें आ पहुँचा। तदनन्तर अचानक आये हुए उस मस्तूलपर चढ़कर श्रीदत्त रमणीय स्थानोंसे युक्त किसी द्वीपमें प्रविष्ट हुआ।

§ ६२. वहाँ कहीं समुद्रके समीप रेतीले स्थानपर बैठा हुआ जहाजका व्यापारी श्रीदत्त कुछ-कुछ खेदखिन्न होता हुआ विचार करने लगा कि 'अहो! इस समय मैंने संसारकी इस असारताका स्वयं साक्षात्कार कर लिया क्योंकि कुछ प्रारम्भ किया था और कुछ आ पड़ा। इस प्रकार विचार करते हुए तथा पक जानेके कारण खुली हुई सीपके पुटसे छोड़े मोतियोंके समूहको धाराबद्ध वृष्टिके समय पतित ओलोंके समूहके समान समझते हुए एवं चंचल तरंगोंसे युक्त समुद्रकी तरंगोंमें लोटते हुए कोमल केंकड़ोंके देखनेमें कौतुकसे सहित हंसोंके समूहको देखते हुए श्रीदत्त वैश्यने कुछ कालकी कला व्यतीत की। वहाँ विशाल तेजको धारण करनेवाला कोई एक ऐसा मनुष्य जो दूसरी ओर जाता हुआ-सा जान पड़ता था, उस श्रीदत्तके

---

१. म० सिकतिले तले।

मुवाच। स च प्रत्युवाचैनमेतदीयदीनतावीक्षणप्रविजृम्भितकारुण्य इव 'वैश्यवरेण्यस्त्वमशरण्यः कथमरण्यानीमधिवसेः। दिवसमात्रमस्मद्गृहे गृहाणासिकां न चेदसि पराङ्मुखः। परमतः पश्यामः कार्यम्' इति। अयंश्रेष्ठोऽ[1]पि तथेति हृष्टस्तन्निर्दिष्टं क्रमेलकमधिरुह्य सहसा विहायसा ययौ।

§ ९३. तावतां च पुरःसमीरणसंचार्यमाणगगनधुनीफेनसंचयेनेव कञ्चुकितं विशदशारदवारिदव्यूहेनेव संनाहितं नभश्चरतरुणीकुचाभोगच्युतक्षौमोत्तरीयनिचयेनेव निचुलितमाकालिकतुषारवारिशीकरक्षोदवर्षेणेव वलक्षितमन्तरिक्षमलक्षयत्। तत्प्रेक्षणेन वैश्यप्रतीक्ष्योऽयं कौतुकाक्षिप्तचेताः 'न चायं क्षीरवारांनिधिर्जललहरीशिखरविहारिडिण्डीरपिण्डः। न हि तत्र नरैर्गन्तुं

मानः अस्मै जनाय सविस्मयं साश्चर्यं यथा स्यात्तथा उदधिवृत्तान्तं सागरोदन्तम् उवाच। स चेति—स च पूर्वोक्तः पुरुष एनं श्रीदत्तं प्रत्युवाच-एतदीयदीनताया वीक्षणेन प्रविजृम्भितं वृद्धिंगतं कारुण्यं यस्य तथाभूत इव 'वैश्यवरेण्यस्त्वं वैश्यश्रेष्ठस्त्वम् अशरण्यः शरण्यरहितः सन् अरण्यानीं महावनीं कथमधिवसेः निवासं कुर्याः। न चेदसि पराङ्मुखो विमुखस्तर्हि दिवसमात्रमेकदिनं यावत् अस्मद्गृहे आसिकां निवासं गृहाण स्वीकुरु। अतः परं पश्चात् कार्यं करणीयं कार्यं पश्यामो विलोकयामः इति। अयंश्रेष्ठोऽपि वैश्यश्रेष्ठोऽपि 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' इति विश्वलोचनः तथेति हृष्टः सन् निर्दिष्टं संकेतितं क्रमेलकमुष्ट्रम् अधिरुह्याधिष्ठाय सहसा झगिति विहायसा गगनेन ययौ जगाम।

§ ९३. तावतेति—तावता च कालेन पुरःसमीरणेन अग्रचरवायुना संचार्यमाणो यो गगनधुन्या वियद्गङ्गायाः फेनसंचयो डिण्डीरसमूहस्तेन कञ्चुकितमिव व्याप्तमिव, विशदा धवला ये शारदवारिदा शरदृतुमेघास्तेषां व्यूहेन समूहेन संनाहितमिव व्याप्तमिव, नभश्चराणां विद्याधराणां तरुण्यस्तासां कुचाभोगात्स्तनप्रदेशाच्च्युतं यत् क्षौमोत्तरीयं तस्य निचयेन निचुलितमिव व्याप्तमिव, आकालिका असमयोत्पन्ना ये तुषारवारिशीकरा हिमजलकणास्तेषां क्षोदाश्चूर्णानि तेषां वर्षणेन वलक्षितं धवलितम् अन्तरिक्षं गगनम् अलक्षयत्। तत्प्रेक्षणेन तदवलोकनेन कौतुकाक्षिप्तं चेतो यस्य कुतूहलाक्रान्तहृदयः अयं वैश्यप्रतीक्ष्य ऊरुजश्रेष्ठः श्रीदत्तः अयं दृश्यमानो जललहरीणां तोयतरङ्गाणां शिखरेषु विहारी डिण्डीरपिण्डोऽब्धिकफसमूहो यस्य तथाभूतः क्षीरवारांनिधिः क्षीरसागरो न च विद्यते। हि यतस्तत्र क्षीरसागरे नरैर्मनुजैर्गन्तुं न

नयनगोचर हुआ। उसके देखनेसे जिसे प्रेम उत्पन्न हुआ था और जो जबरदस्ती उसके पीछे-पीछे चल रहा था ऐसे श्रीदत्तने उसे आश्चर्यके साथ समुद्रका वृत्तान्त कहा। इसकी दीनताके देखनेसे जिसकी दयालुता बढ़ रही थी ऐसे उस पुरुषने श्रीदत्तसे कहा कि अहो श्रेष्ठ वैश्य! अशरण होकर इस अटवीमें किस कारण रह रहे हो? यदि आप विमुख न हों तो एक दिन हमारे घर सुखसे निवास कीजिए। फिर इसके आगेका कार्य देखेंगे। श्रीदत्त वैश्य भी 'तथास्तु' कह हर्षित होता हुआ उसके द्वारा बताये हुए ऊँटपर सवार हो सहसा आकाशमार्गसे चल पड़ा।

§ ९३. वहाँ उसने उस धवल आकाशको देखा जो आगे-आगे चलनेवाली वायुके द्वारा बिखेरे हुए आकाशगंगाके फेनसमूहसे ही मानो व्याप्त था। अथवा शरदृतुके सफेद बादलोंके समूहसे व्याप्त था। अथवा विद्याधरस्त्रियोंके स्तनतटसे पतित रेशमी ओढ़नीके समूहसे व्याप्त था। अथवा असमयमें होनेवाली तुषारजलके छींटोंकी वर्षासे ही मानो सफेद था। उसे देखनेसे जिसका चित्त कौतुकके वशीभूत हो रहा था ऐसा वैश्यपति इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि 'यह जलकी तरंगोंके शिखरपर विहार करनेवाले फेनके समूहसे युक्त

---

1. क० ख० ग० आर्यश्रेष्ठोऽपि।

पार्यते । न चेदमुदयारम्भसंभवदुदंशोः शिशिरांशोरच्छांशुभिर्विच्छुरितहरिन्मुखम् । न हि कौबेरककुभि कुमुदबन्धोरुदयानुबन्धः । न च विकचविचकिलफुल्लोल्लसद्वनवल्लरीप्रतानसवितानं गगनम् । न हि तस्यैवमुच्चैस्तलोपलम्भः संभवति । किमिदम् ।' इति चिन्तया किंचिदन्तरमतिक्रामन्पुण्डरीकषण्डमिव पुञ्जीभूतं शीतगभस्तिमालिगभस्तिप्रतानमिव स्त्यानमपास्तसमस्ततमःस्तोमं प्रशस्तविविधविद्यापारगपरमपुरुषपरिषत्पक्षीकृतमक्षयानन्ददानदक्षमतिशुक्लशुक्लध्यानमिव बहिः पिण्डीभूतं पाण्डुरितवनराजिं राजतगिरिमैक्षिष्ट, अभ्यमनायिष्ट[1] च परमश्रुतप्रतिपादितं यथाश्रुतं तमुत्पश्यन्वैश्यपतिः, अप्राक्षीच्च प्रीतिविस्फारितेक्षणः सहचरं खचरम् 'खेचरगोचरे-

पार्यते न शक्यते । न चेदं दृश्यमानम् उदयारम्भे संभवन्त उदंशव ऊर्ध्वरश्मयो यस्य तथाभूतस्य शिशिरांशोश्चन्द्रमसः अच्छांशुभिरुज्ज्वलमरीचिभिः विच्छुरितहरिन्मुखं व्याप्तदिङ्मुखम् । हि यतः कौबेरककुभि उत्तरदिशि कुमुदबन्धोः शशिन उदयानुबन्ध उदयस्थितिः न भवति । न च विकचानि विकसितानि यानि विचकिलफुल्लानि तैरुल्लसन्तीनां वनवल्लरीणां प्रतानेन समूहेन सवितानं सहितं गगनम् । हि यतस्तस्य एवमित्थम् उच्चैस्तलोपलम्भ उच्चतरस्थानप्राप्तिः संभवति । किमिदम् । इति चिन्तया विचारेण किञ्चिन्मनाग् अन्तरमन्तरालम् अतिक्रामन् उल्लङ्घयन् पुञ्जीभूतं पुण्डरीकषण्डमिव श्वेतकमलसमूहमिव, स्त्यानं प्रतिबिम्बितं शीतगभस्तिमालिनः शशिनो गभस्तिप्रतानमिव किरणकलापमिव, अपास्तो दूरीकृतः समस्ततमःस्तोमोऽन्धकारसमूहो यस्मिन् स्तम्, प्रशस्तासु श्रेष्ठासु विविधविद्यासु नानाविद्यासु पारगा निष्णाता ये परमपुरुषा उत्कृष्टपुरुषास्तेषां परिषत्समूहस्तेन पक्षीकृतं स्वीकृतम्, अक्षयानन्दस्य स्थायिहर्षस्य दाने दक्षं समर्थम्, बहिःपिण्डीभूतं राशीभूतम् अतिशुक्लध्यानमिव चतुर्थध्यानमिव, पाण्डुरिताः शुक्लीभूता वनराजयो काननपङ्क्तयो यस्मिन् तं राजतगिरिं विजयार्धपर्वतम्, ऐक्षिष्ट, परमश्रुतप्रतिपादितं जिनागमनिरूपितं तं राजताद्रिं श्रुतमनतिक्रम्येति यथाश्रुतं यथाशास्त्रम् उत्पश्यन् उदवलोकयन् अभ्यमनायिष्ट च ज्ञातवांश्च । अप्राक्षीच्च प्रीत्या विस्फारिते विस्तारिते ईक्षणे नयने यस्य तथाभूतः

क्षीरसागर तो है नहीं क्योंकि वहाँ मनुष्य नहीं जा सकते । उदयके प्रारम्भमें जिसकी उत्कृष्ट किरणें फैल रही हैं ऐसे चन्द्रमाकी उज्ज्वल किरणोंसे व्याप्त यह दिशाका अग्रभाग भी नहीं है क्योंकि उत्तर दिशामें चन्द्रमाका उदय नहीं होता । खिले हुए विचकिलके फूलोंसे सुशोभित वनकी लताओंके समूहसे व्याप्त आकाश भी नहीं है क्योंकि उसका इतनी ऊँचाईपर पाया जाना सम्भव नहीं है । तो फिर क्या है ? इस प्रकारकी चिन्ता करता हुआ जब वह कुछ और आगे गया तब उसने उस विजयार्ध पर्वतको देखा जो इकट्ठे हुए सफेद कमलोंके समूहके समान जान पड़ता था अथवा फैले हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान दिखाई देता था । समस्त अन्धकारके समूहसे रहित था । प्रशंसनीय एवं नाना प्रकारकी विद्याओंके पारगामी श्रेष्ठ पुरुषोंके समूहसे अंगीकृत था । अक्षय आनन्दके देनेमें समर्थ था । बाहर इकट्ठे हुए अत्यन्त निर्मल शुक्लध्यानके समान था, और सफेद-सफेद वनकी पङ्क्तियोंसे युक्त था । परमागममें जैसा उस पर्वतका वर्णन किया गया है और जैसा उसने सुन रखा था वैसा ही उसे देखकर उसने निश्चय कर लिया कि यह विजयार्धपर्वत ही है । तदनन्तर प्रीतिसे विकसित नेत्रोंको धारण करनेवाले श्रीदत्तने अपने साथी विद्याधरसे पूछा कि विद्याधरोंके निवासभूत

---

१. अभ्यमनायिष्ट–ज्ञातवान् इति टिप्पणी ।

ऽस्मिन्विजयार्धगिरौ किमर्थमस्मदागमनम् इति ।

§ ९४. स किंचिदिव स्थित्वा प्रत्यवोचत्—'अयि भोः, श्रूयताम् । इह विश्रुतायां विद्याधरधरायां विविधवृत्तिदानदक्षदक्षिणश्रेण्यां श्रेणीभूतपुर[1]ग्रामकान्ते गान्धारविषये योषाजनभूषालोकतिरस्कृतदिनकृदुदयालोको नित्यालोक इत्याख्यया विख्यातः कोऽपि विराजते स्कन्धावारः ।[2] तस्य पतिर्गगनेचरकिरीटाधिरूढशासनो गरुडवेगो नाम । तस्य च महिषी सकलगुणमनोहारिणी धारिणी नाम । तयोः सुता देहकान्तिव्यामोहितचित्तभूचित्ता[3] गन्धर्वदत्ता । तस्या जन्ममुहूर्त एव मौहूर्तिकाः 'कन्येयं मेदिन्यामनन्यसाधारणवीणावादननैपु[4]ण्यादेनामतिशयानस्य कस्यचित्कुमारस्य राजपुर्यां भार्या भविष्यति' इति व्याहार्षुः ।

सन् सहचरं सहगामिनं खचरं विद्याधरं खेचरगोचरे विद्याधरवसतौ अस्मिन् विजयार्धगिरौ अस्मदागमनं किमर्थं किम्प्रयोजनकम् इति ।

§ ९४. स किंचिदिवेति—स खचरः किंचिदिव अल्पसमयमिव स्थित्वा विश्रम्य प्रत्यवोचत्—अयि भोः श्रूयतामाकर्ण्यताम् । इह विश्रुतायां प्रसिद्धायां विद्याधरधरायां नभश्चरवसुधायां विविधवृत्तीनां दाने दक्षा या दक्षिणश्रेणी तस्यां श्रेणीभूतैः पङ्क्तिस्थितैः पुरग्रामैर्नगरनिगमैः कान्ते मनोहरे गान्धारविषये तन्नामजनपदे योषाजनभूषाणां ललनाजनालङ्काराणामालोकेन प्रकाशेन तिरस्कृतो दिनकृदुदयालोकः सूर्योदयप्रकाशो यस्मिन् तथाभूतो नित्यालोक इत्याख्यया नाम्ना विख्यातः प्रथितः कोऽपि विचित्रः स्कन्धावारो राजधानी विराजते शोभते । तस्य स्कन्धावारस्य पतिः स्वामी गगनेचराणां विद्याधराणां किरीटेषु मकुटेष्वधिरूढं शासनं यस्य तथाभूतो गरुडवेगो नाम बभूवेति शेषः । तस्य च गरुडवेगस्य सकलगुणैर्निखिलदयादाक्षिण्यादिगुणैर्मनो हरतीत्येवंशीला धारिणी नाम महिषी कृताभिषेका राज्ञी आसीदिति शेषः । सा च स च इति तौ तयोः देहकान्त्या शरीरसुषमया व्यामोहितं चित्तभुवो मदनस्य चित्तं यया तथाभूता गन्धर्वदत्ता नाम सुता बभूवेति योज्यम् । तस्याः सुतायाः जन्ममुहूर्त एव जनुवेलायामेव मौहूर्तिका दैवज्ञा इयं कन्या मेदिन्यां धरायां राजपुर्यां नगर्याम् अनन्यसाधारणमसदृशं यद् वीणावादननैपुण्यं विपञ्चीवादनचातुर्यं तस्मात्, एनां कन्याम् अतिशयानस्य पराजयमानस्य कस्यचित् कस्यापि कुमारस्य भार्या भविष्यति इति व्याहार्षुर्निजगदुः ।

इस विजयार्धपर्वतपर हम लोगोंका आगमन किसलिए हुआ है ? साथी विद्याधरने कुछ देर ठहरकर उत्तर दिया कि अये मित्र ! सुनिए ।

§ ९४. इस प्रसिद्ध विद्याधरोंकी वसुधामें नाना प्रकारकी आजीविकाके देनेमें समर्थ दक्षिणश्रेणीमें पंक्तिबद्ध नगर और ग्रामोंसे सुन्दर एक गान्धार नामका देश है और उसमें स्त्रियोंके आभूषणोंके प्रकाशसे सूर्योदयके आलोकको तिरस्कृत करनेवाला नित्यालोक नामका एक प्रसिद्ध नगर सुशोभित है । विद्याधरोंके मुकुटपर अधिरूढ आज्ञासे युक्त गरुडवेग नामका विद्याधर उस नगरका राजा है और समस्त गुणोंसे मनको हरनेवाली धारिणी उसकी रानी है । उन दोनोंके शरीरकी कान्तिसे कामदेवके चित्तको मोहित करनेवाली गन्धर्वदत्ता नामकी पुत्री है । उसके जन्म समय ही ज्योतिषियोंने कहा था कि यह कन्या पृथिवीपर राजपुरी नगरीमें किसी ऐसे कुमारकी स्त्री होगी जो वीणा बजाने विषयक अपनी असाधारण चतुराईसे इसे पराजित कर देगा ।

---

१ क. परग्रामकान्ते । २. स्कन्धावारः—राजधानी इति टि० । ३. क. ग. चित्तभूचित्ता । ४. क. ख. ग. वीणावादनप्रावीण्यात् ।

§ ९५. अथ सा कल्याणी कदाचन पञ्चकल्याणोपवासपारणादिवसे परिवारेण सार्धं विजयार्धभूभृतः किरीटायमानं सिद्धकूटजिनचैत्यसदनं सपर्याविधानपुरःसरमधिकभक्तिरभिप्रणम्य समागत्य चतुर्गतिभ्रमणप्रशमनभेषजं जिनाङ्घ्रिपङ्केरुहस्पर्शनेन पावनं प्रसूनं सविनयं पित्रे समर्पयामास। राजापि सप्रश्रयं प्रतिगृह्य तां शेषामशेषदोषक्षयायेति शिरसा वहन्संप्राप्तयौवनसाम्राज्यामिमां निर्वर्ण्य जातनिर्वेदो निवर्तयंश्चक्षुष्यमपि जनं महिष्या सममेकान्ते चिन्तयामास—'आसीदियं तरुणी तारुण्याम्रेडितलावण्या। भवन्ति चास्याः पश्यन्तः पयोधरोन्नतिं पार्थिवजाताश्चातका इव जातास्थाः। इदं हि संसारिणां सांसारिकप्रसूतिजातेष्वरुन्तुदं दुर्जातं यदात्मसंभवानामात्माभिवर्धितानां च कन्यानामन्येन केनाप्यदृष्टपूर्वेण घटनं तस्मादप्यनुरूपवरा-

§ ९५. अथेति—अथानन्तरं सा कल्याणी कल्याणवती गन्धर्वदत्ता कदाचन जातुचिद् पञ्चकल्याणं व्रतविशेषस्तस्योपवासस्य पारणादिवसो व्रतान्तभोजनवासरस्तस्मिन् परिवारेण परिजनेन सार्धं विजयार्धभूभृतः खेचराद्रेः किरीटायमानं मुकुटायमानं सिद्धकूटजिनचैत्यसदनं सिद्धकूटजिनालयं सपर्याविधानपुरःसरं पूजाविधिसहितम् अधिका भक्तिर्यस्यास्तथाभूता सती अभिप्रणम्य नमस्कृत्य समागत्य च चतुर्गतिभ्रमणस्य नारकादिगतिचतुष्कपर्यटनस्य प्रशमनभेषजं शान्त्यौषधं जिनाङ्घ्रिपङ्केरुहस्पर्शनेन जिनेन्द्रचरणारविन्दस्पर्शनेन पावनं पवित्रं प्रसूनं पुष्पं सविनयं पित्रे जनकाय समर्पयामास। राजापि गरुडवेगोऽपि तां शेषां पुष्परूपां सप्रश्रयं सविनयं गृहीत्वा अशेषदोषाणां निखिलदुष्कर्मणां क्षयस्तस्मा इति हेतोः शिरसा मूर्ध्ना वहन् संप्राप्तं यौवनसाम्राज्यं यया तां पूर्णयौवनवतीम् इमां कन्यां निर्वर्ण्य दृष्ट्वा जातो निर्वेदो यस्य तथाभूतः समुत्पन्नखेदः सन्, चक्षुष्यमप्यनुकूलमपि जनं निवर्तयन् विसर्जयन् महिष्या राज्ञ्या समम् एकान्ते विजने स्थाने चिन्तयामास विचारयामास—'तारुण्येन यौवनेनाम्रेडितं द्विगुणितं लावण्यं यस्यास्तथाभूता इयं तरुणी यौवनवती आसीत्। अस्याः पयोधरोन्नतिं कुचोन्नतिं पक्षे मेघोन्नतिं पश्यन्तः पार्थिवजाता राजसमूहाः चातका इव जाता समुत्पन्ना आस्था आदरबुद्धिर्येषां तथाभूता भवन्ति। संसारिणां प्राणिनामिदं हि सांसारिकप्रसूतिजातेषु सांसारिकसन्ततिसमूहेषु अरुन्तुदं मर्मव्यथकं दुर्जातं दुष्कर्म अस्ति, यद् आत्मसंभवानां स्वसमुत्पन्नानाम् आत्माभिवर्धितानां स्वपोषितानां च कन्यानां पति-

§ ९५. तदनन्तर किसी समय उस कल्याणवती कन्याने पंचकल्याणक व्रतका उपवास किया और उसकी पारणाके दिन परिवारके साथ विजयार्ध पर्वतके मुकुटके समान आचरण करनेवाले सिद्धकूट जिनालयमें जाकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की, बहुत भारी भक्तिसे नमस्कार किया और वहाँसे आकर चतुर्गतिके भ्रमणको शान्त करनेकी ओषधिस्वरूप, जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणकमलोंके स्पर्शसे पवित्र पुष्प विनयपूर्वक पिताके लिए समर्पित किया। राजाने भी उस आशीर्वादात्मक पुष्पको विनयसे लेकर 'यह समस्त दोषोंका क्षय करनेके लिए है' ऐसा निश्चय कर शिरपर रख लिया। उसी समय यौवनके साम्राज्यको प्राप्त हुई इस कन्याको देखकर राजाको कुछ निर्वेद उत्पन्न हुआ और वह प्रीतिपात्र मनुष्योंको भी अलग कर एकान्तमें रानीके साथ इस प्रकार विचार करने लगा। 'यौवनसे जिसका सौन्दर्य पुनरुक्त हो रहा है ऐसी यह कन्या अब तरुणी हो चुकी। जिस प्रकार पयोधर—मेघोंकी उन्नतिको देखते हुए पपीहे प्रीतिसे युक्त होते हैं उसी प्रकार इसके पयोधर—स्तनोंकी उन्नतिको देखते हुए राजा लोग प्रीतिसे युक्त हो रहे होंगे। सांसारिक प्रसूतियोंके समूहमें संसारी जीवोंको यह बात सबसे अधिक मर्मभेदी पीड़ा देनेवाली है कि अपनेसे उत्पन्न एवं अपने द्वारा बढ़ायी हुई कन्याओंका जो पहले कभी देखनेमें नहीं आया ऐसे किसी अन्य

न्वेषणं ततोऽपि सुखासिकाचिन्तनम्' इति। चिन्तानन्तरममात्यान्तरं नाम्ना धरमाहूय माम् 'अस्माकमस्ति मित्रं धात्रीतलराजिनि राजपुरे कोऽप्यूरव्यपतिः, एनमधुनैवानय' इत्यभ्यधत्त। अहमपि कार्यपारतन्त्र्यादार्यं प्रतार्यैवमानीतवानस्मि' इति।

§ ९६. अथ यथावदवगतपोतोपद्रवविरहेण विश्रुतबान्धवबियच्चराधीशसकाशसंगमलाभेन च सांयात्रिकः संमदपरवशो धरेण साकमुपसरन्दूरादेव बधिरितश्रवसा तुमुलरवेण सरभसमागच्छेत्यात्मानमिवाह्वयन्तम्, समन्तादुद्गच्छदतुच्छरत्नांशुप्रांशुतरगोपुरपक्षोपलक्षितमन्तरिक्षावसान-

वराणाम् अन्येन पूर्वं न दृष्टमित्यदृष्टपूर्वं तेनानवलोकितपूर्वेण केनापि यूना घटनं मेलनं तस्मादपि अनुरूपवरस्यान्वेषणं मार्गणं ततोऽपि सुखासिकाचिन्तनं सुखनिवासध्यानम्' इति। चिन्तानन्तरं राज्ञ्या सह विचारानन्तरम् अन्योऽमात्योऽमात्यान्तरस्तं सचिवान्तरं नाम्ना धरं धरनामधेयं सचिवान्तरम् माम् आहूय आकार्य 'धात्रीतलराजिनि महीतलशोभिनि राजपुरे राजपुर्यां नगर्यां कोऽपि ऊरव्यपतिर्वैश्यपतिः अस्माकं मित्रमस्ति, एनं वैश्यपतिम् अधुनैव सद्यः आनय' इत्यभ्यधत्त कथयामास। अहमपि धरोऽपि कार्यपारतन्त्र्यात् आर्यं भवन्तं वञ्चयित्वा, एवमनेन प्रकारेण नौकाभ्रंशादिप्रदर्शनविधिना आनीतवानस्मि आनिनाय।

§ ९६. अथ यथावदिति—अथानन्तरम् यथावत् सम्यक् अवगतो विदितः पोतोपद्रवस्य नौकानाशस्य विरहो येन तथाभूतः 'तव पोतो न नष्टः किन्तु मायया तादृशः प्रकारो दर्शितः' इति ज्ञानयुक्त इत्यर्थः, बन्धुरेव बान्धवः विश्रुतश्चासौ बान्धवश्चेति विश्रुतबान्धवः स एव वियच्चराधीशो विद्याधरनरेन्द्रस्तस्य सकाशस्य सामीप्यस्य संगमलाभस्तेन च सांयात्रिकः पोतवणिक् श्रीदत्तः संमदपरवशो हर्षायत्तः सन् 'मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः' इत्यमरः, धरेण विद्याधरसचिवेन साकं सहोपसरन् समीपमुपगच्छन् दूरादेव नित्यालोकमेतन्नामधेयनगरमालोक्य दृष्ट्वा नितरामत्यन्तं व्यस्मेष्टाश्चर्यान्वितो बभूव। अथ नित्यालोकस्य विशेषणान्याह—बधिरितं श्रवणशक्तिरहितीकृतं श्रवो येन तेन तुमुलरवेण उच्चैःशब्देन सरभसं सवेगम् आगच्छ इति आत्मानं स्वम् आह्वयन्तम् आकारयन्तम्, समन्तात्परित उद्गच्छद्भिरुपरि यान्भिरतुच्छरत्नांशुभिर्विशालमणिमरीचिभिः प्रांशुतराणि समुन्नतानि यानि गोपुराणि पुरद्वाराणि 'पुरद्वारं तु गोपुरम्' इत्यमरः तान्येव पक्षा गरुतस्तैरुपलक्षितं सहितम् अतएव अन्तरिक्षस्य नभसोऽवसानं

पुरुषके साथ सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। उससे भी अधिक अनुकूल वरका खोजना और उससे भी अधिक उनकी सुख-सुविधाकी चिन्ता करना है। चिन्ताके बाद ही मुझ धर नामक मन्त्रीको बुलाकर उसने कहा कि पृथिवीतलपर सुशोभित राजपुर नामक नगरमें कोई एक वैश्यपति मेरा मित्र है उसे इसी समय यहाँ लाओ। मैं भी कार्यकी परतन्त्रतासे आपको धोखा देकर इस प्रकार ले आया हूँ।

§ ९६. तदनन्तर जहाजके उपद्रवका यथार्थ ज्ञान होने और प्रसिद्ध बन्धुत्वके धारक विद्याधराधिपति गरुड़वेगका समागम प्राप्त होनेसे हर्षविभोर होता हुआ श्रीदत्त, धरमन्त्रीके साथ ज्यों ही आगे गया त्यों ही नित्यालोक नगरको देखकर आश्चर्यमें पड़ गया। उस समय उस नगरमें कानोंको बहरा करनेवाला जोरदार शब्द हो रहा था और उससे वह ऐसा जान पड़ता था मानो 'शीघ्र आओ' इस तरह उस श्रीदत्तको बुला ही रहा था। सब ओर उठती हुईं विशाल रत्नोंकी किरणोंसे अत्यन्त ऊँचे दिखाई देनेवाले गोपुररूपी पंखोंसे सहित था

निरीक्षणकौतुकादुड्डयितुमिवेच्छन्तम्, अलङ्घनीयसालशृङ्खलावलयेन[1] विशृङ्खलगतिनिरोधाय निगलितायमानम्, सदातनसलिलभरभरितपरिखाचक्रालवालपयःपरिवर्धितमूलतया स्वयमुत्पादितैरिव सकलर्तुकुसुमफलैः समृद्धम्, समृद्धिमयसौधशिखरपिनद्धपताकाग्रपाणिपल्लवेन शशाङ्कमपि कलङ्करहितं संपादयितुमिव संमार्जन्तम्[2], क्वचिद्भिद्यमानपद्मरागमणिमहःस्तबकितवियदन्तरालैरकालिकबालातपारेकामारचयन्तम्, क्वचित्कोकमिथुनविरहवितरणनिपुणकिरणापीडगारुडरत्नराशिशङ्कितशर्वरीसमागमसंरम्भम्[3], क्वचिज्जालकितगभस्तिजालस्थगितदिङ्मण्डलैराखण्डलनीलोपलघटिततलैरकाण्डप्रसारितभोजनशालास्थलकदलोपलाशसंशीतिसंपादिनम्, सर्वतश्च सविभ्रमं विह-

---

समाप्तिस्तस्य निरीक्षणस्य कौतुकं तस्मात् उड्डयितुमुत्पतितुमिच्छन्तमिवाभिलषन्तम्, अलङ्घनीयोऽनतिक्रमणीयः सालः प्राकारो यस्य तम् अतएव विशृङ्खला स्वच्छन्दा या गतिस्तस्या निरोधाय निवारणाय शृङ्खलावलयेन निगलितायमानं निगडितमिवाचरन्तम् सदातनेन सदास्थायिना सलिलभरेण जलसमूहेन भरितं परिखाचक्रमेव खेयमण्डलमेवालवाल आवापस्तस्य पयसा जलेन परिवर्धितं मूलं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया स्वयं स्वत उत्पादितैरिव कुसुमानि च फलानि चेति कुसुमफलानि सकलर्तूनां निखिलवसन्तादृतूनां कुसुमफलानि तैः समृद्धं समृद्धियुक्तम्, समृद्धिमयाः सम्पत्तियुक्ता ये सौधा राजसदनानि तेषां शिखराग्रभागेषु पिनद्धाः संलग्ना या पताका वैजयन्त्यस्तासामग्राण्येव पाणिपल्लवः करकिसलयस्तेन शशाङ्कमपि चन्द्रमसमपि कलङ्करहितं निर्मलं संपादयितुमिव कर्तुमिव संमार्जन्तं शोधयन्तम्, क्वचित् कुत्रचिद् भिद्यमानाः खण्ड्यमाना ये पद्मरागमणयो लोहितमणयस्तेषां महसा कान्त्या स्तबकितानि गुच्छितानि यानि वियदन्तरालानि गगनमध्यानि तैः आकालिकोऽसमयोत्पन्नो यो बालातपः प्रभातघर्मस्तस्यारेकां शङ्काम् आरचयन्तं कृतवन्तम्, क्वचित् कुत्रापि कोकमिथुनानां चक्रवाकयुगलानां विरहवितरणे विरहपीडाप्रदाने निपुणो दक्षः किरणापीडो रश्मिसमूहो येषां तथाभूतानि यानि गारुडरत्नानि नीलमणयस्तेषां राशिना शङ्कितः संदिग्धः शर्वरीसमागमसंरम्भो रजनीसमागमनोद्योगो यस्य तम्, क्वचित् कुत्रापि जालकितेन कोरकवदाचरितेन गभस्तिजालेन किरणकलापेन स्थगितमाच्छादितं दिङ्मण्डलं यैस्तैः 'जालकः कोरके दम्भप्रभेदे जालिनीफले' इति विश्वलोचनः आखण्डलनीलोपलैरिन्द्रनीलमणिभिर्घटितानि यानि तलानि कुट्टिमानि तैः अकाण्डेऽसमये प्रसारितानि विस्तारितानि भोजनशालास्थले भोजनगृहभूतले

इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशका अन्त देखनेके कौतुकसे उड़नेकी इच्छा ही कर रहा था। वह अलंघनीय कोटरूपी साँकलके कड़ेसे युक्त था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो स्वच्छन्द गतिको रोकनेके लिए बेड़ीसे ही युक्त था। सदा विद्यमान रहनेवाले पानीके भारसे भरे परिखाचक्ररूपी क्यारीके जलसे जड़ोंके वृद्धिगत होनेके कारण स्वयं उत्पन्न हुएके समान अनायास सिद्ध समस्त ऋतुओंके फूल और फलोंसे समृद्ध था। वह समृद्धिसम्पन्न महलोंके शिखरपर लगे हुए पताकाओंके अग्रभागरूपी हस्तपल्लवोंसे चन्द्रमाको भी कलंकरहित करनेके लिए मानो निरन्तर झाड़ता रहता था। कहींपर विदीर्यमाण पद्मराग मणियोंकी कान्तिसे आकाशका अन्तराल व्याप्त होनेसे असमयमें प्रकट होनेवाले प्रातःकालके घामकी शंका उत्पन्न कर रहा था। कहीं चकवा-चकवियोंको विरहके देनेमें निपुण किरणोंके समूहसे युक्त गारुड़ रत्नोंकी राशिसे रात्रिके समागमकी शंका उत्पन्न कर रहा था। कहीं जालके समान आचरण करनेवाली किरणोंसे दिशाओंको आच्छादित करनेवाले नीलमणि निर्मित

---

१. म० अलङ्घनीयसालम्–। २ क. संमार्जयन्तम्। ३ क. समागमनसंरम्भम्।

रन्तीनां विद्युल्लतानामिव विद्याधरीणामलक्तकरसाञ्चितचरणन्यासेन रञ्जितं स्वयमपि रागातुरमिव निरूप्यमाणम्, इन्दुभिरिव नन्दितोदयैरुदधिभिरिवोत्तालसत्त्वैर्मन्त्रिभिरिव मन्त्रसिद्धैः पारिजातैरिव परिपूर्णितार्थिजालैः सुव्यक्तमुक्ताफलैरिव वृत्तोज्ज्वलशरीरैः कोदण्डदण्डैरिव गुणावनम्रै राजमरालैरिव सुगतिसुन्दरैर्मधुकरैरिव सुमनोन्तरङ्गैर्वासरैरिवातमोभिभूतैर्जनैरलंकृतम्,

कदलीपलाशानि मोचादलानि तेषां संशीतिः संशयस्तस्याः संपादिनं विधायकम्, सर्वतश्च समन्ततश्च सविभ्रमं सविलासं यथा स्यात्तथा विहरन्तीनां विद्युल्लतानामिव तडिद्वल्लरीणामिव विद्याधरीणां खेचराङ्गनानाम् अलक्तकरसेन यावकेनाञ्चिताः शोभिता ये चरणाः पादास्तेषां न्यासेन निक्षेपेण रञ्जितं रक्तवर्णीकृतम् अतएव स्वयमपि रागातुरमिव प्रेमपीडितमिव निरूप्यमाणं दृश्यमानम्, इन्दुभिरिव सुधासूतिभिरिव नन्दितः प्रशंसित उदय उद्गमनं पक्षेऽभ्युदयो वैभवं वा येषां तैः, उदधिभिरिव सागरैरिव उत्ताला उत्कटाः सत्त्वाः प्राणिनः पक्षे स्वभावो येषां तैः 'सत्त्वं जन्तुषु न स्त्री स्यात्सत्त्वं प्राणात्मभावयोः' इति विश्वलोचनः, मन्त्रिभिरिव सचिवैरिव मन्त्रे विमर्शे सिद्धास्तैः पक्षे सिद्धानि मन्त्राणि येषां तैः 'वाहिताग्न्यादिषु' इति निष्ठान्तस्य वैकल्पिकः परनिपातः, पारिजातैरिव कल्पवृक्षैरिव परिपूर्णितं कृतार्थीकृतमर्थिनां याचकानां जालं समूहो यैस्तैः, सुव्यक्तमुक्ताफलैरिव सुप्रकटितमौक्तिकैरिव वृत्तं वर्तुलमुज्ज्वलं देदीप्यमानं शरीरं येषां तैः पक्षे वृत्तेन सदाचारेणोज्ज्वलं निर्मलं शरीरं येषां तैः, कोदण्डदण्डैरिव धनुर्दण्डैरिव गुणेन मौर्व्यावनम्राणि तैः पक्षे गुणैर्दयादाक्षिण्यादिभिरवनम्रा विनीतास्तैः, राजमरालैरिव राजहंसपक्षिभिरिव सुगत्या सुन्दरगमनेन सुन्दरास्तैः पक्षे सुगत्या सुष्ठुज्ञानेन शोभनदशया वा सुन्दरा मनोहरास्तैः, मधुकरैरिव भ्रमरैरिव, सुमनसां पुष्पाणामन्तरङ्गैर्मध्यगतैः पक्षे सुमनसां विदुषामन्तरङ्गैरङ्गैः, वासरैरिव दिवसैरिव

फर्शोंसे असमयमें भोजनशालाकी भूमिमें फैलाये हुए केलेके पत्तोंका संशय उत्पन्न कर रहा था। और सब ओर हाव-भावपूर्वक विहार करनेवाली बिजलीकी लताओंके समान विद्याधरियोंके महावरके रंगसे सुशोभित पैर रखनेसे लाल-लाल हो रहा था जिससे स्वयं रागसे पीडितके समान दिखाई देता था। वह नित्यालोक नगर उन मनुष्योंसे अलंकृत था जो चन्द्रमाओंके समान नन्दितोदय थे अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा आनन्ददायी उदयसे सहित होते हैं उसी प्रकार वे मनुष्य भी आनन्ददायी वैभवसे सहित थे। अथवा समुद्रोंके समान उत्ताल सत्त्व थे अर्थात् जिस प्रकार समुद्र उत्ताल सत्त्व—मगरमच्छ आदि भयंकर प्राणियोंसे सहित होते हैं उसी प्रकार वे मनुष्य भी उत्तालसत्त्व-अधिक पराक्रमके धारक थे। अथवा मन्त्रियोंके समान मन्त्र सिद्ध थे। अर्थात् जिस प्रकार मन्त्रवादी लोग मन्त्र सिद्ध—मन्त्रोंको सिद्ध करनेवाले होते हैं उसी प्रकार वे मनुष्य भी मन्त्रसिद्ध—गुप्त विमर्शसे कृतकृत्य थे। अथवा कल्पवृक्षोंके समान परिपूर्णार्थिजात थे अर्थात् जिस प्रकार कल्पवृक्ष याचक समूहको सन्तुष्ट करनेवाले होते हैं उसी प्रकार वे मनुष्य भी याचक समूहको सन्तुष्ट करनेवाले थे। अथवा अच्छी तरह प्रकट हुए मुक्ताफलोंके समान वृत्तोज्ज्वलशरीर थे अर्थात् जिस प्रकार मुक्ताफल वृत्तोज्ज्वलशरीर—गोल और देदीप्यमान शरीरके धारक होते हैं उसी प्रकार वे मनुष्य भी वृत्तोज्ज्वलशरीर—चरित्रसे निर्मल शरीरके धारक थे। अथवा धनुर्दण्डके समान गुणावनम्र थे अर्थात् जिस प्रकार धनुर्दण्ड गुणावनम्र—डोरीसे नम्रीभूत रहते हैं उसी प्रकार वे मनुष्य भी गुणावनम्र—विद्या-बुद्धि-विनय आदि गुणोंसे नम्रीभूत थे। अथवा राजहंसोंके समान सुगति सुन्दर थे अर्थात् जिस प्रकार राजहंस सुगति सुन्दर—सुन्दर चालसे मनोहर रहते हैं उसी प्रकार वे मनुष्य भी सुगति सुन्दर—उत्तम दशासे मनोहर थे। अथवा भ्रमरोंके समान सुमनोऽन्तरंग थे जिस प्रकार भ्रमर सुमनोऽन्तरंग—फूलोंके भीतर गमन करनेवाले होते हैं उसी प्रकार वे मनुष्य भी सुमनोऽन्तरंग—विद्वानोंके भीतर गमन करनेवाले थे।

आत्मदुरासदमालोक्य नित्यालोकं नितरां व्यस्मेष्ट। व्यतनिष्ट च 'विशिष्टसुकृतोदयागताप्यापन्मम संपदे जाता' इति सानन्दश्चिन्ताम्।

§ ९७. तदनु प्रविशतां निष्पततां च निरवधिकतया तत्र तत्र स्थितैरिव सर्वद्वीपराष्ट्रभवैर्जनैः सृष्टिस्थानमिवाधिष्ठितमुपसृत्य राजद्वारं दौवारिकमहत्तरेण धरचोदितेन विज्ञापिताहूतः सकौतुकं राजगृहमवगाहमानस्तत इतोऽप्यदृष्टपूर्वतया दृष्टिं व्यापारयन्नपरिमितानि व्यतीत्य कक्ष्यान्तराणि नातिदवीयसि प्रदेशे शातकुम्भस्तम्भशुम्भिनश्चन्द्रातपच्छेदच्छविचन्द्रोपकचुम्बिताम्बरस्य निष्टप्ताष्टापदघटितकुट्टिमनिर्यत्तरुणतरतरणिकिरणायमानमरीचिमञ्जरीपिञ्जरितहरितः खेचरेन्द्रा-

तमसा तिमिरेण नाभिभूता नाक्रान्तास्तैः पक्षे तमोगुणानाक्रान्तैः जनैर्लोकैः अलंकृतं शोभितम् आत्मदुरासदम् स्वदुर्लभम्। व्यतनिष्ट च चकार च विशिष्टसुकृतोदयात्सातिशयपुण्योदयात् आगतापि प्राप्तापि आपद् मम संपदे लाभाय जाता' इति सानन्दः सहर्षः चिन्ताम् विचारम्।

§ ९७. तदन्विति—तदनु तदनन्तरं प्रविशतां प्रवेशं कुर्वतां निष्पततां निर्गच्छतां च जनानामिति शेषः निरवधिकतया निःसीमतया तत्र तत्र तत्तत्स्थानेषु स्थितैरिव विद्यमानैरिव सर्वद्वीपराष्ट्रभवैरखिलद्वीपदेशसमुत्पन्नैः जनैः अधिष्ठितं सहितमत एव सृष्टिस्थानमिव ब्रह्मणः सृष्टिनिर्माणस्थानमिव राजद्वारं नरेन्द्रमन्दिरद्वारम् उपसृत्य प्राप्य धरचोदितेन धरप्रेरितेन दौवारिकमहत्तरेण प्रधानद्वारपालेन आदौ विज्ञापितः पश्चादाहूत इति विज्ञापिताहूतो निवेदिताकारितः सकौतुकं सकुतूहलं राजगृहं नृपतिसदनम् अवगाहमानः प्रवेशं कुर्वाणः तत इतोऽपि यत्र तत्र अदृष्टपूर्वतया पूर्वमनालोकितत्वेन दृष्टिं व्यापारयन् चलयन् अपरिमितानि बहूनि कक्ष्यान्तराणि प्रकोष्ठविवराणि व्यतीत्य समतिक्रम्य नातिदवीयसि नातिदूरतरे समीपे इति यावत् शातकुम्भस्तम्भैः सुवर्णस्तम्भैः शुम्भतीत्येवंशीलस्तस्य, चन्द्रातपस्य कौमुद्याश्छेदाः खण्डानि तद्वच्छविर्यस्य तथाभूतेन चन्द्रोपकेण वितानेन चुम्बितमाश्लिष्टमम्बरं गगनं येन तस्य, निष्टप्तेन नितरां तप्तेन अष्टापदेन स्वर्णेन घटितं निष्पादितं यत्कुट्टिमं महाभोगस्तस्मान्निर्यन्तो निर्गच्छन्तो ये तरुणतरणिकिरणा मध्याह्नदिनकरदीधितयस्तद्वदाचरन्त्यो या मरीचिमञ्जर्यो रश्मितततय-

अथवा दिनोंके समान अतमोऽभिभूत थे अर्थात् जिस प्रकार दिन अतमोऽभिभूत—अन्धकारसे आक्रान्त नहीं रहते उसी प्रकार वे मनुष्य भी अतमोऽभिभूत—तमोगुणसे आक्रान्त नहीं थे। उस नगरको श्रीदत्त अपने लिए दुरासद—दुष्प्राप्य समझता था। 'प्राप्त हुई आपत्ति भी विशिष्ट पुण्यके उदयसे मेरी सम्पत्तिके लिए हो गयी' इस प्रकार आनन्दसे विभोर श्रीदत्त मन ही मन विचार कर रहा था।

§ ९७. तदनन्तर वह राजद्वारमें पहुँचा। राजद्वार समस्त द्वीप और समस्त राष्ट्रोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंसे अधिष्ठित था इसलिए सृष्टिके स्थानके समान जान पड़ता था। वहाँ प्रवेश करनेवाले और बाहर निकलनेवाले लोगोंकी बहुलतासे ऐसा जान पड़ता था कि सब लोग जहाँके तहाँ खड़े ही हैं। धरविद्याधरसे प्रेरित होकर प्रधान द्वारपालने राजाको खबर दी। तदनन्तर बुलाये जानेपर उसने बड़े कौतुकके साथ राजमहलमें प्रवेश किया। वैसी सुन्दर रचना उसने पहले कभी देखी नहीं थी इसलिए प्रवेश करते समय वह अपनी दृष्टि इधर-उधर चला रहा था। अनेक कक्षाओंके अन्तरको पार कर वह उस विशाल मण्डपमें पहुँचा जो कुछ ही दूरवर्ती स्थानपर स्वर्णके खम्भोंसे सुशोभित था। चाँदनीके टुकड़ोंके समान कान्तिवाले चँदोवासे जो आकाशको चूम रहा था। अत्यन्त तपाये हुए स्वर्णसे निर्मित फर्शसे निकलनेवाली एवं मध्याह्नके सूर्यकी किरणोंके समान आचरण करनेवाली किरणावलीसे जो दिशाओं

नुचरणधिषणोपसरत्सूर्येन्दुसंदेहमावहतो महतो मण्डपस्य मध्ये स्थितम्, अस्तोकस्नेहभयाक्रान्तस्वान्तैरुन्नयनपङ्क्तिभिः पङ्क्तिस्थितखचरेन्द्रैरञ्जलिकञ्जमुकुलपुञ्जेनेवाभ्यर्च्यमानम्, अष्टापदसुप्रति-[1]ष्ठकभृङ्गारकमुकुरचमरजतालवृन्तवृन्दग्राहिणीभिर्विग्रहिणीभिरिव तडिल्लताभिर्ललनाभिरभितोऽपि दिग्वधूभिरिव परिवृतम्, महति हरिविष्टरे समुपविष्टमपि विष्टरश्रवसश्चापकाण्डमकाण्डे दर्शयन्त्या मण्डनपुनरुक्तया कायकान्त्या मण्डपे [2]सर्वस्वतेजसा दिगन्तेषु स्वान्तेन स्वदुहितृविवाहकर्मणि मन्दस्मितेन साधितसमीहितागतेषु सामन्तेषु कटाक्षपातेन प्रसादावर्जनदीनारसहस्रदानेषु श्रवणप्रदानेन नानाजनपदोपसर्पदपसर्पवचः[3]श्रवणेषु प्रतिबिम्बनिभेन खेचरेन्द्रवृन्दारककिरीटेषु नेत्रेण मित्रगात्रे

स्याभिः पिञ्जरिता पिङ्गलवर्णीकृता हरितो दिशा यस्मिन् तस्य, खेचरेन्द्रस्य विद्याधरधराबल्लभस्य यानुचरणधिषणा सेवाबुद्धिस्तयोपसरन्तौ समीपमागच्छन्तौ यौ सूर्येन्दू तयोः संदेहं संशयम् आवहतो दधतो महतो विशालस्य मण्डपस्य मध्ये स्थितं समुपविष्टम्, अस्तोकाभ्यां विपुलाभ्यां स्नेहभयाभ्यामाक्रान्तं चित्तं येषां तैः, उद्गता नयनपङ्क्तिर्येषां तैः ऊर्ध्वं पश्यद्भिरित्यर्थः पङ्क्तिस्थिताश्च ते खचरेन्द्राश्च तैः श्रेणीस्थितविद्याधरेन्द्रैः अञ्जलय एव कञ्जमुकुलानि कमलकुड्मलानि तेषां पुञ्जः समूहस्तेन अभ्यर्च्यमानमिव पूज्यमानमिव, अष्टापदस्य सुवर्णस्य सुप्रतिष्ठकं तीर्थपात्रं भृङ्गारकः कलशः मुकुरो दर्पणः चमरजो बालव्यजनं तालवृन्तं व्यजनं च तेषां वृन्दस्य समूहस्य ग्राहिण्यस्ताभिः स्वर्णनिर्मितमङ्गलद्रव्यधारिणीभिरिति यावत् विग्रहिणीभिः शरीरधारिणीभिः तडिल्लताभिरिव विद्युल्लरीभिरिव ललनाभिरङ्गनाभिः अभितोऽपि समन्तादपि दिग्वधूभिरिव काष्ठाकामिनीभिरिव परिवृतं परिवेष्टितम्, महति विस्तृते हरिविष्टरे सिंहासने समुपविष्टमपि समासीनमपि विष्टरश्रवसः पुरन्दरस्य चापकाण्डं धनुर्दण्डम् अकाण्डेऽसमये दर्शयन्त्या प्रकटयन्त्या मण्डनपुनरुक्तया भूषणद्विरुद्दीप्तया कायकान्त्या देहदीप्त्या मण्डपे, सर्वस्वं तेजः प्रतापस्तेन दिगन्तेषु काष्ठान्तेषु, स्वान्तेन चेतसा स्वदुहितुः स्वपुत्र्या विवाहकर्म तस्मिन्, मन्दस्मितेन मन्दहास्येन आदौ साधितसमीहिताः पश्चादागतास्तेषु कार्यं साधयित्वा समागतेषु सामन्तेषु मण्डलेश्वरेषु, कटाक्षपातेन प्रसादेनावर्जनमानुकूल्यं तेन दीनारसहस्राणां स्वर्णमुद्राणां दानानि तेषु, श्रवणप्रदानेन कर्णदानेन नानाजनपदेभ्यो नैकदेशेभ्य उपसर्पन्तः समीपमागच्छन्तो येऽपसर्पा गुप्तचरास्तेषां वचःश्रवणेषु गुप्तवार्ता-

को पीतवर्ण कर रहा था और विद्याधर राजाकी सेवाकी बुद्धिसे समीपमें आते हुए सूर्य तथा चन्द्रमाका सन्देह उत्पन्न कर रहा था। राजा गरुडवेग उसी विशाल मण्डपके मध्यमें स्थित था। जिनके चित्त बहुत भारी स्नेह और भयसे आक्रान्त थे, तथा जिनके नयनोंकी पंक्ति ऊपरकी ओर उठ रही थी ऐसे पंक्ति रूपसे स्थित अनेक विद्याधर राजा हाथ जोड़े हुए उसके समीप बैठे थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो वे अंजलिरूप कमलकी बोंड़ियोंके समूहसे उसकी पूजा ही कर रहे थे। स्वर्णनिर्मित ठौना, झारी, दर्पण, चमर और पंखा आदि मंगल द्रव्योंको धारण करनेवाली अनेक स्त्रियाँ जो शरीरधारिणी विद्युल्लताके समान जान पड़ती थीं उसे चारों ओरसे घेरे हुए थीं और उनसे वह ऐसा प्रतीत होता था मानो दिशारूप स्त्रियाँ ही उसे घेरे हों। वह यद्यपि सिंहासनपर बैठा था तथापि असमयमें इन्द्रधनुषको दिखलानेवाली एवं आभूषणोंसे पुनरुक्त शरीरकी कान्तिसे समस्त मण्डपमें सर्वस्व रूप तेजसे दिशाओंके अन्तमें, हृदयसे अपनी पुत्रीके विवाह कार्यमें, मन्द मुसकानसे इष्ट कार्य सिद्ध कर आये हुए सामन्तोंमें, कटाक्षपातसे प्रसन्नताको प्राप्त मनुष्योंके लिए हजारों दीनारोंके देनेमें कर्णदानसे नाना देशोंसे पास आनेवाले गुप्तचरों

१. सुप्रतिष्ठकम्—तीर्थपात्रम्। २. मण्डपसर्वस्वे म०। ३. क० नानाजनपदोपसर्पवचःश्रवणेषु।

निवसन्तं तं[1] नभश्चराधिपमधिकभक्तिः समुद्वीक्ष्य संमदभरदुर्भरं वपुः समुद्वोढुमपारयन्निव धरायां पतन्सप्रश्रयं प्राणंसीत्। खेचरेन्द्रोऽपि रुचिरां दशनज्योत्स्नां निःसरन्त्याः सरस्वत्याः पुरःसरदीपिकामिव दर्शयन्नधरितजलधररवगाम्भीर्येण कुशलपरिप्रश्नादिचतुरोपचारगर्भेण मधुरतरेण स्वरेण 'सांयात्रिकं संभाव्य समुचितकशिपुभिः[2] समग्रमेनं संपाद्य पुनरानय' इति धरमब्रवीत्।

§ ९८. अथ धरस्य सद्मनि वर इवायमूरव्यचूडामणिरुपलाल्यमानः क्षपामपि तत्रैव क्षपयित्वा प्रभात एव प्रसरन्त्यां गन्धर्वदत्तायाः क्षितितलप्रयाणवार्तायाम्, तन्मुखकान्तिजिते कांदिशीक इव मन्दतेजसि गते चन्द्रमसि, उडुगणेऽप्युडुपतिपराजयादिव तिरोदधति, पूर्वोदधिवेलां

कर्णनेषु, प्रतिबिम्बनिभेन प्रतिकृतिव्याजेन खेचरेन्द्रवृन्दारकाणां विद्याधरधरावल्लभश्रेष्ठानां किरीटेषु मुकुटेषु, नेत्रेण च नयनेन च मित्रगात्रे श्रीदत्तवैश्यपतिशरीरे निवसन्तं तं नभश्चराधिपं विद्याधरनरेन्द्रं गरुडवेगम् अधिकभक्तिरुत्कटानुरागः समुद्वीक्ष्य समवलोक्य संमदभरेण हर्षभरेण दुर्भरं दुःखेन धर्तुं शक्यं वपुः शरीरं समुद्वोढुम् धर्तुमपारयन्निव धरायां पृथिव्यां पतन् प्राणंसीत् नमश्चकार। खेचरेन्द्रोऽपि गरुडवेगोऽपि रुचिरां मनोहरां निःसरन्त्या निर्गच्छन्त्याः सरस्वत्या वाण्याः पुरःसरदीपिकामिव अग्रसरदीपिकामिव दशनज्योत्स्नां दन्तकौमुदीम् दर्शयन् प्रकटयन् अधरितं तिरस्कृतं जलधराणां घनानां रवस्य गर्जनस्य गाम्भीर्यं येन तेन, चतुराणामुपचारश्चतुरोपचारः कुशलपरिप्रश्नादिश्चतुरोपचारो गर्भे यस्य तेन तथाभूतेन मधुरतरेण अतिशयमधुरेण स्वरेण वाचा सांयात्रिकं पोतवणिजं संभाव्य सत्कृत्य समुचितकशिपुभिः योग्यान्नवस्त्रादिभिः समग्रं संपूर्णं संपाद्य एवं पुनरानय इति धरं तन्नामामात्यम् अब्रवीत्।

§ ९८. अथेति—अथानन्तरम् धरस्य मन्त्रिणः सद्मनि गृहे वर इव जामातेव उपलाल्यमानः सेव्यमानः अयम् ऊरव्यचूडामणिर्वैश्यशिरोमणिः श्रीदत्तः क्षपामपि निशामपि तत्रैव धरामात्यभवन एव क्षपयित्वा व्यपगमय्य प्रभात एव प्रत्यूष एव गन्धर्वदत्ताया गरुडवेगसुतायाः क्षितितले प्रयाणस्य वार्ता तस्यां भूतलगमनप्रवृत्तौ प्रसरन्त्यां सत्याम् तस्या गन्धर्वदत्ताया मुखकान्त्या वदनसुषमया जितः पराभूतस्तस्मिन् अतएव कांदिशीक एव भयद्रुत इव मन्दतेजसि क्षीणप्रकाशे चन्द्रमसि गते सति, उडुगणेऽपि नक्षत्रनिचयेऽपि उडुपतिपराजयादिव चन्द्रपराभवादिव तिरोदधति अन्तर्हिते भवति, विकसितं कमलानां

के वचन सुननेमें, प्रतिबिम्बके बहाने विद्याधर राजाओंके मुकुटोंमें, और नेत्रसे मित्रके शरीर पर निवास कर रहा था। विद्याधरोंके राजा गरुड़वेगको देखकर श्रीदत्तको भक्ति उमड़ पड़ी और उसने पृथिवीपर पड़कर बड़ी विनयसे उसे नमस्कार किया। पृथिवीपर पड़ते समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो हर्षके भारसे दुर्भर शरीरको धारण करनेके लिए असमर्थ ही हो गया था। राजा गरुडवेगने भी निकलनेवाली सरस्वतीके आगे-आगे चलनेवाली दीपिकाके समान दाँतोंकी सुन्दर कान्ति दिखलाते हुए मेघगर्जनाके गाम्भीर्यको तिरस्कृतवाले एवं कुशल प्रश्न आदि चतुर जनोंके उपचारसे युक्त अत्यन्त मधुर स्वरसे श्रीदत्तका सन्मान कर धर मन्त्रीसे कहा कि इन्हें योग्य भोजन तथा वस्त्र आदिसे सत्कृत कर फिर लाओ।

§ ९८. अथानन्तर धर मन्त्रीके घर श्रीदत्तका वरके समान सत्कार हुआ। रात्रि भी उसने वहीं बितायी। प्रातःकाल होते-होते यह बात सर्वत्र फैल गयी कि गन्धर्वदत्ताका पृथिवी तलकी ओर प्रयाण होनेवाला है। गन्धर्वदत्ताके मुखकी कान्तिसे पराजित होनेके कारण ही मानो जिसका तेज फीका पड़ गया था ऐसा चन्द्रमा भयभीतके समान कहीं चला गया—अस्त हो गया। नक्षत्रोंका समूह भी नक्षत्रपति—चन्द्रमाका पराजय देख तिरोहित हो गया।

१. क० ख० ग० 'तं' नास्ति। २. कशिपुभिः—अन्नवस्त्रादिभिः, इति टि०।

विकसितकमलमुखे चन्द्रमुखीमुखावलोकनरागादिव सरागे रवौ समासीदति, सीदति दुहितृविरहकातर्येण धारिणीहृदये, हृदयज्ञे च राज्ञि 'राजीवलोचने, सुलोचनानां जननस्थानमुत्सृज्य सरितामिवान्यत्र सरणं किमु सांप्रतिकम् । अतो न सांप्रतमेवं तव वैक्लव्यम्' इत्युदीर्य हरति धारिणीमनःखेदम्, सोऽपि श्रीदत्तः खेचरेन्द्रान्तिकममन्दादरादुपसरन्नुत्तमाङ्गचुम्बिताम्बुराशिरशनः सविनयं तस्थौ । तावता च जातास्थाः[1] 'कन्यकायाः प्रस्थानलग्नः प्रत्यासन्नः' इति मुहुर्मुहुरूचुर्मौहूर्तिकाः ।

§ ९९. अथ सत्वरपरिजनचरणसंघट्टनरणिते श्रवांसि बधिरयति, प्रतिदिशं समागच्छ-

मुखं येन तस्मिन्, चन्द्रमुख्या गन्धर्वदत्ताया मुखस्यावलोकने रागः प्रेमातिशयस्तस्मादिव सरागे सप्रेमणि पक्षे सलौहित्ये रवौ दिनकरे पूर्वोदधिवेलां पूर्वसागरतटीं समासीदति समागच्छति सति, दुहितृविरहेण पुत्रीवियोगेन यत्कातर्यं भीरुत्वं तेन धारिणीहृदये राज्ञीचेतसि सीदति दुःखमनुभवति सति, हृदयज्ञे च राज्ञीहृदयविज्ञे च राज्ञि गरुडवेगे राजीवलोचने, हे कमलनयने, सुलोचनानां नारीणां जननस्थानं जन्मधाम उत्सृज्य त्यक्त्वा सरितामिव नदीनामिव अन्यत्र सरणं गमनं किमु सांप्रतिकम् आधुनिकम् । अतो न एवमनेन प्रकारेण तव वैक्लव्यं वैचित्र्यं न सांप्रतं न युक्तम्, इति उदीर्य निगद्य धारिणीमनःखेदं राज्ञीहृदयदुःखं हरति सति, सोऽपि श्रीदत्तः अमन्दादरात्प्रचुरसन्मानात् खेचरेन्द्रान्तिकं विद्याधरधरापतिसमीपम् उपसरन् गच्छन् उत्तमाङ्गेन शिरसा चुम्बिता अम्बुराशिरशना मही येन तथाभूतः सन् सविनयं सप्रश्रयं यथा स्यात्तथा तस्थौ । तावता च तावत्कालेन च जाता आस्था येषां ते समुत्पन्नप्रत्यया मौहूर्तिका दैवज्ञाः 'कन्यकाया गन्धर्वदत्तायाः प्रयाणलग्नः प्रस्थानसमयः प्रत्यासन्नो निकटस्थः' इति मुहुर्मुहुः भूयो भूय ऊचुः ।

§ ९९. अथ सत्वरेति—अथानन्तरं सत्वराः सशीघ्या ये परिजना परिवारजनास्तेषां चरणानां पादानां संघट्टनं विमर्दनं तेन समुत्पन्नं रणितं शब्दस्तस्मिन् श्रवांसि श्रोत्राणि बधिरयति सति प्रतिदिशं

खिले हुए कमलके समान मुखको धारण करनेवाला लाल-लाल सूर्य पूर्व समुद्रके तटपर आ गया । उस समय वह सूर्य ऐसा जान पड़ता था मानो चन्द्रमुखी—गन्धर्वदत्ताको देखनेके रागसे ही सराग—प्रेमसहित (पक्षमें लाल-लाल) हो गया था । धारिणीका हृदय पुत्रीके विरहकी कातरतासे दुखी होने लगा, और उसके हृदयकी बात जाननेवाले राजा 'हे कमललोचने ! नदियोंके समान स्त्रियोंका जन्म स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना क्या आजकी बात है ? इसलिए तुम्हें इस प्रकार बेचैन होना योग्य नहीं है' यह कहकर उसके मनका खेद दूर करने लगे । उसी समय वह श्रीदत्त भी बहुत भारी आदरसे विद्याधराधिपति राजा गरुड़वेगके समीप आया और पृथिवीपर मस्तक टेक विनयपूर्वक खड़ा हो गया । इतनेमें ही श्रद्धाको धारण करनेवाले ज्योतिषी बार-बार कहने लगे कि कन्याके प्रस्थानका समय निकट आ पहुँचा है ।

§ ९९. तदनन्तर जब शीघ्रतासे युक्त परिजनोंके चरणोंके संघट्टनसे उत्पन्न हुआ शब्द कानोंको बहिरा कर रहा था । जब प्रत्येक दिशासे आनेवाली प्रस्थानकालिक प्रचुर सामग्री

---

१. ख० 'जातास्थाः' पदं नास्ति ।

दतुच्छप्रयाणपरिच्छदे चक्षूंषि चरितार्थीकुर्वति, सर्वथाभवत्तरुणीविप्रयोगे विधुरयति प्रेमान्धबन्धुजनमनांसि, मांसलपटवासगन्धे घ्राणरन्ध्रं नीरन्ध्रयति, समधिकधवलोष्णीषवारबाणधारिणा गृहीतकनककौक्षेयकवेत्रयष्टिना निष्ठुरहुंकारभयपलायितसत्त्वसार्थविभक्तपुरोभागेन प्रवयसा प्रतीहारलोकेनाधिष्ठिताप्रस्कन्धस्य बन्धुरभूषणमणिमहःप्रचयविद्युदुद्योतद्योतितवियतः[1] स्फुटितमन्दारदामकामुकमधुकरनिकुरुम्बविलुलितालकस्य परस्परपरिहासकथाप्रसङ्गस्फुरितहसितकुसुमिताधररुचकस्य महतः स्त्रैणस्य मध्ये महीभृदाज्ञया समायान्ती, परिचयातिप्रसङ्गसंक्रान्तैर्विजयार्धशिख-

---

प्रतिकाष्ठं समागच्छन् योऽतुच्छः प्रचुरः प्रयाणपरिच्छदः प्रस्थानसामग्रीसंचयस्तस्मिन् चक्षूंषि दर्शकानां नयनानि चरितार्थीकुर्वति सफलयति सति, सर्वथा सर्वप्रकारेण भवन् जायमानो यस्तरुणीविप्रयोगो गन्धर्वदत्ताविरहस्तस्मिन् प्रेमान्धानि च तानि बन्धुजनमनांसीति प्रेमान्धबन्धुजनमनांसि विधुरयति सति दुःखीकुर्वाणे सति, मांसलः परिपुष्टो यः पटवासगन्धः सुगन्धितचूर्णगन्धस्तस्मिन् घ्राणरन्ध्रं नासाविवरं नीरन्ध्रयति, निश्छिद्रीयति सति, समधिकधवलौ धवलतरौ यावुष्णीषवारबाणौ शिरोवेष्टनकंचुकौ तयोर्धारिणा तेन गृहीते कनककौक्षेयकवेत्रयष्टी सुवर्णखड्गवेत्रदण्डौ येन तेन, निष्ठुरहुङ्कारस्य भयेन पलायितो यः सत्त्वसार्थः प्राणिसमूहस्तेन विभक्तः पुरोभागो यस्य तेन प्रवयसा स्थविरेण प्रतीहारलोकेन कञ्चुकीजनेन अधिष्ठितो युक्तोऽप्रस्कन्धोऽग्रप्रदेशो यस्य तस्य, बन्धुरभूषणानां मनोहराभरणानां मणयो रत्नानि तेषां महःप्रचयस्तेजःसमूहः स एव विद्युदुद्योतस्तडित्प्रकाशस्तेन द्योतितं प्रकाशितं वियद् व्योम येन तस्य स्फुटितानि विकसितानि यानि मन्दारदामानि कल्पवृक्षमाल्यानि तेषां कामुका अभिलाषुका ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां निकुरम्बेण समूहेन विलुलिता अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्य तस्य, परिहासकथाया नर्मवार्तायाः प्रसङ्गेन स्फुरितं प्रकटितं यद् हसितं तेन कुसुमितं पुष्पितम् अधररुचकम् अधरबिम्बं यस्य तस्य, महतो विपुलस्य स्त्रैणस्य स्त्रीसमूहस्य मध्ये महीभृदाज्ञया राजादेशेन समयान्ती समागच्छन्ती गन्धर्वदत्ता सत्वरं सशैघ्र्यं सादरं च तन्मुखे तद्वक्त्रे वलितं त्रोटितं मुखं येषां तथाभूतैः सभाजनैः पारिषदैः ददृशे दृष्टा। अथ तस्या एव विशेषणान्याह—परिचयेति–परिचयातिप्रसङ्गेन परिचयाधिक्येन संक्रान्तैर्मिलितैः विजयार्ध-

---

नेत्रोंको चरितार्थ कर रही थी। जब सदाके लिए होनेवाला गन्धर्वदत्ताका वियोग प्रेमान्ध बन्धुजनोंके हृदयको दुःखी कर रहा था और जब सुगन्धित चूर्णकी बहुत भारी सुगन्धि नासिका विवरको निश्छिद्र कर रही थी—व्याप्त बना रही थी तब राजाकी आज्ञासे गन्धर्वदत्ता आयी और सभाके लोगोंने शीघ्रता और आदरके साथ उसकी ओर मुख फेरकर उसे देखा। वह गन्धर्वदत्ता उस बहुत भारी स्त्री-समूहके बीच आ रही थी जिसका कि अग्रभाग अत्यन्त सफेद साफा और बारबाणको धारण करनेवाले, स्वर्णमय तलवार और छड़ीको ग्रहण करनेवाले, तथा अत्यन्त कठोर हुंकारके भयसे भागते हुए प्राणियोंसे जिसे आगे खाली मैदान दिया गया था ऐसे वृद्ध प्रतीहार जनोंसे अधिष्ठित था। नतोन्नत आभूषणोंमें लगे हुए मणियोंके तेजःसमूहरूपी बिजलीके प्रकाशसे जिसने आकाशको प्रकाशित कर रखा था। खिली हुई मन्दारकी मालाओंके इच्छुक भ्रमरोंके समूहसे जिसके आगेके बाल अस्त-व्यस्त हो गये थे और पारस्परिक हास-परिहासकी कथाओंके प्रसंगसे प्रकट मन्द हास्यसे जिसके अधर बिम्ब फलोंसे युक्त-जैसे जान पड़ते थे। वह गन्धर्वदत्ता उस समय परिचयकी अधिकतासे संक्रान्त,

---

१. क० विद्युद्द्योतितवियतः।

रिधातुधूलिभिरिव रञ्जितमलक्तकरसताम्रं तनुतररेखामयशुभलाञ्छनाञ्चितमतिसुकुमारमुदरं दधद्भ्यां पादपल्लवाभ्यां पल्लवयन्ती भुवम्, विषमबाणतूणीरनिर्माणमातृकानुकाराभ्यामुद्यन्नूपुरविमलमुक्ताफलकरैः स्निग्धबन्धुमनोभिरिव गमनप्रतिबन्धाय गृह्यमाणाभ्यां क्रमवृत्तस्निग्धानतिप्रांशुभ्यां जङ्घाभ्यां भासमाना, न्यक्कृतराजरम्भाकाण्डाभ्यामूरुस्तम्भाभ्यां घनजघननगराभोगभारमुद्वहन्ती, विलसदमलफेनपटलवलक्षेण महता क्षौमेण प्रयाणानुसरणकृते समागतराजतगिरिकिरणजातेनेव कृतपरिष्कारा तारुण्यसिन्धुपुलिनयोर्जघनयोः सारसविरावाञ्चितां काञ्चीमुदञ्चता करेण

शिखरी गगनचराद्रिस्तस्य धातुधूलिभिर्गैरिकरेणुभी रञ्जितमिव लोहितमिव अलक्तकरसेन यावकरसेन ताम्रं रक्तवर्णम्, तनुतररेखामयानि कृशतररेखारूपाणि यानि शुभलाञ्छनानि शुभचिह्नानि तैरञ्चितं शोभितम्, अतिसुकुमारं मृदुलतरम् उदरं मध्यं दधद्भ्यां पादपल्लवाभ्यां चरणकिसलयाभ्यां भुवं पृथिवीं पल्लवयन्ती किसलयन्ती रक्तवर्णांकुर्वन्तीत्यर्थः, विषमबाणेति—विषमबाणो मदनस्तस्य तूणीरस्येषुधेर्निर्माणे रचनायां मातृकानुकाराभ्यां मातृकातुल्याभ्याम् उद्यन्त उत्पतन्तो ये नूपुरविमलमुक्ताफलानां मञ्जीरकामलमौक्तिकानां कराः किरणास्तैः स्निग्धानि च तानि बन्धुमनांसि सनाभिस्वान्तानि तैः गमनप्रतिबन्धाय गमननिषेधाय गृह्यमाणाभ्यामिव स्वीक्रियमाणाभ्यामिव क्रमवृत्ते क्रमवर्तुले स्निग्धे मसृणे अनतिप्रांशू च नातिदीर्घे च ताभ्यां जङ्घाभ्यां प्रसृताभ्यां भासमाना शोभमाना, न्यक्कृतेति—न्यक्कृतस्तिरस्कृतो राजरम्भाकाण्डो मोचातरुप्रकाण्डो याभ्यां ताभ्याम् ऊरुस्तम्भाभ्यां सक्थिदण्डाभ्याम्, घनजघनमेव स्थूलनितम्बमेव नगरं तस्याभोगभारं विस्तारभारम् उद्वहन्ती दधती, विलसदिति—विलसच्छोभमानं यदमलफेनपटलं निर्मलडिण्डीरसमूहस्तद्वद्वलक्षेण धवलेन महता विस्तृतेन क्षौमेण चीनांशुकेन प्रयाणे प्रस्थाने यदनुसरणं यदनुगमनं तस्य कृते समायाता ये राजतगिरिकिरणाः खगगिरिरश्मयस्तेषां जातेन समूहेन कृतपरिष्कारा विहितालिङ्गना, तारुण्येति—तारुण्यमेव सिन्धुर्नदी तस्याः पुलिनयोस्तटयोः जघनयोर्नितम्बयोः सारसानां गोनर्दानां विराव इव विरावः शब्दस्तेनाञ्चितां शोभितां तनुतया कृशत्वेन पतनाभिमुखं पतनतत्परं मध्यमवलम्ब्य गृह्णन्तीमिव काञ्चीं रशनाम् उद्वहता समुत्थापयता करेण पाणिना धार-

---

विजयार्धपर्वतकी धातुओंकी धूलिसे रँगे हुए के समान, अलक्तक रसके समान ताम्रवर्ण, अत्यन्त सूक्ष्म रेखाकार शुभ चिह्नोंसे सुशोभित, एवं अत्यन्त सुकुमार तलुएको धारण करनेवाले पादपल्लवोंसे पृथिवीको पल्लवित कर रही थी। कामदेवके तरकश बनानेमें जो माताका अनुकरण कर रही थीं, नूपुरोंमें लगे निर्मल मोतियोंकी उठती हुई किरणोंसे जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्नेही बन्धुजनोंके मनोंने गमनमें रुकावट डालनेके लिए ही उन्हें पकड़ रखा हो तथा जो क्रम-क्रमसे गोल, चिकनी और कुछ थोड़ी लम्बी थी ऐसी जंघाओं-पिंडरियोंसे वह सुशोभित हो रही थी। राजरम्भा—राजकेलेके खम्भोंका तिरस्कार करनेवाली ऊरुओंसे वह स्थूल नितम्बरूपी नगरके विस्तृत मैदानको धारण कर रही थी। वह अत्यन्त सुशोभित फेन समूहके समान सफेद बहुत भारी रेशमी वस्त्रसे अलंकृत थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रयाणके समय पीछे-पीछे चलनेके लिए आये हुए विजयार्ध पर्वतकी किरणोंके समूहसे ही सुशोभित हो।। यौवनरूपी सागरके तटोंकी समानता रखनेवाले दोनों नितम्बोंपर सारस पक्षियों-जैसी ध्वनिसे सुशोभित करधनीको वह ऊपरकी ओर उठते हुए

---

२. क० ख० ग० रेणुभिरिव ।

तनुतया पतनाभिमुखं मध्यमिव गृह्णती[1] धारयन्ती, रोमावलीतमालवनराजीसंवर्धमानामृतसलिलकूपविभ्रमं नाभिमण्डलं बिभ्रती, कमनीयकायकल्पवल्लरीस्थूलस्तबकसंपदौ शौक्तेयहारधरौ[2] पयोधरौ दधती, विलाससमीरसमुत्थापितलावण्यतरङ्गिणीतरङ्गरेखारमणीययोर्भुजलतयोर्विमलाङ्गुलीनखमयूखमालां पितृपुरस्क्रियार्हपुष्पाञ्जलिविधानायेव दधाना, कम्बुकान्तिकण्ठभूषणमाणिक्याखण्डालोकं बालातपमिव कुचचक्रवाकमिथुनाविश्लेषाय प्रकाशयन्ती, कालाञ्जनपुञ्जनीलालकबन्धबन्धुरापरभागमपरान्तनिबिडनिविष्टतमःपटलमिवोडुपतिबिम्बं बिम्बारुणोष्ठसंपुटशुक्तिगर्भनिर्भासुरदशनमौक्तिकापीडं ललाटेन्दुनिर्यदमृतधारायमाणनासावंशं विमलांशुजाललङ्घितकपोल-

यन्ती दधती, रोमावलीति—रोमावल्येव तमालवनराजी तापिच्छकक्षपङ्क्तिस्तस्यां संवर्धमानो योऽमृतसलिलकूपः पीयूषपानीयप्रहिस्तस्येव विभ्रमः शोभा यस्य तद् नाभिमण्डलं तुन्दिचक्रवालं बिभ्रती दधती, कमनीयेति—कमनीया मनोहरा, या कायकल्पवल्लरी शरीरकल्पलता तस्याः स्थूलस्तबकाविव विशालगुच्छाविव सम्पद् ययोस्तौ शौक्तेयहारधरौ मुक्ताफलहारधारिणौ पयोधरौ वक्षोजौ दधती बिभ्रती, विलासेति—विलास एव समीरः पवनस्तेन समुत्थापिता या लावण्यतरङ्गिणीतरङ्गरेखा सौन्दर्यस्रवन्तीभङ्गरेखास्तद्वद् रमणीययोः कमनीययोः भुजलतयोर्बाहुवल्ल्योः विमला निर्मला याङ्गुली नखानां करशाखानखराणां मयूखमाला किरणसन्ततिस्ताम् पितुर्जनकस्य पुरस्क्रियार्हाणि प्राभृतयोग्यानि यानि पुष्पाणि तेषामञ्जलिविधानायेव हस्तसंपुटकरणायेव दधाना बिभ्रती, कम्बुकान्तीति—कम्बुकान्तिः शङ्खसुन्दरो यः कण्ठस्तस्य यानि भूषणमाणिक्यानि आभरणरत्नानि तेषामखण्डालोकोऽविरलप्रकाशस्तं कुचावेव स्तनावेव चक्रवाकमिथुनं रथाङ्गयुगलं तस्याविश्लेषाय अविप्रयोगायेव बालातपं प्रत्यूषघर्मं प्रकाशयन्ती प्रकटयन्ती, कालाञ्जनेति—कालाञ्जनपुञ्जेनेव कृष्णाञ्जनसमूहेनेव नीलालकबन्धेन घनाभचूर्णकुन्तलबन्धेन बन्धुरो मनोहरोऽपरभागो यस्य तद् अतएव अपरान्ते पृष्ठभागे निबिडं सान्द्रं यथा स्यात्तथा निविष्टं स्थितं तमःपटलं तिमिरसमूहो यस्य तथाभूतम् उडुपतिबिम्बमिव चन्द्रमण्डलमिव, बिम्बमिव तुण्डिकेरीफलमिवारुणं रक्तं यदोष्ठसंपुटं दशनच्छदयुगलं तदेव शुक्तिस्तस्या गर्भे मध्ये निर्भासुरो देदीप्यमानो दशनमौक्तिकानां रदनमुक्ताफलानामापीडः समूहो यस्मिन् तत्, ललाटेन्दोर्निटिलचन्द्रमसो निर्यन्ती निर्गच्छन्ती यामृतधारा तद्वदाचरन् नासा-

हाथसे पकड़े थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो कृशताके कारण पतनोन्मुख कमरको ही पकड़े थी। रोमावलीरूपी तमाल वनकी पंक्तिके मध्य बढ़ते हुए अमृत जलके कुएँके समान सुशोभित नाभिमण्डलको धारण कर रही थी। सुन्दर शरीररूपी कल्पलताके स्थूल गुच्छोंके समान सुशोभित एवं मोतियोंके हारसे युक्त स्तनोंको धारण कर रही थी। विलासरूपी वायुसे उठी सौन्दर्यरूपी नदीकी लहरोंके समान मनोहर भुजलताओंमें वह निर्मल अंगुलियोंके नखोंकी किरणावलीको धारण कर रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो पिताको भेंट देने के योग्य पुष्पाञ्जलि ही तैयार कर रही हो। शंख सदृश कण्ठमें पहने हुए आभूषणोंके मणियोंके अखण्ड प्रकाशको प्रकाशित कर रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो स्तनरूपी चकवा-चकवीका जोड़ा बिछुड़ न जाय इस भावनासे प्रातःकालका घाम ही प्रकट कर रही थी। वह उस मुखको धारण कर रही थी जो काले अंजनके पुंजके समान नीले-नीले अलकोंके बन्धनसे नतोन्नत था और इसीलिए जो उपरितन भागमें स्थित सघन अन्धकारके समूहसे युक्त चन्द्रबिम्बके समान जान पड़ता था। जो बिम्बफलके समान लाल ओठोंके पुटरूपी सीपके भीतर देदीप्यमान दाँतरूपी मोतियोंके समूहसे युक्त था। जिसका नासावंश, ललाटरूपी चन्द्रमासे

१. क० ख० ग० गृह्णन्तीम्। २. क० शौक्तिकेयहारधरौ।

मण्डलमाणिक्यकुण्डलमण्डितश्रवणयुगलमलिचुम्बितविकचकुवलयदीर्घलोचनं विभ्रमलास्यलासिकविलासभ्रूलताननं बिभ्राणा गन्धर्वदत्ता सत्वरं सादरं च तन्मुखवलितमुखैः सभाजनैर्ददृशे ।

§ १००. ततश्च तामुत्तमाङ्गस्पृष्टविसृष्टमहीपृष्ठां तिष्ठन्तीं खेचरेन्द्रः सादरमाश्लिष्य 'पुत्रि, श्रीदत्तेनास्माकं कुलक्रमागता मैत्री । गात्रान्तरस्थं मामेव तावदमुं मन्येथाः । कन्ये, जनकस्तवायं[1] जननी चास्य गृहिणी । गृहाणामुना[2] प्रयाणे मतिम् । अलं कातर्येण । गगनेचराणां राजपुरी किं न भवनद्वारसमा ।' इति सानुनयं समभ्यधत्त । सापि 'यथाज्ञापयति' इति सबाष्पवदना पितरौ बन्धुजनं च प्रणम्य परिष्वज्यापृच्छ्य तुच्छेतरशुकशारिकाचामरतालवृन्तकन्दु-

ग्रंशो यस्य तत्, विमलांशुजालेन निर्मलकिरणकलापेन लङ्घितमतिक्रान्तं कपोलमण्डलं गण्डस्थलं याभ्यां तथाभूते ये माणिक्यकुण्डले रत्नमयकर्णाभरणे ताभ्यां मण्डितं शोभितं श्रवणयुगलं कर्णयुगं यस्मिन् तत्, अलिचुम्बिते भ्रमराक्रान्ते विकचकुवलये इव विकसितनीलोत्पले इव दीर्घलोचने यस्मिन् तत्, विभ्रमलास्यस्य सविलासनृत्यस्य लासिका नर्तकी तस्या इव विलासो यस्याः तथाभूता भ्रूलता भ्रुकुटिवल्लरी यस्मिन् तत्, आननं मुखं बिभ्राणा ।

§ १००. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च उत्तमाङ्गेन शिरसा आदौ स्पृष्टं पश्चाद्विसृष्टं महीपृष्ठं यया तां तिष्ठन्तीं स्थितां तां गन्धर्वदत्तां सादरं सस्नेहम् आश्लिष्य 'पुत्रि, सुते, श्रीदत्तेन वणिक्पतिना साकम् अस्माकं कुलक्रमागता वंशपरम्परायाता मैत्री अस्तीति शेषः । तावत्साकल्येन 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे' इत्यमरः, अमुं श्रीदत्तं गात्रान्तरस्थं शरीरान्तरस्थितं मामेव मन्येथाः जानीहि । कन्ये ! अयं दृश्यमानस्तव जनकः पिता अस्य गृहिणी च तव जननी सवित्री ! अमुना सह प्रयाणे गमने मतिं बुद्धिं गृहाण । कातर्येण दैन्येन अलं पर्याप्तं व्यर्थमित्यर्थः । गगनेचराणां विद्याधराणां किं राजपुरी भवनद्वारसमा सौधप्रतीहारतुल्या किं न वर्तत इति शेषः । इति सानुनयं सस्नेहं समभ्यधत्त कथयामास । सापीति—सापि गन्धर्वदत्ता, 'यथाज्ञापयति—यथादिशति तातः' इति सबाष्पं वदनं यस्यास्तादृशी साश्रुमुखी सती माता च पिता चेति पितरौ तौ मातापितरौ 'पिता मात्रा' इति पितृशब्दस्यैकशेषः बन्धुजनं सनाभिसमूहं च प्रणम्य नमस्कृत्य परिष्वज्य समालिङ्ग्य आपृच्छ्यामन्त्र्य च, शुकः कीरः सारिका मदनिका चामरं प्रकीर्णकं

निकलती हुई अमृतकी धाराके समान आचरण करता था । जिसके कानोंका युगल, निर्मल किरणावलीसे कपोल मण्डलको आक्रान्त करनेवाले मणिमय कुण्डलोंसे सुशोभित थे । जिसके नेत्र भ्रमरोंसे चुम्बित खिले हुए नील कमलोंके समान दीर्घ थे और जिसकी भ्रुकुटिरूपी लता हाव-भावरूपी नर्तकीके विलासके समान जान पड़ती थी ।

§ १००. तदनन्तर गन्धर्वदत्ता पृथिवीपर मस्तक टेककर खड़ी हो गयी । राजा गरुड़वेगने उसका आलिंगन कर बड़े प्रेमसे कहा कि—'पुत्रि ! श्रीदत्तके साथ हमारी कुलपरम्परासे चली आयी मित्रता है । तू इसे दूसरे शरीरमें स्थित मुझे ही समझ । बेटी ! यह तेरा पिता है और इसकी स्त्री तेरी माता है । तू इसके साथ जानेकी बुद्धि कर । भय करना व्यर्थ है । विद्याधरोंके लिए राजपुरी क्या मकानके द्वारके समान नहीं है ।' गन्धर्वदत्ता भी 'जैसी आज्ञा हो' यह कह साश्रुमुखी हो माता-पिता तथा बन्धुजनोंको प्रणाम कर, आलिंगन कर तथा सबसे पूछकर विमानमें आरूढ हो श्रीदत्तके साथ आकाशमार्गसे चल पड़ी और क्षणभरमें राजपुरी पहुँच गयी । उस समय जिसप्रकार मयूरियोंसे मेघपंक्ति घिरी होती है उसीप्रकार वह गन्धर्वदत्ता भी अत्यधिक तोता-मैना, चामर, पंखे, गेंद, वस्त्र,

१. क० ख० ग० जनकश्च तवायम् । २. क० गृहाणाधुना ।

काम्बरताम्बूलपरिवादिनीप्रमुखपरिबर्हपाणिभिस्तरुणीभिर्बर्हिणीभिरिव पयोदपङ्क्तिरभिसंवृता निभृतेतरगगनेचरपृतनाभिरक्षिता क्षणादन्तरिक्षेण विमानमारुह्य धरदर्शितपोतदर्शनोत्तालहर्षचित्तेन श्रीदत्तेन समं गत्वा राजपुरी शिश्रिये ।

§ १०१. ततः श्रीदत्तोऽपि गन्धर्वदत्तायाः समागमननिमित्तावबोधेन दुर्ललितस्वान्तो विधाय बन्धुसमष्टिं काष्ठाङ्गारमप्युपहारपुरःसरमनुज्ञापयन्ननुगुणलग्ने प्रक्रम्य यथाक्रमं कर्तुं भर्मरत्नरजतजातनिर्माणं निन्दितनिलिम्पग्रामणीसभाशोभं भासुरानन्तरत्नस्तम्भजृम्भमाणप्रभाप्रतानवितानीकृतयामिनीप्रसङ्गं प्रान्तलम्बितबहुगुणहरितकम्बलयवनिकावरणं [1]भ्रमराचान्तोद्वान्त-

---

तालवृन्तं व्यजनं कन्दुकं गेन्दुकम् अम्बरं वस्त्रं ताम्बूलं नागवल्लीदलं परिवादिनी वीणा येषां द्वन्द्वः ताः प्रमुखा येषां तानि तुच्छेतराणि महान्ति शुकादिप्रमुखानि परिबर्हाणि उपकरणानि पाणिषु यासां ताभिस्तरुणीभिर्बर्हिणीभिरभिसंवृता वेष्टिता पयोदपङ्क्तिरिव घनमालेव निभृतेतराश्चञ्चला या गगनेचरपृतनास्ताभिरभिरक्षिता त्राता क्षणाद् अन्तरिक्षेण गगनेन विमानं व्योमयानम् आरुह्याधिष्ठाय धरेण विद्याधरेण दर्शितस्य प्रकटितस्य पोतस्य दर्शनेनोत्तालहर्षं समुत्कटानन्दं चित्तं यस्य तेन श्रीदत्तेन समं सार्धं गत्वा राजपुरीं तन्नामनगरीं शिश्रिये श्रितवती ।

§ १०१ ततः श्रीदत्तोऽपीति—ततस्तदनन्तरं श्रीदत्तोऽपि गन्धर्वदत्तायाः खगाधिपसुतायाः समागमननिमित्तावबोधेन समागमहेतुविज्ञानेन बन्धुसमष्टिं परिजनसमूहं दुर्ललितं स्वान्तं यस्यास्तां हर्षोत्फुल्लमानसां विधाय कृत्वा काष्ठाङ्गारमपि तात्कालिकनृपतिमपि उपहारपुरस्सरं प्राभृतपूर्वम् अनुज्ञापयन् सूचयन्, अनुगुणलग्ने शुभमुहूर्ते यथाक्रमं क्रममनतिक्रम्य कर्तुं विधातुं प्रक्रम्य प्रारभ्य कमप्यनिर्वचनीयं वीणावादनमण्डपं परिवादिनीवादनास्थानगृहं निर्मापयामास रचयामास । अथ तस्यैव विशेषणान्याह—भर्मरत्नरजतैः स्वर्णमणिरूप्यकैर्जातं निर्माणं यस्य तम्, निन्दिता गर्हिता निलिम्पग्रामण्य इन्द्रस्य सभाशोभा समितिसुषमा येन तम्, भासुरानन्तरत्नस्तम्भैर्देदीप्यमानापरिमितमणिमयस्तम्भैर्जृम्भमाणा वर्धमाना या प्रभा कान्तिस्तस्याः प्रतानेन समूहेन वितानीकृतः शून्यीकृतो यामिनीप्रसङ्गो निशावसरो यस्मिन् तम्, प्रान्ते समीपे लम्बितं दीर्घीकृतं बहुगुणहरितकम्बलयवनिकानां बहुसूत्रहरिद्वर्णकम्बलनेपथ्यानामावरणं यस्य तथाभूतम्, आस्वादिताः भ्रमरैरलिभिरादावाचान्ता पश्चादुद्वान्ताः प्रकटिता

पान और वीणा आदि उपकरणोंको हाथोंमें धारण करनेवाली स्त्रियोंसे घिरी थी । आते समय धर मन्त्रीने श्रीदत्तका जहाज ज्योंका त्यों दिखला दिया इसलिए उसका चित्त अत्यन्त हर्षित हो उठा था ।

§ १०१. तदनन्तर श्रीदत्तने गन्धर्वदत्ताके आगमनका कारण बतलाकर अपने समस्त बन्धुजनोंको प्रसन्नचित्त किया और काष्ठांगारको भी उपहार आदि देकर उससे आज्ञा प्राप्त की । तत्पश्चात् अनुकूल लग्नमें क्रमसे बनवाना प्रारम्भ कर कोई अद्भुत वीणावादन मण्डप बनवाया । उस मण्डपका निर्माण स्वर्ण, रत्न तथा चाँदीसे हुआ था । वह इन्द्रकी सभाकी शोभाको तिरस्कृत कर रहा था । देदीप्यमान अनन्त रत्नमय खम्भोंकी बढ़ती हुई कान्तिके समूहसे उसमें रात्रिका प्रसंग मन्द पड़ गया था । उसके प्रान्तभागमें अनेक गुणोंसे युक्त हरे रंगके कम्बलोंके परदोंका आवरण पड़ा हुआ था । भौंरोंके द्वारा

---

१. क० ख० ग० भ्रमरचान्तोद्वान्त ।

मधुरसविसरवर्षिकुसुमदामोत्करमनोहरं रणितमणिकिङ्किणीमालिकालिङ्गितविकटविद्रुमयष्टिप्रतिष्ठितपवनतरलधवलध्वजपटपङ्क्तिपरिहसितसुरसरित्तरङ्गजालं जालविवरविसर्पिमन्दसमीरसीमन्तायमानकालागुरुधूपपरिमलाञ्चितवियदन्तरालमचिन्त्याभोगरूपसंस्थानं नभस्तलमिव समस्तलोकावगाहनावकाशदानदक्षम्, सागरमिव नैकरत्नसंपन्नम्, अनिमिषसदनमिवानिमेषलोचनताविधानविदग्धम्, चन्द्रशेखरमिव शेखरीकृतशीतांशुमण्डलम्, विष्णुमिव विष्णुपदव्यापिनम्, शतानन्दमिव सदालोकसंपादिनम्, जिनेश्वरमिव जगत्त्रयश्लाघनीयम्, महनीयनिर्माणातिशयविशेषविस्मापित-

ये मधुरसविसरवर्षिकुसुमदामोत्करा मकरन्दरससमूहवर्षिपुष्पस्रक्समूहास्तैर्मनोहरम्, रणिताभी रणरणनशब्दयुक्ताभिर्मणिकिङ्किणीमालिकाभी रत्नमयक्षुद्रघण्टिकासंततिभिरालिङ्गिता वेष्टिता या विकटविद्रुमयष्टयो विशालप्रवालदण्डास्तासु प्रतिष्ठिता याः पवनतरलधवलध्वजपटपङ्क्तयो वायुचपलसितवैजयन्तीवस्त्रपङ्क्तयस्ताभिः परिहसितं तिरस्कृतं सुरसरितो मन्दाकिन्यास्तरङ्गजालं कल्लोलसमूहो यस्मिन् तम्, जालविवरेषु वातायनरन्ध्रेषु विसर्पिणा प्रसरता मन्दसमीरेण मन्दपवनेन सीमन्तायमानः स्त्रीकेशविन्यासवदाचरन् यः कालागुरुधूपस्तस्य परिमलेनाञ्चितं शोभितं वियदन्तरालं व्योममध्यं यस्मिन् तथाभूतम् आभोगश्च विस्तारश्च रूपं च शोभा च संस्थानमाकृतिश्चेत्याभोगरूपसंस्थानानि, अचिन्त्यानि आभोगरूपसंस्थानानि यस्य तम्, नभस्तलमिव गगनतलमिव समस्तश्चासौ लोकश्चेति समस्तलोकः त्रिचत्वारिंशदुत्तरत्रिशतरज्जुपरिमितो लोकस्तस्यावगाहनाय स्थानायावकाशदाने दक्षं समर्थं पक्षे समस्ताश्च ते लोकाश्चेति समस्तलोका निखिलजनास्तेषामवगाहनायावकाशदाने दक्षम्, सागरमिव रत्नाकरमिव नैकरत्नैर्विविधरत्नैः पक्षे नानाविधोत्कृष्टपदार्थैः संपन्नं सहितम्, अनिमिषसदनमिव देवभवनं– स्वर्गमिव अनिमिषलोचनताया देवत्वस्य पक्षे विस्मयातिशयेन नेत्रपक्ष्मपातराहित्यस्य विधाने विदग्धं चतुरम्, चन्द्रशेखरमिव शिवमिव शेखरीकृतं मुकुटीकृतं शीतांशुमण्डलं चन्द्रबिम्बं येन तम्, शिवः स्वभावाच्चन्द्रशेखरो मण्डपस्तूच्चत्वाच्चन्द्रचुम्बी बभूवेति भावः, विष्णुमिव विष्णुपदे गगने व्याप्नोतीत्येवंशीलस्तम् विष्णुर्विक्रियाकृतचरणत्रयेण गगनं व्याप्नोत् मण्डपस्तु विस्तारातिशयेन गगनव्याप्यासीदिति भावः, शतानन्दमिव ब्रह्माणमिव सदा सर्वदा लोकसंपादिनं लोकस्रष्टारम् पक्षे संश्चासावालोकश्चेति सदालोकः समीचीनप्रकाशस्तस्य संपादिनम्,

---

चाटकर उगले हुए मकरन्द रसके समूहको वर्षानेवाले फूलोंकी मालाओंके समूहसे वह मनोहर था। रुनझुन शब्द करनेवाली मणिमय क्षुद्रघण्टिकाओंकी पंक्तिसे आलिंगित मूँगाकी बड़ी-बड़ी लाठियोंपर लगी हुई हवासे चंचल सफेद वस्त्रकी ध्वजाओंकी पंक्तिसे वह आकाशगंगाकी तरंगोंके समूहकी हँसी उड़ा रहा था। जालीके छिद्रोंमें प्रवेश करनेवाली मन्दवायुके सीमन्त—केशपाशके समान दिखनेवाले कालागुरु चन्दनकी धूपकी सुगन्धिसे उसने आकाशके अन्तरालको सुशोभित कर रखा था। उसका विस्तार, रूप और आकार अचिन्त्य था। वह आकाशके समान समस्त मनुष्योंको अवगाहन देनेवाले अवकाशके देनेमें समर्थ था। समुद्रके समान अनेक रत्नोंसे सम्पन्न था। अनिमिषसदन—देव भवनके समान अनिमेषलोचनता—देवपना (पक्षमें टिमकाररहित नेत्रोंके करनेमें निपुण था। महादेवके समान चन्द्रमण्डलको सेहरा बनानेवाला था अर्थात् जिसप्रकार महादेव अपने शिरपर चन्द्रमण्डलको धारण करते हैं उसीप्रकार वह मण्डप भी ऊँचाईके कारण अपने अग्रभागपर चन्द्रमण्डलको धारण कर रहा था। विष्णुके समान विष्णुपद—आकाशमें व्याप्त था। शतानन्द-ब्रह्माके समान सदालोकसम्पादी था अर्थात् जिसप्रकार ब्रह्मा सदालोक—संसारकी रचना करनेवाले हैं उसीप्रकार वह मण्डप भी सदालोक—समीचीन प्रकाशको करनेवाला

निर्मातृहृदयम्, कमपि वीणावादनमण्डपं निर्मापयामास ।

§ १०२. ततश्चायमाज्ञया राज्ञः समाहूय चाण्डालम् 'चतुरुदधिमेखलायां मेदिन्यामनन्यसाधारणेन वीणावादननैपुण्येन[1] पल्लवितपरिवादिनीपाण्डित्यगर्वां गन्धर्वदत्तां मम दुहितरमधरयिष्यति यस्त्रैवर्णिकेषु तस्येयं दारा इति नगरे पटुतरं पटहमाताड्यताम्' इति तत्कर्मणि दक्षमादिक्षत् ।

§ १०३. अनन्तरमन्त्यजेन तदाज्ञावतंसितशिरसा तथैव ताडिते पटहे तत्क्षणेन क्षणदापगमविसृमरमिहिरमरीचिसहचरसहजतेजःपरिवृतहरितः समसमयचलदलघुबलभरविनमदवनिभरण-

जिनेश्वरमिव जिनेन्द्रमिव जगत्त्रयश्लाघनीयं लोकत्रयप्रशंसनीयम्, उभयत्र समानम्, महनीयेन प्रशंसनीयेन निर्माणातिशयविशेषेण रचनातिशयविशेषेण विस्मापितं निर्मातृहृदयं रचयितृचेतो येन तम् ।

§ १०२ ततश्चायमिति— ततश्च तदनन्तरं च अयं श्रीदत्तः राज्ञः काष्ठाङ्गारस्य आज्ञया आदेशेन चण्डालं घोषणाकर्तारम् समाहूय समाकार्य 'चतुरुदधयो चतुःसागरा मेखला रशना यस्यास्तस्यां मेदिन्यां मह्याम् अनन्यसाधारणेन विशिष्टेन वीणावादने विपञ्चीवादने नैपुण्यं चातुर्यं तेन पल्लवितो वृद्धिंगतः परिवादिनीपाण्डित्यगर्वो वीणावैदुष्यदर्पो यस्यास्तां गन्धर्वदत्ताम् एतन्नामधेयां मम दुहितरं पुत्रीम् अधरयिष्यति पराजेष्यते यः कोऽपि त्रैवर्णिकेषु ब्राह्मणादिवर्णत्रयजातेषु तस्येयं दाराः स्त्री, इतीत्थं नगरे पटुतरम् उच्चैस्तरं पटहं वाद्यम् आताड्यताम्, इति तत्कर्मणि घोषणावितरणकार्ये दक्षं समर्थं जनम् आदिक्षत् आज्ञापयामास ।

§ १०३ अनन्तरमिति—अनन्तरं तदनु, तदाज्ञया श्रीदत्तादेशेन वतंसितं विभूषितं शिरो यस्य तेन तथाभूतेन अन्त्यजेन चाण्डालेन तथैव यथादेशं पटहे ढक्कायां ताडिते सति, तत्क्षणेन तत्कालेन भूभुजो राजानः समेत्य समागत्य समन्तात् परितः आसीना उपविष्टा या नानाजनपदजनता वैकराष्ट्रजनसमूहास्ताभिर्जनितः समुत्पादितः संमर्दो यस्मिन् तत्, सर्वतः परितः लम्बमानैः स्रंसमानैर्मुक्तासरसहस्रैर्मौक्तिकमालासहस्रैर्मण्डितं शोभितम्, स्वयंवरमणिमण्डपिकाया स्वयंवररत्नास्थानस्य मध्यम् अध्यरुक्षन् अधिरूढा बभूवुः । अथ भूभुजो विशेषणान्याह—क्षणदेति—क्षणदाया रजन्या अपगमे विगमे प्रत्यूष इति यावद् विसृमराः प्रसरणशीला ये मिहिरमरीचयः सूर्यरश्मयस्तत्सहचरेण तत्सदृशेन सहजतेजसा स्वाभाविकप्रतापेन परिवृता हरितो दिशो यैस्ते, समेति—समसमयं युगपच्चलन् योऽलघुबलभरो

था। जिनेन्द्र भगवान्के समान तीनों लोकोंमें प्रशंसनीय था और श्रेष्ठ रचनाके अतिशय विशेषसे वह बनानेवाले लोगोंके हृदयको भी आश्चर्यमें डाल रहा था।

§ १०२. तदनन्तर श्रीदत्तने राजाकी आज्ञासे घोषणा करनेमें निपुण चाण्डालको बुलाकर आदेश दिया कि चार समुद्ररूप मेखलाको धारण करनेवाली पृथिवीमें अपने अनुपम वीणावादनके कौशलसे वीणाविषयक पाण्डित्यके गर्वको वृद्धिंगत करनेवाली हमारी पुत्री गन्धर्वदत्ताको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन त्रिवर्णके लोगोंमें जो भी पराजित कर देगा उसीकी यह स्त्री होगी इस तरह नगरमें जोरदार भेरी बजा दी जाये'।

§ १०३. तदनन्तर श्रीदत्तकी आज्ञासे सुशोभित शिरको धारण करनेवाले चाण्डालके द्वारा उसी प्रकार भेरी ताडित होनेपर तत्काल राजा लोग आ आकर सब ओर बैठे हुए नाना देशोंकी जनतासे जिसमें भीड़ हो रही थी तथा जो सब ओर लटकनेवाली मोतियोंकी हजारों मालाओंसे सुशोभित था ऐसे मणिमय स्वयंवरमण्डपके मध्यमें आ बैठे। आनेवाले राजाओंने प्रातःकालके समय फैलनेवाली सूर्यकी किरणोंके सदृश अपने स्वाभाविक तेजसे दिशाओं-

१. म० नैपुणेन ।

खिन्नसंपन्नपन्नगपतिमौलयः समदमदावलकपोलतलगलदविरलमदजलजम्बालितभुवः प्रभूतजवभर-दुर्निवारवनायुजवल्गनचटुलखुरशिखरसुदूरोत्थापितरेणुनिकरनिवारितवासरमणिमरीचयः काचमेचक-करवालकरालमयूखपटलघटिताकालरजनीरीतयः[1] शतमखशातशतकोटिशकलनशङ्कापलायमान-सानुमत्सब्रह्मचारिशताङ्गशतशारितवीथयः[2] स्फीतपरिकर्मपरिवर्धितकान्तयः काशीपतिकाश्मीरक-र्णाटकालिङ्गकाम्भोजचोलकेरलमालवमगधपाण्ड्यपारसीकपुरोगाः पुरंदरसदृशभूतयो भूभुजः समेत्य समन्तादासीननानाजनपदजनताजनितसंमर्दं सर्वतोलम्बमानमुक्तासरसहस्रमण्डितं स्वयंवरमणि-मण्डपिकामध्यमध्यरुक्षन् ।

§ १०४. तत्र च स्थानस्थाननिवेशितानि विडम्बितहाटकगिरिकटकानि निकटघटितनैक-

विशालसैन्यभारस्तेन विनमन्ती यावनिः पृथिवी, तस्या भरणे धारणे खिन्नसंपन्ना आदौ खिन्नाः पश्चात्संपन्नाः पन्नगपतेः शेषस्य मौलयो मूर्धानो यैस्ते, समदेति—समदा मदसहिता ये मदावला गन्धगजास्तेषां कपोलतलाद् गण्डस्थलप्रदेशाद् गलता पतता अविरलमदजलेन निरन्तरदानसलिलेन जम्बालिता पङ्किली-कृता भूर्यैस्ते, प्रभूतेति—प्रभूतेन प्रचुरेण जवभरेण वेगसमूहेन दुर्निवारा निरोद्धुमशक्या ये वनायुजा अश्वविशेषास्तेषां वल्गनेन संचारेण चटुलं यत्खुरशिखरं शफाग्रं तेन सुदूरमतिदूरमुत्थापितो यो रेणुनिकरो धूलिसमूहस्तेन निवारिता दूरीकृता वासरमणिमरीचयो दिनकरदीधितयो यैस्ते, काचेति—काचवन्मेचकाः श्यामा ये करवालाः कृपाणास्तेषां कराला भयङ्करा ये मयूखाः किरणास्तेषां पटलेन समूहेन घटितोप-स्थापिता-अकालरजनीरीतिरकाण्डनिशारीतिर्यैस्ते, शतमखेति—शतमखस्य पुरन्दरस्य शातस्तीक्ष्णो यः शतकोटिर्वज्रं तेन शकलनं खण्डनं तस्य शङ्कया भयेन पलायमाना ये सानुमन्तो गिरयस्तेषां सब्रह्म-चारिणो ये शताङ्गा रथास्तेषां शतेन शारिताः व्याप्ता वीथिवर्त्म यैस्ते, स्फीतेति—स्फीतमत्यधिकं यत्परिकर्म-अङ्गसंस्कारस्तेन परिवर्द्धिता वृद्धिंगता कायकान्तिर्येषां ते 'परिकर्माङ्गसंस्कारः' इत्यमरः, काशीति—काशी-पत्यादयः पुरोगा अग्रेसरा येषां ते, पुरन्दरेति—पुरन्दरसदृशी शक्रसमाना भूतिरैश्वर्यं येषां ते ।

§ १०४. तत्र चेति—तत्र च स्वयंवरमणिमण्डपिकायाम्, स्थाने स्थाने निवेशितानि तत्तत्स्थान-स्थापितानि, विडम्बितोऽनुकृतो हाटकगिरेः स्वर्णशैलस्य कटकः शिखरं यैस्तानि, निकटघटितानि पार्श्वे

को अच्छादित कर दिया था। एक साथ चलती हुई बहुत भारी सेनाके भारसे झुकी पृथिवीके धारण करनेसे शेषनागके मस्तकको खेद-खिन्न कर दिया था। मदमाते हाथियोंके गण्डस्थलसे लगातार झरते हुए मदजलसे पृथिवीको पंकयुक्त कर दिया था। अत्यधिक वेगके भारसे दुर्निवार घोड़ोंकी दौड़में उनके चंचल खुरोंके अग्रभागसे बहुत ऊँची उठी धूलिके समूहसे सूर्यकी किरणोंको रोक दिया था। काँचके समान श्याम तलवारोंकी भयंकर किरणावलीसे असमयमें रात्रिकी स्थिति प्रकट कर दी थी। इन्द्रके तीक्ष्ण वज्रसे खण्ड-खण्ड होनेकी शंकासे भागते हुए पर्वतोंके समान सैकड़ों रथोंसे गलियाँ व्याप्त कर दी थीं। अत्यधिक साज-सजावटसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी। काशीपति, कश्मीर, कर्णाट, कलिंग, कम्भोज, चोल, केरल, मालव, मगध, पाण्ड्य और पारस देशके राजे उनमें प्रधान थे। तथा इन्द्रके समान सबकी विभूति थी।

§ १०४. उस मण्डपमें स्थान-स्थानपर रखे हुए उन उत्तम सिंहासनोंपर वे राजा लोग बैठे हुए थे जो स्वर्णगिरि–सुमेरु पर्वतकी मेखलाकी हँसी उड़ा रहे थे। पास-पासमें लगे हुए

१. क० रजनीततयः। २. शारितवीथयः-व्याप्तवीथयः इति टि०।

रत्नमरीचिजालपुनरभिहितोत्तरच्छदानि द्विगुणितस्तबरकोपधानाधिष्ठितपृष्ठभागानि निरतिशयवितरणकौशलशिक्षाकृते कृतमहीतलावतरणेनेव पश्चादवस्थितेन पारिजातपादपेन पल्लवितकान्तीनि दिगन्ततटप्रतिहतिपरिक्षुभ्यदात्मीययशःक्षीरोदपूरोदरोत्पतितफेनपटलपाण्डुरेण[1] समुत्तम्भितमाणिक्यमयदण्डधारितेन रोहणगिरिशिखरावतरदमृतकरमिश्रेण धवलातपत्रेण तिलकितोपरिभागाणि पराक्रमपराजयप्रणतैरिव पञ्चाननैरञ्चितपादानि सिंहासनान्यधिवसन्तः, समन्तादाधूयमानैरनिल[2]चलदसितेतरकमलदलनिचयसुच्छायैश्चामरकलापैः कबलितोज्झितहरिन्मुखाः, परस्परसंघट्टनजन्मना भूषणमणिशिञ्जितेन तदङ्गसङ्गकौतुकानुबन्धेन गन्धर्वदत्तामाह्वयद्भिरिवावयवैराविष्कृतशोभाः, संभावनासमभ्यधिकैर्गीयमाननिजभुजविजयभोगावलीवाचालितवदनैर्वन्दिभिरभिनन्दित-.

पार्श्वे खचितानि यानि नैकरत्नानि विविधमणयस्तेषां मरीचिजालेन किरणकलापेन पुनरभिहितः पुनरुक्त उत्तरच्छदो येषां तानि, द्विगुणितस्तबरकाणि द्विगुणितस्तबरकवस्त्रसहितानि यान्युपधानानि समाश्रयण्यः ('तकिया इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धम्') तैरधिष्ठितः सहितः पृष्ठभागो येषां तानि, निरतिशयं निरुपमानं यद्वितरणकौशलं दानकौशलं तस्य शिक्षायाः कृते समभ्यासाय कृतं महीतलावतरणं येन तथाभूतेनेव पश्चात् पृष्ठतोऽवस्थितेन विद्यमानेन पारिजातपादपेन कल्पवृक्षेण पल्लविता वृद्धिंगता कान्तिर्येषां तानि, दिगन्ततटेषु काष्ठान्ततीरेषु प्रतिहत्या प्रतिघातेन परिक्षुभ्यत् क्षोभं प्राप्नुवद् यदात्मीयं स्वकीयं यशः कीर्तिस्तदेव क्षीरोदः क्षीरसागरस्तस्य पूरोदरात्पूरमध्यादुत्पतितं यत्फेनपटलं डिण्डीरपिण्डस्तद्वत्पाण्डुरं तेन, समुत्तम्भितेन समुत्थापितेन माणिक्यमयदण्डेन रत्नमयदण्डेन धारितं तेन, रोहणगिरिशिखरात् अवतरन्योऽमृतकरश्चन्द्रस्तस्य मिश्रं सदृशं तेन धवलातपत्रेण सितातपवारणेन तिलकितः शोभित उपरिभागो येषां तानि, पराक्रमस्य पराजयेन प्रणता नम्रीभूतास्तैरिव पञ्चाननैः सिंहैः अञ्चिताः पादा येषां तानि तथाभूतानि सिंहासनानि हरिविष्टराणि अधिवसन्तः 'उपान्वध्याङ्वसः' इत्याधारस्य कर्मत्वम्, समन्तात्परित आधूयमानैराकीर्यमाणैः अनिलेन वायुना चलन्ति यानि असितेतरकमलानि शुक्लसरसिजानि तेषां दलानां निचयः कलिकासमूहस्तद्वत्सुच्छाया येषां तैः चामरकलापैर्वालव्यजनसमूहैः कबलितोज्झितानि ग्रस्तोन्मुक्तानि हरिन्मुखानि दिङ्मुखानि येषां तैः, परस्परं संघट्टनात्संघाताज्जन्म यस्य तेन भूषणमणीनां शिञ्जितमव्यक्तशब्दस्तेन तस्या अङ्गसङ्गे यत्कौतुकं कुतूहलं तस्यानुबन्धस्तेन गन्धर्वदत्ताम् आह्वयद्भिरिवाकारयद्भिरिव अवयवैः प्रतीकैः आविष्कृता प्रकटिता शोभा येषां ते, संभावनायाः समभ्यधिकास्तैराशाधिकैः, गीयमाना या निजभुजयोः

अनेक रत्नोंकी किरणावलीसे जिनके चादर पुनरुक्त हो रहे थे। दुहरे स्तबरकके तकियोंसे जिनके पृष्ठ भाग सुशोभित थे। अत्यधिक दानकी कुशलता सिखलानेके लिए ही मानो पृथिवीतलपर उतरकर पीछेकी ओर स्थित पारिजात वृक्षसे जिनकी कान्ति बढ़ रही थी। दिशाओंके अन्तिम तटपर आघात लगनेसे क्षुभित अपने यशरूपी क्षीरसागरके मध्यसे उछले हुए फेनसमूहके समान सफेद ऊपर खड़े किये हुए माणिक्यनिर्मित दण्डमें लगे, एवं रोहणगिरिकी शिखरसे उतरते हुए चन्द्रमाके सदृश सफेद छत्रसे जिनका ऊपरितनभाग व्याप्त था और पराक्रमसे पराजित होनेके कारण नम्रीभूतकी तरह दिखनेवाले सिंहोंसे जिनके पाये सुशोभित थे। सब ओरसे डुलनेवाले एवं वायुसे हिलते हुए सफेद कमलकी कलिकाओंके समूहके समान कान्तिवाले चामरोंके समूहसे वे राजा लोग दिशाओंको आच्छादित कर छोड़ रहे थे। परस्परके संघटनसे उत्पन्न भूषणमें लगे मणियोंकी झनकारसे जो उसके शरीरके समागमके कौतुकसे गन्धर्वदत्ताको मानो बुला ही रहे थे ऐसे अवयवोंसे उनकी शोभा प्रकट हो रही थी। संभावनासे अधिक गायी जानेवाली अपनी

१. म० पाण्डुरेण। २. म० समन्तादधूयमानैः।

श्रियः, श्रीदत्ततनयागमनं प्रतीक्षमाणाः क्षोणीपतयः क्षणमासांचक्रिरे ।

§ १०५. तावता च तमःस्तोममेचककचभारखचितमणीचकनिचयनिर्भरपरिमलनिपतितेन निखिलयुवतिसाम्राज्यचिह्नेन नीलातपत्रेणेव षट्पदपटलेन परिवृताम्बरा, त्र्यम्बकनयनदहनदग्धमदनपुनर्जीवनदक्षान्कटाक्षानक्षयरागजलधिजठरपरिप्लवमानपार्थिवहृदयमत्स्यजिघृक्षया दिशि दिशि नीलकुवलयदलदामनिर्मितां वागुरामिव प्रसारयन्ती, प्रियसखीसंलापसमयनिर्गताभिरमलदशनकिरणकन्दलीभिश्चन्द्रातपमिव दिवापि[3] विषमशरसाहाय्यकाय संपादयन्ती, वदनकमलविकासभङ्ग-

स्वबाह्वोर्विजयभोगावली विजयप्रशस्तिस्तया वाचालितं मुखरितं वदनं वक्त्रं येषां तैः बन्दिभिश्चारणै, अभिनन्दिता श्रीर्येषां ते, श्रीदत्ततनयागमनं गन्धर्वदत्तागमनं प्रतीक्षमाणाः क्षोणीपतयो राजानः क्षणमल्पकालपर्यन्तम् आसाञ्चक्रिरे तस्थुः 'दयायासश्च' इत्याम् ।

§ १०५. तावतेति—तावता च कालेन गन्धर्वदत्ता प्रत्यदृश्यत इति कर्तृकर्मसंबन्धः । अथ तामेव विशेषयितुमाह—तमःस्तोम इति—तमःस्तोम इव तिमिरसमूह इव मेचकः कृष्णो यः कचभारः केशसमूहस्तस्मिन् खचितः संलग्नो यो मणीचकनिचयः पुष्पसमूहस्तस्य निर्भरपरिमलेन सातिशयसौगन्ध्येन निपतितं झगितं तेन, निखिलयुवतीनां समस्तसीमन्तिनीनां साम्राज्यस्य चिह्नं तेन नीलातपत्रेणेव नीलच्छत्रेणेव षट्पदपटलेन भ्रमरसमूहेन परिवृतं व्यापितमम्बरं गगनं यया सा, त्र्यम्बकेति—त्र्यम्बकस्य शिवस्य नयनदहनेन नेत्रानलेन दग्धो भस्मीकृतो यो मदनो मारस्तस्य पुनर्जीवने दक्षाः समर्थास्तान् कटाक्षान् केकरान् अक्षयोऽविनाशी यो राग एव जलधिः प्रीतिपारावारस्तस्य जठरे मध्ये परिप्लवमानाः समन्तात्तरन्तो ये पार्थिवहृदयमत्स्या नृपतिचित्तपाठीनास्तेषां जिघृक्षया गृहीतुमिच्छया दिशि दिशि प्रतिदिशं नीलकुवलयदलदामभिर्नीलारविन्ददलमाल्यैर्निर्मितां रचितां वागुरां जालं प्रसारयन्तीव प्रक्षिपन्तीव, प्रियसखीति—प्रियसखीभिः सह संलापो वार्तालापस्तस्य समये निर्गतास्ताभि. अमलदशनकिरणकन्दलीभिर्विमलदन्तदीधितिकन्दलीभिः दिवापि दिवसेऽपि विषमशरसाहायकाय मदनसाहाय्याय चन्द्रातपं चन्द्रिकां संपादयन्तीव रचयन्तीव, वदनेति—वदनकमलस्य मुखारविन्दस्य विकासः समुल्लासस्तस्य भङ्गो विनाशस्तस्य भयेन

भुजाओंकी विजय प्रशस्तियोंसे जिनके मुख शब्दायमान थे ऐसे बन्दीजन, उनकी लक्ष्मीका अभिनन्दन कर रहे थे । इसप्रकार श्रीदत्तकी पुत्रीके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए राजा लोग क्षण एक बैठे कि उसी समय उन्हें आती हुई वह गन्धर्वदत्ता दिखी ।

§ १०५. जो अन्धकारके समूहके समान श्याम केशपाशमें लगे हुए पुष्पसमूहकी सातिशय सुगन्धिसे गिरे, एवं समस्त स्त्रियोंके साम्राज्यके चिह्नस्वरूप नील छत्रके समान दिखनेवाले भ्रमरसमूहसे आकाशको व्याप्त कर रही थी । जो महादेवके नेत्रानलसे जले कामदेवको पुनरुज्जीवित करनेमें दक्ष कटाक्षोंको प्रत्येक दिशामें चला रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो कभी नष्ट नहीं होनेवाले रागरूपी सागरके मध्यमें तैरनेवाले राजाओंके हृदयरूपी मच्छोंको पकड़नेकी इच्छासे प्रत्येक दिशामें नील कुवलय दलकी मालाओंसे निर्मित जाल ही पसार रही थी । जो प्रियसखियोंके साथ वार्तालाप करते समय निकली हुई दाँतोंकी निर्मल किरणावलीसे ऐसी जान पड़ती थी मानो कामदेवकी सहायता करनेके लिए आकाशमें चाँदनीको ही पहुँचा रही हो । मुखरूपी कमलके विकासके भंगसे

१. क० ग० मणिकुसुमचय । २. क० 'परि' नास्ति । ३. म० दिवि ।

भयविदारितेन तरुणतरणिकिरणनिकरेणेव कुण्ठितकुसुम्भकुसुमसौकुमार्यस्य दशनच्छदमणेररुणेनांशुजालेन रागजलेनेव सिञ्चन्ती समन्तादासीनमवनिपाललोकम्, आगामिदयितहृदयगृहप्रवेशमङ्गलविकीर्णसुमनःसौभाग्यहरेण हारेण पुलकितस्तनकलशयुगला, नवदलित[1]कदलीगर्भकोमलं वासो वसाना, वासुकिसमाविष्टमन्दरमथितमहोदधिसमुद्गतां संसक्तडिण्डीरपाण्डुरितनितम्बां निन्दन्ती श्रियम्, काभिश्चन करकलितकनकका[2]ञ्चीभिः, काभिश्चन कमलनिलीनकलहंसपरिभावुकपटपल्लवपरिष्कृतपाणिपुटाभिः, काभिश्चन काञ्चनमयमपि पञ्जरं काचकल्पितमिव निजकान्तिकल्लोलैरा-

विदारितेन प्रकटितेन, तरुणतरणिर्मध्याह्नसूर्यस्तस्य किरणनिकरेणेव, रश्मिसमूहेनेव कुण्ठितं विरुद्धं कुसुम्भकुसुमस्य रक्तवर्णपुष्पविशेषस्य सौकुमार्यं मृदुत्वं येन तस्य दशनच्छदमणेः ओष्ठश्रेष्ठस्य अरुणेन रक्तेन अंशुजालेन किरणकलापेन राग एव जलं तेन प्रीतिपानीयेनेव समन्तात्परित आसीनं विद्यमानम् अवनिपाललोकं नृपतिसमूहम् सिञ्चन्ती, आगामीति–आगामी भविष्यन् दयितहृदयप्रवेशः स्वामिस्वान्तसदनप्रवेश एव मङ्गलं तस्मिन् विकीर्णानि विस्तारितानि यानि सुमनांसि पुष्पाणि तेषां सौभाग्यस्य हरस्तेन हारेण मुक्तासरेण पुलकितं रोमाञ्चितं स्तनकलशयुगलं यस्याः सा, नवेति – नवदलितः प्रत्यग्रखण्डितो यः कदलीगर्भो मोचातरुमध्यभागस्तद्वत् कोमलं मदु वासो वस्त्रं वस्ते इति वसाना आच्छादयन्ती 'वस् आच्छादने' इत्यत. शानच्, अत एव वासुकीति—वासुकिना शेषेण समाविष्टो यो मन्दरो मेरुस्तेन मथितो विलोडितो यो महोदधिर्महासागरस्तस्मात् समुद्गतां निःसृतां संसक्तेन डिण्डीरेण पाण्डुरितौ धवलितौ नितम्बौ यस्यास्तां श्रियं लक्ष्मीं निन्दन्ती तिरस्कुर्वन्ती, काभिश्चन करे कलिता हस्ते धृता कनककाञ्ची स्वर्णमेखला याभिस्ताभिः, काभिश्चन कमलेषु सरोजेषु निलीनाः स्थिता ये कलहंसाः कादम्बास्तेषां परिभावुकेन तिरस्कर्त्रा पटपल्लवेन वस्त्राञ्चलेन परिष्कृताः सहिताः पाणिपुटा हस्तपुटा यासां ताभिः, काभिश्चन काञ्चनमयमपि स्वर्णनिर्मितमपि पञ्जरं शलाकागृहं निजकान्तिकल्लोलैः निजाभारक्षैः काचकल्पितमिव काचरचितमिव

विदारित तरुण सूर्यके किरणसमूहके समान, कुसुमके फूलकी सुकुमारताको नष्ट करनेवाले ओठरूपी मणिकी लाल-लाल किरणोंके समूहसे जो ऐसी जान पड़ती थी मानो सब ओर बैठे हुए राजाओंके समूहको रागरूपी जलसे सींच ही रही हो। आगे होनेवाले पतिके हृदयरूपी गृहमें प्रवेश करते समय मंगलाचारके रूपमें बिखरे हुए फूलोंके सौभाग्यको हरनेवाले हारसे जिसके स्तनकलशोंका युगल पुलकित हो रहा था। जो नवीन खण्डित केलके भीतरी भागके समान कोमल वस्त्रको पहने हुई थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो वासुकि नागसे लिपटे मन्दराचलसे मथित महासागरसे निकली एवं लगे हुए फेनसे सफेद नितम्बोंको धारण करनेवाली लक्ष्मीकी निन्दा ही कर रही हो। जो सब ओर लटकनेवाली मोतियोंकी मालाओंसे सुशोभित, सूर्यकी किरणोंके उद्गमको अपहृत करनेवाले मणिसमूहके प्रकाशसे मनुष्योंके नेत्रोंको आकुलित करनेवाले, नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त, एवं पुष्पक विमानके जीतनेमें चतुर पालकीमें सवार थी और अत्यन्त बुद्धिमती गूढ़से गूढ़ भावोंको प्रकट करनेवाली समीपमें विद्यमान आत्मतुल्य सखियाँ सैकड़ों प्रिय वचनोंसे जिसे प्रसन्न कर रही थीं। गन्धर्वदत्ताकी पालकीका समीपवर्ती प्रदेश अनेक परिचारक स्त्रियोंसे व्याप्त था। उन परिचारकस्त्रियोंमें कितनी ही स्त्रियाँ हाथोंमें स्वर्णकी मेखलाएँ धारण कर रही थीं। कितनी ही स्त्रियोंके हस्तपुट कमलोंपर बैठे कलहंस पक्षियोंको तिरस्कृत करनेवाले वस्त्रके पल्लवों—रूमालोंसे सहित थे। कितनी ही स्त्रियाँ स्वर्णके पिंजरेको अपनी कान्तिके समूहसे काचसे निर्मितके

१. म० कदलगर्भ। २. म० कटकलितकाञ्चीभिः।

पादयन्तमुद्वहन्तीभिः क्रीडाशुकम्, काभिश्चन भर्तृदारिकावदनसौन्दर्यचौर्यागतं चन्द्रमसमिव स्फाटिकमणिदर्पणं करेण गृह्णन्तीभिः[1], काभिश्चन कलितबकुलदामपुलकितसंनिवेशाः संमुखसमीरस्पर्शमन्द्ररणिततन्त्रीवलया वसुधापालेषु वल्लभोऽस्याः कः स्यादिति मिथो मन्त्रयन्तीरिव विविधा विपञ्चीरुदञ्चयन्तीभिः परिचारपुरंध्रीभिर्नीरन्ध्रितपरिसरं परितो लम्बमानमुक्तासरविभूषितं मुषितदिवसकरमरीचिसमुद्गमैर्मणिगणालोकैराकुलितलोकलोचनमाकीर्णविविधपुष्पं पुष्पकविजयचतुरं चतुरन्तयानमधिरूढा, प्रौढमतिभिर्गूढानपि भावानाविष्कुर्वतीभिरन्तिकवर्तिनीभिरात्मनिर्विशेषाभिः प्रियवचनशतैः प्रसाद्यमाना, प्रत्यदृश्यत गन्धर्वदत्ता ।

§ १०६. प्रादुरभूवंश्च तन्निरीक्षणेन महीक्षितां मन्मथमहिमनिवेदनचतुरा विकाराः । तथा हि—कश्चिन्नभश्चराधिपतनये, तव कुचतटपरिणाहपर्याप्तं वा न वेति निरीक्ष्यतामिदमिति

आपादयन्तं क्रीडाशुकं केलिकीरम् उद्वहन्तीभिः दधतीभिः, काभिश्चन भर्तृदारिकाया राजपुत्र्या वदनसौन्दर्यस्य मुखलावण्यस्य चौर्याय समपहरणायागतं चन्द्रमसमिव शशिनमिव स्फाटिकमणिदर्पणं श्वेतोपलमुकुरन्दं करेण हस्तेन गृह्णन्तीभिरिव आददानाभिरिव, काभिश्चन कलितैर्धारितैर्बकुलदामभिर्बकुलकुसुममाल्यैः पुलकितो रोमाञ्चितः संनिवेशो यासां ताः संमुखसमीरस्य संमुखस्थपवनस्य स्पर्शेन मन्द्रं गम्भीरं यथा स्यात्तथा रणितः शब्दायमानस्तन्त्रीवलयो तन्त्रीनिचयो यासां ताः, 'वसुधापालेषु विद्यमानेषु नृपतिषु अस्या गन्धर्वदत्ताया वल्लभः प्रियः कः स्यादिति' मिथो परस्परं मन्त्रयन्तीरिव विमर्शं कुर्वन्तीरिव विविधा नानाप्रकारा विपञ्चीर्वीणा उदञ्चयन्तीभिः उत्थापयन्तीभिः परिचारपुरन्ध्रीभिः सेवकस्त्रीभिः नीरन्ध्रितो निरवकाशीकृतः परिसरः समीपप्रदेशो यस्य तत्, परितो लम्बमानैः समन्तात्स्रंसमानैर्मुक्तासरैर्मुक्ताफलहारैर्विभूषितमलंकृतम्, मुषितश्चोरितो दिवसकरस्य सूर्यस्य मरीचीनां किरणानां समुद्गमो यैस्तैः मणिगणालोकै रत्नराशिप्रकाशैः आकुलितानि लोकलोचनानि नरनयनानि येन तत्, आकीर्णानि समन्तात्प्रक्षिप्तानि विविधपुष्पाणि नानाकुसुमानि यस्य तत्, पुष्पकस्य कौबेरयानस्य विजये चतुरं निपुणं तथाभूतं चतुरन्तयानं शिविकाम् अधिरूढाधिष्ठिता, प्रौढमतिभिः प्रगल्भबुद्धिभिः गूढानपि गुप्तानपि भावान् आविष्कुर्वतीभिः प्रकटयन्तीभिः अन्तिकवर्तिनीभिः निकटस्थायिनीभिः, आत्मनिर्विशेषाभिः स्वतुल्याभिः सखीभिरित्यर्थः प्रियवचनशतैः बहुभिः प्रियवचनैः प्रसाद्यमाना प्रसन्नीक्रियमाणा ।

§ १०६ प्रादुरभूवंश्चेति—तस्या गन्धर्वदत्ताया निरीक्षणेन समवलोकनेन महीक्षितां राज्ञां मन्मथमहिम्नः प्रद्युम्नप्रभावस्य निवेदने प्रकटने चतुराः पटवः विकाराश्चेष्टाः प्रादुरभूवन् प्रकटिता अभूवन् । तथा हि तदेव प्रकटयति । कश्चिदिति—कश्चित्कोऽपि नृपः, हे नभश्चराधिपतनये, हे खगेन्द्रनन्दिनि, इदं

समान दिखलानेवाले क्रीड़ा शुकको लिये हुए थीं। कितनी ही स्त्रियाँ राजपुत्रीके मुखकी सुन्दरताकी चोरीके लिए आये हुए चन्द्रमाके समान स्फटिकमणिके दर्पणको हाथसे लिये हुए थीं। और कितनी ही स्त्रियाँ नाना प्रकारकी उन वीणाओंको धारण कर रही थीं जिनके कि अवयव पहनायी हुई मौलश्रीकी मालाओंसे पुलकित थे, और सामनेसे आती हुई वायुके स्पर्शसे जिनके तारोंका समूह गम्भीर गर्जना कर रहा था तथा उससे 'इन राजाओंमें इसका पति कौन होगा ?' इस प्रकार परस्पर सलाह करती हुई-सी जान पड़ती थी।

§ १०६. गन्धर्वदत्ताके दिखते ही राजाओंके कामको महिमाके प्रकट करनेमें चतुर विकार भाव प्रकट होने लगे। किसी राजाने वक्षःस्थलसे जनेऊ उठाकर विलासपूर्वक अपने कन्धेपर रख लिया मानो वह यह कहना चाहता था कि हे विद्याधर राजपुत्रि ! देखो हमारा

१. म० गृह्णन्तीभिः।

विवक्षुरिव वक्षःस्थलादुपवीतमुपादाय सविलासमंसदेशे न्यवेशयत् । कश्चित्कमलकोमलेन करेण कनकधरणीधरकटकविशङ्कटवक्षःकवाटलम्बिनीं विकचरक्तोत्पलदलनिचयविरचितां प्रालम्बमालां परामृशन्कुण्डलितकोदण्डेन कुसुमशरासनेन मनसि निखातां विशिखमालामुन्मूलयन्निवामन्यत । कश्चित्प्रियसुहृदभिहितनर्मभणितिसंभावनास्मितविनिर्गतैर्विमलदशनकिरणकन्दलैरिन्दीवरदृशस्तस्याः करपीडनकुतूहलाङ्कुरानिव हृदयालवालरूढान्निर्गमय्य दर्शयन्निवादृश्यत । कश्चिदवनमय्य मणिमयकिरीटकिरणमञ्जरीमालिनं मौलिमालोकयन्नधरितगगनाभोगमात्मभुजान्तरं पूर्वप्रविष्टामिमां बिम्बोष्ठीमनुभवितुं स्वयमप्यन्तःप्रविविक्षुरिवालक्ष्यत ।

वक्षःस्थलं तत्र कुचतटयोः स्तनतटयोः परिणाहो विशालता तस्मै पर्याप्तं पुष्कलं न वेति निरीक्ष्यतां दृश्यताम् इति विवक्षुरिव कथयितुमिच्छुरिव वक्षःस्थलादुरःस्थलात् उपवीतं यज्ञसूत्रम् उपादाय गृहीत्वा सविलासं सविभ्रमम् अंसदेशे बाहुशिरसि न्यवेशयत् स्थापयामास । कश्चिदिति—कश्चित्कोऽपि नृपः कमलकोमलेन पङ्कजमृदुलेन करेण हस्तेन कनकधरणीधरस्य स्वर्णशैलस्य कटक इव शिखर इव विशङ्कटे विशाले वक्षःकवाटे लम्बत इत्येवंशीला तां विकचरक्तोत्पलानां विकसितलोहितकमलानां दलनिचयेन कलिकाकलापेन विरचिता निर्मिता तां प्रालम्बमालाम् ऋजुलम्बिमालाम् 'प्रालम्बमृजु लम्बि स्यात्कण्ठाद्वैकक्षिकं तु तत् । यत्तिर्यक्क्षिप्तमुरसि' इत्यमरः परामृशन् स्पृशन् कुण्डलितं वक्रीकृतं कोदण्डं धनुर्यस्य तेन कुसुमशरासनेन मदनेन मनसि चेतसि निखातां निखचितां विशिखमालां बाणपङ्क्तिम् उन्मूलयन्निव समुत्खातयन्निव अमन्यत । कश्चिदिति—प्रियसुहृदा वल्लभवयस्येन अभिहिता निगदिता या नर्मभणितिर्हास्योक्तिस्तस्याः संभावनायां सत्कृतौ यत्स्मितं मन्दहसितं तेन विनिर्गतास्तैर्विमलदशनानामुज्ज्वलदन्तानां किरणकन्दलै रश्मिनवाङ्कुरैः 'कन्दलं कलहं युद्धे नवाङ्कुरकपालयोः' इति विश्वलोचनः, इन्दीवरदृश उत्पलाक्ष्याः तस्या गन्धर्वदत्तायाः करपीडनस्य पाणिग्रहणस्य कुतूहलं तस्याङ्कुरास्तानिव हृदयमेवालवालं तस्मिन् रूढास्तान् चित्तावापसमुत्पन्नान् निर्गमय्य बहिर्निःसार्य दर्शयन्निव प्रकटयन्निव अदृश्यत । कश्चिदिति—मणिमयकिरीटस्य रत्नमयमौलेः किरणमञ्जरीमाला रश्मिराजिस्रक् विद्यते यस्य तं तथाभूतं मौलिं मस्तकम् अवनमय्य नम्रं विधाय अधरितो न्यक्कृतो गगनाभोगो व्योमविस्तारो येन तद् आत्मनः स्वस्य भुजयोरन्तरमात्मभुजान्तरं स्ववक्ष आलोकयन् पश्यन्, पूर्वप्रविष्टां प्राक्कृतप्रवेशाम् इमां बिम्बोष्ठीं गन्धर्वदत्ताम् अनुभवितुमुपभोक्तुं स्वयमपि अन्तर्मध्ये प्रविविक्षुरिव प्रवेशोत्सुक इवालक्ष्यत अदृश्यत ।

वक्षःस्थल तुम्हारे स्तनतटके विस्तारके लिए पर्याप्त है या नहीं। कोई राजा कमलके समान कोमल हाथसे सुमेरु पर्वतके कटकके समान विशाल वक्षःस्थलपर लटकनेवाली, खिले हुए लाल कमलोंकी कलिकाओंके समूहसे निर्मित लम्बी मालाका स्पर्श कर रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कुण्डलाकार धनुषको धारण करनेवाले कामदेवके द्वारा मनमें गड़ायी हुई बाणोंकी मालाको ही उखाड़ रहा हो। कोई राजा प्रिय मित्रके द्वारा कही हास्योक्तिके प्रति आदर प्रकट करनेके लिए प्रकट हुई मुसकानसे निकली निर्मल दाँतोंकी किरणावलीसे ऐसा दिखाई दे रहा था मानो उत्पलनयनी गन्धर्वदत्ताके लिए अपने हृदयरूपी आलवालमें उत्पन्न विवाहसम्बन्धी कुतूहलके अंकुरोंको बाहर निकालकर दिखला रहा हो। और कोई एक राजा मणिमय मुकुटकी किरणरूप मंजरीकी मालासे युक्त अपना शिर नीचेकी ओर झुकाकर आकाशके विस्तारको तिरस्कृत करनेवाले अपने वक्षःस्थलकी ओर देख रहा था तथा उससे ऐसा जान पड़ता था मानो पहले प्रविष्ट हुई बिम्बोष्ठीका उपभोग करनेके लिए स्वयं भी भीतर प्रवेश करना चाहता हो।

§ १०७. एवं विजृम्भमाणेषु विश्वंभरापतीनां पञ्चशरपराक्रमपयोधिविजृम्भणविवरणचतुरेषु विकारेषु सा च गरुडवेगसुता सुधाकरालोकप्रतिभटं[1] कुसुमशरयशोराशिमिव राजमानं स्वयंवरपरिषदन्तरवस्थापितं स्फटिकगृहमाविश्य दृश्यमाननिखिलावयवा निजसखीजननिवेद्यमाननिखिलपार्थिवसार्थस्वरूपा परिसरगतायाः परिचारिकायाः पाणिपल्लवादादाय वीणामुपवीणयितुमुपाक्रंस्त ।

§ १०८. 'विनमदमरश्रेणीमौलिस्फुरन्मणिमालिका-
　　किरणलहरीपातस्त्यायन्नखद्युतिकन्दलम्[2] ।
प्रणतदुरितध्वान्तध्वंसप्रभातदिवाकरो
　　दिशतु भवतां श्रेयः शीघ्रं जिनाङ्घ्रिसरोरुहम् ॥'

---

§ १०७ एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण विश्वम्भरापतीनां राज्ञां पञ्चशरस्य कामस्य पराक्रम एव पयोधिः पारावारस्तस्य विजृम्भणं वृद्धिस्तस्य विवरणे प्रकटने चतुरास्तेषु विकारेषु विजृम्भमाणेषु वर्धमानेषु सत्सु, सा च गरुडवेगसुता गन्धर्वदत्ता सुधाकरालोकस्य चन्द्रप्रकाशस्य प्रतिभटं प्रतिनिधिं कुसुमशरस्य मीनकेतनस्य यशोराशिमिव कीर्तिपुञ्जमिव राजमानं शोभमानम्, स्वयंवरपरिषदः स्वयंवरसभाया अन्तर्मध्येऽवस्थापितं विनिवेशितं स्फटिकगृहं स्फटिकोपलनिकेतनम् आविश्य प्रवेशं कृत्वा दृश्यमानाः समवलोक्यमाना निखिलावयवा यस्यास्तथाभूता निजसखीजनेन स्ववयस्यावृन्देन निवेद्यमानं कथ्यमानं निखिलपार्थिवसार्थस्य समस्तभूपालसमूहस्य स्वरूपं यस्यास्तथाभूता सती परिसरगताया निकटस्थितायाः परिचारिकायाः सेविकायाः पाणिपल्लवात् करकिसलयात् आदाय गृहीत्वा वीणां विपञ्चीम् उपवीणयितुं वीणया स्तोतुम् उपाक्रंस्त तत्पराभूत् ।

§ १०८ विनमदिति—विनमन्तो नम्रीभवन्तो येऽमरश्रेण्या देवपङ्क्तेर्मौलयो मुकुटानि तेषां स्फुरन्त्यो देदीप्यमाना या मणिमालिका रत्नदामानि तेषां किरणलहर्यो मरीचिसन्ततयस्ताभिः स्त्यायन्तो वर्धमाना नखद्युतयो नखरश्मय एव कन्दलान्यङ्कुरा यस्य तत्, प्रणतानां नम्रीभूतानां दुरितं पापमेव ध्वान्तं तिमिरं तस्य ध्वंसे विनाशने प्रभातदिवाकरः प्रत्यूषाहर्मणिः, जिनाङ्घ्रिसरोरुहं जिनेन्द्रपादारविन्दं शीघ्रं झटिति भवतां श्रेयः कल्याणं दिशतु निगदतु प्रदर्शयत्विति भावः । हरिणीच्छन्दो रूपकालङ्कारश्च ।

---

§ १०७. इस प्रकार जब राजाओंके कामदेवके पराक्रमरूपी सागरकी वृद्धिके प्रकट करनेमें चतुर विकार वृद्धिगत हो रहे थे तब गरुडवेगकी पुत्री गन्धर्वदत्ता, चन्द्रलोकके सदृश अथवा कामदेवके कीर्तिपुंजके समान सुशोभित, स्वयम्वर सभाके बीचमें स्थित स्फटिकगृहमें प्रवेश कर समीपमें स्थित परिचारिकाके हस्तरूपी पल्लवसे वीणा लेकर बजानेके लिए उद्यत हुई । उस समय उसके समस्त अवयव दिखाई दे रहे थे तथा अपनी सखीजनोंके द्वारा उसे समस्त राजसमूहका स्वरूप बतलाया जा रहा था । वीणा बजाते-बजाते उसने गाया कि—

§ १०८. 'नम्रीभूत देवसमूहके मुकुटोंमें चमकती हुई मणिमालाओंकी किरणावलीके पड़नेसे जिनके नखोंकी कान्तिरूप कन्दल वृद्धिगत हो रहा है तथा जो नम्रीभूत प्राणियोंके पापरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए प्रातःकालिक सूर्य हैं ऐसे श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌के चरण-कमल शीघ्र ही आप सबको कल्याण प्रदान करें ।

---

१. म० सुधाकरलोकप्रतिभटम् । २. क० ख० ग० मण्डलम् ।

§ १०९. इत्येवमभिव्यक्तसप्तस्वरमुन्मिषितग्रामविशेषमुच्छ्वसितमूर्च्छनानुबन्धमतिबन्धुरमाहितकर्णपारणमाकर्ण्य तस्यास्तदुपवीणनमतिप्रहर्षेण परिषत्परिसरतरवोऽपि कोरकव्याजेन रोमाञ्चमिवामुञ्चन् । तिर्यञ्चोऽपि तिरस्कृतापरव्यापृतयस्तदाकर्णनदत्तकर्णाः समुत्कीर्णा इव निःस्पन्दनिखिलावयवास्तत्क्षणमैक्षिषत । महीक्षितस्तु[1] मृगेक्षणाया निःशेषजनकर्णवशीकरणकार्मणमाकर्ण्य वल्लकीवादनं वामलोचनेयमनेन विजेतुमिह जगति न केनापि शक्यत इति निश्चित्य निःश्वासैः सह पाणिपीडनाशां मुञ्चन्तः पञ्चशरवञ्चिताः कंचित्कालमानतवदननिवेदितनिजहृदयगतविषादा जोषमासिषत । कतिचित्कन्दलितपरिवादिनीपाण्डित्यमात्मानं मन्यमानाः प्रारभ्य वादयितुं परिवादिनीं परिवादमेव फलमलभन्त । एवमुपक्रमसमसमय एव समा-

§ १०९ इत्येवमिति—अनेन प्रकारेण अभिव्यक्ताः स्पष्टं प्रकटिताः सप्तस्वरा निषादादयो यस्मिन् तत् 'निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः । पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः' इत्यमरः, उन्मिषिताः प्रकटिता ग्रामविशेषाः स्वराणामारोहावरोहक्रमविशेषा यस्मिन् तत्, उच्छ्वसितः प्रकटितो मूर्च्छनानामनुबन्धः संबन्धो यस्मिन् तत्, अतिबन्धुरमतिमनोहरम्, आहिता कर्णयोः श्रवणयोः पारणा विशिष्टभोजनं येन तथाभूतं तस्या गन्धर्वदत्तायाः तत् पूर्वोक्तप्रकारम् उपवीणनं वीणया स्तवनम् आकर्ण्य निशम्य अतिप्रहर्षेण प्रमोदाधिक्येन परिषदः सभायाः परिसरतरवोऽपि निकटानोकहा अपि कोरकव्याजेन कुड्मलकपटेन रोमाञ्चमिव पुलकमिव, आमुञ्चन् दधति स्म । तिर्यञ्चोऽपि पशवोऽपि तिरस्कृता दूरीकृता अपरव्यापृतोऽन्यचेष्टा यैस्ते, तस्योपवीणनस्याकर्णने श्रवणे दत्तकर्णाः प्रदत्तश्रवणाः समुत्कीर्णा इव समुल्लिखिता इव निःस्पन्दा निश्चला निखिलावयवा येषां तथाभूता सन्तः तत्क्षणम् ऐक्षिषत विलोकयामासुः । महीक्षितस्तु राजानस्तु मृगेक्षणायाः कुरङ्गलोचनाया गन्धर्वदत्तायाः निःशेषजनानां निखिललोकानां कर्णवशीकरणे कार्मणं समर्थं वल्लकीवादनं वीणावादनम् आकर्ण्य श्रुत्वा वामे मनोहरे लोचने यस्यास्तथाभूतेयं गन्धर्वदत्ता अनेकवीणावादनेन विजेतुं पराभवितुम् इह जगति लोकेऽस्मिन् केनापि विदग्धेन न शक्यते न पार्यत इति निश्चित्य निर्णीय निःश्वासैः सह श्वासोच्छ्वासैः सार्धं पाणिपीडनाशां विवाहाभिलाषं मुञ्चन्तस्त्यजन्तः पञ्चशरेण प्रद्युम्नेन वञ्चिताः प्रतारिताः भवन्तः कञ्चित्कालं कमपि समयं यावत्, आनतवदनेन विनम्रवक्त्रेण निवेदितः सूचितो निजहृदयगतो निजान्तःकरणस्थितो विषादः खेदो यैस्तथाभूताः जोषं तूष्णीं यथा स्यात्तथा आसिषत तस्थुः । कतिचिदिति—कतिचित् कियन्तोऽपि कन्दलितमङ्कुरितं परिवादिनीपाण्डित्यं वीणावैदुष्यं यस्य तं तथाभूतम् आत्मानं मन्यमाना परिवादिनीं वीणां वादयितुं प्रारभ्य परिवादमेव निन्दामेव फलम् अलभन्त प्राप्नुवन् । एवमिति—एव-

§ १०९. इस तरह जिसमें सातों स्वर प्रकट थे, जिसमें ग्राम-विशेष प्रकट थे, जिसमें मूर्च्छनाका सम्बन्ध स्पष्ट था, जो अत्यन्त मनोहर था और जिसमें कानोंके लिए पारणास्वरूप सब कुछ विद्यमान था ऐसा उसका वीणा बजाना सुनकर तीव्रहर्षसे स्वयंवर-सभाके समीपवर्ती वृक्ष भी बौड़ियोंके बहाने मानो रोमांच धारण कर रहे थे। तिर्यंच भी अन्य सब कार्य छोड़ उसीके सुननेमें कान देकर उकेरे हुएके समान निश्चेष्ट समस्त अवयवोंसे युक्त हो उस क्षणको देखने लगे। किन्तु राजा लोग समस्त मनुष्योंके कानोंको वश करनेमें निपुण उस मृगनयनीका वीणा बजाना सुन 'यह वामलोचना इस क्रियासे तो संसारमें किसीके द्वारा नहीं जीती जा सकती' यह निश्चय कर श्वासोच्छ्वासके साथ-साथ विवाहकी आशा छोड़ बैठे और कामसे प्रतारित हो कुछ समय तक नम्रीभूत मुखसे अपने हृदयका विषाद प्रकट करते हुए चुप बैठ गये। कुछने स्वयंको वीणावादनका पण्डित मान वीणा बजाना प्रारम्भ

१. क० ख० ग० 'तु' नास्ति।

सादितपराजयलज्जाकज्जलितहृदयेषु पार्थिवपृथ्वीसुरवैश्येषु विश्रुतविश्वविद्यावैशारद्यविस्मापितजीवको जीवकस्वामी स्वयंवरकृते कृतमण्डनः पितुरनुज्ञापुरःसरमनुसरद्भिरात्मनिर्विशेषैरशेषैः स्वमित्रैर्मित्र इव मयूखैः शतमख इव मखाशनैः शातकुम्भगिरिरिव कुलगिरिभिरधरितविन्ध्यगिरिगरिमाणं गन्धकरिणमधिरुह्य धराधरशिखरनिषण्णं केसरिणमवधीरयन्नधःकृतमदनरूपाभिमानग्रहो निजगृहान्निरगात् ।

§ ११०. अनन्तरं तदीयलावण्यप्रस्रवणे प्रवहति प्रक्षालयितुमीक्षणयुगलमतिदोहलादहमहमिकया समधिरुह्य सौधमणिवलभीमनुगवाक्षमाहितवदनचन्द्रमसामिन्दीवरदृशाम् 'इन्दुशेखरेण पुरा पुरत्रयेन्धनसमिद्धहुतवहविरोचमाने विलोचने सरभसमदाहि मन्मथ इति वितथमालपति

मनेन प्रकारेण उपक्रमसमय एव प्रारम्भकाल एव समासादितेन प्राप्तेन पराजयेन पराभवेन या लज्जा त्रपा तया कज्जलितानि मलिनानि हृदयानि येषां तेषु पार्थिवाः क्षत्रियाः पृथ्वीसुरा विप्रा वैश्या वणिज एषां द्वन्द्वस्तेषु विश्रुतं प्रसिद्धं यद् विश्वविद्यासु निखिलविद्यासु वैशारद्यं वैदुष्यं तेन विस्मापिता आश्चर्यचकितीकृता जीवा लोका येन तथाभूतो जीवकस्वामी जीवंधरः स्वयंवरकृते कृतमण्डनो धृतालंकारः पितुस्तातस्य अनुज्ञापुरःसरमादेशपूर्वकम् अनुसरद्भिरनुगच्छद्भिः आत्मनिर्विशेषैः स्वसदृशैः अशेषैर्निखिलैः स्वमित्रैः स्वकीयसुहृद्भिः, मयूखैः किरणैः मित्र इव सूर्य इव, मखाशनैर्देवैः शतमख इव शक्र इव, कुलगिरिभिः कुलाचलैः शातकुम्भगिरिरिव सुमेरुरिव, अधरितस्तिरस्कृतो विन्ध्यगिरिगरिमा विन्ध्याचलगौरवो येन तं गन्धकरिणं मदस्राविमतङ्गजम् अधिरुह्य धराधरस्य पर्वतस्य शिखरे निषण्णं विद्यमानं केसरिणं मृगेन्द्रम् अवधीरयन् तिरस्कुर्वन् अधःकृतो दूरीकृतो मदनस्य मारस्य रूपाभिमानग्रहः सौन्दर्यगर्वहठो येन तथाभूतः सन् निजगृहात् स्वभवनात् निरगात् निरगच्छत् ।

§ ११०. अनन्तरमिति—अनन्तरं तदनु प्रवहति प्रगच्छति तदीयलावण्यमेव 'प्रस्रवणं तस्मिन् तदीयसौन्दर्यनिर्झरे' ईक्षणयुगलं नयनयुगं प्रक्षालयितुम् अतिदोहलात्प्रचुराभिलाषात् अनुगवाक्षं वातायने वातायने आहितवदनचन्द्रमसां स्थापितमुखमृगाङ्कानाम् इन्दीवरदृशां ललनानाम्, 'इन्दुशेखरेण शिवेन पुरा पूर्वं पुरत्रयमेवेन्धनं तेन समिद्धः प्रज्वलितो यो हुतवहो वह्निस्तेन विरोचमानं देदीप्यमानं तस्मिन्, विलोचने नयने सरभसं सवेगं यथा स्यात्तथा मन्मथो मदनः अदाहि दग्ध इतीत्थं लोको जनो वितथ-

करके निन्दा ही फल पाया। इसप्रकार जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रारम्भ समयमें ही प्राप्त पराजय-सम्बन्धी लज्जासे मलिनमुख हो गये तब प्रसिद्धिको प्राप्त समस्त विद्याओंके पाण्डित्यसे जिन्होंने बृहस्पतिको भी आश्चर्यमें डाल दिया था तथा स्वयंवरके लिए जिन्होंने आभूषण धारण किये थे ऐसे जीवन्धरकुमार, पिताकी आज्ञा प्राप्तकर, विन्ध्याचलके गौरवको तिरस्कृत करनेवाले मदमाते हाथीपर सवार हो पर्वतके शिखरपर स्थित सिंहको तिरस्कृत करते हुए अपने घरसे निकले। उस समय उन्होंने कामदेवके सौन्दर्यके अभिमानको नष्ट कर दिया था तथा पीछे-पीछे चलनेवाले अपने समस्त समान मित्रोंसे वे किरणोंसे सूर्यके समान, देवोंसे इन्द्रके समान और कुलाचलोंसे सुमेरुके समान सुशोभित हो रहे थे।

§ ११०. तदनन्तर उनके बहते हुए सौन्दर्यरूपी झरनेमें नेत्रयुगल धोनेके लिए स्त्रियाँ, महलोंकी मणिमयी छपरियों और झरोखोंमें मुखरूपी चन्द्रमाको लगाकर परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं—कोई कहती है कि 'पहले महादेवने पुरत्रयरूप ईंधनसे प्रज्वलित अग्निसे देदीप्यमान नेत्रमें शीघ्र ही कामदेवको भस्म कर दिया था' यह लोग झूठ ही कहते हैं

लोकः । यदयमशेषयोषिदीक्षणचकोरपारणपौर्णमासीचन्द्रकरायमाणकान्तिकन्दलः कामो निकाममानन्दयत्यस्मान् । किमकृत सा सुकृतं पुरा पुरंध्री यास्य प्रत्यग्रघटितघनतरघुसृणपङ्कपटलपाटले वक्षःकवाटे निबिडगैरिकपङ्काङ्किते गिरितटे मयूरीव विहरिष्यति । आस्तामिदमस्तोकमस्य लावण्यम् । प्रावीण्यमपि वीणावादने निर्द्वितीयमेतदीयम् । आभ्यामखिलभुवनाभिनन्दिताभ्यां विनिर्जिता विजयार्धपतेः सुता नियतमेनं वरिष्यति' इत्येतानि चान्यानि वचांस्यवतंसयन्कर्णयोस्तूर्णमुपासरत्परिसरं स्वयंवरसदसः ।

§ १११. सदस्याश्च वयस्यैः सह संनिहितमेनमपनीतनिमेषोन्मेषेण चक्षुषा निरीक्षमाणाः क्षणमेणाक्षीपाणिग्रहणमहोत्सवप्रीतिभाजनं जनोऽयमिति मेनिरे । बहुमेने च सा मानिनी मदन-

---

मनृतम् आलपति कथयति । यद् यस्मात्कारणात् अयं दृश्यमानः अशेषयोषितां निखिलनारीणामीक्षणान्येव चकोरा जीवंजीवास्तेषां पारणाय भोजनाय पौर्णमासीचन्द्रकरायमाणानि राकारजनीरमणरश्मिवदाचरन्ति कान्तिकन्दलानि दीप्त्यङ्कुरा यस्य तथाभूतः कामः स्मरः निकाममत्यन्तम् अस्मान् आनन्दयति । किमकृतेति—सा पुरन्ध्री वनिता पुरा किं किन्नामधेयं सुकृतं पुण्यमकृत या अस्य जीवकस्य प्रत्यग्रघटितेन नूतनरचितेन घनतरेण सान्द्रतरेण घुसृणपङ्कपटलेन कुङ्कुमद्रवसमूहेन पाटले रक्तवर्णे वक्षःकपाटे वक्षःस्थले निबिडेन सान्द्रेण गैरिकपङ्केन धातुद्रवेणाङ्किते सहिते गिरितटे शैलतटे मयूरीव बर्हिणीव विहरिष्यति क्रीडिष्यति । अस्य इदमेतत् अस्तोकं प्रचुरं लावण्यम् आस्ताम्, एतदीयम् वीणावादने तन्त्रीवादने प्रावीण्यमपि नैपुण्यमपि निर्द्वितीयमसाधारणं विद्यते इति शेषः, अखिलभुवनेन निखिलविष्टपेनाभिनन्दिते प्रशंसिते ताभ्याम् आभ्यां लावण्यवीणावादननैपुण्याभ्यां विनिर्जिता पराभूता विजयार्धपतेः सुता गरुडवेगनन्दिनी एनं नियतं निश्चितं वरिष्यति स्वीकरिष्यति' इत्येतानि अन्यानि चेतराणि च वचांसि कर्णयोरवतंसयन् शृण्वन् तूर्णं शीघ्रं स्वयंवरसदसः स्वयंवरसभायाः परिसरमभ्यर्णम् उपासरत् उपजगाम ।

§ १११ सदस्याश्चेति—सदसि भवाः सदस्याः सभासदश्च वयस्यैर्मित्रैः सह संनिहितं निकटस्थितम् एनम् अपनीतौ दूरीकृतौ निमेषोन्मेषौ पक्ष्मपातोत्पातौ यस्मात् तथाभूतेन चक्षुषा नयनेन निरीक्षमाणा विलोकमानाः सन्तः अयं जनः क्षणमल्पेनैव कालेन एणाक्ष्या मृगनेत्र्या गन्धर्वदत्तायाः पाणिग्रहणमहोत्सवस्य विवाहमहोत्सवस्य प्रीतिभाजनं प्रीतिपात्रम्, इति मेनिरे मन्यन्ते स्म । सा मानिनी च

क्योंकि समस्त स्त्रियोंके नेत्ररूपी चकोर पक्षियोंको पारणा करानेके लिए पौर्णमासीके चन्द्रमाकी किरणोंके समान आचरण करनेवाले कान्तिरूप कन्दलसे युक्त यह कामदेव हम लोगोंको अच्छी तरह आनन्दित कर रहा है। कोई कह रही थी कि उस स्त्रीने पूर्व भवमें कौन-सा पुण्य किया था जो इसके नवीन लगाये हुए केशरके गाढ़े-गाढ़े लेपसे लालवर्ण वक्षःस्थलपर गेरूके सघन पंकसे युक्त पर्वतके तटपर मयूरीके समान क्रीड़ा करेगी। कोई कह रही थी कि इसकी यह अत्यधिक सुन्दरता रहने दो, वीणा बजानेमें इसकी चतुरता भी इसके अद्वितीय है—अपनी शानी नहीं रखती। समस्त संसारके द्वारा प्रशंसित इसके इन्हीं दो गुणोंसे पराजित हुई गन्धर्वदत्ता निश्चित ही इसे वर लेगी। स्त्रियोंके इन तथा अन्य वचनोंको कानोंका आभूषण बनाते हुए जीवन्धरकुमार शीघ्र ही स्वयंवर सभाके समीप पहुँच गये।

§ १११. स्वयंवर सभामें जो सदस्य बैठे थे वे मित्रोंके साथ आये हुए जीवन्धरकुमारको टिमकाररहित नेत्रोंसे देखने लगे और क्षण-भरमें उन्होंने निश्चय कर लिया कि इस मृगनयनीके विवाह-महोत्सवकी प्रीतिका पात्र यही मनुष्य होगा। मानवती गन्धर्वदत्ता

महनीयरूपमेनमालोकयन्ती । अचिन्तयच्च 'यद्यसौ लभ्येत पतिः पराजय एव जयान्मे परं श्रेयः' इति श्रीदत्ततनया । अथ कुमारः समवतीर्य मातङ्गादनङ्ग इव लब्धाङ्गः कुरङ्गलोचनायाः पुरस्तादवस्थापितमनुरूपमासनमलंचकार । ततश्चकोरनेत्रायाः परिचारिकाभिः प्रदर्शिताः प्रत्येकं शास्त्रनेत्रनिरीक्षणाद्दोषानुद्घोषयन्घोषवतीरदूषयत् । अभाषत च परिचारिकाः 'परिवादिनी काचन परिहृतनिखिलदोषा भूषयति भवद्वंशम् । आशु तामानयत' इति । तावता च तत्सदृशस्तद्विद्यायां न विद्यत इति जनितपरितोषया वीणावत्या वितीर्णां वीणामुपादाय वादयितुमुपचक्रमे चक्रवर्ती कलानाम् ।

§ ११२. 'जिनस्य लोकत्रयवन्दितस्य प्रक्षालयेत्पादसरोजयुग्मम् ।
नखप्रभादिव्यसरित्प्रवाहैः संसारपङ्कं मयि गाढलग्नम् ॥' इति ।

मानवती च गन्धर्वदत्ता मदनेन मारेण महनीयं श्लाघनीयं रूपं यस्य तथाभूतम् एनम् आलोकयन्ती पश्यन्ती बहुमेने श्रेष्ठं मन्यते स्म । अचिन्तयच्चेति—'यद्यसौ पतिर्वल्लभो लभ्येत प्राप्येत तर्हि मे पराजय एव जयात् परमत्यन्तं श्रेयः कल्याणम्' इति श्रीदत्ततनया गन्धर्वदत्ता अचिन्तयच्च विचारयामास च । अथेति—अथानन्तरं कुमारो जीवंधरो मातङ्गात् करिणः समवतीर्य लब्धाङ्गः प्राप्तशरीरः अनङ्ग इव काम इव कुरङ्गलोचनाया हरिणाक्ष्याः पुरस्तादग्रेऽवस्थापितम् अनुरूपमनुकूलमासनं विष्टरमलंचकार शोभयामास । ततश्च—ततश्च तदनन्तरं चकोरस्येव नेत्रे यस्यास्तस्या गन्धर्वदत्तायाः परिचारिकाभिः सेविकाभि प्रदर्शिता घोषवतीर्वीणा एकामेकां प्रत्येकं शास्त्रमेव नेत्रं तेन निरीक्षणं तस्माच्छास्त्रनयनदर्शनात् दोषानव-गुणान् घोषयन् प्रकटयन् अदूषयत् । अभाषत च निजगाद च 'परिचारिकाः सेविकाः परिहृता दूरीकृता निखिलदोषा यया तथाभूता काचन कापि परिवादिनी विपञ्ची भवद्वंशं युष्मत्कुलं भूषयति ताम् आशु शीघ्रम् आनयत' इति । तावता चेति—तावता च कालेन तद्विद्यायां तन्त्रीवादनविद्यायां तत्सदृशो जीवंधरतुल्यो न विद्यत इति जनितपरितोषया समुत्पादितसंतोषया वीणावत्या गन्धर्वदत्तया वितीर्णां वीणां परिवादिनीम् उपादाय कलानां चक्रवर्ती साम्यन्वरिवादयितुम् उपचक्रमे तत्परोऽभूत् ।

§ ११२. जिनस्येति—लोकत्रयवन्दितस्य जगत्त्रयाभिपूजितस्य जिनस्यार्हतः पादसरोजयुग्मं चरणारविन्दद्वन्द्वं नखप्रभैव नखदीप्तिरेव दिव्यसरित् तस्याः प्रवाहास्तैः मयि गाढलग्नं तीव्रप्रसक्तं संसारपङ्कमाजवञ्जवकर्दमम् प्रक्षालयेत् । उपजातिवृत्तं रूपकालङ्कारः । इति ।

भी कामदेवके समान महनीय रूपको धारण करनेवाले जीवन्धरकुमारको देखती हुई बहुत अच्छा मानने लगी । उसने देखते ही के साथ यह विचार किया कि यदि यह पति मिलता है तो मुझे जीतकी अपेक्षा पराजय ही अधिक कल्याणकारी है । तदनन्तर जो शरीरधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे ऐसे जीवन्धरकुमार हाथीसे उतरकर मृगनयनी गन्धर्व-दत्ताके सामने रखे हुए अपने योग्य आसनको अलंकृत करने लगे । तत्पश्चात् चकोरलोचना—गन्धर्वदत्ताकी परिचारिकाओंने जो भी वीणाएँ दिखलायीं शास्त्ररूपी नेत्रसे देखनेके कारण उनके दोष प्रकटकर जीवन्धरकुमारने उन सबको दूषित बता दिया । साथ ही परिचारि-काओंसे कहा कि यदि समस्त दोषोंसे रहित कोई वीणा आपके वंशको अलंकृत करती हो तो उसे शीघ्र ही लाओ । गन्धर्वदत्ताको जीवन्धरकुमारकी उतनी ही बातसे सन्तोष हो गया कि इस विद्यामें इनके समान दूसरा नहीं है अतः उसने अपनी वीणा उन्हें दे दी और कलाओंके चक्रवर्ती जीवन्धरकुमार उस वीणाको लेकर बजाने लगे । बजाते हुए उन्होंने गाया ।

§ ११२. 'तीनों लोकोंके द्वारा वन्दित श्रीजिनेन्द्र भगवान्के चरण-कमलोंका युगल, नखोंकी कान्तिरूपी गंगाके प्रवाहसे मुझमें अत्यन्त लगे हुए संसाररूपी पंकको धोवे' ।

§ ११३. तेन च श्रवणसुभगगीतिगर्भमुद्भूतरागमनुगतग्रामं वादयता वल्लकीं विजिग्ये विद्याधरराजतनया।

§ ११४. अनन्तरमाविर्भवदभङ्गुरामर्षतरङ्गितहृदयेषु[1] विजृम्भमाणव्यलीककल्पितकालिमकर्दमितमुखेषु ललाटरङ्गतटविहरदसितभ्रुकुटीनटेषु निबिडनिर्गच्छदतुच्छदुःखवेगोष्मलदीर्घनिःश्वाससमीरमर्मरिताधरपल्लवेषु पश्यत्सु स्वयंवरास्थानवास्तव्येषु वसुधापालेषु सा गरुडवेगनन्दना सानन्देन सखीजनेन समुपनीता कुमारोपकण्ठं वर्धितोत्कण्ठा कण्ठे जीवककुमारस्य कुसुमशरविकारकम्पमानेन प्रहर्षपुलकजर्जरितत्वचा पाणिपल्लवेन बबन्ध बन्धुरां स्वयंवरस्रजम्।

---

§ ११३. तेन च श्रवणसुभगा कर्णप्रिया गीतिर्गर्भे यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा, उद्भूतरागं प्रकटितरागम् अनुगतग्राममनुगतस्वरसमूहं यथा स्यात्तथा वल्लकीं वीणां वादयता विद्याधरराजतनया खगाधिपपुत्री विजिग्ये विजिता।

§ ११४. अनन्तरमिति—अनन्तरं तदनु आविर्भवन् प्रकटीभवन् योऽभङ्गुरोऽनश्वरोऽमर्षः क्रोधस्तेन तरङ्गितानि चपलानि हृदयानि येषां तेषु, विजृम्भमाणेन वर्धमानेन व्यलीकेन मन्दाक्षेण कल्पितो यः कालिमा तेन कर्दमितं मलिनं मुखं येषां तेषु, ललाटरङ्गतटेषु निटिलरङ्गभूमितटेषु विहरन्तोऽसितभ्रुकुटय एव नटा येषां तेषु, निबिडं सघनं यथा स्यान्निर्गच्छन्तोऽतुच्छदुःखवेगेन भूयिष्ठदुःखरयेणोष्मला उष्णस्वभावा ये दीर्घनिःश्वासा आयतश्वासोच्छ्वासास्तेषां समीरेण पवनेन मर्मरिताः शुष्का अधरपल्लवा ओष्ठकिसलया येषां तेषु, स्वयंवरास्थानवास्तव्येषु स्वयंवरसमास्थितेषु वसुधापालेषु पृथिवीपतिषु पश्यत्सु विलोकयत्सु, सा गरुडवेगनन्दना गन्धर्वदत्ता सानन्देन सप्रमोदेन सखीजनेन समुपनीता समुपस्थापिता वर्धितोत्कण्ठा च सती जीवककुमारस्य कण्ठे कुसुमशरविकारेण स्मरविभ्रमेण कम्पमानस्तेन, प्रहर्षपुलकैस्तीव्रानन्दरोमाञ्चैर्जर्जरिता त्वक् यस्य तेन पाणिपल्लवेन करकिसलयेन बन्धुरां मनोहरां स्वयंवरस्रजं स्वयंवरमालां बबन्ध।

---

§ ११३. इसप्रकार कानोंको प्रिय लगनेवाला गीत जिसके बीच-बीचमें मिला हुआ था, जिसमें अनेक राग-रागिनियाँ प्रकट थीं, तथा जिसमें अनुकूल ग्राम-स्वरोंका समूह प्रकट था उस तरह वीणा बजानेवाले जीवन्धरकुमारसे विद्याधर राजपुत्री—गन्धर्वदत्ता पराजित हो गयी।

§ ११४. तदनन्तर प्रकट होते हुए तीव्र क्रोधसे जिनके हृदय लहरा रहे थे, बढ़ती हुई लज्जासे उत्पन्न कालिमासे जिनके मुख श्याम पड़ गये थे, जिनके ललाटरूपी रंगभूमिके तटोंपर श्याम भृकुटिरूपी नट विहार कर रहे थे, और बड़ी सघनताके साथ निकलनेवाले तीव्र दुःखके वेगसे उष्ण एवं लम्बी-लम्बी साँसोंकी वायुसे जिनके ओष्ठरूपी पल्लव सूख गये थे ऐसे स्वयंवर सभामें स्थित समस्त राजाओंके देखते-देखते वह गरुड़वेगकी पुत्री, आनन्दसे भरी सखियोंके द्वारा जीवन्धरकुमारके पास ले जायी गयी। तदनन्तर जिसकी स्वयं उत्कण्ठा बढ़ रही थी ऐसी गन्धर्वदत्ताने कामके विकारसे काँपते एवं हर्षकी प्रकर्षतासे उत्पन्न रोमांचोंसे जर्जरित त्वचाके धारक हाथरूपी पल्लवसे जीवन्धरकुमारके गलेमें ऊँची-नीची स्वयंवर माला बाँध दी।

१. क० आविर्भवद् भङ्गुरामर्षतरङ्गितहृदयेषु।

§ ११५. अथ तामनवद्यतपोबलादावर्जितसुकृतानामन्तिकं श्रियमिव श्रयन्तीं स्वयं जीवकस्वामिनः स्वामिद्रुहां ज्येष्ठः काष्ठाङ्गारः सामर्षं निर्वर्ण्य वरवर्णिनीम् 'नितरां निकृष्टः श्रेष्ठिसुतोऽयं पुरा तिरस्कृतास्मद्बलं नाफलसैन्यमनन्यसहायो विजित्यास्माकममन्दं मन्दाक्षमाक्षिपत् । एवमत्युल्बणबलस्यास्य बालस्य खेचरा अपि सहचरा यदि भवेयुर्भवेदेवास्मदीयराज्यमप्येतदीयहस्तस्थम् । अतः पार्थिवसुतैः सार्धं स्पर्धां वर्धयित्वा वर्धयाम्यस्य दोर्बलदर्पम्' इति विचारमारचयत्[1] अतितरां च समधुक्षयन्महीक्षिदात्मजान् ।

§ ११६. वैश्यसुतोऽयं पश्यतामेव पराक्रमशालिनां परार्ध्यवस्तूपलम्भयोग्यानामयोग्यः कथं भोग्यामिमां राज्यश्रियमिव समाश्रयेत् । समुत्सार्यैनमूरव्यसूनुमूरीक्रियासुरिमां नारीम्' इति ।

§ ११५. अथेति—अथानन्तरम् अनवद्यस्य निर्दोषस्य तपसो बलं सामर्थ्यं तस्माद् आवर्जितसुकृतानां संचितपुण्यानाम् अन्तिकं समीपं श्रयन्तीम् गच्छन्तीं श्रियमिव लक्ष्मीमिव जीवकस्वामिनोऽन्तिकं स्वयं श्रयन्तीं तां वरवर्णिनीं सुन्दरीं सामर्षं सक्रोधं निर्वर्ण्य दृष्ट्वा स्वामिद्रुहां राजद्रोहिणां ज्येष्ठोऽग्रेसरः काष्ठाङ्गारः इति विचारम् आरचयत् । इतीति किम् । नितरामत्यन्तम् निकृष्टो नीचः अयं श्रेष्ठिसुतो गन्धोत्कटाङ्गजः पुरा प्राक् अनन्यसहायोऽन्यजनसाहाय्यरहितः सन् तिरस्कृतं पराभूतमस्मद्बलं मत्सैन्यं येन तथाभूतं नाफलसैन्यं वनचरचमूं विजित्य अस्माकममन्दमत्यधिकं मन्दाक्षं ह्रियम् 'मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा—' इत्यमरः, आक्षिपत् । एवमनेन प्रकारेण अत्युल्बणबलस्य प्रभूतपराक्रमस्य अस्य बालस्य खेचरा अपि विद्याधरा अपि यदि सहचराः सहगामिनो भवेयुस्तर्हि अस्मदीयराज्यमपि मामकीनराज्यमपि एतदीयहस्तस्थ एतदायत्तं भवेदेव संभावनायां लिङ् । अतः पार्थिवसुतैः राजपुत्रैः सार्धं स्पर्धां मात्सर्यं वर्धयित्वा अस्य दोर्बलदर्पं बाहुवीर्यं वर्धयामि छेदयामि' वृधु छेदने । महीक्षिदात्मजान् नरेन्द्रनन्दनान् च अतितरामत्यन्तं समधुक्षयत् समुदतेजयत् ।

§ ११६. वैश्यसुतोऽयमिति—पराक्रमशालिनां वीर्यविशोभिनाम् परार्ध्यवस्तूनां श्रेष्ठवस्तूनामुपलम्भस्य प्राप्तेर्योग्यास्तेषां युष्माकं पश्यतामेव अयोग्योऽनर्हः अयं वैश्यसुतो वणिक्पुत्रो राज्यश्रियमिव राज्यलक्ष्मीमिव भोग्यां भोगार्हामिमां कन्यां कथं समाश्रयेत् प्राप्नुयात् । एनम् ऊरव्यसूनुं वैश्यसुतं समुत्सार्य दूरीकृत्य इमां नारीम् ऊरीक्रियासुः स्वीक्रियासुः' इति । आशिषि लिङ् । ततश्चैवमिति—

§ ११५. तदनन्तर निर्दोष तपके बलसे पुण्यका संचय करनेवाले मनुष्योंके समीप जिसप्रकार स्वयं लक्ष्मी पहुँचती है उसी प्रकार जीवन्धरस्वामीके समीप स्वयं पहुँचनेवाली उस अनवद्य सुन्दरी गन्धर्वदत्ताको देख स्वामीद्रोहियोंमें श्रेष्ठ काष्ठाङ्गार क्रोधसे आगबबूला हो इसप्रकार विचार करने लगा कि 'इस अत्यन्त नीच सेठके पुत्रने पहले हमारी सेनाको तिरस्कृत करनेवाली भीलोंकी सेनाको अकेले ही जीतकर हम लोगोंको बहुत भारी लज्जा उत्पन्न करायी थी । इस प्रकार यह बालक होनेपर भी अत्यधिक पराक्रमसे सहित है । इतनेपर भी यदि विद्याधर भी इसके मित्र हुए जाते हैं तो हमारा राज्य भी इसीके हाथमें स्थित हो जायेगा । अतः राजपुत्रोंके साथ स्पर्धा बढ़ाकर इसकी भुजाओंके बलका घमण्ड चूर करता हूँ ।' ऐसा विचारकर उसने राजपुत्रोंको अत्यधिक भड़का दिया ।

§ ११६. उसने कहा—पराक्रमसे सुशोभित और श्रेष्ठ वस्तुओंके पानेके योग्य आप लोगोंके देखते-देखते ही यह अयोग्य वैश्यका लड़का भोगने योग्य राज्यलक्ष्मीके समान इसे कैसे प्राप्त कर सकता है ? अतः इस वैश्यके लड़केको हटाकर आप लोग इस स्त्रीको स्वीकृत करें । तद-

[1] क० ग० विचारमारचयन् अतितरां च ।

ततश्चैवं कपटधर्मपटिष्ठेन काष्ठाङ्गारेण संधुक्षितानां गन्धर्वदत्ताभिनिवेशविशृङ्खलविजृम्भितमन्युपरवशमनसां महीपतीनां स्वयंवरमालानिभादुपलब्धसौभाग्यपताकेन कुमारेण सह निपात्यमाननिशितहेतिसंघट्टितोद्भटसुभटकवचविसर्पद्विस्फुलिङ्गसूत्रिताग्नेयास्त्रप्रयोगचमत्कारम्, चण्डासिधाराखण्डितवेतण्डकुम्भकूटपतदविरलमुक्ताफलपटललाजाञ्जलितर्पितसमरदैवतम्, साहसप्रतिष्ठप्रतिभटकरकरवालखण्डितदेवीभवद्योधपरिष्वङ्गपर्युत्सुकहृदयपुञ्जीभवदमरपुरंध्रीनीरन्ध्रिताम्बरम्,[1] निकृत्तचारुभटकण्ठकुहरप्रणालीनिःस्यन्दमानरुधिरासारकर्दमितकाश्यपीतलम्,[2] मज्जदङ्घ्रिसमुद्धरणायस्यदश्वीयम्, आकर्णकुण्डलीक्रियमाणसुभटकोदण्डटङ्कारपर्यायसांपरायलक्ष्मीपादतुलाकोटिक्वणितमुखरित-

ततश्च तदनन्तरं च, एवमनेन प्रकारेण कपटधर्मे पटिष्ठस्तेन कपटधर्मपटुतरेण काष्ठाङ्गारेण संधुक्षितानां समुत्तेजितानां गन्धर्वदत्ताया अभिनिवेशेन मनोरथेन विशृङ्खलं स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा विजृम्भितो वृद्धिंगतो यो मन्युः क्रोधस्तेन परवशं परायत्तं मानसं येषां तेषां महीपतीनां राज्ञाम्, स्वयंवरमालानिभात् स्वयंवरस्रग्व्याजात् उपलब्धा प्राप्ता सौभाग्यपताका येन तेन संप्राप्तसौभाग्यध्वजेन कुमारेण जीवंधरेण सह अति महद् विशालं युद्धम् अवर्धत। अथ युद्धस्य विशेषणान्याह—निपात्यमानेति—निपात्यमाना मुच्यमाना या निशितहेतयस्तीक्ष्णशस्त्राणि ताभिः संघट्टिता ये उद्भटसुभटानां प्रचण्डवीराणां कवचा वारबाणास्तेभ्यो विसर्पद्भिर्निःसरद्भिर्विस्फुलिङ्गैः सूत्रितः प्रारब्ध आग्नेयास्त्राणां प्रयोगस्य चमत्कारो यस्मिन् तत्, चण्डासीति—चण्डाभिः प्रतिज्ञाभिरसिधाराभिः कृपाणधाराभिः खण्डिता विदारिता ये वेतण्डकुम्भकूटा गजगण्डाग्रभागास्तेभ्यः पतन्ति यान्यविरलमुक्ताफलपटलानि निरन्तरमौक्तिकसमूहा तान्येव लाजाञ्जलयस्तैस्तर्पितं समरदैवतं युद्धदेवता यस्मिन् तत्, साहसेति—साहसेऽवदाने प्रतिष्ठाऽस्था येषां तथाभूता ये प्रतिभटा योद्धारस्तेषां करकरवालैः पाणिकृपाणैरादौ खण्डिताः पश्चाद् देवीभवन्तो ये योधास्तेषां परिष्वङ्गे पर्यालिङ्गने पर्युत्सुकहृदये समुत्कण्ठितचेतसा पुञ्जीभवन्त्यो या अमरपुरपुरन्ध्र्यो देवाङ्गनास्ताभिर्नीरन्ध्रितं निरवकाशितमम्बरं गगनं यस्मिन् तत्, निकृत्तेति—निकृत्ताश्छिन्नाश्चारुभटानां सुभटानां याः कण्ठकुहरप्रणाल्यो ग्रीवागुहप्रणाल्यस्ताभ्यो निःस्यन्दमानेन प्रवहता रुधिरासारेण रक्तवृष्ट्या कर्दमितं पङ्किलीकृतं काश्यपीतलं पृथिवीपृष्ठं यस्मिन् तत्, मज्जदिति—मज्जतां रक्तकर्दमे पतताम् अङ्घ्रीणां चरणानां समुद्धरणे समुत्थापने आयस्यत् खेदमनुभवद् अश्वीयं हयसमूहो यस्मिन् तत्, आकर्णेति—आकर्णं कर्णपर्यन्तं कुण्डलीक्रियमाणानां वक्रीक्रियमाणानां सुभटकोदण्डानां सुयोधधनुषां टङ्कारः पर्यायो

नन्तर इसप्रकार कपटधर्ममें निपुण काष्ठाङ्गारके द्वारा जो भड़काये गये थे एवं गन्धर्वदत्ताकी प्राप्तिके अभिप्रायसे स्वच्छन्दतापूर्वक बढ़ते हुए क्रोधसे जिनके मन विवश हो रहे थे ऐसे राजाओंका स्वयंवरमालाके बहाने सौभाग्यरूपी पताकाको प्राप्त करनेवाले जीवन्धरकुमारके साथ बहुत भारी युद्ध हुआ। उस युद्धमें गिराये जानेवाले तीक्ष्ण शस्त्रोंकी टक्करको प्राप्त उद्भट योद्धाओंके कवचसे निकलनेवाले तिलगोंसे आग्नेय बाणके प्रयोगका चमत्कार सूचित हो रहा था। पैनी तलवारकी धारासे खण्डित हाथियोंके गण्डस्थलसे लगातार गिरते हुए मोतियोंके समूहरूपी लाईकी अंजलियोंसे युद्धके देवता सन्तुष्ट किये जा रहे थे। साहसी प्रतिद्वन्द्वीके हाथकी तलवारसे खण्डित होकर देव होनेवाले योद्धाओंके आलिंगनके लिए उत्सुक हृदयसे इकट्ठी होनेवाली देवांगनाओंसे वहाँका आकाश व्याप्त हो रहा था। योद्धाओंके कटे हुए कण्ठ कुहरकी नालीसे निकलनेवाले रुधिरकी लगातार वर्षासे वहाँका पृथिवीतल कीचड़से युक्त हो गया था। उस कीचड़में डूबे हुए पैरोंके उठानेमें घोड़ोंके समूह बहुत भारी खेदका अनुभव करते थे। कानों तक कुण्डलाकार किये हुए योद्धाओंके धनुषोंकी टंकाररूपी

१. म० अमरपुरंध्री। २. म० चारभट।

हरिदवकाशम्, आकाशकबलनसंनह्यदविरलधरापरागधूसरदिवसकरकिरणालोकम्, उत्पतदवपतदनेकशतशरपुञ्जपञ्जरितरोदोविवरम्, उद्धुरपदातिरवस्मर्यमाणमथनसमयसमुत्तालजलधिकल्लोलकोलाहलम्, अनुवेलनिपतदतिपीवरकबन्धगुरूभवदुर्वीभारजर्जरितकमठपरिबृढपृष्ठाष्ठीलम्, अष्टापदरथकोटिपातनिष्पिष्टदन्तावलदशनशिलास्तम्भम्, उत्तम्भितकुन्तयष्टिप्रोतविपक्षशिरःशीर्णकचसटाचामरमरुदपनीयमानवीरविक्रमपरिश्रमम्, विश्वजगदातङ्कजनकम्, अतिमहद्युद्धमवर्धत ।

§ ११७. ततश्च तस्मिन्नाविष्कृतालीढशोभिनि मण्डलीकृत्य कोदण्डमकाण्डघनाघन इव

यस्य तथाभूतं यत् साम्परायलक्ष्म्या रणश्रियाः पादतुलाकोटिक्वणितं चरणमञ्जीरकशिञ्जितं तेन मुखरितः शब्दायमानो हरिदवकाशो यस्मिन् तत्, आकाशेति—आकाशस्य कबलने संनह्यन् तत्परो भवन् योऽविरलधरापरागो निरन्तरमहीधूलिस्तेन धूसरो मलिनीकृतो दिवसकरस्य सूर्यस्य किरणालोको मरीचिप्रकाशो यस्मिन् तत्, उत्पतदिति—उत्पतन्त उद्गच्छन्तोऽवपतन्तोऽधोगच्छन्तो येऽनेकशतशरा बहुसंख्यकबाणास्तेषां पुञ्जेन समूहेन पञ्जरितं शलाकागृहीकृतं रोदोविवरं द्यावापृथिव्यन्तरालं यस्मिन् तत्, उद्धुरेति—उद्धुर उत्कटो यः पदातिरवः पत्तिशब्दस्तेन स्मर्यमाणो मथनसमये समुत्तालः प्रचुरीभूतो जलधिकल्लोलानां तरङ्गिणीपतितरङ्गाणां कोलाहलः कलकलशब्दो यस्मिन् तत्, अनुवेलेति—वेलां वेलामन्विति अनुवेलं प्रतिसमयं निपतन्तोऽतिपीवराः स्थूलतरा ये कबन्धाः शिरोरहितदेहास्तैर्गुरूभवन्ती या उर्वी मही तस्या भारेण जर्जरितं कमठपरिबृढस्य कच्छपेश्वरस्य पृष्ठाष्ठीलं पृष्ठास्थि यस्मिन् तत्, अष्टपदरथकोटीनां सौवर्णस्यन्दनकोटीनां पातेन निष्पिष्टाश्चूर्णीकृता दन्तावलदशना एव द्विरदनरदना एव शिलास्तम्भाः पाषाणस्तम्भा यस्मिन् तत्, उत्तम्भितेति—उत्तम्भितासून्नमितासु कुन्तयष्टिषु प्रासदण्डिकासु प्रोतानि निस्यूतानि यानि विपक्षशिरांसि शत्रुमूर्धानस्तेषां शीर्णा विकीर्णा या कचसटा केशपङ्क्तिः सैव चामरा बालव्यजनानि तेषां मरुता पवनेनापनीयमानो दूरीक्रियमाणो वीराणां सुभटानां विक्रमपरिश्रमो पराक्रमखेदो यस्मिन् तत्, विश्वेति—विश्वजगतो निखिलविष्टपस्यातङ्कजनकं भयोत्पादकम् ।

§ ११७. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च आविष्कृतेन प्रकटितेनालीढेन रणासनविशेषेण शोभत इत्येवंशीलस्तस्मिन्, घनतरः प्रचुरीभूतो यो मौर्वीनिनदः प्रत्यञ्चाशब्दः स एव गम्भीरगर्जो मन्द्रशब्दस्तेन तर्जिताः प्रतिभटाः शत्रवस्तेषु स्फुटः प्रकटः कपिलो लोहितपीतवर्णो यः कोपरागः स एव विद्युत्तडित् तयोद्योतितं वपुः शरीरं यस्य तथाभूते, तस्मिन् जीवंधरे कोदण्डं धनुः मण्डलीकृत्य वक्रीकृत्य अकाण्ड-

---

युद्धलक्ष्मीके नूपुरोंकी झनकारसे दिशाओंका अन्तराल शब्दायमान हो रहा था। आकाशको ग्रसनेके लिए उद्यत लगातार उठनेवाली पृथिवीकी धूलिसे सूर्यकी किरणोंका प्रकाश मटमैला हो रहा था। ऊपर जाते और नीचे आते हुए सैकड़ों बाणोंके समूहसे आकाश और पृथिवीके बीचका अन्तराल पिंजड़ेके समान हो गया था। योद्धाओंके उत्कट शब्दसे वहाँ मथनके समय होनेवाले समुद्रकी लहरोंके विशाल कोलाहलका स्मरण हो रहा था। क्षण-क्षणमें गिरते हुए अत्यन्त स्थूल कबन्धों (शिररहित धड़ों) से भारी होनेवाली पृथिवीके भारसे कमठेन्द्रके पीठकी हड्डी जर्जर हो रही थी। स्वर्णमयी रथकी कोटियोंके पड़नेसे हाथियोंके दाँतरूपी पत्थरके खम्भे पिसकर चूर-चूर हो गये थे। ऊपर उठाये हुए भालोंकी लाठियोंमें पिरोये शत्रुओंके शिरोंके जीर्ण-शीर्ण बालरूपी चामरोंकी हवासे वीर मनुष्योंके पराक्रमका परिचय दूर किया जा रहा था तथा वह युद्ध समस्त संसारको भय उत्पन्न करनेवाला था।

§ ११७. तदनन्तर जो धनुषको गोल कर प्रकट किये हुए आलीढ आसनसे सुशोभित थे, डोरीके उच्च शब्द रूप गर्जनासे जिन्होंने शत्रुयोद्धाओंको डाँट दिखलायी थी और गालोंपर

घनतरमौर्वीनिनदगम्भीरगर्जर्तजितप्रतिभटस्फुटकपिलकोपरागविद्युदुद्द्योतितवपुषि वर्षति पृषत्कधारां सत्यंधरतनूजन्मनि धरापतिधराधराणां प्रत्यग्रखण्डितेभ्यः[1]कण्ठकुहरेभ्यो मुखरितनिखिलहरिदवकाशा, काशकुसुममञ्जरीचारुभिश्चामरैरारचितफेनपटलविभ्रमा, शरदभ्रकुलमिश्रैरातपत्रैरासूत्रितपुण्डरीकषण्डडम्बरा, विडम्बितशिखण्डिबर्हभरैः कचनिचयैः कल्पितशैवालविलासा, बिलसदुडुनिकरनिर्मलैर्मौलिमौक्तिकप्रकरैः प्रकटितपुलिनशोभा, हरिदिभकरदण्डानुकारिभिर्भुजैर्भुजङ्गमैरिव तरङ्गैस्तरलीकृता, कृत्तपातितान्पादपानिव कबन्धान्कर्षन्ती, दिगन्तकूलंकषा क्षतजवाहिनी प्रावर्तिष्ट। न्यवर्तिष्ट च भयाविष्टमनाः काष्ठाङ्गारप्रमुखः प्रधनान्निधनैकफलात्प्रत्यर्थिपार्थिवलोकः।

घनाघन इवाकालिकमेघ इव पृषत्कधारां बाणसन्ततिं वर्षति सति, धरापतयो राजान एव धराधराः पर्वतास्तेषां प्रत्यग्रखण्डितेभ्यो नूतनविदारितेभ्यः कण्ठकुहरेभ्यो ग्रीवागुहाभ्यः क्षतजवाहिनी रुधिरस्रवन्ती प्रावर्तिष्ट प्रवृत्ताभूत्। अथ क्षतजवाहिन्या विशेषणान्याह—मुखरितेति—मुखरिताः शब्दिता निखिला हरिदवकाशाः काष्ठान्तराणि यया सा, काशेति—काशकुसुममञ्जरीवच्चारुभिः सुन्दरैः चामरैर्बालव्यजनैः आरचितः कृतः फेनपटलविभ्रमो डिण्डीरपिण्डसंदेहो यया सा, शरदभ्रेति—शरदभ्राणां शरद्वारिदानां कुलमिश्रैः शुक्लैरित्यर्थः आतपत्रैश्छत्रैः आसूत्रितः प्रारब्धः पुण्डरीकषण्डस्य श्वेतारविन्दसमूहस्य डम्बरोनुकारो यस्यां सा, विडम्बितेति—विडम्बितस्तिरस्कृतः शिखण्डिबर्हाणां मयूरपिच्छानां भरः समूहो यैस्तैः कचनिचयैः केशकलापैः कल्पितो विहितो शैवालविलासो जलनीलीविभ्रमो यस्यां सा, विलसदिति—विलसन्तो द्योतमाना य उडुनिकरा नक्षत्रसमूहास्तद्वन्निर्मलैः मौलिमौक्तिकप्रकरैः मुकुटमुक्ताफलसमूहैः प्रकटिता पुलिनशोभा तटशोभा यस्याः सा, हरिदिभेति—हरिदिभानां दिग्गजानां करदण्डाः शुण्डादण्डास्ताननुकुर्वन्तीत्येवंशीलैस्तैः भुजैर्बाहुभिः तरद्भिः प्लवमानैः भुजङ्गैरिव नागैरिव तरलीकृता चञ्चलीकृता, कृत्तेति—आदौ कृत्ताश्छिन्नाः पश्चात्पातिता इति कृत्तपातितास्तान् तथाभूतान् पादपानिव वृक्षानिव कबन्धान् शिरोरहितमृतमानवदेहान् कर्षन्ती नयन्ती दिगन्तानां कूलं तटं कषतीति खण्डयतीति दिगन्तकूलंकषा। न्यवर्तिष्ट चेति—भयेन भीत्याविष्टं मनो यस्य तथाभूतः काष्ठाङ्गारप्रमुखः प्रत्यर्थिपार्थिवलोकः शत्रुनृपतिसमूहः प्रधनात् समरात् न्यवर्तिष्ट च निवृत्तो बभूव च।

प्रकट हुई क्रोधजनित लालिमारूपी बिजलीसे जिनका शरीर प्रकाशमान हो रहा था ऐसे असमयमें प्रकट हुए मेघके समान जीवन्धरकुमारने ज्योंही बाणोंकी धाराको वर्षाना शुरू किया त्यों ही राजारूपी पर्वतोंके नवीन खण्डित कण्ठरूपी कन्दराओंसे खूनकी वह नदी बह निकली जिसने कि अपने शब्दसे समस्त दिशाओंके अन्तरालको शब्दायमान कर रखा था। काशकी पुष्पमंजरीके समान सुन्दर चामरोंसे जिसमें फेनपटलकी शोभा उत्पन्न हो रही थी। शरद् ऋतुके मेघमण्डलके समान छत्रोंसे सफेद कमलोंके समूहका आडम्बर प्रकट हो रहा था। मयूरकी पिच्छावलीकी बिडम्बना करनेवाले केशोंके समूहसे जिसमें शैवालकी शोभा प्रकट थी। चमकते हुए नक्षत्रसमूहके समान निर्मल मोतियोंके समूहसे जिसमें तटोंकी शोभा प्रकट थी। दिग्गजोंके शुण्डादण्डके समान भुजाओंसे जो तैरते हुए सर्पोंसे ही मानो चंचल थी। काटकर गिराये हुए कबन्धोंको जो वृक्षोंके समान खींच रही थी और जो दिशाओंके अन्तरूपी किनारोंको घिस रही थी। काष्ठाङ्गार आदि शत्रु राजाओंका समूह भयभीत हो मृत्युरूप एक फलसे युक्त युद्धसे वापस लौट गया।

---

१. म० स्फुटकपोलकोपराग।

§ ११८. तदनु यथायथं गतेषु पलायमानबलेषु पराजयलज्जानिमीलितमुखच्छायेषु पार्थिवेषु परिहृतामर्षैरुन्मिषितगुणानुरागैः पौरवृद्धैरभिनन्दितगुणगणगरिमा जीवकस्वामी जीवितवल्लभया जयलक्ष्म्येव मूर्तिमत्या श्रीदत्ततनयया सह समसमयप्रहतमृदङ्गमर्दलपटहभेरीजन्मना नवजलधरध्वानावधीरणधौरेयेण रवेण नगरीशिखण्डिमण्डलमकाण्डे ताण्डवयन्नात्ममुखकमलविलोकनविनिर्गतयुवतिनयनकुवलयितगवाक्षेण नवसुधालेपधवलितवलभीनिवेशेन स्पर्शनचलितशिखरपताकापटताडितपयोधरमण्डलेन विमलसलिलधारासंदेहिमुग्धचातकचञ्चुचुम्ब्यमाननिर्यूहनिहितमुक्तासरेण द्वारदेशनिवेशितपूर्णकुम्भेन समुत्तम्भितमणितोरणमरीचिसूत्रितेन्द्रचापचमत्कारेण विप्र-

§ ११८. तदन्विति—तदनु युद्धविजयानन्तरम् पलायमानं बलं सैन्यं येषां तेषु पराजयेन पराभवेन या लज्जा त्रपा तया निमीलिता मुखच्छाया वदनकान्तिर्येषां तेषु पार्थिवेषु नृपेषु गतेषु सत्सु परिहृतस्त्यक्तोऽमर्षः क्रोधो येषां तैः, उन्मिषितः प्रकटितोऽनुरागो येषां तैः पौरवृद्धैर्नागरिकवृद्धजनैः अभिनन्दितः प्रशंसितो गुणगरिमा यस्य तथाभूतो जीवकस्वामी जीवितादपि वल्लभा प्रिया तया मूर्तिमत्या जयलक्ष्म्येव विजयश्रियेव श्रीदत्ततनयया गन्धर्वदत्तया सह समसमयं युगपत् प्रहतास्ताडिता या मृदङ्गमर्दलपटहभेर्यो मुरजादयो वादित्रविशेषास्तेभ्यो जन्म यस्य तेन, नवजलधराणां नूतनवारिदानां ध्वानस्य शब्दस्यावधीरणे तिरस्करणे धौरेयः प्रमुखस्तेन, रवेण शब्देन नगरीशिखण्डिमण्डलं पुरीकलापिकलापम् अकाण्डेऽसमये ताण्डवयन् नटयन्, आत्मेति—आत्मनः स्वस्य मुखकमलस्य वदनारविन्दस्य विलोकनाय विनिर्गतैर्निःसृतैर्युवतिनयनैस्तरुणीलोचनैः कुवलयिता नीलोत्पलयुक्ता गवाक्षा यस्मिन् तेन, नवेति—नवसुधाया नूतनचूर्णस्य लेपेन, धवलिताः शुक्लीकृता वलभीनिवेशा गोपानसीसमूहा यस्मिन् तेन, स्पर्शनेति—स्पर्शनेन वायुना चलितानि शिखराणि यासां तथाभूता याः पताका ध्वजास्तासां पटेन ताडितं पयोधरमण्डलं मेघमण्डलं यस्मिन् तेन, विमलेति—विमलसलिलधारा उज्ज्वलजलधाराः संदिहन्तीत्येवंशीला ये मुग्धचातकास्तेषां चञ्चुभिस्त्रोटिभिश्चुलुम्ब्यमाना निर्यूहेषु मत्तवारणेषु निहिताः लम्बिता मुक्तासरा मौक्तिकदामानि यस्मिन् तेन, द्वारेति—द्वारदेशेषु प्रतीहारपक्षेषु निवेशिताः स्थापिताः पूर्णकुम्भाः पूर्णकलशा यस्मिन् तेन, समुत्तम्भितेति—समुत्तम्भिताः समुत्थापिता ये मणितोरणास्तेषां मरीचिभिः रश्मिभिः सूत्रितः प्रारब्ध इन्द्रचापचमत्कारः शक्रशरासनचमत्कारो यस्मिन् तेन,

§ ११८. तदनन्तर जिनकी सेना तितर-बितर हो गयी थी और पराजयजनित लज्जासे जिनके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी ऐसे राजा लोग जब यथायोग्य स्थानोंपर चले गये तब क्रोधसे रहित एवं गुणोंमें अनुरागको प्रकट करनेवाले नगरके वृद्ध पुरुषोंसे जिनके गुणसमूहकी गरिमाका अभिनन्दन हो रहा था, ऐसे जीवन्धरस्वामी, मूर्तिमती विजयलक्ष्मीके समान प्राणवल्लभा गन्धर्वदत्ताके साथ गन्धोत्कटके भवनको प्राप्त हुए। भवनकी ओर जाते समय वे एक साथ ताड़ित मृदङ्ग, मर्दल, पटह और भेरीसे उत्पन्न एवं नूतन मेघगर्जनाको तिरस्कृत करनेमें निपुण शब्दसे नगरीके मयूरमण्डलको असमयमें ही ताण्डव नृत्यसे युक्त कर रहे थे। वे जिस मार्गसे जा रहे थे उसके झरोखे अपना मुखकमल देखनेके लिए निकली हुई तरुण स्त्रियोंके नेत्रोंसे कुवलयित—नील कमलोंसे व्याप्त हो रहे थे। वलभियाँ नवीन कलईके लेपसे सफेद थीं। हवासे चंचल शिखरोंकी पताकाओंके वस्त्रसे वहाँ मेघमण्डल ताड़ित हो रहा था। उसके छज्जोंपर जो मोतियोंकी मालाएँ टँगी हुई थीं उन्हें निर्मल जलधाराका सन्देह करनेवाले चातक पक्षी अपनी चोंचोंसे चूम रहे थे। दरवाजोंपर पूर्ण कलश रखे हुए थे। खड़े किये हुए मणिमय तोरणोंकी किरणोंसे वहाँ इन्द्रधनुषका चमत्कार प्रकट हो रहा था

कीर्णविविधकुसुमपुलकितधरणीतलविराजिना राजमार्गेण किंचिदन्तरमतिक्रम्य दिशि दिशि दृश्यमानतुङ्गशिखरसहस्रसंकोचितवियदाभोगमहिमकररथमार्गनिरोधनोन्मुखं विन्ध्याचलमिव विलोक्यमानं क्वचिदभ्रितमिव सिन्धुरैः क्वचित्तरङ्गितमिव तुरङ्गमैः[1] क्वचित्पल्लवितमिव पद्मरागप्रभाप्रसरैः क्वचिच्छाद्वलितमिव महेन्द्रनीलमयूखलतावितानैः क्वचित्सिकतिलमिव मुक्ताफलराशिभिरुपरि शोभमानमधरितकुबेरभवनवैभवं[2] बहुविधैश्वर्योत्कटं गन्धोत्कटसदनं समाससाद[3]।

§ ११९. अथ गणरात्रापगमे गणकगणगणिते गुणवति वधूमनोरथकल्पशाखिनि वरहृदयानन्दपयोधिविजृम्भणचन्द्रोदये चारणचकोरजीवितवर्धनजीमूते कुसुमकेतुकलहंसकेलीकमलकानने

विप्रकीर्णेति—विप्रकीर्णानि प्रसारितानि यानि विविधकुसुमानि तैः पुलकितं धरणीतलं तेन विराजते शोभत इत्येवंशीलस्तेन राजमार्गेण प्रधानमार्गेण किंचित् किमपि अन्तरमन्तरालम् अतिक्रम्योल्लङ्घ्य गन्धोत्कटसदनं समाससाद प्रापेति कर्तृक्रियासंबन्धः। अथ गन्धोत्कटभवनस्य विशेषणान्याह—दिशि दिशीति—दिशि दिशि प्रतिदिशम् दृश्यमानानि विलोक्यमानानि यानि तुङ्गशिखराणि समुन्नतशृङ्गाणि तेषां सहस्रेण संकोचितो वियदाभोगो गगनविस्तारो येन तत्, अहिमेति—अहिमकरस्य सूर्यस्य यो रथः स्यन्दनं तस्य मार्गस्य निरोधन उन्मुखं तत्परं तत्, अतएव विन्ध्याचलमिव विन्ध्याद्रिमिव विलोक्यमानं दृश्यमानम्, क्वचित्कुत्रापि सिन्धुरैर्गजैः अभ्राणि संजातानि यस्मिन् तत् अभ्रितं मेघयुक्तमिव, क्वचित् कुत्रापि तुरङ्गमैरश्वैः तरङ्गाः संजाता यस्मिन् तत् कल्लोलयुक्तमिव, क्वचित् कुत्रापि पद्मरागाणां लोहितप्रभमणीनां प्रभाप्रसरैः कान्तिसमूहैः पल्लवाः संजाता यस्मिन् तत् किसलययुक्तमिव, क्वचित्कुत्रापि महेन्द्रनीलस्य मणिविशेषस्य मयूखाः किरणा एव लताविताना वल्लीसमूहास्तैः शाद्वलाः संजाता यस्मिन् तत् हरितघासयुक्तमिव, क्वचित्कुत्रापि मुक्ताफलराशिभिर्मौक्तिकपुञ्जैः सिकता विद्यन्ते यस्मिन् तत् सिकतिलमिव सिकतायुक्तमिव, उपरि ऊर्ध्वं शोभमानम्, अधरितः कुबेरभवनस्य वैभवो येन तत्, बहुविधं नानाप्रकारं यदैश्वर्यं तेनोत्कटं संपन्नम्।

§ ११९. अथेति—अथानन्तरं गणरात्रापगमे बहुरजनीव्यपगमे सति गणकगणेन दैवज्ञवृन्देन गणिते गुणवति प्रशस्तगुणसहिते वध्वा मनोरथस्य कल्पशाखी तस्मिन् वधूमनोरथपूरक इत्यर्थः, वरस्य हृदयस्यानन्द एव पयोधिः सागरस्तस्य विजृम्भणे वर्धने चन्द्रोदये, चारणा मागधा एव चकोराः पक्षिविशेषास्तेषां जीवितस्य वर्धनाय जीमूतो मेघस्तस्मिन्, कुसुमकेतुः काम एव कलहंसः कादम्बस्तस्य केली

और वह बिखरे हुए नाना प्रकारके फूलोंसे पुलकित पृथिवीतलसे सुशोभित था। उस राजमार्गसे कुछ अन्तरको लाँघकर वे गन्धोत्कटके उस भवनमें पहुँचे जहाँ प्रत्येक दिशामें दिखाई देनेवाली हजारों ऊँची शिखरोंसे आकाशका विस्तार संकोचित हो रहा था। जो सूर्यके रथके मार्गको रोकनेके लिए उन्मुख विन्ध्याचलके समान दिखाई देता था जो कहीं हाथियोंसे मेघोंसे व्याप्तके समान जान पड़ता था। कहीं घोड़ोंसे लहराता हुआ-सा दिखाई देता था। कहीं पद्मराग मणियोंकी प्रभाके समूहसे पल्लवोंसे व्याप्तके समान मालूम होता था। कहीं इन्द्रनील मणियोंकी किरणलताके विस्तारसे हरी-हरी घाससे युक्त-जैसा जान पड़ता था। कहीं मोतियोंकी राशिसे बालूसे युक्तके सदृश शोभायमान था। कुबेरके भवनके वैभवको तिरस्कृत करनेवाला था और नानाप्रकारके ऐश्वर्यसे श्रेष्ठ था।

§ ११९. तदनन्तर कुछ रात्रियोंके व्यतीत होनेपर ज्योतिषियोंके समूहसे निर्धारित, गुणवान्, वधूके मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिए कल्पवृक्ष, वरके हृदयसम्बन्धी आनन्दसागरको बढ़ानेके लिए चन्द्रोदय, चारणरूपी चकोरोंके जीवनको बढ़ानेके लिए मेघ,

---

१. क० तुरङ्गैः। २. क० ख० ग० मुक्ताफलराशिभिरुपशोभमानम्। ३. क० ख० ग० आससाद।

कलगीतिकलकण्ठनिनदावतारवसन्ते संतोषसरसिजविकासदिवसारम्भे संनिहितवति परिणयनदिवसे प्रशस्ते च मुहूर्ते मौहूर्तिकानुमते जीवकस्वामी तदात्वपरिकल्पितं प्रयतमहीसुरहूयमानहुतवहं संनिहितसमिदाज्यलाजं स्थानस्थानस्थितबन्धुलोकमुल्लोकदीयमानताम्बूलकुसुमाङ्गरागमुद्भटताड्यमानमङ्गलपटहं वाद्यमानवादित्रवल्लकीवल्गुरववाचालितं पूर्यमाणासंख्यशङ्खवेणुशब्दायमानदशदिशापरिसरं परिणयनमणिमण्डपमधिरुह्य पुरंदरदिशाभिमुखस्तिष्ठन्स्नातानुलिप्तः प्रत्यग्रविहिताभिषेकाम्, आपादमस्तकमारचितेन चन्द्रमरीचिगौरेण चन्दनाङ्गरागेण निजदुहितृशङ्कया दुग्धजलनिधिनेव परिष्वक्ताम्, आभरणमणिमयूखमालाच्छलेन रमणपरिरम्भणाय न पर्याप्तं भुजद्वयमिति

क्रीडा तस्यै कमलकाननं वारिजविपिनं तस्मिन्, कलगीतयः सुन्दरगीतय एव कलकण्ठनिनदाः कोकिलकलरवास्तेषामवताराय वसन्तस्तस्मिन्, संतोष एव सरसिजानि कमलानि तेषां विकासाय दिवसारम्भोऽहर्मुखं तस्मिन्, परिणयनदिवसे विवाहवासरे मौहूर्तिकानुमते दैवज्ञसंमते प्रशस्ते शुभे मुहूर्ते च संनिहितवति सति, जीवकस्वामी जीवंधरः तदात्वे तत्काले परिकल्पितं निर्मितं प्रयतैः सावधानैर्महीसुरैर्विप्रैर्हूयमानो हुतवहो यस्मिन् तम्, समिधश्चाज्यञ्च लाजाश्चेति समिधाज्यलाजा होमेन्धनघृतभर्जितधान्यपुष्पाः संनिहिताः समीपस्थिताः समिधाज्यलाजा यस्मिन् तम्, स्थाने स्थाने स्थिता बन्धुलोका इष्टजना यस्मिन् तम्, उल्लोकैरुत्कृष्टजनैः उल्लोकं भूयिष्ठं वा यथा स्यात्तथा दीयमानास्ताम्बूलकुसुमाङ्गरागा नागवल्लीदलादयो यस्मिन् तम् उद्भटमत्यन्तं यथा स्यात्तथा ताड्यमाना मङ्गलपटहा मङ्गलानका यस्मिन् तम्, 'आनकः पटहो ढक्का' इत्यमरः, वाद्यमानानि वादित्राणि वाद्यानि वल्लकीनां वीणानां वल्गुरवाश्च सुन्दरशब्दाश्च तैर्वाचालितं मुखरितम्, पूर्यमाणैर्मुखवायुना भ्रियमाणैरसंख्यशङ्खवेणुभिरपरिमितकम्बुवंशैः शब्दायमानो दशदिशापरिसरो यस्मिन् तम्, तथाभूतं परिणयनमणिमण्डपं विवाहस्नानस्थानम् अधिरुह्य, पुरन्दरदिशाभिमुखः प्राच्यभिमुखः तिष्ठन् आदौ स्नातः पश्चादनुलिप्त इति स्नातानुलिप्तः सन् गन्धर्वदत्तां विधिवत् यथाविधि उपायंस्त परिणिनाय । अथ गन्धर्वदत्ताया विशेषणान्याह—प्रत्यग्रं नवीनं यथा स्यात्तथा विहितोऽभिषेको यस्यास्ताम्, आपादमस्तकं पादादारभ्य आमस्तकमित्यापादमस्तकम् आरचितेन कृतेन चन्द्रमरीचिगौरेण हिमकरकरधवलेन चन्दनाङ्गरागेण मलयजाङ्गविलेपनेन निजदुहितृशङ्कया स्वसुतासन्देहेन दुग्धजलनिधिनेव क्षीरसागरेण परिष्वक्तामिवालिङ्गितामिव, आभरणानां मणिमयूखाः रत्नरश्मयस्तेषां मालायाश्छलेन रमणपरिरम्भणाय पत्यालिङ्गनाय भुजद्वयं बाहुयुगलं पर्याप्तम् इति हेतोः

कामरूपी कलहंसकी क्रीड़ाके लिए कमलवन, सुन्दर संगीतरूपी कोयलकी कण्ठध्वनिको प्रकट करनेके लिए वसन्त और सन्तोषरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए प्रातःकाल स्वरूप विवाह दिवसके निकट आनेपर ज्योतिषियोंके द्वारा अनुमत प्रशस्त मुहूर्तमें जीवन्धरस्वामी विवाहके उस मणिमय मण्डपमें अधिरूढ़ हुए जिसकी रचना तत्काल की गयी थी, प्रयत्नशील ब्राह्मणोंके द्वारा जहाँ अग्निमें हवन किया जा रहा था, जहाँ समिधा घी और लाई पासमें रखी हुई थी, जहाँ जगह-जगह बन्धुजन बैठे हुए थे, जहाँ उत्तम मनुष्योंके द्वारा पान, फूल तथा अंगराग दिये जा रहे थे, जहाँ मंगलमय बाजे जोर-जोरसे ताडित हो रहे थे, जो बजाये जानेवाले बाजों और वीणाकी सुन्दर ध्वनिसे शब्दायमान था, और पूरे जानेवाले असंख्यात शंखों तथा बाँसुरियोंसे जहाँ दशों दिशाओंके तट शब्दायमान हो रहे थे। स्नानके बाद चन्दनका लेप लगाये हुए जीवन्धरस्वामी उस विवाहमण्डपमें पूर्वाभिमुख होकर बैठे। तदनन्तर जिसे अभी हाल स्नान कराया गया था। पैरसे लेकर मस्तक तक लगाये हुए, चन्द्रमाकी किरणोंके समान गौरवर्ण चन्दनके अंगरागसे जो ऐसी जान पड़ती थी मानो अपनी पुत्रीकी शंकासे क्षीर समुद्रके द्वारा ही आलिंगित हो। आभूषणोंमें लगे मणियोंकी किरणावलीके छलसे जो ऐसी जान पड़ती थी मानो पतिका

बहूनिव बाहूनारचयन्तीम्[1], अवतंसकुसुमपरिमलचपलैरतिमधुरं क्वणद्भिरलिकुलैः 'इह जगति जीवकाद्वरीयान्वरो न कश्चित्' इति कथ्यमानामिव कर्णजापैः, कंदर्पशरासनपतितां विशिखकुसुममालामिवैकावलीं स्तनकलशयोरन्तरे कलयन्तीम्, दुर्वहत्रपाभरेणेव किंचिदवनतमुखीम्, रणता रत्ननूपुरयुगलेन 'निखिलयुवतिदुर्लभं वल्लभमियमिव समासादयितुं चरत दुश्चरं तपः' इत्युपदिशतेवोपशोभिताम्, उपात्तमङ्गलवेषाभिरुन्मिषितभूषणप्रभाकुलितलोकलोचनाभिरवनिमवतीर्णाभिरभङ्गुराभिरपराभिरिव विद्युद्भिर्विद्याधरवनिताभिरुपनीताम्, गृहीतार्थवेषेण श्रीदत्तेन प्रतिपादितां गन्धर्वदत्तां विधिवदुपायंस्त ।

§ १२०. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ गन्धर्वदत्तालम्भो नाम तृतीयो लम्भः ।

बहून् बाहून् भुजान् आरचयन्तीमिव, अवतंसकुसुमानां कर्णाभरणपुष्पाणां परिमलेन सौगन्ध्येन चपलास्तरलास्तैः अतिमधुरं मिष्टतरं यथा स्यात्तथा क्वणद्भिः शब्दं कुर्वाणैः अलिकुलैर्भ्रमरशब्दैः इह जगति लोकेऽस्मिन् जीवकाद् वरीयान् श्रेष्ठो वरः कश्चित् कोऽपि न विद्यते इति कर्णजापैः कथ्यमानामिव, कन्दर्पस्य कामस्य शरासनाद् धनुषः पतितां भ्रष्टां विशिखकुसुममालामिव बाणपुष्पस्रजमिव एकावलीम् एकयष्टिम् स्तनकलशयोः कुचकलशयोः अन्तरे मध्ये कलयन्तीं दधतीम्, दुर्वहो दुःखेन वोढुं शक्यो यस्त्रपाभरो लज्जासमूहस्तेनेव किंचित् मनाक् अवनतं नम्रं मुखं यस्यास्ताम्, रणता शब्दं कुर्वता रत्ननूपुरयुगलेन मणिमयमञ्जीरकयुगेन 'निखिलयुवतिदुर्लभं सकलयोषादुष्प्राप्यं वल्लभं प्रियम् इयमिव गन्धर्वदत्तेव समासादयितुं लब्धुं दुश्चरं कठिनं तपः चरत' इतीत्थम् उपदिशतेव कथयतेव उपशोभितामलंकृताम् उपात्तो गृहीतो मङ्गलवेषो याभिस्ताभिः, उन्मिषितया प्रकटितया भूषणप्रभयाकुलितानि चिल्लीकृतानि लोकलोचनानि नरनयनानि याभिस्ताभिः अवनिं महीम् अवतीर्णाभिः आगताभिः अपराभिरन्याभिर्विद्युद्भिरिव तडिद्भिरिव विद्याधरवनिताभिः खगाङ्गनाभिः उपनीतां प्राप्तां सहितामिति यावत्, गृहीतो धृत आर्यवेषो येन तेन श्रीदत्तेन वैश्यपतिना प्रतिपादितां दत्ताम् ।

§ १२०. श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ गन्धर्वदत्तालम्भो नाम तृतीयो लम्भः ।

आलिंगन करनेके लिए दो भुजाएँ पर्याप्त नहीं हैं इसलिए बहुत-सी भुजाएँ ही रच रही हो। कर्णभूषणके फूलोंकी सुगन्धिसे चपल एवं अत्यन्त मधुर शब्द करनेवाले भ्रमरसमूह उसके कानोंमें मानो यही कह रहे थे कि इस संसारमें जीवन्धरसे बढ़कर कोई दूसरा वर नहीं है। जो कामदेवके धनुषसे पड़ी बाणरूप पुष्पमालाके समान एक लड़ की मालाको स्तनकलशोंके बीचमें धारण कर रही थी। बहुत भारी लज्जाके भारसे ही मानो जिसका मुख कुछ-कुछ नीचेकी ओर झुक रहा था। जो रुण-झुण करनेवाले रत्नमयी नूपुरोंके उस युगलसे सुशोभित थी जो मानो यही उपदेश दे रहे थे कि समस्त युवतियोंके लिए दुर्लभ पतिको पानेके लिए इसके समान कठिन तपश्चरण करो। मंगलवेषको धारण करनेवाली, भूषणोंकी जगमगाती प्रभासे मनुष्योंके नेत्रोंमें चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली और पृथिवीपर उतरी हुई दूसरी स्थायी बिजलियोंके समान विद्याधरोंकी स्त्रियाँ जिसे अपने साथ लायी थीं और जो आर्यवेशको धारण करनेवाले श्रीदत्तके द्वारा दी गयी थी ऐसी गन्धर्वदत्ताको जीवन्धरस्वामीने विधिपूर्वक विवाहा।

§ १२०. इस प्रकार श्रीमान् वादीभसिंह सूरिके द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें गन्धर्वदत्तालम्भ नामका गन्धर्वदत्ताकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला तीसरा लम्भ समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

---

1. क० ख० ग० धारयन्तीम् ।

चतुर्थो लम्भः

§ १२१. अथ तामुपयम्य स विकचकुसुममञ्जरीजालचूडालस्य चूततरोरधश्छायायामालिखितेन रतिवलयपदचिह्नशोभिभुजशिखरनिवेशितकार्मुकेण करकलितकतिपयकाण्डेन। कुसुमकोदण्डेनाधिष्ठितबहिर्द्वारम्, दह्यमानकालागुरुधूमपटलकर्बुरेण कलिन्ददुहितृपरिष्वङ्गमेचकितसुरसरित्प्रवाहसहोदरेण दुकूलवितानेन विलसितोपरिभागम्, अनङ्गयशोराशिसंनिकाशेन¹ कैलासगिरितटविशालेन विमलोत्तरच्छदपरिष्कृतेन पर्यङ्केण पाण्डुरिततलम्, अनुतलिममवस्थापितमणिपादुकायुगलम्, अन्तर्गतताम्बूलदलवोटिकाश्यामायमानचामीकरकरण्डम्, कर्पूररेणुपरिसंबन्धच्छुरणपरि-

§ १२१. अथेति—अथानन्तरं तां गन्धर्वदत्ताम् उपयम्य विवाह्य स जीवंधरः कमलदृशा पद्माक्ष्या गन्धर्वदत्तयेति यावत् सह कौतुकागारं क्रीडानिकेतनम् अगाहत प्रविवेश। अथ कौतुकागारस्य विशेषणान्याह—विकचेति—विकचेन प्रफुल्लेन कुसुममञ्जरीजालेन पुष्पमञ्जरीसमूहेन चूडालश्चूडायुक्तस्तस्य चूततरोराम्रवृक्षस्य अधश्छायायामनातपे आलिखितेन अङ्कितेन, रतेः स्वभार्याया वलयपदस्य मणिबन्धस्य चिह्नेन शोभि विराजमानं यद् भुजशिखरं तत्र निवेशितं स्थापितं कार्मुकं धनुर्यस्य तेन, करयोर्हस्तयोः कलिता धृता. कतिपयकाण्डा कतिपयबाणा यस्य तेन, कुसुमकोदण्डेन मदनेन अधिष्ठितं युक्तं बहिर्द्वारं यस्य तत्, दह्यमानेति—दह्यमानो भस्मीक्रियमाणो यः कालागुरुः कृष्णागुरुस्तस्य धूमपटलेन धूम्रसमूहेन कर्बुरेण चित्रितेन, अत एव, कलिन्ददुहितुर्यमुनायाः परिष्वङ्गेण समालिङ्गनेन मेचकितः श्यामलो यः सुरसरित्प्रवाहो गङ्गानदीप्रवाहस्तस्य सहोदरेण सदृशेन दुकूलवितानेन क्षौमचन्द्रोपकेन विलसितः सुशोभित उपरिभागो यस्य तत्, अनङ्गेति—अनङ्गस्य स्मरस्य यशोराशिः कीर्तिपुञ्जस्तस्य संनिकाशः सदृशस्तेन, कैलासगिरितट इव हरगिरितट इव विशालस्तेन विमलोत्तरच्छदेन समुज्ज्वलोत्तरपटेन परिष्कृतः सहितस्तेन, पर्यङ्केण पाण्डुरितं धवलितं तलं यस्य तत्, अन्विति—अनुतलिमं शय्यायाः समीपेऽवस्थापितं मणिपादुकायुगलं यस्मिन् तत्, अन्तर्गतेति—अन्तर्गताभिर्मध्ये स्थिताभिस्ताम्बूलदलवीटिकाभिर्नागवल्लीदलपुटिकाभिः श्यामायमानं चामीकरकरण्डं स्वर्णकरण्डकं यस्मिन् तत्, कर्पूरेति—कर्पूरस्य

§ १२१. अथानन्तर जीवन्धरकुमार गन्धर्वदत्ताको विवाह कर उसके साथ उस कौतुकगृह—क्रीडागृहमें प्रविष्ट हुए जिसका कि बाह्यद्वार खिली हुई पुष्पमंजरीके समूहसे चूडायुक्त आम्रवृक्षके नीचे लिखित, रतिकी कलाईके चिह्नसे सुशोभित भुजाके शिखरपर धनुषको रखनेवाले एवं हाथमें कुछ बाण धारण करनेवाले कामदेवसे सहित था। जलती हुई कालागुरुकी धूमके समूहसे चित्रित अतएव यमुनाके समागमसे श्याम गंगा नदीके प्रवाहके समान रेशमी चँदोवासे जिसका ऊपरी भाग सुशोभित था। कामदेवके यशकी राशिके समान, कैलास पर्वतके तटके समान विशाल एवं निर्मल चद्दरसे सुशोभित पलंगसे जिसका फर्स सफेद-सफेद हो रहा था, जहाँ बिस्तरके समीप ही मणिमयी पादुकाओंकी जोड़ी रखी हुई थी, भीतर रखे हुए पानके बीड़ोंसे जहाँ सोनेकी डिब्बी हरी-हरी दिख रही थी, कपूरकी धूलिके

१. अनङ्गयशोराशिसन्निवेशावकाशेन। २. ख० सन्निवेशेन ग० सन्निवेशाकाशेन।

मल्लितदशैरनिशप्रज्वलितैरङ्गजप्रतापैरिव मूर्तिमद्भिर्मङ्गलप्रदीपैर्महितोपकण्ठम्, हाटकपतद्ग्रहसनाथ-शयनीयपार्श्वम्, प्रदृश्यमानविविधचित्रवितीर्णनयनकौतुकम्, कौतुकागारं कमलदृशा सहागाहत ।

§ १२२. अथ कतिचिदहानि हरिणाक्षी वैलक्ष्याकृष्यमाणा[1] रमणमनोरथान्न पूरयामास। ततश्च शनैः शनैः कुसुमचापचापलसंधुक्षणविचक्षणोऽयमाक्षिप्य तदीयममन्दं मन्दाक्षमनया सममत्युल्बणरागान्धया गन्धर्वदत्तया क्रमादतिनिबिडपरिरम्भपरिपीडितस्तनतटम्, आवेगचुम्बित-विधुताधरपल्लवम्, आदरविधीयमानकेशग्रहम्, आग्रहपुनरभिहिताघ्राणजर्जरितकपोलाङ्गरागम्, अङ्गविवर्तनविलुलितोत्तरच्छदकथितकामशास्त्रानुष्ठानवैशद्यम्, अविरलघर्मबिन्दुजालकिततिल-

घनसारस्य रेणवः परागास्तेषां परिसंबन्धच्छुरणेन संपर्केण परिमल्लिताः सुगन्धिता दशा वर्तिका येषां तैः अनिशप्रज्वलितैः सततं प्रज्वलितैः मूर्तिमद्भिः सविग्रहैः अङ्गजप्रतापैरिव कामतेजोभिरिव, मङ्गलप्रदीपैर्मङ्गलोद्देश्यकश्रेष्ठदीपैः महितोपकण्ठं शोभितसमीपप्रदेशम्, हाटकेति—हाटकस्य स्वर्णस्य पतद्ग्रहेण 'पीकदान' इति हिन्द्यां प्रसिद्धेन सनाथः सहितः शयनीयपार्श्वः पर्यङ्कनिकटप्रदेशो यस्मिन् तत्, प्रदृश्यमानेति—प्रदृश्यमानैरवलोक्यमानैर्विविधचित्रैर्नानाचित्रैर्वितीर्णं प्रदत्तं नयनकौतुकं यस्मिन् तत् ।

§ १२२. अथेति—अथानन्तरं हरिणस्येवाक्षिणी यस्याः सा तथाभूता गन्धर्वदत्ता वैलक्ष्याकृष्य-माणा त्रपावशीभूता सती कतिचिदहानि कतिपयदिवसान् यावत् रमणमनोरथान् पत्यभिलषितानि न पूरयामास । ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च शनैः शनैर्मन्दं मन्दं कुसुमचापस्य कामस्य चापलं चञ्चलत्वं तस्य संधुक्षणे प्रदीपने विचक्षणो निपुणस्तथाभूतः, अयं जीवंधरः तदीयं तत्संबन्धि अमन्दं विपुलं मन्दाक्षं त्रपाम् आक्षिप्य दूरीकृत्य अत्युल्बणेन तीव्रेण रागेणान्धा तया अनया गन्धर्वदत्तया नवोढया समं साकं क्रमात् अतिवेलं दीर्घकालपर्यन्तं सुरतं संभोगम् अन्वभवत् । अथ तस्यैव विशेषणान्याह—अति-निबिडेन सान्द्रतरेण परिरम्भेण समालिङ्गनेन परिपीडितं स्तनतटं यस्मिन् तत्, आवेगेन समौत्कण्ठ्येनादौ चुम्बितः पश्चाद्विधुतः कम्पितोऽधरपल्लवो यस्मिन् तत्, आदरेण प्रेमातिशयेन विधीयमानः क्रियमाणः केशग्रहो यस्मिन् तत्, आग्रहेण हठेन पुनरभिहितं पुनरुक्तं यदाघ्राणं नासाविपर्याकरणं तेन जर्जरितो विरलीकृतः कपोलयोरङ्गरागो यस्मिन् तत्, अङ्गविवर्तनेन शरीरपरिवर्तनेन विलुलितोऽस्तव्यस्तीकृतो य उत्तरच्छदः शय्योत्तरपटस्तेन कथितं सूचितं कामशास्त्रानुष्ठानस्य वैशद्यं नैपुण्यं यस्मिन् तत्, अविरले-

सम्बन्धसे व्याप्त होनेके कारण जिनकी बत्तियाँ अत्यन्त सुगन्धित थीं, जो रात-दिन जलते रहते थे और मूर्तिधारी कामदेवके प्रतापके समान जान पड़ते थे ऐसे मंगलमय दीपोंसे जिसका समीपवर्ती प्रदेश सुशोभित था, जहाँ शय्याका पार्श्वभाग सोनेके पीकदानसे सहित था, और दिखाई देनेवाले नाना चित्रोंके द्वारा जिसमें नेत्रोंके लिए कौतुक प्रदान किया जा रहा था।

§ १२२. तदनन्तर कितने ही दिन तक मृगनयनी गन्धर्वदत्ताने लज्जासे वशीभूत होनेके कारण पतिके मनोरथ पूर्ण नहीं किये। तत्पश्चात् धीरे-धीरे कामदेवकी चपलताको वृद्धिंगत करनेमें निपुण जीवन्धरकुमार उसकी बहुत भारी लज्जाको दूर कर अत्यधिक रागसे अन्धी इस गन्धर्वदत्ताके साथ क्रम-क्रमसे दीर्घकाल तक सम्भोगका अनुभव करने लगे। उनके उस सम्भोगमें अत्यन्त गाढ़ आलिंगनसे स्तनोंके तट पीड़ित हो रहे थे। अधरपल्लव वेगसे चुम्बित होनेके कारण काँप रहा था। आदरपूर्वक केश ग्रहण हो रहा था—शिरके बाल सहलाये जा रहे थे। आग्रहपूर्वक बार-बार सूँघनेसे गालोंपरका अंगराग जर्जर हो रहा था। शरीरके परिवर्तनसे अस्तव्यस्त हुए चादरसे कामशास्त्रमें कहे अनुष्ठान कार्यकी विशदता

१. क० ख० ग० वैलक्षण्याकृष्यमाणा।

कम्, अपत्रपानिर्वापितनिकटदीप्र[1]प्रदीपम्, अतिरभसकचग्रहविशीर्णमाल्यकुसुमपुलकितशयनम्, अतितारसीत्कारविडम्बितमदनमौर्वीरसितम्, आकस्मिकप्रणयकलहविहितपादप्रहाररणितमणिनूपुरम्, अश्रान्तवर्धमानकुतूहलम्, अतिवेलं सुरतमन्वभवत् ।

§ १२३. इत्थमनुभवति संसारसौख्यसारान्सारङ्गदृशा तया सह तस्मिन्रतिविलासान्विषमशरस्य साचिव्यमिवारचयितुमाजगाम जगतीरुहशिखरशेखरैः खरेतरकिसलयराशिभिरुपशोभितवनान्तो वसन्तः । प्रविशति भुवनगृहमनङ्गनृपसामन्ते वसन्ते, पुण्याहमिवोच्चारयांबभूवुरुद्भूतकलरवमुखरितकण्ठाः कलकण्ठाः । क्रमेण च विकचकुसुमनिचयपरिमलितदशदिशि, मनो-

निरन्तरैर्घर्मबिन्दुभिः स्वेदसलिलशीकरैर्जालकितं व्याप्तं तिलकं यस्मिन् तत्, अपत्रपया लज्जातिशयेन निर्वापिता विध्यापिता निकटदीप्राः समीपे प्रकाशमानाः प्रदीपा यस्मिन् तत्, अतिरभसेन वेगातिशयेन यः कचग्रहः केशग्रहस्तेन विशीर्णानि त्रुटितानि यानि माल्यानि तेषां कुसुमैः पुष्पैः पुलकितं रोमाञ्चितं व्याप्तमिति यावत् शयनं यस्मिन् तत्, अतितारेण विपुलपरिमाणेन सीत्कारेण दशनच्छददशनजनितेन विडम्बितं तिरस्कृतं मदनस्य स्मरस्य मौर्वीरसितं प्रत्यञ्चाशब्दो यस्मिन् तत्, आकस्मिकेन प्रणयकलहेन विहितः कृतो यः पादप्रहारस्तेन रणितानि शिञ्जितानि मणिनूपुराणि यस्मिन् तत्, अश्रान्तं यथा स्यात्तथा वर्धमानं कुतूहलं यस्मिन् तत् ।

§ १२३. इत्थमिति—इत्थमनेन प्रकारेण तस्मिन् जीवके सारङ्गदृशा मृगनेत्र्या तया गन्धर्वदत्तया सह संसारसौख्येषु भवसुखेषु साराः श्रेष्ठास्तान् रतिविलासान् संभोगविभ्रमान् अनुभवति सति, विषमशरस्य मारस्य साचिव्यं साहाय्यम् आरचयितुमिव कर्तुमिव जगतीरुहाणां वृक्षाणां शिखराणि तेषां शेखराणि शीर्षालङ्कारभूतानि तैः खरेतरकिसलयानां मृदुलपल्लवानां राशिभिः समूहैः उपशोभितो वनान्तो येन तथाभूतो वसन्त ऋतुराजः आजगाम । प्रविशतीति—अनङ्गनृपस्य कामभूपालस्य सामन्तो मण्डलेश्वरस्तथाभूते वसन्ते मधौ भुवनगृहं संसारसदनं प्रविशति सति उद्भूतेन समुत्पन्नेन कलरवेण मुखरिता वाचालाः कलकण्ठाः मधुरकण्ठा येषां तथाभूताः कलकण्ठाः पिकाः पुण्याहमिव मङ्गलपाठमिव उच्चारयांबभूवुः । क्रमेणेति—क्रमेण च मधुसमये वसन्तर्तौ प्रकृष्यमाणे सति, अथ मधुसमयस्य विशेषणान्याह—विकचेति—विकचानां प्रफुल्लानां कुसुमानां सुमनसां निचयेन समूहेन परिमलिताः सुगन्धिता दश दिशो

प्रकट हो रही थी। लगातार प्रकट हुए पसीनाकी बूँदोंसे तिलक जालीसे युक्त-जैसा हो रहा था। लज्जाके कारण समीप जलता हुआ देदीप्यमान दीपक बुझा दिया गया था। अत्यन्त वेगपूर्वक बाल खींचनेसे टूटी हुई मालाओंके फूलोंसे शय्या पुलकित हो रही थी। जोरदार सी-सी शब्दसे कामदेवके धनुषकी डोरीका शब्द विडम्बित हो रहा था। अचानक प्रणयकलहके कारण किये हुए पादप्रहारसे मणिमय नूपुर झनकार कर रहे थे और बिना किसी थकावटके कौतूहल बढ़ रहा था।

§ १२३. इसप्रकार जब जीवन्धरकुमार उस मृगनयनीके साथ संसारसुखके सारभूत कामदेवसम्बन्धी रति-विलासों—संभोग-क्रीड़ाओंका अनुभव कर रहे थे तब उनकी सहायता करनेके लिए ही मानो वृक्षोंके शिखरोंपर सेहरोंके समान सुशोभित कोमल पल्लवोंके समूहसे वनके अन्तभागको सुशोभित करनेवाली वसन्त ऋतु आ पहुँची। कामदेवरूपी राजाके सामन्तस्वरूप वसन्तने ज्यों ही संसाररूपी घरमें प्रवेश किया त्यों ही प्रकट हुई अव्यक्त मधुर ध्वनिसे जिनके कण्ठ शब्दायमान हो रहे थे ऐसे कोयल मानो 'पुण्याहं पुण्याहं' शब्दका उच्चारण करने लगे। क्रम-क्रमसे खिले हुए फूलोंके समूहसे जहाँ दशों दिशाएँ

१. क० 'दीप्र' पदं नास्ति ।

रथाधिकमकरन्दलाभमत्तमधुकरमञ्जुशिञ्जितमुखरितवनभुवि, नवसहकारकन्दलदलनकेलीदुर्ललितकलकोकिलगलगुहागर्भसंचितपञ्चमप्रपञ्चितपञ्चशरवेदनावेगविवशविरहिणि, विहरमाणदक्षिणसमीरणतरलिततरुणपल्लवचूडालचूतविटपिनि, स्फुटितपाटलीकुसुमपाटलिमपल्लविताकाण्डसंध्यासंपदि, समुन्मिषितकोरकपुलकितकुरवकमनोहारिणि, मन्मथमहोत्सवसमारोपितमणिप्रदीपसहचरितचम्पकशाखिनि, चञ्चरीकचक्रचरणाक्रमणपतदविरलसुमनोभरसमुन्नतवकुलतरुशिरसि, प्रभञ्जनप्रकम्पितकरञ्जशिखरविकीर्यमाणसुमनःसूचितकुसुमशरसहचरागमहर्षविहितवनलक्ष्मीलाजवर्षे, प्रकृष्यमाणे मधुसमये, अभिनववनापगावगाहनकेलीदोहलतरलितमनसः पौराः सह पुरंध्री-

यस्मिन् तस्मिन्, मनोरथेति—मनोरथादभिलषितादधिकस्य मकरन्दस्य कौसुमस्य लाभेन मत्ता ये मधुकरा द्विरेफास्तेषां मञ्जुशिञ्जितेन मनोहराव्यक्तशब्देन मुखरिता वाचाला वनभू काननखनिर्यस्मिन् तस्मिन्, नवेति—नवानां नूतनानां सहकारकन्दलानामतिसौरभाम्राङ्कुराणां दलनकेल्या खण्डनक्रीडया दुर्ललिता मनोहरा याः कलकोकिलगलगुहा अव्यक्तमधुरपिककण्ठगह्वराणि तासां गर्भे मध्ये संचितो यः पञ्चमः पञ्चमाख्यस्वरविशेषस्तेन प्रपञ्चिता वर्धिता या पञ्चशरवेदना कामपीडा तस्या वेगेन विवशा व्याकुला विरहिणो वियोगिनो यस्मिन् तस्मिन्, विहरमाणेति—विहरमाणेन चलता दक्षिणसमीरणेन मलयमरुता तरलिताश्चपलीकृता ये तरुणपल्लवाः प्रत्यग्रकिसलयास्तैश्चूडालाः चूडायुक्ताश्चूतविटपिनो माकन्दमहीरुहा यस्मिन् तस्मिन्, स्फुटितेति—स्फुटितानि विकसितानि यानि पाटलीकुसुमानि 'गुलाब' इति हिन्द्यां प्रसिद्धानि पुष्पाणि तेषां यः पाटलिमा श्वेतरक्तिमा तेन पल्लविता वर्धिता अकाण्डसन्ध्यासंपद् आकालिकपितृप्रसूशोभा यस्मिन् तस्मिन्, समुन्मिषितेति—समुन्मिषितानि विकसितानि यानि कोरकाणि कुड्मलानि तैः पुलकिता व्याप्ता ये कुरवका वृक्षविशेषास्तैर्मनो हरतीत्येवंशीलस्तस्मिन्, मन्मथेति—मन्मथमहोत्सवाय कामोद्भवाय समारोपिताः स्थापिता ये मणिप्रदीपा रत्नदीपास्तैः सहचरिता सदृशाश्चम्पकशाखिनश्चाम्पेयानोकहा यस्मिन् तस्मिन्, चञ्चरीकेति—चञ्चरीकचक्रस्य भ्रमरसमूहस्य चरणानामाक्रमणेन पतन्तो येऽविरलसुमनोभरा निरन्तरपुष्पप्रचयास्तैः समुन्नतानि वकुलतरुशिरांसि वकुलानोकहशिखराणि यस्मिन् तस्मिन्, प्रभञ्जनेति—प्रभञ्जनेन तीव्रपवनेन प्रकम्पिताः चलिता ये करञ्जाः करञ्जवृक्षास्तेषां शिखरेभ्यो विकीर्यमाणानि यानि सुमनांसि पुष्पाणि तैः सूचितं निवेदितं कुसुमशरसहचरस्य कामसुहृद आगमहर्षेण आगमनानन्देन विहितं कृतं वनलक्ष्मीलाजवर्षं वनश्रीलाजवृष्टिर्यस्मिन् तस्मिन्, अभिनवा नूतना या वनापगावगाहकेल्यो वनस्रवन्तीप्रवेशक्रीडास्ताभिस्तरलितानि चञ्चलीकृतानि मनांसि येषां तथा-

सुगन्धित हो रही थीं। इच्छासे अधिक मकरन्दकी प्राप्तिसे मत्त भ्रमरोंकी मनोहर गुंजारसे जिसमें वनकी वसुधा शब्दायमान हो रही थी। आमकी नयी-नयी कोंपलोंके खण्डन करनेकी क्रीड़ासे मधुर कोकिलाओंकी सुन्दर कण्ठरूपी गुहाके भीतर संचित पंचम स्वरसे बढ़ी हुई कामवेदनाके वेगसे जिसमें विरही मनुष्य विवश हो रहे थे। चलती हुई मलय वायुसे चंचल तरुण पल्लवोंसे जहाँ आमके वृक्ष चोटीसे सहितके समान जान पड़ते थे। खिले हुए गुलाबके फूलोंकी गुलाबीसे जहाँ असमयमें ही सन्ध्याकी सम्पदा प्रकट हो रही थी। जो सब ओरसे प्रकट हुई बोडियोंसे युक्त कुरवक वृक्षोंसे मनको हरण कर रहा था। काम महोत्सवके लिए चढ़ाये हुए मणिमय दीपकोंके समान जहाँ चम्पाके वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। भ्रमरसमूहके चरणोंके आक्रमणसे लगातार फूलोंका भार गिर जानेके कारण जहाँ मौलश्रीके वृक्षोंके शिखर ऊँचे उठ रहे थे। और जहाँ वायुसे कम्पित करंजके वृक्षोंके अग्रभागसे बिखरनेवाले फूलोंसे कामदेवके मित्र—वसन्तके आगमनकी खुशीमें वनलक्ष्मीके द्वारा की हुई लावाकी वर्षा सूचित हो रही थी ऐसा वसन्तका समय जब वृद्धिको प्राप्त होने लगा तब वनकी नदियोंमें नवीन-

भिर्नीरन्ध्रितककुभस्तुङ्गान्मातङ्गान्मनोहारिणीः करिणीः शातकुम्भाङ्गाञ्शताङ्गाञ्शितखुरैदारितमहीरङ्गांस्तुरङ्गांश्चामीकरपत्रभङ्गचतुरोपान्तानि चतुरन्तयानानि च समधिरुह्य सादरं नगरान्निरगमन्।

§ १२४. तस्मिंश्च समये समस्तजननयनजीवातुर्जीवकस्वामी सह सुहृद्भिर्नगरजननवीननदीपूरविहारविलोकनाय विनिर्गत्य पुरोपकण्ठाक्रीडेषु क्रीडापरवशानि पादपमूलरचितकिसलयशयनाभोगानि[2] भोगभूतलदम्पतीकल्पानि[3] कलितकामदोहलानि युगलानि सलिलावगाहनसमुद्यताः कर्णशिखरसमारोपितकुन्तलपुनरभिहितावतंसकुवलया वकुलदामनियमितकेशपक्षास्तत्क्षणदृढघटितमेखलाबन्धबन्धुरनितम्बबिम्बाः सुदूरसमुत्सारितपारिहार्यरिक्तमणिबन्धाः प्रेमान्धदयितभुजशिखर-

भूताः पौराः नागरिकाः पुरन्ध्रीभिर्ललनाभिः सह नीरन्ध्रिता अतिशयेन व्याप्ताः ककुभो दिशो यैस्तान् तुङ्गानुन्नतान् मातङ्गान् करिणः, मनोहारिणीः चेतोरमाः करिणीर्हस्तिनीः, शातकुम्भाङ्गान् सुवर्णमयाङ्गान् शताङ्गान् रथान्, शितखुरैस्तीक्ष्णशफैर्दारिताः खण्डिता महीरङ्गा भूपृष्ठा यैस्तान् तुरङ्गान् हयान्, चामीकराणां स्वर्णानां पत्रभङ्गेन वल्लीपत्रखण्डेन चतुराणि चारूणि उपान्तानि समीपप्रदेशा येषां तानि तथाभूतानि चतुरन्तयानानि शिविकायानानि च समधिरुह्य समधिष्ठाय सादरं यथा स्यात्तथा सादरं नगरान्निरगमन् निर्जग्मुः।

§ १२४. तस्मिन् चेति—तस्मिन् च मधुसमये समस्तजनानां निखिललोकानां नयनेभ्यो जीवातुः पीयूषतुल्यो जीवकस्वामी जीवंधरः सुहृद्भिर्मित्रैः सह नगरजनानां पुरपुरुषाणां नवीनो नूतनो यो नदीपूरे विहारः क्रीडनं तस्य विलोकनाय विनिर्गत्य विनिःसृत्य पुरोपकण्ठाक्रीडेषु नगराभ्यर्णोद्यानेषु क्रीडापरवशानि केलिनिमग्नानि, पादपमूलेषु तरुतलेषु रचिताः किसलयशयनाभोगाः पल्लवशय्याविस्तारा येषां तानि, भोगभूतलदम्पतीकल्पानि भोगभूमितलजायापतितुल्यानि कलितं धृतं कामः दोहलं यैस्तानि युगलानि द्वन्द्वानि सलिलावगाहने जलप्रवेशने समुद्यतास्तत्पराः कर्णशिखरे श्रवणोपरिभागे समारोपितानि धृतानि यानि कुन्तलानि तैः पुनरभिहितं पुनरुक्तमवतंसकुवलयं कर्णाभरणनीलकमलं यासां ताः, वकुलदामभिर्नियमिता बद्धाः केशपक्षा यासां ताः तत्क्षणे तत्काले दृढं यथा स्यात्तथा घटितो यो मेखलाबन्धो तेन बन्धुरं नतोन्नतं नितम्बबिम्बं यासां ताः, सुदूरं समुत्सारितेन समुच्चाटितेन पारिहार्येण कटकेन रिक्तः शून्यो मणिबन्धो यासां ताः प्रेमान्धानां दयितानां वल्लभानां भुजशिखरे

नवीन प्रवेश करनेकी क्रीड़ाकी इच्छासे जिनके मन चंचल हो रहे थे ऐसे नगरवासी लोग, अपनी स्त्रियोंके साथ, दिशाओंको व्याप्त करनेवाले ऊँचे-ऊँचे हाथियों, मनको हरण करनेवाली हथिनियों, स्वर्णनिर्मित अवयवोंसे युक्त रथों, पैने खुरोंसे पृथिवीतलको खोदनेवाले घोड़ों और सुवर्णमय पत्तोंके बेल-बूटोंसे सुसज्जित तटोंवाली पालकियोंपर सवार हो आदरपूर्वक नगरसे निकले।

§ १२४. उसी समय समस्त मनुष्योंके नेत्रोंके लिए अमृतस्वरूप जीवन्धरकुमार भी मित्रोंके साथ नगरवासी लोगोंकी नदीके पूरमें होनेवाली नूतन क्रीड़ाको देखनेके लिए निकले और नगरके समीपवर्ती वनोंमें स्त्री-पुरुषोंके उन युगलोंको जो कि क्रीड़ासे विवश थे, वृक्षोंके नीचे जिन्होंने पल्लवोंकी शय्याएँ बना रखी थीं, जो भोगभूमिमें उत्पन्न दम्पतियोंके समान जान पड़ते थे तथा काम क्रीड़ाको धारण करनेवाले थे। साथ ही उन युवतियोंको जो कि जलमें प्रवेश करनेके लिए उद्यत थीं, कानोंके शिखरपर लटके हुए अलकोंसे जिनके कर्णाभरणके नील कमल पुनरुक्त हो रहे थे, जिनके केशपाश मौलश्रीकी मालाओंसे बँधे हुए थे, तत्काल पहिनी हुई मेखलाओंके दृढ़ बन्धनसे जिनके नितम्ब ऊँचे-नीचे हो रहे थे, बहुत दूर तक चढ़ाये

१. क० ख० ग० शातखुर। २. क० ग० किसलयरचनाभोगानि। ३. म० भोगभूतदम्पती।

निवेशितबाहुलता युवतीश्च सविलासं सहायान्संदर्शयन्दर्शनीयकायकान्तिश्चिरं विजहार ।

§ १२५. तथा विहरतस्तस्याग्रतः क्वचिदग्रजन्मनामतिमहान्कोलाहलः प्रावर्तत । तमाकर्ण्य तदभ्यर्णमभिपतति समित्रे पवित्रचारित्रेऽस्मिन्क्वचिदादरनिष्पादिताहाराघ्राणकुपितधरणीसुरकरतलकलितदण्डोपलघट्टन[1]विघटिततनुरतनुवेदनावेगोत्क्रामदसुराससार सारमेयः सरणिमक्ष्णोः । तन्निरीक्षणक्षणोपजृम्भमाणकरुणः कारुणिकानामग्रेसरः कुमारः 'सारमेयोऽयमपगतासुप्रायतया प्रत्युज्जीवयितुमशक्य' इति निर्णीय तत्कर्णमूले सादरं सत्वरं सानुक्रोशं च मूलमन्त्र-

---

बाहुशिरसि निवेशिता स्थापिता बाहुलता यासां तथाभूता युवतीश्च तरुणीश्च सविलासं सविभ्रमं यथा स्यात्तथा सहायान् सहचरान् संदर्शयन् समवलोकयन् दर्शनीया कायकान्तिर्यस्य तथाभूतः सुन्दरशरीरसुषमा सन् चिरं चिरकालपर्यन्तं विजहार विहरति स्म ।

§ १२५. तथेति—तथा तेन प्रकारेण विहरतो भ्रमतस्तस्य जीवंधरस्य अग्रतः पुरस्तात् क्वचित्कुत्रापि अग्रजन्मनां ब्राह्मणानाम् अतिमहान् भूयिष्ठतरः कोलाहलः कलकलशब्दः प्रावर्तत । तं कोलाहलम् आकर्ण्य निशम्य समित्रे ससुहृदि पवित्रचारित्रे पूताचारे अस्मिन् जीवंधरे तदभ्यर्णं कोलाहलपार्श्वम् अभिपतति गच्छति सति क्वचित् कुत्रचित् आदरेण निष्पादितो निर्मितो य आहारस्तस्याघ्राणेन नासाविषयीकरणेन कुपिता रुष्टा ये धरणीसुरा विप्रास्तेषां करतले पाणितले कलितैर्धृतैर्दण्डोपलैर्दण्डपाषाणैर्घट्टनेन ताडनेन विघटिता खण्डिता तनुर्गात्रं यस्य सः, अतनुवेदनायास्तीव्रपीडाया वेगेनोत्क्रामन्तो निःसरन्तोऽसवः प्राणा यस्य स सारमेयो रात्रिजागरः अक्ष्णोर्नयनयोः सरणिं मार्गम् आससार आजगाम । तन्निरीक्षणेति—तस्य सारमेयस्य निरीक्षणक्षणे विलोकनवेलायामुपजृम्भमाणा वर्धमाना करुणा दया यस्य तथाभूतः कारुणिकानां दयालूनां 'स्याद्दयालुः कारुणिकः' इत्यमरः, अग्रेसरः प्रमुखः कुमारो जीवकः 'अयं सारमेयः कुक्कुरोऽपगतासुप्रायतया मृतप्रायत्वेन प्रत्युज्जीवयितुं पुनर्जीवितं कर्तुमशक्य इति निर्णीय निश्चित्य तत्कर्णमूले तच्छ्रवणसमीपे सादरं सत्वरं सशैघ्र्यं सानुक्रोशं सदयञ्च 'कृपानुकम्पानुक्रोशो हन्तोक्तिः करुणा दया' इति धनंजयः मूलमन्त्रं—

'णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं । णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥'

हुए आभूषणोंसे जिनकी कलाइयाँ खाली दिखाई दे रही थीं एवं प्रेमसे अन्धे पतिके कन्धेपर जिन्होंने अपनी भुजलता रख छोड़ी थी····विलाससहित अपने साथियोंको दिखलाते हुए चिर काल तक क्रीड़ा करते रहे । उस समय उनके शरीरकी कान्ति देखते ही बनती थी ।

§ १२५. तदनन्तर उस प्रकार विहार करते हुए जीवन्धरकुमारके आगे कहीं ब्राह्मणोंका बहुत भारी कोलाहल प्रवृत्त हुआ । उस कोलाहलको सुनकर पवित्र चारित्रके धारक जीवन्धरकुमार ज्यों ही अपने मित्रोंके साथ उस कोलाहलके निकट पहुँचे त्यों ही कहीं आदरपूर्वक बनाये हुए आहारको सूँघ लेने मात्रसे कुपित ब्राह्मणोंके हस्ततलोंमें स्थित दण्डों और पत्थरोंकी मारसे जिसका शरीर टूट रहा था तथा बहुत भारी वेदनाके वेगसे जिसके प्राण निकले जा रहे थे, ऐसा एक कुत्ता उनके नेत्रोंके मार्गमें आया—उन्हें दिखाई दिया । उसके देखनेके क्षण ही जिनकी करुणा बढ़ने लगी थी तथा जो दयालु मनुष्योंमें अग्रेसर—प्रधान थे ऐसे जीवन्धरकुमार, 'प्रायः प्राण निकल जानेसे यह कुत्ता जीवित नहीं किया जा सकता' यह निर्णय कर उसके कर्णमूलमें आदरपूर्वक शीघ्रता और दयाके साथ णमोकार मन्त्रका उप-

---

१. म० दण्डोपलघटनविघटित ।

मुपादिक्षत् । उपदिष्टं च दिष्ट्या तदवस्थोऽपि तरलितवालधिरुत्कर्णः समाकर्णयन्नेव सारमेयः शरीरमत्याक्षीत्, प्राविक्षच्च दैवीं तनुम् । ततो मुहूर्तमात्र एव पूर्णगात्रस्तत्रैव तथाविधदिव्यतनुलाभमूलकारणकुमारावलोकनकुतूहलादागत्य तथा जपत एवास्य पुरस्तादस्थात् । अस्तोककायगभस्तिप्रसरैरालिम्पन्तमम्बकयुगमेनं[1] दृष्ट्वा कुमारोऽयं विस्मयाविष्टः पृष्टवान्—'आचक्ष्व भद्र, न चेदेष दोषः कस्त्वं कुतस्त्यः कस्मादस्मत्समीपमागतोऽसि' इति ।

§ १२६. स च प्रत्यभाषत भषणचरः—'कुमार, विद्धि माममुमेव सारमेयम् । सारगुणधाम्नस्तव महिम्ना नाम्ना सुदर्शनः सन्प्राविक्षं यक्षकुलाधिपत्यम् । भवत्पादसेवाकृते च कृतमिदमागमनम् । किमिह मया कर्तव्यं किं वा वक्तव्यम् । का वा भवदनुभावं कथयितुमलं भारती ।

इत्याकारकं पञ्चनमस्कारमन्त्रम् उपादिक्षत् । उपदिष्टं च मूलमन्त्रं दिष्ट्या भाग्येन सावस्था यस्य तदवस्थोऽपि तथाभूतोऽपि सारमेयः तरलितवालधिश्चलितपुच्छः उत्कर्णः उन्नमितश्रवणः समाकर्णयन्नेव शृण्वन्नेव शरीरम् अत्याक्षीत् अम्रियत । प्राविक्षच्च दैवीं देवसंबन्धिनीं तनुं शरीरम् । ततोऽनन्तरं मुहूर्तमात्र एव घटीद्वय एव पूर्णगात्रः पूर्णशरीरः सन् तत्रैव वनवसुधायां तथाविधाया दिव्यतनोर्वैक्रियिकशरीरस्य लाभे प्राप्तौ मूलकारणं यः कुमारस्तस्यावलोकनस्य कुतूहलं तस्मात् आगत्य तथा तेन प्रकारेण जपत एव मूलमन्त्रं जपत एव अस्य कुमारस्य पुरस्तात् अग्रे अस्थात् । अस्तोकेति—अस्तोका बहवो ये कायगभस्तयः शरीररश्मयस्तेषां प्रसरैः समूहैः अम्बकयुगं नेत्रयुगलम् आलिम्पन्तम् एनं देवं दृष्ट्वा अयं कुमारः विस्मयेनाविष्ट आश्चर्यचकितः सन् पृष्टवान्—भद्र, हे सत्पुरुष, एष दोषो न चेत्तर्हि त्वं कः, कुत आगत इति कुतस्त्यः कस्मात्कारणात् अस्मत्समीपं मत्पार्श्वम् आगतोऽसि इति आचक्ष्व कथय' इति ।

§ १२६. स चेति—स च भूतपूर्वो भषण इति भषणचरः कुक्कुरचरः 'भूतपूर्वे चरट्' इति चरट् प्रत्ययः देवः प्रत्यभाषत प्रत्यब्रोवत—कुमार, अयं स्वामिन्, मां पुरो वर्तमानम् अमुमेव सारमेयं कुक्कुरं विद्धि जानीहि । सारगुणानां श्रेष्ठगुणानां धाम स्थानं तस्य तथाभूतस्य तव महिम्ना माहात्म्येन नाम्ना नामधेयेन सुदर्शनः सन् सुदर्शननामयुक्तः सन् यक्षकुलस्याधिपत्यं यक्षकुलाधिपत्यं यक्षेन्द्रत्वं प्राविक्षं प्रविष्टवान् । भवत्पादसेवाकृते च भवच्चरणसेवार्थं चेदमागमनं कृतम् । इह स्थाने मया किं कर्तव्यं विधेयं किं वा वक्तव्यं कथनीयम् । का वा भारती वाणी भवदनुभावं भवत्प्रभावं कथयितुं निगदितुम् अलं पर्याप्ता

देश देने लगे । उस कुत्तेका भाग्य अच्छा था इसलिए वैसी अवस्था होनेपर भी उसने पूँछ हिलाकर तथा कान खड़े कर उस उपदिष्ट मन्त्रको सुना और सुनते-सुनते ही शरीरका त्याग किया । शरीरत्यागके बाद वह देवोंके शरीरमें प्रविष्ट हुआ—मरकर देव हुआ । तदनन्तर मुहूर्तमात्रमें उसका शरीर पूर्ण हो गया । उस प्रकारके दिव्य शरीरकी प्राप्तिका मूल कारण कुमार हैं यह विचार, उन्हें देखनेके कुतूहलसे वह देव आकर पूर्वकी भाँति जपते हुए जीवन्धर कुमारके सामने खड़ा हो गया । शरीरकी बहुत भारी किरणोंके समूहसे नेत्रयुगलको लिप्त करनेवाले इस देवको देखकर कुमारने आश्चर्यचकित हो पूछा—'हे भद्र ! यदि कोई दोष नहीं हो तो कह । तू कौन है, कहाँका रहनेवाला है और कहाँसे हमारे पास आया है ?'

§ १२६. कुत्तेका जीव—देव बोला कि हे कुमार ! आप मुझे यही कुत्ता समझिए । श्रेष्ठगुणोंके स्थानस्वरूप आपकी महिमासे ही मैं सुदर्शन नामधारी होता हुआ यक्षोंके आधिपत्यको प्राप्त हुआ हूँ । आपके चरणोंकी सेवाके लिए ही मेरा यहाँ आना हुआ है । यहाँ मुझे क्या करना चाहिए ? अथवा क्या कहना चाहिए ? यह मैं नहीं जानता । अथवा आपका

१. क० अम्बकयुगलमेनम् ।

तथाहि[1]—निष्कारणमिदं मत्परित्राणमिति सति कार्पण्यकारणे रिक्तं वचः। दृष्टो मन्त्रस्य महिमेति जिनशासनलघूकरणम्। ईदृशसामर्थ्यशालिता नाश्रावि क्वचिदित्यपि न वार्तम्। प्रतिनियतसामर्थ्या हि पदार्थाः। अचरमोऽयमुपकार इति भवदवधानपरिच्छेदः। कृतार्थीकृतस्त्वयाहमिति त्रिभुवन-कार्तार्थ्यविधायिनस्ते न विशेषसमर्थनम्[2]। साक्षादसि प्रत्यक्षसर्वज्ञ इति चरमदेहधारिणस्ते सिद्धानुवादः। समाश्रितकल्पद्रुमोऽसीति निशितप्रज्ञावधृतपात्रप्रकर्षस्य ते निकर्षः। भवति पर्यव-

न कार्पास्यर्थः। तथा हि—इदं मत्परित्राणं मद्रक्षणं निष्कारणं निर्निमित्तम् इति कार्पण्यकारणे दैन्यहेतौ सति वचो रिक्तं शून्यं व्यर्थमिति यावत्। मन्त्रस्य महिमा प्रभावो दृष्टो विलोकित इति जिनशासनलघूकरणं जिनशासनस्य ततोऽप्यधिककर्तृत्वे शक्तत्वात्। ईदृशसामर्थ्यशालिता एतादृशशक्तिशोभिता क्वचित् कुत्रापि नाश्रावि न श्रुता इत्यपि न वार्तं न युक्तम्, हि यतः पदार्थाः प्रतिनियतं सामर्थ्यं शक्तत्वं येषां तथाभूताः सन्तीति शेषः। अचरमोऽन्तरहितोऽयमुपकार इति कथने भवदवधानस्य परिच्छेदस्त्वदीयशक्तिनिर्धारणम्। अहं त्वया कृतार्थीकृतः कृतकृत्यो विहित इति निवेदनं त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य कार्तार्थ्यं विदधातीत्येवंशीलस्तस्य ते तव न विशेषसमर्थनं वैशिष्ट्यसूचकम्। 'त्वं साक्षात् प्रत्यक्षसर्वज्ञः असि' इति निवेदनं चरमदेहधारिणस्ते तद्भवमोक्षगामिनस्ते सिद्धानुवादः कथितस्य पुनः कथनम्। समाश्रितानां शरणागतानां कल्पद्रुमो देवतरुरसीति निवेदनं निशितप्रज्ञया तीक्ष्णबुद्ध्यावधृतो विज्ञातः पात्रप्रकर्षः पात्रवैशिष्ट्यं येन तथाभूतस्य ते निकर्षो हीनत्वं कल्पवृक्षः पात्रापात्रविवेकरहितस्त्वं तु तेन सहित इति कल्पद्रुमोपमानेन तव हीनत्वं स्यादिति भावः। भवति त्वयि परोपक्रिया परोपकारः पर्यवस्यति परिपूर्णा

माहात्म्य कहनेके लिए कौन-सी वाणी समर्थ है? फिर भी यदि यह कहता हूँ कि आपने अकारण ही मेरी रक्षा की है तो दीनताका कारण रहते हुए मेरा वह कहना खाली जाता है अर्थात् आपने मुझे दीन आभारी बनानेके लिए मेरी रक्षा की है अतः उसे अकारण बनाना उचित नहीं है। यदि यह कहता हूँ कि मन्त्रकी महिमा देख ली तो यह कहना जिनशासनको लघु करना है क्योंकि उसकी महिमा तो इससे भी बढ़कर है। ऐसी सामर्थ्यसे सुशोभित होना किसी दूसरेमें नहीं सुना यह कहना भी व्यर्थ है क्योंकि पदार्थ प्रतिनियत सामर्थ्यसे सहित हैं। यदि यह कहूँ कि आपका यह सबसे बड़ा उपकार है तो ऐसा कहना आपकी मनोवृत्तिकी सीमा निश्चित करना होगा। यदि यह कहूँ कि आपने मुझे कृतार्थ कर दिया है तो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि तीनों लोकोंको कृतार्थ करनेवाले आपकी यह विशेषताका समर्थन होगा। अर्थात् जो सामान्य रूपसे सबको कृतार्थ करनेवाला है उसके लिए पृथक् रूपसे कहना कि यह अमुकको कृतार्थ करनेवाला है यह उचित नहीं। यदि यह कहा जाय कि आप साक्षात् प्रत्यक्ष सर्वज्ञ हैं तो यह कहना चरमशरीरको धारण करनेवाले आपके लिए स्वयंसिद्ध वस्तुका कहना होगा। अर्थात् चरमशरीरी होनेसे आप सर्वज्ञ तो होवेंगे ही अतः आपको सर्वज्ञ कहकर आपकी विशेषता बताना उचित नहीं है। यदि यह कहूँ कि आप आश्रित मनुष्योंके लिए कल्पवृक्ष हैं तो तीक्ष्ण बुद्धिसे पात्रकी श्रेष्ठताको समझनेवाले आपके लिए अपवादकी बात होगी। अर्थात् जब कि आप अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे पात्रकी सारता और असारताका विचार कर सकते हैं तब कल्पवृक्ष इस विचारसे रहित है उससे तो जो भी माँगे वही प्राप्त कर लेता है अतः आपको कल्पवृक्ष कहना ठीक नहीं है। यदि कहा जाये कि आपमें

१. म० तथापि। २. म० ते विशेषसमर्थनम्।

स्यति परोपक्रियेति स्वभावव्यावर्णनम्। साक्षादकारि कारुण्यस्वरूपमिति कार्यंपुनरुक्तम्। उदात्तशैलीयमिति ज्ञातज्ञापनश्रमः। तथापि हि किमप्यावेद्यते। आगतवति कृच्छ्रे क्वचिदनुस्मर्तव्योऽयं जनः' इत्यभिधाय कृतप्रणामः सप्रणामः सप्रणयं परिष्वज्य परोक्षतामभाक्षीत्।

§ १२७. अथान्तरितवति तस्मिन्नुपान्तवर्तिनः कस्यचिदुद्यानतरोरधस्तादवस्थाय कुमारः प्रस्तुतदेववृत्तान्तममन्दादरादनुजवयस्यैः सममावर्तयन्मुहूर्तमत्यवाहयत्। अत्रान्तरे राजपुरवासिवैश्यपतिसुतयोः प्रख्यातसख्ययोरपि स्नानीयचूर्णगुणागुणविचारेण विवदमानयोः सुरमञ्जरीगुणमालयोः परस्परं स्पर्धा भृशमवर्धिष्ट। अतानिष्टां च ते संविदं विदांवरमुखादाकर्णिते चूर्णे पराजयः स्यादावयोर्यस्यास्तया नादेयजलस्नातया न भवितव्यमिति। प्राहिणुतां च निजचूर्णो-

भवतीति निवेदनं स्वभावव्यावर्णनं निसर्गनिरूपणम्। कारुण्यस्य दयालुतायाः स्वरूपं साक्षादकारि साक्षाद्दृष्टमिति निरूपणं कार्येण पुनरुक्तमिति कार्यपुनरुक्तम्। इयम् उदात्तस्योदारशैली रीतिरिति निवेदनं ज्ञातस्य बुद्धस्य ज्ञापने प्रकटने श्रमः खेदस्तथाभूतः। तथापि हि किमप्यावेद्यते किमपि कथ्यते क्वचित्कुत्रापि कृच्छ्रे कष्टे आगतवति सति अयं जनोऽनुस्मर्तव्यः पुनः पुनः स्मरणीयः' इत्यभिधाय कथयित्वा कृतप्रणामो विहितनमस्कारः सप्रणयं सस्नेहं परिष्वज्य समालिङ्ग्य परोक्षतामदृश्यताम् अभाक्षीत् प्राप।

§ १२७. अथेति—अथानन्तरम् तस्मिन् सुदर्शने अन्तरितवति तिरोहिते सति कुमारो जीवकः कस्यचित्कस्यापि उद्यानतरोराक्रीडानोकहस्य अधस्तात् नीचैः अवस्थाय प्रस्तुतदेववृत्तान्तं प्रकृतसुरोदन्तम् अमन्दादरात् उत्कटादरात् अनुजवयस्यैः कनिष्ठसहोदरैः समं सार्धम् आवर्तयन् पुनःपुनरुच्चरन् मुहूर्तम् अत्यवाहयत् व्यपगमयामास। अत्रान्तर इति—अत्रान्तरे एतन्मध्ये राजपुरवासिनो वैश्यपतेः सुते तयोः प्रख्यातं प्रसिद्धं सख्यं मैत्री ययोस्तथाभूतयोरपि स्नात्यनेनेति स्नानीयं तच्च तच्चूर्णमिति स्नानीयचूर्णं तस्य गुणागुणयोर्गुणदोषयोर्विचारेण विवदमानयोर्विवादं कुर्वाणयोः सुरमञ्जरीगुणमालयोः एतन्नाम्न्योः परस्परं मिथो स्पर्धानुसूया भृशमत्यन्तम् अवर्धिष्ट ववृधे। अतानिष्टामिति—ते सुते विदांवरमुखाद् चूर्णे आकर्णिते श्रुते सति आवयोर्मध्ये यस्याः पराजयः पराभवः स्यात् तया नद्या इदं नादेयं तच्च तज्जलं चेति नादेयजलं नदीसलिलं तस्मिन् स्नाता कृतस्नाना तया न भवितव्यम् इति संविदं प्रतिज्ञाम् अतानिष्टाम् विस्तारयामासतुः। प्राहिणुतां प्रेषयामासतुश्च निजचूर्णयोरुत्कर्षनिकर्षौ हीनत्वाधिक्ये तयोर्निर्णयाय लब्धवर्णानां

परोपकारका पर्यवसान है अर्थात् आप सर्वाधिक परोपकारी हैं तो यह कहना भी आपके स्वभावका वर्णन कहलाया अतः उचित नहीं है। यदि यह कहूँ कि दयाका स्वरूप साक्षात् कर लिया तो यह कहना कार्यसे पुनरुक्त है। अर्थात् आपने दयाका कार्य तो किया है उसे शब्दोंद्वारा क्या कहना ? और यदि यह कहा जाये कि यह उत्कृष्ट मनुष्योंकी शैली ही है तो यह जानी हुई बातको पुनः बतलानेका श्रम होगा। इस प्रकार यद्यपि कुछ कहना अशक्य है तथापि कुछ तो भी कहा जाता है और वह यह कि यदि कहीं कोई कष्ट आये तो यह जन स्मरण करनेके योग्य है। इतना कहकर प्रणाम कर तथा प्रेमपूर्वक आलिंगन कर वह देव परोक्षताको प्राप्त हो गया—अदृश्य हो गया।

§ १२७. तदनन्तर उस देवके अन्तर्हित हो जानेपर कुमारने किसी निकटवर्ती बगीचाके वृक्षके नीचे बैठकर छोटे भाई और मित्रोंके साथ बड़े आदरसे प्रस्तुत देवके वृत्तान्तको दुहराते हुए एक मुहूर्त व्यतीत किया होगा कि इसी बीचमें राजपुर नगरके रहनेवाले सेठोंकी पुत्रियों—सुरमंजरी और गुणमालामें परस्पर बहुत भारी स्पर्धा बढ़ गयी। यद्यपि उन दोनों पुत्रियोंकी मित्रता प्रसिद्ध थी तथापि स्नान करनेके योग्य चूर्णके गुण-दोषोंका विचार करते-करते उनमें विवाद उठ खड़ा हुआ था। उन दोनोंने प्रतिज्ञा कर ली कि 'किसी श्रेष्ठ विद्वान्के

त्कर्षनिकर्षनिर्णयाय लब्धवर्णानामभ्यर्णमात्मपरिचारिके । ते च निखिलकर्मनिर्माणपटिष्ठे चेट्यौ दिशि दिशि परिभ्रम्य परिसरं कुमारस्य सादरमुपासरतामभ्यधत्तां च दत्ताञ्जलि पाणितलप्रणयि-तपनीयकरण्डगते स्नानीयचूर्णे प्रदर्श्य 'कथय मिथो विशेषमनयोः' इति । तद्वचनसमाकर्णनेन निर्वर्ण्य चूर्णे तूर्णमसौ गुणज्ञः 'सगुणमिदं गुणमालाचेटिकायाश्चूर्णम्' इत्यवर्णयत् । श्रुत्वा तद्वचनं सुरमञ्जरीपरिचारिका परिकुपितहृदया सती 'भवदादिष्टमतिवैशिष्ट्यं विशेषदृष्टेः प्राक्कस्यचित्क-थमवगन्तव्यम् । परोऽपि जनः पृष्ट एवमन्यथा न व्याचष्टे स्म । किमध्यैष्ट भवानप्यमीभिरेवम् । ननु जीवक एव जीवलोके विवादपदनिर्णायीत्याकर्ण्य खलु भवति तिष्ठावहे' इत्यभाषिष्ट । सात्यं-धरिरपि 'सत्यापयामि तर्हि मदुक्तम्' इति तदुभयमुभयकरेण गृह्णन् 'गृह्णन्तु चञ्चरीकाश्चूर्ण-

विदुषाम् अभ्यर्णं निकटम् आत्मपरिचारिके निजनिजचेट्यौ । ते च निखिलकर्मणां समग्रकार्याणां निर्माणे साधने पटिष्ठे अतिचतुरे चेट्यौ दास्यौ दिशि दिशि प्रतिकाष्ठं परिभ्रम्य परिभ्रमणं कृत्वा कुमारस्य जीवंधरस्य परिसरं निकटं सादरं यथा स्यात्तथा उपासरतामाजग्मतुः दत्ताञ्जलि यथा स्यात्तथा पाणितलस्य करतलस्य प्रणयि यत्तपनीयकरण्डं स्वर्णभाजनं तत्र गते स्थिते स्नानीयचूर्णे प्रदर्श्य 'अनयोश्चूर्णयोर्मिथो परस्परं विशेषं वैशिष्ट्यं कथय' इति अभ्यधत्ताम् च न्यगदताम् । तद्वचनेति—तयोश्चेट्योर्वचनस्य समाकर्णनं श्रवणं तेन चूर्णे निर्वर्ण्य दृष्ट्वा गुणज्ञोऽसौ जीवंधरः तूर्णं शीघ्रं गुणमालाचेटिकाया इदमेतत् चूर्णं सगुणं सोत्कर्षम्' इतीत्थमवर्णयत् । तस्य जीवकस्य वचनं श्रुत्वा समाकर्ण्य सुरमञ्जरीपरिचारिका सुरमञ्जरीचेटी परिकुपितं क्रुद्धं हृदयं यस्यास्तथाभूता सती 'भवता आदिष्टं भवदादिष्टं भवन्निरूपितम् अतिवैशिष्ट्यं प्रकर्षातिशयत्वं विशेषदृष्टेर्विशेषदर्शनात् प्राक् पूर्वं कस्यचित् कस्यापि श्रोतुः कथं केन प्रकारेण अवगन्तव्यं ज्ञातव्यम् । परोऽपि जनोऽन्योऽपि लोकः पृष्टः सन् एवं अनेन प्रकारेण अन्यथा न व्याचष्टे स्म न निरूपयति स्म—त्वदनु-रूपमन्येनापि जनेन निगदितमिति शेषः । किम् भवानपि अमीभिः एवमित्थम् अध्यैष्ट अधीतवान् । ननु निश्चयेन जीवक एव जीवंधर एव जीवलोके संसारे विवादपदस्य विसंवादस्थानस्य निर्णायी निर्णयकर्ता इत्याकर्ण्य श्रुत्वा खलु वाक्यालंकारे भवति त्वयि तिष्ठावहे निर्णायकत्वस्यास्थयोपस्थितौ भवावः' इति अभाषिष्ट कथयामास । सात्यंधरिरपीति—सत्यंधरस्यापत्यं पुमान् सात्यंधरिर्जीवंधरोऽपि 'तर्हि मदुक्तं स्वकथनं सत्यापयामि सत्यं साधयामि' इति कथयित्वेति शेषः तदुभयं गुणमालासुरमञ्जरीचेट्योश्चूर्णम्

मुखसे चूर्णके गुण-दोषके श्रवण करनेपर हम दोनोंमें जिसकी हार होगी वह नदीके जलमें स्नान नहीं करेगी।' उन दोनोंने अपने चूर्णकी उत्कृष्टता और निकृष्टताका निर्णय करनेके लिए अपनी दासियाँ विद्वानोंके समीप भेजीं। समस्त कार्योंको सिद्ध करनेमें अत्यन्त चतुर दोनों दासियाँ प्रत्येक दिशामें घूमकर बड़े आदरके साथ जीवन्धर कुमारके पास आयीं और हाथ जोड़कर तथा हथेलीमें स्थित स्वर्णकी डिब्बीमें रखे हुए अपने-अपने स्नानीय चूर्ण दिखला कर बोलीं कि आप परस्पर इन चूर्णोंकी विशेषता कहिए। उनका कहना सुन तथा दोनोंके चूर्ण देख गुणोंके ज्ञाता जीवन्धर कुमारने शीघ्र ही कह दिया कि 'यह गुणमालाकी दासीका चूर्ण सगुण है—उत्तम है'। उनके वचन सुन सुरमंजरीकी परिचारिकाने कुपितहृदय हो कहा कि आपने जो गुणमालाके चूर्णकी उत्तमता बतलायी है सो विशेषताको देखनेके पहले उसे कोई कैसे जान सकता है ? दूसरे लोग भी पूछनेपर ऐसा ही कहते हैं अन्यथा नहीं। क्या आप भी इनके साथ ऐसा ही पढ़े हैं ? 'संसारमें जीवन्धर ही विवाद-स्थानोंका निर्णय करनेवाले हैं' यह सुनकर हम दोनों आपमें आस्था रखते हैं ? 'अच्छा मैं अपना कहा सत्य सिद्ध कर दिखाता हूँ' यह कहकर जीवन्धर कुमारने दोनों चूर्णोंको दोनों हाथोंसे ले 'जो चूर्ण वास्तवमें उत्तम है उसे भ्रमर ग्रहण करें' यह कह ऊपर उछाल दिया। तदनन्तर भ्रमरोंके समूहने बहुत

भञ्चितमञ्जसा' इत्युदीरयन्नुपरि चिक्षेप । क्षेपीयः क्षितितलपतनमसहमानैरिव मधुलिहां वृन्दैरमन्दादराद्गुणलुब्धैरिव गुणाधिके गुणमालाचूर्णे तूर्णमङ्गीकृते, भृशमङ्गनास्वासक्तजन इव क्षणादधस्तादपतदपरम् । अवर्णयच्चायमभियुक्तः 'चूर्णयुक्तायुक्तेतरकालकरणादासीदसुरभित्वं सुरमञ्जरीचूर्णस्य' इति ।

§ १२८. तदेतदुपलभ्य चेटीमुखात्सुरमञ्जरी, सुरतरुमञ्जरी सुरकुञ्जरभञ्जनादिव जातवैवर्ण्या, विवादविरहितसाक्षिभिः साक्षान्निर्णीतेऽपि निजचूर्णगुणक्षये 'गुणमालापक्षपातादुपेक्षिताहम् । अपेक्षा यदा जायेत मयि गन्धोत्कटनन्दनस्य तावदहं कटाक्षेणापि नेक्षे पुरुषान् । वर्षशतं वा विधास्यामि तपस्यां तज्जनदास्यसंपादिनीम्' इति कृतसंगरा, सङ्गगौरवात् 'वयस्ये,

उभयकरेण हस्तयुगलेन गृह्णन् 'अञ्जसा याथार्थ्येनाञ्चितं शोभितं चूर्णं चञ्चरीका अलयो गृह्णन्तु स्वीकुर्वन्तु' इत्युदीरयन् कथयन् उपरि चिक्षेप क्षिपति स्म । क्षेपीय इति—क्षेपीयः शीघ्रं क्षितितलपतनं पृथिवीपृष्ठावपातम् असहमानैरिव मधुलिहां भ्रमराणां वृन्दैः समूहैः अमन्दादराद् भूयिष्ठादरात्, गुणेषु लुब्धास्तैस्तथाभूतैरिव गुणेनाधिको गुणाधिकस्तस्मिन् गुणमालाचूर्णे तूर्णं क्षिप्रम् अङ्गीकृते स्वीकृते सति भृशमत्यन्तम् अङ्गनासु वनितासु आसक्तजन इव क्षणाद् अल्पेनैव कालेन अपरं सुरमञ्जरीचूर्णम् अधस्तात् नीचैः अपतद् । अवर्णयच्चेति—'अवर्णयच्च जगाद च अभियुक्तो विद्वान् जीवंधरः चूर्णयुक्तौ चूर्णयोजने उक्तो निरूपितो यः कालस्तस्मादितरकाले भिन्नसमये करणात् विधानात् सुरमञ्जरीचूर्णस्यासुरभित्वं दौर्गन्ध्यम् आसीद्' इति ।

§ १२८. तदेतदिति—तदेतत्पूर्वोक्तं चेटीमुखात्परिचारिकावक्त्रात् उपलभ्य ज्ञात्वा सुरमञ्जरी, सुरकुञ्जरभञ्जनाद् देवद्विरदखण्डनात् सुरतरुमञ्जरीव कल्पवृक्षमञ्जरीव जातं समुत्पन्नं वैवर्ण्यं मालिन्यं यस्यास्तथाभूता सती विवादविरहितसाक्षिभिः विसंवादरहितयुक्तिभिः निजचूर्णस्य गुणक्षयस्तस्मिन् निजचूर्णगुणापकर्षे निर्णीतेऽपि 'गुणमालायाः पक्षपातस्तस्माद् गुणमालायाः स्नेहाधिक्यात् अहमुपेक्षिता उपेक्षाविषयीकृता । गन्धोत्कटनन्दनस्य जीवंधरस्य यदा मयि अपेक्षा जायेत तावत् कालपर्यन्तमहं कटाक्षेणापि नेत्रकोणेनापि पुरुषान् नेक्षे न विलोकये । वर्षशतं वा शतवर्षपर्यन्तं वा तज्जनस्य जीवंधरस्य दास्यसंपादिनीं दासत्वकारिणीं तपस्यां तपश्चरणं विधास्यामि वा करिष्यामि वा' । इतीत्थं कृतसंगरा विहित-

भारी आदरसे गुणमालाके अधिक गुणवान् चूर्णको शीघ्र ही अंगीकृत कर लिया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वे भ्रमरोंके समूह उसके चूर्णका पृथिवीपर गिरना सहन नहीं करते थे और गुणोंके लोभी थे। दूसरा सुरमंजरीका चूर्ण स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्त रहनेवाले मनुष्यके समान क्षणभरमें नीचे गिर गया। बुद्धिमान् जीवन्धर कुमारने इसका कारण भी बतलाया कि चूर्ण बनानेके लिए जो काल कहा गया है उससे भिन्न कालमें बनानेके कारण सुरमंजरीका चूर्ण सुगन्धित नहीं हो सका है।

§ १२८. दासीके मुखसे यह जानकर, जिस प्रकार ऐरावत हाथीके द्वारा तोड़े जानेसे कल्पवृक्षकी मंजरी विवर्ण हो जाती है उसी प्रकार सुरमंजरी विवर्ण हो गयी—उसके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी। यद्यपि विवादरहित साक्षियोंके द्वारा सुरमंजरीके चूर्णकी निकृष्टता निर्णीत हो चुकी थी तथापि सुरमंजरीने समझा कि गुणमालाके पक्षपातसे ही मेरी उपेक्षा की गयी है। जब तक जीवन्धर कुमारकी मुझमें अपेक्षा नहीं होगी—वे मुझे नहीं चाहने लगेंगे तबतक मैं पुरुषोंको कटाक्षसे भी नहीं देखूँगी। अथवा मैं सौ वर्ष तक उनकी दासता प्राप्त करानेवाली तपस्या करूँगी'। ऐसी प्रतिज्ञा कर बिना स्नान किये ही अपने घर लौट आयी।

क्षमस्व दास्याः परिस्खलनम्' इति पादयोः प्रणमन्ती गुणमालामपि मालामिव मौलिच्युतामनादृत्यास्नातेव निजसदनमासदत् । अचीकरच्च पितुराज्ञया पुरुषसंस्पर्शिमरुतापि[1] निजमन्दिरान्तिकमस्पृष्टम् ।

§ १२९. अथ तादृशं तस्याः सख्या वैमुख्यमुपलभ्य तन्निदानं चूर्णविगानमनुशोचन्ती, यानमारुह्य नगरबाह्यात्प्रतिनिवृत्य निकटगतचेटीजनचाटुमपि श्रवणकटुकं गणयन्ती गुणमाला शनैः स्कन्धावारं प्रतिगन्तुमारब्धा । तावता समन्ततो धावन्मनुजानाममन्दार्तस्वरैर्मूर्छन् 'गच्छ, गच्छ, गजेन्द्रः'[2] इति रुन्द्रस्वनः श्रोत्रेष्वतिमात्रमासीत् । आसीदति स्म च सीदतः स्त्रैणस्य तस्य समीपं संहृतसर्वलोकः, काल इव कलितमूर्तिः, अधोमूर्धकशावशतकलितगात्रतया स्वयमूर्ध्वगैरन्य-

प्रतिज्ञा, सङ्गेति—सङ्गे गौरवं तस्मात् 'वयस्ये सखि ! दास्याः सेविकायाः परिस्खलनं त्रुटिं क्षमस्व' इति पादयोश्चरणयोः प्रणमन्तीं नमस्कुर्वतीं गुणमालामपि मौलिच्युतां मुकुटपतितां मालामिव स्रजमिव अनादृत्य तिरस्कृत्य निजसदनं स्वकीयभवनम् आसदत् प्राप । अचीकरच्च पितुर्जनकस्याज्ञया निजमन्दिरान्तिकं निजभवननिकटम् पुरुषसंस्पर्शिमरुताऽपि पुरुषस्पर्शिवायुनापि अस्पृष्टं स्पर्शरहितं कारयामास ।

§ १२९. अथेति—अथानन्तरं तस्याः सख्याः सुरमञ्जर्या वैमुख्यं प्रातिकूल्यम् उपलभ्य ज्ञात्वा तन्निदानं तत्कारणं चूर्णविगानं चूर्णनिन्दनम् अनुशोचन्ती, यानं शिविकाम् आरुह्य नगरबाह्यात् प्रतिनिवृत्य प्रत्यागत्य निकटगतश्चासौ चेटीजनश्चेति निकटगतचेटीजनः पार्श्वस्थपरिचारिकाजनस्तस्य चाटुमपि मधुरवचनमपि श्रवणकटुकं कर्णाप्रियं गणयन्ती मन्यमाना गुणमाला शनैर्मन्दं स्कन्धावारं राजधानीं प्रतिगन्तुम् आरब्धा तत्पराभूत् । तावतेति—तावता तावत्कालेन समन्ततः परितो धावन्मनुजानां पलायमानपुरुषाणाम् अमन्दास्तीव्रा ये आर्तस्वराः पीडाध्वनयस्तैः मूर्च्छन् वर्धमानः 'गच्छ गच्छ पलायस्व पलायस्व गजेन्द्रः करीन्द्र आगच्छतीति शेषः' इति रुन्द्रस्वन उच्चैःशब्दः अतिमात्रं प्रचुरतया श्रोत्रेषु श्रवणेषु आसीत् । आसीदति स्मेति—आसीदति स्म च समागच्छति स्म च सीदतो दुःखीभवतस्तस्य पूर्वोक्तस्य स्त्रैणस्य स्त्रीसमूहस्य समीपं कोऽपि मदवारणो मत्तमतङ्गजः । अथ तस्यैव विशेषणान्याह—संहृता नाशिताः सर्वलोका येन तथाभूतः अतएव कलितमूर्तिर्धृतशरीरः काल इव यम इव, अधो मूर्धा येषां तेऽधोमूर्धकाः

यद्यपि संगके गौरवसे 'हे सखि ! दासीकी भूलको क्षमा करो' यह कह गुणमाला उसके पैरोंमें प्रणाम करने लगी तथापि सुरमंजरीने शिरसे गिरी मालाके समान उसका कुछ भी आदर नहीं किया—उसकी प्रार्थना ठुकरा दी। उसने पिताकी आज्ञासे अपने भवनके समीपवर्ती प्रदेशको पुरुषका स्पर्श कर आनेवाली वायुसे भी अस्पृष्ट—अछूता करवा लिया अर्थात् पुरुषकी बात तो दूर रही उसका स्पर्श कर आनेवाली वायु भी उसके भवनके समीप नहीं फटक पाती थी।

§ १२९. तदनन्तर सखीकी वैसी विमुखता जान उसके कारणभूत चूर्णकी निकृष्टताका शोक करती हुई गुणमाला वाहनपर सवार हो नगरके बाहरी भागसे लौटकर धीरे-धीरे नगरकी ओर आ रही थी। पासमें स्थित चेटियाँ जो कर्णसुहाती मीठी-मीठी बातें कर रही थीं उन्हें वह कर्णकटु समझ रही थी। उसी समय सब ओर दौड़ते हुए मनुष्योंके बहुत भारी दुःखपूर्ण शब्दोंसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ, 'हटो, हटो, गजराज है।' यह जोरदार शब्द अत्यधिक मात्रामें कानोंमें आ पड़ा। और आनेवाले स्त्रीसमूहके समीप तत्काल ही कोई हाथी आ पहुँचा। वह हाथी सब मनुष्योंका संहार करनेवाला था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो शरीरधारी

१. क० मरुतामपि । २. क० ग० 'गच्छ गच्छ गजेन्द्र गजेन्द्र' इति ।

पेत इव पादैः, उड्डीयमानविहङ्गसंगताङ्गतया मङ्क्षु जनजिघृक्षया पक्षीकृतपक्ष इव लक्ष्यमाणः, क्षितिधर इव लब्धाङ्घ्रिः, अधःकृताधोरणनिवारणः कोऽपि मदवारणः ।

§ १३०. ततस्तत्संनिधिना[1] निधिलाभेन नीचपरिज्ञान इव परिजने परिक्षीणे, सरभसमुत्सृज्य चतुरन्तयानं दिगन्तं वहत्सु वाहकेषु, सा दरिद्रमध्या दारिद्र्यादिव सहचरविगमादेकाकिनी तस्थौ । तथा तिष्ठन्तीमिमां दृष्ट्वा गुणमालां प्रियंवदेति तस्याः प्रियसखी, 'प्राणसमामिमां मत्प्राणत्राणाय विहाय कथमपत्रपा प्रयामि । प्रयान्तु ममासवः प्रागेतन्मृतिप्रेक्षणात्' इति पृष्ठीकृत्य तां

ते च ते शावाश्चेत्यधोमूर्धकशावा अधोमस्तकशिशवस्तेषां शतेन बाहुल्येन कलितं युक्तं गात्रं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया स्वयं स्वतः ऊर्ध्वगैरूर्ध्वगामिभिः पादैश्चरणैः अभ्युपेत इव सहित इव तेन करिणाधोमस्तका उपरि पादा बहवो बालकाः शुण्डयोरथाप्योपरिस्थितास्तेन स ऊर्ध्वगामिभिरङ्घ्रिभिः सहित इव बभाविति भावः; उड्डीयमानैरुत्पतद्भिर्विहङ्गैः पक्षिभिः संगतमङ्गं यस्य तस्य भावस्तया, मङ्क्षु शीघ्रं जनजिघृक्षया जनान् गृहीतुमिच्छया पक्षीकृताः स्वीकृताः पक्षा गरुतो येन तथाभूत इव लक्ष्यमाणो दृश्यमानः, लब्धाङ्घ्रिः प्राप्तपादः क्षितिधर इव पर्वत इव, अधःकृतानि तिरस्कृतान्याधोरणस्य नियन्तुर्निवारणानि येन तथाभूतः ।

§ १३०. तत इति—ततस्तदनन्तरम् तत्संनिधिना गजेन्द्रसंनिधानेन निधिलाभेन संपत्तिप्राप्त्या नीचपरिज्ञान इवाधमजनविवेक इव परिजने परिकरजने परिक्षीणे विद्रुते सति सरभसं सवेगं चतुरन्तयानं शिविकामुत्सृज्य त्यक्त्वा वाहकेषु दिगन्तं काष्ठान्तं वहत्सु गच्छत्सु सत्सु, दरिद्रं कृशं मध्यमवलग्नं यस्यास्तथाभूता सा गुणमाला दारिद्र्यादिव निर्धनत्वादिव सहचरविगमात् सहायिजनविद्रवणात् एकाकिनी असहाया तस्थौ । तथेति—तथा पूर्वोक्तप्रकारेण तिष्ठन्तीं विद्यमानाम् इमां गुणमालां दृष्ट्वा प्रियंवदेतिनामधेया तस्याः प्रियसखी प्रियाली 'मम प्राणा मत्प्राणास्तेषां त्राणाय मदसुरक्षणाय प्राणसमां प्राणसदृशीम् इमां गुणमालां विहाय अपत्रपा निर्लज्जा सती कथं प्रयामि गच्छामि । एतस्या मृतेः प्रेक्षणमवलोकनं

यमराज ही हो । उस हाथीका शरीर जिनका मस्तक नीचेकी ओर तथा पैर ऊपरकी ओर थे ऐसे सैकड़ों बच्चोंसे सहित था इसलिए वह ऐसा जान पड़ता था मानो स्वयं ऊपरकी ओर जानेवाले पैरोंसे सहित था । उसके शरीरपर कुछ उड़ते हुए पक्षी भी आ बैठे थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो शीघ्र ही मनुष्योंको पकड़नेके लिए उसने पंख ही धारण कर रखे हों । वह पैरोंको प्राप्त करनेवाले पर्वतके समान जान पड़ता था तथा उसने महावतको नीचे गिरा दिया था ।

§ १३०. तदनन्तर उस हाथीके पास आते ही गुणमालाके परिजन उस तरह नष्ट हो गये—इधर-उधर भाग गये जिस तरह कि निधि मिलनेसे नीच मनुष्यका ज्ञान नष्ट हो जाता है और पालकीमें लगे कहार भी पालकी छोड़ शीघ्र ही दिशाओंके अन्त तक—बहुत दूर भाग गये । जिस प्रकार दरिद्रताके कारण सब मित्र बिछुड़ जाते हैं और मनुष्य अकेला रह जाता है उसी प्रकार पतली कमरको धारण करनेवाली गुणमाला भी उस समय सब साथियोंके चले जानेसे अकेली खड़ी रह गयी । गुणमालाकी एक प्रियंवदा नामकी सखी थी । वह गुणमालाको उस तरह अकेली खड़ी देख विचार करने लगी कि इस प्राणसदृश सखीको छोड़ अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए निर्लज्ज हो मैं कैसे भाग जाऊँ ? इसकी मृत्यु देखनेके पहले ही मेरे

१. क० ग० ततस्तत्सन्निधानात् ।

बिम्बोष्ठी, बद्धाञ्जलिः कुञ्जरस्य पुरस्तादस्थात् ।

§ १३१. अवसरेऽस्मिन्नाकस्मिकागतिस्तत्रैव परत्रोपार्जितसुकृतवैभवाद्विभव इव स धीरः[1] कुमारः संन्यधात् । व्यधाच्च तद्दशानिशामनमात्रेण विजृम्भितक्षात्रधर्मः स्वमर्मस्पृगुपद्रवविद्रावणप्रवण इव प्रगुणं गुणमालारक्षणाय तत्क्षणे प्रयासम् । पुनः प्रतिमल्लविलोकनादुल्लोकरोषोद्धुरस्य सिन्धुरस्य दान्तये दन्तयोर्मध्ये निजमणिकुण्डलशैलेन गण्डशैलेनेव प्रचण्डं प्राहार्षीत् । अनन्तरमन्तरिततज्जिघृक्षावेगो वेतण्डश्चण्डरोषप्रसारितशुण्डः शूरप्रकाण्डस्य तस्याभिमुखमभ्यवर्तत, प्राव-

तस्मात् प्राक्पूर्वं ममासवः मम प्राणाः प्रयान्तु निर्गच्छन्तु' इतीत्थं तां बिम्बोष्ठीं रक्तरदनच्छदां तां गुणमालां पृष्ठीकृत्य पश्चात्कृत्य बद्धाञ्जलिः सती कुञ्जरस्य करिणः पुरस्तात् अग्रे अस्थात् ।

§ १३१. अवसरेऽस्मिन्निति—अस्मिन्नवसरे तत्कालम् परत्रान्यस्मिन् जन्मनि उपार्जितस्य संचितस्य सुकृतस्य पुण्यस्य यद् वैभवं तस्माद् विभव इवैश्वर्यमिव आकस्मिका गतिरतर्कितोपस्थितिः सः धीरो गम्भीरः कुमारो जीवकः तत्रैव गजेन्द्रोपद्रवस्थान एव संन्यधात् निकटस्थोऽभूत् । व्यधाच्चेति—तद्दशाया गुणमालावस्थाया निशामनमात्रेण विलोकनमात्रेण विजृम्भितो वृद्धिंगतः क्षात्रधर्मो यस्य तथाभूतः स्वमर्मस्पृश उपद्रवस्य विद्रावणे दूरीकरणे प्रवण इव दक्ष इव तत्क्षणे तत्काले गुणमालारक्षणाय गुणमालात्राणाय प्रगुणं प्रकृष्टं प्रयासं प्रयत्नं व्यधाच्च चकार च । पुनरिति—पुनस्तदनन्तरं प्रतिमल्लस्य प्रतिद्वन्द्विनो विलोकनं तस्मात् उल्लोकेन भूयसा रोषेण कोपेनोद्धुरस्य दुर्दान्तस्य सिन्धुरस्य गजस्य दान्तये दमनाय दन्तयोर्दशनयोर्मध्ये गण्डशैलेनेव गण्डोपलेनेव निजमणिकुण्डलशैलेन स्वकीयरत्नमयकङ्कणाग्रपिण्डेन 'कुण्डलं कर्णभूषायां तथा वलयपाशयोः' इति विश्वलोचनः, प्रचण्डं तीव्रं प्राहार्षीत् प्रजहार । अनन्तरमिति—तदनु अन्तरितस्तिरोहितस्तज्जिघृक्षाया गुणमालाग्रहणेच्छाया वेगो रयो यस्य तथाभूतो वेतण्डो गजः चण्डरोषेण तीव्रक्रोधेन प्रसारिता शुण्डा करो येन तथाभूतः सन् शूरप्रकाण्डस्य वीरशिरोमणेः तस्य जीवकस्य अभिमुखं संमुखम् अभ्यवर्तत आजगाम प्रहर्तुं प्रहारं कर्तुं प्रावर्तत च प्रवृत्तोऽभूत् ।

प्राण निकल जावें तो अच्छा हो' ऐसा विचार कर वह उस बिम्बोष्ठीको अपने पीछे कर तथा हाथ जोड़कर हाथीके सामने खड़ी हो गयी ।

§ १३१. तदनन्तर जिस प्रकार पूर्वोपार्जित पुण्यके प्रभावसे अकस्मात् आकर वैभव समीप आ जाता है उसी प्रकार धीर वीर जीवन्धरकुमार भी उसी अवसरपर अकस्मात् आते हुए वहाँ समीप आ पहुँचे । और गुणमालाकी दशा देखने मात्रसे जिनका क्षात्र धर्म वृद्धिको प्राप्त हो गया था ऐसे जीवन्धरकुमार उसी क्षण उसकी रक्षा करनेके लिए उस तरह अनुकूल प्रयास करने लगे जिस तरह कि मानो वे अपने मर्मको स्पर्श करनेवाले उपद्रवको दूर करनेमें ही निपुण हों । अर्थात् गुणमालाके उपद्रवको अपना उपद्रव समझ उसका निराकरण करनेके लिए वे तत्काल तैयार हो गये । तदनन्तर प्रतिद्वन्द्वीको देखनेके कारण जो बहुत भारी क्रोधसे उद्दण्ड हो रहा था ऐसे उस हाथीका दमन करनेके लिए उन्होंने उसके दाँतोंके बीचमें अपने मणिमय कड़ेके अग्रभागसे इतना तीव्र प्रहार किया मानो गण्डशैल—छोटे पहाड़से ही प्रहार किया हो । तत्पश्चात् जिसका गुणमालाको पकड़नेकी इच्छाका वेग अन्तरित हो गया था ऐसा हाथी तीव्र क्रोधसे सूँड फैलाकर शूर वीरोंमें श्रेष्ठ जीवन्धरकुमारके सामने आया और

१. क० धीरकुमारः ।

तं च प्रहर्तुम् । तादात्विकोपायप्रयोगचतुरः कुमारोऽप्यनेकपमनेकप्रकारमायास्य, परिणमति तस्मिन्करिणि चरणमध्येन प्रविश्य, पृष्ठतो निरगच्छदतुच्छधीः । सा च मोचितापि कुमारेण मोचासमोरुर्मारमातङ्गकृतातङ्का समजनि । जनितमदनवेदनाविवशाङ्गी तन्वङ्गी तत्क्षणसमानीतमनुयायिभिरधिरुह्य चतुरन्तयानमन्तःप्रविष्टं कुमारमवलोकयितुमिवाधोमुखी, मुहुर्मुहुरापतद्भिर्निःश्वासैरत्युष्णतया मर्मरिताधरपल्लवैराकुलितकुचोत्तरीया, निरुत्तरतया दत्तनर्मगिरः प्रियसखीः खेदयन्ती विवेश विविधसंनिवेशकान्तं निशान्तम् ।

§ १३२. अथैनां तुहिनपरामर्शपरिम्लानपङ्कजिनीसच्छायां सत्वरमुपेत्य माता दुहितरं

तादात्विकेति—तादात्विकास्तात्कालिका ये उपाया रक्षासाधनानि तेषां प्रयोगे चतुरो दक्षः अतुच्छधीविशालप्रतिभः कुमारोऽपि अनेकपं गजम् अनेकप्रकारं यथा स्यात्तथा आयास्य खेदखिन्नं विधाय तस्मिन् करिणि परिणमति तिर्यग्दन्तप्रहारं कर्तुमुद्यते सति चरणमध्येन पादमध्येन प्रविश्य पृष्ठतः पश्चाद्भागेन निरगच्छत् निर्जगाम । सा चेति—मोचासमोरुः कदलीतुल्यसक्थिः सा गुणमाला च कुमारेण जीवकेन मोचिताऽपि त्याजितापि गजेन्द्रादिति शेषः मारमातङ्गेन कामकरिणा कृत आतङ्को यस्यास्तथाभूता समजनि । जनितेति—जनितया समुत्पन्नया मदनवेदनया कामपीडया विवशानि परायत्तान्यङ्गानि यस्यास्तथाभूता तन्वङ्गी कृशाङ्गी सा गुणमाला अनुयायिभिरनुगामिजनैः तत्क्षणं तत्कालं समानीतं चतुरन्तयानं शिविकायानम् अधिरुह्य समधिष्ठाय अन्तः प्रविष्टं हृदयमध्यप्रविष्टं कुमारं जीवंधरम् अवलोकयितुमिव द्रष्टुमिव अधोमुखी नम्रवक्त्रा, मुहुर्मुहुर्भूयोभूयः आपतद्भिर्निःसरद्भिः, अत्युष्णतया प्रचुरौष्ण्यतया मर्मरितशुष्कपर्णीकृतोऽधरपल्लवो यैस्तैः निःश्वासैः श्वासोच्छ्वासपवनैः आकुलितं चञ्चलीकृतं कुचोत्तरीयं स्तनोपरिवस्त्रं यस्यास्तथाभूता निरुत्तरतया मूकीभूतत्वेन दत्तनर्मगिरः प्रदत्तक्रीडावाणीकाः प्रहासिनीरिति यावत् प्रियसखीः प्रियालीः खेदयन्ती विविधसंनिवेशैर्नानारचनाभिः कान्तं मनोहरं निशान्तं भवनं 'निशान्तपस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्' इत्यमरः । विवेश प्रविष्टवती ।

§ १३२. अथैनामिति—अथ गृहप्रवेशानन्तरं तुहिनस्य हिमस्य परामर्शेन संबन्धेन परिम्लाना

उसपर प्रहार करनेके लिए उद्यत हुआ । तात्कालिक उपायोंके प्रयोग करनेमें चतुर जीवन्धरकुमार भी उस हाथीको अनेक प्रकारसे खेदखिन्न कर ज्योंही वह तिरछा दन्त प्रहार करनेके लिए तत्पर हुआ त्योंही उसके पैरोंके बीचसे घुसकर पीछेसे निकल गये । विशाल बुद्धिके धारक जो थे । केलेके स्तम्भके समान जिसकी जाँघें थीं ऐसी गुणमालाको कुमारने यद्यपि हाथीके उपद्रवसे छुड़ा दिया था तथापि वह कामरूपी हाथीके आतंकसे युक्त हो गयी। उत्पन्न हुई कामकी वेदनासे जिसका शरीर विवश हो रहा था ऐसी कृशांगी गुणमाला, सेवकोंके द्वारा तत्काल लायी हुई पालकीपर सवार हो घरकी ओर चली । उस समय उसका मुख नीचेकी ओर था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो हृदयके भीतर प्रविष्ट कुमारको देखनेके लिए ही उसने नीचेकी ओर मुख कर लिया था । बार-बार निकलती एवं तीव्र गरमीसे अधर पल्लवको मर्मर—शुष्क पत्र-जैसा बना देनेवाली साँसोंसे उसके स्तनकी चूनरी हिल रही थी । और क्रीड़ाके वचन कहनेवाली प्रिय सखियोंको वह उत्तर न देनेके कारण खिन्न कर रही थी । इस तरह चलती हुई उसने नाना प्रकारकी रचनाओंसे सुन्दर महलमें प्रवेश किया ।

§ १३२. तदनन्तर तुषारके सम्बन्धसे मुरझायी कमलिनीके समान कान्तिको धारण

दुःखदीनाक्षरमप्राक्षीत्—'मातः, किमिति भवती कठोरतरतरणिकिरणतापितमृणालिनीव[1] ग्लानिमनुभवति। निवेदयन्ति च नितान्ततीव्रनिःश्वासमरुतः स्वान्तसंतापम्। करिकदर्थनादतो भवत्याः किमस्त्यन्योऽपि मन्युहेतुः[2]' इति। एवमुक्तापि[3] मुक्तनिश्वासा प्रतिवचसा नाश्वासयामास मातरं मदिराक्षी। अथाधिक्षीणायामभिषङ्गादङ्गजायाः किमनङ्गाक्रमणेन किंस्विद्ग्रहाणां ग्रहणेनाहोस्विदपरेण केनापि वा विकारोऽयमाविरासीदिति वितर्कविह्वलमनसि गतायां मातरि, सहपांसुक्रीडापरिचयपेशला[4]: प्रियसखीरपि निद्रामिषेण विद्राव्य समुत्सारितसकलपरिवारा, प्रविश्य शयनगृहं शयनीयनिपतिताङ्गी, निरङ्कुशनिपतदनङ्गशरनिषङ्गीभूता, प्रभूतकुमारसौकुमार्यसम्पदनु-

या पङ्कजिनी पद्मिनी तस्याः सच्छाया सदृशी तां दुहितरं पुत्रीं सत्वरं शीघ्रमुपेत्य माता दुःखेन दीनान्यक्षराणि यस्मिन् तद्यथा स्यात्तथा अप्राक्षीत्—'मातः, स्त्रीजनोचितं संबुद्धिवचनम् किं केन कारणेन इतीत्थं भवती कठोरतरैस्तीक्ष्णतरैस्तरणिकिरणैः सूर्यरश्मिभिस्तापिता या मृणालिनी कमलिनी तद्वत् ग्लानिं ग्लानतामनुभवति। निवेदयन्तीति—नितान्तमत्यन्तं तीव्राश्च ते निःश्वासमरुतश्चेति नितान्ततीव्रनिश्वासमरुत उष्णतरश्वासोच्छ्वासवायवः स्वान्तसंतापं मनस्तापं निवेदयन्ति च सूचयन्ति च। अतोऽस्मात् करिकदर्थनात् गजनिपीडनात् अन्योऽपीतरोऽपि किं मन्युहेतुः शोककारणम् अस्ति।' इति। एवमिति—एवमनेन प्रकारेण उक्तापि निगदिताऽपि मुक्तनिश्वासा त्यक्तश्वासोच्छ्वासा मदिराक्षी मत्तलोचना प्रतिवचसा प्रत्युत्तरेण मातरं जननीं नाश्वासयामास न संतोषयाञ्चकार। अथेति—अथानन्तरम् आधिक्षीणायां मानसिकव्यथाव्यथितायाम्, अङ्गजायाः पुत्र्याः किमयं विकारः अभिषङ्गात्पराभवात् किम् अनङ्गाक्रमणेन कामोपग्रहेण किंस्विदथवा ग्रहाणां राह्वादीनां ग्रहणेन अपरेण वा केनापि कारणेन निमित्तेन वा आविरासीत् प्रकटीबभूव इति वितर्केण विचारेण विह्वलं मनो यस्यास्तस्यां मातरि गतायां सत्याम्, सहपांसुक्रीडायाः सहधूलिकेल्याः परिचयेन पेशला मनोरमाः प्रियसखीरपि प्रीतिभाजनवयस्या अपि निद्रामिषेण 'मम निद्रा समायाति' इति व्याजेन विद्राव्य दूरीकृत्य समुत्सारितो दूरीकृतः सकलपरिवारो यया तथाभूता सती शयनगृहं शय्यागारं प्रविश्य शयनीये शय्यायां निपतितमङ्गं यस्यास्तथाभूता, निरङ्कुशं स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा निपतताम् अनङ्गशराणां कामबाणानां निषङ्गीभूता-इषुधीभूता

करनेवाली पुत्री गुणमालाके पास शीघ्र ही जाकर माताने दुःखसे दीन अक्षरोंका उच्चारण करती हुई पूछा कि बेटी! क्यों तू इस तरह अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्यकी किरणोंसे तापित मृणालिनीके समान ग्लानिका अनुभव कर रही है? अत्यन्त तीव्र श्वासोच्छ्वासकी वायु तेरे हृदयके संतापको प्रकट कर रही है। इस हस्तिपीड़ाके सिवाय तेरे दुःखका कारण क्या और भी कुछ है?' माताके इस प्रकार कहनेपर भी उस मदिराक्षीने प्रत्युत्तरसे माताको सन्तुष्ट नहीं किया—उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। तदनन्तर मानसिक व्यथासे क्षीण एवं निम्नांकित विचारसे विह्वल चित्तको धारण करनेवाली माता जब यह सोचती-सोचती चली गयी कि पुत्रीका यह विकार क्या तीव्र आसक्तिसे उत्पन्न है? या कामदेवके आक्रमणसे, या ग्रहोंके ग्रहणसे अथवा अन्य किसी दूसरे हेतुसे प्रकट हुआ है? तब निद्राके बहाने साथ-साथ धूलि क्रीड़ाके परिचयसे कोमल प्रिय सखियोंको भी विदा कर गुणमालाने समस्त परिवारको अपने पाससे दूर हटा दिया। वह शय्यागृहमें प्रवेश कर बिस्तरपर पड़ गयी। बिना किसी रोक-टोकके पड़ते हुए कामके बाणोंसे वह तरकशके समान हो गयी। उसका अन्तःकरण जीवन्धर-

---

१. क० ख० ग० तापितच्छिन्नमृणालिनीव। २. क० ग० किमुतान्योऽपि मन्युहेतुः। ३. म० एवमुक्ता प्रतिवचसा। ४. म० परिचयपेशलप्रियसखीरपि।

स्मरणसरणिसंचरदन्तःकरणा[1] तदुपलम्भोपायान्वेषणलम्पटमतिः क्रीड़ाशुकं शोकप्रहाणये पाणौ कुर्वती, सर्वमस्मै समीहितमावेद्यते विद्यते किमत्रोपाय इति सप्रणयं सकृपणं सानुनयं सव्रीडं चान्वयुङ्क्त । स च कीरः, 'किमम्ब कातर्येण । कार्यमिदमवनौ चेत्पार्यते[2] एव मया साधयितुम्' इति सधीरं समभ्यधत्त । सा च मदनकृतोन्मादा प्रमदा प्रमाणस्य परां कोटिं क्रीड़ाशुकवचसा सद्यः समासाद्य तमेव सात्यंधरिसकाशेससंदेशं प्राहिणोत् । स च विहङ्गमो विहायसा सहसा पतन्परितः परिभ्रम्य परिश्रमच्छेदाय गन्धर्वदत्तागृहोद्यानगतस्य कस्यचित्कवलिताकाशावकाशस्य शाखिनः शाखाग्रे सविषादं निषीदति स्म ।

§ १३३. स चापहसितमदहस्तिमदाडम्बरः कुमारः पुनर्मारकरनिपतदासारकुसुमपत्रि-

प्रभूता भूयिष्ठा या कुमारस्य जीवकस्य सौकुमार्यसंपद् मृदुत्वसंपत्तिस्तस्या अनुस्मरणसरणौ चिन्तनमार्गे संचरद् अन्तःकरणं मनो यस्यास्तथाभूता, तस्य कुमारस्योपलम्भस्य प्राप्तेः य उपायास्तेषामन्वेषणेऽनुमार्गणे लम्पटा मतिर्यस्यास्तथाभूता सती, शोकप्रहाणये शोकदूरीकरणाय क्रीडाशुकं केलिकीरं पाणौ करे कुर्वती अस्मै केलिशुकाय सर्वं निखिलं समीहितमभिलषितम् आवेद्य कथयित्वा 'किम् अत्रोपायस्तत्प्राप्तिसाधनं विद्यते' इति सप्रणयं सस्नेहं सकृपणं सदैन्यं सानुनयमनुनयसहितं सव्रीडं सलज्जञ्च अन्वयुङ्क्त पप्रच्छ । स चेति—स च कीरः शुकः 'अम्ब, कातर्येण दैन्येन किम् । इदं कार्यम् अवनौ वसुधायां चेत् तर्हि मया साधयितुमेव पार्यते शक्यते' इति सधीरं प्रगल्भं यथा स्यात्तथा समभ्यधत्त कथयामास । सा चेति—मदनेन मारेण कृत उन्मादो यस्यास्तथाभूता सा प्रमदा च गुणमाला च क्रीडाशुकवचसा केलिकीरवचनेन प्रमाणस्य याथार्थ्यस्य परां चरमां कोटिं सीमानम् सद्यः सत्वरम् समासाद्य तमेव क्रीडाशुकं ससंदेशं संदेशसहितं सात्यंधरिसकाशे जीवंधरसमीपे प्राहिणोत् प्रेषयामास । स चेति—स च विहङ्गमः पक्षी विहायसा व्योम्ना सहसा झगिति पतन् गच्छन् परितः समन्तात् परिभ्रम्य परिश्रमच्छेदाय श्रान्तिदूरीकरणाय गन्धर्वदत्तागृहोद्यानगतस्य खगेन्द्रनन्दिनीगृहारामस्थितस्य कवलितो ग्रस्त आकाशावकाशो येन तस्य कस्यचित् शाखिनो विटपिनः शाखाग्रे सविषादं यथा स्यात्तथा निषीदति स्म निषण्णोऽभूत् ।

§ १३३. स चापहसितेति—अपहसितस्तिरस्कृतो मदहस्तिनो गन्धगजस्य मदाडम्बरो येन तथाभूतः स च कुमारो जीवकः पुनस्तदनु मारस्य स्मरस्य कराभ्यां हस्ताभ्यां निपतन् आसारो धारासंपातो

कुमारकी अत्यधिक सुकुमारतामें संचार कर रहा था । उन्हींकी प्राप्तिके उपाय खोजनेमें उसकी बुद्धि लीन थी । अन्तमें उसने शोक दूर करनेके लिए क्रीड़ाशुकको हाथमें ले उसे अपना सब मनोरथ बतलाया और उससे स्नेह, दीनता, अनुनय और लज्जाके साथ पूछा कि इस विषयमें—जीवन्धरकी प्राप्तिमें क्या कोई उपाय है ? क्रीड़ाशुकने बड़ी धीरताके साथ कहा कि हे मातः ! दीनतासे क्या काम है ? यदि यह कार्य पृथ्वीपर है तो मेरे द्वारा अवश्य ही सिद्ध किया जा सकता है । कामके द्वारा किये हुए उन्मादको धारण करनेवाली गुणमालाने क्रीडाशुकके उक्त वचनसे प्रमाणकी परम कोटिको प्राप्त कर शीघ्र ही उसी क्रीडाशुकको सन्देशके साथ जीवन्धरकुमारके पास भेजा । वह पक्षी भी आकाशमार्गसे सहसा उड़ता हुआ चारों ओर घूमा और अन्तमें थकावट दूर करनेके लिए गन्धर्वदत्ताके घरके किसी ऐसे वृक्षकी शाखाके अग्रभागपर कि जो आकाशके अवकाशको आच्छादित कर रहा था विषादसहित बैठ गया ।

§ १३३. तदनन्तर जिन्होंने मदमाते हाथीके मदाडम्बरकी हँसी उड़ायी थी, कामदेव-

---

१. म० सौकुमार्य सञ्चरदन्त- । २. क० पार्यते सत्यमेव ।

पतनपरवशगात्रः, कर्तव्यान्तरं विस्मृत्य विविधप्रयोगचतुरसहचरचारुगीर्ष्वपि गजनिमीलनं कुर्वन्, गुरुतरगुणमालाभिलाषभारवहनखिन्न इव स्विन्नवपुः, अत्युष्णमायतं च निःश्वस्य निजावसथमभ्येत्य निवारितनिखिलानुयायिवर्गः स्वर्गौकसामपि दुरासदं निजसदनोद्यानमासदत्[1]। तत्र क्वचित्प्रच्छायशीतले महीतले निषण्णो विषण्णहृदयः स्वहृदयनिविष्टां तां बिम्बोष्ठीं बहिरानीयेव प्रत्यक्षयितुकामः तत्कामिनीरूपमभिरूपोऽयमखिलकलासु क्वचिदतिविशङ्कटे प्रकटिततदवस्थामालिखत्। अथ तामालेख्यगतामन्यादृशाभिख्यामतिदीननयनामधिकपरिम्लानवदनामागलितवसनामत्युल्बणव्यसनामव्याजकरुणावहां गुणमालामालोक्य, कुरुवंशशिखामणिरहो महिमा मकर-

येषां तथाभूता ये कुसुमपत्रिणः पुष्पशरास्तेषां पतनेन परवशं परायत्तं गात्रं शरीरं यस्य तथाभूतः, अन्यत्कर्तव्यमिति कर्तव्यान्तरं कार्यान्तरं विस्मृत्य विविधप्रयोगे नानाप्रयोगे चतुरा विदग्धा ये सहचरा मित्राणि तेषां चारुगिरा रमणीयवाण्यस्तास्वपि गजनिमीलनमुपेक्षां कुर्वन् गुरुतरो भूयिष्ठो यो गुणमालाभिलाषभारस्तस्य वहनेन धारणेन खिन्नः श्रान्तस्तद्वत् स्विन्नं स्वेदाक्तं वपुर्गात्रं यस्य तथाभूतः सन् अत्युष्णम् आयतं दीर्घं च निःश्वस्य निजावसथं स्वकीयसदनम् अभ्येत्य समागत्य निवारितो निषिद्धो निखिलोऽखिलोऽनुयायिवर्गोऽनुचरसमूहो येन तथाभूतः स्वर्गौकसामपि देवानामपि दुरासदं दुर्लभं सदनोद्यानं भवनोपवनम् आससाद। तत्रेति—तत्र गृहोद्याने क्वचित्कुत्रापि प्रकृष्टा छाया प्रच्छायं तेन शीतलं शिशिरं तस्मिन् महीतले भूतले निषण्ण उपविष्टः विषण्णहृदयः खिन्नचेताः स्वहृदयनिविष्टां स्वस्वान्तस्थितां तां बिम्बोष्ठीं रक्तरदनच्छदां गुणमालां बहिरानीय तत्कामिनीरूपं गुणमालासौन्दर्यं प्रत्यक्षयितुकाम इव प्रत्यक्षं द्रष्टुमुत्सुक इव अखिलकलासु निखिलवैदग्ध्येषु अभिरूपो विदग्धोऽयं कुमारः क्वचित् कस्मिंश्चिदपि अतिविशङ्कटे विशालतरे पटे तस्या अवस्था तदवस्था प्रकटिता चासौ तदवस्था च प्रकटिततदवस्था तां प्रकटितगुणमालादशाम् आलिखत् गजोपद्रवकाले गुणमालाया यावस्थासीत तां चित्रपटे लिलेखेति भावः। अथेति—अथानन्तरम् आलेख्यगतां चित्रगताम्, अन्यादृशी स्वाभाविकेतरा अभिख्या शोभा यस्यास्ताम्, अतिदीने दीनतावहे नयने यस्यास्ताम्, अधिकं यथा स्यात्तथा परिम्लानं मलिनं वदनं मुखं यस्यास्ताम्, आगलितमीषत्पतितं वसनं वस्त्रं यस्यास्ताम्, अत्युल्बणमत्युत्कटं व्यसनं दुःखं यस्यास्ताम्, अव्याजकरुणावहां निश्छलदयाधारिणीम् गुणमालाम् आलोक्य, कुरुवंशशिखामणिर्जीवंधरः

हाथसे बार-बार पड़ते हुए पुष्पमय बाणोंसे जिनका शरीर परवश हो रहा था, अन्य सब कार्य भूलकर जो नाना प्रकारके प्रयोगोंमें चतुर मित्रोंकी सुन्दर-सुन्दर वाणीमें भी उपेक्षा कर रहे थे, गुणमालाकी अभिलाषारूप बहुत भारी भारके धारण करनेसे खिन्न हुएके समान जिनका शरीर पसीनासे तर हो रहा था, अत्यन्त गरम और लम्बी-लम्बी साँसे भरते हुए जो अपने घर आये थे और घर आते ही जिन्होंने समस्त अनुयायियोंको दूर कर दिया था ऐसे जीवन्धरकुमार देवताओंके लिए भी दुर्लभ अपने घरके उद्यानमें आये। तदनन्तर जो वहाँ सघन छायासे शीतल किसी वृक्षके नीचे बैठ गये थे, जिनका चित्त खेदसे युक्त था, जो अपने हृदयमें स्थित उस बिम्बोष्ठीको बाहर लाकर ही मानो उसके रूपको प्रत्यक्ष देखना चाहते थे, एवं जो समस्त कलाओंमें निपुण थे ऐसे जीवन्धरकुमारने किसी विशाल पटपर उसकी उस प्रकटित अवस्थाको लिखा—हाथीके उपद्रवसे पीडित गुणमालाका चित्र बनाया। तत्पश्चात् जिसकी शोभा दूसरे ही प्रकारकी हो गयी थी, जिसके नेत्र अत्यन्त दीन थे, जिसका मुख अधिक मुरझा गया था, जिसका वस्त्र नीचेकी ओर खिसक गया था, जो बहुत भारी दुःखका अनुभव कर रही थी और जो निश्छल करुणाको धारण कर रही थी ऐसी

१. म० निजसदनो—।

ध्वजस्य, साक्षादिव तां संनिहितामन्यत। यतस्तां पञ्चशरवञ्चितोऽयमवाञ्छदालिङ्गितुम्, आरभत तस्यै किमप्यावेदयितुम्, विषीदति स्म तस्यां जोषमवस्थितायाम्।

§ १३४. एवमवस्थान्तरं गच्छत्यनुच्छतदासङ्गात्सत्यंधराङ्गजे तुङ्गतरतरुशिखरनिलीनः सकेलीशुकः साकूतं ससंभ्रमं च संभ्रमन्तमेनं प्रसारितशिराः सुचिरमुत्पश्यन् 'अयमेवास्माभिरन्विष्टो विशिष्टः। स्पष्टमयमप्याविष्ट इव मदनग्रहेण। गुणमालया भणितमिदं चिह्नमप्यह्नायास्मिन्नविसंवादमश्नुते। ततस्तमुपसर्पामि' इत्यारचितविचारः कुमारनिकटमाटीकते स्म। कुमारोऽपि सविस्मयं साशङ्कं च सपत्रमेनं पत्रिणमुद्वीक्ष्य 'न केवलोऽयम्। न हि निराशङ्कं विहङ्गममात्रस्य त्रासं निवर्त्य मर्त्यसनीडागतिर्जाघटीति।

'अहो मकरध्वजस्य मारस्य महिमा' तां चित्रलिखितां साक्षात् संनिहितामिव निकटस्थितामिव अमन्यत। यतो यस्मात्कारणात् पञ्चशरवञ्चितः कामप्रतारितोऽयं जीवंधरस्ताम् आलिङ्गितुम् अवाञ्छत् इयेष, तस्यै गुणमालायै किमपि गुह्यं तत्त्वमिति यावत् आवेदयितुं कथयितुम् आरभत तत्पराभूत्, तस्यां गुणमालायां जोषमवस्थितायां तूष्णीं विद्यमानायां विषीदति स्म विषण्णश्चाभूत्।

§ १३४. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण तस्यामासङ्गस्तदासङ्गः, अतुच्छश्चासौ तदासङ्गश्चेत्यतुच्छतदासङ्गस्तस्मात् तीव्रतरतदासक्तेः सत्यंधराङ्गजे जीवंधरे अवस्थान्तरं दशान्तरं गच्छति सति, तुङ्गतरतरुशिखरे समुन्नतशाखिशाखायां निलीनः स्थितः स केलीशुकः क्रीडाशुकः साकूतं साभिप्रायं ससंभ्रमं च सविलासं च भ्रमन्तं संचरन्तम् एनं कुमारम् प्रसारितशिराः प्रसारितमस्तकः सुचिरं सुदीर्घकालम् उत्पश्यन् विलोकयन् 'अयमेव एष एवास्माभिः अन्विष्टोऽनुमार्गितो विशिष्टोऽसाधारणः पुरुषः। स्पष्टं व्यक्तम् अयमपि मदनग्रहेण स्मरपिशाचेन आविष्ट इवाक्रान्त इव दृश्यत इति शेषः। गुणमालया भणितं निवेदितं चिह्नमपि लक्षणमपि अह्नाय शीघ्रम् अस्मिन् अविसंवादं विरोधाभावम् अश्नुते व्याप्नोति। ततः कारणात् तं दृश्यमानं जनम् उपसर्पामि तस्य समीपं गच्छामि' इतीत्थम् आरचितो विचारो येन तथाभूतः सन् कुमारनिकटं जीवंधराभ्यर्णम् आटीकते स्म आगमत् 'टीकृ गतौ'। कुमारोऽपीति—कुमारोऽपि जीवंधरोऽपि सविस्मयं साश्चर्यं साशङ्कं च सपत्रं पत्रसहितम् एनं पत्रिणं पक्षिणम् उद्वीक्ष्य-उदवलोक्य 'न केवलोऽयं विहङ्गमः। हि यतो न विहङ्गममात्रस्य पक्षिमात्रस्य निराशङ्कं निःशङ्कं यथा स्यात्तथा त्रासं भयं निवर्त्य दूरीकृत्य मर्त्यसनीडागतिः पुरुषपार्श्वागतिः जाघटीति संघटते।

उस चित्रलिखित गुणमालाको देख कुरुवंशके शिखामणि जीवन्धरकुमार साक्षात् निकटमें स्थित-जैसी मानने लगे यह कामकी ही आश्चर्यजनक महिमा थी। क्योंकि कामसे प्रतारित हो जीवन्धरकुमार उसका आलिंगन करनेकी इच्छा करने लगे उसके लिए कुछ रहस्यपूर्ण वार्ता बतलानेके लिए तैयार हो गये और उसके चुप रहनेपर विषादयुक्त हो गये—खेदका अनुभव करने लगे।

§ १३४. इस प्रकार गुणमालाकी बहुत भारी आसक्तिसे जब जीवन्धरकुमार दूसरी ही अवस्थाको प्राप्त हो रहे थे तब बहुत भारी ऊँचे वृक्षके शिखरपर बैठा हुआ वह क्रीडाशुक खास अभिप्राय एवं संभ्रमके साथ भ्रमण करते हुए इन जीवन्धरकुमारको अपना शिर पसारकर बहुत देर तक देखता रहा। वह विचार करने लगा कि हम जिस विशिष्ट पुरुषको खोज रहे हैं वह यही है। यह भी तो स्पष्टतया कामरूपी पिशाचसे आक्रान्त-जैसा दिखाई दे रहा है। गुणमालाने जो चिह्न कहा था वह शीघ्र ही इसमें बिना किसी विवादके घटित होता है। अतः मैं इसके पास जाता हूँ', ऐसा विचारकर वह जीवन्धरकुमारके पास गया। जीवन्धरकुमार भी विस्मय और आशंकाके साथ इस पत्रसहित पक्षीको देखकर विचार

१. म० चिह्नमह्नाय।

बाढमनेन च क्रीडाशुकेन भवितव्यम् । किं चायं शुकः किंशुकातिशायिचञ्चुपुटे धत्ते किमपि पत्रमपि । दिष्ट्या सापि किमस्मद्यते यास्मानित्थमुन्मत्तयति । अचिन्त्यानुभावं हि भवितव्यम् । पुष्पबाणोऽपि वा निष्फलप्रयासः किमस्मास्वेव सायकं संधत्ते । संगमयितुमावां समुत्सुकस्य तस्य तस्यामपि विद्धायां हि मनीषितसिद्धिः' इतीत्थमन्यथाप्यमन्यत । तथा मन्यमानं मारमहनीयं कुमारमादरादभिप्रणम्य सप्रश्रयं समर्पितसंदेशः समुत्क्षिप्य दक्षिणं पादं पद्यमिदं पपाठ क्रीडाशुकः ।

§ १३५. 'विषयेषु समस्तेषु कामं स फलयन्सदा ।
गुणमालां जगन्मान्यां जीव[1] त्वं जीवताच्चिरम् ॥'

बाढं स्पष्टम् अनेन च क्रीडाशुकेन केकीकीरेण भवितव्यम् भावे प्रयोगः । किं च, अन्यत् किमपि, अयं शुकः किंशुकातिशायिचञ्चुपुटे पलाशपुष्पातिशायित्रोटिपुटे किमपि पत्रमपि लेखदलमपि धत्ते दधाति । दिष्ट्या दैवेन सापि गुणमालापि किम् अस्मद्यते अहमिवाचरति या अस्मान् इत्थमनेन प्रकारेण उन्मत्तयति उन्मत्तं करोति । अचिन्त्योऽविचार्योऽनुभावः प्रभावो यस्य तथाभूतं हि भवितव्यं भावि भवतीति शेषः । पुष्पबाणोऽपि वा कामोऽपि वा निष्फलप्रयासो मोघोद्योगः सन् किम् अस्मास्वेव सायकं बाणं संधत्ते । आवां द्वौ संगमयितुं मेलयितुं समुत्सुकस्य समुत्कण्ठितस्य तस्य मदनस्य तस्यामपि गुणमालायामपि विद्धायां सत्यां कृतव्रणायां सत्यां हि मनीषितसिद्धिरभिलषितसिद्धिः', इतीत्थमन्यथापि-अन्यप्रकारेणापि अमन्यत मन्यते स्म । तथा तादृशं मन्यमानं जानन्तं मार इव महनीयस्तं कामपूजनीयं कुमारम् आदरात् अभिप्रणम्य नमस्कृत्य सप्रश्रयं सविनयं समर्पितः संदेशो येन तथाभूतः सन् दक्षिणं वामेतरं पादं चरणं समुत्क्षिप्य समुत्थाप्य पद्यमिदमधोलिखितं क्रीडाशुकः पपाठ ।

§ १३५. विषयेष्विति—हे जीव, हे जीवक, त्वं सदा कामं यथेच्छं यथा स्यात्तथा जगन्मान्यां जगत्पूज्यां गुणमालां गुणसन्ततिम् पक्षे गुणमालानाम्नीं कन्याम् समस्तेषु विषयेषु सफलयन् चिरं दीर्घकालं यावत् जीवतात् जीवितो भव । अनुष्टुब् छन्दः ।

करने लगे कि 'यह केवल पक्षी नहीं है क्योंकि केवल पक्षीका निःशंक हो भय छोड़कर मनुष्यके पास आना संगत नहीं होता । निश्चित ही इसे क्रीड़ाशुक होना चाहिए । इसके सिवाय यह पक्षी पलाश पुष्पको पराजित करनेवाली चोंचमें कुछ पत्र भी धारण कर रहा है । भाग्यवश वह गुणमाला भी, कि जो हमें इस तरह उन्मत्त बना रही है क्या हमारे ही समान आचरण कर रही है ? भवितव्यकी महिमा अचिन्त्य है । अथवा कामदेव भी निष्फल-प्रयास हो केवल हमारे ऊपर ही बाण धारण करता है । यदि कामदेव हम दोनोंको मिलाना चाहता है तो गुणमालाके भी विद्ध होनेपर उसके मनोरथकी सिद्धि हो सकती है ।'''इस तरह तथा अन्य तरह भी जीवन्धरकुमारने विचार किया । उस प्रकारका विचार करनेवाले एवं कामदेवके समान प्रशंसनीय जीवन्धरको बड़े आदरसे प्रणाम कर तथा विनयपूर्वक सन्देश सुनाकर दाहिना पैर ऊपर उठा क्रीड़ाशुकने यह श्लोक पढ़ा ।

§ १३५. 'विषयेषु समस्तेषु कामं सफलयन् सदा । गुणमालां जगन्मान्यां जीवयञ्जीवताच्चिरम् ॥

समस्त विषयोंमें इच्छानुसार सदा सफल होते हुए आप जगत्-द्वारा माननीय गुणोंकी पंक्तिको (पक्षमें गुणमाला नामकी कन्याको) जीवित रखते हुए चिरकाल तक जीवित रहें ।

---

१. क० ख० ग० जीवत्वं जीवताच्चिरम् । हे जीव ! हे जीवक त्वं वर्धस्व, इति टि० । म० जीवयञ्जीवताच्चिरम् ।

§ १३६. तदुपश्रुत्य विश्रुतविश्ववैदुष्योऽयममुष्य पाण्डित्यमतिचतुरं संभाव्य ससंभ्रमं संदेशं वाचयामास। आसीच्चास्य तत्कन्यालिखितमनन्यजसंजातसंज्वरस्य संजीवनौषधम्। अबुध्यत चात्मानमवन्ध्यप्रयासं गन्धोत्कटसूनुः। प्राहैषीच्च स मनीषी मनीषितार्थसमर्थनपरचतुरवचनगर्भप्रतिपत्रलाभेन प्रगुणप्रहर्षं गुणमालासनीडे क्रीडाशुकम्।

§ १३७. सा च तदागमनं प्रतीक्षमाणा प्रतिक्षणविजृम्भमाणोत्कण्ठा 'किमयं शुकस्तं जनं पश्येत्समीहितमपि नाम साधयेत्। कदा वा समागच्छेत्।' इत्युत्पन्नमतिरुद्ग्रीवा चातकीव जीमूतागमनास्था गगनं समुद्वीक्ष्य सविषादं निषसाद। तथा निषीदन्तीं निरन्तरनिपतदायल्लकं-

§ १३६ तदुपश्रुत्येति—तत्पद्यमाशीर्वादात्मकं उपश्रुत्य निशम्य विश्रुतं प्रसिद्धं विश्ववैदुष्यं निखिलपाण्डित्यं यस्य तथाभूतोऽयं जीवंधरः अमुष्य क्रीडाशुकस्य पाण्डित्यं वैदुष्यम् अतिचतुरमतिविदग्धं संभाव्य ससंभ्रमं संभ्रमेण सहितं संदेशं वाचयामास कथयामास। आसीच्च बभूव च कन्यालिखितं तत् पत्रम् अनन्यजेन कुसुमेषुणा संजातः संज्वरो यस्य तथाभूतस्य अस्य जीवकस्य संजीवनौषधं प्राणप्रदौषधम्। अबुध्यत च—अमन्यत च गन्धोत्कटसूनुर्जीवंधर आत्मानम् अवन्ध्यप्रयासं सफलप्रयत्नम्। प्राहैषीच्चेति—प्राहैषीत्प्रेषयामास च स मनीषी बुद्धिमान् जीवंधरो मनीषितार्थस्याभिलषितार्थस्य समर्थनपराणि चतुरवचनानि विदग्धवचांसि गर्भे यस्य तथाभूतं यत्प्रतिपत्रं तस्य लाभेन प्राप्त्या प्रगुणः प्रचुरः प्रहर्षो यस्य तं क्रीडाशुकं केलीकीरम् गुणमालासनीडं गुणमालासमीपम्।

§ १३७ सा चेति—सा च गुणमाला च तदागमनं क्रीडाशुकप्रत्यागमनं प्रतीक्षमाणा प्रतिक्षणं प्रतिसमयं विजृम्भमाणा वर्धमानोत्कण्ठा समौत्सुक्यं यस्यास्तथाभूता 'किमयं शुकः कीरः तं जनं जीवंधरं पश्येत् समीहितमपि मनीषितमपि साधयेत्। कदा वा समागच्छेत्' संभावनायां लिङ्, इत्युत्पन्ना मतिर्यस्यास्तथाभूता, उत्थापिता ग्रीवा यस्याः सा, जीमूतस्य मेघस्यागमने आस्था यस्यास्तथाभूता चातकीव गगनं नभो समुद्वीक्ष्य समवलोक्य सविषादं सखेदं यथा स्यात्तथा निषसाद निषण्णाऽभूत्। तथेति—तथा तेन प्रकारेण निषीदन्तीं समुपविष्टां निरन्तरमनवरतं निपतन्तो य

§ १३६ जिनका समस्त विषयोंका पाण्डित्य प्रसिद्ध था ऐसे जीवन्धरकुमारने क्रीड़ाशुकके उक्त श्लोकको सुनकर तथा उसके अत्यन्त चतुर पाण्डित्यकी प्रशंसा कर शीघ्रतासे सन्देशको बाँचा। कन्याके द्वारा लिखा हुआ वह सन्देशपत्र कामज्वरसे पीड़ित जीवन्धरकुमारके लिए संजीवन औषध हुआ। उन्होंने अपने-आपको सफल प्रयाससे युक्त समझा। तदनन्तर बुद्धिमान् जीवन्धरकुमारने अभिलषित अर्थके समर्थन करनेमें तत्पर चतुर वचनोंसे युक्त बदलेका पत्र प्राप्त होनेसे जिसका हर्ष बहुत बढ़ गया था ऐसे उस क्रीड़ाशुकको गुणमालाके पास वापस भेज दिया।

§ १३७. उधर क्षण-क्षणमें जिसकी उत्कण्ठा बढ़ रही थी ऐसी गुणमाला क्रीड़ाशुकके आगमनकी प्रतीक्षा करती हुई विचार कर रही थी कि यह शुक क्या उन्हें देख सकेगा? मनोरथको सिद्ध कर सकेगा? अथवा कब वापस आयेगा? इस प्रकार विचार करती हुई वह मेघके आगमनमें श्रद्धा रखनेवाली चातकीके समान गरदन ऊपर उठाकर आकाशकी ओर देखती हुई विषादसहित बैठी थी। तदनन्तर जो उस प्रकार प्रतीक्षा करती हुई बैठी थी,

१. म० स मनीषितार्थसमर्थन—। २. आयल्लकः मदनः, इति टि०।

भल्लबाहुल्यादकल्यामकल्याणाकृतिमारादालोक्य[1] शुकस्तां विच्छायावमानमवच्छेत्तुमलं प्रगल्भस्तल्पशरणां गुणमालां समभ्यगमत्। तथा सा च तमन्तरिक्ष एव वीक्षमाणा, प्रसभं प्रतिगृह्य बाढं परिरभ्य हर्षाश्रुभिरध्वश्रममिवापहर्तुमभिषिञ्चन्ती, मुञ्चती रोमाञ्चम्, मुहुः शिरस्याघ्राय मुहूर्तमुद्दामसंभ्रमा वामोरुर्वामाक्षिस्पन्देन परिचितनिमित्तलाभेन प्रागेव सूचितशुभागमा, शुकमुखप्रसादोक्तां पुनरुक्तां समीहितसंप्राप्तिं सात्यंधरिसंदेशतः संदेहविकलमाकलयत्।

§ १३८. ततस्तां मञ्जुभाषिणीं किंचिद्गलद्वैमनस्यां वयस्यामुखेन[2] वसन्तबन्धुविकारचिह्नेन जीवंधरगतास्थया समुपस्थिततदवस्था समुपलभ्य पितरौ भृशं प्रीणन्तौ 'गुणमालेव सत्यमियं गुणमाला, यदियमपहस्तितास्थानगतास्था[3] सर्वथा योग्ये भाग्यादृते दुर्लभे वल्लभबुद्धि

आयत्कलकमल्ला मदनमल्लास्तेषां बाहुल्यादाधिक्यात् अकल्यामस्वस्थाम्, अकल्याणी आकृतिर्यस्यास्ताम् तल्पशरणां शय्यापतितां गुणमालाम् आराद् दूरात् 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः, आलोक्य दृष्ट्वा विच्छायावमानं निष्प्रभतावमानम् अवच्छेत्तुं ज्ञातुम् अलं प्रगल्भः शुकः समभ्यगमत् समीपं जगाम। तथेति—तथा तेन प्रकारेण सा च गुणमाला च तं शुकम् अन्तरिक्ष एव नभस्येव वीक्षमाणा विलोकमाना प्रसभं हठात् प्रतिगृह्य करेण गृहीत्वा बाढं सातिशयं परिरभ्य समालिङ्ग्य अध्वश्रमं मार्गखेदमपहर्तुमिव हर्षाश्रुभिः अभिषिञ्चन्ती, रोमाञ्चं पुलकं मुञ्चन्ती दधती, मुहुर्भूयः शिरसि मूर्ध्नि आघ्राय नासाविषयीकृत्य मुहूर्तं मुहूर्तपर्यन्तम् उद्दामसंभ्रमा उत्कटविलासा वामोरुः सुसक्थिः वामाक्षिस्पन्देन दक्षिणेतरनेत्रस्पन्दनेन परिचितनिमित्तलाभेन प्रागनुभूतनिमित्तप्राप्त्या च प्रागेव पूर्वमेव सूचितः शुभागमो यस्यास्तथाभूता सती शुकस्य मुखप्रसादेन वक्त्रप्रसन्नतयोक्ता तां तथाभूतां पुनरुक्तां पुनरुदीरितां समीहितसंप्राप्तिं वाञ्छितार्थप्राप्तिं सात्यंधरिसंदेशतो जीवंधरसंदेशतो संदेहविकलं निःसन्देहं यथा स्यात्तथा आकलयत् ज्ञातवती।

§ १३८. ततस्तामिति—ततस्तदनन्तरम् तां मञ्जुभाषिणीं सुभाषिणीम् किंचित् मनाग् विगलद् नश्यद् वैमनस्यं यस्यास्तां वयस्यामुखेन सहचरीवक्त्रेण वसन्तबन्धुर्मदनस्तस्य विकारस्य चिह्नं तेन जीवंधरगतास्थया जीवकाभिलषितेन समुपस्थिता तदवस्था यस्यास्तथाभूतां समुपलभ्य पितरौ मातापितरौ भृशमत्यर्थम् प्रीणन्तौ संतुष्यन्तौ 'इयं गुणमालैव सत्यं यथार्थं गुणमाला गुणपङ्क्तिः, यद्यस्मात्कारणात् इयम् अपहस्तिता दूरीकृता अस्थानगता अपात्रसंबन्धिनी आस्था यया तथाभूता सती, सर्वथा सर्व-

निरन्तर पड़ते हुए कामके बाणोंकी अधिकतासे जो अस्वस्थ जान पड़ती थी, जिसकी आकृति अमंगल रूप थी तथा बिस्तर ही जिसका शरण था ऐसी गुणमालाको आदरपूर्वक देख, निष्प्रभताका कारण जाननेमें अत्यन्त चतुर क्रीड़ाशुक उसके सम्मुख गया। तदनन्तर उसने आकाशमें देखते ही उस क्रीड़ाशुकको जबरदस्ती पकड़ लिया, उसका खूब आलिङ्गन किया, मार्गकी थकावट दूर करनेके लिए ही मानो हर्षाश्रुओंसे उसका अभिषेक किया, स्वयं रोमांच छोड़े, शिरपर बार-बार सूँघा और स्वयं उत्कट संभ्रमसे युक्त हो मुहूर्त-भर बैठी रही। यद्यपि बायीं आँखके फड़कनेसे तथा परिचित—अनुभूत निमित्तके मिलनेसे उसे शुभ समागमकी सूचना पहले ही मिल चुकी थी तथापि उसने शुकके मुखकी प्रसन्नतासे कही हुई मनोरथकी पुनरुक्त प्राप्तिको जीवन्धरकुमारके सन्देशसे निःसन्देह जान लिया।

§ १३८. तदनन्तर जिसकी उदासीनता कुछ-कुछ नष्ट हो गयी थी और जो मधुर भाषण करने लगी थी ऐसी गुणमालाको, सखीके मुखसे तथा कामविकारके चिह्नसे जीवन्धरसम्बन्धी अनुरागके कारण उक्त अवस्थासे सम्पन्न जानकर उसके माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए। 'चूँकि यह अन्य अयोग्य पुरुषमें आदरबुद्धिको दूर कर सदा तथा सब प्रकारसे योग्य

१ म० अकल्याणाकृतिमादरारालोक्य। २. क० वयस्यामुखेन वसन्तीं वसन्तबन्धु। ३. म० सर्वदा सर्वथा।

बध्नाति' इति स्फारमुपलाल्य[1] दुहितरं तत्कल्याणपरायणावभूताम्। प्राहिणुतां च गन्धोत्कटसविधे विविधवैदुष्यावामुष्यायणौ वर्षीयांसौ पुरुषौ। तावपि सादरभरमभ्येत्य तमिभ्यपतिमियत्तादूरमितरासंभवं तेन संभावितौ च 'तत्रभवतोः किमत्रागमने प्रयोजनम्? नियोजयतां समीहिते मां कर्मणि' इति सानुनयमनुयुक्तौ च मुहुर्वक्तुमीप्सितमुपाक्रंसाताम्—'अयि महाभाग, धात्रीतले 'तव पुत्राय नः पुत्रीं समर्पयाम' इति न प्रसर्पति व्यवहारः। तथापि भवतस्तनयस्य भुवनप्रतीक्ष्यत्वादपेक्ष्यतेऽस्माभिरयमर्थः। श्रुत्वेदमत्रभवान् प्रमाणम्'। इति सकृपणं सप्रणयं च

प्रकारेण योग्ये भाग्यादृते दैवाद् विना दुर्लभे दुष्प्राप्ये वल्लभबुद्धिं भर्तृधियं बध्नाति' इति स्फारमत्यन्तं यथा स्यात्तथा दुहितरं पुत्रीम् उपलाल्य प्रशस्य तस्याः कल्याणं तत्कल्याणं तस्मिन् परायणौ अभूताम्। प्राहिणुतां च प्रेषयामासतुश्च गन्धोत्कटसविधे वैश्यपतिसमीपे विविधवैदुष्यौ नानाप्रकारपाण्डित्यौ आमुष्यायणौ कुलीनौ वर्षीयान्सौ वृद्धतरौ पुरुषौ। तावपीति—तौ पुरुषावपि तं पूर्वोक्तम् इभ्यपतिं धनिकपतिं गन्धोत्कटं सादरभरम् आदरातिशययुक्तं यथा स्यात्तथा अभ्येत्य संमुखं गत्वा इयत्तादूरं मर्यादातीतम् इतरासंभवम् अन्यजनासाधारणं तेन वैश्यपतिना संभावितौ सत्कृतौ च 'तत्रभवतोर्माननीययोर्भवतोः अत्रागमने किं प्रयोजनम्। मां समीहितेऽभिलषिते कर्मणि नियोजयताम् नियुक्तं कुरुताम्', इति सानुनयं सस्नेहं मुहुः पुनः पुनः अनुयुक्तौ पृष्टौ च ईप्सितमभिलषितं वक्तुम् उपाक्रंसाताम्—तत्परावभूताम्—अयि महाभाग, अये महाशय, धात्रीतले पृथिवीतले 'तव पुत्राय जीवंधराय नोऽस्माकं पुत्रीं समर्पयामः' इति व्यवहारो न प्रसर्पति तथापि भवतस्तनयस्य पुत्रस्य भुवनप्रतीक्ष्यत्वाज्जगत्पूज्यत्वात् अस्माभिः अयमर्थः अपेक्ष्यतेऽभिलष्यते। यद्यपि 'तव पुत्राय वयं स्वपुत्रीं समर्पयामः' इति व्यवहारो न योग्यो विद्यते भवदपेक्षयास्माकं हीनशक्तित्वात्। तथापि भवतस्तनयस्य भुवनप्रतीक्ष्यत्वादस्माभिरपि पुत्रीसमर्पणाय तदपेक्षा क्रियत इति भावः। इदं श्रुत्वा समाकर्ण्य अत्रभवान् माननीयस्त्वम् अत्र विषये प्रमाणम्' इतीत्थं सकृपणं सदैन्यं सप्रणयं सस्नेहं ताभ्यां वर्षीयोभ्याम् प्रणीतं निवेदितं प्रतीच्छन् अभिलषन्

और भाग्यके बिना दुर्लभ पुरुषमें ही वल्लभकी बुद्धि धारण कर रही है इसलिए यह गुणमाला सचमुच ही गुणोंकी माला ही है' इस प्रकार उसकी बहुत भारी प्रशंसा कर उसके कल्याण करनेमें—विवाह करनेमें तत्पर हो गये। उन्होंने नाना प्रकारके पाण्डित्यको धारण करनेवाले अपने पक्षके दो वृद्ध पुरुष गन्धोत्कटके समीप भेजे। दोनों वृद्ध पुरुष बहुत भारी आदरके साथ वैश्यशिरोमणि गन्धोत्कटके निकट गये। गन्धोत्कटने दोनोंका मर्यादासे रहित तथा अन्य मनुष्योंके लिए दुर्लभ सत्कार कर उनसे विनयपूर्वक पूछा कि आप महानुभावोंके यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है? आप हमें अभिलषित कार्यमें नियुक्त कीजिए। इस प्रकार गन्धोत्कटने जब बार-बार प्रेमपूर्वक पूछा तब वे इस प्रकार अपना मनोरथ कहनेके लिए तत्पर हुए। उन्होंने कहा कि 'हे महानुभाव! हम आपके पुत्रके लिए अपनी पुत्री समर्पण करते हैं' यह व्यवहार यद्यपि पृथ्वीतलपर नहीं फैल रहा है तथापि चूँकि आपका पुत्र संसारके द्वारा पूज्य है इसलिए हम यह कार्य चाहते हैं। भावार्थ—अपनी अयोग्यता देखते हुए तो यह कहनेका साहस नहीं होता कि हम अपनी पुत्री आपके पुत्रके लिए समर्पित कर रहे हैं परन्तु आपके पुत्रकी जगन्मान्यता देख हम लोग चाहते हैं कि यह कार्य हो जाये तो अच्छा है। यह सुनकर इस विषयमें आप ही प्रमाण हैं', इस प्रकार दीनता और स्नेहके साथ उन दोनों वृद्ध पुरुषोंके द्वारा कथित प्रार्थनाको 'दोनोंका विवाह सम्बन्ध हो क्या दोष

[1] म० उपलाल्य तत्कल्याण''''।

ताभ्यां प्रणीतं वणिक्प्रवेकः प्रतीच्छन् 'अस्तु, को दोषः ।' इत्यभ्युपागच्छत् ।

§ १२९. अथ गन्धोत्कटे तयोरत्युत्कटप्रार्थनया तमर्थमभ्युपगतवति, प्रतिक्षणसमापतद्बान्धवशतसहस्रसमाकुले प्रणयिजनप्रेषितप्रभूतप्राभृतभरितखलूरीपरिसरे प्रकृष्टशिल्पिलोककल्प्यमानपरिकर्मविकल्पकमनीयनिवेशे नैकशतवितानोपधानपताकाद्युपयोगपाट्यमानपट्टांशुकपटले पद्मरागमणितोरणोत्तम्भशुम्भितबहिर्द्वारवितर्दिके वित्तवितरणानन्दिवन्दिवृन्दारकवृन्दपाठ्यमानप्रशस्तिकाव्यकलकलमुखरे मुहुर्मुहुराहूयमानपरिणयनोपकरणसंनिधापनकर्मकर्मान्तिके गृहचिन्तकचिन्त्यमानसदनप्रतिविधेये विधेयचामीकरकारविधीयमानमण्डनहाटकघट्टनटङ्कारवाचालिताभ्यर्णे निर्वर्त्य-

वणिक्प्रवेकः 'अस्तु, को दोषः' इति अभ्युपागच्छत् स्वीचकार ।

§ १२९ अथेति—अथानन्तरं गन्धोत्कटे तयोः वर्षीयसोः अत्युत्कटप्रार्थनया प्रार्थनातिशयेन तम् अर्थम् अभ्युपगतवति स्वीकृतवति सति, वधूवरयोर्भवने वधूवरभवनं कन्याजामातृसदने बभूवतुः इति कर्तृक्रियासम्बन्धः । अथ तयोरेव विशेषणान्याह—प्रतिक्षणेति-प्रतिक्षणं क्षणं क्षणं प्रति समापतन्तः समागच्छन्तो ये बान्धवा इष्टजनास्तेषां शतसहस्रेण बाहुल्येन समाकुले व्याप्ते, प्रणयीति—प्रणयिनो जना इति प्रणयिजनास्तैः स्नेहिपुरुषैः प्रेषितैः प्रहितैः प्रभूतप्राभृतैरत्यधिकोपहारवस्तुभिर्भरितः खलूरीपरिसरः स्थानविशेषपार्श्वं ययोस्ते, प्रकृष्टेति—प्रकृष्टैः श्रेष्ठैः शिल्पिलोकैः कार्यकरैः कल्प्यमानानि निर्मीयमाणानि यानि परिकर्माणि रचनाविशेषास्तेषां विकल्पैरवान्तरभेदैः कमनीयो मनोहरो निवेशो ययोस्ते, नैकेति—नैकशतं प्रभूतपरिमाणानि यानि वितानोपधानपताकादीनि चन्द्रोपकोपधानध्वजप्रभृतीनि तेषामुपयोगाय पाट्यमानानि पट्टांशुकपटलानि क्षौमवस्त्रपटलानि ययोस्ते, पद्मरागेति—पद्मरागमणितोरणानां लोहिताश्ममणितोरणानामुत्तम्भेन समुत्थापनेन शुम्भिता शोभिता बहिर्द्वारवितर्दिका ययोस्ते; वित्तेति—वित्तवितरणेन धनप्रदानेनानन्दिनो ये वन्दिवृन्दारकाः श्रेष्ठमागधास्तेषां वृन्देन समूहेन पाठ्यमानानि समुच्चार्यमाणानि यानि प्रशस्तिकाव्यानि तेषां कलकलेन कलकलशब्देन मुखरे शब्दायमाने, मुहुरिति—मुहुर्मुहुर्भूयोभूय आहूयमाना आकार्यमाणाः परिणयनोपकरणानां विवाहोपकरणानां संनिधापनकर्मणः समुपस्थापनकर्मणः कर्मान्तिकाः सेवका ययोस्ते, गृहेति—गृहचिन्तकैः चिन्त्यमानानि विचार्यमाणानि सदनप्रतिविधेयानि गृहकार्याणि ययोस्ते, विधेयेति—विधेया दासीभूता ये चामीकरकाराः स्वर्णकारास्तैर्विधीयमानं क्रियमाणं यत् मण्डनहाटकस्य भूषणसुवर्णस्य घट्टनं ताडनं तस्य टङ्कारेण अव्यक्तशब्देन वाचालितं शब्दायमानमभ्यर्णं

है' यह कहते हुए स्वीकृत कर लिया।

§ १२९. अथानन्तर उन दोनों वृद्ध पुरुषोंकी बहुत भारी प्रार्थनासे जब गन्धोत्कटने उस कार्यको स्वीकृत कर लिया तब जो प्रत्येक क्षण आते हुए लाखों रिश्तेदारोंसे व्याप्त थे, प्रेमीजनोंके द्वारा भेजे हुए बहुत भारी उपहारोंसे जिनके शस्त्राभ्यासके योग्य स्थानोंके समीपवर्ती प्रदेश भर चुके थे, उत्तमोत्तम कारीगरोंके द्वारा बनाये जानेवाले आभूषणोंके प्रकारोंसे जिनके बैठकखाने सुन्दर दिखाई पड़ते थे, सैकड़ों चँदोवों, तकियों और पताकाओं आदिके उपयोगके लिए जिनमें पाटके वस्त्रोंके थान फाड़े जा रहे थे, पद्मरागमणियोंके तोरण खड़े किये जानेसे जिनके बाह्य द्वारके चबूतरे सुशोभित हो रहे थे, धनके देनेसे हर्षित श्रेष्ठ वन्दीजनोंके समूह-द्वारा बार-बार पढ़े जानेवाले प्रशस्ति काव्योंकी कलकल ध्वनिसे जो शब्दायमान थे, जहाँ विवाह-सम्बन्धी उपकरणोंको उपस्थित करनेके कार्यमें नियुक्त सेवक बार-बार बुलाये जा रहे थे, जहाँ घरकी चिन्ता रखनेवाले मनुष्योंके द्वारा घरके प्रत्येक कार्यकी चिन्ता की जा रही थी, सेवाकार्यमें नियुक्त स्वर्णकारोंके द्वारा बनाये जानेवाले आभूषणोंके स्वर्णको पीटनेके कारण उत्पन्न हुए टन-टन शब्दसे जहाँ समीपवर्ती प्रदेश शब्दायमान हो रहे थे

मानमङ्गलवसनताम्बूलाङ्गरागे वधूवरभवने बभूवतुः ।

§ १४०. ततः समागतवति सकलमौहूर्तिकमहिते विवाहदिवसे, दीप्यमानशिखाजालजटिलितस्य शिखिनः पुरस्तादास्थावदाकल्पकालिप्तघनतरघनसारसुरभिपटीरपङ्कपरिमलितदेहाम्, देहजजगद्विजयाभिषेककलशकौशलमलिम्लुचकुचयुगलविलम्बमानहारतारकिततनुम्, तदात्वफुल्लबन्धूककान्तिबान्धवरक्तांशुकपाटलितनितम्बाम्, उद्यदम्बरमणिकिरणकलापलोहितसकाशाम्, पाकशासनदिशमिव दृश्यमानाम्, दर्शनीयभूषणमयूखलताकुलितलोकदृशम्, तटितमिव चिरावस्थायिनीम्, अवस्थापितकुसुमदामसारेण रोहदुडुपटलजर्जरिततिमिरविराजिविभावरीविलास-

यथोस्ते, निर्वर्त्स्येति—निर्वर्त्यमाना रच्यमाना मङ्गलवसनताम्बूलाङ्गरागा मङ्गलवस्त्रनागवल्लीदलाङ्गलेपनानि ययोस्ते ।

§ १४०. तत इति—ततस्तदनन्तरं सकलैर्मौहूर्तिकैर्महितस्तस्मिन् निखिलदैवज्ञप्रशंसिते विवाहदिवसे परिणयवासरं समागतवति दीप्यमानेन प्रज्वलता शिखाजालेन जटिलितस्य व्याप्तस्य शिखिनोऽनलस्य पुरस्तात् अग्रे आस्थावन्त आदरयुक्ता य आकल्पका आभूषकास्तैरालिप्तो यो घनतरघनसारो निविडकर्पूरं तेन सुरभिः सुगन्धिर्यः पटीरपङ्कश्चन्दनद्रवस्तेन परिमलितः संजातपरिमलः सुगन्धित इति यावत् देहो यस्यास्ताम्, देहजस्य मदनस्य यो जगद्विजयाभिषेको भुवनविजयाभिस्नपनं तस्य कलशानां कुम्भानां यत्कौशलं तस्य मलिम्लुचमपहारकं यत्कुचयुगलं स्तनयुगं तत्र विलम्बमानेन पतता हारेण मौक्तिकमाल्येन तारकिता व्याप्ता तनुः शरीरं यस्यास्ताम्, तदात्वफुल्लानां तत्कालविकसितानां बन्धूकानां जीवककुसुमानां कान्त्या बान्धवा सदृशानि यानि रक्तांशुकानि लोहितवस्त्राणि तैः पाटलितौ श्वेतरक्तीकृतौ नितम्बौ यस्यास्ताम्, उद्यत उद्गच्छतोऽम्बरमणेः सूर्यस्य किरणकलापैः रश्मिराशिभिर्लोहितो रक्तवर्णीकृतः सकाशः समीपप्रदेशो यस्यास्तथाभूतां पाकशासनदिशमिव प्राचीमिव दृश्यमानाम्, दर्शनीयानि द्रष्टव्यानि मनोहराणि यानि भूषणानि तेषां मयूखलतया किरणवल्लर्या आकुलिताश्चिल्लीकृता लोकदृशो जननयनानि यया ताम्, चिरावस्थायिनीं दीर्घकालावस्थायिनीं तटितमिव सौदामनीमिव, अवस्थापितेन धृतेन कुसुमदाम्ना सारः श्रेष्ठस्तेन रोहतामुद्यतामुडूनां नक्षत्राणां पटलेन समूहेन जर्जरितं खण्डितं यत्

और जहाँ मंगल वस्त्र, पान तथा अंगराग तैयार किये जा रहे थे ऐसे वधू और वरके भवन हो गये ।

§ १४०. तदनन्तर समस्त ज्योतिषियोंके द्वारा संमत विवाहका दिन आनेपर देदीप्यमान शिखाओंके समूहसे व्याप्त अग्निके सामने समस्त जीवोंके जीवनके रक्षक जीवन्धरकुमारने कुबेरमित्रके द्वारा दी हुई विनयमालाकी पुत्री गुणमालाको गुणवान् लग्नमें आदरसहित विवाहा। उस समय गुणमालाका शरीर श्रद्धावन्त सजावटकर्ताओंके द्वारा लिप्त अत्यधिक कपूरसे सुगन्धित चन्दनके पंकसे सुरभित हो रहा था। उसके नितम्ब तत्काल फूले हुए दुपहरियाके फूलोंकी कान्तिसे सहित लाल वस्त्र (तूल) से लाल थे। इसलिए वह उदित होते हुए सूर्यकी किरणावलीसे जिसका समीपवर्ती भाग लाल हो रहा था ऐसी पूर्व दिशाके समान दिखाई देती थी। सुन्दर-सुन्दर आभूषणोंकी किरणरूपी लतासे वह मनुष्योंके नेत्रोंको आकुलित कर रही थी इसलिए चिरकाल तक स्थिर रहनेवाली बिजलीके समान जान पड़ती थी। और जिसमें फूलोंकी श्रेष्ठ मालाएँ लगायी गयी थीं या जो उदित

१. म० देहजजगज्जयाभिषेक ।

चोरेण चिकुरभारेण कामपि सुशोभामाविर्भावयन्तीम्,[1] कुबेरमित्रदत्तां विनयमालासुतां गुणमालां गुणवति लग्ने लग्नकः[2] सकलजन्तुजीवनस्य जीवंधरः सादरमुपयेमे ।

§ १४१. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ गुणमालालम्भो नाम चतुर्थो लम्भः ।

■

तिमिरं तेन विराजिनी विशोभिनी या विभावरी रात्रिस्तस्या विलासस्य शोभायाश्चोरेण तस्करेण, चिकुरभारेण केशसमूहेन कामप्यनिर्वचनीयाम् सुशोभाम् आविर्भावयन्तीं प्रकटयन्तीम्, कुबेरमित्रेण तन्नामजनकेन दत्ता ताम्, विनयमालाया एतन्नामधेयायाः सुता पुत्री ताम्, गुणमालामेतन्नामधेयाम् गुणवति योग्य-गुणयुक्ते लग्ने समये, सकलजन्तुजीवनस्य निखिलप्राणिजीवनस्य लग्नको रक्षको जीवंधरः सादरं यथा-स्यात्तथा उपयेमे परिणिनाय ।

§ १४१. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ गुणमालालम्भो नाम चतुर्थो लम्भः ।

■

होते हुए नक्षत्रोंके समूहसे जर्जरित अन्धकारसे सुशोभित रात्रिकी शोभाका चोर था ऐसे केशोंके समूहसे वह किसी अनिर्वचनीय शोभाको प्रकट कर रही थी।

§ १४१. इसप्रकार श्रीमद्वादीभसिंह सूरिके द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें गुणमाला-लम्भ (गुणमालाकी प्राप्ति)का वर्णन करनेवाला चतुर्थ लम्भ पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

■

---

१. म० शोभां । २. लग्नकः—रक्षकः, इति टि० ।

पञ्चमो लम्भः

§ १४२. अथ परिणयनानन्तरमन्तरायरहितविजृम्भणेन विषमशरेण समारोपितो रागशिखरं शिखरदशनया तया समं संसारसहकारपचेलिमफलायमानान्मन्दीकृतमहेन्द्रोपभोगमहिमाभोगान्भोगाननुभवितुमारभत कुमारः। तथा हि—नवपल्लवदलनिचयनिर्मितशयनेषु परिमलतरलमधुकरपटलपटावगुण्ठितपरिसरेषु गृहोद्यानलतागृहेषु लक्ष्यीभूतः कुसुमशरशराणां कमलदृशा तया सह सुचिरमरमत। वारणपतिरिव वनसरसि करिणीसखः कंदर्पविजयपताकया तया तन्नितम्बबिम्बाहतिजर्जरिततरङ्गमालासु तदात्वसंभ्रमदम्भःसंक्षोभि[1]तकमलसमुड्डीनरोलम्बकदम्ब-

§ १४२ अथेति—अथेति मङ्गलार्थेऽव्ययम् 'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ' इत्यमरः, परिणयनानन्तरं विवाहानन्तरम् अन्तरायरहितं निरन्तरं विजृम्भणं वृद्धिर्यस्य तेन विषमशरेण कामेन रागशिखरं रागचरमसीमानम् समारोपितः प्रापितः कुमारः शिखराः पक्वदाडिमबीजाभा दशना दन्ता यस्यास्तया "शिखरः शैलवृक्षाग्रे कक्षापुलककोटिषु। पक्वदाडिमबीजाभमाणिक्यशकलेऽपि च॥" इति विश्वलोचनः, तया गुणमालया समं संसार एव सहकारोऽतिसौरभाम्रस्तस्य पचेलिमफलानीवाचरन्तीति संसारसहकारपचेलिमफलायमानास्तान्, मन्दीकृतस्तुच्छीकृतो महेन्द्रोपभोगस्य महिमाभोगो महत्त्वविस्तारो यैस्तथाभूतान् भोगान् अनुभवितुम् आरभत तत्परोऽभूत्। तथा हि—नवपल्लवदलानां नूतनकिसलयखण्डानां निचयेन समूहेन निर्मितं रचितं शयनं येषु तेषु, परिमलेन विमर्दोत्थेन जनमनोहरेण गन्धेन तरलाः सतृष्णा ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां पटलं समूह एव पटो वस्त्रं तेनावगुण्ठितः समाच्छादितः परिसरः समीपप्रदेशो येषु तेषु 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे' इत्यमरः गृहोद्यानस्य गेहोपवनस्य लतागृहेषु निकुञ्जेषु कुसुमशरशराणां कामबाणानां लक्ष्यीभूतः शरव्यीभूतः सन् कमलदृशा पद्माक्ष्या तया गुणमालया सह सुचिरं सुदीर्घकालम् अरमत क्रीडति स्म। वारणेति—वनसरसि काननकासारे करिण्याः सखा करिणीसखो हस्तिनीसहितो वारणपतिरिव गजराज इव कन्दर्पस्य मीनकेतनस्य विजयपताकया विजयवैजयन्त्या तया गुणमालया साकं तस्या नितम्बबिम्बेन नितम्बमण्डलेन या आहतिराघातस्तया जर्जरिताश्चूर्णीभूतास्तरङ्गमालाः कल्लोलसन्ततयो यासु, तदात्वे तत्क्षणे संभ्रमत् संचलद् यदम्भो जलं तेन संक्षोभितानि

§ १४२. तदनन्तर विवाहके बाद निरन्तराय बढ़ते हुए कामदेवके द्वारा जो रागके शिखरपर चढ़ाये गये थे ऐसे जीवन्धरकुमार उस पके हुए अनारके बीजोंके समान दाँतोंवाली गुणमालाके साथ संसाररूपी अत्यन्त सुगन्धित आमके पके हुए फलके समान आचरण करनेवाले एवं इन्द्रके भोगोपभोगकी महिमाको तिरस्कृत करनेवाले भोगोंका अनुभव करने लगे। वह कभी तो नूतन पल्लव और पुष्पकलिकाओंके समूहसे जिनमें शय्याओंकी रचना की गयी थी, तथा सुगन्धित चपल भ्रमरसमूहरूपी वस्त्रसे जिनके समीपवर्ती प्रदेश आच्छादित थे ऐसे घरके उद्यानके निकुंजोंमें कामके बाणोंका निशाना बनकर उस कमलनयनी गुणमालाके साथ चिरकाल तक रमण करते थे। कभी वनके सरोवरमें हस्तिनीसे सहित हाथीके समान कामदेवकी विजयपताकास्वरूप उस गुणमालाके साथ उसके नितम्ब बिम्बकी टक्करसे जिनकी तरंगोंकी श्रेणियाँ जर्जर हो रही थी एवं तत्काल चलते हुए जलसे क्षोभको

---

१. म० संक्षोभिकमल।

कबलिताम्बराडम्बरासु क्रीडावापीषु चिरं चिक्रीड । अध्यास्य तनुमध्यया[1] सुमध्यया सह समन्तादास्तीर्णतूलशयनान्भवनमणिवलभिनिवेशान्निशासु निशापतेर्निर्यदमृतनिःस्यन्दान्करकन्दलान्प्रतीच्छन्निच्छाधिकं विनोदयामास विलोचनचकोरमिथुनम् ।

§ १४३. इत्थं गमयति कालं कलानिधौ कामतन्त्रपरतन्त्रे जीवकस्वामिनि भामिनीसखे सखेदः स गुणमालोपद्रवकरः करी तत्कुण्डलाहृतिजातवैलक्ष्यः प्रक्षीणतनुरतनुपरितापपरीतमना मनागपि मन्देतरयत्नेन यन्त्रा सानुनयं साधिक्षेपमर्प्यमाणमतीव स्वादिष्ठमपि नाददे कबलम् । निःश्वासदीर्घमुष्णं च मुञ्चन् पुष्करलिखितमहीतलः केवलं पाकलाशङ्किभिरङ्गीकृतविविधभैषज्यै-

कम्पितानि यानि कमलानि तेभ्यः समुड्डीनेन समुत्पतितेन रोलम्बकदम्बेन भ्रमरसमूहेन कबलितो व्याप्तोऽम्बराडम्बरो गगनाभोगो यासु तासु क्रीडावापीषु केलिवापिकासु चिरं चिक्रीड क्रीडति स्म । अध्यास्येति—तनु कृशं मध्यं कटिर्यस्यास्तथाभूतया सुमध्यया सुन्दरावलग्नया गुणमालया सह समन्तात्परितः आस्तीर्णानि विस्तृतानि तूलशयनानि येषु तान्, भवनस्य मणिनिर्मितान् वलभिनिवेशान् गोपानसीनिवेशान् अध्यास्य अधिष्ठाय 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इत्याधारस्य कर्मसंज्ञा, निशासु रजनीषु निशापतेश्चन्द्रमसो निर्यन् निर्गच्छन् अमृतनिःस्पन्दः पीयूषनिःस्यन्दो येभ्यस्तथाभूतान् करकन्दलान् किरणाङ्कुरान् प्रतीच्छन्, अभिलषन् इच्छाधिकं यथा स्यात्तथा विलोचने एव चकोरौ तयोर्मिथुनं युगं विनोदयामास हर्षयामास ।

§ १४३ इत्थमिति—इत्थमनेन प्रकारेण कलानां वैदग्धीनां निधिस्तस्मिन् कामतन्त्रस्य परतन्त्रस्तस्मिन् भामिन्याः सखा भामिनीसखस्तस्मिन् 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच्समासान्तः जीवकस्वामिनि जीवंधरे कालं गमयति सति, सखेदः खिन्नः गुणमालाया उपद्रवस्य करः स करी गजः तस्य जीवकस्य कुण्डलेन कङ्कणेनाहृत्या ताडनेन जनितं वैलक्ष्यं लज्जा यस्य तथाभूतः, प्रक्षीणतनुः कृशकायः अतनुपरितापेन प्रचुरसंतापेन परीतं मनो यस्य तथाभूतः सन् मन्देतरयत्नेन प्रभूतप्रयत्नवता यन्त्रा-आधोरणेन सानुनयं सस्नेहं साधिक्षेपं सभर्त्सनम् अर्प्यमाणं प्रदीयमानम् अतीवात्यन्तं स्वादिष्ठमपि मधुरमपि कबलं ग्रासं मनागपि किंचिदपि नाददे न जग्राह । निःश्वासमिति—केवलं मात्रं दीर्घमायतमुष्णं शीतेतरं च निःश्वासं मुञ्चन् पुष्करेण शुण्डाग्रेण लिखितं स्पृष्टं महीतलं येन तथाभूतः, पाकलं कुञ्जरज्वरमाशङ्कन्त इत्येवंशीलास्तैः

प्राप्त कमलोंसे उड़े हुए भ्रमरोंके समूहसे जिनके आकाशका विस्तार व्याप्त था ऐसी क्रीडा-वापिकाओंमें चिरकाल तक क्रीड़ा करते थे । और कभी उस पतली कमरवाली गुणमालाके साथ जिनमें सब ओरसे रुईके गद्दे बिछे हुए थे ऐसी भवनकी मणिमयी छपरियोंमें बैठकर रात्रिके समय अमृतके निस्यन्दको झरानेवाली चन्द्रमाकी किरणोंको चाहते हुए नेत्ररूपी चकोरोंके युगलको इच्छासे भी अधिक विनोदित करते थे ।

§ १४३. इसप्रकार कलाओंके भाण्डार, कामशास्त्रके पारगामी जीवन्धरस्वामी जब स्त्रीके साथ समय व्यतीत कर रहे थे तब गुणमालाके उपद्रवको करनेवाले, जीवन्धरकुमारके हाथके कड़ोंकी मारसे लज्जित, दुर्बल शरीर एवं बहुत भारी संतापसे व्याप्त मनको धारण करनेवाले उस खेदखिन्न हाथीने बहुत भारी यत्न करनेवाले महावतके द्वारा प्रेम और तिरस्कारके साथ भी दिये हुए अत्यन्त मधुर आहारका एक ग्रास भी ग्रहण नहीं किया । वह लम्बी और गरम-गरम साँसें छोड़ता हुआ सूँड़के अग्रभागसे पृथिवीतलको छूता रहता था और

१. म० तनुमध्यया सह ।

भिषक्तमैस्तथा चिकित्स्यमानो न तादृशीं दशां क्षणमप्यत्याक्षीत्।

§ १४४. अथ कुण्ठीभूतसकलभैषज्यप्रयोगजनितलज्जेषु वैद्येषु, बहुदिवसपरिहृतकबलग्रहक्षीणवपुषि विलङ्घितनिजवचनविषण्णनिषादिनि नितरां सादिनि दन्तिनि, तस्य तथाविधविकारकारणमाधोरणा जीवक[2]कृतां कुडलाहतिमेव समाकलय्य पापिष्ठाय काष्ठाङ्गाराय सावेगमावेदयामासुः। स च शबरचारुभटशूरगृहीतगोधनपुनरानयनप्रकटितपराक्रमपाटवाहितेन निजवारवामलोचनावर्गान्तरङ्गीभवदनङ्गमालाङ्गीकरणप्ररूढेन गन्धर्वदत्तापरिणयनसमयसंजातपरिभवपरिणतेन निजाधोरणनिवेदितवारणाहतिश्रवणसमीरसंधुक्षितेन स्फुटितजपाकुसुमपाटलनयनप्रभापटल-

'पाकलः कुञ्जरज्वरे' इत्यमरः अङ्गीकृतानि स्वीकृतानि विविधभैषज्यानि नानौषधानि यैस्तथाभूतैः भिषक्तमैर्वैद्यश्रेष्ठैः चिकित्स्यमानः तादृशीं तथाभूतां दशामवस्थां क्षणमपि नात्याक्षीत् न तत्याज।

§ १४४. अथेति—अथानन्तरं वैद्येषु भिषग्वरेषु कुण्ठीभूतो व्यर्थीभूतो यः सकलभैषज्यानां निखिलौषधीनां प्रयोगस्तेन जनिता लज्जा ह्रीर्येषां तथाभूतेषु सत्सु, बहुदिवसान् अनवरतं बहुदिवसमारभ्य परिहृतस्त्यक्तो यः कवलग्रहो ग्रासादानं तेन क्षीणं कृशं वपुः कायो यस्य तस्मिन्, विलङ्घितैस्तिरस्कृतैर्निजवचनैर्विषण्णो विषादयुक्तो निषादी यन्ता यस्य तस्मिन् दन्तिनि हस्तिनि नितरामत्यन्तं सादिनि सति दुःखमनुभवति सति, तस्य हस्तिनः तथाविधविकारकारणं तादृग्विकृतिनिमित्तम् आधोरणा निषादिनः जीवककृतां जीवंधरकुमारविहितां कुण्डलाहतिमेव कङ्कणप्रहृतिमेव समाकलय्य निश्चित्य पापिष्ठाय प्रचुरपापोपेताय काष्ठाङ्गाराय सावेगं यथा स्यात्तथा आवेदयामासुः सूचयामासुः। स चेति—स च काष्ठाङ्गारः शबराणां पुलिन्दानां चारुभटशूरैः प्रकृष्टयोद्धृशूरैर्गृहीतस्यात्मसात्कृतस्य गोधनस्य यत् पुनरानयनं पुनः स्ववशीकरणं तस्मिन् प्रकटितेन प्रदर्शितेन पराक्रमपाटवेन विक्रमसामर्थ्येनाहितस्तेन, निजवारवामलोचनावर्गस्य स्वकीयवेश्यासमूहस्य अन्तरङ्गीभवन्ती प्रधानीभवन्ती या अनङ्गमाला तन्नाम्नी वेश्या तस्या अङ्गीकरणेन स्वीकरणेन प्ररूढः समुत्पन्नस्तेन, गन्धर्वदत्ताया गरुडवेगसुतायाः परिणयनसमये स्वयंवरणवेलायां संजातः समुत्पन्नो यः परिभवोऽनादरस्तेन परिणतेन परिपक्वेन निजाधोरणैः स्वकीययन्तृभिर्निवेदिता सूचिता या वारणाहतिर्गजाहतिस्तस्याः श्रवणमेव समीरः पवनस्तेन संधुक्षितेन प्रज्वलितेन,

हाथियोंके ज्वरकी आशंका करनेवाले एवं नाना प्रकारकी औषधियोंसे युक्त उत्तमोत्तम वैद्य उसकी यद्यपि चिकित्सा कर रहे थे तथापि वह वैसी दशाको नहीं छोड़ता था।

§ १४४. तदनन्तर जब वैद्य लोग समस्त औषधियोंके प्रयोगके व्यर्थ होनेसे लज्जित हो उठे, और अनेक दिनोंसे आहारका ग्रहण छोड़नेसे जिसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था एवं अपने वचनोंका उल्लंघन करनेसे जिसका महावत विषादसे युक्त था ऐसा हाथी अत्यन्त दुःखी हो रहा था तब महावतोंने हाथीके उस विकारका कारण जीवन्धरकुमारके कड़ोंकी मारको ही निश्चित किया और बहुत घबराहटके साथ उन्होंने पापी काष्ठांगारके लिए इसकी सूचना दी। सुनते ही काष्ठांगारकी वह क्रोधाग्नि भभक उठी जो कि भीलोंके शूरवीर योद्धाओंके द्वारा अपहृत गोधनको वापस लानेके लिए प्रकटित पराक्रमकी सामर्थ्यसे लाकर उपस्थित की गयी थी, अपनी वेश्याओंके समूहमें प्रधान अनंगमाला नामक वेश्याको स्वीकृत करनेसे उत्पन्न हुई थी, गन्धर्वदत्ताके विवाहके समय उत्पन्न पराभवसे जो परिपाकको प्राप्त हुई थी, अपने महावतोंके द्वारा सूचित हाथीकी मारके सुनने रूप वायुसे जो धौंकी गयी थी, और फूले

१. क० 'अपि' नास्ति। २. क० ख० ग० जीवककुमारकृताम्।

च्छलादतिप्रभूततया हृदयादपि बहिर्निर्गच्छता तुच्छेतरेण कोपहुतवहेन प्रलयसमयविसृमरप्रगुणकिरणकलापकबलितदिक्परिसरः पतिरिव तेजसामशेषजननयनदुर्निरीक्ष्यस्त्र्यक्ष इव त्रिभुवनपरिक्षयचिकीर्षुराविष्कृतभैरवाकृतिरमर्षलक्ष्मीप्रवेशमङ्गलमणितोरणसविभ्रमभ्रुकुटिबन्धेनान्धकारितललाटफलकः परिसरवर्तिनः पुरुषानादिक्षत् 'आनीयतामनेन क्षणेन दुरात्मा जीवकः' इत्यारूढकोपकाष्ठः काष्ठाङ्गारः । तेऽपि तनया इव यमस्य, प्ररोहा इव साहसस्य, प्रकर्षा इव पराक्रमस्य, विग्रहा इव सामर्थ्यस्य, करकलितकरवालकरणतर्पणप्रासतोमरभिण्डिपालप्रभृतिविविधायुधा योधाः कुमारभवनमरुन्धन् ।

§ १४५. अथ निरुपमपराक्रमपाटवमदोत्कटो गन्धोत्कटतनयः[1] स्वगृहान्निर्गत्य निरवधिक-

---

स्फुटितं विकसितं यत् जपाकुसुमं तद्वत्पाटला श्वेतरक्ता या नयनप्रभा तस्याः पटलस्य समूहस्य छलं व्याजं तस्मात् अतिप्रभूततया प्रचुरतरत्वेन हृदयादपि चेतसोऽपि बहिर्निर्गच्छता निःसरता तुच्छेतरेण भूयसा कोपहुतवहेन क्रोधानलेन प्रलयसमये कल्पान्तवेलायां विसृमराः प्रसरणशीला ये प्रगुणकिरणाः प्रभूतरश्मयस्तेषां कलापेन कबलितो व्याप्तो दिक्परिसरः काष्ठातटो येन तथाभूतः तेजसां पतिरिव सूर्य इव अशेषजननयनैर्निखिललोकलोचनैर्दुर्निरीक्ष्यो दुरवलोक्यः, त्रिभुवनस्य परिक्षयः संहारस्तस्य चिकीर्षुः कर्तुमिच्छुः त्र्यक्ष इव रुद्र इव आविष्कृता प्रकटिता भैरवा भयावहा आकृतिर्येन तथाभूतः, अमर्षलक्ष्म्याः क्रोधश्रियः प्रवेशमङ्गलाय यानि मणितोरणानि तेषां सविभ्रमेण सदृशेन भ्रुकुटिबन्धेन अन्धकारितस्तिमिरितो ललाटफलको निटिलतटो यस्य तथाभूतः, आरूढा कोपकाष्ठा येन सः आचटितक्रोधचरमावधिः काष्ठाङ्गारः परिसरवर्तिनो निकटस्थान् पुरुषान् 'दुरात्मा दुष्टो जीवको जीवंधरः अनेन क्षणेन एतेनैव कालेन आनीयताम् इतीत्थम् आदिक्षत् आदेशं ददौ । तेऽपीति—ते आदिष्टा यमस्य कालस्य तनया इव सुता इव, साहसस्याबदानस्य प्ररोहा इवाङ्कुरा इव, पराक्रमस्य विक्रमस्य प्रकर्षा इव चरमसीमान इव, सामर्थ्यस्य शक्तेः विग्रहा इव शरीराणीव, करकलितानि हस्ते धृतानि करवालप्रभृतीनि विविधायुधानि यैस्तथाभूता योधाः कुमारभवनं तदीयनिकेतनम् अरुन्धन् अनुरुरुधुः ।

§ १४५ अथ निरुपमेति—अथानन्तरं निरुपमपराक्रमस्यासाधारणविक्रमस्य यत्पाटवं सामर्थ्यं तस्य मदेन गर्वेण उत्कटः प्रचण्डः गन्धोत्कटतनयो जीवंधरः स्वगृहान्निजनिकेतनात् निर्गत्य निःसृत्य

हुए जासौनके फूलके समान लाल-लाल नेत्रोंकी कान्तिके समूहके बहाने जो अत्यधिक होनेके कारण हृदयसे भी मानो बाहर निकल रही थी । उस विशाल क्रोधाग्निसे जो प्रलयके समय फैलनेवाली तीक्ष्ण किरणावलीसे दिशाओंके समीपको व्याप्त करनेवाले सूर्यके समान समस्त मनुष्योंके नेत्रोंके लिए दुर्निरीक्ष्य था, तीन लोकका क्षय करनेके लिए इच्छुक अतएव भयंकर आकृतिको प्रकट करनेवाले महादेवके समान जान पड़ता था, क्रोधरूपी लक्ष्मीके प्रवेशके लिए मंगलमय रत्न-तोरणोंकी उपमा धारण करनेवाले भृकुटिबन्धसे जिसका ललाटतट श्यामवर्ण हो रहा था और जो क्रोधकी चरम सीमापर चढ़ा हुआ था ऐसे काष्ठांगारने निकटवर्ती मनुष्योंको आदेश दिया कि 'दुष्ट जीवन्धरको इसी क्षण लाया जाये' । आज्ञा पाते ही उन योधाओंने जो कि यमराजके पुत्रोंके समान, साहसके अंकुरोंके समान, पराक्रमके चरम सीमाके समान, अथवा सामर्थ्यके शरीरके समान जान पड़ते थे और जो हाथोंमें तलवार, करण, तर्पण, प्रास, तोमर तथा भिण्डिपाल आदि नाना प्रकारके शस्त्र लिये हुए थे, जाकर कुमारका घर घेर लिया ।

§ १४५. तदनन्तर अनुपम पराक्रम और सामर्थ्यके मदसे उत्कट जीवन्धर अपने घरसे

---

१. क० ख० ग० गन्धोत्कटसुतः ।

रोषप्रसरः केसरीव हरिणयूथं तरणिरिव तमःस्तोमं दावदहन इव वनतरुषण्डं प्रलयपवन इव पर्वतनिवहं करिकलभ इव कदलीकाननं तत्क्षणेन क्षपयितुमात्मजिघृक्षागतमशेषं बलमारभत। आरम्भसमसमयमागत्यास्य जनयिता 'जात, नैवं कर्तव्यम्। स्थातव्यं हि निदेशे देशाधिपतेः। तस्योपसरेम परिसरम्। प्रज्ञापरिबर्हविरहिता हि पराक्रमा न क्रमन्ते क्षेमाय। तदमीभिः सह गच्छेम राजभवनम्। अनुभवेम भाविनमर्थम्' इत्यभिदधान एव निवार्य तं यौधनिधनोद्यतमात्मजमात्मजन्मदिवसादारभ्यार्जितमशेषं वित्तमुपायनीकृत्य तेन सह नीतिवर्त्मैकबन्धुर्गन्धोत्कटः काष्ठाङ्गारस्यागारमयासीत्।

§ १४६. प्रविश्य मणिमण्डपस्य मध्ये महति विष्टरे समुपविष्टमेनं ज्वलन्तमिव कोपदहनेन

निरवधिको निःसीमा रोषप्रसरः क्रोधप्रसरो यस्य तथाभूतः सन् हरिणयूथं मृगसमूहं केसरीव सिंह इव, तमःस्तोमं तिमिरसमूहं तरणिरिव तिमिरारिरिव, वनतरुषण्डं वनवृक्षवृन्दं दावदहन इव दवाग्निरिव, पर्वतनिवहं शैलसमूहं प्रलयपवन इव कल्पान्तानिल इव, कदलीकाननं मोचावनं करिकलभ इव करिशावक इव आत्मनः स्वस्य जिघृक्षया गृहीतुमिच्छया आगतं प्राप्तम् अशेषं बलं सैन्यं तत्क्षणेन सद्यः क्षपयितुं नाशयितुम् आरभत। आरम्भेति—आरम्भसमसमयं बलक्षरणप्रारम्भणवेलायामेव आगत्य अस्य जीवकस्य जनयिता तातो गन्धोत्कट इति यावत् 'जात! हे पुत्र! नैवं कर्तव्यं नेत्थं विधेयम्। हि यतो देशाधिपते राज्ञो निदेशे आज्ञायां स्थातव्यं वर्तितव्यम्। तस्य देशाधिपतेः परिसरं निकटम् उपसरेम उपगच्छेम। प्रज्ञाया विवेकबुद्धयाः परिबर्हेण परिकरेण विरहिताः पराक्रमाः क्षेमाय श्रेयसे न हि क्रमन्ते नोद्युक्ता भवन्ति। तत्तस्मात् अमीभी राजपुरुषैः सह राजभवनं गच्छेम। भाविनं भविष्यन्तमर्थम् अनुभवेम' इति अभिदधान एव निगदन्नेव योधनिधनोद्यतं भटमारणोद्युक्तम् आत्मजं पुत्रं निवार्य निषिध्य आत्मजन्मदिवसात् स्वोत्पत्तिवासरात् आरभ्य अर्जितं संचितम् अशेषं निखिलं वित्तं धनम् उपायनीकृत्य प्राभृतीकृत्य नीतिवर्त्मनो न्यायमार्गस्यैकबन्धुः गन्धोत्कटः तेन जीवकेन सह काष्ठाङ्गारस्य कृतघ्नस्य आगारं गृहम् अयासीत्।

§ १४६. प्रविश्येति—प्रविश्य मणिमण्डपस्य रत्नास्थानस्य मध्ये महति विस्तृते विष्टरे सिंहासने समुपविष्टं स्थितं कोपदहनेन क्रोधानलेन ज्वलन्तमिव देदीप्यमानमिव, दारुणोऽतिकठिनो यः कोपचयः

निकलकर, जिसप्रकार अत्यधिक क्रोधके विस्तारको धारण करनेवाला सिंह हरिणोंके समूहको, सूर्य अन्धकारके पुंजको, दावानल वनके वृक्षसमूहको, प्रलयपवन पर्वतोंके समूहको, और हाथीका बच्चा केलेके वनको नष्ट करता है उसी प्रकार उसी क्षण अपने-आपको पकड़नेकी इच्छासे आयी हुई समस्त सेनाको नष्ट करनेके लिए जुट पड़े। परन्तु प्रारम्भके समयसे ही उनके पिता गन्धोत्कटने आकर तथा यह कहकर कि 'हे पुत्र! ऐसा नहीं करना चाहिए। हम सबको राजाकी आज्ञामें रहना चाहिए। हमें उनके पास चलना चाहिए। बुद्धिके वैभवसे रहित पराक्रम कल्याणके लिए नहीं होते अतः इन सबके साथ हम राजमहल चलें और भविष्यत्में होनेवाले कार्यका अनुभव करें, योद्धाओंके मारनेके लिए उद्यत जीवन्धरकुमारको रोक दिया तथा अपने जन्मदिनसे लेकर संचित समस्त धनकी भेंट लेकर जीवन्धरकुमारके साथ काष्ठांगारके घर गये। गन्धोत्कट नीतिमार्गमें चलनेवालोंके अद्वितीय बन्धु जो थे।

§ १४६. तदनन्तर प्रवेश कर जो मणिमण्डपके मध्यमें विशाल आसनपर बैठा था,

१. म० यौधनिधनोद्यतम्।

दारुणकोपचयपलायितपरिजनमकाण्डविरचितनिद्राभङ्गविजृम्भितामर्षभीषणवपुषमिव केसरिणं भीतभीतः कथंकथमप्युपसृत्य तनयेन सह गन्धोत्कटस्तन्निकटे हाटकराशिममरेशनिशितशतकोटिशकलितसुमेरुशिखरसहचरं संनिधाप्य[1] 'सह्यतामयमपराधः शिशोः। दीयताममुष्य प्राणाः' इति प्रणयकृपणमभाणीत्। काष्ठाङ्गारस्तु कारुण्यास्पृष्टहृदयः 'किमष्टापदेन।' इति प्रत्यादिष्टकुमारप्राणप्रणयनभणितिं[2] धरणीतलविनमितशिरसं कृपणवचनमुखरितवदनमतनुतरतनयस्नेहान्धं गन्धोत्कटम् 'गम्यताम्' इति सावज्ञं विसृज्य समक्षमवस्थितानारक्षकाध्यक्षान् 'अन्यपराक्रममदक्षीबस्य क्षेपीयः क्षपयतासून्' इति सरोषमभाषत। तेऽपि तथेति तदाज्ञामञ्जलिबन्धेन प्रतीच्छन्तः प्रगृह्य कुमारमतित्वरितपदप्रचारप्रचलितभुवः प्रस्थातुं वध्यस्थानं प्रति प्रारेभिरे।

क्रोधसमूहस्तेन पलायिताः प्रधाविताः परिजनाः परिकरपुरुषा यस्य तम्, अकाण्डेऽसमये विरचितः कृतो यो निद्राभङ्गस्तेन विजृम्भितो वर्धितो योऽमर्षस्तेन भीषणं वपुर्यस्य तथाभूतं केसरिणमिव सिंहमिव एनं काष्ठाङ्गारं भीतभीतः अतिशयेन भीतः सन् कथंकथमपि केन केनापि प्रकारेण तनयेन पुत्रेण सह उपसृत्य समुपगम्य गन्धोत्कटो वैश्यपतिः, अमरेशस्य पुरन्दरस्य निशितशतकोटिना तीक्ष्णवज्रेण शकलितं खण्डितं यत् सुमेरुशिखरं स्वर्णाद्रिशृङ्गं तस्य सहचरं सदृशं हाटकराशिं स्वर्णचयं संनिधाप्य समुपस्थाप्य 'शिशोरबोधबालकस्यायमपराधः सह्यतां क्षम्यताम्, अमुष्य बालकस्य प्राणा दीयन्ताम्' इतीत्थं प्रणयकृपणं स्नेहदीनम् अभाणीत् अचकथत्। काष्ठाङ्गारस्त्विति—कारुण्येन दयया अस्पृष्टं हृदयं यस्य तथाभूतः काष्ठाङ्गारस्तु 'अष्टापदेन स्वर्णेन किं किं प्रयोजनम् ?' इतीत्थं प्रत्यादिष्टा निराकृता कुमारस्य जीवकस्य प्राणानामसूनां प्रणयनस्य याचनस्य भणितिरुक्तिर्यस्य तम्, धरणीतले भूतले विनमितं नम्रीभूतं शिरो यस्य तम्, कृपणवचनेन सदैन्यवचनेन मुखरितं शब्दितं वदनं मुखं यस्य तम्, अतनुतरेण तनयस्नेहेनान्धस्तं प्रभूतपुत्रप्रेमान्धं गन्धोत्कटम् 'गम्यताम्' इतीत्थं सावज्ञमनादरोपेतं विसृज्य दूरीकृत्य समक्षं सम्मुखम् अवस्थितान् विद्यमानान् आरक्षकाध्यक्षान् राजपुरुषश्रेष्ठान् 'पराक्रममदेन विक्रमगर्वेण क्षीब उन्मत्तस्तस्य अस्य वणिक्सुतस्य असून् प्राणान् क्षेपीयः शीघ्रं क्षपयत नाशयत' इतीत्थं सरोषं सक्रोधं यथा स्यात्तथा अभाषत। तेऽपि आरक्षकाध्यक्षा अपि तथेति 'तथास्त्वित्युक्त्वा' तदाज्ञां काष्ठाङ्गारनिदेशम् अञ्जलिबन्धेन प्रतीच्छन्तो गृह्णन्तः कुमारं जीवंधरम् प्रगृह्य प्रबध्य अतित्वरितेन शैघ्र्यातिशययुक्तेन पदप्रचारेण चरणप्रचारेण प्रचलिता प्रकम्पिता भूः पृथिवी यैस्तथाभूताः सन्तः वध्यस्थानं प्रति प्रस्थातुं प्रयातुम् प्रारेभिरे तत्परा अभवन्।

क्रोधाग्निसे जल रहा था, भयंकर क्रोधके भयसे जिसके परिजन दूर भाग गये थे, और जो असमयमें किये हुए निद्रा भंगसे वृद्धिंगत क्रोधसे भयंकर शरीरको धारण करनेवाले सिंहके समान जान पड़ता था ऐसे काष्ठांगारके समीप गन्धोत्कट पुत्रको साथ ले डरते-डरते किसी तरह पहुँचे और उसके समीप इन्द्रके तीक्ष्ण वज्रसे खण्डित सुमेरुके शिखर समान स्वर्णराशि रखकर स्नेहवश दीनता प्रकट करते हुए बोले कि 'बच्चेका यह अपराध क्षमा किया जाये तथा इसे प्राण दिये जायें'। परन्तु जिसके हृदयको दया छू भी न गयी थी ऐसे काष्ठांगारने 'स्वर्णसे क्या प्रयोजन है ?' यह कह, कुमारकी प्राण-भिक्षापरक गन्धोत्कटकी प्रार्थनाको ठुकरा दिया तथा पृथिवीतलपर जिनका सिर झुक रहा था, और जो पुत्रके बहुत भारी स्नेहसे अन्धे थे ऐसे गन्धोत्कटको 'हटो' इस तरह अनादरके साथ धुतकार कर उनके सामने ही पुलिसके प्रधान पुरुषोंसे क्रोधपूर्वक कहा कि 'पराक्रमके नशासे पागल इस जीवन्धरके प्राण शीघ्र ही नष्ट किये जायें'—इसे प्राण दण्ड दिया जाये। आज्ञा पाते ही पुलिसके प्रधान पुरुष भी 'तथास्तु' कह हाथ जोड़ उसकी आज्ञाको स्वीकृत करते हुए कुमारको पकड़कर वध्यस्थानकी

१. क० ख० ग० निधाप्य। २. म० भणिति।

§ १४७. अथ प्रतिहतवचसि प्रभूतविषादविषमूर्च्छालमनसि विस्मृतकर्तव्यवर्त्मनि सद्यः सद्म समासाद्य निजसुतविनिपातविजृम्भमाणदारुणशुचमविरलनिर्यदश्रुजलविलुलितदृशमश्रान्तविरचिताक्रन्दां सुनन्दाम् 'अलं संतापेन। संस्मर पुरा चर्यार्थमागतेन तपोधनेन सविस्तरमुदीरितां कुमाराभिवृद्धिशंसिनीं कथाम्। अवितथवचसो हि मुनयः' इति सान्त्वयति समवगतसुतोदन्तप्रबन्धे गन्धोत्कटे, कटकवासिनि जने जनितानुशयेन 'राजते राजता काष्ठाङ्गारस्य। कष्टमिदमकाण्डे विधिचण्डालस्य विलसितम्। अद्य निराश्रया श्रीः, निराधारा धरा, निरालम्बा सरस्वती, निष्फलं लोकलोचनविधानम्, निःसारः संसारः, नीरसा रसिकता, निरास्पदा वीरता' इति मिथः प्रवर्तयति प्रणयोद्गारिणीं वाणीम्, सखेदायां च खेचरचक्रवर्तिदुहितरि दयितविमोक्षणाय

§ १४७. अथेति—अथानन्तरं प्रतिहतं निराकृतं वचो यस्य तस्मिन्, प्रभूतेन प्रचुरेण विषादविषेण खेदगरलेन मूर्च्छालं मूर्च्छायुक्तं मनो यस्य तस्मिन्, विस्मृतं स्मृतिपथातीतं कर्तव्यवर्त्म करणीयमार्गो यस्य तस्मिन्, गन्धोत्कटे सद्यः झगिति सद्म सदनं समासाद्य प्राप्य निजसुतस्य स्वकीयपुत्रस्य विनिपातो मृत्युस्तेन विजृम्भमाणा वर्धमाना दारुणशुक् कठिनशोको यस्यास्ताम्, अविरलं निरन्तरं यथा स्यात्तथा निर्यता निर्गच्छता अश्रुजलेन विलुलिते दृशौ यस्यास्ताम्, अश्रान्तं यथा स्यात्तथा विरचित आक्रन्दो यया ताम् सुनन्दाम् एतन्नामधेयां स्वपत्नीं 'सन्तापेन परितापेन अलं व्यर्थं, पुरा पूर्वं चर्यार्थमाहारार्थम् आगतेन तपोधनेन मुनिना सविस्तरं यथा स्यात्तथा उदीरितां कथितां कुमाराभिवृद्धिशंसिनीं जीवंधरैश्वर्यसूचिकां कथां संस्मर सम्यक् प्रकारेण संस्मरणविषयीं कुरु। हि निश्चयेन मुनयो यतयः अवितथं सत्यं वचो येषां तथाभूता भवन्तीति भावः इति समवगतः सम्यक्प्रकारेण विज्ञातः सुतोदन्तप्रबन्धः पुत्रवृत्तान्तप्रबन्धो येन तथाभूते गन्धोत्कटे सान्त्वयति शमयति सति, कटकवासिनि राजधानीनिवासिनि जने जनितानुशयेन समुत्पन्नपश्चात्तापेन 'काष्ठाङ्गारस्य कृतघ्नशिरोमणेः राजता राज्यं राजते विद्यते। अकाण्डेऽकाले विधिचण्डलास्य दैवजनङ्गमस्य इदं विलसितं चेष्टितं कष्टं कष्टकरम्। अद्य श्रीर्लक्ष्मीः निराश्रया आश्रयहीना, धरा पृथिवी निराधारा, सरस्वती वाणी निरालम्बा, लोकलोचनविधानं नरनेत्रनिर्माणं निष्फलं निष्प्रयोजनम्, संसारो निःसारः, रसिकता नीरसा, वीरता निरास्पदा निःप्रतिष्ठा' इतीत्थं मिथः परस्परं प्रणयोद्गारिणीं स्नेहप्रदर्शिनीं वाणीं प्रवर्तयति सति, सखेदायां सविषादायां खेचरचक्रवर्तिदुहितरि च गन्धर्वदत्तायां च

ओर जानेके लिए उद्यत हो गये। उस समय शीघ्रतासे भरे उनके पैरोंसे पृथिवी काँप रही थी।

§ १४७. अथानन्तर जिसके वचन ठुकरा दिये गये थे, जिनका हृदय बहुत भारी विषादरूपी विषसे मूर्च्छित हो रहा था, और जो कर्तव्यमार्गको भूल गये थे ऐसे गन्धोत्कट अपने घर वापस आये तो क्या देखते हैं कि अपने पुत्रके मरणसे बढ़ते हुए भयंकर शोकको धारण करनेवाली सुनन्दा लगातार निकलते हुए अश्रुजलसे नेत्रोंको तर करती हुई गला फाड़-फाड़कर रो रही है। गन्धोत्कट पुत्रके समस्त वृत्तान्तको अच्छी तरह जानते थे इसलिए वे यह कहकर सुनन्दाको सान्त्वना देने लगे कि 'सन्ताप करना व्यर्थ है? पहले चर्याके लिए आगत मुनिने कुमारकी वृद्धिको सूचित करनेवाली जो कथा विस्तारसे कही थी उसका स्मरण कर। मुनि सत्यवादी होते हैं। उस समय नगरनिवासी लोग बड़े पश्चात्तापके साथ परस्पर प्रेमको प्रकट करनेवाली यह वाणी कह रहे थे कि अब काष्ठांगारका राज्य है। खेदकी बात है कि दैवरूपी चाण्डाल असमयमें ही अपनी चेष्टा दिखला रहा है। आज लक्ष्मी आश्रयहीन हो गयी, पृथिवी आधाररहित हो गयी, सरस्वती आलम्बनशून्य हो गयी, मनुष्योंके नेत्रोंका निर्माण व्यर्थ हो गया, संसार असार हो गया, रसिकता नीरस हो गयी, और वीरता स्थानभ्रष्ट हो गयी। विद्याधरोंके राजा गरुडवेगकी पुत्री गन्धर्वदत्ता भी खेदयुक्त हो पतिको छुड़ाने-

क्षणादाविर्भावयन्त्यामन्तिके स्वविद्यां विद्याधरकुलक्रमागताम्, क्रमज्ञः स कुमारोऽपि मारयितुं पारयन्नप्यात्मपरिभवविधानलम्पटान्भटान् 'किमेभिर्निष्फलं निहतैः! नासीदति गुरुजनादिष्टः काष्ठाङ्गारवधसमयः' इति साहसाय संनह्यमानमात्मानं निवार्य, सुदर्शननाम्नो देवस्य सस्मार।

§ १४८. स च कृतज्ञः कृतज्ञचरो देवस्तदाध्यानानन्तरमन्तरिक्षपथमभिनवतमालकानन-कालिममलिम्लुचै कालमेघनिचयैः कवचयन्, नभस्तलस्त्यानमेदिनीपरागपूरदूरान्तरितदिवाकरेण समुन्मूलितोत्क्षिप्तवृक्षषण्डसंमीलिताकाशदिगवकाशेन चण्डाभिघातघूर्णमानगिरिशिखरविशीर्णगण्ड-शैलेनेतस्ततस्तूललीलया नीतगृहपटलीपटलेनाभिपातताडनविह्वलितावनीतलविलुठदखिलजीव-धनेन झञ्झासमीरेण समुत्सारितसकलारक्षकबलः, सहेलमादाय कुमारमन्तरिक्षेण क्षणादिव गत्वा

दयितस्य पत्युर्विमोक्षणाय क्षणात् अन्तिके समीपे विद्याधरकुलक्रमागतां स्वविद्याम् आविर्भावयन्त्यां प्रकटयन्त्यां सत्यां क्रमं जानातीति क्रमज्ञः क्रमज्ञानवान् स कुमारोऽपि जीवकोऽपि आत्मनः स्वस्य परिभवस्य तिरस्कारस्य विधाने करणे लम्पटास्तान् तथाभूतान् भटान् मारयितुं पारयन्नपि शक्नुवन्नपि 'निष्फलं निष्प्रयोजनं निहतैर्मारितैः एभिः किम्। गुरुजनेनादिष्टो गुरुजनप्रदर्शितः काष्ठाङ्गारवधसमयो नासीदति न प्राप्नोति' इति हेतोः साहसाय अवदानं प्रदर्शयितुम् संनह्यमानमुद्यन्तम् आत्मानं निवार्य सुदर्शननाम्नो देवस्य सस्मार 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति षष्ठी।

§ १४८. स चेति—स च कृतं जानातीति कृतज्ञः कृतोपकारज्ञानवान् भूतपूर्वः कृतज्ञः कुक्कुर इति कृतज्ञचरः स देवः सुदर्शनयक्षाधिपतिः तदाध्यानानन्तरं जीवंधरस्मरणानन्तरम् अभिनवतमालानां नूतन-तापिच्छवृक्षाणां काननं वनं तस्य कालिम्नो मलिम्लुचाश्चौरास्तैः कालमेघनिचयैः कृष्णवारिदवृन्दैः अन्तरिक्षपथं गगनमार्गं कवचयन् व्याप्तं कुर्वन्, नभस्तलस्त्यानेन गगनतलव्यापिना परागपूरेण रजो-राशिना दूरान्तरितो दिवाकरो गगनमणिर्येन तेन, आदौ समुन्मूलिताः पश्चादुत्क्षिप्ता उपरि क्षिप्ता ये वृक्षास्तरवस्तेषां षण्डेन समूहेन संमीलितो दूरीकृत आकाशदिशां गगनककुभाम् अवकाशो येन तेन, चण्डाभिघातेन तीव्रप्रहारेण घूर्णमानानि कम्पमानानि यानि गिरिशिखराणि तेभ्यो विशीर्णा विगलिता गण्डशैला येन तेन, इतस्ततो यत्र तत्र तूललीलया नीतानि गृहपटलीपटलानि गृहनीध्रनिकुरम्बाणि येन तेन, अभिपातः संमुखागमनं ताडनं प्रहरणं ताभ्यां विह्वलितं विचित्तं अतएवावनीतले पृथिवीतले विलुठत् अखिलजीवधनं निखिलप्राणिधनं येन तेन, झञ्झासमीरेण सजलप्रबलपवनेन 'प्रकम्पनो महावातः झञ्झावातः सवृष्टिकः' इत्यमरः समुत्सारितं विद्रावितं सकलं निखिलमारक्षकबलं राजपुरुषसैन्यं येन तथाभूतः सन् कुमारं जीवकं सहेलं यथा स्यात्तथा आदाय गृहीत्वा अन्तरिक्षेण नभसा क्षणादिव गत्वा

के लिए विद्याधरोंके कुलक्रमसे आगत अपनी विद्याको समीपमें आविर्भूत करने लगी। इधर जब यह सब हो रहा था तब उधर क्रमको जाननेवाले कुमारने, अपना तिरस्कार करनेमें समर्थ योद्धाओंको मारनेके लिए समर्थ होनेपर भी 'निष्प्रयोजन मारे हुए इन लोगोंसे क्या लाभ है? अभी गुरुजनोंके द्वारा बताया हुआ काष्ठांगारके मारनेका समय निकट नहीं आया है' इस विचारसे साहसके लिए उद्यत होनेवाले अपने-आपको रोककर सुदर्शन देवका स्मरण किया।

§ १४८. स्मरण करते ही कृत उपकारको जाननेवाला वह कुत्तेका जीव सुदर्शनदेव, नूतन तमालवनकी कालिमाको अपहृत करनेवाले काले-काले मेघोंके समूहसे आकाशमार्गको व्याप्त करता हुआ तथा आकाशतलमें फैलनेवाली पृथिवीकी धूलिके समूहसे जिसने सूर्यको दूरसे ही आच्छादित कर रखा था, उखाड़-उखाड़कर ऊपर फेंके हुए वृक्षोंके समूहसे जिसने दिशाओंका अवकाश दूर कर दिया था, तीव्र प्रहारसे हिलनेवाले पहाड़के शिखरोंसे जिसमें

गीर्वाणसदनसदृक्षमक्षयसुखसंगतं शृङ्गपरामृष्टचन्द्रं चन्द्रोदयं नाम निजशैलमशिश्रियत्। अकार्षीच्च तत्र हर्षोत्फुल्लमुखः शतमखसदनातिशायिसौधाभ्यन्तरस्थापितभद्रासनमध्यमध्यासीनस्य जीवकस्वामिनः स्वभर्तृमुखपरिज्ञातकुमारमहोपकारितात्यादरैर्दारैः सार्धं पयोवार्धिपयोभिरभिषेकम्। व्याहार्षीच्च—'कुमार', मां विश्वदूषणपात्रे भषणगात्रे स्थितमेवं पवित्रीकृतवतस्ते 'पवित्रकुमारः' इति भवितव्यं नाम्ना" इति। एवं कृतज्ञानां धुरि कृतदीक्षेण यक्षेण कृतां पुरस्क्रियामनुभूय भूयसीं भूयस्तेन सममेकासनमध्युष्या[1]प्सरसामतिपेलवं नाट्यमालोकयति कुमारे, कुमारमारणाय प्रेरितः स चौरिकाध्यक्षोऽपि प्रतारणदक्षतया 'क्षपितजीवं जीवककुमारमकार्षम्' इति वचसा

गीर्वाणसदनसदृक्षं स्वर्गसदृशम् अक्षयसुखसंगतमविनश्वरसुखसहितम् शृङ्गेण शिखरेण परामृष्टः स्पृष्टश्चन्द्रो येन तं चन्द्रोदयं नाम निजशैलं स्वगिरिम् अशिश्रियत् प्राप। अकार्षीच्चेति–तत्र चन्द्रोदयाद्रौ हर्षेण निजोपकारिजनचरणारविन्दसंगतिसमुत्पन्नेन प्रमोदेन उत्फुल्लं प्रसन्नं मुखं यस्य तथाभूतः सुदर्शनः शतमखसदनातिशायिन इन्द्रमन्दिरातिशायिनः सौधस्य प्रासादस्याभ्यन्तरे मध्ये स्थापितं विनिवेशितं यद् भद्रासनं तस्य मध्यम् अध्यासीनस्याधितिष्ठतो जीवकस्वामिनः स्वभर्तुर्मुखात् परिज्ञाता या कुमारस्य महोपकारिता तयातिशय आदरो येषां तथाभूतैः दारैर्वल्लभाभिः सार्धं पयोवार्धिपयोभिः क्षीरसागरसलिलैः अभिषेकं स्नपनम् अकार्षीच्च व्यधाच्च। व्याहार्षीच्चेति—'कुमार! विश्वेषां दूषणानां पात्रं तस्मिन् निखिलावगुणभाजने भषणगात्रे कुक्कुरकाये स्थितं माम् एवमनेन प्रकारेण अपवित्रं पवित्रं कृतवत इति पवित्रीकृतवतस्ते भवतः 'पवित्र कुमारः' इति नाम्ना भवितव्यम्' इति। एवमिति–एवमनेन प्रकारेण कृतज्ञानां कृतमुपकारं जानताम् धुर्यग्रे कृता दीक्षा यस्य तेन कृतज्ञशिरोमणिना यक्षेण सुदर्शनेन कृतां विहितां भूयसीं विपुलां पुरस्क्रियां सत्क्रियाम् अनुभूय भूयस्तदनन्तरं तेन समं साकम् एकासनमेकविष्टरम् अध्युष्य अधिष्ठाय अप्सरसां देवाङ्गनानाम् अतिपेलवमतिमनोहरं नाट्यं नृत्यम् अवलोकयति पश्यति सति कुमारे, कुमारमारणाय प्रेरितः कृतादेशः स चौरिकाध्यक्षोऽपि प्रधानचण्डालोऽपि प्रतारणदक्षतया प्रवञ्चनाकुशलतया 'जीवककुमारं जीवंधरं क्षपितो जीवो यस्य तथाभूतं निष्प्राणम् अकार्षम्' इति वचसा काष्ठाङ्गारं

गोल चट्टानें खिसक रही थीं, जिसने मकानके छप्परोंको रुईके समान इधर-उधर उड़ा दिया था और जिसमें समस्त जीव संमुखागमन तथा ताड़नसे विह्वल हो पृथिवीतलपर लोट रहे थे ऐसे वर्षायुक्त तूफानसे समस्त पुलिसकी सेनाको दूर हटाता हुआ और जीवन्धरकुमारको अनायास ही उठाकर आकाशमार्गसे जाता हुआ क्षण एकमें देवभवनके समान अविनाशी सुखसे सहित एवं शिखरोंसे चन्द्रमाको छूनेवाले 'चन्द्रोदय' नामक अपने पर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ हर्षसे जिसका मुख फूल रहा था ऐसे सुदर्शनदेवने, इन्द्रभवनको अतिक्रान्त करनेवाले अपने भवनके भीतर स्थापित मंगलमय आसनपर बैठे हुए जीवन्धरस्वामीका अपने पतिके मुखसे कुमारका महोपकारीपन विदित होनेके कारण अत्यधिक आदर प्रकट करनेवाली स्त्रियोंके साथ, क्षीरसागरके जलसे अभिषेक किया और कहा कि 'हे कुमार! चूँकि समस्त दोषोंके पात्र स्वरूप कुत्तेके शरीरमें स्थित रहनेवाले मुझको आपने पवित्र किया है इसलिए आपका 'पवित्र कुमार' यह नाम होना चाहिए।' इसप्रकार कृतज्ञ मनुष्योंके अग्रेसर यक्षके द्वारा किये हुए सत्कारका अनुभव कर जब कुमार उधर उसी यक्षके साथ एकासनपर बैठकर अप्सराओंका अत्यन्त मधुर नृत्य देख रहे थे तब इधर कुमारको मारनेके लिए प्रेरित पुलिसके प्रधानने धोखा देनेमें कुशल होनेके कारण 'मैंने जीवन्धरकुमारको निष्प्राण

1. म० सममेकासनमध्यास्या-।

हर्षकाष्ठां गतं काष्ठाङ्गारं विधाय तदीयं प्रसादमनासादितपूर्वं लेभे ।

§ १४९. ततः सुनन्दासुतोऽपि सुदर्शनयक्षावरोधजनेन वर इव परमया मुदा संभाव्यमानः संपदं यक्षपतेर्नैजीमेव निर्व्याजं गणयन्नपि गणरात्रापगमे 'किमत्र मुधावस्थितिरास्थीयते ! गुरूपदिष्टराज्यप्रवेशार्हवासरात्पूर्वमपूर्वचैत्यालयवन्दनेन कन्दलयामः सुकृतप्रबन्धम्' इति मनो बबन्ध । प्रियबन्धुरप्यस्य बन्धुरमभिसंधिं तदनुबन्धिफलोपनतेरनवधिकतामप्यवधिचक्षुषा वीक्षमाणः क्षोणीभ्रमणेन कुमारोपलभ्यस्य फलस्य भूयस्तया कथमप्यन्वमंस्त । अदाच्च तस्मै 'मा स्म कुरुथाः कुरुकुलपते, तत्र प्रेष्यस्य प्रार्थनाकदर्थनेनावज्ञाम्' इति याच्ञापूर्वकं सर्वविषापहरणे कामरूपित्वकल्पनेऽप्यनल्पशक्तिक[1]ममन्दादरान्मन्त्रत्रयम् । अभ्यधाच्च 'कुमार कुरुकुलकुमुदेन्दो,

हर्षकाष्ठां प्रमदपरावधिं गतं प्राप्तं विधाय पूर्वं नासादितमित्यनासादितपूर्वम् अलब्धपूर्वं प्रसादं पुरस्कारं लेभे ।

§ १४९. तत इति—ततस्तदनन्तरं सुनन्दासुतोऽपि जीवंधरोऽपि सुदर्शनयक्षस्यावरोधजनेन अन्तःपुरजनेन वर इव जामातेव परमयोत्कृष्टया मुदा हर्षेण संभाव्यमानः सत्क्रियमाणः यक्षपतेः सुदर्शनस्य संपदं नैजीमेव स्वकीयामेव निर्व्याजं निश्छलं यथा स्यात्तथा गणयन्नपि जानन्नपि गणरात्रापगमे बहुनिशासु व्यतीतासु 'गणरात्रं निशाबह्व्यः' इत्यमरः 'किमत्र सुदर्शनसदने मुधावस्थितिर्निष्प्रयोजनावस्थान आस्थीयते । गुरूपदिष्टश्चासौ राज्यप्रवेशार्हवासरश्च तस्माद् गुरुप्रदर्शितराज्यप्राप्तियोग्यदिनात् पूर्वं प्राक् अपूर्वाश्च ते चैत्यालयाश्च तेषां वन्दनेन सुकृतप्रबन्धं पुण्यप्रबन्धं कन्दलयामः समुत्पादयामः' इति मनो बबन्ध चेतसि विचारमकरोत् । प्रियबन्धुरपि सुदर्शनोऽपि अस्य जीवकस्य बन्धुरं मनोहरम् अभिसन्धिमभिप्रायम् तदनुबन्धि तत्सम्बद्धं यत्फलं तस्योपनतेः प्राप्तेरनवधिकतामपि असीमतामपि अवधिचक्षुषावधिज्ञानविलोचनेन वीक्षमाणो विलोकमानः क्षोण्यां भ्रमणं तेन महीभ्रमणेन कुमारोपलभ्यस्य कुमारप्राप्यस्य फलस्य भूयस्तया प्रचुरतया कथमपि केनापि प्रकारेण अन्वमंस्त स्वीचकार । अदाच्चेति—'कुरुकुलपते ! हे कुरुवंशशिरोमणे ! तव भवतः प्रेष्यस्य दासस्य प्रार्थनाकदर्थनेन याच्ञानङ्गीकरणेन अवज्ञां तिरस्कृतिं मा स्म कुरुथाः' इति याच्ञापूर्वकं सर्वविषापहरणे निखिलगरलदूरीकरणे गानविद्यायां संगीतविद्यायां वैशारद्यस्य वैदुष्यस्य करणे विधाने कामरूपित्वकल्पनेऽपि यथेच्छरूपनिर्माणेऽपि अनल्पा शक्तिर्यस्य तत् प्रचुरशक्तियुक्तं मन्त्रत्रयम् अमन्दादरात् विपुलगौरवात् तस्मै कुमाराय अदाच्च ददौ च । अभ्यधाच्चेति—इति अभ्यधाच्च

कर दिया है' इस वचनसे काष्ठाङ्गारको अत्यन्त हर्षित कर उसके अप्राप्तपूर्व पुरस्कारको प्राप्त किया ।

§ १४९. तदनन्तर सुदर्शन यक्षके अन्तःपुरके लोगोंके द्वारा वरके समान जिनका बहुत बड़े हर्षसे सत्कार किया जा रहा था ऐसे सुनन्दासुत—जीवन्धरकुमार यद्यपि यक्षपतिकी संपत्तिको निष्कपट रूपसे अपनी ही मानते थे तथापि कुछ रात्रि व्यतीत होनेपर उन्होंने ऐसा विचार किया कि 'यहाँ व्यर्थ क्यों रहा जाये ? गुरुके द्वारा बताये हुए राज्य-प्रवेशके योग्य दिनके पहले-पहले हम अपूर्व चैत्यालयोंकी वन्दनाके द्वारा पुण्य बन्ध करते हैं'। जीवन्धरकुमारके इस अभिप्रायको तथा इससे प्राप्त होनेवाले फलकी अधिकताको अवधिज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा देखनेवाले प्रियबन्धु—सुदर्शन यक्षने पृथिवीपर भ्रमण करनेसे जीवन्धरको जो फल प्राप्त होंगे उनकी अधिकताका विचारकर किसी तरह अनुमति दे दी । साथ ही

1. क० ख० ग० 'क' नास्ति ।

कुमुदैश्वर्यासम, समरसाहसलम्पटसुभटभुजदण्डखण्डनप्रचण्ड, निबिडघटितकोटीरकोटिविततियुतगणनविरहितनरपवृन्दरचितसभायां स्वयंवरानन्तरं विवाहसमये मरणपरिणतिमेष्यन्ति यदरयोऽपि, तवोदयोऽपि समासीदति, मासि द्वादशे मदुक्तमिदं द्रक्ष्यसि, पुनर्मोक्ष्यसि च' इति । एवममृतायमानममृताशिनो वचनमदसीयाप्सरसां सरसानि वचांसि च श्रवणयोरवतंसीकुर्वति पर्वतादवरुह्य मह्यां गन्तुमारभमाणे कुमारे, सुदर्शनयक्षोऽप्यक्षमो भवन्विरहव्यथां सोढुं गाढं परिरभ्य पथान्तरोदन्तं चेदंतया व्याहृत्य विसृज्य कुमारमादरकातर्यात्पुनरप्यनुसृतकतिपयपदः प्रतिनिवृत्य

अकथयच्च । इतीति किम् । कुरुकुलमेव कुमुदानि तेषामिन्दुश्चन्द्रस्तत्सम्बुद्धौ हे कुरुकुलकुमुदेन्दो ! कुमुदा दैत्यभेदास्तेषामिवैश्वर्यं तेनासमोऽनुपमस्तत्सम्बुद्धौ हे कुमुदैश्वर्यासम ! 'कुमुदो नागदिग्नागदैत्यान्तरवनौकसि' इति विश्वलोचनः, अथवा 'कुमुदैश्वर्य' इति पृथक्पदम् 'असम' इति समरसाहसस्य विशेषणम् । समरसाहसे युद्धावदाने लम्पटाः समासक्ता ये सुभटाः सुयोधास्तेषां भुजदण्डानां बाहुदण्डानां खण्डने प्रचण्डस्तत्सम्बुद्धौ हे कुमार निबिडं सान्द्रं यथा स्यात्तथा घटिता मिलिता याः कोटीरकोटयो मुकुटाग्रभागास्तासां विततया पङ्क्त्या युताः सहिता ये गणनविरहिता असंख्या नरपा राजानस्तैर्दृढं यथा स्यात्तथा रचिता निर्मिता या सभा तस्यां स्वयंवरानन्तरं विवाहसमये पाणिग्रहणवेलायां यद्यस्मात् अरयोऽपि शत्रवोऽपि, मरणपरिणतिं मरणमेव परिणतिस्तां मृत्युफलम् एष्यन्ति प्राप्स्यन्ति ततस्तव भवत उदयोऽपि राज्यवैभवमपि समासीदति निकटस्थं भवति मदुक्तमिदं सर्वं द्वादशे द्वादशतमे मासि 'पद्दन्नोमास–इति सूत्रेण मास शब्दस्य 'मास्' आदेश, द्रक्ष्यसि विलोकयिष्यसि पुनस्तदनन्तरं मोक्ष्यसि च मुक्तश्च भविष्यसि' इति । एवमिति—अमृतायमानं पीयूषायमाणम् अमृताशिनो देवस्य वचनम् अदसीयाप्सरसां तद्देवीनां च सरसानि सस्नेहानि वचांसि च श्रवणयोः कर्णयोः अवतंसीकुर्वति कर्णाभरणीकुर्वति कुमारे जीवंधरे पर्वतात् चन्द्रोदयाद्रेः अवरुह्य नीचैरागत्य मह्यां पृथिव्यां गन्तुम् आरभमाणे तत्परे सति, सुदर्शनयक्षोऽपि विरहव्यथां वियोगपीडां सोढुम् अक्षमोऽसमर्थो भवन् गाढं यथा स्यात्तथा परिरभ्य समालिङ्ग्य पथान्तरोदन्तं च मार्गान्तरवृत्तान्तं च इदन्तयानेन प्रकारेण व्याहृत्य निगद्य कुमारं विसृज्य विमुच्य, आदरकातर्यात्

यह प्रार्थना कर कि 'हे कुरुवंशके स्वामिन् ! मैं आपका सेवक हूँ अतः प्रार्थनाको ठुकराकर मेरी अवज्ञा न कीजिए' सर्वप्रकारका विष दूर करनेमें गानविद्यामें निपुणता प्राप्त करानेमें तथा इच्छानुसार रूप बनानेमें अत्यधिक शक्ति रखनेवाले तीन मन्त्र बहुत भारी आदरके साथ प्रदान किये । सुदर्शन यक्षने यह भी कहा कि 'हे कुमार ! हे कुरुवंशरूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिए चन्द्रमा, दैत्य विशेषोंके समान ऐश्वर्यसे अनुपम, युद्ध सम्बन्धी साहस करनेमें लम्पट योद्धाओंके भुजदण्डके खण्डन करनेमें प्रचण्ड एवं सघन रूपसे स्थित, मुकुटोंके अग्रभागकी पंक्तिसे युक्त अगणित राजाओंसे अच्छी तरह निर्मित राजसभामें स्वयंवरके बाद विवाहका समय आनेपर आपके शत्रु मृत्युको प्राप्त होंगे तथा आपका अभ्युदय भी निकट आ रहा है । आप बारहवें महीनेमें मेरे द्वारा कहे हुए कार्यको देख लेंगे और तदनन्तर मोक्षको प्राप्त होंगे । इस प्रकार देवके अमृतके समान आचरण करनेवाले वचनको और उसकी अप्सराओंके सरस वचनोंको कानोंका आभरण बनाते हुए जीवन्धरकुमार जब पर्वतसे नीचे उतरकर पृथिवीपर विहार करनेके लिए उद्यत हुए तब विरहकी पीड़ाको सहन करनेके लिए असमर्थ होते हुए सुदर्शन यक्षने उनका गाढ़ आलिंगन किया, 'इस तरह जाना' इत्यादि रूपसे मार्गके बीचका सब समाचार कहा और उसके बाद कुमारको बिदा कर वह अपने पर्वतकी ओर चला । आदरजन्य कातरतासे वह फिर-फिर

---

१. म० भुजादण्ड । २. क० नरपति ।

प्रस्खलितपदः स्वपदाभिमुखस्तन्वन्पदे पदे पृष्ठावलोकनं[1] साहाय्यमनुष्ठातुमनुचरमिव कुमारस्य कुवलयितकुवलयं लोचनयुगलं प्रेरयन्प्रचुरानुशयः शनैः शनैर्निजशैलमशिश्रियत् । एवं चिरा[2]दधिरुह्यान्तरिक्षमन्तर्हिते यक्षेन्द्रे, मृगेन्द्र इव वीतभीतिः स्ववीर्यगुप्तः स कुरुकुलकुमुदेन्दुररण्यमन्दादरादरण्यशोभाप्रहितेक्षणो विहरन्विगतातपत्रमेनमातपात्त्रातुमिव निराकृतातपान्मार्गपादपान्निरन्तरनिपतन्निर्झरनिभेन निःसहायकुमारनिरीक्षणदाक्षिण्यविगलदविरलाश्रुप्रवाहसंभृतानिव महीभृतश्च प्रेक्षमाणः प्रत्यक्षितयक्षोदितचिह्नमह्नाय महान्तं कान्तारपथमलङ्घयत् ।

पुनरपि अनुसृतानि कतिपयपदानि येन तथाभूतोऽनुगतकतिपयपदः प्रतिनिवृत्य प्रत्यावृत्य प्रस्खलितं पदं यस्य तथाभूतः प्रतिपतितचरणः स्वपदाभिमुखो निजनिकेतनाभिमुखः पदे पदे चरणे चरणे पृष्ठावलोकनं पश्चादवलोकनं वितन्वन् कुर्वन् कुमारस्य साहाय्यम् अनुष्ठातुं विधातुम् अनुचरमिव सेवकमिव कुवलयितं कुवलयानि नीलारविन्दानि संजातानि यस्मिंस्तत् तथाभूतं कुवलयं भूमण्डलं येन तत् लोचनयुगलं नयनयुगं प्रेरयन् चलयन् प्रचुरानुशयो विपुलपश्चात्तापयुतः शनैः-शनैः मन्दं-मन्दं निजशैलं स्वावासगिरिम् अशिश्रियत् । एवमिति—एवमनेन प्रकारेण चिरात् दीर्घकालानन्तरम् अन्तरिक्षं गगनम् अधिरुह्य यक्षेन्द्रे सुदर्शनेऽन्तर्हिते तिरोहिते सति, मृगेन्द्र इव सिंह इव वीतभीतिर्निर्भयः स्ववीर्यगुप्तः स्वपराक्रमपालितः स पूर्वोक्तः कुरुकुलकुमुदेन्दुः कुरुवंशकुमुदकलाधरोऽपि अमन्दादरात् प्रचुरादरात् अरण्यशोभायां काननसुषमायां प्रहिते ईक्षणे नयने येन तथाभूतो विहरन् विगतं दूरीभूतमातपत्रं छत्रं यस्य तथाभूतम् एनं कुमारम् आतपात् घर्मात् त्रातुमिव रक्षितुमिव निराकृत आतपो यैस्तान् दूरीकृतघर्मान् मार्गपादपान् वर्त्मावनिरुहान्, निरन्तरं यथा स्यात्तथा निपततां निर्झराणां वारिप्रवाहाणां निभेन व्याजेन निःसहायस्य एकाकिनः कुमारस्य जीवकस्य निरीक्षणे यद् दाक्षिण्यं सरलत्वं तेन विगलन् पतन् योऽविरलाश्रुप्रवाहस्तेन संभृतानिव पूर्णानिव महीभृतश्च गिरींश्च प्रेक्षमाणो विलोकमानः प्रत्यक्षितानि प्रत्यक्षं दृष्टानि यक्षोदितानि सुदर्शनयक्षनिवेदितानि चिह्नानि यस्मिंस्तम् महान्तं दीर्घं कान्तारपथं वनमार्गम् अह्नाय झगिति अलङ्घयत् अत्यक्रमीत् ।

लौट आता था तथा कुछ कदम उनके पीछे-पीछे चलने लगता था। चलते समय उसके पैर लड़खड़ा जाते थे। यद्यपि वह अपने निवास स्थानकी ओर जा रहा था तथापि पद-पदपर पीछेकी ओर देखता जाता था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कुमारकी सहायताके लिए सेवकके समान कुवलय—पृथिवी मण्डलको कुवलयित—नील कमलोंसे व्याप्त-जैसा करनेवाले नेत्रयुगलको प्रेरित कर रहा था। इस तरह बहुत भारी खेदसे युक्त होता हुआ वह धीरे-धीरे अपने पर्वतपर जा पहुँचा। इस प्रकार बहुत देर बाद वह यक्षेन्द्र जब आकाशमें अधिरूढ होकर अन्तर्हित हो गया तब सिंहके समान निर्भय और अपने पराक्रमसे सुरक्षित कुरुकुलकुमुदचन्द्रमा—जीवन्धरस्वामी भी बहुत भारी आदरसे वनकी शोभा देखनेके लिए नेत्रोंको प्रेरित करते हुए विहार करने लगे। विहार करते हुए वे छत्ररहित अपने आपको घामसे बचानेके लिए ही मानो घामको दूर करनेवाले मार्गके वृक्षोंको और निरन्तर पड़ते हुए झरनोंके बहाने सहायरहित कुमारको देखनेके कारण सरलतावश झरनेवाले अविरल आँसुओंके प्रवाहसे युक्त पर्वतोंको देखते हुए आगे बढ़े जा रहे थे। इस तरह उन्होंने जहाँ यक्षके द्वारा कहे हुए चिह्न प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे थे ऐसे बहुत भारी जंगली मार्गको शीघ्र ही पार कर दिया।

१. क० ख० ग० पृष्ठावलोकन। २. क० ग० देशादधिरुह्य।

§ १५०. ततश्चाग्रतः क्वचिदुग्रतरोष्मदुष्प्रापे विस्फुलिङ्गायमानपांसूत्करे करिनिष्ठ्यूतकरशीकरावशिष्टपयसि निःशेषपर्णक्षयनिर्विशेषाशेषविटपिनि निर्द्रवनिखिलदलनिर्मितमर्मररवभरितहरिति मरुत्सखसब्रह्मचारिमरुति करेणुतापहरणकृते निजकायच्छायाप्रदायिदन्तिनि वारणशोणितपारणापरायणपिपासातुरकेसरिण्युदन्यादैन्यप्रपञ्चवञ्चितहरिणगणलिह्यमानस्फटिकदृषदि मरकतमयूखरेखापरहरिताङ्कुरद्रुहि[1] मृगतृष्णिकाविलोकनोन्मस्तकसलिलतृषि गुल्मसंदेहसमापादनचतुरबर्हिबर्हान्तःप्रविशदातपक्लान्तबालफणिनि भक्ष्यदुर्भिक्षतानुपलक्षितवनमहिषकुक्षिणि तापताम्यद्दर्वीकर-

§ १५०. ततश्चाग्रत इति—ततस्तदनन्तरम् क्वचित् कुत्रापि मरुपृष्ठे मरुस्थले इति विशेषणविशेष्यसम्बन्धः। अथ मरुपृष्ठस्य विशेषणान्याह—उग्रतरेण तीव्रतरेण ऊष्मणा निदाघत्वेन दुष्प्रापे दुर्लभे, विस्फुलिङ्गायमानः वह्निकणवदाचरन् पांसूत्करो धूलिसमूहो यस्मिंस्तस्मिन् करिभिर्हस्तिभिः निष्ठ्यूता विमुक्ता ये करशीकराः शुण्डादण्डसलिलकणास्त एवावशिष्टं पयो यस्मिंस्तस्मिन्, निःशेषपर्णानामखिलपत्राणां क्षयेण निर्विशेषाः सदृशा अशेषविटपिनो निखिलद्रुमा यस्मिंस्तस्मिन्, निर्द्रवाणि शुष्काणि यानि निखिलदलानि समग्रपर्णानि तैर्निर्मितो यो मर्मररवस्तेन भरिता हरितो दिशा यस्मिंस्तस्मिन्, मरुत्सखस्य वह्नेः सब्रह्मचारी समानो मरुत्पवनो यस्मिंस्तस्मिन्, करेणोर्हस्तिन्यास्तापो घर्मजन्यक्लेशस्तस्य हरणकृते दूरीकरणाय निजकायस्य छायां प्रददतीत्येवंशीला दन्तिनो गजा यस्मिंस्तस्मिन्, वारणशोणितेन गजरुधिरेण पारणायां भोजने परायणास्तत्पराः पिपासातुरा उदन्यापीडिताः केसरिणः सिंहा यस्मिंस्तस्मिन्, उदन्यया पिपासया यो दैन्यप्रपञ्चो दीनताविस्तारस्तेन वञ्चितः प्रतारितो यो हरिणगणो मृगसमूहस्तेन लिह्यमाना जिह्वया स्पृश्यमानाः स्फटिकदृषदः श्वेतोपला यस्मिंस्तस्मिन्, मरकतमयूखरेखापरा मरकतमणिकिरणरेखासदृशा ये हरिताङ्कुरास्तेषां ध्रुक् तस्मिन्, मृगतृष्णिकाया मृगमरीचिकाया विलोकनेनोन्मस्तका वृद्धिंगता सलिलतृट् पानीयपिपासा यस्मिंस्तस्मिन्, गुल्मानां क्षुपाणां संदेहस्य संशयस्य समापादने चतुराणि दक्षाणि यानि बर्हिबर्हाणि मयूरपिच्छानि तेषामन्तर्मध्ये प्रविशन्त आतपक्लान्ता घर्मपीडिता बालफणिनो बालसर्पा यस्मिंस्तस्मिन्, भक्ष्यस्य खाद्यपदार्थस्य दुर्भिक्षतया दुर्लभतयानुपलक्षिताः कृशत्वेनादर्शनार्हा वनमहिषाणां काननसैरिभाणां कुक्षयो जठराणि यस्मिंस्तस्मिन्, तापेन घर्मातिशयेन ताम्यन्ता

§ १५०. तदनन्तर चलते-चलते उन्होंने कहीं एक ऐसा मरुस्थल देखा जो अत्यन्त तीव्र गरमीके कारण दुष्प्राप्य था—जहाँ पहुँचना कठिन था। जहाँ धूलिका समूह अग्निके तिलगोंके समान आचरण करता था। पानीके नामपर जहाँ हाथियोंके द्वारा उगले हुए सूँड़के छींटे ही अवशिष्ट थे। समस्त पत्तोंका क्षय हो जानेसे जहाँ सब वृक्ष एक समान हो गये थे। सूखे हुए समस्त पत्तोंके द्वारा निर्मित मर्मर शब्दसे जहाँ दिशाएँ भरी हुई थीं। जहाँ अग्निके समान वायु बह रही थी। जहाँ हस्तिनीका सन्ताप हरनेके लिए हाथी अपने शरीरकी छाया प्रदान कर रहे थे। हाथियोंके रुधिरके भोजन करनेमें तत्पर सिंह जहाँ प्याससे पीड़ित हो रहे थे। प्याससम्बन्धी दीनताके विस्तारसे ठगे हुए हरिणोंके समूह जहाँ स्फटिकमणिके पत्थरोंको चाट रहे थे। जो मरकत मणियोंकी किरणरेखाके समान हरे अंकुरोंके साथ द्रोह कर रहा था। मृगतृष्णाके देखनेसे जहाँ पानीकी प्यास और भी अधिक बढ़ रही थी। खाने योग्य पदार्थोंकी दुर्लभतासे जहाँ जंगली भैंसोंके पेट दिखाई ही नहीं पड़ते थे। गरमीसे

१. ख० ग० हरिताङ्कुरद्रुहि, क० हरिताङ्कुराग्रद्रुहि, म० हरिताङ्कुररुहि।

भीकरशूत्कारकान्दिशीकश्वाविधि मृगगणनिर्मांसताकृतमृगयोपेक्षाबुभुक्षितवनौकसि वनदहनदह्यमानवंशपरिपाटीपाटनप्रभवझटझटारवचकिताध्वगमनसि दीनताशान्तवानरकुललीलाकर्मणि घर्मसमयारम्भसमधिकदु:सहोष्म[1] घर्माभिधानरसातलज्येष्ठे मरुपृष्ठे, निश्चरदर्चिश्छटावलीढवेणुस्फोटस्फुटपुर:पटहेन शुष्काण्यपि शिरांसि महीरुहां ज्वालाभि: किसलयितानि कुर्वाणेन, दन्दह्यमान[3]नीडोड्डीननिरालम्बाम्बरभ्रमणखेदपतितपत्रिपत्रपालीचटचटायितरटितवाचाटेन विपिनसत्त्वसंतानविविधवसागन्धानुबन्धविगमायेव सपदि निर्दग्धस्निग्धकालागुरुतरुगहनैरात्मानं धूपयता, कुसुम-

दुःखीभवन्तो ये दर्वीकराः सर्पास्तेषां भीकरशूत्कारेण भयावहशूत्कारशब्देन कान्दिशीका भयद्रुताः श्वाविधश्चाण्डाला यस्मिंस्तस्मिन्, मृगगणस्य हरिणसमूहस्य निर्मांसतया कार्श्यातिशयेन मांसरहिततया कृता विहिता या मृगयोपेक्षा आखेटोपेक्षा तया बुभुक्षिताः क्षुधातुरा वनौकसो वनेचरा यस्मिंस्तस्मिन्, वनदहनेन दावाग्निना दह्यमाना भस्मीक्रियमाणा या वंशपरिपाटी वेणुसंततिस्तस्याः पाटनं विदारणं प्रभवः कारणं यस्य तथाभूतो यो झटझटारवो झटझटाशब्दस्तेन चकितानि त्रस्तानि अध्वगमनांसि पथिकजनचेतांसि यस्मिंस्तस्मिन्, दीनतया दौर्बल्यजनितदैन्येन शान्तानि वानरकुलस्य कपियूथस्य लीलाकर्माणि क्रीडाचेष्टितानि यस्मिंस्तस्मिन्, घर्मसमयस्य निदाघकालस्यारम्भेण समधिकं यथा स्यात्तथा दुःसहो य ऊष्मा औष्ण्यं तेन घर्माभिधानरसातलात् रत्नप्रभापृथिवीतलादपि ज्येष्ठोऽधिकस्तस्मिन्। तथाभूते मरुपृष्ठे दावपावकेन दावानलेन इति विशेषणविशेष्यसम्बन्धः। अथ 'दावपावकेन' इत्यस्य विशेषणान्याह— निश्चरन्ति निर्गच्छन्ति यान्यर्चींषि ज्वालास्तेषां छटया समूहेनावलीढा व्याप्ता ये वेणवो वंशास्तेषां स्फोटाः स्फुटनशब्दा एव स्फुटाः स्पष्टाः पुरःपटहा अग्रेचरवाद्यानि यस्य तथाभूतेन, शुष्काण्यपि अनार्द्राण्यपि महीरुहां तरूणां शिरांसि शिखराणि ज्वालाभिः किसलयितानि पल्लवितानि कुर्वाणेन, दन्दह्यमाना अतिशयेन दह्यमाना ये नीडाः कुलायास्तेभ्य उड्डीना उत्पतिता निरालम्बाम्बरभ्रमणखेदपतिता निराधारगगनभ्रमणखेदपतिता ये पत्रिणः पक्षिणस्तेषां पत्रपाल्याः पक्षसन्ततेश्चटचटायितरटितेन चटचटाशब्देन वाचाटो वाचालस्तेन, विविधसत्त्वानां नानावनजन्तूनां संतानस्य समूहस्य या विविधा नानाप्रकारा वसा मेदांसि तासां गन्धस्तस्यानुबन्धः संस्कारस्तस्य विगमायेव दूरीकरणायेव सपदि शीघ्रं निर्दग्धाः स्निग्धा ये कालागुरुतरवः कृष्णागुरुचन्दनवृक्षास्तेषां गहनैर्वनैः आत्मानं स्वं धूपयता धूपेन सुगन्धिं कुर्वता, कुसुमानि

छटपटाते हुए साँपोंकी भयंकर सूसूकारसे जहाँ शिकारी भयसे भाग रहे थे। मृगसमूहके मांसरहित होनेके कारण की हुई शिकारकी उपेक्षासे जहाँ वनवासी लोग भूखसे युक्त हो रहे थे। वनकी दावानलसे जलते हुए बंशसमूहके फटनेसे उत्पन्न झटझटा शब्दसे जहाँ पथिकोंके मन चकित हो रहे थे। जहाँ दीनताके कारण वानरसमूहकी लीलाएँ शान्त हो गयी थीं। और ग्रीष्म ऋतुके प्रारम्भ होनेसे अधिकताको प्राप्त हुई दुःसह गरमीके कारण जो घर्मानामक पहली पृथिवीसे भी कहीं अधिक जान पड़ता था। उस मरुस्थलमें उन्होंने उस दावानलसे घिरे हुए अनेक हाथी देखे कि जिसके आगे-आगे निकलती हुई ज्वालाओंकी छटासे व्याप्त बाँसोंके चटखनेसे मानो बाजे ही बज रहे थे। जो वृक्षोंके सूखे शिखरोंको भी ज्वालाओंसे पल्लवित कर रहा था। जलते हुए घोंसलोंसे उड़े और निराधार आकाशमें भ्रमण करनेके खेदसे पतित पक्षियोंके पंखोंकी चटचटा ध्वनिसे जो शब्दायमान हो रहा था। जंगलके प्राणीसमूहकी नाना प्रकारकी गन्धका संस्कार दूर करनेके लिए ही मानो जो अपने-आपको शीघ्र जलाये हुए स्निध कालागुरुके वृक्षोंके वनसे धूप दिखा रहा था—धूपसे सुगन्धित कर

१. क० ख० ग० दु.सहे घर्माभिधानरसातलज्येष्ठे। २. क० ख० ग० दह्यमान।

चषकपुटेषु कृतमधुरसास्वादनमदवशादिव प्रतिदिशं पतता, साटोपं कबलयता स्वाहितवलाहकगृह्यतागर्हयेव बर्हिणव्यूहान्, वैरिवारिसंभवरुषेव शोषितसरसीगर्भस्थितानि वारिजजालानि[1] लेलिहता, गृहीतगरुडस्वभावेनेव निर्विशङ्कचर्व्यमाणदुर्वहभोगभीमभोगिना, निजजीवितापहारिजीमूतमूलच्छेदेच्छयेव स्फुलिङ्गव्याजेन वियति समुदगच्छता[2], दुष्कालेनेव तुच्छेतरधूमप्रच्छादितद्यावापृथिवीविभागेन, पात्रदानेनेव भूतिविधायिना, बौद्धेनेव लब्धसर्वस्वभक्षिणा, तत्त्वज्ञानेनेव तमोपहेन, अतृप्तिमत्त्वादतिगृध्नुजनदेशीयेन, प्राप्तदूषणाद्वेश्याजनवेषान्तरेण, दुष्प्रवेशत्वादाढ्य-

पुष्पाण्येव चषकपुटानि पानपात्रस्थलानि तेषु कृतं विहितं यन्मधुरसस्यास्वादनं तेन मदो मोहस्तस्य वशादिव प्रतिदिशं प्रतिकाष्ठं पतता, साटोपं साडम्बरं यथा स्यात्तथा स्वस्य दावपावकस्याहिताः शत्रवो ये बलाहका मेघास्तेषां गृह्यता मित्रता तस्या गर्हयेव निन्दयेव बर्हिणव्यूहान् कलापिकलापान् कबलयता ग्रसता, वैरिवारिषु शत्रुभूतसलिलेषु संभवः समुत्पत्तिस्तस्य रुषेव क्रोधेनेव शोषिता निर्जलीकृता याः सरस्यः कासारास्तेषां गर्भे मध्ये स्थितानि वारिजजालानि नीरजनिकुरम्बाणि लेलिहता जिह्वाविषयीकुर्वता, गृहीतो गरुडस्य तार्क्ष्यस्य स्वभावो येन तथाभूतेनेव निर्विशङ्कं निर्भयं यथा स्यात्तथा चर्व्यमाणा दन्तैः शकलीक्रियमाणा दुर्वहभोगभीमा विपुलफणा भयंकरा भोगिनः सर्पा येन तेन, निजजीवितस्य स्वकीयप्राणानामपहारी यो जीमूतो मेघस्तस्य मूलच्छेदस्येच्छयेव वाञ्छयेव स्फुलिङ्गव्याजेन अनलकणकपटेन वियति नभसि समुद्गच्छता समुत्पतता, दुष्टः कालो दुष्कालस्तेनेव कुकालेनेव तुच्छेतरेण महता धूमेन प्रच्छादितो द्यावापृथिव्योराकाशवसुन्धयोर्विभागो येन तेन, पात्रदानेनेव मुन्यार्यिकाप्रभृतियोग्यपात्रदानेनेव भूतिविधायिना संपत्तिविधायिना पक्षे भस्मविधायिना 'भूतिर्भस्मानि संपदि' इत्यमरः बौद्धेनेव ताथागतेनेव लब्धं प्राप्तं सर्वस्वं भक्षयति खादतीत्येवंशीलस्तेन पक्षे यत्प्राप्तं तत्सर्वं दग्धुं शीलेन, तत्त्वानि जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाभिधानानि तेषां ज्ञानेनेव तमोपहेन मोहापहारिणा पक्षे तिमिरापहारिणा, अतृप्तिमत्त्वात् संतोषरहितत्वाद् अतिगृध्नुजनदेशीयेन औदरिकजनतुल्येन, प्राप्तस्य दूषणं तस्माद् वेश्याजनस्य कुलटाजनस्य

रहा था। फूलरूपी प्यालियोंमें किये हुए मधु रसके आस्वादनसे उत्पन्न नशासे विवश होनेके कारण ही मानो जो प्रत्येक दिशामें गिर रहा था। अपने अहितकारी मेघोंकी मित्रताजन्य निन्दाके कारण ही जो मानो मयूरोंके समूहको बड़े आडम्बरोंके साथ ग्रस रहा था। जो सूखे हुए सरोवरोंके मध्यमें स्थित कमलोंके समूहको बार-बार चाट रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो 'ये कमल हमारे शत्रुस्वरूप जलसे उत्पन्न हुए हैं' इस क्रोधसे ही मानो उन्हें चाट रहा था। गरुड़के स्वभावको ग्रहण किये हुए के समान जो बिना किसी शंकाके दुर्वह फनोंसे भयंकर साँपोंको चबा रहा था। अपने जीवनको हरण करनेवाले मेघोंका मूलच्छेद करनेकी इच्छासे ही मानो जो तिलगोंके बहाने आकाशमें उड़ा जा रहा था। दुष्कालके समान जिसने बहुत भारी धुएँसे आकाश और पृथिवीके विभागोंको व्याप्त कर रखा था। जो पात्र दानके समान था क्योंकि जिस प्रकार पात्र दान भूतिविधायी—नाना प्रकारकी सम्पत्तिको करनेवाला है उसी प्रकार वह दावानल भी भूतिविधायी था—भस्मको उत्पन्न करनेवाला था। जो बौद्धके समान लब्धसर्वस्वभक्षी था अर्थात् जिस प्रकार बौद्ध अनित्यैकान्तवादी होनेसे प्राप्त हुए समस्त पदार्थोंको क्षणभंगुर वर्णन करता है अथवा आचार-विचारसे रहित होनेके कारण जो कुछ भी मिलता है उस सबको खा जाता है उसी प्रकार वह दावानल भी लब्धसर्वस्वभक्षी था अर्थात् जो भी पदार्थ प्राप्त होता था उस सबको वह जला देता था। जो तत्त्वज्ञानके समान तमोपह—अन्धकारको दूर करनेवाला (पक्षमें मोहको दूर करनेवाला)

१. क० वारिजदलानि। २. क० ख० ग० समुपगच्छता।

गृहातिशायिना, सुजनलोकेनेव पांसुलस्थले स्पर्शरहितेन, गुणराशिनेव वंशोत्कर्षप्रकृष्यमाणेन, तस्करेणेव रक्षाभूयिष्ठे निवृत्तसंरम्भेण दावपावकेन परितः परीततया परितापपराधीनान्कृपाधीनमनाः स दीनोद्धरणोचितः कुमारः शतह्रदाशतवलयितानिव बलाहकाननेकपानैक्षिष्ट ।

§ १५१. दृष्टमात्रेष्वेव तेषु स्वगात्रस्पृगुपद्रवादिव दूयमानः सुतरां सुदर्शनसुहृदयं तदुपद्रवपरिहृतये हृदयनिहितजिनपतिपदपङ्कजः सुप्तमीनह्रद इव निभृतनिष्पन्दाक्षिपक्ष्मा क्षणमस्थात् ।

वेषान्तरेणेव नेपथ्यान्तरेणेव वेश्याजनोऽपि यः किल प्राप्तो भवति तं स्वमायया दूषयति, दुष्प्रवेशत्वात् दुःखेन प्रवेष्टुं शक्यत्वात् आढ्यगृहातिशायिना धनिकजनगृहमतिक्राम्यता धनिकजनगृहमपि रक्षकजनावृतत्वात् दुःप्रवेशं भवति, सुजनलोकेनेव सत्पुरुषेणेव पांसुलस्थले पापस्थाने पक्षे सधूलिस्थाने स्पर्शरहितेन यत्र पांसवो भवन्ति तत्रानलो न प्रसरतीति लोकसिद्धम्' गुणराशिनेव गुणसमूहेनेव वंशस्य कुलस्योत्कर्षेण श्रेष्ठत्वेन प्रकृष्यमाणो वर्धमानस्तेन पक्षे वेणूत्कर्षप्रकृष्यमाणेन, तस्करेणेव चोरेणेव रक्षाभूयिष्ठे रक्षाबहुले स्थाने निवृत्तः संरम्भो यस्य तेन पक्षे भस्मबहुले स्थाने निवृत्तसंरम्भेण दूरीकृतोद्योगेन । एवंभूतेन दावपावकेन दावानलेन परितः समन्तात् परीततया व्याप्ततया परितापेन संतापेन पराधीनास्तान्, शतह्रदाशतेन विद्युत्समूहेन वलयितान् युक्तान् वलाहकानिव मेघानिव अनेकपान् करिणः कृपाधीनं मनो यस्य तथाभूतो दयालुचित्तः दीनानामुद्धरण उचित इति दीनोद्धरणोचितः अथवा उचितमभ्यस्तं दीनोद्धरणं यस्य तथाभूतः वाहिताग्न्यादित्वात्परनिपातः कुमारो जीवंधर ऐक्षिष्ट ददर्श ।

§ १५१. दृष्टमात्रेष्वेवेति—तेषु अनेकपेषु दृष्टमात्रेष्वेव स्वगात्रस्पृग् स्वशरीरस्पर्शी य उपद्रवस्तस्मादिव सुतरामत्यन्तं दूयमानः परितप्यमानः अयं सुदर्शनसुहृद् सुदर्शनयक्षसखो जीवंधरः तदुपद्रवपरिहृतये गजोपद्रवपरिहाराय हृदये चेतसि निहिते स्थापिते जिनपतेरर्हतः पदपङ्कजे चरणारविन्दे येन तथाभूतः सुप्ता मीना मत्स्या यस्मिंस्तथाभूतो ह्रद इव जलाशय इव निभृतमत्यन्तं निष्पन्दं निश्चलमक्षिपक्ष्म नयनरोमराजिर्यस्य तथाभूतः सन् क्षणम् अस्थात् क्षणं यावन्निश्चलोऽभूदिति यावत् । तावतेति—यावता

था। जो तृप्तिसे रहित होनेके कारण अत्यन्त लोभी मनुष्यके समान जान पड़ता था। जो प्राप्त हुए पदार्थमें दोष लगा देनेके कारण वेश्याजनोंके दूसरे वेषके समान जान पड़ता था। जो दुःखसे प्रवेश करनेके योग्य होनेके कारण धनाढ्य मनुष्यके घरको भी अतिक्रान्त करनेवाला था। जो सज्जन मनुष्योंके समान पांसुल स्थल—पापी मनुष्योंके स्थलमें स्पर्शसे रहित था (पक्षमें धूलिपूर्ण स्थलमें स्पर्शसे रहित था)। जो गुणराशिके समान वंशोत्कर्षसे प्रकृष्यमाण था—बाँसोंकी अधिकतासे बढ़ता जाता था (पक्षमें कुलकी उत्कृष्टतासे बढ़नेवाला था)। और जो चोरके समान था क्योंकि जिस प्रकार चोर रक्षाबहुल स्थानमें—पहरेदारोंसे युक्त स्थानमें प्रवृत्तिसे रहित होता है उसी प्रकार वह दावानल भी रक्षाबहुल स्थानमें—अधिकतर भस्मसे युक्त स्थानमें प्रवृत्तिसे रहित था। उक्त दावानलके द्वारा चारों ओरसे घिरे होनेके कारण वे हाथी सन्तापसे युक्त थे तथा सैकड़ों बिजलियोंसे घिरे हुए मेघोंके समान जान पड़ते थे। जीवन्धर स्वामी दीन प्राणियोंका उद्धार करनेके अभ्यस्त थे इसलिए उन हाथियोंको देख उनका हृदय दयाके अधीन हो गया।

§ १५१. उन हाथियोंके दिखते ही जीवन्धरकुमार इतने अधिक दुःखी हुए मानो वह उपद्रव स्वयं उनके शरीरपर ही हो रहा हो। उनका उपद्रव दूर करनेके लिए वे हृदयमें जिनेन्द्र भगवान्के चरणकमलोंको विराजमान कर क्षण-भरके लिए स्थिर खड़े हो गये। उस समय उनके नेत्रोंकी बरौनियाँ अत्यन्त निश्चल थीं और उससे वे उस सरोवरके समान जान पड़ते थे जिसमें कि मछलियाँ सोयी हुई हों। उसी क्षण जो अत्यन्त तीक्ष्ण प्रकाशसे नेत्रोंको निमी-

तावता ववृषुः परुषतरालोकनिमीलिताम्बकानामम्बरमालिम्पतामकालबालातपरुचां शम्पासहस्राणामजस्रोन्मेषणमण्डिताः शुण्डालीरसशुण्डादण्डप्रकाण्डतुल्यस्थौल्यनीरधारानिरन्तरितान्तरिक्षाः प्रतिक्षणसुलभफणिपतिरणरणकवितरणचतुरगम्भीरगर्जितजर्जरितश्रवसः पर्जन्याः ।

§ १५२. तदनु च निजोदरनिलीनसानुमति सलिलाहरणधिषणागतनीरदायमानद्विरदपरिषदि बाडवकूपीटयोनितुलितबिलविवरपीयमानपयसि शौक्तिकनिकरानुकारिकरकोत्करहारिणि विडम्बितविद्रुमलतावितानद्रुमकिसलयोपशोभिनि सागरसब्रह्मचारिणि प्रवहति पयःप्रवाहे दावचित्रभानोः परित्रातानालोक्य गजान्गजेन्द्रगामी गतानुशयः शनैरतिक्रम्य मरुभुवं गत्वा गव्यूतिमात्रं तत्रैव

तावत्कालेन च पर्जन्या मेघा ववृषुरिति कर्तृक्रियासम्बन्धः । अथ पर्जन्यानां विशेषणान्याह—परुषतरेण तीक्ष्णतरेण आलोकेन प्रकाशेन निमीलितानि अम्बकानि नेत्राणि यैस्तेषाम्, अम्बरं गगनम् आलिम्पताम्, अकालबालातप इव अकाण्डप्रभातातप इव रुक् कान्तिर्येषां तेषां शम्पासहस्राणां विद्युत्सहस्राणाम् अजस्रं निरन्तरं यदुन्मेषणं तेन मण्डिताः शोभिताः, शुण्डालानां गजानां य औरसा बालकास्तेषां शुण्डादण्डप्रकाण्डानां श्रेष्ठशुण्डादण्डानां तुल्यं समानं स्थौल्यं यासां तथाभूता या नीरधारास्ताभिर्निरन्तरितमन्तरीक्षं यैस्तथाभूताः प्रतिक्षणं क्षणं क्षणं प्रति सुलभं फणिपतेः शेषनागस्य रणरणकवितरणे चतुरं निपुणं गम्भीरं सातिशयं च यद् गर्जितं स्तनितं तेन जर्जरितानि जीर्णीकृतानि श्रवांसि श्रोत्राणि यैस्ते ।

§ १५२. तदन्विति—तदनु तदनन्तरम् निजोदरे निजमध्ये निलीनोऽन्तर्हितः सानुमान् पर्वतो येन तस्मिन्, सलिलाहरणस्य जलग्रहणस्य धिषणया बुद्ध्या आगता ये नीरदा मेघास्तद्वदाचरन्ती द्विरदपरिषद् गजघटा यस्मिंस्तस्मिन्, बाडवकूपीटयोनिना बडवानलेन तुलितैः सदृशैर्बिलविवरैर्बिलच्छिद्रैः पीयमानं पयो यस्य तस्मिन्, शौक्तिकनिकरानुकारिणो मौक्तिकसमूहानुकारिणो ये करका वर्षोपलास्तेषामुत्करेण समूहेन हारिणि मनोहरे, विडम्बितास्तिरस्कृता विद्रुमलतावितानाः प्रवालवल्लीसमूहा यैस्तथाभूता ये द्रुमकिसलया वृक्षपल्लवास्तैरुपशोभत इत्येवंशीले, सागरसब्रह्मचारिणि सिन्धुसदृशे पयःप्रवाहे पानीयपूरे प्रवहति सति, दावचित्रभानोर्दावानलात् परित्रातान् रक्षितान् गजान् आलोक्य गजेन्द्र इव गच्छतीत्येवंशीलो गजेन्द्रगामी जीवंधरो गतानुशयो विगतपरितापः शनैर्मन्दम् मरुभुवं रजःस्थानम् अतिक्रम्य व्यपगमय्य गव्यूतिरेव

लित करनेवाली, आकाशको लिप्त करनेवाली और असमयमें प्रकट हुए प्रातःकालके घामके समान कान्तिको धारण करनेवाली हजारों बिजलियोंके निरन्तर होनेवाली कौंधसे सुशोभित थे। हाथियोंके बच्चोंके शुण्डादण्डके समान मोटी-मोटी जलकी धाराओंसे जिन्होंने आकाशको व्याप्त कर रखा था और क्षण-क्षणमें सुलभ एवं शेष नागको उत्कण्ठा उत्पन्न करनेमें चतुर गम्भीर गर्जनासे जिन्होंने कान जर्जर कर दिये थे ऐसे मेघ बरसने लगे।

§ १५२. तदनन्तर जिसने पर्वतोंको अपने उदरमें विलीन कर लिया था, जिसके बीच हाथियोंका समूह पानी लेनेकी बुद्धिसे आये हुए मेघोंके समान जान पड़ता था, बडवानलके समान बिलोंके छिद्रोंसे जिसका पानी पिया जा रहा था, जो मोतियोंके समूहका अनुकरण करनेवाले ओलोंके समूहसे सुशोभित था, जो मूँगाकी लताओंको विडम्बित करनेवाले वृक्षोंकी लहलहाती लाल-लाल कोंपलोंसे सुशोभित था और सागरके समान जान पड़ता था ऐसा जलका प्रवाह जब बहने लगा तब उन हाथियोंको दावानलसे सुशोभित देख गजराजके समान गमन करनेवाले जीवन्धरकुमार पश्चात्तापसे सहित हो धीरे-धीरे उस मरुस्थलको लाँघकर दो कोश आगे गये होंगे कि उन्होंने एक पर्वत देखा। वह पर्वत महावंशतया—बड़े-

महावंशतया महासत्त्वतया महीभृत्तया महोन्नतितया चात्मानमनुकुर्वन्तं कमपि पर्वतं तदखर्वगर्व-निर्वासनाय निवेशयितुमिव निजाङ्घ्रियुगमस्य शिरसि सिंहपोत इव शिलाविभङ्गेन साहंकारः समधिरुह्य महीभृतस्तस्य मणिमकुटायमानं जिनपतिसदनम्[1], पिपासातुर इव धाराबन्धमादरान्धः समासाद्य, सद्यः संफुल्लमल्लिकावकुलमालतीप्रमुखप्रफुल्लगुच्छैः पूजार्हमर्हन्तमतिभक्तिरभिपूज्य, पुनरपि तरुणतरणिरिव गीर्वाणगिरिं प्रकृष्टमनोरथः प्रदक्षिणं भ्रमन्, तत्रत्यया जिनशासनरक्षियक्षि-देवतया सादरसंपादितकशिपुः, ततो विनिर्गत्य विश्वतः शश्वदुपपादिततरुणीचरणयावकरससंपर्क-

गव्यूतिमात्रं क्रोशद्वयप्रमितं गत्वा तत्रैव महावंशतया उच्चकुलतया पक्षे महावेणुसहिततया, महासत्त्वतया विपुलपराक्रमतया पक्षे बृहदाकारजीवसहितत्वेन महीभृत्तया राजतया पक्षे पृथिवीधरत्वेन, महोन्नतितया च प्रचुरौदार्यतया च पक्षे महोत्तुङ्गतया च आत्मानं स्वम् अनुकुर्वन्तं कमपि पर्वतं शैलं तस्य पर्वतस्य योऽखर्वो गर्वो भूयिष्ठोऽहंकारस्तस्य निर्वासनाय दूरीकरणाय अस्य शिरसि मस्तके पक्षे शिखरे निजाङ्घ्रियुगं स्वकीयचरणयुगलं निवेशयितुमिव स्थापयितुमिव सिंहपोत इव मृगेन्द्रमाणवक इव साहंकारः सगर्वः शिलाविभङ्गेन शिलाखण्डेन समधिरुह्य तस्य महीभृतः पर्वतस्य पक्षे राज्ञः मणिमकुटायमानं रत्नमौलि-वदाचरत् जिनपतिसदनं जिनेन्द्रमन्दिरम् पिपासातुर उदन्यापीडितो धाराबन्धमिव जलाशयमिव आदरान्धः सन् समासाद्य लब्ध्वा सद्यो झटिति संफुल्लानि विलसितानि यानि मल्लिकाबकुलमालतीप्रमुखफुल्लानि तेषां गुच्छैः स्तबकैः पूजार्हं सपर्यायोग्यम् अर्हन्तं जिनेन्द्रम् अतिभक्तिः प्रगाढभक्तियुक्तः सन् अभिपूज्य पूजयित्वा पुनरपि पूजानन्तरं तरुणतरणिर्मध्याह्नमार्तण्डो गीर्वाणगिरिमिव सुमेरुमिव प्रकृष्टमनोरथः श्रेष्ठाभि-प्रायः प्रदक्षिणं भ्रमन् परिक्राम्यन् तत्रत्यया तत्रभवया जिनशासनरक्षिणी या यक्षिदेवता तया सादरं ससम्मानं यथा स्यात्तथा संपादितः कशिपुर्वस्त्राच्छादने यस्य तथाभूतः, ततो जिनपतिसदनतो विनिर्गत्य विश्वतः सर्वतः शश्वद् निरन्तरम् उपपादितस्य तरुणीचरणयावकरसस्य युवतिपादालक्तकस्य संपर्केण

बड़े बाँसोंसे युक्त होनेके कारण (पक्षमें उच्चकुलीन होनेसे) महासत्त्वतया—अत्यधिक जीव-जन्तुओंसे सहित होनेके कारण (पक्षमें अत्यन्त शक्तिशाली होनेसे) महीभृत्तया—पृथिवीको धारण करनेके कारण (पक्षमें पृथिवीका पालन करनेसे और महोन्नतितया—अत्यधिक ऊँचाईके कारण (पक्षमें अत्यधिक उदार होनेसे) जीवन्धर स्वामीका अनुकरण कर रहा था। उस पर्वतका बहुत भारी अहंकार दूर करनेके लिए ही मानो उसके सिरपर—शिखरपर अपना पैर रखनेके उद्देश्यसे वे उसपर उस प्रकार चढ़ गये जिस प्रकार कि अहंकारसे युक्त सिंहका बच्चा चट्टानोंके खण्डोंपर पैर रखता हुआ जा चढ़ता है। ऊपर चढ़कर उन्होंने उस पर्वतरूपी राजाके मणिमय मुकुटके समान आचरण करनेवाला एक जिनमन्दिर देखा। जिस प्रकार प्याससे पीडित मनुष्य बड़े आदरसे जलाशयके पास पहुँचता है उसी प्रकार जीवन्धर स्वामी भी आदरसे अन्ध होते हुए उस जिनमन्दिरके पास पहुँचे। उन्होंने तीव्र भक्तिसे युक्त हो शीघ्र ही विकसित जुही, मौलश्री तथा मालती आदि प्रमुख-प्रमुख फूलोंके गुच्छोंसे पूजाके योग्य अर्हन्त भगवान्‌की पूजा की। और मध्याह्नका सूर्य जिस प्रकार सुमेरु-पर्वतकी प्रदक्षिणा देता है उसी प्रकार उन्होंने उत्तम मनोरथोंसे युक्त हो उक्त मन्दिरकी बार-बार प्रदक्षिणा दी। उस मन्दिरमें जिनशासनकी रक्षा करनेवाली जो यक्षी देवी रहती थी उसने उन्हें आदरपूर्वक वस्त्र तथा भोजन प्रदान किया। वहाँसे निकलकर वे उस पल्लव

१. क० ख० ग० जिनसदनम्।

रक्ततलतया स्वयमपि[1] पल्लवितरागमिव पल्लवव्यपदेशं देशमशिश्रियत् ।

§ १५३. तदनु च तन्मध्यनिवेशितं निर्दोषतया दोषाधिपतिरिति सदा सुवृत्ततया व्यवस्थाविकलवृत्त इति कलाक्षयरहिततया परिक्षीणकल इति च परिभवन्तं चन्द्रम्, चन्द्राभं नाम कमपि स्कन्धावारम्, नैकवारसंभवदसंभविनिमित्तोपलम्भेन ससंभ्रमं गाहते स्म ।

§ १५४. तस्मिन्नपि स्थानस्थानेषु वाचंयमानामिव वर्जितव्याहृतीनां सद्यःसमुद्यताहस्करद्युतामिव[2] बाष्पनिष्पादनव्यसनजुषां भूरिफलभरितभूरुहामिव विनम्रशिरसां पुरौकसां नालनिष्कु-

सम्बन्धेन रक्तमरुणवर्णं तलं यस्य तथाभूतस्तस्य भावस्तया स्वयमपि स्वतोऽपि पल्लवितो वर्धितो रागो यस्य तथाभूतमिव पल्लवव्यपदेशं पल्लवनामधेयं देशम् अशिश्रियत ।

§ १५३. तदन्विति—तदनु च पल्लवदेशाभिगमानन्तरम् तन्मध्यनिवेशितं तद्देशमध्यस्थले विद्यमानं निर्दोषतया दोषरहितत्वेन पक्षे रात्रिरहितत्वेन दोषाधिपतिर्दुर्गुणस्वामी पक्षे रात्रिपतिः इति, सदा सुवृत्ततया सदाचारयुक्तत्वेन पक्षे सुगोलाकारत्वेन व्यवस्थाविकलं वृत्तं चारित्रं यस्य पक्षे व्यवस्थाविकलः परिवर्तनशीलो वृत्तो गोलाकार इति, कलाक्षयरहितया वैदग्धीविनाशरहितत्वेन पक्षे षोडशभागक्षयरहितत्वेन परिक्षीणा नश्वराः कला यस्य तथाभूत इति हेतोः चन्द्रं शशिनम् परिभवन्तं तिरस्कुर्वन्तं चन्द्राभं नाम कमपि स्कन्धावारं राजधानीम् नैकवारं संभवन्ति यान्यसंभवीनि निमित्तानि शकुनानि तेषामुपलम्भेन प्राप्त्या ससंभ्रमं यथा स्यात्तथा गाहते स्म प्रविशति स्म । स्कन्धावारो निर्दोषः चन्द्रस्तु दोषाधिपतिर्दुर्गुणस्वामी पक्षे रजनीपतिरिति चन्द्रेण तस्य परिभवनमुचितमेव, स्कन्धावारस्तु सदा सुवृत्तः सदाचारयुक्तः चन्द्रस्तु व्यवस्थाविकलवृत्त इति तेन तस्य परिहारो योग्य एव । स्कन्धावारस्तु कलापरिक्षयरहितश्चातुर्यविनाशरहितः चन्द्रस्तु परिक्षीणकल इति हेतोस्तेन तस्य पराभवनमर्हमेवेति व्यतिरेकः ।

§ १५४. तस्मिन्नपि—तस्मिन्नपि चन्द्राभस्कन्धावारेऽपि स्थानस्थानेषु प्रतिस्थानं वाचंयमानामिव गृहीतमौनानामिव वर्जितव्याहृतीनां त्यक्तवाचाम्, सद्यः समुद्यतो योऽहस्करः सूर्यस्तस्येव द्युत् कान्तिर्येषां तेषामिव, बाष्पनिष्पादनव्यसनमश्रूत्पत्तिव्यसनं जुषन्ते इति बाष्पनिष्पादनव्यसनजुषाम् एकत्र दुःखेन बाष्पोत्पत्तिः, अन्यत्र द्युतां चाकचक्येनेति भावः, भूरिफलैर्विपुलपरिमाणफलैर्भरिता ये भूरुहो वृक्षास्तेषामिव विनम्रशिरसां नतशीर्षाणाम् एकत्र दुःखातिशयेन अन्यत्र च फलभरेण विनम्रशिरस्त्वं ज्ञेयम्, पुरौकसां

देशमें पहुँचे जहाँ निरन्तर तरुण स्त्रियोंके चरणोंके महावरके सम्पर्कसे पृथिवीतल लाल-लाल दिखाई देता था और उससे जो ऐसा जान पड़ता था मानो स्वयं ही रागको पल्लवित कर रहा हो—वृद्धिंगत कर रहा हो।

§ १५३. तदनन्तर उस देशके मध्यमें स्थित चन्द्राभ नामक किसी नगरमें उन्होंने बार-बार होनेवाले अनेक असम्भव निमित्तोंके मिलनेसे संभ्रमपूर्वक प्रवेश किया। वह नगर निर्दोष था और चन्द्रमा दोषाधिपति—दोषोंका स्वामी (पक्षमें दोषा-रात्रिका स्वामी था), नगर सदा सुवृत्त-गोल अथवा सदाचारसे सहित था और चन्द्रमा व्यवस्थासे रहित गोल था—कभी गोल रहता था और कभी अर्धगोल आदि रहता था अथवा सदाचारसे रहित था। और नगर कलाओंके क्षयसे रहित था जब कि चन्द्रमाकी कलाएँ क्षीण होती रहती थीं इस-तरह वह नगर चन्द्रमाका भी पराभव कर रहा था।

§ १५४. उस नगरमें भी जगह-जगह जो मौनियोंके समान वार्तालापसे रहित थे, तत्काल होने हुए साकल्यके समान अश्रु उत्पन्न करनेके व्यसनसे सहित थे, और अत्यधिक फलोंसे भरे हुए वृक्षोंके समान जिनके सिर नम्रीभूत थे ऐसे मनुष्योंके नालसे तोड़े हुए

१. क० ख० ग० स्वमपि । २. ख० म० साकस्कहविषामिव ।

षितनलिनानीव प्रम्लानवदनानि प्रेक्षमाणः प्रान्तवर्तिनं कमपि दान्तहृदयं पुरुषममृतवर्षायमाणदशनकिरणैः सकरुणमिव सिञ्चन् वनकुञ्जरोत्पाटितविटपिपेटकस्येव विश्वस्यापि जनस्य विच्छायतानिदानम् 'किमवगच्छसि ?' इत्यपृच्छत् ।

§ १५५. स च कुमारमादरादभिपत्यैवमब्रवीत्—"भद्र, भद्रासिकार्थिपार्थिवपरार्ध्यकिरीटपादपीठप्रतिष्ठितपादपल्लवः पल्लवदेशापदेशकुबेरकोशगृहपतिः पतितजनदुरालोको लोकपालो नाम राजा भवत्यस्या राजधान्याः । तस्य च सकलगुणगरीयसी कनीयसी प्रज्ञाशालिजनकलाभेन जडाशयप्रभवेति पतिदेवताव्रतभाविबहुमानप्राप्त्या बहुपुरुषाभिलाषिणीति लोकपालसहजसंगमेन लोकविनाशकरगरलसोदरेति च गर्हमाणा पद्मां पद्मा नाम । कन्यामिमामिदानीं कन्यागृहा-

पौराणां नालात् निष्कुषितानि नलिनानि तद्वत् नालत्रुटितकमलानीव प्रम्लानवदनानि विषण्णवक्त्राणि प्रेक्षमाणो विलोकमानो जीवकः प्रान्तवर्तिनं निकटस्थितं दान्तहृदयं दुःखितचेतसम् कमपि पुरुषम् अमृतवर्षायमाणाः पीयूषवृष्टिवदाचरन्तो ये दशनकिरणा रदनरश्मयस्तैः सकरुणमिव सदयमिव सिञ्चन् वनकुञ्जरेण कानन-करिणोत्पाटित उन्मूलितो यो विटपिपेटको वृक्षसमूहस्तस्येव विश्वस्यापि, निखिलस्यापि जनस्य विच्छायतानिदानं निष्प्रभताकारणम् 'किम् अवगच्छसि जानासि' इति अपृच्छत् ।

§ १५५. स चेति—स च पुरुष आदरात् ससन्मानं कुमारम् अभिपत्य तस्य संमुखमागत्य एवमित्थम् अब्रवीत्—'भद्र ! हे कल्याणिन् ! भद्रासिकार्थाः सुखासिकाभिलाषिणो ये पार्थिवा राजानस्तेषां परार्ध्यकिरीटानि श्रेष्ठमुकुटान्येव पादपीठानि चरणासनानि तेषु प्रतिष्ठिताः स्थिताः पादपल्लवाश्चरणकिसलया यस्य तथाभूतः, पल्लवदेशोऽपदेशो व्याजं यस्य तथाभूतं यत् कुबेरकोशगृहं धनाधिपनिधिनिकेतनं तस्य पतिः स्वामी, पतितजनानां भ्रष्टमर्त्यानां दुरालोको दुःखेनालोकितुं शक्यो लोकपालो नाम अस्या राजधान्या राजा भवति । तस्य च लोकपालस्य सकलगुणैर्निखिलैर्दयादाक्षिण्यादिभिर्गुणैर्गरीयसी श्रेष्ठतरा कनीयसी युवतिः 'युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्' इति कनादेशः पद्मां लक्ष्मीं गर्हयन्ती निन्दन्ती पद्मा नाम कन्या अस्ति । अथ पद्माया गर्हणानिमित्तमाह—प्रज्ञाशाली बुद्धिविभूषितो यो जनकस्तस्य लाभेन, जडाशयो मूर्खः प्रभवो जन्मदाता यस्याः सा पक्षे जलाशयः सागरः प्रभवो यस्याः सा, कन्या तु प्रज्ञाशालिजनकेन समुत्पन्ना पद्मा च जडाशयेन समुत्पन्नेति व्यतिरेकः परिहारपक्षस्तूक्तः । पतिदेवताव्रतेन पातिव्रत्येन भावि भविष्यद् यद् बहुमानं तस्य प्राप्तिस्तया, बहुपुरुषानभिलषतीत्येवं शीला नानापुरुषाभिलाषिणी व्यभिचारिणीत्यर्थः पक्षेऽनेकपुरुषाभिलाषिणी, इति । कन्या पतिव्रतात्वेनाग्रे सम्मानमवाप्स्यति लक्ष्मीस्त्वनेक-

कमलोंके समान मुरझाये हुए मुखोंको देखते हुए उन्होंने निकटवर्ती किसी दुःखी मनुष्यसे पूछा कि जंगली हाथीके द्वारा उखाड़े हुए वृक्ष-समूहके समान सभी लोगोंकी कान्तिहीनताका कारण क्या तुम जानते हो ? पूछते समय अमृत वर्षाके समान आचरण करनेवाली दाँतोंकी किरणोंसे स्वामी ऐसे जान पड़ते थे मानो दयापूर्वक उस पुरुषपर अमृत ही सींच रहे हों ।

§ १५५. उस पुरुषने आदरपूर्वक कुमारके सामने नम्रीभूत होकर इस प्रकार कहा—हे भद्र ! सुखपूर्वक निवासकी इच्छा करनेवाले राजाओंके श्रेष्ठ मुकुटरूपी पादपीठपर जिसके चरण-पल्लव स्थित हैं, जो पल्लव देशरूपी कुबेरके खजानेका स्वामी है तथा पतित मनुष्योंको जिसका दर्शन दुर्लभ है ऐसा लोकपाल नामका राजा इस राजधानीका स्वामी है । उसकी समस्त गुणोंसे श्रेष्ठ पद्मा नामकी कन्या है । वह कन्या चूँकि बुद्धिमान् पितासे उत्पन्न थी जब कि लक्ष्मी जडाशयप्रभवा—मूर्ख पितासे (पक्षमें जलाशयसे) उत्पन्न थी । कन्या पातिव्रत्य धर्मसे बहुत भारी सम्मानको प्राप्त होनेवाली थी जब कि लक्ष्मी अनेक पुरुषोंकी अभिलाषिणी होनेसे पुंश्चली कहलाती थी । और कन्या लोकपाल नामक भाईसे सहित थी

निर्गत्य गृहोद्याने स्वकरावर्जितजलसेकेन सस्नेहमभिवर्धिता पुष्पवती जाता माधवीलतेति महोत्सवमारचयन्तीं तद्वदनगोचरशशाङ्कशङ्कयेव भुजङ्गमः कोऽप्यस्प्राक्षीत्। नरेन्द्राश्चासंन्नरेन्द्रा इव प्रबलप्रार्थिनो व्यर्थप्रयासाः। तन्निमित्तोऽयं मर्त्यानां शोकः। शाकुनिकस्तु कश्चिन्निश्चेतनेयं यदि जातापि कन्यका तावदेनामनन्यसाधारणविषहरणनैपुणः कोऽपि प्राणैः समं सांप्रतमेव संगमयतीति संगिरते। नरपतिरपि तद्वचनविश्वासाद्विश्वदिश्यपि शक्तिमदन्वेषणाय शुद्धान्तादपरमन्तिकचरं प्राहैषीदघोषयच्च 'विषहरणसमर्थाय मम राज्यार्धं वितरिष्यामि' इति। महाभाग, महीपतिना विषविद्याविदग्धान्वेषणाय प्रेषितेष्वहमप्यन्यतमः कश्चिदस्मि। कार्येऽस्मिन्कच्चिदार्य, भवतोऽप्य-

पुरुषाभिलाषिणीति हेतोः कुलटेति व्यतिरेकः परिहारस्तूक्तः। कन्या लोकपाल इति नामधेयः सहजः सहोदरस्तस्य संगमेन पक्षे लोकरक्षकसहोदरप्राप्त्या लोकविनाशकरस्य गरलस्य विषस्य सोदरा भगिनीति व्यतिरेकः परिहारस्तूक्तः। कन्यामिति—इदानीं साम्प्रतम् कन्यागृहात् कन्यान्तःपुरात् निर्गत्य निःसृत्य गृहोद्याने गृहारामे स्वकरेणावर्जितं धृतं यद् जलं तस्य सेकेन सेचनेन सस्नेहम् अभिवर्धिता पालिता माधवीलता पुष्पवती सपुष्पा जातेति हेतोः महोत्सवम् आरचयन्तीम् इमां कन्यां तद्वदनगोचरस्तन्मुखविषयो यः शशाङ्को मृगाङ्कस्तस्य शङ्कया संदेहेनेव कोऽपि भुजङ्गमो विटः पक्षे नागः अस्प्राक्षीत् पस्पर्श। नरेन्द्राश्च विषवैद्याश्च प्रबलं प्रकृष्टबलोपेतं प्रार्थयन्त इति प्रबलप्रार्थिनो नरेन्द्रा इव राजान इव व्यर्थप्रयासा मोघोद्योगा आसन्। तन्निमित्तं निदानं यस्य तथाभूतोऽयं मर्त्यानां शोको विषादः। शाकुनिकस्तु शकुनज्ञस्तु कश्चित्कोऽपि 'इयं कन्यका यदि निश्चेतनाऽपि जाता निश्चेष्टाप्यभूत् तथापि तावत् साकल्येन अनन्यसाधारणमनुपमं विषहरणनैपुणं गरलापहरणवैदग्ध्यं यस्य तथाभूतः कोऽपि प्राणैः समं साम्प्रतमेव इदानीमेव संगमयति मेलयति, इति संगिरते निवेदयति। नरपतिरपि राजापि तस्य शाकुनिकस्य वचने विश्वासः प्रत्ययस्तस्माद् विश्वदिश्यपि समग्रकाष्ठायामपि शक्तिमतो विषापहरणसामर्थ्यवतोऽन्वेषणाय शुद्धान्तादन्तःपुरात् अपरम् अन्तिकचरं सेवकं प्राहैषीत् प्रेषयामास अघोषयच्च घोषणां च चकार—'विषहरणसमर्थाय गरलापहारदक्षाय मम स्वस्य राज्यार्धं वितरिष्यामि दास्यामि' इति। महाभाग! हे महानुभाव! महीपतिना राज्ञा विषविद्यायां गरलापहरणविद्यायां विदग्धस्य चतुरस्यान्वेषणं तस्मै प्रेषितेषु अहमपि कश्चित् अन्यतम एकोऽस्मि। 'अस्मिन् कार्ये हे आर्य! हे पूज्य! कच्चित् कामप्रवेदने भवतोऽपि

जब कि लक्ष्मी लोकका विनाश करनेवाले विषकी बहिन थी। इस प्रकार वह लक्ष्मीको तिरस्कृत करती रहती है। अपने हाथमें लिये हुए जलके सींचनेसे जिस माधवी लताको इसने बड़े स्नेहके साथ बढ़ाया था वह आज सर्वप्रथम पुष्पवती हुई है—उसमें सर्वप्रथम फूल निकले हैं इसलिए वह कन्यागृहसे निकलकर घरके बगीचामें बड़ा भारी उत्सव कर रही थी कि उसके मुखको चन्द्रमा समझकर ही मानो किसी भुजंग—साँपने (पक्षमें विट पुरुषने) उसका स्पर्श कर लिया—उसे डश लिया। विषवैद्य, बलवान् राजाके सम्मुख प्रयाण करनेवाले राजाओंके समान व्यर्थ प्रयास हो गये हैं अर्थात् विष दूर करनेमें कोई भी विषवैद्य समर्थ नहीं हो सके हैं। इसी कारण मनुष्योंको यह शोक हो रहा है। यद्यपि यह कन्या चेतनारहित हो चुकी है तथापि शकुनशास्त्रका ज्ञाता कहता है कि विष दूर करनेमें असाधारण निपुणताको धारण करनेवाला कोई पुरुष आकर इसे अभी हाल प्राणोंसे सहित करता है। राजाने भी उसके वचनोंमें विश्वास होनेसे सभी दिशाओंमें शक्तिशाली पुरुषकी खोज करनेके लिए अन्तःपुरसे अतिरिक्त भृत्य भेजे हैं और घोषणा करायी है कि 'मैं विष हरण करनेमें समर्थ पुरुषके लिए अपना आधा राज्य दूँगा'। हे महाशय! समस्त विद्याओंमें चतुर मनुष्यकी खोज करनेके लिए राजाने जो भृत्य भेजे हैं उनमें मैं भी एक हूँ। हे आर्य!

धिकारोऽस्ति ।'' इति ।

§ १५६. तद्वचनानन्तरं जीवकस्वामी च[1] 'जीवमात्रस्याप्युपद्रवो विद्रावयितव्यः । किमुत प्रबलोऽयमबलाजनस्य !' इत्यन्तश्चिन्तयन् 'अयि भोः, तत्र यामो वयम् । अस्तु वा न वा प्रस्तुतकर्मणि प्रावीण्यम्' इति प्रणिगदन्नेव राजगृहमुपसृत्य प्रवर्तमानतुमुलनिर्वर्तित[2]वर्षधरनिवारणयन्त्रणमनामन्त्रित एव प्रविश्य कन्यान्तःपुरं तत्र सर्वतोऽपि सर्वंसहापृष्ठे वेष्टमानगात्रयष्टिं कष्टां दशामापन्नमाक्रन्दमयमिव शोकमयमिव विलापमयमिव व्यामोहमयमिवाश्रुमयमिवामयमयमिव निरूप्यमाणं जनं तन्मध्यगतां धवलकोमलकदल्यन्तर्दलसच्छायप्रच्छदाच्छादितशयनीयमधिशयानां मृणालिनीमिव विच्छिन्नमूलां[3] विच्छायां कन्यकामपश्यत् । व्यचिन्तयच्च तदङ्गकान्तिकन्दलितकन्दर्पदर्पः[4] 'न चेयमप्सरसः, न हि तस्याश्चक्षुः पक्ष्मीकृतपक्ष्मक्षोभम् । न वासौ तडिल्लता, न

तत्राप्यधिकारोऽस्ति ।'' इति ।

§ १५६. तद्वचनानन्तरमिति—तद्वचनानन्तरं जीवकस्वामी च जीवन्धरोऽपि च 'जीवमात्रस्यापि प्राणिमात्रस्यापि उपद्रवो विद्रावयितव्यो दूरीकरणीयः किमुत अबलाजनस्य स्त्रीजनस्य अयं प्रबलो भूयिष्ठः' इतीत्थम् अन्तर्मनसि चिन्तयन् 'अयि भोः वयं तत्र यामो गच्छामः प्रस्तुतकर्मणि प्रकृतकार्ये प्रावीण्यं दक्षत्वम् अस्तु न वाप्यस्तु' इति प्रणिगदन्नेव कथयन्नेव प्रवर्तमानतुमुलेन जायमानकलकलशब्देन निवर्तिता दूरीकृता वर्षधरनिवारणयन्त्रणा प्रतिहारप्रतिरोधयन्त्रणा यस्मिंस्तथाभूतं राजगृहं नरेन्द्रमन्दिरम् उपसृत्य समुपगम्य अनामन्त्रित एवानाकारित एव कन्यान्तःपुरं कन्यागृहं प्रविश्य तत्र सर्वतोऽपि समन्तादपि सर्वंसहापृष्ठे वसुधापृष्ठे वेष्टमाना गात्रयष्टिर्यस्य तम्, कष्टां सदुःखाम् दशामवस्थाम् आपन्नं प्राप्तम् आक्रन्दमयमिव रोदनमयमिव, शोकमयमिव विषादमयमिव, विलापमयमिव परिदेवनमयमिव, व्यामोहमयमिव मूर्च्छामयमिव, अश्रुमयमिव सबाष्पमिव, आमयमयमिव रोगमयमिव, निरूप्यमाणं दृश्यमानं जनम् तेषां जनानां मध्यगता ताम् धवलः सितः कोमलो मृदुकः कदल्यन्तर्दलसच्छायो मोचान्तर्दलमसृणकान्तिश्च यः प्रच्छद आवरणपटस्तेनाच्छादितं यच्छयनीयं शय्या तद् अधिशयानामधितिष्ठन्तीम् विच्छिन्नं खण्डितं मूलं यस्यास्तथाभूतां मृणालिनीमिव विसिनीमिव विच्छायां कान्तिरहितां कन्यकाम् अपश्यत् । व्यचिन्तयच्चेति—तस्या कन्यकाया अङ्गकान्त्या देहदीप्त्या कन्दलितोऽङ्कुरितः कन्दर्पदर्पोऽनङ्गगर्वो यस्य तथाभूतोऽयं कुमारो

इस कार्यमें आपका भी क्या अधिकार है ?

§ १५६. उसके वचन सुनते ही जीवन्धरस्वामी भीतर-ही-भीतर विचार करने लगे कि 'जीवमात्रका उपद्रव दूर करना चाहिए फिर अबलाजन—स्त्रीजनके इस प्रबल उपद्रवकी तो बात ही क्या है ?—यह तो अवश्य ही दूर करने योग्य है' ऐसा विचारकर उन्होंने कहा कि 'हम वहाँ चलते हैं प्रकृत कार्यमें निपुणता हो अथवा न हो'। ऐसा कहते हुए वे राजमहलकी ओर चल पड़े और होनेवाले जोरदार शब्दसे जहाँ द्वारपालोंके रोकनेकी यन्त्रणा दूर हो गयी थी ऐसे कन्याके अन्तःपुरमें बिना बुलाये ही भीतर प्रविष्ट हो गये। वहाँ आकर उन्होंने पृथ्वीपर कन्याके शरीरको सब ओरसे घेरकर बैठे हुए उन लोगोंको देखा कि जो कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त थे, और आक्रन्दनमय, शोकमय, विलापमय, व्यामोहमय, अश्रुमय, और रोगमयके समान दिखाई देते थे। उन्हीं मनुष्योंके बीचमें उन्होंने सफेद एवं कोमल केलेके भीतरी पत्तोंके समान कान्तिके धारक चद्दरसे आच्छादित शय्यापर शयन करनेवाली कन्याको देखा। वह कन्या उस समय जिसकी जड़ कट गयी थी ऐसी कमलिनीके समान कान्तिहीन दिखाई पड़ती थी। कन्याके शरीरकी कान्तिसे जिनके कामका गर्व बढ़ रहा था

१. क० 'च' नास्ति । २. क० निर्वतित । ३. म० छिन्नमूलाम् । ४. क० ग० कन्दर्पदर्पेण ।

हि तस्या अप्येवमतिपेलवाङ्गोपाङ्गसंगतिः। न चैवासौ[1] रतिः, न हि तस्यास्तनूजन्मना भुक्तोच्छिष्टाया एवमक्लिष्टाङ्गयष्टिता घटते। नूनमियं भुजङ्गेनाप्यनङ्गाविष्टेन किं स्पृष्टा।' इति।

§ १५७. एवं चान्यथा चिन्तयन्तमन्तिकचरमुखादुपलब्धमहिम्नि महीपतावपि सपादपतनमवरजाकृच्छ्रमुच्छेत्तुमुपच्छन्दयति तदिच्छां विनापि तत्कर्मणि कम्रोऽयमानम्रोद्धारी कुमारस्तथेति तद्वक्त्रमालोक्य निमेषमात्रेण तां निर्विषीचकार। स्वीचकार च पुनरेनां कन्दर्पसर्पः। वपुष्मान्मारो हि कुमारः। कथमेनं साक्षादुद्वीक्ष्य चक्षुष्मती कन्या न भवेदनन्यजाक्रान्ता ? ततश्च

त्यचिन्तयच्च विचारयामास च। 'न चेयं कन्यका अप्सरसो देवाङ्गना, हि यतस्तस्याश्चक्षुः पक्ष्मीकृतः स्वीकृतः पक्ष्मक्षोभो नयनरोमराजिस्पन्दनं येन तथाभूतमस्ति। न वासौ कन्यका तडिल्लता विद्युद्वल्ली, हि यतस्तस्यास्तडिल्लताया अपि एवमीदृग् अतिपेलवातिमनोहरा अङ्गानि हस्तपादादीनि उपाङ्गानि करशाखाप्रभृतीनि तेषां संगतिः प्राप्तिः 'णलया बाहू य तहा णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य। अट्ठेव दु अंगाइं देहे सेसा उवंगाइं।'' इत्यङ्गोपाङ्गपरिगणना। न चैवासौ कन्यका रतिः कामकामिनी, हि यतस्तनूजन्मना कामेन भुक्तेनोपभोगेनोच्छिष्टा तस्याः कृतोपभोगाया एवमीदृग् अक्लिष्टाङ्गयष्टिता-अक्लान्तशरीरयष्टिता घटते योग्या भवति। नूनमुत्प्रेक्षायाम् इयं कन्या भुजङ्गेनापि नागेनापि अनङ्गाविष्टेन कामाकुलितेन किं स्पृष्टा कृतस्पर्शा।' इति।

§ १५७. एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारम् अन्यथा चान्यप्रकारेण च चिन्तयन्तं कुमारम् अन्तिकचरमुखात्सेवकमुखात् उपलब्धो महिमा येन तस्मिन् विज्ञातप्रभावे महीपतावपि नरपतावपि सपादपतनं यथा स्यात्तथा चरणेषु पतित्वेति यावत् अवरजाया लघुभगिन्याः कृच्छ्रं कष्टम् उच्छेत्तुं दूरीकर्तुम् उपच्छन्दयति प्रार्थयति सति तदिच्छाम् विषनिवारणवाञ्छां विनापि तत्कर्मणि तत्कार्ये कम्रः कुशलः आनम्रोद्धारी विनयावनतोद्धारकोऽयं कुमारः तथेति स्वीकृत्य तस्याः पद्मायाः वक्त्रं मुखमिति तद्वक्त्रम् आलोक्य निमेषमात्रेण क्षणेनैव तां पद्माभिधानां कन्यां निर्विषीचकार विषरहितां विदधे। स्वीचकार च पुनरेनां पद्मां कन्दर्पः काम एव सर्पो भुजङ्ग इति कन्दर्पसर्पः कामेन पीडिताऽभूदित्यर्थः। हि निश्चयेन कुमारो जीवंधरो वपुष्मान् सशरीरो मारो मदनः। एवं कुमारं साक्षात् उद्वीक्ष्य चक्षुष्मती सलोचना कन्या अनन्यजेनाक्रान्ता तथा

ऐसे जीवन्धरकुमार विचार करने लगे कि 'यह अप्सरा तो है नहीं क्योंकि उसके नेत्र बिरूनियोंके संचलनसे सहित नहीं होते हैं। यह बिजलीरूपी लता भी नहीं है क्योंकि उसके अंगोपांगोंकी संगति इस तरह अत्यन्त कोमल नहीं है। यह रति भी नहीं है क्योंकि कामदेवके द्वारा भोगकर जूठी की हुई उसकी शरीरयष्टि इस तरह क्लेश रहित—अम्लान नहीं रह सकती। जान पड़ता है कि इसे साँपने भी कामसे युक्त होकर ही छुआ है।

§ १५७. जीवन्धरकुमार उक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार चिन्ता कर रहे थे कि सेवकके मुखसे उनकी महिमाको जाननेवाला राजा भी उनके पैरोंमें पड़कर पुत्रीका कष्ट दूर करनेकी प्रार्थना करने लगा। जो उस विषयकी इच्छा न होनेपर भी उस कार्यमें अत्यन्त निपुण थे एवं नम्र मनुष्योंका उद्धार करनेवाले थे ऐसे जीवन्धरकुमारने 'तथास्तु' कहकर राजाकी प्रार्थना स्वीकृत की और पद्माके मुखकी ओर देख उसे निमेषमात्रमें विषरहित कर दिया। कन्या साँपके विषसे रहित तो हो गयी परन्तु कामदेवरूपी साँपने उसे फिरसे वशीभूत कर लिया। यथार्थमें जीवन्धरकुमार शरीरधारी कामदेव थे फिर नेत्रोंको धारण करनेवाली

१. म० न चैवासौ रतिः।

सा सकृदवलोकनकृतव्यसनभूयस्तया भूयः कुमारमपारयन्ती द्रष्टुं विषवेगमिषेण पश्चादपि निमेषणमेवात्मनः शरणममंस्त। अतर्कयच्च प्रथमतरमनुभूयमानस्मरविकारा कथयन्ति निकामं कामो नाम कश्चिदस्तीति। किमयं सः।' इति। तदवस्थालोकनेन लोकपालभूभुजि पुनरपि गरलसद्भावशङ्काभयालिङ्गिते भृशमिङ्गितज्ञः कुमारोऽपि कामतन्द्रालुर्मन्त्रयन्निवानङ्गातुरमात्मानमपि तदङ्गस्पर्शेन चरितार्थीकुर्वन्समानयोगक्षेमतां लेभे। मुमुचे सा च मोचोरुस्तदीयचतुरकरतलस्पर्शनमनुमहिम्ना प्रद्युम्नगरलवेगात्। उदस्थाच्च तल्पादाकुलिताकल्पा। बुबुधे च सविधगतान्विविधौषधहस्तान्समस्तानपि पुरुषान्। तिरोदधे च तिर्यग्वलितमुखी पर्यङ्कादवरुह्य ह्रीयन्त्रणेनाकृष्टा संनिकृष्ट-

मदनाक्रान्ता न भवेत्। ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च सा कन्या सकृत् एकवारम् अवलोकनेन दर्शनेन कृता विहिता या व्यसनभूयस्ता कष्टबहुलता तया भूयः पुनः कुमारं द्रष्टुम् अपारयन्ती अशक्नुवती विषवेगमिषेण गरलवेगव्याजेन पश्चादपि पुनरपि निमेषणमेव नयननिमीलनमेव आत्मनः स्वस्य शरणं रक्षकम् अमंस्त। अतर्कयच्चेति—प्रथमतरं सर्वप्रथमम् अनुभूयमानः स्मरविकारो मदनविकारो यया तथाभूता सा इत्यतर्कयच्च। इतीति किम्। कामो नाम कश्चित् कोऽपि अस्तीति निकाममत्यन्तं कथयन्ति किम् स कामः अयं जीवंधर एवेति। तदवस्थेति—तस्या अवस्थाया आलोकनेन लोकपालभूभुजि लोकपालनृपतौ पुनरपि भूयोऽपि गरलसद्भावस्य विषसत्त्वस्य शङ्का संभावना तस्या भयेनालिङ्गिते सति भृशमत्यन्तम् इङ्गितज्ञो हृच्चेष्टितज्ञः कुमारोऽपि जीवकोऽपि कामेन स्मरेण तन्द्रालुस्तन्द्रायुक्तो भवत् मन्त्रयन्निव मन्त्रं जपन्निव अनङ्गातुरं कामाकुलम् आत्मानमपि तस्याः पद्माया अङ्गस्पर्शेन कायस्पर्शेन चरितार्थीकुर्वन् सफलीकुर्वन् अलब्धस्य प्राप्तिर्योगः प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमं समाने योगक्षेमे यस्य तस्य भावस्ताम् लेभे प्राप। मुमुचे सेति—मोचोरुः कदलीतुलितसक्थिः सा पद्मा च तदीयस्य चतुरकरतलस्य स्पर्शनमेव मनुस्तस्य महिम्ना माहात्म्येन प्रद्युम्नगरलवेगात् कामविषवेगात् मुमुचे मुक्ता। आकुलिताकल्पा संचलिताभरणा च सती तल्पाच्छयनात् उदस्थात् उत्थिता बभूव। बुबुधे च विज्ञातवती च सविधगतान् निकटस्थितान् विविधौषधहस्तान् नानाभैषज्यपाणीन् समस्तानपि निखिलानपि पुरुषान् जनान्। तिरोदधे च अन्तरधाच्च तिर्यक् सापि वलितं मोटितं मुखं यया तथाभूता सा पर्यङ्काच्छय्याया अवरुह्य ह्रीयन्त्रणेन लज्जापारवश्येनाकृष्टा सती

कन्या इन्हें साक्षात् देख कामसे आक्रान्त क्यों नहीं होती? तदनन्तर एक ही बार देखनेसे जो उसे दुःख हुआ था उसकी अधिकतासे वह कुमारको पुनः देखनेके लिए समर्थ नहीं हो सकी। इसलिए उसने विषवेगका बहाना कर फिरसे नेत्र बन्द कर पड़ रहना अपने आपको शरण माना। सर्वप्रथम काम-विकारका अनुभव करनेवाली कन्या विचार करने लगी कि 'लोग कहते हैं कि काम नामका कोई पदार्थ है क्या वही यह है?' उसकी अवस्था देख राजा लोकपालको शंकाजन्य भय होने लगा कि कहीं फिर भी विषका सद्भाव तो नहीं रह गया है? तदनन्तर चेष्टाओंको जाननेवाले कुमार भी कामसे अलसाते हुए मन्त्र पढ़ते हुए की तरह कामसे पीड़ित अपने आपको कन्याके शरीरके स्पर्शसे कृतकृत्य करते हुएके समान योगक्षेमताको प्राप्त हुए। अर्थात् कन्याके स्पर्शसे स्वयं सुखी हुए और अपने स्पर्शसे उन्होंने कन्याको सुखी किया। कदलीके समान जाँघोंवाली वह कन्या भी उनके चतुर करतलके स्पर्शरूपी मन्त्रकी महिमासे कामरूपी विषके वेगसे मुक्त हो गयी। अस्त-व्यस्त आभूषणोंको धारण करती हुई वह शय्यासे उठ खड़ी हुई। और उसने समीपमें स्थित तथा नाना ओषधियोंको हाथोंमें धारण करनेवाले सब लोगोंको पहिचान लिया। जिसका मुख कुछ-कुछ तिरछा हो रहा था तथा जो लज्जाकी यन्त्रणासे आकृष्ट थी ऐसी कन्या पलंगसे उतरकर

चेटीपेटकस्य मध्ये। तावता तत्परित्राणविहस्तो जनः समस्तोऽप्युन्मस्तकहर्षमूर्तिः कर्तव्यान्धो गन्धर्वदत्तादयितं दत्ताञ्जलिरभिप्रणम्य 'प्रयाणाभिमुखान्प्राणान्प्रतिपादयन्प्राणनाथोऽप्ययमेवास्याः' इति स्वयमेवाचीकथत्। लोकपालोऽपि 'लोकोत्तम, लोकोत्तरोऽयमुपकारः। किमिह तवाहं व्याहरामि ? मम राज्यं मम भोज्यं मम गात्रं मम मित्रं मम प्राणा मम त्राणं च त्वदधीनम्' इत्यभिदधानः–, प्राप्तमनःप्रसादमेनं प्रासादे क्वचित्प्रचुरोपचारमवस्थापयन्, अपास्तसमस्तजनं मन्त्रागारं मन्त्रिभिरधिरुह्य मन्त्रयामास—

§ १५८. 'अयि मान्याः, कन्यायाः प्रकृतोऽयमुपद्रवः सुकृतोदयादुपाशमत्। अतः परं परोऽयमपारो ह्यस्याः प्रशस्तवरान्वेषणप्रभवः। ततः कथमनारोपितदोषं कथं कथमपि कमपि

संनिकृष्टो निकटस्थितो यश्चेटीपेटको दासीसमूहस्तस्य मध्ये। तावतेति—तावता तावत्कालेन तस्याः पद्मायाः परित्राणेन रक्षणेन विहस्तो विवशो जनः समस्तोऽपि उन्मस्तका वृद्धिंगता हर्षमूर्तिर्यस्य तथाभूतः कर्त्तव्ये करणीयेऽन्ध इति तथाकर्तव्यविचारशून्यः सन् गन्धर्वदत्तादयितं जीवकं दत्ताञ्जलिर्बद्धाञ्जलिः सन् अभिप्रणम्य नमस्कृत्य 'प्रयाणे प्रस्थानेऽभिमुखा उद्यतास्तान् प्राणानसून् प्रतिपादयन् ददत् अयमेवास्याः कन्यायाः प्राणनाथ इति स्वयमेव अचीकथत् कथयामास 'अचीकथत्' इति प्रयोगोऽपाणिनीयः। लोकपालोऽपीति—लोकपालोऽपि पद्माग्रजो लोकपालाभिधानो राजापि 'लोकोत्तम! हे लोकश्रेष्ठ! अयमुपकारो लोकोत्तरो जगच्छ्रेष्ठः। इहास्मिन् विषये तव भवतोऽहं किं व्याहरामि कथयामि। मम राज्यं मम भोज्यं मम गात्रं शरीरं मम मित्रं सुहृद् मम प्राणा असवो मम त्राणं च रक्षणं च त्वदधीनं भवदायत्तम्' इति अभिदधानो निगदन् प्राप्तो मनःप्रसादो चेतोहर्षो यस्य तम् एवं क्वचित्प्रासादे भवने प्रचुरा भूयांस उपचारा यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात्तथा अवस्थापयन् निवासयन् मन्त्रिभिरमात्यैः सह अपास्ता विनिःसारिताः समस्तजना यस्मिंस्तम् मन्त्रागारं मन्त्रशालाम् अधिरुह्य मन्त्रयामास विचारयामास—

§ १५८. अयीति—अयि मान्या आदरणीयाः कन्यायाः पद्मायाः अयमेष प्रकृतः प्रस्तुत उपद्रवः सुकृतोदयात् पुण्योदयात् उपाशमत् उपशान्तोऽभूत्। अतः परम् एतदनन्तरं हि निश्चयेन अस्याः कन्यायाः प्रशस्तश्चासौ वरश्चेति प्रशस्तवरस्तस्यान्वेषणं मार्गणं प्रभवः कारणं यस्य तथाभूतोऽयम् अपरो द्वितीयोऽपारो महान् उपद्रवोऽस्तीति शेषः। ततस्तस्मात्कारणात् कथं केन प्रकारेण अनारोपिता दोषा यस्य तमप्राप्त-

---

निकटस्थ सखियोंके बीचमें छिप गयी। तदनन्तर कन्याकी रक्षासे जो बेहाथ हो रहे थे, जो बढ़े हुए हर्षकी मूर्तिके समान जान पड़ते थे और जो क्या करना चाहिए इस विषयके विचारमें अन्धे थे ऐसे सभी लोग हाथ जोड़ जीवन्धरस्वामीको प्रणाम कर स्वयं ही कहने लगे कि चूँकि प्रयाणके सम्मुख प्राणोंको यही देनेवाले हैं अतः यही इसके प्राणनाथ भी हैं। लोकपाल भी कहने लगा कि 'हे लोकोत्तम! आपका यह उपकार लोकोत्तर है—लोकमें सबसे श्रेष्ठ है। मैं यहाँ आपसे क्या कहूँ? मेरा राज्य, मेरा भोज्य, मेरा शरीर, मेरा मित्र, मेरे प्राण और मेरी रक्षा—सब तुम्हारे आधीन है। तदनन्तर जिन्हें हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त थी ऐसे जीवन्धरकुमारको बहुत भारी सत्कारके साथ महलमें कहीं ठहराकर लोकपाल, अन्य समस्त जनोंसे रहित मन्त्रशालामें मन्त्रियोंके साथ बैठकर सलाह करने लगा।

§ १५८. उसने कहा कि 'हे माननीय जनो! कन्याका प्रकृत उपद्रव तो पुण्योदयसे शान्त हो गया। परन्तु अब इसके बाद इसके लिए योग्य वरको खोजनेसे उत्पन्न बहुत भारी दूसरा उपद्रव आ खड़ा हुआ है। अतः हम किसी तरह निर्दोष जामाताको पाकर इस

जामातरमुपलभ्य तमपि दुस्तरं बाढं निस्तरामः। कुमारोऽयमनवद्याकृतिरविद्यमानप्रत्युपकारमुपाकरोत्। अनुरूपश्च रूपयौवनसुगुणैः। किं च, तां मञ्जुभाषिणीं स्वहस्तेनास्पृशत्। या चास्माकमयमविदितगोत्रविशेषो वैदेशिक इति जाता संशीतिः सापि सांप्रतं निरस्ता, यतस्तदीयो वृत्तान्तस्तदनुभावकण्ठोक्त्यायमवगतः। एवं गते सति यदत्र प्राप्तं प्राप्तरूपा निरूपयन्तु भवन्तः इति। तन्निशम्य नीतिविदः सचिवाश्च 'देव किमत्र विचारेण? सर्वथा स एव योग्यः कुमारः' इत्युदीरयामासुः।

§ १५९. अथैवमात्माभिमतममात्यानुमतं च वधूवरसंगमं संपादयितुमुल्लोकसंविधाविधायिनो पल्लवदेशभूभुजि[1], परश्वः खलु भविता पाणिपीडनमहोत्सव इति जनवादे विजृम्भमाणे विजृ-

दुर्गुणं कमपि जामातरं कथमपि केनापि प्रकारेण उपलभ्य प्राप्य दुस्तरं कठिनं तमपि उपद्रवं बाढं सम्यग् यथा स्यात्तथा निस्तरामः पारं कुर्मः। अनवद्या निर्दुष्टाकृतिर्यस्य तथाभूतोऽयं कुमारः अविद्यमानः प्रत्युपकारो यस्य तद्यथा स्यात्तथा उपाकरोत् उपकारं चकार। रूपं च यौवनं च सुगुणाश्चेति द्वन्द्वस्तैः अनुरूपः सदृशः। किं च द्वितीयं कारणमपि अस्ति तां मञ्जुभाषिणीं मधुरवादिनीम् अयम् स्वहस्तेन अस्पृशच्च। या च अस्माकं सर्वेषाम् अयम् अविदितोऽज्ञातो गोत्रविशेषो यस्य तथाभूतो वैदेशिकः विदेशजात इति संशीतिः संशयो जाता सोऽपि साम्प्रतमिदानीं निरस्ता दूरीभूता। यतो यस्मात् कारणात् तदीयस्तत्सम्बन्धी अयमेष वृत्तान्त उदन्तः तदनुभावस्य तत्प्रभावस्य कण्ठोक्त्या प्रत्यक्षकथनेनागतो विज्ञातः एवमिति— एवमित्थं गते सति अत्र विषये यत्प्राप्तं समुचितं प्राप्तरूपा विज्ञा भवन्तस्तत् निरूपयन्तु कथयन्तु' इति। तन्निशम्येति—तत्स्वाम्युक्तं निशम्य श्रुत्वा नीतिविदो नीतिज्ञाः सचिवा मन्त्रिणश्च 'देव! अत्र विषये विचारेण किम्? सर्वथा सर्वप्रकारेण स एव कुमारो जीवको योग्य' इत्युदीरयामासुः कथयामासुः।

§ १५९. अथैवमिति—अथानन्तरम्, एवमनेन प्रकारेण आत्माभिमतं स्वाभिप्रेतम् अमात्यानुमतं च सचिवसंमतं च वधूवरसंगमं विवाहं सम्पादयितुं कर्तुं पल्लवदेशभूभुजि लोकपालमहीपाले उल्लोकसंविधां लोकोत्तरयोजनां विदधाति करोतीत्येवंशीलस्तथाभूते सति, 'परश्वः खलु पाणिपीडनमहोत्सवः परिणयमहोल्लासो भविता भविष्यति' इति जनवादे जनश्रुतौ विजृम्भमाणे सति, विजृम्भिता वृद्धिंगता

दुस्तर उपद्रवको भी पार करना चाहते हैं। निर्दोष आकृतिको धारण करनेवाले जीवन्धरकुमारने हमारा ऐसा उपकार किया है कि जिसका हम लोग कुछ भी प्रत्युपकार नहीं कर सकते हैं। ये रूप, यौवन तथा अन्य उत्तमोत्तम गुणोंसे अनुरूप हैं। इसके सिवाय उस मधुर वचन बोलनेवाली कन्याका इन्होंने अपने हाथसे स्पर्श भी किया है। 'जिसके गोत्रविशेषका पता नहीं ऐसा यह कोई परदेशी है' यह जो संशय हम लोगोंको उत्पन्न हो रहा था वह भी इस समय दूर हो गया। क्योंकि उनका वृत्तान्त उनके प्रभावकी कण्ठोक्तिसे स्वयं अवगत हो गया अर्थात् यह स्वयं सिद्ध हो गया कि ऐसा प्रभावशाली पुरुष साधारण वंशका नहीं हो सकता। ऐसी स्थितिमें आपलोग जो उचित समझें वह कहें'। लोकपालका उक्त कथन सुन नीतिके जाननेवाले मन्त्रियोंने कहा कि 'हे राजन्! इस विषयमें विचार करनेसे क्या? वही कुमार सब प्रकारसे योग्य हैं।'

§ १५९. तदनन्तर इस प्रकार अपने आपके लिए इष्ट और मन्त्रियोंके द्वारा अनुमत वधूवरका संगम करानेके लिए जब पल्लवदेशका राजा लोकोत्तर तैयारीमें जुट पड़ा और 'कल पुत्रीका विवाह महोत्सव होगा' जब यह समाचार फैल गया तब कामकी बढ़ती हुई

१. क० पल्लवदेशाधिपतौ।

म्भितमन्मथव्यथः कुमारोऽप्येकामपि त्रियामां सहस्रयामां सर्वथा निश्चिन्वन्पश्चिमे यामे यामिनीस्वामिन्यपि स्वामिरहःसंभोगसमुद्वीक्षणत्रपयेव तिरोदधति, रतिव्यतिकरणविशीर्णवधूवरचिकुरविच्छुरितसुमनसीव विच्छायतामुपगच्छत्युडुनिकरे, निर्दयविमर्दश्यानमिथुनाङ्गसंगतकुङ्कुमपङ्कपराग इव प्रसरति प्रसवरजसि, पुष्पवतीः स्पृष्ट्वा लताः पुनः स्पर्शभीत्येव शनैश्चरति समवगाढसरसि मरुति, सद्योविकचन्मणीचकनिचयमनोहारिणि महीरुहनिकरे निरन्तरनिस्यन्दिमकरन्दधारां दम्पतिघटनार्थमम्बुधारामिवावर्जयति, स्फुटितकुसुमषण्डोद्भासिनि दीपमण्डितदीपदण्ड इव दृश्यमाने सनीडगतचम्पकविटपिनि, अतिस्फारतया बहिःस्फुरज्जायापतिराग इवोन्मिषत्युषोरागे,

मन्मथव्यथा कामपीडा यस्य तथाभूतोऽयं कुमारोऽपि एकामपि त्रियामां रजनीं सहस्रयामां सहस्रं यामाः प्रहरा यस्यां तथाभूतां सर्वथा सर्वप्रकारेण निश्चिन्वन् पश्चिमे यामेऽन्तिमे प्रहरे यामिनीस्वामिन्यपि शशिन्यपि स्वामिनो रहःसंभोगस्य विजनसुरतस्य समुद्वीक्षणेन या त्रपा ह्रीस्तयेव तिरोदधति सति अन्तर्दधति सति, रतिव्यतिकरेण रतिव्यापारेण विशीर्णा विस्रस्ता ये वधूवरचिकुरा दम्पतिकेशास्तेषु विच्छुरितः सुमनाः पुष्पं तस्मिन्निव उडुनिकरे नक्षत्रनिचये विच्छायतां निष्प्रभताम् उपगच्छति सति, निर्दयविमर्देन निर्दयाश्लिङ्गनेनाश्यानः शुष्को मिथुनस्य दम्पत्योरङ्गसङ्गतकुङ्कुमपरागः शरीरसंगतकेशररजस्तस्मिन्निव प्रसवरजसि कुसुमपरागे प्रसरति सति, पुष्पवतीः कुसुमयुक्ताः पक्षे रजस्वला लता वल्लरीः पक्षे नायिकाः स्पृष्ट्वा समवगाढं सरो येन तथाभूते जलाशये निपत्य कृतस्नाने मरुति पवने पुनःस्पर्शभीत्येव भूयःस्पर्शभयेनेव शनैर्मन्दं चरति सति, सद्यो झटिति विकचतां विकसतां मणीचकानां पुष्पाणां निचयेन समूहेन मनोहारिणि चेतोहरे महीरुहनिकरे पादपप्रचये दम्पतिघटनार्थं वधूवरमेलनार्थम् अम्बुधारामिव जलधारामिव निरन्तरमनवरतं निस्यन्दिनी प्रवहमाना या मकरन्दधारा ताम् आवर्जयति सति ददति सति, स्फुटितानां विकसितानां कुसुमानां पुष्पाणां षण्डेन समूहेनोद्भासते शोभत इत्येवं शीलस्तस्मिन् सनीडगतश्चासौ चम्पकविटपी च तस्मिन् निकटस्थितचाम्पेयतरौ दीपैर्मण्डितः शोभितो यो दीपदण्डः 'समाई' इति हिन्द्यां प्रसिद्धस्तस्मिन्निव दृश्यमाने विलोक्यमाने, अतिस्फारतया प्रचुरतया बहिःस्फुरन् प्रकटीभवन् जायापत्योर्दम्पत्यो रागः प्रीतिरिव तस्मिन् उषोरागे

व्यथासे युक्त जीवन्धरकुमार भी तीन पहरोंवाली एक रातको हजारों पहरोंवाली निश्चय करते हुए रात्रिके पिछले पहर घरके बगीचामें गये। उस समय स्वामीके एकान्त संभोगको देखनेकी लज्जासे ही मानो चन्द्रमा छिपा जा रहा था। संभोगके समय छीना-झपटीके कारण बिखरे हुए वधू-वरके केशोंमें लगे फूलोंके समान नक्षत्रोंका समूह निष्प्रभताको प्राप्त हो रहा था। निर्दय आलिंगनसे सूखी स्त्री-पुरुषोंके शरीरमें लगी केशरके पंककी परागके समान फूलोंकी पराग इधर-उधर उड़ रही थी। पुष्पवती (पक्षमें ऋतुधर्मसे युक्त) लताओंको छूकर तालाबमें अवगाहन करनेवाली वायु 'अब फिरसे स्पर्श न हो जाय' इस भयसे ही मानो धीरे-धीरे चल रही थी। तत्काल खिले हुए फूलोंके समूहसे मनको हरण करनेवाले वृक्षोंके समूह, वर-वधूको मिलानेके लिए जलधाराके समान निरन्तर झरनेवाली मकरन्दकी धाराको धारण कर रहे थे। खिले हुए फूलोंके समूहसे सुशोभित निकटमें स्थित चम्पाके वृक्ष दीपोंसे सुशोभित समाईयोंके समान दिखाई दे रहे थे। अधिकताके कारण बाहर फैलते हुए स्त्री-

१. क० मणिकचकनिचय। ग० मणिचकचकनिचय। मणिरिव स्थित इति टि०।

भृङ्गावलिप्रक्वणिते मङ्गलपाठकवचसीव गृह्यमाणे, गृहोद्यानमण्डनमाधवीलतामण्डपे कुसुमकोदण्डेन प्रदत्तां तां मत्तकाशिनीं गन्धर्वदत्तापतिर्गन्धर्वविवाहप्रक्रमेण रागाग्निसाक्षिकं परिणीय पुनर्गुणवति लग्ने लोकपालेन वितीर्णां विधिवदुपायच्छत ।

§ १६०. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ
पद्मालम्भो नाम पञ्चमो लम्भः ।

■

प्रभातारुणिमनि उन्मिषति सति प्रकटीभवति सति, भृङ्गावलिक्वणिते भ्रमरततिझाङ्कारे मङ्गलपाठकवचसीव मागधमङ्गलध्वनाविव गृह्यमाणे सति, गृहोद्यानस्य गेहारामस्य मण्डनं यो माधवीलतामण्डपस्तस्मिन् कुसुमकोदण्डेन कंदर्पेण प्रदत्तां तां मत्तकाशिनीं सुन्दरीं गन्धर्वदत्तापतिर्जीवंधरो गन्धर्वविवाहप्रक्रमेण वधूवरेच्छाकृतविवाहपद्धत्या राग एवाग्निस्तस्य साक्षिकं यथा स्यात्तथा परिणीय विवाह्य पुनरनन्तरं गुणवति प्रशस्ते लग्नेऽवसरे लोकपालेन राज्ञा वितीर्णां प्रदत्तां तां विधिवत् यथाविधि उपायच्छत उदवोढ ।

§ १६०. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ पद्मालम्भो नाम पञ्चमो लम्भः ।

■

पुरुषोंके रागके समान ऊषाकी लालिमा प्रकट हो रही थी और भ्रमरोंकी गुंजार बन्दीजनोंकी बिरुदावलीके समान जान पड़ती थी । उसी समय घरके बगीचाके आभूषणस्वरूप माधवी लताके मण्डपमें कामदेवके द्वारा प्रदत्त उस सुन्दरीको जीवन्धरकुमारने पहले गन्धर्व विवाहके क्रमसे रागरूपी अग्निकी साक्षीपूर्वक विवाहा और उसके बाद उत्तम लग्नमें राजा लोकपालके द्वारा प्रदत्त कन्याको विधिपूर्वक स्वीकृत किया ।

§ १६०. इस प्रकार श्रीमद्वादीभसिंह सूरिके द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें 'पद्मालम्भ'
नामक—पद्माकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला पाँचवाँ लम्भ पूर्ण हुआ ॥५॥

■

षष्ठो लम्भः

§ १६१. अथ तां नववधूमवधूतत्रपां पवित्रकुमारः शनैः शनैः परिकल्पयन्, 'पङ्कजत्वेन द्विजपतिद्वेषेण मधुपसंपर्केण च निकृष्टं निर्दिष्टदोषराहित्यादवधीरयतः पद्मं तव मुखपद्मस्य पद्मसदृशतां पद्मानने, कविवर्त्मनि स्थिताः कथं कथयन्ति।' इति मिथः कथयन्, नट इवावस्थानुगुणवचसि विट इव संभोगचातुर्ये वश्यमन्त्र इव वशीकरणविधौ शिष्य इवेच्छानुगुणवर्तने चक्रवाक इव विरहासहिष्णुत्वे भवन्, तत्तद्गुणेषु स्वयमपि तथा भवन्तीं कामिनीं कामतन्त्रज्ञो यथाकाममन्वभवत्।

§ १६२. अनैषीच्च तस्मिन्नेव राजसद्मन्यम्लानपाटलोत्पलदामपरिमलोद्गारिकबरी-

---

§ १६१. अथेति—अथानन्तरं पवित्रश्चासौ कुमारश्चेति पवित्रकुमारः पवित्रनामधेयो जीवंधरः तां पूर्वोक्तां नववधूं नवोढां पद्मां शनैःशनैर्मन्दं मन्दम् अवधूता त्रपा यया तां दूरीकृतलज्जां परिकल्पयन् कुर्वन् 'हे पद्मानने! हे कमलवदने! कविवर्त्मनि स्थिताः कवय इत्यर्थः पङ्कजत्वेन कर्दमोद्भूतत्वेन पक्षे पापोत्पन्नत्वेन, द्विजपतिद्वेषेण चन्द्रद्वेषेण पक्षे ब्राह्मणद्वेषेण मधुसंपर्केण मकरन्दसंपर्केण पक्षे मद्यसंपर्केण च निकृष्टमधमं पद्मं कमलं निर्दिष्टैर्दोषै राहित्यं तस्मात्पूर्वोक्तदोषरहितत्वाद् अवधीरयतस्तिरस्कुर्वतः तव मुखपद्मस्य वदनारविन्दस्य पद्मसदृशतां कमलतुल्यतां कथं कथयन्ति।' इति मिथोऽन्योऽन्यं कथयन्, अवस्थाया अनुगुणमनुरूपं वचो वचनं तस्मिन् नट इव शैलूष इव, संभोगस्य सुरतस्य चातुर्यं तस्मिन् विट इव पीठ्ग इव, वशीकरणविधौ स्वायत्तीकरणकार्ये वश्यमन्त्र इव वशीकरणमन्त्र इव, इच्छानुगुणमभिप्रायानुकूलं वर्तनं तस्मिन् शिष्य इवान्तेवासीव, विरहस्यासहिष्णुत्वं तस्मिन् विप्रलम्भासहिष्णुत्वे चक्रवाक इव रथाङ्ग इव, भवन्, ते ते च गुणा इति तत्तद्गुणास्तेषु तथाभवन्तीं कामिनीं पद्मां कामतन्त्रज्ञः कामशास्त्रज्ञो जीवंधरो यथाकामं यथेच्छम् अन्वभवत्।

§ १६२. अनैषीच्चेति—जीवंधरस्तस्मिन्नेव राजसद्मनि राजप्रासादे तया पद्मया समं ग्रैष्मकाणि निदाघर्तुसम्बन्धीनि कानिचिदहानि दिनानि अनैषीत् व्यजीगमत् इति कर्तृक्रियासम्बन्धः। अथ पद्मायाः

---

§ १६१. तदनन्तर कामशास्त्रके जाननेवाले पवित्र कुमार—जीवन्धरकुमार उस नववधूको धीरे-धीरे लज्जारहित करते हुए इच्छानुसार उसका उपभोग करने लगे। वे उससे परस्पर कहा करते थे कि हे कमलमुखि! कमल तो पंक—पापसे (पक्षमें कीचड़से) उत्पन्न हुआ है, द्विजपति—ब्राह्मण (पक्षमें चन्द्रमा) से द्वेष रखता है और मधुप—मद्यपायी (पक्षमें भ्रमर) से संपर्क रखता है अतः निकृष्ट है जब कि तुम्हारा मुख उक्त दोषोंसे रहित होनेके कारण उत्कृष्ट है। इस तरह तुम्हारा मुख कमलका तिरस्कार करता है फिर भी कवि लोग उसे कमलके समान क्यों कहते हैं? वे अवस्थाके अनुकूल वचन कहनेमें नटके समान, संभोगसम्बन्धी चतुराईके प्रकट करनेमें विटके समान, वशीकरणके कार्यमें वशीकरण मन्त्रके समान, इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेमें शिष्यके समान, और विरहके सहन न करनेमें चक्रवाकके समान थे। नववधू पद्मा भी उन-उन गुणोंमें स्वयं भी उस प्रकार परिणमन करती थी।

§ १६२. उसी राजमहलमें उन्होंने, जिसकी चोटीका बन्धन खिले हुए गुलाब और नील कमलकी मालाओंकी सुगन्धिको प्रकट कर रहा था, जिसने शिरीषकी कलिकाओंसे

बन्धया विरचितशिरीषकलिकावतंसया दिवसकरसंतापसंत्रासादतिशिशिरदेशनिवेशितेनेव शशाङ्कातपेन घनसारसुरभिणा हिमजललुलितेनानतिविरलेन चन्दनविलेपनेन पाण्डुरितशरीरया, सलिलस्यन्दिबिसलताहारव्यतिकरितमुक्तासरतरङ्गितस्तनतटया परिहृतकुङ्कुममाणिक्यभूषणया त्रिगुणतिरस्करिणीस्थगितवातायनदूरान्तरितद्युमणिकिरणदर्शनया पल्लवितसायंतनसलिलकेलिकौतुकया निर्मोकपरिलघुपरिधानया धारागृहनिर्यद्वारिधारारवश्रवणनिर्वृतया चन्दनशिशिरशिलापट्टसंविष्टया प्रालेयशीकरासारवाहिन्या यामिन्येव हेमन्तस्य, मौक्तिकराजिविराजिततनुलतया वेण्येव ताम्रपर्ण्याः, शीतलचन्दनच्छायाभृता मेखलयेव मलयशैलस्य, फेनपिण्डपाण्डुराम्बरया वीच्येव

विशेषणान्याह—अम्लानेति—पाटलानि 'गुलाब' इति प्रसिद्धानि, उत्पलानि नीलारविन्दानि, अम्लानानि विकसितानि यानि पाटलोत्पलानि तेषां दाम्नां माल्यानां परिमलं सौगन्ध्यं तम्योद्‌गारी कबरीबन्धो चूडाबन्धो यस्यास्तया, विरचितेति—विरचितं निर्मितं शिरीषकलिकाभिरवतंसं कर्णाभरणं यया तया, दिवसेति—दिवसकरस्य सूर्यस्य संतापो घर्मस्तस्य संत्रासाद् भयात्, अतिशिशिरदेशनिवेशितेन शीतलतरस्थानस्थापिते शशाङ्कातपेनेव चन्द्रिकयेव, घनसारसुरभिणा कर्पूरसौगन्ध्यवता, हिमजलेन तुहिनतोयेन लुलितं घर्षितं तेन, अनतिविरलेन सान्द्रेण चन्दनविलेपनेन मलयजाङ्गरागेण पाण्डुरितं धवलं शरीरं यस्यास्तया, सलिलेति—सलिलस्यन्दिनी तोयप्रवाहिणी या बिसलता मृणालिनी तस्या हारव्यतिकरो हारचेष्टितं तद्वदाचरितेन मुक्तासरेण मौक्तिकमाल्येन तरङ्गितौ कल्लोलितौ स्तनतटौ कुचतटौ यस्यास्तया, परिहृतेति—परिहृतानि निदाघत्वेन त्यक्तानि कुङ्कुममाणिक्यभूषणानि काश्मीरमाणिक्यालङ्करणानि यया तया, त्रिगुणेति—त्रिगुणिताः पर्वत्रयसहिता या तिरस्करिण्यो यवनिकास्ताभिः स्थगितानि समाच्छादितानि यानि वातायनानि गवाक्षास्तैर्दूरान्तरितं द्युमणिकिरणदर्शनं दिनकरकरावलोकनं यया तया, पल्लवितेति—पल्लवितं वर्धितं सायन्तनसलिलकेल्यां दिनान्तकालिकजलक्रीडायां कौतुकं यस्यास्तया, निर्मोकेति—निर्मोक इव कञ्चुक इव परिलघु सूक्ष्मतरं परिधानं वस्त्रं यस्यास्तया, 'समौ कञ्चुकनिर्मोकौ' इत्यमरः, धारागृहेति–धारागृहाज्जलयन्त्रगृहान्निर्यन्त्यो या वारिधारा जलधारास्तासां रवस्य शब्दस्य श्रवणेन समाकर्णनेन निर्वृतया संतुष्टया, चन्दनेति—चन्दनेन पाटीरेण शिशिरं शीतलं यच्छिलापट्टं तस्मिन् संविष्टा समासीना तया, प्रालेयेति—प्रालेयशीकराणां तुहिनकणानामासारं वहतीत्येवंशीला तया हेमन्तस्य मार्गशीर्षपौषरूपास्तस्य हेमन्तर्तोर्यामिन्येव निशयेव, मौक्तिकेति—मौक्तिकानां मुक्ताफलानां राजिः पङ्क्तिस्तया विराजिता विशोभिता तनुलता यस्यास्तया ताम्रपर्ण्या एतन्नामधेयाया नद्या वेण्येव प्रवाहेणेव ताम्रपर्ण्याः प्रवाहे मौक्तिकानि भवन्तीति प्रसिद्धिः, शीतलचन्दनस्य शिशिरमलयजस्य छायां कान्ति पक्षेऽनातपं बिभर्तीति तया मलयशैलस्य मलयमहीधरस्य मेखलयेव तटयेव, फेनेति—फेनपिण्डमिव डिण्डीर-

कर्णाभूषण बनाया था, सूर्यके संतापके भयसे अत्यन्त शीतल स्थानमें रखे हुए चन्द्रमाके प्रकाशके समान, कपूरसे सुगन्धित, बर्फके जलसे मिश्रित अत्यन्त सघन चन्दनके लेपसे जिसका शरीर सफेद-सफेद हो रहा था, पानीको झरानेवाली मृणालरूपी लताके समान सुन्दर मोतियोंकी मालासे जिसके स्तनतट तरंगोंसे युक्त जैसे जान पड़ते थे, जिसके मणिमय आभूषणोंसे शरीरमें लगी केशर छूट रही थी, तिहरे परदोंसे आच्छादित झरोखोंसे जिसके लिए सूर्यकी किरणोंका दर्शन दूरान्तरित था, जिसका सायंकालीन जलक्रीडाका कौतुक बढ़ रहा था, जो साँपकी काँचुलीसे भी हलके वस्त्र धारण कर रही थी, फव्वारेसे निकलनेवाली जलधाराका शब्द सुननेसे जो संतुष्ट थी, जो चन्दनके समान शीतल शिलापट्टपर बैठी थी, जो तुषार कणोंकी वर्षाको धारण करनेवाली हेमन्तकी रात्रिके समान जान पड़ती थी, मोतियोंसे सुशोभित शरीररूपी लतासे युक्त होनेके कारण जो ताम्रपर्णी नदीके प्रवाहके समान प्रतिभासित होती थी, शीतल चन्दनकी छाया (पक्षमें कान्ति) को धारण करने

पयःपयोधेः, पद्मया तया समं स्फुटितपाटलकुसुमापीडपटुपरिमलविसरवासितरोदोविवराणि प्रसरदूष्मलतरणिकिरणपरामर्शमर्मरितपक्ष्माणि पटुतरातपकृतकोटरपुटपाकमन्दप्राणविष्किराणि स्फीतफलस्तबकभूरिभारनम्रशाखाम्रवणानि चूडारत्नसंशयितवनवैश्वानरबिलेशयभुजङ्गानि पत्रलानूपद्रुमषण्डपिण्डितरोमन्थमन्थरवदनगोधनानि दावदहनदाहविद्राणसारङ्गसङ्घलङ्घितमरुन्मार्गाणि पानीयशालापन्नपथिकजनवाञ्छ्यमानसायाह्नानि शुष्कसरसीविलोकननिराशशोकान्धसिन्धुरारब्धकरास्फोटानि रिक्तीकृतमहामहीधरनिर्झरस्रोतःसिरासंतानानि संज्वलितपतङ्गग्रावपावकप्रभापटल-

समूह इव पाण्डुराणि धवलानि अम्बराणि वस्त्राणि यस्यास्तया पक्षे फेनपिण्डेन पाण्डुरं शुक्लीकृतमम्बरं व्योम यया तया पयःपयोधेः क्षीरसागरस्य वीच्येव लहर्येव । अथ ग्रैष्मकाण्यहानि विशेषयितुमाह—स्फुटितेति—स्फुटितानि विकसितानि यानि पाटलकुसुमानि 'गुलाब' इति प्रसिद्धपुष्पाणि तेषामापीडस्य शेखरस्य यः पटुपरिमल उत्कटसुगन्धिस्तस्य विसरेण समूहेन वासितानि सुरभितानि रोदोविवराणि द्यावापृथिव्यन्तरालानि येषु तानि, प्रसरदिति—प्रसरन्त ऊष्मला उष्णा ये तरणिकिरणा रश्मिमालिरश्मयस्तेषां परामर्शेन संस्पर्शेन मर्मरितानि शुष्काणि पक्ष्माणि नयनरोमराजयो येषु तानि, पटुतरेति—पटुतरेण तिग्मतरेण आतपेन घर्मेण कृतो विहितो यः कोटरे वृक्षविवरे पुटपाकस्तेन मन्दप्राणा मरणोन्मुखा विष्किराः पक्षिणो येषु तानि, स्फीतेति—स्फीता विस्तृता ये फलस्तबकाः फलगुच्छकास्तेषां भूरिभारेण प्रचुरभारेण नम्रशाखानि आभुग्नविटपानि आम्रवणानि रसालकाननानि येषु तानि, चूडेति—चूडारत्नैः फणामाणिक्यैः संशयितः संशयविषयतापन्नो यो वनवैश्वानरो दावाग्निस्तेन बिलेशयाः कृतबिलशयना भुजङ्गाः सर्पा येषु तानि, पत्रलेति—पत्रला नूतनपत्रयुक्ता येऽनूपद्रुमा जलप्रायप्रदेशपादपास्तेषां षण्डे समूहे पिण्डितानि एकत्रस्थितानि रोमन्थमन्थरवदनानि चर्वितचर्वणमन्थरमुखानि गोधनानि येषु तानि, दावेति—दावदहनस्य वनाग्नेर्दाहेन विद्राणा दूरमुत्पतन्तो ये सारङ्गसङ्घा हरिणसमूहास्तैर्लङ्घितोऽतिक्रान्तो मरुन्मार्गो व्योम येषु तानि, पानीयेति—पानीयशालाः प्रपा आपन्नाः प्राप्ता ये पथिकजना अध्वगपुरुषास्तैर्वाञ्छ्यमानानि अभिलष्यमाणानि सायाह्नानि येषु तानि, शुष्केति—शुष्कसरसीनां निर्जलजलाशयानां विलोकनेन दर्शनेन निराशा अपगताशा अतएव शोकान्धा ये सिन्धुरा गजास्तैरारब्धाः करास्फोटाः शुण्डादण्डास्फोटा येषु तानि, रिक्तीकृतेति—रिक्तीकृताः शून्यीकृता महामहीधराणां महापर्वतानां निर्झरस्रोतसां वारिप्रवाहप्रवाहाणां सिरासंतानानां 'झिर' इति प्रसिद्धानां समूहा येषु तानि, संज्वलितेति—संज्वलिताः प्रदीप्ता ये पतङ्गग्रावाणः

वाली होनेसे जो मलयाचलकी मेखलाके समान दिखाई देती थी और फेन समूहके समान सफेद वस्त्रोंसे युक्त होनेके कारण जो क्षीरसागरकी तरंगके समान जान पड़ती थी ऐसी पद्माके साथ ग्रीष्मऋतुके कुछ दिन व्यतीत किये । वे ग्रीष्मऋतुके दिन जिनमें कि खिले हुए गुलाबके फूलोंकी मालाओंकी जोरदार सुगन्धिके समूहसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल सुवासित हो रहा था । फैलती हुई सूर्यकी गरम-गरम किरणोंके स्पर्शसे जिनमें नेत्रोंकी विरूनियाँ सूखकर मर्मर हो गयी थीं । जिनमें अत्यन्त तीक्ष्ण संतापके द्वारा कोटरमें किये हुए पुटपाकसे पक्षी मन्दप्राण—निश्चेष्ट हो रहे थे । बड़े-बड़े फलसमूहके बहुत भारी भारसे जिनमें आम्र वनोंकी शाखाएँ नम्रीभूत हो रही थीं । चूड़ारत्नोंमें दावानलका संदेह होनेसे जिनमें साँप बिलमें ही शयन करते रहते हैं । जलाशयके समीपवर्ती छायादार वृक्षसमूहके नीचे एकत्रित होकर जिनमें गायोंके मुख रोमन्थ क्रियासे मन्थर हो रहे थे । दावानलकी छाँहसे भागते हुए भृङ्गसमूह जहाँ आकाशको लाँघ रहे थे—आकाशमें लम्बी छलाँग भर दौड़ रहे थे । प्याऊओंके समीप आये पथिकजन जिनमें सायंकालकी प्रतीक्षा कर रहे थे । सूखे सरोवरके देखनेसे निराश एवं शोकसे अन्धे हाथी जिनमें अपनी सूँड़ें हिला रहे थे । जिनमें बड़े-बड़े पर्वतोंके झरनोंके प्रवाहकी झिरोंके समूह खाली हो गये थे । देदीप्यमान सूर्यकान्तमणिकी अग्निके

लीढजाङ्गलद्रुमाणि, घोरतपांसीव मुक्ताहारशरीराणि, राजहृदयानीव तेजोऽधिकद्वेषोत्पादीनि, अपत्यानीव सदाकाङ्क्षितपयांसि, पतितकर्माणीवावस्तलावरोहणकारीणि, नाकस्त्रीमनांसीव मरुदौत्सुक्यविधायीनि, अतिरूक्षाणि ग्रैष्मकाणि कानिचिदहानि जीवंधरः।

§ १६३. अथैवं मनोरथदुरासदं सततं तया सारङ्गदृशा समं शमनुभवन्नपि विषयेष्व-सक्ततामात्मनो विवरीतुमिव विजयासूनुः, विषयान्तरमन्तर्हित एव गन्तुमनाः समजनि। तावतास्य तिरोधाय जिगमिषोरनुकूलतां चिकीर्षुरिवावसितदिवसव्यापारशेषः पूषा निकषास्तशैल-

सूर्यकान्तपाषाणास्तेषां पावकस्यानलस्य प्रभापटलेन कान्तिसमूहेन लीढा व्याप्ता जाङ्गलद्रुमा वनानोकहा येषु तानि, घोरेति—कठिनतपांसीव मुक्ताहाराणि त्यक्तभोजनानि शरीराणि येषु तानि, पक्षे मुक्ताहारैर्मुक्तादामभिरुपलक्षितानि शरीराणि येषु तानि, राजेति—राज्ञां हृदयानि राजहृदयानि तद्वत् तेजसा पराक्रमेण पक्षे दीप्त्याऽधिकेषु द्वेषं विग्रहमुत्पादयन्तीत्येवंशीलानि 'तेजः पराक्रमे दीप्तौ प्रभावे बलशुक्रयोः' इति विश्वलोचनः, अपत्यानीव सूनव इव सदाकाङ्क्षितं पयो जलं पक्षे दुग्धं येषु तानि, पतितकर्माणीव पापकार्याणीव अधस्तलेषु नरकेषु पक्षे भूगृहादिनीचैःस्थानेष्ववरोहणमवतरणं कुर्वन्तीत्येवंशीलानि, नाकस्त्रीमनांसीव स्वर्गस्त्रीचेतांसीव मरुत्सु देवेषु पक्षे वातेष्वौत्सुक्यं सतृष्णत्वं विदधतीत्येवंशीलानि, 'मरुत्पुंसि सुरे वाते' इति विश्वलोचनः अतिरूक्षाणि प्रतिग्मानि।

§ १६३. अथैवमिति—अथानन्तरम् एवं पूर्वोक्तप्रकारं मनोरथैरभिलषितैर्दुरासदं दुष्प्राप्यं शं सुखं तया सारङ्गदृशा मृगनेत्रया पद्मया समं सार्धम् अनुभवन्नपि विषयेषु पञ्चेन्द्रियविषयेषु स्पर्शादिषु 'स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः' इति तत्त्वार्थाधिगमे सूत्रम्। असक्तताम् अनासक्ततां निवरीतुं प्रकटयितुमिव विजयासूनुर्जीवंधरः अन्तर्हित एव गूढ एव विषयान्तरं देशान्तरं गन्तुमना गन्तुमुद्यतः 'तुंकाममनसोरपि' इति मकारस्य लोपः समजनि समभूत्। तावतेति—तावता तावत्कालेन तिरोधायाऽन्तर्हितो भूत्वा जिगमिषो-

प्रभापटलसे जहाँ वनके वृक्ष व्याप्त हो रहे थे। जो घोर तपके समान थे क्योंकि जिस प्रकार घोर तप मुक्ताहारशरीर अर्थात् आहारका त्याग करनेवाले शरीरसे युक्त होते हैं उसी प्रकार ग्रीष्मऋतुके वे दिन भी मुक्ताहार शरीर थे अर्थात् मोतियोंके हारसे सहित शरीरको धारण करनेवाले थे। जो राजाओंके हृदयोंके समान थे क्योंकि जिस प्रकार राजाओंके हृदय तेजोधिकद्वेषोत्पादी—अधिक तेजस्वी मनुष्योंके साथ द्वेष उत्पन्न करनेवाले होते हैं उसी प्रकार ग्रीष्मऋतुके वे दिन भी तेजोधिकद्वेषोत्पादी—अधिक उष्णपदार्थोंके साथ द्वेष उत्पन्न करनेवाले थे। जो बच्चोंके समान थे क्योंकि जिस प्रकार बच्चोंमें सदा पय—दूधकी आकांक्षा रहती है उसी प्रकार ग्रीष्मऋतुके उन दिनोंमें भी सदा पय—पानीकी आकांक्षा रहती थी। जो पतित मनुष्योंके कार्योंके समान थे क्योंकि जिस प्रकार पतित मनुष्योंके कार्य अधस्तल—नरकमें अवतरण करानेवाले होते हैं उसी प्रकार ग्रीष्मऋतुके वे दिन भी अधस्तल—नीचेके ठण्डे स्थानोंमें अवतरण करानेवाले थे। जो देवाङ्गनाओंके मनके समान थे क्योंकि जिस प्रकार देवाङ्गनाओंके मन मरुत्—देवोंकी उत्सुकताको करनेवाले हैं उसी प्रकार ग्रीष्मऋतुके वे दिन भी मरुत्—वायुकी उत्सुकताको करनेवाले थे और जो अत्यन्त रूक्ष थे।

§ १६३. इस प्रकार जीवन्धरस्वामी उस मृगनयनीके साथ निरन्तर यद्यपि मनोरथोंके लिए भी दुर्लभ सुखका अनुभव कर रहे थे तथापि विषयोंमें अपनी अनासक्ति बतलानेके लिए ही मानो वे गुप्त रूपसे दूसरे देशमें जानेके लिए उत्सुक हो गये। उसी समय छिपकर जाने की इच्छा करनेवाले जीवन्धरस्वामीकी अनुकूलता करनेके लिए ही मानो सूर्य दिनका

१. क० ख० ग० अनुकूलकालचिकीर्षुरिव।

मलम्बत। आपतयालु निशानिशाचरीनिशातशूलशिखासमुत्खातं वासरस्य हृदयमिव स्थपुटितप्रस्थप्रस्थानविह्वलवाहनिवहविहतस्यन्दनविस्रस्तमस्तगिरिगैरिकपङ्कचयखचितं रथाङ्गमिव च पातङ्गमङ्गमदृश्यत। ततस्तेजोनिधिरपि विनिवारितदोषोऽपि वारुणिसङ्गात्किमपरं रविरधः पपात। पद्मिनीरजःस्पृष्टमम्बरमपहाय मज्जत्यब्जिनीभुजङ्गे जलधिवेलान्ते[1] संततलाक्षिकयवनिकालक्ष्मीं बभार संध्या।

§ १६४. ततश्च सवेगपतङ्ग[2]पयोधिपातपाटितशुक्तिपुटमुक्तोत्थितमुक्तोत्करा इव निर्दय-

गन्तुमिच्छोरस्य सात्यंधरेः अनुकूलतां चिकीर्षुरिव कर्तुमिच्छुरिव अवसितः समापितो दिवसव्यापारशेषो येन तथाभूतः पूषा सूर्यः अस्तशैलमस्ताचलं निकषा तस्य समीपे 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया, अलम्बत लम्बितोऽभूत्। आपतयाल्विति—आपततीत्येवंशीला आपतयालुरागमनस्वभावा या निशानिशाचरी क्षपाक्षपाचरी तस्या यत् निशातं तीक्ष्णं शूलं तस्य शिखयाग्रभागेण समुत्खातं वासरस्य दिवसस्य हृदयमिव स्थपुटितानि नतोन्नतानि यानि प्रस्थानि शिखराणि तेषु प्रस्थानं प्रयाणं तेन विह्वला दुःखीभूता ये वाहा अश्वास्तेषां निवहेन समूहेन विहतं त्रोटितं यत्स्यन्दनं रथस्तस्माद् विस्रस्तं पतितम् अस्तगिरेरस्ताचलस्य गैरिकपङ्कचयेन धातुकर्दमसमूहेन खचितं निःस्यूतं रथाङ्गमिव चक्रमिव पतङ्गस्येदं पातङ्गं सूर्यसम्बन्धि अङ्गं बिम्बम् अदृश्यत। तत इति—ततस्तदनन्तरं तेजोनिधिरपि पराक्रमभाण्डारोऽपि पक्षे दीप्तिभाण्डारोऽपि विनिवारिता दूरीकृता दोषा क्षपा पक्षेऽवगुणा येन तथाभूतोऽपि वारुणीसङ्गात् पश्चिमदिशासंसर्गात् पक्षे कादम्बरीसंसर्गात्, अपरं किम्। रविरपि सूर्योऽपि अधः पपात पतति स्म। पद्मिनीति—पद्मिन्याः कमलिन्या रजसा परागेण स्पृष्टम् अम्बरं गगनम् अपहाय त्यक्त्वा अब्जिनीभुजङ्गे सूर्ये पक्षे पद्मिनी पद्मिनीनाम नायिका तस्या रजसार्तवेन स्पृष्टमम्बरं वस्त्रम् अपहाय अब्जिनीभुजङ्गे पद्मिनीनायिकाविटे जलधिवेलान्ते सागरतटे मज्जति सति स्नातुं प्रविशति सति संध्या पितृप्रसूः संतता समन्ताद्विस्तारिता या लाक्षिकयवनिका लाक्षारागरक्तयवनिका तस्या लक्ष्मीं शोभां बभार।

§ १६४. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च सवेगः सरयः पतङ्गस्य सूर्यस्य यः पयोधौ पातस्तेन पाटितेभ्यो विदारितेभ्यः शुक्तिपुटेभ्यो मुक्तोत्थिता आदौ मुक्ताः पश्चादुत्थिता मुक्तोत्करा इव मौक्तिक-

समस्त कार्य समाप्त कर अस्ताचलके निकट जा पहुँचा। उस समय सूर्यका शरीर ऐसा दिखाई देता था मानो आनेवाली रात्रिरूपी राक्षसीके तीक्ष्ण शूलके अग्रभागसे उखाड़ा हुआ दिनका हृदय ही हो अथवा ऊँचे-नीचे शिखरोंपर चलनेसे विह्वल घोड़ोंके समूहसे तोड़े हुए रथसे टूटकर गिरा अस्ताचलकी गेरूकी दलदलमें फँसा चक्र ही हो। तदनन्तर जिस प्रकार अनेक दोषोंका निराकरण करनेवाला तेजस्वी पुरुष भी वारुणी—मदिराके संगसे नीचे गिर जाता है उसी प्रकार और क्या विनिवारितदोष—रात्रिको दूर करनेवाला (पक्षमें अनेक दोषोंका निराकरण करनेवाला) तथा तेजोनिधि-प्रतापका भण्डार (पक्षमें उष्णताका भण्डार) सूर्य भी वारुणी—पश्चिम दिशा (पक्षमें मदिरा) के संगसे नीचे गिर गया। जिस प्रकार कोई मनुष्य किसी स्त्रीके रज—आर्तवसे छुए हुए अम्बर—वस्त्रको छोड़कर जलाशयमें अवगाहन करता है उसी प्रकार सूर्य भी कमलिनियोंकी रज—पराग (पक्षमें आर्तव) से छुए हुए अम्बर—आकाश (पक्षमें वस्त्र) को छोड़कर समुद्र जलके तटमें स्नान करनेके लिए ही मानो निमग्न हो गया। और संध्या लाखके रंगसे रँगे फैले हुए परदाकी शोभा धारण करने लगी।

§ १६४. तदनन्तर आकाशमें तारे चमकने लगे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो वेगसहित सूर्यके समुद्रमें पड़नेसे फूटी हुई सीपोंके पुटसे छूटकर आकाशमें उछटे हुए मोतियोंके समूह

१. म० जलधिजलवेलान्ते। २. क० ख० ग० 'पतङ्ग' पदं नास्ति।

मधुकरमर्दननिपतदनल्पकल्पतरुकुसुमप्रकरा इव च[४] तारकाश्चकाशिरे। तदनु चागाधरसातलकासारगर्भपीतवासरतापसुखसमुत्तरत्समवर्तिवाहनवाहवैरिकायकार्ष्ण्यकञ्चुकितानीव, अहरवसानविहारमण्डनप्रवृत्तबलरिपुपुरपुरंध्रीजातयातयामतावधूतावतंसनीलकुवलयप्रभानुविद्धानीव समददिक्करिकुलकर्णतालताडनाम्रेडनभयचकितविद्राणषट्चरणचक्रचञ्चदर्चिश्चर्चमेचकितानीव सर्वतः शर्वरीकेशपाशदेशीयानि तमांसि मांसलिमानमभजन्त। क्रमेण चाभ्यागताभिमतरमणनीलकञ्चुककदाशाकदर्थिताभिरनुपदं प्रसारितपाणिभिरितस्ततो गृह्यमाणे स्वाभ्याशेषु स्वैरिणीभिः, अतिबहलपङ्कपटलशङ्किभिरावर्जितपार्श्वैरनिभृतं विलुठितुमूरीक्रियमाणे विपिनकुहरेषु वराहनिवहैः,

समूहा इव निर्दयं निष्करुणं यत् मधुकरैरलिभिर्मर्दनं तेन निपतन्तो नितरां पतन्तो येऽनल्पतरुकुसुमप्रकरा विपुलपादपपुष्पप्रचया इव च तारका नक्षत्राणि चकाशिरे शुशुभिरे। तदन्विति—तमांसि तिमिराणि मांसलिमानं पुष्टिम् अभजन्त। अथ तमांसि विशेषयितुमाह अगाधेति–अगाधो गभीरो यो रसातलकासारः पातालजलाशयस्तस्य गर्भेण मध्येन पीतो दूरीकृतो यो वासरतापो दिवससंतापस्तेन सुखं यथा स्यात्तथा समुत्तरन् यः समवर्तिवाहनवाहवैरी यमवाहनमहिषस्तस्य कायस्य कार्ष्ण्यं कालिमा तेन कञ्चुकितानीव व्याप्तानीव, अहरवसानेति—अहरवसाने दिनान्ते विहाराय भ्रमणाय यन्मण्डनं विभूषणधारणं तस्मै प्रवृत्तानि तत्पराणि यानि बलरिपुपुरस्य स्वर्गस्य पुरन्ध्रीजातानि स्त्रीसमूहास्तैर्यातयामतया गतप्रहरावधित्वेनावधूतानि दूरीकृतानि यान्यवतंसनीलकुवलयानि कर्णाभरणनीलकमलानि तेषां प्रभया कान्त्यानुविद्धानीव मिलितानीव, समदेति—समदाः सदाना ये दिक्करिणो दिग्गजास्तेषां कुलस्य कर्णतालं कर्णव्यजनं तेन ताडनस्य यद् आम्रेडनं पुनरुक्तिस्तस्य भयेन चकिता भीता विद्राणाः पलायिताश्च ये षट्चरणा भ्रमरास्तेषां चक्रस्य समूहस्य चञ्चन्ति शोभमानानि यान्यर्चींषि तेषां चर्चया लेपनेन मेचकितानीव कृष्णीकृतानीव, सर्वतः समन्तात् शर्वर्या रजन्याः केशपाशदेशीयानि कचकलापकल्पानि। क्रमेणेति—क्रमेण च क्रमशश्च अभ्यागताः संमुखं प्राप्ता येऽभिमतरमणा इष्टदयितास्तेषां नीलकञ्चुकानां श्यामकूर्पासानां कुत्सिता आशा कदाशा तया कदर्थिताः पीडितास्ताभिः, अनुपदं स्थाने स्थाने प्रसारिताः पाणयो याभिस्ताभिः स्वैरिणीभिः कुलटाभिः स्वाभ्याशेषु निजनिकटस्थानेषु गृह्यमाणेऽङ्गीक्रियमाणे, अतिबहलमतिप्रचुरं यत्पङ्कपटलं कर्दमपटलं तच्छङ्कन्त इत्येवंशीलास्तैः तिमिरं पङ्कपटलं शङ्कमानैरित्यर्थः, आवर्जितं धृतं पार्श्वं यैस्तैः

ही हों अथवा भ्रमरोंके निर्दय मर्दनसे टूट-टूटकर गिरते हुए कल्पवृक्षके फूलोंके पुंज ही हों। तदनन्तर सब ओर अन्धकार वृद्धिको प्राप्त हो गया। वह अन्धकार ऐसा जान पड़ता था मानो अगाध रसातलरूपी तालाबके मध्यमें दिनके संतापको नष्ट कर सुखसे तैरते हुए यमराजके वाहन स्वरूप भैंसाओंके शरीरसम्बन्धी कालिमासे व्याप्त ही हो। अथवा सायंकालिक विहारके लिए आभूषण धारण करनेमें प्रवृत्त इन्द्रपुरकी स्त्रियों-द्वारा अपना पहर समाप्त हो जानेके कारण निकालकर फेंके हुए कर्णाभरणके नीलकमलोंकी प्रभासे मानो व्याप्त ही हों। अथवा मदमाते दिग्गजोंके कर्णरूपी तालपत्रके बार-बार ताडनके भयसे चकित हो भागते हुए भ्रमरसमूहकी शोभायमान कान्तिके लेपसे मानो श्यामवर्ण ही हो अथवा रात्रिरूपी स्त्रीके बिखरे हुए केशपाश ही हों। तदनन्तर क्रम-क्रमसे संमुखागत इष्ट पतिके साथ रमण करनेके लिए नील चोगाकी दुराशासे पीड़ित अभिसारिकाएँ जिसे अपने समीप जहाँ-तहाँ हाथ फैला-फैला कर ग्रहण कर रही थीं। अत्यधिक कीचड़के समूहकी आशंका करने एवं पार्श्व भागको धारण करनेवाले सूकरोंका समूह जंगलकी कुहरोंमें लोटनेके लिए जिसे स्वीकार

४. क० 'च' नास्ति।

अकाण्डजलदमण्डलभ्रमसंभ्रमसंभृतपुनःपलायनचिन्तैरुत्क्षेपचटुलपक्षसंपुटैः सभयमभिवीक्ष्यमाणे सरःसु हंसैः, संरम्भसमुद्धूतसटाच्छटैरुत्पुच्छ्यमानैः कठोरकालायसपञ्जरधिया विघटयितुं व्यापारितनखकोटिभिः साटोपमुपदिश्यमाने गिरितटीषु[1] कण्ठीरवैः, तिमिरापीडे जरठतां प्रतिपन्ने, प्राप्ते च निशीथे, निर्दयसंभोगव्यतिकरश्रमेण गाढाश्लिष्टनिद्रां तां बिम्बोष्ठीमतिसंधाय गन्धर्वदत्तापतिरन्तर्वंशिकैरप्यविदित एवान्तःपुरात्पुराच्च निर्गत्य ययौ ।

§ १६५. अथ पद्मबन्धौ पद्मिनीमिव पद्मां परित्यज्य पद्मादयिते प्रयाते, प्रशिथिलितनितान्तस्वापा सा कान्ता [2]कान्तकरपरिरम्भणसंभूष्णुशंभरानुपलम्भेन विजृम्भमाणवेपथुभरादर-

वराहनिवहैः शूकरसमूहैः विपिनकुहरेषु काननगर्तेषु विलुठितुम् ऊरीक्रियमाणे स्वीक्रियमाणे, अकाण्डजलदमण्डलस्य असमयवारिदवृन्दस्य यो भ्रमः संशयस्तेन संभ्रमं यथा स्यात्तथा संभृता धृता पुनःपलायनचिन्ता पुनर्मानससरःप्रयाणानुध्यानं यैस्तैः उत्क्षेपेण समुन्नयनेन चटुलानि चञ्चलानि पक्षसंपुटानि गरुत्पुटानि येषां तैः, हंसैर्मरालैः सरःसु कासारेषु सभयं सत्रासं यथा स्यात्तथा अभिवीक्ष्यमाणे दृश्यमाने, संरम्भेण कोपेन समुद्धूता समुत्कम्पिता सटाच्छटा जटासमूहो यैस्तैः उत्पुच्छयन्ते पुच्छमुन्नतं कुर्वन्तीत्युत्पुच्छयमानास्तैः, कठोरकालायसस्य सुदृढकृष्णलोहस्य पञ्जरं शलाकागृहं तस्य धिया बुद्ध्या विघटयितुं खण्डयितुं व्यापारिताः संचालिता नखकोटयो यैस्तैः कण्ठीरवैः सिंहैः साटोपगिरितटीषु शैलपरिसरेषु साटोपं यथा स्यात्तथा उपदिश्यमाने निर्दिश्यमाने तिमिरापीडेऽन्धकारसमूहे जरठतां वृद्धिम् प्रतिपन्ने प्राप्ते सति निशीथेऽर्धरात्रे प्राप्ते च समागते च निर्दयो निष्कृपो यः संभोगव्यतिकरो रतिव्यापारस्तेन श्रमः खेदस्तेन गाढमत्यन्तं यथा स्यात्तथा श्लिष्टा निद्रा यस्यास्तथाभूतां तां बिम्बोष्ठीम् पद्माम् अतिसंधाय वञ्चयित्वा गन्धर्वदत्तापतिर्जीवंधरः अन्तर्वंशिकैरपि परिजनैरपि अविदित एवाज्ञात एव अन्तःपुरादवरोधात् पुराच्च नगराच्च निर्गत्य ययौ जगाम ।

§ १६५. अथेति—अथानन्तरं पद्मबन्धौ सूर्ये पद्मिनीमिव कमलिनीमिव पद्मां तन्नामभार्यां परित्यज्य पद्मादयिते जीवंधरे प्रयाते सति प्रशिथिलितो मन्दीभूतो नितान्तस्वापो गाढनिद्रा यस्यास्तथाभूता सा कान्ता वल्लभा कान्तकरस्य वल्लभहस्तस्य परिरम्भणेन समालिङ्गनेन संभूष्णोः संभवनशीलस्य शंभरस्य सुखस्यानुपलम्भेनाप्राप्त्या विजृम्भमाणो वर्धमानो वेपथुभरः कम्पनातिशयो यस्याः सा, आदरेण

कर रहा था। अकाल मेघमण्डलके भ्रमसे संभ्रमपूर्वक पुनः भागनेकी चिन्ता धारण करनेवाले एवं उड़नेसे चंचल पंखोंके धारक हंस जिसे तालाबोंमें डरते-डरते देख रहे थे और संभ्रमपूर्वक गर्दनके बालोंके समूहको हिला पूँछको ऊपर उठानेवाले एवं कठोर काले लोहेसे निर्मित पिंजड़ा समझ तोड़नेके लिए नाखूनोंके अग्रभागको चलानेवाले सिंह पर्वतके शिखरोंपर जिसे खण्डित करनेका उद्देश्य बाँध रहे थे ऐसा अन्धकारका समूह जब अत्यन्त गहरा हो गया तथा मध्य रात्रिका समय आ गया तब निर्दय संभोगसे उत्पन्न थकावटके कारण गाढ़ निद्रामें निमग्न उस बिम्बोष्ठी—पद्माको धोखा देकर जीवन्धरस्वामी घरके लोगोंके बिना जाने ही अन्तःपुर तथा नगरसे निकल कर चले गये।

§ १६५. अथानन्तर जिस प्रकार कमलिनीको छोड़कर सूर्य चला जाता है उसी प्रकार जब जीवन्धर स्वामी पद्माको छोड़कर चले गये तब जिसकी गाढ़ निद्रा शिथिल हो गयी थी, पतिके हाथके आलिंगनसे होनेवाले सुखकी अनुपलब्धिसे जिसके शरीरकी सिहरन बढ़

१. क० ख० ग० गिरितटेषु०। २. क० ख० ग० 'कान्ता' पदं नास्ति।

विवर्तितगात्रा निमीलितनेत्रैव प्रसारितपाणिः परितः पर्यङ्के पतिं व्यचेष्ट[1]। अदृष्ट्वा च तलिमसविधे[2] धवमवधूतावशिष्टनिद्रा द्रुतमुत्थाय शयनगृहमभितः प्रदीपाट्टेषु[3] प्रलम्बमानमणिकनकसुमनोदामनिकामस्थूलशातकुम्भस्तम्भच्छायास्वप्यतुच्छ-रणरणकविह्वला प्रह्वतरपूर्वगात्रा धात्रीतलचुम्बितलम्बमानशिथिलकेशकलापा कलापिनीव नृत्तोद्यता, विद्युदिव मेघावलीवलयिता, वलयरवमुखरितकरपल्लवैः पल्लवयन्तीव परामृशन्ती भुवं भूयः पर्यभ्रमत्। एवं नैकवारं वरदर्शनशङ्कया दरस्तम्भिताक्रन्दप्रसंगा स्वाङ्गच्छायामपि [4]तच्छायां संदिहाना भूत्वापि निशान्ते कान्तं यदा नैक्षिष्ट तदा 'हा हतास्मि' इति परिदेवनमुखरितोपकण्ठा कलकण्ठी मुक्तकण्ठं रुरोद। तावता

गौरवेण विवर्तितं गात्रं शरीरं यया तथाभूता, निमीलिते नेत्रे यस्यास्तथाभूतैव मुकुलितलोचनैव प्रसारितपाणिर्विस्तारितहस्ता सती परितः समन्तात् पर्यङ्के शयनीये पतिं व्यचेष्ट अन्वैष्ट। अदृष्ट्वा चेति—तलिमसविधे तल्पसमीपे धवं पतिम् अदृष्ट्वा चानवलोक्य च अवधूता दूरीकृता अवशिष्टनिद्रा यया तथाभूता सती, द्रुतं शीघ्रम् उत्थाय शयनगृहं शय्यागारमभितः परितः प्रदीपाट्टेषु दीपस्थापकाट्टप्रदेशेषु प्रलम्बमानानि स्रंसमानानि मणिकनकसुमनोदामानि रत्नभर्मकुसुममाल्यानि येषु तथाभूता ये निकामस्थूला अतिपीवराः शातकुम्भकुम्भाः स्वर्णस्तम्भास्तेषां छायास्वपि अतुच्छरणरणकेन प्रचुरोत्कण्ठ्येन विह्वला विचित्ता, प्रह्वतरं नम्रतरं पूर्वगात्रं यस्याः सा धात्रीतलचुम्बिता महीतलचुम्बिता लम्बमानाः स्रंसमानाः शिथिलकेशकलापा शिथिलकचसमूहा यस्याः सा, नृत्तोद्यता कलापिनीव मयूरीव मेघावल्या घनमालया वलयिता वलयमिवाचरिता विद्युदिव तडिदिव, वलयरवेण कङ्कणशब्देन मुखरिताः शब्दायमानाः ये करपल्लवाः करकिसलयास्तैः पल्लवयन्तीव किसलययुक्तां कुर्वन्तीव भुवं भूमिं, भूयः पुनः पर्यभ्रमत् परितो भ्रमति स्म। एवमिति—एवमनेन प्रकारेण नैकवारमनेकवारं वरदर्शनस्य वल्लभावलोकनस्य शङ्का संशीतिस्तया दरस्तम्भित ईषदवरुद्ध आक्रन्दप्रसङ्गो रोदनावसरो यया तथाभूता स्वाङ्गच्छायामपि स्वशरीरप्रतिकृतिमपि तस्य वल्लभस्य छाया प्रतिकृतिस्तां संदिहाना संशयाना भूत्वापि निशान्ते गृहे कान्तं धवं यदा नैक्षिष्ट नावलोकयामास तदा 'हा हतास्मि' इति परिदेवनेन करुणविलापेन मुखरितं शब्दायमानमुपकण्ठं परिसरो यस्यास्तथाभूता कलकण्ठी मधुरस्वरा पद्मा, मुक्तकण्ठमुच्चै रुरोद।

रही थी, जिसने अपने शरीरको कुछ-कुछ घुमाया था और जो नेत्र बन्द किये-किये ही हाथ फैला रही थी ऐसी पद्माने शय्यापर पतिको खोजा। जब शय्याके समीप उसे पति नहीं दिखे तब अवशिष्ट निद्राको दूर कर वह शीघ्र ही उठकर खड़ी हो गयी और शय्यागृहके चारों तरफ दीपकोंसे सुशोभित अट्टालिकाओंमें तथा लटकती हुई मणिमय और स्वर्णमय फूलोंकी मालाओंसे युक्त सुवर्णके स्थूल खम्भोंकी छायाओंमें भी उन्हें खोजती हुई बार-बार घूमने लगी। उस समय वह अत्यधिक उत्कण्ठासे विह्वल हो रही थी। उसके शरीरका पूर्व भाग बहुत कुछ झुका हुआ था। उसके लटकते हुए ढीले केशोंका समूह पृथिवी तलसे चुम्बित था और उससे वह नृत्य करनेके लिए उद्यत मयूरीके समान अथवा मेघमालासे घिरी हुई बिजलीके समान जान पड़ती थी। वह चूड़ियोंकी खनकसे शब्दायमान कर-पल्लवोंसे पृथ्वीका स्पर्श कर रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो पृथ्वीको पल्लवोंसे युक्त ही कर रही हो। इस प्रकार अनेक बार पतिके देखनेकी शंकासे जिसके रोनेका प्रसंग कुछ-कुछ रुक गया था तथा अपने शरीरकी परछाईंको भी जो उनके शरीरकी परछाईं समझ बैठी थी ऐसी पद्माने जब रात्रिके अन्त समय पतिको नहीं देखा तब वह मधुरकण्ठी 'हा

१. व्यचेष्ट—अन्वैष्ट इति टि०। २. तलिमसविधे—तल्पसमीपे, इति टि०। ३. प्रदीपाट्टेषु—दीपस्थापकाट्टप्रदेशेषु, इति टि०। ४. म० तदङ्गच्छायाम्।

प्रबुध्य दग्धहृदया निभृतेतरपदप्रसृतयो विसृमरकचभारतिमिरकवचितवियतः 'किं किम् ?' इति यामिनीनिभा यामिकयुवतयः समायासिषुः । अद्राक्षुश्च तां भग्नोपघ्नपादपां लतामिव पांसुलोद्गमपत्रभङ्गां धात्रीतलशायिनीं शमयितुमिव शोकानलं नयनजलप्रवाहे प्लवमानामुद्दामदारिद्र्यादप्युद्वेजनीयां वाच्यसंपर्कादपि शोच्यां निर्घृणत्वादपि निन्दनीयां परदारपरिग्रहादपि निग्राह्यां नास्तिक्यादप्यनास्थेयामवस्थामारूढां पद्माम् ।

§ १६६. ततश्च तास्वपि तस्याः परिदेवननिदानं परिज्ञाय परित्रासपराधीनासु, परिजनमुखादेतदुपश्रुत्योदश्रुमुखी समागत्य तज्जननी जनितोद्वेगा निजोत्सङ्गे वत्सामारोप्य तदात्वो-

तावतेति—तावता तावत्कालेन प्रबुध्य जागृता भूत्वा दग्धं भस्मीभूतं दुःखितमिति यावत् हृदयं यासां ताः निभृतेतरा चपलतरा पदप्रसृतिश्चरणसंचारो यासां ताः, विसृमरः प्रसरणशीलो यः कचभारः केशसमूहः स एव तिमिरं ध्वान्तं तेन कवचितं व्याप्तं वियद् व्योम याभिस्ताः, 'किं किम्' इति ब्रुवाणा इति शेषः, यामिनीनिभा रजनीतुल्या यामिकयुवतयः प्रहरिकपुरन्ध्रयः समायासिषुः समागतवत्यः । अद्राक्षुश्चेति—अद्राक्षुश्च विलोकयामासुश्च तां पद्मां भग्नः खण्डित उपघ्नपादप आश्रयतरुर्यस्यास्ताम्, अतएव पांसुलो धूलिधूसर उद्गमपत्रभङ्गः पुष्पपत्रावलिः पक्षे कुङ्कुमादिनिर्मितपुष्पपत्राकाररचना यस्यास्तथाभूतां लतामिव धात्रीतलशायिनीं भूतलपतिताम्, शोक एवानलस्तं विषादवह्निं शमयितुमिव शान्तं कर्तुमिव नयनजलप्रवाहेऽश्रुप्रपूरे प्लवमानामिव तरन्तीमिव उद्दामदारिद्र्यादप्युत्कटनिर्धनत्वादपि उद्वेजनीयाम् उद्वेगकारिणीम्, वाच्यसंपर्कादपि निन्दासंगादपि शोच्यां शोचनीयां, निर्घृणत्वादपि निर्दयत्वादपि निन्दनीयां गर्हणीयां परस्य दाराः परदारास्तेषां परिग्रहादपि परपुरन्ध्रीपरिग्रहादपि निग्राह्यां निग्रहयोग्याम्, नास्तिक्यादपि अनास्थेयामश्रद्धानीयाम् अवस्थां दशामारूढाम् ।

§ १६६. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च तास्वपि यामिकयुवतिष्वपि तस्याः पद्मायाः परिदेवननिदानं विलापादिकारणं विज्ञाय परित्रासस्य पराधीनासु परायत्तासु सतीषु परिजनमुखात् परिकरवदनात् उपश्रुत्य समाकर्ण्य उदश्रुमुखं यस्यास्तथाभूता साश्रुवदना तज्जननी पद्मासवित्री समागत्य जनित उद्वेगो यस्याः समुत्पन्नखेदा सती वत्सां दुहितरं निजोत्संगे स्वक्रोडे आरोप्य स्थापयित्वा तदात्वोचित-

हतास्मि'—'हाय-हाय मारी गयी' इस विलापसे समीपके प्रदेशको मुखरित करती हुई गला फाड़-फाड़कर रोने लगी। उसी समय पहरेपर रहनेवाली स्त्रियाँ जागकर 'क्या है, क्या है' यह कहती हुई उसके पास आ गयीं। इस आकस्मिक घटनासे उन स्त्रियोंके हृदय जल चुके थे, उनके पैरोंके डग बड़ी चंचलतासे शीघ्र-शीघ्र पड़ रहे थे, बिखरे हुए केश समूह रूपी अन्धकारसे उन्होंने आकाशको व्याप्त कर रखा था तथा वे रात्रिके समान जान पड़ती थीं। उन्होंने देखा कि पद्मा, जिसका आश्रय वृक्ष टूट गया है तथा जिसके फूल और पत्ते धूलिसे व्याप्त हो रहे हैं ऐसी लताके समान पृथ्वी तलपर पड़ी हुई है। शोकरूपी अग्निको शान्त करनेके लिए ही मानो अश्रुओंके प्रवाहमें तैर रही है। उत्कट दरिद्रतासे भी कहीं अधिक उद्वेग करनेवाली है। निन्दाके संपर्कसे भी शोचनीय है। निर्दयतासे भी अधिक निन्दनीय है। परस्त्रीके स्वीकारसे भी अधिक दण्डनीय है और नास्तिकतासे भी अधिक अनादरणीय अवस्थाको प्राप्त है।

§ १६६. तदनन्तर पहरेपर रहनेवाली स्त्रियाँ भी जब उसके विलापका कारण जानकर भयसे विवश हो गयीं तब परिजनोंके मुखसे यह समाचार सुन पद्माकी माता रोती हुई वहाँ आयी। उस समय उसे बहुत भारी उद्वेग उत्पन्न हो रहा था। उसने पुत्रीको गोदमें

चितैः [1]शीकरशिशिरोपचारप्रकारैर्व्याहारैश्च विधाय लब्धसंज्ञां सात्यंधरिदयितां सदयमेवमन्वयुङ्क्त– 'अयि पुत्रि, ते जामात्रा स्वयात्राभिव्यञ्जि किंचित्पुरस्तादुपन्यस्तमस्ति वा न वा' इति । सा च मञ्जुभाषिणी किंचिद्ध्यात्वा स्मृत्वा च तदुक्तमित्थं प्रत्यब्रवीत्–'अम्ब, कदाचिदपहायाम्बरमम्बरमणावम्बुराशिगाहनलम्पटे सति, तमवलोक्य जातमन्दहसित इव चकासति चन्द्रमसि, चन्द्रशालां मया साकमधिवसन्भर्तृप्रवासपीडितां सनीडगृहाक्रीडक्रीडागिरिनीडगतां कोकप्रियां प्रदर्शयन् 'प्रिये, पश्य भर्तृवियोगेऽपि पुनस्तत्संयोगसंभूष्णुतया विरहसहिष्णुमिमाम्' इति मां साकूतं[2] समभ्यधात्' इति । दुहितृवचःश्रवणानन्तरं समुद्भवदुद्दामधृतिः पद्माजननी 'जहीहि वत्से, विचिकित्साम् । अनेन ह्यन्यापदेशेनोपादेशि त्वया विप्रयोगः पुनः संप्रयोगश्च ते प्राणनाथस्य' इति प्रणिगदन्ती

स्तत्कालार्हैः शीकरशिशिरोपचारप्रकारैरतिशीतलोपचारप्रकारैः व्याहारैश्च वचनैश्च सात्यंधरिदयितां जीवकजायां पद्मामिति यावत् लब्धसंज्ञां प्राप्तचेतनां विधाय सदयं सकृपं यथा स्यात्तथा एवमनेन प्रकारेण अन्वयुङ्क्त पप्रच्छ—'अयि पुत्रि ! अयि वत्से ! जामात्रा जीवकेन ते तव पुरस्तादग्रे स्वयात्रामभिव्यनक्तीत्येवं शीलं स्वप्रयाणसूचकं किंचित् किमपि प्रकरणम् उपन्यस्तम् उपस्थापितमस्ति न वा न चैवोपन्यस्तम् ।' इति । सा चेति—सा च मञ्जुभाषिणी मधुरभाषिणी किंचित् किमपि ध्यात्वा ध्यानं कृत्वा स्मृत्वा च तदुक्तं जीवंधरनिवेदनम् इत्थं एतत्प्रकारं प्रत्यब्रवीत् प्रत्युवाच ।—'हे अम्ब ! हे मातः 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इति प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः । कदाचिज्जातुचित् अम्बरमणौ सूर्ये अम्बरं गगनं पक्षे वस्त्रम् अपहाय त्यक्त्वा अम्बुराशौ सागरेऽवगाहनं प्रवेशनं तस्मिन् लम्पटे सति सूर्यास्तमनवेलायामिति यावत्, तमम्बरमणिं तथाभूतमवलोक्य जातमन्दहसित इव समुत्पन्नमन्दहास्य इव चन्द्रमसि शशिनि शोभमाने सति, मया पद्मया साकं चन्द्रशालामुपरितनप्रदेशम् अधिवसन् तत्र कृतनिवासः सन्, भर्तृप्रवासेन दयितदूरगमनेन पीडिता ताम्, सनीडस्य सकुलायस्य गृहाक्रीडक्रीडागिरिनीडगतां गृहोद्यानगृहरामक्रीडाचलाभ्यर्णनिकटस्थितां कोकप्रियां चक्रवाकीं प्रदर्शयन् 'प्रिये पश्य विलोकय भर्तृवियोगेऽपि पुनः तत्संयोगस्य भर्तृसमागमस्य संभूष्णुतया संभवशीलतया विरहसहिष्णुं विप्रलम्भसहनस्वभावाम् इमाम्' इति मां साकूतं साभिप्रायं समभ्यधात् निजगाद इति । दुहितृवचःश्रवणानन्तरं पुत्रीवचनाकर्णनानन्तरम् समुद्भवन्ती समुत्पद्यमाना उद्दामधृतिरुत्कटधैर्यं यस्यास्तथाभूता पद्माजननी 'जहीहि त्यज वत्से ! विचिकित्सां संशयम् 'विचिकित्सा तु संशयः,' इत्यमर । अनेन हि वल्लभेन अन्यापदेशेन परव्याजेन उपादेशि उपदिष्टः त्वया सह ते प्राणनाथस्य तव वल्लभस्य विप्रयोगो विरहः पुनः संप्रयोगश्च संयोगश्च' इति प्रणिगदन्ती कथयन्ती

अत्यधिक शीतलोपचार तथा मधुर वचनोंसे पहले सचेत किया। तदनन्तर दयापूर्वक इस तरह पूछा—हे पुत्रि ! जमाईने तेरे लिए पहले कभी अपनी यात्राकी सूचना दी है या नहीं ? उस मधुरभाषिणीने कुछ ध्यान कर तथा स्मरण कर माताकी बातका यह उत्तर दिया कि—'हे मा ! किसी समय जब सूर्य आकाशको छोड़कर समुद्रमें अवगाहन करनेके लिए उद्यत हो रहा था और उसे वैसा देख मन्द हास्य करते हुए के समान जब चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था तब मेरे साथ महलके ऊपरी भागपर बैठे हुए उन्होंने पतिके प्रवाससे पीड़ित समीपवर्ती गृहोद्यानके क्रीड़ागृहके घोंसलेमें स्थित चकवीको दिखाते हुए किसी खास अभिप्रायसे कहा था कि 'हे प्रिये ! पतिका वियोग होनेपर भी उनके पुनः होनेवाले संयोगकी सम्भावनासे विरहको सहनेवाली इस चकवीको देखो'। उक्त वचन सुनते ही जिसे बहुत भारी धैर्य उत्पन्न हुआ था ऐसी पद्माकी माता 'हे बेटी ! संशय छोड़, इन्होंने दूसरेके बहाने तुझे उपदेश दिया है कि तेरे साथ प्राणनाथका वियोग होगा और फिर संयोग होगा' यह कहती

१. शीकरम् अधिकम् इति टि० । २. म० इति साकूतम् ।

सुतामाश्वासयामास ।

§ १६७. अथ पद्मावल्लभोऽपि पल्लवजनपदपतिचोदितजङ्घालजनव्रातेनाप्यविदित एव लङ्घयन्नलङ्घनीयमरण्याध्वानमभिवन्दिताखिलपुण्यजिनभवनतया पावनतामुल्लाघतां च नीतः पल्लववर्षसीम्नि नाम्ना चित्रकूटं विचित्रचारित्राश्रयं तापसाश्रममध्वश्रमच्छेदाय[1] शिश्रिये । अपश्यच्च तापसानामञ्चितवृत्तोऽयं पञ्चाग्निमध्यस्थानादितपःप्रपञ्चम् । अतर्कयच्चायं कृपालुः 'अहो देहिनां मोहनीयकर्मेदं दुर्मोचप्रसरं यद्वश्या अमी मुधा क्लिश्यन्ते' इति । व्याहरच्चायं परहितपरतन्त्रो मन्त्रायमाणं वचः 'अयि तपोधनाः, न हिंस्यात्सर्वभूतानि' इति विश्रुतां श्रुतिं विद्वांसोऽपि 'किं हिंसानिदाने तपस्येकताना भवन्ति भवन्तः' इति । अदीदृशच्च दुर्दृशो जडाञ्जटा-

सुतां पुत्रीं पद्मामिति यावत् आश्वासयामास सान्त्वयांचकार ।

§ १६७. अथेति—अथानन्तरं पद्मावल्लभोऽपि जीवकोऽपि पल्लवजनपदपतिना लोकपालेन चोदिताः प्रेरिता ये जङ्घालजनाः शीघ्रगामुकजनास्तेषां व्रातेनापि समूहेनापि अविदित एवाज्ञात एव अलङ्घनीयमनतिक्रमणीयं महान्तमिति यावत् अरण्याध्वानम् काननपथं लङ्घयन् अतिक्राम्यन् अभिवन्दितानि पूजितानि अखिलपुण्यजिनभवनानि निखिलपवित्रजिनेन्द्रमन्दिराणि येन तस्य भावस्तत्ता तया पावनतां पवित्रताम् उल्लाघतां स्वस्थतां च नीतः प्रापितः सन् पल्लववर्षस्य पल्लवाभिधानजनपदस्य सीमा तस्याम्, नाम्ना नामधेयेन चित्रकूटं विचित्राणि यानि चारित्राणि तेषामाश्रय आधारस्तम् तापसाश्रमं तपस्विवनम् अध्वश्रमच्छेदाय मार्गखेदापनयनाय शिश्रिये प्राप । अपश्यच्च ददर्श च अञ्चितवृत्तः पूजिताचारोऽयं जीवकः तापसानां पञ्चानामग्नीनां मध्ये स्थानं यस्मिन् तत् पञ्चाग्निमध्यस्थानं तत् आदौ येषां तथाभूतानि यानि तपांसि तेषां प्रपञ्चं विस्तारम् । अतर्कयच्चेति—अतर्कयच्च व्यचारयच्चायं कृपालुर्दयालुः, 'अहो आश्चर्यार्थेऽव्ययम्, देहिनां प्राणिनाम् इदं मोहनीयकर्म दुर्मोचः प्रसरो यस्य तथाभूतमस्ति यद्वश्या यद्वशीभूता अमी मुग्धा मूर्खाः क्लिश्यन्ते,' इति । व्याहरच्चेति—परहितपरतन्त्रः परकल्याणोद्युक्तः अयं स्वामी मन्त्रायत इति मन्त्रायमाणं मन्त्रतुल्यं वचो व्याहरच्च जगाद च—'अयि तपोधनाः ! 'न हिंस्यात् सर्वभूतानि'—कांश्चिदपि प्राणिनो न हिंस्यात्' इति विश्रुतां प्रथितां श्रुतिं वेदवाक्यं विद्वांसोऽपि जानन्तोऽपि भवन्तो हिंसानिदाने हिंसाकारणे तपसि पञ्चाग्न्यादौ किं किमर्थम् एकतानाः समासक्ता भवन्ति' इति । अदीदृशच्च दर्शयामास च दुष्टा

हुई पुत्रीको आश्वासन देने लगी—समझाने लगी ।

§ १६७. अथानन्तर पद्माके स्वामी जीवन्धरस्वामी भी पल्लव देशके अधिपतिके द्वारा प्रेरित शीघ्रगामी मनुष्योंके समूहसे भी अविदित रहकर अलंघनीय जंगली मार्गको लाँघते हुए समस्त पवित्र जिन-मन्दिरोंकी वन्दना करनेसे पवित्रता और नीरोगताको प्राप्त हो पल्लव देशकी सीमापर स्थित, विचित्र चारित्रके आधारभूत चित्रकूट नामक तापसोंके आश्रममें मार्गका खेद दूर करनेके लिए पहुँचे । उत्तम चारित्रको धारण करनेवाले जीवन्धर स्वामीने वहाँ तापसोंका पंचाग्निके मध्यमें बैठना आदि तपका प्रपंच देखा । दयालु तो यह थे ही अतः विचार करने लगे कि अहो ! प्राणियोंका यह मोहनीय कर्म बड़ी कठिनाईसे छूटता है । इसके वशीभूत हुए ये प्राणी व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं । तदनन्तर परहितमें तत्पर रहनेवाले जीवन्धरस्वामी मन्त्रके समान आचरण करनेवाले वचन बोले । उन्होंने कहा कि हे तपोधनो ! 'न हिंस्यात् सर्वभूतानि'—'समस्त प्राणियोंकी हिंसा नहीं करनी चाहिए' इस प्रसिद्ध श्रुतिको जानते हुए भी आप लोग हिंसाके कारणभूत तपमें क्यों लीन हो रहे हैं ?

१. म० अध्वश्रमपरिच्छेदाय ।

जालभ्रष्टजलावगाहनलग्नजलचरविसराणां विविधैधोविवरविसर्पत्सर्पादिजन्तूनामप्यमन्दविभावसौ दन्दह्यमानानां नयनवतामसह्यं व्यसनम्। अबूबुधच्च तत्त्वमयं लब्धवर्णो वर्णिनां मध्ये कतिचिदत्यासन्नभव्यान्दिव्यैः श्राव्यैर्हृद्यैरनवद्यानेकान्तोद्द्योतिभिर्वचोभिः। [1]आसीददपवर्गश्रियस्तेऽपि श्रीजिनधर्ममगृह्णन्।

§ १६८. अथ तावता सद्धर्माभिमुखतापसहृदयोद्वान्ततमसेव श्यामीभवति दिङ्मुखे, श्यामामुखविधेयकृत्यं मुनिजनैः सममनुष्ठाय काष्ठाङ्गाररिपुः क्षपामपि तत्रैव क्षपयामास। तदनु च सन्मार्गसंदर्शनसावधानेन सवित्रा संगृहीतसम्यक्त्वबलबहिष्कृततापसमनस्तमोराशिपुनःसंपर्कभीत्येव

इत्येषां तान् मिथ्यादृशः तान् जडान् मूर्खान् जटाजालाज्जटासमूहाद् भ्रष्टाः पतिता जलावगाहने लग्ना ये जलचरविसरा जलचरजन्तुसमूहास्तेषां विविधानि यान्येधांसि तेषां विवरेभ्यश्छिद्रेभ्यो विसर्पन्तः प्रसर्पन्तो ये सर्पादिजन्तवस्तेषामपि, अमन्दश्चासौ विभावसुश्च तस्मिन् प्रचुरपावके दन्दह्यमानानामतिशयेन ज्वलतां नयनवतां नेत्रयुक्तानाम् असह्यमसहनीयव्यसनं दुःखम्। अबूबुधच्च—अबूबुधच्च बोधयामास च लब्धवर्णो विद्वान् अयं जीवंधरो वर्णिनां ब्रह्मचारिणां साधूनां मध्ये कतिचिद् केऽपि आसन्नभव्यान् निकटभव्यान् दिव्यैरलौकिकैः श्राव्यैः श्रोतुमर्हैः हृद्यैर्मनोहरैः अनवद्यं निर्दुष्टमनेकान्तमुद्योतन्त इत्येवं शीलानि तैर्वचोभिर्वचनैः 'वाग्वचो वचनं वाणी भारती गीः सरस्वती' इति धनंजयः। आसीदन्तो निकटस्था भवन्तो अपवर्गश्रीर्मोक्षलक्ष्मीर्येषां तथाभूतास्ते वर्णिनोऽपि श्रीजिनधर्मं जिनेन्द्रोक्तं धर्मम् अगृह्णन्।

§ १६८. अथेति—अथानन्तरं तावता तावत्कालेन सद्धर्मस्य समीचीनधर्मस्याभिमुखा ये तापसास्तपस्विनस्तेषां हृदयेभ्यो मानसेभ्य उद्वान्तमुद्गीर्णं यत्तमस्तेनेव दिङ्मुखे काष्ठान्ते श्यामीभवति कृष्णीभवति सति, श्यामायाः क्षपाया मुखे प्रारम्भे सायंकाल इति यावत् विधेयं करणीयं यत्कृत्यं तत् मुनिजनैः समम् अनुष्ठाय कृत्वा काष्ठाङ्गाररिपुर्जीवंधरः क्षपामपि निशामपि तत्रैव तापसाश्रमे क्षपयामास व्यपगमयामास। तदनु चेति—तदनु निशाव्यपगमानन्तरं च सन्मार्गस्य सुपथस्य संदर्शने प्रकटने सावधानो दक्षस्तेन सवित्रा सूर्येण संगृहीतं स्वीकृतं यत्सम्यक्त्वं सम्यग्दर्शनं तस्य बलेन सामर्थ्येन बहिष्कृतो यस्तापस-

उन्होंने उन मूर्ख मिथ्यादृष्टि लोगोंको जटाओंके समूहसे गिरे पानीमें अवगाहन करनेसे लगे जलचर जीवोंके समूह तथा नाना प्रकारकी लकड़ियोंके छिद्रोंमें चलनेवाले उन सर्प आदि जन्तुओंका जो कि अग्निमें जल रहे थे, नेत्रवाले मनुष्योंके लिए असह्य दुःख दिखाया। उन साधुओंके बीच कुछ अत्यन्त निकट भव्य भी थे। बुद्धिमान् जीवन्धरस्वामीने उन्हें दिव्य, श्रवण करने योग्य, हृदयको प्रिय लगनेवाले और अनेकान्तका प्रकाश करनेवाले वचनोंसे तत्त्वका बोध कराया। और मोक्षलक्ष्मी जिनके निकट आरही थी ऐसे उन लोगोंने भी जैनधर्मको स्वीकृत कर लिया।

§ १६८. तदनन्तर यह सब होते-होते रात्रि हो गयी। समीचीन धर्मके सम्मुख तापसोंके हृदयसे उगले हुए अन्धकारके द्वारा ही मानो दिशाओंका अग्रभाग श्याम हो गया। रात्रिके प्रारम्भमें करने योग्य कार्यको मुनिजनोंके साथ पूरा कर जीवन्धरस्वामीने रात्रि भी उसी आश्रममें पूर्ण की। तत्पश्चात् समीचीन मार्गके दिखानेमें सावधान सूर्यने जब, अच्छी तरह ग्रहण किये हुए सम्यक्त्वके बलसे बहिष्कृत तापसोंके हृदयसम्बन्धी अन्धकारके समूहका पुनः संपर्क न हो जाय इस भयसे ही मानो समस्त अन्धकारके समूहको दूर हटा

१. क० आसदतश्च। ख० आसीदधश्च। ग० आदधश्च। आसदतः—प्राप्यमाना टि०।

निःशेषतमःस्तोमेऽपि निरस्ते, परिसरतरुसुप्तोत्थिते कुमारसौखसुप्तिक इव सविरावे सति वयसि, रुरुगणेऽप्युटजाङ्गणभुवमुत्सृज्य तृणचर्वणचापल्यादाश्रमोपशल्यमाश्रयति, शुचीतरविभागोपेक्षिणि सुगतमतावलम्बिनीवाम्बुजिनीरजःस्पर्शनलम्पटे वाति प्राभातिके मरुति, दिनपतिमुखावलोकनोद्दामदिवसश्रीराग इव प्रसरति तरुणातपे, तापसदारकसमितौ च समित्कुशपलाशाहरणाय यथायथं विहरन्त्याम्, विहितप्रगेतनविधिस्ततो विनिर्गत्य सात्यंधरिरन्धकारितपरिसराणि—क्वणदलिकदम्बकवलितशिखरकुसुमतुङ्गतरुसहस्राणि विश्रृङ्खलखेलत्कुरङ्गखुरपुटमुद्रितसिकतिलस्थलाभिरम्याणि स्वच्छसलिलसरःसमुद्भिन्नकुमुदकुवलयमनोज्ञानि विमलवनापगापुलिनपुञ्जितकलहंसरसितरञ्जित-

मनस्तमोराशिस्तपस्विचेतस्तमस्ततिस्तस्य पुनःसंपर्केण भीतिर्मयं तथैव निःशेषतमःस्तोमे निखिलतिमिरपुञ्जेऽपि निरस्ते दूरीकृते परिसरतरुषु निकटानोकहेषु आदौ सुप्तं पश्चादुत्थितं तथाभूते वयसि पक्षिणि जातित्वादेकवचनम्, सुखसुप्तिं पृच्छतीति सौखसुप्तिकः कुमारस्य सौखसुप्तिकः कुमारसौखसुप्तिकस्तस्मिन्निव सविरावे विरावेण शब्देन सहितं तस्मिन् सति, रुरुगणेऽपि मृगसमूहेऽपि उटजाङ्गणभुवं पर्णशालाचत्वरभूमिम् उत्सृज्य तृणानां शष्पाणां चर्वणे चापल्यं तस्मात् आश्रमोपशल्यम् आश्रमोपकण्ठम् आश्रयति सति गच्छति सति, शुचिश्चेतरश्च इति शुचीतरौ पवित्रापवित्रौ यौ विभागौ तावुपेक्षतः इत्येवंशीले सुगतमतावलम्बिनीव बौद्धमतावलम्बिनीव अम्बुजिनीनां रजांसि परागास्तेषां स्पर्शने लम्पटः समासक्तस्तस्मिन् प्राभातिके प्रातःकालिके मरुति वायौ वाति वहति सति, दिनपतिमुखस्य सूर्यवदनस्यावलोकने दर्शने य उद्दामदिवसश्रीराग उत्कटदिनलक्ष्म्यनुरागस्तस्मिन्निव तरुणातपे प्रत्यूषकालिकारुणवर्णघर्मे प्रसरति सति, तापसानां तपस्विनां दारका नन्दनास्तेषां समितिस्ततिस्तस्यां समिधश्च इन्धनानि च कुशाश्च दर्भाश्च पलाशानि च पत्राणि च तेषामाहरणाय यथायथं यथास्थानं विहरन्त्यां भ्रमन्त्यां सत्याम्, विहितः कृतः प्रगेतनविधिः प्रातःकालिककार्यं येन तथाभूतः सात्यंधरिर्जीवंधरः ततस्तापसाश्रमाद् विनिर्गत्य निःसृत्य कानिचित् कान्यपि काननानि वनानि नयनयोर्नेत्रयोः उपायनीचकार प्राभृतीचकार नयनैः काननानि ददर्शेति भावः। अथ काननानि विशेषयितुमाह—अन्धकारितेति—अन्धकारितास्तिमिरिताः परिसराः समीपप्रदेशा येषां तानि, क्वणदिति—क्वणता गुञ्जता अलिकदम्बेन भ्रमरसमूहेन कवलितानि व्याप्तानि यानि शेखरकुसुमानि उपरितनभागपुष्पाणि तैस्तुङ्गान्युन्नतानि तरुसहस्राणि वृक्षसहस्राणि येषु तानि, विश्रृङ्खलेति—विश्रृङ्खलं स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा खेलन्तः क्रीडन्तो ये कुरङ्गा मृगास्तेषां खुरपुटैः शफप्रदेशैर्मुद्रितानि चिह्नितानि यानि सिकतिलस्थलानि वालुकामयस्थानानि तैरभिरम्याणि मनोहराणि, स्वच्छेति—स्वच्छं निर्मलं सलिलं

दिया। जब निकटवर्ती वृक्षोंपर सोकर उठे हुए पक्षी चहकने लगे मानो कुमारसे 'अच्छी तरह सोये' यह समाचार ही पूछ रहे थे, जब मृगोंके झुण्ड भी पर्णशालाओंके आंगनकी भूमिको छोड़कर घास खानेकी चपलतासे आश्रमके निकट बिखर गये। जब बुद्धमतका अवलम्बन करनेवालेके समान पवित्र और अपवित्र विभागकी उपेक्षा करनेवाला, एवं कमलिनीके परागका स्पर्श करनेमें लम्पट प्रातःकालका पवन बहने लगा। जब दिनपतिका मुख देखनेके लिए उत्कट दिनलक्ष्मीके रागके समान उषाकालकी लालिमा फैलने लगी और जब तापसोंके बच्चोंके समूह ईंधन, कुशा और पत्ते लानेके लिए जहाँ-तहाँ घूमने लगे तब प्रातःकालकी क्रिया कर जीवन्धरस्वामी उस आश्रमसे निकले। आश्रमसे निकलकर उन्होंने उन वनोंको अपने नेत्रोंकी भेंट चढ़ाया जिनमें कि हजारों वृक्ष, गुञ्जार करनेवाले भ्रमर-समूहसे व्याप्त शिखरपर लगे फूलोंसे उन्नत हो रहे थे। जो स्वच्छन्दतासे खेलते हुए हरिणोंके खुरपुटोंकी मुहरोंसे युक्त रेतीले स्थलोंसे सुन्दर थे। जो स्वच्छ जलके सरोवरोंमें

श्रवणानि दृप्यच्छाक्वरशृङ्गकोटिविघटनविषमिततुङ्गकच्छानि विचित्रसुमनःपरिमलमांसलसमीर संचारसुरभीकृतानि कानिचित्काननानि नयनयोरुपायनीचकार। तानि च क्रमादतिक्रम्य गच्छन्विक्रम-शालिविविधपुरुषपरिषदः पारुष्यविरामाभिरामरामालंकृतस्यायत्नोपनतरत्नरजतजातरूपजातजात-समृद्धडिण्डीरपिण्डपाण्डुरपुण्डरीकोद्भासिनः सलीलान्दोलितचारुचमरबालमरुतः परदुरासदसत्त्वाधिक-

नीरं येषु तथाभूतानि यानि सरांसि कासारास्तेषु समुद्भिन्नानि विकसितानि यानि कुमुदकुवलयानि सितासितसरोरुहाणि तैर्मनोज्ञानि मनोहराणि, विमलेति—विमला निर्मला या वनापगा विपिनवाहिन्यस्तासां पुलिनेषु तटेषु पुञ्जिता एकत्रोपस्थिता ये कलहंसाः कादम्बास्तेषां रसितेन शब्देन रञ्जितं प्रसन्नं श्रवणं श्रोत्रं येषु तानि, दृप्यदिति—दृप्यन्तो माद्यन्तो ये शाक्वरास्तरुणवृषभास्तेषां शृङ्गकोटिभिर्विषाणाग्रभागैर्यद् विघटनं विदारणं तेन विषमिता उच्चावचीकृतास्तुङ्गकच्छा उन्नतजलप्रायप्रदेशा येषु तानि, विचित्रेति—विचित्राणि विविधानि यानि सुमनांसि पुष्पाणि तेषां परिमलेन सुगन्धिना मांसलः पुष्टो यः समीरः पवनस्तस्य संचारेण समन्ताद्गमनेन सुरभीकृतानि सुगन्धितानि। तानि चेति—तानि च काननानि क्रमात् क्रमेण अतिक्रम्य समुल्लङ्घ्य गच्छन् जीवंधरो विडम्बितोऽनुकृतः क्षोणीपती राजा येन तथाभूतस्य दक्षिणदेशस्य दाक्षिणात्यजनपदस्य कमपि श्रीजिनालयं श्रीजिनेन्द्रायतनम् अद्राक्षीत् इति क्रियासम्बन्धः। अथ दक्षिणदेशस्य विशेषणान्याह—विक्रमेति—विक्रमशालिनी पराक्रमशोभिनी विविधपुरुषाणां नानाविधराजपुरुषाणां पक्षे तत्रत्यनराणां परिषत्समूहो यस्मिंस्तस्य, पारुष्येति—पारुष्यस्य कर्कशत्वस्य विरामेण समाप्त्या अभिरामा मनोहरा या रामा रमण्यस्ताभिरलंकृतस्य रमणीयस्य, उभयत्र समानम्, अयत्नेति—अयत्नमनायासं यथा स्यात्तथोपनतं समुपस्थितं यद् रत्न-रजत-जातरूपजातं मणिहिरण्यसुवर्णसमूहस्तेन जातसमृद्धः सम्पन्नो यो डिण्डीरपिण्डः फेनसमूहस्तेन पाण्डुराणि पाण्डुवर्णानि यानि पुण्डरीकाणि सितसरोरुहाणि तैरुद्भासते शोभत इत्येवंशीलस्तस्य पक्षे अयत्नेन अप्रयासेनोपनतानि यानि रत्न-रजतजातरूपाणि मणिहिरण्यस्वर्णानि तेषां जातेन समूहेन समृद्धं जातमिति जातसमृद्धं डिण्डीरपिण्डपाण्डुरं फेनसमूहधवलं यत्पुण्डरीकं छत्रं तेनोद्भासिनः 'पुण्डरीकं सितच्छत्रे सिताम्भोजेऽपि भेषजे' इति विश्वलोचनः। सलीलेति—सलीलं सविभ्रमं यथा स्यात्तथान्दोलितैः चारुचमरबालैः सुन्दरचमरमृगकेशैर्मरुत् पवनो यस्मिंस्तस्य, पक्षे सलीलं यथा स्यात्तथान्दोलितैश्चारुचमरैः सुन्दरबालव्यजनैर्वाऽ‍ऽ मन्दो मरुत्पवनो यस्य

खिले हुए सफेद और नील कमलोंसे मनोहर थे। जो जंगली नदियोंके स्वच्छ तटोंपर एकत्रित कल हंसोंके शब्दोंसे कानोंको प्रसन्न कर रहे थे। अहंकारसे पूर्ण बैलोंके सींगोंके अग्रभागसे खुदनेके कारण जिनमें ऊँचे-ऊँचे कछार विषम ऊँचे-नीचे हो रहे थे और जो नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धिसे परिपुष्ट वायुके संचारसे सुगन्धित थे। क्रम-क्रमसे उपवनोंका उल्लंघन कर जाते हुए जीवन्धरस्वामी किसी राजाका अनुकरण करनेवाले उस दक्षिण देशमें पहुँचे कि जहाँ नाना प्रकारके पुरुषोंकी सभा पराक्रमसे सुशोभित थी (राजपक्षमें जिसके कर्मचारी पुरुष विक्रम—विशिष्ट क्रम अथवा पराक्रमसे सुशोभित थे)। जो परुषताको समाप्त करनेवाली सुन्दर स्त्रियोंसे अलंकृत था (राजपक्षमें जो कोमलांगी सुन्दर स्त्रियोंसे अलंकृत था)। जो बिना प्रयत्नके प्राप्त होनेवाले रत्न, चाँदी, और स्वर्णके समूहसे समृद्ध ही उत्पन्न हुआ था (राजपक्षमें जो अनायास ही प्राप्त हुए रत्न आदिसे समृद्ध ही उत्पन्न हुआ था)। जो फेन समूहसे सफेद पुण्डरीक-श्वेत कमलोंसे सुशोभित था (राजपक्षमें जो फेन समूहके समान सफेद छत्रसे सुशोभित था।) जहाँ चमरी मृगके बालोंको लीलासहित कम्पित करनेवाली वायु बहती रहती थी (राजपक्षमें लीला सहित ढोले हुए सुन्दर चमरोंसे जहाँ हवा होती रहती थी)। जिसका निकटवर्ती प्रदेश दूसरोंके लिए दुष्प्राप्य

विविधभूभृदध्यासितसविधस्याजस्राभिवर्धितवाहिनीसहस्रसंपादितसंपदः पयोधरभरमनोहारिमहिषी-महितधाम्नः सदातनगोधनचकासिनः सकलजन्तुसंरक्षणदक्षस्य विडम्बितक्षोणीपतेर्दक्षिणदेशस्य मणिमकुटायमानविकटशिखरचुलुकिताम्बरं जाम्बूनदोपपादितस्थूलस्थूणासहस्रसंबाधमण्डितमण्डपमकाण्डभवदाखण्डलधनुःकाण्डशङ्कानिष्पादनशौण्डनैकपुष्पोपहारमहरहरभिवर्धमानसपर्यमविलयं कमपि श्रीजिनालयमद्राक्षीत् ।

श्लेषाद्व वयोरभेदः, परदुरासदा अन्यजनदुष्प्राप्याः सत्त्वाधिकाः सिंहादिजन्तुप्रचुरा ये विविधभूभृतो नानाविधपर्वतास्तैरध्यासितो युक्तः सविधः पार्श्वप्रदेशो यस्य तस्य, पक्षे परदुरासदेन शत्रुजनदुष्प्राप्येण सत्त्वेन पराक्रमेणाधिका बलिष्ठा ये भूभृतो राजानस्तैरध्यासितो युक्तः सविधः समीपप्रदेशो यस्य तस्य, अजस्रेति—अजस्रं शश्वद् अभिवर्धितानि यानि वाहिनीसहस्राणि नदीसहस्राणि तैः संपादिता संपद् यस्य तस्य पक्षे अजस्रं शश्वत् अभिवर्धिताः पोषिता या वाहिन्यः सेनास्तासां सहस्रेण संपादिताः प्रापिताः संपदः संपत्तयो यस्य तस्य, पयोधरेति—पयोधरभरेण स्तनभारेण मनोहारिण्यो या महिष्यो देहिकास्ताभिर्महितानि प्रशस्तानि धामानि गृहाणि यस्मिन् तस्य 'महिषी नाम देहिका' इति धनंजयः पक्षे पयोधरभरेण कुचभरेण मनोहारिण्या या महिष्यः कृताभिषेका राज्यस्ताभिर्महितं शोभितं धाम राजभवनं यस्य तस्य, 'कृताभिषेका महिषी' इत्यमरः । सदातनेति—सदातनं शाश्वतं यद् गोधनं धेनुधनं पक्षे पृथिवीधनं चकास्तीत्येवंशीलस्तस्य, सकलेति—सकलजन्तूनां निखिलप्राणिनां सिंहादीनां पक्षे विप्रादीनां संरक्षणे दक्षः समर्थस्तस्य । अथ श्रीजिनालयस्य विशेषणान्याह—मणीति—मणिमकुटायमानेन रत्नशेखरायमाणेन विकटशिखरेण विशालाग्रभागेन चुलुकितं तुच्छीकृतमम्बरं नभो येन तम्, जाम्बूनदेति—जाम्बूनदोपपादितानि स्वर्णनिर्मितानि स्थूलानि पीवराणि यानि स्थूणासहस्राणि स्तम्भसहस्राणि तेषां संबाधेन प्राचुर्येण मण्डितो मण्डपो यस्य तम्, अकाण्डेति—अकाण्डेऽसमये भवन्ति समुत्पद्यमानानि यानि आखण्डलधनुःकाण्डानि शक्रशरासनदण्डानि तेषां शङ्कायाः संदेहस्य निष्पादने समुत्पादने शौण्डाः समर्था नैकपुष्पोपहारा नानाकुसुमोपायनानि यस्मिंस्तम्, अहरह इति—अहरहः प्रतिदिनमभिवर्धमाना सपर्या पूजा यस्मिंस्तम् अविलयमविनश्वरम् ।

जीवोंसे व्याप्त नाना पर्वतोंसे युक्त था (राजपक्षमें जिसका समीपवर्ती प्रदेश दूसरोंके लिए दुर्लभ पराक्रमसे अधिक नाना राजाओंसे युक्त रहता था)। निरन्तर बढ़ती हुई हजारों नदियोंसे जिसकी सम्पत्ति बढ़ती रहती थी (राजपक्षमें निरन्तर बढ़ती हुई हजारों सेनाओंसे जिसकी संपत्ति बढ़ती रहती थी)। जिसके घर स्तनोंके भारसे मनोहर भैंसोंसे सुशोभित थे (राजपक्षमें जिसके घर स्तनोंके भारसे मनोहर पट्टरानियोंसे सुशोभित थे)। जो सदा स्थिर रहनेवाले गौरूपी धनसे सुशोभित था (राजपक्षमें जो सदा स्थिर रहनेवाले पृथिवीरूपी धनसे सुशोभित था) और जो समस्त जीवोंकी रक्षा करनेमें समर्थ था (राजपक्षमें जो कलासहित प्राणियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ था)। दक्षिण देशमें जाकर उन्होंने किसी ऐसे जिनालयको देखा जो दक्षिण देशके मणिमय मुकुटके समान सुशोभित विशाल शिखरसे आकाशको व्याप्त करनेवाला था। जिसका सुशोभित मण्डप स्वर्णनिर्मित हजारों मोटे-मोटे खम्भोंसे संकीर्ण था। जो असमयमें प्रकट होनेवाले इन्द्रधनुषकी शंकाके उत्पन्न करनेमें समर्थ नाना प्रकारके फूलोंके उपहारसे सहित था। जो दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई पूजासे सहित और अविनाशी था।

---

१. म० मनोहरमहिषी ।

§ १६६. तन्निरीक्षणक्षण एव क्षीणनिःशेषश्रमः श्रावकश्रेष्ठोऽयं काष्ठागतप्रमोदः साधुधौतपादः पादपवल्लरीतल्लजसंफुल्लफुल्लोत्करमरविन्दसंदेहानुधावन्मधुकरेण करेणापचित्यापचितिविधिज्ञोऽयं विहिताञ्जलिरधिकभक्तिर्भक्तिभरनिगलनिगलित इव कथंचिद्गलाद्गलति सकलवाङ्मयातिवर्तिकीर्तेर्भगवतः संस्तवे,[1] संस्तवनौत्सुक्याङ्कुरानुकारिरोमाञ्चं मुञ्चति शरीरे, शारदारविन्द इव मकरन्दबिन्दुभिरानन्दाश्रुजलैः[2] प्लाविते लोचनयुगले, अचलितमूर्तिरतुलतूर्तिः कर्तव्यमपश्यन्नवश्येन्द्रियस्त्रिकरणशुद्धिस्त्रिःपरीत्य क्षणमास्थितः श्रीपीठाग्रस्थितिरारचय्य कुसुमाञ्जलि-

§ १६६. तन्निरीक्षणेति—तस्य श्रीजिनालयस्य निरीक्षणक्षण एव विलोकनावसर एव क्षीणो नष्टो निःशेषश्रमः संपूर्णखेदो यस्य तथाभूतः श्रावकश्रेष्ठः श्रावकशिरोमणिः 'मूलोत्तरगुणनिष्ठामधितिष्ठन् पञ्चगुरुपदशरण्यः। दानयजनप्रधानो ज्ञानसुधां श्रावकः पिपासुः स्यात्' इति श्रावकलक्षणम्। काष्ठागतप्रमसीमगतः प्रमोदो हर्षो यस्य सः साधु सम्यक् धौतौ प्रक्षालितौ पादौ येन तथाभूतः सन्, पादपाश्च वृक्षाश्च वल्लर्यश्च लताश्चेति पादपवल्लर्यः प्रशस्ताः पादपवल्लर्य इति पादपवल्लरी तल्लजा 'मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ। प्रशस्तवाचकान्यमून्ययः शुभावहो विधिः' इत्यमरः पादपवल्लरीतल्लजानां यानि संफुल्लफुल्लानि विकसितकुसुमानि तेषामुत्करः समूहस्तम्, अरविन्दसंदेहेन कमलविभ्रमेणानुधावन्तो मधुकरा भ्रमरा यं तेन करेण पाणिना अपचित्य संचितं कृत्वा अपचितिविधिज्ञः पूजाविधिज्ञानवान् अयं जीवंधरो विहिताञ्जलिः कृताञ्जलिः अधिकं भक्तिर्यस्य तथाभूतः सन्, सकलवाङ्मयस्यातिवर्तिनी निखिलद्वादशाङ्गातिवर्तिनी कीर्तिर्यस्य तथाभूतस्य भगवतः संस्तवे भक्तिभर एव निगलो निगडो बन्धनं तेन निगलिते इव निगडिते इव कथंचित् केनापि प्रकारेण गलात् कण्ठात् गलति निष्क्रामति सति, शरीरे संस्तवने यदौत्सुक्यं तस्याङ्कुराः प्ररोहास्तदनुकारी यो रोमाञ्चस्तं मुञ्चति सति, मकरन्दबिन्दुभिः कौसुमसीकरैः शारदारविन्द इव शारदसरोरुह इव आनन्दाश्रुजलैर्हर्षाश्रुसलिलैर्लोचनयुगले नयनयुगे प्लावित इव, अचलिता निश्चला मूर्तिः शरीरं यस्य सः, अतुलानुपमा तूर्तिः स्फूर्तिर्यस्य सः कर्तव्यं करणीयम् अपश्यन् अनवलोकयन् अवश्यानीन्द्रियाणि यस्य सोऽस्वाधीनहृषीकः त्रिकरणैर्मनोवचःकायैः शुद्धिर्यस्य तथाभूतः त्रिः त्रीन् वारान् परीत्य परिक्रम्य क्षणम् आस्थितः श्रीपीठाग्रे श्रीसिंहासनाग्रे स्थितिर्यस्य

§ १६६. जिनालयके देखनेके समय ही जिनकी समस्त थकावट दूर हो गयी थी, जो श्रावकोंमें श्रेष्ठ थे, जिनका हर्ष चरम सीमाको प्राप्त हो रहा था, और जिन्होंने अच्छी तरह पैर धोये थे ऐसे जीवन्धरस्वामी, कमलके सन्देहसे जिसके पीछे भ्रमर दौड़ रहे थे ऐसे हाथसे उत्तमोत्तम वृक्ष और लताओंके खिले हुए फूलोंके समूहको तोड़कर बहुत भारी भक्तिसे युक्त हो हाथ जोड़ पूजा करनेके लिए उद्यत हुए। वे पूजाकी विधिको अच्छी तरह जाननेवाले थे। समस्त द्वादशांगको अतिक्रान्त करनेवाली कीर्तिसे युक्त श्री जिनेन्द्र भगवान्का स्तवन भक्तिसमूहरूपी बेड़ीसे छूटे हुए के समान किसी तरह उनके कण्ठसे बाहर निकलने लगा। उनका शरीर स्तवनकी उत्सुकतारूपी अंकुरोंका अनुकरण करनेवाले रोमांचको छोड़ने लगा। जिसप्रकार शरद् ऋतुका कमल मकरन्दकी बूँदोंसे व्याप्त हो जाता है उसीप्रकार उनका नेत्रयुगल आनन्दाश्रुओंके समूहसे व्याप्त हो गया। उस समय वे निश्चल शरीरके धारक थे, अनुपम शीघ्रतासे युक्त थे, दूसरे कार्यको ओर देखते भी नहीं थे, उनकी इन्द्रियाँ उनके आधीन नहीं थीं, और वे मन वचन कायकी शुद्धिसे युक्त थे। तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वे क्षण भरके लिए रुक गये और भगवान्के सिंहासनके

१. क० ख० ग० स्तवे। २. म० आनन्दाश्रुजालैः।

मव्रजिनं जिनमस्तोकमस्तावीत्—

§ १७०. 'तरन्ति संसारमहाम्बुराशि
यत्पादनावं प्रतिपद्य भव्याः ।
अखण्डमानन्दमखण्डितश्रीः
श्रीवर्धमानः कुरुताज्जिनो नः ॥

§ १७१. विवेकिनो यस्य पदं भजन्ते
विमुच्य बाह्यान्विषयानसारान् ।
अवाप्तुमात्मीयगुणं गुणाब्धि-
र्जिनेश्वरो नः श्रियमातनोतु ॥

§ १७२. यदीयपादामृतसेवनेन
हरन्ति संसारगरं मुनीन्द्राः ।
स एष संतोषतनुर्जिनो नः
संसारतापं शकलीकरोतु ॥' इति ।

तथाभूत. सन् कुसुमाञ्जलिं पुष्पाञ्जलिम् आरचय्य न विद्यते व्रजिनं पापं यस्य तं जिनमर्हन्तम् अस्तोकं भूयिष्ठं यथा स्यात्तथा अस्तावीत् तुष्टाव ।

§ १७०. तरन्तीति—भव्याः सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यन्तीति भव्याः यस्य पादावेव नौस्तां यत्पादनावं यच्चरणतरणिं प्रतिपद्य लब्ध्वा संसार एव महाम्बुराशिस्तं भवार्णवं तरन्ति अखण्डिता श्रीरनन्तचतुष्टयरूपा यस्य सः श्रीवर्धमानो जिनः पश्चिमतीर्थकरो नोऽस्माकम् अखण्डमविनश्वरं पूर्णं वा आनन्दं प्रहर्षं कुरुतात् । रूपकालंकार उपजातिवृत्तम् ।

§ १७१. विवेकिन इति—विवेकिनो हेयोपादेयविज्ञानयुक्ता जना आत्मीयगुणं अवाप्तुं लब्धुम् असारान् तुच्छान् बाह्यान् विषयान् स्पर्शादीन् विमुच्य त्यक्त्वा यस्य जिनेश्वरस्य पदं भजन्ते सेवन्ते गुणानामब्धिर्गुणाब्धिः गुणार्णवः स जिनेश्वरोऽर्हन् नोऽस्माकं श्रियं लक्ष्मीं तनोतु विस्तारयतु । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ।

§ १७२. यदीयेति—मुनीन्द्रा यतीश्वरा यदीयपादावेवामृतं तस्य सेवनेन यत्पादपीयूषोपसेवनेन संसार एव गरं संसारगरं भवगरलं हरन्ति संतोषतनुः संतोषशरीरः स जिनोऽर्हन् नोऽस्माकं संसारस्य तापस्तं संसारतापम् आजवं जवक्लेशं शकलीकरोतु खण्डयतु । रूपकालंकार उपजातिवृत्तम् ।

आगे स्थित हो पुष्पाञ्जलि रचकर पापरहित जिनेन्द्र भगवान्‌की नीचे लिखे अनुसार अत्यधिक स्तुति करने लगे ।

§ १७०. 'जिनके चरणरूपी नौकाको पार कर भव्य जीव संसाररूपी महासागरको पार हो जाते हैं अखण्ड लक्ष्मीके धारक वे वर्धमान जिनेन्द्र हम सबको अखण्ड आनन्द प्रदान करें ।'

§ १७१. 'विवेकी मनुष्य आत्मीय गुणोंको प्राप्त करनेके लिए साररहित बाह्य विषयोंका त्याग कर जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं गुणोंके सागर स्वरूप वे जिनेन्द्र भगवान् हमारी लक्ष्मीको विस्तृत करें ।'

§ १७२. 'जिनके चरणामृतकी सेवासे मुनिराज, संसाररूपी विषको हर लेते हैं संतोषरूपी शरीरको धारण करनेवाले वे जिनेन्द्रदेव, हमारे संसार-तापको खण्ड-खण्ड करें ।'

§ १७३. तावदवञ्चितया तदीयभयभक्तिकुञ्चिकयैव श्रीकवाटे स्वयं झटिति विघटिते, तदवलोक्य निकटवर्ती मर्त्यः कश्चिदाहितात्याहितभरः[1] प्रीतिविस्फारितनेत्रद्वयेन शतपत्राञ्जलिमिव पवित्रकुमारस्य पातयन्नस्य पादयोः पपात। तमवलोक्य लोकज्ञः कुमारोऽपि नात्यादरं दर्शितदशनज्योत्स्नया कृत्स्नमस्याङ्गमालिम्पन् 'कोऽसि। कुतस्त्यः। कस्मादस्मत्पदयोस्तव पतनम्।' इत्यपृच्छत्। स च तद्वचोलाभेन लब्धमहाप्रसाद इव बद्धाञ्जलिरित्थं निजगाद--'स्वामिन्, इतः क्रोशमात्रान्तरितप्रदेशनिवेशितो वेशवाटिकेति विटैः, विद्यामठिकेति विद्यार्जनोत्सुकैः, विपणिवीथीति वणिग्भिः, आतिथेयनिवास इत्यतिथिभिः, भोगभूरिति भोगापेक्षिभिः, आस्थायिकेत्यास्तिकैः,

---

§ १७३. तावदिति—तावत् तावत्कालेन अवञ्चितया यथार्थया तदीयभक्तिरेव कुञ्चिका तयैव श्रीकवाटे श्रीजिनालयद्वारे स्वयं स्वतो विघटिते सति तत्कपाटविघटनम् अवलोक्य दृष्ट्वा निकटवर्ती समीपस्थितः आहितो धृतोऽत्याहितभरः संतोषभारो येन तथाभूतः कश्चिन्मर्त्यः कोऽपि मनुष्यः प्रीत्या प्रेम्णा विस्फारितं विस्तारितं यन्नेत्रद्वयं तेन शतपत्राञ्जलिं कमलाञ्जलिं पातयन्निव पवित्रकुमारस्य जीवंधरस्य पादयोश्चरणयोः पपात। तं पुरुषम् अवलोक्य लोकज्ञो लोकव्यवहारज्ञः कुमारोऽपि जीवंधरोऽपि नात्यादरं मनागादरं यथा स्यात्तथा दर्शिता प्रकटिता या दशनज्योत्स्ना दन्तचन्द्रिका तया अस्य पुरुषस्य कृत्स्नं समग्रम् अङ्गम् आलिम्पन् लिप्तं कुर्वन् 'कोऽसि। त्वं कः। कुत आगतः कुतस्त्यः कस्माद्धेतोः अस्मत्पदयोः मच्चरणयोः तव पतनम्' इति अपृच्छत्। स चेति—स च पुरुषः तस्य जीवंधरस्य वचसो वचनस्य लाभेन लब्धः प्राप्तो महाप्रसादो यस्य तथाभूत इव बद्धाञ्जलिः सन् इत्थं निजगाद कथयामास— 'स्वामिन्! इतोऽस्मात्स्थानात् क्रोशमात्रेणान्तरितो यः प्रदेशः स्थानं तत्र निवेशितो विद्यमानः वेशवाटिका वारवनितावनीति विटैर्भुजङ्गैः, विद्यामठिकेति विद्याशालेति विद्यार्जनोत्सुकैर्विद्यासंचयोत्कैः, भोगानां पञ्चेन्द्रियविषयाणां भूर्भूमिरिति भोगापेक्षिभिर्भोगाभिलाषिभिः आस्थायिका समवसरणपरिषद् इति आस्तिकैः

---

§ १७३. तदनन्तर जीवन्धरस्वामीके भय और वास्तविक भक्तिरूपी कुंजीके द्वारा जिनालयके कपाट स्वयं शीघ्र ही खुल गये। यह देख पासमें रहनेवाला कोई मनुष्य, संतोषके अधिकतम भारको धारण करता हुआ, जीवन्धरकुमारके चरणोंमें आ पड़ा। उस समय उसके दोनों नेत्र प्रीतिसे विकसित हो रहे थे और उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो जीवन्धरकुमारके चरणोंमें कमलोंकी अंजलि ही गिरा रहा हो। उसे देख लोकव्यवहारको जाननेवाले जीवन्धर कुमारने कुछ आदर दिखाते हुए उससे पूछा कि 'तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? और हमारे पैरोंमें तुम्हारा पतन किस कारण हुआ है? पूछते समय जीवन्धरकुमारके दाँतोंकी किरणें दिख रही थीं जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उसके समस्त शरीरको चाँदनीसे लिप्त ही कर रहे हों। जीवन्धरकुमारके बचनोंकी प्राप्ति होनेसे उस पुरुषको ऐसा लगा मानो उसे महाप्रसाद ही मिल गया हो। उसने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा— हे स्वामिन्! यहाँसे एक कोशकी दूरीपर स्थित क्षेमपुरी नामका एक नगर है। 'यह वेशवाटिका—वेश्याओंके रहनेका उद्यान है' यह समझकर विट मनुष्य, 'यह विद्याका आयतन है' यह समझकर विद्यार्जन करनेमें उत्सुक विद्यार्थी, 'यह बाजारकी गली है' यह समझकर व्यापारी, 'यह अतिथि सत्कारका निवास है' यह समझकर अतिथि, 'यह भोगभूमि है' यह समझकर भोगोंकी इच्छा रखनेवाले, 'यह समवसरण है' यह

---

१. क० ख० ग० आहितात्याहितभरत।

गिरिदुर्ग इति क्षेमार्थिभिः सेव्यः क्षेमपुरी नाम जननिवेशः। तत्र च प्रजापतिरधःपातिताखिलपृथिवीपतिः सुरपतिदेशीयो नरपतिदेवो नाम। तस्य च राजश्रेष्ठस्य श्रेष्ठिपदप्राप्तः स्पर्शनशीलत्वेऽप्यकल्पितप्रदायित्वेन कल्पशाखिनं प्रज्ञाशालित्वेऽपि क्षमास्पदत्वेन बृहस्पतिमाढ्यत्वेऽप्यनुत्तरकाष्ठाश्रितधनिकतया धनदमप्यधःकुर्वन्सर्वगुणभद्रः सुभद्रो नाम। तस्माच्च तेजोधाम्नश्चन्द्रादिव चन्द्रिका पद्माकरादिव पद्मिनी पयःपयोधेरिव पङ्कजासना काचिदङ्गजा समजनि। सा चेन्दुमुखी बन्धुजनप्रमोदेन सार्धमभिवृद्धा सांप्रतं प्रावृडिवोद्भिन्नपयोधरा सरांसि पित्रोर्मनसी कलुषयत्याकर्ष-

श्रद्धालुभिः गिरिदुर्गः पर्वतदुर्गं इति क्षेमार्थिभिः कल्याणार्थिभिः सेव्यः सेवनीयः क्षेमपुरी नाम जननिवेशः जनस्थानम् अस्तीति शेषः 'उल्लेखालंकारः 'एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते' इत्यभिधानात्। तत्र चेति—तत्र च क्षेमपुर्यां नगर्यां च अधःपातितास्तिरस्कृता अखिलपृथिवीपतयो निखिलमहीपा येन तथाभूतः सुरपतिदेशीय इन्द्रकल्पः 'ईषदसमाप्तौ कल्पप्देश्यदेशीयरः' इति देशीयर्प्रत्ययः। नरपतिदेवो नाम प्रजापती राजा अस्तीति शेषः। तस्य चेति—तस्य च राजसु श्रेष्ठस्तस्य नृपतिश्रेष्ठस्य श्रेष्ठिपदं प्राप्त इति श्रेष्ठिपदप्राप्तः स्पर्शनशीलत्वेऽपि दानस्वभावत्वेऽपि अकल्पितमयाचितं प्रददातीत्येवंशीलस्तस्य भावस्तत्त्वेन कल्पशाखिनं सुरतरुम्, प्रज्ञाशालित्वेऽपि बुद्धिविभूषितत्वेऽपि क्षमास्पदत्वेन पृथिव्यास्पदत्वेन पक्षे क्षान्तिस्थानत्वेन बृहस्पतिं सुरगुरुम्, आढ्यत्वेऽपि संपन्नत्वेऽपि नोत्तरकाष्ठाश्रितो नोदीचीदिशाश्रितो धनिकः कुबेरो यस्य तस्य भावस्तया पक्षे नोत्तरकाष्ठाश्रिता नोत्तमसीमस्थिता धनिका इभ्या यस्य तस्य भावस्तत्ता तया धनदमपि कुबेरमपि अधःकुर्वन् तिरस्कुर्वन् सर्वगुणैर्भद्र इति सर्वगुणभद्रः सुभद्रो नाम अस्तीति शेषः। व्यतिरेकालंकारः। तस्माच्चेति—तेजसः प्रतापस्य धाम स्थानं तस्मात् तस्माच्च सुभद्राच्च चन्द्राच्छशिनश्चन्द्रिकेव ज्योत्स्नेव पद्माकरात्कासारात् पद्मिनीव मृणालिनीव पयःपयोधेः क्षीरसागरात् पङ्कजासनेव लक्ष्मीरिव काचित् कापि अङ्गजा पुत्री समजनि। मालोपमा। सा चेति—इन्दुमुखी चन्द्रवदना सा चाङ्गजा बन्धुजनप्रमोदेन सनाभिजनहर्षेण सार्धम् अभिवृद्धा वृद्धिंगता साम्प्रतं प्रावृडिव वर्षर्तुरिव उद्भिन्नाः प्रकटाः पयोधरा मेघा यस्यां सा पक्षे उद्भिन्नौ प्रकटौ पयोधरौ स्तनौ यस्यास्तथाभूता सरांसि कासारान्, पित्रोर्मातापित्रोर्मनसी कलुषयति मलिनयति युवान एव शिखण्डिनस्तान् युवजनमयूरान् आकर्षयति च। तथा च श्रीहर्षचरिते—'उद्वेगमहावर्ते पातयति पयोधरोन्नमनकाले। सरिदिव तटमनुवर्षं

समझ आस्तिक—श्रद्धालु लोग और 'यह पहाड़ी दुर्ग है' यह समझ कल्याणके अभिलाषी मनुष्य इस नगरकी सेवा करते हैं। उस नगरीमें प्रजाका स्वामी तथा समस्त राजाओंको नीचे गिरानेवाला इन्द्रतुल्य नरपतिदेव नामका राजा है। उस राजशिरोमणिके श्रेष्ठी पदको प्राप्त एक सुभद्र नामका सेठ है। वह सेठ दानशील होनेके कारण यद्यपि कल्पवृक्षके समान है तथापि कल्पवृक्ष संकल्पित पदार्थको देनेवाला है और वह असंकल्पित पदार्थको देनेवाला है इसलिए अपने अकल्पितप्रदायी गुणसे वह कल्पवृक्षको तिरस्कृत करता रहता है। प्रज्ञा—विवेक बुद्धिसे सुशोभित होनेके कारण यद्यपि बृहस्पतिके समान है तथापि बृहस्पति क्षमास्पद नहीं है, स्वर्गास्पद है और सेठ क्षमास्पद—पृथिवीमें रहनेवाला है इसलिए अपने क्षमास्पदत्व गुणसे वह बृहस्पतिको तिरस्कृत करता है और धनाढ्य होनेके कारण यद्यपि कुबेरके समान है तथापि कुबेर उत्तर दिशामें रहनेवाला धनिक है और सेठ दक्षिण दिशामें रहनेवाला धनिक है इसलिए अपनी इस विशेषतासे वह कुबेरको भी तिरस्कृत करता रहता है। जिस प्रकार चन्द्रमासे चाँदनी, कमलाकरसे कमलिनी और क्षीरसागरसे लक्ष्मी उत्पन्न हुई थी उसी प्रकार तेजके स्थानस्वरूप उस सेठसे कोई एक पुत्री उत्पन्न हुई है। वह चन्द्रमुखी कन्या बन्धुजनोंके हर्षके साथ बढ़ती हुई इस समय यौवनवती हुई है सो जिस प्रकार उद्भिन्नपयोधरा—प्रकट हुए मेघोंको धारण करनेवाली पावस ऋतु सरोवरोंको कलुषित-

यति च युवशिखण्डिनः। दैवज्ञास्तु तज्जन्मदिवस एव 'एतज्जिनभवनद्वाराररपुटस्य स्वयं विघटनं निकटगते यस्मिञ्जाघटीति प्रकटितानुभावस्य तस्येयं पाणिगृहीती' इत्यभाणिषुः। अहमपि तस्य विश्रुतमहिम्नो वैश्यपतेश्चक्षुष्यः कोऽपि भुजिष्यः। ततः प्रभृति तन्नियुक्तोऽत्र निवसन्नहं निर्वासितहृच्छल्यं प्रतीक्ष्य जगत्प्रतीक्ष्यं भवन्तं हृदयप्रभवदानन्दप्राग्भारेण प्रणतवान्[1]' इति प्रणिगदन्नेव वणिजां कर्णधारस्य कर्णोत्सवमदःकथया कर्तुं ययौ।

§ १७४. सुभद्रोऽपि भद्रतरनिमित्तोपलम्भः[2] पौनःपुन्येनानुस्मृतकन्यावृत्तान्तः क्वचिदेकान्ते कान्तया समम् 'किं करोति स किंकरेषु भद्रो गुणभद्रो यः कन्यावरपरीक्षणकृते सहस्रकूटजिनालये कृतक्षणोऽभूत्। वामेतरभुजस्फुरणं विवृणोति शुभावाप्तिम्। अपि नाम कदाचिदवश्यं वरं

प्रवर्धमाना सुता पितरम्।' दैवज्ञास्त्विति—दैवज्ञास्तु ज्योतिर्विदस्तु तस्या जन्मदिवस उत्पत्तिवासरस्तस्मिन्नेव 'यस्मिन् निकटगते सति एतज्जिनभवनस्य द्वारं प्रवेशमार्गस्तस्याररपुटस्य कवाटपुटस्य स्वयं स्वतो विघटनं आघटीति यङ्लुङन्तप्रयोगः प्रकटितोऽनुभावो यस्य तस्य प्रकटितमाहात्म्यस्य तस्येयं पाणिगृहीती भार्या भवेदिति शेषः 'पाणिगृहीती भार्यायाः' इति निपातनात्प्रयोगः। इति अभाणिषुः कथयामासुः। अहमपीति—अहमपि तत्र पुरो वर्तमानोऽपि विश्रुतो महिमा यस्य तस्य प्रसिद्धमाहात्म्यस्य तस्य वैश्यपतेः चक्षुष्यः प्रीतिपात्रं कोऽपि भुजिष्यो दासः अस्मीति शेषः। ततः प्रभृतीति—तदारभ्य तेन नियुक्तस्तन्नियुक्तः अत्र निवसन् मन्दिरप्राङ्गणे निवसन् अहं निर्वासितं दूरीकृतं हृच्छल्यं येन तं जगत्प्रतीक्ष्यं जगत्पूज्यं भवन्तं श्रीमन्तं प्रतीक्ष्य दृष्ट्वा हृदये चेतसि प्रभवन् य आनन्दप्राग्भारः समूहस्तेन प्रणतवान् नमश्चकार'। इति प्रणिगदन्नेव कथयन्नेव वणिजां वैश्यानां कर्णधारस्य प्रमुखस्य अमुष्यकथा अदःकथा तया जीवंधरवार्तया कर्णोत्सवं श्रवणोल्लासं कर्तुं ययौ।

§ १७४. सुभद्रोऽपीति—भद्रतराणामतिश्रेष्ठानां निमित्तानां शकुनानामुपलम्भः प्राप्तिर्यस्य तथाभूतः सुभद्रोऽपि तन्नामा राजश्रेष्ठ्यपि पौनःपुन्येन भूयो भूयोऽनुस्मृतोऽनुध्यातः कन्यावृत्तान्तः सुतोदन्तो येन तथाभूतः सन् क्वचित् कुत्रापि एकान्ते कान्तया भार्यया समम् 'यः कन्याया वरस्य धवस्य परीक्षणं तस्य कृते सहस्रकूटजिनालये तन्नामजिनमन्दिरे कृतक्षणो दत्तावसरोऽभूत् किंकरेषु सेवकेषु भद्रः श्रेष्ठः स गुणभद्रः किं करोति विदधाति? वामेतरस्य दक्षिणस्य भुजस्य स्फुरणं स्पन्दनं शुभावाप्तिं विवृणोति प्रकटयति।

कर देती है और मयूरोंको आकर्षित करती है उसी प्रकार उद्भिन्नपयोधरा—प्रकट हुए स्तनोंको धारण करनेवाली वह कन्या माता-पिताके मनोंको कलुषित कर रही है और तरुण पुरुषरूपी मयूरोंको आकर्षित करती है। परन्तु ज्योतिषियोंने उसके जन्मदिवसमें ही कहा था कि जिसके निकट आनेपर इस जिनालयके द्वारके किवाड़ स्वयं खुल जावेंगे प्रकट प्रभावके धारक उसी पुरुषकी यह कन्या होगी। मैं भी प्रसिद्ध महिमाको धारण करनेवाले उस सेठका प्रीतिपात्र एक सेवक हूँ। उसी समयसे लेकर उनके द्वारा नियुक्त हो यहाँ रहता हूँ। आज हृदयकी शल्यको दूर करनेवाले एवं जगतके द्वारा पूज्य आपको देखकर मैं हृदयमें उत्पन्न होनेवाले आनन्दके भारसे नम्रीभूत हुआ हूँ। यह कहता हुआ ही वह इस कथासे सेठके कानोंका उत्सव करनेके लिए चला गया।

§ १७४. उधर सुभद्र सेठ भी उत्तमोत्तम निमित्तके मिलनेसे बार-बार कन्याके अन्तःपुरका स्मरण करता हुआ किसी एक स्थानपर अपनी स्त्रीके साथ विचार कर रहा था कि किंकरोंमें श्रेष्ठ वह गुणभद्र जो कि कन्याके वरकी परीक्षा करनेके लिए सहस्रकूट जिनालयमें नियुक्त किया गया था क्या कर रहा है? दाहिनी भुजाका फड़कना शुभ प्राप्तिकी सूचना

१. क० ख० ग० नतवान्। २. म० भद्रतरनिमित्तोपलम्भं।

पश्येत्' इति पारवश्यं कर्कशं[1] वितर्कयन्नतर्किताागतिना गुणभद्रेण पवित्रकुमारस्य त्रिजगत्स्वामिजिन-भवनाभ्यर्णागमनमाकर्ण्यार्णव इवेन्दोरमन्दसंभ्रमः श्रवणयोस्तद्वचःश्रवणं चरणयोः प्रयाणत्वरां नय-नयोरानन्दाश्रुधारां च कुर्वाणः पाणिद्वयार्पितद्रविणराशिना गुणभद्रं दारिकावरवार्तया दारान्सस्नेह-निरीक्षणेन सनाभींश्च संभावयन्नहंपूर्विकासमेतमितेतरान्तिकचरः कुमारान्तिकमभ्यगमत्, अपश्यच्च भक्तिपरतन्त्रं श्रीजिनेन्द्रसपर्यापर्युत्सुकं विजयावत्सं जैनजनवत्सलः स धर्मवात्सल्यावर्जितप्रीतिर्वैश्य-पतिः। अचिन्तयच्चायम् 'अतिप्रगल्भमधुरदृष्टिविक्षेपलीलादर्शिताकाण्डपुण्डरीकवनविकासविभ्रमं

अपि नाम संभावनायां कदाचित् जातुचिद् अवश्यं वरं कन्यावल्लभं पश्येत्' इतीत्थं कर्कशं कठिनं पारवश्यं पारतन्त्र्यं वितर्कयन् विचारयन् अतर्किता अविचारिता आगतिर्यस्य तेन गुणभद्रेण सेवकेन पवित्रकुमारस्य जीवंधरस्य त्रिजगत्स्वामिजिनस्य त्रिलोकीपतिजिनेन्द्रस्य भवनं मन्दिरं तस्याभ्यर्णे निकटे आगमनम् आकर्ण्य श्रुत्वा इन्दोश्चन्द्रमसः अर्णव इव सागर इव अमन्दः संभ्रमो यस्य तथाभूतः सन् श्रवणयोः कर्णयोः तस्य गुणभद्रस्य वचांसि वचनानि तेषां श्रवणं समाकर्णनम्, चरणयोः पादयोः प्रयाणत्वरां गमनशीघ्रताम्, नयनयोर्नेत्रयोः आनन्दाश्रुधारां च हर्षाश्रुसन्ततिं च कुर्वाणः पाणिद्वयेन करयुगलेनार्पितो प्रदत्तो यो द्रविण-राशिर्धनराशिस्तेन गुणभद्रं शुभसमाचारदातारं सेवकं दारिकायाः कन्याया वरस्तस्य वार्तया समाचारेण दारान् स्त्रियम्, सस्नेहं यन्निरीक्षणं तेन सप्रीत्यवलोकनेन सनाभींश्च सदोदरांश्च संभावयन् सत्कुर्वन् अहंपूर्विकया समेताः समागतामितेतरा अप्रमिता अन्तिकचरं यस्य सः, कुमारान्तिकं जीवंधराभ्यर्णम् अभ्यगमत् अभिजगाम। अपश्यच्च व्यलोकयच्च जैनजनेषु वत्सलः स्नेहयुक्त इति जैनजनवत्सलः, धर्म-वात्सल्येन धर्मस्नेहेनावर्जिता धृता प्रीतिर्येन तथाभूतो वैश्यपतिः सुभद्रो राजश्रेष्ठी भक्तिपरतन्त्रं भक्तिनिघ्नं श्रीजिनेन्द्रस्य सपर्यायां पूजायां पर्युत्सुकः पर्युत्कण्ठितस्तं विजयावत्सं जीवंधरम्। अचिन्तयच्चायमिति— अयं सुभद्रः अचिन्तयच्च व्यचारयच्च अमुष्य जीवंधरस्य वपुः शरीरं न केवलम् आमुष्यायमाणत्वमेव नडादित्वात् फक्, 'आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति च' इति षष्ठ्या अलुक् अमुष्यापत्यं पुमान् आमुष्यायणस्तस्य भावस्तत्त्वं कुलीनत्वमेव न केवलं मात्रम् आचष्टे कथयति केवलार्कोदयस्थानतामपि केवलज्ञानदिनकरोदयस्थानतामपि अनक्षरं तूर्ष्णीं यथा स्यात्तथा आचष्टे। अथ वपुषो विशेषणान्याह— अतिप्रगल्भेति—अतिप्रगल्भा गम्भीरा मधुरा मनोहारिणी च या दृष्टिस्तस्या विक्षेपस्य प्रसारस्य लीलया शोभया दर्शितः प्रकटितोऽकाण्डपुण्डरीकवनविकासस्याकालिककमलवनविकासस्य विभ्रमः सन्देहो येन

दे रहा है। संभव है कि वह कभी अवश्य ही वरको देखेगा। यह विचार करते समय वह वरकी प्राप्तिविषयक परवशताकी कठोरताका भी चिन्तन करता जाता था। उसी समय अकस्मात् आये हुए गुणभद्र सेवकसे श्रीजीवन्धरकुमारका तीन लोकके नाथ श्रीजिनालयके समीप आना सुनकर चन्द्रमासे समुद्रके समान अत्यधिक संभ्रमको धारण करनेवाला राजा, कानोंमें उसके वचन श्रवण करनेको, पैरोंमें गमनसम्बन्धी शीघ्रताको, और नेत्रोंमें आनन्दके आँसुओंकी धाराको धारण करता हुआ कुमारके समीप चला। उस समय उसने दोनों हाथोंसे प्रदत्त धनकी राशिसे गुणभद्रका, 'पुत्रीका वर आ गया है—इस समाचारसे स्त्रीका और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे बन्धुजनोंका अच्छा सत्कार किया। 'मैं पहले पहुँचू, मैं पहले पहुँचू' इस होड़के कारण अपरिमित सेवक उसके साथ आ मिले। जैनजनवत्सल एवं धर्मवात्सल्य-से प्रीतिको धारण करनेवाले सेठने वहीं पहुँचकर भक्तिसे परतन्त्र और जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजामें उत्सुक जीवन्धरकुमारको देखा। सेठ विचार करने लगा कि जो अत्यन्त प्रगल्भ और मधुर दृष्टिके विक्षेपकी लीलासे असामयिक कमलवनके विकासकी शोभाको दिखला

१. म० पारवश्यकर्कशम्।

वैदग्ध्यलास्यविद्यालुलितभ्रूलतं दन्तकान्तिचन्द्रिकाच्छुरितविद्रुमपाटलरदनच्छदमुन्मृष्टचामीकरमुकुरतुलितकपोलमृजुतुङ्गकोमलदीर्घनासिकं विगाढलक्ष्मीभुजलतावेष्टनमार्गानुकारिकण्ठरेखमंससंसक्तकर्णपाशं शौर्यशिबिरोत्तम्भितस्तम्भसब्रह्मचारिमनोहरांसबाहुलतं कमलाकर्णावतंसकङ्केलिकिसलयसुकुमाररुचिरकरशाखं व्यक्तश्रीलक्ष्मविकटवक्षःकवाटममृतसरिदावर्तसनाभिनाभिमण्डलं नखदिनमणिनिष्यन्दिकिरणविकासिचरणतामरसद्वन्द्वं कन्दमिवानन्दस्य प्ररोहमिवोत्सवस्य पल्लवमिवोल्लासस्य कुसुममिव मङ्गलस्य फलमिव मनोरथस्य न्यक्कृतकाञ्चननगालोकमतिलोकं वपुरमुष्य तावदामुष्यायणत्वमेव न केवलं केवलार्कोदयस्थानतामप्यनक्षरमाचष्टे' इति ।

तत्, वैदग्ध्येति—वैदग्ध्यस्य चातुर्यस्य या लास्यविद्या नृत्यविद्या तया ललिते मनोहरे भ्रूलते भ्रुकुटिवल्लर्यौ यस्मिंस्तत्, दन्तेति—दन्तकान्तिरेव दशनदीप्तिरेव चन्द्रिका कौमुदी तया विच्छुरितो व्याप्तो विद्रुमपाटलः प्रवालश्वेतरक्तवर्णो रदनच्छद ओष्ठो यस्मिंस्तत्, उन्मृष्टेति—उन्मृष्टौ स्वच्छीकृतौ यौ चामीकरमुकुरौ सुवर्णदर्पणौ ताभ्यां तुलितौ कपोलौ यस्मिन् तत्, ऋज्विति—ऋज्वी सरला, तुङ्गा समुन्नता, कोमला मृदुला, दीर्घायता च नासिका घ्राणं यस्मिन् तत्, विगाढेति—विगाढं निविडं यत् लक्ष्मीभुजलतायाः श्रीबाहुवल्लर्या वेष्टनं समालिङ्गनं तस्य मार्गस्यानुकारिण्यः सदृश्यः कण्ठरेखा ग्रीवारेखा यस्मिन् तत्, अंसेति—अंससंसक्तौ स्कन्धालग्नौ कर्णपाशौ यस्मिन् तत्, शौर्येति—शौर्यशिबिरस्य पराक्रमस्कन्धावारस्योत्तम्भिता उत्थापिता ये स्तम्भास्तेषां सब्रह्मचारिण्यौ सदृश्यौ मनोहरांसे सुन्दरस्कन्धे बाहुलते यस्मिन् तत्, कमलेति—कमलाया लक्ष्म्याः कर्णावतंसौ कर्णाभरणभूतौ यौ कङ्केलिकिसलयावशोकपल्लवौ तद्वत्सुकुमारा मृदुला रुचिराश्च मनोहराश्च करशाखा हस्ताङ्गुलयो यस्मिन् तत् । व्यक्तेति—व्यक्तं प्रकटितं श्रिया लक्ष्म्या चिह्नं यस्मिन् तथाभूतो विकटो विशालो वक्षःकवाटो यस्मिन् तत्, अमृतेति—अमृतसरितः सुधास्रवन्त्या आवर्तो भ्रमस्तस्य सनाभि सदृशं नाभिमण्डलं तुन्दाङ्कुरो यस्मिन् तत्, नखेति—नखा एव दिनमणयः सूर्यास्तेभ्यो निष्यन्दिनो ये किरणा मयूखास्तैर्विकासि प्रोत्फुल्लं चरणतामरसद्वन्द्वं पादपद्मयुगलं यस्मिन् तत्, आनन्दस्य प्रमोदस्य कन्दकमिव, उत्सवस्योद्भवस्य प्ररोहमिवाङ्कुरमिव, उल्लासस्य पल्लवमिव किसलयमिव, मङ्गलस्य कुसुममिव, मनोरथस्य फलमिव न्यक्कृत् नाचैर्मवन् काञ्चननगस्य स्वर्णाद्रेरालोको येन तत्, लोकमतिक्रान्तमतिलोकं लोकश्रेष्ठम् ।

रहा है, जिसकी भ्रकुटीरूपी लता चातुर्यकी नृत्यविद्यासे सुन्दर है, जिसके मूँगाके समान श्वेत रक्त ओष्ठ दाँतोंकी कान्तिरूपी चाँदनीसे व्याप्त हैं, जिसके कपोल साफ किये हुए स्वर्ण निर्मित दर्पणके समान हैं, जो सीधी, ऊँची, कोमल एवं लम्बी नाकसे सहित है, जिसके कण्ठकी रेखाएँ आलिंगनको प्राप्त लक्ष्मीके भुजलताके लिपटनेके मार्गका अनुकरण कर रही हैं, जिसके कर्णपाश कन्धोंसे सटे हुए हैं, जिसकी मनोहर कन्धोंसे युक्त भुजलताएँ पराक्रमका शिविर लगानेके लिए खड़े किये हुए खम्भोंके समान हैं, जिसकी सुन्दर अँगुलियाँ लक्ष्मीके कर्णाभरणस्वरूप अशोकके पल्लवोंके समान सुकुमार हैं, जिसका विशाल वक्षःस्थलरूपी किवाड़ प्रकट हुए लक्ष्मीके चिह्नके सहित है, जिसका नाभिमण्डल अमृतकी नदीके भँवरके समान जान पड़ता है, जिसके चरणरूपी कमलोंका युगल नखरूपी सूर्यसे निकलनेवाली किरणोंसे विकसित है, जो मानो आनन्दका कन्द है, उत्सवका अंकुर है, उल्लासका पल्लव है, मंगलका फूल है, मनोरथका फल है, जिसने सुमेरुके प्रकाशको तिरस्कृत कर दिया है, तथा जो लोकको अतिक्रान्त करनेवाला है ऐसा इनका शरीर न केवल इस लोकसम्बन्धी गौरवको प्रकट कर रहा है किन्तु केवलज्ञानरूपी सूर्यके उदयकी स्थानताको भी चुपचाप कह रहा है ।

§ १७५. ततश्च नातिचिराद्विरचितपरमेश्वरापचितिमवलोक्य तं कुमारमुचितोपचारैराराध्य पुनरारादवर्तिनः कस्यचिदकठोरकङ्केल्लितरोरतुच्छच्छायायां मौक्तिकजालवालुकमनोज्ञे हृदयज्ञान्तिकचरसत्वरसमीकृते स्थले[1] कुमारमन्वासीनः कुबेरदेश्यो वैश्यपतिर्वात्सल्यौत्सुक्यकौशलशंसिकुशलपरिप्रश्नादिना मुदितहृदये विदितवृत्तान्ते च भवति विजयानन्दने नखंपचपांसूत्करदुःसहाध्वन्याध्वश्रमाश्रितविश्वजनपदपथिकनिबिडितपादपमूले क्वथितसलिलसरःपराचीनतृष्यत्पतत्रिणि मृगतृष्णिकाकुलितमृगकुले ललाटंतपे भवत्यम्बरमणौ कुरुकुलशिखामणये गुरुतरनिजमुखप्रसादकण्ठोक्तां

§ १७५. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च, नातिचिरात् नातिविलम्बेन विरचिता कृता परमेश्वरस्यापचितिः पूजा येन तथाभूतं तं कुमारं जीवंधरम् अवलोक्य दृष्ट्वा उचितोपचारैर्योग्योपचारैः आराध्य संसेव्य पुनः आराद्वर्तिनो निकटस्थितस्य कस्यचित् कस्यापि अकठोरकङ्केल्लितरोः कोमलाशोकपादपस्य अतुच्छच्छायायां विशालानातपे 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः। वालुकानां समूहो वालुकं मौक्तिकजालस्य मुक्तासमूहस्य वालुकं तेन मनोज्ञे मनोहरे हृदयज्ञश्चासावन्तिकचरश्चेति हृदयज्ञान्तिकचरो हृदयाभिप्रायज्ञसेवकस्तेन सत्वरं सशैघ्र्यं समीकृते स्थले स्थाने कुमारमनु कुमारानन्तरम् आसीन उपविष्टः कुबेरदेश्यो धनपतिकल्पो वैश्यपतिः सुभद्रः श्रेष्ठी वात्सल्यं सस्नेहत्वम् औत्सुक्यमौत्कण्ठ्यं कौशलं चातुर्यं च शंसति सूचयति तथा शीलः यः कुशलपरिप्रश्नः कुशलायोगः स आदौ यस्य तेन विजयानन्दने जीवंधरे मुदितं हृदयं यस्य तथाभूते प्रसन्नचेतसि, विदितो वृत्तान्तो येन तथाभूते विज्ञातसमाचारे च भवति, नखम्पचेति-- नखं पचतीति नखम्पचस्तथाभूतो यः पांसूत्करो धूलिसमूहस्तेन दुःसहोऽध्वा मार्गो येन तस्मिन्, आध्वश्रमेति---आध्वश्रमेण मार्गसम्बन्धिखेदेन आश्रिताः समीपमागता ये विश्वजनपदपथिका निखिलदेशाध्वगास्तैर्निबिडितं सान्द्रं पादपमूलं वृक्षमूलं येन तस्मिन्, क्वथितेति---क्वथितं पच्यमानं सलिलं यस्य तथाभूतं यत्सरः कासारस्तस्मात्पराचीनाः पराङ्मुखा पतत्रिणः पक्षिणो येन तस्मिन्, मृगतृष्णिकेति---मृगतृष्णिकया मृगमरीचिकयाकुलितं व्यग्रं मृगकुलं हरिणसमूहो येन तस्मिन्, तथाभूतेऽम्बरमणौ सूर्ये ललाटंतपे भालतपने सति, कुरुकुलशिखामणये कुरुवंशप्रधानाय जीवंधराय गुरुतरो विपुलतरो यो निजमुखस्य स्वकीयवदनस्य प्रसादस्तेन कण्ठोक्तां स्पष्टमुक्तां निजोत्कण्ठां स्वोत्सुकतां पुनरुक्तामिव पुनरुदीरितामिव

§ १७५. तदनन्तर कुछ समय बाद जिन्होंने परमेश्वरकी पूजा पूर्ण की थी ऐसे जीवन्धर कुमारको देखकर सुभद्र सेठने योग्य उपचारोंसे उनकी सेवा की। तत्पश्चात् वह समीपमें स्थित किसी सुकोमल अशोक वृक्षकी विशाल छायामें मोतियोंकी बालूसे मनोहर एवं हृदयको जाननेवाले सेवकके द्वारा शीघ्र ही समतल किये हुए स्थलमें कुमारके साथ बैठा। तदनन्तर वात्सल्य, औत्सुक्य और कौशलको सूचित करनेवाले कुशल-प्रश्न आदिसे जब जीवन्धर कुमार प्रसन्नचित्त एवं सब समाचारोंके ज्ञाता हो गये तब, जिस समय नखोंको पकानेवाली धूलिके समूहसे मार्ग दुःसह हो गया था, मार्ग सम्बन्धी थकावटसे आगत समस्त देशोंके पथिकोंसे वृक्षोंके मूल तल व्याप्त हो रहे थे, खौलते हुए जलसे युक्त सरोवरोंसे जब प्यासे पक्षी वापिस जा रहे थे, और मृगमरीचिकाके कारण जब मृगोंके झुण्ड व्याकुल हो रहे थे ऐसे मध्याह्नके समय सूर्यके ललाटंतप होनेपर कुरुवंशके शिखामणि स्वरूप जीवन्धरकुमारके लिए उसने अपनी उत्कण्ठा प्रकट करना शुरू की। उस समय सेठकी वह उत्कण्ठा उसके मुखकी बहुत भारी प्रसन्नतासे स्वयमेव प्रकट हो रही थी इसलिए उसकी वह चेष्टा

१. म० समीकृतस्थले।

निजोत्कण्ठां पुनरुक्तामिव[1] विवव्रे--'कुमार, मयि ते प्रेमकारणमपरमास्ताम् । आस्तिकचूडामणे, तावदनिषेध्यमेवेदं स्वयूथ्यत्वम् । अतस्त्वया मे प्रार्थनावैमुख्येन न सख्यं विहन्तव्यम् । अनुमन्तव्यमेवास्मदावसथे दिवसोचितविधिं विधातुम्' इति । सोऽप्यसुप्रणयिनामप्यर्थितामसमर्थो भवन्विहन्तुमत्याहितवृत्तः सात्यंधरिः 'अस्त्वेवम्' इत्यन्वमंस्त ।

§ १७६. ततश्च सर्वगुणभद्रः पवित्रकुमारोऽयं गुणभद्रप्रसारितं पाणिं पाणौ कुर्वन्सर्वंसहायाः सहेलमुत्थाय कायरोचिःप्रतिहतसहस्ररोचिः सहस्रकूटजिनालयं सहस्रशः परीत्य प्रणिपत्य च पुनरप्यतृप्त एव तन्निकटात्सुभद्रनिरोधाद्धटद्धाटककूटकोटिपिनद्धध्वजपटपाणिपल्लवेन क्षेमश्रीवल्लभ-

विवव्रे कथयामास--'कुमार ! मयि विषयार्थे सप्तमी ते तव अपरमन्यत् प्रेमकारणम् प्रीतिनिमित्तम् आस्ताम् दूरे वर्तताम् । अस्तीति मतिर्येषां त आस्तिकास्तेषां चूडामणिः शिरोमणिस्तत्सम्बुद्धौ हे आस्तिकचूडामणे ! इदं वर्तमानं स्वयूथ्यत्वं स्वस्य यूथे समाजे भवः स्वयूथ्यस्तस्य भावस्तत्त्वम् स्वसामाजिकत्वं तावत्साकल्येन अनिषेध्यमेव निषेद्धुमनर्हमेव । अतो हेतोस्त्वया मे प्रार्थनाया वैमुख्यं तेन प्रार्थनानङ्गीकारेण सख्यं मैत्री न निहन्तव्यं न खण्डनीया । अस्मदावसथे मद्भवने दिवसोचितविधिं दिनोचितभोजनादिव्यापारं विधातुं कर्तुम् अनुमन्तव्यमेव स्वीकरणीयमेव' । इति । सोऽपीति---अत्याहितं वृत्तं यस्य तथाभूतः पूर्णवृत्तः स पूर्वोक्तः सात्यंधरिरपि जीवंधरोऽपि असुप्रणयिनामपि प्राणार्थिनामपि अर्थितां याच्ञां विहन्तुं खण्डयितुम् असमर्थो भवन् 'एवं भवदुक्तम् अस्तु' इति अन्वमंस्त स्वीचकार ।

§ १७६. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च सर्वैर्गुणैर्भद्र इति सर्वगुणभद्रो निखिलगुणश्रेष्ठः अयं पवित्रकुमारो जीवंधरो गुणभद्रेण सुभद्रसेठकेन प्रसारितं पाणिं करं पाणौ करे कुर्वन् सर्वंसहायाः पृथिव्याः सहेलं सक्रीडम् उत्थाय कायस्य शरीरस्य रोचिर्भिः किरणैः प्रतिहतं सहस्ररोचिः सूर्यो येन तथाभूतः सन् सहस्रकूटजिनालयं तन्नामजिनायतनं सहस्रशोऽनेकशः परीत्य परिक्रम्य प्रणिपत्य च नमस्कृत्य च पुनरपि भूयोऽपि अतृप्त एवासंतुष्ट एव तन्निकटात्सहस्रकूटजिनालयाभ्यर्णात् सुभद्रनिरोधात् श्रेष्ठीहठात् अतिभद्रश्चासौ सुभद्रश्चेत्यतिभद्रसुभद्रस्तस्य सदनस्य गृहस्योद्देशः स्थानं वेशपुरन्ध्रीणां वारवनितानां नेत्रव्रजेन नयननिकुरम्बेण विरचिता निर्मिता या विविधतोरणस्रजो नानातोरणमालाः समतीत्य समुल्लङ्घ्य समासदत् प्राप । अथ सुभद्रसदनोद्देशं विशेषयितुमाह--हटद्धाटकेति--हटन्ति देदीप्यमानानि यानि हाटककूटानि

पुनरुक्तके समान जान पड़ती थी। सेठने कहा कि हे कुमार ! मुझपर आपके प्रेमका दूसरा कारण रहे यह ठीक है परन्तु हे आस्तिकशिरोमणे ! आप हमारे सहधर्मा भाई हैं इसका निषेध तो नहीं किया जा सकता। अतः मेरी प्रार्थनाको ठुकराकर आपको मित्रताका विघात नहीं करना चाहिए। हमारे घर दिनके योग्य विधि—भोजनादि कार्य करनेकी स्वीकृति देना चाहिए। सदाचारको धारण करनेवाले जीवन्धरकुमार प्राणोंकी याचना करनेवालोंकी भी याचनाको खण्डित करनेमें समर्थ नहीं थे फिर सेठकी उक्त प्रार्थनाको खण्डित करना तो दूर रहा अतः उन्होंने 'एवमस्तु' कह उसकी प्रार्थना स्वीकृत कर ली।

§ १७६. गुणोंसे श्रेष्ठ जीवन्धरकुमार, गुणभद्र सेठके द्वारा फैलाये हुए हाथको अपने हाथमें ले पृथिवीसे अनायास ही उठ खड़े हुए। उस समय वे अपने शरीरकी कान्तिसे सूर्यको तिरस्कृत कर रहे थे। उठकर उन्होंने सहस्रकूट जिनालयकी अनेक प्रदक्षिणाएँ दीं, श्री जिनेन्द्रदेवको बार-बार प्रणाम किया और तदनन्तर अतृप्त दशामें ही सुभद्रसेठके आग्रहवश जिनालयके पाससे चल दिये। तत्पश्चात् वेश्याओंके नेत्र समूहसे विरचित नाना प्रकारकी तोरणमालाओंका उल्लंघन कर वे मंगलमय सुभद्र सेठके घरके उस स्थानपर जा पहुँचे

१. क० ख० ग० 'इव' नास्ति।

मिवामन्त्रयमाणं सान्द्रचन्द्रातपातिशायिचन्द्रशालानिर्लिप्तनिरतिशयरत्नविसरविसर्पिकिरणप्रकरेणेव प्रतिगृह्णन्तं प्रसभोपसर्पदतिघोरपौरपदप्रचारप्रभवस्तनितानुकारिरणितश्रवणारब्धताण्डवगृहशिखण्डिवृन्देन स्वयमप्यमन्दादरादानन्दनृत्तमिवारचयन्तमत्यादरधात्रीमुखाकर्णितसुभद्रसुताभर्तृसान्निध्याम्रेडितहर्षक्रीडाकीरविरावमिषेणाशिषमिव प्रयुञ्जानम्, पुञ्जमिव संपदः, पूर्तिमिव शोभायाः, मूर्तिमिव कोलाहलस्य, अतिभद्रसुभद्रसदनोद्देशं निरवकाशितजननिवेशं वेशपुरंध्रीनेत्रव्रजविरचितविविधतोरणस्रजः समतीत्य समासदत् ।

§ १७७. तत्र च सुभद्रसुतासौभाग्यगृहोत्तम्भितस्तम्भसदृशोरुस्तम्भशोभोपलम्भलम्पटता-

---

स्वर्णशिखराणि तेषां कोटिष्वग्रभागेषु पिनद्धः संलग्नो यो ध्वजपटो वैजयन्तीवस्त्रं स एव पाणिपल्लवः करकिसलयस्तेन क्षेमश्रीवल्लभं क्षेमश्रीपतिम् आमन्त्रयमाणमिव समाह्वयन्तमिव, सान्द्रेति—चन्द्रशालायामुपरितनप्रदेशे निर्लिप्तानि खचितानि यानि निरतिशयरत्नानि निरुपममणयस्तेषां विसरस्य समूहस्य विसर्पिणः प्रसरणशीलाः ये किरणास्तेषां प्रकरः समूहः, सान्द्रचन्द्रातपाशायी सघनज्योत्स्नापराभवी यश्चन्द्रशालानिर्लिप्तनिरतिशयरत्नविसरविसर्पिकिरणप्रकरस्तेन प्रतिगृह्णन्तम् अग्रे गत्वा स्वीकुर्वन्तमिव, प्रसभं हठादुपसर्पन्तः समीपमागच्छन्तो येऽतिघोरपौरा अत्यधिकपुरवासिपुरुषास्तेषां पदानां चरणानां प्रचारेण प्रभवं समुत्पन्नं यत् स्तनितानुकारि मेघगर्जितानुकारि रणितमव्यक्तशब्दविशेषस्तस्य श्रवणेनारब्धताण्डवं यद् गृहशिखण्डिवृन्दं गृहमयूरनिकुरम्बं तेन स्वयमपि अमन्दादरात्प्रचुरगौरवात् आनन्दनृत्तम् आरचयन्तमिव, अत्यादरेति–अत्यादराः प्रचुरादरयुक्ता या धात्र्य उपमातरस्तासां मुखेन वक्त्रेण आकर्णितं श्रुतं यत् सुभद्रसुताभर्तुः क्षेमश्रीवल्लभस्य सान्निध्यं सामीप्यं तेनाम्रेडितो द्विगुणितो हर्षो येषां तथाभूता ये क्रीडाकीराः केलिशुकास्तेषां विरावमिषेण शब्दव्याजेन आशिषं प्रयुञ्जानमिव शुभाशीर्वादं ददतमिव, संपदः पुञ्जमिव समूहमिव, शोभायाः पूर्तिमिव, कोलाहलस्य मूर्तिमिव, निरवकाशितोऽवकाशशून्यीकृतो जननिवेशो जनस्थानभूमिर्यस्मिंस्तम् ।

§ १७७. तत्र चेति—तत्र च सुभद्रसदनोद्देशे सुभद्रसुतायाः क्षेमश्रियाः सौभाग्यमेव गृहं तस्योत्तम्भिताः उत्थापिता ये स्तम्भास्तेषां सदृशाः समाना ये ऊरुस्तम्भाः सक्थिस्तम्भास्तेषां शोभायाः सौन्दर्य-

---

कि जो देदीप्यमान स्वर्णके शिखरोंपर लगी पताकाओंके वस्त्ररूपी हस्तपल्लवसे क्षेमश्रीके पतिको बुलाता हुआ-सा जान पड़ता था। सघन चाँदनीको अतिक्रान्त करनेवाली चन्द्रशाला–उपरितन भागमें खचित श्रेष्ठतम रत्नसमूहको फैलनेवाली किरणोंके समूहसे जो अगवानी करता हुआ-सा प्रतीत होता था। जबर्दस्ती पासमें आनेवाले अनेक नागरिकोंकी पदध्वनि रूप मेघ गर्जनाके सुननेसे ताण्डव नृत्यको प्रारम्भ करनेवाले गृहमयूरोंके समूहसे जो स्वयं भी बहुत भारी आदरके साथ आनन्द नृत्यको रचता हुआ-सा जान पड़ता था। अत्यन्त आदरसे युक्त धायोंके मुखसे सुने हुए जीवन्धरकुमारके सांनिध्यसे द्विगुणित हर्षको धारण करनेवाले क्रीडाशुकोंके शब्दोंके बहाने जो मानो आशीर्वाद ही दे रहा था। जो मानो सम्पत्तिका पुंज था, शोभाकी पूर्ति था, कोलाहलकी मूर्ति था, और जहाँ मनुष्योंके बैठनेके स्थानमें अवकाश समाप्त हो गया था।

§ १७७. वहाँ सुभद्रसुताके सौभाग्य गृहके लिए खड़े किये हुए खम्भोंके सदृश जाँघ

---

१. म० पौरपदप्रचुरस्तनित। २. क० ग० अत्यादराद् धात्रीमुख। ३. क० ग० अतिभद्रः।

प्राप्तैरिव रम्भास्तम्भनिकरैर्नीरन्ध्रिताः पुरंध्रीव्रातविधीयमानविविधालंकृतीरहंपूर्विकागच्छद्विश्रुतविश्ववैश्यदृश्यमानप्रवेशावसरा नैकद्वारभुवः क्रान्त्वा कुमारः क्वचिदन्तर्गृहं करगृहीतजाम्बूनदताम्बूलकरण्डादर्शकलापिकेलिकीरसारिकाप्रमुखाणाम्,संमुखागतं क्षेमश्रीवल्लभमत्यादरादन्योन्यमङ्गुलीनिर्देशेन दर्शयन्तीनां प्रियसखीनां मध्ये स्थितां क्षेमश्रियं श्रियमिव साक्षाल्लक्षयन्, तदक्षिशरलक्षीकरणादक्षमया च तया सविभ्रमाकुञ्चितचारुभ्रूलताचापनिर्गतेन हृदयभेदनपेशलनिशित[3]नेत्रपत्रिणा विद्धो भवन्, हृदयलग्नभल्लशल्य इवायल्लकभरास्पदीभूतः पदमपि गन्तुमपारयन्नपारत-

स्योपलम्भः प्राप्तिस्तस्य लम्पटतया प्राप्तास्तैरिव रम्भास्तम्भनिकरैर्मोचास्तम्भसमूहैः नीरन्ध्रिता निश्छिद्रिताः, पुरन्ध्रीव्रातेन स्त्रीसमूहेन विधीयमानाः क्रियमाणा विविधालंकृतयो यासु ताः अहंपूर्विकया आगच्छन्तो विश्रुताः प्रसिद्धा ये विश्ववैश्या निखिलोरव्यास्तैर्दृश्यमानः प्रतीक्ष्यमाणः प्रवेशावसरो यासु ताः नैकद्वारभुवो नानाप्रवेशमार्गभूमीः क्रान्त्वा समुल्लङ्घ्य कुमारो जीवकः क्वचित् कुत्रापि गृहस्य मध्य इत्यन्तर्गृहम् गृहमध्ये जाम्बूनदताम्बूलकरण्डश्च स्वर्णनिर्मितताम्बूलवीटिकाधानं च, आदर्शश्च दर्पणश्च, कलापी च मयूरश्च, केलिकीरश्च क्रीडाशुकश्च, सारिका मदनिका चेति द्वन्द्वः ते प्रमुखा येषां ते जाम्बूनदताम्बूलकरण्डादयः करैर्गृहीता जाम्बूनदताम्बूलकरण्डादयो याभिस्तासाम्, संमुखागतं क्षेमश्रीवल्लभम्, अत्यादरात् भूयिष्ठगौरवात् अङ्गुलीनिर्देशेन करशाखासङ्केतेन अन्योऽन्यं परस्परं दर्शयन्तीनां प्रियसखीनां प्रियसहचरीणां मध्ये स्थितां विद्यमानां क्षेमश्रियं साक्षात् श्रियमिव लक्ष्मीमिव लक्षयन् पश्यन् तस्य जीवंधरस्याक्षिशरेण नेत्रबाणेन लक्ष्यीकरणात् शरव्यकरणात् अक्षमया असमर्थया च तया क्षेमश्रिया सविभ्रमं यथा स्यात्तथा आकुञ्चितो वक्रीकृतश्चारुभ्रूलतैव चापस्तस्मान्निर्गतेन हृदयस्य चित्तस्य भेदने विदारणे पेशलो दक्षो निशितस्तीक्ष्णो यो नेत्रपत्री नयनबाणस्तेन विद्धो विदीर्णो भवन् हृदये लग्नं खचितं भल्लशल्यं कुन्ताग्रशङ्कुर्यस्य तथाभूत इव आयल्लकभरस्य कष्टातिशयस्यास्पदीभूतः स्थानीभूतः पदमपि गन्तुमपारयन् अशक्नुवन्

रूपी खम्भोंकी शोभाको प्राप्त करनेके लोभसे आगत केलेके खम्भोंके समूहसे जो व्याप्त थीं, सौभाग्यवती स्त्रियोंके द्वारा जहाँ नाना प्रकारकी सजावट की जा रही थी और 'हम पहले प्रवेश पा लें' इस भावनासे आते हुए समस्त प्रसिद्ध वैश्यों-द्वारा जिनमें प्रवेशके योग्य अवसरकी प्रतीक्षा की जा रही थी ऐसे अनेक द्वारोंकी भूमिको उल्लंघनकर जीवन्धरकुमारने कहीं घरके भीतर प्रियसखियोंके मध्यमें स्थित साक्षात् लक्ष्मीके समान जान पड़नेवाली क्षेमश्रीको देखा। उस समय क्षेमश्रीकी सखियाँ अपने हाथोंमें स्वर्णनिर्मित पानकी डिबिया, दर्पण, मयूर, क्रीड़ा शुक तथा मैना आदिको लिये हुई थीं और सामने आये हुए क्षेमश्रीके पतिको बहुत भारी आदरसे परस्पर अंगुलियोंके संकेतसे दिखला रही थीं। जीवन्धरकुमारके नेत्ररूपी बाणका निशाना बननेसे क्षेमश्री भी क्षमा खो बैठी इसलिए उसने भी विलासपूर्वक टेढ़ी की हुई सुन्दर भ्रकुटीलतारूपी धनुषसे निकले एवं हृदयके भेदन करनेमें समर्थ तीक्ष्ण नेत्ररूपी बाणसे जीवन्धरकुमारको घायल कर दिया जिससे वे हृदयमें लगी भालेकी शल्यसे युक्त हुएके समान अतिशय कष्टके स्थान बन गये और एक डग भी चलनेके लिए समर्थ नहीं हो सके। अन्तमें उस व्यथाको दूर करनेके लिए

---

१. क० ख० ग० 'दृश्य' पदं नास्ति। २. ख० ताम्बूलकरङ्गादर्शकलाञ्चि, ग० कराञ्चि, क० कालाञ्चि (तीर्थमात्रम्)। ३. म० पेशलशितनेत्रपत्रिणा।

द्व्यथानिर्वृतये निर्वृतिपुत्रिकां तां धात्रीतलदुर्लभसंविधानविधात्रा सुभद्रेण भद्रतरलग्ने यथाविधि विश्राणितां पर्यणयत् ।

§ १७८. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ क्षेमश्रीलम्भो नाम षष्ठो लम्भः

■

अपारा चासौ तद्व्यथा चेत्यपारव्यथा निःसीमपीडा तस्य निर्वृतये दूरीकरणाय निर्वृतिः एतन्नाममातुः पुत्रिका तां तां क्षेमश्रियम् धात्रीतले पृथिवीतले दुर्लभं दुष्प्राप्यं यत् संविधानं समुत्सवयोजना तस्य विधात्रा कर्त्रा सुभद्रेण श्रेष्ठिना भद्रतरलग्नेऽतिश्रेष्ठकाले यथाविधि विधिमनतिक्रम्य विश्राणितां प्रदत्तां पर्यणयत् उदवोढ ।

§ १७८. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ क्षेमश्रीलम्भो नाम षष्ठो लम्भः ।

■

उन्होंने पृथिवी तलपर दुर्लभ सामग्रीके जुटानेवाले सुभद्र सेठके द्वारा उत्तम लग्नमें दी हुई निर्वृति नामक सेठानीकी पुत्री क्षेमश्रीको विधिपूर्वक विवाहा।

§ १७८. इसप्रकार श्रीमद्वादीभसिंह सूरिके द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें क्षेमश्री लम्भ नामका (क्षेमश्रीकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला) छठवाँ लम्भ समाप्त हुआ ॥६॥

■

सप्तमो लम्भः

§ १७९. अथ तां पृथुनितम्बामयं प्रथमविवाह इव प्रथमानप्रीतिः परिणीय[1] परिणमदनिवारणमदनमदवारणवर्धितधृतिरनवधृतरतिव्यतिकरविजृम्भितव्याक्षेपः क्षेमश्रीकान्तश्चिरमेकान्ते कान्ततरकायकान्तिकांदिशीककलाधराम्, रमणे चरणतले च रक्ताम्, प्रियसखीमण्डले जङ्घाकाण्डे च स्निग्धाम्, ऊरुस्तम्भे परिजने चानुकूलस्पर्शनाम्, सौभाग्ये श्रोणीबिम्बे च साभोगाम्, हृदयवृत्तौ रोमराजौ च त्यक्तकौटिल्याम्, मध्ये प्रणयकलहकोपतनूनपाति च तनुतराम्, सनाभौ नाभिमण्डले च मग्नाम्[2], चित्ते कुचयुगलेऽप्युन्नताम्, मनसि बाहुलतायां च मृद्वीम्, वचसि ग्रीवायां च मिताम्,

§ १७९. अथेति—अथानन्तरं पृथुनितम्बां स्थूलनितम्बां क्षेमश्रियं परिणीय विवाह्य प्रथमविवाह इव आद्यविवाह इव प्रथमाना वर्धमाना प्रीतिर्यस्य तथाभूतः, परिणमन् अनिवारणो यो मदनमदवारणः कामकरी तेन वर्धिता धृतिर्यस्य, अनवधृतोऽसीमितो यो रतिव्यतिकरस्तस्मिन् विजृम्भितो व्याक्षेपो यस्य तथाभूतश्च क्षेमश्रीकान्तो जीवंधरश्चिरं दीर्घकालपर्यन्तम् एकान्ते विजने स्थाने कान्ततरा अतिशयेन रमणीया या कायकान्तिर्देहदीप्तिस्तया कांदिशीको भयद्रुतः कलाधरो निशाकरो यया ताम्, रमणे पत्यौ चरणतले च पादतले च रक्तां प्रीतियुक्तां रक्तवर्णां च, प्रियसखीमण्डले प्रियालीवृन्दे जङ्घाकाण्डे प्रसृतायुगे च स्निग्धां स्नेहयुक्तां मसृणवर्णां च ऊरुस्तम्भे सक्थिस्तम्भे परिजने च कुटुम्बिजने च अनुकूलस्पर्शनाम् अनुगुणस्पर्शगुणाम् अनुगुणदानां च, सौभाग्ये पतिप्रेमणि श्रोणीबिम्बे च नितम्बमण्डले च साभोगां सविस्तराम्, हृदयवृत्तौ मनोवृत्तौ रोमराजौ च नाभेरधोवर्तमानां रोमपङ्क्तौ च त्यक्तकौटिल्यां त्यक्तमायां त्यक्तवक्रतां च, सनाभौ सहोदरे नाभिमण्डले च तुन्दिकूपे च मग्नां प्रीत्यासक्तां गभीरां च, चित्ते चेतसि कुचयुगले स्तनद्वन्द्वेऽपि उन्नताम् उदाराम् उत्थितां च, मनसि हृदये बाहुलतायां च भुजवल्ल्यां च मृद्वीम् सदयां

§ १७९. अथानन्तर प्रथम विवाहके समान जिनकी प्रीति प्रसिद्धिको प्राप्त हो रही थी, विवाहके समय परिणमते हुए—तिर्यग्दन्त प्रहार करते हुए अनिवार्य कामरूपी मदमाते हाथीसे जिनका धैर्य बढ़ रहा था, और अनिश्चित रतिक्रियाके कारण जिनका व्याक्षेप—उलझाव निरन्तर बढ़ता रहता था ऐसे क्षेमश्रीके पति जीवन्धरकुमार स्थूल नितम्बोंवाली उस क्षेमश्रीको एकान्तमें चिरकाल तक देखते रहते थे। वह क्षेमश्री पति और चरणतल दोनोंमें रक्त थी—अनुरागसे सहित थी (पक्षमें लाल वर्णसे सहित थी) प्रिय सखियोंके समूह और जङ्घाप्रदेश—दोनोंमें स्निग्ध—स्नेहसे सहित (पक्षमें चिकनी) थी। ऊरुस्तम्भ और परिजन दोनोंमें अनुकूल स्पर्शना—अनुकूल स्पर्शसे सहित (पक्षमें अनुकूल दानसे युक्त) थी। सौभाग्य और नितम्बबिम्ब—दोनोंमें साभोग-विस्तारसे सहित थी। हृदय वृत्ति और रोमराजि दोनोंमें कौटिल्यका त्याग करनेवाली थी। अर्थात् उसकी हृदय-वृत्ति कपटसे रहित और रोमराजि सीधी थी। वह कमर तथा प्रणय कलहसे उत्पन्न क्रोधाग्नि दोनोंमें अत्यन्त कृश थी अर्थात् उसकी कमर अत्यन्त पतली थी और प्रणय कोपाग्नि अत्यन्त सूक्ष्म थी। वह भाई और नाभि-मण्डल—दोनोंमें मग्न—झुकी हुई थी। चित्त और स्तन युगल–दोनोंमें उन्नत थी अर्थात् उसका चित्त उदार था और स्तन युगल ऊँचा उठा हुआ था। मन और भुजलता—दोनोंमें कोमल थी अर्थात् उसका मन अत्यन्त दयालु था और भुजलता अत्यन्त कोमल

१. म० परिणय। २. म० भग्नाम्।

वक्त्रे हृदि च सुवृत्तोद्भासिनीम्, सपत्नीनिचये कचभारे च कालिममयीं क्षेमश्रियं पश्यन्, स्पृष्ट[1]-दृष्टतदीयाखिलाङ्गतया हृष्टतमः 'प्रिये, त्वामेवमनारतभोग्याममर्त्यभोग्याभिरप्सरोभिरुपमेयशोभां कथमुदीरयामि' इत्युपलालयन्नतिगृध्नुरिवालंबुद्धिमनासेदिवानवर्तिष्ट ।

§ १८०. एवमनिर्वृतिसुखया निर्वृतिसुतया सममतिमात्रनिर्वृतिमधिजग्मुषस्तस्य गन्धर्वदत्तापतेर्गत्वरतां ज्ञात्वा प्रियसखीव प्रतिषिद्धप्रयाणा प्रावृडाविरासीत् । तस्मिंश्च स्तबकितकदम्बे कन्दलितकन्दले स्फुटितकुटजषण्डे ताण्डवतरलशिखण्डिनि स्फुरदाखण्डलकोदण्डे खण्डितमही-

कोमलां च, वचसि वचने ग्रीवायां च मिताम् अल्पभाषिणीम् अदीर्घां च, वक्त्रे मुखे हृदि च स्वान्ते च सुवृत्तोद्भासिनीं वर्तुलाकारशोभिनीं सदाचारशोभिनीं च, समानः पतिर्यासां ताः सपत्न्यस्तासां निचयस्तस्मिन् अधिवित्तासमूहे कचभारे केशकलापे च कालिममयीं मात्सर्ययुक्तां कार्ष्ण्यसहितां च, क्षेमश्रियं नववल्लभां पश्यन् विलोकमानः स्पृष्टानि कृतस्पर्शानि दृष्टानि विलोकितानि चाखिलाङ्गानि निखिलावयवा येन तस्य भावस्तया हृष्टतमः अतिशयेन प्रसन्नः सन् 'प्रिये ! हे वल्लभे ! एवमनेन प्रकारेण अनारतं निरन्तरं भोग्यां भोगार्हां त्वाम् मर्त्यैरुपभोग्या भोगार्हास्ताभिः पक्षे अमर्त्या देवास्तैर्भोग्यास्ताभिः अप्सरोभिः देवीभिः उपमेया उपमातुं योग्या शोभा यस्यास्तथाभूता ताम् कथं केन कारणेन उदीरयामि कथयामि' इतीत्थम् उपलालयन् प्रशंसन् अतिगृध्नुरिवात्यासक्त इव अलंबुद्धिं तृप्तभावनाम् अनासेदिवान् अप्राप्तोऽवर्तिष्ट ।

§ १८०. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण अनिर्वृति अतृप्तिमत् सुखं यस्यास्तया निर्वृतिसुतया क्षेमश्रीवल्लभया समं सार्धम् अतिमात्रनिर्वृतिमतिशयसंतोषम् अधिजग्मुषः प्राप्तवतस्तस्य गन्धर्वदत्तापतेर्जीवंधरस्य गत्वरतां गमनशीलताम् ज्ञात्वा प्रियसखीव प्रियसहचरीव, प्रतिषिद्धं विरुद्धं प्रयाणं प्रस्थानं यया तथाभूता प्रावृड् वर्षर्तुः आविरासीत् प्रकटीबभूव । तस्मिंश्च पयोधरसमये जलदकाले परिगमति वृद्धिं प्राप्नुवति सति । अथ पयोधरसमयस्य विशेषणान्याह—स्तबकिताः सगुच्छाः कदम्बा नीपवृक्षा यस्मिंस्तस्मिन्, कन्दलिताः कन्दलयुक्ताः कन्दलाः शष्पविशेषा यस्मिंस्तस्मिन्, स्फुटितो विकसितः

थी। वचन और ग्रीवा—दोनोंमें परिमित थी अर्थात् वह परिमित वचन बोलती थी और उसकी ग्रीवा परिमित थी—छोटी थी। मुख और हृदय—दोनोंमें सुवृत्तोद्भासिनी थी अर्थात् उसका मुख गोलाकारसे सुशोभित और हृदय सदाचारसे शोभायमान था। और सौतोंके समूह तथा केशपाश—दोनोंमें कालिमासे युक्त थी अर्थात् सौतोंके समूहको कालिमासे युक्त करती रहती थी और उसके केशपाश अत्यन्त कालिमासे युक्त थे। क्षेमश्रीके समस्त शरीरको छूने तथा देखनेसे अत्यन्त हर्षित होते हुए जीवन्धरकुमार 'हे प्रिये ! तुम तो इस तरह निरन्तर भोगनेके योग्य हो और अप्सराएँ अमर्त्यभोग्या हैं—मनुष्यके भोगने योग्य नहीं हैं (पक्षमें देवोंके द्वारा भोगने योग्य हैं) इसलिए तुम्हारी शोभा उनके तुल्य है यह कैसे कह दूँ।' इस प्रकार उसकी प्रशंसा करते रहते थे। वे अत्यन्त आसक्तके समान कभी अलंबुद्धिको—बस, अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं है इस भावनाको प्राप्त ही नहीं होते थे।

§ १८०. इस प्रकार अनस्तमित सुखको देनेवाली निर्वृतिसुता—क्षेमश्रीके साथ जब जीवन्धरस्वामी अत्यधिक सुखको प्राप्त हो रहे थे तब वर्षाऋतु प्रकट हो गयी। वह वर्षाऋतु ऐसी जान पड़ती थी मानो जीवन्धरस्वामीकी गतिशीलता—घुमक्कड़ प्रकृतिको जानकर प्रिय सखीके समान उनके प्रयाणको रोकनेके लिए ही प्रकट हुई थी। तदनन्तर जिसमें कदम्बके वृक्ष गुच्छोंसे लदबदा रहे थे, नये-नये अङ्कुर उत्पन्न हो रहे थे, कुटजोंके समूह विकसित हो रहे थे, मयूर ताण्डव नृत्यसे चंचल हो रहे थे, इन्द्रधनुष प्रकट हो रहा था, राजाओंकी

१. क० ग० स्पष्ट।

पाऊदण्डयात्रे त्रासितवातकिनि तडिदालोकनचकितवनौकसि प्रस्थितमानसौकसि तिरस्कृतदिनमणितेजसि स्फूर्जत्सर्जसौरभे भेकरटितवाचाले चलितबकपङ्क्तिदन्तुरवियति[1] वृत्रहगोपचित्रितधरित्रीपृष्ठे निष्ठुरघननिनदविनिद्रकेसरिणि मदमन्थरसिन्धुरे नखम्पचनितम्बिनीस्तनमण्डले प्रोषितप्राणखण्डिनि तरुगह्वरनिभृतपरभृते विरतविभावरीरमणजागरणे कुट्मलिततारकावलोकनकौतुके कूलंकषसलिलपूरसरिति धारान्धकारपूरितहरिति दुर्विभावदिवानिशविभागे पुङ्खितशरकुसुमशरे शीतालुगोधनत्राणायस्तगोमिनि निर्विशङ्कसमालिङ्ग्यमानाङ्गारधानीतनूनपाति परिणमति पयो-

कुटजषण्डो गिरिमल्लिकासमूहो यस्मिंस्तस्मिन्, 'कुटजो गिरिमल्लिका' इत्यमरः ताण्डवेन नाट्यविशेषेण तरलाश्चपलाः शिखण्डिनो मयूरा यस्मिंस्तस्मिन्, स्फुरन् प्रकटीभवत् आखण्डलकोदण्डमिन्द्रधनुर्यस्मिंस्तस्मिन्, खण्डिता निवारिता महीपालानां राज्ञां दण्डयात्रा सेनायात्रा यस्मिंस्तस्मिन्, त्रासिता भीषिता वातकिनो वायुरोगपीडिता यस्मिंस्तस्मिन्, तडितो विद्युत आलोकनेन दर्शनेन चकिता भीता वनौकसो वनवासिनो यस्मिंस्तस्मिन्, प्रस्थिता मानसरोवरं प्रति प्रयाता मानसौकसो हंसा यस्मिंस्तस्मिन्, तिरस्कृतं मेघाच्छादितत्वेन दूरीकृतं दिनमणितेजो यस्मिंस्तस्मिन्, स्फूर्जत् वर्धमानं सर्जानां सालवृक्षाणां सौरभं सौगन्ध्यं यस्मिंस्तस्मिन् 'सालः सर्जतरुः स्मृतः' इत्यमरः, भेकानां मण्डूकानां रटितेन शब्देन वाचाले वाचाटे 'स्याजल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्' इत्यमरः, चलिताभिर्बकपङ्क्तिभिर्मीनभुक्पक्षिपङ्क्तिभिर्दन्तुरं व्याप्तं वियद् व्योम यस्मिंस्तस्मिन्, वृत्रहगोपैरिन्द्रगोपकीटकैश्चित्रितं धरित्रीपृष्ठं महीतलं यस्मिंस्तस्मिन्, निष्ठुरेण कठिनेन घननिनदेन मेघरवेण विनिद्रा विगतनिद्राः केसरिणो मृगेन्द्रा यस्मिंस्तस्मिन्, मदेन दानेन मन्थरा मन्दगामिनः सिन्धुरा हस्तिनो यस्मिंस्तस्मिन्, नखम्पचं समुष्णं नितम्बिनीस्तनमण्डलं कामिनीकुचाभोगो यस्मिंस्तस्मिन्, प्रोषितां कृतप्रवासानां प्राणान् खण्डयतीत्येवंशीलस्तस्मिन्, तरुगह्वरेषु वृक्षविवरेषु निभृता निश्चलाः परभृताः कोकिला यस्मिंस्तस्मिन्, विरतं वारिदावरणावृतत्वाद् विरतं दूरीभूतं विभावरीरमणस्य चन्द्रस्य जागरणं यस्मिंस्तस्मिन्, कुट्मलितं निरुद्धं तारकावलोकनस्य नक्षत्रदर्शनस्य कौतुकं यस्मिंस्तस्मिन्, कूलंकषसलिलपूरास्तटोद्घर्षितोयप्रवाहाः सरितस्तरङ्गिण्यो यस्मिंस्तस्मिन्, धारान्धकारेण संपाततिमिरेण पूरिता हरितो दिशो यस्मिंस्तस्मिन्, दुर्विभावो दुर्विलोक्यो दिवानिशविभागोऽहर्निशविभागो यस्मिंस्तस्मिन्, पुङ्खितशरस्तीक्ष्णबाणः कुसुमशरः कामो यस्मिंस्तस्मिन्, शीतालु शीतयुक्तं यद् गोधनं तस्य त्राणे रक्षणे आयस्ताः खेदयुक्ता गोमिनो गोस्वामिनो यस्मिंस्तस्मिन्, निर्विशङ्कं निर्भयं यथा स्यात्तथा समालिङ्ग्यमानः सेव्यमानोऽङ्गारधानीनामग्न्याधाराणां तनूनपादग्निर्यस्मि-

युद्ध यात्राएँ—शत्रुओंपर चढ़ाइयाँ खण्डित हो गयी थीं, वात रोगसे पीड़ित मनुष्य भयभीत हो रहे थे, बिजलियोंके देखनेसे वनवासी लोग चकित हो रहे थे, हंस प्रस्थान कर चुके थे, सूर्यका तेज तिरस्कृत हो रहा था, सागौनकी सुगन्धि फैल रही थी, जो मेंढकोंकी टर्र-टर्रसे शब्दायमान हो रहा था, जिसमें उड़ते हुए बगलोंकी पंक्तिसे आकाश व्याप्त हो गया था, वीर-बहूटियोंसे पृथिवीतल चित्र-विचित्र हो रहा था, मेघोंकी कठोर गर्जनासे सिंह जाग उठे थे, हाथी मदसे मन्थर हो रहे थे, स्त्रियोंके स्तनमण्डल अपनी उष्णतासे नखोंको गर्म कर रहे थे, जो प्रवासी मनुष्योंके प्राणको खण्डित करनेवाला था, जिसमें कोयलें वृक्षोंकी कोटरोंमें चुपचाप बैठ गयी थीं, चन्द्रमाकी चमक समाप्त हो गयी थी, ताराओंके देखनेका कौतूहल दूर हो गया था, नदियाँ किनारोंको नष्ट करनेवाले जलके पूरोंसे युक्त थीं, दिशाएँ धाराओंके अन्धकारसे परिपूर्ण थीं, दिन-रातका विभाग बड़ी कठिनाईसे समझमें आता था, कामदेव अपने बाणोंको तेज कर रहा था, शीतसे पीड़ित गोधनकी रक्षा करनेके लिए गायोंके स्वामी

१. क० भेकरटितवाचालितबकपंक्तिदन्तुरितवियति।

धरसमये, कुङ्कुमपङ्कपङ्किलपयोधरामन्तरमान्तं वमन्तीमिव रागम्, करालकालमेघकालिम-कालागुरुधूपगर्भगर्भागारगर्भस्थिताम्, चिरप्रभामिवाचिरप्रभाम्, प्रसरन्मनोहार्याहार्यनैकमणिमहः-स्तबकामगस्त्यचुलुकितरत्नावशेषितजलामिव रत्नाकरस्थलीम्, करिणीमिव वारिसंपर्कचकिताम्, प्रजानाथचित्तवृत्तिमिव प्रतापार्थिनीम्, सुराङ्गनामिव महीरङ्गस्पर्शनपराचीनपदां क्षेमश्रियम्, क्षेमभूमिमिव पराक्रान्तमहीपतिः, कुसुमशरशराक्रान्तोऽयं कुमारः क्षणमपि नात्याक्षीत् ।

§ १८१. अथ कदाचित्कस्यांचन त्रियामायां तृतीयप्रहरे विरहव्यसनावतमसविषयी-

---

स्तस्मिन् । पराक्रान्तश्चासौ महीपतिश्चेति पराक्रान्तमहीपतिः पराक्रमयुक्तपार्थिवः क्षेमभूमिमिव कल्याण-युक्तपृथिवीमिव कुसुमशरस्य कामस्य शरैर्बाणैराक्रान्तः अयं कुमारः क्षणमपि क्षेमश्रियम् नात्याक्षीत् न मुमोचेति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथ क्षेमश्रियं विशेषयितुमाह—कुङ्कुमपङ्केन काश्मीरद्रवेण पङ्किलौ पङ्कयुक्तौ पयोधरौ स्तनौ यस्यास्ताम्, अतएव अन्तर्मध्येऽमान्तं रागं प्रेमाणं वमन्तीमिवोद्गिरन्तीमिव, कराल-कालमेघस्येव कालिमा कार्ष्ण्यं यस्य तथाभूतः कालागुरुधूपो गर्भे मध्ये यस्य तथाभूतो यो गर्भागारो मध्यगृहं तस्य गर्भे मध्ये स्थिता ताम्, चिरप्रभां चिरदीप्तिमचिरप्रभामिव सौदामिनीमिव, मनोहराणि सुन्दराणि यानि आहार्याणि विभूषणानि तेषु खचिता ये नैकमणयो नानारत्नानि तेषां महःस्तबकाः कान्ति-गुच्छाः, प्रसरन्तः प्रसरणशीला मनोहार्याहार्यनैकमणिमहःस्तबका यस्यास्ताम्, अतएव अगस्त्येन कुम्भ-सम्भवेन चुलुकितं रत्नावशेषितजलं यस्यास्तां रत्नाकरस्थलीमिव समुद्रभूमिमिव, करिणीमिव हस्तिनीमिव वारिणो जलस्य संपर्केण चकितां त्रस्तां पक्षे वारि गन्धबन्धनी तस्याः स्पर्शेण चकिताम्, प्रजानाथस्य लोकपालस्य चित्तवृत्तिमिव मनोवृत्तिमिव प्रतापं प्रभावमर्थयत इत्येवं शीला ताम् 'स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' इत्यमरः, पक्षे शैत्यपीडितत्वेन प्रकृष्टस्तापः प्रतापस्तस्यार्थिनी ताम्, सुराङ्गनामिव देवीमिव महीरङ्गस्य भूतलस्य स्पर्शनात् पराचीनपदां पराङ्मुखचरणां शय्यातलस्थितत्वादिति भावः, पक्षे स्वर्गस्थितत्वात् महीरङ्गस्पर्शनपराङ्मुखपदाम् ।

§ १८१. अथ कदाचिदिति—अथानन्तरं कदाचित् जातुचिद् कस्यांचन त्रियामायां रजन्यां तृतीयप्रहरे तृतीययामे विरहव्यसनं विप्रलम्भदुःखमेवावतमसं गाढतिमिरं तस्य विषयीभविष्यन्त्या

खेद-खिन्न हो रहे थे और अंगारधानियाँ—गुरसियोंकी अग्नि निःशंक होकर सेवन करनेके योग्य थी ऐसी वर्षाऋतुके परिपक्व होनेपर—पूर्ण जोरके साथ प्रवृत्त होनेपर कामके बाणोंसे आक्रान्त जीवन्धरकुमार, जिस प्रकार पराक्रमसे युक्त राजा कल्याणकारिणी भूमिको नहीं छोड़ता है उसी प्रकार क्षेमश्रीको क्षण-भरके लिए भी नहीं छोड़ते थे। उस समय क्षेमश्रीके स्तन केशरकी पंकसे पंकिल थे इसलिए वह ऐसी जान पड़ती थी मानो भीतर नहीं समाने-वाले रागको उगल ही रही थी। वह भय उत्पन्न करनेवाले काले-काले मेघोंकी कालिमासे युक्त कृष्णागुरु चन्दनकी धूपसे सुवासित गर्भालयके मध्यमें स्थित थी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो चिरकाल तक चमकनेवाली बिजली ही हो। उसके सुन्दर आभूषणोंमें लगे हुए अनेक मणियोंके तेजका पुंज इधर-उधर फैल रहा था जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो अगस्त्य ऋषिके द्वारा चुलुकित होनेसे जिसमें रत्नमात्र ही शेष रह गये थे ऐसी समुद्रकी तलहटी ही हो। वह हस्तिनीके समान वारि—जलके संपर्कसे भयभीत रहती थी (पक्षमें हाथी बाँधनेकी रस्सीके सम्पर्कसे भयभीत थी)। राजाकी चित्तवृत्तिके समान प्रता-पार्थिनी—प्रकृष्ट गरमीको चाहनेवाली थी (पक्षमें तेजको चाहनेवाली थी) और देवांगनाके समान पृथिवीतलके स्पर्शसे विमुख पैरोंसे युक्त थी—वह वर्षाऋतुमें पृथिवीपर पैर भी नहीं रखना चाहती थी (पक्षमें स्वर्गनिवासिनी होनेसे पृथिवीके स्पर्शसे रहित थी)।

§ १८१. अथानन्तर किसी समय एक रात्रिके तीसरे पहरमें जब विरहजन्य दुःखरूपी

भविष्यन्त्याः क्षेमश्रियः प्रपञ्चतरहृदयकुञ्जे[1] पुञ्जीभावादिव विरलभावमासेदुषि तमसि, सुभद्रस्य जामातृप्रयाणप्रबोधनायेव कूजत्सु कुक्कुटेषु, निकटगतां पत्नीमतिसंधाय गन्धर्वदत्तापतिर्भवभृतां प्रवृत्तेर्व्यवस्थाविकलतां व्यवस्थापयन्निव तथाविधास्थास्पदमेकपद एव तां परित्यज्य प्रव्रज्यायै प्रकृष्टवैराग्यः पुरुष इव यथेष्टमियाय ।

§ १८२. तदनु सा च तनूदरी यातयामजातगाढस्वापा पुनः प्रबोधाभिमुखी तलिमतले तत इतोऽपि शनैः संचार्यमाणशरीरा विशीर्यमाणचिकुरभारविगलदविरलकुसुममाला सविलासगात्रभञ्जना पञ्चशाखाङ्गुलीभिर्मर्दयन्ती मन्दमन्दं मन्थराक्षिपक्ष्मणी, पतिमुखनिरीक्षणतत्परा पतिदेवता सलीलमुत्थाय शय्यातलमधिवसन्त्येव संमुखागतयामिकवामलोचनामुखेऽपि मुखमनर्प-

गोचरीभविष्यन्त्याः क्षेमश्रियो निर्वृतिसुतायाः प्रपञ्चतरश्चासौ विस्तृततरश्चासौ हृदयकुञ्जश्च मनोनिकुञ्जश्च तस्मिन् 'निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे' इत्यमरः पुञ्जीभावादिव राशीभावादिव तमसि शार्वरान्धकारे विरलभावमल्पताम् आसेदुषि प्राप्तवति, सुभद्रस्य क्षेमश्रीपितुः जामातुः प्रयाणस्य प्रबोधनं तस्या इव कुक्कुटेषु ताम्रचूडेषु कूजत्सु शब्दं कुर्वाणेषु निकटगतां समीपस्थिताम् पत्नीं क्षेमश्रियम् अतिसंधाय प्रतार्य गन्धर्वदत्तापतिर्जीवंधरो भवभृतां संसारिणां प्रवृत्तेः व्यवस्थाविकलतां विनश्वरतां व्यवस्थापयन्निव तथाविधायाः पूर्वोक्तप्रकारायाः आस्थायाः प्रीतेरास्पदं स्थानं तां क्षेमश्रियम् एकपद एव युगपदेव परित्यज्य त्यक्त्वा प्रव्रज्यायै दीक्षायै प्रकृष्टं वैराग्यं यस्य तथाभूतः पुरुष इव यथेष्टं स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा इयाय जगाम ।

§ १८२. तदन्विति—तदनु तदनन्तरं सा च तनूदरी कृशोदरी क्षेमश्रीः याते व्यतीते यामजाते प्रहरसमूहे गाढः स्वापो यस्यास्तथाभूता पुनः प्रबोधाभिमुखी जागरणोद्यता तलिमतले शय्यातले तत इतोऽपि यतस्ततोऽपि शनैर्मन्दं यथा स्यात्तथा संचार्यमाणं शरीरं यस्याः सा निशीर्यमाणात् चिकुरभारात्केशकलापात् अविरलं निरन्तरं यथा स्यात्तथा विगलन्ती पतन्ती अविरला कुसुममाला पुष्पस्रग्यस्याः सा, सविलासं सविभ्रमं गात्रभञ्जनं यस्याः सा, पञ्चशाखस्य हस्तस्याङ्गुल्यस्ताभिः मन्थराक्षिपक्ष्मणी मन्थरनयनरोमराजी मन्दमन्दं यथा स्यात्तथा मर्दयन्ती, पत्युर्मुखस्य निरीक्षणे तत्परा पतिरेव देवता यस्यास्तथाभूता सलीलं सविभ्रमम् उत्थाय शय्यातलं तल्पपृष्ठमधिवसन्त्येव तत्र शयानैव संमुखागता ।

अन्धकारकी विषय होनेवाली क्षेमश्रीके विस्तृत हृदय-निकुंजमें एकत्रित होनेके कारण ही मानो अन्धकार विरलभावको प्राप्त हो गया था और सुभद्र सेठको जामाताके गमनकी सूचना देनेके लिए ही मानो जब मुर्गे बाँग देने लगे तब समीपमें स्थित पत्नी—क्षेमश्रीको धोखा देकर जीवन्धरस्वामी संसारी जीवोंकी प्रवृत्तिकी अस्थिरताको प्रकट करते हुएके समान उस प्रकारकी प्रीतिके स्थान स्वरूप क्षेमश्रीको एकदम छोड़कर इच्छानुसार उस तरह चले गये जिस तरह कि तीव्र वैराग्यको धारण करनेवाला पुरुष दीक्षाके लिए चला जाता है ।

§ १८२. तदनन्तर जिसका उदर अत्यन्त कृश था, जिसकी रात्रिके गत पहरोंमें आनेवाली गाढ़ निद्रा समाप्त हो गयी थी, जो जागनेके लिए सन्मुख हो शय्यापर इधर-उधर धीरे-धीरे शरीरको चला रही थी, जिसके बिखरे हुए केशपाशसे फूलोंकी अविरल मालाएँ गिर रही थीं, जो विलासपूर्वक अँगड़ाई ले रही थी, जो हाथकी अँगुलियोंसे धीरे-धीरे मन्थर नेत्रोंकी बिरूनियाँ मल रही थी, जो पतिका मुख देखनेमें तत्पर थी, पतिको ही देवता समझती थी, लीलासहित उठकर शय्यातलपर ही बैठी थी, सामने आयी हुई पहरेदारिनके मुखकी ओर

[1] प० प्रपञ्चहृदयकुञ्जे ।

यन्ती, प्रसर्पदङ्गुलीनखचन्द्रचन्द्रिकया मुकुलयन्तीव नयननलिनयुगम्, किंचित्कुञ्चितपञ्चशाखतलेन कञ्चुकितवदना क्षणमीषदुन्मीलयन्ती पतिमन्वियेष।

§ १८३. ततः संत्रासा तत्र दयितादर्शनादवशमुन्नयन्ती मुखमुदश्रुमुखीनां सखीनां हिमानीबिन्दुदन्तुरितारविन्दसवर्णवैवर्ण्यानि वदनानि साकूतं सानुतापं सदैन्यं च न्यशामयत्। तन्निशामिताः सख्यश्च सख्यं गता इव तोयदैः पूर्वमुल्लसद्दशनकिरणतटिल्लतां पश्चात्पतिप्रयाणवार्तापविं तदनु नयनजलधारामप्यपातयन्। सा तु क्षेमश्रीः श्रवसि तद्वार्तां मनसि हृल्लेखं वपुषि प्रकम्पं चक्षुषि बाष्पधारामात्मन्यविषह्यशुचं वदने वैवर्ण्यं नासिकायां दीर्घश्वासमास्ये

पुरःप्राप्ता या यामिकवामलोचना प्रहरिकस्त्री तस्या मुखेऽपि वदनेऽपि मुखम् अनर्पयन्ती तदपश्यन्तीति यावत्, प्रसर्पन्ती विसरन्ती याङ्गुलीनखचन्द्रस्य नखरेन्दोश्चन्द्रिका ज्योत्स्ना तया नयननलिनयुगं लोचनारविन्दयुगलं मुकुलयन्तीव निमीलयन्तीव, किञ्चित् मनाक् कुञ्चितं पञ्चशाखतलं करतलं तेन कञ्चुकितं व्याप्तं वदनं मुखं यस्याः, क्षणं ईषद् उन्मीलयन्ती विकासयन्ती पतिं जीवन्धरम् अन्वियेष अन्विष्टं चकार।

§ १८३. तत इति—ततस्तदनन्तरं तत्र शयनागारे दयितस्य पत्युरदर्शनं तस्मात् अवशं यथा स्यात्तथा मुखम् वक्त्रमुन्नयन्ती ऊर्ध्वं कुर्वन्ती, उदश्रुमुखीनां साश्रुवदनानां सखीनां हिमानीबिन्दुभिः प्रालेयपृषतामिर्दन्तुरितं व्याप्तं यदरविन्दं कमलं तस्य सवर्णं सदृशं वैवर्ण्यं येषु तथाभूतानि वदनानि मुखानि साकूतं साभिप्रायं सानुतापं सपश्चात्तापं सदैन्यं सकातर्यं च न्यशामयत् अवलोकयामास। तया निशमिता तन्निशमिताः क्षेमश्रीविलोकिताः सख्यो वयस्याः तोयदैर्मेघैः सह सख्यं मैत्रीं गता इव प्राप्ता इव पूर्वं प्राक् उल्लसन्तः प्रकटीभवन्तो दशनकिरणा एव दन्तदीधितय एव तडिल्लतां विद्युद्वल्लीं पश्चादनन्तरं पतिप्रयाणस्य वल्लभप्रस्थानस्य वार्तैव समाचार एव पविर्वज्रं तं तदनु नयनजलधारामपि लोचनसलिलधारामपि अपातयन् पातयन्ति स्म जीवंधरगमनसमाचारं श्रुत्वा रुरुदुरित्यर्थः। सा तु क्षेमश्रीर्विरहातुरा जीवकवल्लभा श्रवसि कर्णे तस्य वल्लभस्य वार्तां प्रवृत्तिं ताम्, मनसि चित्ते हृदयस्य लेखः कर्षणं तम् 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेपु' इत्यनेन हृदयस्य हृदादेशः, वपुषि शरीरे प्रकम्पं चक्षुषि नयने बाष्पधारामश्रुसंततिम् आत्मनि स्वस्मिन् अविषह्यशुचं विपुलतरशोकं वदने मुखे वैवर्ण्यं म्लानतां नासिकायां घ्राणे

भी जो अपना मुख नहीं उठा रही थी, जो अँगुलियोंके नखरूपी चन्द्रमाकी फैलती हुई चाँदनीसे नेत्ररूपी कमलोंके युगलको निमीलित कर रही थी, कुछ-कुछ टेढ़े किये हुए हस्ततलसे जिसका मुख आच्छादित था और जो क्षण-भरके लिए कुछ थोड़ा-थोड़ा नेत्रोंको खोल रही थी ऐसी क्षेमश्री पतिको खोजने लगी।

§ १८३. तदनन्तर वहाँ पतिके न दिखनेसे भयभीत क्षेमश्रीने जब विवश हो ऊपर मुख उठाया तब उसने रोती हुई सखियोंके ओसकी बूँदोंसे व्याप्त कमलोंकी समानता रखनेवाले मुख किसी खास चेष्टा, सन्ताप और दीनताके साथ देखे। क्षेमश्रीके द्वारा देखी हुई सखियाँ मेघोंके साथ मित्रताको प्राप्त होकर ही मानो पहले तो प्रकट होनेवाली दाँतोंकी किरणोंरूपी विद्युल्लताको, फिर पतिकी प्रयाण वार्ता रूप वज्रको और उसके बाद अश्रुरूपी धाराको छोड़ने लगीं। क्षेमश्री कानोंमें उस वार्ताको, मनमें हृदयको कुरेदनेवाली शल्यको, शरीरमें कम्पनको, नेत्रमें अश्रुधाराको, आत्मामें असहनीय शोकको, मुखमें विवर्णताको, नासिकामें दीर्घ श्वासको और मुखमें विलापको एक साथ प्राप्त होती हुई उस वज्रपातसे

परिदेवनं च यौगपद्येन भजन्ती तदशनिपतनादपासुरिव भूमौ पपात। तथाविधामनस्यामिमां वयस्येवाविदितकृच्छ्रामातनोन्मूर्छा ॥

§ १८४ एवमतिमोहविधुरां वरोपलम्भवरार्थितया निभृतेन्द्रियवृत्तिं पृथ्वीशयने प्रतिशयानामिव शयानां फणिनीमिव फणामणिना पद्मिनीमिव पद्मबन्धुना रतिमिव त्र्यम्बकललाटाम्बकदहनदग्धमदनेन दयितेन विप्रयुक्तामतिदयावहां जोवंधरदयितां निशाम्य, निर्वृतिरधिकनिर्वेदा खेदप्राचुर्यादुद्धरणविहस्तेन हस्तद्वयेनोत्क्षिप्याङ्गजामङ्कमारोप्य, तदङ्गमतिपांसुलं क्षालयन्तीव क्षरदश्रुजलैर्हिमजलकर्पूरपूरविलुलितमलयजस्थासकस्थगितस्फारहारशीकरशिशिरोपचारैर्निवारित - प्राणप्रयाणां विधाय, 'विधिविलसितमिदमतिनृशंसम्[1]। हंसगमनेयमेवमप्य[2]स्मदीक्षणाभ्यामहो

दीर्घश्वासमायतोच्छ्वासम्, आस्ये मुखे परिदेवनं विलापं च यौगपद्येन एककालावच्छेदेन भजन्ती प्राप्नुवन्ती स एव अशनिर्वज्रं तस्य पतनं तस्मात् अपासुरिव मृतेव भूमौ पृथिव्यां पपात। तथाविधमामनस्यं यस्यास्तां तादृग् वैचित्र्याम् इमां क्षेमश्रियम् वयस्येव सहचरीव मूर्च्छा निःसंज्ञता अविदितकृच्छ्रामज्ञातदुःखाम् आतनोत् चकार।

§ १८४. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण, अतिमोहेन रागातिशयेन विधुरां दुःखिताम्, वरस्य पत्युरुपलम्भः प्राप्तिरेव वरो दैवाद्वृतस्तस्यार्थितया निभृता निश्चलेन्द्रियवृत्तिर्यस्यास्तथाभूतां पृथ्वीशयनेऽवनिशय्यायां प्रतिशयानामिव शयनं कुर्वाणामिव, फणामणिना नागेन विप्रयुक्तां विरहितां शयानां फणिनीमिव नागीमिव, पद्मबन्धुना सूर्येण विप्रयुक्तां पद्मिनीमिव कमलिनीमिव, त्र्यम्बकस्य भवस्य ललाटाम्बकदहनेन निटिलनेत्रानलेन दग्धो भस्मीभूतो यो मदनो मारस्तेन विप्रयुक्तां रतिमिव, दयितेन वल्लभेन जीवंधरेण विप्रयुक्ताम् अतिदयावहां दीनां जीवंधरदयितां क्षेमश्रियं निशाम्य दृष्ट्वा अधिकनिर्वेदा सातिशयखेदा निर्वृतिः क्षेमश्री सवित्री खेदप्राचुर्यात् दुःखातिशयात् उद्धरणे विहस्तस्तेन-उत्थापनविवशेन हस्तद्वयेन करयुगलेन उत्क्षिप्य अङ्गजां पुत्रीम् अङ्कं क्रोडम् आरोप्य स्थापयित्वा, अतिपांसुलं धूलिमलिनं तदङ्गं तच्छरीरं क्षरदश्रुजलैर्गलदश्रुसलिलैः क्षालयन्तीव धावमानेव, हिमजलकर्पूरपूराभ्यां तुहिनतोयघनसारपूराभ्यां विलुलितो घृष्टो यो मलयजश्चन्दनं तस्य स्थासकास्तिलकानि तैः स्थगितो यः स्फारहारो विशालमौक्तिकयष्टिः स च शीकरशिशिरोपचाराश्चातिशीतलोपचाराश्च तैः निवारितं दूरीकृतं प्राणप्रयाणं यस्यास्तथाभूतां विधाय कृत्वा 'इदं विधिविलसितं दैवचेष्टितम् अतिनृशंसमतिक्रूरम्। हंसस्येव गमनं यस्यास्तथाभूता इयम् एवमपि-

निष्प्राणकी तरह पृथिवीपर गिर पड़ी। उस प्रकारकी विकलताको धारण करनेवाली क्षेमश्रीको सखीके समान मूर्च्छाने अविदितकृच्छ्रा—दुःखानुभवसे रहित कर दिया।

§ १८४. इस प्रकार जो अत्यधिक मूर्च्छासे दुखी थी, वर-प्राप्तिकी उत्कट अभिलाषासे जो इन्द्रियोंकी वृत्तिको निश्चल कर पृथिवीरूपी शय्यापर शयन करती हुई-सी जान पड़ती थी, जो सर्पसे रहित सर्पिणीके समान, सूर्यसे रहित कमलिनीके समान, और महादेवके ललाटस्थ नेत्रकी अग्निसे जले हुए कामदेवसे रहित रतिके समान पतिसे वियुक्त हो अत्यन्त दयनीय अवस्थाको धारण कर रही थी ऐसी जीवन्धरकी स्त्री—क्षेमश्रीको देख उसकी माता निर्वृति अधिक खेदको प्राप्त हुई। खेदकी अधिकतासे ऊपर उठनेमें असमर्थ दोनों हाथोंसे उसने पुत्रीको उठाकर गोदमें बैठा लिया और धूलिसे धूसरित उसके शरीरको झरते हुए अश्रुजलसे धोती हुईके समान बर्फका जल और कपूरके समूहसे मिश्रित चन्दनके लेपसे आच्छादित विशाल हार एवं अत्यधिक शीतलोपचारोंसे उसे प्राणोंके प्रयाणसे रहित कर दिया। 'अहो! यह दैवकी लीला अत्यन्त क्रूर है। यह हंसगमना ऐसी अवस्थामें हमारे नेत्रोंसे कैसे देखी

१. क० ख० ग०—इदमिति नृशंसम्। २. क० 'अपि' नास्ति।

कथमीक्षिता !' इत्याधिक्षीणा तत्क्षणे पूर्वक्षणदायां स्वापावसाने स्वप्नमालोकितमनुस्मृत्य सविस्मयं साश्वासं सानुनयं च समभ्यधात्—'पुत्रि, रात्रावतीतायां दयितां हंसीमपहाय राजहंसः क्वचिद् गत्वा संगतश्च पुनर्दृष्टः । ततः संगंस्यसे त्वमपि जामात्रा । धात्रीतलदुर्लभस्तव वल्लभः सुते, स्वाभिप्रायं प्रायेण केनापि व्याजेन विवृण्वन्नेव प्रयास्यति । तवालस्यादिदमनवधृतम् । अथ वा किमिदमाधुनिकमावश्यके कर्मणि सकलकर्मकर्मठानां पुरुषाणां क्वचिदटनं पुनर्घटनं च' इति । एवमभिहितैरतिहितैर्मातृवचोभिः पिहितासुमोक्षाशा सा च पतिदेवता पतिपदं[1] परमेश्वरश्रीपादारविन्दद्वन्द्वं च द्वन्द्वप्रशमनकृते हृदि निधाय निषसाद ।

§ १८५. अथ क्षेमश्रीवल्लभेऽपि क्षेपीयः क्षेमपुरीं चौरिकाध्यक्षकैरलक्षित एवातिक्रम्य कामपि कान्तां कान्तारभुवमासेदुषि, सागरसदनबाडवकृपीटयोनिशिखापटलालीढ इव पाटलवपुषि

इत्थम्भूतापि अस्मदीक्षणाभ्यां मदीयनयनाभ्यां कथमहो ईक्षिता दृष्टा' इतीत्थम् आधिना मानसिकव्यथया क्षीणा तत्क्षणे तत्काले पूर्वक्षणदायां पूर्वनिशायां स्वापावसाने शयनान्ते आलोकितं दृष्टं स्वप्नम् अनुस्मृत्य सविस्मयं साश्चर्यं साश्वासं ससान्त्वनं सानुनयं च सस्नेहं च समभ्यधात् कथयामास—पुत्रि ! अतीतायां रात्रौ दयितां प्रियां हंसीम् अपहाय त्यक्त्वा राजहंसो मरालविशेषः 'राजहंसास्तु ते चञ्चूचरणैर्लोहितैः सिताः' इत्यमरः क्वचित् कुत्रापि गत्वा संगतश्च मिलितश्च पुनर्दृष्टो भूयो विलोकितः । ततः कारणात् त्वमपि जामात्रा संगंस्यते संप्राप्स्यसे । हे सुते ! धात्रीतलदुर्लभः पृथिवीपृष्ठदुष्प्राप्यस्तव वल्लभो भर्ता प्रायेण केनापि व्याजेन मिषेण स्वाभिप्रायं निजमनोरथं विवृण्वन्नेव प्रकटयन्नेव प्रयास्यति तव स्वस्या आलस्याद् इदमनवधृतमनिश्चितम् । अथ वा आवश्यके कर्मणि कार्ये सकलकर्मसु निखिलकार्येषु कर्मठानां दक्षाणां पुरुषाणां क्वचित् क्वापि अटनं गमनं पुनर्घटनं च पुनर्मेलनं च इदं किम् आधुनिकं साम्प्रतिकम् । पुरातनमेवेति भावः' इति । एवमित्थम् अभिहितैः कथितैः अतिहितैः श्रेयस्करैः मातृवचोभिर्जननीनिगदितैः पिहिता आच्छादिता असुमोक्षाशा प्राणत्यागाभिलाषो यया तथाभूता पतिदेवता पतिव्रता सा च क्षेमश्रीश्च द्वन्द्वशमनकृते दुःखोपशान्त्यै पतिपदं वल्लभचरणं परमेश्वरस्यार्हतः श्रीपादारविन्दद्वन्द्वं च श्रीचरणकमलयुगलं च निधाय स्थापयित्वा निषसाद स्थिताऽभूत् ।

§ १८५. अथेति—अथानन्तरं क्षेमश्रीवल्लभेऽपि जीवंधरेऽपि चौरिकाध्यक्षैरपि राजपुरुषप्रमुखैरपि अलक्षित एवानवलोकित एव क्षेपीयः शीघ्रम् अतिक्रम्य समुल्लङ्घ्य कामपि कान्तां मनोहरां कान्तारभुवं

गयी ?' इस प्रकार मानसिक व्यथासे क्षीण निर्वृतिने पूर्वरात्रिमें शयनके अन्तमें देखे हुए स्वप्नका स्मरण कर आश्चर्य, आश्वासन और प्रेमके साथ कहा कि—बेटी ! पिछली रात्रिमें मैंने स्वप्न देखा था कि 'एक राजहंस अपनी प्रिय हंसीको छोड़कर कहीं चला गया और फिर आकर उससे मिल गया है' । इससे सिद्ध होता है कि तुम भी जामाताके साथ मिल जाओगी । हे पुत्रि ! तुम्हारा पति पृथिवीतलपर दुर्लभ है, वह प्रायःकर किसी बहानेसे अपना अभिप्राय प्रकट कर ही गया होगा । तुमने आलस्यके कारण उस ओर ध्यान नहीं दिया है । अथवा समस्त कार्योंमें निपुण पुरुषोंका आवश्यक कार्यके लिए कहीं जाना और फिर आ जाना यह क्या आजकी बात है ? इस प्रकार कहे हुए अत्यन्त हितकारी माताके वचनोंसे जिसके प्राणत्यागकी आशा स्थगित हो गयी थी ऐसी पतिव्रता क्षेमश्री दुःख शान्त करनेके लिए पतिके चरण तथा परमेश्वरके चरण कमलयुगलको हृदयमें विराजमान कर बैठ गयी ।

§ १८५. अथानन्तर क्षेमश्रीके पति जीवन्धरस्वामी भी पहरेदारोंके द्वारा बिना दिखे ही शीघ्र ही क्षेमपुरीको उल्लंघन कर किसी सुन्दर वनकी भूमिमें जा पहुँचे । उसी समय

१. क० प्रतिपदम् ।

पद्मिनीसौखसुप्तिके पथिकजननेत्रे कोकमिथुनमित्रे मित्रे सुदर्शनमित्राय दर्शयितुमिवाध्वानमुदधेरुन्मज्जति, जलनिधिमग्नोन्मग्नस्य[1] रवेश्चिरनिरुद्धनिसृष्टोच्छ्वास इव निःसरति सुमनःसंसर्गसुरभौ गोसर्गमातरिश्वनि, दिनपतिसंभोगव्यतिकरविमर्दनाश्यानदिनश्रीकुचकुम्भकुङ्कुमाङ्गराग इव प्रतिदिशं प्रसर्पत्यरुणरोचिषि, विकचत्कुसुमकलिकाकलितशिखरशोभिनः शाखिनः सौखरात्रिक इव संश्रयति झंकारमुखरितककुभि षट्पदकदम्बके, कुमुदिनीषण्डे च प्रातिवेश्यस्थानस्पृशामम्भोजिनीनां बन्धोः प्रत्यूषाडम्बरस्योदयाडम्बरम्[2] मृष्यतीव घटितदलपुटकवाटे बाढं स्वपिति, तत्रोपसरन्तं जरन्तं कमपि पामरं कुमारः सादरं निर्वर्ण्य परमनिर्वाणपदमुपसर्पतां प्रथमसोपानभूतं गृहमेधिनां

वनावनिम् आसेदुषि प्राप्तवति सति, सागरः सदनं यस्य तथाभूतः समुद्रस्थितो यो वाडवकृपीटयोनिर्वडवानलस्तस्य शिखापटलेन ज्वालाकलापेनालीढ इव व्याप्त इव पाटलमीषद्रक्तं वपुः शरीरं यस्य तथाभूते, सुखेन सुप्तमिति पृच्छति सौखसुप्तिकः पद्मिनीनां कमलिनीनां सौखसुप्तिक इति पद्मिनीसौखसुप्तिकस्तस्मिन् कमलिनीविकासकर्तरीति यावत्, पथिकजनानामध्वगानां नेत्रं मार्गदर्शकं तस्मिन्, कोकमिथुनस्य चक्रवाकयुगलस्य मित्रं सहचरस्तस्मिन्, मित्रे सूर्ये सुदर्शनमित्राय जीवंधराय अध्वानं मार्गं दर्शयितुमिव उदधेः सागरात् उन्मज्जति सति उदयमाने सति, जलनिधौ सागरे आदौ मग्नः पश्चादुन्मग्नस्तस्य रवेः सूर्यस्य आदौ चिरनिरुद्धः पश्चान्निसृष्टो निर्मुक्तो य उच्छ्वासस्तस्मिन्निव सुमनसां पुष्पाणां संसर्गेण सुरभौ सुगन्धौ गोसर्गमातरिश्वनि प्रत्यूषपवने निःसरति निर्गच्छति सति, दिनपतेः सूर्यस्य यः संभोगव्यतिकरः सुरतव्यापारस्तस्य विमर्दनेन गात्रोपश्लेषेणाश्यानः शुष्को यो दिनश्रिया वासरलक्ष्म्याः कुचकुम्भयोः स्तनकलशयोः कुङ्कुमाङ्गराग इव काश्मीरविलेपन इव अरुणरोचिषि रक्तप्रभायां प्रतिदिशं प्रतिकाष्ठं प्रसर्पति सति, विकचन्त्यो विकसन्त्यो याः कुसुमकलिकास्ताभिः कलितेन शिखरेण अग्रभागेन शोभत इत्येवं शीलान् शाखिनो वृक्षान् सुखेन रात्रिर्व्यतीतेति पृच्छति सौखरात्रिकस्तस्मिन्निव झंकारेण मुखरिताः शब्दिताः ककुभः काष्ठा येन तस्मिन् षट्पदकदम्बके भ्रमरसमूहे संश्रयति सति समुपगच्छति सति, कुमुदिनीषण्डे च कैरविणीकलापे च प्रतिवेशस्य भावः प्रातिवेश्यं प्रतिवासत्वं तस्य स्थानं स्पृशन्तीति प्रातिवेश्यस्थानस्पृशस्तासाम् प्रतिवेशिनीनाम् अम्भोजिनीनां कमलिनीनाम् बन्धोः सहचरस्य सूर्यस्येति यावत् प्रत्यूषाडम्बरस्य प्रभाताडम्बरस्योदयाडम्बरमुदयवैभवममृष्यतीव–असहमान इव घटिता दलपुटकवाटा येन तथाभूत इव बाढमत्यर्थं स्वपति सति, तत्र वनवसुधायाम् उपसरन्तं समीपमागच्छन्तं जरन्तं वृद्धं कमपि पामरं प्राकृतजनं सादरं सस्नेहं निर्वर्ण्य दृष्ट्वा परमनिर्वाणपदं निःश्रेयसपदम् उपसर्पतां गच्छतां

समुद्रमें रहनेवाली बड़वानलकी ज्वालाओंके समूहसे व्याप्त हुएके समान जिसका शरीर लाल-लाल हो रहा था, जो कमलिनियोंसे सुखशयनका समाचार पूछनेवाला था, पथिकजनोंका नेत्र था और चकवा-चकवियोंका मित्र था ऐसा सूर्य जीवन्धरकुमारको मार्ग दिखानेके लिए ही मानो समुद्रसे उन्मग्न हुआ—उदित हुआ। समुद्रमें चिरकाल तक डूबे रहनेके बाद उभरे हुए सूर्यकी बहुत देर तक रोकनेके बाद छोड़ी हुई साँसके समान फूलोंके संसर्गसे सुगन्धित प्रातःकालकी वायु बहने लगी। सूर्यके संभोग-सम्बन्धी उद्योगमें होनेवाले आलिंगनसे सूखे हुए दिनलक्ष्मीके स्तन कलशपर लगे केशरके अंगरागके समान प्रत्येक दिशामें ऊषाकी लाल-लाल किरणें फैलने लगीं। झंकारसे दिशाओंको मुखरित करनेवाला भ्रमरोंका समूह 'रात्रि सुखसे बीती' यह समाचार पूछनेवालेके समान विकसित फूलोंकी कलिकाओंसे युक्त शिखरोंसे सुशोभित वृक्षोंके समीप जाने लगा और कुमुदिनियोंका समूह पड़ोसमें स्थित कमलिनियोंके बन्धु—सूर्यके प्रातःकाल-सम्बन्धी आडम्बरको न सह सकनेके कारण ही मानो कलिकारूपी किवाड़ लगाकर सोने लगा। उसी समय पासमें आते हुए किसी वृद्ध साधारण

---

१. म० जलनिधिनिमग्नोन्मग्नस्य। २. म० प्रत्यूषाडम्बरममृष्यतीव।

धर्ममुपदिश्य प्रदिश्य चास्मै निजाहार्यमाहार्यपर्यायावरणविगमादव्याजरमणीयस्ततोऽयमव्रजत् ।

§ १८६. ततश्च क्रमशः शशाङ्क इव सद्भिः संगच्छमानः कायैकधनतपोधननिकायतया निवारितनिखिलश्वापदोपद्रवानद्रीन्सार्वकालिकजलप्रवाहा वाहिनीः सर्वसौख्यास्पदानि जिनपदानि सर्वलोकप्रार्थ्यानि तीर्थानि च तत्तद्देशीयदर्शितातिशयानि[1] पश्यन्पथिश्रमपारवश्यप्रशमनाय क्वचिदटव्यां निजहृदय इव निर्मले स्फटिकतले निषीदन्न्यक्कृतनिखिलवनकुसुमसौरभेण नीरन्ध्रितघ्राणरन्ध्रेण गन्धेनाकृष्टः किमिदमिति[2] किंचिद्विवर्तितत्रिकः सविलासकरशाखावलम्बितसिता-

प्रथमसोपानभूतमाद्यसोपानरूपं गृहमेधिनां धर्मम् उपदिश्य अस्मै पामराय निजाहार्यं स्वाभरणसमूहं प्रदिश्य च प्रदाय च अहार्यपर्यायमाभरणरूपं यदावरणं तस्य विगमाद्दूरीभावात् अव्याजरमणीयो निसर्गसुभगोऽयं जीवंधरः ततः काननप्रदेशात् अव्रजत् ।

§ १८६. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च शशाङ्क इव चन्द्र इव सद्भिर्नक्षत्रैः पक्षे सज्जनैः संगच्छमानो मिलन् काय एव शरीरमेवैकं धनं येषां तथाभूता ये तपोधनाः साधवो निष्परिग्रहयतयस्तेषां निकायतया स्थानत्वेन निवारिता दूरीकृता निखिलाः समस्ताः श्वापदोपद्रवा वनजन्तूत्पाता येषु तथाभूतान् अद्रीन् गिरीन् 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः' इत्यमरः सार्वकालिकः शश्वत्स्थायी जलप्रवाहस्तोयपूरो यासां तथाभूता वाहिनीर्नदीः, सर्वसौख्यानां निखिलसुखानाम् आस्पदानि स्थानानि जिनपदानि जिनस्थानानि जिनमन्दिराणीति यावत् 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः। सर्वलोकप्रार्थ्यानि निखिलजनवाञ्छितानि तत्तद्देशीयास्तत्तद्देशसम्बन्धिनो दर्शिताः प्रकटिता अतिशया येषु तथाभूतानि तीर्थानि च तीर्थस्थानानि च पश्यन्, पथिश्रमेण मार्गखेदेन यत्पारवश्यं परतन्त्रत्वं तस्य प्रशमनाय शान्तकरणाय क्वचित् कस्यांचित् अटव्यामरण्यान्याम् निजहृदय इव स्वीयचेतसीव निर्मले स्वच्छे स्फटिकतले निषीदन् समुपविशन् न्यक्कृतं तिरस्कृतं निखिलवनकुसुमानां समग्रवनपुष्पाणां सौरभं सौगन्ध्यं येन तेन नीरन्ध्रितं निश्छिद्रितं घ्राणरन्ध्रं नासाविवरं येन तेन गन्धेन आकृष्टः सन् 'किमिदम् ?' इति हेतोः

मनुष्यको बड़े आदरसे देख जीवन्धरस्वामीने उसे परमनिर्वाण पदकी ओर जानेवाले लोगोंके लिए पहली सीढ़ीके समान गृहस्थ धर्मका उपदेश दिया, अपने आभूषण दिये और उसके बाद आभूषणरूपी आवरणके दूर हो जानेसे स्वाभाविक सुन्दरताको धारण करते हुए वे वहाँसे आगे गये।

§ १८६. तदनन्तर क्रम-क्रमसे चन्द्रमाके समान सत्पुरुषों (पक्षमें नक्षत्रों) के साथ मिलते हुए जीवन्धरस्वामी शरीररूपी एकधनसे युक्त तपस्वियोंका स्थान होनेसे जिनमें समस्त जंगली जानवरोंके उपद्रव दूर हो चुके थे ऐसे पर्वतोंको, जिनके जलका प्रवाह हमेशा बहता रहता था ऐसी नदियोंको, समस्त सुखोंके स्थानभूत देशोंको तथा समस्त मनुष्योंके द्वारा प्रार्थनीय एवं तत्तद्देशीय अतिशयोंसे सहित तीर्थोंको देखते हुए मार्गकी थकावटसे उत्पन्न परवशताको शान्त करनेके लिए किसी अटवीमें अपने हृदयके समान निर्मल स्फटिकके शिलातलपर बैठ गये। उसी समय समस्त वनके फूलोंकी सुगन्धिको तिरस्कृत करने एवं नासिकाके छिद्रोंको व्याप्त करनेवाली सुगन्धि आयी। उससे आकृष्ट हो 'यह क्या है ?' यह जाननेके लिए ज्यों ही उन्होंने पीठकी हड्डीको घुमाकर देखा त्यों ही मैथुनकी इच्छा रखनेवाली कोई युवती उन्हें दिखाई दी। वह युवती हाव-भाव दिखाती हुई अंगुलिसे अपने सफेद वस्त्रका अंचल पकड़े हुई थी, फूली हुई वनकी लताके समान उसका सौन्दर्य था और ऐसी जान पड़ती थी मानो बहुत देरसे वहाँ खड़ी हो। जीवन्धरकुमार बैलकी कान्दोलके समान

१. म० तत्तद्देशीयाशयानि। २. क० किं किमिदमति।

म्बरपल्लवां संफुल्लवनवल्लीतुल्यसौन्दर्यां चिरादिव विभाव्यमानां कामपि वृषस्यन्तीं युवतीं वृषस्कन्धोऽयमपश्यत् । अपृच्छच्चायमभिप्रायविदामग्रेसरः 'कासि वासु, कस्मादिहासि । कस्यासि परिग्रहः । परिज्ञाय परस्त्रीविमुखानामस्मत्प्रमुखाणां वशिनां मनःप्रवृत्तिं मनीषितं तवाचक्ष्व' इति । सा च समीहितविरोधिविजयानन्दनवचसा विवर्धितमन्मथा तन्मनोभेदननिष्णातां दूतीमिव मितहसितद्विगुणितदशनकिरणावलिं विनिःसारयन्ती विरचिताञ्जलिरेवमुपादत्त वक्तुम्—'अयि भद्र, विद्रावितविद्विषो विद्याधरराजस्य काचिदहं कन्या । गृहाद्विनिर्गत्य विजयार्धगिरौ सार्धं सखीभिराक्रीडे क्रीडन्तीमालोक्य मम स्यालः कोऽपि बलादवलम्ब्य स्वविमानमारोप्य गच्छन्मध्ये-मार्गं निजसुमध्यारोषभीतः पातितवानत्र वने । पातकिनी चाहमिह पर्यटन्ती भवन्तमधुना दिष्ट्या

किंचिन्मनाग् विवर्तितत्रिकः परिवर्तितपृष्ठास्थिको वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य तथाभूतोऽयं जीवंधरः सविलासं सविभ्रमं यथा स्यात्तथा करशाखाभिरङ्गुलीभिरवलम्बितो धृतः सिताम्बरपल्लवः सितवस्त्राञ्चलो यया ताम्, संफुल्ला समन्तात्पुष्पिता या वनवल्ली वनलता तस्यास्तुल्यं सौन्दर्यं कामनीयकं यस्यास्ताम्, चिरादिव दीर्घकालानन्तरमिव विभाव्यमानां परिचीयमानां वृषस्यन्तीं मैथुनेच्छावतीं कामपि युवतीं तरुणीम् अपश्यत् । अभिप्रायविदामाकूतज्ञानाम् अग्रेसरः प्रधानः अयं जीवकः अपृच्छत् पप्रच्छ च— वासु ! सुन्दरि ! का असि वर्तसे । कस्माद् हेतोः इह कानने असि । कस्य जनस्य परिग्रहो भार्या असि । परस्त्रीभ्यो विमुखा विरलास्तेषाम् अस्मत्प्रमुखानां मत्प्रधानानां वशिनां जितेन्द्रियाणां मनःप्रवृत्तिं परिज्ञाय प्रबुध्य तव स्वस्या मनीषितमभिप्रेतम् आचक्ष्व निवेदय' इति । सा च युवतिश्च समीहितस्य वाञ्छितस्य विरोधि यद् विजयानन्दनस्य जीवकस्य वचस्तेन विवर्धितो वृद्धिंगतो मन्मथो मारो यस्यास्तथाभूता सती तस्य जीवंधरस्य मनोभेदने चेतोभेदने निष्णाता कुशला तथाभूतां दूतीमिव मितहसितेन मन्दहास्येन द्विगुणिता द्विगुणीभूता या दशनकिरणावली रदनरश्मिराजिस्तां विनिःसारयन्ती प्रकटयन्ती विरचिताञ्जलि बद्धहस्तसंपुटा सती एवमनेन प्रकारेण वक्तुं निगदितुम् उपादत्त स्वीचक्रे वक्तुमुद्यताभूदित्यर्थः—अयि भद्र ! हे कल्याणिन् ! अहमेषा विद्राविता दूरीकृता विद्विषो वैरिणो येन तस्य विद्याधरराजस्य खगेन्द्रस्य काचित् कापि कन्या पतिंवरा अस्मीति शेषः । गृहात् सदनाद् विनिर्गत्य निःसृत्य विजयार्धगिरौ रजताचले सखीभिर्वयस्याभिः सार्धम् आक्रीडे उपवने क्रीडन्तीं खेलन्तीम् आलोक्य दृष्ट्वा मम स्यालो भ्रातृजायाभ्राता कोऽपि बलात् हठात् अवलम्ब्य परिगृह्य स्वविमानं स्वकीयव्योमयानम् आरोप्य गच्छन् मार्गस्य मध्य इति मध्येमार्गं 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' इत्यव्ययीभावसमासः निजस्य स्वस्य सुमध्या भामिनी तस्या रोषेण भीतस्त्रस्तः सन् अत्र वने काननेऽस्मिन् पातितवान् । पातकिनी च पापिनी चाहम् इह वने

स्थूल कन्धोंसे युक्त थे। अभिप्रायके जाननेवालोंमें अग्रेसर जीवन्धरस्वामीने उससे पूछा कि 'हे सुन्दरी ! तू कौन है ? यहाँ कहाँसे आयी है ? किसकी स्त्री है ? परस्त्रीसे विमुख रहनेवाले मुझ-जैसे जितेन्द्रिय पुरुषोंकी मनोवृत्तिको समझकर अपना अभिप्राय कह'। इच्छित कार्यका विरोध करनेवाले जीवन्धरकुमारके उक्त कथनसे जिसका काम बढ़ गया था ऐसी वह युवती उनका मन भेदनेमें निपुण दूतीके समान मन्द हास्यसे दूनी दिखनेवाली दाँतोंकी किरणावलीको निकालती हुई हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी। उसने कहा कि 'हे भद्र ! मैं शत्रुओंको खदेड़नेवाले विद्याधर राजाकी एक पुत्री हूँ। घरसे निकलकर विजयार्धगिरिपर सखियोंके साथ बगीचामें क्रीड़ा करती देख मेरा कोई एक साला मुझे जबरदस्ती पकड़ अपने विमानमें चढ़ाकर जाने लगा। मार्गके बीचमें वह अपनी स्त्रीके क्रोधसे भयभीत हो गया जिससे उसने मुझे इस वनमें गिरा दिया। मैं पापिनी यहाँ घूम रही थी कि सौभाग्यसे इस

दृष्टवती । किमन्यत् । एवमतिकृपणाहं भवतश्चरणयोः शुश्रूषया चरितार्थमात्मानं कर्तुमिच्छामि । बालानामबलानामशरणानां शरणागतानां च त्राणं शौर्यशालिनां शैली चेच्चतुर्णामेतेषां समवायस्यास्य जनस्य संरक्षणं करणीयं न वेत्यत्र भवानेव प्रमाणम्' इति ।

§ १८७. प्रकृतिधीरः स [1]कुमारोऽप्यविकृतेन्द्रियस्तद्वचनानन्तरम् 'अम्ब, किं बतैवमादावेवास्माभिरननुमतमर्थमत्यर्थमर्थयसे । किमेतं रसरुधिराद्यशुचिवस्तुपर्याप्तमखिलाशुचिकुलसदनमविचारितरम्यमनुक्षणविशरारुं शरीरसंज्ञं मांसलं मांसपिण्डमालोक्यैवं मोमुह्यसे । पश्य पश्यतामेवास्माकं विनश्यतोऽस्य केवलमस्थिपञ्जरस्य चर्मयन्त्रस्य सिरागहनस्य रुधिरह्रदस्य पिशित-

पर्यटन्ती परिभ्रमन्ती सती दिष्ट्या दैवेन 'दैवं दिष्टिर्भागधेयम्' ,इत्यमरः; अधुना साम्प्रतं भवन्तं दृष्टवती विलोकयामास । अन्यत् किम् । अहं भवतस्तव चरणयोः पादयोः शुश्रूषया सेवया आत्मानं स्वं चरितार्थं कृतकृत्यं कर्तुं वाञ्छामि । बालानां शिशूनाम् अबलानां नारीणाम् अशरणानां शरणरहितानां शरणागतानां च शरणं प्रपन्नानां च त्राणं रक्षणं शौर्यशालिनां पराक्रमशोभिनां शैली रीतिश्चेत् तर्हि एतेषां बालादीनां चतुर्णाम् समवायस्य समूहरूपस्य अस्य जनस्य ममेति यावत् संरक्षणं करणीयं न वा इत्यत्र भवानेव प्रमाणम् ममावस्थां विचार्य कर्तव्यस्य विचारस्त्वयैव कार्य इत्यर्थः' इति ।

§ १८७. प्रकृतिधीर इति—प्रकृत्या निसर्गेण धीरो गम्भीरः स कुमारोऽपि जीवंधरोऽपि अविकृतानि निर्विकाराणि इन्द्रियाणि यस्य तथाभूतः सन् तद्वचनानन्तरं तस्याः स्त्रिया वचनानन्तरम् इति व्याहार्षीत् जगाद । इतीति किम् । इत्याह—अम्ब ! हे मातः ! बत इति खेदसूचकोऽव्ययः एवमनेन प्रकारेण आदावेव प्रारम्भ एव अस्माभिः अननुमतम् अनभिप्रेतम् अर्थम् कार्यम् अत्यर्थं नितान्तं किम् अर्थयसे याचसे । रसरुधिरादीनि—रसरक्तादीनि यानि अशुचिवस्तूनि अपूतपदार्थास्तैः पर्याप्तं पूर्णम्, अखिलाशुचीनां निखिलापवित्रपदार्थानां कुलसदनं कुलभवनम्, अविचारितं च तत् रम्यं चेति अविचारितरम्यम् अविमृष्टमनोहरम्, अनुक्षणविशरारु क्षणे क्षणे नशनशीलम्, शरीरसंज्ञं शरीराभिधानं मांसलं पुष्टं मांसपिण्डं पिशितराशिम् आलोक्य दृष्ट्वा एवमनेन प्रकारेण किं मोमुह्यसे अतिमोहं करोषि । पश्य विलोकय, अस्माकं पश्यतामेव सतां, विनश्यतो नष्टीभवतः अस्यैतस्य अस्थ्नां पञ्जरस्तस्य कीकशशलाकागृहस्य, चर्मयन्त्रस्य सिराभिर्नाडीभिर्गहनस्य निबिडस्य, रुधिरह्रदस्य रक्तजलाशयस्य पिशितराशेः पलप्रचयस्य, मेदसां 'चर्बी'

समय आपको देख सकी । और क्या कहूँ ? इस तरह अत्यन्त दीनताको प्राप्त हुई मैं आपके चरणोंकी शुश्रूषासे अपने-आपको कृतार्थ करना चाहती हूँ । बालक, अबला, अशरण और शरणागत जनोंकी रक्षा करना यदि पराक्रमशाली मनुष्योंकी शैली है तो फिर उक्त चारों बातोंके समूह स्वरूप इस जनकी रक्षा करना चाहिए या नहीं इस विषयमें आप ही प्रमाण हैं' ।

§ १८७. स्वभावसे धीर एवं विकाररहित इन्द्रियोंके धारक जीवन्धरस्वामीने उसकी बात पूरी होते ही कहा कि हे अम्ब ! खेदकी बात है कि जिसका हम पहले ही निषेध कर चुके थे उसीकी इस तरह क्यों अत्यधिक इच्छा करती हो ? जो रस रुधिर आदि अपवित्र वस्तुओंसे भरा हुआ है, समस्त अपवित्रताओंका कुलगृह है, बिना विचार किये ही रम्य जान पड़ता है और क्षण-क्षणमें नष्ट हो रहा है ऐसे शरीर नामक परिपुष्ट मांसके पिण्डको देखकर इस तरह क्यों अत्यन्त मोहित हो रही हो । देखो, हम लोगोंके देखते-देखते ही जो नष्ट हो जाता है, केवल हड्डियोंका पिंजड़ा है, चमड़ेका यन्त्र है, नशोंसे संकीर्ण है, खूनका तालाब है, मांसकी राशि है, चर्बीका कलश है, मलरूपी शैवालका स्वल्प जलाशय है, और

१. म० कुमारोऽप्य—।

राशेर्मेदःकुम्भस्य मलजम्बालपल्वलस्य रोगनीडस्य कलेबरस्य हेतुना केनचिदन्तःस्वरूपं चेदासीद्बहिरास्तामेतदनुभवास्था स्प्रष्टुमथवा द्रष्टुमथवैतत्काकेभ्यो रक्षितुं वा कः शक्नुयात् । अतस्त्वं[1] मक्षिकापक्षाच्छमलाच्छादनचर्मच्छायाप्रतारिताविवेकिन्यजस्रं स्रंसमानोद्वेलमलसहस्रसंगतसुषिरे संस्पर्शक्षणदूषितसमस्तप्रशस्तवस्तुनि जुगुप्सनीयपूतिगन्धिदुरासदाणुनिर्माणे कर्मशिल्पिकल्पनाकौशलार्पितपेशलभ्रमे चर्मयन्त्रमित्रे गात्रेऽस्मिन्मा स्म कार्षीरत्यादरम्' इति व्याहार्षीत् ।

§ १८८. तावता 'मातुलसुते, मामतुलव्यथापाथोनिधौ पातयन्ती क्व प्रयातासि । प्रयान्ति ममासवः' इति प्रलपतः कस्यचिदचलगह्वरप्रतिरवगभीरस्वरः काननं व्यानशे । तमुपश्रुत्येयमश्वस्यन्ती युवतिरनाश्वासात्कुमारे सद्यः क्वाप्यन्तरधात्, आविरासीच्च स परुषप्रलापः

इति प्रसिद्धानां धातूनां कुम्भस्य कलशस्य, मलजम्बालस्य मलजलनील्याः स्वल्पजलाशयस्य रोगनीडस्य रोगाधारस्येति यावत् कलेवरस्य शरीरस्य अन्तःस्वरूपम् केनचित् केनापि हेतुना बहिश्चेत् तर्हि आस्तां दूरे भवतु एतस्य शरीरस्यानुभवास्था समुपभोगश्रद्धा, स्प्रष्टुं स्पर्शं कर्तुं द्रष्टुं विलोकयितुम् अथवा काकेभ्य वायसेभ्य एतद् रक्षितुं त्रातुं वा कः शक्नुयात् । समर्थो भवेत् । अतोऽस्मात् कारणात् त्वम् मक्षिकापक्षाच्छं मक्षिकापक्षवन्निर्मलं यन्मलाच्छादनचर्म तस्य छायया कान्त्या प्रतारिता प्रवञ्चिता अविवेकिनो मूढा येन तस्मिन्, अजस्रं निरन्तरं स्रंसमानं क्षरत् उद्वेलं निःसीम यन्मलसहस्रं तेन संगतानि सुषिराणि छिद्राणि यस्य तस्मिन्, संस्पर्शस्य क्षणे दूषितानि गर्हितानि समस्तप्रशस्तवस्तूनि निखिलोत्तमपदार्था येन तस्मिन्, जुगुप्सनीया घृणायोग्या पूतिगन्धयोऽशोभनगन्धयुक्ता ये दुरासदाणवस्तैर्निर्माणं यस्य तस्मिन्, कर्मैव शिल्पी कार्यकरस्तस्य कल्पनाकौशलेन रचनाचातुर्येणार्पितः प्रदत्तः पेशलभ्रमो रमणीयसंदेहो येन तस्मिन्, चर्मयन्त्रस्य मित्रं सदृशं तस्मिन् अस्मिन् गात्रे शरीरे अत्यादरमतिस्नेहं मा कार्षीः' इति ।

§ १८८. तावतेति—तावता तावत्कालेन 'मातुलसुते ! हे मातुलाङ्गजे ! माम् अतुलव्यथापाथोनिधौ अप्रतिमपीडापयोधौ पातयन्ती क्व प्रयातासि गतासि ? मम असवः प्राणाः प्रयान्ति' इति प्रलपतोऽनर्थकं ब्रुवतः कस्यचित् अचलगह्वरेषु गिरिगुहासु प्रतिरवेण प्रतिध्वनिना गभीरश्चासौ स्वरश्च शब्दश्च काननं वनं व्यानशे व्याप । तं स्वरम् उपश्रुत्य अश्वस्यन्ती मैथुनेच्छावती युवतिः कुमारे जीवकेऽनाश्वासात् आश्वासनाभावात् सद्यो झटिति क्वापि कुत्रापि अन्तरधात् तिरोहिताभूत् । परुषः प्रलापो यस्य तथाभूतः स पुरुष

रोगोंका घोंसला—घर है ऐसे शरीरका भीतरी भाग यदि किसी हेतुसे बाहर हो जाये तो इसके भोगनेकी बात तो दूर रही छूने, देखने अथवा कौओंसे इसकी रक्षा करनेके लिए भी कौन समर्थ हो सकता है ? इसलिए मक्खीके पंखके समान निर्मल एवं मलको आच्छादित करनेवाले चमड़ेकी कान्तिसे जिसने अविवेकी मनुष्योंको ठग रखा है, जिसके छिद्र निरन्तर झरनेवाले हजारों प्रकारके अत्यधिक मलोंसे व्याप्त हैं, जो स्पर्शके समय ही समस्त उत्तम वस्तुओंको दूषित कर देता है, घृणित दुर्गन्धित एवं उपेक्षणीय परमाणुओंसे जिसकी रचना हुई है और कर्मरूपी कारीगरके रचना-सम्बन्धी कौशलसे जिसे सुन्दरताका भ्रम दिया गया है ऐसे चर्मयन्त्रके समान इस शरीरमें तुम अधिक आदर मत करो ।

१८८. उसी समय 'हे मातुल पुत्री ! मुझे अनुपम दुःखरूपी सागरमें गिराती हुई तुम कहाँ चली गयी हो ? मेरे प्राण निकले जा रहे हैं' इस प्रकार प्रलाप करनेवाले किसी मनुष्यका पर्वतकी गुफाओंमें गूँजनेवाली प्रतिध्वनिसे गम्भीरताको प्राप्त हुआ शब्द वनमें व्याप्त हो गया । उस शब्दको सुन मैथुनकी इच्छा करनेवाली युवती कुमारका आश्वासन न मिलनेसे कहीं अन्तर्हित हो गयी । कठोर प्रलाप करता हुआ पुरुष प्रकट हुआ और मानसिक व्यथासे

---

१. म० अतस्तं ।

पुरुषः। अप्राक्षीच्चायमाधिक्षीणः कुमारम्—'अयि महाभाग, भागधेयविधुरोऽहं विद्यानां पारदृश्वा कोऽपि विद्याधरः। सोऽहं मम मातुलस्याङ्गजामनङ्गतिलकां नाम कन्यका[1]मुदन्योपद्रुतामिह द्रुममूले क्वचिदवस्थाप्य प्रस्थितः पुनरुपस्थितश्चानीय पानीयं महनीयाकृतिं तां तत्र बिम्बोष्ठीं न दृष्टवान्। कुमार, कुमारीयं मामिदानीमुपेक्ष्य कटाक्षेणापि नेक्षते। तथा स्निग्धामिमां मुग्धामपश्यतो मम पारवश्यान्मांसदृष्टिरिव ज्ञानदृष्टिरपि नष्टेव प्रतिभाति। किमत्र करोमि। तत्र भवतः सकाशं किमियमविशत्।' इति।

§ १८९. कुमारोऽप्यस्या[2]त्यारूढरागमूढस्य गगनचरस्य वचनमतिदीनं निशम्य 'न शाम्यति हि कर्मोपशमादृते दुर्मोचोऽयं रागरोगः। ततः खलु रागपरवशो लोकः स्वकुलं स्वशीलं स्वविभवं स्ववैभवं स्वशौर्यं स्ववीर्यं स्वपौरुषं स्ववेदनमप्येकपद एव व्युदस्य दास्यमप्यभ्युपगच्छति।

आविरासीत् प्रकटीबभूव च। आधिक्षीणोऽयं पुरुषः कुमारम् अप्राक्षीच्च—अपि महाभाग! हे महानुभाव! भागधेयविधुरः सद्भाग्यरहितोऽहं विद्यानां पारं दृष्टवानिति पारदृश्वा पारदर्शी कोऽपि विद्याधरः खगोऽस्मीति शेषः। सोऽहं मम मातुलस्य मामस्य अङ्गजां पुत्रीम् अनङ्गतिलकाम् एतन्नामधेयां नाम कन्यकाम् उदन्योपद्रुतां पिपासापीडिताम् इह क्वचित् द्रुममूलेऽवस्थाप्य समुपवेश्य प्रस्थितः प्रयातः पुनरनन्तरं पानीयं, जलमानीय उपस्थितो महनीयाकृतिं सुन्दरशरीरां तां बिम्बोष्ठीं रक्तरदनाच्छदां तत्र न दृष्टवान्। कुमार! इयं कुमारी माम् उपेक्ष्य त्यक्त्वा अन्यमिति शेषः कटाक्षेणापि केकरेणापि इदानीं साम्प्रतं नेक्षते न विलोकते। तथा तादृशं स्निग्धां स्नेहयुक्ताम् इमां मुग्धां सुन्दरीम् अपश्यतोऽनवलोकयतो मम विद्याधरस्य पारवश्याद्विवशत्वात् मांसदृष्टिरिव ज्ञानदृष्टिरपि नष्टेव प्रतिभाति प्रतीयते। अत्र विषये किं करोमि? तत्र भवतो माननीयस्य भवतः सकाशं सन्निधिं किम् इयम् अविशत्? प्रविष्टा, इति।

§ १८९. कुमारोऽप्यस्येति—कुमारोऽपि जीवंधरोऽपि अत्यारूढेनातिवृद्धेन रागेण मूढस्तस्य, अस्य गगनचरस्य विद्याधरस्य अतिदीनं दैन्यावहं वचनं निशम्य श्रुत्वा कर्मोपशमात् कर्मणामुपशमस्तस्माद् ऋते विना अयं राग एव रोगो रागरोगो दुर्मोचो दुःखेन मोक्तुं शक्यः। ततस्तस्मात् कारणात् खलु निश्चयेन रागपरवशो रागनिघ्नो नरः स्वकुलं स्ववंशं स्वशीलं स्वस्वभावं स्वविभवं स्वस्यैश्वर्यम् स्ववैभवं स्वसामर्थ्यम्, स्वशौर्यं स्वपराक्रमम् स्ववीर्यं स्वशक्तिम् स्वपौरुषं स्वप्रयत्नं स्ववेदनं स्वज्ञानमपि एकपद एव व्युदस्य त्यक्त्वा दास्यमपि अभ्युपगच्छति स्वीकरोति। रागान्धो हि अखिलेन्द्रियेणापि निखिलहृषीकेणाप्यदर्शनाद्

क्षीण होता हुआ कुमारसे पूछने लगा—हे महानुभाव! मैं भाग्यसे दुःखी विद्याओंका पारदर्शी कोई विद्याधर हूँ। मैं प्याससे पीड़ित अपने मामाकी पुत्री अनंगतिलका नामकी कन्याको यहाँ किसी वृक्षके नीचे बैठाकर गया था परन्तु पानी लेकर वापस आनेपर सुन्दर आकृतिको धारण करनेवाली उस बिम्बोष्ठीको नहीं देख रहा हूँ। हे कुमार! यह कुमारी इस समय मेरी उपेक्षा कर अन्य पुरुषको कटाक्षसे भी नहीं देखती है। उस प्रकारका स्नेह करनेवाली इस सुन्दरीको न देखनेसे परवशताके कारण मांसदृष्टिके समान मेरी ज्ञानदृष्टि भी नष्ट हुई-सी जान पड़ती है। यहाँ मैं क्या करूँ? आपके पास तो यह नहीं आयी?

§ १८९. अत्यधिक रागसे मूढ विद्याधरके दीनता-भरे उक्त वचन सुन कुमार भी विचार करने लगे कि दुःखसे छूटने योग्य यह रागरूपी रोग कर्मोपशमके बिना शान्त नहीं होता है। इसीलिए तो रागके वशीभूत हुआ यह मनुष्य अपने कुल, शील, विभव, वैभव, शौर्य, वीर्य, पौरुष और ज्ञानको भी एक साथ छोड़कर दासवृत्तिको स्वीकृत करता है। वास्तवमें रागसे अन्धा मनुष्य समस्त इन्द्रियोंसे न दिखनेके कारण अन्धेसे भी कहीं

१. क० मानिनी। २. म० कुमारोऽप्यस्याऊढरागमूढस्य।

रागान्धो ह्यखिलेन्द्रियेणाप्यदर्शनादन्धादपि महानन्धः। केचिदेव हि वशिनः किमिदं किंविषयं कीदृक्कियत्किंफलमिति विचारचतुरकर्णधारा रागसागरं सदाजागरास्तरन्ति' इत्यन्तश्चिन्तयंश्चिन्तागौरवस्फुरितखेदं खेचरमुद्दिश्य 'भो नभोग, भोगलोलुपतया किमेवं विद्याशाली खिद्यसे। विकारहेतौ सति मनश्चेद्विक्रियते विद्यास्फूर्तिः किमर्थिका। क्वचिदस्थानपातिनो जनस्य याथात्म्यमवद्योतयितुं हि विद्याक्लेशः। दुराग्रहावकुण्ठितमतेस्त्वयं कण्ठशोषणमात्रफलः स्यात्। ततस्त्वया विहन्यतामियं कन्यानुपलम्भविजृम्भिता वैपश्चित्यशालिना शालीनता। किं च किं न जानासि तरुणीनां प्रतारणं मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यदन्नु तासाम्। ताः खल्वमान्तं स्वान्तादिवोद्वान्तं काठिन्यस्वभावं कौटिल्यसंभारं रागप्राग्भारं तमःसंदोहं च स्तनद्वये नयनगमनवचनभ्रूलतास्वधर-

अन्धादपि महानन्धः। तथा चोक्तम्—'अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः। चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित्' इत्यात्मानुशासने गुणभद्रदेवेन। 'केचिदेवेति—हि निश्चयेन वशिनो जितेन्द्रिया इदं किं को विषयो यस्य तत्, कीदृक् कथंभूतं कियत् फलं यस्य तत् इति विचार एव चतुरः कर्णधारो येषां तथाभूताः केचिदेव जनाः सदा जागराः सावधानाः सन्ति रागसागरं रागपाथोधिं तरन्ति' इतीत्थम् अन्तर्मनसि चिन्तयन् विचारयन्, चिन्ताया गौरवेण स्फुरितः खेदो यस्य तथाभूतं खेचरं विद्याधरम् उद्दिश्य भो नभोग! अये विद्याधर! विद्याशाली विद्याविशोभितस्त्वम् भोगलोलुपतया भोगतृष्णया एवं किं खिद्यसे। विकारहेतौ विकृतिनिदाने सति मनश्चेतश्चेद् विक्रियते विकृतं भवति तर्हि विद्यायाः स्फूर्तिर्विद्यास्फूर्तिर्विद्याविकासः किमर्थिका किमुद्देश्यिका। क्वचित् क्वापि अस्थाने पततीत्येवंशीलस्तस्य जनस्य याथात्म्यं यथार्थस्वरूपम् अवद्योतयितुं प्रकाशयितुं हि विद्याक्लेशो विद्याध्ययनपरिश्रमो भवतीति शेषः। दुराग्रहेण दुष्टहठेनाकुण्ठिता मतिर्यस्य तस्य जनस्य तु अयं विद्याक्लेशः कण्ठशोषणमात्रं फलं यस्य तथाभूतः स्यात्। ततस्तस्मात् कारणात् वैपश्चित्यशालिना वैदुष्यशोभिना त्वया कन्याया अनुपलम्भेनाप्राप्त्या विजृम्भिता वृद्धिंगता इयमशालीनता धृष्टता 'स्यादधृष्टे तु शालीनः' इत्यमरः विहन्यताम् त्यज्यताम्। किं च अन्यच्च किं तरुणीनां प्रतारणं न जानासि। ननु निश्चयेन तासां मनसि, अन्यत्, वचसि अन्यत्; कर्मणि अन्यत् भवतीति शेषः। तास्तरुण्यः खलु निश्चयेन अमान्तं मातुमपारयन्तम् अत एव स्वान्ताच्चित्तात् उद्वान्तं निःसृतं काठिन्यस्वभावं कर्कशस्वभावं, कौटिल्यसंभारं वक्रतासमूहं तमःसंदोहं च तिमिरसमूहं च (क्रमेण) स्तनद्वये कुचयुगले, नयनं च गमनं च वचनं च भ्रूलताश्चेति नयनगमनवचनभ्रूलतास्तासु, अधरश्च करौ च

अधिक अन्धा है। कितने ही जितेन्द्रिय मनुष्य यह क्या है? किस विषयको ग्रहण करनेवाला है? कैसा है? कितना है और किस फलवाला है? इस प्रकारके विचार करनेमें निपुण हो सदा जागरूक रहते हुए इस संसार-सागरको पार करते हैं'। इस प्रकार चिन्ता करते हुए जीवन्धरस्वामी जिसे अत्यधिक खेद प्रकट हो रहा था ऐसे विद्याधरको लक्ष्य कर बोले कि 'हे विद्याधर! विद्याओंसे सुशोभित होनेपर भी इस तरह आप भोगोंमें लोलुप होनेसे क्यों खेद-खिन्न हो रहे हो? विकारका कारण मिलनेपर यदि मन विकृत हो जाता है तो फिर विद्याकी स्फूर्ति किसलिए है? किसी अस्थानमें गिरनेवाले मनुष्यको यथार्थ बात बतलानेके लिए ही विद्याका क्लेश उठाया जाता है। किन्तु जिसकी बुद्धि दुराग्रहसे कुण्ठित हो रही है उसके लिए विद्याका क्लेश कण्ठको सुखाने मात्र फलसे सहित है। आप पाण्डित्यसे सुशोभित हैं अतः आपको कन्याके न मिलनेसे बढ़नेवाली यह अधृष्टता छोड़ देनी चाहिए। इसके सिवाय क्या आप स्त्रियोंके प्रपंचको नहीं जानते हैं? उनके मनमें कुछ, वचनमें कुछ और कार्यमें कुछ अन्य ही रहता है। निश्चयसे भीतर नहीं समानेके कारण ही मानो हृदयसे बाहर प्रकट हुए काठिन्य स्वभावको स्तनयुगलमें, रागकी

करचरणेषु चिकुरभारे च वहन्त्यः कथं रागान्धजनादितरेभ्यो रोचन्ते ? तस्मादशुचिमयीनामघमयीनामपवादमयीनामनार्जवमयीनाममार्दवमयीनां मायामयीनां मात्सर्यमयीनां महामोहमयीनां कामिनीनां कपटस्नेहे न विश्वासस्त्वया कार्यः' इत्युदीरयामास ।

§ १९०. ततश्चैवमत्यद्भुतं सात्यंधरिवचनं निशम्याप्यनुपशाम्यन्मन्युभरिते तत्कन्यान्वेषणप्रवणे गते तस्मिन्गगनेचरे, वनिताजनवञ्चनाप्रपञ्चमञ्जसा साक्षात्करणेन मुहुर्मुहुः संचिन्तयन्नेव कुमारस्तस्मादियाय ।

§ १९१. तदनु च क्वचित्प्रत्यन्तवीक्ष्यमाणविषमविषाणभीषणवृषकुलवृषस्याकलहविजृम्भितनिर्घोषपूरितघोषघोषेण, क्वचित्प्रशस्तप्रदेशनिवेशितविशालशालोद्भवदतिप्रभूताध्ययनध्वनिना

चरणौ चेत्यधरकरचरणास्तेषु, चिकुरभारे च केशकलापे च, वहन्त्यो दधत्यः कथं केन कारणेन रागेणान्धो रागान्धः स चासौ जनश्चेति रागान्धजनस्तस्माद् विषयान्धपुरुषात् इतरेभ्योऽन्येभ्यो रोचन्ते ? 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इति चतुर्थी । तस्मात् कारणात् अशुचिमयीनामपवित्ररूपाणाम्, अघमयीनां पापरूपाणाम्, अपवादमयीनां निन्दामयीनाम्, अनार्जवमयीनां कौटिल्यरूपाणाम्, अमार्दवमयीनामविनयरूपाणाम्, मायामयीनां मायारूपाणां मात्सर्यमयीनामसूयारूपाणाम् महामोहमयीनां महामोहरूपाणां कामिनीनां नारीणां कपटस्नेहे मायापूर्णप्रीतौ त्वया विश्वासः प्रत्ययो न कार्यः' इति उदीरयामास कथयामास ।

§ १९०. ततश्चैवमिति—ततश्च तदनन्तरं च एवं पूर्वोक्तप्रकारम् अत्यद्भुतमत्याश्चर्यकरम् सत्यंधरस्यापत्यं पुमान् सात्यंधरिस्तस्य जीवंधरस्य वचनं निशम्यापि श्रुत्वापि अनुपशाम्यन् उपशान्तो न भवन् मन्युभरिते शोकयुक्ते तत्कन्यायाः पूर्वोक्तकन्याया अन्वेषणे मार्गणे प्रवणो लीनस्तस्मिन् गगनेचरे विद्याधरे गते सति, वनिताजनस्य ललनालोकस्य वञ्चनायाः प्रतारणायाः प्रपञ्चं विस्तारम् अञ्जसा यथार्थतया साक्षात्करणेन प्रत्यक्षकरणेन मुहुर्मुहुर्भूयोभूयः संचिन्तयन्नेव विचारयन्नेव कुमारः तस्माद्वनात् इयाय जगाम ।

§ १९१. तदनु चेति—तदनु च तदनन्तरं च, क्वचित् कुत्रचित् प्रत्यन्ते समीपे वीक्ष्यमाणा दृश्यमाना विषमविषाणैस्तीक्ष्णशृङ्गैर्भीषणं भयंकरं यद् वृषकुलं बलीवर्दसमूहस्तस्य वृषस्याकलहो मैथुनेच्छाजनितकलहस्तेन विजृम्भितो वृद्धिंगतो यो निर्घोष उच्चैःशब्दस्तेन पूरितो भृतो यो घोष आभीरवसतिस्तस्य घोषेण कलकलशब्देन, क्वचित् कुत्रापि प्रशस्तप्रदेशेषु श्रेष्ठस्थानेषु निवेशिताः स्थापिता या विशालशाला विस्तृतविद्यालयास्ताभ्य उद्भवन् उत्पद्यमानोऽतिप्रभूतोऽत्यधिको योऽध्ययनध्वनिः पठनरवस्तेन, क्वचित् कुत्रापि

अधिकताको अधर, हाथ और पैरोंमें, कुटिलताको नेत्र, गमन, वचन, तथा भ्रुकुटिलतामें और तिमिरके समूहको केशपाशमें धारण करनेवाली स्त्रियाँ रागान्धजनोंके सिवाय और किसके लिए अच्छी लगती हैं ? इसलिए अपवित्रता, पाप, अपवाद, कुटिलता, कठोरता, माया, मात्सर्य और महामोहसे तन्मय स्त्रियोंके कपटपूर्ण स्नेहमें आपको विश्वास नहीं करना चाहिए।

§ १९०. तदनन्तर इसप्रकार अत्यन्त आश्चर्यसे भरे हुए जीवन्धरस्वामीके वचन सुनकर भी जिसका खेद शान्त नहीं हुआ था, तथा जो उसी कन्याके खोजनेमें निमग्न था ऐसे उस विद्याधरके चले जानेपर स्त्रीजनोंकी मायाके प्रपंचका अच्छी तरह साक्षात्कार कर लेनेसे बार-बार उसीका विचार करते हुए जीवन्धरस्वामी उस वनसे चले गये ।

§ १९१. तत्पश्चात् जो कहीं तो समीपमें दिखाई देनेवाले विषम सींगोंसे भयंकर वृषभसमूहकी मैथुनेच्छासे उत्पन्न कलहसे वृद्धिंगत रँभानेके शब्दसे परिपूर्ण अहीरोंकी बस्तीके शब्दसे युक्त था । कहीं उत्तम स्थानमें स्थित विशाल पाठशालाओंसे उत्पन्न होनेवाले अध्ययनकी बहुत भारी ध्वनिसे सहित था । कहीं लम्बे-चौड़े विशाल कठोर स्थलोंमें लगे हुए गन्ना

क्वचिद्विशङ्कटकठिनस्थलघटितेक्षुयन्त्रकुटीरकोटिनिबिडकोलाहलेन क्वचित्पाककपिशकणिशशालिशालेयक्षितिसुलभशालिसस्यलवनतुमुलेन सर्वतश्च संचरन्नितम्बिनीपदावलम्बनलम्पटताञ्चितमञ्जुशिञ्जानमञ्जीररवेण च महितस्य मध्यदेशस्य मध्ये बिनिवेशितां विशालजालरन्ध्रविनिर्यदगुरुधूपजालविलसदकालजलदागमामभ्रंकषहर्म्यनिर्यूहनिखातनैकमणिमहःकल्पितशतमखचारुचापविभ्रमां विविधमहोत्सवताड्यमानलटहपटहपटुतररटितपर्जन्यगर्जितां शम्पाविडम्बिबिम्बाधरानिकरालोकप्रावृतां प्रावृडाभां हेमाभपुरीं हेमकोशशङ्कया विशन्विवशपौररामानयनसुमनोभिरविरामर्चितः कुमारः कमप्यनारतकुसुमाभिरामाराममगाहिष्ट, ऐक्षिष्ट च क्वचिदसकृत्प्रहितपृषत्कास्पृ-

विशङ्कटेषु विशालेषु कठिनस्थलेषु कर्कशावनिषु घटितानि स्थापितानि यानीक्षुयन्त्राणि तेषां याः कुटीरकोटयो ह्रस्वकुटीरकोटयस्तासां निबिडकोलाहलेन तीव्रतरशब्देन, क्वचित् कुत्रापि पाकेन परिणामेन कपिशाः पिङ्गला ये कणिशा मञ्जर्यस्तैः शालिन्यः शोभिन्यो याः शालेयक्षितयो व्रीहिक्षेत्रभूमयस्तासु सुलभानि सुप्राप्याणि यानि शालिसस्यानि शोभिधान्यानि तेषां लवनस्य छेदनस्य तुमुलं कलकलरवस्तेन, सर्वतश्च समन्ताच्च संचरन्त्यो भ्रमन्त्यो या नितम्बिन्यो नार्यस्तासां पदावलम्बनलम्पटतया चरणाश्रयलम्पाकतया अञ्चितानि शोभितानि मञ्जुशिञ्जानानि मधुररणितयुक्तानि यानि मञ्जीराणि नूपुराणि तेषां रवेण च शब्देन च महितस्य प्रशस्तस्य मध्यदेशस्य मध्ये विनिवेशितां स्थापिताम् विशालजालानां दीर्घगवाक्षाणां रन्ध्रेभ्यो विवरेभ्यो निर्यद् निर्गच्छद् यद् अगुरुधूमजालं कृष्णागुरुधूम्रसमूहस्तेन विलसन् शोभमानोऽकालजलदागमोऽसमयमेघागमो यस्यां ताम्, अभ्रंकषाणि गगनचुम्बीनि यानि हर्म्याणि धनिकनिकेतनानि तेषां निर्यूहेषु मत्तवारणेषु निखाताः खचिता ये नैकमणयो नानारत्नानि तेषां महसा तेजसा कल्पितो रचितः शतमखचारुचापानां शक्रसुन्दरशरासनानां विभ्रमः संदेहो यस्यां ताम्, विविधमहोत्सवेषु नैकप्रमोदायोजनेषु ताड्यमाना ये लटहपटहा मनोहरानकास्तेषां पटुतररटितमेव तीव्रतरशब्द एव पर्जन्यगर्जितं मेघस्तनितं यस्यां ताम्, शम्पाविडम्बिन्यो विद्युत्तिरस्कारिण्यो या बिम्बाधरा रक्तोष्ठ्यस्तासां निकरस्य समूहस्यालोकेन प्रकाशेन प्रावृता समाच्छादिता ताम्, अतएव प्रावृडाभां वर्षर्तुतुल्याम् उभयोः सादृश्यमुक्तप्रकारेण बोध्यम्, हेमाभपुरीं तन्नामनगरीम् हेमकोशशङ्कया काञ्चनभाण्डारसंशीत्या विशन् प्रवेशं कुर्वन् विवशा मदनविकारेण परायत्ता याः पौररामा नागरिकनार्यस्तासां नयनसुमनोभिर्लोचनलताान्तैः अविरामं निरन्तरं यथा स्यात्तथा अर्चितः पूजितः कुमारो जीवंधरः कमपि कञ्चिदप्यज्ञातनामधेयम् अनारतं शश्वत् कुसुमैः पुष्पैरभिरामो मनोहरो य आराम उद्यानं तम् अगाहिष्ट प्रविवेश। ऐक्षिष्ट च ददर्श च असकृत् वारं वारं प्रहितैर्मोचितैः पृषत्कै-

पेलनेके कोल्हुओंसे युक्त करोड़ों कुटियोंके सान्द्र कोलाहलसे पूर्ण था। कहीं पक जानेसे पीली-पीली दिखनेवाली बालोंसे सुशोभित धानके खेतोंकी भूमिमें सुलभ शालि-धानके काटनेके शब्दसे युक्त था और कहीं सब ओर चलती हुई स्त्रियोंके पैरोंका अवलम्बन लेनेकी लम्पटतासे सुशोभित मनोहर शब्द करनेवाले नूपुरोंको झनकारसे प्रसिद्ध था ऐसे मध्यदेशके मध्यमें स्थित वर्षाऋतुकी शोभाको धारण करनेवाली उस हेमाभपुरीमें जीवन्धरकुमारने प्रवेश किया कि जिसके बड़े-बड़े झरोखोंसे निकलती हुई अगुरु चन्दनकी धूम्र पंक्तिसे असमयमें ही मेघोंका आगमन सुशोभित हो रहा था। गगनचुम्बी महलोंके छज्जोंमें लगे हुए नाना प्रकारके मणियोंके तेजसे जहाँ इन्द्रधनुषोंकी सुन्दर शोभा निर्मित हो रही थी। नाना प्रकारके महोत्सवोंमें बजाये जानेवाले सुन्दर-सुन्दर नगाड़ोंके जोरदार शब्द जहाँ मेघ गर्जनाके समान जान पड़ते थे, और बिजलियोंका तिरस्कार करनेवाली स्त्रियोंके समूहके प्रकाशसे जो घिरी हुई थी। जो हेमकोशकी शंकासे उस हेमाभपुरीमें प्रवेश कर रहे थे और प्रवेश

1. क० निकरालोकप्रवृत्ताम्।

ष्टमाक्रष्टुमाम्रफलमायस्यन्तमङ्गस्यन्दिलावण्यवनं कमपि युवानम् । तदालोकनेन तदायासमपसारयितुमधिज्यधन्वनस्तस्मादयं धन्वी धनुराकृष्य पुनराततज्यमेतदातन्वन्विकृष्य मात्रया पत्रिणं प्राहिणोत् । प्रत्यगृह्णाच्च तत्रैवावस्थाय नात्यादरव्यापारितवामेतरपाणिना फलेन समं संमुखमागतं संदेशहरमिव चतुरं शरम् । पुनरालीढशोभिनस्तस्यालोक्य सात्यंधरेरधरिताखिलचापधरं चापदण्डारोपणे तदाकर्षणे शरमोक्षणे शरव्यलक्षणे च लाघवमलघु चित्रीयाविष्टः स युवा पवित्रकुमारमेनमत्यादरमयाचत—'इतो मित्र, नैजन्यायचातुर्यावसीददमित्रो दृढमित्रो नामात्र क्षत्रचूडामणिः ।

वर्णैरस्पृष्टम् आम्रफलं रसालफलम् आक्रष्टुं स्वसात्कर्तुम् आयस्यन्तं खेदमनुभवन्तम् अङ्गस्यन्दि अङ्गेभ्योऽवयवेभ्यः क्षरत् लावण्यवनं सौन्दर्यसलिलं यस्य तथाभूतं कमपि युवानम् तरुणम् । तस्य यून आलोकनं तदालोकनं तेन तदायासं युवखेदम् अपसारयितुं दूरीकर्तुम् धन्वी धनुर्धारणनिपुणोऽयं जीवकः अधिज्यं समौर्वीकं धनुर्यस्य तथाभूतात् तरुणात् धनुः कोदण्डम् आकृष्य स्वहस्ते धृत्वा पुनः एतद्धनुः आततज्यं सज्यञ्चम् आतन्वन् विस्तारयन् मात्रया मानेन 'मात्रा परिच्छदे वित्त मानेऽल्पे कर्णभूषणे' इति विश्वलोचनः, पत्रिणं वाणं प्राहिणोत् प्रजिघाय मुमोचेत्यर्थः । प्रत्यगृह्णाच्च प्रतिजग्राह च तत्रैव स्थाने अवस्थाय स्थितो भूत्वा नात्यादरं यथा स्यात्तथा व्यापारितश्चासौ वामेतरपाणिश्चेति नात्यादरव्यापारितवामेतरपाणिस्तेन उपेक्षाभावेन संचालितदक्षिणपाणिना फलेन रसालफलेन समं सार्धं संमुखं पुरस्तात् आगतं चतुरं विदग्धं संदेशहरमिव दूतमिव शरं वाणम् । पुनरनन्तरम् आलीढेन आसनविशेषेण शोभत इत्येवंशीलस्तस्य, तस्य सात्यंधरेर्जीवंधरस्य अधरिताः पराजिता अखिलचापधरा निखिलकोदण्डधरा यस्मिंस्तत्, चापदण्डारोपणे धनुर्दण्डधारणे, तदाकर्षणे तस्य सप्रत्यञ्चीकरणे, शरमोक्षणे वाणत्यजने, शरव्यलक्षणे च लक्ष्यवेधने च अलघु विपुलं लाघवं क्षिप्रकारित्वं चातुर्यं वा आलोक्य दृष्ट्वा चित्रीयाविष्ट आश्चर्ययुक्तः स युवा एनं पवित्रकुमारं जीवकम् अत्यादरं यथा स्यात्तथा अयाचत याचते स्म—'मित्र ! नैजेन स्वकीयेन न्यायचातुर्येण न्यायवैदग्ध्येनावसीदन्ति नश्यन्ति अमित्राणि शत्रवो यस्य तथाभूतो दृढमित्रो नाम क्षत्रचूडामणिर्नृपतिः अस्तीति शेषः । तस्य दृढमित्रस्य सदा सर्वदा संफुल्लं विकसितं

करते समय विवशताको प्राप्त हुई नगरकी स्त्रियाँ अपने नेत्ररूपी फूलोंसे जिनकी अविराम अर्चा कर रही थीं ऐसे जीवन्धरकुमारने वहाँ अविरल फूलोंसे सुन्दर किसी बगीचामें प्रवेश किया। और प्रवेश करते ही उन्होंने वहाँ किसी जगह एक ऐसे युवकको देखा जो बार-बार चलाये हुए बाणोंसे अस्पृष्ट आमके फलको तोड़नेका प्रयत्न कर रहा था तथा जिसके शरीरसे लावण्यरूपी जल झर रहा था।

युवकको देखनेसे उसका खेद दूर करनेके लिए उन्होंने प्रत्यंचासहित धनुषको धारण करनेवाले उस युवासे धनुष ले लिया। वे धनुष चलानेमें अत्यन्त कुशल तो थे ही अतः उन्होंने उस धनुषको फिरसे खींचकर डोरीसे सहित किया और अल्प प्रयाससे एक बाण चलाया। उन्होंने वहाँ खड़े-खड़े ही साधारण आदरसे चलाये हुए दाहिने हाथसे फलके साथ-साथ सामने आये सन्देशहरके समान चतुर बाणको वापस ले लिया। तदनन्तर आलीढ़ आसनसे सुशोभित जीवन्धरस्वामीकी धनुर्दण्डके चढ़ानेमें, उसके खींचनेमें, बाण छोड़नेमें और लक्ष्यके वेधनेमें समस्त धनुर्धारियोंको तिरस्कृत करनेवाली चतुराई देख बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त हो उस युवाने अत्यधिक आदरके साथ जीवन्धरस्वामीसे इस प्रकार याचना की।

'हे मित्र ! यहाँ अपने न्याय-सम्बन्धी चातुर्यसे शत्रुओंको दुःखी करनेवाला दृढमित्र

तस्य महिषी सदा संफुल्लवदननलिना नलिनीमतिशयाना नारी नलिनी नाम। तयोः पुत्राः सुमित्रधनमित्रादयः। तेष्ववेहि मामप्यन्यतमम्। तातपादोऽस्माकं पण्डितानत्र कोदण्डविद्यायां चिरस्य विचिनोति। तस्मात्तत्र भद्रेण यातव्यम्' इति।

§ १९२. अथ तन्निरोधेन तथेति सुदर्शनमित्रः सुमित्रेण समं व्रजन्[1] गन्धगजघटामदपरिमलमेदुरगन्धवहानि प्रणिहितमौहूर्तिकावधारितनाडिकाच्छेदनताडितपटहानि प्रबुद्धसायुधयोध[2]वृन्दप्रारब्धसंग्रामसाहसकथान्यतिधवलकञ्चुकोष्णीषधारिभिर्वारिदभयनिगूढस्थितैरिव हंसैर्गृहीतकौक्षेयकवेत्रदण्डैर्दण्डनीतिलतासंश्रयद्रुमैरिव प्रतिहारमहत्तरैरधिष्ठितानि कानिचित्कक्षान्तराण्यतिक्रम्य

वदननलिनं मुखकमलं यस्यास्तथाभूता नलिनीं कमलिनीम् अतिशयाना पराभवन्ती नलिनी नाम महिषी कृताभिषेका राज्ञी वर्तत इति शेषः। सा च स च इति तौ तयोः पुत्राः सुताः सुमित्रधनमित्रादयः सन्ति। तेषु सुमित्रादिषु मामपि अन्यतमम् एकम् अवेहि जानीहि। चिरस्य चिरकालेन अस्माकं तातपादोऽपि पितापि अत्रास्यां कोदण्डविद्यायां धनुर्विद्यायां पण्डितान् विचिनोति अन्वेषयति। तस्माद्धेतोस्तत्र नगर्यां भद्रेण भवता यातव्यं गन्तव्यम्' इति।

§ १९२. अथेति—अथानन्तरं तन्निरोधेन तदाग्रहेण तथेति—'तथास्तु' इति स्वीकृत्य सुदर्शनो मित्रं यस्य तथाभूतो जीवकः सुमित्रेण समं दृढमित्रसुतेन सह व्रजन् गच्छन्, कानिचित्कक्षान्तराणि अतिक्रम्य महति मण्डपे राजानम् अद्राक्षीत् इति कर्तृकर्मक्रियासंबन्धः। अथ कक्षान्तराणि विशेषयितुमाह—गन्धगजेति—गन्धगजानां मदस्राविमतङ्गजानां घटायाः समूहस्य परिमलेन सौगन्ध्यातिशयेन मेदुरः पुष्टो गन्धवहो वायुर्येषु तानि, प्रणिहितेति—प्रणिहिताः सावधाना ये मौहूर्तिका दैवज्ञास्तैरवधारितं निश्चितं यत् नाडिकाच्छेदनं घटिकाविभागस्तस्मिन् ताडिता अभिहताः पटहा ढक्का येषु तानि, प्रबुद्धेति—प्रबुद्धा जागृताः सायुधाः सशस्त्रा ये योधाः सैनिकास्तेषां वृन्देन समूहेन प्रारब्धाः संग्रामसाहसस्य रणावदानस्य कथा येषु तानि, अतिधवले अतिशुक्ले कञ्चुकोष्णीषे कूर्पासशिरस्त्राणे धरन्तीत्येवंशीलास्तैः वारिदानां मेघानां भयेन निगूढस्थिता अन्तर्हितस्थितास्तैः हंसैरिव मरालैरिव, गृहीता धृताः कौक्षेयकवेत्रदण्डाः कृपाणवेत्रयष्टयो यैस्तथाभूतैः, दण्डनीतिरेव लता वल्ली तस्याः संश्रयद्रुमा आश्रयतरवस्तैरिव, प्रतिहारमहत्तरैः श्रेष्ठप्रतिहारैः अधिष्ठितानि सहितानि कानिचित् कान्यपि कक्षान्तराणि कक्षावकाशान् 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये' इत्यमरः, अतिक्रम्य व्यतीत्य[3]। अथ मण्डपस्य

नामका क्षत्रचूडामणि—क्षत्रियशिरोमणि रहता है। उसकी सदा फूले हुए मुखकमलसे युक्त तथा कमलिनीको पराजित करनेवाली नलिनी नामकी स्त्री है। उन दोनोंके सुमित्र तथा धनमित्र आदि अनेक पुत्र हैं। मुझे भी उन्हींमें-से एक पुत्र समझिए। बहुत समयसे हमारे पिताजी यहाँ धनुर्विद्यामें निपुण विद्वानोंको खोज रहे हैं। इसलिए आपको उनके समीप चलना चाहिए।

§ १९२. अथानन्तर सुदर्शन यक्षके मित्र जीवन्धरस्वामी राजपुत्र सुमित्रके आग्रहसे 'तथास्तु' कह उसके साथ राजभवनकी ओर चल पड़े और क्रम-क्रमसे मदमाते हस्तिसमूहके मदकी सुगन्धिसे जहाँ वायु वृद्धिको प्राप्त हो रही थी, अपने कार्यमें सावधान रहनेवाले ज्योतिषियोंके द्वारा निश्चित घटीकी समाप्ति होनेपर जहाँ भेरी बजायी जाती थी, जागरूक एवं शस्त्रसम्पन्न योधाओंके समूहसे जिनमें संग्रामकी साहसपूर्ण कथाएँ प्रारम्भ की गयी थीं, एवं अत्यन्त सफेद चोगा और साफाको धारण करनेवाले अतएव मेघोंके भयसे छिपकर स्थित हंसोंके समान अथवा तलवार और बेंतकी छड़ीको धारण करनेवाले अतएव दण्डनीति

१. म० सुमित्रेण व्रजन्। २. म० योध। ३. म० अतीत्य।

भासुरानन्तरत्नस्तम्भजृम्भमाणप्रभापूरतरङ्गितहरिति राजलक्ष्मीनिःश्वासपरिमलेन कालागुरुधूमेन कबलितोदरे चलितबारविलासिनीनूपुररशनावलयरववाचाले क्षीरोदपुलिनमण्डलाकारविपुलविशदशयनशताकीर्णे घनतरघुसृणघनसारमृगमदपटवासकुसुमसौरभमनोहारिणि महति मण्डपे पाण्डुरमौक्तिकचन्द्रोपकाधोभागनिवेशितस्य प्रांशुपुरुषलङ्घनीयस्य समरोत्खातरिपुदन्तिदन्तारचितपादपीठस्य पट्टांशुकच्छेदच्छुरितोपधानस्याच्छाच्छदुकूलप्रच्छदस्य निर्लिप्तनैकरत्नकिरणविसरपरीतपर्यन्तस्य पर्यङ्कस्य मध्ये स्थितं सानुमत्सानुनि सुखसंनिविष्टमिव नखरायुधं पार्श्वदृश्यमानेन

विशेषणान्याह—भासुरेति—भासुरा देदीप्यमाना येऽनन्तरत्नस्तम्भा अपरिमितमणिस्तम्भास्तेषां प्रभायाः कान्त्याः पूरेण तरङ्गिताः कल्लोलिता व्याप्ता इति यावत् हरितो दिशा यस्मिंस्तस्मिन् राजलक्ष्म्या राजश्रिया निश्वासस्येव मुखमारुतस्येव परिमलो गन्धातिशयो यस्य तेन कालागुरुधूमेन कृष्णागुरुचन्दनधूम्रेण कवलितोदरे व्याप्तगर्भे, चलितेति—चलितानामितस्ततो गतानां वारविलासिनीनां वेश्यानां ये नूपुररशनावलया मञ्जीरकमेखलाकङ्कणास्तेषां रवेण शब्देन वाचाले शब्दायमाने, क्षीरोदेति—क्षीरोदस्य पयः पाथोधेः पुलिनमण्डलाकाराणि सैकततटसदृशानि यानि विपुलविशदानि विशालस्वच्छानि शयनानि पर्यङ्कास्तेषां शतेनाकीर्णे व्याप्ते, घनतरेति—घुसृणः कुङ्कुमः, घनसारः कर्पूरः, मृगमदः कस्तूरी, पटवासः सुगन्धिचूर्णम्, कुसुमानि पुष्पाणि एषां सर्वेषां द्वन्द्वः घनतरं निबिडतरं यद् घुसृणादीनां सौरभं सौगन्ध्यं तेन मनो हरतीत्येवं शीलस्तस्मिन् महति विशाले मण्डपे आस्थानास्पदे। अथ राज्ञो विशेषणान्याह—पाण्डुरेति—पाण्डुरस्य शुक्लस्य मौक्तिकचन्द्रोपकस्य मुक्ताफलमयवितानस्याधोभागे निवेशितस्य स्थापितस्य, प्रांशुपुरुषेण सून्नतपुरुषेण लङ्घनीयस्य समतिक्रमणीयस्य, समरे युद्धे उत्खाता उत्पाटिता ये रिपुदन्तिदन्ता वैरिवारणरदनास्तैरारचितं पादपीठं चरणासनं यस्य तस्य, पट्टांशुकस्य क्षौमवस्त्रस्यच्छेदेनखण्डेनच्छुरितं प्रावृतमुपधानं यस्य तस्य, अच्छाच्छस्य अतिस्वच्छस्य दुकूलस्य क्षौमस्य प्रच्छद उत्तरच्छदो यस्य तस्य, निर्लिप्तानि निःस्यूतानि यानि नैकरत्नानि विविधमाणिक्यानि तेषां किरणविसरेण रश्मिसमूहेन परितो व्याप्तः पर्यन्तः पार्श्वप्रदेशो यस्य तथाभूतस्य पर्यङ्कस्य पल्यङ्कस्य मध्ये स्थितं विद्यमानम्, अतएव सानुमतः पर्वतस्य सानु शिखरं तस्मिन् सुखसंनिविष्टं सुखेन विद्यमानं नखरायुधमिव सिंहमिव,

रूपी लताके आश्रय वृक्षोंके समान बड़े-बड़े द्वारपालोंसे जो युक्त थे ऐसे कितनी ही कक्षाओंके अन्तरालको लाँघकर उस महामण्डपमें जा पहुँचे जहाँ कि देदीप्यमान अनन्त रत्नोंके खम्भोंकी बढ़ती हुई कान्तिके पूरसे दिशाएँ लहरा रहीं थीं। जहाँ राजलक्ष्मीके श्वासोच्छ्वासके समान सुगन्धित कालागुरुके धूपसे मध्यभाग व्याप्त हो रहा था। चलती हुई वेश्याओंके नूपुर, करधनी और चूड़ियोंकी झनकारसे जो शब्दायमान था। क्षीरसागरके तटके समान विशाल एवं सफेद सैकड़ों शय्याओंसे जो व्याप्त था। तथा अत्यधिक केशर-कपूर-कस्तूरी-पटवास और फूलोंकी सुगन्धिसे जो मनको हरण करनेवाला था उस महामण्डपमें जो सफेद मोतियोंके चँदोवाके नीचे रखा हुआ था, जो किसी ऊँचे पुरुषके द्वारा लाँघनेके योग्य था, जिसके पैर रखनेकी चौकियाँ युद्धमें उखाड़े हुए शत्रुओंके हाथी-दाँतोंसे निर्मित थीं, जिसपर रखी तकियाँ रेशमी वस्त्रके खण्डोंसे व्याप्त थीं, जिसपर अत्यन्त स्वच्छ रेशमका चद्दर बिछा हुआ था, और लगे हुए, अनेक रत्नोंकी किरणोंके समूहसे जिसका समीपवर्ती प्रदेश व्याप्त हो रहा था ऐसे पर्यंकके मध्यमें स्थित उस राजाको देखा कि जो पर्वतके शिखरपर सुखसे बैठे हुए सिंहके समान जान पड़ता था। पासमें रखे हुए पद्मराग मणि

१. म० पाण्डर।

पद्मरागमुकुरेण रविणेवोदयनियोगप्रार्थनागतेनोपास्यमानमन्तिकस्थितमणिस्तम्भसंक्रान्तप्रतिबिम्बमिषादनिमेषैरिवावनितलास्पर्शिपदैरासेव्यमानम्, पराक्रमेणेवोत्पादितम्, साहसेनेव संनिवेशितम्, अवष्टम्भेनेवोद्भावितम्, महासत्त्वतयेव निर्वर्तितम्, दर्पमिव गृहीतदेहम्, उत्साहमिव राशीकृतं राजानमद्राक्षीत् ।

§ १९३. तदनु च दृढमित्रमहाराजोऽपि सुमित्रनिवेदितकुमारचापाचार्यकश्रवणेन प्रगुणितसंभ्रमः साकूतमेनं समालोक्य 'केवलत्वेऽप्यकेवलपुरुषतामस्य वपुरवर्णं वर्णयति' इत्यन्तश्चिन्तयंस्तत्प्रकोष्ठप्रतिष्ठितज्याघातरेखाद्वयसौष्ठवातिशयेन काष्ठागतशंभरश्चापभृतामयं भूभृदिति संभावयन् 'असंभविभवदागमनस्य फलमनुभवन्तु मम पुत्राः । सुमित्राद्यन्तेवासिभिः समं तद्गमयन्न-

पार्श्वदृश्यमानेन निकटावलोक्यमानेन पद्मरागमुकुरेण लोहिताभमणिमुकुरन्देन उदयनियोगस्य प्रार्थनायै आगतस्तेन रविणा सूर्येण उपास्यमानमिव सेव्यमानमिव, अन्तिकस्थितेषु निकटस्थितेषु मणिस्तम्भेषु संक्रान्तानि प्रतिफलितानि यानि प्रतिबिम्बानि तेषां मिषाद् व्याजात् अवनितलास्पर्शि भूतलास्पर्शि पदं येषां तथाभूतैः अनिमिषैः देवैः आसेव्यमानमिव, पराक्रमेण शौर्येण उत्पादितमिव रचितमिव, साहसेन अवदानेन संनिवेशितमिव संस्थापितमिव, अवष्टम्भेन बलेन उद्भावितमिव प्रकटितमिव, महासत्त्वतया महाशक्त्या निर्वर्तितमिव रचितमिव, गृहीतदेहं धृतशरीरं दर्पमिव गर्वमिव, राशीकृतं पुञ्जीकृतम् उत्साहमिव राजानम् दृढमित्रम् अद्राक्षीत् ।

§ १९३. तदनु चेति—तदनु च तदनन्तरं च सुमित्रेण स्वपुत्रेण निवेदितं कुमारस्य जीवंधरस्य यत् चापाचार्यकं धनुर्विद्यागुरुत्वं तस्य श्रवणेन समाकर्णनेन प्रगुणितः प्रचुरीभूतः संभ्रमः समादरो यस्य तथाभूतः सन् एनं साकूतं साभिप्रायं समालोक्य दृष्ट्वा 'अस्य वपुः शरीरं केवलत्वेऽपि—एकाकित्वेऽपि न केवलं पुरुष इत्यकेवलपुरुषस्तस्य भावस्ताम् अनेकपुरुषयुक्ततां पक्षेऽसाधारणपुरुषतां च अवर्णं निरक्षरं वर्णयति प्रकटयति' इतीत्थम् अन्तश्चेतसि चिन्तयन् विचारयन् तस्य कुमारस्य प्रकोष्ठे मणिबन्धोपरितनप्रदेशे प्रतिष्ठितं विद्यमानं यद् ज्याघातस्य प्रत्यञ्चाघातस्य रेखाद्वयं लेखायुगलं तस्य सौष्ठवातिशयेन सौन्दर्यातिशयेन काष्ठागतश्चरमसीमानं प्राप्तः शंभरः सुखसमूहो यस्य तथाभूतः सन् 'अयं चापभृतां धनुर्धारिणाम् भूभृत् स्वामी' इति संभावयन् सत्कुर्वन्, 'असंभवि अतर्कितोपस्थितं यद् भवदागमनं तस्य फलं मम पुत्रा अनुभवन्तु प्राप्नुवन्तु । तत्तस्मात् सुमित्राद्यन्तेवासिभिः सुमित्रादिछात्रैः समं सार्धम् कानिचित्

निर्मित दर्पणसे जो ऐसा जान पड़ता था मानो उदय कालमें होनेवाली प्रार्थनाके लिए आगत सूर्य ही उसकी उपासना कर रहा हो। समीपमें स्थित मणिमय खम्भोंमें पड़ते हुए प्रतिबिम्बके बहाने जो ऐसा जान पड़ता था मानो पृथ्वीतलका स्पर्श नहीं करनेवाले पैरोंसे युक्त देव ही उसकी सेवा कर रहे हों। जो पराक्रमसे ही मानो उत्पन्न हुआ था, साहससे ही मानो युक्त था, अवलम्बनसे ही मानो उद्भावित था, महाशक्तिसे ही मानो रचा गया था। जो मानो शरीरधारी अहंकार ही था और पुंजीकृत मानो उत्साह ही था।

§ १९३. तदनन्तर सुमित्रके द्वारा निवेदित कुमारके धनुर्विषयक पाण्डित्यके सुननेसे जिनका आदर कई गुणा बढ़ गया था ऐसे दृढ़मित्र महाराज भी खास अभिप्रायपूर्वक कुमारको देख मन-ही-मन विचार करने लगे कि इनका शरीर एक होनेपर भी चुपचाप कह रहा है कि 'यह केवल पुरुष नहीं हैं—साधारण मनुष्य नहीं हैं'। कुमारकी कोहनियोंसे कुछ नीचेके भागपर स्थित प्रत्यंचाके आघातकी दो रेखाओंकी सुन्दरता देखनेसे महाराजके सुखका भार अपनी चरम सीमापर पहुँच गया और वे समझने लगे कि 'यह धनुर्धारियोंका राजा है'। दृढ़मित्र महाराजने जीवन्धरकुमारसे यह कहते हुए बहुत भारी प्रार्थना की

हानि कानिचिदवन्ध्यामिमां तनोतु वसुंधरां भवान्' इति सात्यंधरिमतुच्छमुपच्छन्दयामास ।

§ १९४. अथैवमत्युल्बणधरणीपतिनिर्बन्धेन बन्धुप्रियतया च कृतावस्थितेर्गन्धर्वदत्तापतेः कतिषु च दिनेषु हेलया तत्र विलयं गतेषु, सुमित्रादिराजपुत्रेष्वप्यस्त्रकोविदात्कुमारादधिगतशस्त्रेतरसमस्तशास्त्रेषु जातेषु, कदाचन धात्रीपतिः पुत्राणां करिरथतुरगायुधविषयविविधपाटवेष्वप्रतिभटतां तत्तत्कर्मण्यलंकर्मीणैरत्यादृतामत्याहितस्तिमितचक्षुःप्रेक्षमाणः प्रीतिप्राग्भारपारंगतः 'कुमार, भवदनुग्रहादद्याहमस्मि पुत्रवान् । पुत्री नश्चापाचार्यस्य भार्येति नियमिता नैमित्तिकैर्गात्रबद्धेन क्षात्रधर्मेणैव भवता पतिमती भूयात्' इति भूयो भूयोऽपि प्रार्थयामास । पार्थिवकुमारोऽपि तदीया-

कतिपयानि अहानि दिनानि गमयन् भवान् इमां वसुन्धराम् अवन्ध्यां सफलां तनोतु करोतु' इतीत्थं सात्यंधरिं जीवंधरम् अतुच्छं प्रभूतं यथा स्यात्तथा उपच्छन्दयामास प्रार्थनयानुकूलयामास ।

§ १९४. अथैवमिति—अथानन्तरम् एवमनेन प्रकारेण अत्युल्बणश्चासौ धरणीपतिनिर्बन्धश्चेति अत्युल्बणधरणीपतिनिर्बन्धस्तेन प्रभूतभूपत्याग्रहेण बन्धुप्रियतया च कृतावस्थितेः विहितावस्थानस्य तस्य गन्धर्वदत्तापतेः कतिषु च दिनेषु कतिपयवासरेषु हेलयानायासेन तत्र दृढमित्रराजधान्यां विलयं गतेषु प्राप्तेषु सत्सु सुमित्रादिराजपुत्रेष्वपि अस्त्रकोविदात् शस्त्रविशारदात् कुमारात् अधिगतानि विज्ञातानि शस्त्रेतराणि समस्तशास्त्राणि यैस्तथाभूतेषु जातेषु सत्सु कदाचन कस्मिन्नपि काले धात्रीपतौ राजा पुत्राणां करिरथतुरगायुधविषयविविधपाटवेषु गजस्यन्दनहयारोहणशस्त्रविषयनैकविधवैदग्ध्येषु तत्तत्कर्मणि तत्तत्कार्येषु अलंकर्मीणैः निपुणैः अत्यादृताम् अप्रतिभटतामसमानताम् अत्याहितेन अत्याश्चर्येण स्तिमिते निश्चले चक्षुषी यस्य तथाभूतः सन् प्रेक्षमाणो विलोकमानः प्रीतिप्राग्भारस्य प्रीतिसमूहस्य पारंगतः चरमसीमानं प्राप्तः 'कुमार ! भवतोऽनुग्रहस्तस्माद् भवत्कृतोपकारात् अद्याहम् पुत्रवान् अस्मि । नोऽस्माकं पुत्री चापाचार्यस्य धनुर्विद्यानिष्णातस्य भार्या भविष्यति, इति नैमित्तिकैर्निमित्तज्ञानिभिर्नियमिता निश्चिता गात्रबद्धेन शरीरधारिणा क्षात्रधर्मेणेव भवता पतिमती भूयात् भवतु' इतीत्थं भूयो भूयोऽपि पुनःपुनरपि प्रार्थयामास । पार्थिवकुमारोऽपि सत्यंधरमहीपालपुत्रोऽपि तदीयार्थितया तत्प्रार्थनया तदर्थस्य तत्कार्यस्य तथाभवितव्यतया च दिव्ये श्रेष्ठे मुहूर्ते पूर्तिमन्तं पूर्णमानन्दं हर्षं बिभर्तीति पूर्तिमदानन्दभृत्

कि 'हमारे पुत्र आपके इस असंभाव्य आगमनका फल प्राप्त करें। आप सुमित्र आदि विद्यार्थियोंके साथ कुछ दिन व्यतीत करते हुए इस पृथ्वीको सार्थक करें'।

§ १९४. अथानन्तर राजाके इस प्रकारके बहुत भारी आग्रहसे बन्धुप्रिय होनेके कारण जीवन्धरस्वामी वहाँ रहने लगे। उनके वहाँ रहते हुए जब अनायास ही अनेक दिन व्यतीत हो गये और सुमित्र आदि राजपुत्र जब अस्त्रविद्याके पण्डित जीवन्धरकुमारसे अस्त्र तथा अन्य समस्त शास्त्रोंको सीख चुके तब किसी समय राजाने अत्यन्त निश्चल नेत्रोंसे देखा कि हमारे पुत्र हाथी, घोड़ा तथा रथकी सवारी और शस्त्रविषयक नाना प्रकारकी चतुराइयोंमें असाधारणताको प्राप्त हो गये हैं। ऐसी असाधारणताको जिसका कि तत्तद् विषयोंके ज्ञाता मनुष्य अत्यन्त आदर करते हैं। देखते-देखते प्रीतिकी परम सीमाको प्राप्त हो जीवन्धरकुमारसे बार-बार यही प्रार्थना करने लगे कि "हे कुमार! आपके अनुग्रहसे मैं आज पुत्रवान् हुआ हूँ। 'हमारी पुत्री चापाचार्य—धनुर्विद्याके आचार्यकी स्त्री होगी' ऐसा निमित्तज्ञानियोंने कह रखा है। सो वह शरीरधारी क्षात्रधर्मके समान आपसे पतिमती हो—आप उसे स्वीकृत करें"

१. क० ख० ग० विलम्बं गतेषु ।

षितया तदर्थस्य तथाभवितव्यतया च दिव्ये[1] मुहूर्ते पूर्तिमदानन्दभृता महीभृता स्वविभवस्य स्ववैभवस्य सुतानुरागस्याप्यनुगुणसंविधा[2]पुरःसरं विधिवदतिसृष्टां तदङ्गयष्टिसंस्पर्शनपुनरुक्तचकासदविरलकनकाभरणोज्ज्वलां कनकमालामनघगुणभूषणो द्विजहूयमानपवनसखसाक्षिकं परिणिनाय।

§ १९५. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ कनकमालालम्भो नाम सप्तमो लम्भः।

■

तेन महीभृता राज्ञा दृढमित्रेण स्वविभवस्य निजसंपत्तेः स्ववैभवस्य निजसामर्थ्यस्य सुतानुरागस्यापि अनुगुणसंविधापुरस्सरमनुकूलसामग्रीसहितं यथा स्यात्तथा विधिवत् यथाविधि अतिसृष्टां दत्ताम् तदङ्गयष्ट्याः तच्छरीरयष्ट्याः संस्पर्शनेन पुनरुक्तं यथा स्यात्तथा चकासन्ति शोभमानानि यानि अविरलकनकाभरणानि निरन्तरसुवर्णालङ्करणानि तैरुज्ज्वलां शोभिनीम् कनकमालां तन्नामपुत्रीम्, अनघगुणा एव निर्दोषगुणा एव भूषणानि यस्य तथाभूतोऽयं जीवकः द्विजैर्विप्रैर्हूयमानः पवनसखः साक्षी यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा परिणिनाय उद्वोढ।

§ १९५. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ कनकमालालम्भो नाम सप्तमो लम्भः।

■

निर्दोष गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले राजकुमार–जीवन्धरस्वामी भी उस कन्याको चाहते थे अथवा उस कार्यकी भवितव्यता ही ऐसी थी इसलिए उन्होंने दिव्य मुहूर्तमें पूर्ण आनन्दको धारण करनेवाले राजा दृढमित्रके द्वारा अपनी सामर्थ्य, अपने ऐश्वर्य और पुत्रीके अनुरागके अनुरूप सामग्रीके साथ-साथ विधिपूर्वक दी हुई उस कनकमालाको कि जो शरीरयष्टिके स्पर्शसे चमकते हुए स्वर्णमय आभूषणोंसे अत्यन्त उज्ज्वल जान पड़ती थी, ब्राह्मणोंके द्वारा होमी हुई अग्निकी साक्षीपूर्वक विवाहा।

§ १९५. इसप्रकार श्रीमद्वादीभसिंहसूरिके द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें कनकमालालम्भ नामका सातवाँ लम्भ समाप्त हुआ ॥७॥

■

१. म० भवितव्यतया दिव्ये। २. क० ग० संविधानपुरस्सरम्।

अष्टमो लम्भः

§ १९६. अथ तामव्याजरमणीयां गरुडवेगसुतारमणः पाणीकृत्य पाणिगृहीतीं गृहीतातिमात्रव्रीडार्गलां निरर्गलमवगाहितुमप्रगल्भः स्वैरावगाहनविधायिविविधोपक्रमविशृङ्खलीकृतमदनमदान्धगन्धसिन्धुरत्रोटितत्रपापरिघामप्रतीपः समवगाह्य तस्याः प्रणयकलहे दास्येन प्रकृतिस्थितावुपास्यभावेन च सुचिरमरीरमत।

§ १९७. एवमधिकाभिरामां रामामविरामं रमयतस्तस्य साहाय्यं संपादयितुमिव गाढायां शरदि, सात्यंधराविव सत्कविभिः सातिशयप्रकाशे सति चन्द्रमसि, संमार्जति दृढसम्यक्त्व इव जडसंपर्कसमागतसन्मार्गकलङ्कपङ्कं पतङ्गे, कवचहरदारक इव निरस्तनीरदावस्थे सति तारकाव-

§ १९६. अथेति—अथ परिणयनानन्तरम् गरुडवेगसुताया गन्धर्वदत्ताया रमणो वल्लभो जीवंधरः अव्याजरमणीयां स्वभावसुन्दरीं तां पाणिगृहीतीं पाणीकृत्य विवाह्य गृहीतोऽङ्गीकृतोऽतिमात्रं व्रीडार्गलो लज्जापरिघो यया तां कनकमालां निरर्गलं निष्प्रतिबन्धं यथा स्यात्तथा अवगाहितुं समुपभोक्तुम् अप्रगल्भोऽसमर्थः सन् स्वैरावगाहनस्य स्वच्छन्दोपभोगस्य विधायिनो ये विविधा उपक्रमा नानोपायास्तैर्विशृङ्खलीकृतः स्वच्छन्दीकृतो यो मदन एव मार एव मदान्धगन्धसिन्धुरो मत्तमतङ्गजस्तेन त्रोटितः खण्डितस्त्रपापरिघो लज्जार्गलो यस्यास्तथाभूताम् अप्रतीपोऽनुकूलः समवगाह्य प्रविश्य समुपभुज्येति यावत् तस्याः कनकमालायाः प्रणयकलहे दास्येन प्रकृतिस्थितौ स्वभावस्थितौ उपास्यभावेन च स्वामिभावेन च सुचिरम् अरीरमत् रमयामास।

§ १९७. एमिवति—एवमनेन प्रकारेण अधिकाभिरामामतिसुन्दरीं रामां रमणीम् अविरामं निरन्तरम् रमयतः क्रीडयतः तस्य जीवंधरस्य साहाय्यं संपादयितुमिव कर्तुमिव शरदि शरदृतौ गाढायां सत्याम्, सात्यंधराविव जीवंधर इव चन्द्रमसि शशिनि सत्कविभिः नक्षत्रशुक्रग्रहैः पक्षे साधुकविभिः सातिशयः प्रचुरः प्रकाशो यस्य तथाभूते सति, दृढसम्यक्त्वे परमावगाढसम्यग्दर्शन इव पतङ्गे सूर्ये डलयोरभेदात् जलसंपर्केण समागतः संप्राप्तः सन्मार्गे समीचीनमार्गे यः कलङ्कपङ्कः कलङ्ककर्दमस्तं पक्षे जडसंपर्केण मूढजनसंप्रयोगेण समागतो यः सन्मार्गे जैनमार्गे कलङ्कः पङ्क इव तं संमार्जति सति दूरे कुर्वति सति, कवचहरश्चासौ दारकश्चेति कवचहरदारकस्तस्मिन्निव वर्मधारणयोग्यावस्थापन्नबालक इव तारका-

§ १९६. अथानन्तर गरुडवेग विद्याधरकी पुत्री—गन्धर्वदत्ताके पति जीवन्धरकुमार उस स्वभाव सुन्दरी कनकमाला कन्याको विवाह कर चिर काल तक उसे रमण कराते रहे। प्रारम्भमें उसने अत्यधिक लज्जारूपी अगलको ग्रहण कर रखा था अतः स्वतन्त्रतापूर्वक अवगाहन करनेमें समर्थ नहीं हो सके। परन्तु स्वतन्त्रतापूर्वक अवगाहन करानेवाले नाना उपायोंसे शृंखलारहित किये हुए कामरूपी मदमाते गन्धहस्तीने जब उसके लज्जारूपी अर्गलको तोड़ डाला तब अनुकूल हो उसका अच्छी तरह अवगाहन करने लगे। वे प्रणयकलहके समय दास भावसे और प्रकृतिस्थ रहनेपर उपास्य भावसे—स्वामी रूपसे उसका उपभोग करते थे।

§ १९७. इस प्रकार अत्यधिक सुन्दरी स्त्रीको रमण कराते हुए जीवन्धरकुमारकी सहायता करनेके लिए ही मानो प्रौढ़ शरद् ऋतु आ पहुँची। उत्तम कवियोंसे जीवन्धरकुमारके समान चन्द्रमा सातिशय प्रकाशसे युक्त हो गया। जिस प्रकार दृढ़ सम्यग्दर्शन जड़—मूर्ख मनुष्योंके संपर्कसे आगत सन्मार्ग—समीचीन मार्गके कलंकरूप पंकको धो डालता है उसी प्रकार सूर्य जड़—जलके सम्पर्कसे आगत सन्मार्ग-समीचीन मार्ग अथवा

र्त्मनि, सुजनहृदय इव निर्मलीभवति ह्रदनिवहे, नवयौवनसव्रीडयोषिज्जघनानीव पुलिनानि शनैः-शनैः प्रदर्शयन्तीषु नदीषु, अराजवति राष्ट्र इव मधुपपेटकाक्रान्ते कुसुमितविटपिनि, गलितयोग्यकाले शैलूष इव नर्तनं त्यजति नर्तनप्रिये, मानिनीजनमञ्जुवाचमुपलब्धुं योग्यां कुर्वत्स्विव निकामं कूजत्सु कोकिलेषु, भास्वत्सूर्यकिरणगुरुपादभक्त्या भव्यमनसीव स्फारविकासिनि पद्मसरसि, शरदन्वितकुसुमशरे मरुदुपेतमरुत्सख इव दुरुत्सहप्रतापिनि, नातिशीतलोष्णैः सुराजचेष्टितैरिवाभीष्टैः

वर्त्मनि नभसि निरस्ता दूरीकृता नीरदानां मेघानाम् अवस्था सत्त्वं यस्मिंस्तस्मिन्निव पक्षे निरस्ता दूरीकृता नीरदा दन्तरहितावस्था येन तथाभूते, सुजनहृदय इव सज्जनचेतसीव ह्रदनिवहे तडागसमूहे निर्मलीभवति स्वच्छीभवति पक्षेऽपगतकालुष्ये सति, नदीषु तटिनीषु नवयौवनेन नूतनतारुण्येन सव्रीडाः सलज्जा या योषितस्तरुण्यस्तासां जघनानीव नितम्बस्थलानीव शनैः शनैः पुलिनानि तटानि प्रदर्शयन्तीषु प्रकटयन्तीषु सतीषु, अराजवति राजरहिते राष्ट्र इव देश इव कुसुमितविटपिनि पुष्पितपादपे मधुपानां भ्रमराणां पक्षे मद्यपायिनां पेटकेन समूहेनाक्रान्ते व्याप्ते सति, गलितो निर्गतो योग्यकालोऽर्हावसरो यस्य तथाभूते शैलूष इव नट इव नर्तनप्रिये मयूरे नर्तनं नृत्यं त्यजति सति, कोकिलेषु पिकेषु मानिनीजनस्य स्त्रीजनस्य मञ्जुवाचं मनोहरवाणीम् उपलब्धुं प्राप्तुं योग्यां गुणनिकाम् अभ्यासमित्यर्थः 'योग्या गुणनिकाभ्यासः' इति धनंजयः, कुर्वत्स्विव निकाममत्यन्तं कूजत्सु शब्दं कुर्वाणेषु, भास्वन्तो देदीप्यमाना ये सूर्यकिरणाः किरणमालिकिरणास्ते गुरुपादा गुरुचरणा इवेति भास्वत्सूर्यकिरणगुरुपादास्तेषां भक्त्या सेवनेन पद्मसरसि कमलाकरे भव्यमनसीव भव्यजनचेतसीव स्फारविकासिनि स्फारमत्यर्थं विकसतीत्येवंशीलस्तथाभूते प्रफुल्ले प्रहृष्टे च सति भव्यमनःपक्षे भास्वत्सूर्यकिरणा इव गुरुपादा निर्ग्रन्थचरणास्तेषां भक्त्या गाढानुरागेणेति समासो ज्ञेयः, शरदा शरदृतुनान्वितः सहितः कुसुमशरः कामस्तस्मिन् मरुदुपेतः पवनोपेतश्चासौ मरुत्सखश्चेति वह्निश्चेति तस्मिन्निव दुरुत्सहं यथा स्यात्तथा प्रतपतीत्येवंशीलस्तस्मिन् सति अथवा दुरुत्सहप्रतापो विद्यते यस्य तथाभूते सति, सुराजचेष्टितैरिव सुनृपचेष्टितैरिव नातिशीतलोष्णैर्नातिशान्ताशान्तैः पक्षे नातिशिशिरोष्णैः अभीष्टैरनुकूलैः कशिपुभिर्भोजनाच्छादनैः निकाममत्यन्तं काममभिलषितं ददातीति कामदायी स

आकाशके कलंकरूप पंकको धोने लगा। कवचको धारण करनेवाला बालक जिस प्रकार नीरदावस्था—दाँतरहित अवस्थाको दूर कर देता है उसी प्रकार आकाशने भी नीरदावस्था—मेघोंकी स्थितिको दूर कर दिया। तालाबोंके समूह सज्जनोंके हृदयके समान निर्मल हो गये। जिस प्रकार नव-यौवनसे लजीली स्त्रियाँ धीरे-धीरे अपने नितम्बस्थल प्रकट करती हैं उसी प्रकार नदियाँ भी धीरे-धीरे अपने तट प्रकट करने लगीं। जिस प्रकार समीचीन राजासे रहित राष्ट्र मधुपपेटक—मद्यपायी लोगोंके समूहसे आक्रान्त रहता है उसी प्रकार फूलोंसे व्याप्त वृक्ष मधुपपेटक—भ्रमरसमूहसे व्याप्त हो उठे। जिस प्रकार नृत्यके योग्य समय निकल जानेपर नट नृत्यको छोड़ देता है उसी प्रकार नृत्यके योग्य वर्षाका समय निकल जानेपर मयूरने नृत्य छोड़ दिया। कोयलें अत्यधिक शब्द करने लगीं जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो मानवती स्त्रियोंके मनोहर वचन प्राप्त करनेके लिए अच्छे वचन बोलनेका अभ्यास ही कर रही थीं। जिस प्रकार गुरुओंके चरणोंकी भक्तिसे भव्य जीवोंका मन अत्यधिक खिल उठता है उसी प्रकार देदीप्यमान सूर्यकी किरणोंकी भक्तिसे कमल सरोवर अत्यधिक खिल उठे। जिस प्रकार वायुसे सहित अग्नि असहनीय प्रताप—तेजसे युक्त हो जाती है उसी प्रकार शरद् ऋतुसे सहित कामदेव असहनीय प्रतापसे युक्त हो गया। उस शरद् ऋतुके आनेपर उत्तम राजाकी चेष्टाओंके समान न अत्यन्त शान्त और

कशिपुभिर्निकामं कामदायिकामदेवसदातन[1] समाराधनलम्पटयोस्तयोर्दम्पत्योरनुक्षणं साभोगतां भजति संभोगजाते, जातु स्वप्नावलोकितस्वामिवियोगशोकपावकार्चिश्छटारूढगाढमूर्च्छाक्रान्तां कान्ताम् 'भीरु किमस्थाने कातर्येण। को नाम कृशोदरि, त्वां प्रतार्य प्रयातुं प्रकमते। मुग्धे, किमेवं मां दग्धहृदयमनिदानमातनोषि। सुराङ्गनामपि सुरापेक्षिणी कुलीनोपेक्षिणी चेयमसतीति तवानवद्यकटाक्षविक्षेपपर्यायदुरुपलम्भसंपत्संभारोपलम्भदुर्ललित[2]मस्मन्मनः सुतरामवहेलयति; किमुतापरां तरुणीम्: ततः कथमन्यत्र गतस्य मे सप्राणता। प्राणसमे, प्राणैर्विना को नाम

चासौ कामदेवश्च तस्य सदातनं शाश्वतिकं यत् समाराधनं सेवनं तस्मिन् लम्पटयोः संसक्तयोस्तयोः जाया च पतिश्चेति दम्पती तयोः 'जायाया जम्भावो दम्भावश्च वा निपात्यते' इति वार्तिकेन जायास्थाने दम्भा० निपातितः कनकमालाजीवंधरयोः संभोगजाते संभोगसमूहे अनुक्षणं समये समये साभोगता विस्तारं भजति प्राप्नुवति सति, जातु कदाचित् स्वप्ने स्वापेऽवलोकितो दृष्टो यः स्वामिवियोगो वल्लभविप्रलम्भस्तेन यः शोकपावकः शोकाग्निस्तस्यार्चिषां ज्वालानां छटया समूहेनारूढा प्राप्ता या गाढमूर्च्छा तयाक्रान्तां युक्तां कान्तां कनकमालां 'भीरु! हे भयशीले! अस्थाने कातर्येण दैन्येन किम्? कृशोदरि तनूदरि! त्वां प्रतार्य वञ्चयित्वा को नाम प्रयातुं गन्तुमीहते चेष्टते। मुग्धे! सुन्दरि! मूर्खे! वा एवमनेन प्रकारेण माम् अनिदानमकारणम् दग्धहृदयं दुःखितम् अतनोषि करोषि। तव भवत्याः, अनवद्यो निर्दुष्टः कटाक्षविक्षेप एव पर्यायो यस्य तथाभूतो यो दुरुपलम्भसंपत्संभारो दुर्लभसंपत्तिसमूहस्तस्योपलम्भेन दुर्ललितं गर्वविशिष्टम् अस्मन्मनो मच्चित्तं सुराङ्गनामपि देवाङ्गनामपि सुरापेक्षिणी सुरां मदिरामपेक्षत इति पक्षे सुरां देवमपेक्षत इतिशीला, कुलीनोपेक्षिणी कुले भवः कुलीनो योग्यवंशोद्भवस्तमुपेक्षत इति पक्षे कौ पृथिव्य लीनः स्थितस्तमुपेक्षत इत्येवंशीला च, इयं सुराङ्गना असती कुलटा पक्षेऽविद्यमाना इतीत्थं सुतरामत्यन्तम् अवहेलयति उपेक्षितां करोति। अपरामन्यां तरुणीं युवतीं किमुत। ततस्तस्मात्कारणात् अन्यत्र गतस्य त्वां त्यक्त्वान्यत्र गतस्य मे सप्राणता प्राणैः सहित इति सप्राणस्तस्य भावः सप्राणता जीवित्वं

न अत्यन्त उग्र (पक्षमें न अत्यन्त शीतल और न अत्यन्त गरम) इच्छानुरूप भोजन तथा वस्त्रादिसे, मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले कामदेवकी सदाकालिक आराधनाके लम्पट उन दोनों दम्पतियोंके भोगोंका समूह जब प्रतिक्षण विस्तारको प्राप्त हो रहा था तब किसी समय स्वप्नमें दिखे हुए स्वामीके वियोगजन्य शोकरूपी अग्निकी ज्वालाओंके समूहसे उत्पन्न अत्यधिक मूर्च्छासे युक्त कान्ताको देख जीवन्धरकुमार उसे इस प्रकार सान्त्वना देने लगे—हे भीरु! अस्थानमें भय करनेसे क्या लाभ है? हे कृशोदरि! तुम्हें छलकर जानेके लिए कौन समर्थ है? भोली! क्यों इस तरह मुझे अकारण ही दग्ध हृदय कर रही हो? तुम्हारे निर्दोष कटाक्षविक्षेपरूप दुर्लभ सम्पत्तिका समूह प्राप्त होनेसे अस्त-व्यस्त हुआ हमारा मन 'यह सुरापेक्षिणी—सुरा अर्थात् मदिराकी अपेक्षा रखती है और कुलीनोपेक्षिणी उच्च कुलीन मनुष्यकी उपेक्षा रखती है अतः असती है (पक्षमें सुरापेक्षिणी—देवोंकी अपेक्षा रखती है और कुलीनोपेक्षिणी—पृथ्वीपर स्थित मनुष्योंकी उपेक्षा रखती है)—ऐसा विचारकर सुरांगना—देवीकी भी अत्यन्त उपेक्षा करता है फिर दूसरी तरुणीकी तो बात ही क्या है? दूसरी जगह जानेपर मैं जीवित कैसे रह सकता हूँ? हे प्राणसमे! प्राणोंके बिना

१. क० ख० ग० सनातन। २. क० ख० ग० दुर्ललितम्—गर्वविशिष्टम् (टि.)।

जगति सजीवः स्यात्।' इति समाश्वासयन्तं जीवककुमारं सादरमुपसृत्य रचितलीलाञ्जलि-रुन्निद्रशतपत्रातिशायिवक्त्रा काचन धात्री[1] साहित्यमेवं प्रवर्तयामास गिरम्—'अयि कुमार, गोसर्ग एवाहमायुधश्रमशालामभिपतन्ती तत्र स्वपन्तं कमपि भवन्तमेव विभाव्य प्रणयकलहव्याजप्रसज-दुद्दाममन्युभरपराचीनां भर्तृदारिकामनादृत्य 'किमत्राशयिष्ट कुमारः' इत्यनुशयाविष्टा तत्क्षण एव तस्मात्प्रतिनिवृत्य वत्सामिमां भर्त्सयितुं सत्वरमुपसरामि। दृश्यते भवानत्र। सर्वथा सादृश्यभ्रमसंविधावचतुरः स कुमारः कः स्यात्।' इति।

§ १९८. कनकमालादयितोऽप्यनवसितवचस्येव तस्यामाविर्भवदनुजविषयाध्यानः 'को नाम सुकृतिसुलभसुकृतोदयं समयं विनिश्चिनोति। नभश्चराधीशसुतोपदेशेन नन्दाढ्यः किमागतः। सा

कथम्। प्राणसमे! हे प्राणतुल्ये! जगति प्राणैरसुभिर्विना को नाम सजीवः स्यात्।' इति समाश्वासयन्तं सान्त्वनां ददतं जीवककुमारं सादरं सविनयम् उपसृत्य तस्य समीपमागत्य रचिता कृता लीलाञ्जलि यया तथाभूता बद्धहस्तपुटा उन्निद्रशतपत्रातिशायि विकसितारविन्दपराभवि वक्त्रं मुखं यस्यास्तथाभूता काचन धात्री साहित्यं साश्चर्यम् एवं गिरं वाणीं प्रवर्तयामास—'अयि कुमार! गोसर्ग एव प्रत्यूष एवाहम् आयुधश्रमशालां शस्त्राभ्यासभवनम् अभिपतन्ती गच्छन्ती तत्र स्वपन्तं शयानं कमपि युवानं भवन्तमेव विभाव्य निश्चित्य प्रणयकलहव्याजेन कृत्रिमकलहकपटेन प्रसजन् य उद्दाममन्युभर उत्कटक्रोधभरस्तेन पराचीनां विमुखां भर्तृदारिकां राजपुत्रीम् अनादृत्य 'किं कुमारोऽत्रायुधश्रमशालापरिसरेऽशयिष्ट शयनं चकार' इति हेतोः अनुशयाविष्टा पश्चात्तापयुक्ता तत्क्षण एव तत्काल एव तस्मात्स्थानात् प्रतिनिवृत्य इमां वत्सां दुहितरं भर्त्सयितुं तर्जयितुम् उपसरामि। भवान् अत्र दृश्यते विलोक्यते। सर्वथासादृश्यस्य सर्वप्रकारसमानताया भ्रमस्य संशयस्य संविधाने करणे चतुरो विदग्धः स कः कुमारः स्यात्। इति।

§ १९८. कनकमालेति—कनकमालादयितोऽपि जीवंधरोऽपि तस्यां धात्र्याम् अनवसितमपूर्णं वचो यस्यास्तथाभूतायां सत्यामेव आविर्भवत् प्रकटीभवत् अनुजविषयाध्यानं नन्दाढ्यस्मरणं यस्य तथाभूतो भवन् 'सुकृत्या सुलभः सुकृतोदयः पुण्योदयो यस्मिंस्तथाभूतं समयं कालं को नाम विनिश्चिनोति निर्धारयति। नभश्चराधीशस्य गरुडवेगस्य सुताया गन्धर्वदत्ताया उपदेशेन किं नन्दाढ्य आगतः। हि यतः

संसारमें जीवित कौन रह सकता है? इस प्रकार जिस समय जीवन्धरकुमार कनकमालाको सान्त्वना दे रहे थे उसी समय लीलापूर्वक हाथ जोड़े हुई तथा खिले हुए कमलको पराजित करनेवाले मुखसे युक्त कोई धाय आदरके साथ उनके पास आकर आश्चर्य सहित इस प्रकार बोली—अये कुमार! प्रातः कालके समय मैं आयुधशालाके सम्मुख आ रही थी कि वहाँ सोते हुए किसी पुरुषको आप ही समझ मैं आश्चर्यमें पड़ गयी। मैंने सोचा कि प्रणय-कलहके बहाने उपस्थित तीव्र क्रोधके भारसे पराङ्मुख राजपुत्रीको अनादृत कर कुमार क्या यहाँ सोये हैं? मैं उसी क्षण वहाँसे लौटकर इस बच्चीको डाँटनेके लिए बड़ी शीघ्रतासे यहाँ आ रही हूँ। परन्तु आप यहाँ दिखाई दे रहे हैं। सदृशताका भ्रम उत्पन्न करनेमें चतुर वह कुमार कौन हो सकता है?

§ १९८. धायके वचन समाप्त नहीं हो पाये थे कि छोटे भाईका ध्यान करते हुए जीवन्धरस्वामी भी मनमें इस प्रकार विचार करने लगे—पुण्यात्मा जनोंको सुलभ पुण्यके उदयसे सहित समयका कौन निश्चय कर सकता है? क्या विद्याधरराजकी पुत्री गन्धर्वदत्ता-

१. म० धात्री समासाद्य।

हि नः समस्तमिममुदन्तं हस्तामलकवत्स्वविद्यामुखेन जानीते' इत्येवं मनसा वितर्कं वपुषा हृषिततनूरुहं पद्भ्यां तत्र प्रयाणं च प्रत्यपद्यत। प्रत्यदृश्यत च तत्रैव शस्त्रगुणनिकाशालाया-महंपूर्विकोप[1]सदनुचरमुखावगतपूर्वजाभ्यागमतया गीर्वाणतां प्राप्त इव हर्षाढ्यो नन्दाढ्यः।

§ १९९. ततश्च हर्षप्रकर्षपरवशहृषीकसत्वरकृताभ्युत्थानमानन्दाश्रुजलधारावर्जनपुरःसरं विकस्वरनेत्रशतपत्रविरचिताभ्यर्चनमधिकभक्त्या पादयोः प्रणमन्तं प्रश्रयश्रेष्ठं निजकनिष्ठमखिलगुणज्येष्ठोऽयं गन्धोत्कटसूनुरत्युत्कटानन्दभरदुर्वहतयेव प्रह्वतरपूर्वशरीरः प्रेमचलितकरतलाभ्यामतिचपलमुत्थाप्य गाढाश्लेषेण विवेकमूढानामद्वैतबुद्धिमाबध्नं[2]ननेकानेहसं हृदयनि-

सा गन्धर्वदत्ता स्वविद्यामुखेन स्वकीयविद्याप्रभावेण नोऽस्माकम् इमम् उदन्तं वृत्तान्तं हस्तामलकवत् करतलस्थापितधात्रीफलमिव जानीते' इत्येवं वितर्कं मनसा वपुषा शरीरेण हृषिततनूरुहं प्रकटितरोमाञ्चं पद्भ्यां चरणाभ्यां तत्र प्रयाणं च प्रत्यपद्यत स्वीचक्रे। प्रत्यदृश्यत च प्रतिदृष्टश्च तत्रैव पूर्वोक्तायामेव शस्त्राणामायुधानां गुणनिकाभ्यासस्तस्य शाला तस्याम् अहंपूर्विकयोपसीदन्तो निकटमागच्छन्तो येऽनुचराः सेवकास्तेषां मुखादवगतो विज्ञातः पूर्वजाभ्यागमो ज्येष्ठसहोदरागमनं येन तस्य भावस्तया गीर्वाणतां देवत्वं प्राप्त इव हर्षाढ्य आनन्दोपचितो नन्दाढ्यः। कर्मणि प्रयोगः।

§ १९९. तत इति—तदनन्तरं च हर्षप्रकर्षेण प्रमोदातिरेकेण परवशानि परायत्तानि यानि हृषीकाणीन्द्रियाणि तैः सत्वरं कृतमभ्युत्थानं येन तम् आनन्दाश्रुजलस्य हर्षबाष्पसलिलस्य धाराणामावर्जनं धारणं पुरस्सरं यस्य तम्, विकस्वराभ्यां प्रफुल्लाभ्यां नेत्रशतपत्राभ्यां नयनारविन्दाभ्यां विरचितं कृतमभ्यर्चनं पूजनं येन तम्, अधिकभक्त्या भक्त्यतिरेकेण पादयोः प्रणमन्तं नम्रीभवन्तं प्रश्रयश्रेष्ठं विनयश्रेष्ठं निजकनिष्ठं स्वलघुसहोदरम् अखिलगुणैर्ज्येष्ठः श्रेष्ठ इत्यखिलगुणज्येष्ठः अयं गन्धोत्कटसूनुर्जीवंधरः अत्युत्कटश्चासावानन्दभरश्चेत्युत्कटानन्दभरः प्रगाढानन्दस्तस्य दुर्वहतयेव दुःखेन वोढुं शक्यतयेव प्रह्वतरमतिभुग्नं पूर्वशरीरं यस्य तथाभूतः सन् प्रेमचलितकरतलाभ्यां प्रीतिचलितपाणितलाभ्याम् अतिचपलमतिशीघ्रम् उत्थाप्य गाढाश्लेषेण प्रगाढालिङ्गनेन विवेकमूढानां भेदज्ञानरहितानाम् अद्वैतबुद्धिमेकत्वबुद्धिम्

के उपदेशसे नन्दाढ्य आया है ? क्योंकि गन्धर्वदत्ता अपनी विद्याके मुखसे इस समस्त वृत्तान्तको हाथपर रखे आँवलेके समान जानती है। इस प्रकार जीवन्धरस्वामी मनसे वितर्कको, शरीरसे हर्षित रोमांचको और पैरोंसे वहाँ प्रस्थानको प्राप्त हुए। जाते ही उन्हें शस्त्राभ्यासकी शालामें नन्दाढ्य दिखाई दिया। उस समय नन्दाढ्य पहले पहुँचनेकी होड़से समीपमें आनेवाले सेवकोंके मुखसे बड़े भाईके आनेका समाचार विदित कर देवपनेको प्राप्त हुएके समान जान पड़ता था।

§ १९९. तदनन्तर हर्षकी परम सीमासे विवश इन्द्रियोंके द्वारा जिसने शीघ्र ही उठकर सत्कार किया था, जो हर्षके आँसुओंकी जलधाराको छोड़ रहा था। खिले हुए नेत्र-कमलोंसे जो जीवन्धर स्वामीकी मानो पूजा ही कर रहा था। जो अधिक भक्तिसे पैरोंमें प्रणाम कर रहा था और विनयसे अत्यन्त श्रेष्ठ था ऐसे छोटे भाईको समस्त गुणोंसे श्रेष्ठ जीवन्धर कुमारने प्रेमसे चलते हुए हाथोंसे लपककर ऊपर उठा लिया। उस समय बहुत भारी आनन्दके भारको उठानेमें असमर्थ होनेके कारण ही मानो उनके शरीरका पूर्वभाग अत्यन्त नम्र हो रहा था। वे उसके गाढ़ आलिंगनसे अविवेकी मनुष्योंको अद्वैत बुद्धि उत्पन्न कर रहे थे—

१. म० -कोपचरदनु। २. -म० मातन्वन्।

क्षिप्तमक्षिभ्यां प्रत्यक्षयितुमिव पृथक्कृतं कनीयांसं सांससंसर्गं निसर्गनिर्मले महीतले निवेशयन्निष्कासिताखिलजनस्तदागमनप्रकारमाकारपिशुनितान्तर्गताह्लादः शनैरनुयुयुजे ।

§ २००. नन्दाढ्योऽपि पूर्वजानुयोगसमुपगतपूर्वप्रकृताध्याननवीकृतमन्युभरः सदैन्यं साकूतं सादरं च वक्तुमुपाक्रमत—'पूज्यपाद, जगदुपप्लवकारिभवदुपप्लुतवार्तावात्यया निकामस्फूर्तिमदविषह्याभिषङ्गोऽपि कोपकृपीटयोनिकृताङ्गारसंकाशदृशि विस्फुलिङ्गविस्फूर्जदसदृशपरुषवचसि रचितार्धोरुकपरिधानभीकरवपुषि रोषदष्टोष्ठदर्शनमात्रत्रासितहस्तवति हेलोदस्तहेतिनिवहप्रणयिपाणौ रणाभिमुखीभवत्पद्ममुखप्रमुखवयस्यवर्गे, केनचिदतर्कितागतिना गगनं नीय-

आबध्नन् कुर्वन् अनेकाहमं निरन्तरमनेककालम् हृदयनिक्षिप्तं स्वान्तस्थापितम् अक्षिभ्यां नेत्राभ्याम् प्रत्यक्षयितुमिव साक्षात्कर्तुमिव पृथक्कृतं कनीयान्सं कनिष्ठं अंससंसर्गेण सहितं सांससंसर्गं स्वस्कन्धस्य समीप एव निसर्गनिर्मले स्वभावस्वच्छे महीतले निवेशयन् स्थापयन्, निष्कासिता दूरीकृता अखिलजनाः समग्रपुरुषा येन तथाभूतः सन् तदागमनप्रकारं तस्य कनिष्ठस्यागमनं तस्य प्रकारो व्यवस्था तम् आकारेण स्वमुखाकृत्या पिशुनितः सूचितोऽन्तर्गताह्लादो हृदयानन्दो येन तथाभूतः सन् शनैर्मन्दम् अनुयुयुजे पप्रच्छ ।

§ २००. नन्दाढ्योऽपीति—नन्दाढ्योऽपि कनिष्ठोऽपि पूर्वजस्याग्रजस्यानुयोगः प्रश्नस्तेन समुपगतं संप्राप्तं यत् पूर्वप्रकृताध्यानं पूर्वघटनास्मरणं तेन नवीकृतो नूतनीकृतो मन्युभरः शोकसमूहो यस्य तथाभूतः सन् सदैन्यं सकातर्यं साकूतं साभिप्रायं सादरं च सविनयं च वक्तुं कथयितुम् उपाक्रमत तत्परोऽभवत्—पूज्यपाद ! पूज्यचरण ! जगदुपप्लवकारिणी लोकक्षयकारिणी या भवदुपप्लुतवार्ता भवदुपद्रववार्ता सैव वात्या वातसमूहस्तया निकामस्फूर्तिमतां तीव्रस्फूर्तियुक्तानामविसह्यः सोढुमशक्योऽभिषङ्गो दुःखं यस्य तथाभूतोऽपि सन् अहमित्युत्तरेण संबन्धं कोपकृपीटयोनिना क्रोधाग्निना कृता अङ्गारसंकाशा अङ्गारसदृशो दृशो नेत्राणि यस्य तथाभूते, विस्फुलिङ्गैर्विस्फूर्जन्ति असदृशानि परुषवचांसि यस्य तथाभूते, रचितं कृतं यदर्धोरुकपरिधानं तेन भीकरं वपुर्यस्य तस्मिन्, रोषेण क्रोधेन दष्टा ये ओष्ठा दन्तच्छदास्तेषां दर्शनमात्रेण त्रासिता भीषिता हस्तवन्तः समर्था येन तस्मिन्, हेलयानायासेनोदस्ता उत्थापिता ये हेतिनिवहाः शस्त्रसमूहास्तेषां प्रणयिनौ पाणी यस्य तस्मिन्, रणाभिमुखीभवंश्चासौ पद्ममुखप्रमुखवयस्यवर्गश्चेति

यह बतला रहे थे कि ये दोनों अभिन्न हैं। बहुत समयसे जिसे हृदयमें छिपाकर रखा था ऐसे छोटे भाईको आँखोंसे प्रत्यक्ष देखनेके लिए ही मानो उन्होंने पृथक् कर कन्धेसे कन्धा मिलाकर स्वभावसे ही निर्मल पृथ्वीतलपर बैठाते हुए धीरे-धीरे उससे उसके आनेका प्रकार पूछा। उस समय उन्होंने वहाँसे समस्त लोगोंको दूर कर दिया था और उनके आकारसे उनके हृदयका हर्ष सूचित हो रहा था।

§ २००. बड़े भाईके प्रश्नसे पिछली घटनाका स्मरण होनेके कारण जिसके शोकका समूह नवीन हो गया था ऐसा नन्दाढ्य भी दीनता, हृदयकी चेष्टा और आदरके साथ कहनेके लिए उद्यत हुआ। उसने कहा कि 'हे पूज्यपाद ! जगत्को उपद्रव करनेवाले आपके ऊपर भी उपद्रव आया है' इस समाचाररूपी आँधीसे अत्यन्त स्फूर्तिको प्राप्त हुए असह्य दुःखसे मैं दुःखी हो गया। और क्रोधरूपी अग्निके द्वारा किये हुए अंगारके समान जिनके नेत्र हो गये थे, तिलगोंकी चड़चड़ाहटके समान जिनके वचन असाधारण कठोर थे, आधी जाँघ तक पहिने हुए वस्त्रसे जिनके शरीर भयंकर थे, क्रोधपूर्वक डसे हुए ओठके देखने मात्रसे जिन्होंने कुशल मनुष्योंको भयभीत कर दिया था, और जिनके हाथ अनायास ही ऊपर उठाये हुए शस्त्रोंके समूहसे युक्त थे ऐसे पद्ममुख आदि प्रमुख मित्रोंका समूह ज्यों ही युद्धके लिए सम्मुख हुआ त्यों ही देखनेमें आया कि अकस्मात् आनेवाला कोई व्यक्ति आपको लिये

मानं स्वामिनं निर्वर्ण्य पुनर्निवर्त्य संयुगसंनाहमनिवर्तनीयविषादविषमयनीरधौ निमज्जति, जातु दुर्जयदुर्जातोऽहं किमिह देहभारं मुधा चिरमूढ्वेति मन्युमौढ्येन मुमूर्षुर्भवन्भाविभवदीयदिव्यमुखाम्भोजदर्शनशंभरतया संभूतेन भूतभवद्भाविगोचरखेचराधिपसुताहृदयपरिज्ञानानन्तरमपहृतासुर्भवेयमिति विचारेण प्रतिषिद्धः प्रजावतीसदनमतिद्रुतमदुद्रुवम् । अपश्यं च तां परिवादिनीसंक्रमितेन भगवदर्हत्परमेश्वराभिष्टवेन कष्टां दशामापन्नमात्मानमुल्लाघयन्तीमुल्लोकवियोगरोगात्तगन्धां गन्धर्वदत्ताम् । साप्याकूतज्ञा मामादरकातर्यादात्मत्यागरागिणमवगच्छन्ती किमेवं कृच्छ्रायसे । स खलु सकलजगल्लालनीयाकृतिः सुकृतिनां पूर्वस्तव पूर्वजः केनापि लब्धपूर्वोपकारेण यक्षवरेण यक्षेन्द्रेण स्वमन्दिरं नीतः । तदनु नूतनजामातृतां प्रतिजनपदं प्रतिपद्यमानः

तथाभूते अतर्कितागतिना अचिन्तितोपस्थितेन केनचित् गगनं नभो नीयमानं स्वामिनं निर्वर्ण्य दृष्ट्वा पुनः संयुगसंनाहं युद्धोद्योगं निवर्त्य दूरीकृत्य अनिवर्तनीयविषाद एव अदूरे करणीयदुःखमेव विषमयनीरधिर्गरलार्णवस्तस्मिन् निमज्जति सति जातु कदाचित् दुर्जयं दुर्जातं पापसमूहो यस्य तथाभूतोऽहम् 'इह लोके चिरं मुधा निष्प्रयोजनं देहभारम् ऊढ्वा धृत्वा किं 'किंप्रयोजनम्' इति मन्युमौढ्येन शोकजन्यमौर्ख्येण मुमूर्षुर्मर्तुमिच्छन् भवन्, भावी भविष्यत् भवदीयदिव्यमुखाम्भोजदर्शनेन शंभरः सुखसमूहो यस्य तस्य भावस्तत्ता तया संभूतेन समुत्पन्नेन भूतं च भवच्च भावि चेति भूतभवद्भावीनि तानि गोचराणि यस्यास्तथाभूता या खेचराधिपसुता गन्धर्वदत्ता तस्या हृदयस्य परिज्ञानानन्तरम् अपहृतासुर्मृतो भवेयम् इति विचारेण प्रतिषिद्धो निवारितः सन् अतिद्रुतमतिशीघ्रं प्रजावतीसदनं भ्रातृजायाभवनम् अदुद्रुवम् अगमम् । अपश्यञ्चावलोकयञ्च तां पूर्वोक्तां परिवादिनी वीणा तस्यां संक्रमितेन मिलितेन भगवाँश्चासावर्हन्परमेश्वरश्चेति भगवदर्हत्परमेश्वरस्तस्याभिष्टवस्तेन कष्टां दुःखपूर्णां दशां अवस्थाम् आपन्नं प्राप्तम् आत्मानम् उल्लाघयन्तीं स्वस्थां कुर्वन्तीम्, उल्लोकवियोगेन समुत्कटविप्रयोगेनात्तो गृहीतो गन्धो हर्षो यस्यास्तां गन्धर्वदत्तां भ्रातृजायाम् । आकूतं हृच्चेष्टितं जानातीत्याकूतज्ञा सापि भ्रातृजायापि माम् आदरकातर्यात् आत्मत्यागरागिणमात्मघातोद्यतम् अवगच्छन्ती 'किमेवमनेन प्रकारेण कृच्छ्रायसे कष्टमनुभवसि । सकलजगता लालनीया समाजनीया आकृतिर्यस्य तथाभूतः सुकृतिनां पुण्यात्मनां पूर्वः प्रमुखः स तव पूर्वजोऽग्रजः खलु निश्चयेन लब्धः प्राप्तः पूर्वमुपकारो येन तथाभूतेन भूतपूर्वो यक्ष इति यक्षचरस्तेन कुक्कुरचरेण केनापि यक्षेन्द्रेण स्वमन्दिरं स्वभवनं नीतः प्रापितः । तदनु तदनन्तरं प्रतिजनपदं देशे देशे नूतनजामातृताम्

जा रहा है। यह देख युद्धका अभिप्राय छोड़ सब अनिवर्तनीय दुःखरूपी विषमय सागरमें निमग्न हो गये। वहुत भारी दुर्भाग्यसे युक्त मैंने किसी समय विचार किया कि 'यहाँ इस शरीरके भारको चिरकाल तक व्यर्थ ही क्यों धारण करूँ ?' इस शोकजनित मूढ़तासे मैं मरना ही चाहता था कि आपके दिव्य मुखकमलके दर्शनसे होनेवाला सुखका समूह मुझे प्राप्त होनेवाला था अतः मुझे यह विचार उत्पन्न हुआ कि भूत वर्तमान और भविष्यत्‌की बात जाननेवाली गन्धर्वदत्ताके हृदयकी बात जाननेके बाद ही मुझे मरना चाहिए'। इस विचारने मुझे मरनेसे रोक दिया और मैं बड़ी शीघ्रतासे भावज—गन्धर्वदत्ताके घर गया। वहाँ मैंने उस गन्धर्वदत्ताको देखा कि जो कष्टमय अवस्थाको प्राप्त हुए अपने-आपको वीणामें मिले हुए भगवान् अर्हन्त परमेष्ठीके स्तवनसे नीरोग कर रही थी तथा अत्यधिक वियोगरूपी रोगने जिसका समस्त हर्ष हर लिया था। गन्धर्वदत्ता हृदयको ताड़नेवाली थी अतः मुझे आदरकी कातरतासे आत्मघातका अनुरागी जानती हुई बोली कि 'इस तरह दुःखी क्यों होते हो ? समस्त जगत्‌के द्वारा लालनीय आकृतिको धारण करनेवाले एवं पुण्यात्माओंमें अग्रसर तुम्हारे भाईको, उनसे पहले उपकार प्राप्त करनेवाला कुत्तेका जीव कोई यक्षेन्द्र

सुखेनावतिष्ठते । ततः किमेवं साहसमनुतिष्ठसि । पापिष्ठेयं स्त्रीसृष्टिरिव त्वमपि किमपरत्र गन्तुं न पारयसि[1] ? यदि कौतुकाविष्टोऽसि तव ज्येष्ठपादस्य श्रीपादसंदर्शने शय्यतामिह शय्यायाम्' इति मामामन्त्र्य मन्त्रनियन्त्रितं किमपि पावनं शयनमधिशयानमेनं तत्समय एव समीहितार्थगर्भपत्रेण सममत्र प्राहिणोत्' इति ।

§ २०१. तदनु च गगनेचरतनूजया प्रेषितं संदेशं हृषिततनूरुहकरपल्लवेन सायल्लक[2]मादाय गन्धर्वदत्तादयितः सदयं साकूतं सावधानं च वाचयन्नवचनविषयविरहविषादमूषिकाक्ष्वेडपीडितजीविताया जीवन्मरणप्रकारविवरणनिपुणाकृतेर्गुणमालायाः कुशलेतरवृत्ति तद्व्याजविवृतात्मीयविरहार्ति च तत्संदेशेन पुनरुक्तमवयंस्तत्समयस्फुरदमेयनिजशोकानलज्वालामप्यवर-

अभिनववरत्वं प्रतिपद्यमानो लभमानः सुखेन कर्मणा अवतिष्ठते विद्यते । ततः कारणात् किमेवमनेन प्रकारेण साहसं प्राणत्यागावदानम् अनुतिष्ठसि । पापिष्ठा पापीयसी इयं स्त्रीसृष्टिरिव नारीसृष्टिरिव त्वमपि किम् अपरत्र राजपुर्या अन्यत्र गन्तुं न पारयसि समर्थो न भवसि । यदि चेत् तव स्वस्य ज्येष्ठपादस्याग्रजचरणस्य श्रीपाददर्शने श्रीचरणावलोकने कौतुकाविष्टोऽसि कुतूहलाक्रान्तोऽसि तर्हि इह शय्यायां शय्यताम्' इतीत्थं मां नन्दाढ्यम् आमन्त्र्य पृष्ट्वा मन्त्रेण नियन्त्रितमिति मन्त्रनियन्त्रितं मन्त्रनिरुद्धं किमपि पावनं पवित्रं शयनं शय्याम् अधिशयानं तत्र स्वपन्तम् एवं जनं तत्समय एव तत्काल एव समीहितार्थो गर्भे यस्य तथाभूतं च तत्पत्रं चेति समीहितार्थगर्भपत्रं तेन समं साकम् अत्र प्राहिणोत् प्रजिघाय प्रेषयति स्मेति यावत्' । इति ।

§ २०१. तदनु चेति—तदनन्तरं च गगनेचरतनूजया गन्धर्वदत्तया प्रेषितं प्रहितं संदेशं वाचिकं हृषितास्तनूरुहा यस्मिंस्तथाभूतो यः करपल्लवः पाणिकिसलयस्तेन सायल्लकं मन्मथविकारसहितं यथा स्यात्तथा आदाय गृहीत्वा गन्धर्वदत्तादयितो जीवंधरः सदयं सकरुणं साकूतं साभिप्रायं सावधानं च निष्प्रमादं च वाचयन् पाठयन् वचनस्य कथनस्य विषयो न भवतीत्यवचनविषयः स चासौ विरहविषादश्च विप्रयोगखेदश्च स एव मूषिकाया क्ष्वेडो गरलं तेन पीडितं जीवितं यस्यास्तस्या जीवतो मरणं जीवन्मरणं तस्य प्रकारस्य रूपस्य विवरणे निरूपणे निपुणा निष्णाता कृतिर्यस्यास्तस्या गुणमालाया द्वितीयपत्न्याः कुशलेतरवृत्तिमकल्याणवृत्तिं तस्या व्याजेन मिषेण विवृता प्रकटिता यात्मीयविरहार्तिः स्वकीयविरहपीडा तां च तत्संदेशेन पुनरुक्तं पुनरुदीरितं यथा स्यात्तथा अवयन् जानन् तत्समये तस्मिन्काले स्फुरन्ती चासा-

अपने भवन ले गया था । उसके बाद प्रत्येक देशमें नूतन जमाईपनेको प्राप्त होते हुए वे सुखसे अवस्थित हैं—विद्यमान हैं । तब फिर ऐसा साहस क्यों करते हो ? इस अत्यन्त पापिनी स्त्रीयोनिके समान क्या तुम भी दूसरी जगह नहीं जा सकते हो ? यदि तुम अपने बड़े भाईके चरणकमल देखनेका कौतुक रखते हो तो इस शय्यापर सो जाओ' इस तरह मुझसे पूछकर मन्त्रसे नियन्त्रित किसी पवित्र शय्यापर शयन करते हुए इस जनको—मुझे, उसने इच्छित वार्ताको सूचित करनेवाले पत्रके साथ यहाँ भेज दिया है ।

§ २०१. तदनन्तर विद्याधरपुत्रीके द्वारा प्रेषित पत्रको जीवन्धरस्वामीने रोमांचित कर-पल्लवसे बड़ी उत्कण्ठासे ले लिया और दया, हृदयकी खास चेष्टा तथा सावधानीके साथ उसे पढ़ा । पत्र पढ़ते ही उन्होंने, वचनके अगोचर वियोगजनित दुःखरूपी चुहियाके विषसे जिसका जीवन पीड़ित हो रहा था तथा जीवित रहते हुए भी मरणकी दशा दिखानेमें जिसकी आकृति निपुण थी ऐसी गुणमालाकी अकुशल अवस्थाको और उसके बहाने प्रकट की हुई गन्धर्वदत्ताकी विरह-पीड़ाको उसके द्वारा प्रेषित सन्देशसे पुनरुक्त रूपसे जान लिया

१. क, पारयसे । २. सायल्लकम्—मन्मथविकारसहितम्, टि० ।

जमुखनिर्वर्णनेन तद्वचनसमाकर्णनेन च शमयंस्तूर्णप्रधावितपरिजनदत्तपाणिरुत्थाय तदुद्देशादनुजेन समं निजगृहमभ्यवर्तत ।

§ २०२. अथ विदितजीवंधरनन्दाढ्यसौभ्रात्रैर्दृढमित्रमहाराजप्रभृतिसंबन्धिभिः सानुबन्धमभिनन्द्यमानेन कनीयसान्वितस्य कनकमालावरस्य वरार्हतां[1] गतेषु वहत्सु वासरेषु सर्वेष्वपि, कदाचित् 'उर्वीतलमतिचपलचरणतलाभिघातेन दलयन्तः सद्यःसमुत्खातहेतिजातधौतधारादर्शनमात्रत्रस्यदाभीराः केचन वीराः कुतोऽपि समागत्य निहत्य च प्रतीपगामिनः कतिचन गोमिनोऽपि गोधनमवस्कन्द्य क्वापि गताः' इति गदापल्लवगुच्छप्रणयिपाणिपल्लवा वल्लवा भृशं धरावल्लभस्य द्वारि स्थिताश्चुक्रुशुः । वीर्यशालिनां विश्रुतः स राजेन्द्रोऽप्यश्रुतपूर्वमुपश्रुत्य

वमेया निजशोकानलस्य स्वकीयशोकवह्नेर्ज्वाला ताम् अवरजमुखस्य कनिष्ठवदनस्य निर्वर्णनं दर्शनं तेन तद्वचनस्य तदीयवाण्याः समाकर्णनेन च शमयन् शान्तं कुर्वन् तूर्णप्रधावितेन शीघ्रसमागतेन परिजनेन दत्तः पाणिर्यस्य तथाभूतः सन् उत्थाय तदुद्देशात् तत्स्थानात् अनुजेन कनिष्ठेन समं निजगृहम् अभ्यवर्तत संमुखोऽभवत् ।

§ २०२. अथेति—अथानन्तरं विदितं ज्ञातं जीवंधरनन्दाढ्ययोः सौभ्रात्रं यैस्तैः दृढमित्रमहाराजप्रभृतयश्च ते संबन्धिनश्च तैः सानुबन्धं ससत्कारम् अभिनन्द्यमानेन प्रशस्यमानेन कनीयसा लघुसहोदरेण अन्वितस्य सहितस्य कनकमालावरस्य जीवंधरस्य वरार्हतां जामातृयोग्यतां गतेषु प्राप्तेषु सर्वेष्वपि वासरेषु वहत्सु गच्छत्सु सत्सु कदाचित् 'अतिचपलैरतिशयचञ्चलैश्चरणतलैः पादतलैरभिघातेन ताडितेन उर्वीतलं पृथिवीपृष्ठं दलयन्तः खण्डयन्तः सद्यो झगिति समुत्खातस्योन्नमितस्य हेतिजातस्य शस्त्रसमूहस्य धौतधाराणां निर्मलधाराणां दर्शनमात्रेण त्रस्यन्तो बिभ्यत आभीरा वल्लवा यैस्तथाभूताः केचन केऽपि वीराः कुतोऽपि समागत्य समापत्य प्रतीपगामिनः प्रतिकूलगामिनः कतिचन गोमिनो गोपान् निहत्य मारयित्वा च गोधनं धेनुधनम् अवस्कन्द्याच्छिद्य क्वापि कुत्रापि गताः; इति गदापल्लवगुच्छानां प्रणयिनस्तद्युक्ताः पाणिपल्लवाः करकिसलया येषां तथाभूता वल्लवा गोपा धरावल्लभस्य राज्ञो द्वारि प्रतीहारे स्थिताः सन्तो भृशमत्यधिकं चुक्रुशुः आक्रन्दन्ति स्म । वीर्यशालिनां पराक्रमवतां विश्रुतो विख्यातः स राजेन्द्रोऽपि दृढमित्रोऽपि गोदुहा-

था। उस समय उनके हृदयमें भी अपरिमित शोकाग्निकी ज्वाला उत्पन्न हुई थी परन्तु उसे उन्होंने छोटे भाईका मुख देखने और उसके वचन सुननेसे शान्त कर दिया। तदनन्तर शीघ्र दौड़कर आये हुए परिजनोंने जिन्हें हाथका आलम्बन दिया था ऐसे जीवन्धरकुमार उस स्थानसे छोटे भाईके साथ अपने महलकी ओर चल दिये।

§ २०२. अथानन्तर जिन्होंने जीवन्धर और नन्दाढ्यके भाई-चारेको अच्छी तरह जान लिया था ऐसे दृढमित्र महाराज आदि सम्बन्धी जनोंने नन्दाढ्यका अच्छी तरह अभिनन्दन किया। इस तरह छोटे भाईसे सहित जीवन्धरकुमारके सभी दिन जब वरके योग्य उत्कृष्टताको प्राप्त हो सुखसे व्यतीत हो रहे थे तब किसी दिन, 'अत्यन्त चंचल चरणतलके आघातसे जो पृथ्वीतलको विदीर्ण कर रहे थे और शीघ्र ही उभारे हुए शस्त्र-समूहकी उज्ज्वल धाराके देखने मात्रसे जिन्होंने अहीरोंको भयभीत कर दिया था ऐसे कितने ही वीर कहींसे आकर तथा विरुद्ध चलनेवाले कितने ही अहीरोंको मारकर गोधन चुरा कहीं चले गये हैं' इस प्रकार हाथोंमें लताओंके पल्लव और गुच्छोंको धारण करनेवाले अहीर राजाके द्वारपर खड़े होकर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। पराक्रमियोंमें प्रसिद्ध राजाधिराज दृढमित्र

१. क० ग० फलार्हतां। ख० पदार्हताम्।

गोदुहामतिभृशमाक्रोशमनीदृशक्रोधाविष्टः 'तानेवमभिनिविष्टदर्पज्वरानसांप्रतकृतः सांप्रतमेव समानीयास्माकं पुरस्तादवस्थापयत । नो चेदपास्तासूनवश्यं वः पश्येत' इति दर्शिताञ्जलीन्सेनान्यो व्याजह्रे ।

§ २०३. ततश्च तथाविधराजाज्ञया समन्तादुपसरद्भिः सुरगजगर्वस्तम्भिभिः स्तम्बेरमैर्वल्गुवल्गनपराजितकुरङ्गैस्तुरङ्गैर्गमनरंहस्तिरस्कृतमनोरथै रथैर्बहुकृत्वः कृतवैरिविपत्तिभिः पत्तिभिश्च सौरभेयीसंघावस्कन्दितस्करान्हस्तग्राहं ग्रहीतुं वहत्सु वाहिनीपतिषु, एवंभूतमेतदाकर्णयन्नेकधनुर्धरः सात्यंधरिररिपरिभवासहिष्णुतया स्वयमपि रथी निषङ्गी कवची धनुष्मांश्च भवन्नवरजसारथिचोदितशताङ्गः शतशः श्वशुरेण निवार्यमाणोऽपि मङ्क्षु गवां मोक्षणमकाङ्क्षीत् ।

माभीराणाम् अश्रुतपूर्वमनाकर्णितपूर्वम् अतिभृशमत्यधिकम् आक्रोशं रोदनध्वनिम् उपश्रुत्य समाकर्ण्य अनीदृशेनासाधारणेन क्रोधेन कोपेनाविष्टो युक्तः सन् 'एवमनेन प्रकारेणाभिनिविष्टः संप्राप्तो दर्पज्वरो गर्वज्वरो येषां तान्, असाम्प्रतमयुक्तं कुर्वन्तीत्यसाम्प्रतकृतः तान् गोधनलुण्टाकान् समानीय अस्माकं पुरस्तादग्रे अवस्थापयत स्थितान् कुरुत । नो चेद् एवं न स्यात्तर्हि वो युष्मान् अवश्यम् अपास्तासून् निष्प्राणान् पश्येत' इति दर्शिताञ्जलीन् बद्धहस्तसंपुटान् सेनान्यः सेनापतीन् व्याजह्रे कथयामास ।

§ २०३. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च तथाविधा तादृशी चासौ राजाज्ञा च राजादेशश्चेति तथाविधराजाज्ञा तया समन्तात्परित उपसरद्भिः समीपमागच्छद्भिः सुरगजस्य देवद्विरदस्य गर्वं दर्पं स्तभ्नन्तीति सुरगजगर्वस्तम्भिनस्तैः स्तम्बेरमैर्गजैः वल्गुवल्गनेन तीव्रगमनेन पराजिताः कुरङ्गा मृगा यैस्तथाभूतैस्तुरंगैरश्वैः गमनरंहसा गतिरयेण तिरस्कृतो मनोरथो यैस्तै रथैः स्यन्दनैः बहुकृत्वोऽनेकवारान् कृता विहिता वैरिणां विपत्तिर्विनाशो यैस्तैः पत्तिभिः पदातिभिः सौरभेयीसङ्घस्य गोसमूहस्यावस्कन्दिनोऽपहारिणो ये तस्कराश्चोरास्तान् हस्तेन गृहीत्वेति हस्तग्राहं ग्रहीतुं वाहिनीपतिषु सेनापतिषु वहत्सु गच्छत्सु सत्सु एवंभूतमित्थंभूतम् एतद्वृत्तम् आकर्णयन् शृण्वन् एकश्चासौ धनुर्धरश्चेत्येकधनुर्धरोऽद्वितीयकोदण्डधरः सात्यंधरिर्जीवंधरः अरिकृतः परिभवोऽरिपरिभवस्तस्यासहिष्णुतया सोढुमशीलत्वेन स्वयमपि रथी रथयुक्तो निषङ्गी तूणीरयुक्तः कवची वारबाणसहितः, धनुष्मांश्च कोदण्डयुक्तश्च भवन्, अवरजो लघुसहोदर एव सारथिः सूतस्तेन चोदितः प्रेरितः शताङ्गो यस्य तथाभूतः शतशः शतवारान् श्वसुरेण कनकमालापित्रा निवार्यमाणोऽपि प्रतिषिद्धोऽपि मङ्क्षु शीघ्रम् गवां धेनूनां मोक्षणम् अकाङ्क्षीत् ववाञ्छ ।

महाराजने भी अहीरोंकी उस अश्रुतपूर्व अत्यधिक चिल्लाहटको सुन असाधारण क्रोधसे आविष्ट हो, हाथ जोड़कर खड़े हुए सेनापतियोंसे कहा कि तुम लोग अहंकाररूपी ज्वरके धारक एवं अनुचित कार्य करनेवाले उन लोगोंको इसी समय लाकर हमारे सामने खड़े करो नहीं तो तुम लोग अपने आपको निष्प्राण देखोगे।

§ २०३. तदनन्तर राजाकी उस प्रकारकी आज्ञासे सब ओर चलनेवाले एवं देव-हस्तियोंके गर्वको रोकनेवाले हाथियोंसे, तीव्र चालसे हरिणोंको पराजित करनेवाले घोड़ोंसे, गमनके वेगसे मनोरथको तिरस्कृत करनेवाले रथोंसे और अनेकों बार शत्रुओंपर विपत्ति ढानेवाले पैदल सैनिकोंसे गोधनको हरण करनेवाले चोरोंको हाथसे पकड़नेके लिए जब सेनापति चलने लगे तब इस प्रकारके इस समाचारको सुनते हुए अद्वितीय धनुर्धारी जीवन्धरकुमार शत्रुकृत पराभवको न सह सकनेके कारण स्वयं ही रथ, तरकश, कवच और धनुषके धारक हो शीघ्र ही गायोंको छुड़ानेकी इच्छा करने लगे। उस समय उनका छोटा भाई सारथी बनकर रथ चला रहा था और जाते समय श्वसुरने सैकड़ों बार रोका था फिर भी वे रुके नहीं।

१. क० सौरभेयीसङ्घात । ग० सौरभेयीसंघातावस्कन्दिततस्करान् ।

§ २०४. तदनु च गमनवेगानुधावदतिजवनपवनसनाथरथधुर्यखरखुरखातधरापराग-पुरोगतया पुरोवर्तिनं मित्रसार्थं पार्थिवैरिव प्रतिगृह्णन्गृहीतगोधनानामायोधनेन निधनं कर्तुमतित्वरितमुपसृत्य परीत्य तस्थौ। तावता त्रिभुवनभयंकरेण चापटंकारेण जगदभयंकरस्यास्य कोदण्डकोविदस्य सांनिध्यमवबुध्य तस्य कोपादात्मानं गोपायितुकामास्ते गोकुलदस्यवो वयस्याः सरभसोत्खात-निजहृच्छल्यानीव स्वनामाङ्कितशल्यानि पुरस्कृतपुङ्खानि शिलीमुखजातानि कुमाराभिमुखं प्रायुक्षत। प्रणेमुश्च ते प्रसभमुपसृत्य स्वनामचिह्नितमुखाञ्शिलीमुखान्विलोक्य विचारस्य विस्मयस्य प्रमोदस्य कौतुकस्य मोहस्य च यौगपद्येन पात्रीभवतः पवित्रकुमारस्य पादयोः पद्ममुख-प्रमुखाः सखायः। बभूव चायं बहुसहस्राक्षो बहुधा विभक्तमिवात्मानं मित्रलोकमवलो[1]कयन्प-

§ २०४. तदनु चेति—तदनु च तदनन्तरं च गमनवेगेन गतिरयेणानुधावन्तः पश्चाद्वेगेनागच्छन्तोऽतिजवनास्तीव्रगामिनो ये पवना वायवस्तैः सनाथाः सहिता ये रथधुर्याः स्यन्दनहयास्तेषां खरखुरैस्तीक्ष्णशफैः खाता क्षुण्णा या धरा पृथिवी तस्याः परागो धूलिः स पुरोगः पुरोगामी यस्य तस्य भावस्तत्ता तया पुरोवर्तिनमग्रेविद्यमानं मित्रसार्थं वयस्यवृन्दं पार्थिवैरिव राजभिरिव पक्षे पृथिवीविकारैरिव प्रतिगृह्णन् निरुध्य स्वीकुर्वाणो गृहीतं गोधनं यैस्तेषां गोधनापहारिणाम् आयोधनेन युद्धेन निधनमन्तं कर्तुम् अतित्वरितमतिशीघ्रम् उपसृत्य परीत्य परिवार्य तस्थौ। तावतेति—तावत्कालेन त्रिभुवनभयंकरेण लोकत्रयभयोत्पादकेन चापटङ्कारेण धनूरवेण जगदभयंकरस्य लोकत्रयस्य भयं निवारयतः कोदण्डकोविदस्य चापाचार्यस्य अस्य जीवंधरस्य सांनिध्यं सामीप्यम् अवबुध्य ज्ञात्वा तस्य कोपाद्रोषात् आत्मानं स्वं गोपायितुकामा रक्षितुकामाः ते गोकुलदस्यवो धेनुसमूहतस्करा वयस्याः सखायः सरभसं सवेगमुत्खातान्युन्मूलितानि यानि निजहृच्छल्यानि स्वकीयहृदयशल्यानि तानीव स्वनाम्नाङ्कितं चिह्नितं शल्यमग्रं येषां तानि पुरस्कृतपुङ्खानि अग्रेकृतत्सरूणि शिलीमुखजातानि बाणनिकुरम्बाणि प्रायुक्षत प्राहिण्वन्। प्रणेमुश्च नमश्चक्रुश्च ते पद्ममुखप्रमुखाः पद्मास्यप्रधानाः सखायो वयस्याः प्रसभं हठात् उपसृत्य समीपमागत्य स्वनामचिह्नितान् स्वकीयनामाङ्कितान् शिलीमुखान् बाणान् विलोक्य विचारस्य वितर्कस्य विस्मयस्याश्चर्यस्य प्रमोदस्य हर्षस्य कौतुकस्य कुतूहलस्य मोहस्य वैचित्त्यस्य च यौगपद्येन एककालावच्छेदेन पात्रीभवतो भाजनीभवतः पवित्रकुमारस्य जीवंधरस्य पादयोश्चरणयोः। बभूवेति—बभूव चायं पवित्रकुमारो जीवकः बहुधानेकप्रकारेण विभक्तम्

§ २०४. तदनन्तर गमनके वेगसे पीछे-पीछे दौड़नेवाली अत्यन्त वेगशाली वायुसे युक्त रथके घोड़ोंकी टापोंसे खुदी पृथ्वीकी धूलि उनके आगे-आगे जा रही थी उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो आगे विद्यमान मित्रसमूहको पार्थिव—धूलिसे (पक्षमें राजोचित उपकरणोंसे) पकड़ना चाहते हैं। तदनन्तर गोधनके धारक लोगोंका युद्धके द्वारा मरण करनेके लिए जीवन्धरस्वामी, अत्यन्त शीघ्रतासे पास जाकर तथा उन्हें घेरकर खड़े हो गये। उसी समय त्रिभुवनको भय उत्पन्न करनेवाले धनुषकी टंकारसे लोगोंने समझ लिया कि जगत्को अभय दान देनेवाले धनुर्वेदके पण्डित जीवन्धरकुमार समीप ही में स्थित हैं। तदनन्तर उनके क्रोधसे अपने आपकी रक्षा चाहनेवाले गोकुलके चोर मित्रोंने जीवन्धरकुमारके सामने ऐसे बाण चलाये जो कि वेगसे उखाड़ी हुई अपने हृदयकी शल्योंके समान जान पड़ते थे, जिनके अग्रभाग अपने नामोंसे चिह्नित थे, तथा जिनकी मूठें आगेकी ओर थीं। उन पद्ममुख आदि मित्रोंने शीघ्र ही पास आकर अपने नामसे चिह्नित बाणोंको देखकर विचार, विस्मय, हर्ष, कौतुक और मोहके एक साथ पात्र होनेवाले जीवन्धरकुमारके चरणोंमें प्रणाम किया।

१. क० ख० ग० आलोकयन्।

पवित्रकुमारः। सखायश्चासन्सौख्यातिशयेन तदभ्याशप्रवेशलब्धेन सनिमेषा अनिमेषाः।

§ २०५. अथास्मिन्सौरभेयीगवेषिणि सुदर्शनसुहृदि, सुहृदामुपलम्भादेधान्वेषिणि मणिलाभादिव स्फीतमुदि, वनमतीत्य मित्रपेटकेन लालाटिकैरप्यमा हेमाभपुरीमवगाह्य नागरिकनयनसुमनोञ्जलीन्ग्राहं ग्राहं निजगृहमीयुषि 'मुषितोस्राश्चोरवदमी कारागृहे किं न निगलनीयाः।' इति लालयन्तीममन्दप्रेमान्धां सगन्धां कनकमालामिव कनकमालामतिलोकबान्धवसंबन्धिसमाजं च समालोक्य चरितार्थीभवति वयस्यसार्थे, कदाचिदयं सुदर्शनमित्रः स्वमित्राणामतिमात्रबहुमत्याः कोऽत्र हेतुः। अस्मदीयक्षत्रता किमवगता। किंस्विदन्यदमीषां बहुम-

---

आत्मानमिव मित्रलोकं वयस्यवृन्दम् अवलोकयन् पश्यन् सहस्राक्षस्य प्रकार इति बहुसहस्राक्षः सहस्रलोचन इन्द्र इति यावत्। सखायश्च पद्मास्यप्रभृतयश्च वयस्याः तदभ्याशे जीवंधरसमीपे प्रवेशस्तेन लब्धेन प्राप्तेन सौख्यातिशयेन सौख्याधिक्येन सनिमेषाः पक्ष्मपातसहिता अपि अनिमेषाः पक्ष्मपातरहिताः पक्षे देवा आसन्।

§ २०५. अथेति—अथ मित्रोपलब्ध्यनन्तरम् सौरभेयीगवेषिणि गोधनान्वेषणकर्तरि अस्मिन् सुदर्शनसुहृदि यक्षेन्द्रमित्रे जीवंधरे सुहृदां पद्मास्यादीनां मित्राणाम् उपलम्भात्प्राप्तेः एधान्वेषिणि काष्ठगवेषिणि मणिलाभादिव रत्नोपलम्भादिव स्फीतमुदि विस्तृतहर्षे सति, वनमतीत्य काननमतिक्रम्य मित्रपेटकेन सुहृत्समूहेन ललाटं पश्यन्तीति लालाटिकाः सेवकास्तैरपि अमा सार्धं हेमाभपुरीं दृढमित्रराजधानीम् अवगाह्य प्रविश्य नागरिकाणां पौराणां नयनान्येव सुमनोऽञ्जलयः पुष्पाञ्जलयस्तान् ग्राहं ग्राहं गृहीत्वा गृहीत्वा निजगृहं स्वभवनम् ईयुषि प्राप्तवति सति, "मुषितोस्रा अपहृतगोधना अमी चोरवत्तस्करवत् कारागृहे किं न निगलनीया निगडनीयाः' इति लालयन्तीं स्नेहं प्रदर्शयन्तीम् अमन्दप्रेम्णा प्रचुरप्रीत्यान्धा ताम्, सगन्धां ससौरभाम् कनकमालामिव सुवर्णस्रजमिव, कनकमालां जीवंधरजायाम् अतिलोकश्चासौ बान्धवश्चेत्यतिलोकबान्धवः श्रेष्ठबन्धुर्जीवंधरस्तस्य संबन्धिनां समाजः समूहस्तं च समालोक्य दृष्ट्वा वयस्यसार्थे मित्रसमूहे चरितार्थीभवति सफलप्रयासे सति कदाचिज्जातुचित् सुदर्शनो मित्रं यस्य स सुदर्शनमित्रो जीवंधरः 'स्वमित्राणामात्मसुहृदाम् अत्र मम विषये अतिमात्रबहुमत्या अतिसन्मानस्य को हेतुः किं कारणं पूर्वापेक्षया मां प्रत्येषां मतिसन्मानदर्शने किं निमित्तमिति भावः। अस्मदीयक्षत्रता मम राजपुत्रता किम्

अनेक प्रकारसे विभक्त अपने-आपके समान मित्रजनोंको देखते हुए जीवन्धरकुमार अनेक हजार नेत्रोंके धारक हो गये अर्थात् वे समस्त मित्रोंको एक साथ देखने लगे। जीवन्धरकुमारके समीप प्रवेश पानेसे प्राप्त अत्यधिक सुखसे मित्रगण टिमकारसहित होनेपर टिमकारसे रहित हो गये।

§ २०५. अथानन्तर गायोंकी खोज करनेवाले जीवन्धरकुमारको मित्रोंकी प्राप्ति होनेसे इतना अधिक हर्ष हुआ जितना कि लकड़ियोंकी खोज करनेवाले किसी मनुष्यको मणिके मिल जानेसे होता है। वनको उल्लंघ कर मित्रसमूह तथा सेवकजनोंके साथ जब जीवन्धर कुमार नागरिक जनोंके नेत्ररूपी पुष्पांजलिको ग्रहण करते हुए अपने घर पहुँचे तब 'गायोंको चुरानेवाले इन लोगोंको चोरोंके समान कारागृहमें क्यों नहीं बेड़ियोंसे बद्ध किया जाय' इस प्रकार कहती हुई, बहुत भारी प्रेमसे अन्धी एवं सुगन्धिसहित सुवर्णमालाके समान कनकमालाको और जीवन्धरकुमारके सम्बन्धी जनोंको देखकर मित्रोंका समूह कृतकृत्य हो गया। किसी समय जीवन्धरकुमारको संशय हुआ कि 'हमारे मित्र पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक सन्मान करने लगे हैं सो इसमें क्या कारण हो सकता है? क्या इन लोगोंको हमारा क्षत्रियपना ज्ञात हो गया है? अथवा इन लोगोंके अत्यधिक सन्मानमें पहलेको

तेरायथापुर्ये निदानम् ।' इति संशयानस्तत्परीक्षणाय दत्तक्षणः क्वचिद्रहस्योद्देशे वयस्यान्पप्रच्छ—'यूयमिहागच्छन्तः केन पथा समायाताः । कानि वा वर्त्मनि कौतुकास्पदानि पदानि दृष्टानि ।' इति ।

§ २०६. तथा पृष्टानां वयस्यप्रष्ठोऽयं प्रदर्शितप्रश्रयोत्कर्षो व्याहार्षीदिवं हर्षोत्फुल्लमुखः पद्ममुखः—'देव, देवस्यान्वेषणाय वयमश्वीयपणायि[1]नामवलम्ब्य धुरं राजपुर्या विनिर्गत्य त्रिचतुरवासरैः कुसुमामोदवासितहरिन्मण्डलं दण्डितकुसुमकोदण्डं दण्डकारण्यान्तर्गतं कमपि तापसाश्रममध्वश्रमादाश्रित्य तत्रत्यानशेषानपि विशेषान्पश्यन्तः क्वचिदपश्याम नश्यद्भूषामपि भूम्ना देहसौन्दर्यस्य दर्शितदेवमातृगौरवां कामपि जगन्मातरम् । पुनरनया दयाजनन्या 'मान्याः,

अवगता ज्ञाता । स्विद् अथवा अमीषां मित्राणां बहुमतेर्बहुसन्मानस्य आयथापुर्ये पूर्वभिन्नत्वे अन्यत् किं निदानं कारणम्' इति संशयानः संशयं कुर्वाणः तत्परीक्षणाय तत्परीक्षार्थं दत्तक्षणो दत्तावसरः सन् क्वचिद्रहस्योद्देश्ये विजनस्थाने वयस्यान्पप्रच्छ—'इहात्र नगर्यामागच्छन्तो यूयं केन पथा केन मार्गेण समायाताः समागताः । कानि वा किन्नामधेयानि वा वर्त्मनि मार्गे कौतुकास्पदानि कुतूहलस्थानानि पदानि स्थानानि दृष्टानि विलोकितानि ।' इति ।

§ २०६. तथेति—तथा पूर्वोक्तप्रकारेण पृष्टानामनुयुक्तानां वयस्यानां मध्ये वयस्यप्रष्ठोऽयं सुहृच्छ्रेष्ठोऽयं प्रदर्शितः प्रकटितः प्रश्रयोत्कर्षो विनयोत्कर्षो येन तथाभूतो हर्षोत्फुल्लं मुखं यस्य तथाभूतश्च सन् पद्ममुख एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण व्याहार्षीत् जगाद—'देव । हे स्वामिन् । देवस्य भवतोऽन्वेषणाय गवेषणाय वयम् अश्वीयपणायिनां हयसमूहव्यापारिणाम् धुरमग्रं सहयायित्वमिति यावत् अवलम्ब्य समाश्रित्य राजपुर्या विनिर्गत्य त्रयो वा चत्वारो वा त्रिचतुरास्ते च ते वासराश्च दिवसाश्च तैः कुसुमानां पुष्पाणामामोदेन सौगन्ध्येन वासितं सुरभितं हरिन्मण्डलं दिङ्मण्डलं यस्मिंस्तम्, दण्डितोऽपमानितः कुसुमकोदण्डः कामो यस्मिंस्तम्, दण्डकारण्यान्तर्गतं दण्डकवनमध्यस्थितं कमपि तापसाश्रमं तपस्वितपोवनम् अध्वश्रमान्मार्गश्रमात् आश्रित्य तत्रत्यान् तत्रभवान् अशेषानपि निखिलानपि विशेषान् दर्शनीयपदार्थान् पश्यन्तो विलोकमाना वयं क्वचित् नश्यद्भूषामपि भूषणरहितामपि देहसौन्दर्यस्य कायकामनीयकस्य भूम्ना बाहुल्येन दर्शितं प्रकटितं देवमातुर्देवजनन्या गौरवं यया तथाभूतां कामपि जगन्मातरं जगज्जननीम् अपश्याम

अपेक्षा जो विशेषता आयी है उसमें कोई दूसरा ही कारण है ?' इस प्रकारका संशय करते हुए उन्होंने उसकी जाँच करनेके लिए समय दिया और किसी एकान्त स्थानमें मित्रोंसे पूछा कि 'यहाँ आते हुए तुम लोग किस मार्गसे आये हो ? और मार्गमें कौन-कौन कौतुकके स्थान तुमने देखे हैं ?'

§ २०६. इस प्रकार पूछे हुए मित्रोंमें जो श्रेष्ठ था, जो विनयके उत्कर्षको दिखला रहा था तथा हर्षसे जिसका मुख विकसित हो रहा था ऐसे पद्ममुखने इस प्रकार कहा—हे देव ! आपको खोजनेके लिए हम लोग घोड़े बेचनेवाले लोगोंका भार धारण कर राजपुरीसे निकले और तीन चार दिनमें दण्डकवनके अन्तर्गत किसी उस तापसोंके आश्रममें जा पहुँचे जहाँका दिङ्मण्डल फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित हो रहा था और कामदेव जहाँ दण्डको प्राप्त था। वहाँकी समस्त विशेषताओंको देखते हुए हम लोगोंने कहीं किसी ऐसी जगन्माताको देखा जो भूषणोंसे रहित होनेपर भी शारीरिक सौन्दर्यकी अधिकतासे आपकी माता

१. पणायिनाम्—व्यापारिणाम् ।

यूयं क्वत्याः ।' इत्यत्यादरमनुयुक्ता वयमत्र प्रत्युत्तरमुदीरयितुमुपक्रम्य 'देवि, वयममी राजपुरीवास्तव्यवैश्यपतिसूनोर्दीनजीवजीवातोर्जीवककुमारस्य सुहृदः किल । अस्मद्दुष्कृतबलेन कृतघ्नप्रष्ठः काष्ठाङ्गारो नाम राजापसदः कदाचिदमुष्य पराक्रममसृष्यन्केनापि दोषमिषेण कुमारमेनं मारयितुम्—' इत्येतावदवोचामहि । तावता तद्देव्याः संजातामापदमिरंमदाविद्धशयोरिवेत्थमितिवक्तुमिदानीमपि न जानीमहे ।

§ २०७. पुनरतिप्रलापतुमुलोपस्थितसत्रासतापसपत्नीपरीतोपकण्ठमाक्रन्दविशीर्यमाणकण्ठमालोकनोत्कण्ठमानवटुपेटकमत्युत्कटकोलाहलपलायमानपर्णशालाङ्गणकुरङ्गगणमतिकरुणरोदननिदानप्रश्नैकतानमुनिवृन्दं च तदमन्दव्यसनमनुभवन्तीयमखिलजगदम्बिका तदानीमम्बुमुचां

व्यलोकयाम । पुनरनन्तरं दयाया जननी तथा कारुण्योत्पादिकया अनया मान्या माननीयाः ! यूयं क्वत्याः क्वभवाः' 'अमेहक्वात्रेभ्य एत्र' इति त्यप् इतीत्थम् अत्यादरं प्रभूतसन्मानपूर्वम् अनुयुक्ताः पृष्टा वयम् अत्र विषये प्रत्युत्तरम् उदीरयितुम् उपक्रम्य प्रारभ्य 'देवि ! स्वामिनि ! वयममी सर्वे राजपुरीवास्तव्यश्चासौ वैश्यपतिश्चेति तथा राजपुरीनिवासिगन्धोत्कटस्तस्य सूनोः पुत्रस्य, दीनजीवानां जीवातो रक्षकस्य जीवककुमारस्य सुहृदो मित्राणि किलेति वाक्यालंकारे । अस्माकं दुष्कृतस्य पापस्य बलं तेन कृतघ्नप्रष्ठः कृतघ्नश्रेष्ठः काष्ठाङ्गारो नाम राजापसदो नृपाधमः कदाचित् अमुष्य जीवककुमारस्य पराक्रमम् असृष्यन् असहमानः केनापि दोषमिषेणापराधव्याजेन एनं कुमारं मारयितुम्—इत्येतावद् इतिपर्यन्तमेव अवोचामहि अगादिष्म । तावता तावत्कथनेनैव संजातां समुत्पन्नाम् इरंमदेव मेघज्योतिषा वज्रेणेति यावत् आविद्धः प्रहृतः शयुरजगरस्तस्येव आपदमापत्तिम् इदानीमपि साम्प्रतमपि 'इत्थमितिप्रकारां, इति वक्तुं कथयितुं न जानीमहे ।

§ २०७. पुनरिति—पुनरनन्तरम् अतिप्रलापस्य तीव्रविलापस्य तुमुलेन कलकलशब्दातिरेकेणोपस्थिता निकटं प्राप्ता यास्तापसपत्न्यस्तापस्यस्ताभिः परीतो व्याप्त उपकण्ठः पार्श्वप्रदेशो यस्मिंस्तत्, आक्रन्देन रोदनध्वनिना विशीर्यमाणः कण्ठो गलो यस्मिंस्तत्, आलोकनाय दर्शनायोत्कण्ठमानः समुत्सुकीभवन् वटुपेटको बालसमूहो यस्मिंस्तत्, अत्युत्कटकोलाहलेन तीव्रतरकलकलशब्देन पलायमाना धावमाना पर्णशालाङ्गणस्योटजाङ्गणस्य कुरङ्गगणा हरिणसमूहा यस्मिंस्तत्, अतिकरुणं यद् रोदनं तस्य निदानस्य प्रमुखनिमित्तस्य प्रश्ने प्रच्छने एकतानः संलग्नो मुनिवृन्दो यस्मिंस्तथाभूतं तद् अमन्दव्यसनं विपुलकष्टम्

होनेका गौरव दिखला रही थी । दयाको उत्पन्न करनेवाली उस जगन्माताने बड़े आदरके साथ हम लोगोंसे पूछा कि हे माननीय जनो ! तुम सब कहाँके हो ? प्रत्युत्तर देनेके लिए तत्पर हो हम लोगोंने कहा कि हे देवि ! हम लोग राजपुरीमें रहनेवाले वैश्यपतिके पुत्र एवं दीन मनुष्योंको जीवित करनेके लिए अमृतस्वरूप जीवन्धरकुमारके मित्र हैं । हमारे पापकी प्रबलतासे कृतघ्नोंमें श्रेष्ठ काष्ठांगार नामका नीच राजा किसी समय उसके पराक्रमको सहन न करता हुआ किसी दोषके बहाने इसे मारनेके लिए—बस, हम इतना ही कह सके थे कि उतने ही से उस देवीको वज्रसे ताड़ित अजगरके समान जो दुःख हुआ था उसे हम आज भी कहना नहीं जानते ।

§ २०७. तदनन्तर अत्यधिक प्रलापके जोरदार शब्दसे पास आयी हुई भयभीत मुनिपत्नियोंसे जिसमें समीपका स्थान घिर गया था, रोनेके शब्दसे जिसमें गला फट गया था, जहाँ बच्चोंके समूह देखनेके लिए उत्कण्ठित हो रहे थे, अत्यधिक कोलाहलके कारण जहाँ पर्णशालाओंके आँगनोंमें विद्यमान हरिणोंका समूह भाग रहा था और जिसमें मुनियोंका समूह अत्यन्त करुण रोनेका कारण पूछनेमें तन्मय था ऐसे बहुत भारी कष्टका अनुभव करती

पङ्क्तिः स्तनितेन सममममृतमिव परिदेवनेन सह देवस्य वृत्तान्तमपि यथावृत्तं जगदभिवृद्धये प्रकटयामास। वयं तु पुनरिदंतया विदितदेवोदन्ताः (कन्दलितानन्दकन्दाः[1]) 'कथमन्यदुपक्रान्तमन्यदापतितम्! अहो धन्या वयमद्य संजाताः!' इत्यन्योन्यस्य मुखमीक्षमाणाः 'क्षोणी चाभवदस्मदधीना। कीनाशमपि काष्ठाङ्गारं काष्ठमिवाशुशुक्षणिराशु भस्मसात्करिष्यामः' इति वदन्तः परस्परं तां धिक्कृतां धैर्येण, हुंकृतामहंकारेण, भर्त्सितां भाग्येन, धर्षितां प्रहर्षेण, विस्मृतां स्मितेन, वञ्चितां विवेकेन, सजुगुप्सां स्त्रीजन्मनि, सापलापां पुण्येषु, सक्रोधां वेधसि[2], सलज्जां जीवितव्ये, सत्रासां पुत्रलाभे, दर्शितदुरवस्थां देवीम् 'देवि' मा भैषीरेवम्। न मारितः स कुमारः। किं तु मारयितुमभीष्टोऽयं केनापि विशिष्टेनास्मद्दिष्ट्या तत्क्षण एव संरक्षितः क्वापि क्षितौ सुखेनास्ते। तद्दर्शनास्थया प्रस्थिता वयमप्युपस्थास्यामहे चाद्यश्वस्तमवश्यम्। देवि,

अनुभवन्ती इयम् अखिलजगदम्बिका निखिलजगन्माता तदानीं तस्मिन् काले अम्बुमुचां मेघानां पङ्क्तिः स्तनितेन गर्जितेन समम् अमृतमिव पीयूषमिव परिदेवनेन विलापेन सह देवस्य भवतो वृत्तान्तमपि यथावृत्तं जगदभिवृद्धये लोककल्याणाय प्रकटयामास। वयं तु पुनरिदंतया अनेन प्रकारेण विदितदेवोदन्ता ज्ञातभवद्वृत्तान्ताः 'कथम् अन्यद् उपक्रान्तं प्रारब्धम् अन्यद् आपतितं प्राप्तम्। अहो अद्य वयं धन्या भाग्यशालिनः संजाताः'। इतीत्थम् अन्योऽन्यस्य परस्परस्य मुखं वदनम् ईक्षमाणाः पश्यन्तः 'क्षोणी च पृथिवी चास्मदधीना मदायत्ता अभवत्। कीनाशं यमतुल्यमपि काष्ठाङ्गारं काष्ठमिन्धनम् आशुशुक्षणिरिव भस्मसात्करिष्यामो धक्ष्याम' इति परस्परं वदन्तः कथयन्तो धैर्येण धृत्या धिक्कृतां तिरस्कृताम्, अहंकारेण गर्वेण हुंकृतामनादृताम्, भाग्येन दैवेन भर्त्सितां तर्जिताम्, प्रहर्षेण प्रमोदेन धर्षिताम् अप्रगल्भिताम्, स्मितेन मन्दहास्येन विस्मृतामुपेक्षिताम्, विवेकेन वञ्चितां प्रतारितां, स्त्रीजन्मनि जायाजनुषि सजुगुप्सां सघृणां, पुण्येषु सुकृतेषु सापलापामभावसहितां, वेधसि ब्रह्मणि सक्रोधां सकोपाम्, जीवितव्ये जीवने सलज्जां सत्रपां, पुत्रलाभे सत्रासां सभयां, दर्शिता दुरवस्था दुर्दशा यया तां देवीं जगन्मातरं 'देवि! एवमनेन प्रकारेण माभैषीर्भयं मा कुरु। स कुमारो न मारितः किन्तु मारयितुं घातयितुम् अभीष्टोऽभिप्रेतः अयं जीवकः केनाप्यविज्ञातेन विशिष्टेन सत्त्वेन अस्मद्दिष्ट्या मद्भाग्येन तत्क्षण एव तत्काल एव संरक्षितः संत्रातः क्वापि कुत्राप्यस्मदविज्ञातायां क्षितौ पृथिव्यां सुखेनास्ते विद्यते। तस्य जीवकस्य दर्शनं समवलोकनं

हुई इस समस्त जगत्की माताने उस समय जिस प्रकार मेघोंकी पंक्ति गर्जनाके साथ-साथ अमृत—जलको प्रकट करती है उसी प्रकार विलापके साथ-साथ आपका वृत्तान्त भी जैसा कुछ हुआ था जगत्के कल्याणके लिए प्रकट किया था। इस तरह जिन्होंने आपका वृत्तान्त जान लिया था, जिनके आनन्दका कन्द-कन्दलित—अंकुरित हो रहा था, कुछ प्रारम्भ किया और कुछ आ प्राप्त हुआ। अहो! आज हम लोग धन्य हुए' इस प्रकार जो परस्पर एक-दूसरेका मुख देख रहे थे तथा पृथिवी हमारे आधीन हो गयी, काष्ठांगार यम भी हो जाये तो भी हम लोग उसे काष्ठको अग्निके समान भस्म कर देंगे, इस प्रकार जो परस्पर कह रहे थे ऐसे हम लोगोंने धैर्यसे धिक्कृत, अहंकारसे हुंकृत, भाग्यसे तिरस्कृत, प्रकृष्ट हर्षसे अपमानित, मुसकानसे भुलायी हुई, विवेकसे वंचित, स्त्रीपर्यायमें ग्लानिसे सहित, पुण्यमें अपलापसे युक्त, विधातापर क्रोधसे सहित, जीवनमें लज्जासे युक्त, पुत्रके लाभमें भयसे युक्त, एवं अपनी दुर्दशाको दिखानेवाली उस जगन्माताको हमलोगोंने आश्वासन दिया कि 'हे देवि! इस तरह डरो मत। वह कुमार मारा नहीं गया है। मारे जानेके लिए इष्ट था किन्तु हम लोगोंके भाग्यसे किसी विशिष्ट पुरुषने उसकी उसी क्षण रक्षा कर ली। अब वह पृथिवीपर कहीं

१. म० 'कन्दलितानन्दकन्दाः' इत्यधिकः पाठो विद्यते। २ क० वचसि। वेधसि पाठान्तरमिति टि०।

त्वं च द्रागेव द्रक्ष्यसि त्यक्ष्यसि च हृच्छल्यं यतो भोक्ष्यति भुवं पुत्रस्ते निजामित्रमपि हेलया हत्वा' इत्येवं चान्यथा च भृशमाश्वास्य तद्व्यथां कथमपि लघयन्तः पुनरलघुस्नेहमापृच्छ्य ततो गच्छतः सौरभेयीहरणच्छलेन निजश्रीपादच्छायां श्रितवन्तः' इति ।

§ २०८. एवं व्याहरत्येव तस्मिन्विकस्वरमुखे पद्ममुखे, वीतमुखकान्तिर्विजयानन्दनोऽयं 'हन्त हन्त हतकस्यास्य जनस्य जननी किमिदानीं यावज्जीवति । जीवतां जगति किं नाम न श्राव्यं श्रोतव्यम् ।' इति साकूतं सानुतापं सकौतुकं च वदन्कण्ठोक्तमातृदर्शनोत्कण्ठः[1] कण्ठीरवकिशोर इव सत्वरमुत्तिष्ठन्महीपृष्ठादनुधावदवरजवयस्यैरमा सरभसमुपसृत्य संबन्धिगृहं कथं-

तस्यास्था श्रद्धा तया प्रस्थिताः प्रयाता वयमपि च अद्यश्वः संनिकटकाल इत्यर्थः तमत्रश्यम् उपस्थास्यामहे प्राप्स्यामः । देवि ! मातः ! त्वं च त्वमपि द्रागेव शीघ्रमेव द्रक्ष्यसि हृच्छल्यं मनःशल्यं त्यक्ष्यसि च यतो यस्मात्कारणात् ते पुत्रो जीवको हेलयानायासेन निजामित्रमपि स्वशत्रुमपि हत्वा भुवं भोक्ष्यसि पालयिष्यसि' इत्येवं चान्यथा चेतरथा च भृशमत्यर्थम् आश्वास्य सान्त्वयित्वा तद्व्यथां तदीयपीडां कथमपि लघयन्तो लघ्वीं कुर्वन्तः पुनः अलघुः स्नेहो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा आपृच्छ्य पृष्ट्वा ततस्तापसाश्रमाद् गच्छन्तः सौरभेयीनां गवां हरणच्छलेन हरणव्याजेन निजस्य भवतः श्रीपादयोः श्रीचरणयोश्छायां श्रितवन्तः प्राप्तवन्त इति ।

§ २०८. एवमिति—विकस्वरं देदीप्यमानं मुखं यस्य तथाभूते तस्मिन् पद्ममुखे तन्नामसुहृदि एवं व्याहरत्येव कथयत्येव वीता विनष्टा मुखस्य वक्त्रस्य कान्तिर्दीप्तिर्यस्य तथाभूतोऽयं विजयानन्दनो जीवंधरो 'हन्त हन्त दुःखातिशये द्विरुक्तिः, अस्य हतकस्याधमस्य जनस्य जननी माता किम् इदानीं यावत् अद्य पर्यन्तं जीवति ? जीवतामसृतानां जनानां जगति किं नाम न श्राव्यं श्रोतुं योग्यं श्रोतव्यमाकर्णयितव्यम् ।' इति साकूतं साभिप्रायं सानुतापं सपश्चात्तापं सकौतुकं सकुतूहलं च वदन् कण्ठोक्ता स्पष्टमुक्ता मातृदर्शनस्य जनन्यवलोकनस्योत्कण्ठा समुत्सुकता येन तथाभूतः कण्ठीरवकिशोर इव मृगेन्द्रमाणवक इव सत्वरं शीघ्रं महीपृष्ठाद् भूतलात् उत्तिष्ठन् अवरजाश्च वयस्याश्चेत्यवरजवयस्या लघुसहोदरसहचरा अनुधावन्तः पश्चाद्व्रजन्तो येऽवरजवयस्यास्तैः अमा सार्धं सरभसं सवेगं संबन्धिगृहं श्वसुरगृहम् उपसृत्य

सुखसे विद्यमान हैं। उसी कुमारके दर्शनकी श्रद्धासे हम लोग भी चले हैं और आजकलमें अवश्य ही उसके पास उपस्थित हो जायेंगे। हे देवि ! तुम शीघ्र ही उन्हें देखोगी और हृदयकी शल्य छोड़ोगी क्योंकि तुम्हारा पुत्र अनायास ही अपने शत्रुको नष्ट कर पृथिवीका पालन करेगा' इस प्रकार तथा अन्य प्रकारसे अत्यन्त आश्वासन देकर उसकी पीड़ाको हम लोगोंने किसी तरह शान्त किया और तदनन्तर बहुत भारी स्नेहसे पूछकर वहाँसे चलते हुए हम लोग गायोंके अपहरणके बहाने आत्मलक्ष्मीके चरणोंकी छायाको प्राप्त हुए हैं—आपके समीप आये हैं।

§ २०८. प्रफुल्ल मुखको धारण करनेवाला पद्मास्य इस प्रकार कह ही रहा था कि जीवन्धरकुमारके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी। वे खास चेष्टाओं, पश्चात्ताप और कौतुकके साथ कहने लगे कि 'हर्ष-हर्ष, इस अधम नरकी माता क्या अबतक जीवित है ? संसारमें जीवित रहनेवाले प्राणियोंको क्या नहीं सुननेको प्राप्त होता है ?' उन्होंने अपने कण्ठसे माताके दर्शनकी उत्कण्ठा प्रकट की और सिंहके बच्चेके समान शीघ्र ही पृथिवीतलसे उठकर पीछे-पीछे दौड़नेवाले छोटे भाई तथा मित्रोंके साथ सम्बन्धीके घर जाकर किसी तरह

१ क० 'कण्ठोक्त' पदं नास्ति ।

चिद्गृहीतश्वशुराद्यनुमतिरनुचरमुखविदिततदीयजिगमिषायाः प्रागेव जिगमिषुप्राणां प्रबलदावज्वलनज्वालालीढजरठेतरमाधवीलतातुलितां कनकमालाम् 'भीलुके',[1] मैवं भेतव्यम् । वासु, सहस्व मासमात्रम् । मात्रीयव्यसनशमनकृते गमनमिदम् । अन्यथा कथं क्षणकालमपि त्वद्विकलः कलयामि गमयितुम् । गन्तुकामोऽहमपि कान्ते, त्वां मम स्वान्ते निधाय ननु गन्तास्मि । तस्मात्तव भीरुके, विरहस्य कः प्रसङ्गः !' इति प्रसङ्गोचितामितप्रियसंभाषणपर्यायपीयूषवर्षेण प्रशमितनितान्ततीव्रसंतापां तां संपाद्य पुनः संपदर्हमहार्हपरिबर्हेण सार्धमर्धपथाधिकयात्रेण दृढमित्रमहाराजेन सुमित्रादिना च दुःशकनिवारणतया सुदुःखमुज्झितः प्रसभं प्रधावन्प्रसरदग्निहोत्रधूम्रफलभारनम्रनैकभूरुहं वासरावसानसंक्षिप्तनीवाराङ्गणनिषादिमृगगणनिर्वर्तित-

कथंचित् केनापि प्रकारेण गृहीता प्राप्ता श्वसुरादिभ्योऽनुमतिर्गमनानुमोदनं येन तथाभूतः, अनुचराणां सेवकानां मुखाद् विदिता विज्ञाता या तदीयजिगमिषा तद्गन्तुमिच्छा तस्याः प्रागेव पूर्वमेव जिगमिषुप्राणां गन्तुमुत्सुकासुम् प्रबलाभिः प्रकृष्टाभिर्दावज्वलनज्वालाभिर्वनानलार्चिर्भिर्लीढा व्याप्ता या जरठेतरा सुकुमारा माधवीलता तया तुलिता सदृशी ताम् कनकमालां दृढमित्रदुहितरम् 'भीलुके ! हे भयशालिनि ! एवं मा भेतव्यं भयं नो कर्तव्यम् । वासु ! सुन्दरि ! मासमात्रं त्रिंशद्दिवसमात्रं सहस्व क्षमस्व । मातुरिदं मात्रीयं तच्च तद्व्यसनं कष्टं तस्य शमनस्य निवारणस्य कृते गमनमिदम् । अन्यथा एतत्प्रयोजनाभावे त्वया विकलस्त्वद्विकलस्त्वद्रहितः क्षणकालमपि अल्पावसरमपि गमयितुं व्यत्येतुं कथं कलयामि समर्थो भवामि । कान्ते ! हे वल्लभे ! गन्तुकामोऽपि गन्तुमना अप्यहं त्वां मम स्वस्य स्वान्ते चेतसि निधाय स्थापयित्वा ननु निश्चयेन गन्तास्मि गमिष्यामि । तस्मात् भीरुके ! हे भयवति ! तव भवत्या विरहस्य विप्रयोगस्य कः प्रसङ्गोऽवसरः ।' इतीत्थं प्रसङ्गोचितं प्रकरणार्हम् अमितं निःसीम यत् संभाषणं तदेव पर्यायो यस्य तथाभूतं यत्पीयूषं सुधा तस्य वर्षेण वृष्ट्या प्रशमितो नितान्ततीव्रः प्रचुरतरः संतापो यस्यास्तथाभूतां तां कनकमालां संपाद्य कृत्वा पुनरनन्तरम् संपदर्हो वैभवानुरूपो यो महार्हपरिबर्हो महायोग्यसामग्र्या सार्धम् अर्धपथादप्यधिका यात्रा यस्य तेन दृढमित्रमहाराजेन कनकमालापित्रा सुमित्रादिना च सुमित्रादिसहोदरेणापि च दुःशकं दुर्निवार्यं निवारणं यस्य तथाभूततया सुखदुःखतस्त्यक्तः प्रसभं हठात् प्रधावन् दण्डकारण्याश्रमं दण्डकवनतापसाश्रमम् अधिवसन्तीं तत्र कृतनिवासां मातरं सावित्रीम् अत्यादरं यथा स्यात्तथाभ्येत्य संमुखमागत्य प्रणनाम नमश्चकार । अथ दण्डकारण्याश्रमं विशेषयितुमाह-- प्रसरदिति— प्रसरता प्रसरण-

श्वसुर आदिकी अनुमति प्राप्त की। सेवकोंके मुखसे जानी हुई अपने जानेकी इच्छाके पूर्व ही जिसके प्राण निकल जाना चाहते थे और अत्यन्त तीव्र दावानलकी ज्वालाओंसे व्याप्त कोमल माधवीलताके तुल्य जिसकी दशा थी ऐसी कनकमालाको उन्होंने निम्न प्रकार सान्त्वना दी—'हे कातरे ! इस तरह नहीं डरना चाहिए। हे सुन्दरि ! केवल एक माह तक विरह सहन करो। माताका कष्ट शान्त करनेके लिए यह गमन है। अन्यथा तुम्हारे बिना क्या एक क्षण भी बितानेके लिए मैं समर्थ हूँ ? हे कान्ते ! यद्यपि मैं जाना चाहता हूँ तथापि तुम्हें अपने हृदयमें रखकर जाऊँगा इसलिए हे भीरु ! बिरहका अवसर ही क्या है ?' इस प्रकार अवसरके योग्य अपरिमित प्रियभाषणरूपी अमृतकी वर्षासे कनकमालाका तीव्र सन्ताप शान्त कर वे वहाँसे चले। अपनी सम्पत्तिके अनुरूप बहुत भारी परिकरके साथ दृढ़मित्र महाराज तथा सुमित्र आदि साले उन्हें आधे मार्गसे भी अधिक दूर तक पहुँचानेके लिए आये। अन्तमें रोका जाना असम्भव होनेसे उन्होंने जीवन्धरस्वामीको बड़े दुःखसे छोड़ा। उन सबसे छूटते ही वे बड़े वेगसे दौड़ते हुए, जहाँ फैलनेवाले हवनके धूमसे धूमिल फलोंके

1. क० भीरुके ।

रोमन्थमालवालाम्भःपानलम्पटविहगपेटकविश्वासविधानकृते सेकान्तविसृष्टवृक्षमूलमुनिकन्यकाविवृतकारुण्यं दण्डकारण्याश्रममधिवसन्तीम्, मुषितामिव मोहेन, क्रीतामिव कृशिम्ना, वशीकृतामिव शुचा दुःखैरिवोत्खाताम्, व्यसनैरिवास्वादिताम्, तापैरिवापीडिताम्, चिन्तयेवाचान्ताम्[1], क्लेशैरिवावेशिताम्, अभाग्यैरिवासंविभक्तां[2] मातरमत्यादरमभ्येत्य प्रणनाम ।

§ २०९. सा च नन्दनमुखेन्दुसंदर्शनेन सलिलनिधिरिवोद्वेलसंभ्रमा, प्रौढप्रेमान्धतया प्राप्तयौवनमप्यौरसमवरजं च सुचिरं परिरभ्य तत्परिरम्भणपर्यायपरमभेषजप्रयोगतस्तज्जननसमय-

---

शीलेनाग्निहोत्रधूमेन हव्यवाहहवनधूमेन धूम्रा मलिना ये फलभाराः फलसमूहास्तैर्नम्रा नैकभूरुहा नैकवृक्षा यस्मिंस्तम्, वासरेति—वासरावसाने दिनान्ते संक्षिप्ताः समाहृता नीवारा वन्यधान्यविशेषा यस्मिंस्तथाभूतेऽङ्गणे चत्वरे निषादी समुपविष्टो यो मृगगणः कुरङ्गसमूहस्तेन निर्वर्तितो रचितो रोमन्थश्चर्वितचर्वणं यस्मिंस्तम्*, आलवालेति—आलवालानामावापानामम्भसो जलस्य पाने लम्पटाः संसक्ता ये विहगाः पक्षिणस्तेषां पेटकस्य समूहस्य विश्वासः प्रत्ययस्तस्य विधानकृते करणाय; सेकान्त इति—सेकान्ते सेचनावसाने विसृष्टानि त्यक्तानि वृक्षमूलानि तरुमूलानि याभिस्तथाभूताभिर्मुनिकन्यकाभिस्तापसबालिकाभिर्विवृतं प्रकटितं कारुण्यं दयालुत्वं यस्मिंस्तम् । अथ मातुर्विशेषणान्याह—मोहेन ममत्वभावेन मुषितामिव चोरितामिव, कृशिम्ना दौर्बल्येन क्रीतामिव गृहीतामिव, शुचा शोकेन वशीकृतामिव स्वाधीनीकृतामिव, दुःखैरुत्खातामिव समुत्पाटितामिव, व्यसनैः कष्टैरास्वादितामिव समनुभूतामिव, तापैः पश्चात्तापजनितौष्ण्यैरापीडितामिव दुःखितामिव चिन्तयानुध्यानेनाचान्तामिव जिह्वया लीढामिव, क्लेशैर्दुःखैरावेशितामिव युक्तामिव अभाग्यैः संविभक्तामिव कृतविभागामिव ।

§ २०९. सा चेति—सा च जीवंधरजननी नन्दनस्य पुत्रस्य मुखमेवेन्दुश्चन्द्रस्तस्य संदर्शनेन सलिलनिधिरिव जलधिरिव उद्वेलः सीमातिशायी संभ्रमो यस्यास्तथाभूता प्रौढप्रेम्णा गाढानुरागेणान्धा निमीलितनेत्रा तया प्राप्तयौवनमपि लब्धतारुण्यमपि औरसं पुत्रम् अवरजं नन्दाढ्यं च सुचिरं सुदीर्घकालं

भारसे अनेक वृक्ष नम्रीभूत थे, जहाँ सायंकालके समय इकट्ठी की हुई जंगली धान्योंसे युक्त आँगनोंमें बैठे हुए मृगगण रोंथा रहे थे और जहाँ क्यारियोंका पानी पीनेके लिए लम्पट पक्षीसमूहको विश्वास दिलानेके लिए सींचनेके तत्काल बाद वृक्षोंका मूल छोड़ देनेवाली मुनिकन्याओंके द्वारा करुण भाव प्रकट हो रहा था ऐसे दण्डक वनमें निवास करनेवाली माताके सम्मुख बहुत भारी आदरके साथ पहुँचे। उनकी वह माता ऐसी जान पड़ती थी मानो मोहसे लुटी हुई हो, दुर्बलतासे मानो खरीदी गयी हो, शोकके द्वारा मानो वश की गयी हो, दुःखोंके द्वारा मानो उखाड़ी गयी हो, व्यसनोंसे मानो आस्वादित हो, सन्तापसे मानो पीड़ित हो, चिन्तासे मानो आचान्त हो—चाँटी गयी हो, क्लेशोंसे मानो युक्त हो और अभाग्यसे मानो परिपूर्ण हो। सामने जाकर उन्होंने उस माताको बड़े आदरसे प्रणाम किया।

§ २०९. पुत्रका मुखचन्द्र देखनेसे समुद्रके समान जिसका हर्ष वेलाको पार कर गया था ऐसी माताने गाढ़प्रेमसे अन्धी होनेके कारण तरुण होनेपर भी पुत्रका तथा उसके छोटे भाई नन्दाढ्यका चिरकाल तक आलिंगन किया और उनके आलिंगनरूपी औषधिके प्रयोगसे

---

१. क० चिन्तयेवाक्रान्ताम् । २. म० अभाग्यैरिवासंविभक्ताम् ।

* सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् ।
विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥५१॥
आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः ।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गनभूमिषु ॥५२॥ रघुवंश, सर्ग १

त्यागेन तदभिवर्धनसौख्यवियोगेन तदीयहृदयरहितनिर्हेतुकदरहसिताम्रेडितानन्दकरपांसुक्रीडानवलोकनेन च रूढमतिमात्रं पुत्रशोकहृच्छल्यं साकल्येन मुमोच । तदनु च निजसुतनिर्विशेषप्रतिपत्तिमुदितमित्रैः पुत्राभ्यां च केसरिणीव किशोरकैः परीता सा निषद्य सपरितोषममून्निरीक्ष्य 'अङ्ग पुत्राः, चिरकाङ्क्षितयुष्मद्दर्शनसुखोपलम्भदुर्ललितहृदयवृत्तिः पचेलिमसुकृतबलेन हेलया मे निष्पन्ना । अपि नामैवं जीवत्यामेव मयि निष्प्रत्यूहं निष्पद्येत निजराज्यप्रवेशवार्तयापि कदाचित्कर्णोत्सवः । स खलु महोत्साहेन महापुण्येन महापरिकरेण च साध्यः कथं देशेन कोशेन मौलेन पृष्ठबलेन च वा विधुरैर्युष्माभिः सुकरः स्यात् । अस्ति चेत्सुकृतमस्तु कदाचिदियममित्र-

यावत् परिरभ्य समालिङ्ग्य तयोः परिरम्भणं समालिङ्गनमेव पर्यायो यस्य तथाभूतं यत् परमभेषजमुत्कृष्टौषधं तस्य प्रयोगवः सेवनात् तज्जननसमयत्यागेन पुत्रोत्पत्तिकाल एव त्यागेन तदभिवर्धनस्य पुत्रपरिपालनस्य यत्सौख्यं तस्य वियोगेन विरहेण, हृदयरहितं मनोव्यापाररहितं निर्हेतुकं निष्कारणं च यद्दरहसितं मन्दहसितं तस्याम्रेडितं पुनरुक्तीभावः, तच्च आनन्दकरपांसुक्रीडा च हर्षविधायिधूलिकेलिश्चेत्यनयोर्द्वन्द्वः तदीये तत्संबन्धिन्यौ ये हृदयरहितनिर्हेतुकदरहसिताम्रेडितानन्दकरपांसुक्रीडे तयोरनवलोकनेनादर्शनेन च रूढं समुत्पन्नमतिमात्रं प्रभूतं पुत्रशोक एव हृच्छल्यं सुतविरहजन्यशोकमनःशल्यं साकल्येन सम्पूर्णभावेन मुमोच तत्याज । तदनु चेति—तदनु च तदनन्तरं च निजसुतनिर्विशेषा स्वसूनुसदृशी या प्रतिपत्तिरादरभावेनाङ्गीकरणं तया मुदितानि प्रसन्नानि यानि मित्राणि सखायस्तैः पुत्राभ्यां च जीवंधरनन्दाढ्याभ्यां च परीता परिवृता सा विजया किशोरकैः स्वमाणवकैः परीता केसरिणीव सिंहीव निषद्य समुपविश्य सपरितोषं ससंतोषम् अमून् सर्वान् निरीक्ष्य दृष्ट्वा 'अङ्ग पुत्राः !' अये वत्साः ! पचेलिमं पक्तुं योग्यं यत्सुकृतं पुण्यं तस्य बलेन मे मम चिरकाङ्क्षितं चिराभिलषितं यद् युष्मद्दर्शनं युष्मदवलोकनं तेन यत्सुखं शर्म तस्योपलम्भेन प्राप्त्या दुर्ललिता गर्वविशिष्टा चासौ हृदयवृत्तिश्च मनोवृत्तिश्च हेलयानायासेन निष्पन्ना पूर्णा । अपि नामेति-संभावनायाम्, एवमनेन प्रकारेण मयि वृद्धायां जीवन्त्यामेव निष्प्रत्यूहं निर्विघ्नं यथा स्यात्तथा कदाचिज्जातुचित् निजराज्ये स्वराज्ये प्रवेशस्य वार्ता समाचारस्तयापि कर्णोत्सवः श्रवणाह्लादो निष्पद्येत सम्पन्नो भवेत् । खलु निश्चयेन स स्वराज्यप्रवेशवार्तोत्सवो महांश्चासावुत्साहश्च महोत्साहस्तेनातिदाक्ष्येण महच्च तत्पुण्यं चेति महापुण्यं प्रबलसुकृतं तेन, महांश्चासौ परिकरश्चेति महापरिकरस्तेन महतोद्यमेन च साध्यः करणीयः देशेन जनपदेन कोशेन निधिना, मौलेनामात्यादिमूलवर्गेण, पृष्ठबलेन च सहायकसैन्येन च वा विधुरै रहितैर्युष्माभिः कथं केन प्रकारेण सुकरः सुखेन कर्तुमर्हः स्यात् । अस्ति चेत् विद्यते यदि सुकृतं

उस पुत्र शोकरूपी बहुत भारी हृदयकी शल्यको सम्पूर्णरूपसे छोड़ दिया जो कि उसके जन्मके समय ही त्याग देनेसे, उसके लालन-पालन सम्बन्धी सुखके वियोगसे और उसके हृदयरहित अकारण बार-बार खिलखिलाना तथा आनन्द उत्पन्न करनेवाली धूलि क्रीड़ाके न देखनेसे उत्पन्न हुई थी । तदनन्तर अपने पुत्रके समान सत्कारसे प्रसन्न मित्रों और दोनों पुत्रोंसे घिरी माता बच्चोंसे घिरी सिंहिनीके समान सन्तोषसहित बैठी और उन सबकी ओर देखकर बोली कि 'हे पुत्रो ! मेरे हृदयकी वृत्ति आज परिपाकमें आये हुए पुण्यके बलसे अनायास ही चिरकालसे अभिलषित तुम सबके दर्शनजन्य सुखकी प्राप्ति होनेसे अस्तव्यस्त हो रही है अर्थात् मेरे हृदयमें तुम सबको देखनेकी जो इच्छा चिरकालसे विद्यमान थी वह आज उदयागत पुण्यके प्रभावसे अनायास ही पूर्ण हो गयी है । क्या इसी तरह मेरे जीवित रहते हुए कभी निर्विघ्नरूपसे अपने राज्य प्रवेशके समाचारसे भी कानोंको हर्ष उत्पन्न होगा ? अथवा वह हर्ष महान् उत्साह, महान् पुण्य और महान् साधन सामग्रीसे साध्य है अतः देश, खजाना, मन्त्री आदि मूल वर्ग और पीछे रहनेवाली सेनासे रहित तुम लोगोंको सुलभ कैसे हो सकता है ?

निबर्हणपुरःसरा पित्र्यपदावाप्तिः[1]। तावदरातिप्रतारणप्रसजदात्मापायः सदाप्युपायप्रष्ठोद्यतैर्युष्माभिः परिह्रियताम्। परिपन्थिजनगृह्याः खलु निगृह्याः पुरंध्रयः पुमांसश्च। केचिदशने शयने पाने वसने च व्यसनकरं गरं मिश्रयित्वा व्यापादयितुं यतेरन्' इत्येवमादरं व्याजहार। एवं निजविजयशंसि विजयावचः श्रुत्वा विजयासूनुः 'अम्ब, नार्थेऽस्मिन्नत्यर्थं व्यसनमनुभूयताम्। भूयांसस्तव पुत्राः प्रत्येकमप्यमी प्रभवन्ति हत्वा राजघमरिं स्वराज्यमन्यराज्यं च स्वसात्कर्तुम्। अतः कर्तव्यमतः परं त्वया निराकुलमवस्थानम्। कृतं निराकृतानामस्माकं कृते भुक्तपूर्वया दुर्वहव्यथया' इत्येवं सगर्वं सानुतापं च प्रत्युदीर्य विचार्य च रहः स्वकार्यनिर्वहणप्रकारमवरजपद्ममुखप्रमुखपरिकरेण समं मातरं मातुलस्य सम्राजः सद्मनि प्रहित्य प्रसभं स्वयमपि राजपुरीं प्रतस्थे।

पुण्यं, तर्हि कदाचित् इयम् अमित्रस्य शत्रोर्निबर्हणं निराकरणं पुरस्सरं यस्यास्तथाभूता पित्र्यपदावाप्तिः पितृस्थानावाप्तिः अस्तु भवतु। तावदिति—तावत् पित्र्यपदावाप्तिपर्यन्तम् सदापि शश्वदपि उपायप्रष्ठोद्यतैः श्रेष्ठोपायतत्परैः युष्माभिः अरातिप्रतारणेन शत्रुवञ्चनया प्रसजन् प्रपद्यमानो य आत्मापायः स्वविनाशः परिह्रियताम् दूरीक्रियताम्। खलु निश्चयेन परिपन्थिजनस्य शत्रुसमूहस्य गृह्या आधीनाः पुरन्ध्रयः स्त्रियः पुमांसश्च पुरुषाश्च निगृह्या निगृहीतुं योग्या दण्ड्याः सन्तीति शेषः। 'केचित् केऽपि जना अशने भोजने शयने स्वापे पाने धयने, वसने च वस्त्रे च व्यसनकरं कष्टकरं गरं विषं मिश्रयित्वा मेलयित्वा व्यापादयितुं मारयितुं यतेरन् यत्नं कर्तुमुद्यता भवेयुः' इत्येवमेतादृशम् अत्यादरं समुत्कटसम्मानसहितं यथा स्यात्तथा व्याजहार जगाद। एवमिति—एवमनेन प्रकारेण निजविजयं शंसति सूचयतीत्येवंशीलं विजयावचो मातृवचनं श्रुत्वा विजयासूनुर्जीवंधरः 'अम्ब! हे मातः! अस्मिन्नर्थे विषयेऽत्यर्थमधिकं व्यसनं दुःखं नानुभूयतां त्वयेति शेषः। तव भवत्या भूयांसो बहवः पुत्राः सन्ति, अमी प्रत्येकं राजघं नृपहन्तारम् अरिं काष्ठाङ्गारं हत्वा स्वराज्यं काष्ठाङ्गारेणात्मसात्कृतं निजराज्यम् अन्यराज्यं च स्वसात्कर्तुं स्वाधीनं कर्तुं प्रभवन्ति समर्थाः सन्ति। अतोऽस्मात् कारणात् त्वयातः परमग्रे निराकुलं व्यग्रतारहितम्, अवस्थानं कर्तव्यं विधेयम्। निराकृतानां तिरस्कृतानाम् अस्माकं कृते पूर्वं भुक्तेति भुक्तपूर्वा तया दुर्वहव्यथया प्रभूतदुःखेन कृतं व्यर्थम्' इत्येवं सगर्वं साभिमानं सानुतापं सदुःखं च प्रत्युदीर्य कथयित्वा रह एकान्ते अवरजपद्ममुखप्रमुखपरिकरेण नन्दाढ्यपद्मास्यप्रभृतिसहचरनिकरेण समं सार्धं स्वकार्यस्य काष्ठाङ्गारविघातनस्य निर्वहणप्रकारं निष्पत्त्युपायं

यदि पुण्य होगा तो कभी शत्रुके निराकरणके साथ-साथ पिताके पदकी भी प्राप्ति होगी। जबतक पिताके पदकी प्राप्ति नहीं हुई है तबतक श्रेष्ठ उपायोंके करनेमें उद्यत तुम सबको शत्रुकी कपटवृत्तिसे प्राप्त होनेवाले अपने विनाशके उपायका सदा निराकरण करते रहना चाहिए। शत्रुजनके वशमें पड़ी स्त्रियाँ और पुरुष वास्तवमें निगृह्य होते हैं—तिरस्कारके पात्र होते हैं। कितने ही लोग खाना, सोना, पीना और वस्त्र धारण करते समय कष्ट उत्पन्न करनेवाला विष मिलाकर मारनेका यत्न कर सकते हैं'—इस प्रकार उसने बहुत भारी आदरके साथ कहा। इस प्रकार अपनी विजयको सूचित करनेवाले माता विजयाके वचन सुन जीवन्धरकुमारने कहा कि हे माता! इस विषयमें अत्यन्त कष्टका अनुभव न किया जाये। आपके बहुत-से पुत्र हैं। ये एक-एक भी राजाको मारनेवाले शत्रुको मारकर अपना राज्य तथा अन्य राजाओंके राज्यको अपने आधीन करनेके लिए समर्थ हैं। राज्यसे निकाले हुए हम लोगोंके लिए जो आपने पहले दुर्वह—भारी दुःख भोगा है वह व्यर्थ है'—इस प्रकार गर्व और पश्चात्तापके

---

१. क० ग० पित्रीयपदावाप्तिः।

§ २१०. अथ मातृविलोकनस्फुरदुल्लोकहर्षः सन्सार्थ्यधरिः सरभसमपरौ पितरौ दिदृक्षुरुपसृत्य राजपुरीं पुरोपकण्ठभाजि क्वचिदुद्गमोत्कण्ठमानकलकण्ठीपादप्रहारकुसुमितस्त्रीप्रियपादपाभिरामे महत्यारामे परिकरमवस्थाप्य दिनप्रतिकूलतया कुलसदनमनुच्चलन्नुच्चलदुच्चैः—पौरकलकलरवमांसलमहोत्सववाद्यशब्दापदेशेन जननिवेशेन चिरविरहविजृम्भितदर्शनकौतुकादाहूयमान इवेयिवानभितः पुरं विचचार।

§ २११. ततश्च तत्रत्यानत्यन्तस्फुरदत्याहितः समाहितचित्तवृत्तिर्विलोचनविलोभनीयान्विलोकमानः क्वचिदभ्रंकषरम्यहर्म्याग्रे सविभ्रमभ्रमणक्वणन्मणिभूषणरवविश्राणितलयाविसं-

विचार्य च मातरं विजयां मातुलस्य मातृबन्धोः सम्राजो गोविन्दमहाराजस्य सद्मनि भवने प्रसभं हठात् प्रहित्य स्वयमपि राजपुरीं प्रतस्थे।

§ २१०. अथेति—अथानन्तरं मातृविलोकनेन जननीदर्शनेन स्फुरन्प्रकटीभवन् उल्लोकहर्षः प्रभूतानन्दो यस्य तथाभूतः सन् सार्थ्यधरिर्जीवकः सरभसं सवेगम् अपरावन्यौ पितरौ मातरपितरौ सुनन्दागन्धोत्कटाविति यावत् दिदृक्षुर्द्रष्टुमिच्छुः राजपुरीं तन्नामनगरीम् उपसृत्य समुपगम्य पुरोपकण्ठभाजि नगरनिकटस्थिते क्वचित् क्वापि उद्गमेभ्यः पुष्पेभ्य उत्कण्ठमानाः प्राप्तुमुत्सुका याः कलकण्ठ्यो नार्यस्तासां पादप्रहारेण चरणप्रहारेण कुसुमिताः पुष्पिता ये स्त्रीप्रियपादपा अशोकानोकहास्तैरभिरामे मनोहरे महति विशाले आराम उद्याने परिकरं मित्रादिसमूहम् अवस्थाप्य स्थापयित्वा दिनप्रतिकूलतया ज्यौतिषशास्त्रदृष्ट्या शुभदिनाभावात् कुलसदनं कुलभवनम् अनुच्चलन् न गच्छन्, उच्चलन् उत्पद्यमान उच्चैरुत्कटो यः पौराणां नागरिकाणां कलकलरवः कलकलध्वनिस्तेन मांसलाः परिपुष्टा ये महोत्सववाद्यानां महोत्सववादित्राणां शब्दास्तेषामपदेशेन व्याजेन जननिवेशेन लोकसमूहेन चिरविरहेण दीर्घकालवियोगेन विजृम्भितं वर्धितं यद् दर्शनकौतुकं दर्शनकुतूहलं तस्मात् आहूयमान इवाकार्यमाण इव ईयिवान् समागतः पुरमभितः नगरीं परितो विचचार बभ्राम।

§ २११. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च अत्यन्तं नितान्तं स्फुरत् प्रकटीभवद् अत्याहितमत्याश्चर्यं यस्य तथाभूतः, समाहिता सावधाना चित्तवृत्तिर्मनोवृत्तिर्यस्य तथाभूतो जीवंधरः तत्रत्यान् तत्रभवान् विलोचनानि विलोभयितुमर्हा इति विलोचनविलोभनीयास्तान् विलोकमानः पश्यन्, क्वचित्कुत्रापि अभ्रंकषं गगनस्पर्शि रम्यं मनोहरं च यद् हर्म्यं भवनं तस्याग्र उपरितनभागे सविभ्रमेति—सविभ्रमं सविलासं

साथ कहकर तथा एकान्तमें अपने कार्यके निर्वाहका विचार कर उन्होंने माताको पद्मास्य आदि परिजनके साथ सम्राट् पदके धारक मामाके घर भेज दिया और स्वयं भी हठपूर्वक राजपुरीकी ओर चल पड़े।

§ २१०. अथानन्तर माताके देखनेसे जिनका लोकोत्तर हर्ष प्रकट हो रहा था ऐसे जीवन्धरकुमार वेगसे दूसरे माता-पिता—सुनन्दा और गन्धोत्कटको देखनेकी इच्छासे राजपुरी नगरीके समीप पहुँचे। वहाँ नगरीके समीपमें स्थित तथा फूलोंके लिए उत्कण्ठित होनेवाली स्त्रियोंके पादप्रहारसे विकसित अशोकवृक्षसे सुन्दर किसी बड़े भारी बागमें साथके सब लोगोंको ठहराकर वे दिनके अनुकूल न होनेसे कुलभवन तो नहीं गये मात्र नगरके समीप पहुँचकर चारों ओर भ्रमण करने लगे। उस समय चलनेवाले नागरिक जनोंके जोरदार कलकल शब्दसे परिपुष्ट महोत्सवके बाजोंके शब्दके बहाने ऐसा जान पड़ता था मानो वह नगर चिरकालके विरहसे बढ़े हुए देखनेके कौतुकसे उन्हें बुला ही रहा हो।

§ २११. तदनन्तर जिन्हें अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था और जिनकी चित्तवृत्ति अच्छी तरह लग रही थी ऐसे जीवन्धर स्वामीने नेत्रोंको लुभानेवाले वहाँके पदार्थोंको देखते-देखते

वादिपदप्रचारम्, मुहुःस्रंसिचिकुरभारव्यापारितकरम्, अवस्रस्तप्रतिसमाहितकर्णपूरीकृतकर्णपूरपल्लवानिलशोषितकपोलपत्रभङ्गदूषिघर्मसलिलाङ्कुरम्, दरगलितकुचतटांशुकनियमनप्रवणैकपाणिपल्लवम्, उल्लसदपदेशस्मितचन्द्रिकाभिषिक्तबिम्बाधरम्, पृथुनितम्बबिम्बोत्पतदवपतदतिधवलक्षौमोज्ज्वलम्, सलीलकरव्यापारशैघ्र्यानतिक्रमितप्रकृतकेलीधवलदन्तपत्रप्रतिमासमाधानम्, * प्रतिसमयसुलभोत्थानावस्थाननिर्व्यवस्थमुक्ताहारमनोहरोरःस्थलम्, प्रसृताकुञ्चितवेल्लितबाहु-

यद् भ्रमणं संचरणं तेन क्वणन्ति शब्दायमानानि यानि मणिभूषणानि रत्नालंकरणानि तेषां रवेण शब्देन विश्राणितो दत्तो यो लयस्तानमानं तस्याविसंवादो विरोधहीनः पदप्रचारश्चरणनिक्षेपो यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, मुहुरिति—मुहुर्भूयोभूयः स्रंसिनो नीचैर्लम्बमाना ये चिकुरभाराः केशसमूहास्तेषु व्यापारितौ करौ यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, अवस्रस्तेति—आदाववस्रस्तानि नीचैर्लम्बितानि पश्चात् प्रतिसमाहितानि सुस्थिरीकृतानि यानि कर्णपूराणि कर्णालंकरणानि तत्कृता ये कर्णपूरपल्लवाः कर्णाभरणत्वेन कर्णेषु स्थापिताः किसलयास्तेषामनिलेन वायुना शोषिता अनार्द्रीकृता ये कपोलपत्रभङ्गा गण्डस्थलपत्ररचनाप्रकारास्तेषां दूषिणो घर्मसलिलाङ्कुराः स्वेदकणा यस्मिन्कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा, दरेति—दरमीषद् गलितमधःपतितं यत्कुचतटांशुकं स्तनतटवस्त्रं तस्य नियमने स्थिरीकरणे प्रवणः संलग्न एकपाणिपल्लव एककरकिसलयो यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा, उल्लसदिति—उल्लसन् प्रकटीभवत् यदपदेशस्मितं व्याजहसितं तदेव चन्द्रिका ज्योत्स्ना तयाभिषिक्तो बिम्बाधरो दशनच्छदो यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, पृथ्विति—पृथुनितम्बबिम्बात् स्थूलनितम्बमण्डलाद् उत्पतत् ऊर्ध्वं गच्छत् अवपतद् अधोगच्छच्च यद् वलक्षक्षौमं शुक्लदुकूलं तेनोज्ज्वलं यथा स्यात्तथा, सलीलेति—सलीलः सविभ्रमो यः करव्यापारः पाणिचेष्टितं तस्य शैघ्र्येण क्षिप्रकारित्वेनानतिक्रमितानि नातिशिथिलानि प्रकृतकेलीधवलानि प्रस्तुतक्रीडासितानि यानि दन्तपत्राणि कर्णोपरितनप्रदेशाभरणानि तेषां प्रतिमासमाधानं सुस्थिरीकरणं यस्मिंस्तद्यथा स्यात्तथा, प्रतिसमयेति—प्रतिसमयं क्षणं क्षणं सुलभाभ्यामुत्थानावस्थानाभ्यामुत्पतनावपतनाभ्यां निर्व्यवस्थश्चञ्चलो यो मुक्ताहारस्तेन मनोहरं रमणीयमुरःस्थलं वक्षःस्थलं यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, प्रसृतेति—प्रसृता वितता आकुञ्चिता

कहीं गगनचुम्बी सुन्दर महलके अग्र भागपर गेंद खेलनेवाली किसी कन्याके हस्ततलसे छूटकर सामने गिरती हुई कोई गेंद देखी। गेंद खेलते समय विभ्रमपूर्वक घुमानेसे शब्दायमान मणिमय आभूषणोंके शब्दसे दी हुई लयके अनुरूप ही उस कन्याके पैरोंका संचार हो रहा था। बार-बार नीचेकी ओर लटकते हुए केशोंके समूहको ठीक करनेके लिए उसका हाथ चलता रहता था। नीचेकी ओर लटकनेके बाद पुनः ठीककर कानोंमें पहने हुए कर्णपूरके पल्लवोंकी वायुसे सुखाये गये कपोलोंकी पत्ररचनाको दूषित करनेवाला पसीना उठ रहा था। कुछ-कुछ नीचेकी ओर गिरे हुए स्तनतटके वस्त्रको ठीक करनेमें उसका एक हस्तरूपी पल्लव सदा संलग्न रहा करता था। किसी छलसे प्रकट होनेवाली मन्द मुसकानरूपी चाँदनीसे उसका बिम्बोष्ठ अभिषिक्त हो रहा था। स्थूल नितम्ब बिम्बसे फूलकर ऊपरकी ओर उठने और तदनन्तर नीचेकी ओर गिरते हुए सफेद रेशमी वस्त्रसे उज्ज्वलता प्रकट हो रही थी। लीलापूर्वक हाथके चलानेकी शीघ्रतासे अनतिक्रमित प्रकृत क्रीडामें जो कानका पत्ता ढीला हो रहा था उसे ठीक किया जा रहा था। प्रत्येक समय सुलभ ऊपर उठने और नीचे गिरनेकी

लताभिहतिवशबाह्याभ्यन्तरभ्रान्तकन्दुकनिरन्तरोत्पतननिपतनदृष्टनष्टमध्ययष्टिकं च, कदाचिद्गीतमार्गानुधावदुन्नमनावनमनप्रकारेण कदाचिन्मण्डलभ्रमणेन कदाचिद्गोमूत्रिकाक्रमेण च निषण्णोत्थितताया निमोलितोन्मीलितायाः स्थितप्रस्थितायाः कस्याश्चिदारब्धकन्दुकक्रीडायाः कन्यकायाः पाणितलतः परिभ्रश्य पुरः पतन्तं कमपि कन्दुकमैक्षिष्ट ।

§ २१२. पुनः किमिदमिति कौतुकाविष्टस्तत्क्षण एवोद्ग्रीवः स व्यग्रं तद्गृहस्योपरितलमुत्पश्यन्नपश्यदात्मावलोकनावतीर्णतत्प्रथममदनवितीर्णविकारव्यापारितनयनेन्दीवररश्मिविसरव्याप्तराजमार्गां स्वर्गौकसामपि दुरुपलम्भां तां कन्दुकस्वामिनीं कन्यकाम् । आसीच्चायमप्यनन्य-

संकोचिता वेल्लिता वेष्टनोद्यता या बाहुलता भुजवल्ली तया याभिहतिस्ताडनं तस्या वशेन बाह्याभ्यन्तरं भ्रान्तं यत्कन्दुकं गेन्दुकं तस्य निरन्तरं सततम् उत्पतननिपतनाभ्याम्—उत्थानावस्थानाभ्यां दृष्टनष्टा—मध्ययष्टिरवलग्नयष्टिर्यस्मिन्कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा, कदाचित् जातुचिद् गीतमार्गं सङ्गीतपथम् अनुधावन् अनुसरन् य उन्नमनावनमनप्रकार उत्पतनावपतनविधिस्तेन, कदाचित् मण्डलभ्रमणेन वर्तुलाकारभ्रमणेन, कदाचित् गोमूत्रिकाक्रमेण वक्रपद्धत्या च आदौ निषण्णा पश्चादुत्थिता तस्या उपविष्टोत्थितायाः, आदौ निमीलिता पश्चादुन्मीलिता तस्याः प्रकटिताप्रकटितायाः, आदौ स्थिता पश्चात् प्रस्थितेति स्थितप्रस्थिता तस्याः स्थितप्रयातायाः आरब्धकन्दुकक्रीडायाः प्रारब्धगेन्दुककेल्याः कस्याश्चित् कन्यकायाः पतिंवरायाः पाणितलतः करतलात् परिभ्रश्यावमुच्य पुरोऽग्रे पतन्तं कमपि कन्दुकं गेन्दुकम् ऐक्षिष्ट विलोकयामास ।

§ २१२. पुनरिति—पुनरनन्तरं किमिदम् । इति कौतुकेन कुतूहलेनाविष्टः समाक्रान्तः तत्क्षण एव तत्काल एव ऊर्ध्वं ग्रीवा यस्य तथाभूत उन्नमितकन्धरः स जीवको व्यग्रं साकुलत्वं यथा स्यात्तथा तद्गृहस्योपरितलं तद्भवनस्योपरितनभागम् उत्पश्यन् उदवलोकयन्, आत्मनः स्वस्यावलोकनेन दर्शनेनावतीर्णः प्रकटितो यो मदनो मारस्तेन वितीर्णः प्रदत्तो यो विकारस्तेन व्यापारिते सञ्चालिते ये नयनेन्दीवरे नेत्रनीलकमले तेषां रश्मीनां मयूखानां विसरेण समूहेन व्याप्तो राजमार्गो यया ताम्, स्वर्ग ओको येषां तेषामपि देवानामपि दुरुपलम्भां दुःखेन प्राप्याम् तां पूर्वोक्तां कन्दुकस्वामिनीं गेन्दुकस्वामिनीं कन्यकाम् अपश्यत् । आसीच्चेति—अयमपि च जीवंधरोऽपि अनन्यजेन कामेनाक्रान्त इत्यनन्यजाक्रान्तः सकाम

क्रियासे अस्त-व्यस्त मोतियोंके हारसे उसका वक्षःस्थल मनोहर जान पड़ता था। कभी फैलायी हुई, कभी टेढ़ी की हुई और घुमायी बाहुलताके प्रहारके वश बाहर और भीतर घुमाती हुई गेंदके निरन्तर उठने और गिरनेके समय उसकी कमर दिखती तथा छिपती रहती थी। गेंदकी गतिके अनुसार पीछा करते समय वह कभी ऊपर उठती थी तो कभी नीचेकी ओर आती थी। वह कन्या कभी गोलाकार भ्रमणसे और कभी गोमूत्रिकाके क्रमसे बैठ जाती थी, कभी खड़ी हो जाती थी, कभी नीचेकी ओर दुबक जाती थी, कभी पुनः तनकर खड़ी हो जाती थी, कभी चलते-चलते रुक जाती थी और कभी पुनः चलने लगती थी।

§ २१२. तदनन्तर यह क्या है ? इस कौतुकसे आविष्ट हो जीवन्धरकुमारने ज्यों ही ग्रीवाको ऊपर उठा व्यग्रतापूर्वक उस घरके उपरिम तलको देखा त्यों ही उन्होंने गेंदकी स्वामिनी स्वरूप उस कन्याको देखा जिसने कि अपने देखनेसे प्रकट हुए सर्वप्रथम कामके द्वारा प्रवृत्त विकारसे चलते हुए नेत्ररूपी नील कमलोंकी किरणोंके समूहसे राजपथको व्याप्त कर रखा था और जो देवोंके लिए भी दुर्लभ थी। कुमार भी कामसे आक्रान्त हो उसके

१ क. ग. कदाचिदुद्गीतमार्गा ।

आक्रान्तस्ततस्तदीयनयनवागुरान्तर्गत इव पदमपि गन्तुमप्रगल्भः स्वल्पेतररागार्तिस्तद्गृहवितर्दिकामध्यास्य 'का स्यादियं कुमारी। कानि वा स्युरदसीयान्यमृतक्षारीणि नामाक्षराणि। कतमः स्यादस्याः पिता। कथमेनां करेण स्पृशन्कमलयोनिः कामुको नासीत्। अपि नामेयमस्माभिः कदाचिल्लभ्येत।' इत्येवमितरथा च विरच्यमानविचारः कुमारः कुट्मलितकुबेरैश्वर्येण 'तद्गृहवैश्यवरेण 'कुमार, अहमस्मि सागरदत्तो नाम। मम सागारधर्मपत्नी कमला। विमलेति विश्रुता तत्पुत्री। जातमात्रायां तस्यां संगिरते स्म गणितज्ञगणः 'यस्मिन्महात्मनि निजसद्म समीयुषि क्षणादक्रयसंचितमणिविक्रयः स्यात्तस्येयं गृहिणी[1]' इति। गृहागते भवति विक्रीतश्च वीतक्रेतृकतया[2] पुरा पुञ्जितो मम रत्नराशिः। ततः सर्वथा योग्यां मम सुतां भाग्याधिक, भवान्परिणयतु परिणामा-

आसीत् बभूव च। ततस्तस्मात्कारणात् तदीयनयन एव वागुरे बन्धने तयोरन्तर्गतो मध्यपतित इव पदमपि एकमपि पदं गन्तुं प्रयातुम् अप्रगल्भोऽसमर्थः स्वल्पेतरा प्रभूता रागार्ती रागपीडा यस्य तथाभूतः सन् तस्याः कन्याया गृहस्य भवनस्य वितर्दिका ताम् अध्यास्य तत्र स्थितो भूत्वा 'इयमेषा कुमारी का स्याद् भवेत्। कानि वा अदसीयानि एतत्संबन्धीनि अमृतक्षारीणि पीयूषप्रवाहीणि नामाक्षराणि नामधेयवर्णाः। अस्याः पिता जनकः कतमः कः स्यात्। एनां कन्यां करेण पाणिना स्पृशन् कमलयोनिर्ब्रह्मा कामुकः स्मराविष्टो नासीद् न बभूव। अपि नाम कदाचित् जातुचिद् इयम् अस्माभिः लभ्येत प्राप्येत।' इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारम् अन्यथा चान्यप्रकारेण च विरच्यमानो विचारो विमर्शो येन तथाभूतः कुमारो जीवकः कुट्मलितं निमीलितं कुबेरैश्वर्यं धनपतिवैभवं येन तथाभूतेन तस्य गृहस्य वैश्यवरो वणिग्वरस्तेन 'कुमार! अहम् सागरदत्तो नामास्मि। मम सागारधर्मपत्नी गृहस्थधर्मपत्नी कमला कमलानामवती। 'विमला' इति विश्रुता प्रसिद्धा तत्पुत्री। तस्यां पुत्र्यां जातायामेवेति जातमात्रायां गणितज्ञगणो ज्योतिर्वित्समूहः संगिरते स्म प्रकटयति स्म 'यस्मिन् महात्मनि महानुभावे निजसद्म स्वसदनं समीयुषि सति समागतवति सति क्षणादल्पेनैव कालेन अक्रयसंचिताश्च ते मणयश्चेत्यक्रयसंचितमणयोऽक्रीतोपचितरत्नानि तेषां विक्रयः स्यात् तस्य महात्मन इयं गृहिणी जाया स्यात्' इति। गृहागते भवति त्वयि वीता विगताः क्रेतारो यस्य तस्य भावस्तया पुरा पूर्वं पुञ्जितो राशीभूतो मम रत्नराशिर्मणिराशिर्विक्रीतश्च क्रेतृभिर्गृहीतश्च। ततस्तस्मात्कारणात् सर्वथा सर्वप्रकारेण योग्यामर्हां मम सागरदत्तस्य सुतां पुत्रीं भाग्येन दैवेनाधिकस्तत्सम्बुद्धौ हे

नेत्ररूपी जालमें फँसे हुएके समान वहाँसे एक डग भी चलनेके लिए असमर्थ हो गये अतः अत्यधिक रागसे पीड़ित हो उस घरके चबूतरापर बैठकर इस प्रकार विचार करने लगे कि यह कुमारी कौन हो सकती है? अमृतको झरानेवाले इसके नामके अक्षर कौन होंगे? इसका पिता कौन है? अपने हाथसे इसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मा स्वयं कामी क्यों नहीं हुए? क्या यह कभी हमें प्राप्त हो सकती है? कुमार ऐसा विचार कर ही रहे थे कि कुबेरके ऐश्वर्यको तिरस्कृत करनेवाला उस घरका सेठ आकर बोला कि हे कुमार! मैं सागरदत्त हूँ। मेरी गृहस्थधर्मकी पत्नी कमला है और विमला नामसे प्रसिद्ध उसकी पुत्री है। उसके उत्पन्न होते ही ज्योतिषियोंने कहा था कि जिस महात्माके अपने घर आनेपर क्षण-भरमें बिना खरीदके सञ्चित मणियोंकी बिक्री हो जायेगी उसकी यह स्त्री होगी। आपके घर आते ही मेरी वह रत्नोंकी राशि बिक गयी है जो कि खरीददार नहीं होनेके कारण पहलेसे सञ्चित पड़ी थी। इसलिए हे भाग्यशालिन्! आप दूसरा भाव छोड़कर सब प्रकारसे योग्य मेरी इस कन्याको

---

१ म० गृहीणी। २ क. विक्रेतृकतया अपेतक्रयविक्रयतया, इति टि०।

न्तरमुज्झित्वा' इत्युपच्छन्दनपूर्वकमदृष्टपूर्वसंविधया विधिवद्विसृष्टामलनेपथ्योज्ज्वलां विमलाभिधानां तां कन्यकां परिणिन्ये ।

§ २१३. श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ
विमलालम्भो नाम अष्टमो लम्भः ।

■

भाग्याधिक ! भवान् परिणामान्तरमन्यमभिप्रायम् उज्झित्वा त्यक्त्वा' इतीत्थम् उपच्छन्दनं प्रार्थनं पूर्वं यस्मिस्तद्यथा स्यात्तथा अदृष्टपूर्वसंविधया नालोकितपूर्वसामग्रया विधिवत् यथाविधि विसृष्टां दत्ताम् अमलनेपथ्येन निर्मलवेषेणोज्ज्वलां देदीप्यमानां विमलाभिधानां विमलानामवतीं तां कन्यकां पतिवरां परिणिन्ये उदवोढ ।

§ २१३. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ विमलालम्भो नामाष्टमो लम्भः ।

■

विवाहें।'''''इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक जो कभी पहले देखनेमें नहीं आयी ऐसी दहेज-सामग्रीके साथ विधिके अनुसार दी हुई, निर्मल वेष-भूषासे उज्ज्वल विमला नामक उस कन्याको जीवन्धरकुमारने स्वीकृत किया ।

§ २१३. इस प्रकार श्रीमद्वादीभसिंह सूरिके द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें विमलालम्भ
(विमलाकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला) आठवाँ लम्भ समाप्त हुआ ॥८॥

■

नवमो लम्भः

§ २१४. अथाभिनवपरिणयनपरिणतव्यलीक[1]यवनिकान्तर्हितमनोभवरसानुभवकुतूहलया प्रियतमबलात्कारनीयमानपरिष्वङ्गपरिचुम्बनाभिमुख्यया प्रतिपादितरागहस्तपल्लवेन पञ्चशरेण शनैः शनैः सुरतसुखानुभवनसरणिमवतार्यमाणया विलासकलहंसनिवासजङ्गमकमलिन्या कान्तिकिसलयितकायलतार्पितभुवननयननिर्माणफलया विमलया सह वर्धमानरोमाञ्चमञ्जरीकल्प्यमानसुरतदेवताराधनसुमनोदामकानि मौग्ध्यविधीयमानलज्जापरिह्नियमाणाङ्गतरङ्गितप्रियतमरागविलसितानि विच्छिन्नविशीर्णशेखरमाल्यकेसरपरागधूसरपर्यङ्काणि परस्परपरिरम्भचुम्बनपौन-

§ २१४. अथेति—अथ परिणयनानन्तरम् अभिनवपरिणयनेन नूतनविवाहेन परिणता परिप्राप्ता या व्यलीकयवनिका लज्जावरणं तस्यामन्तर्हितस्तिरोहितो यो मनोभवः कामस्तस्य रसानुभवस्य रसोपभोगस्य कुतूहलं विद्यते यस्यास्तया, प्रियतमस्य वल्लभस्य बलात्कारेण हठेन नीयमानं प्राप्यमाणं परिष्वङ्गपरिचुम्बनयोरालिङ्गनचुम्बनयोराभिमुख्यमानुकूल्यं यस्यास्तया, प्रतिपादितो दत्तो राग एव हस्तपल्लवो येन तथाभूतेन पञ्चशरेण कामेन शनैः शनैर्मन्दं मन्दं सुरतसुखानुभवनस्य संभोगसुखोपभोगस्य सरणिं मार्गम् अवतार्यत इत्यवतार्यमाणा तया समवगाह्यमानया विलास एव कलहंसो विलासकलहंसो विभ्रमकादम्बस्तस्य निवासाय जङ्गमकमलिनी सञ्चरणशीलनलिनी तया कान्त्या दीप्त्या किसलयिता पल्लविता या कायलता शरीरवल्ली तयार्पितं प्रदत्तं भुवनस्य जगतो नयननिर्माणफलं नेत्ररचनाप्रयोजनं यया तया विमलया तन्नाम्न्या पत्न्या सह. वर्धमाना समेधमाना या रोमाञ्चमञ्जरी पुलकावली तया कल्प्यमानानि रच्यमानानि सुरतदेवतायाः संभोगदेवताया आराधनाय सेवनाय सुमनोदामानि पुष्पमाल्यानि येषु तानि, मौग्ध्येन मूढत्वेन विधीयमाना क्रियमाणा या लज्जा तया परिह्रियमाणानि समाकृष्यमाणानि यान्यङ्गानि तैस्तरङ्गितं वर्धितं प्रियतमस्य वल्लभस्य रागविलसितानि रागचेष्टितानि येषु तानि, आदौ विच्छिन्नानि पश्चाद्विशीर्णानि यानि शेखरमाल्यानि मौलिस्रजस्तेषां केसरपरागैः किञ्जल्करजोभिर्धूसरो मलिनः पर्यङ्कः शय्या येषु तानि, परस्परमन्योऽन्यं परिरम्भचुम्बनयोरालिङ्गनचुम्बनयोः पौनरुक्त्येन भूयोभूयः प्रवर्तनेन निरक्षरं यथा स्यात्तथा

§ २१४. तदनन्तर जिसके कामरसके उपभोगका कुतूहल नूतन विवाहके कारण परिणत लज्जारूपी परदेके भीतर छिपा हुआ था, प्रियतमके बलात्कारसे जिसे आलिंगन और चुम्बनमें आभिमुख्य प्राप्त कराया जा रहा था, रागरूपी हस्तपल्लवका सहारा देनेवाला कामदेव जिसे धीरे-धीरे संभोग-सुखके अनुभवनके मार्गमें उतार रहा था, जो विलासरूपी कलहंसके रहनेके लिए चलती-फिरती कमलिनी थी और कान्तिसे पल्लवित शरीरलताके द्वारा जिसने संसारके लिए नेत्रोंकी रचनाका फल प्रदान किया था ऐसी विमलाके साथ, बढ़ती हुई रोमांच मंजरीके द्वारा जिनमें संभोगरूपी देवताकी आराधनाके लिए पुष्पमालाएँ रची जा रही थीं, मुग्धावस्थाके कारण की जानेवाली लज्जासे बचाये हुए अंगोंसे जिनमें प्रियतमकी रागचेष्टाएँ और भी अधिक बढ़ रही थीं, टूटकर बिखरे हुए सेहरेकी मालाओंकी केशर और परागसे जिनमें पलंग धूसरित हो रहा था, तथा परस्परके आलिंगन और चुम्बनकी बार-बार प्रवृत्तिसे जो चुपचाप प्रकट होनेवाली दोनोंकी अभिलाषाओंसे विशिष्ट थे ऐसे

१. लज्जा, इत्यर्थः, इति टि० ।

रुक्त्यनिरक्षरनिवेद्यमानोभयाभिलाषविशिष्टानि सुरतचेष्टितान्यनुभूय रतिपरिश्रमपारवश्येन शयनतलप्रसारिताङ्गीं विलुलितविरलविशेषकलेशपेशलललाटरेखामसकृदारेचित[1]भूषणारुणमन्थरपरिस्पन्दसुन्दरनयनेन्दीवरामनन्तरिततांम्बूलरागारुणिमवर्णितानवरतग्रहणदशनच्छदामतुच्छेन प्रणयेन निजगमनमसहमानाम्, 'अलमलमविस्रम्भेण रम्भोरु, पुनरनागमनविषयेण। अनुक्षणमागमिष्यामि' इत्याभाषमाण एव भवनान्निर्गत्यानुनगरमविरलबकुल[2]कदम्बचम्पकसहकारप्राये पुष्पोद्याने समासीनानामारभ्य शैशवादारचितपरिचयापयातपरस्पररहस्यानां वयस्यानामाजगाम समीपम् ।

§ २१५. तत[3]स्तमासक्तवल्लभाचरणलाक्षारसलोहितालकपल्लवोपरिभागमुपभोगायासनि-

---

निवेद्यमाना सूच्यमाना च उभयोरभिलाषाः संयोगवाञ्छास्तैर्विशिष्टानि सहितानि सुरतचेष्टितानि अनुभूय, रतौ संभोगे यः परिश्रमः खेदस्तस्य पारवश्येन पारतन्त्र्येण शयनतले शय्यापृष्ठे प्रसारितमङ्गं यस्यास्ताम्, विलुलिताः परिमृष्टा अत एव विरलाः सान्तरा ये विशेषकलेशास्तिलकांशास्तैः पेशला मनोहरा ललाटरेखा निटिलरेखा यस्यास्ताम्, असकृद् वारं वारं यद् आरेचितं तिर्यगवलोकनं तदेव भूषणं ययोस्तथाभूते अरुणे रक्ते मन्थरपरिस्पन्दे मन्दमन्दसंचारयुक्ते सुन्दरनयनेन्दीवरे रमणीयलोचनोत्पले यस्यास्ताम्, अनन्तरितेऽनाच्छादितस्ताम्बूलरागो येन तथाभूतो योऽरुणिमा लौहित्यं तेन वर्णितं प्रकटितमनवरतग्रहणं सततदंशनं यस्य तथाभूतो दशनच्छद ओष्ठो यस्यास्ताम्, अतुच्छेन विपुलेन प्रणयेन स्नेहेन निजगमनं स्वप्रयाणम् असहमानाम्, 'हे रम्भोरु ! मोचोरु पुनर्भूयोऽनागमनं विषयो यस्य तथाभूतेन अविस्रम्भेणाविश्वासेन अलमलं व्यर्थं व्यर्थम् । अनुक्षणं क्षणानन्तरमेवागमिष्यामि' इतीत्थम् आभाषमाण एव कथयन्नेव भवनाद् प्रासादात् निर्गत्य निःसृत्य अनुनगरं नगरसमीपे अविरला निरन्तरा वकुलकदम्बचम्पकसहकाराः केसरनीपचाम्पेयातिसौरभाम्राः प्रायः यस्मिंस्तस्मिन् पुष्पोद्याने कुसुमारामे समासीनानामुपविष्टानां शैशवात् बाल्याद् आरभ्य आरचितेन परिचयेनापयातं दूरीभूतं परस्पररहस्यं येषां तेषां वयस्यानां सहचराणां समीपं पार्श्वमाजगाम ।

§ २१५. तत इति—ततस्तदनन्तरम् आसक्तेन संलग्नेन वल्लभाचरणलाक्षारसेन प्रियापादयावकरसेन लोहितो रक्तवर्णीकृतोऽलकपल्लवानां चूर्णकुन्तलकिसलयानामुपरिभागो यस्य तथाभूतम्,

---

संभोग सुखोंका अनुभव कर, उपभोग सम्बन्धी परिश्रमको परवशतासे जो शय्यातलपर शरीरको फैलाकर पड़ी थी, जिसके ललाटकी रेखा पुँछ जानेसे बिरल-बिरल दिखनेवाले तिलकके अंशोंसे सुन्दर थी, बार-बार ठीक किये हुए कर्णाभरणसे लाल एवं मन्द-मन्द संचारसे जिसके नेत्ररूपी नील कमल अत्यन्त सुन्दर थे, पानकी लालीको प्रकट करनेवाली लालिमासे जिसके ओठका निरन्तर दंशन सूचित हो रहा था और जो बहुत भारी स्नेहके कारण अपने गमनको सहन नहीं कर रही थी ऐसी विमलासे जीवन्धरकुमार बोले कि 'हे कदलीके समान जाँघोंसे सुशोभित प्रिये ! पुनः न आनेके विषयको लेकर जो तुम्हें अविश्वास हो रहा है वह व्यर्थ है। मैं अभी हाल आ जाऊँगा।' इस प्रकार कहते-कहते वे महलसे निकलकर नगरके समीप जिसमें अधिकांश मौलश्री, कदम्ब, चम्पा और आमके वृक्ष निरन्तर लग रहे थे ऐसे फूलोंके उपवनमें बैठे हुए उन मित्रोंके पास जा पहुँचे जिनके कि बचपनसे ही लेकर उत्पन्न परिचयके कारण परस्परका रहस्य दूर हो चुका था अर्थात् परिचयकी अधिकताके कारण जिनके परस्पर छिपाने योग्य कोई बात बाकी नहीं रह गयी थी।

§ २१५. तदनन्तर जिनके चूर्ण कुन्तलरूपी पल्लवोंका उपरितन भाग आसक्त वल्लभाके

---

१. म० असकृदाचरित । २. क० ख० वकुलकदलकदम्ब । ३. म० ततश्च ।

मग्नतारकदृशं गाढग्रहणलग्नदशनशिखरप्रणिहिताधरमणिमतिसुरभिपरिमलाङ्गरागव्यतिकरविशेषकमनीयवपुषं विषमेषुराज्यधर्ममिव विधृतविग्रहं प्रेमविवशविस्मृतनिमेषनिश्चलपक्ष्मपुटाभ्यां स्फुटितकमलमुकुलपेशलाभ्यां लोचनाभ्यामापादचूडमालोक्य 'अहो महाभागस्य[1] ते सौभाग्यं सर्वभुवनातिशायि, यदेवमनुपुरं पुरंध्रीभिः स्वयं व्रियसे। संप्रति समूढायाः प्रौढभाग्याया भजन्त्यभिख्यां कानि कान्यक्षराणि।' इत्यक्षतसौहृदवर्त्मानः पद्ममुखादयः पर्यपृच्छन्। सात्यंधरिरपि संजातसंतोषः किंचिदुन्मिषितहसितचन्द्रिकाच्छलेन सिञ्चन्निव स्नेहामृतम् 'अधरितकमला सा विमला नाम्ना' इति व्याहार्षीत्। हर्षविकसदास्यानां वयस्यानां गोष्ठीमधितिष्ठ-

उपभोगस्य सुरतस्यायासेन परिश्रमेण निमग्नतारके निमग्नकनीनिके दृशौ लोचने यस्य तम्, गाढग्रहणेन लग्नं यद्दशनशिखरं दन्ताग्रभागस्तेन प्रणिहितो युक्तोऽधरमणिर्नीचैर्दन्तच्छदो यस्य तम्, अतिसुरभिरतिसुगन्धियुक्तः परिमलो यस्य तथाभूतो योऽङ्गरागस्तस्य व्यतिकरेण विलेपनव्यापारेण विशेषकमनीयं सातिशयसुन्दरं वपुः शरीरं यस्य तम्, विधृतो विग्रहः शरीरं येन तं सशरीरं विषमेषुराज्यधर्ममिव कामराज्यधर्ममिव, प्रेमविवशे प्रीत्यायत्ते विस्मृतनिमेषे निष्पन्दे अतएव निश्चले स्थिरे पक्ष्मपुटे ययोस्ताभ्याम् स्फुटिते विकसिते ये कमलमुकुले नलिनकुड्मले तद्वत् पेशले मनोहरे ताभ्यां लोचनाभ्यां नयनाभ्याम् उपलक्षितमिति शेषः, तं जीवंधरम् पादादारभ्य चूडामभिव्याप्येत्यापादचूडम् आलोक्य दृष्ट्वा 'अहो! महाभागस्य महानुभावस्य ते सौभाग्यं सर्वभुवनातिशायि निखिललोकातिशायि वर्तत इति शेषः, यद् यस्मात् कारणात् एवमनेन प्रकारेण पुरं पुरमित्यनुपुरम् अनुनगरम् पुरन्ध्रीभिः स्त्रीभिः स्वयं व्रियसे स्वीक्रियसे। सम्प्रतीदानीम् समूढायाः कृतविवाहायाः प्रौढभाग्यायाः प्रकृष्टभाग्ययुक्ताया अभिख्यां नाम 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमर कानि कानि अक्षराणि भजन्ति प्राप्नुवन्ति।' इतीत्थम् अक्षतमखण्डितं सौहृदवर्त्म मैत्रीमार्गो येषां तथाभूताः पद्ममुखादयः पर्यपृच्छन् परिपृच्छन्ति स्म। सात्यंधरिरपि जीवंधरोऽपि संजातः संतोषो यस्य तथाभूतः समुत्पन्नसंतोषः सन् किञ्चिन्मनाग् उन्मिषितं प्रकटितं यद् हसितं हास्यं तदेव चन्द्रिका कौमुदी तस्याश्छलेन व्याजेन स्नेहामृतं प्रीतिपीयूषं सिञ्चन्निव 'अधरिता तिरस्कृता कमला लक्ष्मीर्यया तथाभूता 'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया' इत्यमरः, सा नाम्ना विमला अस्तीति शेषः' इति व्याहार्षीत् जगाद। हर्षेण विकसन्ति आस्यानि मुखानि येषां तेषां वयस्यानां मित्राणां गोष्ठीम् अधि-

चरणोंके महावरके रससे लाल-लाल हो रहा था, उपभोग सम्बन्धी खेदसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ भीतरकी ओर निमग्न हो रही थीं, जिनके अधरोष्ठमें जोरसे ग्रहण करनेके कारण दाँतोंके अग्रभाग गड़े हुए थे, अत्यन्त मनोज्ञ सुगन्धिसे युक्त अंगरागके संमिश्रणसे जिनका शरीर विशेष सुन्दर जान पड़ता था, और जो शरीरको धारण करनेवाले कामदेवके राज्यधर्मके समान प्रतीत होते थे ऐसे जीवन्धरकुमारको जिनके पलक प्रेमसे विवश, टिमकारको भुला देनेवाले एवं निश्चल थे तथा जो खिली हुई कमलकी बोंड़ियोंके समान सुन्दर थे ऐसे नेत्रोंसे पैरसे लेकर चोटी तक देखकर अखण्ड मित्रताके मार्गको धारण करनेवाले पद्मास्य आदि मित्र पूछने लगे कि 'अहो! आप महाभाग्यवान् हैं, आपका सौभाग्य समस्त संसारको उल्लंघन करनेवाला है, क्योंकि इस तरह आप नगर-नगरमें स्वयं ही स्त्रियोंके द्वारा वरे जाते हैं। उत्कृष्ट भाग्यको धारण करनेवाली जिस स्त्रीको अभी हाल विवाहा है उसके नामको कौन-से अक्षर प्राप्त हैं? तदनन्तर जिन्हें सन्तोष उत्पन्न हो रहा था, तथा कुछ-कुछ प्रकट हुई मन्द मुसकानरूपी चाँदनीके बहाने जो स्नेहरूपी अमृतको मानो सींच ही रहे थे ऐसे जीवन्धरकुमारने कहा कि 'वह नामसे लक्ष्मीको तिरस्कृत करनेवाली विमला है'। हर्षसे जिनके मुख

१. म० महाभाग्यस्य।

न्परिहासालापविदग्धबुद्धिर्बुद्धिषेणो नाम सुहृत् 'अस्य कुतः सौभाग्यम् । दौर्भाग्यादपरैरनूढाः प्रौढवयसः काश्चिदनन्यगतयः कन्यका निकाममेनं कामयन्ताम् । यदि नामायमेकान्तपरिहृतपुरुषदर्शनां दर्शनीयाङ्गयष्टिमधिवसन्तीं कन्यान्तःपुरमनङ्गमातङ्गनहनदक्षकटाक्षहीरञ्जीरां[1] सुरमञ्जरीमावर्जयेदञ्जसा योग्यः सौभाग्यवतामुपरि गणयितुम्, इति सोत्प्रासं प्रावोचत । तद्वचनानन्तरं सात्यंधरिरपि समुद्भूतमन्दहासः 'साधु कथितं दास्याः पत्या वयस्येन । न चेदल्पीयसानेहसा समावर्जयेम तां वर्जिता एव वयमपि त्वमिव सौभाग्येन' इति ससंगरं व्याहरन्नेव पुनरपि पुरमाशु प्राविशत् । अविशच्चास्य हृदयं वितर्कः 'केनोपायेन तां तथा करिष्यामि यथा मनसि मन्मथशरपातेन पारवश्यमासादयन्ती समासादयेदस्मान्' इति ।

तिष्ठन् अध्यासीनः परिहासालापे परिहासभाषणे विदग्धा चतुरा बुद्धिर्यस्य तथाभूतो बुद्धिषेणो नाम सुहृत् 'अस्य जीवकस्य सौभाग्यं कुतः ! दौर्भाग्यात् अपरैरन्यैः अनूढा अविवाहिताः प्रौढवयसोऽधिकावस्था अनन्यगतयोऽन्यगतिरहिताः काश्चित् कन्यका निकाममत्यन्तम् एवं कामयन्ताम् अभिलषन्तु । यदि नामायं जीवंधर एकान्तेन नियमेन परिहृतं पुरुषदर्शनं नरावलोकनं यया ताम्, दर्शनीया मनोहराङ्गयष्टिः शरीरयष्टिर्यस्यास्ताम्, कन्यान्तःपुरं पतिंवरानिशान्तम् अधिवसन्तीं तत्रकृतनिवासाम्, अनङ्ग एव मातङ्ग इत्यनङ्गमातङ्गः कामकरी तस्य नहने बन्धने दक्षाः समर्थाः कटाक्षहीरञ्जीरा अपाङ्गरज्जवो यस्यास्तां सुरमञ्जरीम् एतन्नाम्नीं कन्याम् आवर्जयेत् वशीकुर्यात् तर्हि अञ्जसा परमार्थेन सौभाग्यवतां सौभाग्यशालिनाम् उपरि गणयितुं योग्योऽर्हः 'अस्तीति शेषः' इति सोत्प्रासं सव्यङ्ग्यं प्रावोचत प्रजगाद । तद्वचनानन्तरं बुद्धिषेणकथनानन्तरं सात्यंधरिरपि जीवकोऽपि समुद्भूतः प्रकटितो मन्दहासो यस्य तथाभूतः सन् 'दास्याः पत्या वयस्येन सख्या साधु सुष्ठु कथितम् । चेद्यदि अल्पीयसाल्पतरेणैव अनेहसा कालेन तां सुरमञ्जरीं न समावर्जयेम वशीकुर्यां तर्हि वयमपि त्वमिव सौभाग्येन पुरन्ध्रीप्रेम्णा वर्जिता एव रहिता एव' इतीत्थं ससंगरं ससन्धं व्याहरन्नेव कथयन्नेव पुनरपि पुरं राजपुरीम् आशु शीघ्रम् प्राविशत् प्रविवेश । अस्य जीवकस्य हृदयम् इति वितर्को विचारश्च अविशत् । इतीति किम् । इत्याह केनेति—'केन कतमेन उपायेन साधनेन तां सुरमञ्जरीं तथा तादृशीं करिष्यामि यथा येन प्रकारेण मनसि स्वान्ते मन्मथशरपातेन कामबाणपातेन पारवश्यं विवशताम् आसादयन्ती प्राप्नुवन्ती अस्मान् समासादयेत् प्राप्नुयात्' इति ।

खिल रहे थे ऐसे उन मित्रोंकी गोष्ठीमें एक बुद्धिषेण नामका भी मित्र था जो हास्यपूर्ण वार्तालाप करनेमें बहुत ही निपुण था । वह ताना देता हुआ बोला कि 'इसमें इनका सौभाग्य कैसे माना जा सकता है ? दौर्भाग्यके कारण दूसरोंने जिन्हें विवाहा नहीं, जिनकी अवस्था अधिक हो गयी तथा जिनका अन्य कुछ सहारा नहीं था ऐसी कुछ कन्याएँ भले ही इन्हें चाहने लगें । यदि ये एकान्त रूपसे जिसने पुरुषोंका दर्शन भी छोड़ रखा है, जिसकी शरीरयष्टि अत्यन्त सुन्दर है, जो कन्याओंके अन्तःपुरमें ही रहती है, और जिसके कटाक्षोंकी शृंखला कामरूपी हाथीको बाँधनेमें निपुण है ऐसी सुरमंजरीको प्राप्त कर सकें तो अवश्य ही सौभाग्यशाली मनुष्योंके ऊपर गणना करनेके योग्य हैं ।' बुद्धिषेणके इस कथनके बाद मन्द-मन्द मुसकराते हुए जीवन्धरकुमारने भी कहा कि दासीके पति मित्रने ठीक कहा । यदि हम थोड़े ही समयमें उसे प्राप्त न कर लें तो हम भी तुम्हारे ही समान सौभाग्यसे वंचित कहलावें । इस प्रकार प्रतिज्ञाके साथ कहते हुए जीवन्धरकुमार पुनः शीघ्र ही नगरमें प्रविष्ट हो गये । इनके हृदयमें इस तर्कने प्रवेश किया कि किस उपायसे हम उसे वैसा कर दें कि जिससे वह मनमें कामके बाण पड़नेसे परवशताको प्राप्त होती हुई हमें प्राप्त हो जाये ?

१. हीरञ्जीरामिति पदस्य रज्ज्वर्थः, इति टि० ।

§ २१६. ततश्च विभाव्य क्षणादिव[1] यक्षोपदिष्टमनुमहिम्ना[2] निजसौकुमार्यं निवार्य विकचकाशकुसुमस्तबकपरिभावुकेन पलितपाण्डुरेण[3] केशकलापेन पटेनेव सितेनावगुण्ठितोत्तमाङ्गम्, जराजलधितरङ्गानुकारिणीभिरायामिनीभिर्वलीभिः स्थपुटितललाटफलकम्, अलिकतटस्फुरदलघुवलिभारनुन्नाभ्यामिव नम्राभ्यां भ्रूलताभ्यां तिरोधीयमाननयनम्, उन्मिषितदूषिकाभ्यामुद्भूतनीलपीतपाटलसिराजालजटिलाभ्यामनुपलक्ष्यमाणपक्ष्मरोमराजिभ्यां हिमानीहतपुण्डरीकविच्छायाभ्यामीक्षणाभ्यामुपलक्ष्यमाणम्, आनाभिलम्बितेन जरावल्लीफुल्लमञ्जरीनिभेन कूर्चकलापेन प्रच्छादितवक्षसम्, अक्षीणकासकाष्ठाकर्णजपेन घर्घराघोषेण मुखरितकण्ठमूलम्, अतिनम्रपूर्वकाय-

§ २१६. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च क्षणादिव अल्पात्कालादिव विभाव्य विचार्य यक्षोपदिष्टश्चासौ मनुश्चेति यक्षोपदिष्टमनुः सुदर्शनयक्षोपदिष्टमन्त्रस्तस्य महिम्ना माहात्म्येन निजसौकुमार्यं स्वस्य सुकुमारतां निवार्य दूरीकृत्य विकचानां प्रफुल्लानां काशकुसुमानां काशपुष्पाणां यः स्तबको गुच्छकस्तस्य परिभावुकेन तिरस्कारकेण, पलितं जरसा शौक्ल्यं तेन पाण्डुरेण धवलेन केशकलापेन कचसमूहेन सितेन शुक्लेन पटेन वस्त्रेणेव अवगुण्ठितं समावृतमुत्तमाङ्गं शिरो यस्मिंस्तम्, जरैव जलधिर्जराजलधिर्वार्धक्यवारिधिस्तस्य तरङ्गाणां लहरीणामनुकारिण्यस्ताभिः आयामिनीभिर्दीर्घाभिः वलीभिस्त्वक्संकोचजनितरेखाभिः स्थपुटितं नतोन्नतं ललाटफलकं भालतटं यस्मिंस्तम्, अलिकतटे निटिलतटे स्फुरता प्रकटीभवता अलघुवलिभारेण दीर्घत्वक्संकोचरेखाभारेण नुन्नाभ्यामिव प्रेरिताभ्यामिव नम्राभ्यां नताभ्यां भ्रूलताभ्यां भ्रकुटिवल्लरीभ्याम् तिरोधीयमाने अन्तर्धीयमाने नयने यस्मिंस्तम्, उन्मिषितदूषिकाभ्यां प्रकटितमलाभ्याम्, उद्भूतेन प्रकटितेन नीलपीतपाटलेन सिराजालेन नाडीनिचयेन जटिलाभ्यां व्याप्ताभ्याम्, अनुपलक्ष्यमाणा अदृश्यमाना पक्ष्मरोमराजिः पक्ष्मलोमपङ्क्तिर्ययोस्ताभ्याम्, महद्धिमं हिमानी तया हतं ताडितं यत्पुण्डरीकं कमलं तद्वद् विच्छायाभ्यां कान्तिरहिताभ्याम्, ईक्षणाभ्यां नयनाभ्याम् उपलक्ष्यमाणं दृश्यमानम्, नाभिं तुन्दिमभिव्याप्य लम्बितं तेन आनाभिलम्बितेन, जरैव वल्ली जरावल्ली वार्धक्यवल्लरी तस्याः फुल्लमञ्जर्या निभः सदृशस्तेन कूर्चकलापेन हनुरोमसमूहेन प्रच्छादितमावृतं वक्षो यस्मिंस्तम्, अक्षीणो वृद्धिंगतो यः कासः 'खांसी' इति प्रसिद्धो रोगस्तस्य काष्ठा चरमसीमा तस्याः कर्णजपः सूचकस्तेन घर्घराघोषेण घर्घरशब्देन

§ २१६. तदनन्तर विचार कर क्षण-भर ही में उन्होंने सुदर्शन यक्षके द्वारा उपदिष्ट मन्त्रकी महिमासे अपनी सुकुमारताको दूर कर मृत मनुष्यके समान वह वेष धारण कर लिया कि जिसमें खिले हुए काशके फूलोंके गुच्छोंको तिरस्कृत करनेवाले सफेद बालोंके समूहसे सिर ऐसा जान पड़ता था मानो सफेद वस्त्रसे ही आच्छादित हो। वृद्धावस्थारूपी समुद्रकी तरंगोंका अनुकरण करनेवाली लम्बी-लम्बी सिकुड़नोंसे जिसमें ललाट तट व्याप्त हो रहा था। ललाटतटमें प्रकट होनेवाली बहुत भारी सिकुड़नोंके भारसे प्रेरित हुईके समान नीचेकी ओर झुकी हुई भ्रुकुटिरूपी लताओंसे जिसमें नेत्र आच्छादित हो रहे थे। जिनमें कीचड़ निकल रहा था, जो प्रकट हुई नीली पीली और कुछ-कुछ लाल नसोंके समूहसे व्याप्त थीं, जिनके पलकोंकी बिरूनियाँ दिखाई नहीं पड़ती थीं, और जिनकी कान्ति बर्फसे पीड़ित सफेद कमलोंके समान थी ऐसे नेत्रोंसे जो सहित था। नाभितक लटकनेवाले एवं वृद्धावस्थारूपी लताके फूलोंकी मंजरीके समान लम्बी दाढ़ीसे जिसमें वक्षःस्थल ढक गया था। कभी नष्ट नहीं होनेवाली खाँसीकी चरम सीमाके कानमें मन्त्र फूकनेवालेके समान घर्घर शब्दसे जिसमें कण्ठका मूल-

१. म० क्षणादेव। २. मन्त्रमहिम्ना, इति टि०। ३. म० पाण्डरेण।

कथ्यमानदौर्बल्यम्, उल्लसदविरलास्थिपटलस्थपुटितसंस्थानम्, अस्थानपतनजनितजनहासविजृम्भणम्, एककरकलितकमण्डलुम्, इतरकरविधृतस्य वलक्षपटवेष्टितशिखरस्य शिखरनिहितहरितकुशापीडस्य वंशदण्डस्योपरि निवेश्यमानशरीरयष्टिम्, स्पष्टदृष्टकीकसान्तरालनिर्गतसिरासंतानसब्रह्मचारिणा ब्रह्मसूत्रेण सीमन्तितगात्रम्, अपगतमांसकृशाङ्गुलीपरिच्यवमानपवित्रिकाप्रत्यवस्थापनव्याप्रियमाणपाणिम्, प्रयाणोन्मुखप्राणमिव प्रेक्ष्यमाणम्, प्रेतनिर्विशेषवेषं दधौ ।

§ २१७. एवमात्मनोऽप्यत्याहितमापादयितुं समर्थया वार्द्धकावस्थया वर्धितकुतूहलैर्बालैर्विहस्यमानः पदे पदे परिस्खलन्नवष्टभ्य मुष्ट्या वंशयष्टिमतिक्रम्य किंचिदन्तरं वामकरगृहीतवेत्राभिरितरकरगृहीतखड्गलताभिरापादमुक्तधवलकञ्चुकाभिः प्रतीहारस्थाननियुक्ताभिर्युवतीभिः

मुखरितं शब्दायमानं कण्ठमूलं यस्मिंस्तम्, अतिनम्रेण पूर्वकायेन कथ्यमानं निवेद्यमानं दौर्बल्यं क्षीणत्वं यस्मिंस्तम्, उल्लसता प्रकटीभवता अविरलेन निरन्तरेणास्थिपटलेन कीकसनिचयेन स्थपुटितं नतोन्नतं संस्थानमाकृतिर्यस्मिंस्तम्, अस्थानेऽयोग्यस्थाने पतनेन जनितं जनहासस्य लोकहसितस्य विजृम्भणं वृद्धिर्यस्मिंस्तम्, एकस्मिन्करे कलितो धृतः कमण्डलुर्यस्मिंस्तम्, इतरस्मिन् कमण्डलुरहिते करे हस्ते विधृतस्तस्य, वलक्षपटेन शुक्लवस्त्रेण वेष्टितं परिवृतं शिखरमग्रं यस्य तस्य शिखरे निहितः स्थापितो हरितकुशानामपल्लवाभदर्भाणामापीडः समूहो यस्य तस्य वंशदण्डस्य उपरि निवेश्यमानावलम्ब्यमाना शरीरयष्टिर्यस्मिंस्तम्, स्पष्टं यथा स्यात्तथा दृष्टानां कीकसानामस्थ्नामन्तराले निर्गता निःसृता याः सिरा नाड्यस्तासां संतानस्य समूहस्य सब्रह्मचारि सदृशं तेन ब्रह्मसूत्रेण यज्ञोपवीतेन सीमन्तितं विभक्तं गात्रं शरीरं यस्मिंस्तम्, अपगतं दूरीभूतं मांसं पलं याभ्यस्तथाभूता याः कृशाङ्गुल्यस्ताभ्यः परिच्यवमाना पतन्ती या पवित्रिका स्मरणी तस्याः प्रत्यवस्थापने पुनः स्थिरीकरणे व्याप्रियमाणः पाणिर्हस्तो यस्मिंस्तम्, प्रयाणोन्मुखाः प्रस्थानोद्यताः प्राणा असवो यस्मिंस्तमिव प्रेक्ष्यमाणं दृश्यमानं प्रेतेन मृतेन निर्विशेषः सदृशो यो वेषस्तं दधौ धृतवान् ।

§ २१७. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण आत्मनोऽपि स्वस्य अत्याहितमत्याश्चर्यम् आपादयितुं प्रापयितुं समर्थया दक्षया वार्द्धकावस्थया जरया वर्धितं कुतूहलं येषां तैर्वृद्धिंगतकुतुकैः बालैः विहस्यमानः पदे पदे स्थाने स्थाने परिस्खलन् पतन् मुष्ट्या बद्धहस्तपुटेन वंशयष्टिं वेणुदण्डिकाम् अवष्टभ्य गृहीत्वा किंचिदन्तरं किमप्यन्तरालम् अतिक्रम्य वामकरेण सव्यहस्तेन गृहीतं धृतं वेत्रं याभिस्ताभिः इतरकरेण सव्येतरहस्तेन गृहीता धृता खड्गलता कृपाणवल्ली याभिस्ताभिः, आपादं पादमभिव्याप्य मुक्ता लम्बिता

भाग शब्दायमान हो रहा था। अत्यन्त झुके हुए शरीरके पूर्वभागसे जिसमें दुर्बलता कही जा रही थी। प्रकट होती हुई हड्डियोंके सघन समूहसे जिसमें समस्त शरीराकृति व्याप्त हो रही थी। अस्थानमें गिरनेसे उत्पन्न मनुष्योंकी हँसीसे जो वृद्धिंगत हो रहा था। जिसमें एक हाथमें कमण्डलु धारण किया गया था। दूसरे हाथमें स्थित, सफेद वस्त्र लिपटे हुए शिखरसे युक्त तथा शिखरपर रखे हुए हरे-हरे कुशाओंके समूहसे सहित बाँसके डण्डेपर जिसमें शरीरयष्टि रखी हुई थी। स्पष्टरूपसे दिखाई देनेवाली हड्डियोंके बीचमें निकली हुई नसोंके समूहके समान जनेऊसे जिसमें शरीर दो भागोंमें विभक्त-जैसा जान पड़ता था। मांसके नष्ट हो जानेसे कृश अँगुलियोंसे छूटती हुई सुमरनीके ठीक करनेमें जहाँ हाथ चल रहा था और जिसमें प्राण प्रयाणके उन्मुख-जैसे दिखाई देते थे।

§ २१७. इस प्रकार अपने-आपके लिए भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमें समर्थ वृद्धावस्थासे बढ़ते हुए कुतूहलसे युक्त बालक जिनकी हँसी कर रहे थे और जो पद-पदपर गिर रहे थे ऐसे जीवन्धर स्वामी मुट्ठीसे लाठी पकड़ तथा कुछ अन्तर पार कर सुरमंजरीके उस भवनके

समन्तादगुप्तं प्रत्युप्तनैक[1]मणिमहःस्तबकपिञ्जरितगगनं सुरमञ्जरीभवनं यदृच्छयेवोपसृत्यातुच्छरुषा दौवारिकयोषित्सार्थेन 'किमर्थमिहोपस्थितम्। अवस्थीयतामत्रैव विप्र, त्वया। नैवान्तः प्रविश्यताम्' इत्यादिश्यमानोऽपि कुमारः 'कुमारीतीर्थस्नानेन वार्द्धकमेतदपसारयितुमुपसरामि' इत्युदीरयन्नवधीर्य तन्निवार[2]णोपक्रममुपसर्तु[3]मुपाक्रंस्त तद्गृहाभ्यन्तरम्।

§ २१८. पुरंध्रयश्च प्रतीहारस्थानस्थितास्तदवस्थाविलोकनेन तद्वचनश्रवणेन च जातस्फीतहासानुकम्पाः 'किं पातकमस्माभिरनुष्ठानुमारभ्यते! बुभुक्षितोऽयं क्षितिसुरः स्वैरं किमप्याचष्टे। स्पृष्टोऽप्यस्माभिरयं नष्टासुर्भवेत्। आस्तामयमत्रैव। प्रस्तुतमेतमुदन्तमिदंतया तस्यै

धवलकञ्चुकाः शुक्लकूर्पासका यासां ताभिः प्रतीहारस्थाने द्वारधामनि नियुक्ताः कृतस्थाना यासां ताभिः युवतीभिस्तरुणीभिः समन्तादगुप्तं परितो रक्षितम्, प्रत्युप्तानां खचितानां नैकमणीनां नानारत्नानां महःस्तबकेन कान्तिगुच्छेन पिञ्जरितं पीतं गगनं यत्र तत् सुरमञ्जरीभवनं यदृच्छयेव उपेक्षाभावेनेव उपसृत्य समुपगम्य अतुच्छा रुट् क्रोधो यस्य तेन द्वारे नियुक्तो दौवारिकः स चासौ योषित्सार्थश्च स्त्रीसमूहश्च तेन 'किमर्थं किंप्रयोजनम् इह उपस्थितं समागतम्। विप्र! भूदेव! त्वया अत्रैव अवस्थीयताम्। अन्तर्मध्ये नैव प्रविश्यताम् प्रवेशः क्रियताम्' इतीत्थम् आदिश्यमानोऽपि निरूप्यमाणोऽपि कुमारो वृद्धवेषधरो जीवंधरः कुमारीतीर्थं तव मतीर्थं पक्षे कुमार्येव सुरमञ्जर्येव तीर्थं तत्र स्नानेन वार्द्धकं स्थविरत्वम् अपसारयितुं दूरीकर्तुम् उपसरामि समीपमागच्छामि' इतीत्थम् उदीरयन् तस्य दौवारिकयोषित्सार्थस्य निवारणोपक्रमो निवारणोपायस्तम् अवधीर्य उपेक्ष्य तस्याः सुरमञ्जर्याः गृहस्याभ्यन्तरं मध्यम् उपसर्तुं गन्तुम् उपाक्रंस्त तत्परोऽभूत्।

§ २१८. पुरन्ध्रयश्चेति—प्रतीहारस्थाने द्वारे स्थिता विद्यमानास्तथाभूताश्च पुरन्ध्रयो वनिताः तस्य वृद्धस्यावस्थाया जराजर्जरदशाया विलोकनेन दर्शनेन तस्य वृद्धस्य वचनश्रवणेन च वचनाकर्णनेन च जाते समुत्पन्ने स्फीते विस्तृते हासानुकम्पे हासदये यासां तथाभूताः सत्यः 'अस्माभिः पातकं पापमनुष्ठातुं विधातुं किमारभ्यते। किमुपक्रम्यते। बुभुक्षा संजाता यस्य तथाभूतोऽयं क्षितिसुरो विप्रः स्वैरं स्वेच्छं किमपि आचष्टे कथयति। अस्माभिः द्वारस्थिताभिः स्पृष्टोऽपि कृतस्पर्शोऽपि अयं नष्टासुर्मृतो भवेत्। अयमत्रैव द्वारस्थान एव आस्तां तिष्ठतु। प्रस्तुतं प्रकृतम् एतम् उदन्तं वृत्तान्तम् इदंतया एतद्रूपेण तस्यै

समीप स्वेच्छासे जा पहुँचे कि जो द्वारपर नियुक्त युवतियोंसे सब ओरसे सुरक्षित था तथा जड़े हुए अनेक मणियोंके तेजके समूहसे जिसका आकाश पिंजर हो रहा था। द्वारपर जो स्त्रियाँ नियुक्त थीं वे बाँयें हाथमें बेंतकी छड़ी लिये हुई थीं और दाहिने हाथमें तलवार धारण कर रही थीं तथा उनके सफेद कुरते पैर तक नीचे छूटे हुए थे। द्वारपर खड़ी स्त्रियोंके समूहने अत्यन्त क्रुद्ध हो कहा कि 'यहाँ किसलिए आया है? हे विप्र! तू यहीं खड़ा रह, भीतर प्रवेश नहीं कर', इस प्रकार आदेश मिलनेपर भी कुमार 'कुमारी तीर्थ'में स्नानके द्वारा इस बुढ़ापेको दूर करनेके लिए आया हूँ, यह कहते हुए उनके रोकनेकी परवाह न कर घरके भीतर जानेका उद्यम करते रहे—भीतरकी ओर बढ़ते ही गये।

§ २१८. द्वारपर खड़ी स्त्रियाँ उसकी अवस्था देख तथा उसके वचन सुन जोर-जोरसे हँसने लगीं। साथ ही उन्हें उस वृद्धपर दयाभाव भी उत्पन्न हो गया। वे परस्पर विचार करने लगी कि 'क्या हम लोग पाप करना प्रारम्भ कर रही हैं? यह भूखा ब्राह्मण स्वेच्छासे कुछ कह रहा है। हम लोगोंके छूते ही यह मर जायेगा अतः यह यहीं रहे। हम लोग यह वृत्तान्त

---

१. क० ग० निखिल। २. म० निवारणोप-। ३. क० ख० ग० अपसर्तुम्।

भर्तृदारिकायै विज्ञापयाम' इति विरचितविचाराः सरभसमेव सुरमञ्जरीसकाशमविशन् । अभ्यधुश्च ताः सुन्दर्यः सुरमञ्जरीमञ्जलिबन्धकरणे कातर्यकण्ठोक्तभयाः 'भर्तृदारिके, भर्तेव जरायाः कोऽपि वृद्धब्राह्मणो ब्रह्महत्याभीत्यास्माभिरभर्त्सितः सुतरामुत्सुक इव भिक्षायां प्राविक्षदभ्यन्तरकक्ष्याम्' इति ।

§ २१९. सा च वरवर्णिनी तद्वचनाकर्णनेन तदवलोकनगूर्णमतिः 'पूर्णास्ते मनोरथाः प्राणनाथो यतः प्रत्यासन्नः' इति क्वणितव्याजेन मणिनूपुरेणेव प्रोच्यमाना पुरःसरमानिनीपरिषदभिधीयमानालोकशब्दा चरणाभ्यामेव जीवितैकशरणमेनमेनोरहितं तपस्यासमाश्रितं श्रीरिव स्वयं शिश्रिये । पिप्रिये च तं प्रवयसमालोक्य सा प्रमदा । निजगाद च निजपरिचारिकाः

भर्तृदारिकायै सुरमञ्जर्यै विज्ञापयामो निवेदयामः' इति विरचितः कृतो विचारो विमर्शो याभिस्तथाभूताश्च सत्यः सरभसमेव सवेगमेव सुरमञ्जरीसकाशं सुरमञ्जरीपार्श्वम् अविशन् प्रविष्टा बभूवुः । अञ्जलिबन्धकरणे हस्तसम्पुटविधाने कातर्येण दैन्येन कण्ठोक्तं स्पष्टमुदीरितं भयं यासां तथाभूतास्ताः पूर्वोक्ताः सुन्दर्यः स्त्रियः सुरमञ्जरीं गृहस्वामिनीम् अभ्यधुश्च कथयामासुश्च,—'भर्तृदारिके ! राजपुत्रि ! जराया वृद्धावस्थाया भर्तेव पतिरिव कोऽपि कश्चिद् वृद्धब्राह्मणः स्थविरविप्रो ब्रह्महत्याभीत्या ब्राह्मणघातभयेन अस्माभिः अभर्त्सितोऽनिराकृतो भिक्षायां सुतराम् अत्यन्तमुत्सुक इव अभ्यन्तरकक्ष्यां मध्यप्रकोष्ठं प्राविक्षत् प्रविवेश' इति ।

§ २१९. सा चेति—सा च वरवर्णिनी सुन्दरी सुरमञ्जरीति यावत् तासां दौवारिकयोषितां वचनानामाकर्णनेन श्रवणेन तस्य वृद्धस्यावलोकने गूर्णा समुद्यता मतिर्मनीषा यस्यास्तथाभूता सती 'यतो यस्मात्कारणात् प्राणनाथो वल्लभः प्रत्यासन्नो निकटस्थितोऽतस्ते मनोरथाः पूर्णाः' इति क्वणितव्याजेन रणतमिषेण मणिनूपुरेण रत्नमञ्जीरकेण प्रोच्यमानेव निगद्यमानेव, पुरःसराणामग्रेसराणां मानिनीनां नारीणां या परिषत् समूहस्तयाभिधीयमानः समुच्चार्यमाण आलोकशब्दो जयध्वनिर्यस्यास्तथाभूता सती चरणाभ्यामेव पादाभ्यामेव जीवितैकशरणम् एनोरहितं पापरहितम् एनम् तपस्यासमाश्रितं तपस्विजनं श्रीरिव लक्ष्मीरिव स्वयं शिश्रिये प्राप । तं प्रवयसं वृद्धम् आलोक्य सा प्रमदा सुरमञ्जरी पिप्रिये प्रीता चाभूत् ।

इसी रूपमें राजपुत्रीके लिए कहे देती हैं' इस प्रकार विचार कर वे वेगसे सुरमंजरीके पास पहुँचीं । हाथ जोड़नेमें दीनतासे जिनका भय प्रकट हो रहा था ऐसी उन स्त्रियोंने सुरमंजरीसे कहा कि 'हे राजकुमारी ! जो वृद्धावस्थाके भर्त्ताके समान जान पड़ता है ऐसा कोई एक वृद्ध ब्राह्मण भिक्षाके लिए अत्यन्त उत्सुक होकर ही मानो भीतरी कक्षामें आ घुसा है । ब्रह्महत्याके भयसे हम लोग उसे डाँट नहीं सकी हैं' ।

§ २१९. उनके वचन सुननेसे उस वृद्धको देखनेकी इच्छा करती हुई सुरमंजरी स्वयं पैरोंसे उसके पास चली । चलते समय उसके मणिमय नूपुर रुणझुण शब्द कर रहे थे उससे ऐसा मालूम होता था मानो मणिमय नूपुर यही कह रहे हों कि 'तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हो गये क्योंकि तुम्हारा प्राणनाथ समीपमें आ चुका है' । आगे-आगे चलनेवाली स्त्रियोंका समूह उसका जय-जयकार कर रहा था और वह अपने प्राणनाथके संमुख इस प्रकार जा रही थी जिस प्रकार कि पापरहित तपस्वीके पास लक्ष्मी जाती है । उस वृद्धको देखकर सुरमंजरी

---

१. क० कक्षाम् ।

'परिश्रमस्तावदस्य परिह्रियताम् । आह्रियतामाहारादिकम् । कृतिनमेनं कृतादराः कृतकशिपुं कारयध्वं यूयम्' इति । ताश्च तद्वचनं निशम्य निशान्ताभ्यन्तरे जीवंधरमानीय तपनीयगलन्तिकागलितपानीयकृतपादप्रक्षालनं प्रक्षरदाज्यं प्राज्यं भोजनं भोजयितुमारेभिरे ।

§ २२०. कुमारोऽपि तां नखचन्द्रकिरणपरामर्शेऽपि विकसता चरणकमलयुगलेनोपेताम्, कार्कश्यरहितकरिवरकराकारेण कदर्थितैकान्तशीतलकदलीस्तम्भेन भृशमूरुद्वयेनोपशोभिताम्, दानरेखयेव मदनगन्धद्विपस्य कृपाणधारयेव सौभाग्यवरस्य तनुतरमध्यलताविलीनमधुकरमालायमानया रोमराजिरेखया विराजमानाम्, चकासत्यपि मुखचन्द्रमण्डले संगताभ्यामिव रथाङ्गनामभ्यां

निजपरिचारिकाः स्वसेविकाश्च निजगाद कथयामास 'अस्य परिश्रमः खेदः तावत्साकल्येन परिह्रियतां दूरीक्रियताम् । आहारादिकं भोजनपानादिकम् आह्रियताम् आनीयताम् । कृतिनं कुशलम् एनम् कृतादरा विहितसम्मानाः कृतकशिपुं कृतभोजनं कारयध्वं यूयम्' इति । ताश्च सुरमञ्जरीपरिचारिकाः तद्वचनं सुरमञ्जरीकथनं निशम्य श्रुत्वा निशान्ताभ्यन्तरे गृहाभ्यन्तरे जीवंधरम् आनीय तपनीयगलन्तिकायाः स्वर्णभृङ्गाराद्[1] गलितं पतितं यत्पानीयं जलं तेन कृतं पादप्रक्षालनं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा प्रक्षरत् निःसरद् आज्यं घृतं यस्मात् तत् प्राज्यं प्रकृष्टं श्रेष्ठमिति यावत् भोजनं भक्ष्यादिकम् भोजयितुं खादयितुम् आरेभिरे तत्परा बभूवुः ।

§ २२०. कुमारोऽपीति—कुमारोऽपि जीवकोऽपि तां कुमारीं सुरमञ्जरीं विलोक्य विस्मयेन स्मेरे विकसिते चक्षुषी यस्य तथाभूतः सन् 'अहो ! मदनमहाराजस्य काममहीपालस्य विजयसाधनानां विजयोपायानां समवाय इव समूह इव एषा पुरोवर्तमाना योषित् योषा लक्ष्यते दृश्यते । अथ कुमार्या विशेषणान्याह—नखेति-नखा नखरा एव चन्द्रास्तेषां किरणानां रश्मीनां परामर्शेऽपि सम्बन्धेऽपि विकसता प्रफुल्लेन चरणकमलयुगलेन पादारविन्दद्वन्द्वेन उपेतां सहिताम्, कार्कश्येति—कार्कश्येन काठिन्येन रहितो यः करिवरस्य गजराजस्य करः शुण्डा तद्वदाकारो यस्य तेन, कदर्थितः पराभूत एकान्तशीतलनियमेन शिशिरः कदलीस्तम्भो मोचास्तम्भो येन तथाभूतेन ऊरुद्वयेन सक्थियुगलेन भृशमत्यर्थम् उपशोभितां विराजिताम्, दानेति—मदनश्चासौ गन्धद्विपश्चेति मदनगन्धद्विपो मारमातङ्गस्तस्य दानरेखयेव मदजललेखयेव, सौभाग्यमेव वरो जामाता तस्य कृपाणधारयेव खड्गधारयेव, तनुतरमध्यमेवातिकृशावलग्नमेव लता वल्ली तस्यां विलीनाः स्थिता ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां माला पङ्क्तिस्तद्वदाचरन्ती तया, रोमराजिरेव रेखा तया विराजमानां शोभमानाम्, मुखमेव चन्द्रमण्डलं तस्मिन् वदनविधुबिम्बे चकासत्यपि शोभमानेऽपि संगताभ्यां

बहुत ही प्रसन्न हुई । उसने सेविकाओंसे कहा कि इसका खेद दूर किया जाय । आहार आदि लाया जाये तथा तुम सब इस कुशल वृद्धको आदरपूर्वक भोजन कराओ' । उसके वचन सुन सेविकाएँ जीवन्धर स्वामीको महलके भीतर ले गयीं और स्वर्णकी झारीसे झरते हुए जलसे पैर धुलाकर उन्हें जिससे घी झर रहा था ऐसा श्रेष्ठ भोजन खिलाने लगीं ।

§ २२०. तदनन्तर जो नखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होनेपर खिले हुए चरणकमलोंके युगलसे सहित थी । कठोरतासे रहित गजराजकी सूँडके समान आकारको धारण करनेवाली एवं एकान्त शीतल केलेके स्तम्भका निराकरण करनेवाली दोनों जाँघोंसे जो अत्यन्त सुशोभित थी । जो कामरूपी मदमाते हाथीकी मदरेखाके समान अथवा सौभाग्यरूप वरकी खड्गधाराके समान अथवा अत्यन्त कृश कमररूपी लतापर बैठे हुए भ्रमरोंकी पंक्तिके समान दिखनेवाली रोमराजिकी रेखासे विराजमान थी । मुखरूपी चन्द्रमण्डलके सुशोभित

१. गिण्डी, इति कन्नडभाषायां स्वर्णभृङ्गार इति च संस्कृते ।

स्तनाभ्यामुद्भासमानाम्, पल्लविताभ्यामिवाङ्गुलीभिः कोरकिताभ्यामिवाङ्गदमौक्तिकैः कुसुमिताभ्यामिव करसंभवैर्बाहुलताभ्यां विराजमानाम्, मदनारोहलीलाडोलायमानया[1] कर्णपाशश्रिया-लंकृताम्, विकसिततिलकुसुमसमानया रूपसौन्दर्यसागरबुद्बुदायमानया नासया समेताम्, विकचविचकिलकुसुमावकीर्णकेशकलापाम्, तारकिताम्बरामिव विभावरीम्, कल्पलतामिव कामफलप्रदाम्, जानकीमिव रामोपशोभिताम्, समुद्रवेलामिव विचित्ररत्नभूषिताम्, नारीजनतिलकभूतां कुमारीं विलोक्य विस्मयस्मेरचक्षुः 'अहो मदनमहाराजविजयसाधनानां समवाय इव योषिदेषा लक्ष्यते ।

§ २२१. तथा हि—तस्य धनुर्यष्टिरिव भ्रूलते, मधुकरमालामयी ज्येव नीलालकद्युतिः,

मिलिताभ्यां रथाङ्गनामभ्यामिव चक्रवाकाभ्यामिव स्तनाभ्यां कुचाभ्याम् उद्भासमानां शोभमानाम्, अङ्गुलीभिः करशाखाभिः पल्लविताभ्यामिव किसलययुक्ताभ्यामिव अङ्गदमौक्तिकैः केयूरमुक्ताफलैः कोरकिताभ्यामिव कुड्मलिताभ्यामिव, करसंभवैर्नखैः कुसुमिताभ्यामिव पुष्पिताभ्यामिव बाहुलताभ्यां भुजवल्लीभ्यां विराजमानां शोभमानाम्, मदनारोहस्य कामाधिष्ठानस्य लोलाडोला क्रीडान्दोलिका तद्वदाचरन्त्या कर्णपाशश्रिया कर्णालङ्कारलक्ष्म्या अलंकृतां शोभिताम्, विकसितेन प्रफुल्लेन तिलकुसुमेन क्षुरकपुष्पेण समानया सदृश्या रूपसौन्दर्यमेव सागरो लावण्यजलधिस्तस्य बुद्बुदायमानया बुद्बुदसंनिभया नासया घ्राणेन समेतां सहिताम्, विकचानि विकसितानि यानि विचकिलकुसुमानि मल्लिकापुष्पाणि[2] तैरवकीर्णो व्याप्तः केशकलापो यस्यास्ताम्, अतएव तारकितं नक्षत्रितमम्बरं गगनं यस्यां तथाभूतां विभावरीमिव रजनीमिव, कल्पलतामिव कल्पवल्लीमिव कामफलप्रदाम् इच्छानुरूपफलदायिनीं पक्षे काम एव फलं तत्प्रदत्तातीति तथा मदनरूपफलदायिनीं ताम्, जानकीमिव सीतामिव रामेण दाशरथिनोपशोभिता ताम् पक्षे रामाभिः स्त्रीभिरुपशोभिता ताम्, समुद्रवेलामिव तोयधितटीमिव विचित्ररत्नैर्नानामणिभिर्भूषिता ताम् एकत्राभरणरत्नैरलङ्कृता पक्षे रत्नाकरोत्पन्नैर्नानारत्नैरलंकृता च, नारीजनतिलकभूतां ललनाकुलतिलकरूपाम् ।

§ २२१. अथ तस्या—मदनमहाराजविजयसाधनानां समवायत्वं साधयितुमाह तथा हीति—'तस्य मदनमहाराजस्य धनुर्यष्टिरिव चापयष्टिरिव भ्रूलते भ्रुकुटिवल्लर्यौ, मधुकरमालामयी भ्रमरपङ्क्तिनिर्मिता

रहनेपर भी मिले हुए चकवोंके समान दिखनेवाले स्तनोंसे जो सुशोभित थी। अंगुलियोंसे पल्लवितके समान, बाजूबन्दोंके मोतियोंसे बोंड़ियोंसे युक्तके समान और नखोंसे पुष्पितके समान दिखनेवाली भुज लताओंसे जो सुशोभित थी। जो कामदेवके चढ़नेकी डोलीके समान आचरण करनेवाली कर्णपाशकी लक्ष्मीसे अलंकृत थी। खिले हुए तिलके फूलके समान अथवा रूप और सौन्दर्यके सागरके बबूलेके समान दिखनेवाली नाकसे सहित थी। जिसके बालोंका समूह खिले हुए विचकिलके फूलोंसे व्याप्त था और उनसे जो ताराओंसे युक्त आकाशसे सहित रात्रिके समान जान पड़ती थी। जो कल्पलताके समान कामरूपी फल (पक्षमें वाञ्छित फल) को देनेवाली थी। सीताके समान रामोपशोभिता—रामसे सुशोभित (पक्षमें रामाओं—स्त्रियोंमें सुशोभित) थी। समुद्रकी वेलाके समान नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित थी और जो स्त्रियोंके तिलकके समान थी ऐसी कुमारी—सुरमंजरीको देखकर आश्चर्यसे जिनके नेत्र विकसित हो रहे थे ऐसे जीवन्धरकुमार विचार करने लगे कि 'अहो ! यह स्त्री तो कामरूपी महाराजके विजय साधनोंके समूहके समान जान पड़ती है।

§ २२१. देखो न, उसके धनुर्दण्डके समान इसकी भ्रुकुटिलताएँ हैं, भ्रमरपंक्तिरूप डोरीके

१. ख० दोला-। २. मल्लिका, इति टि० ।

अस्त्राणीवापाङ्गविक्षेपाः, वैजयन्तीदुकूलमिव दशनमयूखजालकम्, प्रियसुहृदिव मलयानिलो निःश्वासमारुतः, परभृतबलमिवातिमञ्जुलमालपितम्' इत्याकलयन्नन्तःस्फुरदाह्लादः, परिजनानीतं पवित्रमासनमध्यास्य कथमपि वार्द्धकेनेव कतिचन कबलानि शनैरशित्वा पुनरशनक्लेशमपनेतुमिव महनीयं किमपि शयनीयमारुरुक्षत्। अशयिष्ट च[1] किल तत्रैव यथेष्टम्। कुमारी च सा कुतूहलप्रवर्तितैर्वार्ताविनोदैर्मुहूर्तमात्रं तत्रैवातिवाह्य 'भृशमशनक्लेशितोऽयमग्रजन्मा स्यात्। उग्रतरव्यसनवार्धिवर्धनेन्दुः खलु वार्द्धकं च। अतः स्वैरमनेन सुप्यताम्। न लुप्यतामस्य निद्रा' इति निगदन्ती 'निवारितपुरुषदर्शनयापि मया दृष्टोऽयं विशिष्टवृत्तः। कदाचिदेवमपि नाम

ज्येव मौर्वीव नीलालकद्युतिः श्यामलकुन्तलकान्तिः अस्त्राणीव शस्त्राणीव अपाङ्गविक्षेपाः कटाक्षप्रसराः, वैजयन्तीदुकूलमिव पताकापट इव दशनमयूखजालकं रदनरश्मिसमूहः, प्रियसुहृत् प्रियमित्रं मलयानिल इव मलयमारुत इव निःश्वासमारुतः श्वासोच्छ्वासपवनः, परभृतबलमिव कोकिलसैन्यमिव अतिमञ्जुलं मनोहरमालपितं शब्दः' इतीत्थम् आकलयन् विचारयन्, अन्तर्मध्ये स्फुरन् प्रकटीभवन् आह्लादो हर्षो यस्य तथाभूतः सन् परिजनेन परिकरलोकेनानीतं परिजनानीतं पवित्रं पूतम् आसनं विष्टरम् अध्यास्य तत्रोपविश्य कथमपि केनापि प्रकारेण काठिन्येनेति भावः वार्द्धकेनेव जरयेव कतिचन कियन्त्यपि कबलानि ग्रासान् शनैर्मन्दम् अशित्वा भुक्त्वा पुनरनन्तरम् अशनक्लेशं भोजनपरिश्रमम् अपनेतुमिव महनीयं शोभनीयं किमपि शयनीयं कामपि शय्याम् आरुरुक्षत् तत्रारूढो बभूव। अशयिष्ट च शिश्ये च किल तत्रैव शयनीये यथेष्टं यथेच्छम्। कुमारी च सा सुरमञ्जरी च कुतूहलेन प्रवर्तिताः कृतास्तैर्वार्ताविनोदैः अभिभाषणविनोदैः मुहूर्तमात्रं कालं तत्रैव तत्समीप एवातिवाह्य व्यपगमय्य 'अयम् अग्रजन्मा विप्रो भृशमत्यर्थम् अशनेन भोजनेन क्लेशितो दुःखं प्रापितः स्यात्। खलु निश्चयेन वार्द्धकं च स्थविरत्वं च उग्रतरव्यसनमेव तीव्रदुःखमेव वार्धिः सागरस्तस्य वर्धनाय विजृम्भणायेन्दुश्चन्द्रः। अतोऽस्माद्धेतोः अनेन विप्रेण स्वैरं स्वेच्छं यथा स्यात्तथा सुप्यताम् शीयताम्। अस्य निद्रास्वापो न लुप्यताम् ह्रियताम्' इति निगदन्ती कथयन्ती निवारितं निरुद्धं पुरुषस्य पुंसो दर्शनं येन तथाभूतयापि मया विशिष्टं वृत्तं चारित्रं यस्य तथाभूतोऽयं जनः दृष्टो विलोकितः।

समान इसके काले केशोंकी कान्ति है, अस्त्रोंके समान इसके कटाक्षोंके विक्षेप हैं, पताकाके वस्त्रके समान दाँतोंकी किरणावली है, प्रिय मित्र मलय समीरके समान इसके श्वासोच्छ्वासकी वायु है, और कोयलोंकी सेनाके समान इसका अत्यन्त सुन्दर वार्तालाप है। इस प्रकार विचार करते-करते जिनके हृदयमें अत्यन्त आह्लाद उत्पन्न हो रहा था ऐसे जीवन्धरकुमारने परिजनोंके द्वारा लाये हुए पवित्र आसनपर बैठकर बुढ़ापेके कारण ही मानो किसी तरह धीरे-धीरे कुछ ग्रास खाये और उसके बाद भोजनसम्बन्धी क्लेशको दूर करनेके लिए ही मानो वे किसी सुन्दर शय्यापर आरूढ हो गये और वहीं इच्छानुसार सो गये। कुमारी सुरमंजरीने भी कुतूहलवश किये हुए वार्तासम्बन्धी विनोदोंसे एक मुहूर्त वहीं बिताया। तदनन्तर 'यह ब्राह्मण भोजनके कारण अत्यधिक क्लेशको प्राप्त हुआ है। यथार्थमें बुढ़ापा अत्यन्त तीव्र दुःखरूपी सागरको बढ़ानेके लिए चन्द्रमा है अतः इसे इच्छानुसार सोने दिया जाय। इसकी निद्रा भंग न की जाय' इस प्रकार कहती हुई वह सखियोंके साथ वहाँसे प्रयाण कर दूसरे स्थानपर चली गयी। जाते समय उसे इस प्रकारका पश्चात्ताप हो रहा था कि यद्यपि मैंने पुरुषका देखना छोड़ रखा था तथापि मैंने विशिष्ट वृत्तको धारण करनेवाला यह पुरुष देखा

१. क० ख० ग० 'च' नास्ति।

सज्जनदर्शनमपि संभवेत्, यो नाम चूर्णपरीक्षायामुपैक्षिष्ट माम्' इत्यनुशयाविष्टा सह सखीभिस्ततः प्रयान्ती प्रदेशान्तरं प्रापद्यत ।

§ २२२. अथ कुमारस्वैरगानावसरदानलम्पटतयेव लम्बमाने सौरबिम्बे, सुरमञ्जरीकरपीडोत्सुकसौनन्देयरागप्राग्भार इव बहुलतया बहिर्गते स्फुरति संध्यारागे, गगनकेदारविकीर्यमाणतिमिरबीजनिकर इव नोडसनीडाभिमुखमुड्डायिनि काकपेटके प्रेक्ष्यमाणे, प्रासादवातायनविवरनिर्यदगुरुधूमोत्करेण[1] तिमिरान्धकारेणेव नीरन्ध्रीभवति वियदन्तराले, वलभिनिविष्टवारयुवतिधम्मिल्लमल्लिकास्रजा सृज्यमानायां प्रतिदिशं[2] चन्द्रातपच्छेदशङ्कायाम्, प्रज्वलदन्तर्गतप्रदीपसना-

कदाचिज्जातुचिद् एवमपि नामेति संभावनायां स चासौ जनश्चेति तज्जनो जीवंधरस्तस्य दर्शनमपि संभवेत् यो नाम चूर्णपरीक्षायां चूर्णस्य गुणदोषपरीक्षणे माम् उपैक्षिष्ट उपेक्षितां चकार' इति अनुशयेन पश्चात्तापेनाविष्टा समाक्रान्ता सखीभिरालीभिः सह ततः स्थानात् प्रयान्ती प्रतिष्ठमाना सती प्रदेशान्तरं स्थानान्तरं प्रापद्यत प्राप ।

§ २२२. अथेति—अथानन्तरं कुमाराय स्वैरगानस्य स्वच्छन्दगानस्यावसरदानाय समयवितरणाय लम्पटतयेव लम्पाकतयेव सौरबिम्बे दिनकरमण्डले लम्बमाने सति, सुरमञ्जर्याः करपीडायां पाणिग्रहण उत्सुक उत्कण्ठितो यः सौनन्देयः सुनन्दासुतो जीवंधरस्तस्य रागप्राग्भार इव प्रीतिसमूह इव बहुलतया भूयिष्ठत्वेन बहिर्गते बहिःप्रकटिते संध्यारागे सायंकालिकारुणिमनि स्फुरति प्रकटीभवति, नीडैः कुलायैरुपलक्षिता ये सनीडा वृक्षास्तेषामभिमुखं संमुखमुड्डीयत इत्येवंशीलस्तस्मिन् काकपेटके वायसमूहे गगनमेव नभ एव केदारः क्षेत्रं तस्मिन् विकीर्यमाणानां प्रक्षिप्यमाणानां तिमिरबीजानां ध्वान्तबीजानां निकर इव समूह इव प्रेक्ष्यमाणे दृश्यमाने, प्रासादानां राजसदनानां वातायनविवरेभ्यो गवाक्षरन्ध्रेभ्यो निर्यन् निर्गच्छन् योऽगुरुधूमोत्करोऽगुरुचन्दनधूम्रसमूहस्तेन तिमिरान्धकारेणेव गाढध्वान्तेनेव वियदन्तराले नभोऽन्तरे नीरन्ध्रीभवति निश्छिद्रीभवति, वलभिषु गोपानसीषु निविष्टाः स्थिता या वारयुवतयो रूपाजीवास्तासां धम्मिकानां केशबन्धानां मल्लिकास्रक् मल्लिकामाला तया जातित्वादेकवचनत्वम् दिशां दिशां प्रतीति प्रतिदिशं प्रतिकाष्ठं चन्द्रातपस्य चन्द्रिकायाश्छेदाः खण्डानि तेषां शङ्कायां संशीतौ, सृज्यमानायां क्रियमाणायाम्, प्रज्वलद्भिर्दे-

है। किसी समय क्या इसी तरह उस पुरुषका दर्शन भी सम्भव हो सकेगा जिसने कि चूर्णपरीक्षामें मेरी उपेक्षा की थी'।

§ २२२. तदनन्तर सूर्यका मण्डल नीचेकी ओर ढल गया जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कुमारके लिए स्वच्छन्दता पूर्वक गानेका अवसर देनेके लिए उत्सुक होनेके कारण ही वह ढल गया था। सन्ध्याकी लालिमा फैल गयी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो सुरमंजरीके विवाहके लिए उत्सुक जीवन्धरकुमारके रागका समूह ही अधिक होनेके कारण बाहर निकलकर फैल गया हो। कौओंके समूह घोंसलोंके समीप सम्मुख उड़ते हुए दिखाई देने लगे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशरूपी खेतमें बिखेरे जानेवाले अन्धकारके बीजोंका समूह ही हो। आकाशका मध्यभाग सघन अन्धकारके समान महलोंके झरोखोंके छिद्रोंसे निकलते हुए अगुरुचन्दनके धूमके समूहसे व्याप्त हो गया। छपरियोंमें बैठीं वेश्याओंके केशपाशमें गुथीं मालतीकी मालाओंसे स्थान-स्थानपर चाँदनीके खण्डोंकी शंका उत्पन्न होने लगी। भीतर जलते हुए देदीप्यमान दीपकोंसे सहित महल सायंकालिक नियम और

१. म० अगरुधूपोत्करेण। २. म० प्रतिदेशम्।

थेषु सायन्तननियमध्यानाग्निसंयुक्तसंयतेष्विव जातेषु सौधेषु, दुर्दृशां स्वान्तेष्विव तमसाक्रान्तेषु दिगन्तेषु, क्रमेण च मदनमहाराजश्वेतातपत्रे रजनीरजतताटङ्के स्फटिकोपलघटितमदनशरमार्जनशिलाशकलकल्पे पुष्पबाणाभिषेकपूर्णकलशायमाने सर्वजनानन्दकारिणि रागराजप्रियसुहृदि राजति रोहिणीरमणे, दुग्धोदधिशीकरैरिव घनसारपरागैरिव मलयजरसविसरैरिव पीयूषफेनपिण्डैरिव पारदरससरिद्भिरिव स्फटिकरेणुभिरिव मदनानलभस्मभिरिव रजनीकरकरनिकरैरापूरिते भुवनविवरे, विकचकैरवपरिमलमिलितालिकुलझंकारविरचितविरहिजनतापे मधुमदमत्तमत्तकाशिनीकेशकलापकुसुमामोदामोदितदशदिशि समाध्मापितप्रद्युम्नपावके मन्दमन्दमावाति मातरिश्वनि,

दीप्यमानैरन्तर्गतप्रदीपमध्यस्थितप्रदीपैः सनाथाः सहितास्तेषु सौधेषु प्रासादेषु सायन्तननियमेषु सायंकालिकनियमेषु ध्यानाग्निना ध्यानानलेन संयुक्ताः सहिता ये संयता मुनयस्तेष्विव जातेषु, दिगन्तेषु काष्ठान्तेषु दुर्दृशां मिथ्यादृष्टीनां स्वान्तेष्विव चित्तेष्विव तमसा मोहेन पक्षे तिमिरेणाक्रान्तेषु सत्सु, क्रमेण च क्रमशश्च मदनमहाराजस्य कामभूपालस्य श्वेतातपत्रे सितातपवारणे, रजन्या निशाया रजतताटङ्के रूप्यकरण्डके, स्फटिकोपलेन घटितं निर्मितं यद् मदनस्य मारस्य शरमार्जनशिलाशकलं बाणोत्तेजनशिलाखण्डम् ईषदूनं तदिति स्फटिकोपलघटितशरमार्जनशिलाशकलकल्पस्तस्मिन्, पुष्पबाणस्य कामस्य योऽभिषेकः स्नपनं तस्य पूर्णकलश इवाचरतीति पुष्पबाणाभिषेकपूर्णकलशायमानस्तस्मिन्, सर्वजनानन्दकारिणि निखिलनरहर्षविधायिनि, राग एव राजा रागराजस्तस्य प्रियसुहृत्प्रियमित्रं तस्मिन्, रोहिणीरमणे चन्द्रमसि राजति शोभमाने, दुग्धोदधिशीकरैरिव पयःपयोधिपृषताभिरिव, घनसारपरागैरिव कर्पूरचूर्णैरिव, मलयजरसविसरैरिव पाटीरनिःष्यन्दसमूहैरिव, पीयूषफेनपिण्डैरिव सुधाडिण्डीरसमूहैरिव पारदरसस्य सूदरसस्य सरिद्भिरिव नदीभिरिव, स्फटिकः सितमणिस्तस्य रेणुभी रजोभिरिव, मदनानलभस्मभिरिव स्मराग्निभूतिभिरिव, रजनीकरकरनिकरैः शीतरश्मिरश्मिराशिभिः भुवनविवरे जगदन्तराले आपूरिते संभरिते, विकचानां विकसितानां कैरवाणां कुमुदानां परिमलेन विमर्दोत्थसौरभ्येण मिलितानि संगतानि यान्यलिकुलानि भ्रमरसमूहस्तस्य झंकारेण गुञ्जनशब्देन विरचितो विहितो विरहिजनानां विप्रयुक्तपुरुषाणां तापः खेदो येन तस्मिन्, मधुमदेन मद्यमदेन मत्ता या मत्तकाशिन्यः सुन्दर्यस्तासां केशकलापेषु शिरसिजसमूहेषु विद्यमानानि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषामामोदेनातिनिर्हारिगन्धेनामोदिताः सुरभिता दश दिशो दश काष्ठा येन तस्मिन्, समाध्मापितः प्रचण्डीकृतः प्रद्युम्नपावकः स्मरहुताशनो येन तस्मिन्, मातरिश्वनि पवने मन्दमन्दं शनैः-शनैः

ध्यानरूपी अग्निसे सहित मुनियोंके समान जान पड़ने लगे। दिशाओंके अन्तिमतट मिथ्यादृष्टि जीवोंके हृदयोंके समान अन्धकार (पक्षमें मोह) से आक्रान्त हो गये। क्रम क्रमसे जो मदनरूपी महाराजका सफेद छत्र था, रात्रिरूपी स्त्रीका चाँदीका कर्णाभरण था, जो कामके बाणोंके साफ करनेके लिए स्फटिक पाषाणसे निर्मित शिलाके एक खण्डके समान था, कामदेवके अभिषेकके लिए निर्मित पूर्ण कलशके समान जान पड़ता था, सब मनुष्योंको आनन्द उत्पन्न करनेवाला था, और रागरूपी राजाका प्रिय मित्र था ऐसा चन्द्रमा सुशोभित होने लगा। संसारका मध्यभाग चन्द्रमाकी उन किरणोंके समूहसे व्याप्त हो गया जो क्षीरसमुद्रके जलकणोंके समान, कपूरकी परागके समान, चन्दनरसके समूहके समान, अमृतके फेनपिण्डके समान, पारेके रसकी धाराके समान, स्फटिककी धूलिके समान, अथवा कामाग्निकी भस्मके समान जान पड़ते थे। खिले हुए कुमुदोंकी सुगन्धिसे एकत्रित भ्रमर समूहकी झंकारसे विरही जनोंको सन्ताप उत्पन्न करनेवाली, मधुके नशासे मत्त स्त्रियोंके केश-कलापमें लगे हुए फूलोंकी सुगन्धिसे दशों दिशाओंको सुगन्धित करनेवाली, एवं कामरूपी अग्निको प्रज्वलित करनेवाली वायु धीरे-धीरे बहने लगी। हृदयको भेदनेवाला कामदेव धनुष चढ़ाकर

समन्ततः संचरति समारोपितकार्मुके हृदयभिदि कन्दर्पे, संभोगलम्पटदम्पतिसमाजसंभवन्मणिभूषणरणितशब्दमात्रावशेषिते धात्रीतले, पवित्रकुमारः कुवलयैकमोहनं गानमतानीत् ।

§ २२३. गानविद्याविश्रुतस्य तामुपश्रुत्य गीतिम् 'किं नु किंनराः किमुत नराः किंस्विदमरा वा जगत्यनुपमेयं गायन्ति ।' इत्याहितात्याहितभरा परितः प्रहितनेत्रा तत्र सर्वत्राप्यपरमपश्यन्ती सेयं वैश्यपतिसुतावश्यं मन्त्रसिद्धमेनं वृद्धमेव विभाव्य गायकं सहयायिनीभिरमा तत्प्रान्तं प्राविक्षत् । अप्राक्षीच्च 'प्रक्षीणाङ्गस्य ते गीतिरियं प्रत्यक्षस्मरं स्मरयति जीवंधरम् । कस्मादियमनवद्या गानविद्या विद्वन्नुपलब्धा, यच्छक्तितः शमिनि वयस्यपि सर्वलोकश्राव्येयं

आवाते वहति समारोपितं सप्रत्यञ्चीकृतं कार्मुकं धनुर्येन तस्मिन् हृदयभिदि मनोभवि कन्दर्पे कामं समन्ततः परितः संचरति सति, धात्रीतले भूपृष्ठे सम्भोगे सुरते लम्पटः संलग्नो यो दम्पतिसमाजो मिथुनसमूहस्तस्य संभवन् समुत्पद्यमानो मणिभूषणानां रत्नालंकरणानां यो रणितशब्दः स एवेति संभोगलम्पटदम्पतिसमाजसंभवन्मणिभूषणरणितशब्दमात्रं तेनावशेषिते सति, पवित्रकुमारो जीवंधरः कुवलयैकमोहनं भूमण्डलप्रमुखमोहनं गानम् अतानीत् विस्तारयामास ।

§ २२३. गानविद्येति—गानविद्यायां विश्रुतो विख्यातस्तस्य तां पूर्वोक्तां गीतिम् उपश्रुत्य पार्श्वे समाकर्ण्य 'किमिति प्रश्ने 'नु' इति वितर्के किंनरा देवविशेषाः किमुत नरा मनुष्याः किंस्वित् अमरा वा गीर्वाणा वा जगति लोकेऽनुपमेयमुपमातीतं गायन्ति । इतीत्थम् आहितो धृतोऽत्याहितभर आश्चर्यसमूहो यया सा परितो विष्वग् प्रहितनेत्रा प्रेरितनयना तत्र सर्वत्रापि अपरमन्यम् अपश्यन्ती अनवलोकयन्ती सा प्रसिद्धा इयं वैश्यपतिसुता सुरमञ्जरी अवश्यम् सिद्धो मन्त्रो यस्य तं मन्त्रसिद्धं 'वाहिताग्न्यादिषु' इति परनिपातः अथवा मन्त्रे मन्त्रविषये सिद्धं कृतार्थम् मन्त्रसिद्धम् एवं वृद्धमेव स्थविरमेव गायकं गानकर्तारं विभाव्य निश्चित्य सहयायिनीभिः सहचरीभिः अमा सार्धम् तत्प्रान्तं तत्प्रदेशं प्राविक्षत् । अप्राक्षीच्च पप्रच्छ च 'प्रक्षीणमङ्गं यस्य तस्य वृद्धस्य ते इयं श्रूयमाणा गीतिः प्रत्यक्षस्मरं साक्षात्कामदेवं जीवंधरं स्मारयति । हे विद्वन् ! हे विज्ञ ! इयम् अनवद्या निर्दुष्टा गानविद्या कस्मात् उपलब्धा प्राप्ता यच्छक्तितो यदीयसामर्थ्यात् शमिनि वयस्यपि वृद्धावस्थायामपि सर्वलोकैः श्राव्या श्रोतुमर्हा इयं दिव्यगीतिः

सब ओर घूमने लगा और पृथिवीतलपर जब संभोगमें उत्सुक स्त्री-पुरुषोंके मणिमय आभूषणोंसे उत्पन्न शब्द ही शेष रह गया तब पवित्रकुमार—वृद्धवेषधारी जीवन्धरस्वामीने पृथिवीतलको अत्यन्त मोहित करनेवाला गान विस्तृत किया ।

§ २२३. गान विद्यामें प्रसिद्ध जीवन्धरस्वामीके उस गानको सुनकर 'संसारमें अनुपमेय इस गानको क्या किन्नर गा रहे हैं ? या मनुष्य गा रहे हैं ? या देव गा रहे हैं' इस प्रकार जो अत्यन्त आश्चर्य धारण कर रही थी, जो नेत्रोंको चारों ओर प्रेरित कर रही थी और वहाँ सभी जगह जो जीवन्धरस्वामीको छोड़ अन्य किसीको नहीं देख रही थी ऐसी वैश्यपतिकी पुत्री सुरमंजरी मन्त्रको सिद्ध करनेवाले उस वृद्धको ही गायक समझ सखियोंके साथ उसके समीप गयी । जाकर उसने पूछा भी कि 'यद्यपि आपका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया है तथापि आपका यह गान प्रत्यक्ष कामदेव जीवन्धरकुमारका स्मरण करा रहा है । हे विद्वन् ! यह निर्दोष गान विद्या आपने किससे प्राप्त की है ? जिसकी कि सामर्थ्यसे इस वृद्धावस्थामें भी समस्त लोगोंके श्रवण करनेके योग्य यह दिव्य गान आपको प्राप्त है ? आपके पास अन्य अभिलषित वस्तुको भी प्राप्त करनेका उपाय होगा ? यदि यह बात गोपनीय नहीं है तो मुझे यहाँ उत्तर प्राप्त होना चाहिए ।' सुरमंजरीके प्रश्नसे जिनका हर्ष बढ़ रहा था ऐसे वृद्ध वेष-

दिव्यगीतिः । भवत्यपि नामान्यदप्यभीप्सितमुपलब्धुमुपायोऽस्ति । न चेदिदं गोप्यमत्र प्राप्यमुत्तरम्' इति । तदनुयोगसंवर्धितहर्षः स वर्षीयानपि वार्द्धकमुन्नाटयन्नुपधानात्कथंचित्किंचिदुद्धृतोत्तमाङ्गः प्रक्षीणपक्ष्मकमक्षियुगमप्यतिप्रयासादिवोन्मील्य कफावगुण्ठितकण्ठलाघव इव मुहुः खाट्कृत्य घर्घरेण स्वरेण स्वमनीषितोत्पादनमौपयिकमुपचक्रमे वक्तुम्—'बाले, हेलया गानमिदं साध्यम् । असाध्यमन्यदपि हस्तस्थं पश्य विश्वस्य मद्वचनमनुष्ठातुं यदि नाम पटिष्ठासि' इति ।

§ २२४. तद्वचनवञ्चितया सुरमञ्जर्याप्यञ्जलिबन्धेन 'बन्धुप्रिय, को नाम वराको जनः परहितपरैराख्याते वचसि वैमुख्यमुद्वहति ।' इति सदैन्यं सप्रश्रयं च प्रणीतः पुनरयं प्रणिनाय 'तर्हि श्रूयताम्[1] । इहास्ति समस्तवरदानदक्षस्य साक्षात्कृताङ्गस्य किमप्यनङ्गस्यायतनम् । अद्य

सुन्दरगीतिः । भवत्यपि स्वदयपि नामेति संभावनायाम् अन्यत् इतरद् अप्यभीप्सितमिष्टमुपलब्धुं प्राप्तुम् उपायोऽस्ति ! न चेद्यदि इदं वृत्तं गोप्यमन्तर्धानीयं तर्हि अत्र विषये उत्तरं प्राप्यं लभ्यम् इति । तस्याः सुरमञ्जर्या अनुयोगेन प्रश्नेन संवर्धितो हर्षो यस्य तथाभूतः स वर्षीयानपि वृद्धोऽपि वार्द्धकं वृद्धत्वम् उन्नाटयन् प्रकटयन् उपधानाच्छिरोधानात् कथञ्चित्केनापि प्रकारेण किञ्चिदीषद् उद्धृतमुत्तमाङ्गं शिरो येन तथाभूतः सन् प्रक्षीणे पक्ष्मणी ययोस्तथाभूतम् अक्षियुगलमपि नेत्रयुगलमपि अतिप्रयासादिव खेदातिशयादिव उन्मील्य कफेनावगुण्ठितं तिरोहितं कण्ठलाघवं गलचातुर्यं यस्य तथाभूत इव मुहुर्भूयः खाट्कृत्य खाडिति कृत्वा घर्घरेण अव्यक्तेन स्वरेण स्वमनीषितस्य स्वाभिलषितस्योत्पादनम् उपाय एवौपयिकं वक्तुं निगदितुम् उपचक्रमे तत्परोऽभूत्—'बाले ! मुग्धे ! इदं गानं हेलयानायासेन साध्यं साधयितुमर्हम् । अन्यदपीतरदपि असाध्यं कठिनं कृत्यं विश्वस्य सर्वस्य हस्तस्थं पाणिस्थं पश्य यदि मद्वचनम् अनुष्ठातुं कर्तुम् अतिशयेन पट्वीति पटिष्ठातिचतुरा असि' इति ।

§ २२४. तद्वचनेति—तस्य वचनेन वञ्चितया प्रतारितया सुरमञ्जर्यापि अञ्जलिबन्धेन पाणिपुटबन्धेन 'बन्धुप्रिय ! हे इष्टप्रिय ! को नाम वराको दयनीयो जनः परहितपरैः परकल्याणोद्यतैः आख्याते कथिते वचसि वैमुख्यं प्रातिकूल्यम् उद्वहति ।' इतीत्थं सदैन्यं सप्रश्रयं सविनयं च प्रणीतः प्राप्तोऽयं वृद्धः पुनः प्रणिनाय प्रणीतवान्—'तर्हि श्रूयतां समाकर्ण्यताम् । इह नगर्यां समस्तवराणां निखिलाभिलषितानां दाने दक्षः समर्थस्तस्य, साक्षात्कृतं प्रत्यक्षदृष्टमङ्गं शरीरं यस्य तथाभूतस्य अनङ्गस्य मीनकेतनस्य किमपि

धारी जीवन्धरने भी बुढ़ापेका अभिनय करते हुए किसी तरह तकियासे अपना सिर ऊपर उठाया, बिरूनियोंसे रहित नेत्रयुगलको भी बड़े कष्टसे मानो खोला और कफके द्वारा कण्ठका हलकापन तिरोहित होनेके कारण ही मानो उन्होंने बार-बार खकारा। तदनन्तर घर्घर स्वरसे अपने अभिलषित कार्यको उत्पन्न करनेवाले उपायको कहनेके लिए वे उद्यत हुए। वे कहने लगे कि 'हे बाले ! यह गान तो अनायास ही सिद्ध किया जा सकता है। यदि तू विश्वास कर मेरे वचनका पालन करनेके लिए समर्थ है तो अन्य असाध्य कार्य भी अपने हाथमें ही स्थित देख'।

§ २२४. उनके वचनोंसे ठगी सुरमंजरीने भी हाथ जोड़कर दीनता और विनयके साथ कहा कि 'हे बन्धुप्रिय ! ऐसा कौन दीनजन होगा जो परहितमें तत्पर रहनेवाले मनुष्योंके द्वारा कहे हुए वचनमें विमुखताको धारण करेगा?' इस प्रकार सुरमंजरीके कहनेपर जीवन्धरकुमार फिर कहने लगे 'यदि ऐसा है तो सुनो, यहाँ समस्त वरोंके देनेमें समर्थ एवं शरीर-

१. म० श्रूयताम् तर्हि ।

वा श्वो वा समुपस्थाय[1] तद्गोष्ठं यद्युपतिष्ठेथास्तमनन्यजं किमन्यदुदीर्यते कार्यत एव द्रक्ष्यसि। तत्क्षण एव कामितमखिलं स कामदेवः साधयेत्' इति। सा च स्त्रीजनसुलभचापल्याद्भवितव्यताप्राबल्याच्च 'तथा' इति प्रतिश्रुत्य प्रातरेव गन्तुमुदमनायत।

§ २२५. अथ सुरमञ्जरीपरिरम्भणपर्युत्सुकतया परिगतान्ध्यस्य जीवंधरस्य तदैकस्यामपि त्रियामायां सहस्रयामतां प्रतिपद्य कथमपि प्रयातायाम्, उदिते वृद्धेन समं सवितरि, पितरं मातरं बन्धुसमाजं च संवादयन्ती[2] समारूढशकटेन तेन कपटवृद्धेन समं समारुह्य चतुरन्तयानं सखीभिः सार्कं सा कन्यका तदनन्यजावासमाससाद। तत्र च सादरविधीयमानसपर्याविधेर्विषमेषोः संनिधौ सास्तिक्यमस्यामास्थितायामयमन्त्यवयस्क[3]स्तामामन्त्र्य 'वासु, प्रसादितोऽयमुपासना-

आयतनं मन्दिरमस्ति। अद्य श्वो वा समुपस्थाय तत्समीपं गत्वा तद्गोष्ठं कामायतनं यदि उपतिष्ठेथास्तर्हि तमनन्यजं तं कामम् अन्यत् किम् उदीर्यते। कार्यत एव द्रक्ष्यसि। तत्क्षण एव तत्काल एव स कामदेवः अखिलं कामितं मनोरथं साधयेत्।' इति। सा च सुरमञ्जरी च स्त्रीजनसुलभचापल्यात्ललनाजनसुलभचञ्चलत्वाद् भवितव्यताया नियतेः प्राबल्यं तस्माच्च 'तथा' इति प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञाय प्रातरेव प्रत्यूष एव गन्तुम् उदमनायत समुत्कण्ठितोऽभूत्।

§ २२५. अथेति—अथानन्तरं सुरमञ्जर्याः परिरम्भणे समालिङ्गने पर्युत्सुकतया समुत्कण्ठिततया परिगतं परिप्राप्तमान्ध्यं यस्य तथाभूतस्य जीवंधरस्य तदा तस्मिन् काले एकस्यामपि त्रियामायां रजन्यां सहस्रयामतां सहस्रप्रहरत्वं प्रतिपद्य लब्ध्वा कथमपि केनापि प्रकारेण प्रयातायां व्यतीतायां सत्याम्, वृद्धेन स्थविरेण समं सार्धं सवितरि सूर्ये उदिते सति, पितरं जनकं मातरं जननीं बन्धुसमाजं च सनाभिसमूहं च संवादयन्ती यथार्थं कथयन्ती समारूढं समधिष्ठितं शकटमनो येन तेन समारूढशकटेन तेन कपटेन वृद्धस्तेन मायास्थविरेण समं सार्धम्, चतुरन्तयानं शिबिकां समारुह्य सखीभिः सार्कं सा कन्यका सुरमञ्जरी स चासावनन्यजावासश्चेति तदनन्यजावासस्तम् कामदेवायतनम्, आससाद प्राप। तत्र च कामदेवायतने सादरं विधीयमानः क्रियमाणः सपर्याविधिः पूजाविधिर्यस्य तस्य विषमेषोः कामस्य संनिधौ समीपे अस्यां सुरमञ्जर्यां सास्तिक्यं सश्रद्धं यथा स्यात्तथा आस्थितायां विद्यमानायाम् अन्त्यं वयो यस्य तथावृद्धो वृद्धत्वोपेतोऽयं जीवंधरस्तां सुरमञ्जरीम् आमन्त्र्य आकार्य 'वासु! सुन्दरि! अयं पञ्चशरो मीनध्वज

को साक्षात् धारण करनेवाले कामदेवका कोई मन्दिर है। आज या कल यहाँसे उठकर यदि तू उस मन्दिरमें उपस्थित होगी तो और क्या कहा जाय कार्यरूपसे ही उस कामदेवका दर्शन करेगी। वह कामदेव उसी क्षण समस्त मनोरथको सिद्ध कर देगा'। स्त्रीजन सम्बन्धी चपलतासे अथवा होनहारकी प्रबलतासे वह सुरमंजरी 'तथास्तु' कह बड़े सबेरे ही वहाँ जानेके लिए उत्कण्ठित हो गयी।

§ २२५. तदनन्तर सुरमंजरीके आलिंगन सम्बन्धी उत्सुकतासे जिन्हें अन्धता प्राप्त हो रही थी ऐसे जीवन्धरस्वामीकी तीन पहरोंवाली वह एक रात जब हजार पहरोंवाली होकर किसी तरह व्यतीत हुई और वृद्धके साथ-साथ सूर्य उदित हो गया तब पिता, माता और बन्धुजनोंको अनुकूल करती हुई वह सुरमंजरी पालकीपर बैठकर सखियोंके साथ कामदेवके उस मन्दिरमें जा पहुँची। उस समय बनावटी वृद्ध जीवन्धरस्वामी गाड़ीपर आरूढ़ होकर उसके साथ-साथ जा रहे थे। वहाँ विधिपूर्वक जिसकी पूजा की गयी थी ऐसे कामदेवके समीप जब सुरमंजरी बड़ी श्रद्धाके साथ बैठ गयी तब वृद्ध अवस्थाको धारण करनेवाले

१. म० समुत्थाय। २. यथार्थं कथयन्ती, इति टि०। ३. क० ख० अयं वयस्कः।

प्रपञ्चेन पञ्चशरः। त्वदभिवाञ्छितं वरमसहाया स्वयमस्माद्वृणीष्व' इत्यब्रवीत्। सा च मुग्धा बद्धाञ्जलिर्बहुधा प्रणुत्य प्रद्युम्नम् 'अयि पुष्पबाण, ते बाणानेव न केवलं प्राणानपि मे प्रत्यर्पयिष्यामि यदि प्राणनाथतां प्रतिपद्येत जीवककुमारः' इति सादरं सप्रणामं च प्रार्थयामास। प्रादुरासीच्च प्रागेव पुष्पायुधसविधे स्थापितेन बुद्धिषेणेन 'लब्धवरयसि वरम्' इत्युक्तं वचः। अदर्शयच्च तावता कुमारोऽप्यवधीरितमारं निजाकारम्।

§ २२६. सा च तमवलोक्य सविस्मयस्नेहमन्दाक्षा मत्तेवोन्मत्तेव भीतेव विषण्णेव मुदितेव परवशेवानुरक्तेव स्तम्भितेव समुत्कीर्णेव विलिखितेव विद्रुतेव शून्येन्द्रियेव स्वेदजलप्लावितसर्वाङ्गयष्टिरतिनिबिडपुलकनिचिता मदनशरपञ्जरमध्यवर्तिनी स्वान्तं[1] प्रविशतः कुमारस्य

उपासनाप्रपञ्चेन सेवाविस्तारेण प्रसादितः प्रसन्नीकृतः। त्वदभिवाञ्छितं त्वदभिवाञ्छितं स्वाभिलषितं वरम् असहाया एकाकिनी सती अस्मात्पञ्चशरात् स्वयं स्वमुखेन वृणीष्व' इत्यब्रवीत्। मुग्धा मूढा सा च सुरमञ्जरी च बद्धाञ्जलिर्बद्धकरसंपुटा सती बहुधा नैकधा प्रद्युम्नं मन्मथं प्रणुत्य स्तुत्वा 'अयि पुष्पबाण! हे विषमेषो! ते तव बाणानेव शरानेव पुष्पाणीति यावत् न केवलं किन्तु मे मम प्राणानपि प्रत्यर्पयिष्यामि दास्यामि यदि जीवककुमारः प्राणनाथतां वल्लभतां प्रतिपद्येत स्वीकुर्यात्' इति सादरं सविनयं सप्रणामं सनमस्कारं च प्रार्थयामास ययाचे। प्रादुरासीच्च प्रकटीबभूव च प्रागेव तत्र गमनात्पूर्वमेव पुष्पायुधसमीपे कामाभ्यर्णे स्थापितेन निवेशितेन बुद्धिषेणेन तन्नामसख्या 'लब्धवरयसि प्राप्तासि वरम्' इत्युक्तं वचः। अदर्शयच्च प्रकटयामास च तावता कालेन कुमारोऽपि जीवंधरोऽपि अवधीरितो निन्दितो मारो मदनो येन तथाभूतं निजाकारं स्वसंस्थानम्।

§ २२६. सा चेति—सा च सुरमञ्जरी च तं जीवंधरम् अवलोक्य विस्मयस्नेहमन्दाक्षैराश्चर्यप्रणयव्रीडाभिः सह वर्तमानेति सविस्मयस्नेहमन्दाक्षा मत्तेव आरूढमदेव, उन्मत्तेव क्षीबेव, भीतेव त्रस्तेव, विषण्णेव खिन्नेव, मुदितेव प्रहृष्टेव, परवशेव परनिघ्नेव, अनुरक्तेव घनानुरागेव, स्तम्भितेव चकितेव, समुत्कीर्णेव पाषाणादौ टङ्केनोन्मुद्रितेव, विलिखितेव पत्रादौ वर्णेनाङ्कितेव, विद्रुतेव निःस्यन्दितेव, शून्येन्द्रियेव विचित्तेव, स्वेदजलेन प्लाविता सर्वाङ्गयष्टिर्निखिलशरीरयष्टिर्यस्यास्तथाभूता अतिनिबिडैरतिसान्द्रैः पुलकै रोमाञ्चैर्निचिता व्याप्ता, मदनस्य स्मरस्य शरपञ्जरो बाणशलाकायतनं तस्य मध्ये वर्तत इत्येवं

जीवन्धरस्वामीने उससे पूछकर कहा कि 'हे सुन्दरि! पूजाविधिके विस्तारसे यह कामदेव प्रसन्न है इसलिए तू अकेली जाकर इससे अपना अभिलषित वर स्वयं माँग ले'। भोलीभाली सुरमंजरीने भी हाथ जोड़ कामदेवकी बार-बार स्तुति कर 'अये कामदेव! यदि जीवन्धरस्वामी मेरी प्राणनाथताको प्राप्त हो जावें तो मैं तुम्हारे लिए न केवल तुम्हारे बाण किन्तु अपने प्राण भी अर्पित कर दूँगी' इस प्रकार बहुत ही आदर और प्रणाम पूर्वक प्रार्थना की। उसी समय, कामदेवके समीप पहलेसे बैठाये हुए बुद्धिषेणके द्वारा उच्चरित 'तू वरको प्राप्त है' यह वचन प्रकट हुए और उसी समय जीवन्धरकुमारने भी कामदेवको तिरस्कृत करनेवाला अपना आकार दिखाया।

§ २२६. उन्हें देख, आश्चर्य, स्नेह और लज्जासे युक्त सुरमंजरी मत्तके समान, उन्मत्तके समान, भयभीतके समान, खिन्नके समान, प्रसन्नके समान, परवशके समान, अनुरक्तके समान, स्तम्भितके समान, उकेरी हुईके समान, कुरेदी हुईके समान, पिघलीके समान, शून्येन्द्रियाके समान, पसीनाके जलसे तर समस्त शरीरकी धारक, अत्यन्त सघन रोमोंसे व्याप्त, कामदेवके बाणरूपी पिंजरेमें विद्यमान, तथा प्रवेश करते हुए कुमारके पैर रखनेसे ही

१. क० ख० ग० प्रान्तः प्रविशतः। प्रान्तः समीपे, इति टि०।

पादन्यासादिव स्फुरदधरपल्लवा किंकर्तव्यतामूढासीत् ।

§ २२७. ततस्तावता तयोः संगमार्हमङ्गलप्रदीप इव प्रज्वलति प्रत्यूषाडम्बरे, स्त्रीपुरुषसंयोगप्रकारप्रकटनायेव घटमाने कोकमिथुने, हुतहुताशनकुण्डायमाने स्फुटितसरोजषण्डमण्डिते सरसि मङ्गलवचनपठनाकुलेष्विव कूजत्सु कोकिलेषु, वंशस्वनानुकारिझंकारमनोहरभृङ्गवृन्दपदपातवृन्तच्युतप्रसवराजिमाचारलाजानिव विलासिनीषु विकिरन्तीषु लतासु, तन्मिथुनमिथःसंगमपिशुनेष्विव शकुनेषु सविरावेषु, स जीवकस्वामी तादृशीं दशामनुभवन्तीमन्तर्धातुं क्षेपीयः क्षितितलादुत्क्षिप्तैकचरणामन्तःकरणेन स्थातुं प्रस्थातुं च प्रतीकेन प्रयतमानां तदाननाम्भोजमतिस्पष्टं द्रष्टुमभिवाञ्छद्दृष्टियुगं प्रकृष्टतरलज्जया बलादाकर्षन्तीमीषद्विवर्तितमुखीममर्त्य-

शीला स्वान्तं चित्तं प्रविशतः कुमारस्य पादन्यासादिव चरणनिक्षेपादिव स्फुरदधरपल्लवा प्रकम्पमानाधरकिसलया सती किंकर्तव्यतायां मूढा निर्विचारेति किंकर्तव्यतामूढा आसीत् ।

§ २२७. तत इति—ततस्तदनन्तरं तावता तावत्कालेन तयोर्जीवकसुरमञ्जर्योः संगमार्हमङ्गलप्रदीप इव समागमयोग्यमङ्गलदीप इव प्रत्यूषाडम्बरे प्रभाताडम्बरे प्रज्वलति सति, स्त्रीपुरुषयोर्दम्पत्योः संयोगस्य प्रकारो विधिस्तस्य प्रकटनायेव प्रकटीकरणायेव कोकमिथुने चक्रवाकयुगले घटमाने मिलति सति, स्फुटितानां विकसितानां सरोजानां सरसीरुहाणां षण्डेन समूहेन मण्डितं शोभितं तस्मिन् सरसि कासारे हुतः साकल्येन संतर्पितो यो हुताशनोऽग्निस्तस्य कुण्डायमाने कुण्डवदाचरति सति, कोकिलेषु पिकेषु मङ्गलवचनपठनाय मङ्गलपाठोच्चारणायाकुला व्यग्रास्तेष्विव सत्सु, विलासिनीषु वनितासु आचारलाजानिव लतासु वल्लीषु वंशस्वनानुकारिणा वेणुध्वनिविडम्बिना झङ्कारेण मनोहरा रमणीया ये भृङ्गा भ्रमरास्तेषां वृन्दस्य समूहस्य पदपातेन चरणपातेन वृन्तेभ्यश्च्युताः पतिता ये प्रसवाः पुष्पाणि तेषां राजि पङ्क्ति विकिरन्तीषु प्रक्षिपन्तीषु सतीषु, शकुनेषु विहङ्गमेषु तन्मिथुनस्य तद्दम्पत्योः संगमस्य पिशुनाः सूचकास्तथाभूतेष्विव सविरावेषु सशब्देषु सत्सु, स जीवकस्वामी तादृशीं पूर्वोक्तप्रकारां दशामवस्थाम् अनुभवन्तीम् अन्तर्धातुं तिरोभवितुं क्षेपीयः शीघ्रं क्षितितलाद्भूतलात् उत्क्षिप्तैकचरणामुत्थापितैकपादाम् अन्तःकरणेन स्थातुं प्रतीकेन अङ्गेन च प्रस्थातुं प्रयातुं प्रयतमानां प्रयत्नं कुर्वाणां तदाननाम्भोजं जीवकाननजलजम् अतिस्पष्टं यथा स्यात्तथा द्रष्टुम् अभिवाञ्छत् अभिलषद् दृष्टियुगं नयनयुगलं प्रकृष्टतरलज्जया प्रभूततरत्रपया

मानो फड़कते हुए अधरपल्लवसे सहित हो 'क्या करना चाहिए' इसका विचार करनेमें मूढ़ हो गयी।

§ २२७. तदनन्तर उतने हीमें उन दोनोंके समागमके योग्य मंगलमय दीपकके समान जब सूर्य देदीप्यमान होने लगा, स्त्री और पुरुषोंके संयोगकी विधि प्रकट करनेके लिए ही मानो चकवा-चकवियोंके युगल परस्पर मिलने लगे। खिले हुए कमलोंके समूहसे सुशोभित सरोवर जब होमी हुई अग्निके कुण्डके समान जान पड़ने लगे, मंगलमय वचनोंके पढ़नेमें आकुलके समान जब कोयलें शब्द करने लगीं, जिस प्रकार स्त्रियाँ पद्धतिके अनुसार लाईकी वर्षा करती हैं उसीप्रकार जब लताएँ बाँसुरीके शब्दका अनुकरण करनेवाली झंकारसे मनोहर भ्रमर समूहके चरणोंके पड़नेके कारण बोंडियोंसे गिरे फूलोंके समूहकी वर्षा करने लगीं, और उन दोनोंके पारस्परिक संयोगको सूचित करते हुएके समान जब पक्षी शब्द करने लगे तब जीवन्धरस्वामीने, जो उस प्रकारकी दशाका अनुभव कर रही थी, शीघ्र ही छिपनेके लिए जिसने पृथिवीतलसे एक पैर ऊपर उठा रखा था, जो अन्तःकरणसे वहाँ ठहरना चाहती थी परन्तु शरीरसे अन्यत्र जानेका प्रयत्न कर रही थी, जो जीवन्धरस्वामीके मुख कमलको

१. म० स्त्रीपुंससंयोगः ।

लोकाद्भुवमवलोकयितुमायातां सुरश्रियमिव सुरमञ्जरीम् 'मञ्जुभाषिणि, मा कृथाः प्रयाणे मतिम् । प्रमादस्खलितमस्य क्षम्यतां भुजिष्यस्य' इत्याभाष्य गाढमाश्लिष्य रमयन्नमरदुरासदसौख्यः पुनः प्रख्यातकुबेरसाम्येन कुबेरदत्तश्रेष्ठिना श्रेष्ठतमे लग्ने स्ववित्तस्य स्वचित्तोन्नतेः स्वनाम्नो वरमहिम्नश्चानुरूपमर्पितां पवनसखसाक्षिकं पर्यणेष्ट[1] ।

§ २२८. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ सुरमञ्जरीलम्भो नाम नवमो लम्भः ॥

■

बलात् प्रसभम् आकर्षन्तीम्, ईषद्विवर्तितं मुखं वक्त्रं यस्यास्ताम्, अमर्त्यलोकात् स्वर्गाद् भुवं महीम् अवलोकयितुम् आयातां सुरश्रियमिव सुरलक्ष्मीमिव सुरमञ्जरीम् 'मञ्जुभाषिणि ! हे मनोहरभाषिणि ! प्रयाणे मतिं मनीषां मा कृथाः । अस्य भुजिष्यस्य दासस्य प्रमादस्खलितमनवधानापराधः क्षम्यताम्' इति आभाष्य कथयित्वा गाढम् निबिडम् आश्लिष्य समालिङ्ग्य रमयन् क्रीडयन् अमरदुरासदं देवदुर्लभं सौख्यं यस्य तथाभूतः सन् पुनरनन्तरं प्रख्यातं प्रसिद्धं कुबेरसाम्यं धनाधिपौपम्यं यस्य तेन कुबेरदत्तश्रेष्ठिना तन्नामश्रेष्ठिना श्रेष्ठतमे प्रकृष्टतमे लग्नेऽवसरे स्ववित्तस्य स्वधनस्य स्वचित्तोन्नते निजस्वान्तौदार्यस्य स्वनाम्न आत्माभिधानस्य वरमहिम्नो जामातृमाहात्म्यस्य चानुरूपमनुकूलम् अर्पितां प्रदत्तां तां पवनसखः साक्षी यस्मिन्कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा पर्यणेष्ट पाणौ जग्राह ।

§ २२८. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ सुरमञ्जरीलम्भो नाम नवमो लम्भः ।

■

अत्यन्त स्पष्ट रूपसे देखनेकी इच्छा करनेवाले नेत्रयुगलको बहुत भारी लज्जाके कारण जबर्दस्ती खींच रही थी, जिसका मुख थोड़ा मुड़ा हुआ था, और जो पृथिवी लोकको देखनेके लिए स्वर्गसे आयी हुई देवलक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सुरमंजरीसे कहा कि 'हे मधुरभाषिणि ! जानेका विचार मत करो, इस दासका यह अपराध क्षमा किया जाय ?' इस प्रकार कह कर तथा गाढ़ आलिंगन कर उसे रमण कराते हुए देवदुर्लभ सुखको प्राप्त हुए। तदनन्तर जिसकी कुबेरके साथ समानता प्रसिद्ध थी ऐसे कुबेरदत्त सेठके द्वारा अत्यन्त श्रेष्ठ लग्नमें अपने धन, अपने चित्तकी उन्नति, अपने नाम और उत्कृष्ट महिमाके अनुरूप अर्पित की हुई सुरमंजरीको अग्निकी साक्षीपूर्वक विवाहा।

§ २२८. इस प्रकार श्रीमद्वादीभसिंह सूरिके द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें सुरमंजरीलम्भ (सुरमंजरीकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला) नौवाँ लम्भ पूर्ण हुआ।

■

1. क० ख० ग० पर्यणष्ट ।

दशमो लम्भः

§ २२९. अथायं सुमतिः सुमतिसुतायां सुरमञ्जर्यां सुमनोमञ्जर्यां चञ्चरीक इव सक्तो भवन्नभिनवकरपीडनाम्रेडितत्रपाभरदरमुकुलितमस्याः सुरतदौर्लोलित्यं[2] ललितचेष्टितैर्विमुकुलीकृत्य क्रमेण तरुणतामरसतर्जनकलाकुशललोचनमुग्धमधुरसंचारसूचितपञ्चशरसमरसंरम्भया तया सह मनसिजमहीरुहपचेलिमफलानि भवपयोधिमथनजनितसुधारसायमानानि सौभाग्यशशभृदाभिरूप्यशारददिनानि श्रवणचातकपारणपयोदजलधारायमाणानि मणितमधुरपरभृतरसितसुरभिसमयसाम्राज्यानि सरभसकचग्रहव्यतिकरविशेषितरतिविमर्दनानि निर्दयकृताधरग्रहजनित-

§ २२९. अथायमिति—अथ सुरमञ्जरीपाणिग्रहणानन्तरम् सुमतिः सुबुद्धिरयं जीवंधरः सुमतेः कुबेरदत्तभार्यायाः सुता तस्यां सुरमञ्जर्यां पूर्वोक्तायां सुमनोमञ्जर्यां पुष्पमञ्जर्यां चञ्चरीक इव भ्रमर इव सक्तो निलीनो भवन् अभिनवकरपीडनेन नूतनविवाहेनाम्रेडितो द्विगुणितो यस्त्रपाभरो लज्जासमूहस्तेन दरमीषद् यथा स्यात्तथा मुकुलितं कुड्मलितं मन्दीभूतमिति यावत् अस्याः सुरमञ्जर्याः सुरतदौर्लोलित्यं संभोगस्यानुकूलाभावत्वं ललितचेष्टितैः सुन्दरचेष्टितैर्विमुकुलीकृत्य दूरीकृत्य क्रमेण तरुणतामरसयोः प्रफुल्लकमलयोस्तर्जनकलायां तिरस्करणकलायां कुशले विदग्धे ये लोचने तयोर्मुग्धमधुरसंचारैः सूचितः पञ्चशरस्य प्रद्युम्नस्य समरसंरम्भरणोद्योगो यया तथाभूतया तया सुरमञ्जर्या सह मनसिजमहीरुहस्य कामानोकहस्य पचेलिमानि पक्तुमर्हाणि च तानि फलानि चेति मनसिजमहीरुहपचेलिमफलानि, भव एव पयोधिः भवपयोधिः संसारसागरस्तस्य मथनेन विलोडनेन जनितः समुत्पन्नो यः सुधारसः पीयूषरसस्तद्वदाचरन्तीति तथा, सौभाग्यमेव शशभृच्चन्द्रस्तस्याभिरूप्याय शारददिनानि शरदृतुदिनानि, श्रवणचातकयोः कर्णसारङ्गयोः पारणाय तृप्तिकरभोजनाय पयोदजलस्य वारिदवारिणो धारा इवाचरन्तीति तथा, मणितं सुरतशब्द एव मधुरपरभृतरसितं कोकिलकलकूजनं तस्मै सुरभिसमयस्य वसन्तसमयस्य साम्राज्यानि, सरभसेन सवेगेन कचग्रहव्यतिकरेण केशग्रहव्यापारेण विशेषितं वृद्धिंगतं रतिविमर्दनं सुरतविमर्दनं येषु तानि, निर्दयं यथा स्यात्तथा

§ २२९. अथानन्तर सुबुद्धिके धारक जीवन्धर कुमार सुमतिकी पुत्री सुरमंजरीमें उस प्रकार आसक्त हो गये जिस प्रकार कि पुष्पमंजरीमें भ्रमर आसक्त होता है। सुरमंजरीका संभोग-सुख नूतन विवाहके कारण पुनरुक्त लज्जाके समूहसे कुड्मलित हो रहा था उसे जीवन्धर कुमार सुन्दर आलिंगनोंसे विकसित करते हुए क्रम-क्रमसे तरुण कमलको डाँट दिखानेकी कलामें कुशल नेत्रोंके सुन्दर एवं मधुर संचारसे जिसके कामसम्बन्धी युद्धका प्रारम्भ सूचित हो रहा था ऐसी उस सुरमंजरीके साथ उन संभोग-सुखोंका अनुभव करने लगे कि जो कामरूपी वृक्षके पकनेके योग्य फल थे, संसाररूपी समुद्रको मथनेसे उत्पन्न अमृत रसके समान आचरण करते थे, सौभाग्यरूपी चन्द्रमाकी सुन्दरताको बढ़ानेके लिए शरद् ऋतुके दिन थे, कानरूपी चातक पक्षियोंकी पारणाके लिए मेघकी जलधाराके समान आचरण करते थे, संभोगकालीन शब्दरूपी कोयलके मधुर शब्दके लिए वसन्तऋतु सम्बन्धी साम्राज्यके समान थे, वेगपूर्वक एक-दूसरेके केश ग्रहणकी क्रियासे जिनमें रतिसम्बन्धी विमर्दन विशेषताको प्राप्त हो रहे थे, निर्दयतापूर्वक अधरोष्ठके ग्रहणसे जिनमें पीड़ा उत्पन्न हो रही थी,

---

१. क० ख० ग० त्रपाचारदर-। २. अनुकूलाभावत्वम्, इति टि०। ३. म० चेष्टितैः।

वेदनानि विधूतकरकमलरणितकनकवलयवल्गुरवनिवेदितमदनमहिमव्याख्यानि सुरतसौख्यान्यनुभूय पुनः स्पृहणीयभूयम्[1] 'एवं प्राप्तामपि त्वां करणीयभूयस्तया विहाय विलासिनि, त्वद्विरहविभावसुशिखाकलापकलनेन कष्टतमानि कतिचन दिनानि कर्तुमभिवाञ्छति जनोऽयम्' इत्याचष्ट।

§ २३०. तदनु तां तनूदरीं विरहपिशुनवचनतनूनपादाश्लेषप्लुष्टाङ्गयष्टितया विसृष्टप्रायप्राणां तत्प्रयाणं कार्यगरिम्णा पतिप्रेम्णा च[2] विहन्तुमनुमन्तुमप्यपारयन्तीमसकृदाश्वास्य कथंचिद्विसृज्य गतोऽयं विजयापुत्रः स्वमित्रैरतिमात्रं सौभाग्यशालितया श्लाघ्यमानः स्वभवनमियाय। तत्र च चिरविरहितमालोक्यात्मजमभिन्नक्षणोद्भवदानन्दाभिषङ्गसंभूततया समशी-

कृतेनाधरग्रहेण दशनच्छदखशनेन जनिता समुत्पादिता वेदना येषु तानि, विधूतेन कम्पितेन करकमलेन रणिताः शब्दिता ये कनकवलयाः स्वर्णकटकास्तेषां वल्गुरवेण सुन्दरशब्देन निवेदिता सूचिता मदनमहिम्नो मारमाहात्म्यस्य व्याख्या येषु तानि, सुरतसौख्यानि संभोगशातानि अनुभूय पुनस्तदनन्तरं स्पृहणीयभूयं स्पृहणीयाधिक्यं यथा स्यात्तथा 'एवं अनङ्गना चातुर्येण प्राप्तामपि लब्धामपि त्वां करणीयभूयस्तया कार्याधिक्येन विहाय त्यक्त्वा विलासिनि ! हे विभ्रमवति ! अयं जनः, अहमिति भावः त्वद्विरह एव विभावसुरग्निस्तस्य शिखाकलापकलनेन ज्वालाजालप्राप्त्या कष्टतमानि सातिशयकष्टकराणि कतिचन दिनानि कर्तुं विधातुम् अभिवाञ्छति कामयते' इतीत्थम् आचष्ट कथयामास।

§ २३०. तदन्विति—तदनु तदनन्तरं तनूदरीं कृशोदरीं विरहस्य विप्रलम्भस्य पिशुनं सूचकं यद्वचनं तदेव तनूनपादग्निस्तस्याश्लेषेण समालिङ्गनेन प्लुष्टा दग्धाङ्गयष्टिः शरीरयष्टिर्यस्यास्तस्या भावस्तया विसृष्टप्रायास्त्यक्तप्रायाः प्राणा यस्यास्तां कार्यस्य गरिमा तेन कार्यगौरवेण पतिप्रेम्णा च वल्लभानुरागेण च तत्प्रयाणं पतिप्रयाणं विहन्तुं निरोद्धुम् अनुमन्तुं समर्थयितुमपि अपारयन्तीमशक्नुवानां तां सुरमञ्जरीम् असकृत् अनेकवारम् आश्वास्य सान्त्वयित्वा कथंचित् केनापि प्रकारेण विसृज्य त्यक्त्वा गतोऽयं विजयापुत्रो जीवकः स्वमित्रैः स्वकीयसुहृद्भिः अतिमात्रं प्रभूततरं सौभाग्यशालितया सौभाग्यशोभित्वेन श्लाघ्यमानः प्रशस्यमानः सन् स्वभवनम् इयाय प्रापत्। तत्र च स्वभवने च चिरविरहितं दीर्घकालवियुक्तम् आत्मजं पुत्रम् आलोक्य दृष्ट्वा अभिन्नक्षणे युगपदेवोद्भवन्तौ यावानन्दाभिषङ्गौ हर्षपराभवौ ताभ्यां संभूततया समुत्पन्नत्वेन

और हिलाये हुए कर-कमलोंकी खनकती हुई स्वर्णमय चूड़ियोंके सुन्दर शब्दसे जिनमें कामकी महिमाकी व्याख्या सूचित हो रही थी। इस प्रकार संभोग-सुखोंका अनुभव कर पुनः अभिलाषाकी अधिकताको प्रकट करते हुए जीवन्धर कुमार सुरमंजरीसे बोले कि 'हे विलासिनि ! इस तरह तुम यद्यपि कष्टसे प्राप्त हुई हो तथापि कार्यकी अधिकतासे तुम्हें छोड़कर यह जन अपने कुछ दिनोंको तुम्हारी विरहाग्निकी ज्वालाओंके समूहमें पड़नेसे अत्यन्त कष्टरूप करना चाहता है'।

§ २३०. तदनन्तर विरह-सूचक अग्निके आलिंगनसे शरीररूप यष्टिके जल जानेसे जिसके प्राण प्रायः छूट चुके थे और जो कार्यकी गुरुताके कारण उनके प्रयाणको न तो रोकनेमें ही समर्थ थी और न उसकी अनुमोदना करनेमें ही दक्ष थी ऐसी सुरमंजरीको बार-बार आश्वासन देकर तथा किसी तरह छोड़कर विजया रानीके पुत्र जीवन्धरकुमार अत्यधिक सौभाग्यशाली होनेके कारण मित्रजनोंसे प्रशंसित होते हुए अपने घर गये। वहाँ चिरकालसे बिछुड़े पुत्रको देखकर एक ही साथ उत्पन्न होनेवाले आनन्द और पराभवसे उत्पन्न होनेके

१. आधिक्यमिति टि०। २. म० कार्यगरिम्णा च।

तोष्णेन बाष्पवर्षेण स्नपयन्तीं सुनन्दाममन्दमिवानन्दीभूतं गन्धोत्कटं च सकलजगद्वन्द्योऽयमभिवन्द्य सनाभिसमाजमपि चतुराश्लेषेण मधुरनिरीक्षणेन शिरःकम्पेन गिरः प्रदानेन दरस्मितेन करप्रचारेण च प्रीणयन् प्रियवल्लभामायल्लकायत्तां गन्धर्वदत्तां म्लानमालामिव गुणमालां च संलापसहस्रै-रुल्लाघयन्स्वयमप्युल्लोकहर्षः पुनरुद्धर्षमयेषु केषुचिद्वासरेषु निर्वासितेषु निजस्वान्तगतं गन्धोत्कटेन समं मन्त्रयित्वा मातुलस्य महाराजस्य विदेहाख्यया विख्यातं विषयं प्रति प्रस्थाने मतिमकरोत् ।

§ २३१. अथ यात्रार्हपवित्रलग्ने पवित्रकुमारः पद्ममुखप्रमुखैः प्रियसखैरनुजेनाप्यनुप्लुतः प्रबलभटघटाटोपभायित[1]प्रतिपक्षः प्रक्षरदस्रबिन्दुसेकेन मन्दयन्तीमिव मार्गोष्णं सुनन्दां गन्धोत्कटबन्धु-

समशीतोष्णेन समशिशिरोष्णेन बाष्पवर्षेणाश्रुवर्षेण स्नपयन्तीमभिषिञ्चन्तीं सुनन्दां मातरम्, अमन्दमिवा-नल्पमिव 'मूढाल्पापटुनिर्भाग्या मन्दाः स्युः' इत्यमरः, आनन्दीभूतं प्रमोदात्मकं जातं गन्धोत्कटं च वैश्य-पतिं च सकलेन जगता भुवनेन वन्द्यो नमस्करणीयोऽयं जीवंधरः अभिवन्द्य नमस्कृत्य सनाभिसमाजमपि सहोदरसमूहमपि चतुराश्लेषेण चतुरालिङ्गनेन, मधुरनिरीक्षणेन प्रियावलोकनेन शिरःप्रकम्पेन मूर्धव्याधूननेन, गिरो वाण्याः प्रदानेन वितरणेन वार्तालापेनेति यावत्, दरस्मितेन किंचिन्मन्दहसितेन करप्रचारेण च हस्त-संचालनेन च प्रीणयन् संतोषयन्, आयल्लकायत्तां मदनकदनखेदनिघ्नां प्रियवल्लभां प्रियपत्नीं गन्धर्वदत्तां म्लानमालामिव म्लानस्रजमिव गुणमालां च संलापसहस्रैः बहुभिर्वार्तालापैः उल्लाघयन् नीरोगां कुर्वन्, स्वयमपि स्वतोऽपि उल्लोकहर्षः सीमातीतप्रमोदः सन्, पुनरनन्तरम् उद्धर्षमयेषु समुत्कटहर्षयुक्तेषु केषुचित् वासरेषु दिवसेषु निर्वासितेषु निर्गमितेषु सत्सु निजस्वान्तगतं स्वान्तःकरणस्थितं तत्त्वमिति शेषः गन्धोत्कटेन वैश्यपतिना समं सार्धं मन्त्रयित्वा विमृश्य मातुलस्य मामस्य महाराजस्य विदेहाख्यया तन्नाम्ना विख्यातं प्रसिद्धं विषयं जनपदं प्रति प्रस्थाने मतिं मनीषाम् अकरोत् ।

§ २३१. अथ यात्रेति—अथ गोविन्दमहाराजेन समं विचार-विमर्शानन्तरं यात्रार्हश्चासौ पवित्र-लग्नश्चेति यात्रार्हपवित्रलग्नस्तस्मिन् यात्रायोग्यपवित्रानेहसि पवित्रकुमारो जीवंधरः पद्ममुखः प्रमुखो येषां तैः पद्ममुखप्रमुखैः पद्मास्यादिभिः प्रियाश्च ते सखायश्चेति प्रियसखास्तैः, अनुजेनापि नन्दाढ्ये-नापि अनुप्लुतः समनुगतः प्रबलभटानां सबलयोधानां घटायाः समूहस्याटोपेन विस्तारेण भायितो भीतियुक्तीकृताः प्रतिपक्षाः शत्रवो येन तथाभूतः, प्रक्षरतामस्रबिन्दूनामश्रुशीकराणां सेकेन सेचनेन मार्गोष्णं

कारण समशीतोष्ण अश्रुवर्षासे नहलानेवाली सुनन्दाको तथा अमन्द आनन्दरूप परिणत हुए गन्धोत्कटको सकल जगत्के द्वारा वन्दनीय जीवन्धर कुमारने अच्छी तरह नमस्कार किया एवं भाइयोंके समूहमें भी किसीको चतुर आलिंगनसे, किसीको मधुर अवलोकनसे, किसीको शिर हिलानेसे, किसीको वाणीके देनेसे, किसीको मन्द मुसक्यानसे और किसीको हाथके संचारसे सन्तुष्ट किया। विरहोत्कण्ठाकी वशीभूत गन्धर्वदत्ता और मुरझायी मालाके समान गुणमालाको हजारों प्रकारके वार्तालापोंसे स्वस्थ करते हुए जीवन्धर स्वामी स्वयं भी साति-शय हर्षसे युक्त हुए। तदनन्तर जब हर्षसे भरे हुए कितने ही दिन निकल गये तब उन्होंने अपने हृदयकी बातको गन्धोत्कटके साथ सलाह कर अपने मामा गोविन्द महाराजके विदेह नामसे प्रसिद्ध देशकी ओर प्रस्थान करनेकी बुद्धि की।

§ २३१. तदनन्तर यात्राके योग्य पवित्र लग्नके आनेपर जो पद्ममुख आदि प्रिय मित्रों और छोटे भाईसे सहित थे तथा अत्यधिक बलवान् योद्धाओंके घटाटोपसे जिन्होंने शत्रुको भयभीत कर दिया था ऐसे जीवन्धर कुमार, झरती हुई अश्रुबिन्दुओंके सेकसे जो मार्गकी गरमीको मानो मन्द कर रही थी ऐसी माता सुनन्दाको, पिता गन्धोत्कटको और भाइयोंके

---

१. भीतियुक्त इति टि० ।

निवहं च प्रयत्नतः प्रतिनिवर्त्य निरगात्। आपच्च पुनरापदामापदमविरहितसंपदा संपादयन्तं कुक्कुट-संपात्यग्रामपुरभासिनम्, फलभारावनम्रतया समृद्धिमतामपि विनयावनम्रत्वमतीव शोभाकरमितीव दर्शयद्भिः शालिभिः शालिनम्, विजृम्भमाणपूगकेसरामोदामोदितदशदिशाभोगम्, परिपाकपिशङ्गेक्षु-काण्डस्फुटितविकीर्णमुक्तानिकरैस्तारकितमिव तारापथमधः संदर्शयन्तम्, प्रशस्तमणिमयसमस्त-प्रदेशतया सर्वतः समुत्थितेन निजतेजःप्रसरेण कबलयन्तमिव त्रिलोकीम्, राज्यलक्ष्मीभिरिव डिण्डीरपिण्डपाण्डुरपुण्डरीकमण्डिताभिः कृशोदरीभिरिव लोलकल्लोलवलिविलसदुदराभिः पञ्चम-

वत्मातपं मन्दयन्तीमिव अल्पं कुर्वन्तीमिव सुनन्दां गन्धोत्कटस्य बन्धुनिवहः परिजनसमूहस्तं च प्रयत्नतः प्रतिनिवर्त्य निवृत्तं कृत्वा निरगात् निर्जगाम । आपच्च समासदच्च विदेहाख्य इति विश्रुतं प्रसिद्धं जनपदं देशम् । अथ तस्यैव विशेषणान्याह—पुनरापदामिति—पुनरनन्तरम् अविरहिता शश्वत्संनिहिता या सम्पद् तया आपदामापत्तीनाम् आपदं विपत्तिं संपादयन्तं कुर्वन्तम्, कुक्कुटैश्चरणायुधैः संपात्यानि प्राप्याणि यानि ग्रामपुराणि निगमनगराणि तैर्भासते शोभत इत्येवंशीलम्, फलभारेण कणिशसमूहेनावनम्रतयातिविनतत्वेन समृद्धिमतामपि संपन्नानामपि विनयावनम्रत्वं प्रश्रयविनतत्वम् अतीव शोभाकरं शोभाधायकम् इतीत्थं दर्शयद्भिरिव प्रकटयद्भिरिव शालिभिर्धान्यैः शालिनं शोभिनम्, विजृम्भमाणेन वर्धमानेन पूगकेसरस्य घोण्टाक-किंजल्कस्यामोदेन सुरभिणा आमोदितः सुरभीकृतो दशदिशानां दशकाष्ठानामाभोगो विस्तारो यस्मिंस्तम्, परिपाकेन परिणामेन पिशङ्गाः पीतवर्णा ये इक्षुकाण्डा पौण्ड्रदण्डास्तेभ्य आदौ स्फुटिता विदीर्णाः पश्चाद् विकीर्णाः प्रक्षिप्ता ये मुक्तानिकरा मौक्तिकसमूहास्तैः तारकाः संजाता यस्मिंस्तद्वद् तारकितमिव सनक्षत्रं तारापथं गगनम् अधो नीचैः संदर्शयन्तं प्रकटयन्तम्, प्रशस्तमणीनां विकारा इति प्रशस्तमणिमयास्तथा-भूताः समस्ताः प्रदेशा यस्मिंस्तस्य भावस्तया सर्वतः परितः समुत्थितेन समुत्पतितेन निजतेजःप्रसरेण स्वकीयदीप्तिसमूहेन त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी ताम् भुवनत्रयं कवलयन्तमिव ग्रसयन्तमिव, राज्यलक्ष्मीभिरिव राज्यश्रीभिरिव डिण्डीरपिण्ड इव फेनसमूह इव पाण्डुरं धवलं यत् पुण्डरीकं छत्रं तेन मण्डिताः शोभितास्ताभिः पक्षे डिण्डीरपिण्डेन फेनसमूहेन पाण्डुरैः शुक्लैः पुण्डरीकैः सितसरोरुहैर्मण्डिता-स्ताभिः, कृशोदरीभिरिव कामिनीभिरिव लोलकल्लोला इव चपलतरङ्गा इव वलयो नाभेरधस्ताद्विद्यमाना उदररेखास्ताभिर्विलसन् शोभमान उदरो जठरं यासां ताभिः पक्षे लोलकल्लोला चञ्चलतरङ्गा वलय इवेति

समूहको प्रयत्नपूर्वक लौटाकर नगरसे बाहर निकले। और क्रम-क्रमसे चलते हुए विदेह नामसे प्रसिद्ध उस देशमें जा पहुँचे कि जो सदा स्थित रहनेवाली सम्पदासे आपत्तियोंको भी आपत्ति प्राप्त कराता था। कुक्कुट सम्पात्य—पास-पासमें बसे हुए ग्राम और नगरोंसे सुशो-भित था। फलोंके भारसे नम्रीभूत होनेके कारण 'समृद्धिशाली लोगोंका भी विनयसे नम्रीभूत रहना अत्यन्त शोभाको बढ़ानेवाला है' यह दिखाते हुएके समान स्थित धानके पौधोंसे सुशो-भित था। सुपारी और मौलश्रीके वृक्षोंकी बढ़ती हुई सुगन्धिसे जहाँ दशो दिशाओंके मैदान सुगन्धित हो रहे थे। पक जानेके कारण पीले-पीले दिखनेवाले ईखके दण्डोंके चटक जानेसे बिखरे हुए मोतियोंसे जो ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओंसे व्याप्त आकाशको ही नीचे दिखला रहा हो। उत्तमोत्तम मणिमय समस्त प्रदेशोंके होनेसे जो सब ओर उठे हुए अपने तेजके समूहसे तीनों लोकोंको मानो ग्रस्त ही कर रहा था। उन नदियोंसे जहाँ धान्यरूप सम्पदा निरन्तर उत्पन्न होती रहती थी कि जो राज्यलक्ष्मीके समान फेनके समूहसे शुक्ल-सफेद कमलोंसे सुशोभित थीं (पक्षमें फेनसमूहके समान सफेद छत्रोंसे सुशोभित थीं)। कृशोदरी स्त्रियोंके समान जिनके मध्य भाग (पक्षमें उदर) चंचल तरंगरूपी त्रिवलियोंसे

१. म० पाण्डर- ।

कालप्रपञ्चमिथ्यात्वपद्धतिभिरिवान्तर्भ्रान्तबहुजलाभिर्बहुविदेहभूमिभिर्बहुवयःसमेताभिः सिन्धुभिः संततसंभूष्णुसस्यसंपदम्, महाराजमिव महावाहिनीसंवर्धितैश्वर्यं परिहृतपरप्रार्थितया ततोऽपि परार्घ्यम्, जिनदीक्षाविधिमिवापेक्षिताखिलसौख्यसंपादनमनिर्वाणानन्दहेतुतया ततोऽप्यभिनन्दनीयम्, पण्यरमणीलावण्यमिव सर्वजनसाधारणरमणीयभोगप्रदम्, जरोपरोधविधुरतया ततोऽपि श्लाघनीयम्, पद्मालयापतिभिरप्यकृष्णैर्वृषचारिभिरप्यरुद्रैः कलाधरैरप्यकलङ्कैरधिकवीर्यैरपि स्ववशेन्द्रियै-

कोमलकल्लोलवलयस्ताभिः विलसन् उदरो मध्यभागो यासां ताभिः, पञ्चमकाले दुःषमाभिधाने प्रपञ्चो विस्तारो यासां तथाभूता या मिथ्यात्वपद्धतयो मिथ्यात्वमार्गास्ताभिरिव अन्तर्भ्रान्ता मध्ये संशययुक्ता बहवो जडा मूर्खा यासु ताभिरिव पक्षे अन्तर्भ्रान्तं मध्ये भ्रमणशीलं बहुजलं प्रभूततोयं यासु ताभिरिव श्लेषात् डलयोरभेदः, विदेहभूमीनां प्रकाराः सदृश इति बहुविदेहभूमयस्ताभिः बहु-कोटीवर्षपूर्वप्रमितं वयोऽवस्था तेन समेताभिः सहिताभिः पक्षे बहूनि प्रचुराणि यानि वयांसि पक्षिणस्तैः समेताभिः सिन्धुभिर्नदीभिः संततं शश्वत् संभूष्णुः संभवनशीला सस्यसम्पद् व्रीहिसम्पत्तिर्यस्मिंस्तम् श्लेषोपमा महाराजमिव महावाहिनीभिर्महानदीभिः पक्षे महासेनाभिः संवर्धितमैश्वर्यं यस्य तम्, परिहृतं परित्यक्तं परप्रार्थितं परप्रार्थनं पराभिगमनं वा यस्मिंस्तस्य भावस्तया ततोऽपि महाराजादपि परार्घ्यं श्रेष्ठं महाराजः परप्रार्थितेन पराभिगमनेन सहितो विदेहस्तु तेन रहित इति व्यतिरेकः, जिनस्य तीर्थंकरस्य दीक्षाविधिर्जिनदीक्षाविधिस्तद्वद् अपेक्षितस्याभिवाञ्छितस्याखिलसौख्यस्य निखिलशर्मणः संपादनं प्रापयितारम् अनिर्वाणोऽविनष्टो य आनन्दस्तस्य हेतुतया पक्षे निर्वाणं मोक्षस्तस्यानन्दस्य हेतुतया ततोऽपि जिनदीक्षाविधेरपि अभिनन्दनीयं प्रशंसनीयं जिनदीक्षाविधिः निर्वाणानन्दहेतुरयं त्वनिर्वाणानन्दहेतुरिति व्यतिरेकः, पण्यरमणी वेश्या तस्या लावण्यमिव सौन्दर्यमिव सर्वजनसाधारणा निखिललोकसाधारणा रमणीया मनोहराश्च ये भोगाः पञ्चेन्द्रियविषयाः पक्षे संभोगास्तान् प्रददातीति सर्वजनसाधारणरमणीयभोगप्रदम् जराया वृद्धताया उपरोधेन विधुरतया रहिततया ततोऽपि पण्यरमणीलावण्यादपि श्लाघनीयं प्रशंसनीयं पण्यरमणीलावण्यं जराया उपरोधेन सहितं विदेहस्तु तेन रहित इति व्यतिरेकः, पद्मालयापतिभिरपि लक्ष्मीपतिभिरपि अकृष्णैर्मुकुन्दभिन्नैरिति विरोधः पक्षे सम्पत्तिस्वामिभिरपि अकृष्णैर्गौरैरिति परिहारः, वृषेण वृषभवाहनेन चरन्तीत्येवंशीला वृषचारिणस्तथाभूतैरपि अरुद्रैरशिवैरिति विरोधः पक्षे वृषचारिभिर्धर्मचारिभिरपि अरुद्रैरकठिनैः

सुशोभित थे और पंचम कालके प्रपंचपूर्ण मिथ्यात्वके मार्गके समान जो अन्तर्भ्रान्त जला—भीतर घूमते हुए बहुत भारी जलसे सहित थीं (पक्षमें भीतर भ्रममें पड़े हुए मूर्ख मनुष्योंसे सहित थीं) विदेह देशकी बहुत भूमिको घेरनेवाली थीं (पक्षमें ?) और अनेक पक्षियोंसे सहित थीं (पक्षमें) जो यद्यपि महाराजके समान बड़ी-बड़ी नदियोंसे बढ़ते हुए ऐश्वर्यसे सहित था (पक्षमें बड़ी-बड़ी सेनाओंसे बढ़ते हुए ऐश्वर्यसे सहित था तथापि परिहृत परप्रार्थी होनेके कारण उससे भी कहीं श्रेष्ठ था। अर्थात् महाराज तो परप्रार्थी—शत्रुके सम्मुख अभियान करनेवाला होता है परन्तु वह देश परप्रार्थी—दूसरेसे प्रार्थना करनेवाला नहीं था इसलिए महाराजसे भी अधिक विशेषता रखता था। जो यद्यपि जिनदीक्षाकी विधिके समान अभिलषित समस्त सुखोंको प्राप्त करानेवाला था तथापि अनिर्वाण—नष्ट नहीं होनेवाले (पक्षमें निर्वाण—मोक्ष थे) आनन्दका कारण होनेके कारण उससे भी अधिक प्रशंसनीय था। जो यद्यपि वेश्याके सौन्दर्यके समान समस्त मनुष्योंके लिए समान सुन्दर भोगोंको देनेवाला था। तथापि जराके उपरोधसे रहित होनेके कारण उससे भी अधिक प्रशंसनीय था। जो उन निवास करनेवाले मनुष्योंसे सहित होनेके कारण विदेह इस नामसे प्रसिद्ध था कि जो लक्ष्मीके पति होकर भी कृष्ण नहीं थे (पक्षमें श्याम वर्ण नहीं थे), वृषचारी—बैलपर बैठकर गमन करनेवाले (पक्षमें धर्मके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाले) होकर भी रुद्र नहीं थे

श्चरमदेहप्रायैर्निवासिजनैराश्रिततया विदेहाख्य इति विश्रुतं जनपदम् ।

§ २३२. तदनु चायं महाभागो विदितभागिनेयागमनमुदितेन राज्ञा मुहुराज्ञप्तैर्जानपदैः पदे पदे स्वपदानुगुणं प्रमदभरेण प्रतिगृह्य प्रदर्श्यमानानि[1] मणिमौक्तिकमलयजप्रभृतीनि प्राभृतानि प्रेक्षमाणः प्रतिप्रसादवितरणप्रीणितलोकः पुनरुल्लोकलोककोलाहलमुखरितहरितं हरिताश्वरथनिरोधनकर्मकर्मण्यहर्म्यावलीमिषेणानिमेषवृन्दारकदारणकुशलकुलिशपतनाकुलकुलशिलोच्चयैरभयस्थानतयेवाश्रिताम्, श्रियमिवाश्रितजनाभीष्टार्थपुष्टिकरीमबहुवल्लभात्वेन ततोऽपि बहुमताम्, सागरवेलामिव

कलाधरैरपि मृगाङ्कैरपि अकलङ्कैः कलङ्करहितैरिति विरोधः पक्षे वैदग्धीधरैरपि कालुष्यरहितैः, अधिकवीर्यैरपि प्रभूतशुक्रैरपि स्ववशेन्द्रियैः स्वाधीनमेहनैरिति विरोधः पक्षे प्रभूतपराक्रमैरपि स्वाधीननेत्रादिहृषीकैः, विरोधाभासः, चरमदेहप्रायैर्बाहुल्येन तद्भवमोक्षगामिभिः, निवासिजनैः आश्रिततया अधिष्ठिततया विगतो देहो यस्मिन्निति विदेहः स आख्या नाम यस्य तथाभूतं जनपदम् ।

§ २३२. तदनु चायमिति—तदनु तदनन्तरञ्च अयं महाभागो महानुभावो जीवंधरो विदितं विज्ञातं यद् भागिनेयस्य भगिनीसुतस्यागमनं तेन मुदितो हृष्टस्तेन राज्ञा गोविन्दमहाराजेन मुहुर्भूयः आज्ञप्तैः प्राप्तसूचनैः जानपदैर्जनपदाध्यक्षैः पदे पदे प्रतिस्थानं स्वपदानुगुणं निजपदानुकूलं प्रमदभरेण हर्षसमूहेन प्रतिगृह्य अभ्येत्य स्वीकृत्य प्रदर्श्यमानानि प्रकटीक्रियमाणानि मणिमौक्तिकमलयजप्रभृतीनि रत्नमुक्ताफलचन्दनादीनि प्राभृतान्युपायनानि प्रेक्षमाणो विलोकमानः प्रतिप्रसादस्य प्रत्युपहारस्य वितरणेन दानेन प्रीणिताः संतर्पिता लोका येन तथाभूतः सन्, पुनरनन्तरम् उल्लोकेन सीमातीतेन लोककोलाहलेन जनकलकलरवेण मुखरिता वाचालिता हरितो दिशो यस्यां ताम्, हरिताश्वस्य सूर्यस्य रथस्य निरोधनकर्मणि निरोधकार्ये कर्मण्या निपुणा हर्म्यावली प्रासादपङ्क्तिस्तस्यामिषेण समुत्तुङ्गसदनव्याजेनेति यावत् अनिमेषवृन्दारकस्य देवश्रेष्ठस्य शक्रस्य दारणकुशलं भेदनपटु यत् कुलिशं वज्रं तस्य पतनेन आकुला भीता ये कुलशिलोच्चयाः कुलाचलास्तैः अभयस्थानतयेव निर्भयधामत्वेनेव आश्रितां सेविताम्, श्रियमिव लक्ष्मीमिव आश्रितजनानां शरणापन्नानामभीष्टार्थस्याभिप्रेतार्थस्य पुष्टिकरीम् उभयत्र समानां किन्तु अबहुवल्लभात्वेन बहुस्वामिरहितत्वेन ततोऽपि श्रीतोऽपि बहुमतां श्रेष्ठां श्रीर्बहुवल्लभा राजधानीत्वबहुवल्लभेति व्यतिरेकः,

(पक्षमें क्रूर परिणामी नहीं थे) जो कलाधर—चन्द्रमा (पक्षमें कलाओंके धारक) होकर भी अकलंक थे—कलंकसे रहित थे (पक्षमें पापसे रहित थे) जो अधिक पराक्रमी होकर भी इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाले थे तथा जो प्रायः कर चरमशरीरी थे।

§ २३२. तदनन्तर विदित हुए भानेजके आगमनसे प्रसन्न राजाने जिन्हें बार-बार आज्ञा दी थी ऐसे तद्-तद् जनपदोंके निवासियोंने अपने-अपने पदके अनुरूप बड़े हर्षसे उनकी अगवानी की थी तथा मणि मोती और चन्दन आदिके उपहार समर्पित किये थे उन सब उपहारोंको देखने और बदलेके उपहार देनेसे लोगोंको प्रसन्न करते हुए महाभाग्यशाली जीवन्धर स्वामी 'धरणीतिलक' इस सार्थक नामको धारण करनेवाली उस राजधानीमें जा पहुँचे कि जहाँ लोगोंके बहुत भारी कोलाहलसे दिशाएँ शब्दायमान हो रही थीं। सूर्यरथके रोकनेके कार्यमें निपुण बड़े-बड़े महलोंकी पंक्तियोंके बहाने जो ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके विदारणपटु वज्रपातसे घबड़ाये हुए कुलाचलोंने ही भयरहित स्थान समझ उसका आश्रय ले रखा हो। जो यद्यपि लक्ष्मीके समान आश्रित जनोंके अभिलषित अर्थकी पुष्टि करनेवाली थी तथापि एकस्वामिका होनेके कारण उससे भी अधिक आदरको प्राप्त थी

1. क० ख० ग० प्रदृश्यमानानि ।

सर्वरत्नसमृद्धां समुत्सारितजालिकात्वेन तदतिशायिनीम्, कान्तारभुवमिव महासत्त्वसमाक्रान्तां निष्कण्टकात्वेन तां न्यक्कुर्वतीम्, सर्वलोकतिलकभूतां धरणीतिलक इत्यन्वर्थाभिधानां राजधानीं भेजे।

§ २३३. यत्र पुरुषाः परेषां पदस्खलितेषु वंशोत्थिता अप्यपर्वभङ्गुरा अवष्टम्भयष्टयः, शोकज्वरजृम्भणारम्भेषु मधुरस्निग्धा अप्यजडात्मानोऽमृतपूराः, मोहमहार्णवमज्जनेषु पारप्रापणप्रवीणा अप्यपेतपाशयन्त्रणा महाप्लवाः, मतिविभ्रमदिङ्मोहेष्वनेकप्रस्थानविशङ्कटा[1] अप्यकण्टका

सागरवेलामिव तटिनीविटतटीमिव सर्वरत्नैर्निखिलमणिभिः समृद्धा सम्पन्ना ताम् पक्षे 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमिहोच्यते' इति रत्नलक्षणात् तत्तज्जातिषु श्रेष्ठतमैः पदार्थैराश्रिता, जालेन जीवन्ति जालिकाः समुत्सारिता दूरीकृता जालिका मत्स्यजीविनो यया तस्या भावस्तत्त्वेन तदतिशायिनी सागरवेलातिशायिनीं सागरवेला तु धृतजालिका राजधानी तु समुत्सारितजालिकेति व्यतिरेकः, कान्तारभुवमिव काननावनिमिव महासत्त्वैर्व्याघ्रादिजन्तुभिः समाक्रान्तां पक्षे महत् सत्त्वं धैर्यं येषां ते महासत्त्वास्तैः समाक्रान्तां समधिष्ठितां निष्कण्टकत्वेन क्षुद्रशत्रुरहितत्वेन पक्षे शल्यरहितत्वेन तां कान्तारभुवं न्यक्कुर्वतीं तिरस्कुर्वतीं राजधानी निष्कण्टका कान्तारभूस्तु सकण्टकेति व्यतिरेकः, सर्वलोकस्य निखिलजगतस्तिलकभूतां स्थासकोपमां सर्वश्रेष्ठामित्यर्थः धरणीतिलक इत्यन्वर्थाभिधानां सार्थकनामधेयां राजधानीं भेजे प्राप्तवान्।

§ २३३. यत्रेति—यत्र राजधान्यां पुरुषा जनाः परेषामितरेषां पदस्खलितेषु पदात् स्थानात् स्खलितेषु भ्रष्टेषु पक्षे पदस्य चरणस्य स्खलितेषु प्रमादात्पतितेषु वंशोत्थिता अपि वेणुसमुत्पन्ना अपि पक्षे कुलोत्पन्ना अपि पर्वसु भङ्गुरा न भवन्तीत्यपर्वभङ्गुरा अपर्वकुटिकाः पक्षे उत्सवादिष्वविनश्वराः अवष्टम्भयष्टय आधारदण्डाः, शोक एव ज्वरस्तस्य जृम्भणारम्भेषु वृद्धिप्रारम्भेषु मधुराश्च ते स्निग्धाश्चेति मधुरस्निग्धा मिष्टसचिक्कणा अपि अजडात्मानो डलयोरभेदाद् अजलात्मानोऽजलरूपा अमृतपूराः पीयूषपूराः पक्षे मधुरस्निग्धा मधुरभाषिणः स्नेहयुक्ताश्च अजडात्मानः अजडोऽमूर्खं आत्मा येषां तथाभूताः, मोह एव महार्णवो मोहमहार्णवो मोहमहासागरस्तस्मिन् निमज्जनेषु ब्रुडनेषु पारस्य द्वितीयतटस्य प्रापणे प्रासौ प्रवीणाः पटवोऽपि अपेतपाशयन्त्रणा दूरीकृतपाशनियमना महाप्लवा महानौकाः पक्षे पारप्रापणे कार्य-

(लक्ष्मी बहुवल्लभा थी परन्तु वह राजधानी एकवल्लभा थी इसलिए वह उससे भी अधिक श्रेष्ठ थी)। जो यद्यपि समुद्रकी वेलाके समान सर्वरत्नोंसे समृद्ध थी तथापि जालसे आजीविका करनेवालोंको दूर हटानेके कारण उसे तिरस्कृत करनेवाली थी (समुद्रकी वेलापर जालाजीवी मनुष्य रहते हैं परन्तु उस नगरीमें जालाजीवी मनुष्योंको दूरसे ही खदेड़ दिया था)। जो यद्यपि वनकी भूमिके समान महासत्त्व—महापराक्रमी मनुष्योंसे व्याप्त थी (पक्षमें सिंह, व्याघ्र आदि बड़े-बड़े जन्तुओंसे युक्त थी) तथापि निष्कण्टका—काँटोंसे रहित (पक्षमें क्षुद्र शत्रुओंसे रहित) होनेके कारण उसे भी नीचा दिखा रही थी (वनकी भूमि कण्टकोंसे व्याप्त थी और वह राजधानी कण्टकोंसे रहित थी)। तथा जो समस्त लोककी तिलकस्वरूप थी।

§ २३३. जहाँके मनुष्य अन्य पुरुषोंको पैरोंसे स्खलित होनेपर सहारा देनेके लिए उन आलम्बन यष्टियोंके समान थे जो वंशोत्थित—बाँससे उत्पन्न होनेपर भी (पक्षमें उच्च कुलमें उत्पन्न होकर भी) अपर्वभंगुरा—पोरोंसे भंगुर नहीं थे (पक्षमें अनुत्सवके समय साथ छोड़नेवाले नहीं थे)। शोकरूपी ज्वरकी वृद्धिका प्रारम्भ होनेपर उन अमृतके प्रवाहोंके समान थे जो मधुर एवं स्निग्ध होनेपर भी (पक्षमें मनोहर और स्नेहयुक्त होनेपर भी) अजडात्मा—अजलरूप नहीं थे (पक्षमें अप्रबुद्धात्मा नहीं थे)। मोहरूपी महासागरमें डूबनेके समय उन बड़ी

१. विस्तृता इति टि०।

घण्टापथाः, परिधावनक्लेशेषु फलच्छायाभृतोऽप्यकुजन्मानो विश्रमद्रुमाः, तथाभूतवादिनोऽपि प्रधानाः श्रुत्यनुकूलचारित्रा[1] मीमांसातन्त्राः, सुकृतेतरविवेककुशलाः समवर्तिनः, पवित्रपादसंपर्कास्तमश्छिदः, गुणलवबधनीयाः सुमनसः, बहुलोज्ज्वलास्तारकाः, तथा शिवभक्ता अपि जैनाः,

---

फलप्रापणे प्रवीणा अपि अपेतपाशयन्त्रणा दूरीकृतकुत्सितयन्त्रणा महाप्लवा महानौका इव तरणतारणपटव इत्यर्थः, मतिविभ्रमा बुद्धिविभ्रमा एव दिङ्मोहास्तेषु अनेकेषां युगपदनेकनराणां प्रस्थानाय विशङ्कटा अपि विस्तृता अपि अकण्टकाः शल्यरहिता घण्टापथा राजमार्गाः पक्षे अनेकेषु कार्येषु यत्प्रस्थानं प्रयाणं तेन विशङ्कटा विशाला उदारा इति यावत् अकण्टकाः क्षुद्रशत्रुरहिता अपि घण्टापथा राजमार्गोपमाः, परिधावनक्लेशेषु परितो धावनं परिधावनं तस्य क्लेशाः खेदास्तेषु परिभ्रमणजन्यक्लेशेषु फलानि च छाया चेति फलच्छाया ता बिभ्रतीति फलच्छायाभृतोऽपि अकुजन्मानो न विद्यते कोः पृथिव्या जन्म येषां तथाभूता विश्रमद्रुमा विश्रमतरवः पक्षे फलच्छायाधारका अपि न कुत्सितं जन्म येषां तथाभूता विश्रमतरव इव खेदापहारकाः, तथा भूतवादिनोऽपि पृथिव्यादिभूतचतुष्टयवादिनश्चार्वाका अपि प्रधानाः प्रधानवादिनः सांख्या इति विरोधः पक्षे तथाभूतं सत्यं वदन्तीति तथाभूतवादिनोऽपि प्रधानाः प्रकृष्टं धानं येषां ते प्रधाना प्रकृष्टयोगाः प्रमुखा वा, श्रुत्यनुकूलं वेदानुगुणं चारित्रं येषां तथाभूता मीमांसातन्त्रा मीमांसादर्शनाधीनाः पक्षे श्रुत्यनुकूलं कर्णानुकूलं चारित्रं येषां तथाभूता अपि मीमांसातन्त्रा विचारपटवः, सुकृतेतरयोः पुण्यपापयोर्विवेके भेदकरणे कुशलाः निपुणाः समवर्तिनो मध्यस्थाः पक्षे प्रेतराजः 'समवर्ती परेतराट्' इत्यमरः, पक्षे पुण्यपापपरिज्ञाने पटवो मध्यस्थाः, पवित्रः पूतः पादानां किरणानां संपर्कः संबन्धो येषां तथाभूता अपि तमश्छिदस्तमोरयः सूर्याः पक्षे पवित्रचरणसंसर्गाः मोहान्धतमसविघातकाः, गुणलवेन सूत्रखण्डेन बधनीया बद्धुमर्हाः सुमनसः पुष्पाणि पक्षे गुणा दयादाक्षिण्यादयस्तेषां लवेनांशेन बधनीया संग्रहणीयाः सुमनसो विद्वांसः, बहुले कृष्णपक्षे उज्ज्वला इति बहुलोज्ज्वलास्तारका नक्षत्राणि पक्षे बहुलोज्ज्वला अतिनिर्मला तारकाः तरन्तीति तारकास्तारणकर्तारः, तथा शिवभक्ता अपि शिवानुयायिनोऽपि जैना जिनानुयायिन इति विरोधः, पक्षे शिवभक्ता अपि कल्याणभक्ता अपि जैना जिनो

नौकाओंके समान थे जो पारकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होकर भी (पक्षमें कार्यकी समाप्तिमें दक्ष होकर भी) पाशकी यन्त्रणासे रहित थीं (पक्षमें बन्धनके नियन्त्रणसे रहित थे) बुद्धिविभ्रम रूप दिशाभूलके समय उन राजमार्गोंके समान थे जो अनेक लोगोंके प्रस्थानके उपयुक्त विशाल होनेपर भी (पक्षमें अनेक जनोंके निर्वाहके योग्य उदार होनेपर भी) अकण्टक–काँटोंसे रहित (पक्षमें क्षुद्र शत्रुओंसे रहित) थे। दौड़सम्बन्धी क्लेशके समय उन विश्रामके योग्य वृक्षोंके समान थे जो फल और छायाके धारक (पक्षमें कार्यकी सिद्धि और कान्तिके धारक) होकर भी अकुजन्मा—पृथिवीसे उत्पन्न नहीं थे (पक्षमें कुत्सित जन्मसे रहित थे)। पृथिव्यादि भूतचतुष्टयके वादी होकर भी—चार्वाक होकर भी क्षेत्रज्ञ—आत्मज्ञ थे (पक्षमें तथाभूत—सत्यवादी होकर भी प्रधान—मुख्य थे)। श्रुतिके अनुकूल चरित्रके धारक होकर भी मीमांसाको प्रमाण माननेवाले थे (पक्षमें कानोंके अनुकूल चरित्रके धारक होकर भी सत्-असत्के विचारमें निपुण थे)। पुण्य और पापके विवेकमें कुशल समवर्ती—यमराज थे (पक्षमें समान व्यवहार करनेवाले थे)। पवित्र किरणोंके सम्पर्कसे युक्त सूर्य थे (पक्षमें पवित्र चरणोंके सम्पर्कसे सहित तथा अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट करनेवाले थे)। सूतके खण्डोंसे बँधनेके योग्य सुमनस्—फूल थे (पक्षमें गुणोंके अंशोंसे संग्रहणीय सुमनस्—विद्वान् थे)। बहुलोज्ज्वला—कृष्ण पक्षमें चमकनेवाले तारे थे (पक्षमें अत्यधिक उज्ज्वल और विपत्तिसे

---

१. म० चरित्राः ।

समाश्रितश्रीरामा अपि बुधाश्रयिणः, क्षमाभृतोऽप्यकठिनाः, दानोद्यता अप्यनिस्त्रिंशाः, भूनन्दना अप्यवक्रचराः सन्तः सतां लक्षणमक्षूणमात्मसात्कुर्वन्ति ।

§ २३४. तावता तन्निशामनदुर्ललितस्वान्ताः बन्धनादिव बन्धुतायाः श्मशानादिव सदनादाश्रयाशादिवोपदेशादभिचारादिव कुलाचारादपमृत्योरिव पत्युः प्रहरणादिव कालहरणादुद्दामादिव निजमानादुद्दाममुद्वेजमानाः, कल्याणात्मना गुणिना सुवृत्तेन पलायनवेगात्पादयोः पतता 'परिपालनीया ननु निभृतगतिः' इति निवार्यमाणा इव मेखलाकलापेन गुरुतरकुचकुम्भ-

देवता येषां तथाभूताः, श्रीरामेव इति श्रीरामा समाश्रिता सेविता श्रीरामा लक्ष्मीललना यैस्तथाभूता अपि बुधाश्रयिणो विद्वज्जनाश्रयिणः, पक्षे श्रियोपलक्षितो रामः श्रीरामः समाश्रितः सेवितः श्रीरामो यैस्तथाभूता अपि बुधाश्रयिणो विद्वज्जनाश्रयिणः, क्षमाभृतोऽपि पर्वता अपि अकठिना अकर्कशाः पक्षे शान्तियुक्ता अपि अकठिना मृदवः, दाने खण्डने उद्यता अपि अनिस्त्रिंशा अक्रूराः पक्षे त्यागतत्परा अपि अनिस्त्रिंशा अघातकाः । भूनन्दना अपि महीसुता अपि मङ्गलग्रहा इति यावत् अवक्रचरा अकुटिलगतय इति विरोधपक्षे पृथिवीपुत्रा अपि सरलगामिनः सन्तः, सतां साधूनाम् अक्षूणं पूर्णं लक्षणम् आत्मसात् कुर्वन्ति आत्माधीनं विदधति । यत्र सत्पुरुषा वसन्तीति भावः ।

§ २३४. तावतेति—तावता तावत्कालेन तस्य जीवंधरस्य निशामनेन दर्शनेन दुर्ललितं गर्वविशिष्टं स्वान्तं चित्तं यासां तथाभूताः, बन्धूनां समूहो बन्धुता तस्या बन्धनादिव, सदनाद्भवनात् श्मशानादिव, उपदेशात् आश्रयाशादिव वह्नेरिव, कुलाचारात् अभिचारादिव हिंसनादिव, पत्युरपमृत्योरिवाकालमरणादिव, कालहरणाद्विलम्बनात् प्रहरणादिव शस्त्रघातादिव, निजमानात् स्वगर्वात् उद्दामादिव बन्धरहितादिव 'उद्दामो बन्धरहिते स्वतन्त्रे च प्रचेतसि' इति मेदिनी उद्दाममुत्कटं यथा स्यात्तथा उद्वेजन्त इत्युद्वेजमाना बिभ्यतः, कल्याणात्मना सौवर्णेन पक्षे भद्रात्मना, गुणिना सूत्रवता पक्षे गुणयुक्तेन सुवृत्तेन वर्तुलाकारेण पक्षे सदाचारेण पलायनस्य परिधावनस्य वेगो रयस्तस्मात् पादयोः चरणयोः पतता 'ननु निश्चयेन निभृतगतिर्निश्चलगतिः परिपालनीया रक्षणीया' इतीत्थं मेखलाकलापेन रशनादाम्ना निवार्य-

धारनेवाले थे)। शिवके भक्त होकर भी जैन थे—जिनके भक्त थे (पक्षमें कल्याणके सेवक होकर भी जैन थे)। श्रीरामके सेवक होकर भी बुधकी सेवा करनेवाले थे (पक्षमें लक्ष्मीरूपी स्त्रीके सेवक होकर भी विद्वज्जनोंकी सेवा करनेवाले थे)। पर्वत होकर भी कठिन नहीं थे (पक्षमें क्षमाके धारक होकर भी कोमल थे)। दान—खण्डनमें उद्यत होकर भी निस्त्रिंश—तलवारसे रहित थे (पक्षमें दान देनेमें उद्यत होकर भी क्रूर नहीं थे) और मंगलरूप होकर भी अवक्रचर—वक्रगतिसे रहित (पक्षमें पृथिवीको हर्षदायक होकर भी सरल प्रवृत्तिसे सहित) होते हुए सज्जनोंके पूर्ण लक्षणको अपने अधीन करते थे।

§ २३४. उतनेमें ही जीवन्धर कुमारके आगमनके सुननेसे जिनके चित्त हर्षातिरेकसे अस्त-व्यस्त हो रहे थे ऐसी स्त्रियाँ बड़े वेगसे आकर सब ओरसे नगरकी गलीको उस तरह अलंकृत करने लगीं जिस तरह कि फूलोंसे सुशोभित लताएँ वनकी भूमिको अलंकृत करती हैं। उस समय वे स्त्रियाँ बन्धुओंके समूहसे बन्धनके समान, घरसे श्मशानके समान, उपदेशसे अग्निके समान, कुलाचारसे हिंसामय प्रवृत्तिके समान, पतिसे अपमृत्युके समान, विलम्बसे शस्त्रके समान, और अपने मानसे उद्दण्डके समान अत्यन्त उद्विग्न हो रही थीं। उस समय दौड़नेके वेगसे उन स्त्रियोंकी मेखलाओंका समूह पाँवोंमें पड़ता हुआ ऐसा

१. गर्वविशिष्टचित्ताः, इति टि० । २. म० उद्विजमानाः ।

नितम्बभारेण निवारितत्वरितगमनमनोरथोन्मेषाः, भुजलताविक्षेपवेगगलितानि [1]विजृम्भितामर्षविषमेषुप्रेषितचक्रजालानीव वलयानि पार्श्वयोरुभयोः पथि विधुन्वानाः, प्रधावनरभसोत्थितमुक्तासरा आकृष्यमाणा इव मनसाग्रगामिना[2] निबध्य कण्ठेषु मदनमौर्वीगुणैर्दरविगलदलकबन्धविस्रंसमानकुसुमापीडोत्सङ्गसङ्गिभिः[3] क्वणद्भिर्मदनप्रहितैरादेशदूतैरिव मधुकरैराकुलीक्रियमाणास्तरसोपसृत्य सर्वतः पुरो वीथिं पुरंध्र्यः फुल्लभासिन्यो वल्लर्य इव वनस्थलीमलंचक्रुः।

§ २३५. तासां च तन्निध्यानेन ध्यानप्रवेकेण तपोधनमनोवृत्तीनामिव निर्वर्तितान्यव्यापृतीनां मदिरामाद्यत्स्वान्तानामिवाचान्तलज्जानां मज्जन्तीनामिव रागसागरे मदिराक्षीणां कटाक्ष–

माणा, इव, गुरुतरयोः कुचकुम्भयोः स्तनकलशयोर्नितम्बयोश्च कटिपश्चाद्भागयोश्च भारेण निवारितो निरुद्धस्त्वरितगमनमनोरथस्य शीघ्रगत्यभिलाषस्योन्मेषो यासां ताः, भुजलतयोर्बाहुवल्लर्योर्विक्षेपवेगेन गलितानि वलयानि कटकानि 'कटको वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, विजृम्भितामर्षश्चासौ विषमेषुश्चेति विजृम्भितामर्षविषमेषुर्वृद्धिंगतकोपकामस्तेन प्रेषितानि चक्रजालानीव चक्रायुधनिकुरम्बानीव उभयोः पार्श्वयोर्द्वयोस्तटयोः पथि विधुन्वानाः कम्पयन्तः प्रधावनस्य रभसेन पलायनस्य वेगेनोत्थितः समुत्क्षिप्तो मुक्तासरो मौक्तिकयष्टिर्यासां ताः अत एवाग्रगामिना मनसा कण्ठेषु ग्रीवासु निबध्य आकृष्यमाणा इव नीयमाना इव मदनस्य मारस्य मौर्व्या ज्याया इव गुणो येषां तैः दरं मनाग् विगलन् शिथिलीभवन् योऽलकबन्धश्चूर्णकुन्तलबन्धस्तस्माद् विस्रंसमानानां नीचैर्लम्बमानानां कुसुमानां पुष्पाणां य आपीडः समूहस्तस्योत्सङ्गसंगो मध्यसंगो विद्यते येषां तैः क्वणद्भिः शब्दं कुर्वाणैः मदनप्रहितैः प्रद्युम्नप्रेरितैः आदेशदूतैरिवाज्ञादूतैरिव मधुकरैर्भ्रमरैः आकुलीक्रियमाणा व्यग्रीक्रियमाणाः पुरन्ध्र्यो योषितः तरसा वेगेन सर्वतः समन्तात् उपसृत्य समीपमागत्य फुल्लैः पुष्पैर्भासन्त इत्येवंशीलाः फुल्लभासिन्यो वल्लर्यो लता वनस्थलीमिव काननभूमिमिव पुरो नगरस्य वीथिं रथ्याम् अलंचक्रुः शोभयामासुः।

§ २३५. तासां चेति—तस्य जीवकस्य निध्यानेन विलोकनेन ध्यानप्रवेकेण ध्यानश्रेष्ठेन तपोधनमनोवृत्तीनामिव मुनिमनोवृत्तीनामिव निवर्तिता दूरीकृता अन्यव्यापृतय इतरकार्यविक्षेपो याभिस्तासाम्, मदिरया कादम्बर्या माद्यत् मत्तीभवत् स्वान्तं चित्तं यासां तासामिव, आचान्तलज्जानां त्यक्तत्रपाणाम् राग

जान पड़ता था मानो 'गम्भीर चालकी रक्षा करना चाहिए' यह कहकर उन्हें रोक ही रहा था सो ठीक ही है क्योंकि जो कल्याणात्मा—कल्याणस्वरूप, गुणी—गुणवान् और सुवृत्त—सदाचारी होता है उसका वैसा स्वभाव ही होता है (पक्षमें स्वर्णमय, डोरासे युक्त और उत्तम गोलाकार होता है उसका वैसा स्वभाव ही होता है)। अत्यन्त स्थूल स्तन कलश और नितम्बोंके भारसे उन स्त्रियोंका शीघ्र गमनसम्बन्धी मनोरथोंका प्रादुर्भाव रोक दिया गया था। वे स्त्रियाँ मार्गमें दोनों ओर भुज-लताओंके विक्षेप-सम्बन्धी वेगसे गिरी हुई जिन चूड़ियोंको छोड़ती जाती थीं वे तीव्र क्रोधके धारक कामदेवके द्वारा प्रेषित चक्रोंके समूहके समान जान पड़ती थीं। दौड़नेके वेगसे उनकी मोतियोंकी मालाएँ ऊपरकी ओर उठ रही थीं। उनसे वे ऐसी जान पड़तीं मानो आगे-आगे जानेवाला मन उन्हें गलेमें बाँधकर खींच ही रहा हो। जो कामदेवकी डोरीके समान गुणोंके धारक थे, कुछ-कुछ ढीले हुए केशबन्धनसे गिरनेवाले फूल-समूहके मध्यमें स्थित थे, शब्द कर रहे थे और कामदेवके द्वारा प्रेषित आज्ञाकारी दूतोंके समान जान पड़ते थे ऐसे भ्रमर उन स्त्रियोंको व्याकुल कर रहे थे।

§ २३५. श्रेष्ठ ध्यानसे तपस्वियोंकी मनोवृत्तिके समान जीवन्धर स्वामीके अवलोकनसे जो अन्य कार्योंसे निवृत्त हो चुकी थीं, मदिरासे मत्त हृदयके धारकोंके समान जिनकी लज्जा नष्ट

१. क० 'वि' नास्ति। २. म० गामिणा। ३. म सन्धिभिः।

शृङ्खलया शृङ्खलित इव मन्दीभूतगतिर्गच्छन्महीपतिमन्दिरं जीवंधरः संभ्रममयं निरवर्तयत्। निदध्यौ च निखिलजनप्रेक्षणीयेषु कक्ष्यान्तरेषु क्रान्तेषु बाह्येष्ववरुह्य करिणः कलधौतनिर्माणमण्डपमण्डनीभूतस्योर्ध्वहस्तपुरुषलङ्घनीयस्य रिपुनृपद्विरदरदनरचितपादपीठस्य, भ्राजिष्णुरत्नकनककान्तिकल्माषवपुषः पीनविपुलतूलतल्पस्यानल्पशोभाजुष्टस्य हरिविष्टरस्य मध्यमलंकुर्वाणम्, बन्धुराधरबन्धूकया स्मेरमुखारविन्दभासिन्या मञ्जुमञ्जीरशिञ्जितहंसस्वरानुबन्धया चलितचामरकलापपर्यायविमलनीरदया शरदेव वारयुवतिपरिषदा परिवेष्टितम्, अविरलताम्बूलपुनरुक्तरक्ताधररागेण भागिनेयानुरागमिवान्तरमान्तमुद्वमन्तम्, अमन्दादरवन्दिवृन्दस्य दिगन्तकृतप्रति-

एव सागरस्तस्मिन् प्रीतिपयोधौ मज्जन्तीनामिव ब्रुडन्तीनामिव तासां मदिराक्षीणां ललनानां कटाक्षशृङ्खलया केकरहिञ्जीरेण शृङ्खलित इव बद्ध इव मन्दीभूता गतिर्यस्य तथाभूतो मन्थरगतिरयं जीवंधरो महीपतिमन्दिरं राजभवनं गच्छन् संभ्रमं संक्षोभं निरवर्तयत् रचयामास। निदध्यौ चेति—निखिलजनप्रेक्षणीयेषु सकललोकावलोकनीयेषु बाह्येषु कक्ष्यान्तरेषु कोष्ठकविवरेषु क्रान्तेषु व्यतीतेषु करिणो गजाद् अवरुह्यावतीर्य स गोविन्दमहाराजं तन्नामभातुलं निदध्यौ च विलोकयामास च। अथ गोविन्दमहाराजस्य विशेषणान्याह—कलधौतेति—कलधौतेन स्वर्णेन निर्माणं यस्य तथाभूतस्य मण्डपस्यास्थानस्य मण्डनीभूतस्याभरणीभूतस्य, ऊर्ध्वहस्तेन पुरुषेण लङ्घनीयस्यातिक्रमणीयस्य रिपुनृपाणां प्रत्यर्थिपार्थिवानां द्विरदा मतङ्गजास्तेषां रदनैर्दन्तै रचितं पादपीठं यस्य तस्य, भ्राजिष्णूनि देदीप्यमानानि यानि रत्नकनकानि मणिकाञ्चनानि तेषां कान्त्या कल्माषं विचित्रप्रभं वपुराकारो यस्य तस्य, पीनः पीवरो विपुलो विस्तृतस्तूलतल्पो यस्य तस्य, अनल्पशोभया सुषमया जुष्टस्य सहितस्य, मध्यम् अलंकुर्वाणं शोभयन्तम्, बन्धुरेति—बन्धुरा मनोहरा अधरा दन्तच्छदा एव बन्धूका बन्धुजीवका यस्यास्तस्या 'रक्तकस्तु बन्धूको बन्धुजीवकः' इत्यमरः, स्मेरमुखान्येव मन्दहास्ययुक्तवदनान्येवारविन्दानि कमलानि तैर्भासत इत्येवंशीलया, मञ्जुमञ्जीराणां रमणीयनूपुराणां शिञ्जितान्यनुरणितान्येव हंसस्वरा मरालशब्दास्तेषामनुबन्धः संसर्गो यस्यास्तया, चलितचामरकलापा एव पर्याया येषां तथाभूता विमलनीरदाः सितपयोदा यस्यां तया शरदेव शरदृतुनेव वारयुवतीनां रूपाजीवानां परिषत् समूहस्तया परिवेष्टितं परिवृतम्, अविरलेन निरन्तरेण ताम्बूलेन नागवल्लीदलेन पुनरुक्तो द्विरुदीरितो रक्ताधररागो लोहितदशनच्छदारुणिमा तेन अन्तर्मध्येऽमान्तं मातुमशक्नुवन्तं भागिनेयानुरागं भगिनीसुतप्रेमाणम् उद्वमन्तमुद्गिरन्तम्, अमन्देति—अमन्दादरश्चासौ वन्दिवृन्द-

हो गयी थी और जो रागरूपी सागरमें डूबी जा रही थीं ऐसी उन स्त्रियोंके कटाक्षोंकी शृंखलासे बँधे हुएके समान धीमी चालसे चलते हुए जीवन्धर स्वामीने राजभवनको संभ्रमसे तन्मय कर दिया। तदनन्तर समस्त मनुष्योंके देखनेके योग्य बाह्य कक्षाओंके अन्तरालके व्यतीत होनेपर हाथीसे उतरकर उन्होंने स्वर्णनिर्मित मण्डपके मण्डनभूत, ऊपरकी ओर हाथ उठाये हुए पुरुषके द्वारा लंघनीय, शत्रु राजाओंके हाथियोंके दाँतोंसे निर्मित पादपीठसे सहित, जगमगाते रत्न और स्वर्णकी कान्तिसे चित्र-विचित्र शरीरके धारक, मोटे और विशाल रुईके गद्दोंसे सहित एवं बहुत भारी शोभासे सम्पन्न सिंहासनके मध्य भागको जो अलंकृत कर रहे थे। सुन्दर अधररूपी दुपहरियाके फूलसे युक्त, मन्द-मन्द हँसते हुए मुख-कमलसे सुशोभित, नूपुरोंके मनोहर शब्दरूपी हंसोंके शब्दसे युक्त एवं चलते हुए चमरसमूहरूपी सफेद मेघोंसे सहित शरदृतुके समान वेश्याओंके समूहसे जो घिरे हुए थे। लगातार पान खानेसे पुनरुक्त लाल अधरोष्ठकी लालीसे जो भीतर नहीं समाते हुए भानेजके अनुरागको मानो उगल ही रहे थे। बहुत भारी आदरसे युक्त बन्दि-समूहके दिगन्तमें प्रतिध्वनि करनेवाले गीतसे जो मानो

१. व्याप्त इति टि०।

श्रुतिगीतेन श्रावयन्तमिव निजशासनमाशाधिपान्, राजलक्ष्मीशिखण्डिताण्डवमृदङ्गवाद्येन रिपुराजहंसनिर्वासनघनस्तनितेन धीरेण स्वरेण परिजनमात्मप्रतिग्रहणाय त्वरयन्तं गोविन्दमहाराजम् ।

§ २३६. स च समायान्तमालोक्य सात्यंधरिमात्यन्तिकभागिनेयस्नेहेन तदतिमात्रानुभावेन च गात्रे स्वयमेवासनादुत्थिते प्रागेव प्रत्युद्गमनं पुनः प्रत्युत्थानेच्छायां पूर्वमेव पुलकोद्गमनमनन्तरमङ्गहर्षप्राग्भारं पुरस्तादेवानन्दाश्रुधारां तदनु तदङ्गसमालिङ्गनसंगतसौख्यभारं च भजन्, स्फारस्मेरमुखारविन्दो गोविन्दो महाराजस्तदीयचातुर्यसौकुमार्यवीर्यवैदुष्यवैभववैशारद्याद्यानवद्यानालोक्य गुणान् स्वयमपि स्वयंवृतः सुचरितैः स्वीकृतः कृतकृत्यतया परिगृहीतो

श्रेत्यमन्दादरवन्दिवृन्दस्तस्य महादरचारणसमूहस्य, दिगन्तेषु कृता प्रतिश्रुतिः प्रतिध्वनिर्यस्य तथाभूतं यद् गीतं तेन, आशाधिपान् दिक्स्वामिनो निजशासनं स्वकीयाज्ञां श्रावयन्तमिव समाकर्णयन्तमिव, राजलक्ष्मीरेव शिखण्डी मयूरस्तस्य ताण्डवाय नटनाय मृदङ्गवाद्यं मुरजवादित्रं तेन, रिपव एव राजहंसा मरालास्तेषां निर्वासने निःसारणे घनस्तनितं मेघगर्जितं तेन धीरेण गम्भीरेण स्वरेण आत्मप्रतिग्रहणाय स्वशरणप्रतिपत्त्यै परिजनं परिकरं त्वरयन्तं शैघ्र्यं कारयन्तम् ।

§ २३६. स चेति—स च गोविन्दमहाराजश्च समायान्तं समागच्छन्तं सात्यंधरिं जीवंधरम् आलोक्य दृष्ट्वा अन्तमतिक्रान्त इत्यात्यन्तिकः स चासौ भागिनेयस्नेहश्च भगिनीसुतरागश्च तेन तस्य भागिनेयस्यातिमात्रानुभावेन च विपुलतरप्रभावेण च गात्रे शरीरे स्वयमेव स्वत एव आसनान्मृगेन्द्रविष्टरात् उत्थिते सति प्रागेव पूर्वमेव प्रत्युद्गमनमग्रेगत्वा सत्करणं पुनरनन्तरं प्रत्युत्थानेच्छाम् उत्थितं दृष्ट्वोत्थानं प्रत्युत्थानं तस्येच्छामभिलाषम्, पूर्वमेव प्रागेव पुलकोद्गमनं रोमाञ्चोत्पत्तिः, अनन्तरम् अङ्गहर्षस्य शरीरसंमदस्य प्राग्भारं समूहं, पुरस्तादेव पूर्वमेव आनन्दाश्रुधारां हर्षवाष्पधारां तदनु तत्पश्चात् तस्याङ्गस्य समालिङ्गनेन जीवंधरशरीराश्लेषेण संगतः प्राप्तो यः सौख्यभारस्तं भजन् सेवमानः प्राप्नुवन्निति यावत् स्फारस्मेरं सातिशयविकसितं मुखारविन्दं वदनवारिजं यस्य तथाभूतो गोविन्दो महाराजो विदेहाधिप तदीयं तत्संबन्धि यत् चातुर्यं वैदग्ध्यं सौकुमार्यं मृदुत्वं वीर्यं पराक्रमो वैदुष्यं पाण्डित्यं वैभवं सम्पन्नत्वं वैशारद्यं सत्रिधत्वं तानि आद्यानि येषां तथाभूतान् अनवद्यान् निर्दुष्टान् गुणान् आलोक्य दृष्ट्वा स्वयमपि स्वतोऽपि सुचरितैः सदाचारैः स्वयंवृतः स्वयमङ्गीकृतः, कृतकृत्यतया कृतार्थत्वेन स्वीकृतः

दिक्पालोंको अपना आदेश ही सुना रहे थे। और राज्य लक्ष्मीरूप मयूरके ताण्डव नृत्यके लिए मृदंग बाजेके समान अथवा शत्रुरूपी राजहंसोंको दूर भगानेके लिए मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे जो अपना आश्रय लेनेके लिए परिजनको मानो शीघ्रता ही करा रहे थे ऐसे गोविन्द महाराजको देखा।

§ २३६. आते हुए जीवन्धर स्वामीको देखकर भानेजके बहुत भारी स्नेहसे और उनके अत्यधिक प्रभावसे गोविन्द महाराजका शरीर आसनसे स्वयं उठकर खड़ा हो गया। वे अगवानीको पहले ही प्राप्त हो गये और खड़े होनेकी इच्छाको पीछे प्राप्त हुए। रोमांचोंकी उत्पत्तिको पहले ही धारण करने लगे और शरीरके हर्षकी अधिकताको पीछे प्राप्त हुए। हर्षके आँसुओंकी धाराको पहले ही प्राप्त हो गये और उनके शरीरके आलिंगनसे उत्पन्न होनेवाले सुखके समूहको पीछे प्राप्त हुए। इस प्रकार अत्यधिक विकसित मुखारबिन्दसे युक्त गोविन्द महाराज, उनके चातुर्य, सौकुमार्य, वीर्य, वैदुष्य, वैभव और वैशारद्य आदि निर्दुष्ट गुणोंको देखकर स्वयं ही सदाचारसे स्वयंवृत-कृतकृत्यतासे स्वीकृत, माहात्म्यसे

महत्त्वेन परिष्वक्तः पावनतया करे गृहीतः कीर्त्या कण्ठे स्पृष्टो गद्गदिकया बभूव।

§ २३७. तदनु च सत्यंधरमहाराजमरणानुस्मरणेनाधरितवारिधिमथनध्वानाक्रन्दनाक्रान्तं शुद्धान्तमप्याचान्तव्यथं[1] विहितवत्यां विजयामहादेव्याम्, दिव्योपधादर्शनोत्सुकदेशाधिपप्रतीक्ष्यावसरेषु वासरेषु केषुचिन्निर्वासितेषु, अयं सर्वविजयी विजयानन्दनरिपुविजयाभ्युपायवितर्कणपरतन्त्रो मन्त्रशालायां मन्त्रिभिः समं मन्त्रयामास। आचष्टे स्म च 'काष्ठाङ्गारेण प्रहितमिह संदेशं दर्शय' इति सातिशयविवेकं गणकप्रवेकम्। स च 'तथा' इति विहिताञ्जलिर्वैदेहीसुताहितेन प्रहितं पत्रमुन्मुद्रं विधाय विधिवद्वाचयामास।

§ २३८. पत्रमिदं काष्ठाङ्गारस्य विलोकयेद्विदेहाधिपतिः। पतितं मूर्ध्नि मे पापेन

महत्त्वेन माहात्म्येन परिगृहीत उपात्तः, पावनतया पवित्रतया परिष्वक्तः समालिङ्गितः, कीर्त्या यशसा करे पाणौ गृहीतः गद्गदिकया कण्ठे गले स्पृष्टः कृतस्पर्शो बभूव।

§ २३७. तदनु चेति—तदनन्तरं च सत्यंधरमहाराजस्य यन्मरणं तस्यानुस्मरणेनाध्यानेनाधरितस्तिरस्कृतो वारिधिमथनध्वानः सागरालोडनरवो येन तथाभूतेनाक्रन्दनेन रोदनरवेणाक्रान्तं व्याप्तं शुद्धान्तमपि अन्तःपुरमपि आचान्ता निःशोषिता व्यथा पीडा यस्य तथाभूतं विजयामहादेव्यां विहितवत्यां कृतवत्यां सत्याम्, दिव्यानां सुन्दराणामुपधानामुपहाराणां दर्शने प्रकटने उत्सुका उत्कण्ठिता ये देशाधिपास्तत्तज्जनपदाधिपास्तैः प्रतीक्ष्योऽवसरः समयो येषु तेषु केषुचिद् वासरेषु दिनेषु निर्वासितेषु व्यपगमितेषु सत्सु सर्वान् विजयत इत्येवं शीलः सर्वविजयी अयं महाराजो विजयानन्दनस्य जीवंधरस्य रिपुः काष्ठाङ्गारस्तस्य विजयाभ्युपायानां वितर्कणे विचारणे परतन्त्रो भवन् मन्त्रशालायां मन्त्रिभिः सचिवैः समं मन्त्रयामास गुप्तविमर्शं चकार। आचष्टे स्म च—'कथयामास च काष्ठाङ्गारेण इह मद्राजधान्यां प्रहितं प्रेषितं सन्देशं वाचिकं दर्शय' इति सातिशयो विवेको यस्य तं प्रचुरविवेकवन्तं गणकप्रवेकं लिपिकश्रेष्ठम्। स च गणकप्रवेकः 'तथा' इति विहिताञ्जलिः कृताञ्जलिः सन् वैदेहीसुतस्य विजयानन्दनस्याहितेन शत्रुणा काष्ठाङ्गारेणेति यावत् प्रहितं प्रेषितं पत्रम् उन्मुद्रमुद्घाटितमुद्रं विधाय कृत्वा विधिवद् वाचयामास।

§ २३८. पत्रमिदमिति—'काष्ठाङ्गारस्येदं पत्रं विदेहाधिपतिर्गोविन्दमहाराजो विलोकयेत्पश्येत्। केनाप्यनिर्वचनीयेन पापेन दुरितेन मे मम मूर्ध्नि शिरसि शोच्याहं शोकयोग्यं किमपि वाच्यं गर्ह्यं पतितम्।

परिगृहीत, पवित्रतासे आलिंगित, कीर्तिसे हाथमें स्वीकृत (विवाहित) और गद्गद वाणीसे कण्ठमें स्पृष्ट हो गये।

§ २३७. तदनन्तर सत्यन्धर महाराजके मरणके स्मरणसे समुद्र मथनके शब्दको तिरस्कृत करनेवाली रोनेकी ध्वनिसे व्याप्त अन्तःपुरको भी जब विजया महादेवीने व्यथासे रहित कर दिया और दिव्य सामग्रीके देखनेमें उत्सुक तत्तद् देशके राजाओंके द्वारा जिनमें अवसरकी प्रतीक्षा की जा रही थी ऐसे कितने ही दिन जब निकल चुके तब सबको जीतनेवाले गोविन्द महाराजने जीवन्धर स्वामीके शत्रुओंको जीतनेका उपाय विचार करनेमें परतन्त्र होते हुए मन्त्रशालामें मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा की और सातिशय विवेकको धारण करनेवाले प्रधान लेखापालसे कहा कि यहाँ काष्ठांगारने जो सन्देश भेजा है वह दिखलाओ। प्रधान लेखपाल हाथ जोड़ 'तथास्तु' कह काष्ठांगारके द्वारा भेजे हुए पत्रको खोल विधिपूर्वक बाँचने लगा। पत्रमें लिखा था—

§ २३८. 'विदेहके महाराज काष्ठांगारके इस पत्रको देखें। किसी पापसे मेरे मस्तकपर

---

[1] क० उपशान्तव्यथम्।

केनापि शोच्याहं किमपि वाच्यम्। न तत्तथेति याथात्म्यविदामग्रयायी भवानवैति चेदपि, चेतसि विद्यमानमिदमवद्यानुषङ्गभयादावेद्यते। केनाप्युन्मस्तकमदावलेपादपहस्तितपकेन हस्तिना क्वचिदाक्रीडे क्रीडन् पीडां जगतः प्रवर्तयामास मर्त्येश्वरः। ततः परिणतकरिणा कृतमेव मयि परिणतं किंचिन्नाम। अकिंचनमेवं कञ्जासनावल्लभं[1] कल्पितवतः काश्यपीपतेः कारणाकरणे [2]कारणं किं नु स्यात्। को नाम पादपस्कन्धमध्यासीनः परशुना मूर्खस्तन्मूलमुन्मूलयेत्। को वा तरिष्यन्वारिधिं वहित्रेण तत्रैव जाल्मश्छिद्राणि जनयेत्। को वा पिपासुः पानीयचषकं पापः पांसुपूरैः पूरयेत्। कश्च नु धेनोरापीनभारेण क्षीरस्यन्क्षतं क्षुरेण पातकः सम्पादयेत्। गतानुगतिकः खलु लोकः। कस्तमनुसर्तुं समर्थो भवेत्। मान्यो भवानेतन्मनस्य[3]कुर्वन्गुर्वीमिमाम-

तत्पापं तथा तादृशं नेति याथात्म्यविदां यथार्थज्ञानाम् अग्रयायी प्रधानो भवान् अवैति जानाति चेदपि यद्यपि तथापि चेतसि स्वान्ते विद्यमानमिदं वाच्यम् अवद्यानुषङ्गभयात्पापसंपर्कभीतेः आवेद्यते कथ्यते। उन्मस्तकमदस्य समुत्कटदानस्यावलेपाद् गर्वात् अपहस्तितो दूरीकृतो हस्तिपको नियन्ता येन तथाभूतेन केनापि हस्तिना गजेन क्वचित् कस्मिन्नपि आक्रीड उद्याने क्रीडन् क्रीडां कुर्वन् मर्त्येश्वरः सत्यंधरो महाराजो जगतो लोकस्य पीडां कष्टं प्रवर्तयामास। ततः परिणतश्चासौ करी चेति परिणतकरी तेन, तिर्यग्दन्तप्रहारं कर्तुमुद्यतेन गजेन मयि किंचिद् वचनागोचरं नाम मयि परिणतं कृतमेव राजानं हत्वा तदपराधो मयि संचारित एवेति भावः। अकिंचनं माम् एवमनेन प्रकारेण कञ्जासनावल्लभं लक्ष्मीवल्लभं कल्पितवतः कृतवतः काश्यपीपतेः सत्यंधरमहीपतेः कारणाकरणे यातनाविधाने 'कारणा तु यातना तीव्रवेदना' इत्यमरः- किं नु कारणं स्यात्? येनाहमकिंचनो नृपतिपदमध्यारोपितस्तस्यैवाहमकारणं कारणाकारणं कथं स्याम्? इति भावः। को नाम मूर्खः पादपस्कन्धस्य वृक्षस्कन्धस्य मध्यमध्यासीनः सन् परशुना कुठारेण तन्मूलं तरुमूलम् उन्मूलयेत् उत्पाटयेत्? को वा जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी वहित्रेण नौकया वारिधिं सागरं तरिष्यन् तत्रैव वहित्रे छिद्राणि विवराणि जनयेत्? कश्च नु पातकः पापी धेनोर्गोः आपीनभारेण स्तनभारेण क्षीरस्यन् क्षीरं गृहीतुमिच्छन् क्षुरेण क्षतं व्रणं सम्पादयेत् कुर्यात्? खलु निश्चयेन लोको गतानुगतिको गतमनुगतिर्यस्य तथाभूतो वर्तते विवेकहीनो वर्तत इति भावः। तं लोकमनुसर्तुं तस्यानुसरणं कर्तुं कः

शोचनीय निन्दा आ पड़ी है। 'वह वास्तविक नहीं है' ऐसा यथार्थके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ आप यद्यपि जानते हैं तथापि पापके प्रसंगके भयसे चित्तमें विद्यमान यह निन्दा कही जा रही है। बहुत भारी मदके गर्वसे जिसने महावतको नष्ट कर दिया था ऐसे हाथीके साथ किसी उद्यानमें क्रीड़ा करते हुए सत्यन्धर महाराजने जगत्को पीड़ा उत्पन्न की। तदनन्तर तिरछा दन्तप्रहार करनेवाले हाथीने जो किया वह मुझपर परिणत हुआ। अर्थात् उस उन्मत्त हाथीने राजाकी हत्या की और हमारे ऊपर उसका पाप मढ़ा गया। अरे मुझ-जैसे अकिंचनको जिसने राजा बना दिया उन महाराज सत्यन्धरको पीड़ा पहुँचानेमें क्या कारण हो सकता है? ऐसा कौन मूर्ख होगा जो वृक्षके स्कन्धपर बैठकर कुठारसे उसके मूलको काटेगा? ऐसा कौन अविवेकी होगा जो नावसे समुद्रको तैरनेकी इच्छा करता हुआ उसी नावमें छिद्र उत्पन्न करेगा? ऐसा कौन पापी होगा जो पीनेकी इच्छा करता हुआ पानीके कटोरेको धूलिसे भर देगा? ऐसा कौन पातकी होगा जो गायके स्तनसे दूधकी इच्छा करता हुआ उसे छुरासे घायल करेगा? लोक तो गतानुगतिक है अतः उसका अनुसरण करनेके लिए कौन समर्थ हो सकता है? आप माननीय हैं अतः इसे मनमें न करते हुए बहुत शीघ्र आकर मेरी

१. लक्ष्मीवल्लभम् इति टि०। २. क० अकारणं करणे, ग० अकारणकरणे। ३. क० भवानेतन्मनस्यकुर्वन्।

स्माकमाकस्मिकीमकीर्त्तिमधिकतूर्णं समागत्य संमार्जयेत् । उपार्जितमपि दुष्कृतं सुकृतिसमागमो हि गमयेत् । किमन्यत् । आयुष्मतः किंकरं मां गणयेत् ।'

§ २३९. इति कापटिकप्रष्ठेन काष्ठाङ्गारेण प्रहितसंदेशार्थसमाकर्णनेन निर्णीततदतिसंधानसंधः स वसुंधरापतिः 'अहो सचिवाः, साचिव्यमस्मदभीष्टार्थे दिष्ट्यानुतिष्ठति काष्ठाङ्गारः, यतः प्रागेव केनापि व्याजेन राजघमेनं समूलघातं हन्तुमुन्मनायमानान्नः स्ववधाय कृत्योत्थापनमिव कुर्वन्स्वयमेवाह्वयति । तस्मादस्मत्प्रतारणपराकूतेन तेनाहूता वयमकृतकालक्षेपाः क्षेपीयः प्रस्थाय प्रस्ताविताऽस्मद्दुहितृविवाहमिषाः समूलकाषं करिष्यामस्तं भुजिष्यम्' इति बभाषे । घोषयांचकार 'व्यापितकाष्ठाचक्रं काष्ठाङ्गारेण सार्धं वर्धते धात्रीपतेर्मैत्री । गोत्रस्खलनेनाप्यस्य शात्रववार्ता

समर्थः स्यात् ? मान्यः समादरणीयो भवान् एतद् दोषारोपणं मनसि अकुर्वन् अस्माकम् इमां निवेदितां गुर्वीम् आकस्मिकीम् अकस्माद्भवाम् अकीर्तिमयशः अधिकतूर्णं शीघ्रातिशयेन समागत्य संमार्जयेत् दूरीकुर्यात् । उपार्जितमपि संचितमपि दुष्कृतं पापं सुकृतिसमागमः पुण्यात्मजनसमागमो हि निश्चयेन गमयेत् दूरीकुर्यात् । अन्यत् किम् ? मां काष्ठाङ्गारम् आयुष्मतः स्वस्य किंकरं सेवकं गणयेत् ।

§ २३९. इतीति—इतीत्थं कापटिकप्रष्ठेन मायाविमहत्तरेण प्रहितः प्रेषितो यः संदेशार्थस्तस्य समाकर्णनेन निर्णीता निश्चिता तस्य काष्ठाङ्गारस्यातिसंधानसंधा वञ्चनाभिप्रायो येन तथाभूत. स वसुंधरापतिर्गोविन्दमहाराजः 'अहो सचिवाः । दिष्ट्या दैवेन काष्ठाङ्गारः अस्मदभीष्टार्थे स्वाभिप्रेतार्थे साचिव्यं साहाय्यम् अनुतिष्ठति विदधाति, यतः प्रागेव पूर्वमेव केनापि व्याजेनच्छलेन राजघ्नं नृपस्य हन्तारम् एनं काष्ठाङ्गारं समूलं हत्वेति समूलघातं हन्तुं मारयितुम् उन्मनायमानान् उत्कण्ठितीभवतो नोऽस्मान् स्ववधाय स्वविघाताय कृत्योत्थानं कार्योत्थापनं शस्त्रोत्थापनं वा कुर्वन्निव स्वयमेव आह्वयति आकारयति । 'कृत्या क्रियादेवतयोस्त्रिषु विद्विष्टकार्ययोः' इति मेदिनी । तस्मात्कारणात् अस्माकं प्रतारणपरं प्रवञ्चनोद्यतमाकूतमभिप्रायो यस्य तथाभूतेन तेन काष्ठाङ्गारेण आहूता आकारिता वयम् अकृतकालक्षेपा अकृतविलम्बनाः क्षेपीयः शीघ्रं प्रस्थाय प्रयाय प्रस्तावितः समुपस्थापितो योऽस्मद्दुहितृविवाहः स्वपुत्रीपरिणयः स एव मिषं येषां तथाभूताः सन्तः तं काष्ठाङ्गारं समूलं कषित्वेति समूलकाषं भुजिष्यं दासं करिष्यामः' इति बभाषे कथितवान् । घोषयाञ्चकारेति—व्यापितं काष्ठाचक्रं दिङ्मण्डलं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा घोषयाञ्चकार 'यत् काष्ठाङ्गारेण सार्धं धात्रीपतेर्गोविन्दमहाराजस्य मैत्री वर्तते । निजासूनां स्वप्राणानां प्रणयिनः स्नेह-

---

इस आकस्मिक भारी अपकीर्तिको दूर कर सकते हैं । क्योंकि पुण्यात्माओंका समागम उपार्जित पापको भी दूर कर देता है । और क्या ? आप मुझे अपना किंकर समझें' ।

§ २३९. इस प्रकार कपटियोंमें श्रेष्ठ काष्ठांगारके द्वारा प्रेषित सन्देशका अर्थ श्रवण करनेसे जिन्होंने उसके तीव्र मायापूर्ण अभिप्रायका निर्णय कर लिया था ऐसे गोविन्द महाराज बोले कि 'अहो मन्त्रियो ! भाग्यवश काष्ठांगार हमारे अभिलषित कार्यमें सहायता कर रहा है । क्योंकि इस राजहत्यारेको पहले ही किसी बहानेसे समूल नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाले हम लोगोंको यह अपने वधके लिए कार्यको उठाते हुएके समान स्वयं बुला रहा है । इसलिए हम लोगोंको ठगनेका अभिप्राय रखनेवाले उस काष्ठांगारके द्वारा बुलाये हुए हम लोग समयको व्यतीत न कर शीघ्र ही प्रस्थान करें और अपनी पुत्रीके विवाहका मिष प्रस्तावित कर उस दासको समूल नष्ट कर दें । गोविन्द महाराजने यह घोषणा भी करा दी कि हमारी

---

१. म० कषिष्यामः ।

निवर्तयन्तु निजासुप्रणयिनः प्राणिनः' इति। निदध्यौ च निजध्यानानुपदं मदलोलुपमधुपव्रातविहितनियतोपास्तिकैर्हास्तिकैः स्थलजलसमानगमनजवनतातुलितमातरिश्वभिरश्वीयैरसकृत्कृतापदानसंभवदस्तोकहस्तवदनुरूपयशस्तातिभिः पदातिभिर्लङ्घिता[1] चलशृङ्गैः शताङ्गैश्च बहुशतसहस्रैर्बहुमताम्, अमितपताकिनीपतिभिरहंप्रथमिकया पृथगेव सभयं सदैन्यं सनामकथनं साङ्गुलिनिर्देशं साञ्जलिबन्धं च जवजननचिह्नलक्ष्मीप्रतिपादनपूर्वकंप्रदर्श्यमानाम्, अक्षूणामक्षौहिणीम्।

§ २४०. अथ प्रथितप्रयाणानुगुणे पुण्यतमे लग्ने निर्गत्य निर्विघ्नतायै विहितजिनपतिवरिवस्यः[2] सवयस्यानुजेन सत्यंधरतनुजेन सार्धमर्थिजनमनोरथानर्थविसरवितरणेन चरितार्थीकुर्वन्स-

---

युक्ताः प्राणिनोऽसुमन्तो गोत्रस्खलनेनापि भ्रान्त्या नामस्खलनेनापि अस्य काष्ठाङ्गारस्य शात्रववार्तां शत्रुत्वसमाचारं निवर्तयन्तु दूरीकुर्वन्तु' इति। निदध्यौ चेति—निदध्यौ च विलोकयामास च निजध्यानानुपदं स्वध्यानानन्तरमेव मदलोलुपानां दानलुब्धानां मधुपानां व्रातेन समूहेन विहिता कृता नियतोपास्तिर्नियतसेवा येषां तथाभूतैर्हास्तिकैर्हस्तिसमूहैः, स्थलजलयोः समानगमने या जवनता-शीघ्रगामिता तया तुलितो मातरिश्वा पवनो यैस्तथाभूतैः अश्वीयैः अश्वसमूहैः, असकृत्कृतेन नैकवारं विहितेनापदानेन साहसेन संभवन्ती अस्तोकहस्तवदनुरूपा विपुलकुशलजनानुकूला यशस्तातिः कीर्तिसमूहो येषां तथाभूतैः पदातिभिः पत्तिभिः लङ्घितमतिक्रान्तमचलशृङ्गं पर्वतशिखरं यैस्तथाभूतैः बहुशतसहस्रैरनेकैः शताङ्गै रथैश्च बहुमताम् इष्टाम्, अमिता अपरिमिता ये पताकिनीपतयः सेनापतयस्तैः अहंप्रथमिकया अहंपूर्विकया पृथगेव सभयं सत्रासं सदैन्यं सकातर्यं सनामकथनं स्वाभिधानसहितं साङ्गुलिनिर्देशं करशाखा निर्देशसहितं साञ्जलिबन्धं च करपुटबन्धयुतं च जवजननानि वेगजननानि यानि चिह्नानि तेषां लक्ष्म्याः शोभायाः प्रतिपादनपूर्वकं निर्देशपुरस्सरं यथा स्यात्तथा प्रदर्श्यमानाम् अक्षूणां विशालामपराभूतां वा अक्षौहिणीं सेनाम्।

§ २४०. अथेति—अथानन्तरं प्रथितस्य प्रसिद्धस्य प्रयाणस्य प्रस्थानस्यानुगुणेऽनुकूले पुण्यतमे प्रशस्ततमे लग्ने समये विघ्नानामभावो निर्विघ्नं तस्य भावो निर्विघ्नता तस्यै विहिता कृता जिनपतेर्जिनेन्द्रस्य वरिवस्या पूजा येन तथाभूतः सन् वयस्यानुजैः सह वर्तमान इति सवयस्यानुजस्तेन सुहृल्लघुसहोदरसहितेन सत्यंधरतनुजेन जीवंधरेण सार्धं साकम् अर्थिजनानां याचकानां मनोरथा अभिलषितानि तान्

काष्ठांगारके साथ समस्त दिक्चक्रको व्याप्त करनेवाली मित्रता बढ़ रही है। अतः अपने प्राणोंसे स्नेह रखनेवाले प्राणी भूलकर भी शत्रुसम्बन्धी वार्तालाप न करें। उन्होंने अपना ध्यान जाते ही उस बहुत भारी सेनाको देखा कि जो मदके लोभी भ्रमर समूहके द्वारा जिनकी निश्चित उपासना हो रही थी ऐसे हाथियों, स्थल और जलमें समान वेगसे चलनेके कारण जो वायुकी तुलना कर रहे थे ऐसे घोड़ों, बार-बार किये हुए पराक्रमसे जिनका अत्यधिक कुशल मनुष्योंके अनुरूप यशका समूह उत्पन्न हो रहा था ऐसे पैदल सैनिकों, और पर्वतके शिखरको भी जिन्होंने लाँघ दिया था ऐसे लाखों रथोंसे श्रेष्ठ थी तथा अपरिमित सेनापति लोग 'मैं पहले दिखाऊँ, मैं पहले दिखाऊँ' इस प्रतिस्पर्धासे पृथक्-पृथक् भय, दीनता, स्वनाम कथन, अंगुलि-द्वारा निर्देश, और अंजलि-बन्धनके साथ वेग उत्पन्न करनेवाले चिह्नोंकी शोभा बतलाते हुए जिसे दिखला रहे थे।

§ २४ . अथानन्तर जिन्होंने निर्विघ्नताके लिए जिनेन्द्र भगवान्की पूजा की थी और जो धन-समूहके द्वारा याचक जनोंके मनोरथको सफल कर रहे थे ऐसे गोविन्द महाराज, प्रसिद्ध

---

१. क० पदातिभिर्विलङ्घि–। २. क० वरिवस्येन।

र्वतः प्रसरन्त्या विसृमरविविधयोधा[1]युधाभरणकिरणोल्लसत्तटिल्लतासंचयकञ्चुकितककुभा करटतटनिर्यदमितमदजलधाराप्लावितधरातलद्विरदनीरदनीरन्ध्रितवियदन्तरालया स्थैर्यविजिताखण्डलधनुःकाण्डकोदण्डमण्डलया ताण्डवितशिखण्डिमण्डलमहाध्वानस्त्यानस्तनितसातङ्कभुजङ्गया तुङ्गतुरङ्गखुरशिखरखननजनितघनतरपरागपटलपयःशीकरनिकरनिबिडितनिश्छिम्पवर्त्मना प्रावृषेव प्रेक्ष्यमाणया वाहिन्या वाहिनोपतिरिव प्रलयकालोद्वेलः प्रच्छादितपृथ्वीतलः प्रत्यर्थिनिर्मूलनाय हेलया हेमाङ्गदविषयं प्रति ययौ ।

§ २४१. ततश्च वलक्षतरवारबाणोल्लसत्सौविदल्लवल्लभकरपल्लवकलितवित्रासकवेत्र-

अर्थविसरस्य धनसमूहस्य वितरणेन दानेन चरितार्थीकुर्वन् सफलयन् सर्वतः समन्तात् प्रसरन्त्या, विसृमरा विसरणशीला विविधयोधानां नानासैनिकानां य आयुधाभरणकिरणाः शस्त्ररूपालंकारमरीचयस्तैरुल्लसन्ती तटिल्लतासंचयेन विद्युद्वल्लीसमूहेन कञ्चुकिता व्याप्ताः ककुभो दिशो यया तया, करटतटेभ्यो गण्डस्थलतटेभ्यो निर्यन्त्यो निर्गच्छन्त्यो या अमितमदजलधारा अपरिमितमदाम्बुप्रवाहास्ताभिः प्लावितं धरातलं भूतलं यैस्तथाभूता ये द्विरदा हस्तिनस्त एव नीरदा मेघास्तैर्नीरन्ध्रितं निश्छिद्रीकृतं वियदन्तरालं गगनमध्यं यया तया, स्थैर्येण स्थिरत्वेन विजितं पराभूतमाखण्डलस्य शक्रस्य धनुःकाण्डं येन तथाभूतं कोदण्डमण्डलं चापचक्रं यस्यास्तया, ताण्डवितं नटितं शिखण्डिमण्डलं मयूरमण्डलं येन तथाभूतो यो महाध्वानो महाशब्दस्तस्य स्त्यानं प्रतिध्वनिः स एव स्तनितं घनगर्जितं तेन सातङ्काः सभयीकृता भुजङ्गा नागा यया तया, तुङ्गा उन्नता ये तुरङ्गा अश्वास्तेषां खुराणां शफानां शिखरेण अग्रभागेन खननं क्षोदनं तेन जनितः समुत्पन्नो यो घनतरपरागपटलः सान्द्रतररजोराशिः स एव पयःशीकरनिकरो जलकणकलापस्तेन निबिडितं व्याप्तं निश्छिम्पवर्त्म गगनं यया तया, प्रावृषेव वर्षर्तुनेव प्रेक्ष्यमाणया दृश्यमानया वाहिन्या सेनया प्रलयकाले वेलां तटीमुत्क्रान्त इति प्रलयकालोद्वेलो वाहिनोपतिरिव नदीपतिरिव प्रच्छादितं व्याप्तं पृथ्वीतलं येन तथाभूतः सन् प्रत्यर्थिनिर्मूलनाय शत्रूत्पाटनाय हेलयानायासेन हेमाङ्गदविषयं काश्मीरजनपदं प्रति ययौ ।

§ २४१. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरञ्च सैन्यं सेनायां हेमाङ्गदविषयं तन्नामजनपदं विविक्षुषि प्रवेष्टुमिच्छुनि सतीति सम्बन्धः। अथ सैन्यस्य विशेषणान्याह —वलक्षेति—वलक्षतरैरतिशुक्लैर्वारबाणैः

प्रस्थानके अनुरूप अत्यन्त शुभ लग्नमें निकलकर मित्रों और छोटे भाईसे सहित जीवन्धर स्वामीके साथ वर्षा ऋतुके समान दिखनेवाली सेनासे प्रलयकालके उद्वेल समुद्रके समान पृथिवीतलको आच्छादित करते हुए शत्रुका निर्मूल नाश करनेके लिए अनायास ही हेमाङ्गद देशकी ओर चल पड़े। उस समय उनकी वह सेना फैलनेवाले नानायोधाओंके शस्त्ररूपी आभूषणोंकी किरणोंरूपी चमकती हुई बिजलियोंके समूहसे दिशाओंको व्याप्त कर रही थी। गण्डस्थलोंसे झरते हुए अपरिमित मदजलकी धारासे पृथिवीतलको डुबोनेवाले हाथीरूपी मेघोंसे उसने आकाशके अन्तरालको व्याप्त कर रखा था। उसके धनुषोंके समूहने अपनी स्थिरतासे इन्द्रधनुषोंके दण्डको जीत लिया था। मयूरोंके समूहको ताण्डव नृत्यसे युक्त करनेवाली महाध्वनिरूप बड़ी भारी गर्जनासे उसने साँपोंको भयभीत कर दिया था। और ऊँचे-ऊँचे घोड़ोंके खुरोंके शिखरसे खुदनेके कारण उत्पन्न अत्यन्त सघन परागसमूहरूप जलके छींटोंके समूहसे उसने आकाशको व्याप्त कर रखा था।

§ २४१. तदनन्तर अत्यन्त सफेद वारबाणोंसे सुशोभित श्रेष्ठ कंचुकियोंके हस्त-पल्लवोंमें

[1] म० योधा– ।

क्वाल्वयंमाणराजपरिबर्हधारिणि राजकीयदवीयःप्रदेशप्रापणश्रवणक्षणसत्वरसंभाण्डायमानभाण्डागारिकपरिषदि प्रश्रयप्रणतोत्थितगुणधनापृच्छ्यमानगुरुजनगौरवविहिताशिषि प्रतिनिवर्तनप्रत्याशाविधुरभीरुचारु[2]भटनिर्दिश्यमाननिधिन्यासकोणक्षोणिनि विलम्बितलम्बोदरदासेरकसमाह्वानपौनःपुन्यखिन्नस्विन्नपुरोयायिनि विस्मृतविस्मयनीयाहार्याहरणधिषणाप्रेष्यमाणभुजिष्याभाष्यमाणव्यक्तेतरविसंवादवचसि प्रसभप्रयाणप्रवणतानुष्ठितपृष्ठावलोकनानुवर्तमानप्रतिनिवर्त्यमानसनाभिसंसदि प्रगुणवलनभ्रष्टगोणीकदुष्टशाक्वरदूरवित्रासितयात्रिकसंबाधे चण्डचण्डालपेटकनिबिडमुष्टि-

कवचैरुल्लसन्तः शोभमाना ये सौविदल्लवल्लभाः कञ्चुकीप्रवरास्तेषां करपल्लवैः पाणिकिसलयैः कलिता धृता या विभ्रामकवेत्रलता भयोत्पादकवेत्रवल्लयस्ताभिस्त्वर्यमाणाः शैघ्र्यं कार्यमाणा ये राजानस्तेषां परिबर्हो नृपार्हपरिच्छदास्तेषां धारिणि, राजकीयेति—दवीयःप्रदेशस्य दूरतरप्रदेशस्य प्रापणं प्रापकं वचनं राजकीयं राजसम्बन्धि यद् दवीयःप्रदेशप्रापणं तस्य श्रवणक्षणे समाकर्णनावसरे सत्वरं शीघ्रं यथा स्यात्तथा संभाण्डायमाना पात्रादिकमेकत्र कुर्वाणा भाण्डागारिकपरिषद् भाण्डागारनियुक्तजनसमूहो यस्मिंस्तस्मिन्, प्रश्रयेति—प्रश्रयेण विनयेन आदौ प्रणताः पश्चादुत्थिता ये गुणधना गुणिजनास्तैरापृच्छ्यमाना ये गुरुजनास्तेषां गौरवेण विहिता आशीर्यस्मिंस्तस्मिन्, प्रतिनिवर्तनेति—प्रतिनिवर्तनस्य प्रत्यागमनस्य या प्रत्याशा तया विधुरा दुःखिनाः भीरवो भयशीलाश्च ये चारुभटाः सुन्दरसैनिकास्तैर्निर्दिश्यमाना गृहवासिजनेभ्यः प्रदर्श्यमाना निधिन्यासस्य धननिक्षेपस्य कोणक्षोणी कोणभूमिर्यस्मिंस्तस्मिन्, विलम्बितेति—विलम्बितः कृतकालक्षेपो यो लम्बोदरस्तुन्दिलो दासेरको दास्या अपत्यं तस्य समाह्वानस्य आकारणस्य यत्पौनःपुन्यं तेन खिन्नः खेदयुक्तः स्विन्नः स्वेदयुक्तश्च पुरोयायी अग्रेसरो यस्मिंस्तस्मिन्, विस्मृतेति—विस्मृतानि स्मृत्यगोचराणि विस्मयनीयानि विस्मयोत्पादकानि यान्याहार्याणि भूषणानि तेषामाहरणधिषणया आनयनमनीषया प्रेष्यमाणा ये भुजिष्या दासास्तैराभाष्यमाणानि कथ्यमानानि व्यक्तेतरविसंवादानि स्पष्टविरोधयुक्तानि वचांसि यस्मिंस्तस्मिन्, प्रसभेति—प्रसभप्रयाणे हठप्रयाणे या प्रवणता निपुणता तयानुष्ठितं कृतं यत् पृष्ठावलोकनं पश्चाद्दृष्टिप्रसारणं तेनानुवर्तमाना अनुगच्छन्तो प्रतिनिवर्त्यमानसनाभीनां प्रतिनिवर्तनोद्यतसहोदराणां संसत्समूहो यस्मिंस्तस्मिन्, प्रगुणेति—प्रगुण-

धारण की हुई, भयोत्पादक वेत्रलताओंसे जिसमें राजाके उपकरण धारण करनेवाले मनुष्योंको शीघ्र चलनेके लिए प्रेरित किया जा रहा था। राजाके अत्यन्त दूरवर्ती स्थान तक यह सब सामान भेजना है, यह समाचार सुननेके समय ही जिसमें इकट्ठे हुए भाण्डारियोंका समूह शीघ्रतासे युक्त हो गया था। विनयपूर्वक नमस्कार किये जानेके बाद खड़े हुए गुणरूपी धनके धारक मनुष्योंके द्वारा पूछे जानेवाले गुरुजन जिसमें गौरवके साथ आशीर्वाद प्रदान कर रहे थे। लौटनेकी आशासे रहित भीरु योद्धाओंके द्वारा जिसमें धन रखनेके कोनेसे युक्त पृथिवी दिखायी जा रही थी[3]। पीछे देर करनेवाले स्थूलपेटके धारक दासीपुत्रोंको बार-बार बुलानेसे जिसमें आगे जानेवाले लोग खिन्न तथा पसीनासे तर हो गये थे। भूले हुए आश्चर्यकारक आभूषणोंको लानेकी बुद्धिसे भेजे हुए सेवकोंके द्वारा जिसमें अस्पष्ट तथा विरोधपूर्ण वचन कहे जा रहे थे। वेगसे चलनेकी दक्षतासे किये हुए पृष्ठावलोकनसे जिसमें लौटनेवाले सगे-सम्बन्धियोंका समूह पुनः पीछे-पीछे चलने लगता था[4]। सीधी चालसे गोण

१. क० प्रेक्ष्यमाण–। २. म० चारभट। ३. भयभीत योद्धा लौटनेकी आशासे रहित होनेके कारण अपने घरके लोगोंको घरकी पृथिवीका वह कोना बतला रहे थे जिसमें कि धन गड़ा हुआ था। ४. कुछ लोग बड़े वेगसे आगे जा रहे थे, उनके साथी निराश हो लौटनेवाले थे परन्तु आगे जानेवालेने ज्यों ही पीछेकी ओर मुड़कर देखा त्योंही लौटनेवाले पुनः उनके पीछे चलने लगे।

घटितकठोरकुठारपाटितविटपिविशङ्कटीकृतसंकटारण्यसरणिनि खननकरणनिपुणखानित्रकगणक्षणसंपादितोदम्भःकूपशुम्भितमरुभुवि तात्कालिककृत्यदक्षतक्षकसार्थसामर्थ्यवैचित्र्यरचितवहित्रसुतरकाकपेयसरिति पुरःप्रसारितभूरिभीकरकलकलारवकादिशीककेसरिणि चरणकषणोत्थितधरणीविसृमररेणुविसरमसृणितमयूखमालिनि वारणपरिबृढोत्पाटितपार्श्वपादपपरिघसप्रतिघाध्वनि [1]कण्ठरज्जुकषणोन्मथितत्वगालानवनस्पत्युद्वीक्षणवनचरानुमीयमानवारणवर्ष्मणि प्रतिगजगन्धाघ्राणप्रतीपगामिकाननद्विपप्रतिग्रहकृताग्रहभटप्राग्रहरकोलाहलभरितहरिति द्विरदतुरगखरकरभमहिषमेष-

बलनेन सातिशयक्रोडनेन भ्रष्टा पातिता गोणी पृष्ठभारो यैस्तथाभूता ये दुष्टशाक्वरा दुष्टवृषभास्तैर्दूरेण वित्रासिता भीषिता ये यात्रिकाः सहयायिनस्तेषां संबाधो विमर्दो यस्मिंस्तस्मिन्, चण्डेति—चण्डा अत्यन्तकोपना ये चण्डाला जनङ्गमास्तेषां पेटकस्य समूहस्य निबिडमुष्टिषु सघनमुष्टिषु घटिता धृता ये कठोरकुठारास्तीक्ष्णपरशवस्तैः पाटिता विदारिता ये विटपिनो वृक्षास्तैर्विशङ्कटीकृता विशालीकृता संकटारण्यसरणिः संकीर्णकान्तारमार्गो यस्मिंस्तस्मिन्, खननेति—खननकरणे खोदनकार्ये निपुणाश्चतुरा ये खानित्रकाः खननकर्तारस्तेषां गणेन समूहेन क्षणेनाल्पेनैव कालेन सम्पादिता निर्मिता ये उदम्भःकूपा उत्कृष्टजलप्रहयस्तैः शुम्भिता शोभिता मरुभूरजलस्थानभूमिर्यस्मिंस्तस्मिन्, तात्कालिकेति—तात्कालिककृत्ये तात्कालिककार्ये दक्षाः समर्था ये तक्षकाः स्थपतयस्तेषां सार्थस्य समूहस्य यत् सामर्थ्यवैचित्र्यं शक्तिमत्त्ववैविध्यं तेन रचितैर्वहित्रकैर्नौकाभिः सुतरा काकपेया गम्भीराः सरितो नद्यो यस्मिंस्तस्मिन्, पुर इति—पुरः प्रसारितोऽग्रे विस्तारितो यो भूरिभीकरः प्रचुरभयोत्पादकः कलकलारवः कलकलाशब्दस्तेन कादिशीका भयद्रुताः केसरिणो मृगेन्द्रा यस्मिंस्तस्मिन्, चरणेति—चरणानां पादानां कषणेनोत्थित उत्पतितो यो धरण्याः पृथिव्या विसृमरो विसरणशीलो रेणुविसरो धूलिसमूहस्तेन मसृणितो मलिनो मयूखमाली दिनकरो यस्मिंस्तस्मिन्, वारणेति—वारणपरिबृढैर्गजराजैरुत्पाटिता उन्मूलिता ये पार्श्वपादपा निकटानोकहास्त एव परिघा अर्गलास्तैः सप्रतिघः सबाधोऽध्वा मार्गो यस्मिंस्तस्मिन्, कण्ठेति—कण्ठरज्जूनां ग्रीवारश्मीनां कषणेन घर्षणेनोन्मथिता त्वग् वल्कलं येषां तथाभूता य आलानवनस्पतयो बन्धनवृक्षास्तेषामुद्वीक्षणेन—ऊर्ध्वावलोकनेन वनचरैः किरातैरनुमीयमानं वारणवर्ष्म गजशरीरं यस्मिंस्तस्मिन् 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः, प्रतिगजेति—प्रतिगजानां प्रतिकूलकरिणां गन्धस्याघ्राणेन नासाविषयीकरणेन प्रतीपगामिनः प्रतिकूलगामिनो ये काननद्विपाः कान्तारकरिणस्तेषां प्रतिग्रहे बन्धने कृताग्रहा विहिताग्रहा ये भटप्राग्रहराः सैनिकश्रेष्ठास्तेषां कोलाहलेन कलकलशब्देन भरिता हरितो दिशो यस्मिंस्तस्मिन्, द्विरदेति—द्विरदा गजाः, तुरगा अश्वाः,

गिरा देनेवाले दुष्ट बैलके द्वारा दूरसे ही डराये हुए यात्रीजनोंके द्वारा जिसमें भीड़-भाड़ उत्पन्न हो रही थी। तीक्ष्ण प्रकृतिके धारक चाण्डालोंके समूहसे मजबूत मुट्ठियों-द्वारा पकड़े हुए कठोर कुल्हाड़ोंके द्वारा विदारित वृक्षोंसे जिसमें जंगलके संकीर्ण मार्ग विशाल बनाये जा रहे थे। खोदनेके कार्यमें निपुण खुदारोंके समूहसे क्षणभरमें तैयार किये हुए ऊपर तक जलसे भरे कुओंसे जिसमें मरुस्थलकी भूमि सुशोभित हो रही थी। तात्कालिक कार्योंके करनेमें निपुण बढ़इयोंके समूहकी सामर्थ्यकी विचित्रतासे बनायी गयी नौकाओंके द्वारा जिसमें गहरी नदियाँ सुखसे तैरने योग्य हो गयी थीं। आगे फैले हुए तथा बहुत भारी भय उत्पन्न करनेवाले जिसके कल-कल शब्दसे सिंह भयभीत होकर भाग गये थे। पैरोंकी रगड़से उठी हुई पृथिवीकी फैलनेवाली धूलिके समूहसे जिसने सूर्यको मटमैला कर दिया था। गजराजोंके द्वारा

१. तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः। गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ॥७६॥ रघुवंश ४ सर्ग।

शाक्वरशताङ्गशकटप्रमुखपृष्ठारोपिताभीष्टकशिपुसमेतसकलहेतिनि हेमाङ्गदविषयं विविशुषि सैन्ये, राजन्योऽप्युत्तरेण राजपुरीमुपकार्यां कल्पयेयुरिति शिल्पिसमाजाध्यक्षानादिक्षत्। प्राविक्षच्च तां क्षणकल्पितां स्वसंकल्पसिद्धिशङ्काप्रहृष्टेन काष्ठाङ्गारेण प्रसभं प्रत्युद्यातः पृथिवीपतिः।

§ २४२. अनन्तरमापाटलपटकुटीघटनायासक्लान्तस्वान्तेषु गृहचिन्तकेषु विलुठितोत्थितविधूतकायहयपीयमानतोयेषु तोयाशयेषु, बहुप्रयासप्रापितालानस्तम्भेषु मदस्तम्बेरमेषु सद्यःपाकसंपादनोद्युक्तमानसेषु महानसमुपस्थितेषु पुरस्तादेव पौरोगवेषु, सत्वरसंकल्पितमापणमासेदुषि प्रथमतरपणायनत्वरणभाजि वणिजि, वामहस्तावलम्बितमस्तककुटोष्ठासु कूपसरिदन्वेषिणीषु

खरा वैशाखनन्दनाः, करभा उष्ट्राः, महिषाः सैरिभाः, शाक्वरा वृषभाः, शताङ्गानि रथाः, शकटानि गन्त्र्यः, ते प्रमुखा येषां तेषां पृष्ठेषु आरोपिता अधिष्ठापिता अभीष्टकशिपुसमेता अभिलषितभोजनाच्छादनादिसहिताः सकलहेतयो निखिलशस्त्राणि यस्मिंस्तस्मिन्। राजन्योऽपीति—राजन्योऽपि गोविन्दमहाराजोऽपि राजपुरीमुत्तरेण 'एनपा द्वितीया' इति द्वितीया 'उपकार्यां राजार्हपटकुटीं कल्पयेयुः' इति शिल्पिसमाजस्य कार्मकरसमूहस्याध्यक्षान् प्रमुखान् आदिक्षत् आदिदेश। प्राविक्षच्चेति—प्राविक्षच्च प्रविवेश च क्षणकल्पितां सत्वरनिर्मितां तामुपकार्यां स्वसङ्कल्पस्य निजमनोरथस्य सिद्धेः शङ्कया प्रहृष्टः प्रसन्नस्तेन काष्ठाङ्गारेण प्रसभं हठात् प्रत्युद्यातोऽग्रेगत्वा सत्कृतः पृथिवीपतिर्गोविन्दमहीपतिः।

§ २४२. अनन्तरमिति—अनन्तरं प्रत्युद्गमनानन्तरम् आपाटलानामीषद्रक्तवर्णानां पटकुटीनां घटने निर्माणे य आयासः खेदस्तेन क्लान्तं खिन्नं स्वान्तं चित्तं येषां तथाभूतेषु गृहचिन्तकेषु सत्सु, आदौ विलुठिताः पश्चादुत्थिता इति विलुठितोत्थिताः तथाभूता विधूतकायाश्च कम्पितशरीराश्च ये हया वाजिनस्तैः पीयमानं तोयं येषां तथाभूतेषु तोयाशयेषु जलाशयेषु सत्सु, मदस्तम्बेरमेषु मत्तमतङ्गजेषु बहुप्रयासेन महाप्रयत्नेन प्रापिता आलानस्तम्भा बन्धनस्तम्भा यैस्तथाभूतेषु सत्सु, सद्यो झगिति पाकसंपादने भोजनपरिपाचने उद्युक्तं मानसं येषां तेषु पौरोगवेषु पाचकेषु पुरस्तादेव पूर्वमेव महानसं पाकशालाम् उपस्थितेषु प्राप्तेषु सत्सु, प्रथमतरं सर्वतः पूर्वं पणायने विक्रयणे त्वरणं शैघ्र्यं भजति तथाभूते वणिजि व्यापारिणि सत्वरसंकल्पितं शीघ्रनिर्मितम् आपणं हट्टम् आसेदुषि प्राप्तवति सति, वामहस्तेनावलम्बिता गृहीता मस्तक-

उखाड़े हुए समीपवर्ती वृक्षोंके लट्ठोंसे जिसमें मार्ग बाधापूर्ण थे। गलेकी रस्सीकी रगड़से उचड़ी हुई छालसे युक्त बाँधनेके वृक्षोंको ऊपर देख-देखकर जिसमें वनचर हाथियोंके शरीरका अनुमान कर रहे थे। प्रतिद्वन्द्वी हाथीकी गन्धको सूँघनेसे बिगड़े हुए जंगली हाथीको पकड़नेकी हठ करनेवाले श्रेष्ठ योद्धाओंके कोलाहलसे जिसमें दिशाएँ भर गयी थीं। तथा जिसके अभीष्ट अन्न और वस्त्रोंसे सहित समस्त हथियार हाथी, घोड़े, गधे, ऊँट, भैंसे, मेढ़े, बैल, रथ और गाड़ी आदि प्रमुख वाहनोंके पृष्ठपर रखे हुए थे। ऐसी सेना जब हेमांगद देशमें प्रवेश करनेको उद्यत हुई तब गोविन्द महाराजने शिल्पिसमाजके प्रमुखोंको आदेश दिया कि राजपुरीके उत्तरकी ओर राजवसतिका बनायी जाये। राजवसतिका क्षण-भरमें ही तैयार हो गयी और अपने संकल्पकी सिद्धिकी शंकासे हर्षित काष्ठांगारने जिनकी जोरदार अगवानी की थी ऐसे गोविन्द महाराजने उसमें प्रवेश किया।

§ २४२. तदनन्तर जब घरोंकी चिन्ता रखनेवाले लोग कुछ-कुछ लाल डेरोंके बनानेसे खिन्न चित्त हो गये, लोटकर खड़े हुए और शरीरको कम्पित कर चुकनेवाले घोड़ोंके द्वारा जब जलाशयोंका जल पीया जाने लगा, मदमाते हाथी जब बहुत भारी प्रयासके बाद बाँधनेके खम्भोंके पास ले जाये गये, शीघ्र ही रसोई तैयार करनेमें तत्पर चित्तवाले रसोइया जब पहलेसे ही रसोई-घरोंमें उपस्थित हो गये, सबसे पहले बिक्री करनेके लिए शीघ्रता

कुट्टिनीषु, प्रसभं बहिः प्रधावत्येधानाहारके दासेरके, स्नातानुलिप्ताङ्गासु ध्रियमाणभूषासु, वारयोषासु, व्यसनगौरवस्मारितपथकथाकथनलम्पटे दम्पतिनिवहे, अहंपूर्विकोपसरदनेकविधयोधावस्कन्दनकृताक्रोशे क्रोशशतान्तर्गतकुटुम्बिवर्गे, मार्गश्रमापनोदनमनीषानिहितदयिताङ्कशिरसि यवीयसि, विशङ्कटपीठप्रसारितप्रसवजालहेलानहनमनोहारिण्यां मालिकयुवतिश्रेण्याम्, श्रेणीभूतपादाताधिष्ठितासु काष्ठासु, काष्ठाङ्गारेण सबहुमानमुपायनीकृतमनतिवयस्कममन्दबलमाश्वीयं हास्तिकमप्यास्थानकृतावस्थितिरयमद्राक्षीत्, प्राहैषीच्चास्य प्रतिप्राभृतम्। अताडयच्च

कुटानां शिरोधृतकुम्भानामोष्ठा याभिस्तासु कुट्टिनीषु दासीषु कूपसरिदन्वेषिणीषु प्रहिनर्दीमार्गिणीषु सत्सु, एधान् काष्ठान् आहारके आहरणशीले दासेरके दासीपुत्रे सेवक इत्यर्थः, प्रसभं हठात् बहिः प्रधावति वेगेन गच्छति सति, आदौ स्नातं पश्चादनुलिप्तमङ्गं शरीरं यासां तासु वारयोषासु वेश्यासु ध्रियमाणा भूषा याभिस्तथाभूतासु सतीषु, दम्पतिनिवहे स्त्रीपुंससमूहे व्यसनगौरवेण कष्टातिशयेन स्मारिता याः पथिकथा मार्गवार्तास्तासां कथने प्ररूपणे लम्पटो लम्पाकस्तथाभूते सति क्रोशशतस्यान्तर्गतो मध्ये स्थितो यः कुटुम्बिवर्गस्तस्मिन् अहंपूर्विकया अहंप्रथमिकया उपसरन्तः समीपमागच्छन्तो येऽनेकविधयोधास्तेषामवस्कन्दनेनाक्रमणेन कृत आक्रोशो येन तथाभूते सति, अतिशयेन युवा यवीयान् तस्मिन् प्रौढतरुणे मार्गश्रमापनोदनस्य वर्त्मखेददूरीकरणस्य मनीषया बुद्ध्या निहितं स्थापितं दयिताया वल्लभाया अङ्के क्रोडे शिरो येन तथाभूते सति, मालिकानां स्रग्विक्रेतॄणां युवतयस्तरुण्यस्तासां श्रेणी तस्यां विशङ्कटे विशाले पीठे काष्ठफलके प्रसारितप्रसवानां प्रसारितपुष्पाणां जालस्य समूहस्य हेलयानायासेन नहनेन बन्धनेन मनो हरतीत्येवंशीला तथाभूतायां सत्याम्, काष्ठासु दिक्षु पदातीनां समूहः पादातं श्रेणीभूतं पङ्क्तिरूपेण स्थितं यत्पादातं पदातिसमूहस्तेनाधिष्ठितासु युक्तासु सतीषु, आस्थाने सभामण्डपे कृता विहितावस्थितिरुपवेशनं येन तथाभूतोऽयं गोविन्दाभिधानो महीपालः काष्ठाङ्गारेण तन्नामनृपेण सबहुमानं भूयिष्ठादरसहितम् उपायनीकृतमुपहृतम्, न विद्यतेऽतिवयो दीर्घावस्था यस्य तथाभूतम् अमन्दबलं प्रचुरपराक्रमम् आश्वीयं हयसमूहं हस्तिनां समूहो हास्तिकं गजसमूहम् अद्राक्षीत्। प्राहैषीच्च प्रजिघाय च अस्य काष्ठाङ्गारस्य प्रतिप्राभृतं

करनेवाले वणिक् जब शीघ्र निर्मित बाजारमें पहुँच गये, शिरपर रखे घड़ोंके ओठोंको बाँयें हाथसे पकड़नेवाली स्त्रियाँ जब कुएँ और नदियोंकी खोज करने लगीं, लकड़ियाँ लानेवाले दास जब बाहर वेगसे दौड़ने लगे, स्नान करनेके बाद शरीरमें चन्दनादिका लेप लगानेवाली वेश्याएँ जब आभूषण धारण करने लगीं, दम्पतियोंके समूह जब कष्टकी अधिकतासे स्मरणमें आगत मार्गकी कथाओंके कहनेमें लम्पट हो गये, सौ कोशके भीतरके गृहस्थ लोग जब पहले पहुँचनेकी प्रतिस्पर्धासे समीपमें आनेवाले अनेक प्रकारके योधाओंके आक्रमणसे चिल्लाने लगे, जब तरुण पुरुष मार्गका श्रम दूर करनेकी बुद्धिसे स्त्रियोंकी गोदमें शिर रखने लगे, जब मालाकारोंकी तरुण स्त्रियोंकी श्रेणी बड़ी भारी चौकीपर फैलाये हुए फूलोंके समूहको अनायास ही गूँथनेसे मनोहर दिखने लगीं, और दिशाएँ जब पंक्तिबद्ध पैदल सैनिकोंसे युक्त हो गयीं तब सभामें बैठे हुए गोविन्द महाराजने काष्ठांगारके द्वारा बहुत भारी सम्मानके साथ उपहारमें दिये हुए तरुण एवं अत्यन्त शक्तिशाली घोड़ोंका समूह तथा हाथियोंका दल देखा और बदलेमें काष्ठांगारके लिए भी भेंट भेजी। साथ ही यह डंका भी बजवा दिया कि जो कोई

१. तुच्छच्छायः स देशः स तु विरलजलः सोऽपि पाथः प्रहीणः
सा भूमिः क्षारतोया परुषदृषदसौ शर्कराकर्करा सा।
तत् क्षेत्रं कण्टकाढ्यं तृणविकलमदस्तत्तु धूलीकरालं
छायास्वेवं तरूणामभिदधति मिथः शैविरा मार्गदुःखम् ॥३॥ विक्रान्तकौरवे अंक १,

डिण्डिमम् 'अतिरुन्द्र[1] चन्द्रकयन्त्रनियन्त्रितं यो नाम युगपदेव पातयितुं शक्नोति शरेण शरव्यतां गतं वराहत्रयं वराहेऽस्मिन्नेव वरोऽयमस्मत्कुमार्याः स्यात्' इति। आयासिषुश्च चोलकेरलमालवमागधपाण्ड्यपारसीककलिङ्गकाश्मीरकाम्भोजप्रभृतिदेशाधिपा महीभृतः।

§ २४३. पुनरवसरेऽस्मिन्नविप्रकृष्टमृतेः काष्ठाङ्गारस्य नापरो रोदितीति स्वयं रुददिव मन्यमानं दैन्यावहारसितमनिशमम्बरतले बम्भ्रमद्वायसमण्डलं खण्डितशिरोभागं तदीयशीर्षच्छेद्यतानियतिसूचननिबन्धं कबन्धमनन्तरज्व[2]लिष्यददसीयशोकधूमध्वजपुरोगमधूमेनेव दिग्धूमेन धूम्रोपान्तं दिगन्तं नितान्तनिस्त्रिंसफलमन्यादृशमपि मन्युभरापादनं महोत्पातं निशाम्य निकृष्टाचारे काष्ठाङ्गारे किंचिन्न्यञ्चन्मनसि विषेण वा केनापि मिषेण वा वञ्चयितुं वाञ्छति गोविन्द-

प्रत्युपायमम्। अताडयच्चेति–अताडयच्च डिण्डिमं ढक्काम् 'अतिरुन्द्रेण विशालेन चन्द्रकयन्त्रेण नियन्त्रितमित्यतिरुन्द्र चन्द्रकयन्त्रनियन्त्रितं शरव्यतां लक्ष्यतां गतं प्राप्तं वराहत्रयं वराहाकारपुत्तलिकात्रयं युगपदेव एककालावच्छेदेन शरेण पातयितुं यो नाम शक्नोति समर्थो भवति अयम् अस्मिन्नेव वराहे श्रेष्ठेऽहनि अस्मत्कुमार्या मत्पुत्रिकाया वरो भर्ता स्यात्' इति। आयासिषुश्च समाजग्मुश्च चोल-केरलादिदेशाधिपा महीभृतो राजानः।

§ २४३. पुनरिति—पुनरनन्तरम् अस्मिन् अवसरे काले अविप्रकृष्टा निकटस्था मृतिर्मरणं यस्य तस्य काष्ठाङ्गारस्य विषयेऽपरोऽन्यो न रोदितीति हेतोः स्वयं रुददिव मन्यमानं प्रतीयमानं दैन्यावहं च तद्वारसितञ्चेति दैन्यावहारसितं दीनत्वोत्पादकशब्दम्, अनिशं निरन्तरम् अम्बरतले गगनतले बम्भ्रमत् कुटिलं भ्रमत् वायसमण्डलं काकसमूहम्, खण्डितः शिरोभागो यस्य तथाभूतं तदीयशीर्षस्य काष्ठाङ्गारशिरसश्छेद्यताया नियतिर्दैवं तस्य सूचननिबन्धं निवेदननिदानं कबन्धं शिरोहीनमृतकलेवरम्, अनन्तरं ज्वलिष्यन् योऽदसीयः काष्ठाङ्गारीयः शोकधूमध्वजः शोकाग्निस्तस्य पुरोगमधूमोऽग्रयायिधूमस्तेनेव दिग्धूमेन दिक्षु व्याप्तेन धूम्राकारपदार्थविशेषेण धूम्रो मलिन उपान्तः पार्श्वप्रदेशो यस्य तथाभूतं दिगन्तम्, नितान्तमत्यर्थं निस्त्रिंशं क्रूरं फलं यस्य तथाभूतम् अन्यादृश्यमपि मन्युभरापादनं शोकसमूहकारणं महोत्पातं महानिष्टकरमुपद्रवं निशाम्य दृष्ट्वा निकृष्टाचारेऽधमाचारे काष्ठाङ्गारे किञ्चित् मनाक् न्यञ्चद्दीनं मनो यस्य

अत्यन्त सघन चन्द्रक यन्त्रसे नियन्त्रित एवं लक्ष्यपनेको प्राप्त हुए तीन वराहके पुतलोंको बाणसे एक साथ गिरानेके लिए समर्थ होगा वह इसी उत्तम दिनमें हमारी पुत्रीका वर होगा। डंका सुनते ही चोल, केरल, मालव, मागध, पाण्ड्य, पारसीक, कलिंग, काश्मीर और काम्भोज आदि देशोंके अधिपति राजा वहाँ आ गये।

§ २४३. तदनन्तर इसी अवसरपर जिसका मरण निकटवर्ती है ऐसे काष्ठांगारके लिए कोई रोता नहीं है यह सोचकर जो स्वयं रोते हुएके समान जान पड़ता था और जो दीनताको धारण करनेवाले शब्द कर रहा था ऐसा आकाशमें निरन्तर मँडराता हुआ कौओंका समूह दिखाई देने लगा। जिसका शिर कटा हुआ था और जो काष्ठांगारके शिरके कटनेके भाग्यकी सूचनाका कारण था ऐसा शिररहित धड़ दिखाई देने लगा। दिशाओंका अन्त भाग कुछ ही समय बाद प्रज्वलित होनेवाले काष्ठांगारके शोकानलके आगे-आगे चलनेवाले धूमके समान दिशाओंमें छाये हुए धूमसे धूमिल हो गया। और जिसका फल अत्यन्त क्रूर था ऐसा शोकके समूहको उत्पन्न करनेवाला अन्य-अन्य प्रकार का भी महोत्पात होने लगा। उस महोत्पातको देख नीच आचरणको धारण करनेवाला काष्ठांगार कुछ हीन चित्तसे युक्त हो

१. विशाल—इति टि०। २. क० कबन्धमनन्तरं ज्वलिष्यद-।

महाराजम्, राजपुरीं निकषा निषेदुषां नरपतीनामुपकार्यासु च प्रतिप्रदेशं स्वदेशाद्देशान्तरं कन्याभिनिवेशेन विशतां विशांपतीनाम्[1] "धनुर्धरतमः कतमस्तां लभेत ? लब्धवति च चापविद्यालब्धवर्णे कस्मिंश्चिदिमां कन्यकामन्ये कथमह्रीकाः स्वगृहं प्रविशेयुः ? अपि च केचिदतः पूर्वमनुद्धृतशरासनाः संप्रत्युपासनामुपरचयन्ति। परे तु शरगुणनिकां कर्तुं गुणवन्मुहूर्तं पृच्छन्ति मौहूर्तिकान्। इतरे तु 'वयमारचित[2]समस्तशस्त्रयोग्याः सर्वथा योग्याश्च भाग्याधिकाश्च' इति पण्डितंमन्याः कन्यकां हस्तस्थामाकलयन्ति। तावदतिशयितालातचक्रशैघ्र्ये यन्त्रचक्रे शक्रस्याप्यशक्यमारोहणम्, आस्तां विद्धिः" इति योद्धृषु कथयत्सु, साधीयसि लग्ने स्थापितं यन्त्र[3]मामन्त्रितास्ते विश्वेऽपि[4] विश्वंभरापतयः परिवार्य पश्यन्तस्तदीयचक्रभ्रमणरयमासांचक्रिरे। तेषु केचिदुद्वीक्ष्य यन्त्र-

तथाभूते विषेण वा गरकेन वा केनापि मिषेण व्याजेन वा गोविन्दमहाराजं विदेहाधीश्वरं वञ्चयितुं प्रतारयितुं वाञ्छति सति, राजपुरीं निकषा तस्याः समीपे 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया, निषेदुषां स्थितवतां नरपतीनां राज्ञाम् उपकार्यासु च पटकुटीषु च प्रतिप्रदेशं स्थाने स्थाने कन्याभिनिवेशेन कन्याप्राप्त्यभिप्रायेण स्वदेशात्स्वस्थानात् देशान्तरं स्थानान्तरं विशतां प्रवेशं कुर्वतां विशांपतीनां राज्ञाम् अतिशयेन धनुर्धर इति धनुर्धरतमः श्रेष्ठतमधानुष्कः कतमः तां कन्यां लभेत ? प्राप्नुयात् ? चापविद्यायां धनुर्विद्यायां लब्धवर्णो विचक्षणस्तस्मिन् कस्मिंश्चित् जने इमां कन्यकां लब्धवति प्राप्तवति च सति अह्रीका निर्लज्जा अन्ये स्वगृहं स्वकीयसदनं कथं प्रविशेयुः प्रवेशं कुर्युः ? अपि च, अतः पूर्वम् अस्मात्प्राग् अनुद्धृतं शरासनं धनुर्यैस्तेऽनुद्धृतशरासना अनुत्थापितकोदण्डाः केचित् जनाः सम्प्रति साम्प्रतम् उपासनामभ्यासम् उपरचयन्ति। परे तु अन्ये तु शरगुणनिकां बाणयोग्यां बाणाभ्यासमित्यर्थः कर्तुं विधातुं मौहूर्तिकान् दैवज्ञान् गुणवन्मुहूर्तं श्रेष्ठमुहूर्तं पृच्छन्ति। इतरे तु 'आरचिता कृता समस्तशस्त्रेषु निखिलायुधेषु योग्याभ्यासो यैस्तथाभूता वयं सर्वथा सर्वप्रकारेण योग्याश्च अर्हाश्च भाग्याधिकाश्च स्मः' इति आत्मानं पण्डितं मन्यन्त इति पण्डितंमन्याः कन्यकां हस्तस्थां स्वपाणिस्थिताम् आकलयन्ति। तावत्साकल्येनातिशायितमतिक्रमितमलातचक्रस्य शैघ्र्यं येन तस्मिन् शक्रस्यापि पुरन्दरस्यापि आरोहणं चटनम् अशक्यम्, विद्धिर्वेधनम् आस्तां दूरे भवतु इति योद्धृषु भटेषु कथयत्सु सत्सु, साधीयसि श्रेष्ठतमे लग्ने स्थापितं यन्त्रं परिवार्य परिवेष्ट्य आमन्त्रिता आहूतास्ते विश्वेऽपि निखिला अपि विश्वंभरापतयः तदीयचक्रस्य भ्रमणरयं

जब विष अथवा किसी अन्य मिषसे गोविन्द महाराजको ठगनेकी इच्छा करने लगा तब राजपुरीके निकट स्थित एवं राजवसतिकाओंमें स्थान-स्थानपर कन्याके अभिप्रायसे अपने स्थानसे दूसरे स्थानमें प्रवेश करते हुए राजाओंमें इस प्रकार चर्चा होने लगी। कोई कहने लगा कि देखें कौन धनुर्धारी उस कन्याको प्राप्त होता है ? और धनुर्विद्यामें यशस्वी कोई पुरुष इस कन्याको प्राप्त कर भी लेगा तो दूसरे मनुष्य निर्लज्ज हो अपने घरमें कैसे प्रवेश करेंगे ? कितने ही लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने इसके पूर्व धनुष उठाया भी नहीं था। वे इस समय उसकी उपासना कर रहे हैं। कुछ लोग बाण चलानेका अभ्यास करनेके लिए ज्योतिषियोंसे गुणवान्—उत्तम मुहूर्त पूछ रहे हैं। 'हमने शस्त्रोंका अभ्यास किया है अतः सर्वथा योग्य हैं तथा भाग्यशाली भी हैं' इस प्रकार अपने-आपको पण्डित माननेवाले अन्य लोग कन्याको मानो हाथमें ही स्थित समझते हैं।

तदनन्तर जब योद्धा इस प्रकार कह रहे थे कि 'सम्पूर्ण रूपसे अलातचक्रकी शीघ्रताको उल्लंघित करनेवाले यन्त्रचक्रपर इन्द्रका भी चढ़ना कठिन है फिर वेधना तो दूर

१. क० विशांपतीनां मध्ये-। २ क० आचरित-। ३ क० स्थापितयन्त्रम्। ४ क० 'विश्वेऽपि' नास्ति।

मुद्वेगाधिष्ठिताश्चित्रीयाविष्टाश्च 'त्वष्ट्रा तु निरमीयत निर्विचारम् । मनसाप्यतर्क्यमेतन्मूर्खेण केन दुर्वर्णेन कन्यकायाः शुल्कत्वेन कल्पितम् । आकल्पमेतदभेद्यमेव लक्ष्यं द्रक्ष्यामः । तदपि सा च कुमारी स्वकुलगृह एव जरामियात्' इति चिन्तयन्तस्तरुणीलाभबुद्धिं विद्धिं च जहुः । केचिदुद्धताः सलीलमुत्थाय भूतलादाततज्यमापाद्य कार्मुकं करपल्लवाकलितभल्लाः सोल्लासमारुह्य यन्त्रचक्रमदसीयभ्रमणशैघ्र्यभ्रान्तस्वान्ताः स्वकान्तामवनिमन्याभिलाषविलोकनविहितेर्ष्यां परिष्वङ्गेण प्रसादयितुमिव प्रसभं पृथ्वीतले निपेतुः । कैश्चिदभिसंधि[1]पुरःसरमारूढचक्रैः संधाय निःसारिताः शराः शरव्यं तरसोपसृत्य लुब्धपार्थिवमिवार्थिनो निष्फला न्यवर्तिषत । केश्चिदा-

परिभ्रमणवेगं पश्यन्तो विलोकमाना आसाञ्चक्रिरे स्थिता बभूवुः 'आसु उपवेशने' 'दयायासश्च' इत्याम् । तेषु विश्वम्भरापतिषु केचित् यन्त्रम् उद्वीक्ष्योर्ध्वदृष्ट्या विलोक्य उद्वेगेन व्याकुलत्वेनाधिष्ठिता युक्ताः चित्रीयाविष्टाश्च विस्मयाभिभूताश्च सन्तः त्वष्ट्रा तु तक्ष्णा तु निर्विचारं यथा स्यात्तथा निरमीयत व्यरच्यत 'तक्षा तु वर्धकिस्त्वष्टा रथकारस्तु, काष्ठतट्' इत्यमरः । मनसापि चेतसापि अतर्क्यमविमृश्यम् एतद् यन्त्रवेधनं केन दुर्वर्णेन दुष्कीर्तिना मूर्खेण कन्यकायाः शुल्कत्वेन कल्पितं निश्चितम् । एतल्लक्ष्यम् आकल्पं कल्पकालमभिव्याप्य अभेद्यमेव द्रक्ष्यामः । तदपि सा च कुमारी स्वकुलगृह एव स्ववंशसदन एव जरां वार्धक्यम् इयात्' इति चिन्तयन्तो विचारयन्तस्तरुणीलाभस्य युवतिप्राप्तेर्बुद्धिं मनोरथं विद्धिं च ताडनं च यन्त्रवेधनमिति यावत् जहुः तत्यजुः 'ओहाक् त्यागे' इत्यस्य लिटिरूपम् । उद्धता गर्विष्ठाः केचित् सलीलं सक्रीडं भूतलात् पृथिवीपृष्ठाद् उत्थाय कार्मुकं धनुः आततज्यं विस्तृतप्रत्यञ्चम् आपाद्य कृत्वा करपल्लवेषु पाणिकिसलयेष्वाकलितो धृतो भल्लः प्रासो यैस्तथाभूताः सन्तः सोल्लासं सहर्षं यन्त्रचक्रम् आरुह्य चटित्वा अदसीयभ्रमणस्य यन्त्रचक्रभ्रमणस्य शैघ्र्येण भ्रान्तं स्वान्तं चित्तं येषां तथाभूताः सन्तः अन्यस्या अभिलाषो वाञ्छा तस्य विलोकनेन विहिता कृता ईर्ष्या यया तथाभूतां स्वकान्तां निजमानिनीम् अवनिं भूमिं परिष्वङ्गेण समालिङ्गनेन प्रसभं हठात् प्रसादयितुमिवानुनेतुमिव पृथिवीतले भूतले निपेतुः पतन्ति स्म । अभिसन्धिपुरस्सरमभिप्रायपूर्वकम् आरूढं चक्रं यैस्तथाभूतैः कैश्चित् संधाय मौर्व्यां धृत्वा निःसारिता निर्गमिताः शरा बाणाः तरसा बलेन शरव्यं लक्ष्यम् उपसृत्य प्राप्य लुब्धपार्थिवं लुब्धनृपम् उपसृत्य अर्थिन इव याचका इव निष्फलाः सन्तो न्यवर्तिषत प्रत्यावृत्ता बभूवुः । आकर्णं श्रवणपर्यन्तमाकृष्टा चापयष्टिर्यैस्तथा-

रहा' तब उत्तमोत्तम लग्नमें स्थापित यन्त्रको घेरकर वे सभी राजा उसके चक्रके भ्रमण-सम्बन्धी वेगको देखते हुए खड़े हो गये । उन राजाओंमें कितने ही लोगोंने यन्त्रको देख उद्वेग और आश्चर्यसे युक्त हो यह विचार करते हुए युवतीकी प्राप्तिकी बुद्धि और यन्त्रका वेधना छोड़ दिया कि 'ब्रह्माके द्वारा कार्य निर्विचार—विवेकके बिना ही किया जाता है । जिसका मनसे भी विचार नहीं किया जा सकता ऐसे इस यन्त्रवेधको किस अधम मूर्खने कन्याके शुल्क रूपसे निश्चित किया है ? इस लक्ष्यको तो हम कल्पकाल पर्यन्त अभेद्य ही देखते रहेंगे और वह कुमारी भी अपने कुलगृहमें ही वृद्धावस्थाको प्राप्त हो जायेगी । कितने ही उद्धत राजा लीलापूर्वक पृथ्वीसे उठे और धनुषको प्रत्यंचासे युक्त कर हाथोंमें भाले लेते हुए हर्षके साथ उस यन्त्रचक्रपर चढ़ तो गये परन्तु उसके भ्रमणकी शीघ्रतासे उनके चित्त घूमने लगे और वे पृथ्वीतलपर आ पड़े । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो अन्य स्त्रीकी अभिलाषा देखनेसे उनकी स्त्री पृथिवी ईर्ष्या करने लगी थी इसलिये उसे आलिंगनके द्वारा प्रसन्न करनेके लिए ही हठात् पृथिवीतलपर आ पड़े थे । कितने ही राजा दृढ़ अभिप्रायपूर्वक चक्रपर चढ़ गये और उन्होंने धनुषपर चढ़ाकर बाण छोड़े भी परन्तु जिस प्रकार लोभी राजाके पास

[1]. क० ख० ग० अभिसिद्धि ।

कर्णाकृष्टचापयष्टिभिर्निसृष्टाः खगाः खचरेभ्यः कथयितुमिव तदत्यद्भुतमतिक्रम्य लक्ष्यमन्तरिक्षमुत्पेतुः।

§ २४४. एवमतिक्रान्तेष्वर्धसप्तमवासरेषु, क्रमादिष्वासविद्यालब्धवर्णेषु त्रैवर्णिकेष्वपरेषु सर्वेष्वपराद्धपृषत्केषु, दिव्यशक्तिकः स जीवककुमारः, स्मेराक्षिविक्षेपः सहस्राक्ष इव चक्षुर्द्वयोपेतः, षण्मुख इव दर्शितैकमुखः, चक्ररहित इव चक्रपाणिः, साङ्ग इवानङ्गः, स्वाङ्गविलोकनविभावनीयवैभवप्रतापः प्रत्यूषाडम्बर इवोदयाचलप्रस्थगतः, समस्तबन्धुभिः रूपं सिन्दूरबन्धुरसिन्धुरस्य कस्यचित्पृष्ठमधितिष्ठन्निमां गोष्ठीमुपातिष्ठत्। तदतिमात्रानुभावावलोकनमात्रेणैव धात्रीपतयः—'पतिरयमेव लक्ष्मणायाः। लक्ष्यभेददक्षश्च जगत्य[1]यमेव नियमेन' इति निरणैषुः। काष्ठाङ्गा-

भूतैः कैश्चित् कैरपि राजभिः निसृष्टास्त्यक्ताः खगा बाणाः खचरेभ्यः खगेभ्यः कथयितुमिव निवेदयितुमिव अत्यद्भुतमत्याश्चर्यकरं तद् लक्ष्यं शरव्यम् अतिक्रम्य समुल्लङ्घ्य अन्तरिक्षं गगनम् उत्पेतुः उत्पतन्ति स्म।

§ २४४. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण अर्धः सप्तमो येषु तथाभूताश्च ते वासराश्च तेषु सार्धषड्दिवसेषु अतिक्रान्तेषु व्यतीतेषु सत्सु क्रमात् इष्वासविद्यायां धनुर्विद्यायां लब्धवर्णा विचक्षणास्तेषु त्रैवर्णिकेषु ब्राह्मणक्षत्रियवैश्येतित्रिवर्णसमुत्पन्नेषु अपरेष्वन्येषु सर्वेषु अपराद्धा लक्ष्याद् भ्रष्टाः पृषत्का बाणा येषां तथाभूतेषु सत्सु दिव्या शक्तिर्यस्य तथाभूतो दिव्यशक्तिकः अलौकिकपराक्रमः स्मेरो विकसितोऽक्षिविक्षेपो यस्य तथाभूतः स जीवककुमारः चक्षुर्द्वयोपेतो नेत्रयुगयुतः सहस्राक्ष इव इन्द्र इव, दर्शितं प्रकटितमेकमुखं येन तथाभूतः षण्मुख इव कार्तिकेय इव, चक्ररहितश्चक्रपाणिरिव चतुर्भुज इव, साङ्गः सशरीरः अनङ्ग इव काम इव, स्वाङ्गस्य स्वशरीरस्य विलोकनेन दर्शनेन विभावनीयो वैभवप्रतापो यस्य तथाभूतः उदयाचलप्रस्थगतः पूर्वाचलशृङ्गस्थितः प्रत्यूषाडम्बर इव प्रभातविस्तार इव, समस्तबन्धुभिर्निखिलेष्टजनैः समं सार्धं कस्यचित् कस्यापि सिन्दूरेण नागसंभवेन 'सिन्दूरं नागसम्भवम्' इत्यमरः। बन्धुरो मनोहरो यः सिन्धुरो हस्ती तस्य पृष्ठम् अधितिष्ठन् तत्रोपविष्टः सन् इमां पूर्वोक्तां गोष्ठीं स्वयंवरसभाम् उपातिष्ठत् तस्याः पार्श्वयायी बभूव। तस्य जीवकस्यातिमात्रः प्रभूततमो योऽनुमात्रप्रभावस्तस्यावलोकनमात्रेणैव दर्शनमात्रेणैव धात्रीपतयो राजानः 'अयमेव लक्ष्मणाया गोविन्दभूभुक्सुतायाः पतिः। जगति भुवने नियमेन

जाकर याचक निष्फल लौट आते हैं उसी प्रकार उनके वे बाण वेगसे लक्ष्य तक पहुँचकर वापिस लौट आये। और कान तक धनुष खींचनेवाले कितने ही राजाओंके द्वारा छोड़े हुए बाण विद्याधरोंके लिए उस आश्चर्यकी सूचना देनेके लिए ही मानो लक्ष्यका उल्लंघन कर बहुत ऊँचे आकाशमें उड़ गये।

§ २४४. इस प्रकार जब साढ़े छह दिन व्यतीत हो गये और क्रम-क्रमसे धनुर्विद्यामें यशको प्राप्त करनेवाले अन्य सभी त्रिवर्णके लोगोंके बाण जब लक्ष्यभ्रष्ट हो गये—निशाना चूक गये तब दिव्य शक्तिको धारण करनेवाले एवं प्रसन्नतासे युक्त नेत्रोंके संचारसे सहित जीवन्धर स्वामी सिन्दूरसे सुशोभित किसी हाथीको पीठपर सवार हो समस्त बन्धुजनोंके साथ इस गोष्ठीमें पहुँचे। उस समय जीवन्धर स्वामी दो चक्षुओंसे सहित इन्द्रके समान, एक मुखको दिखलानेवाले कार्तिकेयके समान, चक्ररहित चक्रपाणिके समान, शरीरसहित कामदेवके समान, तथा अपने शरीरके देखनेसे जिनके वैभव और प्रतापका बोध हो रहा था ऐसे उदयाचलके शिखरपर स्थित सूर्यके समान जान पड़ते थे। उनके सातिशय प्रभावको देखने मात्रसे राजाओंने निर्णय कर लिया कि यही लक्ष्मणाका पति है और यही संसारमें

---

१. क० भवत्ययमेव।

रस्तु कुञ्जर इव पञ्चाननम्, प्रतिवादीव स्याद्वादिवावदूकम्, अधमर्ण इवोत्तमर्णम्, तस्कर इवारक्षकम्, सहसा ससाध्वसमवलोकयन्नेनमतितरामभैषीत् । आरब्ध चायमचिरभाविनिरय-निरीक्षणोन्मुख इवाधोमुखः सुतरां हतचित्तश्चिन्तयितुम् 'मथनः कथमेनमपधीरवधीत् । साधु साधितं स्यात्स्यालाधमेन बाढमेतत् । किमिति विश्वस्तो मयैवं विश्वासघाती । किमिति न मया वा पुरस्तादेव निरस्तासुः कृतः क्षात्रोचितचरितोऽयं वणिक्पुत्रः' इति ।

§ २४५. तावता समुपेत्य चतुरपुरःसरसमुत्सारितसमालोकनलम्पटजनसंबाधः स्तम्बेरमेन्द्रान्मृगेन्द्र इव सानुमतः सानोः सानुजः सानन्दमवप्लुत्य सलीलमारूढयन्त्रचक्रस्त्रिविक्रम इवाक्रमविहितज्यारोपणशरसंधानशरक्षेपः क्षोभयन्नरिहृदयमाशु केनचिदाशुगेन शरव्यं विव्याध ।

लक्ष्यस्य शरव्यस्य भेदे दक्षः समर्थोऽयमेव' इति निरणैषुः निर्णीतवन्तः । काष्ठाङ्गारस्तु पञ्चाननं सिंहम् अवलोकयन् कुञ्जर इव करीव, स्याद्वादिवावदूकं पश्यन् प्रतिवादीव, उत्तमर्णं स्वामिनं पश्यन् अधमर्ण इव ऋणग्राहीव, आरक्षकं राजपुरुषं पश्यन् तस्कर इव चोर इव सहसाऽकस्मात् एनं जीवंधरम् ससाध्वसं सभयम् अवलोकयन् अतितरां नितान्तम् अभैषीत् भीतोऽभूत् । आरब्ध चायं तत्परश्चाभूत् अयं काष्ठाङ्गारः अचिरभावि शीघ्रभावि यन्निरयं नरकं तस्य निरीक्षणोन्मुख इव दर्शनोत्सुक इवाधोमुखो नीचैर्वदनः सुतरामत्यन्तं हतं चित्तं यस्य तथाभूतः सन् चिन्तयितुं विचारयितुम्—'अपधीर्दुर्बुद्धिः मथनः एनं कथम् अवधीत् जघान, स्यालाधमेन नीचैः स्यालेन बाढमेतत् कार्यं साधुसाधितं स्यात् विपरीतलक्षणेयं । एवं विश्वासघाती स मया किमिति विश्वस्तः प्रतीतः ? किमिति न मया वा पक्षान्तरे क्षात्रोचितं चरित्रं यस्य तथाभूतोऽयं वणिक्पुत्रः पुरस्तादेव स्वसंमुखमेव निरस्ता निर्गता असवः प्राणा यस्य तथाभूतो निष्प्राणो न कृतो न विहितः' इति ।

§ २४५. तावतेति—तावता तावत्कालेन समुपेत्य समागत्य चतुरा विदग्धा ये पुरःसरा अग्रेगामिनो जनास्तैः समुत्सारितो दूरीकृतः समालोकनलम्पटजनानां दर्शनोत्सुकलोकानां संबाधो विमर्दो यस्य तथाभूतः स्तम्बेरमाद् गजेन्द्रात्, सानुमतः पर्वतस्य सानोः प्रस्थात् मृगेन्द्र इव सिंह इव सानुजः सनन्दाढ्यः सानन्दं यथा स्यात्तथा अवप्लुत्य समुत्पत्य सलीलम् आरूढं यन्त्रचक्रं येन तथाभूतः त्रिविक्रम इव नारायण इव अक्रमेण युगपद् विहिताः कृता ज्यारोपणशरसंधानशरक्षेपा मौर्व्यारोपणबाणधारण-

नियमसे लक्ष्यके भेदनेमें समर्थ है । राजाओंकी यह दशा रही परन्तु काष्ठांगार, सिंहको देखकर हाथीके समान, स्याद्वादी शास्त्रार्थीको देखकर प्रतिवादीके समान, साहूकार को देखकर कर्जदारके समान और पहरेदारको देखकर चोरके समान सहसा भयपूर्वक जीवन्धर-स्वामीको देखता हुआ अत्यन्त भयभीत हो उठा । जिसका चित्त बिलकुल मर चुका था ऐसा काष्ठांगार शीघ्र ही प्राप्त होनेवाले नरकको देखनेके लिए उन्मुख हुएके समान नीचेकी ओर मुख कर इस प्रकार विचार करने लगा कि 'क्या दुर्बुद्धि मथनने इसे मारा था ? जान पड़ता है उस नीच सालेने इस कार्यको अच्छी तरह साध लिया होगा । मैंने ऐसे विश्वासघातीका इस तरह क्यों विश्वास किया ? क्षत्रियोंके योग्य चरित्रको धारण करनेवाले इस वणिक्के पुत्रको मैंने पहले ही क्यों नहीं निष्प्राण-कर दिया ?

§ २४५. उतनेमें ही आगे-आगे चलनेवाले चतुर मनुष्योंके द्वारा जिनके देखनेके अभिलाषी मनुष्योंकी भीड़ दूर की जा रही थी ऐसे जीवन्धरस्वामी पर्वतके शिखरसे सिंहके समान गजराजसे भाइयों-समेत बड़े हर्षसे नीचे उतरे और लीलापूर्वक यन्त्रपर चढ़कर विष्णुके समान एक साथ डोरी चढ़ाना, बाण धारण करना तथा बाण छोड़ना इन तीनों

स च सायकप्रष्ठो निसृष्टार्थ इव साधितसमीहितः सहसा न्यवर्तिष्ट ।

§ २४६. ततः कृतपुङ्खमेनं पुरुषपुंगवं समीक्ष्य समीक्ष्यकारी स विदेहाधिपतिर्देहेन समं सिद्धक्षेत्रकृताभ्यास इव प्रसीदन्प्रफुल्लवदनाम्भोजः समालोक्य भूभुजां मुखानि मुखविकासविवृतान्तर्गततुष्टिप्रकर्षः काष्ठाङ्गारपर्यायानिर्वाणदर्वीकरस्य शिरसि दम्भोलिमिव पातयन्नतिगम्भीरया गिरा 'जीवंधरोऽयं सत्यंधरसम्राजस्तनयः' इति तदुदन्तमिदंतया विवव्रे । तदुपश्रुत्य श्रवणचुलुकपेयं पीयूषायमाणं वचनं सर्वेऽपि सर्वंसहापतयः 'सर्वथा क्षात्रमेवेदमौचित्यम् । न परत्र पदं लभेत परस्य हि कृत्यमिदं प्रत्यालीढपाटवं प्रेक्षणसौक्ष्म्यं लक्ष्यभेदमात्रपर्याप्तशररंहःसंपादनचातुर्यं चेति प्रागेव

बाणमोक्षा येन तथाभूतः सन् अरिहृदयं शत्रुमनः क्षोभयन् चपलयन् आशु शीघ्रं केनचिद् आशुगेन बाणेन शरव्यं लक्ष्यं विव्याध विद्धवान् । स च सायकप्रष्ठो बाणश्रेष्ठो निसृष्टार्थ इव राजदूत इव 'उभयोर्भावमुन्नीय स्वयं वदति चोत्तरम् । सुश्लिष्टं कुरुते कार्यं निसृष्टार्थस्तु स स्मृतः' ॥ इति निसृष्टार्थलक्षणम् । साधितं समीहितं स्वेष्टं येन तथाभूतः सन् सहसा झगिति न्यवर्तिष्ट प्रत्यावृते ।

§ २४६. तत इति—ततस्तदनन्तरं कृतपुङ्खं कृतकृत्यम् एनं पुरुषपुङ्गवं नरश्रेष्ठं जीवंधरं समीक्ष्य दृष्ट्वा समीक्ष्यकारी विचार्य करोतीत्येवंशीलः स विदेहाधिपतिर्गोविन्दभूपालो देहेन समं शरीरेण सार्धं सिद्धक्षेत्रे मोक्षे कृतो विहितोऽभ्यासो निवासो येन तथाभूत इव प्रसीदन् प्रसन्नो भवन् प्रफुल्लं प्रविकसितं वदनाम्भोजं मुखारविन्दं यस्य तथाभूतः सन् भूभुजां राज्ञां मुखानि वदनानि समालोक्य दृष्ट्वा मुखविकासेन वदनप्रसादेन विवृतः प्रकटितोऽन्तर्गततुष्टिप्रकर्षो हृदयस्थितसन्तोषाधिक्यं यस्य तथाभूतः काष्ठाङ्गारपर्यायश्वासावनिर्वाणदर्वीकरो जीवितभुजङ्गमश्चेति तस्य शिरसि दम्भोलिं वज्रमिव पातयन् अतिगम्भीरया प्रगल्भया गिरा वाण्या 'अयमेष जीवंधरः सत्यंधरसम्राजो राजपुरीधरावल्लभस्य तनयः पुत्रः' इति तदुदन्तं तद्वृत्तान्तम् इदंतयानेन प्रकारेण विवव्रे प्रकटयामास । श्रवणचुलुकपेयं कर्णचुलुकेन पातुं योग्यं पीयूषायमाणं सुधासंनिभम् तद् वचनम् उपश्रुत्य सर्वेऽपि निखिला अपि सर्वंसहापतयः पृथिवीपालाः 'सर्वथा सर्वप्रकारेण इदमौचित्यं क्षात्रमेव क्षत्रसम्बन्ध्येव । हि यतः परस्य श्रेष्ठस्य इदं कृत्यं परत्रान्यस्मिन् जने पदं स्थानं न लभेत । इदं किम् ? तदेवाह—प्रत्यालीढे रणासनविशेषे पाटवं चातुर्यं,

---

कार्योंको करते हुए शत्रुके हृदयको क्षुभित करने लगे । इसी समय उन्होंने किसी बाणसे शीघ्र ही लक्ष्यको वेध दिया । और जिस प्रकार कार्यको सिद्ध करनेवाला निःसृष्टार्थ उत्तम दूत इच्छित कार्य को सिद्ध कर सहसा लौट आता है उसी प्रकार उनका वह बाण भी इच्छित कार्यको सिद्ध कर सहसा लौट आया ।

§ २४६. तदनन्तर मनुष्योंमें श्रेष्ठ जीवन्धरकुमारको अपने कार्यमें सफल देख विचार कर कार्य करनेवाले गोविन्द महाराज शरीरसहित सिद्धक्षेत्रमें निवास करते हुएके समान प्रसन्न हो उठे । जिनका मुखकमल खिल रहा था ऐसे गोविन्द महाराजने राजाओंके मुखोंकी ओर देख अपने मुखके विकाससे अन्तःकरणके सन्तोषकी प्रकर्षताको प्रकट करते हुए, अत्यन्त गम्भीर वाणीसे 'यह जीवन्धर महाराज सत्यन्धरका पुत्र है' इस प्रकार उनका वृत्तान्त प्रकट कर दिया । उस समय उनके यथार्थ वृत्तान्तको प्रकट करते हुए गोविन्द महाराज ऐसे जान पड़ते थे मानो काष्ठांगाररूपी सजीव सर्पके शिरपर वज्र ही गिरा रहे हों । कानरूपी चुल्लूके द्वारा पान करनेके योग्य अमृत तुल्य उक्त वचनको सुन सब राजा लोग 'सर्वथा यह योग्यता क्षत्रियके ही हो सकती है । दूसरेका कार्य दूसरेमें स्थानको प्राप्त नहीं हो सकता । यह आलीढ आसनकी चतुराई, यह दृष्टिकी सूक्ष्मता और यह लक्ष्यके भेदने मात्रके लिए पर्याप्त बाणमें वेग उत्पन्न करनेकी दक्षता दूसरेका कार्य नहीं हो सकती

'निश्चितम्' इति निश्चलपक्ष्माणः सपक्षपातं कुमारमैक्षिषत । पातिततद्वचनाशनिज्वलनज्वालास्पृष्टः स काष्ठाङ्गारोऽप्यङ्गारीभूतकाष्ठवन्निःसारतां गतः । कथमन्यत्प्रस्तुतमन्यदुपस्थितं यदतिसन्धित्सितो गोविन्दमहाराजः स्वयमस्मानतिसंधातुमवाप्ताभिसंधिरासीत् । 'इदं हि जगति लाभमिच्छतो मूलच्छेदं प्रकृत्या स्वयमस्माकममित्रोऽयं वणिक्पुत्रो राजपुत्रत्वमप्येतेनारोपितः । पुनरेनं च प्राप्य प्रतिष्कशङ्काकार्कश्यमपरं नः किं न कुर्यात्' इति विमृशन्नेव विसृज्य तदास्थानमादृतप्रस्थानो भवन् 'अस्थाने पतितमिदं राज्यं त्यज्यतां त्वया नियोज्यखेटकेन' इति प्रकटाटोपपाटवैः पद्ममुखादिभिर्निर्भर्त्सितोऽयं कुत्सितवृत्तिः पुनर्युयुत्सुरासीत् । बभूवुश्च काष्ठाङ्गारतो निकृष्टा विशिष्टास्तु जीवंधरराजतो राजानः ।

प्रेक्षणसौक्ष्म्यमवलोकनसूक्ष्मत्वं सूक्ष्मदर्शित्वमित्यर्थः, लक्ष्यभेदमात्रे पर्याप्तं यच्छररंहो बाणवेगस्तस्य संपादने चातुर्यं दक्षत्वं च । इतीत्थं प्रागेव पूर्वमेव निश्चितं निर्णीतम्' इति निश्चलपक्ष्माणो निःस्पन्दनयनलोमराजयः सन्तः सपक्षपातं सस्नेहं कुमारं जीवंधरम् ऐक्षिषत विलोकयामासुः । पातितस्तद्वचनमेव गोविन्दवचनमेवाशनिर्वज्रं स एव ज्वलनो वह्निस्तस्य ज्वालाभिरर्चिभिः स्पृष्टः स काष्ठाङ्गारोऽपि कृतघ्नोऽपि अङ्गारीभूतकाष्ठवद् दग्धकाष्ठवत् निःसारतां साररहित्यं गतः प्राप्तः । कथम् अन्यत् प्रस्तुतं प्रारब्धम् अन्यद् उपस्थितं प्राप्तं यद् अतिसन्धातुमिष्टोऽतिसन्धित्सितो गोविन्दमहाराजः स्वयम् अस्मान् अतिसन्धातुं प्रतारयितुम् अवाप्ताभिसन्धिः प्राप्ताभिप्राय आसीत् । 'इदं हि जगति लोके लाभमिच्छतो जनस्य मूलच्छेदो मूलधननाशः । अयं वणिक्पुत्रः प्रकृत्या निसर्गेण स्वयम् अस्माकममित्रः शत्रुभूतः, एतेन गोविन्दमहाराजेन राजपुत्रत्वमपि आरोपितः प्रापितः । पुनरनन्तरम् एनं च जीवंधरं च प्राप्य नोऽस्माकम् अपरमन्यत् किं किन्नामधेयं प्रतिष्कशङ्काकार्कश्यं[1] बाधकशङ्काकाठिन्यं न कुर्यात् ?' इतीत्थं विमृशन्नेव विचारयन्नेव तदास्थानं तत्सभां विसृज्य त्यक्त्वा आदृतमङ्गीकृतं प्रस्थानं येन तथाभूतो भवन् 'अस्थानेऽयोग्यपात्रे पतितं प्राप्तम् इदं राज्यं नियोज्यखेटकेन दासाधमेन त्वया त्यज्यताम्' इति प्रकटाटोपपाटवैर्व्यक्ताडम्बरचातुर्यैः पद्ममुखादिभिर्मित्रैः निर्भर्त्सितः संतर्जितः कुत्सितवृत्तिर्नीचवृत्तः अयं पुनः युयुत्सुर्योद्धुमिच्छुः आसीत् । निकृष्टा राजानः काष्ठाङ्गारतः काष्ठाङ्गारस्य पक्षे विशिष्टास्तु श्रेष्ठास्तु राजानो जीवंधरराजतो जीवंधरनृपतिपक्षे बभूवुश्च ।

यह पहले ही निश्चित था' इस प्रकार कहते हुए निश्चल पलकोंसे युक्त हो स्नेहपूर्वक जीवन्धरकुमारको देखने लगे। गोविन्द महाराजने जो उक्त वचनरूपी वज्राग्नि गिरायी थी उसकी ज्वालाओंसे स्पर्शको प्राप्त हुआ वह काष्ठांगार भी अंगार रूप हुए काष्ठके समान निःसारताको प्राप्त हो गया। वह सोचने लगा कि 'प्रारम्भ तो कुछ अन्य किया था और उपस्थित कुछ अन्य हो गया ऐसा क्यों हुआ ? गोविन्द महाराजको हमने धोखा देना चाहा था पर वे स्वयं हम लोगोंको धोखा देनेका अभिप्राय रख रहे हैं। यह कार्य तो संसारमें लाभकी इच्छा रखनेवालेके मूल पूँजीके नष्ट होनेके तुल्य है। यह वणिक्का पुत्र स्वभावसे ही हमारा शत्रु था फिर इनके द्वारा राजपुत्रताको भी प्राप्त करा दिया गया है। अब इसे पाकर ऐसा कौन होगा जो हमारे विषयमें बाधक शंकारूप कर्कशताको नहीं करेगा' ? ऐसा विचार करता हुआ ही वह सभामण्डपको छोड़कर जानेका उद्यम करने लगा। परन्तु 'अस्थानमें पड़ा हुआ यह राज्य तुझे छोड़ देना चाहिए तू अधम किंकर है' इस प्रकार अपनी सामर्थ्यको प्रकट करनेवाले पद्ममुख आदि मित्रोंने उसे खूब फटकारा। फलस्वरूप नीच वृत्तिको धारण करता हुआ वह युद्धके लिए तैयार हो गया। फिर क्या था जो नीच प्रकृतिके राजा थे वे काष्ठांगारकी ओर और जो उत्तम प्रकृतिके राजा थे वे जीवन्धरकी ओर हो गये।

१. बाधक—इति टि० ।

§ २४७. ततस्तपस्यामिव बलवदुपास्यां दुरन्ततया तु ततो नितान्तगर्हणीयाम्, मीमांसामिव परिहिंसाप्रवणभजनीयामीश्वरापेक्षतया तु ततो विलक्षणाम्, चार्वाकचर्यामिवानपेक्षितात्मनिर्वहणीयां गुरुद्वेषमूलतया तु ततोऽपि कुत्सनीयामाजिमारचयितुमतीव क्षोदिष्ठे काष्ठाङ्गारे प्रक्रममाणे, पराक्रमशालिषु पद्ममुखादिष्वपि युद्धाभिमुखेषु, पिनद्धार्धोरुके सशीर्षके च सति सादिनि[1] समारोपितधनुषि धन्विनि, धनुर्धरचक्रवर्तिना चक्रव्यूहे[2] परेण च

§ २४७. तत इति—ततस्तदनन्तरम् अतीव नितान्तम् क्षोदिष्ठे क्षुद्रतमे काष्ठाङ्गारे तपस्यामिव तपश्चर्यामिव बलवद्भिर्बलिष्ठैः एकत्र क्षुत्तृषाशीतोष्णादिपरिषहसहनशक्तैरन्यत्र प्रत्यर्थिपार्थिवनिराकरणप्रचण्डपराक्रमैर्जनैरुपास्यां सेवनीयां करणीयां, दुरन्ततया तु दुरवसानतया तु ततस्तपस्यातो नितान्तगर्हणीयामतिनिन्दनीयां तपस्या स्वन्ता आजिस्तु दुरन्ता ततो व्यतिरेकः, मीमांसामिव मीमांसादर्शनमिव परिहिंसायां प्रवणैरेकत्र याज्ञिकहिंसायां पक्षे रणाजिरागतशत्रुविघातने दक्षैर्भजनीयां सेवनीयाम् ईश्वरापेक्षया ततो मीमांसाया विलक्षणां विभिन्नाम् मीमांसा ईश्वरनिरपेक्षा आजिस्तु ईश्वरसापेक्षा ततो व्यतिरेकः, चार्वाकचर्यामिव भूतवादिप्रवृत्तिमिव अनपेक्षितात्मभिरनङ्गीकृतजीवास्तित्वैर्निर्वहणीयां समर्थनीयाम् अन्यत्र स्वास्तित्वमुपेक्षमाणैर्जनैर्निर्वहणीयां करणीयां गुरुद्वेषमूलतया तु गुरुद्वेषकारणत्वेन ततोऽपि चार्वाकचर्यातोऽपि कुत्सनीयां निन्दनीयां चार्वाकचर्या गुरुद्वेषस्य मूलमस्ति आजिस्तु ततो विपरीता वर्ततेऽतएव व्यतिरेकः आजिं युद्धम् आरचयितुं कर्तुं प्रक्रममाणे समुद्युञ्जाने सति, पराक्रमशालिषु वीर्यविशोभिषु पद्ममुखादिष्वपि मित्रेषु युद्धाभिमुखेषु रणसंमुखेषु सत्सु, सादिनि हयारोहिजने पिनद्धमर्धोरुकमधोवस्त्रं येन तथाभूते सशीर्षके सशिरस्त्राणे च सति, धन्विनि धनुर्धारिणि समारोपितं सप्रत्यञ्चीकृतं धनुर्येन तथाभूते सति, धनुर्धरचक्रवर्तिना धानुष्कशिरोमणिना चक्रव्यूहे, तन्नामव्यूहे परेण चेतरेण च पद्मव्यूहे

§ २४७ तदनन्तर जो तपस्याके समान बलवान् मनुष्योंके द्वारा उपासनीय था परन्तु खोटा परिणाम होनेके कारण उससे अत्यन्त निन्दनीय था। मीमांसाके समान हिंसामें निपुण मनुष्योंके द्वारा सेवनीय था परन्तु ईश्वरकी अपेक्षा रखनेके कारण उससे विलक्षण था और चार्वाककी चर्याके समान आत्माकी अपेक्षा न रखनेवाले लोगोंके द्वारा निर्वाह करनेके योग्य था परन्तु गुरुद्वेषका कारण होनेसे उससे भी निन्दनीय था ऐसे युद्धको करनेके लिए जब क्षुद्र काष्ठांगार तैयार हो गया। पराक्रमसे सुशोभित पद्ममुख आदि मित्र भी युद्धके सम्मुख हो गये, जब घुड़सवार और महावत लोग अधोवस्त्र पहनकर तथा शिर-पर टोप लगाकर तैयार हो गये, जब धनुर्धारी लोग धनुष तानकर खड़े हो गये, जब धनुर्धारियोंके चक्रवर्ती एवं चक्रव्यूहकी रचना करनेमें तत्पर जीवन्धरकुमारके द्वारा

१ म० 'निषादिनि च' इत्यधिकः पाठः। २. म० चक्रव्यूहपरेण च।

२. जिस प्रकार तपस्या बलवान् मनुष्योंके द्वारा सेवनीय होती है उसी प्रकार युद्ध भी बलवान् मनुष्योंके द्वारा सेवनीय होता है परन्तु तपस्याका परिणाम अच्छा होता है और युद्धका परिणाम अच्छा नहीं होता अतः उससे अत्यन्त निन्दनीय है। जिस प्रकार मीमांसा याज्ञिक हिंसामें निपुण मनुष्योंके द्वारा सेवनीय है उसी प्रकार युद्ध भी हिंसानिरत मनुष्योंके द्वारा सेवनीय है परन्तु मीमांसामें ईश्वर (जगत्कर्ता) की अपेक्षा नहीं रहती है जब कि युद्धमें ईश्वर (राजा) की अपेक्षा रहती है अतः उससे विलक्षण है। जिस प्रकार चार्वाक मतकी चर्या अनपेक्षितात्म जनों (अनात्मवादियोंके द्वारा) निर्वहणीय होती है उसी प्रकार युद्ध भी अनपेक्षितात्म (अपने जीवनकी परवाह न रखनेवाले) लोगोंके द्वारा निर्वहणीय होता है परन्तु चार्वाक मतकी चर्या गुरुद्वेष (गुरुके साथ द्वेष) रखनेका कारण नहीं है जब कि युद्ध गुरुद्वेष (बहुत भारी द्वेष) मूलक होता है अतः उससे निन्दनीय है।

पद्मव्यूहे कृते, चक्रशोभितशताङ्गनक्रभृति तुरंगतरङ्गिणि मातङ्गपोताङ्किते पादातपयसि परस्परस्पर्धोद्यतपारावारद्वय इव पक्षद्वये लक्ष्यमाणे पटहध्वनेरपि ज्याघातरवे पांसुपटलादपि पत्रिणि गभस्तिमालिगभस्तेरप्युदस्तास्त्ररश्मिनिकरे रणरागादपि रक्तौघे प्रतिसमयं प्रकृष्यमाणे, धानुष्कैर्धानुष्का निषादिभिर्निषादिनः सादिभिः सादिनः स्यन्दनारोहैः स्यन्दनारोहा युयुधिरे ।

§ २४८. तावता धरणी धरणीपतिमरणभीत्या रणनिवारणायेव रेणुपटलापदेशेन परस्परदर्शनं परिजहार । मिथोदर्शनापेक्षिणीवाक्षौहिणी तत्क्षण एव शिलीमुखमुख[1]विघटितविशङ्कटवक्षःकवाटविगलदविरलरुधिरधारया धरातलोद्यत्परागपरम्परामाचचाम । ततः साक्षाल्लक्ष्य-

पद्मनामव्यूहे कृते सति, चक्रशोभिनः शताङ्गा एव स्यन्दना एव नक्रा जलजन्तुविशेषास्तान् बिभर्तीति चक्रशोभिशताङ्गनक्रभृत् तस्मिन्, तुरङ्गा एव तरङ्गास्तुरङ्गतरङ्गास्ते विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मिन् हयतरङ्गयुक्ते, मातङ्गा गजा एव पोतास्तरणयस्तैरङ्किते चिह्निते, पदातीनां समूहः पादातं तदेव पयो जलं यस्मिंस्तस्मिन् परस्परस्पर्धायामन्योन्यासूयाय मुद्यतं तत्परं यत्पारावारद्वयं सागरद्वयं तस्मिन्निव पक्षद्वये लक्ष्यमाणे दृश्यमाणे, पटहध्वनेरपि ढक्कानादादपि ज्याघातरवे प्रत्यञ्चाघातशब्दे, पांसुपटलादपि धूलिसमूहादपि पत्रिणि बाणे, गभस्तिमालिगभस्तेरपि दिनकरकरादपि उदस्तानामस्त्राणां रश्मिनिकरः किरणसमूहस्तस्मिन्, रणरागादपि समरानुरागादपि रक्तौघे रुधिरप्रवाहे प्रतिसमयं प्रतिक्षणं प्रकृष्यमाणे सति, धनुः प्रहरणं येषां ते धानुष्का धानुष्कैः सह, निषादिनो हस्त्यारोहा निषादिभिर्हस्त्यारोहैः सह 'आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः' इत्यमरः, सादिनोऽश्वारोहाः सादिभिरश्वारोहैः सह 'अश्वारोहास्तु सादिनः' इत्यमरः, स्यन्दनारोहा रथिनः स्यन्दनारोहैः रथिभिः सह 'रथिनः स्यन्दनारोहा.' इत्यमरः युयुधिरे युद्धं चक्रुः ।

§ २४८. तावतेति—तावता तावत्कालेन धरणी भूमिः धरणीपतीनां राज्ञां मरणस्य भीतिस्तया रणनिवारणायेव समरनिरोधायेव रेणुपटलापदेशेन धूलिपटलव्याजेन परस्परदर्शनमन्योऽन्यावलोकनं परिजहार निरुरोध । मिथोदर्शनं परस्परावलोकनमपेक्षत इत्येवंशीला तथाभूतेव अक्षौहिणी सेना तत्क्षण एव तत्काल एव शिलीमुखानां बाणानां मुखेनाग्रभागेन विघटिता खण्डिता ये विशङ्कटवक्षःकवाटा विशालोरःस्थलकवाटास्तेभ्यो विगलन्ती निःसरन्ती या अविरला निरन्तरा रुधिरधारा रक्तप्रवाहस्तया धरातलात्पृथिवीतलादुद्यन्ती या परागपरम्परा रजःसन्ततिस्ताम् आचचाम आचान्तां चकार । ततो धूलिपटला-

पद्मव्यूहकी रचना की गयी, और चक्रसे सुशोभित रथरूप नाकोंको धारण करनेवाले, तुरंगरूपी तरंगोंसे युक्त, हाथीरूपी जहाजोंसे सहित और पैदल सैनिकरूपी जलसे भरे परस्परकी स्पर्धामें उद्यत दो समुद्रोंके समान जब दोनों पक्ष दिखाई देने लगे, जब डोरीके आघातका शब्द भेरीके शब्दसे, बाण धूलिके समूहसे, ऊपर उठाये हुए अस्त्रोंकी किरणोंका समूह सूर्यकी किरणोंसे और रक्तका समूह रणके रागसे भी अधिक प्रति समय प्रकर्षताको प्राप्त होने लगा, तब धनुर्धारी धनुर्धारियोंके साथ, महावत महावतोंके साथ, घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ और रथोंके सवार रथोंके सवारोंके साथ युद्ध करने लगे ।

§ २४८. उस समय पृथिवीने राजाके मरणके भयसे रण रोकनेके लिए ही मानो धूलिपटलके बहाने परस्परके दर्शनको छोड़ दिया । परस्परके अवलोकनकी अपेक्षा रखती हुईके समान पृथिवीने उसी क्षण बाणोंके अग्रभागसे विघटित विशाल वक्षःस्थलरूपी कपाटसे झरती हुई खूनकी अविरल धारासे पृथिवीतलसे उठती हुई धूलिकी परम्पराको आचान्त कर

१. क० ग० 'मुख' नास्ति ।

माणलक्ष्यतया निष्प्रतिघे सति बलौघे, पृषत्केषु केषुचिदगाधयोधहृदयावबोधलम्पटतयेव प्रतिभटोरःस्थलं प्रविशत्सु, परेषु परप्राणमोषणोपजातभीतिभराक्रान्तेष्विवान्तर्धातुमवनीमवगाहमानेषु, अपरेषु स्वनायकनिकटाटनविघटनेच्छयेव पाटितप्रतीपगामिपत्रिषु,[1] अन्येषु स्वयमपि जातमन्युभरेष्विवार्धपदविलुप्तपत्रभागेष्वपि परगात्रमधिविशत्सु, पुनरमित्रपर्यायनेत्रश्रवःस्फुरदहंकारहारिटंकारभीकरस्तनितसहितकरालकार्मुककरम्बितजीवककुमारजीमूतनिष्ठ्यूतसनिनदनीरन्ध्रशरनिकरनीरधाराभिहन्यमानसैन्यसानुमत्संभूता संस्थितधरणीपतिकिरीटकेयूरहारजालबालुकाषण्डा सदण्डसितातपत्रपुण्डरीका वेगविलोठितगजगण्डशैला प्लवमानचामरविसरडिण्डीरा परेततुरगलहरी-

पहरणानन्तरं साक्षात् प्रत्यक्षं लक्ष्यमाणानि दृश्यमानानि यानि लक्ष्याणि शरव्याणि तेषां भावस्तया बलौघे सेनासमूहे निष्प्रतिघे निर्बाधे सति, केषुचित् पृषत्केषु बाणेषु अगाधानां गम्भीराणां योधहृदयानां सैनिकस्वान्तानामवबोधे परिज्ञाने लम्पटतयेव संसक्ततयेव प्रतिभटानां शत्रूणामुरःस्थलं वक्षःस्थलं प्रविशत्सु सत्सु, परेषु बाणेषु परेषामन्येषां प्राणानामसूनां मोषणेनोपजाता समुत्पन्ना या भीतिर्भयं तस्या भरेणाक्रान्तेष्विव युक्तेष्विव अन्तर्धातुं तिरोधातुम् अवनीं पृथिवीम् अवगाहमानेषु प्रविशत्सु, अपरेष्वन्येषु पृषत्केषु स्वनायकानां निजनाथानां निकटेऽभ्यर्णेऽटनं भ्रमणं तस्य विघटनेच्छयेव दूरीकरणाभिलाषेणेव पाटिता विदारिता प्रतीपगामिनां शत्रूणां पत्रिणो बाणा यैस्तथाभूतेषु सत्सु, अन्येष्वितरेषु पृषत्केषु स्वयमपि स्वतोऽपि जातः समुत्पन्नो मन्युभरः क्रोधभरो येषां तथाभूतेष्विव अर्धपदे मार्गार्धे विलुप्तः पत्रभागो बाणाग्रभागो येषां तथाभूतेष्वपि परगात्रं शत्रुशरीरम् अधिविशत्सु प्रविशत्सु, पुनरिति—पुनरनन्तरम् अमित्रपर्यायाणां शत्रुरूपाणां नेत्रश्रवसां चक्षुःश्रवसां सर्पाणामिति यावत् स्फुरन् प्रकटीभवन्योऽहंकारो दर्पस्तस्य हारी यष्टङ्कारः प्रत्यञ्चारवः स एव स्तनितं घनगर्जितं तेन सहितः करालकार्मुकेण भयंकरधनुषा करम्बितश्च यो जीवककुमारजीमूतो जीवंधरघनाघनस्तस्मान्निष्ठ्यूतो निःसृतः सनिनदः सशब्दो नीरन्ध्रो निश्छिद्रश्च सघनश्चेति यावत् यः शरनिकरो बाणसमूहः स एव नीरधारा जलधारा तयाभिहन्यमानं ताड्यमानं यत्सैन्यं पृतना तदेव सानुमान्पर्वतस्तस्मात् संभूता समुत्पन्ना, संस्थिता मृता ये धरणीपतयो राजानस्तेषां किरीटकेयूरहारजालानि मुकुटाङ्गदमुक्तासरसमूहा एव बालुकाषण्डाः सिकतासमूहा यस्यां तथाभूता, सदण्डसितातपत्राण्येव दण्डयुक्तशुक्लच्छत्राण्येव पुण्डरीकाणि सितसरोरुहाणि यस्यां सा, वेगेन रयेण विलोठिताः प्रवाहिता गजा एव गण्डशैलाः क्षुद्रपर्वता यया तथाभूता, प्लवमान उत्तरन् यश्चामरविसरो

लिया था—नष्ट कर दिया था। तदनन्तर लक्ष्यके साक्षात् दिखाई देनेके कारण जब सेनाका समूह निर्बाध हो गया। जब कितने ही बाण, योधाओंके अगाध हृदयका ज्ञान प्राप्त करनेमें लम्पट होनेसे ही मानो उनके वक्षःस्थलमें प्रवेश करने लगे, जब कितने ही बाण दूसरोंके प्राण अपहरणसे उत्पन्न भयके भारसे आक्रान्त होकर ही मानो छिपनेके लिए पृथिवीमें प्रविष्ट होने लगे, जब कितने ही बाण अपने स्वामीके निकट आगमनको दूर करनेकी इच्छासे ही मानो शत्रुओंके बाणोंको विदीर्ण करने लगे, और कितने ही बाण जब स्वयं भी मानो क्रुद्ध होकर अध बीचमें ही पंखोंके अवयव टूट जानेपर भी शत्रुओंके शरीरमें प्रवेश करने लगे तब क्षणभरमें ही रुधिरकी नदी बहने लगी। वह रुधिरकी नदी शत्रुओंके नेत्र और कानोंसे प्रकट होते हुए अहंकारको हरनेवाली टंकार रूप भयंकर गर्जनासे सहित और भयावह धनुष रूप इन्द्रधनुषसे युक्त जीवन्धरकुमाररूपी मेघसे प्रकट होनेवाले सशब्द एवं सघन बाणसमूहरूप जलकी धारासे ताड़ित सेनारूप पर्वतसे उत्पन्न हुई थी। मरे हुए राजाओंके मुकुट केयूर और हारोंका समूह ही उसमें बालूका पुंज था। दण्डसहित सफेद छत्र ही उसमें

१. क० पत्रिकेषु।

परम्पराकुलकूलंकषा कर्षणरयाकृष्टावशिष्टाक्षौहिणीका क्षतजधुनी क्षणादिव प्रावहत् ।

§ २४९. तदेवं मारितपादाते दारितहास्तिके नश्यदाश्वीये विपरिवर्तितरथकड्ये सारथिरहितरथिनि रथारोहक्षुण्णक्षत्तरि स्तम्बेरममरणसविषादनिषादिनि हस्त्यारोहविरहितहस्तिनि तुरङ्गमविगमसीदत्सादिनि अश्वारोहविवर्जिताश्वे च सति सैन्ये, त्रियामामिव दीर्घनिद्रोपद्रुतबहुलां तमोगुणप्रभवां च, बौद्धपद्धतिमिव पिशिताशिसेव्यां निरात्मकशरीरां च गार्हस्थ्यप्रवृत्तिमिव मृतवारणविधुरां रक्तसुलभां च विलोक्य रणभुवम् 'किमिति क्षोदीयांसो हिंस्यन्ते जन्तवः ।

चामरव्यजनसमूहः स एव डिण्डीरोऽब्धिकफो यस्यां सा 'डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः' इत्यमरः, परेता मृता ये तुरगा हयास्त एव कहर्यस्तरङ्गास्तासां परम्पराः सन्ततयस्तासां कुलेन समूहेन कूलंकषा तटमुद्रुजा, कर्षणरयेण प्रवाहवेगेनाकृष्टा बलान्नीता अवशिष्टा मृतशेषा अक्षौहिणी सेना यस्याः सा, क्षतजधुनी रुधिरनदी क्षणादिव प्रवहत् प्रवहति स्म ।

§ २४९. तदेवमिति—तत्तस्मात् एवमनेन प्रकारेण मारितं पादातं पदातिसमूहो यस्मिंस्तस्मिन्, दारितं खण्डितं हास्तिकं हस्तिसमूहो यस्मिंस्तस्मिन्, नश्यन्नष्टीभवद् आश्वीयमश्वसमूहो यस्मिंस्तस्मिन्, विपरिवर्तिता विपर्यासिता रथकड्या रथसमूहो यस्मिंस्तस्मिन्, सारथिरहिताः सूतशून्या रथिनः स्यन्दनारोहा यस्मिंस्तस्मिन्, रथारोहै रथिभिः क्षुण्णाः क्षत्तारः सूता यस्मिंस्तस्मिन्, 'सूतः क्षत्ता च सारथिः' इत्यमरः, स्तम्बेरमाणां हस्तिनां मरणेन मृत्युना सविषादाः सखेदा निषादिनो हस्त्यारोहा यस्मिंस्तस्मिन्, हस्त्यारोहैर्निषादिभिर्विरहिता हस्तिनो गजा यस्मिंस्तस्मिन्, तुरङ्गमानां सप्तीनां विगमेन विनाशेन सीदन्तो दुःखीभवन्तः सादिनो हयारोहा यस्मिंस्तस्मिन्, अश्वारोहैः सादिभिर्विवर्जिता रहिता अश्वा यस्मिंस्तथाभूते च सैन्ये सति, त्रियामामिव रजनीमिव दीर्घनिद्रया मृत्युना पक्षे बहुकालव्यापिन्या निद्रयोपद्रुता बहुला बहवो जना यस्यां तथाभूतां, तमोगुणो ध्वान्तगुणः प्रभवः कारणं यस्याः सा पक्षे तमोगुणः सत्त्वादिगुणेष्वन्यतमो गुणस्तस्मात्प्रभवतीति तथा ताम्, बौद्धपद्धतिमिव बौद्धं मार्गमिव पिशिताशिभिर्मांसभोजिभिर्जनैः पक्षे मांसभक्षकैः शृगालादिजन्तुभिः सेव्यां सेवनीयाम् निरात्मकम् आत्मास्तित्वरहितं शरीरं यस्यां तां पक्षे निरात्मकानि शरीररहितानि मृतानि शरीराणि यस्यां ताम्, गार्हस्थ्यप्रवृत्तिमिव गृहस्थधर्मप्रवृत्तिमिव मृतवारणविधुरां मृतानां वारणेन प्रतिषेधेन विधुरां रहितां पक्षे मृतवारणैर्मृतमतङ्गजैर्विधुरां दुःखयुक्तां 'वारणं प्रतिषेधे स्याद्वारणस्तु मतङ्गजे' इति मेदिनी, रक्तसुलभां च रक्तानामनुरागसहितानां सुलभां पक्षे रक्तेन रुधिरेण सुलभां रणभुवं समरमेदिनीं विलोक्य दृष्ट्वा 'इतीत्थं

श्वेत कमल थे। उसने अपने वेगसे हाथीरूपी गोल चट्टानोंको बहा दिया था। तैरते हुए चामरोंका समूह ही उसमें फेन था। वह मरे हुए घोड़ेरूपी तरंगोंकी श्रेणीसे युक्त किनारेको नष्ट कर रही थी और खींचनेके वेगसे उसने अवशिष्ट सेनाको खींच लिया था।

§ २४९. इस तरह जिसमें पैदल सैनिक मारे गये थे, हाथियोंके समूह विदारित किये गये थे, घोड़ोंके समूह नष्ट हो गये थे, रथोंके समूह उलट गये थे, रथोंके सवार सारथियोंसे रहित हो गये थे, रथोंपर चढ़कर जिसमें सारथि मार दिये गये थे, हाथियोंके मरणसे जिसमें महावत खेदसहित हो गये थे, जिसमें हाथी हाथियोंके सवारोंसे रहित थे, घोड़ोंके नष्ट हो जानेसे जिसमें घुड़सवार दुःखी हो रहे थे और जिसमें घोड़े घुड़सवारोंसे रहित थे.... ऐसी सेनाके होनेपर रणभूमिको देखकर जीवन्धरस्वामी सोचने लगे कि इस तरह क्षुद्र जीव क्यों मारे जा रहे हैं? वही शत्रु जड़सहित नष्ट करनेके योग्य है। उस समय रणभूमि त्रियामा—रात्रिके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार त्रियामामें बहुत आदमी दीर्घनिद्रा—गहरी नींदसे उपद्रुत रहते हैं उसी प्रकार उस रणभूमिमें भी बहुत आदमी

स एव द्विषन्समूलकाषं कषणीयः' इति धिषणया पर्याणाञ्चितस्याञ्जनगिरिनाम्नः कुञ्जरस्य स्कन्धं बन्धुरयञ्जीवबन्धुर्जीवंधरकुमारः सुरशत्रुसादनोद्यतः शक्तिधर इव करकलितशक्तिः, त्रिपुरदहनाभिमुखस्त्रिपुरान्तक इव नितान्तभीषणकोपाट्टहासः, दाशरथिरिव तपस्यानधिकारिणं शम्बुकं राज्यानधिकारिणमेनमपि शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्यारातिमाह्वयते स्म। आह्वानक्षण एव क्षीणतरादृष्टः स रुष्टः काष्ठाङ्गारः क्रोधवेगस्फुरदोष्ठपुटतया निकटवर्तिनो निजाह्वानकृते कृतागमान्कृतान्तदूतानिव स्वान्तसंतोषिभिः सान्त्वयन्वचोभिः नातिचिरभाविनरकावसथभवदवतमसप्रचयमिवात्मानं प्रतिग्रहीतुकाममागतं करालं कालमेघाभिधानं करिणमारुह्य रोषाशुशुक्षणिविजृम्भमाणशोणेक्षणतीक्ष्णार्चिश्छटाछन्नाङ्गतया सप्तार्चिषि निमज्ज्य निजस्वामिद्रोहाभावं विभावयितुं

क्षोदीयान्सः क्षुद्रतरा जन्तवः किं हिंस्यन्ते? स एव द्विषन् शत्रुः काष्ठाङ्गारः समूलं कषित्वा समूलकाषं कषणीयो हिंसनीयः' इति धिषणया बुद्ध्या पर्याणाञ्चितस्य पृष्ठास्तरणसहितस्य अञ्जनगिरिनाम्नः कुञ्जरस्य हस्तिनः स्कन्धं ग्रीवापृष्ठभागं बन्धुरयन् शोभयन् जीवानां बन्धुर्हितकारको जीवंधरकुमारः सुरशत्रूणां दानवानां सादने नाशने उद्यतस्तत्परः शक्तिधर इव कार्तिकेय इव करे हस्ते कलिता धृता शक्तिस्तन्नामास्त्रं येन तथाभूतः पक्षे करकलिता प्राप्ता शक्तिः पराक्रमो यस्य सः, त्रिपुरदहनाय त्रिपुरदाहायाभिमुखस्तत्परः त्रिपुरान्तक इव हर इव नितान्तभीषणोऽतिभयंकरः कोपाट्टहासो रोषजनिताट्टहासो यस्य तथाभूतः, तपस्यानधिकारिणं शम्बुकं दाशरथिरिव राम इव राज्यानधिकारिणम् एनमपि काष्ठाङ्गारमपि शीर्षच्छेद्यं मस्तकच्छेद्यं परिच्छिद्य निश्चित्य अरातिं शत्रुम् आह्वयते स्म। आह्वानक्षण एव आकारणसमय एव क्षीणतरमतिशयेन क्षीणमदृष्टं भाग्यं यस्य तथाभूतो रुष्टः क्रुद्धः स काष्ठाङ्गारः क्रोधवेगेन रोषरयेण स्फुरद्वेपमानमोष्ठपुटं यस्य तस्य भावस्तया निकटवर्तिनः पार्श्वस्थान् निजाह्वानकृते स्वाह्वानकृते कृत आगमो यैस्तान् कृतान्तदूतानिव यमदूतानिव स्वान्तसंतोषिभिः मनःसन्तोषकारकैः वचोभिर्वचनैः सान्त्वयन् समाश्वासयन् नातिचिरभाविनि शीघ्रभाविनि नरकावसथे निरयागारे भवन् समुत्पद्यमानो योऽवतमसप्रचयस्तिमिरसमूहस्तमिव आत्मानं स्वं प्रतिगृहीतुकामं प्रतिग्रहणाय साभिलाषं करालं भयंकरं कालमेघाभिधानं कालमेघनामधेयं करिणं गजमारुह्य रोषाशुशुक्षणिना कोपपावकेन विजृम्भमाणानि वर्धमानानि शोणेक्षणयो रक्तनेत्रयोर्यानि तीक्ष्णार्चींषि तेषां छटया समूहेन छन्नाङ्गतया तिरोहितशरीरतया सप्तार्चिषि हुताशने निमज्ज्यावगाह्य निजस्वामिद्रोहाभावं स्वस्वामिद्रोहाभावं विभावयितुं प्रकटयितुं सत्यापयन्निव सत्यं कारयन्निव

दीर्घ निद्रा—मृत्युसे उपद्रुत थे और त्रियामा जिस प्रकार तमोगुणप्रभवा—अन्धकाररूप गुणसे उत्पन्न है उसी प्रकार वह रणभूमि भी तमोगुण रूप कारणसे उत्पन्न थी। अथवा बौद्ध-पद्धतिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार बौद्ध-पद्धति मांस खानेवालोंसे सेवनीय एवं आत्म-शून्य शरीरसे सहित है उसी प्रकार वह रणभूमि भी मांसभोजियोंसे उपास्य एवं निर्जीव शरीरोंसे सहित थी। अथवा गृहस्थ धर्मकी प्रवृत्तिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार गृहस्थ धर्मकी प्रवृत्ति मृतवारणविधुरा—मरे हुए लोगोंके निषेधसे रहित होती है उसी प्रकार वह रणभूमि भी मृतवारणविधुरा—मरे हुए हाथियोंसे दुःखपूर्ण थी, और जिस प्रकार गृहस्थ धर्मकी प्रवृत्ति रक्तसुलभा—रागी जनोंको सुलभ रहती है उसी प्रकार वह रणभूमि भी रक्तसुलभा—रुधिरसे सुलभ थी अर्थात् रुधिरकी वहाँ सुलभता थी। पलानसे सुशोभित अञ्जनगिरि नामक हाथीके स्कन्धको सुशोभित करते हुए जीवहितैषी जीवन्धरस्वामीने उस समय असुरोंको नष्ट करनेके लिए उद्यत हुए कार्तिकेयके समान हाथमें शक्तिको धारण कर, अथवा त्रिपुरको भस्म करनेके लिए उद्यत शिवके समान अत्यन्त भयंकर क्रोधजन्य अट्टहाससे युक्त हो अथवा रामके समान तपस्याके अनधिकारी शम्बूककी तरह राज्यके अनधिकारी

सत्यापयन्निव सत्यंधरमहाराजतनयाभिमुखमभीयाय। अवदच्चायमकिंचित्करः किञ्चिन्न्यञ्चन्मनाः 'कुमार कुरुवंशशिखामणे, प्रणतराजचूडामणिकिरणशोणनखमणिचरणो रावणोऽपि रणे मरणमीयिवानायुर्विरामे रामेण। किं पुनरपरः। तदयं मया वध्यो वध्योऽहमनेनेति बुद्धिमन्तो न विबुध्यन्ते[1]। किमर्थं मामविवेकमधिकमधिक्षिपसि।' इति। 'प्रतारणपरमेतदण[2]कनरेन्द्रस्याकर्ण्य कस्यचिद्भाषणं किमभैषीः।' इति प्रत्यभाषत प्रतिभाप्रकाशिततन्मनीषितः स मनीषी। पुनरनैषीच्च गत्यन्तरमत्यन्तरोषहुतवहावहवचःश्रवणेन 'किंवणिक्पुत्र, किं वाङ्मात्रेण। विजयस्तु विधिवशतः। तव शक्तिसमागमे चक्षुषी चेन्मम[3] त्रासजुषी स्यातां तदा परुषा स्यान्ममेयमाहो-

सत्यंधरमहाराजस्य तनयः पुत्रो जीवंधरस्तस्याभिमुखं सन्मुखम् अभीयाय अभिजगाम। किञ्चिदीषद् न्यञ्चन्नीचैर्भवन्मनो यस्य तथाभूतः अकिञ्चित्करोऽकर्मण्योऽयं काष्ठाङ्गारः अवदच्च कथयामास च—'कुरुवंशस्य शिखामणिस्तत्सम्बुद्धौ हे कुरुवंशशिखामणे! प्रणता नम्रीभूता ये राजचूडामणयो महीपतिशिखामणयस्तेषां किरणै रश्मिभिः शोणनखमणी चरणौ यस्य तथाभूतो रावणोऽपि रणे समरे आयुषो जीवितस्य विरामोऽवसानं तस्मिन् सति रामेण दाशरथिना मरणं मृत्युम् ईयिवान् प्राप्तः किं पुनरपरोऽन्यः? तत्तस्मादयं मया वध्यो हन्तुं योग्यः, अहम् अनेन वध्य इति बुद्धिमन्तो विवेकज्ञा न विबुध्यन्ते न जानन्ति, किमर्थं माम् अविवेकं विवेकरहितम् अधिकं यथा स्यात्तथा अधिक्षिपसि निन्दसि इति। 'प्रतारणपरं प्रवञ्चनापरम् एतत्पूर्वोक्तम् अणकनरेन्द्रस्य निकृष्टनरनाथस्य 'कुपूयकुत्सितावद्यखेटगर्ह्याणकाः समाः' इत्यमरः भाषणं कथनम् आकर्ण्य किम् अभैषीः भीतोऽसि' इति प्रतिभायां प्रकाशितं प्रकटितं तन्मनीषितं काष्ठाङ्गाराभिलषितं यस्य तथाभूतः स मनीषी विद्वान् जीवंधरः प्रत्यभाषत। पुनरिति—पुनरनन्तरम् अत्यन्तरोष एव हुतवहो वह्निस्तस्यावहं धारकं यद् वचो वचनं तस्य श्रवणेन समाकर्णनेन 'कुत्सितो वणिगिति किंवणिक् तस्य पुत्रस्तत्सम्बुद्धौ वाङ्मात्रेण वचनमात्रेण किम्। विजयस्तु विधिवशतो दैववशाद् भवतीति शेषः। तव शक्तिसमागमे मम चक्षुषी त्रासजुषी भययुक्ते स्यातां भवेतां चेत् तदा ममेयम् आहोपुरुषिका

काष्ठांगारको भी शीर्षच्छेद्य—शिरसे काटने योग्य समक्ष शत्रुका आह्वान किया। आह्वानके समय ही जिसका अदृष्ट—भाग्य अत्यन्त क्षीण हो गया था तथा जो अत्यन्त रोषसे युक्त था ऐसा काष्ठांगार क्रोधके वेगसे फड़कते हुए ओष्ठपुटसे अपने बुलानेके लिए आये हुए यमराजके दूतोंके समान निकटवर्ती मनुष्योंको स्वान्त सन्तोषी—हृदयको सन्तुष्ट करनेवाले (पक्षमें अपने अन्तसे सन्तोष उत्पन्न करनेवाले वचनोंसे सान्त्वना देता हुआ, जो बहुत शीघ्र प्राप्त होनेवाले नरकावासमें प्रकट होते हुए अन्धकारके समूहके समान जान पड़ता था ऐसे अपने आपको लेनेके लिए संमुखागत कालमेघ नामक भयंकर हाथीपर आरूढ़ हो सत्यन्धर महाराजके पुत्र जीवन्धर स्वामीके संमुख चला।) उस समय उसका शरीर क्रोधाग्निसे बढ़ते हुए लाल नेत्रोंकी तीक्ष्ण ज्वालाओंकी छटासे आच्छादित हो रहा था इसलिये वह ऐसा जान पड़ता था मानो अग्निमें अवगाहन कर अपने स्वामिद्रोहके अभावका विश्वास दिलानेके लिए उसकी सत्यता ही दिखला रहा हो। तदनन्तर जो अकिञ्चित्कर था—कुछ कर सकनेमें असमर्थ था और जिसका मन कुछ-कुछ टूट रहा था ऐसा काष्ठांगार बोला कि हे कुरुवंशके शिखामणि! कुमार! नम्रीभूत राजाओंके चूडामणिकी किरणोंसे लाल-लाल नखरूपी मणियोंसे सुशोभित चरणोंको धारण करनेवाला रावण भी आयु समाप्त होनेपर युद्धमें रामके द्वारा मृत्युको प्राप्त हो गया था फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? इसलिए यह मेरे

१. क० ख० ग० न विबुध्यन्ते, इति। २. अणकः—निकृष्टः, इति टि०। ३. क० ख० ग० 'चेत्' नास्ति।

पुरुषिका। युक्तं च त्वयापि वक्तुमेवम्' इत्युक्त्वा सत्वरोपसर्पितकरिणः करिणमवप्लुत्योदस्तकौक्षेयकं क्षेपीयः स्वयं हन्तुमापतन्तं[1] तमन्तराले नितान्तनिशितशक्तिशकलितशरीरयष्टिं काष्ठाङ्गारम्। उदस्तम्भयच्च संग्रामसंरम्भस्तम्भनं विजयानन्दनो विजयध्वजम्। अभ्यनन्दयच्च सानन्दमभ्येत्य सफललोचनत्वमात्मन्यात्मजायां वीरपत्नीव्यपदेशं वीरसूव्यपदेशमप्यवरजायामाकलयन्तम्, चन्दनशिशिरेण हृदयनिर्वाणविवरणचतुरेण विमलस्थूलेन निष्पतता बाष्पपूरेणाभिषिञ्चन्तमिवालिङ्गन्तं गोविन्दमहाराजम्, आजिदर्शितनैकापदानसंभवदानृण्यानवरजसमेतान्

सदर्पता परुषा व्यर्था स्यात् त्वयापि एवं वक्तुं निगदितुं युक्तं च स्यादिति शेषः' इत्युक्त्वा सत्वरं शीघ्रमुपसर्पितश्चासौ करी च सत्वरोपसर्पितकरी तस्मात् शीघ्रोपगमितगजात् करिणं तदीयगजम् अवप्लुत्य उत्पत्य उद्स्तकौक्षेयकं समुत्थापितखड्गं क्षेपीयः शीघ्रं स्वयं हन्तुं मारयितुम् आपतन्तमायान्तं अन्तराले मध्ये नितान्तनिशितशक्त्या अत्यन्ततीक्ष्णशक्त्यायुधेन शकलिता खण्डिता शरीरयष्टिर्देहयष्टिर्यस्य तथाभूतं तं काष्ठाङ्गारं गत्यन्तरम् अनैषीत् प्रापयामास। उद्स्तम्भयच्च उन्नमयामास च विजयानन्दनो जीवंधरः संग्रामसंरम्भस्तम्भनं समरोद्योगनिवारकं विजयशंसिनं विजयसूचकं विजयध्वजं विजयवैजयन्तीम्। अभ्यनन्दयच्चेति—सानन्दं सहर्षम् अभ्येत्य समागत्य, आत्मनि स्वस्मिन् सफललोचनत्वं सार्थकनयनत्वम्, आत्मजायां पुत्र्यां वीरपत्नीति व्यपदेशस्तं वीरभार्याव्यवहारम्, अवरजायां लघुभगिन्यां विजयामहादेव्यां वीरं सूत इति वीरसूस्तथा व्यपदेशस्तं वीरजननीव्यवहारम् आकलयन्तं धृतवन्तम् चन्दन इव शिशिरः शीतलस्तेन मलयजशीतलेन हृदयनिर्वाणस्य चेतःसंतोषस्य विवरणे प्रकटने चतुरस्तेन, विमलश्चासौ स्थूलश्चेति विमलस्थूलस्तेन समुज्ज्वलपीवरेण निष्पतता निर्गलता बाष्पपूरेण नयनजलप्रवाहेण अभिषिञ्चन्तमिव स्नपयन्तमिव आलिङ्गन्तं समाश्लिष्यन्तं गोविन्दमहाराजम् आजौ युद्धे दर्शितं प्रकटितं यत् नैकापदानं नैकसाहसं तेन संभवद् आनृण्यम् ऋणमुक्तत्वं यैस्तथाभूतान्, अवरजसमेतान् लघुसनाभि-

द्वारा वध्य है अथवा मैं इसके द्वारा वध्य हूँ ऐसा बुद्धिमान् मनुष्य नहीं जानते। फिर किसलिए विवेकरहित हो मेरा अधिक तिरस्कार कर रहे हो? नीच राजा काष्ठांगारके मायापूर्ण उक्त वचनोंको श्रवण कर प्रतिभासे उसके अभिप्रायको प्रकाशित करनेवाले बुद्धिमान् जीवन्धरस्वामीने उत्तर दिया कि भयभीत क्यों हो रहे हो? तदनन्तर अत्यन्त क्रोधाग्निको धारण करनेवाले वचन सुननेसे 'अरे नीचवणिक् पुत्र! वचन मात्रसे क्या? विजय तो भाग्यके वशसे होती है। तेरी शक्तिका समागम होनेपर यदि मेरे नेत्र भयभीत हो जावें तो मेरा यह पुरुषत्वका अहंकार व्यर्थ हो सकता है और तेरा ऐसा कहना भी ठीक हो सकता है, यह कह शीघ्रतासे पासमें ले जाये हुए हाथीसे हाथीपर उछलकर ज्यों ही काष्ठांगार तलवार तानकर शीघ्र ही मारनेके लिए झपटा कि जीवन्धरस्वामीने बीचमें ही अत्यन्त तीक्ष्ण शक्ति नामक शस्त्रसे उसके शरीरके खण्ड-खण्ड कर उसे परलोक भेज दिया और युद्धकी तैयारीको रोकनेवाली एवं विजयको सूचित करनेवाली विजयपताका फहरा दी। तदनन्तर जो अपने आपमें सफल लोचनताको, पुत्रीमें वीरपत्नीके व्यपदेशको और छोटी बहिन—विजया रानीमें वीरसू व्यपदेशको धारण कर रहे थे। जो चन्दनके समान शीतल, हृदयके सन्तोषको प्रकट करनेमें चतुर, निर्मल और स्थूल गिरते हुए अश्रुप्रवाहसे मानो अभिषेक ही कर रहे थे ऐसे आलिंगन करते हुए गोविन्द महाराजका, युद्धमें दिखलाये हुए अनेक प्रकारके पराक्रमसे जिनकी अनृणता सूचित हो रही थी ऐसे छोटे भाई सहित मित्रोंका,

1. क० ख० हन्तुमात्मनि पतन्तम्।

सखीन् सह प्राभृतेन प्रसभमागत्य प्रणमन्तमपि पृथ्वीपतिसमाजम् ।

§ २५०. ततश्च वैरिनिहननोपलब्धवैरशुद्धिमेनं विलोकयितुमरिशुद्धान्तावशेषमापेतुषां भर्त्सनमपि कृत्स्नसंमानं ताडनमपि सनीडप्रवेशनं निवारणमपि दर्शनद्वारकरणं दूरीकरणमप्यूरीकरणं गणयतां गोगणावस्कन्दिविपिनेचरविजयोपोद्घातमात्मापदानं शंसता पुरोकसामुल्लोककोलाहलेन सकुतूहलमनाः कनत्कलधौतमयकालाञ्चीमुकुरचामरभृङ्गारतालवृन्तप्रभृतिपरिबर्हैर्निरन्तरितपर्यन्तः समन्तात्सेवमानसामन्तलोकसमभिधीयमानालोकशब्दः प्रशस्ततमे मुहूर्ते निर्वर्तिततदुपकार्याप्रदेशः प्रतिप्रदेशनिविष्टनिष्टप्तहाटकहटदष्टमङ्गलविराजितं राजपुर्याः सहजमिवालंकार-

सहितान् सखीन् वयस्यान् प्राभृतेनोपहारेण सह सार्धं प्रसभं हठात् आगत्य प्रणमन्तं नमस्कुर्वन्तं पृथ्वीपतिसमाजमपि महीपालमण्डलमपि अभ्यनन्दयच्च समभिनन्दितवान् ।

§ २५०. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च वैरिणः शत्रोः काष्ठाङ्गारस्य निहननेन मारणेनोपलब्धा प्राप्ता वैरशुद्धिर्येन तथाभूतम् एनं जीवंधरं विलोकयितुम् अरिशुद्धान्तावशेषं शत्र्वन्तःपुरं शेषयित्वा आपेतुषामागच्छताम् भर्त्सनमपि तिरस्कारणमपि कृत्स्नसंमानं पूर्णसत्कारम्, ताडनमपि पीडनमपि सनीडप्रवेशनं समीपप्रवेशनम्, निवारणमपि निरोधनमपि दर्शनस्य द्वारकरणं साधननिर्माणमिति दर्शनद्वारकरणम्, दूरीकरणमपि ऊरीकरणमङ्गीकरणम्, गणयतां मन्यमानानाम् गोगणस्य धेनुसमूहस्यावस्कन्दिनोऽपहारिणो ये विपिनेचराः किरातास्तेषां विजयेनोपोद्घातः प्रारम्भो यस्य तथाभूतम् आत्मापदानं स्वसाहसं 'अपदानं तु साहसम्' इति धनंजयः, शंसतां सूचयतां पुरोकसां नगरनिवासिनाम् उल्लोककोलाहलेन प्रचुरकलकलरवेण सकुतूहलं कौतुकाक्रान्तं मनो यस्य तथाभूतः कनत्कलधौतमया देदीप्यमानस्वर्णनिर्मिता कालाञ्ची तीर्थपात्रं मुकुरो दर्पणः चामरो बालव्यजनं भृङ्गारो जलपात्रम् तालवृन्तं व्यजनम् एतत्प्रभृतयः परिबर्हा उपकरणानि तैर्निरन्तरितो व्याप्तः पर्यन्तः समीपप्रदेशो यस्य तथाभूतः, समन्ताद् विष्वग् सेवमानाः सेवां कुर्वाणा ये सामन्तलोका मण्डलेश्वरास्तैः समभिधीयमानः समुच्चार्यमाण आलोकशब्दो जयध्वनिर्यस्य तथाभूतः सन् प्रशस्ततमे श्रेष्ठतमे मुहूर्ते लग्ने निर्वर्तिता रचिताः तदुपकार्याप्रदेशाः तदुपकारिकाप्रदेशाः योग्यपटकुटीप्रदेशा येन तथाभूतः सन् 'उपकार्योपकारिका' इत्यमरः प्रतिप्रदेशं स्थाने स्थाने निविष्टानि स्थापितानि निष्टप्तहाटकस्य संतप्तस्वर्णस्य हटम्ति देदीप्यमानानि यानि अष्टमङ्गलानि तैर्विराजितं शोभितं

तथा भेंटके साथ हठात् आकर प्रणाम करते हुए राजसमूहका जीवन्धरस्वामीने हर्षपूर्वक सामने जाकर अभिनन्दन किया—आभार माना ।

§ २५०. तत्पश्चात् शत्रुको मारनेसे जिन्हें वैरका प्रतिशोध हो गया था ऐसे इन जीवन्धरस्वामीको देखनेके लिए शत्रुके अन्तःपुरको छोड़ शेष समस्त नगरवासी चारों ओरसे आने लगे । उस समय नगरवासी लोग डाँटको भी पूर्ण सम्मान, ताडनको भी समीपमें प्रवेश, मना करनेको भी दर्शनका द्वार करना, और दूरीकरणको भी स्वीकरण समझ रहे थे । तथा गायोंके समूहको चुरानेवाले भीलोंकी विजयको लेकर जीवन्धरस्वामीके पराक्रमकी प्रशंसा कर रहे थे । उन लोगोंके बहुत भारी कोलाहलसे जिनका मन कुतूहलसे सहित हो रहा था, देदीप्यमान स्वर्णसे निर्मित तीर्थपात्र, दर्पण, चामर, झारी और पंखा आदि उपकरणोंसे जिनका समीपवर्ती प्रदेश व्याप्त था, सब ओरसे सेवा करनेवाले सामन्त लोकोंके द्वारा जिनका जय-जयकार हो रहा था, अत्यन्त शुभ मुहूर्तमें जिनकी राजवसतिकाका स्थान रचा गया था, जो विधि-विधानको जाननेवाले थे तथा श्रद्धालुजनोंमें चूडामणि स्वरूप थे ऐसे जीवन्धर स्वामी अभिषेक करनेके लिए प्रत्येक प्रदेशपर स्थित सन्तप्त सुवर्णसे निर्मित देदीप्यमान

१. ग० विजयोद्भूतमात्मापदानम् । क० ख० विजयोद्भूतमात्मावदानम् । २. तीर्थपात्रम् इति टि० ।

मलंकृतमिव त्रिदिवं त्रिजगत्सार इति विश्रुतं श्रीजिनालयमभिषेकविषये विधानज्ञोऽयमास्तिकचूडामणिरधिकास्थयोपतस्थौ ।

§ २५१. तत्र च सत्वरपरिजनसंनिधाप्यमानैर्नैकमणिमहःकबलितधवलातपत्रकिरीटहरिविष्टरैरष्टमङ्गलाद्यभिषेकोपकरणैश्च करम्बितहरिति, हूयमानदहनदक्षिणावर्तार्चिश्छटादर्शनतृप्तपुरोधसि, विधीयमानविविधकार्यतात्पर्यसंचरमाणपञ्चजनपरस्परसंघट्टनप्रेङ्खत्केयूरजनितक्रेङ्कारवाचालितककुभि, दीयमानदीनारादिवितृष्णदीनलोकपाणितलान्तरपर्याप्तच्युतमाणिक्यमौक्तिकस्थपुटितमणिकुट्टिमे प्रसवपरिमलादपि भ्रमरझंकारस्य, जनताया अपि प्रमदस्य, सुन्दरीजनादपि

राजपुर्यास्तन्नामराजधान्याः सहजं स्वाभाविकम् अलंकारमिव भूषणमिव अलंकृतं संक्षिप्तं त्रिदिवमिव अथवा त्रिदिवमिव स्वर्गमिवालंकृतं त्रिजगत्सार इति विश्रुतं तन्नाम्ना प्रसिद्धम् श्रीजिनालयं जिनमन्दिरम् अभिषेकविषये जिनस्नपनाय विधानज्ञः विधिज्ञानोपेतः आस्तिकचूडामणिः श्रद्धालुजनश्रेष्ठोऽयं जीवंधरः अधिकास्थया भूयिष्ठश्रद्धया उपतस्थौ उपास्थात् ।

§ २५१. तत्र चेति—तत्र च श्रीजिनालये च । अथ तस्यैव विशेषणान्याह—सत्वरेति-सत्वरैः शीघ्रतासहितैः परिजनैः परिकरपुरुषैः संनिधाप्यमानानि समुपस्थाप्यमानानि तैः नैकमणीनां नानारत्नानां महसा तेजसा कबलितानि व्याप्तानि यानि धवलातपत्रकिरीटहरिविष्टराणि सितच्छत्रमुकुटसिंहासनानि तैः अष्टमङ्गलादीनि च तान्यभिषेकोपकरणानि चेत्यष्टमङ्गलाद्यभिषेकोपकरणानि तैश्च करम्बिता व्याप्ता हरितो दिशो यस्मिंस्तस्मिन्, हूयमानः साकल्येन संतर्प्यमाणो यो दहनो वह्निस्तस्य दक्षिणावर्तानि यान्यर्चींषि ज्वालास्तासां छटाया दर्शनेन तृप्ताः संतुष्टाः पुरोधसः पुरोहिता यस्मिंस्तस्मिन्, विधीयमानानि क्रियमाणानि यानि विविधकार्याणि नानाकृत्यानि तेषु तात्पर्येण तत्परत्वेन संचरमाणा इतस्ततो गच्छन्तो ये पञ्चजनाः पुरुषास्तेषां परस्परसंघट्टेन मिथोविमर्देन प्रेङ्खद्भिश्चलद्भिः केयूरैरङ्गदैर्जनितः समुत्पादितो यः क्रेङ्कारोऽव्यक्तशब्दविशेषस्तेन वाचालिताः शब्दिताः ककुभो दिशो यस्मिंस्तस्मिन्, दीयमानैर्वितीर्यमाणैर्दीनारादिभिः स्वर्णमुद्रादिभिर्वितृष्णास्तृष्णारहिता ये दीनलोका याचकजनास्तेषां पाणितलान्तः करतलमध्येऽपर्याप्तान्यसंमितानि अतएव च्युतानि पतितानि यानि माणिक्यमौक्तिकानि रत्नमुक्ताफलानि तैः स्थपुटितो नतोन्नतो मणिकुट्टिमो रत्नखचितवसुधाभोगो यस्मिंस्तस्मिन् । प्रसवपरिमलादपि पुष्पसौगन्ध्यादपि भ्रमरझंकारस्य षट्पदगुञ्जारवस्य, जनताया अपि जनसमूहादपि प्रमदस्य हर्षस्य, सुन्दरीजनादपि

अष्ट मंगल द्रव्योंसे सुशोभित, राजपुरीके सहज—स्वाभाविक अलंकारके समान अथवा अलंकृत स्वर्गके समान त्रिजगत्सार नामसे प्रसिद्ध जिनालयमें पहुँचे ।

§ २५१. वहाँ शीघ्रतासे युक्त परिजनोंके द्वारा समीपमें रखे जानेवाले नाना मणियोंके तेजसे युक्त सफेद छत्र, मुकुट और सिंहासन तथा अष्ट मंगल द्रव्यको आदि लेकर अभिषेकके उपकरणोंसे जिसकी दिशाएँ व्याप्त हो रही थीं, होमी हुई अग्निकी दक्षिणावर्त ज्वालाओंकी छटाके देखनेसे जिसमें पुरोहित लोग सन्तुष्ट हो रहे थे, किये जानेवाले नाना कार्योंकी तत्परतासे इधर-उधर घूमनेवाले मनुष्योंकी परस्परकी धक्का-धूमीसे हिलते हुए बाजूबन्दोंकी झंकार ध्वनिसे जिसमें दिशाएँ शब्दायमान हो रही थीं, दी जानेवाली दीनारों आदिसे सन्तुष्ट दीन जनोंके हस्ततलके अन्तरसे अधिक मात्रामें गिरे हुए मणियों और मोतियोंसे जिसमें मणिखचित फर्श ऊँचा-नीचा हो रहा था, जहाँ फूलोंकी सुगन्धिसे भी अधिक भ्रमरों-

सौन्दर्यस्य, कर्तव्यादपि तत्कर्मान्तिकस्य,[1] वनीपकवाञ्छातोऽपि देयकाञ्चनस्य, वादित्रक्वणितादपि नृत्यदङ्गनारशनारणितस्य, शास्त्रचोदितादपि सपर्याक्रमस्य समधिकस्य समुद्भवे, भगवतः श्रीमन्दिरे सुरेन्द्र इव दूरादैरावणाद्वारणवरादवरुह्य वर्यया भक्त्या सपर्यानन्तरपर्याप्तमधिगमसम्यक्त्वं[2] बहिः प्रसारयन्निव वाणीं गद्गदयन्, पाणि मुकुलयन्, नेत्रयुगं स्रावयन्, गात्रं पुलकयन्, शिरः प्रह्वयन्, मनः प्रसादयन्, प्राज्येज्यापरिकरैः परिपूज्य भगवन्तं भक्तिजलप्रवाहेण प्रागेवाभिषेकात्प्रक्षालितबहुलाघजम्बालोऽभूत् ।

§ २५२. तावदुदञ्चच्चन्द्रचन्द्रिकासंचयेनेव कञ्चुकितम्, विहरमाणसौत्रामणवारण[3]देहप्रभाप्रतानेनेव सवितानम्, क्रीडाचटुलसुरधुनीमरालमण्डलपक्षैरिव वलक्षितम्, आकालिकतुषार-

छलनालोकादपि सौन्दर्यस्य लावण्यस्य, कर्तव्यादपि कार्यादपि तत्कर्मान्तिकस्य तत्कर्मकरकलापस्य, वनीपकवाञ्छातोऽपि याचकमनोरथादपि देयकाञ्चनस्य दातव्यसुवर्णस्य, वादित्रक्वणितादपि वाद्यरवादपि नृत्यदङ्गनानां नटन्नारीणां रशनारणितस्य मेखलाशब्दस्य, शास्त्रचोदितादपि शास्त्रनिरूपितादपि समधिकस्य प्रभूतस्य सपर्याक्रमस्य पूजाक्रमस्य समुद्भवे सति समुत्पत्तौ सत्याम्, भगवतोऽर्हतः श्रीमन्दिरे ऐरावणात् ऐरावतात् सुरेन्द्र इव देवेन्द्र इव वारणवरात् गजराजात् दूरात् अवरुह्य समवतीर्य वर्यया श्रेष्ठया भक्त्या सपर्यानन्तरं पर्याप्तं प्राप्तं यदधिगमसम्यक्त्वं परोपदेशादिजनितसम्यग्दर्शनं तद् बहिःप्रसारयन्निव विस्तारयन्निव, वाणीं गद्गदयन् गद्गदां कुर्वन्, पाणि मुकुलयन् बद्धाञ्जलित्वेन कुड्मलाकारं कुर्वन्, नेत्रयुगं नयनयुगलं स्रावयन् ततो हर्षाश्रु विगलयन्, गात्रं शरीरं पुलकयन् रोमाञ्चयन्, शिरःशीर्षं प्रह्वयन् नमयन्, मनश्चित्तं प्रसादयन् प्रसन्नं कुर्वन्, प्राज्येज्यापरिकरैः प्रकृष्टपूजासामग्रीभिः भगवन्तं परिपूज्य समर्च्य भक्तिरेव जलप्रवाहस्तेन अभिषेकात् प्रागेव पूर्वमेव प्रक्षालितः प्रधौतो बहुलाघजम्बालो भूयिष्ठपापनिषद्वरो यस्य तथाभूतः अभूत् 'निषद्वरस्तु जम्बालः' इत्यमरः ।

§ २५२. तावदिति—तावत् तावता कालेन उदञ्चन् उदीयमानो यश्चन्द्रो विधुस्तस्य चन्द्रिकाया ज्योत्स्नायाः संचयेन समूहेन कञ्चुकितमिव व्याप्तमिव, सुत्राम्णोऽयं सौत्रामणः स चासौ वारणश्चेति सौत्रामणवारणः विहरमाणः पर्यटन् यः सौत्रामणवारण इन्द्रगजस्तस्य देहप्रभाप्रतानेन कायकान्तिकलापेन सवितानमिव सोल्लोचमिव क्रीडाचटुला केलिचपला ये सुरधुनीमराला गङ्गाहंसास्तेषां मण्डलस्य समूहस्य

का झंकार, जनतासे भी अधिक हर्ष, सुन्दरीजनोंसे भी अधिक सौन्दर्य, कार्यसे भी अधिक उस कार्यके करनेवाले, याचकोंकी वाञ्छासे भी अधिक देने योग्य सुवर्ण, बाजोंके शब्दसे भी अधिक नृत्य करनेवाली स्त्रियोंकी मेखलाकी रुनझुन, और शास्त्रमें कहे हुएकी अपेक्षा अधिक पूजाके क्रमकी उद्भूति थी ऐसे भगवान्‌के मन्दिरमें ऐरावत हाथीसे इन्द्रके समान उत्तम हाथीसे दूर ही-से उतरकर उत्कृष्ट भक्तिके कारण जो पूजाके बाद अधिकताको प्राप्त होनेवाले सम्यक्त्वको बाहर फैलाते हुएके समान वाणीको गद्गद कर रहे थे, हस्ततलको मुकुलित कर रहे थे, नेत्रयुगलसे हर्षाश्रु झरा रहे थे, शरीरको पुलकित कर रहे थे, शिरको हिला रहे थे और मनको प्रसन्न कर रहे थे ऐसे जीवन्धरस्वामी पूजाकी श्रेष्ठ सामग्रीसे भगवान्‌की पूजा कर भक्तिरूप जलके प्रवाहसे अभिषेकके पूर्व ही धुल गयी है प्रचुर पापरूपी कीचड़ जिनकी ऐसे हो गये।

§ २५२. उसी समय जो आकाशको उदित होते हुए चन्द्रमाकी चाँदनीके समूहसे व्याप्तके समान, घूमते हुए ऐरावत हाथीके शरीरकी प्रभाके समूहसे सहितके समान, क्रीड़ासे चञ्चल आकाशगंगाके हंस समूहके पंखोंसे सफेद किये हुएके समान, असमयमें होनेवाले

१. क० 'तत्' नास्ति । २. म० पर्याप्तसम्यक्त्वम् । ३. क० सुत्रामवारण—।

वारिशीकरविसरैरिव विच्छुरितम्, विसृमरपर्याप्तधूपस्तूपधूमनिष्पन्नधूमयोनिपरस्परसंघट्टविघटितजठरान्तर्मुक्तमुक्ताफलकान्तिव्रातेनेव वीध्रं[1] वियद्विदधानः पारिषद्यचक्षुराह्लादभाभारेण परीतः स कृतज्ञप्राग्रहरः कृतज्ञचरः सुदर्शननामा देवः सादरमन्तरिक्षादवारुक्षत्।

§ २५३. अभ्यषिञ्चच्च तदभिषेकाधिकृतैरमा सपरितोषं निजपरिवारामरपरम्परानीतया परार्घ्याखिलतीर्थाम्बुपूरपूरितया परिसरप्रत्युप्तपद्मरागप्रभाजालजटिलकिसलयापीडया महनीयरत्नमहौषधिबीजसमवाप[2]समग्रमङ्गलशालिकट्या शातकुम्भकुम्भपरिपाट्या भगवन्तमिव मन्दरगिरिमस्तकनिविष्टं विष्टरश्रवा हरिविष्टरविराजिनं जीवंधरमहाराजम्।

पक्षैर्गगनैः बलक्षितमिव शुक्लीकृतमिव, आकालिका असमयोद्भूता ये तुषारवारिशीकराः प्रालेयसलिलकणास्तेषां विसरैः समूहैर्विच्छुरितमिव व्याप्तमिव, विसृमरा विसरणशीलाः पर्याप्ताः प्रचुरा ये धूपस्तूपा धूपघटास्तेषां धूमेन निष्पन्ना उत्पादिता ये धूमयोनयो घनास्तेषां परस्परसंघट्टेन विघटितं विदारितं यज्जठरं मध्यं तस्यान्तर्मध्यात् मुक्तानि पतितानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां कान्तीनां व्रातेन समूहेनेव वीध्रं शुक्लं वियद्गगनं विदधानः कुर्वाणः 'घनजीमूतमुदिरजलमुग्धूमयोनयः' इत्यमरः, पारिषद्यानां सदस्यदेवानां चक्षुषां नयनानामाह्लादो यस्मात्तथाभूतो यो भाभारः कान्तिसमूहस्तेन परीतो व्याप्तः कृतज्ञानां कृतमुपकारं जानतां प्राग्रहरः श्रेष्ठः भूतपूर्वः कृतज्ञः कुक्कुर इति कृतज्ञचरः स सुदर्शननामा देवोऽमरः सादरं यथा स्यात्तथा अन्तरिक्षाद् व्योम्नः अवारुक्षत् अवततार।

§ २५३. अभ्यषिञ्चच्चेति—तस्याभिषेकेऽधिकृतास्तैस्तत्स्नपनाधिकारिभिः अमा साकं सपरितोषं परितोषयुतं यथा स्यात्तथा निजपरिवारामराणां स्वकुटुम्बनिलिम्पानां परम्परया पङ्क्त्या आनीता तया, परार्घ्याः श्रेष्ठा येऽखिलतीर्था निखिलपवित्रक्षेत्राणि तेषामम्बुपूरेण जलप्रवाहेन पूरिता संभृता तया, परिसरे तटे प्रत्युप्तानां खचितानां पद्मरागाणां लोहिताभमणीनां प्रभाजालेन कान्तिकलापेन जटिलो व्याप्तः किसलयापीडः पल्लवसमूहो यस्यास्तया महनीयरत्नैर्देदीप्यमानमणिभिः महौषधिभिः बीजसमवायेन बीजसमूहेन, समग्रमङ्गलैश्च निखिलमङ्गलद्रव्यैश्च शालिनी शोभिनी कटिर्मध्यभागो यस्यास्तया शातकुम्भस्य भर्मणः कुम्भानां घटानां परिपाट्या पङ्क्त्या मन्दरगिरेः सुमेरोर्मस्तके शिखरे निविष्टं स्थितं भगवन्तं तीर्थङ्करं विष्टरश्रवा इव शक्र इव,हरिविष्टरे सिंहासने विराजते शोभत इत्येवंशीलस्तं जीवंधरमहाराजम् अभ्यषिञ्चच्च स्नपयामास च।

बर्फ युक्त जलके छींटोंके समूहसे व्याप्तके समान, अथवा फैलनेवाले अत्यधिक धूप स्तूपोंके धूमसे निष्पन्न अग्नियोंके परस्परके संघट्टसे विघटित होकर बीचमें छूटे हुए मोतियोंकी कान्तिके समूहसे ही मानो सफेद कर रहा था, सभासदोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाली प्रभाके समूहसे व्याप्त था, और कृतज्ञों—कृत उपकारके माननेवालोंमें प्रधान था, ऐसा कुत्ताका जीव सुदर्शन नामका देव बड़े आदरसे आकाश से नीचे उतरा।

§ २५३. और उसने उनके अभिषेक कार्यमें अधिकारी लोगोंके साथ बहुत भारी सन्तोषसे, अपने परिवारके देवों की परम्परासे लाये हुए, उत्तमोत्तम समस्त तीर्थोंके जलसे भरे हुए समीपमें लगे पद्मराग मणियोंके प्रभाजालसे व्याप्त किसलयोंके समूहसे युक्त, श्लाघनीय रत्न रूपी महौषधिके बीजकी प्राप्ति करानेवाले समग्र मंगलोंसे सुशोभित कटिभागसे युक्त स्वर्णमय कलशोंके समूहसे सिंहासनपर विराजमान जीवन्धरमहाराजका उस तरह अभिषेक किया जिस तरह कि इन्द्र सुमेरु पर्वतके मस्तकपर स्थित जिनेन्द्र भगवान्का करता है।

१. वीध्रं तु विमलार्थकम् इति टि०। २. क० समावाप।

§ २५४. अभिषेकसलिलौघे च संसिद्धिसिद्धनैर्मल्ये निर्मलतमतदङ्गस्पर्शनेन पावनतां प्रतिपद्य पापभूपसंपर्कपांसुलामपांसुलां कर्तुमिव काश्यपीं व्यश्नुवाने, भृशमुन्मूलितरागाणामप्युत्कण्ठावहं गायत्किन्नरकण्ठीनां गणेन सुरकिंकरवाद्यमानैरमानुषातोद्यैरभिनवरसानुबन्धमभिनन्दन्तीनामप्सरसां सार्थेन चिरममर्त्यलोकायमाने भुवने भुवनैकशरण्यं लावण्यमूर्ति मूर्धाभिषिक्तमेनं स्वयमेव परार्ध्यरत्नाभरणैः सपरिष्करणं कृत्वा प्रकृतिसिद्धरामणीयकस्यास्य भूषणानां च भूष्यभूषणभावसाधारणतां समालोक्य सस्नेहविस्मयस्तिमितचक्षुषि चक्षुष्यमेनं पुनःपुनराश्लिष्य यक्षेन्द्रे स्वमन्दिरमीयुषि, राजेन्द्रोऽपि सदातननरेन्द्रसरभसोत्थानसंरम्भच्युतकर्णशिखरगतकर्णपूरोत्कलिका-

§ २५४. अभिषेकेति—संसिद्ध्या स्वभावेन सिद्धं नैर्मल्यं यस्य तथाभूते अभिषेकसलिलौघे स्नपनसलिलप्रपूरे निर्मलतमस्यातिशयेन निर्मलस्य तदङ्गस्य जीवंधरशरीरस्य स्पर्शनेन पावनतां पवित्रतां प्रतिपद्य पापभूपस्य काष्ठाङ्गाराभिधानपापपार्थिवस्य संपर्केण संसर्गेण पांसुलामपवित्रां काश्यपीं भूमिम् अपांसुलां पवित्रां कर्तुमिव व्यश्नुवाने व्याप्तवति सति, भृशमत्यर्थम् उन्मूलितरागाणामपि दूरीकृतरागाणामपि उत्कण्ठामुत्सुकतामावहतीत्युत्कण्ठावहं यथा स्यात्तथा गायत्किन्नरकण्ठीनां गायत्किन्नरकामिनीनां गणेन समूहेन, सुरकिङ्करैर्देवकिङ्करैर्वाद्यमानानि ताड्यमानानि तैः अमानुषातोद्यैर्दिव्यवादित्रैः, अभिनवो नूतनो रसानुबन्धो यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, अभिनन्दन्तीनाम् अभिनन्दनं कुर्वन्तीनाम् अप्सरसां सार्थेन समूहेन भुवने लोके चिरम् अमर्त्यलोकायमाने स्वर्गलोकवदाचरति सति, भुवनस्य लोकस्यैकशरण्यः प्रमुखरक्षकस्तं, लावण्यमूर्ति सौन्दर्यमूर्ति मूर्ध्नि शिरस्यभिषिक्तस्तम् एनं जीवंधरं स्वयमेव स्वत एव परार्ध्यरत्नाभरणैः श्रेष्ठरत्नालंकरणैः सपरिष्करणं सालंकारं कृत्वा प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धं रामणीयकं सौन्दर्यं यस्य तथाभूतस्य अस्य जीवंधरस्य भूषणानामलंकरणानां च भूष्यभूषणभावस्यालंकार्यालंकरणभावस्य साधारणतां सदृशतां समालोक्य दृष्ट्वा सस्नेहविस्मयेन सप्रणयाश्चर्येण स्तिमिते निश्चले चक्षुषी यस्य तथाभूते यक्षेन्द्रे सुदर्शने चक्षुष्यं सुभगम् 'चक्षुष्यः केतके पुंसि सुभगेऽक्षिहिते त्रिषु' इति विश्वलोचनः । एनं जीवंधरं पुनः पुनः भूयोभूयः आश्लिष्य समालिङ्ग्य स्वमन्दिरं स्वभवनम् ईयुषि गतवति सति, राजेन्द्रोऽपि जीवंधरोऽपि सदातननरेन्द्राणां नृपाणां यत्सरभसं सवेगमुत्थानं तस्य संरम्भेण शीघ्रप्रवर्तनेन च्युताः पतिताः कर्णशिखरगतकर्णपूराणां श्रवणाग्रस्थितकर्णाभरणानामुत्कलिका दलानि

§ २५४. तदनन्तर उत्तम औषधियोंके संसर्गसे जिसकी निर्मलता सिद्ध थी ऐसा अभिषेकके जलका समूह उनके अत्यन्त पवित्र शरीरके स्पर्शसे पवित्रताको प्राप्त कर जब पापी राजा—काष्ठांगारके सम्पर्कसे मलिन पृथिवीको निर्मल करनेके लिए ही मानो सर्वत्र व्याप्त हो रहा था और जब अत्यन्त वीतराग मनुष्योंको भी जिस तरह उत्कण्ठा उत्पन्न हो जाय उस तरह गाती हुई किन्नरकण्ठियोंके समूह, देव किंकरोंके द्वारा बजाये जानेवाले दिव्य वादित्रों, और नूतन रसके अनुरूप अभिनय करनेवाली अप्सराओंके समूहसे यह संसार स्वर्गलोकके समान आचरण कर रहा था तब संसारके मुख्य रक्षक, सौन्दर्य की मूर्ति एवं मूर्धाभिषिक्त जीवन्धरस्वामीको श्रेष्ठ रत्नोंके आभरणोंसे स्वयं ही अलंकृत कर तथा स्वभाव सिद्ध सुन्दरताके धारक उन जीवन्धरस्वामी और आभूषणोंकी परस्पर भूष्यभूषणभावकी समानताको देखकर जिसके नेत्र स्नेहपूर्ण आश्चर्यसे निश्चल थे ऐसा यक्षेन्द्र नेत्रोंके लिए अत्यन्त प्रिय जीवन्धरस्वामीका बार-बार आलिंगन कर जब अपने मन्दिरकी ओर चला गया तब राजाओंके इन्द्र जीवन्धरस्वामी भी सदातन राजाओंके वेगसहित उठनेके संरम्भसे गिरे

१. स्वभावेन सिद्धम् इति टि० ।

पुनरुक्तपुष्पोपहारमण्डनादास्थानमण्डपादुत्थाय ततो निर्गत्य प्रसरत्यपि प्रणामलीलालालसानां भूभुजामुन्मेषिणि चूडामणिमरीचिनिचयबालातपे ससंभ्रमावर्जितमकुटप्रच्युतापीडकुसुमडोलायमानमधुकरकुलान्धकारकुट्मलायमानकोमलाञ्जलिकमलसहस्रकरम्बितमम्बरतलमालोकयन् 'जय जय' इति तारतरमुद्गायतो वन्दिवृन्दस्यामन्ददुन्दुभिगम्भीरनिर्घोषानुयातमायतशङ्खध्वानमिश्रं प्रहतमर्दलस्निग्धनिर्ह्रादमांसलं कांस्यतालरवसंकुलमालोकशब्दमाकर्णयन् आलोलकर्णपल्लवालम्बिबालचामरकलापाममलकार्तस्वरकल्पितालंकारकान्तां चारुकोमलपुष्करकरां संभ्रममाधोरणसमुपनीतां साक्षान्मूर्तिमतीमिव जयलक्ष्मीं जयलक्ष्मीं नाम करेणुकामारुह्य हंसतूलमृदुचीनपट्टोपधाने

ताभिः पुनरुक्तं द्विरुच्चरितं पुष्पोपहारमण्डनं यस्मिंस्तथाभूतात् आस्थानमण्डपात् उत्थाय ततो मण्डपात् निर्गत्य प्रणामलीलायां नमस्कारलीलायां लालसा मनोरथा येषां तेषां भूभुजां राज्ञाम् उन्मेषिणि वर्धनशीले चूडामणिमरीचीनां शिखामणिरश्मीनां निचयः समूह एव बालातपः प्रत्यूषघर्मस्तस्मिन् प्रसरत्यपि ससंभ्रमं सत्वरमावर्जितेभ्यो नतेभ्यो मकुटेभ्यो मौलिभ्यः प्रच्युतानि पतितानि यान्यापीडकुसुमानि शेखरपुष्पाणि तेषु डोलायमानं चञ्चलं यन्मधुकरकुलं भ्रमरसमूहः स एवान्धकारस्तिमिरं यत्र कुट्मलायमानानि मुकुलायमानानि यानि कोमलाञ्जलिकमलसहस्राणि मृदुलाञ्जलिसरसिजसहस्राणि तैः करम्बितं व्याप्तम् अम्बरतलं नभस्तलम् आलोकयन् पश्यन्, 'जय जय' इति तारतरं गभीरं यथा स्यात्तथा उद्गायतः उच्चैःस्वरेण गायतो वन्दिवृन्दस्य चारणसमूहस्य अमन्ददुन्दुभीनां विशालानकानां गम्भीरनिर्घोषेण समुच्चतरशब्देनानुयातमनुगतम् आयतशङ्खध्वानेन दीर्घशङ्खशब्देन मिश्रं मिलितं प्रहतानां ताडितानां मर्दलानां वादित्रविशेषाणां स्निग्धनिर्ह्रादेन स्निग्धशब्देन मांसलं पुष्टम्, कांस्यतालानां कांस्यनिर्मितझल्लरीणां रवेण शब्देन संकुलं व्याप्तम् आलोकशब्दं जयजयध्वनिम् आकर्णयन् शृण्वन्, आलोलकर्णपल्लवेषु चञ्चलकर्णकिसलयेष्वालम्बिनश्चामरकलापा बालव्यजनसमूहा यस्यास्ताम्, अमलेन निर्मलेन कार्तस्वरेण स्वर्णेन कल्पिता रचिता येऽलंकारास्तैः कान्तां मनोहराम् चारुकोमलं मनोहरमृदुलं पुष्कराग्रं यस्य तथाभूतः करः शुण्डा यस्यास्ताम् 'पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले' इत्यमरः, ससंभ्रमं सत्वरम् आधोरणेन हस्तिपकेन समुपनीतां समुपस्थापितां साक्षात् मूर्तिमतीं शरीरधारिणीं जयलक्ष्मीमिव विजयश्रियमिव, जयलक्ष्मीं नाम तन्नामवतीं करेणुकां हस्तिनीम् आरुह्य अधिष्ठाय हंसतूलमिव मृदु-

हुए कर्णशिखर सम्बन्धी कर्णाभरणों की उत्कृष्ट कलिकाओंसे पुनरुक्त फूलोंके उपहारसे सुशोभित सभामण्डपसे उठकर तथा वहाँसे निकलकर जब प्रणामकी लीलामें सोत्कण्ठ राजाओंके चूड़ामणियोंकी किरणोंका समूह रूपी बाल आतप उन्मिषित होकर फैल रहा था तब सम्भ्रम पूर्वक झुकाये हुए मुकुटोंसे च्युत सेहरेके फूलोंपर झूमनेवाले भ्रमर समूह रूपी अन्धकारसे युक्त एवं बोंडियोंके समान आचरण करनेवाली कोमल अंजली रूपी हजारों कमलोंसे व्याप्त आकाशको देखते हुए, 'जय-जय' इस प्रकार जोरसे गाते हुए बन्दीजनोंके बहुत भारी भेरीके गम्भीर शब्दसे अनुगत, बहुत दूर तक फैलनेवाली शंखध्वनिसे मिश्रित ताडित मर्दल नामक वादित्रके स्निग्ध शब्दसे परिपुष्ट, और कांसेकी झाँझोंके शब्दसे आकुल आलोकनाद—जय जयकार नादको सुनते हुए, जिसके चञ्चल कर्ण पल्लवोंमें छोटे-छोटे चामरोंका समूह लगा हुआ था, जो निर्मल स्वर्णसे निर्मित अलंकारोंसे अलंकृत थी, जिसकी शुण्ड सुन्दर एवं कोमल अग्रभागसे सहित थी, जो सम्भ्रमपूर्वक महावतके द्वारा लायी गयी थी और साक्षात् मूर्तिमती लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी जयलक्ष्मी नामक हस्तिनीपर आरूढ़ होकर राजमार्गमें प्रविष्ट हुए। उस समय वे हंसतूलसे कोमल चीनपट्ट की तकियोंसे

१. म० संभ्रममावर्जित। २. क० तारतारम्। गम्भीरं यथा तथा, इति टि०। ३. क० ग० गभीरम्।

परिस्तोमवति विचित्ररत्नचित्रे[1]पर्यन्ते सुविहितप्रस्तररमणीये महति कनकपर्याणिके सुखनिषण्णः पश्चिमासनगतेन हेमाङ्गदवलयरत्नदीधितिस्तबकचित्रवारबाणेन कुलक्रमागतेन स्निग्धेन शीलवता शौचाचारयुक्तेन प्रथमानमित्रेणोह्यमानस्य मध्यार्पितमहामणिमयूखपटलपाटलितस्य बालातपरक्तशारदवलाहकानुकारिणश्चामीकरदण्डस्य प्रलम्बतरस्थूलमुक्ताकलापस्मेरपर्यन्तस्य महाश्वेतातपत्रस्य निसर्गशिशिरच्छायया निवार्यमाणमार्तण्डकरावलेपः पार्श्वकरेणुसंश्रिताभिरतिमनोहराभिर्वारवनिताभिरतिमधुरं गायन्तीभिर्विनोद्यमानः सकुतूहलपौरसुन्दरीजालमार्गप्रसृतलोचनसहस्रसंछादितामुदञ्चदुत्पलप्रचयमेचकामिव भवनदीर्घिकां राजवीथीं जगाहे ।

कोमलं चीनपट्टस्य चीनांशुकस्योपधानं 'तकिया' इति प्रसिद्धं यस्मिंस्तस्मिन् परिस्तोमवति कुथयुक्ते 'प्रवेण्यास्तरणं वर्णः परिस्तोमः कुथो द्वयोः' इत्यमरः, 'झूल' इति प्रसिद्धवस्तुयुक्ते विचित्ररत्नैर्नानामणिभिश्चित्रः पर्यन्तो यस्य तस्मिन्, सुविहितप्रस्तर इव सुरचितोपल इव रमणीयं मनोहरं तस्मिन् महति विशाले कनकपर्याणके स्वर्णनिर्मितगजपृष्ठासने सुखेन निषण्णः सुखनिषण्णः सुखोपविष्टः पश्चिमासनगतेन पश्चाद्भिष्टोपविष्टेन हेमाङ्गदवलयरत्नानां कनककेयूरकटकरत्नानां दीधितयो रश्मयस्तेषां स्तवकेन गुच्छकेन चित्रः शबलो वारबाणः कवचो यस्य तेन कुलक्रमागतेन वंशपरम्परागतेन स्निग्धेन स्नेहवता शीलवता सत्स्वभावसहितेन शौचाचारेण पवित्रव्यवहारेण युक्तस्तेन, प्रथमानमित्रेण प्रसिद्धसुहृदा पश्चाद्स्थेनेति यावत् उह्यमानस्य ध्रियमाणस्य मध्यार्पितस्य मध्ये खचितस्य महामणेर्महारत्नस्य मयूखपटलेन किरणकलापेन पाटलितमीषद्रक्तं तस्य, बालातपेन प्रत्यूषघर्मेणोपरक्तो यः शारदवलाहकः शरन्मेघस्तमनुकरोतीत्येवंशीलस्तस्य चामीकरदण्डस्य स्वर्णदण्डयुक्तस्य प्रलम्बतरेण लम्बमानेन स्थूलमुक्ताकलापेन बृहन्मुक्ताफलसमूहेन स्मेरो विहसितः पर्यन्तो यस्य तस्य महाश्वेतातपत्रस्य महाशुक्लच्छत्रस्य निसर्गशिशिरच्छायया स्वभावशीतलच्छायया निवार्यमाणो दूरीक्रियमाणो मार्तण्डकराणां दिनकरकिरणानामवलेपो गर्वो यस्य तथाभूतः, पार्श्वकरेणुसंश्रिताभिर्निकटस्थगजारूढाभिः अतिमनोहराभिरतिरमणीयाभिः अतिमधुरं यथा स्यात्तथा गायन्तीभिः वारवनिताभिर्वेश्याभिः विनोद्यमानः, सकुतूहला दर्शनकौतुकसहिता याः पौरसुन्दर्यो नागरिकनार्यस्तासां जालमार्गेण वातायनवर्त्मना प्रसृतानि यानि लोचनसहस्राणि नयनसहस्राणि तैः संछादितां व्याप्ताम् अतएवोदञ्चतां विकसतां उत्पलानां नीलारविन्दानां प्रचयेन समूहेन मेचका कृष्णा तथाभूतां भवनदीर्घिकामिव गृहवापिकामिव राजवीथीं राजमार्गं जगाहे प्रविवेश ।

युक्त, आवरासे सुशोभित तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे जिसका पर्यन्तभाग चित्र-विचित्र हो रहा है ऐसे अच्छी तरह बनाये हुए पत्थरके समान रमणीय बड़े भारी स्वर्णके पलानपर सुखसे विराजमान थे। पीछेके आसनपर स्थित, स्वर्णमय केयूर तथा कण्टकके रत्नोंकी किरणोंके समूहसे चित्र-विचित्र वारबाणको धारण करनेवाले, बंश परम्परासे आगत, स्निग्ध, शीलवान्, और पवित्र आचारसे युक्त प्रसिद्ध मित्रके द्वारा धारण किये हुए, बीचमें लगे महामणियोंकी किरणावलिसे कुछ-कुछ लाल दिखनेवाले अतएव प्रातःकालके घामसे उपरक्त शरदृतुके मेघका अनुकरण करनेवाले, स्वर्णदण्डसे युक्त, तथा लटकते हुए बड़े-बड़े मोतियोंकी झालरसे सुशोभित पर्यन्त भागसे सहित बहुत बड़े सफेद छत्रकी स्वभावसे ही शीतल छायासे सूर्यकी किरणोंके दर्पको दूर कर रहे थे और समीपस्थ हस्तिनियोंपर बैठी एवं अत्यन्त मधुर गान गाती हुई वेश्याएँ उन्हें विनोदित कर रही थीं। राजमार्ग कुतूहलसे युक्त नगरकी स्त्रियोंके झरोखोंसे फैलनेवाले हजारों नेत्रोसे आच्छादित था इसलिये खिले हुए नील कमलोंके समूहसे श्यामवर्ण दिखनेवाली भवनकी वापिकाके समान जान पड़ता था।

---

१. क० 'रत्नचित्र' नास्ति ।

§ २५५. तावता तदवलोकनकुतूहलोद्भवदुद्दामसंरम्भाश्चरणयोः प्रथमं परिस्पन्दमानं चरणमन्यस्मान्मान्यतरं मन्यमानाः, अग्रभावि पूर्वाङ्गमनुलग्नादपराङ्गादधिकगौरवकलितमाकलयन्त्यः, करणेष्वपि पुरःप्रयाणनिपुणमन्तःकरणमतिकृतार्थं वितर्कयन्त्यः, सरभसगमनविरोधिनः स्तनभारात्तनुतरमनुकूलमवलग्नं श्रद्दधानाः स्वाङ्गभ्रष्टान्यवशिष्टेभ्यो लाघवपोषीणि भूषणान्युपकारकारीणि[1] गणयन्त्यः, समागत्य स्फुरदतिरागमनोहराधरपल्लवा वल्लर्य इव कुसुमामोदमहिता माधवसंगमकृतासङ्गाः, चलद्वलीभङ्गतरङ्गभासुरा रसमय्यः सरित इव सरित्पतिम्,

§ २५५. तावतेति—तावता तावत्कालेन तस्य जीवंधरस्यावलोकनकुतूहलेन प्रमदाः पुरन्ध्रयः समासदन् प्राप्नुवन्। अथ तासां विशेषणान्याह—दर्शनकुतुकेनोद्भवन् उद्दामसंरम्भ उत्कटत्वरा यासां ताः, प्रथमं प्राक् परिस्पन्दमानं चलन्तं चरणं पादमन्यस्माच्चरणात् मान्यतरमतिशयेन मान्यं मन्यमाना जानन्त्यः; अग्रे भवतीत्येवंशीलमग्रभावि पूर्वाङ्गं पूर्वावयवम् अनुलग्नात्पश्चाल्लग्नात् अपराङ्गादितरावयवात् अधिकगौरवेण कलितमित्यधिकगौरवकलितम् आकलयन्त्यो मन्यमानाः, करणेष्वपीन्द्रियेषु पुरःप्रयाणेऽग्रयाने निपुणं चतुरम् अन्तःकरणं मनोऽतिकृतार्थम् अतिशयेन सार्थकं वितर्कयन्त्यो जानन्त्यः, सरभस्य गमनस्य शीघ्रप्रयाणस्य विरोधी तस्मात् स्तनभारादुरोजभारात् तनुतरमतिकृशम् अवलग्नं मध्यम् अनुकूलं शीघ्रगमनयोग्यं श्रद्दधाना मन्यमानाः, स्वाङ्गभ्रष्टानि स्वशरीरपतितानि अतएव लाघवपोषीणि निर्भरत्वोपपादकानि भूषणानि अवशिष्टेभ्यो भूषणेभ्य उपकारकारीणि उपकर्तॄणि गणयन्त्यो विश्वसन्त्यः स्फुरता प्रकटीभवतातिरागेण मनोहरोऽधरः पल्लव इव यासां ताः कुसुमानामिवामोदेन गन्धेन महिताः शोभिताः मा-लक्ष्मीस्तस्या धवः पतिर्जीवंधरस्तस्य संगमे कृतो विहित आसङ्ग आसक्तिर्याभिस्ताः अतएव वल्लर्य इव लता इव वल्लरीपक्षे स्फुरदतिरागमनोहराधर एव पल्लवो यासां ताः, कुसुमानां पुष्पाणामामोदेन हर्षेण सौगन्ध्येन वा महिताः माधवो वसन्तस्तस्य सङ्गमे कृतासङ्गाः, चलद्वलीभङ्गा तरङ्गा इव कल्लोला इव तैर्भासुराः रसमय्यः स्नेहयुक्ता सरितो नद्यः सरित्पतिमिव नदीपतिमिव, सरित्पक्षे चलद्वलीभङ्गा एव चञ्चलत्रिवलिविच्छित्तय एव तरङ्गाः कल्लोलैस्तैर्भासमानाः रसमय्यो जलमय्यः, कण्टकानां रोमाञ्चानां निकरेण दन्तुरितं व्याप्तं वपुः शरीरं यासां ताः, सतिलकाः स्थासकसहिताः वनभुवः कानना-

§ २५५. उसी समय उनके देखनेके कुतूहलसे जिनकी बहुत भारी तैयारियाँ हो रही थीं, जो दोनों चरणोंमें पहले चलनेवाले चरणको दूसरे चरणको अपेक्षा अत्यन्त मान्य मान रही थीं, जो आगे होनेवाले पूर्वांगको पीछे लगे हुए दूसरे अंगसे अधिक गौरवशाली समझती थीं, जो इन्द्रियोंमें भी आगे चलनेमें निपुण अन्तःकरणको अत्यन्त कृतार्थ—कृतकृत्य समझती थीं, जो सवेग गमनमें विरोध उत्पन्न करनेवाले स्तनभारकी अपेक्षा अत्यन्त कृश मध्यभागको अनुकूल मानती थीं, अपने अवयवोंसे गिरे और लघुताको पुष्ट करनेवाले आभूषणोंको अन्य अवशिष्ट आभूषणोंसे उपकारी गिनती थीं, जिनका अत्यधिक लालिमासे मनोहर अधर पल्लव हिल रहा था और इसीलिए जो फूलोंकी सुगन्धिसे सहित वसन्तके साथ समागम करनेमें उत्सुक लताओंके समान जान पड़ती थीं। जो त्वचा की चञ्चल सिकुड़नोंरूपी तरंगोंसे शोभायमान एवं रसमयी—शृंगारसे युक्त (पक्षमें जलमयी) थीं इसलिये ऐसी जान पड़ती थीं मानो समुद्रके पास जाती हुई नदियाँ ही हों। जो रोमांचोंसे व्याप्त शरीरको धारण करती हुई तिलकसे सहित थीं (पक्षमें तिलक वृक्षसे युक्त थीं) इसलिए

1. क० उपकारीणि।

कण्टकनिकरदन्तुरितवपुषः सतिलका वनभुव इव महीधरम्, चारुचन्दनपत्रलताङ्किता मलयमेखला इव दक्षिणजगत्प्राणं वीरश्रीप्राणनाथं प्रमदाः समासदन्।

§ २५६. तासां च सदावलोकनकौतुकविद्वेषे निमेषेऽपि वैरायमाणानाम्, असंजातसर्वाङ्गनेत्रं मनुष्यसर्गं हृदा गर्हमाणानाम्, तादृशभागधेयभाजनमात्मानमपि श्रद्दधतीनाम्, तस्यैव वदने निलीनामिव केशहस्ते निबिडितामिव ललाटे कीर्णामिव कर्णद्वये कीलितामिव लोचनयोर्भ्रान्तामिव भ्रूयुगे लिखितामिव कपोलयोः सक्तामिव नासिकायां प्रतिष्ठितामिवोष्ठयोश्चुम्बितामिव चिबुके कन्दलितामिव गले मांसलामिवांसयोर्निभृतामिव बाह्वोर्निक्षिप्तामिव वक्षस्याश्रितामिव

वनयो महीधरमिव पर्वतमिव वनभूपक्षे कण्टकनिकरेण शल्यसमूहेन दन्तुरितं व्याप्तं वपुर्येषां ताः सतिलकाः क्षुरकवृक्षसहिताः महीधरमिव राजानमिव पक्षे पर्वतमिव, चारुचन्दनस्य प्रशस्तपाटीरस्य पत्रलताभिः पत्रोपलक्षितलताकृतिभिरङ्किताश्चिह्निताः पक्षे चारुचन्दनानां मनोहरमलयजानां पत्रलताभिर्दलवल्लीभिरङ्किताः मलयमेखला इव दक्षिणं च तज्जगच्चेति दक्षिणजगत् सरलसंसारस्य प्राणं प्राणरूपं पक्षे दक्षिणश्चासौ जगत्प्राणश्च वायुश्चेति दक्षिणजगत्प्राणं वीरश्रियाः प्राणनाथस्तं वीरलक्ष्मीवल्लभं जीवंधरं समासदन् लेभिरे।

§ २५१. तासां चेति—तासां च पूर्वोक्तानां च सदावलोकनस्य शश्वद्दर्शनस्य कौतुके कुतूहले विद्वेषो विरोधो यस्य तथाभूते निमिषेऽपि पक्ष्मपातेऽपि वैरायन्त इति वैरायमाणास्तासां कृतवैराणाम्, असंजातानि नोत्पन्नानि सर्वाङ्गे नेत्राणि यस्य तथाभूतं मनुष्यसर्गं नरसृष्टिं हृदा चेतसा गर्हमाणा तां निन्दन्तीनाम्। तादृशं लब्धजीवंधरदर्शनं यद् भागधेयं भाग्यं तस्य भाजनं पात्रम् आत्मानमपि स्वमपि श्रद्दधतीनां प्रत्ययं कुर्वाणानाम्, तस्यैव जीवंधरस्यैव वदने मुखे निलीनामिवान्तर्हितामिव, केशहस्ते केशपाशे निबिडितामिव सान्द्रीभूतामिव ललाटे निटिले कीर्णामिव विक्षिप्तामिव कर्णद्वये श्रवणयुगे कीलितामिव निखातामिव लोचनयोर्भ्रान्तामिव प्राप्तभ्रमणामिव, भ्रूयुगे लिखितामिव, कपोलयोर्गण्डयोः सक्तामिव लग्नामिव, नासिकायां घ्राणे प्रतिष्ठितामिव प्राप्तप्रतिष्ठामिव, ओष्ठयो रदनच्छदयोश्चुम्बितामिव, चिबुके हनुप्रदेशे कन्दलितामिव, गले कण्ठे मांसलामिव पुष्टामिव, अंसयोः स्कन्धयोर्निभृतामिव निश्चलामिव, बाह्वोर्भुजयोर्निक्षिप्तां न्यस्तामिव, वक्षसि आश्रितामिवावलम्बितामिव, पार्श्वयोः पार्श्वप्रदेशयोर्निबद्धामिव

किसी पर्वतके समीप जाती हुई वनकी भूमियोंके समान जान पड़ती थीं और जो सुन्दर चन्दनसे निर्मित पत्रलताओंसे अंकित थीं इसलिये ऐसी जान पड़ती थीं मानो दक्षिण समीर—मलय समीरके सम्मुख जाती हुई मलय पर्वतकी मेखलाएँ ही हों—ऐसी स्त्रियाँ वीर लक्ष्मीके प्राणनाथ जीवन्धर स्वामीको प्राप्त हुईं।

§ २५६. जो सदा देखनेके कौतुकमें द्वेष रखनेवाले टिमकारमें भी वैर प्रकट कर रही थीं, जो समस्त अंगोंमें नेत्रोंकी उत्पत्तिसे रहित मनुष्य सृष्टिकी हृदयसे निन्दा कर रही थीं, जो उन जैसे भाग्यके पात्र स्वरूप अपने आपके प्रति भी श्रद्धा प्रकट कर रही थीं और जो उसी चित्तवृत्तिको धारण कर रही थीं कि जो उन्हींके मुखमें मानो विलीन थीं, केशपाशमें मानो सान्द्र थीं, ललाटमें मानो बिखरी थीं, दोनों कानोंमें मानो कीलित थीं, नेत्रोंमें मानो भ्रान्त थीं, दोनों भौंहोंमें मानो लिखित थीं, गालोंमें मानो लगी हुई थीं, नाकमें मानो प्रतिष्ठित थीं, ओठोंमें मानो चुम्बित थीं, ठुड्डीमें मानो कन्दलित थीं, गलेमें मानो परिपुष्ट थीं, कन्धोंमें मानो स्थिर थी, भुजाओंमें मानो निक्षिप्त थी, वक्षस्थलमें मानो आश्रित थी, पसलियोंमें मानो निबद्ध

पार्श्वयोर्निबद्धामिव मध्ये निमग्नामिव नाभौ घटितामिव कटितटे निवेशितामिवोरुदेशे लङ्घितामिव जङ्घयोः संदानितामिव चरणयोर्नम्रामिव चित्तवृत्तिं वहन्तीनां वारस्त्रीणां मारकृतानि साकूतानि सविभ्रमाणि समाधुर्याणि समन्दस्मितानि सकलप्रलापानि सापाङ्गवीक्षितानि साङ्गुलिनिर्देशानि विलसितानि विलोकयन्विलोभनीयविश्वगुणभूमिः स्वामी स्वामिलाभदुर्ललितहृदयं प्रकृतिजनं प्रकृतिरञ्जनसमर्थः पार्थिवकुञ्जरः कार्तस्वरकटककम्बलपरिधानादिस्पर्शनेन परितोषयन् विशेषज्ञवीक्षणीयानि प्रेक्षमाणः कक्ष्यान्तराणि तत्र तत्र भवन्तमालेख्यशेषमालोक्य पितरं स्मारं स्मारं दर्शं दर्शं धीरतया नातिविकृतहृदयवृत्तिरतिधृतमतिदक्षैः सपक्षपातैः सौधाधिकृतैः संशोधितसकलोपान्तं राजनिशान्ताभ्यन्तरं प्राविक्षत् ।

जटितामिव, मध्येऽवलग्ने निमग्नामिव, बुडितामिव, नाभौ तुन्दौ घटितामिव लग्नामिव, कटितटे नितम्बपश्चाद्भागे निवेशितामिव, समधिष्ठापितामिव, ऊरुदेशे सक्थिप्रदेशे लङ्घितामिवातिक्रमितामिव, जङ्घयोः प्रसृतयोः संदानितामिव प्राप्तबन्धनेव, चरणयोः पादयोर्नम्रामिव प्रह्वीभूतामिव चित्तवृत्तिं मनोवृत्तिं वहन्तीनां दधतीनां वारस्त्रीणां विलासिनीनां मारकृतानि कामकृतानि साकूतानि साभिप्रायाणि सविभ्रमाणि सविलासानि समाधुर्याणि मनोहराणि समन्दस्मितानि मन्दहसितसहितानि सकलप्रलापानि मनोहरानर्थकवचनसहितानि सापाङ्गवीक्षितानि सकटाक्षावलोकनानि साङ्गुलिनिर्देशानि करशाखासंकेतसहितानि विलसितानि विलसचेष्टितानि विलोकयन् पश्यन् विलोभनीयानां विश्वगुणानां भूमिरिति विलोभनीयविश्वगुणभूमिः—उत्तमाखिलगुणपात्रम् प्रकृत्या अमात्यादिवर्गस्य रञ्जने प्रसादने समर्थः पार्थिवकुञ्जरो नृपतिश्रेष्ठः स्वामी जीवंधरः स्वामिनः लाभेन दुर्ललितं गर्वयुक्तं हृदयं यस्य तथाभूतं प्रकृतिजनं प्रजाजनममात्यादिवर्गं वा कार्तस्वरकटकाः स्वर्णवलयाः, कम्बलाः प्रावाराः, परिधानादयो वस्त्रादय एषां द्वन्द्वस्तेषां स्पर्शनेन दानेन 'प्रावारेऽपि कम्बलः' इत्यमरः, परितोषयन् संतोषयन् विशेषज्ञैर्विद्वद्भिर्वीक्षणीयानि परीक्षणीयानि कक्ष्यान्तराणि कक्ष्यान्तरालानि प्रेक्षमाणः पश्यन्, तत्र कक्ष्यान्तरेषु तत्र भवन्तं माननीयम् आलेख्येन चित्रेण शेषस्तं चित्रमात्रावशिष्टं पितरं जनकं स्मारं स्मारं स्मृत्वा स्मृत्वा दर्शं दर्शं दृष्ट्वा दृष्ट्वा धीरतया गम्भीरत्वेन नातिविकृता नातिशोकपूर्णा हृदयवृत्तिर्यस्य तथाभूतः सन् अतिदक्षैरतिकुशलैर्जनैरतिधृतं युक्तं सपक्षपातैः सस्नेहैः सौधाधिकृतैः राजप्रासादाधिकारिभिः संशोधितं निरुपद्रवीकृतः सकलोपान्तो निखिलसमीपप्रदेशो यस्य तथाभूतं राजनिशान्तस्य राजगृहस्याभ्यन्तरं मध्यं प्राविक्षत् ।

थीं, मध्यभागमें मानो निमग्न थीं, नाभिमें मानो संलग्न थीं, कटितटमें मानो स्थापित थीं, ऊरुदेशमें मानो लंघित थीं, जंघाओंमें मानो बँधी हुई थीं और चरणोंमें मानो नम्र थीं—उन वेश्याओंके कामके द्वारा किये हुए खास अभिप्राय सहित, विभ्रम सहित, माधुर्यसहित, मन्दमुस्कान सहित, कलापूर्ण प्रलाप सहित, कटाक्षावलोकन सहित और अंगुलिनिर्देश सहित, विलासोंको देखते हुए विलोभनीय समस्त गुणोंके पात्र स्वरूप जीवन्धरस्वामीने अत्यन्त समर्थ मनुष्योंसे सुरक्षित एवं पक्षपातसे युक्त भवनके अधिकारी लोगोंके द्वारा जिसका कोना-कोना परीक्षित था ऐसे राजभवनके भीतर प्रवेश किया। राजाओंमें श्रेष्ठ जीवन्धरस्वामी पुरवासियोंको प्रसन्न करनेमें समर्थ थे इसलिए अपने लाभसे प्रसन्नचित्त पुरवासी जनोंको वे सुवर्णका कड़ा, कम्बल तथा वस्त्र आदिके दानसे सन्तुष्ट करते जाते थे। विशेषज्ञ मनुष्योंके द्वारा देखने योग्य कक्षाओंके अन्तरालको देखते हुए उन्होंने जब चित्र मात्रसे शेष पिता—राजा सत्यन्धरको देखा तो उन्होंने उनका बार-बार स्मरण किया तथा बार-बार उनकी ओर देखा परन्तु धीरतासे हृदयकी वृत्तिको विकृत नहीं होने दिया।

§ २५७. आरुक्षच्चायं राजवीर्येण वीराणां सौन्दर्येण सुन्दरीणां प्राभवेण पृथ्वीशानां वदान्यतया वनीपकानां धर्मशीलतया[1] धार्मिकाणां वैदुष्येण विदुषां मन्त्रणनैपुणेन मन्त्रिणां च हृदयं भोगावलीप्रबन्धेन कवीनां प्रबन्धमिव दिगन्तं देहप्रभया सभां देहेन च सिंहासनम् । आदिशच्च दिशि दिशि विसर्पिभिरान्दोलितचामरधवलिममूर्च्छितैरुच्छ्रितधवलातपत्ररुचिसब्रह्मचारिभिः[2] सहर्षब्राह्मीहसितसंकाशैर्दशनेन्दुचन्द्रिकासान्द्रकन्दलैः काष्ठाङ्गारचरित्रानुधावनेन सत्रायितं धात्रीतलमिव पवित्रयन् सुत्रामत्रासावर्जिन्या पर्जन्यगर्जिततर्जनपरया भारत्या परिसरनिविष्टान्काष्ठाङ्गारावरोधस्य कारागृहनिरुद्धानां च निरोधो निवारणीय इति काराधिकृतान् ।

§ २५८. अतनिष्ट च राजश्रेष्ठिपदे गन्धोत्कटं यौवराज्यपदे नन्दाढ्यं महामात्रादिपदे[3]

§ २५७. आरुक्षच्चायमिति—आरुक्षच्चाध्यारूढश्च बभूवायं जीवंधरमहाराजः राजवीर्येण नृपतिपराक्रमेण वीराणां शूराणाम्, सौन्दर्येण लावण्येन सुन्दरीणां ललनानाम्, प्राभवेण प्रभुत्वेन पृथ्वीशानां राज्ञां, वदान्यतया दानशूरत्वेन वनीपकानां याचकानां, धर्मशीलतया धर्मस्वभावत्वेन धार्मिकाणां धर्मात्मनाम् वैदुष्येण पाण्डित्येन विदुषां बुधानां मन्त्रणे विमर्शने नैपुणं तेन विचारचातुर्येण मन्त्रिणां च सचिवानां च हृदयं चेतः, भोगावलीप्रबन्धेन विरुदावलीग्रन्थनेन कवीनां प्रबन्धं सन्दर्भमिव दिगन्तं काष्ठान्तं देहप्रभया शरीरकान्त्या सभां परिषदं देहेन च शरीरेण च सिंहासनं मृगेन्द्रविष्टरम् । आदिशच्चेति—आदिशच्च—आज्ञपयामास च दिशि दिशि प्रतिकाष्ठं विसर्पिभिः प्रसरणशीलैः, आन्दोलितानां प्रचलितानां चामराणां वालव्यजनानां धवलिम्ना शौक्ल्येन मूर्च्छितैर्वर्धितैः, उच्छ्रितानि उपरि विततानि यानि धवलातपत्राणि शुक्लच्छत्राणि तेषां रुचेः कान्त्याः सब्रह्मचारिभिः सदृशैः सहर्षायाः सामोदायाः ब्राह्म्याः सरस्वत्या हसितेन संकाशैः संनिभैः दशनेन्दुचन्द्रिकायाः दन्तचन्द्रचन्द्रिकायाः सान्द्रकन्दलैर्निबिडप्ररोहैः काष्ठाङ्गारस्य चरित्रस्यानुधावनेनानुसरणेन सत्रायितं वनायितं वनमिव निर्धनमित्यर्थः, 'सत्रं यज्ञे सदा दाने कैतवे वसने वने' इति विश्वलोचनः, धात्रीतलं भूतलं पवित्रयन् पूतं कुर्वन्, सुत्रामा वज्री इन्द्र इति यावत् 'सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री' इत्यमरः, तस्य त्रासस्य भयस्यावर्जिन्या समुत्पादिकया पर्जन्यस्य घनाघनस्य गर्जितं स्तनितं तस्य तर्जनपरया संभर्त्सनोद्यतया भारत्या वाण्या परिसरनिविष्टान् निकटोपविष्टान् काराधिकृतान् वन्दीगृहाधिकारिणो जनान् 'काष्ठाङ्गारावरोधस्य काष्ठाङ्गारान्तःपुरस्य कारागृहे निरुद्धास्तेषां च वन्दीगृहावरुद्धानां च निरोधो वन्दीगृहावरोधो निवारणीयः परिहार्य इति ।

§ २५८. अतनिष्टेति—अतनिष्ट च—स्थापयामास च गन्धोत्कटं राजश्रेष्ठिपदे नन्दाढ्यं तथा-

§ २५७. राजभवनके भीतर वे राजोचित वीर्यसे वीरोंके, सौन्दर्यसे सुन्दरी स्त्रियोंके, प्रभावसे राजाओंके, उदारतासे याचकोंके, धर्माचरणसे धर्मात्माओंके, पाण्डित्यसे विद्वानोंके और मन्त्रणा सम्बन्धी चतुराईसे मन्त्रियोंके हृदयपर तथा विरुदावलीके प्रबन्धसे कवियोंके प्रबन्धके समान दिशाओंके अन्तपर, शरीरकी प्रभासे सभा और शरीरसे सिंहासनपर आरूढ़ हुए। उन्होंने प्रत्येक दिशामें फैलनेवाले, हिलते हुए चामरोंकी सफेदीसे वृद्धिंगत, ऊपर उठे सफेद छत्रोंकी पंक्तिके सदृश, और हर्षसे युक्त सरस्वतीके हास्यके समान दाँतरूपी चन्द्रमाकी चाँदनीकी सघन कन्दलोंसे काष्ठांगारके चरित्रके अनुसरण करनेसे अपवित्र पृथिवीतलको पवित्र करते हुए की तरह, इन्द्रको भय उत्पन्न करनेवाली एवं मेघ गर्जनाके तिरस्कारमें तत्पर वाणीसे निकटमें बैठे हुए कारागृहके अधिकारियोंको आदेश दिया कि काष्ठांगारके अन्तःपुर तथा कारागृहमें रुके कैदियोंका प्रतिरोध दूर कर दिया जावे।

§ २५८. उन्होंने गन्धोत्कटको राजश्रेष्ठीके पदपर, नन्दाढ्यको युवराजके पदपर,

१. म० धर्मशीलनतया। २. म० धवलातपत्रराजिसब्रह्मचारिभिः। ३. सर्वाधिकारपदे, इति टि०।

पद्ममुखादीन्द्विषड्वर्षपर्यवस्यदकरपदे च जानपदान् । अतोषयच्च विषयान्तरेषु पुरा व्यूढानाहूतप्रविष्टानभिनिविष्टप्रेमाभिभूततया पादयोः पततः परिस्फुरदमन्दानन्दप्राग्भारोद्वान्तनितान्तशिशिराश्रुवर्षेणेव पांसुपरुषाङ्घ्रिधावनसावधानान्तःकरणानन्तःस्फुरितविरहशोककृशानुकृशीकृताङ्गतया कृशाङ्गीति नाम सार्थमिव समर्थयतः स्वसंगमवासरकृताङ्गरागमाल्याद्यलंकृतान् पातिव्रत्यपताकान्[1] पावनगुणोदारान्दारान् ।

§ २५६. अघोषयच्च धर्मचक्रभूषितललाटेन हर्षोद्धुरेण धौतवसनाङ्गरागसुमनोमण्डितेन शुण्डालोरसारोपितडिण्डिमेन चण्डालाधिकृतेन कृतभगवन्नमस्कारपूर्वकम् 'संवर्धतां सद्धर्मः । सार्व-

---

मानमनुजं यौवराज्यपदे, पद्ममुखादीन् महामात्रादिपदे सर्वाधिकारपदे प्रधानपद इति यावत् 'महामात्राः प्रधानानि' इत्यमरः, जानपदान् देशोद्भवान् द्विषड्वर्षेषु द्वादशवर्षेषु पर्यवस्यत् समाप्तीभवद् यद् अकरपदं राजस्वग्रहणमुक्तिपदं तस्मिन् । अतोषयच्चेति—अतोषयच्च संतोषयामास च विषयान्तरेषु देशान्तरेषु पुरा पूर्वं प्रवासवेलायामित्यर्थः व्यूढान् परिणीतान्, आदावाहूताः पश्चात् प्रविष्टा इत्याहूतप्रविष्टास्तान् आकारितप्रविष्टान्, अभिनिविष्टेन हृदयस्थितेन प्रेम्णा प्रीत्याभिभूततया आक्रान्तत्वेन पादयोश्चरणयोः पततो विनमतः परिस्फुरन् प्रकटीभवन् योऽमन्दानन्दप्राग्भारस्तेनोद्वान्तानि प्रकटितानि नितान्तशिशिराणि अतिशीतानि यान्यश्रूणि तेषां वर्षेण पांसुपरुषयोर्धूलिधूसरयोरङ्घ्र्योश्चरणयोर्धावने प्रक्षालने सावधानं निष्प्रमादमन्तःकरणं येषां तथाभूतानिव, अन्तःस्फुरितेन हृदयप्रकटितेन विरहकृशानुना विरहाग्निना कृशीकृतं तनूकृतमङ्गं शरीरं येषां तेषां भावस्तया कृशाङ्गीति तन्वङ्गीति नाम सार्थमन्वितार्थं समर्थयत इव स्वसंगमवासरे स्ववल्लभसमागमदिवसे कृतो रचितोऽङ्गरागो विलेपनं माल्यादयश्च तैरलंकृतान् शोभितान् पातिव्रत्यं पताका येषां तान् सतीत्ववैजयन्तीयुक्तान्, पावनगुणैः पवित्रगुणैरुदारान् महतो दारान् स्त्रियः ।

§ २५१. अघोषयच्चेति—अघोषयच्च घोषणां चकार च जीवंधरमहाराजः कर्ता धर्मचक्रेण भूषितो ललाटो भालो यस्य तेन हर्षेणोद्धुरस्तेन प्रमोदोत्कटेन वसनानि वस्त्राणि अङ्गरागो विलेपनं सुमनांसि पुष्पाणि एषां द्वन्द्वो धौतानि धवलानि च तानि वसनाङ्गरागसुमनांसि तैर्मण्डितेन शोभितेन शुण्डालस्य हस्तिन औरसे वक्षके आरोपितो डिण्डिमो घोषणढक्का येन तेन, चण्डालाधिकृतेन प्रधानचण्डालेन

पद्ममुख आदि मित्रोंको महामन्त्री आदिके पदोंपर तथा देशवासी लोगोंको बारह वर्ष तक लगानकी छूटके पदपर नियुक्त किया । और तत् तत् देशोंमें जिन्हें पहले विवाहा था, अब बुलाये जानेपर जिन्होंने अन्तःपुरमें प्रवेश किया था, हृदयस्थित प्रेमसे अभिभूत होनेके कारण जो चरणोंमें पड़ रही थीं, सब ओरसे प्रकट होनेवाले बहुत भारी आनन्दके समूहसे प्रकट अत्यन्त शीतल अश्रुवर्षासे जिनके अन्तःकरण धूलिधूसरित चरणोंके प्रक्षालनमें सावधान थे, हृदयके भीतर प्रज्वलित विरहजन्य शोकरूपी अग्निसे कृश शरीर होनेके कारण जो अपने 'कृशांगी' नामको मानो सार्थक ही कर रही थीं, जो अपने समागमके दिन किये हुए अंगराग और माला आदिसे अलंकृत थीं, जो पातिव्रत्य धर्मकी मानो पताकाएं ही थीं और पवित्र गुणोंसे श्रेष्ठ थीं ऐसी स्त्रियोंको सन्तुष्ट किया ।

§ २५६. धर्मचक्रसे जिसका ललाट सुशोभित हो रहा था, जो हर्षसे उत्कट था, सफेद वस्त्र, सफेद अंगराग और सफेद पुष्पोंसे जो सुशोभित था और हाथीकी पीठपर जिसने नगाड़ा चढ़ा रखा था ऐसे प्रधान चाण्डालसे उन्होंने सर्वप्रथम भगवान्‌को नमस्कार

---

[1] म० क० पताकान्न ।

भौमः क्षेमी क्षितिमण्डलमपायाच्चिराय पायात् । अपेतसकलेतिरुपेतविश्वसस्या च भवतु विश्वंभरा । भवन्तु भव्या दिव्यजिनागमश्रद्धालवः सविचाराः साचाराः सानुभावाः सविभवाः सदयाः सदानाः सदातनाः सगुरुभक्तयः सजिनभक्तयः सायुष्याः सवैदुष्याः सहर्षाश्च पुरुषाः । धर्मपत्न्यः सधर्मकृत्याः सपातिव्रत्याः सतनयाः सविनयाश्च भूयासुः । भूयः श्रूयतामेतत्[1] । देवविधित्सितविवाहोत्सववराहीभूतसप्तवासरावधिकमधिकं नगरीयमलंक्रियताम् । आहार्यविशेषः सविशेषमङ्गेष्वामुच्यताम् । अतिबहलागुरुधूपधूमायमानं केशजालमम्लानमालाभिरशून्यमातन्यताम् । नखंपचपायसाशनमनिशमश्यताम् । अरुच्यं तु भैषज्यमपि नोपभुज्यताम् । भज्यतां परमेश्वरस्य पादपद्मम् ।

करणेन कृतो विहितो भगवन्नमस्कारः पूर्वं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा—'संश्चासौ धर्मश्चेति सद्धर्मो जैनेन्द्रो धर्मः संवर्द्धतां प्रवर्धताम् । सर्वस्या भूमेरधिपः सार्वभौमो निखिलजगद्भर्ता क्षेमी कल्याणयुक्तो जिनेन्द्रः चिराय चिरकालपर्यन्तम् अपायाद् दुःखात् क्षितिमण्डलं भूवलयम् पायाद् रक्षतात् । अपेता निरस्ता सकला निखिला ईतयो यस्मात्तथाभूता 'अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः । अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ।' इति षडीतयः उपेतानि प्राप्तानि विश्वसस्यानि निखिलधान्यानि यस्यां तथाभूता च विश्वम्भरा पृथिवी भवतु । पुरुषा लोकाः भव्याः सम्यग्दर्शनादिप्राप्तियोग्याः, दिव्यजिनागमस्य अर्हत्परमेश्वरदेशनायाः श्रद्धालवः श्रद्धाभाजनानि सविचारा हिताहितविमर्शसहिताः साचाराः पापपरित्यागपण्डिताः सानुभावाः सप्रभावाः सविभवाः सैश्वर्याः सदयाः सानुकम्पाः सदाना आहारादिचतुर्विधत्यागसहिताः सदातनाः शाश्वताः सगुरुभक्तयो निर्ग्रन्थगुरुभक्तियुक्ताः सजिनभक्तयोऽर्हद्भक्तिविभूषिताः सायुष्या दीर्घायुष्काः सवैदुष्याः सपाण्डित्याः सहर्षाश्च सामोदाश्च भवन्तु । धर्माय पत्न्यो धर्मपत्न्यः सधर्मकृत्या धर्मकृत्यसहिताः सपातिव्रत्याः सतीत्वव्रतविभूषिताः सतनयाः सपुत्राः सविनयाश्च विनयोपेताश्च भूयासुः वर्तिषीरन् । भूयः पुनश्च श्रूयतां निशम्यताम् । एतत्—'देवेन जीवंधरमहाराजेन विधित्सितः कर्तुमिष्टो यो विवाहोत्सवस्तेन वराहीभूताः सुदिवसीभूता ये सप्तवासरास्तेऽवधयो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा इयम् नगरी अधिकं भूयिष्ठम् अलंक्रियताम् भूष्यताम् । अङ्गेषु शरीरेषु सविशेषं यथा स्यात्तथा आहार्यविशेषोऽलंकारविशेष आमुच्यतां ध्रियताम् । अतिबहलैरतिनिबडैरगुरुधूपैर्धूमायमानं धूमवदाचरत् केशजालं कचकलापम् अम्लानमालाभिः प्रफुल्लस्रग्भिः अशून्यं सहितम् आतन्यताम् क्रियताम् । नखम्पचं च तत्पायसाशनं चेति नखम्पचपायसाशनम् उष्णपरमान्नभोजनम् 'पायसं परमान्नं स्यात्' इत्यमरः 'गरमखीर' इति हिन्दी । अनिशं निरन्तरम् अश्यतां खाद्यताम् । अरुच्यं तु अरुचिकरं तु भैषज्यमपि औषधमपि नोपभुज्यतां खाद्यताम् । परमेश्वरस्य जिनेन्द्रस्य पादपद्मं चरणारविन्दं भज्यतां

कराकर यह घोषणा करायी कि 'समीचीन धर्म वृद्धिको प्राप्त हो। समस्त भूमिका अधिपति राजा कल्याणसे युक्त हो चिरकाल विघ्नबाधाओंसे पृथिवीमण्डलकी रक्षा करे। पृथिवी समस्त ईतियोंसे रहित और समस्त धान्योंसे सहित हो। भव्यजीव दिव्य जिनागमके श्रद्धालु, विचारसहित, आचारसहित, प्रभावसहित, ऐश्वर्यसहित, दयासहित, दानसहित, सदा विद्यमान, गुरुभक्तिसहित, जिनभक्तिसहित, दीर्घायुसहित, विद्वत्तासहित और हर्षसहित हों। धर्मपत्नियाँ धार्मिक कार्योंसे सहित, पातिव्रत्यसे सहित, पुत्रोंसहित और विनयसहित हों। तदनन्तर यह सुनिये—महाराजके द्वारा किये जानेवाले विवाहोत्सवके उत्तम दिनस्वरूप सात दिन तक यह नगरी अधिक सजायी जावे। सब लोग अपने-अपने अंगोंपर विशेष आभूषण धारण करें, अत्यधिक अगुरुचन्दनकी धूपसे धूमायमान केशोंके समूहको ताजी मालाओंसे सहित किया जाय। सदा गरम-गरम खीरका भोजन किया जाय। अरुचि-

१. क० ख० ग० श्रूयतामेतदेव ।

इदानींतनाः सन्तु सनातनाः' इति ।

§ २६०. तदैवं[1] घोषिते, केषुचिद्राजचरितोद्घोषणपरेषु पौरवृद्धेषु—

'क्व पूज्यं राजपुत्रत्वं प्रेतावासे क्व वा जनिः ।
क्व वा राज्ये[2] पुनः प्राप्तिरहो कर्मविचित्रता ॥'

इति ससंवेगं प्रतिद्वारमुदीरयत्सु, परेषु तु पौरेषु 'सत्वरमलिन्दभूरालि, मलयजरसेनालिप्यताम् । मृगलोचने, मृगमदमाहर । प्रसाधिके, साधु प्रसाधय । सज्जीभव बाले, ताम्बूलबीटी[3] विधौ । कुरङ्गलोचने, स्नपयितुमङ्गजं कुङ्कुमस्थासककुम्भानानय । चित्रकर, प्रातिवेश्यचित्रादतिविचित्रं चित्रय । कर्पूरिके, कर्पूरोपलजालानि शकलय । मन्दीभूतं गन्धपाटवमिदं पटवासचूर्णाय[4] भुजिष्ये, किं नु घृष्यते । मालिके, लब्धपरभागं[5] माला सृज्यताम् । रजक, राजाज्ञा खलु त्वये-

सेव्यताम् । इदानीन्तना आधुनिका जनाः सनातनाः सदातना दीर्घकालस्थायिनः सन्तु' इति ।

§ २६०. तदैवमिति—तदा तस्मिन् काले एवं पूर्वोक्तप्रकारेण घोषिते सति राज्ञश्चरितस्योद्घोषणे निरूपणे परा लीनास्तेषु केषुचित् पौरवृद्धेषु नागरिकवृद्धेषु । क्व पूज्यमिति—'पूज्यं प्रशंसनीयं राजपुत्रत्वं नृपतितनयत्वं क्व कुत्र । प्रेतावासे श्मशाने जनिर्जन्म क्व वा । कुत्र वा । राज्ये पितृपरम्पराप्राप्तराज्ये पुनः प्राप्तिः क्व वा । कर्मणां विचित्रता वैविध्यम् अहो आश्चर्यकरम्' इतीत्थं ससंवेगं संवेगः संसारभीतिस्तेन सहितं यथा स्यात्तथा प्रतिद्वारं द्वारे द्वारे उदीरयत्सु कथयत्सु, परेषु तु अन्येषु तु पौरेषु नागरिकेषु 'आलि ! सखि ! अलिन्दस्य बहिर्द्वारप्रकोष्ठकस्य भूः सत्वरं शीघ्रं मलयजरसेन पाटीरद्रवेण आलिप्यताम् समन्ताल्लिप्ता क्रियताम् 'प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके' इत्यमरः । मृगलोचने ! हे मृगाक्षि ! मृगमदं कस्तूरीम् आहर समानय । प्रसाधिके ! साधु यथा स्यात्तथा प्रसाधय अलंकुरु । बाले ! ताम्बूलबीटीनां नागवल्लीदलबीटीनां विधौ निर्माणे सज्जीभव तत्परा भव । कुरङ्गलोचने ! हरिणनेत्रि ! अङ्गजं पुत्रं स्नपयितुं कुङ्कुमस्थासककुम्भान् केशरतिलककलितघटान् आनय । चित्रकर ! प्रातिवेश्यचित्रात् प्रतिवासिचित्रात् अतिविचित्रमत्याश्चर्यकरं चित्रय चित्रनिर्माणं कुरु । कर्पूरिके ! कर्पूरोपलस्य घनसारपिण्डस्य जालानि समूहान् शकलय खण्डय । भुजिष्ये ! दासि ! पटवासचूर्णाय इदं वर्तमानं गन्धपाटवं गन्धनिर्माणकौशलं मन्दीभूतमल्पम् विलम्बनकरं वा, किं नु घृष्यते । अधिकघर्षणेन शीघ्रं गन्धपाटवं प्रदर्शनीयमिति भावः । मालिके ! हे मालाकारिणि ! लब्धः प्राप्तः परभागो वर्णोत्कर्षो यस्मिन् कर्मणि

कर ओषधि भी नहीं खायी जाय । परमेश्वरके चरण कमलोंकी भक्ति की जाय और जो इस समय है वह सदा बना रहे ।

§ २६०. उस समय इस प्रकारकी घोषणा होने पर राजाके चरितका वर्णन करनेमें तत्पर नगरके वृद्धजन संवेगपूर्वक द्वार-द्वारपर कहने लगे कि कहाँ तो राजपुत्रपना ? कहां श्मशानमें जन्म? और कहां फिरसे राज्यकी प्राप्ति ? अहो ! कर्मोंकी बड़ी विचित्रता है । कितने ही नगरवासी 'सखि । दरवाजेके बाह्य कोष्ठको शीघ्र ही चन्दनके रससे लीप ले । हे मृगनेत्रि ! कस्तूरी ला । हे सजानेवाली ! ठीक सजा । हे बाले ! पानके बीड़ा लगानेमें तैयार हो जा । हे मृगलोचने ! कामदेवको नहलानेके लिए केशरके तिलकसे युक्त कलश ले आ । हे चित्रकर ! पड़ौसके चित्रसे अत्यन्त विचित्र चित्र बना । हे कर्पूरिके ! कपूरकी शिलाओंके टुकड़े कर ले । दासि ! चूर्णके लिए यह हीन गन्धसे युक्त पटवास क्यों घिसा जा रहा है ? अरी मालिन ! वर्णोत्कर्षको प्राप्त करनेवाली माला बना । अरे धोबी ! राजाकी

१. क० ग० तयैवम् । २. म० क्व वा राज्य । ३. क० बीटिकाविधौ । ४. म० पटवासं चूर्णाय । ५. क० लब्धपरागम् ।

वाज्ञायि; सद्यो वासांसि धवलीकुरु । कर्णाभरणानि तूर्णं विधेहि स्वर्णकार, किं नु कालं हरसि । मालाकार, प्रातरेवानय प्रसूनमभिनवम्; सौगन्धिकस्रगियमपेतगन्धा; बन्धुरसौरभामपरामर्पय ।' इत्येवंप्रकारमलंकाराय त्वरमाणेषु, राजकुले च कुलक्रमागतैः प्रागेवागमनं पश्चादाह्वानयन्त्रणां पूर्वमेव सर्वसमीहितकृत्योद्योगं तदनु नियोगं पुरस्तादेव स्वहस्तव्यापारमनन्तरमन्तःकरणवृत्तिं च भक्तिभरपरतन्त्रया भजद्भिस्तत्तत्कर्मान्तिकैः सुधासादिव सूत्रसादिव चित्रसादिव विचित्रपटसादिव पटवाससादिव कृते, कृतादराभिररुणसंग्राहिणीभिश्चूर्णसंयोजिनीभिः कुसुम्भरागकारिणीभिः कुसुमग्रन्थिनीभिर्मण्डनविधायिनीभिः पिण्डालक्तकसंपादिनीभिस्ताम्बूलदायिनीभिर्जाम्बूनदमुकुर-

यथा स्यात्तथा माला स्रग् 'माल्यं माला गुणस्रजौ' इति धनंजयः, सृज्यताम् रच्यताम् । रजक ! हे वस्त्रप्रक्षालक ! राजाज्ञा राजादेशः खलु निश्चयेन त्वयैव अज्ञायि ज्ञातः सद्यो झगिति वासांसि वस्त्राणि धवलीकुरु शुक्लीकुरु । स्वर्णकार ! कलाद ! कर्णाभरणानि कर्णालंकरणानि तूर्णं शीघ्रं विधेहि रचय, कालं समयं किं नु हरसि । विलम्बं किं करोषीति भावः । मालाकार ! अभिनवं नूतनं प्रसूनं पुष्पं प्रातरेव प्रातःकालमेव आनय, इयं सौगन्धिकस्रक् कह्लारमाला अपेतगन्धा निर्गन्धा, बन्धुरं मनोज्ञं सौरभं सौगन्ध्यं यस्यास्ताम् अपरामन्यां स्रजम् अर्पय देहि' । इत्येवं प्रकारम् अलंकरणमलंकारस्तस्मा अलंकारधारणाय त्वरन्त इति त्वरमाणास्तेषु शीघ्रतां कुर्वाणेषु, राजकुले चेति—राजकुले च राजद्वारे च कुलक्रमेण वंशपरम्परयागतास्तैः प्रागेव पूर्वमेवागमनं पश्चात् आह्वानस्याकारणस्य यन्त्रणां यातनां पूर्वमेव सर्वाणि निखिलानि यानि समीहितानि इष्टानि कृत्यानि कार्याणि तेषामुद्योगस्तं तदनु तदनन्तरं नियोगमवसरविभाजनम्, पुरस्तादेव पूर्वमेव स्वहस्तव्यापारं स्वकरव्यापृतिम् अनन्तरम् अन्तःकरणवृत्तिं च मनोव्यापृतिं च, भक्तिभरस्य तीव्रानुरागसमूहस्य परतन्त्रतया विवशतया भजद्भिः प्राप्नुवद्भिः तत्तत्कर्मान्तिकैः तत्तत्कार्यनियुक्तकर्मकरैः सुधासादिव चूर्णकमयमिव, सूत्रसादिव मङ्गलसूत्रमयमिव, चित्रसादिव आलेख्यमयमिव, विचित्रपटसादिव विविधवस्त्रमयमिव पटवाससादिव पिष्टातकमयमिव, कृते विहिते सति, सर्वत्र 'विभाषा साति कार्त्स्न्ये' इति सातिप्रत्ययः । कृतादराभिरिति—कृतो विहित आदरः सम्मानं यासां ताभिः अरुणसंग्राहिणीभिः अरुणम् अव्यक्तरागं संगृह्णन्तीत्येवंशीलास्ताभिः 'अव्यक्तरागस्त्वरुणः' इत्यमरः, चूर्णानां विविधवर्णचूर्णानां संयोजिन्यः संघटिन्यस्ताभिः, कुसुम्भानां रक्तवर्णपुष्पविशेषाणां रागं रङ्गं कुर्वन्तीत्येवंशीलास्ताभिः, कुसुमग्रन्थिनीभिः पुष्पग्रन्थनशीलाभिः, मण्डनविधायिनीभिराभूषणरचयि-

आज्ञा तो तू जानता ही है कपड़े शीघ्र ही सफेद कर। अरे सुनार! कानोंके आभूषण शीघ्र तैयार कर! समय क्यों बिता रहा है? माली! प्रातः काल होते ही नया फूल ला। यह कल्हारकी माला गन्धरहित है। अत्यधिक सुगन्धिसे युक्त दूसरी माला दे—इस प्रकार अलंकारोंके लिए शीघ्रता करने लगे। भक्तिकी परतन्त्रतासे जो पहले आगमनको, पीछे बुलानेकी यन्त्रणाको, पहले सर्वजनवाञ्छित कार्यके उद्योगको, पीछे आज्ञाको, और पहले अपने हाथके व्यापारको पीछे अन्तःकरणकी वृत्तिको प्राप्त हो रहे थे ऐसे कुलक्रमागत तत् तत् कार्योंमें नियुक्त भृत्योंने राजकुलको ऐसा कर दिया मानो अमृतमय ही हो, सूत्रमय ही हो, चित्रमय ही हो, विचित्र वस्त्रमय ही हो, अथवा पटवासमय ही हो। जो आदर प्रकट कर रही थीं, लाल वस्तुओंका संग्रह कर रही थीं, चूर्णोंको ठीक कर रही थीं, कुसुम्भका रंग बना रही थीं, फूल गूंथ रही थीं, आभूषण तैयार कर रही थीं, महावरकी गुलेलियाँ बना रही थीं, पान दे रही थीं, सुवर्णमय दर्पण धारण कर

१. म० भक्तिपरतन्त्रतया ।

धारिणीभिरष्टमङ्गलसंस्कारिणीभिः पिष्टपञ्चाङ्गुलकलितशिलादिकल्पिनीभिश्च, साधुशीलाभिः समन्तादागतसामन्तसीमन्तिनीभिर्नन्दिते, नरेन्द्रैश्च नाथमानैर्नरपतिकटाक्षस्य साकमुपधाभिरुपसरद्भिश्चूताशोकपल्लवशुम्भितवेदीवितर्दिकास्तम्भोत्तम्भिभिश्च ससंभ्रमं कल्प्यमानायां कल्याणार्हसंविधायाम्, विजयामहादेव्यां च भर्तरि स्मरणेन कर्तव्ये चरणेन तनये स्नेहेन स्नुषायां हर्षेण बन्धुजने प्रियवचसा नियोज्ये नियोगेन च तदानीमेकस्यामपि नैकस्यामिव सत्यां सुतोद्वाहसुखानभिज्ञमात्मानं सुखयन्त्याम्, तदीयकौतुकेनाहूत इव वररागरज्जुग्रन्थिबन्धनाकृष्ट इव वधूसखीप्रपञ्चपञ्चशाखाङ्गुलीगणनाक्षीण इव स्वकुतूहलेन स्वयमेव वा सरभसमायासीदुद्वाहवासरः ।

श्रीभिः, पिण्डालक्तकसंपादिनीभिः पिण्डयावकनिर्मात्रीभिः ताम्बूलदायिनीभिर्नागवल्लीदलदायिनीभिः जाम्बूनदमुकुरधारिणीभिः स्वर्णादर्शधारिणीभिः *अष्टमङ्गलसंस्कारिणीभिः अष्टमङ्गलद्रव्यपरिमार्जिनीभिः, 'पिष्टानां हरिद्राचूर्णानां पञ्चाङ्गुलैर्हस्तमुद्राभिः कलिताः सहिता ये शिलादयस्तेषां कल्पिभ्यो रचयित्र्यस्ताभिश्च साधुशीलाभिः सत्स्वभावाभिः समन्तात् सर्वतः आगता याः सामन्तसीमन्तिन्यो मण्डलेश्वरस्त्रियस्ताभिः नन्दिते प्रशंसिते । नरेन्द्रैश्चेति—नरपतिकटाक्षस्य नाथमानैः याचमानैः 'नरपतिर्मां प्रति पश्यतु' इति वाञ्छद्भिरित्यर्थः, उपधाभिरुपायनैः साकं सार्धम् उपसरद्भिरुपगच्छद्भिः चूताशोकपल्लवैराम्रकङ्केलिकिसलयैः शुम्भिताः शोभिता वेदीवितर्दिकाया यज्ञकुण्डवितर्दिकायास्तम्भास्तान् उत्तम्भन्तीत्येवंशीलैः नरेन्द्रैश्च राजभिश्च ससंभ्रमं सत्वरं कल्याणार्हसंविधायां विवाहयोग्यसामग्रीयोजनायां कल्प्यमानायां क्रियमाणायाम् । विजयामहादेव्यां चेति—विजयामहाराज्ञ्यां च भर्तरि दिवंगतसत्यंधरमहाराजे स्मरणेन ध्यानेन, कर्तव्ये करणीये चरणेन पादेन, तनये पुत्रे जीवंधरे स्नेहेन प्रीत्या स्नुषायां पुत्रवध्वां हर्षेण, बन्धुजने इष्टजने प्रियवचसा मधुरभारत्या नियोज्ये कर्मकरे नियोगेन च कार्यप्रदानेन च तदानीम् एकस्यामपि नैकस्यामिवानेकरूपायां सत्यां भवन्त्याम् सुतोद्वाहस्य पुत्रपाणिग्रहणस्य सुखेन सातेनानभिज्ञमपरिचितम् आत्मानं सुखयन्त्यां सुखीकुर्वन्त्याम्, तदीयकौतुकेन विजयाकौतुकेन आहूत इवाकारित इव वररागो वरप्रीतिरेव रज्जू रश्मिस्तस्य ग्रन्थिबन्धनेनाकृष्ट इव, वध्वाः सखीनां प्रपञ्चस्य समूहस्य पञ्चशाखानां हस्तानामङ्गुल्यस्तासां गणनया संख्यानेन क्षीण इव ह्रसित इव स्वकुतूहलेन स्वस्य कौतुकेन वा स्वयमेव वा स्वत एव वा सरभसं सवेगम् उद्वाहवासरो विवाहदिवसः आयासीत् आजगाम ।

रही थीं, अष्ट मंगल द्रव्योंको सुसंस्कृत कर रही थीं । और हल्दी आदिके चूर्णसे निर्मित हाथों (हाथके चिह्नों) से युक्त शिला आदिको ठीक कर रही थीं ऐसी उत्तम स्वभावकी धारक सब ओरसे आयी हुई सामन्तोंकी स्त्रियोंसे जब राजकुल समृद्धिको प्राप्त हो रहा था । जब राजाके कटाक्षकी याचना करनेवाले, उपहारोंके साथ समीप आनेवाले और आम तथा अशोकके लहलहाते नवीन पत्तोंसे सुशोभित वेदीके नीचेके चबूतरेपर खम्भे खड़े करनेवाले राजा लोग बड़े आदरके साथ विवाहके योग्य तैयारियाँ कर रहे थे और जब विजया महादेवी स्मरणसे भर्तामें, चरणसे कार्यमें, स्नेहसे पुत्रमें, हर्षसे वधूमें, प्रियवचनसे बन्धुजनमें, और आज्ञासे सेवकोंमें इस तरह एक होकर भी अनेककी तरह होती हुई पुत्रके विवाहके सुखसे अनभिज्ञ अपने आपको सुखी कर रही थी तब उसके कौतुकसे बुलाये हुए के समान, अथवा वरके राग रूपी रस्सीको गाँठके बन्धनसे खींचे हुएके समान अथवा वधूकी सखियोंके समूहकी हस्तांगुलियोंकी गणनासे क्षीण हुएके समान अथवा अपने कुतूहलसे स्वयं ही वेगसे विवाहका दिन आ गया ।

---

* संघाटकभृङ्गारच्छत्राब्दव्यजनशुक्तिचामरकलशाः । मङ्गलमष्टविधं स्यादेकैकस्याष्टशतसंख्यः ।।५१।।
—समवसरणस्तोत्रे विष्णुसेनस्य ।

§ २६१. अथ कल्पितकरग्रहणार्हपुरश्चरणकर्माणं कनकधरणीधरकटकपरिभाविनि परिसरघटितविमलमुक्ताफलपटलपाण्डुरमहःप्रसरपुनरभिहितोत्तरच्छदशोभिनि पराक्रमविद्याशिष्यैरिव पञ्चाननैः पादच्छलेन विधारिते निष्टप्ताष्टापदनिर्मिते महति सिंहासने समुपविष्टम्, पृष्ठभागोपस्थापिते क्षीरोदतरङ्गकोमलदुकूलनिचोलचारुणि चामीकरपत्रचित्रितस्तवरकदर्शनीयपर्यन्ते द्विगुणनिवेशिते स्पर्शसुखप्रतिपादनपटीयसि हंसतूलोपधाने निधाय पश्चिमदेहमासीनम्, आसन्नस्थिताभिरनुवल्गनरणितमणिपारिहार्यमुखरबाहुलताभिरनिलचलितकुवलयदलदामपेशलविलोचननिक्षेपाभिर्विभ्रमकृतनिभृतहसितनिर्यदमलदशनमरीचिकुसुमिताधरकिसलयाभिः कुसुमशरकीर्त्तिपयोराशि-

§ २६१. अथेति—अथानन्तरं कल्पितानि विहितानि करग्रहणार्हाणि विवाहयोग्यानि पुरश्चरणकर्माणि प्रारम्भिककार्याणि यस्य तम्, कनकधरणीधरस्य सुमेरोः कटकं प्रस्थं परिभवति तिरस्करोतीत्येवंशीले, परिसरे पार्श्वे घटितानि खचितानि यानि विमलमुक्ताफलानि निर्मलमौक्तिकानि तेषां पटलस्य समूहस्य यत्पाण्डुरं शुक्लं महस्तेजस्तस्य प्रसरेण विस्तारेण पुनरभिहितः पुनरुक्तो य उत्तरच्छदस्तेन शोभत इत्येवंशीले, पराक्रमविद्यायाः शिष्यैरन्तेवासिभिरिव पञ्चाननैः सिंहैः पादच्छलेन चरणव्याजेन विधारिते, निष्टप्तं संतप्तं यदष्टापदं हेम तेन निर्मिते रचिते महति विशाले सिंहासने समुपविष्टं विराजमानम्, पृष्ठभागे पश्चाद्भाग उपस्थापितं संधारितं तस्मिन्, क्षीरोदस्य पयःपयोधेः तरङ्गा इव कल्लोला इव कोमलं मृदुलं यद् दुकूलं क्षौमं तस्य निचोलेनावरणेन प्रच्छदपटेन चारु सुन्दरं तस्मिन् 'निचोलः प्रच्छदपटः' इत्यमरः' चामीकरपत्रैः स्वर्णपत्रैश्चित्रितेन स्तवरकेणोपधानविशेषेण दर्शनीयः पर्यन्तः पार्श्वप्रदेशो यस्य तस्मिन्, द्विगुणं यथा स्यात्तथा निवेशितं स्थापितं तस्मिन्, स्पर्शसुखस्य स्पर्शजनितसातस्य प्रतिपादने पटीयो दक्षं तस्मिन्, हंसतूलस्योपधानं तस्मिन् पश्चिमदेहं पृष्ठभागं निधाय स्थापयित्वा आसीनमुपविष्टम्। आसन्नेति—आसन्नेऽभ्यर्णे स्थिता विद्यमानास्ताभिः अनुवल्गनेनानुचलनेन रणितानि शब्दायमानानि यानि मणिपारिहार्याणि रत्नालंकरणानि तैर्मुखरा वाचाला बाहुलता भुजवल्ल्यो यासां ताभिः, अनिलेन वायुना चलितानि कम्पितानि यानि कुवलयदलदामानि नीलोत्पलमाल्यानि तद्वत्पेशला मनोहरा विलोचनविक्षेपा नयनसंचारा यासां ताभिः, विभ्रमेण विलासेन कृतं विहितं यद् निभृतहसितं निश्चलहास्यं तेन निर्यन्तो निर्गच्छन्तो येऽमलदशनमरीचयो निर्मलरदनरश्मयस्तैः कुसुमितः पुष्पितोऽधरकिसलय ओष्ठपल्लवो यासां ताभिः, कुसुमशरस्य मन्मथस्य कीर्तिरेव यश एव पयोराशिः क्षीरसागरस्तस्य वीचिरिव

§ २६१. अथानन्तर जिनके विवाहके योग्य पूर्ववर्ती कार्य पूर्ण किये जा चुके थे, जो सुमेरु पर्वतके कटकको तिरस्कृत करनेवाले, समीपमें लगे निर्मल मुक्ता समूहकी सफेद कान्ति पुंजसे पुनरुक्त चद्दरसे सुशोभित और पराक्रम विद्याके शिष्योंके समान सिंहोंके द्वारा पायोंके बहाने धारण किये हुए स्वर्णनिर्मित विशाल सिंहासनपर बैठे हुए थे। जो पीछेकी ओर रखे, क्षीर सागरकी तरंगोंके समान कोमल रेशमी वस्त्रके आवरासे सुन्दर, स्वर्णपत्रोंसे चित्रित आवरासे दर्शनीय पर्यन्त भागसे युक्त, दुहरे रखे हुए, स्पर्श सुखके दिनमें अत्यन्त चतुर, हंसतूलके उपधानपर शरीरका पिछला भाग रखकर विराजमान थे, जो स्वर्णलताओंसे कल्पवृक्षके समान उन स्त्रियोंसे घिरे हुए थे कि जो पासमें खड़ी थीं, बार-बार हिलानेसे खनकते हुए मणिमय आभूषणोंसे जिनकी भुजलताएँ शब्दायमान थीं, जिनके नेत्रोंका विक्षेप वायुसे हिलते हुए नील कमल दलकी मालाके समान सुन्दर था। विलासपूर्वक किये हुए निश्चल हास्यके कारण निकलती हुई निर्मल दाँतोंकी किरणोंसे जिनके अधर किसलय फूलोंसे युक्त हो रहे थे। कामदेवकी कीर्तिरूपी क्षीरसागरकी तरंगोंके समान निर्मल अधोवस्त्रको

वीचीविमलनीवीविनिहितैककरपल्लवाभिः परेण करपङ्कजेन कलहंसमिव परिमललोभपतितमुच्चालयन्तीभिश्चामरं वामनयनाभिः कल्पशाखिनमिव कनकलताभिः परिवृतम्, उत्तप्ततपनीयदण्डविधारितेन सुमेरुशिखरविलसदुडुपतिमण्डलविडम्बकेन विमलातपत्रेण तिलकितोपरिभागम्, अनुपरिपाटि स्थितैराहितकरकमलकलितकनककिरीटैरसकृदभिधीयमानजयजीवशब्दैरंसतटलुठितमणिकुण्डलमरीचिपर्याकुललोचनैरभिनवगगनशङ्कासमुदिततारकानिकरानुकारिणा हारेण पुलकितपृथुलवक्षःस्थलैरवनिपतिभिरारादासेव्यमानम्, आहितरत्नकेयूरकिरणपाटलितेनाध्यक्षीभवदभङ्गुरप्रतापेन भुजयुगलेन चमत्कुर्वाणम्, शारदजलधरधवलाम्बरपरिवेषदर्शनीयं दुग्धजलधिजलपूरमधिशयानमिव शार्ङ्गिणम्, नभोऽङ्गणे तारागणैरिव तारापतिं धरापतिभिः संसदि विराजमानं राजानमुपसृत्य

तरङ्ग इव विमला धवला या नीवी अधोवस्त्रग्रन्थिस्तस्यां विनिहितः स्थापित एककरपल्लव एकपाणिकिसलयो याभिस्ताभिः परेण द्वितीयेन करपङ्कजेन पाणिपद्मेन परिमललोभपतितं सौगन्ध्यलोभपतितं कलहंसमिव कादम्बमिव चामरं बालव्यजनम् उच्चालयन्तीभिरुत्क्षिपन्तीभिः वामनयनाभिः कनकलताभिः मर्मवल्लरीभिः परिवृतं कल्पशाखिनमिव देवद्रुममिव परिवृतं परिवेष्टितम्, उत्तप्तेति—उत्तप्ततपनीयस्य संतप्तस्वर्णस्य दण्डेन विधारितं तेन, सुमेरुशिखरे देवाद्रिशृङ्गे विलसत् शोभमानं यद् उडुपतिमण्डलं चन्द्रबिम्बं तस्य विडम्बकमनुकारकं तेन विमलातपत्रेण शुक्लच्छत्रेण तिलकितः शोभित उपरिभागो यस्य तम्, अनुपरिपाटीति—अनुपरिपाटि अनुपरम्परं स्थितैर्विद्यमानैः आहितेन धृतेन करकमलेन पाणिपद्मेन कलितं सहितं कनककिरीटस्वर्णमकुटं येषां तैः, असकृत् पुनः पुनरभिधीयमानाः कथ्यमाना 'जय' 'जीव' शब्दा यैस्तैः, अंसतटयोः स्कन्धतीरयोर्लुठितयोर्मणिकुण्डलयो रत्नकर्णाभरणयोर्मरीचिभिः किरणैः पर्याकुले व्यग्रे लोचने नयने येषां तैः अभिनवगगनस्य नूतननभसः शङ्कया सन्देहेन समुदितो यस्तारकानिकरो नक्षत्रनिचयस्तस्यानुकारिणा हारेण मुक्तादाम्ना पुलकितं रोमाञ्चितं पृथुलं विस्तीर्णं वक्षःस्थलं भुजान्तरं येषां तैः, अवनिपतिभी राजभिः आराद्दूरेण आसेव्यमानम्, आहितेति—आहितं धृतं यद् रत्नकेयूरं मणिमयाङ्गदं तस्य किरणैः पाटलितेन श्वेतरक्तेन अध्यक्षीभवन् प्रत्यक्षीभवन् अभङ्गुरप्रतापो यस्य तेन भुजयुगलेन बाहुयुगेन चमत्कुर्वाणम्, शारदजलधर इव धवलं शुक्लं यदम्बरं वस्त्रं तस्य परिवेषेण दर्शनीयं सुन्दरम् दुग्धजलधेः क्षीरसागरस्य जलपूरं पयःपूरम् अधिशयानं तत्र शयनं कुर्वाणं शार्ङ्गिणमिव विष्णुमिव, नभोऽङ्गणे गगनाङ्गणे तारागणैर्नक्षत्रसमूहैस्तारापतिमिव चन्द्रमिव संसदि सभायां धरापतिभी राजभिः

गाँठपर जिनका एक करपल्लव रखा हुआ था और दूसरे करकमलसे जो सुगन्धिके लोभसे पड़े हुए कलहंसके समान चामरको ऊपरकी ओर चला रही थीं। तपाये हुए स्वर्णदण्डपर धारित एवं सुमेरु पर्वतके शिखरपर सुशोभित चन्द्रमण्डलको तिरस्कृत करनेवाले निर्मल छत्रसे जिनका उपरितन प्रदेश सुशोभित हो रहा था। जो परिपाटीके अनुसार स्थित थे, जिनके स्वर्णनिर्मित मुकुट जोड़कर लगाये हुए करकमलोंसे सहित थे, जो बार-बार जय जीव आदि शब्द कह रहे थे, कन्धोंके तटपर लटकते मणिमय कुण्डलोंकी किरणोंसे जिनके नेत्र व्याकुल हो रहे थे, नूतन आकाशकी शंकासे उदित ताराओंके समूहका अनुकरण करनेवाले हारसे जिनका विशाल वक्षःस्थल व्याप्त हो रहा था ऐसे राजा लोग समीपमें जिनकी सेवा कर रहे थे। धारण किये हुए रत्नोंके बाजूबन्दोंकी किरणोंसे कुछ-कुछ लाल तथा प्रकट होते हुए अविनाशी प्रतापसे युक्त भुजाओंके युगलसे जो चमत्कार उत्पन्न कर रहे थे। जो शरद् ऋतुके मेघोंके समान सफेद वस्त्रके परिधानसे सुन्दर थे और क्षीरसागरके जलके पूरमें शयन करनेवाले कृष्णके समान जान पड़ते थे और जिस प्रकार आकाश रूपी अंगणमें ताराओंसे सुशोभित चन्द्रमा होता है उसी प्रकार जो राजाओंसे सभामें सुशोभित थे।—ऐसे

प्रश्रितः प्राञ्जलिः 'प्रत्यासन्नो मुहूर्तः' इति मौहूर्तिकाधिकृतः ससंभ्रममब्रवीत् ।

§ २६२. तद्वचनमुपश्रुत्य द्रुततरमुच्चलतामिलापतीनां रंहसा चलितवक्षोगतवैकक्ष्यमालाभ्रान्तभृङ्गावलीझंकाररवे मङ्गलशङ्खध्वनाविवोच्चलति, तरसा त्रुट्यत्सूत्रहारमुक्तानिकरे रोहदतिस्फारकरपद्मरागकुट्टिमपातेन वधूवरविधेयहुतवहज्वालोचितलाजविसर्ग इव विभाव्यमाने, जनविमर्दकृतयादृच्छिकमणिस्तम्भदक्षिणभ्रमणारम्भे दम्पतिविधास्यमानहुताशनप्रादक्षिण्यक्रियां पिशुनयति, हर्षविकीर्यमाणराजाभिमुखप्रसूनाञ्जलौ सानन्दगोविन्दमहाराजादिविधातव्यवधूवरशरीरचकासदार्द्राक्षतारोपणमनुकुर्वति, परिष्करणमय इव परिबर्हमय इव नृत्तमय इव वादित्रमय

विराजमानं शोभमानं राजानं भूपालम् उपसृत्य तस्य समीपं गत्वा प्रकर्षेण श्रितः सेवितः सत्कृत इत्यर्थः मौहूर्तिकाधिकृतः प्रधानदैवज्ञः प्राञ्जलिर्बद्धहस्तसंपुटः सन् 'मुहूर्तः प्रत्यासन्नो निकटस्थ' इति ससंभ्रमं सत्वरं यथा स्यात्तथा अब्रवीत् ।

§ २६२. तद्वचनमिति—तस्य मौहूर्तिकाधिकृतस्य वचनं तद्वचनम् उपश्रुत्य समाकर्ण्य द्रुततरमतिशीघ्रम् उच्चलताम् इलापतीनां राज्ञां रंहसा वेगेन चलिताः कम्पिता या वक्षोगतवैकक्ष्यमाला वक्षःस्थिततिर्यक्स्रजस्ताभ्यो भ्रान्तानामुत्पतितानां भृङ्गाणां भ्रमराणां यावली तस्य झङ्काररवस्तस्मिन्, मङ्गलशङ्खध्वनाविव मङ्गलोद्देश्यककम्बुशब्द इव उच्चलति, तरसा बलेन त्रुट्यत्सूत्राणां भिद्यमानदोरकानां हाराणां मौक्तिकयष्टीनां मुक्तानिकरो मौक्तिकसमूहस्तस्मिन्, रोहन्तः समुत्पद्यमाना अतिस्फारकरा विशालकिरणा यस्मात्तथाभूतो यः पद्मरागकुट्टिमो लोहितमणिखचितवसुधाभोगस्तस्मिन् पातेन वधूवराभ्यां विधेयः करणीयो यो हुतवहज्वालासु अनलार्चिःषु उचितो योग्यो लाजविसर्गो भर्जितधान्यपुष्पावमोचनं तथाभूत इव विभाव्यमाने प्रतीयमाने, जनविमर्देन नरनिकुरम्बेण कृतो विहितो यादृच्छिकः स्वेच्छाविहितो यो मणिस्तम्भस्य रत्नस्तम्भस्य दक्षिणभ्रमणारम्भस्तस्मिन् दक्षिणपरिक्रमणारम्भस्तस्मिन् दम्पतिभ्यां जायापतिभ्यां विधास्यमाना करिष्यमाणा या हुताशनस्याग्नेः प्रादक्षिण्यक्रिया तां पिशुनयति सूचयति सति, हर्षेण विकीर्यमाणः प्रक्षिप्यमाणो राजाभिमुखं राज्ञः पुरस्तात् यः प्रसूनाञ्जलिस्तस्मिन् सानन्दैः सहर्षैर्गोविन्दमहाराजादिभिर्विधातव्यं करणीयं वधूवरयोः शरीरयोश्चकासत् शोभमानं यदार्द्राक्षतारोपणं संस्कारविशेषस्तमनुकुर्वति परिष्करणमय इव, शोभामय इव, परिबर्हमय इव, उपकरणमय इव, नृत्तमय इव, वादित्रमय इव, महर्षिमय

जीवन्धर महाराजके समीप पहुँचकर विनयी तथा हाथ जोड़कर खड़े हुए प्रधान ज्योतिषीने संभ्रमपूर्वक कहा कि 'मुहूर्त निकट है' ।

§ २६२. उसके वचन सुनकर अत्यन्त शीघ्र उठनेवाले राजाओंके वक्षःस्थलोंपर स्थित तिरछी मालाओंसे उड़े भ्रमरसमूहकी झंकारका शब्द जब मंगलमय शंखोंकी ध्वनिके समान उठ रहा था। वेगसे जिनका सूत्र टूट गया था ऐसे हारके मोतियोंका समूह जब निकलती हुई अत्यधिक किरणोंसे युक्त पद्मराग मणिके फर्शपर पड़ रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वधू वरके द्वारा अग्निकी ज्वालाओंमें योग्य लाई ही छोड़ी जा रही हो। मनुष्योंकी भीड़के द्वारा स्वेच्छावश किया हुआ मणिमय स्तम्भोंकी प्रदक्षिणा रूप भ्रमणका प्रारम्भ जब दम्पतिके द्वारा की जानेवाली अग्निकी प्रदक्षिणा क्रियाको सूचित कर रहा था और जब राजा जीवन्धरके सम्मुख बिखेरी जानेवाली फूलोंकी अंजलि आनन्दसहित गोविन्द महाराज आदिके द्वारा किये जाने योग्य वधू-वरके सुशोभित एवं आर्द्र अक्षतोंके आरोपणका

१. म० जनसंमर्द–। २. म० वधूवरचकासत—।

इव महिषीमय इव महीपतिमय इवानन्दमय इवाशीर्मय इव विलसति विवाहमण्डपे, मण्डलाधीश्वरदत्तहस्तः शिलोच्चयशिखरान्नखरायुध इव हरिविष्टरादवरुह्य विरचितपरमेश्वरसपर्याञ्चितः स्वहस्तवितीर्णकाञ्चनः संचितसकलहोमद्रव्यसमिद्धपुरोभागेण पुरोधसा हूयमानसमित्कुशतिलबीजलाजजालचटचटायमानेन हुताशनेनाहूत इवासाद्य वेदीं मुदितपुरोहिताभिहितजयजीवेत्याशिषा समं जीवंधरमहाराजः,स्वमातुलमहाराजेन महनीयलग्ने ससंतोषं समर्पिताम्, आत्मीयकीर्त्तिमिवाकल्पभासुराम्, प्रबलतपस्यामिवाबलाप्रार्थनीयवेषाम्, वासरश्रियमिव दोषोपसंहारसुलभाम्, सुरसुन्द-

---

इव राज्ञीमय इव, महीपतिमय इव नरेन्द्रमय इव, आनन्दमय इव हर्षमय इव, आशीर्मय इव विवाहमण्डपे विलसति शोभमाने सति, मण्डलाधीश्वरेण दत्तो हस्तो यस्य तथाभूतः शिलोच्चयशिखरात् पर्वतशृङ्गात् नखरायुध इव सिंह इव, हरिविष्टरात् सिंहासनात् अवरुह्य विरचिता कृता या परमेश्वरसपर्या जिनेन्द्रार्चा तयाञ्चितः शोभितः स्वहस्ताभ्यां स्वकराभ्यां वितीर्णं प्रदत्तं काञ्चनं स्वर्णं येन तथाभूतः, संचितेन राशीकृतेन सकलहोमद्रव्येण निखिलहवनद्रव्येण समिद्धो देदीप्यमानः पुरोभागो यस्य तेन, पुरोधसा पुरोहितेन हूयमानेन समर्प्यमाणेन समित्कुशतिलबीजलाजजालेन इन्धनदर्भतिलबीजभर्जितधान्यपुष्पसमूहेन चटचटायमानोऽव्यक्तशब्दविशेषं कुर्वाणस्तेन हुताशनेन पावकेन आहूत इवाकारित इव जीवंधरमहाराजो वेदीम् आसाद्य प्राप्य मुदितेन प्रसन्नेन पुरोहितेन पुरोधसा अभिहिता सूच्चरिता या जय जीवेत्याशीस्तया समं सार्धं स्वमातुलमहाराजेन गोविन्दमहीपालेन महनीयलग्ने प्रशस्तमुहूर्ते ससंतोषं यथा स्यात्तथा समर्पितां दत्तां लक्ष्मणां मातुलसुताम् पर्यणयत उदवोढ इति कर्तृक्रियाकर्मसम्बन्धः। अथ लक्ष्मणाया विशेषणान्याह—आत्मीयकीर्तिमिव स्वसमज्ञामिव 'यशः कीर्तिः समज्ञा च' इत्यमरः आकल्पभासुरां कल्पकालपर्यन्तं शोभिनीं पक्षे आकल्पैरलंकारैर्भासुरां देदीप्यमानाम्, प्रबलतपस्यामिव प्रकृष्टतपश्चर्यामिव अबलैर्निर्बलैरप्रार्थनीयोऽनभिलषणीयो वेषो मुद्रा यस्यास्तां पक्षेऽबलाभिः स्त्रीभिः प्रार्थनीयो वेषो नेपथ्यं यस्यास्ताम्, वासरश्रियमिव दिवसलक्ष्मीमिव दोषाया रात्रेरुपसंहारेण संकोचेन

अनुकरण कर रही थी। जब विवाह मण्डप ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो सजावटमय ही हो, उपकरणमय ही हो, नृत्तमय हो, वादित्रमय ही हो, राज्ञीमय ही हो, राजमय ही हो, आनन्दमय ही हो, और आशीर्वादमय ही हो तब मण्डलाधीश्वरके द्वारा जिन्हें हाथका सहारा दिया गया था ऐसे जीवन्धरस्वामी पर्वतके शिखरसे सिंहके समान सिंहासनसे नीचे उतरे। उन्होंने परमेश्वरकी पूजा की, अपने हाथसे सुवर्णका दान दिया और एकत्रित की हुई समस्त होमकी सामग्रीसे देदीप्यमान अग्रभागसे युक्त पुरोहितके द्वारा होनेवाले समिधा, कुशा, तिलबीज तथा लाईके समूहसे चट-चट शब्द करनेवाली अग्निके द्वारा बुलाये हुए के समान वे वेदीपर पहुँचे। वहाँ हर्षसे युक्त पुरोहितके द्वारा उच्चरित जय जीव आदि आर्शावादके साथ जीवन्धर महाराजने अपने मामा गोविन्द महाराजके द्वारा उत्तम लग्नमें सन्तोषपूर्वक दी हुई लक्ष्मणा नामक कन्याको विवाहा। वह लक्ष्मणा उस समय जीवन्धर महाराजकी कीर्तिके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार उनकी कीर्ति आकल्पभासुरा—कल्पकाल तक देदीप्यमान रहनेवाली थी उसी प्रकार लक्ष्मणा भी आकल्पभासुरा – आभूषणोंसे देदीप्यमान था। अथवा प्रबल तपस्याके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार प्रबलतपस्या अबलाप्रार्थनीयवेषा—निर्बल मनुष्योंके द्वारा अप्रार्थनीय वेषसे युक्त होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी अबलाप्रार्थनीयवेषा—स्त्रियोंके द्वारा प्रार्थनीय वेषकी धारक थी। अथवा दिनकी लक्ष्मीके समान थी क्योंकि जिस प्रकार दिनकी लक्ष्मी दोषोपसंहारसुलभा—दोषा—रात्रिके उपसंहारसे सुलभ

रीमिव साभरणजाताम्, मृगयामिव वराहवधसंपन्नाम्, मुनिजनमनोवृत्तिमिव चरणरक्ताम्, ब्रह्मस्तम्भाकृतिमिव कृशतरविलग्नाम्, शरदमिव विमलाम्बरविराजिनीम्, अध्वरसंपदमिव सुदक्षिणाम्, सुराज्यश्रियमिव चारुवर्णसंस्थानाम्, वनराजिमिव तिलकभूषितां बहुपत्रलतां च, नक्षत्रराजिमिव रुचिरहस्तामुज्ज्वलश्रवणमूलां च, हव्यवाहज्वालामिव काष्ठाङ्गारवर्धिनीं भूतिभाविनीं च, 'यदि

सुलभा सुप्राप्या ताम् पक्षे दोषाणां दुर्गुणानामुपसंहारेण नाशेन सुलभा सुप्राप्या ताम्, सुरसुन्दरीमिव देवाङ्गनामिव साभरणा सालंकारा जाता समुत्पन्नेति साभरणजाता ताम् पक्षे आभरणजातेनालंकारसमूहेन सहिता साभरणजाता ताम्, मृगयामिव आखेटक्रीडामिव वराहवधेन शूकरघातेन संपन्ना ताम् पक्षे चन्द्रकयन्त्रनियन्त्रितवराहाकारपुत्तलिकानां वधेन संपन्ना प्राप्ता ताम्, मुनिजनस्य तपोधनस्य मनोवृत्तिमिव चरणरक्तां चरणे चारित्रे रक्ता लीना तां पक्षे चरणयोः पादयो रक्ता रक्तवर्णा ताम्, ब्रह्मस्तम्भाकृतिमिव लोकाकृतिमिव कृशतरो रज्जुप्रमितो विलग्नो मध्यभागो यस्यास्तां पक्षे कृशतरोऽतिसूक्ष्मो विलग्नः कटिप्रदेशो यस्यास्ताम्, शरदमिव शरदृतुमिव विमलाम्बरविराजिनीम् विमलेन रजोरहितेन अम्बरेण नभसा विराजिनीं शोभिनीम् पक्षे विमलाम्बरैरुज्ज्वलवस्त्रैर्विराजिनीं शोभिनीम्, अध्वरसम्पदमिव यज्ञसम्पत्तिमिव सुदक्षिणां सुष्ठु दक्षिणा दानं यस्यां तां पक्षेऽतिशयेन दक्षिणा सरला ताम्, सुराज्यश्रियमिव उत्तमराज्यलक्ष्मीमिव चारुवर्णसंस्थानाम् चारु सुन्दरं वर्णानां ब्राह्मणादीनां संस्थानं सम्यक् स्थितिर्यस्यां ताम् पक्षे चारुणी मनोहरे वर्णसंस्थाने रूपाकृती यस्यास्ताम्, वनराजिमिव वनपङ्क्तिमिव तिलकभूषितां बहुपत्रलतां च तिलकैः क्षुरकवृक्षैर्भूषितामलंकृताम् बह्व्यः पत्रलताः पर्णवल्लर्यो यस्यां तां च, पक्षे तिलकेन विशेषपत्रेण भूषितामलङ्कृतां बह्व्यः पत्रलताः कुङ्कुमद्रवरचितपत्रोपलक्षितलता यस्यास्तथाभूतां च, नक्षत्रराजिमिव तारातितिमिव रुचिरो मनोहरो हस्तो हस्तनामनक्षत्रं यस्यां ताम् उज्ज्वले देदीप्यमाने श्रवणमूले तन्नामनक्षत्रे यस्यां ताम् पक्षे रुचिरः सुन्दरो हस्तः पाणिर्यस्यास्ताम् उज्ज्वलमतिगौरं श्रवणमूलं कर्णमूलं यस्यास्तां हव्यवाहज्वालामिव पावकज्वालामिव काष्ठानां दारूणामङ्गारेण वर्धत इत्येवंशीला ताम्,

---

होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी दोषोपसंहारसुलभा—दोषोंके उपसंहार-संकोचसे सुलभ थी। अथवा सुर-सुन्दरीके समान थी क्योंकि जिस प्रकार सुरसुन्दरी साभरणजाता—आभरण सहित उत्पन्न होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी साभरणजाता—आभूषणोंके समूह सहित थी। अथवा मृगया—शिकारके समान थी क्योंकि जिस प्रकार मृगया वराहवधसम्पन्ना—शूकरके वधसे सम्पन्न होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी वराहवधसम्पन्ना—वराह यन्त्रके वधसे सम्पन्न हुई थी। अथवा मुनिजनोंकी मनोवृत्तिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार मुनियोंकी मनोवृत्ति चरणरक्ता—चारित्रमें अनुराग रखनेवाली होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी चरणरक्ता—पैरोंसे लालवर्ण वाली थी। अथवा लोककी आकृतिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार लोककी आकृति कृशतरविलग्ना अत्यन्त—कृशमध्यभागसे सहित है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी कृशतरविलग्ना—अत्यन्त पतली कमरसे सहित थी। अथवा शरद् ऋतुके समान थी क्योंकि जिस प्रकार शरद् ऋतु विमलाम्बरविराजिनी—निर्मल आकाशसे सुशोभित होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी विमलाम्बरविराजिनी—निर्मल वस्त्रोंसे सुशोभित थी। अथवा यज्ञ संपदाके समान थी क्योंकि जिस प्रकार यज्ञ संपदा सुदक्षिणा—उत्तम दक्षिणा सहित होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी सुदक्षिणा—अत्यन्त सरल प्रकृति की थी। अथवा सुराज्यलक्ष्मी—उत्तम-राज्यलक्ष्मीके समान थी क्योंकि जिस प्रकार सुराज्यलक्ष्मी चारुवर्णसंस्थाना—ब्राह्मणादि वर्णोंकी उत्तम स्थितिसे सहित होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी चारुवर्णसंस्थाना—सुन्दर रूप तथा आकृतिसे सहित थी। अथवा वनपंक्तिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार वनपंक्ति तिलकभूषिता—तिलक वृक्षोंसे विभूषित और बहुपत्रलता—अनेक पत्तों-

कुन्तलानामीदृशी कान्तिरलमलं संतमसकान्तिचिन्तामणिभिः। ईदृशं चेदाननमस्य प्रतिरूपकमेव कुमुदिनीपतिः। यदि भुजयोरीदृशं संस्थानमनयोरनुकरोत्येव कल्पशाखिशाखा। यद्ययमाभोगः स्तनयोः पीनयोः क्रीडागिरिरपरः कीदृशो भर्तुः' इति निभृतं वल्लभपरिचारिकाभिरनुरागिणीभिरभिष्टूयमानाम् अमन्दमृगमदामप्यकिरातगीतिम्, अलकोद्भासिनीमपि नवुतिसंभवाम्, मधु-

भूतिं भस्म भावयति उत्पादयतीत्येवंशीला तां च, पक्षे काष्ठाङ्गारच्छेदिनीं भस्मोत्पादिकां च, 'वृधु वृद्धौ' 'वृधु छेदने' इत्युभयोः श्लेषः 'भूतिर्भस्मनि संपदि' इत्यमरः, श्लेषोपमा। यदि चेत् कुन्तलानामलकानाम् ईदृशीत्थंभूता कान्तिर्दीप्तिस्तर्हि संतमसकान्तिचिन्तामणिभिः प्रगाढकृष्णवर्णचिन्तामणिभिः अलमलं व्यर्थं व्यर्थम्। चेद्यदि आननं मुखमीदृशम् इत्थंभूतं तर्हि कुमुदिनीपतिश्चन्द्रः अस्य आननस्य प्रतिरूपकमेव प्रतिनिधिरेव। यदि भुजयोर्बाह्वोः ईदृशं संस्थानमाकारस्तर्हि कल्पशाखिशाखा कल्पतरुविटपः अनयोर्भुजयोरनुकरोत्येव। यदि पीनयोः पीवरयोः स्तनयोः कुचयोः अयम् आभोगो विस्तारस्तर्हि भर्तुर्वल्लभस्य अपरोऽन्यः क्रीडागिरिः कीदृशः' इति निभृतं निश्चलम् अनुरागिणीभिः प्रीतियुक्ताभिः वल्लभपरिचारिकाभिः प्रियसेविकाभिः अभिष्टूयमानाम्, स्तुतिगोचरीक्रियमाणाम्, अमन्दोऽत्यधिको मृगाणां हरिणानां मदो गर्वो यस्यां तथाभूतामपि न किरातानां गीतिरित्यकिरातगीतिस्ताम्, किरातगीतिस्तु मृगाणाममन्दं मदमुत्पादयति सा तु न तथेति विरोधः पक्षे अमन्दः प्रचुरो मृगमदः कस्तूरी यस्यां तथाभूतामपि न विद्यते किरातस्येव म्लेच्छस्येव गीतिर्यस्यास्तां सभ्यजनगीतियुक्तामिति यावत् अथवा किरातो भूनिम्बः 'चिरायता' इत्यर्थः, तद्भिन्ना अकटुका मधुरा गीतिर्यस्याः सा 'किरातः पुंसि भूनिम्बे म्लेच्छस्वल्पशरीरयोः' इति विश्वलोचनः। अलकोद्भासिनीमपि अलकां तन्नामनगरीमुद्भासयतीत्येवंशीला तथाभूतामपि नवुतिसंभवां नवुतौ तन्नामनगर्यां संभव उत्पत्तिर्यस्यास्ताम्, याऽलकायामुत्पन्ना सा कथं नवुतौ संभवेदिति विरोधः

वाली लताओंसे सहित होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी तिलकभूषिता—चन्दनके तिलकसे भूषित और कस्तूरी आदिसे बनी हुई अनेक पत्र और लताओंसे युक्त थी। अथवा नक्षत्र पंक्तिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार नक्षत्रपंक्ति रुचिरहस्ता—देदीप्यमान हस्त नक्षत्रसे युक्त तथा उज्ज्वल श्रवणमूला—देदीप्यमान श्रवण और मूल नक्षत्रोंसे सहित होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी रुचिरहस्ता—सुन्दर हाथोंसे सहित तथा उज्ज्वल श्रवणमूला—सुन्दर कर्णमूलसे युक्त थी। अथवा अग्नि ज्वालाके समान थी क्योंकि जिस प्रकार अग्निज्वाला काष्ठांगारवर्धिनी—लकड़ीके अंगारको बढ़ानेवाली और भूतिभाविनी—भस्म उत्पन्न करनेवाली होती है उसी प्रकार लक्ष्मणा भी काष्ठांगारवर्धिनी—काष्ठांगारको छेदनेवाली और भूतिभाविनी—सम्पत्तिको उत्पन्न करनेवाली थी। 'यदि इसके केशोंकी ऐसी कान्ति है तो नीलमणियोंकी क्या आवश्यकता है? यदि इसका ऐसा मुख है तो चन्द्रमा इसका प्रतिरूपक ही है। यदि भुजाओंका ऐसा आकार है तो कल्पवृक्षकी शाखा इनका अनुकरण करती ही है। यदि स्थूल स्तनोंका यह विस्तार है तो फिर भर्ताके लिए दूसरा क्रीडागिरि कैसा है?' इस प्रकार अनुरागसे भरी भर्ताकी परिचारिकाएँ उसकी स्तुति कर रही थीं। वह अमन्दमृगमदा—बहुत भारी मृगके मदसे सहित होकर भी अकिरातगीति थी—भीलोंकी गीतिसे रहित थी। पक्षमें बहुत भारी कस्तूरीसे सहित होकर भी मधुरगीतिसे सहित थी। अलकोद्भासिनी—अलका—कुबेरपुरीको सुशोभित करनेवाली होकर भी नवुतिसंभवा—नवुतिसे उत्पन्न थी। पक्षमें चूर्ण कुन्तलोंसे सुशोभित होकर भी नवुति मातासे उत्पन्न थी। मधुपाश्लिष्ट-

मधुपाश्लिष्टगात्रामपि पवित्राम्, अक्रमक्षीणामिव कौमुदीम्, अभुजङ्गसङ्गमामिव चन्दनलताम्, अजडाकरप्रभवामिव पद्मलक्ष्मीं लक्ष्मणां पर्यणयत ।

§ २६३. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ लक्ष्मणालम्भो नाम दशमो लम्भः ।

■

परिहारपक्षेऽलकैश्चूर्णकुन्तलैरुल्लसते शोभते इत्येवंशीला तथाभूतामपि नवुतिस्तन्नाममाला संभवो निदानं यस्यास्ताम्, मधुपैर्मद्यपायिभिराश्लिष्टमालिङ्गितं गात्रं शरीरं यस्यास्तथाभूतामपि पवित्रां पूतामिति विरोधः स्पष्टः । परिहारपक्षे मधुपैः भ्रमरैराश्लिष्टगात्रामपि पवित्रां पूताम्, विरोधाभासः क्रमेण क्षीणा न भवतीत्यक्रमक्षीणा तथाभूतां कौमुदीमिव ज्योत्स्नामिव न विद्यते भुजङ्गस्य सर्पस्य सङ्गमो यस्यास्तथाभूतां चन्दनलतामिव मलयजवल्लीमिव, न विद्यते जडाकरो जलाकरः प्रभवः कारणं यस्यास्तथाभूतां पद्मलक्ष्मीं कमलकमलाम् । पक्षे अजडः प्रबुद्धः, आकरः श्रेष्ठपुरुषः प्रभवो यस्यास्ताम् 'उत्पत्तिस्थाननिवहश्रेष्ठेषु स्यात आकरः' इति विश्वलोचनः ।

§ २६३. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ लक्ष्मणालम्भो नाम दशमो लम्भः ।

■

गात्रा—मद्यपायी लोगोंसे आलिंगित शरीरा होकर भी पवित्र थी। पक्षमें भ्रमरोंसे आलिंगित शरीरा होकर भी पवित्र थी। वह उस चाँदनीके समान थी कि जो अक्रमक्षीणा—क्रम-क्रमसे क्षीण नहीं होती। पक्षमें कुलमर्यादासे रहित नहीं होती। अथवा उस चन्दन लताके समान थी कि जो अभुजंगसंगमा—साँपोंके संगमसे रहित थी। पक्षमें विटोंके संसर्गसे रहित थी। अथवा उस पद्मलक्ष्मीके समान थी कि जो अजडाकरप्रभवा—जलके समूहसे उत्पन्न नहीं हुई थी। पक्षमें अजड—प्रबुद्ध और आकर—श्रेष्ठ पुरुषसे उत्पन्न थी।

§ २६३. इस प्रकार श्रीमद्वादीभसिंहसूरि द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें लक्ष्मणा लम्भ नामका (लक्ष्मणाकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला) दसवाँ लम्भ पूर्ण हुआ ॥१०॥

■

एकादशो लम्भः

§ २६४. अथ निष्कण्टकाधिराज्योऽयं राजा कुसुमशरशरकाण्डपतनेन करपीडाक्षण एव कण्टकितप्रकोष्ठः प्रकामस्विन्नाङ्गुलिमन्यूनभाग्यां भोग्यामिमां राज्यश्रियं च प्राप्य प्रकृत्यनुगुणेन चतुरवचसा मधुरनिरीक्षणेन मनोहरचेष्टितेन यथेष्टभोगार्पणेन तयोः कन्दर्पं दर्पं च प्रसर्पयन्निरर्गलोपभोगस्यार्गलास्तम्भमभिनवतासंभावुकमवशीभावमुभयोरप्युत्सारयन् स्वैरममूभ्यां यथासौख्यं यथाभाग्यं यथायोग्यं कामसुखमन्वभवत् ।

§ २६५. एवं कान्तेः कार्तार्थ्यं कलानामेकायतनमाधिराज्यं माधुर्यस्य गुरुकुलं प्रसन्नतायां

---

§ २६४. अथेति—अथ लक्ष्मणापाणिग्रहणानन्तरम् निष्कण्टकं शत्रुरहितमधिराज्यं यस्य तथाभूतोऽयं राजा जीवंधर कुसुमशरस्य विषमायुधस्य शरकाण्डानां बाणानां पतनेन करपीडाक्षण एव पाणिग्रहणवेलायामेव कण्टकित कूर्परादधः प्रदेशो यस्य सः 'भुजबाहू प्रवेष्टो दो स्यात्कफोणिस्तु कूर्परः । अस्योपरि प्रगण्डः स्यात्प्रकोष्ठस्तस्य चाप्यधः ॥' इत्यमरः । प्रकाममत्यन्तं स्विन्ना स्वेदयुक्ता अङ्गुलयः करशाखा यस्यास्ताम्, अन्यून भाग्यं यस्यास्ताम् भोक्तुं योग्या भोग्या ताम् इमां लक्ष्मणां राज्यश्रियं राज्यलक्ष्मी च प्राप्य प्रकृत्यनुगुणेन स्वभावानुकूलेन पक्षे मन्त्र्यादिप्रधानवर्गानुरूपेण चतुरवचसा लज्जापहारिवैदग्धीपूर्णवचनेन पक्षे प्रीत्युत्पादकचातुर्यपूर्णवचनेन मधुरं स्नेहसुधां वर्षन् यन्निरीक्षणं तेन पक्षे सहानुभूतिपूर्णावलोकनेन मनोहरचेष्टितेन विभ्रमचेष्टया पक्षे औदार्ययुतव्यवहारेण यथेष्टमिच्छानुकूलं भोगस्य सुरतस्य पक्षे भोगानां पञ्चेन्द्रियविषयाणामर्पणेन दानेन तयोः लक्ष्मणाया राजश्रियश्च कन्दर्पं कामं दर्पं गर्वं च प्रसर्पयन् विस्तारयन् निरर्गलोपभोगस्य स्वच्छन्दोपभोगस्य अर्गलास्तम्भं बाधकस्तम्भभूतम् अभिनवतया नूतनत्वेन संभावुकं संभवशीलम् अवशीभावमस्वायत्तत्वम् उभयोरपि लक्ष्मणाया राज्यलक्ष्म्याश्च उत्सारयन् दूरीकुर्वन् स्वैरं स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा अमूभ्यामुक्ताभ्यां द्वाभ्यां सह यथासौख्यं सौख्यानुरूपं यथाभाग्यं भाग्यानुरूपं यथायोग्यं यथार्हं कामसुखम् अन्वभवत् ।

§ २६५. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण कान्तेर्दीप्तेः कार्तार्थ्यं कृतकृत्यत्वम्, कलानां चातुर्याणाम् एकायतनम् एकस्थानम्, माधुर्यस्य आधिराज्यं साम्राज्यम्, प्रसन्नतायाः प्रसादस्य गुरुकुलमभ्यासस्थानम्,

---

§ २६४. अथानन्तर जिनका साम्राज्य शत्रुओंसे रहित था तथा कामके बाण पड़नेसे जिनकी कोहनीका अधोभाग करपीड़नके समय ही रोमांचित हो उठा था ऐसे राजा जीवन्धर, अत्यधिक पसीनासे युक्त अंगुलियोंको धारण करनेवाली और बहुत भारी भाग्यसे युक्त भोगने योग्य इस लक्ष्मणाको तथा राज्यलक्ष्मीको पाकर प्रकृतिके अनुकूल (स्वभावके और पक्षमें प्रजाके अनुकूल) चतुर वचन, मधुर अवलोकन और इच्छानुसार भोग प्रदान करनेसे उन दोनोंके काम और गर्वको विस्तृत करते हुए तथा निर्बाध उपभोगके प्रतिबन्धके लिए अर्गला स्तम्भके समान एवं नवीनताके कारण होनेवाले दोनोंके अवशीभावको दूर करते हुए इच्छानुसार इन दोनोंके साथ सौख्य और भाग्यके अनुरूप यथायोग्य काम सुखका अनुभव करने लगे।

§ २६५. इस प्रकार जो कान्तिकी कृतार्थता, कलाओंका एक स्थान, माधुर्यका आधिराज्य, प्रसन्नताका गुरुकुल, उदारताकी निपुणता, दयाकी पराकाष्ठा, और प्रियवादिताकी

---

१. 'यौवनं विभ्रमाणाम्' इति पाठः, 'म' पुस्तके दिष्टिवृद्धि प्रियवादितायाः इत्यनन्तरमस्ति ।

यौवनं विभ्रमाणां वैदग्ध्यं वदान्यताया अवसानमनुक्रोशस्य दिष्टिवृद्धिं प्रियवादिताया गाढरक्तां पाणिपादाधरे भर्तरि च, अधिकवक्रां पक्ष्मवति कुन्तलकलापे पापसत्त्वे च, निकामतुङ्गां स्तनजघने मानसे च, अतिगम्भीरां नाभिमण्डले भाषिते च, विपुलां विलोचनयोर्नाम्नि च, दीर्घां भुजलतयोः प्रणतरक्षणे च, सूक्ष्मां महिम्नि करचरणरेखासु च, चारुवृत्तां जङ्घयोश्चरित्रे च, अत्यन्तमृद्वीं तनुलतायां गमने च, अतिदरिद्रां मध्ये नैर्गुण्ये च, आभिजात्येनाभिरूप्येण पावनकृत्येन पातिव्रत्येन च विशिष्टाम्, अष्टधा भिन्नामप्येकीभावं गतां देवीपरिषदं यथोचितं साकूतस्मितैरपाङ्ग-

विभ्रमाणां विकासानां यौवनं तारुण्यम्, वदान्यताया उदारताया वैदग्ध्यं नैपुण्यम्, अनुक्रोशस्य कृपायाः 'कृपानुकम्पानुक्रोशो हन्तोक्तिः करुणा दया' इत्यमरः अवसानं विरामम् प्रियवादिताया मधुरभाषिताया दिष्टिवृद्धिं भाग्यवृद्धिम्, पाणी च पादौ चाधरश्चेति पाणिपादाधरम् प्राण्यङ्गत्वादेकवचनम् तस्मिन् भर्तरि वल्लभे च गाढरक्ताम् अतिलोहितवर्णाम् पक्षे गाढमत्यन्तं रक्तामनुरागयुक्ताम्, पक्ष्मवति नयने कुन्तलकलापे अलकसमूहे पापसत्त्वे च पापप्राणिनि च अधिकवक्रामतिकुटिलाम् अधिकभङ्गुराम्, अतिनिर्दयाम्, स्तनजघने वक्षोजनितम्बे मानसे चेतसि च निकामतुङ्गामत्युन्नतामत्युदारां च, नाभिमण्डले तुन्दिकूपे भाषिते च कथने च अतिगम्भीराम् अत्यगाधाम् अतिप्रगल्भां च, विलोचनयोर्नयनयोः नाम्नि च विपुलां दीर्घां विशालां च, भुजलतयोर्बाहुवल्लर्योः प्रणतरक्षणे च दीर्घामायताम् औदार्यपूर्णां च, महिम्नि माहात्म्यं करचरणस्य रेखास्तासु च पाणिपादलेखासु सूक्ष्मामबुद्धिगोचराम् अल्पां च, जङ्घयोः प्रसृतयोः चरित्रे च सदाचारे च चारुवृत्तां सुन्दरवर्तुलां प्रशस्ताचारां च, तनुलतायां देहवल्ल्यां गमने च अत्यन्तमृद्वीम् अतिकोमलस्पर्शाम्, कोमलाङ्गत्वेन गमनासमर्थां च, मध्ये कटिप्रदेशे नैर्गुण्ये च अतिदरिद्रामतिकृशाम् अतिशून्यां च, आभिजात्येन कौलीन्येन आभिरूप्येण सौन्दर्येण पावनकृत्येन पवित्रकार्येण पातिव्रत्येन च सतीत्वेन च विशिष्टां सहिताम् अष्टधा अष्टप्रकारेण भिन्नामपि विभक्तामपि एकीभावम् एकत्वं गतामिति विरोधः पक्षे ऐकमत्यं गतां प्राप्तां देवीपरिषदं राज्ञीसमूहम् यथोचितं यथायोग्यम् आकूतं इच्चेष्टितं स्मितं मन्दहसितं

भाग्यवृद्धि रूप यौवनको धारण कर रही थी, जो हाथ पैर और अधरोष्ठ तथा भर्तामें अत्यधिक रक्ता—लालवर्ण (पक्षमें गाढ़ प्रीतिसे युक्त) थी। बिरूनियोंसे युक्त नेत्रमें; केशकलापमें एवं पापी जीवमें अधिक वक्र थी (नेत्रपक्षमें कटाक्षसे युक्त, केशकलापपक्षमें घुँघरालेपनसे सहित और पापी जीव पक्षमें कठोरतासे युक्त थी)। स्तन, जघन तथा मनमें अत्यन्त उन्नत थी (स्तन और जघन नितम्ब पक्षमें अत्यन्त स्थूलतासे युक्त और मन पक्षमें अत्यन्त उदार थी) नाभिमण्डल और भाषणमें गम्भीर थी (नाभिमण्डल पक्षमें गहराई तथा भाषण पक्षमें सारगर्भतासे सहित थी)। नेत्रों और नाममें विशाल थी। (नेत्र पक्षमें बड़े-बड़े नेत्रोंसे युक्त थी और नामपक्षमें ख्यातिसे युक्त थी)। बाहुलताओं तथा नम्रीभूत प्राणीकी रक्षा करनेमें दीर्घ थी (बाहुलता पक्षमें दीर्घभुजाओंसे सहित और नम्रीभूत प्राणीकी रक्षामें उदार एवं दीर्घकालतक संरक्षण देनेवाली थी)। महिमा तथा हाथ और पैरोंकी रेखाओंमें सूक्ष्म थी (महिमा पक्षमें अचिन्त्य महिमासे युक्त तथा हाथ पैरकी रेखाओंके पक्षमें सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार सूक्ष्म रेखाओंसे सहित थी)। जंघाओं और चरित्रमें चारुवृत्ता थी। (जंघापक्षमें सुन्दर और गोल पिंडरियोंसे सहित थी तथा चरित्र पक्षमें सुन्दर चारित्र—निर्दोष आचारको धारण करनेवाली थी)। शरीर लता और गमनमें अत्यन्त मृदु थी (शरीर लता पक्षमें अत्यन्त सुकुमार और गमनपक्षमें अत्यन्त असमर्थ थी)। कमर और निर्गुणतामें अत्यन्त दरिद्र थी (कमर पक्षमें अत्यन्त पतली कमरसे युक्त और निर्गुणताके पक्षमें निर्गुणतासे रहित—गुणोंसे युक्त थी। जो कुलीनता सुन्दरता पवित्रता और पातिव्रत्य धर्मसे विशिष्ट थी और जो आठ भेदों-

पातैः सनर्मसौख्यैर्विलासोक्तिविस्तरैः सविस्रम्भैरनुरागवर्णनैः सापदेशैरपसर्पणैः ससंभावनैर्माल्यविनिमयैः सभ्रुकुटीपुटैरलीककोपैः सप्रणामैः प्रकृतिप्रापणैः सापराधसंवरणैरुपधावनैः संजीवितसंशयैः शपथसाहसैः सापलापैः स्थैर्यस्थापनैः सानुमोदैः प्रतिवचोदानैः सावहित्थैः शुष्कनिर्बन्धैः साभिलाषैरनुनाथनैः सवञ्चनैः काञ्चीशैथिल्यैः सधाष्टर्यैरुपप्रलोभनैः सवैलक्ष्यैः प्रत्यवेक्षितैः सप्रमादोपन्यासैः स्खलितानुज्ञापनैः सत्रासैर्गोत्रव्यत्ययैः सदास्योपगमैः संरम्भमार्जनैः समार्गनिरोधैः प्रतिनिवर्तनैः सकौतूहलैराश्चर्यविलोकनाक्षेपैः सगद्गदिकास्तम्भैर्मिथ्याकथितैः सलज्जाजाड्यैरधोमुखस्थितैः

ताभ्यां सहितैः साकूतस्मितैः अपाङ्गपातैः कटाक्षपातैः, नर्मसौख्येन क्रीडासुखेन सहितैः सनर्मसौख्यैः विलासोक्तीनां विभ्रमभाषितानां विस्तरैः समूहैः, सविस्रम्भैः सविश्वासैः अनुरागवर्णनैः प्रीत्याख्यानैः सापदेशैः सव्याजैः अपसर्पणैः पश्चाद्गमनैः, ससंभावनैः ससम्मानैः माल्यानां स्रजां विनिमयैरादानप्रदानैः, भ्रुकुटीपुटीसहितैः सभ्रुकुटीपुटैः अलीककोपैः कृत्रिमक्रोधैः सप्रणामैः सनमस्कारैः प्रकृतिप्रापणैः स्वस्थीकरणैः, सापराधसंवरणैरपराधावरणसहितैः उपधावनैः समीपगमनैः, सजीवितसंशयैः प्राणसंशयसहितैः, शपथानां समयानां साहसैः, अपलापेन सिद्धास्वीकारेण सहितैः सापलापैः स्थैर्यस्थापनैः दार्ढ्यप्रदर्शनैः सानुमोदैरनुमतिसहितैः प्रतिवचोदानैः प्रत्युत्तरप्रदानैः, सावहित्थैः अवहित्थासहितैः शुष्कनिर्बन्धैः नीरसहठैः, अवहित्थालक्षणमिदम्—'भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था। व्यापारान्तरसक्त्यन्यथावभाषणविलोकनादिकरी ॥' साभिलाषैः वाञ्छायुतैः अनुनाथनैर्याचनैः, सवञ्चनैः प्रतारणायुतैः काञ्चीशैथिल्यैः मेखलाशिथिलीकरणैः, सधाष्टर्यैः धृष्टत्वोपेतैः उपप्रलोभनैः लोभप्रदर्शनैः, सवैलक्ष्यैः सलज्जैः प्रत्यवेक्षितैः प्रत्यवलोकनैः, प्रमादस्यानवधानताया उपन्यासेन सहितैः सप्रमादोपन्यासैः स्खलितस्य त्रुटेरनुज्ञापनानि सूचनानि तैः, सत्रासैः सभयैः गोत्रव्यत्ययैः नामव्यत्ययैः, दास्यस्य दासभावस्योपगमेन स्वीकारेण सहितैः संरम्भमार्जनैः अपराधशुद्धिभिः, मार्गनिरोधेन सहितैः समार्गनिरोधैः प्रतिनिवर्तनैः गत्वा पुनरायातैः, सकौतूहलैः कुतूहलसहितैः आश्चर्यविलोकनाक्षेपैः विस्मयपूर्णदृष्टिविक्षेपैः, गद्गदिकायाः स्तम्भेन रोधेन सहितैः मिथ्याकथितैः मृषाप्रलापैः, लज्जाजाड्याभ्यां त्रपाजडत्वाभ्यां सहितैः, अधोमुखस्थितैर्नीचैर्वदनस्थितैः सानुशयैः सपश्चात्तापैः, अनुपदप्रस्थापनैः पश्चात्प्रस्थापनैः, ससमाह्वानैः समाह्वानसहितैः, क्रीडनसंकल्पनैः भावस्याभिनयेन सहितैः सभावाभिनयैः प्रतारणप्रावीण्यैः वञ्चनाकौशलैः रहस्यस्यैकान्तवार्तायाः संज्ञया संकेतेन

में विभक्त होनेपर भी एकीभाव—एकता (पक्षमें प्रेमकी अधिकतासे अभिन्नता) को प्राप्त थी ऐसी देवियोंकी परिषद्को—आठों रानियोंके समूहको यथायोग्य विशिष्ट अभिप्राय पूर्वक की हुई मन्द मुसकानसे सहित कटाक्षपातसे, क्रीड़ाजन्य सुखसे सहित विलासपूर्ण शब्दोंके समूहसे, विश्वास सहित अनुरागके वर्णनसे, किन्हीं बहानोंके साथ पीछे हटनेसे, आदरसहित मालाओंकी बदलीसे, भौंहोंके साथ मिथ्याक्रोधसे, प्रणाम सहित स्वस्थताको प्राप्त करानेसे, अपराध छिपानेके साथ समीपमें पहुँचनेसे, जीवनके संशयसे सहित शपथोंके साहससे, अपलापके साथ दृढ़ताके स्थापनसे, हर्ष सहित प्रत्युत्तर देनेसे, भय गौरव तथा लज्जा आदिसे हर्ष आदिके आकारको छिपाने रूप अवहित्थाके साथ नीरस हठसे, अभिलाषा सहित बार-बार की हुई याचनासे, छलके साथ की हुई करधनीकी शिथिलतासे, धृष्टताके साथ किये हुए प्रलोभनोंसे, लज्जापूर्वक किये हुए प्रत्यवलोकनसे, प्रमादको प्रकट करते हुए गलतीकी सूचनासे, भयसहित नाम स्खलनसे, दासताको स्वीकृत करते हुए क्रोधको दूर करनेसे, मार्ग रोकनेके साथ किये हुए प्रतिनिवर्तनसे, कौतूहलके साथ किये हुए आश्चर्यपूर्ण अवलोकनके आक्षेपसे, गद्गद वाणीको रोकते हुए मिथ्या कथनसे, लज्जा और जड़ताके साथ नीचा मुख कर स्थित

सानुशयैरनुपदप्रस्थापनैः समभाह्वानैः क्रीडनसंकल्पनैः[1] सभावाभिनयैः प्रतारणप्रावीण्यैः सरहस्यसंज्ञैराशोत्पादनैः सरोमाञ्चैरवतंसकमलकेलिताडनानुभावैश्च रमयन्यथाकामं कामसौख्यमसक्त एवान्वभवत्

§ २६६. तथा हि—असौ राजा वाह्यममित्रजातमध्रुवमतिविप्रकृष्टं चेत्यात्मनिष्ठमरिषड्वर्गं व्यजेष्ट। असहाया नीतिः कातर्यावहा शौर्यं च श्वापदचेष्टितमित्यभीष्टसिद्धिमन्विताभ्याममूभ्यामाकाङ्क्षीत्। सप्रणिधानं प्रहितप्रणिधिनेत्रः शत्रुमित्रोदासीनानां मण्डलेषु तैरज्ञातमप्याज्ञासीत्। राज्ञां रात्रिदिवविभागेषु यदनुष्ठेयमिदमित्थमनिर्बन्धमन्वतिष्ठत्। जातमपि सद्यः शमयितुं शक्तोऽपि सदा प्रबुद्धतया प्रतीकारयोग्यं प्रकृतिवैराग्यं नाजीजनत्। किं बहुना। राजन्वतीमव-

सहितास्तथाभूतास्तैः आशोत्पादनैः आशायास्तृष्णाया उत्पादनानि तैः, सरोमाञ्चैः सपुलकैः अवतंसकमलानां कर्णाभरणकमलानां केलिताडनस्यानुभावास्तैश्च रमयन् क्रीडयन् यथाकामं यथेच्छं कामसौख्यं मदनसुखम् असक्त एवानासक्त एवान्वभूत् अनुभवति स्म।

§ २६६. तथाहि—असौ राजा जीवकः वाह्यं वाह्यकम् अमित्रजातं शत्रुसमूहम् अध्रुवमनित्यम् अतिविप्रकृष्टं च दूरतरवर्ति च, इति हेतोः आत्मनिष्ठं स्वस्थितम् षण्णां वर्गः षड्वर्गः अरीणां षड्वर्गं इत्यरिषड्वर्गस्तं व्यजेष्ट जितवान्। कामः क्रोधो लोभो मोहो मदो मात्सर्यं चेत्यरिषड्वर्गः असहाया केवला नीतिः कातर्यावहा भीरुत्वावहा शौर्यं च केवलं श्वापदचेष्टितं व्याघ्रादिचेष्टितम्' इति हेतोः अन्विताभ्यां सहिताभ्याम् अमूभ्यां नीति-शौर्याभ्याम् अभीष्टसिद्धिम् आकाङ्क्षीत् ववाञ्छ। सप्रणिधानं ससमरणं यथा स्यात्तथा प्रहितं प्रणिधिरेव नेत्रं दूतं येन तथाभूतः सन् शत्रुश्च मित्रं च उदासीनश्चेति शत्रुमित्रोदासीनास्तेषां मण्डलेषु राष्ट्रेषु तैस्तत्रत्यनृपतिभिः अज्ञातमपि अबुद्धमपि अज्ञासीत् बुध्यते स्म। राज्ञां नृपतीनां रात्रिंदिवविभागेषु-अहर्निशविभागेषु यत् कार्यम् अनुष्ठेयं कर्तुं योग्यं इदं कार्यम् इत्थमनेन प्रकारेण अनिर्बन्धं हठरहितं यथा स्यात्तथा अन्वतिष्ठत् अकार्षीत्। जातमपि समुत्पन्नमपि प्रकृतिवैराग्यं मन्त्र्यादिप्रकोपं सद्यो झगिति शमयितुं शान्तं कर्तुं शक्तोऽपि समर्थोऽपि सदा शश्वत् प्रबुद्धतया जागरूकतया प्रतीकारयोग्यं प्रतीकारार्हं नाजीजनत्। किं बहुना। अवनीं भूमिं राजन्वतीं प्रशस्तपार्थिवयुक्ताम्

होनेसे, पश्चात्तापके साथ पीछे भेजनेसे, आह्वानके साथ क्रीड़ाके संकल्पसे, सद्भावका अभिनय करते हुए धोखा देनेकी कुशलतासे, रहस्यपूर्ण संकेतोंके साथ किये हुए आशाओंके उत्पादनसे और रोमांचोंसे सहित कर्णाभरणके कमलसे क्रीड़ापूर्वक किये हुए ताड़नके अनुभवसे रमण कराते हुए जीवन्धरस्वामी अनासक्त रहकर ही इच्छानुसार काम सुखका अनुभव करते थे।

§ २६६. वे सोचते थे कि वाह्य शत्रुओंका समूह तो अस्थायी तथा अत्यन्त दूरवर्ती है—अपनेसे दूर रहनेवाला है। अतः उन्होंने अपने भीतर रहनेवाले काम क्रोध आदि छह अन्तरंग शत्रुओंके समूहको जीता था। केवल नीति कातरताको धारण करनेवाली है और केवल शूरता जंगली जानवरोंकी चेष्टा है इसलिए इन दोनोंको साथ मिलाकर ही वे अभीष्ट सिद्धिको करना चाहते थे। बड़ी सावधानीके साथ गुप्तचर रूपी नेत्रोंको प्रेरित करनेवाले जीवन्धरस्वामी शत्रु मित्र और उदासीन राजाओंके देशोंमें उनके द्वारा अज्ञात समाचारको भी जान लेते थे। रात-दिनके विभागोंमें राजाओंके करने योग्य जो कार्य होता है उसे वे 'यह इसी तरह करना चाहिए' इस हठसे रहित होकर पूर्ण करते थे। उत्पन्न होते ही शीघ्र ही नष्ट करनेमें समर्थ होकर भी सदा जागरूक रहनेके कारण वे प्रजाके भीतर ऐसी विरागता उत्पन्न नहीं करते थे जिसका कि उन्हें प्रतिकार करना पड़े। अधिक क्या कहा जाय ? उन्होंने

१. म० स सद्भावा।

नीमतानीत् ।

§ २६७. एवमनन्यसुलभानन्योन्याबाधितान् धर्मार्थकामान् संचिन्वति तस्मिन्प्रजापतौ, प्रजाश्च तदधीनवृत्तयः सादरैः करप्रदानैः सानुशयैः प्रमादस्खलितैः सभयैराज्ञानुष्ठानैः सविनयैर्गुरुजनानुवर्तनैः सनिर्बन्धैश्चारुवृत्तैः सविचारैः प्रारम्भैः सफलैरखिलकृत्यैः[1] सपरप्रयोजनैः साधुचेष्टितैः सदानपूजैरुत्सवोपक्रमैः समेतास्तं राजानमनर्जनक्लेशमर्थजातमजन्मोपयुक्तं[2] पितरमनिमेषोन्मेषं[3] नेत्रमनभिवर्धनायासं सुतमाबद्धमूर्तिमिव विश्वासमवनीतलसंचारमिव सुरतरुमात्मप्राणानामिव पुञ्जीभावममन्यन्त ।

§ २६८. तथा गात्रबद्ध इव क्षात्रधर्मेऽस्मिन्धर्मोत्तरं सौख्योत्तरं च धरातलमवति

भतानीत् । 'राजन्वान् सौराज्ये' इति मत्वर्थीये नलोपाभावो निपातनात् ।

§ २६७. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण तस्मिन् प्रजापतौ जीवंधरमहाराजे अन्येषां सुलभा न भवन्तीत्यनन्यसुलभास्तान्, अन्योऽन्यं परस्परमबाधितास्तान् धर्मश्च अर्थश्च कामश्चेति धर्मार्थकामास्तान् त्रिवर्गं संचिन्वति सति तदधीना नृपाधीना वृत्तिराजीविका यासां तथाभूताः प्रजाश्च लोकाश्च सादरैः ससन्मानैः करप्रदानै राजस्वदानैः, सानुशयैः सपश्चात्तापैः प्रमादस्खलितैः प्रमादेन स्खलितानि तैः अनवधानजन्यत्रुटिभिः, सभयैः सत्रासैः आज्ञानुष्ठानैः आदेशानुपालनैः, सविनयैः सादरैः गुरुजनानुकूलाचरणैः सनिर्बन्धैः साभिरुचिभिः चारुवृत्तैः शुभाचारैः सविचारैः सविमर्शैः प्रारम्भैः कार्यारम्भैः, सफलैः सार्थकैः अखिलकृत्यैर्निखिलकार्यैः सपरप्रयोजनैः परार्थसहितैः साधुचेष्टितैरुत्तमचेष्टितैः सदानपूजैः दानार्चासहितैः उत्सवोपक्रमैः उत्सवप्रारम्भैः समेताः सहिताः सत्यः तं राजानं जीवंधरं न विद्यतेऽर्जनक्लेशो यस्य तत् अर्थजातं धनसमूहम्, जन्मन्युपयुक्तो न भवतीत्यजन्मोपयुक्तस्तं पितरं जनकम् न विद्येते निमेषोन्मेषौ यस्य तत् नेत्रं नयनम्, न विद्यतेऽभिवर्धनस्य पोषणस्यायासः खेदो यस्य तं सुतं पुत्रम्, आबद्धा मूर्तिर्यस्य तथाभूतं मूर्तियुक्तं विश्वासं प्रत्ययमिव, अवनीतलसंचारं पृथ्वीतलसंचारं सुरतरुमिव कल्पवृक्षमिव, आत्मप्राणानां स्वप्राणानां पुञ्जीभावमिव राशीभावमिव अमन्यन्त जानन्ति स्म ।

§ २६८. तथेति—तथा तेन प्रकारेण गात्रबद्धे सशरीरे क्षात्रधर्म इव अस्मिन् सम्राजि जीवंधरे धर्मोत्तरं धर्मप्रधानं, धनोत्तरं धनपरिणामं, सौख्योत्तरं च सुखपरिपाकं च यथा स्यात्तथा धरातलं भूतलम्

पृथिवीको योग्य राजासे युक्त कर दिया था ।

§ २६७. इस प्रकार जब राजा जीवन्धर अनन्य सुलभ, और परस्परमें बाधा न करनेवाले धर्म, अर्थ एवं कामका संचय कर रहे थे तब उनके अधीन रहनेवाली प्रजा बड़े आदरके साथ उन्हें लगान देती थी, यदि प्रमाद वश कुछ भूल हो जाती थी तो उसका बहुत पश्चात्ताप करती थी, डरती-डरती आज्ञाका पालन करती थी, विनयपूर्वक गुरुजनोंके अनुकूल प्रवृत्ति करती थी, प्रतिज्ञापूर्वक सदाचारका पालन करती थी, विचारपूर्वक कार्यका प्रारम्भ करती थी, उसके समस्त आचार सफल रहते थे, उसकी उत्तम चेष्टाएँ दूसरोंके प्रयोजनसे सहित होती थीं, और उसके उत्सवोंकी सब तैयारियाँ दान तथा पूजासे सहित होती थीं। इन सब कार्योंसे सहित प्रजा उन्हें उपार्जनके क्लेशसे रहित धनसमूह, जन्ममें उपयोग न देनेवाले पिता, टिमकारसे रहित नेत्र, पालन-पोषणके खेदसे रहित पुत्र, मूर्तिधारी विश्वासके समान, पृथिवी-तलपर चलने-फिरनेवाले कल्पवृक्षके समान अथवा अपने प्राणोंकी राशिके समान मानती थी ।

§ २६८. तदनन्तर शरीरधारी क्षात्रधर्मके समान जब सम्राट् जीवन्धरस्वामी धर्म,

---

१. म० वृत्तैः । २. ग० अजननोपयुक्तम् । ३. क० ख० ग० भातरं पितरम् ।

सम्राजि, वत्ससाम्राज्यसमवलोकनसफलीकृतजीविता विविधविहितपूर्वोपकारिसर्वजनतृप्तिः पुनरतृप्तिकारिण्यविचारितरम्ये किंपाकफलप्रख्ये विषयसौख्ये विरक्ता सती विजयामहादेवी सस्नेहं सदयं साश्वासं सनिर्बन्धं सवैराग्यं सावश्यकं च समादिश्य काश्यपीपतिनापि कथंचिद-नुमतैव सुनन्दया समं सुतयोः स्नुषाणां पुरौकसां च[1] सीदतां प्राव्राजीत् । प्रव्रज्यामनयोरुपश्रुत्य तदाश्रमस्थानं राज्याश्रमगुरुरपि गुरुतरविषादविह्वलमतिः सपदि समभ्येत्य समुद्वीक्ष्य दीक्षिते जनयित्र्यौ कर्तव्याभावादतिमात्रं विषीदन्मातृभ्यां विशिष्टं तत्संयमं विश्राणितवत्या श्रमणीश्रेष्ठया प्रपञ्चितैर्धर्मवचोभिः किंचिदिवाश्वास्यमानः पुनः पुनः प्रगृह्य पादं प्रसवित्र्योः 'अत्र नगर्या-

---

अवति सति वत्ससाम्राज्यस्य पुत्राधिराज्यस्य समवलोकनेन दर्शनेन सफलीकृतं जीवितं यस्यास्तथाभूता, विविधं नैकप्रकारं यथा स्यात्तथा विहिता कृता पूर्वोपकारिणां सर्वजनानां निखिलनराणां तृप्तिर्यया सा विजयामहादेवी पुनरनन्तरम् तृप्तिं न करोतीत्येवंशीलेऽतृप्तिकारिणि अविचारितं सत् रम्यमिति अविचारित-रम्यं तस्मिन् आपातमनोहरे किंपाकफलप्रख्ये महाकालफलतुल्ये 'किंपाकस्तु महापाकफले मूर्खे च' इति विश्वलोचनः, विषयसौख्ये पञ्चेन्द्रियविषयशर्मणि विरक्ता गतानुरागा सती सस्नेहं सानुरागं सदयं सानु-कम्पं साश्वासं ससान्त्वनम्, सनिर्बन्धं साभिरुचि, सवैराग्यं वैराग्यसहितं सावश्यकं च आवश्यकसहितं च समादिश्य समुपदिश्य काश्यपीपतिनापि राज्ञा जीवंधरेणापि कथंचित् केनापि प्रकारेण अनुमतेन आज्ञां प्राप्तैव सुनन्दया गन्धोत्कटपत्न्या समं सार्धं सुतयोः जीवंधरनन्दाढ्ययोः स्नुषाणां पुत्रवधूनां पुरौकसां च नागरिकाणां च सीदतां दुःखीभवतां सतां 'षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी प्राव्राजीत् संन्यस्तवती । अनयोः विजया-सुनन्दयोः प्रव्रज्यां दीक्षाम् उपश्रुत्य समाकर्ण्य गुरुतरविषादेन विशालखेदेन विह्वला दुःखिता मतिर्यस्य तथाभूतो राज्यमेवाश्रमो राज्याश्रमस्तस्य गुरुरपि जीवंधरोऽपि तयोर्विजयासुनन्दयोराश्रमस्थानं तपोवनं सपदि शीघ्रं समभ्येत्य गत्वा दीक्षा संजाता ययोस्तथाभूते दीक्षिते जनयित्र्यौ मातरौ समुद्वीक्ष्य दृष्ट्वा कर्तव्याभावात् उपायाभावात् अतिमात्रं प्रभूततरं विषीदन् विषण्णो भवन् मातृभ्यां जननीभ्यां सम्प्रदाने चतुर्थी विशिष्टमसाधारणं तत्संयमं तद्योग्यसंयमम् आर्यिकाव्रतमित्यर्थः विश्राणितवत्या दत्तवत्या श्रमणीषु साध्वीषु श्रेष्ठा तया श्रमणीश्रेष्ठया प्रपञ्चितैर्विस्तारितैः धर्मवचोभिः धर्मपूर्णवचनैः किंचिदिव मनागिव आश्वास्यमानः संबोध्यमानः पुनः पुनर्भूयोभूयः प्रसवित्र्योः श्रेष्ठमात्रोः पादं चरणं प्रगृह्य वन्दित्वेत्यर्थः

धन और सुखपूर्वक पृथिवीतलकी रक्षा कर रहे थे तब पुत्रका साम्राज्य देखनेसे जिसका जीवन सफल हो गया था, पहले उपकार करनेवाले समस्त लोगोंको जिसने नाना प्रकारसे सन्तोष उत्पन्न कराया था, और अतृप्तिकारी, अविचारित रम्य, तथा किंपाकफल तुल्य विषय सम्बन्धी सुखमें जो विरक्त हो रही थी ऐसी विजया महादेवी स्नेह, दया, आश्वासन, दृढ़ता वैराग्य और आवश्यकके साथ अच्छी तरह आदेश दे किसी तरह राजा जीवन्धरके द्वारा अनुमति प्राप्त कर सुनन्दाके साथ-साथ दीक्षित हो गयी। यद्यपि दीक्षाके समय दोनों पुत्र, सब पुत्रवधुएँ और नगरवासी लोग दुःखी हो रहे थे तथापि उसने उनकी अपेक्षा नहीं की। राज्याश्रमके गुरु जीवन्धरस्वामीने ज्योंही इन दोनोंकी दीक्षाका समाचार सुना त्योंही अत्य-धिक विषादसे विह्वलचित्त होकर वे उनके आश्रममें पहुँचे। वहाँ दीक्षा धारण करनेवाली दोनों माताओंको देखकर ये अधिक विषाद करने लगे। वहाँ दोनों माताओंके लिए विशिष्ट संयम प्रदान करनेवाली गणिनीने अपने द्वारा प्रपञ्चित धर्मके वचनोंसे उन्हें उपदेश दिया जिससे कुछ-कुछ सान्त्वनाको प्राप्त होकर उन्होंने माताओंके बार-बार चरण छुए और यह

---

१. क० ख० ग० 'च' नास्ति ।

मासिका कर्तव्या । न च स्मर्तव्यान्यत्र यात्रा' इति ययाचे । ताभ्यां च तदीयप्रश्रयबलेन 'तथा' इति प्रतिश्रुते, विश्रुतवीर्यः स विश्वंभरापतिरम्बावियोगादम्बकविहीन इव दीनवृत्तिः प्रतिनिवर्त्य सप्रणामं निवृत्याश्रमान्निजावसथमशिश्रियत् ।

§ २६६. तदनु कालपाकेन स्वपाकेन शान्तस्वान्तरुजः कान्ताभिरमा निर्विशतस्त्रिदशार्हसौख्यं त्रिंशत्संवत्सरसंमिते समये समतिक्रान्ते, क्रमादात्मजेष्वप्यात्मनिर्विशेषेषु कलागुणैः कवचहरतां निविशमानेषु, कदाचिन्नितान्तक्षीबवसन्तबन्धुर्वसन्तसमयावतारः समधुक्षयदस्य जलक्रीडोद्योगम् ।

§ २७०. अनन्तरमानायिभिः संशोधितां स्फटिकतुलितपयःपूरां स्फुटितारविन्दवृन्दनिष्य-

'अत्र नगर्यां राजपुर्याम् आसिका निवासः कर्तव्या विधातव्या । अन्यत्र नगर्यां यात्रा न च स्मर्तव्या' इति ययाचे । ताभ्यां च तदीयप्रश्रयबलेन तदीयविनयबलेन 'तथा' इति प्रतिश्रुते प्रतिज्ञाते सति विश्रुतं प्रसिद्धं वीर्यं यस्य तथाभूतः स विश्वंभरापतिर्नृपतिः अम्बावियोगात् मातृविरहात् अम्बकविहीन इव नेत्ररहित इव दीनवृत्तिः सन् सप्रणामं सनमस्कारं प्रतिनिवर्त्य प्रत्यावर्त्य ते इति शेषः आश्रमात्तपोवनात् निवृत्य प्रत्यावृत्य निजावसथं स्वसदनम् अशिश्रियत् ।

§ २६९. तदन्विति—तदनु तदनन्तरं कालपाकेन समयपाकेन च समये व्यतीते सति स्वोपयोगस्य परिवर्तनाच्चेत्यर्थः शान्ता स्वान्तरुक् मनोव्यथा यस्य तथाभूतस्य कान्ताभिः प्रियाभिः अमा साकं त्रिदशार्हसौख्यं देवोचितसुखं निर्विशतो भुञ्जानस्य अस्य राज्ञः त्रिंशत्संवत्सरसंमिते त्रिंशद्वर्षप्रमिते समयेऽनेहसि समतिक्रान्ते व्यपगते सति, क्रमात् आत्मनिर्विशेषु स्वतुल्येषु आत्मजेषु पुत्रेष्वपि कलागुणैः कला एव गुणास्तैश्चातुरीगुणैः कवचहरतां कवचधारणयोग्यावस्थां निविशमानेषु प्रतिपन्नेषु कदाचिज्जातुचित् नितान्तमत्यन्तं क्षीबो मत्तो वसन्तबन्धुर्मदनो यस्मिन् तथाभूतो वसन्तसमयावतारः ऋतुराजप्रारम्भः जलक्रीडोद्योगं जलकेलिप्रयत्नं समधुक्षयत् वर्धयामास ।

§ २७०. अनन्तरमिति—अनन्तरं तदनु आनायिभिर्जालधारैः संशोधितां निर्जन्तूकृताम् स्फटिकतुलितः स्फटिकसदृशः पयःपूरो यस्यास्तां, स्फुटितानि विकसितानि यान्यरविन्दानि तेषां वृन्दा-

याचना की कि 'इसी नगरीमें आपको रहना चाहिए। अन्यत्र जानेका स्मरण भी नहीं करना चाहिए'। उनके विनयबलसे माताओंने 'तथास्तु' कहकर जब वहीं रहना स्वीकृत कर लिया तब प्रसिद्ध पराक्रमके धारक जीवन्धर स्वामी माताओंके वियोगसे नेत्ररहितके समान दीनवृत्ति हो प्रणामपूर्वक आश्रमसे लौटकर अपने घर आये।

§ २६९. तदनन्तर समयके परिमाणसे जिनके हृदयकी पीड़ा स्वयं ही शान्त हो गयी थी ऐसे जीवन्धर स्वामीके स्त्रियोंके साथ देवोंके योग्य सुखका उपभोग करते हुए जब तीस वर्ष प्रमाण समय निकल गया और क्रम-क्रमसे कला तथा गुणोंके द्वारा अपनी समानताको धारण करनेवाले उनके पुत्र जब कवच धारण करनेके योग्य अवस्थाको प्राप्त हो गये तब किसी समय अत्यन्त उन्मादको प्राप्त हुए कामसे युक्त वसन्त ऋतुके प्रारम्भने इनकी जलक्रीडाके उद्योगको उत्तेजित किया।

§ २७०. तत्पश्चात् जालको धारण करनेवाले धीवरोंने जिसे शुद्ध किया था—हिंसक जल-जन्तुओंसे रहित किया था, जिसके जलका प्रवाह स्फटिकके तुल्य था, जो खिले हुए

न्दिमधुबिन्दुसंदोहचन्द्रकिताममलस्फटिकशिलाघटितसोपानां प्लवमानराजहंसफेनिलतरङ्गां कूजत्कारण्डवमिथुनाधिष्ठितकूलकेतकीकुसुमधूलिधूसरपुलिनामनिभृतमीनाहतोत्पलगर्भप्रतिबद्धषट्पदझंकृतमुखरामुपरितटोद्यानवाटिकागूढां क्रीडासरसीं समदशकुन्तकुलकूजितैरिवाभिहितालोकशब्दः समवगाहमानमानिनीनिकरकरास्फालनरयतीरगामिलहरीप्रवाहेणेव प्रतिगृह्यमाणः समवगाह्य वनकरीव करिणीभिः करभोरुभिरुपलक्षितः क्षालिताङ्गरागसंपर्कसकुङ्कुमसलिलं सार्द्रदुकूलाश्लेषस्पष्टदृष्टयोषिदवयवाकृष्यमाणात्मलोचनं सुलोचनालोचनकुचसारूप्यसाक्षाल्लक्षणसंभावनीयविकचमुकुल-

स्समूहान्निष्यन्दिनो ये मधुबिन्दवो मकरन्दशीकरास्तेषां संदोहेन चन्द्रकितां व्याप्ताम्, अमलाभिर्निर्मलाभिः स्फटिकशिलाभिः श्वेतामदृषद्भिः घटितानि रचितानि सोपानानि श्रेणयो यस्यास्ताम्, प्लवमानैस्तरद्भी राजहंसैः फेनिलाः सफेना तरङ्गा भङ्गा यस्यास्ताम्, कूजत् शब्दायमानं यत्कारण्डवमिथुनं पक्षिविशेषयुगलं तेनाधिष्ठिता युक्ता या कूलकेतकी तटकेतकी तस्याः कुसुमधूल्या पुष्पपरागेण धूसरः पुलिनः सैकतं यस्यास्ताम् 'तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयम्' इत्यमरः, अनिभृताश्चपला ये मीना मत्स्यास्तैराहतानां ताडितानामुत्पलानां नीलकमलानां गर्भे मध्ये बद्धा रुद्धा ये षट्पदा भ्रमरास्तेषां झङ्कृतेन गुञ्जनरवेण मुखरां शब्दायमानाम्, उपरि उपरिस्थिताभिः तटोद्यानवाटिकाभिः तीरोपवनवनीभिर्गूढा तिरोहिता ताम् क्रीडासरसीं केलिकासारम् 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः, समदाः सदर्पा ये शकुन्ताः खगास्तेषां कुलस्य कूजितैरव्यक्तपक्षिध्वनिभिः अभिहितः समुच्चरित आलोकशब्दो जयजयशब्दो यस्य तथाभूतः, समवगाहमानानां प्रविशन्तीनां मानिनीनां नारीणां निकरस्य समूहस्य करास्फालनरयेण हस्तास्फालनवेगेन तीरगामिन्यस्तटोपसर्पिण्यो या लहर्यस्तरङ्गास्तासां प्रवाहेण प्रतिगृह्यमाण इव अग्रमागत्य सत्क्रियमाण इव समवगाह्य प्रविश्य करिणीभिरुपलक्षितो वनकरीव वनगज इव करभोरुभिः सुन्दरीभिरुपलक्षितो युक्तः सन् क्षालितो धौतो योऽङ्गरागो विलेपनं तस्य संपर्केण संसर्गेण सकुङ्कुमं सकाश्मीरं सलिलं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, सार्द्रस्य जलक्लिन्नस्य दुकूलस्य क्षौमस्याश्लेषेण स्पष्टं यथा स्यात्तथा दृष्टा विलोकिता ये योषितां स्त्रीणाम् अवयवाः पीनस्तननितम्बादयस्तैराकृष्यमाणे हठान्नीयमाने आत्मलोचने यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा, सुलोचनानां वल्लभानां लोचनकुचस्य नयनवक्षोजस्य यत् सारूप्यं सादृश्यं तस्य

कमल-समूहसे झरनेवाली मधुबिन्दुओंके समूहसे चन्द्रकित थी—चन्द्रकाकार छपकोंसे युक्त थी, निर्मल स्फटिककी शिलाओंसे जिसकी सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, जिसकी लहरें तैरते हुए राजहंसोंसे फेन युक्त हो रही थीं, शब्द करनेवाले कारण्डव पक्षियोंके युगलसे अधिष्ठित तटवर्ती केतकीके फूलोंकी परागसे जिसका तट मटमैला हो रहा था, चपलतापूर्वक मछलियोंके द्वारा ताडित नील कमलके भीतर रुके हुए भ्रमरोंकी झंकारसे जो शब्दायमान हो रही थी तथा जो ऊपर तटपर स्थित बाग-बगियोंसे छिपी हुई थी ऐसी क्रीड़ा-सरसीमें प्रवेश कर उन्होंने अत्यधिक क्रीड़ा की। क्रीड़ा-सरसीमें प्रवेश करते समय जो वहाँ मदोन्मत्त पक्षियोंके समूह शब्द कर रहे थे उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो जीवन्धर स्वामीका जय-जय शब्द ही उच्चरित हो रहा था। प्रवेश करनेवाले स्त्रीसमूहके हाथोंके आस्फालनसे उत्पन्न वेगसे तटपर जो तरंगोंका प्रवाह आ रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो तरंगोंका वह प्रवाह उनकी अगवानी ही कर रहा हो। जिस प्रकार जंगलका हाथी जंगलकी हथिनियोंके साथ किसी सरोवरमें प्रवेश करता है उसी प्रकार उन्होंने भी करभ—कलाईसे लेकर झिंगुरी तक हाथकी बाह्य कोरके समान सुन्दर जाँघोंवाली स्त्रियोंके साथ उस क्रीड़ा-सरसीमें प्रवेश किया। क्रीड़ाके समय धुले हुए अँगरागके सम्पर्कसे उस सरसीका पानी केशरसे सहित जैसा हो गया था। गीले वस्त्रके चिपक जानेके कारण स्पष्ट रूपसे दिखाई देनेवाले स्त्रियोंके अवयवोंसे उनके

नलिनमलकाग्रविगलदम्बुबिन्दुसंदोहसंदेहकरहारमुक्तमुक्तानिकरं करविलुलितसलिलप्लवमानबिसवलयरचितचन्द्रशकलशङ्कं जडसंनिधिसंजातवाग्यतवृत्तिकताविभाव्यमानसुजनकृत्यरशनाकलापं दृतिमुखसिच्यमानकुङ्कुमपङ्कसंपर्कसंभाव्यमानसिन्दूरितकुम्भिकुम्भसाम्यकुचकुम्भं च भृशमक्रीडत् ।

§ २७१. क्रीडावसाने च बलवदनिलचलकिसलयसमुल्लासिवेल्लल्लतालास्यलालितेऽभिनवपरागपटलस्विन्नपुंनागमञ्जुमञ्जरीजालजल्पाकमधुकरनिकरझंकारमुखरे गाङ्गजल[2] इव पृथुल-

साक्षात् लक्षणेन दर्शनेन संभावनीयानि सत्करणीयानि विकचमुकुलनलिनानि प्रफुल्लकुड्मलकमलानि यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात्तथा, अलकाग्रेभ्यः कुन्तलाग्रभागेभ्यो विगलन्तो येऽम्बुबिन्दुसंदोहा जलबिन्दुसमूहास्तेषां संदेहकरा ये हारा मौक्तिकयष्टयस्तेभ्यो मुक्ताः पतिता मुक्तानिकरा मुक्ताफलसमूहा यस्मिन्कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा, करैर्हस्तैर्विलुलितमाकोडितं यत्सलिलं जलं तस्मिन् प्लवमानैस्तरद्भिर्बिसवलयैर्मृणालकटकै रचिता कृता चन्द्रशकलानां शशिखण्डानां शङ्का यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा, जडस्य मूर्खस्य पक्षे जलस्य संनिधौ समीपे संजाता समुत्पन्ना या वाग्यतवृत्तिकता मौनवृत्तिस्तया विभाव्यमानं प्रतीयमानं सुजनकृत्यं साधुकृत्यं यस्य तथाभूतो रशनाकलापो मेखलाकलापो यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा, जडसंनिधाने यथा सुजनो मौनं श्रयते तथा जलसंनिधाने मेखलाकलापोऽपि मौनं श्रितवान् एतल्लक्षणेन तस्य सुजनकृत्यत्वं प्रतीयत इति भावः, दृतिमुखेन जलयन्त्रमुखेन सिच्यमानो यः कुङ्कुमपङ्कः काश्मीरद्रवस्तस्य संपर्केण संभाव्यमानं समनुमीयमानं सिन्दूरितकुम्भिकुम्भसाम्यं सिन्दूरयुक्तगजगण्डसादृश्यं येषां तथाभूताः कुचकुम्भाः स्तनकलशा यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा च भृशमत्यन्तम् अक्रीडत् ।

§ २७१. क्रीडावसान इति—क्रीडावसाने च जलकेलिविरामे च बलवता प्रचण्डेन अनिलेन पवनेन चलकिसलयैः चञ्चलपल्लवैः समुल्लासिन्यो विशोभिन्यो या वेल्लल्लताः चलद्वल्लर्यस्तासां लास्येन नृत्येन लालिते शोभिते, अभिनवपरागपटलेन नूतनरजोराशिना स्विन्ना क्लिन्ना याः पुंनागमञ्जुमञ्जर्यः नागकेसरमनोहरमञ्जर्यस्तासां जालेन समूहेन जल्पाका गुञ्जनरवं कुर्वाणा ये मधुकरनिकरा भ्रमरसमूहा-

लोचन आकर्षित हो रहे थे। स्त्रियोंके नेत्र और स्तनोंकी सदृशताका साक्षात् दर्शन होनेसे उसमें खिले तथा कुड्मलित कमलोंके प्रति आदर प्रकट किया जा रहा था। केशोंके अग्रभागसे झरनेवाली जल-बिन्दुओंके समूहका सन्देह उत्पन्न करनेवाले हारसे मोतियोंका समूह उस समय टूट-टूटकर नीचे गिर रहा था। हाथके द्वारा बिलोये हुए पानीमें तैरनेवाले मृणालके चूडासे उसमें चन्द्रमाके खण्डकी शंका उत्पन्न हो रही थी। जड-जल (पक्षमें मूर्ख जन) के संनिधानसे उत्पन्न मौन वृत्तिके कारण उस समय मेखला-समूहकी सज्जनता प्रकट हो रही थी। भावार्थ—जिस प्रकार मूर्ख जनके समीप सज्जन मनुष्य मौन रह जाते हैं उसी प्रकार जलके सम्पर्कसे मेखलाएँ मौन रह गयी थीं—उनका रुनझुन शब्द बन्द हो गया था। तथा स्त्रियोंके स्तनोंपर लगा हुआ केशरका पंक मशकके अग्रभागसे सींचा जा रहा था। उससे उनके स्तनकलशोंकी तुलना सिन्दूरसे युक्त हाथियोंके गण्डस्थलके साथ प्रकट हो रही थी।

§ २७१. जलक्रीड़ाके बाद जो तीव्र वायुसे हिलते हुए पल्लवोंसे सुशोभित थिरकती हुई लताओंके नृत्यसे सुन्दर था, नूतन परागकी पटलसे युक्त पुंनाग वृक्षोंकी सुन्दर मंजरियोंके समूहपर गुंजार करनेवाले भ्रमर-समूहकी झंकारसे शब्दायमान था, जो गंगाके जलके

१. म० कुङ्कुमसम्पर्क। २. गाम्भीर्यजल इव।

हरिसनाथे, पचेलिमकलमशालिक्षेत्र इव बहुलवनमाले, अङ्गनाङ्ग इव मृदुलपनसबहुमाने, सनीडवर्तिनि मर्त्यदुरासदसुमनोमनोहरानोकहनिबिडे क्वचिदाक्रीडे क्रीडाक्लमहरणाय विहरमाणः स धरित्रीपतिः क्वापि कोणे कौतुकविधायिकापेयविलोकनाय विलोचने व्यापारयामास ।

२७२. तत्र चातिसंधानकोविदः कोऽपि कपिरन्यस्त्रीसंगमावलोकनेन मन्युग्रस्तां मर्कटीं 'अवितर्कः को नाम निसर्गसुन्दरीमनादृत्य त्वामन्यां बहुमन्येत' इति प्रियवचःसहस्रैरपि प्रकृतिमानेतुमपारयन्पारवश्यनटनेन 'पश्य मां प्रिये, परासुरहं भवामि' इति परिवर्तितेक्षणः क्षणादेव क्षितौ क्षीणासुरिव पपात । वराकी तु सा वानरी वञ्चनाकृतं मरणमञ्जसेति स्त्रीत्वसुलभाच्चा-

---

स्तेषां झङ्कारेण मुखरे शब्दायमाने, गङ्गाया इदं गाङ्गं तच्च तज्जलं चेति गाङ्गजलं तस्मिन्निव पृथुलहरिसनाथे पृथुलहरिभिः स्थूलतरङ्गैः सनाथे सहिते पक्षे पृथुलाः स्थूला मांसला ये हरयो वानरास्तैः सनाथे सहिते, पचेलिमाः पक्तुं योग्या ये कलमशालयः षाष्टिकधान्यानि तेषां क्षेत्र इव केदार इव बहवोऽधिका लवनानां लवनकर्तॄणां मालाः श्रेणयो यस्मिंस्तस्मिन् पक्षे बहुला अधिका वनमालाः काननश्रेणयो यस्मिंस्तस्मिन्, अङ्गनाङ्ग इव सीमन्तिनीशरीर इव मृदुलपनेन कोमलमुखेन कोमलभाषणेन वा सबहुमाने तस्मिन्, सनीडवर्तिनि निकटवर्तिनि, मर्त्यानां मनुष्याणां दुरासदानि दुर्लभानि यानि सुमनांसि पुष्पाणि तैर्मनोहरा रमणीया येऽनोकहा वृक्षास्तैर्निबिडे सान्द्रे क्वचित् कस्मिन्नपि आक्रीडे-उद्याने क्रीडाक्लमस्य जलकेलिपरिश्रमस्य हरणाय दूरीकरणाय विहरमाणो भ्रमन् स धरित्रीपतिः भूपतिः क्वापि कस्मिन्नपि कोणे कौतुकविधायि कुतूहलविधायकं यत् कापेयं कपिचेष्टितं तस्य विलोकनाय दर्शनाय विलोचने व्यापारयामास चलयामास ।

§ २७२. तत्रेति—तत्र चाक्रीडे अतिसंधाने प्रतारणे कोविदो निपुणः कोऽपि कपिर्वानरः अन्यस्त्रियाऽपरकामिन्याः संगमस्य संसर्गस्यावलोकनेन मन्युग्रस्तां कोपकलितां मर्कटीं वानरीं 'अवितर्को विमर्शशून्यः को नाम जनो निसर्गसुन्दरीं प्रकृतिकमनीयां त्वाम् अनादृत्य अन्यां स्त्रियं बहुमन्येत श्रेष्ठां मन्येत ? अपि तु न कोऽपीत्यर्थः । इति प्रियवचःसहस्रैरपि अनेकैः प्रियवचनैरपि प्रकृतिं स्वस्थताम् आनेतुं प्रापयितुम् अपारन् असमर्थो भवन् पारवश्यस्य पारतन्त्र्यस्य नटनमभिनयस्तेन 'पश्य मां प्रिये ! परागता असवः प्राणाः यस्य तथाभूतः परासुर्मृतोऽहं भवामि' इति प्रदर्श्येति शेषः परिवर्तिते घूर्णिते ईक्षणे येन तथाभूतः सन् क्षणादेवाचिरमेव क्षीणासुरिव मृत इव क्षितौ पृथिव्यां पपात । वराकी दयनीया तु सा वानरी वञ्चनाकृतं प्रतारणाविहितं मरणं मृत्युम् अञ्जसा यथार्थम् इति स्त्रीत्वसुलभचापल्याल्ललनाजनोचितचापल्यात्

समान पृथुल-हरि-सनाथ—बड़ी-बड़ी लहरोंसे सहित था (पक्षमें पृथुल-हरि-सनाथ—बहुत स्थूल बन्दरोंसे सहित था)। पके हुए धानके खेतके समान बहुलवनमाल—अनेक काटनेवालोंके समूहसे युक्त था। (पक्षमें बहुत बड़े-बड़े वनकी पंक्तियोंसे युक्त था)। स्त्रीके शरीरके समान मृदुलपन सबहुमान—कोमल मुखके कारण अत्यधिक आदरसे युक्त था (पक्षमें कोमल कटहलके वृक्षोंके कारण बहुमानसे सहित था)। निकटवर्ती था और मनुष्योंके लिए दुर्लभ फूलोंसे मनोहर वृक्षोंसे सान्द्र था ऐसे किसी उद्यानमें क्रीडाजन्य थकावटको दूर करनेके लिए विहार करते हुए राजा जीवन्धरने किसी कोनेमें कौतुक करनेवाले बन्दरोंकी चेष्टा देखनेके लिए अपने दोनों नेत्र व्यापृत किये।

§ २७२. वहाँ उन्होंने देखा कि मेल करनेमें अत्यन्त निपुण एक वानर, अन्य स्त्रीके साथ समागमके देखनेसे कुपित वानरीको 'ऐसा कौन अविचारी होगा जो तुझ स्वभाव सुन्दरीका अनादर कर अन्य स्त्रीको बहुत मानेगा' इस प्रकारके हजारों प्रिय वचनोंके द्वारा भी प्रकृतिस्थ करनेके लिए समर्थ नहीं हो पा रहा है। अन्तमें जब वह समर्थ नहीं हो सका तब परवशताका

पत्न्याद्विश्वस्य भावेन दीर्घं निःश्वस्य 'हा नाथ, हतास्मि पापाहम्' इत्यालप्य सत्वरमेनं हरिं धरातलादुत्क्षिप्य करतले गृह्णती चात्मानं 'कुट्टिन्या मया पतिद्रोहः कुतः कारणात्कृतः' इति पुनः पुनः निन्दन्ती कृतगाढपरिष्वङ्गा पाणितलविकीर्यमाणपयःशीकरशीफरेण शिशिरोपचारेण चिराय जीवितेश्वरं जीवयामास । प्रियाङ्गपरिष्वङ्गेण प्रत्युज्जीवित इव प्रीणानः प्रतारणचतुरः स शाखामृगः शाखिशाखान्तरलम्बमानमम्बरव्यापिपाकसुलभसौरभरचितजिह्वाचापलं पनसफलमानीय मुद्गफलानुकारिभिः[1] कराङ्गुलीभिर्दलयन्नात्मदयितायै तस्यै ददौ । तदवसरे तत्र नियुक्तो नातिबालः कोऽपि वनपालः पलाययन्मिथुनमिदं फलमेतदपजहार ।

विश्वस्य विश्वासं कृत्वा भावेन हृदयेन दीर्घमायतं निःश्वस्य 'हा नाथ ! पापा पापवती अहं हतास्मि मृतास्मि' इति आलप्य सत्वरं शीघ्रम् एनं हरिं वानरम् धरातलात्पृथिवीतलात् उत्क्षिप्य-उत्थाप्य करतले पाणितले गृह्णती आत्मानं च स्वं च 'मया कुट्टिन्या पतिद्रोहः कुतः कारणात् कृतः' इति पुनःपुनर्भूयो भूयो निन्दन्ती कृतो विहितो गाढः परिष्वङ्गः परिरम्भो यया तथाभूता 'परीरम्भः परिष्वङ्गः संश्लेष उपगूहनम्' इत्यमरः, पाणितलेन हस्ततलेन विकीर्यमाणाः प्रक्षिप्यमाणा ये पयःशीकरा जलबिन्दवस्तैः शीफरोऽतिशीतस्तेन शिशिरोपचारेण शीतलोपचारेण चिराय दीर्घकालेन जीवितेश्वरं वल्लभं जीवयामास संज्ञितं चकार । प्रियाया वल्लभाया अङ्गस्य परिष्वङ्गेण संश्लेषेण प्रत्युज्जीवित इव पुनर्जीवित इव प्रीणानः संतुष्यन् प्रतारणचतुरः कपटपटुः स शाखामृगो वानरः शाखिनो वृक्षस्य शाखान्तरे शाखामध्ये लम्बमानं स्रंसमानम्, अम्बरव्यापिना गगनव्यापिना पाकसुलभसौरभेण परिणामसुलभसौगन्ध्येन रचितं विहितं जिह्वाया रसनायाश्चापलं सतृष्णत्वं येन तथाभूतं पनसफलं कण्टकिफलफलम् आनीय समाहृत्य मुद्गस्य फलमनुकुर्वन्त्येवं शीलास्ताभिः कराङ्गुलीभिर्हस्ताङ्गुलीभिः दलयन् खण्डयन् तस्यै पूर्वोक्तायै आत्मदयितायै स्वप्रियायै ददौ । तदवसरे तत्काले तत्राक्रीडे नियुक्तः प्राप्तनियोगो नातिबालः प्रौढ इव कोऽपि वनपालो वनरक्षक इदं मिथुनं दम्पती पलाययन् विद्रावयन् एतत् पनसफलम् अपजहार ।

अभिनय करता हुआ बोला कि 'हे प्रिये ! मुझे देखो, मैं मर रहा हूँ' यह कहकर उसने आँखें फेर दी और क्षण-भरमें ही वह मृतककी तरह पृथिवीपर गिर पड़ा । बेचारी वानरीने उस मायाकृत—बनावटी मरणको सचमुचका मरण समझ लिया और वह स्त्रीपर्यायमें सुलभ चपलताके कारण लम्बी साँस भरकर कहने लगी कि 'हाय नाथ ! मैं पापिनी मर गयी ।' उसने शीघ्र ही इस वानरको पृथिवीतलसे उठाकर अपने हाथमें लिया और 'मुझ कुट्टिनीने पतिद्रोह किस कारण किया ?' इस प्रकार कह बार-बार अपनी निन्दा करने लगी । अन्तमें वह गाढालिंगन कर हस्ततलसे बिखेरे हुए जलके छींटोंसे शीतल शिशिरोपचारसे बहुत देर बाद पतिको जीवित कर सकी । प्रियाके शरीरके आलिंगनसे फिरसे जीवित होते हुएके समान वह वानर बहुत प्रसन्न हुआ । अन्तमें वह मायापटु वानर वृक्षकी शाखाओंके बीच लटकते एवं परिपाकसे सुलभ आकाशव्यापी सुगन्धिके कारण जिह्वाकी चपलताको उत्पन्न करनेवाले कटहलके फलको तोड़कर लाया और मूँगकी फलियोंके समान आकारको धारण करनेवाली हाथकी अंगुलियोंसे विदीर्ण कर उसने वह फल अपनी प्रियाके लिए दिया । उस अवसरपर वहाँ नियुक्त किसी वनपालने जो अवस्थामें बिलकुल बालक नहीं था अर्थात् बालक और यौवनके बीचकी अवस्थाको धारण करनेवाला था, वानर-वानरियोंके इस युगलको भगाकर यह फल छीन लिया ।

---

१. मुद्गफलाकाराभिः ।

§ २७३. तदेतदखिलमवलोक्य लोकोत्तरोन्नतचित्तः स जीवंधरमहाराजः सदयमनाः 'जीवानामुदय एव न केवलं जीवितमपि बलवदधीनम्। दीनवृत्तिके मृगद्वन्द्वे संभवदिदं द्वन्द्वजातं किमेवं संभाव्यते। भवेऽस्मिन्नेवास्माभिर्भवभृतां वृत्तेरवस्थाविकलता किमनालोकिता? आलोकिताप्येषा विभवदूषिकादूषितदृष्टीणां न खलु नः स्पष्टीभवति। कष्टमतः पूर्वमाचरितम्। सर्वथा काष्ठाङ्गारायते करशाखाभ्रष्टफलः शाखामृगः। अस्मद्यते नूनमाच्छोटिततत्फलः स वनपालः। फलं तु नियमेन भोगायते। गच्छतु तुच्छफलकाङ्क्षया कृच्छ्रायमाणेन मया गमितः कालः। सफलयेयमवशिष्टं वा विशिष्टतपसा। भोगेन हि भुज्यमानेन रज्यमानेनापि त्यज्यते जनः। तस्मादहमेव तावदैहिकभोगेषु मुह्यन्मनो जह्याम्। यावदमी माममी-

§ २७३. तदेतदिति—तदेतदखिलं सर्वं घटनाचक्रम् अवलोक्य दृष्ट्वा लोकोत्तरं लोकश्रेष्ठमुन्नतचित्तमुदारहृदयं यस्य तथाभूतः स जीवंधरमहाराजः सदयं मनो यस्य तथाभूतः सन् 'जीवानां प्राणिनाम् उदयो वैभवमेव न केवलं जीवितमपि बलवतामधीनमायत्तमिति बलवदधीनम्। दीनवृत्तिके कातरवृत्तियुक्ते मृगद्वन्द्वे वनजन्तुयुगले संभवत् इदं द्वन्द्वजातं दुःखजातम् एवमनेन प्रकारेण किं कथम् संभाव्यते? अस्मिन्नेव भवे पर्यायेऽस्माभिर्भवभृतां जीवानां वृत्तेरवस्था विकलता अस्थिरता किम् अनालोकिता नो दृष्टा? आलोकितापि दृष्टापि एषा वृत्तेरस्थिरता विभव एव दूषिका नेत्रमलं तया दूषिता दृष्टिर्येषां तेषां नोऽस्माकं खलु निश्चयेन न स्पष्टीभवति। अतोऽस्मात्पूर्वम् आचरितं विषयेषु प्रवर्तनं कष्टं दुःखरूपम्। करशाखाभ्योऽङ्गुलिभ्यो भ्रष्टं फलं यस्य तथाभूतोऽसौ शाखामृगो मर्कटः सर्वथा सर्वप्रकारेण काष्ठाङ्गार इवाचरतीति काष्ठाङ्गारयते यथा शाखामृगस्य हस्तात्फलं भ्रष्टं तथा काष्ठाङ्गारस्य हस्ताद्राज्यं भ्रष्टम् इति भावः। नूनम् निश्चयेन आच्छोटितं तत्फलं येन तथाभूतः स वनपालोऽस्मद्यते अहमिवाचरति। यथा मया काष्ठाङ्गारस्य राज्यमाच्छोटितं तथा वनपालेनापि शाखामृगस्य फलमाच्छोटितम् इति भावः। फलं तु पनसफलं तु नियमेन नियोगेन भोगायते भोग इवाचरति यथा फलं नष्टं तथा भोगोऽपि नष्टो भवति। तुच्छस्य क्षुद्रस्य फलस्य काङ्क्षया वाञ्छया कृच्छ्रायमाणेन कष्टमनुभवता मया गमितो व्यतीतः कालो गच्छतु, तद्विचारेण किं साध्यमिति भावः। अवशिष्टं वा कालं विशिष्टतपसाऽसाधारणतपश्चरणेन सफलयेयम् सफलं कुर्याम्। हि यतो भुज्यमानेनानुभूयमानेन रज्यमानेनापि रागविषयेणापि भोगेन पञ्चेन्द्रियविषयेण जनो लोकस्त्यज्यते। तस्मात्कारणात् अहमेव तावत् तावत्कालपर्यन्तम् ऐहिकभोगेषु एतल्लोकसंबन्धितभोगेषु मुह्यत् मनश्चेतो जह्याम् त्यजेयम्। यावत् यावत् कालपर्यन्तम् अमी भोगा अमीमांसया अविचारेण नूनं निश्चयेन अमि-

§ २७३. यह सब देख लोकोत्तर उन्नत चित्तके धारक जीवन्धर महाराज दयालुचित्त हो विचार करने लगे कि 'न केवल जीवोंका अभ्युदय ही बलवान्‌के अधीन है अपितु उनका जीवन भी बलवान्‌के अधीन है। दीन वृत्तिके धारक तिर्यंचोंके इस युगलपर जो यह दुःखका समूह संघटित हुआ है कि इसकी इस तरह सम्भावना थी? इस संसारमें हमने प्राणियोंकी वृत्तिकी नश्वरता क्या नहीं देखी? देखी भी है परन्तु वैभवरूपी नेत्रमलसे जिनकी दृष्टि दूषित हो रही है ऐसे हमारे लिए वह स्पष्ट नहीं हो रही है। इसके पहले जो मैंने आचरण किया है वह अत्यन्त कष्टदायी है। जिसकी अंगुलियोंसे फल गिर गया है, ऐसा यह वानर सर्वथा काष्ठांगारके समान आचरण कर रहा है, फलको छीननेवाला वनपाल निश्चित ही मेरे समान जान पड़ता है और यह फल नियमसे भोगोंके समान प्रतीत होता है। तुच्छ फलकी आकांक्षासे कष्ट उठाते हुए मैंने जो समय बिता दिया वह तो गया अब जो बाकी बचा है उसे विशिष्ट तपके द्वारा सफल करना चाहिए। भोगे जानेवाले भोगके साथ कितना ही राग क्यों नहीं किया जाये परन्तु अन्तमें वह भोग मनुष्यको छोड़ देता है इसलिए इस-

मोसया नूनमभिलषन्तं हसन्त एव जिहासन्ति । नियोगतश्चेद्भोगानां वियोगः स्वयं त्यागात्किमिति लोकोऽयं बिभेति ? किं च ते भजन्तमात्मानं त्यजन्तः स्वातन्त्र्यात्स्वान्तमस्य सुतरां तुदन्ति । स्वयं त्यक्तास्तु तदानीं मनःप्रसत्तये पुनर्मुक्तये च भोगा भवेयुः ।' इति भूयो व्यरज्यत ।

§ २७४. तथाविहितविचाराभोगं भोगाद्विरज्यन्तं योगे क्रममाणमेनं क्रमादतर्कितदक्षिणाक्षिस्पन्देन किमुदर्कोऽयमिति वितर्कविजृम्भितरणरणकविषीददन्तःकरणास्तदन्तःपुरसुन्दर्यः पर्यवारयन् । वैभवमहो वैराग्यस्य यतो भोग्ये संनिहितेऽप्ययोग्य इवासीदस्पृहमस्य मनः । तत्त्वज्ञानविवेकतो विमलीकृतहृदयाः कृतिनः खलु जगति दुष्करकर्मकारिणो भवन्ति, यस्मादमी

क्षपन्तमिच्छन्तं मां हसन्त एव जिहासन्ति हातुमिच्छन्ति । भोगानां विषयाणां वियोगोऽभावो नियोगतो नियमेन चेद् यदि तर्हि स्वयं स्वेच्छया त्यागात् अयं लोकः इतीत्थं किं बिभेति भीतो भवति । किं च कथं च ते भोगा आत्मानं भजन्तं सेवमानं जनं त्यजन्तः स्वातन्त्र्यात् अस्य जनस्य स्वान्तं चित्तं सुतरामत्यन्तं किं तुदन्ति ? पीडयन्ति ? स्वयं स्वेच्छया त्यक्तास्तु भोगास्तदानीं त्यजनकाले मनःप्रसत्तये चेतः प्रसादाय पुनः पर्यायान्तरे च मुक्तये मोक्षाय भवेयुः स्युः' इतीत्थं भूयोऽत्यर्थम् व्यरज्यत विरक्तोऽभूत् ।

§ २७४. तथेति— तथा पूर्वोक्तप्रकारेण विहितः कृतो विचारस्य वितर्कस्याभोगो विस्तारो येन तथाभूतं भोगात्पञ्चेन्द्रियविषयात् विरज्यन्तं विरक्तीभवन्तं योगे ध्याने क्रममाणम् उद्युञ्जानम् एवं स्वामिनम् क्रमात् अतर्कितमविमृष्टं यद् दक्षिणस्याक्ष्णः स्पन्दनं तेन स्त्रीणां दक्षिणाङ्गस्फुरणमहितं भवतीति प्रसिद्धिः 'अयमेष विचारः क उदर्को यस्य तथाभूतः किंफलकः' इति वितर्केण विचारेण विजृम्भितं यद् रणरणकमौत्कण्ठ्यं तेन विषीदत् अन्तःकरणं मनो यासां ता अन्तःपुरसुन्दर्यो निशान्तनार्यः पर्यवारयन् परिवृत्य स्थिता बभूवुरिति भावः । अहो इत्यव्ययमाश्चर्यार्थे वैराग्यस्य वैभवं सामर्थ्यमाश्चर्यकरं वर्तत इति भावः यतो भोग्ये भोगयोग्ये वस्तुनि संनिहितेऽपि निकटस्थेऽपि अस्य स्वामिनो मनः अयोग्ये इव भोक्तुमनर्हे इव वस्तुनि अस्पृहमिच्छातीतम् आसीत् । तत्त्वज्ञानेति—तत्त्वज्ञानमेव विवेकस्तस्मात् विमलीकृतं निर्मलीकृतं हृदयं येषां तथाभूताः कृतिनः कुशला जनाः खलु निश्चयेन जगति लोके दुष्करकर्म

लोक-सम्बन्धी भोगोंमें मोहित होते हुए मनको मुझे ही तबतक छोड़ देना चाहिए जबतक कि अविचारके कारण इच्छा करते हुए मेरी हँसी उड़ानेवाले ये भोग मुझे छोड़ना चाहते हैं। जब कि भोगोंका नियमसे वियोग होनेवाला है तब यह संसार स्वयं उनके त्यागसे क्यों डरता है ? यदि ये भोग अपने-आपकी सेवा करनेवाले मनुष्यको अपनी इच्छासे छोड़ते हैं तो इसके चित्तको अत्यन्त दुःखी करते हैं और यदि भोग मनुष्यके द्वारा स्वयं छोड़े जाते हैं तो उस समय वे उसके चित्तकी प्रसन्नताके लिए तथा मुक्तिके लिए कारण होते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए जीवन्धर महाराज अत्यन्त विरक्त हो गये।

§ २७४. तदनन्तर जिन्होंने उस प्रकारका विचार किया था, जो भोगसे विरक्त हो रहे थे और योग धारण करनेके लिए जो उद्यत हो रहे थे ऐसे जीवन्धर स्वामीको क्रम-क्रमसे आकर उनके अन्तःपुरकी स्त्रियोंने घेर लिया। उस समय उन स्त्रियोंकी दाहिनी आँख अकस्मात् ही फड़कने लगी थी इसलिए 'इसका क्या परिणाम होगा' इस विचारसे बढ़ती हुई उत्कण्ठासे उनके हृदय विषादयुक्त हो रहे थे। आचार्य कहते हैं कि अहो ! वैराग्यकी आश्चर्यकारी महिमा है क्योंकि भोगने योग्य पदार्थके निकट रहनेपर भी जीवन्धरस्वामीका मन उस तरह निःस्पृह हो गया जिस तरह कि किसी अयोग्य पदार्थमें रहता है। तत्त्वज्ञानके विवेकसे जिनके हृदय निर्मल हो गये हैं ऐसे भाग्यशाली कुशल मनुष्य ही संसारमें दुष्कर—

मनस्विनो मनोरथेनाप्यभावित्वादभूतत्वादननुभूयमानत्वाच्च वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्येव वस्तूनि परित्यक्तुमप्यपारयति लोके, तान्युपभोगभाञ्ज्येवाञ्जसा मुञ्चन्ति । तथा हि—तत्पूर्वक्षणे ताः सुन्दरीर्निरन्तरं निशामयितुमन्तरायभूतमात्माक्षिपक्ष्मक्षोभमप्यक्षममाणोऽयं राजर्षिर्न मृष्यति स्म तदात्वे संनिधिमपि तासाम् । पुनरासीच्च महीपतेर्महानुद्योगो योगीन्द्रमुखादुपश्रोतुं धर्मम् । आदिशच्च परजनम् 'जिनपूजां कल्पयितुमनल्पमुपकरणमनवद्यमानीयताम्' । इति ।

२७५. तावता संमुखागतैर्मुखविकारविभाव्यमानविरक्तिपरिणामैः परिणतैर्मन्त्रिभिर्नियन्त्रणाशतेनाप्यनिवार्यमाणप्रयाणः प्रयाणदुन्दुभिमिषेणानिमेषाध्यक्षस्य यक्षस्याप्यात्मनिर्वेदं निवे-

कठिनकृत्यं कुर्वन्तीत्येवंशीला भवन्ति । यस्मात्कारणात् अमी मनस्विनो विचारवन्तो जनाः मनोरथेनापि वाञ्छामात्रेणापि अभावित्वाद् अजनिष्यमाणत्वात् अभूतत्वाद् अजातत्वात् अननुभूयमानत्वाच्च अनुभवागोचरत्वाच्च वाञ्छामात्रं मनोरथमात्रं परिग्रहो येषां तानि वस्तूनि अपि लोके जने परित्यक्तुं मोक्तुम् अपारयति अशक्नुवति सति, उपभोगभाञ्जि वर्तमानकाले उपभोगगोचरतां प्राप्तान्येव वस्तूनि अञ्जसा यथार्थं मुञ्चन्ति त्यजन्ति । तथा हि—तदेव स्पष्टयति तस्मात्पूर्वक्षण इति तत्पूर्वक्षणे तद्विचारात्पूर्वकाले ताः पुरोवर्तमानाः सुन्दरीर्ललना निरन्तरं सततं निशामयितुमवलोकयितुमन्तरायभूतं विघ्नस्वरूपम् अक्षिपक्ष्मणां नयनलोमराजीनां क्षोभमपि संचलनमपि अक्षममाणोऽसहमानोऽयं राजर्षिर्जीवंधरस्तदात्वे तस्मिन् काले तासां सुन्दरीणां संनिधिमपि संनिधानमपि न मृष्यति स्म न क्षमते स्म । पुनरनन्तरं महीपते राज्ञो योगीन्द्रमुखात् मुनीन्द्रमुखारविन्दात् धर्मं धर्मस्वरूपम् उपश्रोतुं समाकर्णयितुं महान् प्रचुर उद्योगः प्रयास आसीच्च बभूव च । परिजनं परिकरलोकमादिशच्च निदिदेश च 'जिनपूजां जिनार्चां कल्पयितुं विधातुम् अनल्पं भूयिष्ठम् अनवद्यं निर्दुष्टम् उपकरणं सामग्री आनीयताम् आह्रियताम्' इति ।

§ २७५. तावतेति—तावता तावत्कालेन संमुखागतैः पुरस्तादायातैः मुखविकारेण विभाव्यमानो विचार्यमाणो विरक्तिपरिणामो यैस्तैः परिणतैर्वृद्धैः मन्त्रिभिः सचिवैः नियन्त्रणाशतेनापि बाधशतेनापि अनिवार्यमाणमनिषिध्यमानं प्रयाणं यस्य तथाभूतः प्रयाणस्य प्रस्थानस्य दुन्दुभयः ढक्कास्तेषां मिषेण व्याजेन अनिमेषाणां देवानामध्यक्षः स्वामी तस्य यक्षस्यापि सुदर्शनस्यापि आत्मनो निर्वेदस्तं स्ववैराग्यं

कठिन कार्यके करनेवाले होते हैं। जो वस्तुएँ कभी मनोरथसे भी नहीं हो सकतीं, जो पहले कभी नहीं थीं और जिनका कभी अनुभव भी नहीं किया था, केवल इच्छामात्रसे जिनका परिग्रह था ऐसी वस्तुओंको भी जब संसार छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हो पाता तब ये विचारवान् मनुष्य उपभोगमें आनेवाली वस्तुओंको भी वास्तविकरूपसे छोड़ देते हैं। देखो न, इस समयसे पूर्वक्षणमें जो राजर्षि उन सुन्दरी स्त्रियोंको देखनेके लिए अन्तरायभूत नेत्रोंकी बिरूनियोंके संचारको भी सहन नहीं करता था वह अब उन स्त्रियोंके सन्निधानको भी सहन नहीं कर रहा है। तदनन्तर मुनिराजके मुखसे धर्मश्रवण करनेके लिए महाराज जीवन्धरका महान् उद्योग हुआ—उनके मनमें मुनिराजके मुखसे धर्मश्रवण करनेकी उत्कट भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने परिजनोंको यह आज्ञा भी दी कि जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनेके लिए अत्यधिक निर्दोष उपकरण लाये जावें।

§ २७५. उसी समय मुखके विकारसे जिन्होंने विरक्तिके परिणाम निश्चित कर लिये थे ऐसे वृद्ध मन्त्रियोंने सामने आकर सैकड़ों प्रकारकी नियन्त्रणाएँ बतलाकर उनके प्रयाणको रोकना चाहा पर रुक नहीं सका। प्रयाणके समय बजनेवाली दुन्दुभिके मिषसे वे देवोंके

दयन्निव निर्विण्णहृदये किंकृतविषय आसीत्। 'क्रीडानन्तरं पीडेयं प्रवृत्ता। किंनिमित्तमेतद्विरक्तं[1]-मस्य चित्तम्। किमस्मद्विषयमुतान्यविषयं किंस्विदाकस्मिकम्। किमु स्वन्तं किमुत दुरन्तम्। दुरन्ततामेव हि नः शुभेतराक्षिस्पन्दः कन्दलयति' इति चिन्ताक्रान्तेन शुद्धान्तेन सममुद्यानान्निरयात्। अयाच्च यातयातनैस्तपोधनैरध्युषितं मुषितभव्यलोकमोहव्यूहं मोघीकृतदिनमणिमयूखैर्मणिभिर्निर्मितं धर्मैककुलभवनं जिनभवनम्। अबुध्यत चात्मानमबद्धं कर्मभिः। अस्तावीच्चायमतितोषादपदोषमात्मानं कर्तुं समर्थैः स्तवैः प्रवर्तितनैकप्रदक्षिणक्रियाप्रणामपूर्वकपुष्पाञ्जलिः स्फारयन्परिणामशुद्धिं दूरयन्दुष्कर्म गात्रं रोमाञ्चयन्नेत्रे स्रावयन्वाणीं गद्गदयन्पाणी मुकुलयन्भगवन्तं परमेश्वरम्—

निर्वेदयन्निव कथयन्निव निर्विण्णहृदयेन विरक्तचेतसा किंकृतास्तुच्छीकृता विषया पञ्चेन्द्रियभोगा येन तथाभूत आसीत्। 'क्रीडानन्तरं केल्याः पश्चात् इयं पीडा वेदना प्रवृत्ता। अस्य स्वामिनः एतत् चित्तं किंनिमित्तं केन कारणेन विरक्तम्। किमिति वितर्के अस्य चित्तं किं वयं विषयो यस्य तथाभूतम् उताथवा अन्यविषयम् अन्यो विषयो यस्य तत् किंस्विद् अथवा आकस्मिकम् अकस्मादभूतम्। किमु स्वन्तं सुष्ठु अन्तो यस्य तत् स्वन्तं किमुत दुष्टोऽन्तो यस्य तद् दुरन्तम्। हि निश्चयेन शुभेतरोऽशुभश्चासावक्षिस्पन्दश्चेति शुभेतराक्षिस्पन्दो दक्षिणनेत्रस्पन्दनं नोऽस्माकं दुरन्ततामेव दुष्परिणामतामेव कन्दलयति उत्पादयति' इति चिन्ताक्रान्तेन विचारश्रेणीग्रस्तेन शुद्धान्तेन अन्तःपुरेण समं सार्धम् उद्यानात् निरयात् निर्जगाम। अयाच्चेति—अयाच्च जगाम च याता गता यातना: सांसारिकवेदना येषां तैः तपोधनैरपि मुनिभिरपि अध्युषितमधिष्ठितम्, मुषितोऽपहृतो भव्यलोकानां भव्यजनानां मोहव्यूहो मिथ्यात्वसमूहो येन तत् मोघीकृता व्यर्थीकृता दिनमणिमयूखा दिनकरकरा यैस्तैर्मणिभिर्निर्मितं रचितं धर्मैककुलभवनं धर्मैकायतनं जिनभवनं जिनमन्दिरम्। आत्मानं स्वं कर्मभिर्ज्ञानावरणादिभिरष्टविधैः अबद्धं रहितम् अबुध्यत च जानाति स्म च। अस्तावीच्च स्तुतिं चकार च अयं जीवंधरः अतितोषात् उत्कटसंतोषात् आत्मानं स्वम् अपदोषं दोषरहितं कर्तुं विधातुं समर्थैः स्तवैः प्रवर्तिता दत्ता नैकप्रदक्षिणाक्रियाप्रणामपूर्वकं परिक्रमणक्रियानमस्कारसहितं पुष्पाञ्जलयो येन तथाभूतः सन् परिणामशुद्धिं भावशुद्धिं स्फारयन् वर्धयन् दुष्कर्म दुरितं दूरयन्, गात्रं शरीरं रोमाञ्चयन् पुलकयन्, नेत्रे स्रावयन् क्षरयन्, वाणीं वाचं गद्गदयन् गद्गदां कुर्वन्

अधिपति सुदर्शन यक्षको भी मानो अपने वैराग्यकी सूचना देना चाहते थे। इस तरह निर्वेदयुक्त हृदयसे वे विषयोंसे उदासीन हो गये। 'क्रीड़ाके बाद ही यह पीड़ा उत्पन्न हुई है। इनका चित्त किस कारण विरक्त हुआ है? क्या हम लोगोंके निमित्तसे या अन्य किसीके निमित्तसे अथवा अकस्मात् किसी निमित्तके बिना ही विरक्त हुआ है? इसका परिणाम अच्छा होगा या बुरा? हम लोगोंकी जो अशुभ आँख फड़क रही है वह तो बुरे परिणामको ही सूचित कर रही है'—इस प्रकारकी चिन्तासे आक्रान्त स्त्रियोंके साथ वे उद्यानसे बाहर निकले। और उस जिनमन्दिरमें पहुँचे जो सांसारिक यातनाओंसे रहित मुनियोंसे अधिष्ठित था, जिसने भव्य जीवोंके मोहके समूहको अपहृत कर लिया था, जो सूर्यकी किरणोंको व्यर्थ करनेवाले मणियोंसे निर्मित था एवं जो धर्मका अद्वितीय कुलभवन था। मन्दिरमें पहुँचते ही वे अपने-आपको कर्मोंसे अबद्ध समझने लगे और अत्यधिक सन्तोषसे अपने-आपको निर्दोष करनेमें समर्थ स्तवनोंसे जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति करने लगे। वे स्तवनके समय अनेक प्रदक्षिणाएँ देकर तथा प्रणाम कर फूलोंकी अंजलियाँ समर्पित कर रहे थे। परिणामोंकी

---

1. क० ख० ग० विरक्तस्य चित्तम्।

§ २७६. 'यदङ्घ्रिपद्मप्रणतौ प्रवीणा न कुर्वते जातु नतिं परेषु ।
अपारभूमानमनन्यतुल्यं श्रीवर्धमानं शिरसा नमामि ॥

§ २७७. यदीयपादाम्बुरुहस्तवेन क्षणावधिं वा गमयन्ति कालम् ।
न ते परस्तोत्रपरा इति त्वां श्रीवर्धमानं स्तुतिभिर्भजामि ॥

§ २७८. आराधयन्ति क्षणमादरेण यदङ्घ्रिपङ्केरुहमात्तभावाः ।
पराङ्मुखास्ते परसत्क्रियायामित्यर्चनीयं जिनमर्चयामि ॥' इति ।

§ २७९. तावता तत्र तत्रभवन्तौ संनिहितौ हितकार्यकरणायेव कायभृतां कायबद्धौ शुद्ध-

पाणी हस्तौ मुकुलयन् बद्धाञ्जलित्वेन कुड्मलयन् भगवन्तमष्टप्रातिहार्यविभवविभ्राजितं परमेश्वरं जिनेन्द्रम्—

§ २७६. यदङ्घ्रीति—यस्य अङ्घ्रिपद्मयोश्चरणकमलयोः प्रणतौ नमस्कारे प्रवीणा दक्षा जना परेषु हरिहरादिषु नतिं नमस्कारं जातु कदाचित् न कुर्वते न विदधति, अपारभूमानमनन्तमहिमानम् न विद्यतेऽन्यस्तुल्यो यस्य तमनुपमम् तं श्रीवर्धमानं महावीरं शिरसा मूर्ध्ना नमामि वन्दे ।

§ २७७. यदीयेति—वा अथवा, ये जना यदीयपदाम्बुरुहयोर्यच्चरणकमलयोः स्तवेन स्तोत्रेण क्षणावधिं क्षणपर्यन्तमपि कालं गमयन्ति व्यतीतं कुर्वन्ति ते जनाः परेषामन्येषां देवानां स्तोत्रे स्तवने परा उद्यता न भवन्तीति शेषः इति हेतोः श्रिया लक्ष्म्या वर्धत इति श्रीवर्धमानस्तथाभूतं त्वां जिनेन्द्रं स्तुतिभिः स्तवनैः भजामि सेवे ।

§ २७८. आराधयन्तीति—आत्तो गृहीतो भावो यैस्तथाभूताः सन्तो ये जनाः क्षणमपि आदरेण भक्त्या यदङ्घ्रिपङ्केरुहं यत्पादपद्मम् आराधयन्ति सेवन्ते ते जनाः परसत्क्रियायामन्यदेवसत्कारे पराङ्मुखा विमुखा भवन्तीति शेषः । इति हेतोः अर्चनीयं पूज्यं जिनम् अर्चयामि पूजयामि । सर्वत्रोपजातिवृत्तम् । इति ।

§ २७९. तावतेति—तावता तावत्कालेन अयं राजा भवभ्रमणभीतो जीवंधरः तत्र जिनभवने तत्रभवन्तौ पूज्यौ संनिहितौ निकटस्थौ कायभृतां प्राणिनां हितकार्यकरणायेव हितकार्यविधानायेव कायबद्धौ

शुद्धिको बढ़ा रहे थे, दुष्कर्मोंको दूर कर रहे थे, शरीरको रोमांचित कर रहे थे, नेत्रोंसे हर्षाश्रु झरा रहे थे, वाणीको गद्गद कर रहे थे और दोनों हाथोंको जोड़कर कमलकी बोंड़ीके आकार कर रहे थे। वे कह रहे थे कि—

§ २७६. 'जिनके चरणकमलोंकी स्तुतिमें प्रवीण मनुष्य कभी दूसरोंको नमस्कार नहीं करते, जो अपार महिमाके धारक हैं तथा जो अनुपम हैं उन श्रीवर्धमानस्वामीको मैं शिरसे नमस्कार करता हूँ।'

§ २७७. जिनके चरणकमलोंके स्तवनसे जो क्षण प्रमाण काल व्यतीत करते हैं वे फिर कभी किसी दूसरेके स्तवन करनेमें तत्पर नहीं होते इसलिए मैं आप श्रीवर्धमानस्वामीकी स्तुतियोंसे भक्ति करता हूँ।

§ २७८. जो उत्तम भावोंको प्राप्त कर क्षण-भर भी आदरपूर्वक जिनके चरणकमलोंकी आराधना करते हैं वे दूसरोंके सत्कारसे पराङ्मुख हो जाते हैं इसलिए मैं पूजनीय श्री वर्धमान जिनेन्द्रकी पूजा करता हूँ।'

§ २७९. उसी समय वहाँ समीपमें विद्यमान चारण ऋद्धिके धारक दो मुनिराजोंको राजा जीवन्धरने देखा। वे मुनिराज अतिशय पूजनीय थे, भव्यजीवोंका हित करनेके लिए

तपस्तपःशक्तिसिद्धां निजसिद्धान्तस्थितिमिव निर्मलां नातिविशालां कामपि स्फटिकशिलां घटितविविधोद्गमस्य विबुधतरो[1]रधस्तादधिवसन्तौ वारिदपथसंचारचतुरचरणारविन्दौ चारणपरमेष्ठिनौ राजायमैक्षिष्ट। दृष्टमात्रयोरेव तयोरयं भ्रष्टकल्मष इव प्रीतिविस्फारितनेत्रः स्तोत्रमुखरमुखः पवित्रकुसुमविसरविकिरणत्वराविह्वलकरयुगः प्रह्वमणिमौलिः प्रदक्षिणं भ्रमन् 'मम भवभ्रमः शाम्यतात्' इति तपःकाम्यया तपोधनयोः श्रीपादाम्भोरुहं शेखरीचकार।

§ २८०. स्वीचकार च घटितकरपुटः स्फुटोच्चारितजयशब्दः 'तत्रभवतोः प्रसादतस्तथा' इत्यवितथवचनः[2] मुनिवरमुखाम्भोजभवाम्[3] 'भो महाराज, कच्चित्ते वार्तम्' इति मधुरवार्ताम्। प्रार्थयाञ्चक्रे च वीक्षितधेनुर्बुभुक्षितो वत्स इव मुनिवरवात्सल्येन वर्धितहर्षोऽयं राजर्षिः 'महर्षी

धृतशरीरौ घटिताः समुत्पन्ना विविधा उद्गमाः पुष्पाणि यस्मिंस्तस्य विबुधतरोः कल्पवृक्षस्य अधस्तात् नीचैः शुद्धतमस्य निर्मलतमस्य तपसः शक्त्या सामर्थ्येन सिद्धां प्राप्तां निजस्य स्वस्य सिद्धान्ते स्थितिस्तामिव, निर्मलां विमलां नातिविशालां मध्यमपरिमाणां कामपि कश्चित् स्फटिकशिलाम् अधिवसन्तौ तत्रोपविष्टौ वारिदानां मेघानां पन्था वारिदपथं तस्मिन् संचारे चतुरे विदग्धे चरणारविन्दे पादपद्मे ययोस्तौ चारणपरमेष्ठिनौ चारणर्द्धिधारकसाधुपरमेष्ठिनौ ऐक्षिष्ट ददर्श। तयोः चारणपरमेष्ठिनोर्दृष्टमात्रयोरेव सतोः अयं जीवंधरो भ्रष्टकल्मष इव नष्टदुरित इव प्रीत्या विस्फारिते नेत्रे यस्य तथाभूतः स्तोत्रैर्मुखरं वाचालं मुखं यस्य सः, पवित्राणि पूतानि यानि कुसुमानि तेषां विसरः समूहस्तस्य विकिरणस्य विक्षेपणस्य त्वरया शीघ्रतया विह्वलं करयुगं यस्य तथाभूतः, प्रह्वो नम्रीभूतो मणिमौलिः रत्नमुकुटं यस्य तथाभूतः प्रदक्षिणं भ्रमन् परिक्राम्यन् सन् तपोधनयोर्मुनीन्द्रयोः श्रीपादाम्भोरुहं श्रीचरणकमलं शेखरीचकार शिरसि दधावित्यर्थः।

§ २८०. स्वीचकारेति—स्वीचकार च अङ्गीचक्रे च घटितकरपुटो बद्धाञ्जलिः स्फुटं यथा स्यात्तथोच्चारितो जयशब्दो येन तथाभूतः सन् 'तत्रभवतोः पूज्ययोः भवतोः प्रसादतस्तथा इति अवितथवचनः सत्यवचनः मुनिवरमुखाम्भोजभवां मुनीन्द्रवदनवारिजसमुद्भूताम् 'भो महाराज! ते भवतो वार्तं कुशलम् कच्चित्कामप्रवेदने।' इति मधुरवार्तां मनोहरवाणीम्। प्रार्थयाञ्चक्रे चेति—प्रार्थयाञ्चक्रे च प्रार्थयामास च वीक्षिता धेनुर्गौर्येन तथाभूतो बुभुक्षितः क्षुत्पीडितो वत्सस्तर्णक इव मुनिवरवात्सल्येन मुनीन्द्रस्नेहेन

ही मानो उन्होंने शरीरको धारण किया था, नानाप्रकारके फूलोंसे युक्त कल्पवृक्ष(?)के नीचे अत्यन्त शुद्धतपकी शक्तिसे सिद्ध स्वकीय सिद्धान्तकी स्थितिके समान निर्मल किसी स्फटिककी उस शिलापर जो अधिक बड़ी नहीं थी विराजमान थे तथा आकाशगमनमें चतुर चरणकमलोंसे युक्त थे। उन मुनियोंके देखते ही राजा जीवन्धरने अपने-आपको ऐसा समझा मानो पाप नष्ट हो गये हों। उनके नेत्र प्रीतिसे विकसित हो उठे, मुख स्तोत्रोंसे गुनगुनाने लगा, पवित्र फूलोंका समूह बिखेरनेकी शीघ्रतासे दोनों हाथ विह्वल हो गये, मणियोंका मुकुट नम्रीभूत हो गया और प्रदक्षिणाकार भ्रमण करते हुए उन्होंने 'मेरा संसार भ्रमण शान्त हो' इस प्रकार तपकी इच्छासे उन दोनों मुनियोंके श्री चरणकमलोंको अपना सेहरा बना लिया।

§ २८०. उनके चरणोंमें शिर झुकाकर नमस्कार किया। उसी समय मुनिराजके मुखकमलसे उत्पन्न 'अये महाराज! तेरी कुशल तो है न?' यह मधुर वार्ता उच्चरित हुई जिसे जीवन्धर महाराजने हाथ जोड़कर तथा स्पष्ट रूपसे जय शब्दका उच्चारण कर 'आप पूजनीय मुनिवरोंके प्रसादसे कुशल है' इस प्रकार सत्य वचन कहते हुए स्वीकृत किया।

१. कल्पवृक्षस्य, इति टि०। २. क० इत्यवितथवचनम्। ३. क० मुनिवरमुखाम्भोजभवम्।

भगवन्तौ, भवन्मुखशतपत्रनिशामनमात्रेणैव जातसंसारप्रशमनोऽहमस्मीति प्रगणयामि। ततः पवित्रधर्मयानपात्रसमर्पणेन भवाब्धौ विस्तृते दुस्तरतया सदा सीदन्तं मां प्रसीदताम्' इति।

§ २८१. प्रश्रयस्पृहणीयतदीयप्रार्थनावसाने च धर्मामृतवर्षेण कर्मपर्यायमाभ्यन्तरमस्य मलमशेषतः[1] क्षालयिष्यन्पूर्वमपाकुर्वन्निव बाह्यमाभ्यन्तररदनज्योत्स्नारूपाभिरद्भिरभिषिञ्चन्नुग्रतपसोस्तयोरग्रणीर्नातिव्यग्रं समग्रगुणसंपन्नां रत्नदीपिकामिव प्रकटितपदार्थपारमार्थ्यां तमोपहां चाकठिनप्रभवत्वादिमामप्यतिशयानाम्, सुधामिव वसुधातलदुर्लभां सुमनःसंभावनीयां चाक्षय-

वर्धितहर्षो वृद्धिंगतप्रमोदोऽयं राजर्षिर्जीवंधरः 'भगवन्तौ महर्षी प्रभावशालिनौ मुनीन्द्रौ भवतोर्मुखशतपत्रयोर्वदनारविन्दयोर्निशामनमात्रेणैव दर्शनमात्रेणैव जातं संसारप्रशमनं भवभ्रमणशान्तिर्यस्य तथाभूतोऽहमस्मीति प्रगणयामि जानामि। ततस्तस्मात्कारणात् पवित्रधर्म एव यानपात्रं नौका तस्य समर्पणेन प्रदानेन विस्तृते विशाले भवाब्धौ भवसागरे दुस्तरतया दुःखेन तर्तुं शक्यो दुस्तरस्तस्य भावस्तत्ता तया सदा सततं सीदन्तं दुःखीभवन्तं मां प्रति प्रसीदतां प्रसन्नौ भवताम् इति।

§ २८१. प्रश्रयेति—प्रश्रयेण विनयेन स्पृहणीया या तदीया प्रार्थना तस्या अवसाने विरामे च धर्मामृतवर्षेण धर्मसुधावृष्ट्या अस्य राजर्षेः कर्मपर्यायं कर्माभिधानम् आभ्यन्तरं मलं दोषम् अशेषतः समग्रभावेन क्षालयिष्यन् प्रक्षालितं करिष्यन् पूर्वं प्राक् बाह्यम् मलम् अपाकुर्वन्निव आभ्यन्तररदनज्योत्स्नारूपाभिः अन्तर्गतदन्तकौमुदीरूपाभिः अद्भिर्जलैः अभिषिञ्चन् अभिस्नपयन् उग्रतपसोः कठिनतपसोस्तयोर्महर्ष्योः अग्रणीः प्रधानो नातिव्यग्रं नातिव्याकुलं यथा स्यात्तथा समग्रगुणसम्पन्नां निखिलगुणयुतां रत्नदीपिकामिव प्रकटितं पदार्थानां जीवाजीवादीनां घटपटादीनां च पारमार्थ्यं यया तथाभूतां तमोपहां ध्वान्तापहां च मोहापहां च अकठिनप्रभवत्वात् कोमलकारणत्वात् इमामपि रत्नदीपिकामपि अतिशयानाम् रत्नदीपिका कठिनप्रभवा दिव्यवाक्चाकठिनप्रभवा—दयामृदुलमुनिमानससमुत्पन्नेति व्यतिरेकः, सुधामिव पीयूषमिव वसुधातलदुर्लभां पृथिवीतलदुर्लभां प्रभूतभाग्यभविकजनसुलभत्वादन्येषां दुर्लभां सुमनःसंभावनीयां देव-

जिस प्रकार गायके देखनेसे भूखे बछड़ेका हर्ष बढ़ जाता है उसी प्रकार मुनिराजके वात्सल्यसे जिनका हर्ष बढ़ गया था ऐसे राजर्षि जीवन्धरस्वामीने प्रार्थना की कि 'भगवान् महर्षियो! आप लोगोंके मुखकमलके दर्शन मात्रसे ही मेरा संसार शान्त हो गया है ऐसा मैं समझता हूँ। अब पवित्र धर्मरूपी जहाजको समर्पण कर इस विस्तृत संसाररूपी सागरमें दुस्तर होनेके कारण सदासे दुःखी होते हुए मुझपर प्रसन्न हूजिए'।

§ २८१. विनयसे स्पृहणीय जीवन्धरस्वामीकी प्रार्थनाके बाद जो धर्मरूपी अमृतकी वर्षासे इनके कर्मरूपी आभ्यन्तर मलको सम्पूर्ण रूपसे धो डालना चाहते थे और उसके पूर्व बाह्यमलको दूर करते हुएके समान जो उन्हें भीतरी दाँतोंकी कान्तिरूपी जलसे सींच रहे थे ऐसे उग्र तपस्वी उन दोनों मुनियोंमें ज्येष्ठ मुनि, शान्तिपूर्वक समग्रगुणोंसे सम्पन्न एवं भव्य जीवोंको प्रसन्न करनेवाली मनोहर वाणी छोड़ने लगे—सान्त्वना देते हुए सुन्दर वचन कहने लगे। उनकी वह मनोहर वाणी यद्यपि रत्नोंकी दीपिकाके समान थी क्योंकि जिस प्रकार रत्नोंकी दीपिका घट-पटादि पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको प्रकट करती है उसी प्रकार उनकी वाणी भी जीव अजीव आदि पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको प्रकट करनेवाली थी और जिस प्रकार रत्नोंकी दीपिका तम—अन्धकारको दूर करनेवाली होती है उसी प्रकार उनकी वाणी भी तम—अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेवाली थी। तथापि रत्नोंकी दीपिका कठिन—कठोर रत्नोंसे उत्पन्न हुई थी

1. क० मलशेषं।

कलानिधिसंभवादतोऽपि संभावनीयाम्, संजीवनौषधिमिव [1]सकलजीवजीवातुभूतां चरणरुचिसंपादिनीं च पुनर्जननक्लेशहननादतोऽपि पुरस्क्रियार्हाम्, हारयष्टिमिव सुवृत्तबन्धुरां गुणानुबन्धिनीं चाजडाश्रयत्वादतोऽप्यधिकमीडनीयां च भव्यलोकरञ्जनीयां दिव्यवाचं मुमोच—

सत्करणीयां विद्वत्सत्करणीयां च अक्षयकलानिधिसंभवात् अक्षयाणां कलानां वैदग्धीनां निधिर्भण्डागारो महर्षिस्तस्मात् संभवात् समुत्पन्नात् पक्षे क्षयोपलक्षितकलानिधिश्चन्द्रस्तस्मात् संभवात् अतोऽपि सुधाया अपि संभावनीयां सत्करणीयाम् संजीवनौषधिमिव सकलजीवानां निखिलप्राणिनां जीवातुभूतां जीवनौषधभूतां निखिलजीवरक्षणभूतां चरणयोः पादयो रुचिसम्पादिनी पक्षे चारित्ररुचिसम्पादिनीं च पुनर्जननक्लेशहननात्पुनर्जन्मक्लेशदूरीकरणात् अतोऽपि संजीवनौषधेरपि पुरस्क्रियार्हां सत्कारयोग्यां संजीवनौषधिः न पुनर्जननक्लेशमपहरति दिव्यवाक् च हरतीति विशेषः, हारयष्टिरिव मुक्तादामेव सुवृत्तैर्वर्तुलाकारमणिभिः पक्षे सदाचारैः श्रेष्ठच्छन्दोभिर्वा बन्धुरां मनोज्ञाम्, गुणानुबन्धिनीं च सूत्रानुबन्धिनीं सम्यग्दर्शनादिगुणबन्धिनीं च अजडाश्रयत्वात् अमूर्खाश्रयत्वात् अजलाश्रयत्वात् अतोऽपि हारयष्टेरपि अधिकं यथा स्यात्तथा ईडनीयां स्तवनीयाम्, हारयष्टिर्जलाश्रया दिव्यवाक् च अजलाश्रया डलयोरभेदात् अजडोऽमूर्ख आश्रय आधारो यस्यास्तथाभूतेति व्यतिरेकः भव्यलोकरञ्जनीयां च भव्यजनमनोनन्दिनीं दिव्यवाचं मुमोच तत्याज उवाचेति यावत्।

और वह मनोहर वाणी अकठिन—कोमल स्वभाव मुनिराजसे उत्पन्न हुई थी इसलिए वह रत्नोंकी दीपिकाको भी परास्त करनेवाली थी। अथवा उनकी वह वाणी सुधाके समान थी क्योंकि जिस प्रकार सुधा पृथिवीतलपर दुर्लभ है उसी प्रकार उनकी वह वाणी भी पृथिवीतलपर दुर्लभ थी और जिस प्रकार सुधा सुमनःसम्भावनीय—देवोंके द्वारा आदरणीय होती है उसी प्रकार वह वाणी सुमनःसम्भावनीय—विद्वानोंके द्वारा आदरणीय थी। परन्तु सुधा क्षयशील कलानिधि—चन्द्रमासे उत्पन्न हुई थी और वह वाणी अक्षयकलानिधि—अक्षय कलाओंके भण्डार मुनिराजसे उत्पन्न हुई थी इसलिए सुधासे भी अधिक आदरणीय थी। अथवा वह वाणी संजीवन ओषधिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार संजीवन ओषधि सकल जीवोंके लिए जीवातु—जीवनदात्री है उसी प्रकार वह वाणी भी सकल जीवोंके लिए जीवातु—जीवनदात्री थी। जिस प्रकार संजीवन ओषधि चरणरुचिसम्पादिनी—चलने-फिरनेकी रुचिको उत्पन्न करनेवाली है उसी प्रकार वह वाणी भी चरणरुचिसम्पादिनी—चारित्र-सम्बन्धी रुचिको उत्पन्न करनेवाली थी परन्तु संजीवन ओषधि पुनः जन्म धारण करने रूप क्लेशको नष्ट नहीं कर सकती जब कि वह वाणी पुनर्जन्मके क्लेशको नष्ट करनेवाली थी इसलिए उससे भी अधिक सत्कारके योग्य थी। अथवा वह वाणी हारयष्टिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार हारयष्टि सुवृत्तबन्धुरा—उत्तम गोल मणियोंसे सुन्दर होती है उसी प्रकार वह वाणी भी सुवृत्तबन्धुरा—उत्तम छन्दोंसे अथवा सम्यक् चारित्रसे सुन्दर थी और जिस प्रकार हारयष्टि गुणानुबन्धिनी—सूतसे सम्बन्ध रखनेवाली होती है उसी प्रकार वह वाणी भी गुणानुबन्धिनी—सम्यग्दर्शनादि गुणों अथवा श्लेष प्रसाद आदि गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली थी। परन्तु हारयष्टि जडाश्रय थी—अचेतनमणियोंके आश्रय थी अथवा जड—मूर्खोंके पास रहनेवाली थी जब कि वाणी अजडाश्रय थी—चेतनमुनियोंके आश्रय थी अथवा बुद्धिमान् मनुष्योंके आश्रय थी इसलिए उससे भी अधिक स्तुत्य थी।

1. क० ख० ग० 'सकलजीव' नास्ति।

§ २८२. 'महाराज, श्रूयताम्। यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः। स च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकः। अधर्मस्तु तद्विपरीतः। आयुष्मन् अवगच्छसि त्वमधीती श्रुते तुच्छेतरमशेषममीषां लक्षणम्। इत्थम्भूतमात्मोत्थानन्तसौख्यादिगुणनिर्माणं धर्मं बलवन्मोहकर्मोदयेन यथावदवगन्तुमशक्ता अधर्मे धर्मबुद्धिं धर्मे चाधर्मबुद्धिं बध्नन्तस्तदुभयमप्यबुध्यमानाश्च प्राणिनः पृथिवीपते, निकामतीव्रनीचकर्मोदयान्निरये तिरोभूततीव्रभावपापात्तिरश्चि, प्रवर्तितसुकृतेतरद्वयान्मर्त्ये, सुकृतमात्रेण सुरेषु च कृतावतारास्तावत्परिभ्रमन्ति[2] यावन्न निर्मूलितनिरवशेषकर्माणो भवेयुः। एवं निगदितायां नाकनरकनरतिरश्चां भेदेन चातुर्विध्यं गतायां गतौ, हिंसानृतस्तेयमैथुनमात्रपरा हिंस्रसत्त्वार्हक्रूरपरिणामा अधर्माभिवर्धिनो धर्मद्रुहश्च धर्मादिनिरयं प्रयान्ति।

§ २८२. महाराजेति—महाराज! श्रूयतां समाकर्ण्यताम्। यतो यस्मात् अभ्युदयः स्वर्गादिविभूतिर्निश्रेयसं मोक्षश्च तयोः सिद्धिर्यस्मात् स धर्मः। स च धर्मश्च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मको रत्नत्रयरूप इत्यर्थः 'सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः'। इति रत्नकरण्डश्रावकाचारे समन्तभद्रस्वामिनो वचनम्। अधर्मस्तु तद्विपरीतो मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूपः। आयुष्मन्! दीर्घजीविन्! श्रुते शास्त्रे अधीतमनेनेत्यधीती अध्ययनकुशलस्त्वम् अमीषां सम्यग्दर्शनादीनां तुच्छेतरम् अतुच्छं लक्षणम् अवगच्छसि जानासि। इत्थंभूतम् एतत्प्रकारम् आत्मोत्थाश्च तेऽनन्तसौख्यादिगुणाश्च तेभ्यो निर्माणं यस्य तं धर्मं बलवन्मोहकर्मोदयेन प्रबलतरमोहोदयेन अधर्मे धर्मबुद्धिं धर्मे चाधर्मबुद्धिं बध्नन्तो: धर्माधर्मज्ञानरहिताः तदुभयमपि धर्माधर्मद्वयमपि अबुध्यमानाश्च अजानानाश्च प्राणिनो जीवाः पृथिवीपते! हे राजन्! निकामतीव्रमतिशयेन तीव्रं यत् नीचकर्म तस्योदयात् निरये, तिरोभूतस्तीव्रभावो यस्य तिरोभूततीव्रभावं तच्च तत्पापं चेति तस्मात् अनुत्कटपापकर्मोदयात्तिरश्चि, प्रवर्तितं यत्सुकृतेतरयोः पुण्यपापयोर्द्वयं तस्मात् मर्त्ये मनुष्ये, सुकृतमात्रेण पुण्यमात्रेण च सुरेषु देवेषु कृतावतारा गृहीतजन्मानः तावत् परिभ्रमन्ति परितो भ्रमणं कुर्वन्ति यावत् यावत्कालपर्यन्तं निर्मूलितं नष्टं निरवशेषकर्म निखिलकर्म येषां तथाभूता न भवेयुः। एवमनेन प्रकारेण निगदितायां कथितायां नाकनरनरकतिरश्चां स्वर्गमनुष्यश्वभ्रतिर्यञ्चां भेदेन चातुर्विध्यं चतुःप्रकारतां गतायां प्राप्तायां गतौ हिंसानृतस्तेयमैथुनमात्रपरा हिंसामृषावादित्वचौर्यकुशीलमात्रलीना हिंस्रसत्त्वार्हा हिंसकजन्तुयोग्याः क्रूरपरिणामा येषां तथाभूता अधर्ममभिवर्धन्त इत्येवंशीला इत्यधर्माभिवर्धिनो धर्मद्रुहश्च धर्मद्रोहिणश्च धर्मादिनिरयं रत्नप्रभादिनरकं प्रयान्ति प्राप्नुवन्ति।

§ २८२. मुनिराज कहने लगे कि हे महाराज! सुनिए। जिससे अभ्युदय—स्वर्गादिकका वैभव और निश्रेयस—मोक्षकी सिद्धि होती है वह धर्म है। वह धर्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप है परन्तु अधर्म उससे विपरीत है। हे आयुष्मन्! तुम शास्त्रके अध्ययनमें अत्यन्त कुशल हो अतः इनके समस्त लक्षण जानते हो। इस प्रकार आत्मासे उद्भूत अनन्त सुख आदि गुणोंसे उत्पन्न धर्मको बलवान् मोहकर्मके उदयसे जो प्राणी यथार्थ रूपसे जाननेमें असमर्थ हैं वे अधर्ममें धर्मबुद्धि और धर्ममें अधर्म बुद्धि करते हुए तथा दोनोंको न जानकर हे राजन्! अत्यन्त तीव्र नीच कर्मके उदयसे नरकमें, जिसका तीव्र भाव छिपा हुआ है ऐसे पापसे तिर्यंचमें, पुण्य और पाप दोनोंके करनेसे मनुष्यमें और पुण्यमात्रसे देवोंमें जन्म लेकर तबतक भ्रमण करते रहते हैं जबतक कि समस्त कर्मोंका निर्मूल नाश नहीं कर देते हैं। इस प्रकार देव नरक मनुष्य और तिर्यंचोंके भेदसे गतियाँ चार प्रकारकी कही गयी हैं। जो जीव हिंसा, झूठ, चोरी और मैथुनमात्रमें तत्पर हैं, हिंसक प्राणियोंके समान क्रूर परिणामोंके धारक हैं, अधर्मको बढ़ानेवाले हैं और धर्मसे द्रोह

१. क० ख० ग० 'अपि' नास्ति। २. म० भ्रमन्ति।

एवंभूतपुरोपार्जितपुण्येतरबलेन बद्धनिरयायुषो निरयं प्रयातास्ते प्राणभृतः प्राण्यन्तरमारणप्रवीण-प्राकृतपूतिगन्धोद्रेकादुद्वेजनीयामुद्दामदावज्वालालीढतालतरुसमाकारां नालिकेरफलोदररज्जुघटित-भाजनमिव स्थपुटितां यावदायुः केनाप्यविघटनीयां सपटलभेदसप्तपृथ्वीषु प्रथमनिरयादारभ्य क्रमादभिवृद्धेनापकर्षतः षडङ्गुलकलितत्रिहस्ताधिकसप्तकेन प्रकर्षतश्च पञ्चशतेन धनुषां समुच्छ्रितां मूर्तिं मुहूर्तमात्रेणोर्ध्वगतिशीलावलम्बिनः पूर्णयन्तः शिततरनैकशस्त्राकीर्णतले पक्वतालफलानीव स्वयमेव पतन्ति। पुनरुत्पतन्ति च पतनवेगेन बहुयोजनानि। बहुधा विशीर्ण-मप्यर्ण इव तद्गात्रं क्षणमात्रेण घटतेतराम्। क्षणघटितप्रांशुप्रतीकान्प्रतीकारविरहादनारत-

एवम्भूतं पुरोपार्जितं पूर्वसंचितं यत्पुण्येतरं पापकर्म तस्य बलेन बद्धं निरयायुर्यैस्ते तथाभूता निरयं श्वभ्रं प्रयाताः प्राप्तास्ते प्राणभृतः प्राणिनः प्राण्यन्तराणाम् अन्यजीवानां मारणे प्रवीणो निपुणो यः प्राकृतपूतिगन्धः स्वाभाविकदुर्गन्धस्तस्योद्रेकात् उद्वेजनीयां भयोत्पादिकाम्, उद्दामदावज्वालया तीव्रवनाग्निज्वालया लीढो व्याप्तो यस्तालतरुस्तालवृक्षस्तद्वत्समाकारो यस्यास्तां नालिकेरफलस्योदररज्जुभिर्मध्यस्थितरश्मिभिः 'नारियलकी जटाओंसे' इति हिन्दी घटितं निर्मितं यद्भाजनं पात्रं तदिव स्थपुटितां विषमां नतोन्नतामित्यर्थः यावदायुर्जीवितपर्यन्तं केनापि अविघटनीयामविशीर्यमाणां पटलभेदैः सहिताः सपटलभेदा एकोनपञ्चाशत्-पटलसहिताः सप्तपृथिव्यस्तासु 'रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः' इति सप्तभूमयः, प्रथमनिरयात्प्रथमनरकादारभ्य क्रमात् पटलं पटलं प्रति अभिवृद्धेन वृद्धिंगतेन अपकर्षतो न्यूनान्न्यूनं षडङ्गुलकलिता ये त्रिहस्तास्तैरधिकं सप्तकं तेन प्रकर्षतश्च अधिकादधिकं पञ्चशतेन धनुषां दण्डानां 'चतुर्हस्तानामेकं धनुर्दण्डं वा भवति' समुच्छ्रितां समुन्नतां मूर्तिं शरीरं 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' इति धनंजयः, मुहूर्तमात्रेण घटिकाद्वयमात्रेण पूर्णयन्तः पूर्णां कुर्वन्तः ऊर्ध्वगतिशीलमवलम्बन्त इत्येवंशीला जीवाः स्वभावत ऊर्ध्वगतिशीलाः सन्ति संसारदशायां तु कर्मचक्रायत्तत्वेन यत्र तत्रापि गच्छन्ति', शिततरैरतितीक्ष्णैरनेकशस्त्रैराकीर्णं व्याप्तं यत्तलं तस्मिन् पक्वानि यानि तालफलानि पक्वतालफलानि तद्वत् स्वयमेव स्वत एव स्वयमेव पतन्ति। पुनरनन्तरं पतनवेगेन पतनरयेण बहुयोजनानि यावत् उत्पतन्ति च उच्छलन्ति च। बहुधानेकप्रकारेण विशीर्णमपि गलितमपि अर्ण इव जलमिव तद्गात्रं तच्छरीरं क्षणमात्रेण घटतेतराम् अतिशयेन मिलति। क्षणेन घटितं रचितं प्रांशुप्रतीकं समुन्नतशरीरं येषां तान्

रखते हैं वे घर्मा आदि नरकोंमें जाते हैं। इस प्रकार पूर्वोपार्जित पाप कर्मके बलसे नरकायुका बन्ध कर नरकमें पहुँचे हुए वे प्राणी मुहूर्त मात्रमें ही उस शरीरको पूर्ण कर लेते हैं जो दूसरे प्राणियोंको मारनेमें प्रवीण स्वाभाविक दुर्गन्धके उद्रेकसे उद्वेग उत्पन्न करनेवाला होता है। जिसका आकार अत्यन्त तीव्र दावानलकी ज्वालाओंसे व्याप्त ताड़वृक्षके समान होता है। जो नारियलकी जटाओंसे निर्मित बरतनके समान ऊँचा-नीचा होता है। आयुपर्यन्त जिसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता है और जो पटलके भेदोंसे सहित सातों पृथिवियोंमें प्रथम नरकसे लेकर क्रमसे बढ़ता हुआ कमसे कम सात धनुष तीन हाथ छह अंगुल और अधिकसे अधिक पाँच सौ धनुष ऊँचा होता है। ऊर्ध्वगति स्वभावका अवलम्बन करनेवाले वे प्राणी उस शरीरको पूर्ण कर अत्यन्त तीक्ष्ण नाना प्रकारके शस्त्रोंसे व्याप्त तलमें पके हुए ताल फलके समान स्वयं ही गिरते हैं और पतनके वेगसे बहुत योजन तक पुनः उछलते हैं। उनका शरीर अनेक प्रकारसे छिन्न-भिन्न होनेपर भी पानीके समान क्षण-भरमें मिल जाता है। जिनका ऊँचा शरीर क्षण-भरमें तैयार हो जाता है तथा जो प्रतिकारके अभावमें

मुत्पततः पततश्च नारकान्पातकाः परे पवनपथ एव मननक्षणनिष्पन्नैर्निस्त्रिंशैरंशतः कदलीदण्डानिव खण्डयन्ति । तांश्च परे परस्परं च । कथंचिदवनौ चेत्संचरेयुरमी संजातभीकरदंष्ट्राङ्कुरैर्विक्रियागतशरारुचक्ररूपैः परैश्चर्व्यन्ते । तच्चर्वणभयेन पलायमानास्ते सर्वप्रदेशसुलभाभिरयःसूचिभिः प्रोताङ्घ्रयः कुरङ्गा इव सकीलवागुरां गताः परिस्खलनेन पतित्वा तास्वेव दारुणं क्रोशन्ति । क्रोशरभसविवृततरास्यान्विधाय केचित् 'मूढ, त्वया पुरा खादितं मुदा मांसखण्डमेतत्' इति तप्तताम्रपिण्डं बलेन खादयन्ति । परे तु परदारेष्वतिक्रान्तांस्ताम्रमयतप्तसालभञ्जिकाम् 'तव प्रियाङ्गनेयम्' इति हठादतिगाढमालिङ्गयन्ति । बद्धमन्यवः केचिदन्ये पूर्वमन्यायादस्मत्तो

प्रतीकारविरहात्प्रतीकाराभावात् अनारतं निरन्तरम् उत्पततः समुच्छलतः पततश्च नीचैरायातश्च नारकान् नरके भवा नारकास्तान् पातकाः पापाः परे पुरातननारकाः पवनपथ एव गगन एव मननस्य क्षणे निष्पन्नैर्मनन-क्षणनिष्पन्नैः संकल्पावसरनिर्मितैः निस्त्रिंशैः कृपाणैः कदलीदण्डानिव रम्भादण्डानिव खण्डयन्ति शकलयन्ति । तांश्च नारकान् परे नारकाः खण्डयन्ति । परस्परं च मिथश्च खण्डयन्ति । कथंचित् केनापि प्रकारेण अवनौ पृथिव्यां चेत् अमी नारकाः संचरेयुर्विहरेयुस्तर्हि संजाताः समुत्पन्ना भीकरा भयङ्करा दंष्ट्राङ्कुरा दंष्ट्रा प्ररोहा येषां तैः विक्रियागतं विक्रियाप्राप्तं यत् शरारु खण्डनशीलं चक्रं तद्वद्रूपं येषां तैः परैरन्यैर्नारकैः चर्व्यन्ते दन्तैर्दीर्यन्ते । तेषां चर्वणस्य भयं तेन तच्चर्वणभयेन पलायमाना धावमानाः ते सर्वप्रदेशसुलभाभिः निखिलस्थानप्राप्याभिः अयःसूचिभिर्लोहसूचिभिः प्रोताङ्घ्रयः खचितपादाः सकीलवागुरां सशल्यजालं गताः कुरङ्गा इव हरिणा इव परिस्खलनेन पतित्वा तास्वेवावनीषु दारुणं कठिनं यथा स्यात्तथा क्रोशन्ति रुदन्ति । क्रोशरभसेन रोदनवेगेन विवृततरं विघटिततरमास्यं मुखं येषां तथाभूतान् विधाय कृत्वा केचित् नारकाः 'मूढ ! अरे मूर्ख ! त्वया पुरा पूर्वजन्मनि मुदा हर्षेण खादितं भक्षितम् एतत् मांसखण्डं पिशितखण्डम्' इति निगद्येति शेषः तप्तताम्रपिण्डं संतप्तताम्रस्कन्धं बलेन प्रसह्य खादयन्ति भक्षयन्ति । परे तु अन्ये तु प्रबला नारकाः परदारेषु परस्त्रीषु अतिक्रान्तान् अत्यासक्तान् ताम्रमयी या तप्तसालभञ्जिका पुत्तलिका ताम् 'इयं तव प्रियाङ्गना प्रियवल्लभा' इति निगद्येति शेषः हठात्प्रसभम् अतिगाढं यथा स्यात्तथा आलिङ्गयन्ति आश्लेषयन्ति । बद्धो धृतो मन्युः क्रोधो यैस्तथाभूताः केचित् अन्ये नारकाः पूर्वं प्राग्जन्मनि अस्मत्तो मत्तोऽन्यायात वित्तमत्तेन

निरन्तर ऊपर उछलते तथा नीचे गिरते हैं ऐसे उन नारकियोंको दूसरे पापी जीव आकाशमें ही इच्छा करते ही निर्मित शस्त्रोंसे कदलीदण्डके समान खण्ड-खण्ड कर डालते हैं। उन खण्ड-खण्ड करनेवालोंको दूसरे नारकी खण्ड-खण्ड कर देते हैं और परस्पर भी एक-दूसरेको खण्ड-खण्ड कर देते हैं। यदि ये नारकी किसी तरह पृथिवीपर संचार करनेमें समर्थ हो पाते हैं तो भयंकर डाँढ़ोंके अंकुरोंको धारण करनेवाले बिक्रियासे आगत हिंसक जीवोंका समूह उन्हें चबा डालता है। उनके चबाये जानेके भयसे वे भागते हैं तो समस्त स्थानोंमें सुलभ लोहेकी कीलियोंसे उनके पैर छिद जाते हैं जिससे वे कीलसहित जालमें फँसे हुए हरिणोंके समान स्खलित होकर गिर पड़ते हैं और उन्हीं भूमियोंमें कठोर शब्द करते रहते हैं—चिल्लाते चीखते रहते हैं। चिल्लाहटके वेगसे जिनका मुख अत्यधिक खुल गया था ऐसा उन्हें कर कितने ही लोग 'अरे मूर्ख ! तूने पहले बड़े हर्षसे यह मांसका टुकड़ा खाया था' यह कहकर तपे हुए ताम्बेका पिण्ड जबर्दस्ती खिलाते हैं। कितने ही लोग पर-स्त्रियोंमें आसक्त मनुष्योंको ताम्बे की संतप्त पुतलीका 'यह तुम्हारी स्त्री है' यह कहकर जबर्दस्ती गाढ आलिंगन कराते हैं। क्रोधको धारण करनेवाले कितने ही लोग 'तूने पहले धनसे मत्त होकर अन्यायपूर्वक

१. क० ख० 'तर' नास्ति ।

वित्तमत्तेन धनमपहृतम् । अधुना त्वयास्माभिरुपहृतमूरीक्रियताम्' इत्यङ्गारीकृतमयःपिण्डममीषां करेष्वर्पयन्ति । अपरे तु 'निरपराधानां नः कारयामास कारागृहनिरोधं क्रूरयानया जिह्वया । जह्यात्तामधुना वा' इत्यसत्यवादिचराणां नारकाणां हठादेनामुत्पाटयन्ति । दुरापं मानुष्यं मलीमसीकृतवतः सुरापानपरान् पापिनः पावकक्वाथजलीकृतं लोहं पाययन्ति । भूतपूर्वभूतद्रुहः कांश्चिदूर्ध्वाधोमुखकण्टकशालिशाल्मलीद्रुममारोप्य हतप्राणिलोमगणनाप्रमाणमधोमुखमूर्ध्वमुखं च केचिदाकर्षयन्ति । एवमुरसि क्षुरिकानिखननम्, शिरसि दहनप्रज्वालनम्, अङ्गुलीषु सूच्यारोपणम्, अङ्गच्छेदनमग्निकुण्डपातनमस्त्रधारावस्थापनमन्यादृशमप्यतिनृशंसकर्मपाकमेकादित्रयस्त्रिंशदुदधिप्रमितकालमसंख्यदुःखमनुभवताममीषामतिमात्रबुभुक्षायां गन्धाघ्रायिजन्तुमरणादात्त-

धनमदमत्तेन सता धनमपहृतं चोरितम् अधुना साम्प्रतं त्वया अस्माभिः उपहृतं प्रदत्तं धनम् ऊरीक्रियतां स्वीक्रियताम्' इति अङ्गारीकृतं संतप्य रक्तवर्णीकृतमयःपिण्डं लोहपिण्डम् अमीषां नारकाणां करेषु हस्तेषु अर्पयन्ति निदधति । अपरे तु अन्ये तु 'निरपराधानां निरागसां नोऽस्माकं कारागृहनिरोधं बन्दीगृहनिरोधं क्रूरया दुष्टया अनया जिह्वया रसज्ञया कारयामास विधापयामास । अधुना वा सम्प्रति वा तां जिह्वां जह्यात् मुञ्चेत्' इति निगद्येति शेषः भूतपूर्वा असत्यवादिन इत्यसत्यवादिचरास्तेषां नारकाणां हठात् प्रसभम् एनां जिह्वाम् उत्पाटयन्ति उन्मूलयन्ति । दुरापं दुर्लभं मानुष्यं मनुष्यपर्यायं मलीमसीकृतवतो मलिनीकृतवतः सुरापानपरान् मद्यपानासक्तान् पावकेन वह्निना क्वाथजलीकृतं क्वथितसलिलीकृतं 'काढाके जलरूप किये हुए' इति हिन्दी लोहमयः पाययन्ति पातुं प्रेरयन्ति । केचित् भूतपूर्वा भूतद्रुह इति भूतपूर्वभूतद्रुहः पूर्वं प्राणिद्रुहः कांश्चिन्नारकान् ऊर्ध्वाधोमुखैः कण्टकैः शालते शोभते तथाभूतो यः शाल्मलीद्रुमस्तूलवृक्षस्तम् आरोप्य हता मारिता ये प्राणिनो जीवास्तेषां लोम्नां रोम्णां गणना संख्या तस्याः प्रमाणम् अधोमुखमुपरितो नीचैः ऊर्ध्वमुखं नीचैस्त ऊर्ध्वम् आकर्षयन्ति । एवमनेन प्रकारेण उरसि वक्षस्थले क्षुरिकानिखननम् असिधेनुकानिखातनम्, शिरसि मूर्ध्नि दहनप्रज्वालनम् अग्निप्रज्वालनम्, अङ्गुलीषु सूच्यारोपणं सूचीच्छेदनम्, अङ्गानां हस्तपादादीनां छेदनं कर्तनम्, अग्निकुण्डेऽनलवेद्यां पातनम्, अस्त्रधारासु खड्गाद्यायुधधारारोपणम्, अन्यादृशमपि उक्तदुःखविभिन्नमपि अतिनृशंसकर्मपाकं क्रूरतरकर्मोदयम् एक आदौ येषां त एकादयस्ते च ते त्रयस्त्रिंशदुदधयश्च इत्येकादित्रयस्त्रिंशदुदधयस्तैः प्रमितः कालः समयस्तं 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया । असंख्यदुःखमपरिमितासौख्यम् अनुभवतां भुञ्जानानाम् अमीषाम् अतिमात्रबुभुक्षायां तीव्रक्षुधायां सत्यां गन्धमाजिघ्रन्तीति गन्धाघ्रायिनः ते च ते जन्तवश्चेति गन्धाघ्रायिजन्तवस्तेषां

मुझसे धन हरण किया था अब तू हमारे द्वारा दिये हुए धनको स्वीकृत कर' यह कहकर उनके हाथोंमें अंगार रूप किये हुए लोहेके पिण्ड रखते हैं। कितने ही लोग 'तुमने इस क्रूर जिह्वाके द्वारा हम निरपराध जनोंका बन्दीगृहमें निरोध करवाया था, अब तो उस जिह्वाको छोड़ना चाहिए' यह कहकर पूर्वभवमें असत्य बोलनेवाले नारकियोंकी जिह्वाको जबर्दस्ती उखाड़ लेते हैं। दुर्लभ मनुष्य-जन्मको मलिन करनेवाले मद्यपानमें तत्पर पापी मनुष्योंको अग्निसे काढ़ा रूप किये हुए लोहेको पिलाते हैं। कितने ही लोग पूर्वभवमें प्राणियोंके साथ द्रोह करनेवाले कितने ही नारकियोंको ऊपर तथा नीचेकी ओर मुखवाले कण्टकोंसे सुशोभित सेमरके वृक्षपर चढ़ाकर मृत प्राणियोंके रोमोंकी गिनती बराबर ऊपर-नीचे खींचते हैं। इस प्रकार वक्षःस्थलपर छुरी गाड़ना, सिरपर अग्नि प्रज्वलित करना, अंगुलियोंपर सुई चढ़ाना, अंगच्छेदन करना, अग्निकुण्डमें डालना, शस्त्रकी धारपर रखना तथा इसी प्रकारके अन्य अत्यन्त क्रूर कार्योंके उदयको एकसे लेकर तैंतीस सागर पर्यन्त असंख्य दुःखके साथ अनुभव करनेवाले इन नारकियोंको जब अत्यन्त भूख लगती है तब

गन्धगरलाहारः संपद्यते । पिपासायां प्रतिभासमानमतिमनोहरसलिलं सरः पुनरुष्णरसायते । छायार्थितायां बहुलच्छदतया प्रतिभाताः पादपाः पावकमयपत्राणि तद्गात्रेषु पातयन्ति । किं बहुना । परस्परव्यसनकृतस्ते महादुष्कृततया निष्प्रतिक्रियतया क्वास्महे क्व शयामहे[1] क्व नु तिष्ठामः क्व याम इति स्फोतानुशयाः सर्वदेशे सर्वकाले च सर्वप्रकारां कारणां[2] यावदायुरनुभवन्ति । वयमपि पुरा महाराजबहिष्कृतसन्मार्गा बहुकृत्वस्तत्र कृतावताराः किं नान्वभूम । तथा महामायाजुषां तपोधनद्विषां धनैकलोलुपानां जघनाजीविनां च जीवानां जननस्थानतया निश्चिते तिरश्चि कर्मद्वयभाविनि मानवभवे च भयेन भारवहनेन ताडनसहनेनाभीष्टवियोगेना-

मरणं तस्मात् आत्तः प्राप्तो गन्ध गर्वो यस्य तथाभूतो गरलाहारो विषाहारः संपद्यते प्राप्यते पिपासायामुदन्यायां प्रतिभासमानं प्रतीयमानम् अतिमनोहरसलिलं सुन्दरजलोपेतं सरः कासारः पुनः उष्णरस इवाचरतीति उष्णरसायते छायार्थितायामनातपार्थितायां सत्यां बहुलच्छदतया बहुलपत्रतया प्रतिभाताः प्रतीताः पादपास्तरवः पावकमयपत्राणि अग्निमयदलानि तद्गात्रेषु तदीयशरीरेषु पातयन्ति । किं बहुना । परस्परमन्योन्यं व्यसनं पीडां कुर्वन्तीति परस्परव्यसनकृतः ते नारका महादुष्कृततया महापापत्वेन निष्प्रतिक्रियतया प्रतिकाररहितत्वेन क्व स्थाने आस्महे उपविशाम क्व शयामहे शयनं कुर्मः क्व नु तिष्ठामः स्थिता भवामः । क्व यामो गच्छामः इति स्फीतानुशया विततपश्चात्तापाः सन्तः सर्वदेशेऽखिलस्थाने सर्वकाले च निखिलानेहसि च सर्वप्रकारां कारणां पीडां यावदायुर्जीवितपर्यन्तम् अनुभवन्ति । वयमपि पुरा पूर्वं हे महाराज ! बहिष्कृतस्त्यक्तः सन्मार्गो यैस्तथाभूताः बहुकृत्वोऽनेकवारान् तत्र नरकेषु कृतावतारा गृहीतजन्मानः किं न अन्वभूम । एवं श्वभ्रगतिदुःखानि वर्णयित्वान्यगतिदुःखानि वर्णयितुमाह—तथेति—तथा तेन प्रकारेण महामायाजुषां तीव्रमायाचारयुक्तानां तपोधनान् द्विषन्तीति तपोधनद्विषस्तेषां साधुद्वेषिणाम् धनस्यैकलोलुपाः प्रमुखलुब्धास्तेषां जघनाजीविनां निकृष्टजीविकायुक्तानां च जीवानां प्राणिनां जननस्थानतया उत्पत्तिस्थानतया निश्चिते नियते तिर्यश्चि पशुयोनौ, कर्मद्वयेन सुकृतदुरितकर्मयुगेन भवतीत्येवंशीले तस्मिन् मानवभवे च मनुष्यपर्याये च भयेन त्रासेन भारवहनेन भारधारणेन, ताडनसहनेन पीडनसहनेन, अभीष्टाः स्त्रीपुत्रादयस्तेषां वियोगेन विरहेण अनिष्टाः

गन्धको सूँघनेवाले जन्तुओंके मरणसे सगर्व विषमय आहार प्राप्त होता है अर्थात् उन्हें ऐसा विषमय आहार प्राप्त होता है कि जिसकी गन्धको सूँघनेवाले जन्तु तत्काल मरणको प्राप्त हो जाते हैं । प्यास लगनेपर सामने प्रतिभासित होनेवाला अत्यन्त मनोहर जलसे युक्त सरोवर उष्ण रसके समान आचरण करने लगता है । छायाकी इच्छा होनेपर बहुत भारी पत्तोंसे युक्तकी तरह प्रतिभासित होनेवाले वृक्ष उन नारकियोंके शरीरोंपर अग्निमय पत्ते गिराते हैं । अधिक क्या कहा जाय ? परस्पर पीड़ा पहुँचानेवाले वे नारकी महापापके कारण तथा प्रतीकारसे रहित होनेके कारण 'कहाँ बैठें ? कहाँ सोवें ? कहाँ खड़े होवें ? कहा जावें ?' इस तरह बहुत भारी पश्चात्ताप करते हुए सब स्थानों तथा सब समयोंमें जब तक आयु रहती है तब तक सब प्रकारकी पीड़ा भोगते रहते हैं । हे महाराज ! हम लोगोंने भी पहले समीचीन मार्गका बहिष्कार कर अनेकों बार उन नरकोंमें जन्म ले क्या उस पीड़ाको नहीं भोगा है ? तथा महामायाचारसे युक्त, मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले, धनके लोभी और निम्न आजीविका करनेवाले जीवोंके उत्पत्तिस्थानके रूपसे निश्चित तिर्यञ्च गतिमें और शुभ अशुभ—दोनों कर्मोंसे होनेवाले मनुष्य भवमें भयसे, भार ढोनेसे,

१. म० सुप्यामहे । २. पीडामिति टि० ।

निष्टसंयोगेन भक्ष्यान्वेषणेन रक्षकाभावेन वृषस्यया विषसंपर्केण परस्परस्पर्धया गर्धया गर्भव्यथया क्षुधा तृषा शुचा रुषा रुजा च महाभाग भवदिदं द्वन्द्वमिदंतया न पार्यते विवरितुम् । विशेषतश्च नराणां परिभवपराराधनवचनपारुष्यमननकालुष्यभुजिष्यद्वेष्यभावेर्ष्यादारिद्र्यादिभिरुद्रेकितोऽयमुपद्रवप्रकारः प्रत्यक्षनरकायते । सुकृतोदयेन सुखायमानानां सुराणामपि परनिरपेक्षभक्षणरक्षणाद्युपाये निरपायेन निसर्गतः सिद्धेऽपि कर्मबन्धतया दुष्परिहारपरिभवजननी पराधीनवृत्तिर्मर्त्यप्रवृत्तेरप्यधिकतरमरुंतुदा । प्रत्युत मरणभीत्या पूर्वममृताहरणादिभिरनुभूतमखिलमपि सौख्यं क्षण एव नारकदुःखायते । ततः सर्वथाप्यसारे संसारे मन्देतरभाव एव द्वन्द्वस्य न खलु सर्वथाप्यभावः, तत्रातर्कितमरणमपगतशरणमशुचिसदनमनल्पव्यसनमनेकविधापायमपि मानवकायमपवर्गोपायतया

सिंहव्याघ्रोरगादयस्तेषां संयोगेन, भक्ष्यान्वेषणेन खाद्यमार्गणेन रक्षकाभावेन वृषस्यया मैथुनेच्छया विषसंपर्केण गरलसंयोगेन, परस्परस्पर्धया मिथोमात्सर्येण, गर्धया लोलुपतया, क्षुधा बुभुक्षया, तृषा पिपासया, शुचा शोकेन, रुषा क्रोधेन, रुजा रोगेण च भवत् जायमानम् इदं द्वन्द्वं दुःखं हे महाभाग ! हे महानुभाव ! इदंतया इत्थंभूतत्वेन विवरितुं वर्णयितुं न पार्यते न शक्यते । विशेषतश्च प्रमुखरूपेण च नराणां मनुष्याणां परिभवस्तिरस्कारः पराराधनमन्यजनसेवनम् वचनपारुष्यं वचनस्य कर्कशत्वं मननस्य ज्ञानस्य कालुष्यं मालिन्यं भुजिष्यैर्दासैः सह द्वेष्यभावः शत्रुत्वं ईर्ष्या मात्सर्यं दारिद्र्यं निर्धनत्वम् एषां सर्वेषां द्वन्द्वः, ते आदौ येषां तथाभूतैः उद्रेकितो वृद्धिंगतोऽयम् उत्पातप्रकारः उत्पातरूपं प्रत्यक्षनरकायते साक्षाच्छ्वभ्रवदाचरति । सुकृतोदयेन पुण्योदयेन सुखायमानानां सुखमनुभवतां सुराणामपि देवानामपि परनिरपेक्षश्चासौ इतरसहायनिरपेक्षश्चासौ भक्षणाद्युपायश्च तस्मिन् निरपायेन निर्विघ्नतया निसर्गतः स्वभावतः सिद्धेऽपि कर्मबन्धतया दुष्परिहारोऽनिवार्यो यः परिभवस्तिरस्कारस्तस्य जननी समुत्पादिका पराधीनवृत्तिः मर्त्यप्रवृत्तेरपि नरप्रवृत्तेरपि अधिकतरं भूयिष्ठम् अरुन्तुदा मर्मस्थलपीडिका । प्रत्युत मरणभीत्या मृत्युभयेन पूर्वम् अमृताहरणादिभिः सुधाभोजनप्रभृतिभिः अनुभूतम् अखिलमपि सौख्यं क्षण एव नारकदुःखमिवाचरतीति नारकदुःखायते । ततस्तस्मात् कारणात् सर्वथाऽपि सर्वप्रकारेणापि असारे सारहीने संसारे भवे द्वन्द्वस्य दुःखस्य मन्देतरभाव एव हीनाधिक्यमेवास्ति न खलु निश्चयेन सर्वथापि अभावो वर्तते इति शेषः । तत्र भवे अतर्कितं मरणं यस्य तथाभूतमाकस्मिकापायम् अपगतशरणं शरणरहितम्, अशुचिसदनमपवित्रतास्पदम् अनल्पव्यसनं भूरिदुःखम् अनेकविधा बहवोऽपाया नाशा यस्य

ताडना सहन करनेसे, इष्ट वियोगसे, अनिष्ट संयोगसे, भोजन सामग्रीके खोजनेसे, रक्षकोंका अभाव होनेसे, मैथुनकी इच्छासे, विषके सम्पर्कसे, परस्परकी ईर्ष्यासे, लालसासे, गर्भकी पीड़ासे, भूखसे, प्याससे, शोकसे, रोषसे, और रोगसे होनेवाला यह दुःख 'इस प्रकारका था' हे महाभाग ! यह नहीं कहा जा सकता। खास कर मनुष्योंका अनादर, दूसरेकी सेवा, वचनोंकी परुषता, विचारकी कलुषता, सेवक जनोंके द्वेष्यभाव, ईर्ष्या, तथा दरिद्रता आदिसे उद्रेकको प्राप्त हुआ यह उपद्रवका प्रकार प्रत्यक्ष नरकके समान जान पड़ता है। पुण्यके उदयसे सुखका अनुभव करनेवाले देवोंके भी परसे निरपेक्ष भोजन तथा रक्षा आदिके उपाय यद्यपि निर्विघ्न रूपसे स्वतः सिद्ध हैं तथापि कर्म बन्धका कारण होनेसे दुष्परिहार पराभवको उत्पन्न करनेवाली पराधीन वृत्ति उन्हें मनुष्यकी प्रवृत्तिकी अपेक्षा अत्यधिक पीड़ा पहुँचानेवाली है। बल्कि पहले अमृत भक्षण आदिसे भोगा हुआ सबका सब सुख मरणके भयसे क्षण भरमें ही नरकके दुःखके समान आचरण करने लगता है। इसलिए सब प्रकारसे असार इस संसारमें दुःखकी हीनाधिकता तो हो सकती है पर सर्वथा अभाव नहीं हो सकता। उस चतुर्गति रूप संसारमें मनुष्यका शरीर यद्यपि अचानक ही मरणको प्राप्त हो जाता है, शरणसे रहित है,

१ म० परनिरपेक्षणभक्षणरक्षणाद्युपाये ।

राजेन्द्र, मनोरथेनापि दुर्लभं तोयधिमध्यमग्नमणिमिव लब्ध्वापि मोहविप्रलब्धाः केचन मुग्धा दग्धुकामा इव भस्मने मणिं कामं कामसौख्यमात्रफलं कल्पयन्ति । पार्थिवेन्द्र, पदार्थयाथात्म्यदृशस्तु भवादृशः पुनरीदृशपारवश्यपराचीनाः परस्पराविरोधेन साधितत्रिवर्गाः स्वयमपवर्गमपि साधु साधयेयुरिति धर्मदेशनानन्तरं जन्मान्तरप्रबन्धमपि जननाथनिर्बन्धेन विनीतबन्धुर्विवव्रे ।

§ २८३. भूभृतां पुरोग, पुरा खलु भवान् धातकीखण्डललामायमानभूमितिलकाधिपतेः पवनवेगनाम्नो धात्रीपतेर्यशोधर इति पुत्रो भूत्वा कदाचन भूरिपरिकरेण नगरबहिरुद्याने सरस्तीरे विहरमाणस्तत्र रमणीयमालोक्य जालपादशिशुं लीलार्थं वर्धयितुमेनं परिजनमुखतः पाणीकृत्य निवर्तयामास । वृत्तान्तमेतमुपश्रुत्य श्रुतशाली भवन्तमामन्त्र्य भवत्पिता 'पातककृत्यमिदं चतुष्पदां

तथाभूतमपि मानवकायं मनुजशरीरम् अपवर्गस्य मोक्षस्योपायतया हे राजेन्द्र ! मनोरथेनापि दुर्लभं दुष्प्राप्यं तोयधिमध्यमग्नमणिमिव सागरमध्यपतितरत्नमिव लब्ध्वापि प्राप्यापि मोहेन विप्रलब्धाः प्रतारिताः केचन मुग्धा मूढा भस्मने भूत्यै मणिं रत्नं दग्धुकामा इव भस्मीकर्तुमनस इव कामं यथेच्छं यथा स्यात्तथा कामसौख्यमात्रं फलं यस्य तथाभूतं कल्पयन्ति निश्चिन्वन्ति । पार्थिवेन्द्र ! हे नृपेन्द्र ! पदार्थानां जीवाजीवादीनां याथात्म्यं पश्यन्तीति पदार्थयाथात्म्यदृशस्तु भवादृशस्त्वादृशा पुनः ईदृशपारवश्यात् एतद्विधपारतन्त्र्यात् पराचीनाः विमुखाः परस्पराविरोधेन मिथोऽविरोधेन साधितः त्रिवर्गो धर्मार्थकामसमूहो यैस्तथाभूताः सन्तः स्वयम् अपवर्गमपि मोक्षमपि साधु सम्यक् साधयेयुः सिद्धं कुर्युः इति धर्मदेशनानन्तरं धर्मोपदेशात् पश्चात् विनीतानां नम्राणां बन्धुर्हितावह इति विनीतबन्धुर्मुनिः जननाथनिर्बन्धेन राजेश्वरजीवंधराग्रहेण अन्यत् जननं जननान्तरं जन्मान्तरं तस्य प्रबन्धस्तमपि विवव्रे कथितवान् ।

§ २८३. भूभृतामिति—भूभृतां राज्ञां पुरोग ! शिरोमणे ! पुरा पूर्वं खलु भवान् धातकीखण्डस्य तन्नामद्वितीयद्वीपस्य ललामायमानं भूषणायमानं यद् भूमितिलकं नगरं तस्याधिपतेः स्वामिनः पवनवेगनाम्नो धात्रीपते राज्ञो यशोधर इति नामधेयः पुत्रो भूत्वा कदाचन जातुचित् भूरिपरिकरेण महताटोपेन नगरबहिरुद्याने पुरबाह्योपवने सरस्तीरे कासारतटे विहरमाणो भ्रमन् तत्र रमणीयं सुन्दरं जालपादशिशुं मरालबालम् आलोक्य दृष्ट्वा लीलार्थं केल्यर्थं वर्धयितुम् एनं परिजनमुखतः सहयायिजनद्वारा पाणीकृत्य गृहीत्वा निवर्तयामास प्रत्याजगाम । एतं वृत्तान्तमुदन्तम् उपश्रुत्य निशम्य श्रुतशाली शास्त्रज्ञानेन

अपवित्रताका स्थान है, अत्यधिक दुःखोंसे युक्त है और अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओंसे सहित है तथापि मोक्षका उपाय होनेसे हे राजेन्द्र ! मनोरथसे भी दुर्लभ है—इच्छा करनेपर भी प्राप्त नहीं होता । समुद्रके मध्यमें डूबे हुए मणिके समान इसे प्राप्त कर भी मोहसे ठगे गये कितने ही मूर्ख प्राणी भस्मके लिए मणिको जलानेकी इच्छा करते हुए की तरह स्वेच्छानुसार काम-सुखका उपभोग करना मात्र ही उसका फल समझते हैं। हे राजेन्द्र ! किन्तु पदार्थके यथार्थ स्वरूपको देखनेवाले आप जैसे पुरुष ऐसी पराधीनतासे विमुख रहकर परस्परका विरोध न करते हुए त्रिवर्गको सिद्ध करते हैं और अपवर्ग—मोक्षको भी अच्छी तरह सिद्ध कर सकते हैं। इस प्रकार धर्मोपदेशके बाद विनीत जनोंके बन्धु मुनिराजने महाराज जीवन्धरके आग्रहसे उनके जन्मान्तरकी कथा भी कही ।

§ २८३. उन्होंने कहा कि हे राजाओंके अग्रेसर ! आप पूर्व जन्ममें धातकीखण्ड द्वीपके आभरणभूत भूमितिलक नामक नगरके स्वामी पवनवेग नामक राजाके यशोधर नामक पुत्र थे। वहाँ किसी समय बहुत भारी परिकरके साथ नगरके बाह्य उद्यानमें घूमते हुए आपने हंसका एक सुन्दर बच्चा देखा। क्रीड़ाके अर्थ बढ़ानेके लिए आप उसे परिजनके द्वारा पकड़वा कर हाथमें ले लौट आये । इस वृत्तान्तको सुनकर शास्त्रसे सुशोभित

पततां च [1]स्वास्पदाद्वियोजनम् । यो जनस्तथा चेष्टते स कष्टायते । आत्मज, धर्मो हि नामात्मनोऽन्यस्य च हिते प्रवृत्तिरहितनिवृत्तिश्च । तथा सति जन्तूनां छेदनरोधनताडनतापनादीनि पापनिमित्तानि त्वया परिहर्तव्यानि भवेयुः। एवमात्मप्रतिकूलाना[2]मन्यजनेऽप्यनाचरणं गणयित्वा कारुणिकेन त्वया स्वहिंसने स्वाहितवचःकथने स्वद्रव्यापहरणे स्वस्त्रीग्रहणे च स्वस्य यथा व्यथा तथा परहिंसादिषु परेषामप्येषा स्यादिति मनीषां प्रवर्त्य तन्निवृत्तिरपि कर्तव्या। अङ्ग, पुनरर्थेष्वतिमात्रलोलुपता लोकद्वयेऽप्यात्मनः कृत्स्नव्यसननिदानतया निराकरणीया। लौकिकैरपि सप्त व्यसनानीति पापहेतुतया पापर्धिपरदारचौर्यसुराद्यूतपिशितगणिकास्तु गणिताः । किमुत जैनैः । तस्मादिह गृह-

शोभमानो भवत्पिता भवन्तम् आमन्त्र्य आकार्य 'चतुष्पदां पशूनां पततां च पक्षिणां च स्वास्पदात्स्वस्थानात् वियोजनं पृथक्करणम् इदं पातककृत्यं पापकार्यं वर्तत इति शेषः। यो जनः पुरुषस्तथा तेन प्रकारेण चेष्टते पशून् पतत्रश्च स्वास्पदाद्वियोजयति स कष्टायते कष्टमनुभवति । आत्मज ! हे पुत्र ! धर्मो हि नाम आत्मनः स्वस्यान्यस्य च हिते प्रवृत्तिः अहितान्निवृत्तिश्चेत्यहितनिवृत्तिः । तथा सति तथात्वे सति त्वया भवता जन्तूनां प्राणिनां छेदनं कर्णपुच्छादिकर्तनम् रोधनं गोष्ठ्यादौ पञ्जरादौ वा निरोधनम् ताडनं कशादण्डादिभिः पीडनम् तापनमुष्णशलाकादिभिर्दाहनम् एषां द्वन्द्वस्तदादीनि पापनिमित्तानि पापकारणानि परिहर्तव्यानि त्याज्यानि भवेयुः । एवमनेन प्रकारेण आत्मप्रतिकूलानां स्वविरुद्धानां कार्याणाम् अन्यजनेऽपि पुरुषान्तरेऽपि अनाचरणमप्रवर्तनं चरणं चारित्रं गणयित्वा बुद्ध्वा कारुणिकेन दयालुना त्वया स्वहिंसने स्वस्य हिंसायां स्वाहितवचःकथने स्वस्याहितं प्रतिकूलं यद्वचो वचनं तस्य कथने स्वद्रव्यस्यापहरणं तस्मिन् स्वस्य स्त्रिया ग्रहणे च स्वस्यात्मनो यथा येन प्रकारेण व्यथा पीडा भवतीति शेषः तथा तेन प्रकारेण परहिंसादिषु परघातप्रभृतिषु परेषामन्येषामपि एषा व्यथा स्याद् इति मनीषां बुद्धिं प्रवर्त्य तस्या निवृत्तिरिति तन्निवृत्तिरपि तत्परिहारोऽपि कर्तव्या। अत्र प्रासङ्गिकः श्लोकः—श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् । आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ (महाभारते) । अङ्ग ! वत्स ! पुनरेतदनन्तरम् अर्थेषु धनेषु अतिमात्रलोलुपता सातिशयतृष्णा लोकद्वयेऽपि पर्यायद्वयेऽपि आत्मनः स्वस्य कृत्स्नव्यसननिदानतया समग्रदुःखकारणत्वेन निराकरणीया दूरीकरणीया । लौकिकैरपि लौकिकजनैरपि 'सप्त व्यसनानि' इति पापहेतुतया दुरितनिदानतया पापर्द्धिराखेटः परदाराः परस्त्रीसेवनम्, चौर्यमदत्तादानम्, सुरा मदिरापानं द्यूतं द्यूतक्रीडनम् पिशितं मांसभक्षणं गणिका वेश्यासेवनम् एषां द्वन्द्वः पापर्द्धिपरदारचौर्य-

आपके पिताने आपको बुलाकर समझाया कि चौपायों अथवा पक्षियोंको अपने स्थानसे वियुक्त करना यह पाप कार्य है। जो मनुष्य वैसी चेष्टा करता है वह कष्ट भोगता है। हे पुत्र ! अपने तथा दूसरेके हितमें प्रवृत्ति करना और अहितसे निवृत्ति धर्म है। ऐसा होनेपर तुम्हें जीवोंको छेदना, ताड़ना तथा सन्तापित करना आदि पापके कार्य छोड़ देने चाहिए। इस तरह 'जो कार्य अपने लिए प्रतिकूल हैं उनका दूसरे मनुष्यके विषयमें भी आचरण नहीं करना चाहिए' ऐसा समझ जिस प्रकार अपनी हिंसामें, अपने लिए अहितकारी वचनके कहनेमें, अपने द्रव्यके अपहरणमें, तथा अपनी स्त्रीके ग्रहणमें अपने आपको पीड़ा होती है उसी प्रकार दूसरोंकी हिंसा आदिके होनेपर दूसरोंको भी पीड़ा होती है ऐसा विचार कर तुम्हें दयावन्त हो पर-हिंसा आदिका भी त्याग करना चाहिए। प्रिय पुत्र ! इसके सिवाय धनमें जो अत्यन्त लोलुपता है वह दोनों लोकोंमें अपने समस्त दुःखोंका मूल कारण है अतः उसका निराकरण करना चाहिए। लौकिक जनोंने भी पापका कारण होनेसे शिकार, परस्त्री, चोरी, मदिरा, द्यूत, मांस और वेश्याका सेवन करना इन्हें सात व्यसन माना है फिर जैनोंकी

१ म० स्वपदात् । २ क० आत्मधर्मप्रतिकूलानाम् ।

मेधिनामस्माकं जैनमार्गे क्रमादपवर्गसाधनतया कथितानि मधुमद्यमांसनिवृत्तिविशिष्टतयाष्टौ मूलगुणा इति प्रपञ्चितानि पञ्चाणुव्रतानि व्रतत्वेन परिगृह्यापोह्य चापरिगृह्यकाणामपि भावयितुमक्षमम्[1] मक्षपक्षपातं पातकित्वसंपादिवेशाभिनिवेशं च वत्स, धर्मवत्सलो भवन्भवपारावारपारप्रापणं परमेश्वरपदपङ्केरुहद्वन्द्वममन्दभक्तिर्भज त्वम्' इति भवते हितमुपादिक्षत् ।

§ २८४. क्षत्रियोत्तम, तातपादेन प्रणयेन प्रणीतं वचः प्रणामाञ्जलिचुम्बितोत्तमाङ्गो भवन्भवानुत्तमपुरुषतया वित्तोपलम्भी रिक्त इव प्रीयमाणः प्रतिगृह्णन्निगृह्णंश्चात्मानम् 'अनात्मज्ञेन मया कृतमज्ञानोचितम्' इत्यपचितिमप्यतिमहतीं भगवतः स्वदुश्चित्तप्रायश्चित्ततया विधिना विदधानस्तावत्

सुराद्यूतपिशितगणिकास्तु गणिताः प्रसंख्याताः किमुत जैनैः पारलौकिकहितोद्यतैः तस्मात्कारणात् इह जैनमार्गे मोक्षमार्गे अस्माकं गृहमेधिनां गृहस्थानां क्रमात् अपवर्गसाधनतया मोक्षहेतुत्वेन कथितानि निर्दिष्टानि मधुमद्यमांसानां माक्षिकमदिरापिशितानां निवृत्तिस्त्यागस्तद्विशिष्टतया अष्टौ मूलगुणा इति प्रपञ्चितानि विस्तारितानि पञ्चाणुव्रतानि—अहिंसाणुव्रतं सत्याणुव्रतम् अचौर्याणुव्रतं ब्रह्मचर्याणुव्रतं परिग्रहपरिमाणाणुव्रतं चेत्यणुव्रतपञ्चकम् 'मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् । अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः' । इति रत्नकरण्डश्रावकाचारे समन्तभद्रस्वामिवचनम् । व्रतत्वेन व्रतरूपेण परिगृह्य स्वीकृत्य अपरिगृह्यकाणामपि लौकिकानामपि जनानां भावयितुं चिन्तयितुम् अक्षमम् अयोग्यम् अक्षेषु हृषीकेषु पक्षपातोऽभिनिवेशस्तम् पातकित्वं सपापत्वं संपादयतीत्येवंशीलो यो वेशाभिनिवेशो भोगाभिप्रायस्तं च अपोह्य त्यक्त्वा वत्स ! हे तात ! धर्मवत्सलो धर्मस्नेहयुक्तो भवन् भव एव पारावारो भवपारावारस्तस्य पारस्य प्रापणं प्राप्तिं परमेश्वरस्यार्हतः पदपङ्केरुहयोश्चरणाब्जयोर्द्वन्द्वं युगं च अमन्दभक्तिः सातिशयभक्तियुक्तः सन् त्वं भज सेवस्व' इतीत्थं भवते हितं श्रेय उपादिक्षत् उपदिदेश ।

§ २८४. क्षत्रियेषूत्तमः क्षत्रियोत्तमस्तत्सम्बुद्धौ हे क्षत्रियोत्तम ! हे नृपेन्द्र ! तातपादेन पूज्यपित्रा प्रणयेन स्नेहेन प्रणीतं निर्दिष्टं वचःप्रणामाञ्जलिना चुम्बितं स्पृष्टमुत्तमाङ्गं शिरो यस्य तथाभूतो भवन् भवांस्त्वम् उत्तमपुरुषतया लोकोत्तरपुरुषत्वेन वित्तोपलम्भी धनोपलम्भी रिक्त इव दरिद्र इव प्रीयमाणः प्रसन्नः प्रतिगृह्णन् स्वीकुर्वन् 'आत्मानं न जानातीत्यनात्मज्ञस्तेन मया अज्ञानोचितं मूढजनार्हं कृतम्' इति आत्मानं निगृह्णन् दण्डयँश्च स्वदुश्चित्तस्य स्वकीयदुर्मनसः प्रायश्चित्ततया प्रायश्चित्तत्वेन भगवतो जिनेन्द्रस्यातिमहतीं विशालतराम् अपचितिं पूजां विधिना यथाविधि विदधानः कुर्वाणः तावत् साकल्येन 'अधुना सम्प्रति अस्माभिः अनुभुज्य-

तो बात ही क्या है ? इसलिए हम गृहस्थोंके लिए इस जैनमार्गमें क्रम-क्रमसे मोक्षका साधन होनेसे जिनका कथन किया गया है तथा जो मधु मद्य और मांसके त्यागसे विशिष्ट होनेके कारण अष्टमूल गुण रूपसे उल्लिखित हैं ऐसे पाँच अणुव्रतोंको व्रत रूपसे स्वीकृत कर तथा अन्य धर्मियोंके लिए भी जो विचार करनेके अयोग्य है ऐसी द्यूतासक्तिको, एवं पापी बनानेवाली वेश्यासक्तिको छोड़कर हे वत्स ! धर्मके स्नेही बनो और संसार-सागरके पार पहुँचानेवाले परमेश्वरके चरणकमलोंके युगलकी बहुत भारी भक्तिके साथ सेवा करो' इस प्रकार आपके लिए हितका उपदेश दिया।

§ २८४. मुनिराजने कहा कि हे क्षत्रियोत्तम ! पिताने स्नेहपूर्वक जो वचन कहे थे उन्हें आपने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर ग्रहण किया और उत्तम पुरुष होनेके कारण आप उस प्रकार प्रसन्न हुए जिस प्रकार कि धनको प्राप्त करनेवाला दरिद्र मनुष्य होता है। अपने आपका निग्रह करते हुए आपने इस विचारसे कि 'मैंने आत्मस्वरूपको न जानकर अज्ञानीके योग्य कार्य किया है' अपने दुर्विचारोंके प्रायश्चित्तके रूपमें भगवान् जिनेन्द्रकी बहुत बड़ी

[1] क० ख० ग० भावयितुं दक्षम् ।

'अधुनास्माभिरनुभुज्यमानमपि भुक्तपूर्वमेव [1]मम पूर्वभवानामानन्त्यात् । अनन्तमपि पुद्गलाभोगं भोगोपभोगत्वेन यदहमभुक्षि । भोक्तुं भुक्तोज्झितमुच्छिष्टमिव विशिष्टेन केन विचोद्यताम् ।' इति विचारणप्रचीयमानवैराग्यः प्रव्रज्य तपोबलादबलाभिरमूभिः सममरसुखमनुभूय भूयोऽपि भूमौ भूपतिरभूत् । राजकुञ्जर, पुरा राजहंसशिशोः पञ्जरबन्धेन बन्धुविरहविधिना च लोकबन्धोर्भवतोऽपि बन्धुवियोगेन सह बन्धः किलासीत्' इति ।

§ २८५. एवमकारणबन्धोश्चारणेन्द्रात्कोकनदबन्धोः कोकनदराशिरिव लब्धप्रबोधः स लब्धवर्णाग्रणीर्धरणीपतिः, पीयूषे स्थिते विषमग्न इव विषीदन्, साम्राज्यात्तपोराज्ये रज्यन्,

---

मानमपि सेव्यमानमपि पूर्वं भुक्तमिति भुक्तपूर्वं तदेव भुक्तपूर्वमेव मम राजपुत्रस्य पूर्वभवानां पूर्वपर्यायाणाम् आनन्त्यात् । यद्यस्मात् कारणात् अहं भोगोपभोगत्वेन 'भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः । उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पाञ्चेन्द्रियो विषयः ।।' इति रत्नकरण्डश्रावकाचारे भोगोपभोगलक्षणम् । अनन्तमपि पुद्गलाभोगम् अभुक्षि भुक्तवान् ततो भुक्तोज्झितं भुक्त्यक्तम् उच्छिष्टमिव भोक्तुं केन विशिष्टेन विचोद्यताम् संगृह्यताम् ।' इतीत्थं विचारणेन विमर्शेन प्रचीयमानं वर्द्धमानं वैराग्यं यस्य तथाभूतः सन् प्रव्रज्य दीक्षामादाय तपोबलात् तपसः सामर्थ्यात् अमूभिरेताभिः अबलाभिर्नारीभिः समं सार्धम् अमरसुखं देवसातम् अनुभूय भूयोऽपि पुनरपि भूमौ पृथिव्यां भूपतिः पृथिवीपतिः अभूत् । राजकुञ्जर हे नृपश्रेष्ठ ! पुरा यशोधरपर्याये राजहंसशिशोर्मरालबालकस्य पञ्जरबन्धेन शलाकागृहबन्धनेन बन्धूनां मातापित्रादीनामिष्टजनानां विरहो वियोगस्तस्य विधिना करणेन च लोकबन्धोर्जगद्धितस्य भवतोऽपि तवापि बन्धुवियोगेन इष्टजनविरहेण सह बन्धः किलेति वाक्यालंकारे आसीद् बभूव ।

§ २८५. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण अकारणबन्धोरहेतुहितकारकात् चारणेन्द्रात् चारणर्षिप्रमुखात् कोकनदबन्धोः सूर्यात् कोकनदराशिरिव रक्तारविन्दवृन्दमिव लब्धः प्राप्तः प्रबोधः प्रकृष्टज्ञानं पक्षे विकासो येन तथाभूतः स लब्धवर्णानां विदुषामग्रणीः प्रधानो धरणीपतिर्नृपो जीवंधरः पीयूषे स्थिते अमृते विद्यमाने विषमग्न इव गरलनिमग्न इव विषीदन् खेदमनुभवन्, साम्राज्यात् तपोराज्ये तप एव राज्यं

पूजा की । उसी समय आपने यह विचार भी किया कि 'इस समय हम जो सुख भोग रहे हैं वह भुक्त पूर्व है—उसे हम पहले भोग चुके हैं क्योंकि हमारे पूर्वभव अनन्त हो चुके हैं । अनन्त पुद्गलके समूहका मैं भोगोपभोगके रूपमें उपभोग कर चुका हूँ इसलिए यह सब भोग कर छोड़े हुएके समान उच्छिष्ट हैं । ऐसा कौन विशिष्ट पुरुष होगा जो इसे ग्रहण करेगा ?' इस विचारके आते ही आपका वैराग्य बढ़ गया जिससे आपने दीक्षा ले ली । तदनन्तर तपके बलसे इन स्त्रियोंके साथ स्वर्ग सुखका उपभोग कर आप पुनः पृथिवीपर राजा हुए हैं । हे राजश्रेष्ठ ! आपने पूर्वभवमें राजहंसके बच्चेको पिंजड़ेमें बन्द किया था तथा उसे उसके बन्धुजनोंसे वियुक्त किया था इसलिए लोकके बन्धु-स्वरूप आपका बन्धुजनोंके वियोगके साथ-साथ बन्धन हुआ ।

§ २८५. इस तरह जिस प्रकार सूर्यसे कमलराशिको प्रबोध—विकास होता है उसी प्रकार अकारण बन्धु तथा चारण ऋद्धिधारियोंमें श्रेष्ठ मुनिराजसे जिन्हें प्रबोध—सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ था, जो विद्वानोंमें अग्रेसर थे ऐसे जीवन्धर महाराज अमृतके रहते हुए विषमग्नके

---

१ म० 'मम' नास्ति

नियोज्य इव नीचैरुपचरन् वाचंयमवृन्दारकम्, सदारः सावरजः सवयस्यश्च सादरं सप्रणामं सविनयं सगुणस्तवं सयाचनं [1]चापृच्छ्य राजपुरीमगच्छत् । तत्र चाहूतप्रविष्टान् पुरुहूतगुरुकृत्यानमात्यान् पुरौकसः पुरोधसं च पुरातननिजवंशजानामपि शमिनि वयसि योगेन तनुत्यजां प्राचुर्यं प्रदर्शयन् प्रकृतिस्थान् कृत्वा पुनः कर्तव्यं च तैर्मन्त्रयित्वा नियन्त्रणापूर्वकं याचितेनापि नन्दाढ्येन विरक्तिदार्ढ्याद् विसृज्यमानं राज्यं कवचहराय वंश्यज्येष्ठाय श्रेष्ठगुणपात्राय पैतृकं नाम संदधते गन्धर्वदत्तानन्दनाय दत्तवान् । उक्तवांश्चास्मै 'वत्स, सदा धर्मवत्सलेन प्रजानुरागिणा प्रकृतिरञ्जिना स्थानप्रदायिना न्यायार्थगवेषिणा निरर्थकविधिद्वेषिणा स्मितपूर्वभाषिणा गुणवृद्धसेविना दुर्जनवर्जिना

तस्मिन् रज्यन् रागं कुर्वाणः, नियोज्य इव सेवक इव वाचंयमा मुनयस्तेषु वृन्दारकं श्रेष्ठं चारणर्षिं नीचैर्नम्रत्वेन उपचरन् सेवमानः, दारैः सह वर्तमानः सदारः सस्त्रीकः, सावरजो लघुसनाभिसहितः, सवयस्यश्च समित्रश्च सादरं ससत्कारं सप्रणामं सनमस्कारं सविनयं विनयोपेतं सगुणस्तवं गुणानां स्तवेन स्तुत्या सहितं सयाचनं साभ्यर्थनं च आपृच्छ्य राजपुरीं स्वराजधानीम् अगच्छत् । तत्र चेति—तत्र च राजपुर्याम् आदावाहूताः पश्चात्प्रविष्टा इत्याहूतप्रविष्टास्तान् आकारितकृतप्रवेशान् पुरुहूतादपि पुरन्दरादपि गुरु श्रेष्ठं कृत्यं कार्यं येषां तथाभूतान् अमात्यान् मन्त्रिणः पुरौकसो नगरवासिनः पुरोधसं पुरोहितं च पुरातनाः पूर्वभवा ये निजवंशजा आत्मकुलोत्पन्नास्तेषामपि शमिनि अन्त्ये वयसि अवस्थायां वार्धक्य इति यावत् योगेन संन्यासेन तनुत्यजां शरीरत्यजाम् प्राचुर्यमाधिक्यं प्रदर्शयन् प्रकृतिस्थान् स्वभावस्थान् कृत्वा विधाय तैः सह पुनः कर्तव्यं च करणीयं कार्यं च मन्त्रयित्वा विमृश्य नियन्त्रणापूर्वकं समाग्रहपूर्वकमपि याचितेन 'राज्यं कुरु' इति प्रार्थितेन नन्दाढ्येनापि लघुसनाभिनापि विसृज्यमानं त्यज्यमानं राज्यं कवचहराय वर्मधारणयोग्याय वंशे भवा वंश्यास्तेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठस्तस्मै श्रेष्ठगुणानां पात्रं तस्मै उत्कृष्टगुणभाजनाय पैतृकं पितुरागतं 'सत्यंधर' इति नाम संदधते धृतवते गन्धर्वदत्तानन्दनाय दत्तवान् । अस्मै पुत्राय इति उक्तवांश्च कथितवांश्च । इतीति किम् । वत्स ! त्वया सदा एवं भाव्यम् । एवमिति किम् । आह—धर्मे वत्सलः सस्नेहस्तेन धर्मवत्सलेन, प्रजाया अनुरागः प्रजानुरागः स विद्यते यस्य तेन प्रजास्नेहवता, प्रकृतीर्मन्त्र्यादीन् रञ्जयति रक्तान् करोतीत्येवंशीलस्तेन, स्थानं प्रददातीति स्थानप्रदायी तेन, न्यायेनार्थं गवेषयतीति तेन न्यायार्थगवेषिणा, निरर्थकविधिं निष्प्रयोजनकार्यं द्वेष्टीति निरर्थकविधिद्वेषी तेन, स्मितपूर्वं भाषत इत्येवं-

समान विषाद करते हुए, साम्राज्यसे विरक्त हो तपके राज्यमें राग करते हुए, भृत्यकी तरह मुनिराजके प्रति अत्यन्त नम्रतासे व्यवहार करते हुए, स्त्रियों भाइयों और मित्रोंके साथ आदर, प्रणाम, विनय, गुणोंका स्तवन, तथा याचना पूर्वक मुनिराजसे पूछकर राजपुरी गये। वहाँ उन्होंने बृहस्पतिके समान कार्य करनेवाले मन्त्रियों, नगरवासियों एवं पुरोहितोंको बुलाया। बुलाने पर वे सब प्रविष्ट हुए। 'अपने वंशमें उत्पन्न हुए पूर्व पुरुषोंमें अधिकता उन्हींकी है जिन्होंने वृद्धावस्थामें योगके द्वारा शरीरका परित्याग किया है' यह दिखलाते हुए उन्होंने उन सबको प्रकृतिस्थ—शान्त किया तथा उनके साथ करने योग्य कार्यको मन्त्रणा की। उन्होंने राज्य सम्भाळनेके लिए नियन्त्रणापूर्वक छोटे भाई नन्दाढ्यसे बहुत याचना की परन्तु उसने विरक्तिमें अत्यन्त दृढ होनेके कारण राज्य छोड़ दिया—उसे लेना स्वीकृत नहीं किया। अन्तमें उन्होंने कवच धारण करनेके योग्य अवस्थामें स्थित, कुलके पुत्रोंमें श्रेष्ठ गुणोंके पात्र एवं पितृ क्रमसे आगत सत्यन्धर नामको धारण करनेवाले गन्धर्वदत्ताके पुत्रको राज्य दिया और उससे कहा कि पुत्र! तुझे सदा धर्मके साथ स्नेह रखनेवाला, प्रजाके साथ अनुराग करनेवाला, मन्त्रियोंको प्रसन्न रखनेवाला, स्थान देनेवाला, न्यायपूर्ण अर्थकी खोज

१. क० 'च' नास्ति ।

दूरभाविवितर्किणा हिताहितजातविवेकिना विहितविधायिना शक्यारम्भिणा शक्यफलाकाङ्क्षिणा कृतप्रत्यवेक्षिणा कृतस्थापनव्यसनिना गतानुशयद्रुहा प्रमादकृतानुलोपिना 'सचिववचःश्राविणा पराकूतवेदिना परीक्षितपरिग्राहिणा परिभवासहिष्णुना शिक्षासहेन देहरक्षावहेन देशरक्षाकृता युक्तदण्डयोजिना रिपुमण्डलहृदयभिदा देशकालविदा लिङ्गावेद्यसंविदा यथार्थविदपसर्पेण हृषीकपारवश्यमुषा गुरुभक्तिजुषा च त्वया भवितव्यम्' इति ।

§ २८९. ततश्च तदिदमवबुध्य शुचा दग्धरज्जुसोदरीभूताः कृशोदरीराहूय 'प्रियाः, किमे-

शीलेन मधुरभाषिणा, गुणैर्दयादाक्षिण्यादिभिर्वृद्धाः श्रेष्ठास्तान् सेवत इत्येवंशीलेन, दुर्जनान्दुर्मुखान् वर्जयति त्यजतीति तेन, दूरभाविनं दूरवर्तिनं पदार्थं वितर्कयति विचारयति तेन हिताहितयोर्जातो यो विवेकः सोऽस्तीति यस्य तेन हिताहितविवेकज्ञेन, विहितं शास्त्रनिर्दिष्टं विदधाति करोतीति विहितविधायी तेन, शक्यमारभत इत्येवंशीलस्तेन यावच्छक्यं तावत्कार्यारम्भिणा, शक्यं प्राप्यं फलं काङ्क्षति तेन शक्यफलकाङ्क्षिणा, कृतं विहितं कार्यं प्रत्यवेक्षते समवलोकत इत्येवंशीलेन कृतप्रत्यवेक्षिणा, कृतस्य स्थापनं स्थिरीकरणमेव व्यसनं कृतस्थापनव्यसनं तद्विद्यते यस्य तेन कृतस्थापनव्यसनिना, गतानां नष्टानामनुशयं पश्चात्तापं द्रुह्यति तेन गतानुशयद्रुहा, प्रमादेनानवधानतयानुलोपयतीति तेन प्रमादकृतानुलोपिना, सचिवानां मन्त्रिणां वचांसि शृणोतीति तेन सचिववचःश्राविणा, पराकूतमितरहृदयचेष्टितं वेत्ति जानातीति तेन पराकूतवेदिना, परीक्षितं परिगृह्णातीति तेन परीक्षितपरिग्राहिणा, परिभवस्यासहिष्णुस्तेन अनादरासहिष्णुना शिक्षायाः सहस्तेन शिक्षासहेन गुरुजनानां शिक्षां सोढुं शक्तेन देहस्य रक्षा देहरक्षा तस्या वहस्तेन देहरक्षावहेन शरीररक्षाकारिणा देशस्य रक्षां करोतीति देशरक्षाकृत् तेन राष्ट्ररक्षाकारिणा, युक्तं दण्डं योजयतीति युक्तदण्डयोजी तेन उचितदण्डदायिना, रिपुमण्डलस्य शत्रुराष्ट्रस्य शत्रुसमूहस्य वा हृदयं मध्यं चित्तं वा भिनत्तीति रिपुमण्डलहृदयभिद् तेन, देशकालौ क्षेत्रसमयौ वेत्ति जानातीति देशकालविद् तेन, लिङ्गेन बाह्यसाधनेनावेद्या ज्ञातुमनर्हा संवित् ज्ञानं यस्य तेन, यथार्थविदः सत्यसमाचारज्ञा अपसर्पा गुप्तचरा यस्य तेन, यथार्थविदपसर्पेण, हृषीकाणामिन्द्रियाणां पारवश्यं पारतन्त्र्यं मुष्णातीति हृषीकपारवश्यमुट् तेन, गुरूणां भक्तिं जुषन्ते प्रीत्या सेवन्त इति गुरुभक्तिजुट् तेन ।

§ २८९. ततश्च—ततश्च तदनन्तरं च तदिदं वैराग्यप्रकरणम् अवबुध्य ज्ञात्वा शुचा शोकेन दग्धरज्जुसोदरीभूता दग्धरश्मिसदृशीः कृशोदरीस्तन्वङ्गीः आहूय 'प्रियाः ! एवमनेन प्रकारेण शालीनतया-

करनेवाला, निरर्थक कार्यसे द्वेष रखनेवाला, मन्द मुसकान पूर्वक बोलनेवाला, गुणोंसे वृद्ध जनोंकी सेवा करनेवाला, दुर्जनोंको छोड़नेवाला, दूर तक विचार करनेवाला, हित-अहितका विवेक रखनेवाला, शास्त्र विहित कार्यको करनेवाला, शक्य कार्यका प्रारम्भ करनेवाला, शक्य फलकी इच्छा रखनेवाला, किये हुए कार्यकी देख-रेख करनेवाला, किये हुए कार्यको स्थिर रखनेके व्यसनसे युक्त, बीती बातके पश्चात्तापके साथ द्रोह करनेवाला, प्रमादसे किये हुए कार्यको दूर करनेवाला, मन्त्रियोंके वचनोंको अच्छी तरह सुननेवाला, दूसरेके अभिप्रायको जाननेवाला, परीक्षित व्यक्तिको स्वीकृत करनेवाला, परिभवको नहीं सहनेवाला, शिक्षाको सहन करनेवाला, देहकी रक्षाको धारण करनेवाला, देशकी रक्षा करनेवाला, उचित दण्डकी योजना करनेवाला, शत्रु समूहके हृदयको भेदन करनेवाला, देश और कालको जाननेवाला, चिह्नोंसे अज्ञेय अभिप्रायको धारण करनेवाला, यथार्थताको जाननेवाले गुप्तचरोंसे सहित, इन्द्रियोंकी पराधीनताको दूर करनेवाला तथा गुरुभक्तिसे सहित होना चाहिए।

§ २८९. तदनन्तर यह सब जानकर जो शोकसे जली हुई रस्सीके समान हो रही थीं

१. म० सचिववचःप्रश्राविणा ।

वमभिभूयध्वे शालीनतया । जगति जातेष्वजातमृतयः के नाम । केवलं यावदायुरवस्थितास्तदनु संस्थिताश्च ननु सर्वेऽपि तनुभृतः। सर्वथा नश्वरशरीरेण यद्यनश्वरसुखं सिद्धयेदिदमेव ननु बुद्धिमद्भिरद्धा साध्यम् । अहो[1] मुग्धाः, पृथग्भावनिरसनाय बहुसिरापिनद्धकीकसे मार्दवसंपादनाय रुधिरार्द्रीकृते प्राचुर्यादन्तर्गतमलानामनन्तर्भावात्संततस्यन्दाय संकल्पितनवद्वारि मांसलालसवायसादिवयसामदर्शनाय पिशिताच्छादिचर्मणि कर्मशिल्पिकौशलेन बहिरुज्ज्वलतरे शरीरेऽस्मिन्किमु यूयं सस्पृहाः । तर्हि गर्हणीयमिदं न स्यादस्यान्तरस्वरूपे बहिर्गतेऽपि प्रार्थिता वा यूयमेतत्प्रेक्षितुं यदि समर्थाः । ततः शरीरस्य विघटनात्प्रागेव घटध्वं यूयमपि तपसे' इति ताः

ऽधृष्टतया किम् अभिभूयध्वे किमाक्रान्ता भवथ । जगति लोके जातेषूत्पन्नेषु न जाता मृतिर्मृत्युर्येषां तथाभूताः के नाम । अपि तु न केऽपीत्यर्थः । ननु निश्चयेन सर्वेऽपि निखिला अपि तनुभृतः प्राणिनः केवलं यावदायुः जीवितं यावत् अवस्थिताः स्थिता भवन्ति तदनु संस्थिताश्च मृताश्च जायन्ते । सर्वथा सर्वप्रकारेण नश्वरशरीरेण भङ्गुराङ्गेन यदि अनश्वरसुखमविनाशिसुखं सिध्येत् प्राप्येत इदमेव ननु निश्चयेन बुद्धिमद्भिः अद्धा यथार्थतया साध्यं साधनीयम् । अहो मुग्धाः । अये मूर्खाः । पृथग्भावस्य विकिरणस्य निरसनाय दूरीकरणाय बहुसिराभिर्नैकनाडीभिः पिनद्धानि बद्धानि कीकसान्यस्थीनि यस्मिंस्तस्मिन् मार्दवस्य कोमलत्वस्य संपादनाय प्रापणाय रुधिरेण रक्तेनार्द्रीकृते क्लिन्ने, अन्तर्गतमलानाम् अन्तःस्थितमलानां प्राचुर्यादाधिक्यात् अनन्तर्भावात् अन्तर्मातुमशक्यत्वात् संततः शाश्वतिकः स्यन्दो मलप्रवहनं यस्य तस्मिन्, संकल्पितानि नवद्वाराणि नेत्रनासिकादीनि यस्मिंस्तस्मिन्, मांसलालसानि पिशितप्रियाणि यानि वायसादिवयांसि काकादिपक्षिणस्तेषाम् अदर्शनाय अनवलोकनाय ते न पश्यन्तु इति बुद्ध्येति भावः पिशिताच्छादि मांसाच्छादि चर्म त्वक् यस्य तस्मिन्, कर्मैव शिल्पी कार्यकरस्तस्य कौशलेन चातुर्येण बहिः उज्ज्वलतरेऽतिधवले अस्मिन् शरीरे यूयं किमु सस्पृहाः सतृष्णाः । अस्य शरीरस्य अन्तरस्वरूपे बहिर्गतेऽपि प्रार्थिता वा अनुरुद्धा अपि यूयम् एतच्छरीरं प्रेक्षितुं द्रष्टुं समर्थाः शक्ता यदि जायेरन् इति शेषस्तर्हि इदं गर्हणीयं निन्दनीयं न स्यात् । ततस्तस्मात्कारणात् शरीरस्य विघटनाद्

ऐसी स्त्रियोंको बुलाकर उन्होंने उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया—अहो वल्लभाओ ! तुम लोग इस तरह शोकसे क्यों अभिभूत हो रही हो ? जगत्में उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंमें ऐसे कौन हैं जिनकी मृत्यु न हुई हो ? यह निश्चय है कि सभी प्राणी आयुपर्यन्त ही स्थित रहते हैं उसके बाद नियमसे मर जाते हैं । यदि सर्वथा नष्ट हो जानेवाले शरीरसे अविनाशी सुख सिद्ध होता है तो बुद्धिमानोंको यह यथार्थमें सिद्ध करने योग्य है । अहो मूर्खाओ ! पृथग्भाव को दूर करनेके लिए (कहीं बिखर कर अलग-अलग न हो जावे इस भयसे) जिसकी हड्डियाँ नाना प्रकारकी नसोंसे बँधी हुई हैं, कोमलता प्राप्त करनेके लिए जो रक्तसे गीला किया गया है, भीतर स्थित रहनेवाले मलोंकी प्रचुरतासे तथा उनके भीतर नहीं समा सकनेके कारण निरन्तर बहते रहनेके लिए जिसमें नौ द्वारोंकी रचना की गयी है, मांसकी इच्छा रखनेवाले कौआ आदि पक्षी न देख सकें इसलिए जिसके मांसको चमड़ा आच्छादित कर रहा है, और कर्मरूपी कारीगरकी कुशलतासे जो बाहर अत्यन्त उज्ज्वल जान पड़ता है ऐसे इस शरीरमें तुम लोग क्यों इच्छा रख रही हो ? यदि इसका भीतरी स्वरूप बाहर आ जाय और तुम सब प्रार्थना करनेपर भी इसे देखनेके लिए समर्थ रही आओ तो यह निन्दनीय नहीं कहलावे । इसलिए शरीरके नष्ट होनेके पहले ही तुम सब भी तपके लिए तैयार हो

१. क० ख० ग० 'अहो' नास्ति ।

संबोध्य गत्यभावात्तास्वपि तपसे समुद्यतासु जातानन्देन नन्दाढ्येन समं रथकट्योह्यमानमहार्घ्यराशिरनर्घ्यशेवधिमाप्तुमटन्नश्रीक इव समाजयन्भगवतः पारमैश्वर्यश्रिया वर्धमानस्य श्रीवर्धमानस्वामिनः श्रीसभाभिमुखः प्रयातुं प्रचक्रमे ।

§ २८७. अथ जीवंधरमहाराजः श्रवणकटुना प्रयाणध्वनिना प्रयाणे विश्रुते, प्रसरदश्रुजलपूरेषु पौरेषु तं प्रणामं प्रणामं तदीयगुणं स्मारं स्मारं तस्य यथोचितं वाचं वाचमनेकप्रयाणपथमनुप्रयाय तत्प्रयासतः[1] प्रतिनिवृत्तेषु, सामात्यं सत्यंधरमहाराजमपि समुचितवार्तया निवर्त्य, निवृत्तिपरैः परःसहस्रतरैर्नरैः[2] परिगतः[3] पर्यश्रुमुखैः पारिषद्यपार्थिवैर्विहिताञ्जलिभिरभिहितालोकशब्दैरनुद्रुतो द्रुतं विद्रावितविश्वलोकोपद्रवं भद्रपरिणामाञ्चितभव्यलोकसेव्यमव्याजरमणीयं सकल-

विनाशात् प्रागेव पूर्वमेव यूयमपि तपसे घटध्वं यत्नं कुरुध्वम्' इति ताः प्रियाः सम्बोध्य गत्यभावात् उपायान्तराभावात् तास्वपि प्रियास्वपि तपसे तपश्चरणाय समुद्यतासु सतीषु जातः समुत्पन्नः आनन्दो हर्षो यस्य तेन तथाभूतेन नन्दाढ्येन कनिष्ठेन समं रथकट्या स्यन्दनसमूहेनोह्यमानो महार्घराशिः प्रशस्तार्घसमूहो यस्य तथाभूतः अनर्घ्यशेवधिममूल्यनिधिं आप्तुं प्राप्तुम् अटन् गच्छन् अश्रीक इव दरिद्र इव भगवतो जिनेन्द्रान् समाजयन् पूजयन् पारमैश्वर्यश्रिया प्रातिहार्यलक्ष्म्या वर्धत इति वर्धमानस्तस्य समेधमानस्य श्रीवर्धमानस्वामिनः पश्चिमतीर्थकरस्य श्रीसभाभिमुखः समवसरणसंमुखः सन् प्रयातुं प्रचलितुं प्रचक्रमे तत्परोऽभूत् ।

§ २८७. अथेति—अथानन्तरं जीवंधरमहाराजः श्रवणकटुना कर्णकटुना प्रयाणस्य ध्वनिस्तेन प्रस्थानशब्देन प्रयाणे प्रस्थाने विश्रुते प्रसिद्धे, प्रसरन् प्रवहन् अश्रुजलपूरो वाष्पप्रवाहो येषां तेषु पौरेषु नागरिकेषु तं महाराजं प्रणामं प्रणामं प्रणम्य प्रणम्य तदीयगुणं स्मारं स्मारं स्मृत्वा स्मृत्वा तस्य यथोचितं यथार्हं वाचं वाचम् उक्त्वा उक्त्वा अनेकप्रयाणपथं नैकप्रयाणमार्गम् अनुप्रयाय अनुगम्य तस्य महाराजस्य प्रयासतः प्रयत्नतः प्रतिनिवृत्तेषु प्रत्यागतेषु सत्सु सामात्यं ससचिवं सत्यंधरमहाराजमपि नूतनाभिषिक्तमहाराजमपि समुचितवार्तया योग्यवार्तालापेन निवर्त्य प्रत्यागमय्य निवृत्तिपरैर्वैराग्यतत्परैः परःसहस्रतरैः सहस्रादप्यधिकैः नरैः परिगतः परिवेष्टितः पर्यश्रु साश्रु मुखं वदनं येषां तथाभूतैः पारिषद्यपार्थिवैः समासद्भूपतिभिः विहिताञ्जलिभिर्बद्धहस्तसम्पुटैः अभिहितः कथित आलोकशब्दो जयशब्दो यैस्तथाभूतैः

जाओ। दूसरा उपाय न होनेसे जब वे सब स्त्रियाँ भी तपके लिए उद्यत हो गयीं तब आनन्द विभोर नन्दाढ्यके साथ रथोंके समूहसे ले जाने योग्य उत्तम अर्घोंकी राशिसे युक्त हो, जिस प्रकार कोई दरिद्र मनुष्य अमूल्य निधिको प्राप्त करनेके लिए जावे उसी प्रकार जीवन्धर स्वामी भी परम ऐश्वर्य-लक्ष्मीसे बढ़नेवाले श्रीवर्धमानस्वामीकी सभाके सम्मुख प्रयाण करनेके लिए उद्यत हुए।

§ २८७. तदनन्तर कानोंके लिए तीक्ष्ण लगनेवाले प्रयाणके शब्दसे जब उनके प्रस्थानकी वार्ता सब ओर फैल गयी तथा जिनके नेत्रोंसे अश्रु जलका प्रवाह फैल रहा था ऐसे नागरिक लोग जब बार-बार प्रणाम करके, उनके गुणोंका बार-बार स्मरण करके, उनकी प्रशंसामें यथा योग्य बार-बार वचन कह कर और अनेक पड़ाव तक पीछे-पीछे चलकर उनके प्रयाससे लौट गये तब जीवन्धर महाराजने मन्त्रियोंसहित नूतन राजा सत्यन्धर महाराजको भी योग्य वार्तासे वापिस लौटा दिया और वैराग्यमें तत्पर रहनेवाले हजारों मनुष्योंसे युक्त हो वे समवसरणकी ओर चल पड़े। उस समय जिनके मुख आँसुओंसे युक्त थे तथा जो हाथ जोड़कर जय-जय शब्दका उच्चारण कर रहे थे ऐसे सभासद् राजा उनके पीछे-पीछे चल

१. क० तत्प्रयासहितेषु । २. क० नृपैः । ३. म० संगतः ।

सारार्थं तीर्थंकरनामधेयमहाभागधेयफलं विचित्रविविधगोपुरसालं शतमखशैलूषं सर्वसुलभपीयूषं रत्नरैरजतनिर्माणं[1] द्विषड्योजनप्रमाणं द्वादशगणवेष्टितं शुनासीरचोदितधनदप्रतिष्ठितं प्रेक्षमाणमानस्तम्भिमानस्तम्भमभ्यर्थितार्थदाननिपुणनिधिकुम्भं सर्वजनजङ्घादघ्नजलोपेतजलाशयं वनशोभाकृष्टदेवाशयं पापास्रवनिवारणं पुण्यैककारणं सर्वलोकशरणं समवसरणमासाद्य, मणिमयमिव महोमयमिवादित्यमयमिव दैत्यमयमिव[2] खेचरमयमिव भूचरमयमिव शर्ममयमिव धर्ममयमिव

सद्भिः अनुद्रुतोऽनुगतो द्रुतं शीघ्रं विद्राविता दूरीकृता विश्वलोकोपद्रवा निखिललोकोपद्रवा येन तथाभूतम्, भद्रपरिणामेन कुशलभावेनाञ्चिताः शोभिता ये भव्यलोका भविकजनास्तैः सेव्यं सेवनीयम्, अव्याजरमणीयं स्वभावसुभगम्, सकलसाराः सर्वश्रेष्ठा अर्था पदार्था यस्मिंस्तत्, तीर्थंकरनामधेयस्य महाभागधेयस्य फलं प्रयोजनम्, विचित्रा नानावर्णा विविधा नैकप्रकारा गोपुरसालाः प्रमुखद्वारप्राकारा यस्मिंस्तत्, शतमख इन्द्रः शैलूषो नटो यस्मिंस्तत्, सर्वेषां सुलभं पीयूषममृतं यस्मिंस्तत्, रत्नैरजतस्वर्णनिर्माणं रत्नधनरजतस्वर्णनिर्माणम्, द्विषड्योजनप्रमाणं द्वादशयोजनप्रमाणम् वर्धमानस्वामिनः समवसरणस्य प्रमाणमेकयोजनमासीत् द्वादशयोजनपरिमितनिरूपणं भ्रान्तिमूलम्। भगवतो वृषभस्य समवसरणं द्वादशयोजनपरिमितमासीत्, द्वादशगणैर्द्वादशसभाभिर्वेष्टितं परिवृतम्, शुनासीरेण पुरन्दरेण चोदितः प्रेरितो यो धनदः कुबेरस्तेन प्रतिष्ठितं रचितम्, प्रेक्षमाणानां पश्यतां मानं गर्वं स्तभ्नन्ति नाशयन्ति तथाभूता मानस्तम्भा यस्मिंस्तत्, अभ्यर्थितस्य वाञ्छितस्यार्थस्य दाने वितरणे निपुणा दक्षा निधिकुम्भाः कोषकलशा यस्मिंस्तत्, सर्वजनानां निखिलनराणां जङ्घादघ्नेन प्रसृताप्रमाणेन जलेन तोयेनोपेताः सहिता जलाशया ह्रदा यस्मिंस्तत्, वनानामुद्यानानां शोभयाकृष्टो वशीकृतो देवाशयो देवाभिप्रायो यस्मिंस्तत्, पापानां दुरितकर्मणामास्रव आगमनं तस्य निवारणं निरोधकम्, पुण्यस्य सुकृतस्यैककारणं प्रमुखनिमित्तम्, सर्वलोकानां निखिलजनानां शरणं रक्षितृ 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः समवसरणम् आसाद्य प्राप्य मणिमयमिव रत्नमयमिव, महोमयमिव तेजोमयमिव, आदित्यमयमिव सूर्यमयमिव, दैत्यमयमिव देवविशेषमयमिव, खेचरमयमिव विद्याधरमयमिव, भूचरमयमिव भूमिगोचरमानवमयमिव, शर्ममयमिव सुखमयमिव, धर्ममयमिव वृषमयमिव, नृत्तमयमिव लास्यमयमिव, वाद्य-

रहे थे। वे चलते-चलते शीघ्र ही उस समवसरणमें जा पहुँचे जहाँ समस्त मनुष्योंके उपद्रव शीघ्र ही नष्ट हो चुके थे, जो उत्तम भावोंसे युक्त भव्य जीवोंके द्वारा सेवनीय था, यथार्थमें रमणीय था, जहाँके पदार्थ सबमें श्रेष्ठ थे, जो तीर्थंकर नामक महाभागके फल स्वरूप था, जिसका कोट चित्र-विचित्र एवं नाना प्रकारके गोपुरोंसे सहित था, जिसमें इन्द्र नटका कार्य करता था, जिसमें सबके लिए अमृत सुलभ था, रत्न स्वर्ण तथा चाँदीसे जिसकी रचना हुई थी। जो *बारह योजन प्रमाण था, बारह सभाओंसे वेष्टित था, इन्द्रके द्वारा प्रेरित कुबेरने जिसकी रचना की थी, जिसके मानस्तम्भ देखनेवालोंके मानको रोकनेवाले थे, वहाँ निधियोंके कलश अभिलषित पदार्थके देनेमें निपुण थे, जहाँ समस्त मनुष्योंके जंघा प्रमाण जलसे युक्त सरोवर थे, जिसने वनोंकी शोभासे देवोंके हृदयको आकृष्ट कर लिया था, जो पाप कर्मके आस्रवको रोकनेवाला था, पुण्यका प्रमुख कारण था और सब लोगोंके लिए शरण था। जो मणिमयके समान, तेजोमयके समान, सूर्यमयके समान, दैत्यमयके समान, विद्याधरमयके समान, भूमिगोचरियोंसे तन्मयके समान, सुखमयके समान, धर्ममयके समान, नृत्तमयके

१. रत्नस्वर्णरजतनिर्माणमिति टि०। २. देवविशेषमयमिव, टि०।

* भगवान् महावीरका समवसरण एक योजन विस्तृत था यहाँ जो बारह योजन प्रमाण कहा गया है वह सामान्य समवसरणकी अपेक्षा कहा है।

नृत्तमयमिव वाद्यमयमिव गेयमयमिव गण्यमानं स्थलसप्तकं यथोचितोपचारं कारं कारमुल्लोकतोषादालोकमालोकमतिक्रम्य, हृदयादपि प्रागेव कृतप्रयाणाभ्यां चरणाभ्यामेव मन्देतरभक्तिर्गन्धकुटीबन्धुरं श्रीमन्दिरं मन्दरमिव सहस्रोचिः सहस्रशः परीयन्; वरिवस्यापर्यवसाने गणस्थानगतः स्थित्वा भगवतः श्रीमुखपद्माभिमुखं भक्तिमय इव बाष्पमय इव संभ्रममय इव संस्तवमय इव पुलकितमय इव पुण्यमय इव जायमानः, परायत्तो भवन्, आत्तगन्धसौगन्धिकगन्धवहे गन्धकुटीमध्ये निर्गन्धतायाः[1] उपदेष्टारमप्यष्टमहाप्रातिहार्यैरलंकृतपरिसरमपाकृताखिलदोषतया व्यपेतविकृतवेषं कृतकृत्यतया कृत्यन्तरानपेक्षं प्रेक्षमाणदृशां प्रीतिकरमपि दिनकरव्यूहातिशायिदिव्यदेहकान्ति-

मयमिव वादित्रमयमिव, गेयमयमिव गानमयमिव, गण्यमानं प्रशस्यं स्थलसप्तकं यथोचितोपचारं यथार्होपचारं कारं कारं कृत्वा कृत्वा उल्लोकतोषात् अत्यधिकसंतोषात् आलोकं आलोकं दृष्ट्वा दृष्ट्वा अतिक्रम्य समुल्लङ्घ्य हृदयादपि मनसोऽपि प्रागेव पूर्वमेव कृतं विहितं प्रयाणं याभ्यां ताभ्यां चरणाभ्यामेव पादाभ्यामेव मन्देतरभक्तिः प्रचुरभक्तिः गन्धकुटीबन्धुरं भगवदधिष्ठानक्षेत्रसुन्दरं श्रीमन्दिरं समवसरणभागविशेषं मन्दरं मेरुं सहस्ररोचिरिव सूर्य इव सहस्रशः परीयन् परिक्राम्यन् वरिवस्यायाः पूजायाः पर्यवसाने विरामे गणस्थानगतो नरावस्थानकोष्ठकगतो भगवतो वर्धमानस्वामिनः श्रीमुखपद्माभिमुखं मुखकमलसंमुखं स्थित्वा भक्तिमय इव अनुरागातिशय इव, बाष्पमय इवाश्रुमय इव, संभ्रममय इव क्षोभमय इव, संस्तवमय इव स्तुतिमय इव, पुलकितमय इव रोमाञ्चमय इव, पुण्यमय इव सुकृतमय इव जायमानः परायत्तो पराधीनो भवन्, आत्तगन्धस्य गृहीतगन्धस्य सौगन्धिकस्य कमलविशेषस्य गन्धं सुरभिं वहतीति तथा गन्धकुटीमध्ये निर्गन्धतायाः निर्गर्वतायाः 'गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः' इत्यमरः उपदेष्टारमपि अथवा निर्ग्रन्थतायाः निष्परिग्रहतायाः उपदेष्टारमपि अष्टमहाप्रातिहार्यैरष्टमहाविभूषणैः पक्षेऽशोकपादप-सिंहासनछत्रत्रय-चतुःषष्टिचमरभामण्डलदिव्यध्वनिपुष्पवृष्टिदुन्दुभिनादाभिधानैरष्टप्रातिहार्यैः अलंकृतः शोभितः परिसरोऽभ्यर्णप्रदेशो यस्य तम्, अपाकृता दूरीकृता अखिलदोषा येन तस्य भावस्तत्ता तया व्यपेतो विनष्टो विकृतवेषो यस्य तथाभूतम् कृतकृत्यतया कृतार्थत्वेन कृत्यन्तरस्य कार्यान्तरस्यानपेक्षा विद्यते यस्य तं प्रेक्षमाणानां पश्यतां दृशां नेत्राणां प्रीतिकरमपि प्रीत्युत्पादकमपि दिनकरव्यूहाति-

समान, वादित्रमयके समान और गेयमयके समान जान पड़ते थे ऐसे वहाँके सप्त स्थलोंको यथा योग्य उपचार कर-करके तथा अत्यधिक सन्तोषसे देख-देखकर उन्होंने उल्लंघन किया। तदनन्तर हृदयसे भी पहले प्रयाण करनेवाले चरणोंसे चलकर अत्यधिक भक्तिसे युक्त हो उन्होंने गन्धकुटीसे सुन्दर श्रीमन्दिरकी उस तरह हजारों परिक्रमाएँ दीं जिस तरह कि सूर्य सुमेरु पर्वतकी देता है। पूजाके बाद वे मनुष्योंके कोठेमें भगवान्‌के श्रीमुखारविन्दके सम्मुख खड़े होकर ऐसे हो गये मानो भक्तिमय ही हों, अश्रुमय हों, सम्भ्रममय ही हों, स्तवनमय ही हों, रोमांचमय ही हों, और पुण्यमय ही हों। भक्तिसे परतन्त्र होते हुए वे उन भगवान्‌की मधुर स्वरमें स्तुति करने लगे कि जो सुगन्धसे युक्त सौगन्धिक—लाल कमलोंकी गन्धसे सहित गन्धकुटीके मध्यमें विराजमान थे, निर्ग्रन्थताके उपदेशक होकर भी जो अष्टमहाप्रातिहार्योंसे अलंकृत समीपवर्ती प्रदेशसे सहित थे। समस्त दोषोंको दूर कर देनेके कारण जो विकृत वेषसे रहित थे, कृतकृत्य होनेके कारण जो अन्य कार्योंसे निरपेक्ष थे, दर्शक लोगोंके नेत्रोंको प्रीति उत्पन्न करनेवाले होकर भी जिनकी दिव्य देहकी कान्तिरूपी गंगाका

1. क० निर्ग्रन्थतायाः।

मन्दाकिनोप्रवाहं मन्दरस्योपरि मन्दरमिव मध्येसिंहासनं भासमानं भगवन्तं भासुरया गिरा गीर्वाणानामपि गीतिस्पृहां[1] कुर्वन्मृष्टमसौ[2] तुष्टाव—

§ २८८. 'स्वहस्तरेखासदृशं जगन्ति विश्वानि विद्वानपि वीर्यपूर्तिः[3] ।
अश्रान्तमूर्तिर्भगवान्स वीरः पुष्णातु नः सर्वसमीहितानि ॥

§ २८९. यदाननेन्दोर्विबुधैकसेव्या दिव्यागमव्याजसुधा स्रवन्ती ।
भव्यप्रवेकान्सुखसात्करोति पायादसौ वीरजिनेश्वरो नः ॥

§ २९०. अभानुभेद्यं तिमिरं नराणां संसारसंज्ञं सहसा निगृह्णन् ।
अस्माकमाविष्कृतमुक्तिवर्त्मा श्रीवर्धमानः शिवमातनोतु ॥'

शायी दिव्यदेहकान्तिमन्दाकिनीप्रवाहो दिव्यपरमौदारिकशरीरकान्तिवियद्गङ्गाप्रवाहो यस्य तं मन्दरस्य सुमेरोरुपरि मन्दरमिव सुमेरुमिव मध्येसिंहासनं सिंहासनस्य मध्ये 'पारे मध्ये षष्ठ्या वा' इत्यव्ययीभावसमासः भासमानं शोभमानं भगवन्तं वर्धमानजिनेन्द्रं भासुरया समुज्ज्वलया गिरा वाण्या गीर्वाणानामपि देवानामपि गीतिस्पृहां गानेच्छां कुर्वन् विदधत् मृष्टं मधुरं यथा स्यात्तथा तुष्टाव अस्तावीत् ।

§ २८८. स्वहस्तेति—वीर्यस्य पराक्रमस्य पूर्तिर्यस्य तथाभूतो यो विश्वानि निखिलानि जगन्ति भुवनानि स्वहस्तरेखासदृशं निजकरतलरेखाकल्पं यथा स्यात्तथा विद्वानपि जानन्नपि अश्रान्ता अखिन्ना मूर्तिः शरीरं यस्य तथाभूतः स वीरः पश्चिमतीर्थंकरो नोऽस्माकं सर्वसमीहितानि निखिलमनोरथान् पुष्णातु पुष्टानि करोतु ।

§ २८९. यदाननेन्दोरिति—यस्याननमेवेन्दुर्यदाननेन्दुस्तस्माद् यन्मुखमृगाङ्कात् स्रवन्ती क्षरन्ती, विबुधैकसेव्या विद्वज्जनसेवनीया पक्षे देवसेवनीया दिव्यागमव्याजसुधा दिव्यशास्त्रच्छलपीयूषं भव्यप्रवेकान् भव्यश्रेष्ठान् सुखसात्करोति सुखाधीनान् करोति असौ वीरजिनेश्वरः सन्मतिजिनेन्द्रो नोऽस्मान् पायाद् रक्ष्यात् ।

§ २९०. अभानुभेद्यमिति—न भानुना सूर्येण भेत्तुमर्हमित्यभानुभेद्यं संसारसंज्ञं संसारनामधेयं नराणां जनानां तिमिरं मोहध्वान्तं सहसा झगिति निगृह्णन् दूरीकुर्वन् आविष्कृतमुक्तिवर्त्मा प्रकटितमोक्षमार्गः श्रीवर्धमानो महावीरो भगवान् अस्माकं शिवं कल्याणं मोक्षं वा आतनोतु विस्तारयतु । सर्वत्रोपजातिवृत्तम् ।' इति

प्रवाह सूर्यके समूहको अतिक्रान्त करनेवाला था और जो सुमेरु पर्वतपर स्थित सुमेरु पर्वतके समान सिंहासनके मध्यमें देदीप्यमान थे। स्तुति करते समय जीवन्धर महाराज अपनी सुन्दर वाणीसे देवोंको भी गानेकी इच्छा उत्पन्न कर रहे थे। वे कह रहे थे कि—

§ २८८. 'जो समस्त संसारको अपने हाथकी रेखाके समान जानते हुए भी कभी श्रान्त शरीर नहीं होते हैं तथा वीर्यकी पूर्णतासे सहित हैं वे महावीर भगवान् हमारे समस्त मनोरथोंको पुष्ट करें।'

§ २८९. 'जिनके मुखरूपी चन्द्रमासे झरती हुई एवं विद्वानोंके द्वारा प्रमुख रूपसे सेवनीय दिव्यागमरूपी सुधा श्रेष्ठ भव्योंको सुखी करती है वे वर्धमान जिनेन्द्र हमारी रक्षा करें।'

§ २९०. 'जिन्होंने सूर्यके द्वारा अभेद्य, मनुष्योंके संसाररूपी अन्धकारको सहसा नष्ट कर दिया है तथा जिन्होंने मोक्षका मार्ग प्रकट किया है ऐसे वर्धमान जिनेन्द्र हमारे कल्याणको विस्तृत करें।'

१. क० ग० प्रीतिस्पृहाम् । २. मधुरं यथा तथा । ३. म० वीर्यमूर्तिः ।

§ २९१. इति । व्यजिज्ञपच्च विनयावनम्रमौलिः कुड्मलितकरपुटः 'कौरवः काश्यपगोत्रजो जीवको नाम जिननायक, प्रसीद प्रव्रजामि'[1] इति । लेभे च 'हितमेतत्' इति हितमितमधुरस्निग्धगम्भीरां दिव्यां गिरम् ।

§ २९२. एवं लब्धमहाप्रसादः प्रसभं प्रणम्य सविनयं तस्मान्निवृत्य निगलमोचनाय चलन्निगलितचरण इव हर्षलस्तपोधनपरिषदि तस्थिवान् । इह तत्त्वसर्वस्वं सर्वज्ञोपज्ञमज्ञानां श्रोतॄणां यथाश्रुतं विस्तरतो व्याकुर्वाणं सार्वज्ञ्यसाम्राज्ययौवराज्यपदे तिष्ठन्तमिव गणनायकमुपतिष्ठमानः प्रकृष्टमनाः स्पष्टया वाचा यथेष्टं नत्वा श्रुत्वा च तत्त्वमनुजेन मनुजपतिभिश्च परैः सार्धं परार्ध्यकेशाभरणवसनमाल्याङ्गरागादिकं रागद्वेषमोहादिकं च बाह्याभ्यन्तरमपोह्य ग्रन्थं[2] निर्ग्रन्था-

§ २९१. व्यजिज्ञपच्चेति—व्यजिज्ञपच्च न्यवेदयच्च विनयावनम्रमौलिर्विनयावनतमस्तकः कुड्मलितकरपुटो मुकुलीकृतकरयुगः, काश्यपगोत्रजः काश्यपगोत्रोत्पन्नो जीवको नाम कौरवः कौरववंशीयः—'जिननायक ! हे जिनेन्द्र ! प्रसीद प्रसन्नो भव प्रव्रजामि दीक्षां गृह्णामि' इति । लेभे च प्राप च 'हितमेतत् प्रव्रजनं श्रेयस्करम्' इतीत्थं हिता कल्याणकरी, मिताल्पाक्षरा, मधुरा मृष्टाक्षरा, स्निग्धा स्नेहपूर्णा, गम्भीरा गम्भीरार्थोपेता च तां दिव्यां गिरम् दिव्यध्वनिम् ।

§ २९२. एवमिति—एवमनेन प्रकारेण लब्धः प्राप्तो महाप्रसादो येन तथाभूतः सन् प्रसभं प्रसह्य बलादित्यर्थः सविनयं सादरं प्रणम्य नमस्कृत्य तस्मात् स्थानात् निवृत्य प्रत्यागम्य निगलमोचनाय निगडत्यागाय चलन् निगलितचरण इव बद्धपाद इव हर्षलो हर्षयुक्तः तपोधनपरिषदि साधुसभायां तस्थिवान् अस्थात् । इह तपोधनपरिषदि सर्वज्ञोपज्ञं सर्वज्ञेनादितो निरूपितं तत्त्वसर्वस्वं तत्त्वगुप्तधनम् अज्ञानामजानतां श्रोतॄणां यथाश्रुतं श्रुतमनतिक्रम्येति यथाश्रुतं यथाकर्णितं यथा स्यात्तथा विस्तरतो व्यासात् व्याकुर्वाणं व्याख्यानं कुर्वन्तम्, सार्वज्ञ्यमेव साम्राज्यं सार्वज्ञ्यसाम्राज्यं तस्य यौवराज्यस्य पदे तिष्ठन्तमिव विद्यमानमिव गणनायकं गणधरम् उपतिष्ठमानः प्रकृष्टमनाः प्रहृष्टचेताः स्पष्टया वाचा यथेष्टं नत्वा नमस्कृत्य अनुजेन नन्दाढ्येन परैश्च मनुजपतिभिर्नृपैः सार्धं तत्त्वं धर्मरहस्यं श्रुत्वा च समाकर्ण्य च परार्ध्याः श्रेष्ठाः केशाभरणवसनमाल्याङ्गरागाः कचालंकारवस्त्रस्रग्विलेपनानि आदौ यस्य तथाभूतं रागद्वेषमोहा आदौ यस्य तथाभूतं च बाह्याभ्यन्तरं—द्विविधं ग्रन्थं परिग्रहम् अपोह्य त्यक्त्वा निर्ग्रन्थार्हाणि दिगम्बरयोग्यानि महार्हफलं मोक्षो

§ २९१. स्तुतिके बाद उन्होंने विनयसे मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'हे जिननायक ! कुरुवंशी, एवं काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुआ मैं जीवक दीक्षित हो रहा हूँ प्रसन्न हूजिए' । उक्त प्रार्थनाके बाद उन्होंने 'यह हित है' इस प्रकार हित मित मधुर, स्निग्ध और गम्भीर दिव्यध्वनिको प्राप्त किया ।

§ २९२. इस प्रकार जिन्होंने महाप्रसादको प्राप्त किया था ऐसे जीवन्धरस्वामी भगवान्को बार-बार प्रणाम कर तथा विनयपूर्वक वहाँसे लौटकर जिस तरह बेड़ीसे बद्धचरण मनुष्य बेड़ीको छोड़नेके लिए चलता है उस तरह चलकर बड़े हर्षसे युक्त हो तपस्वियोंके समूहमें आ खड़े हुए । यहाँ अज्ञानी श्रोताओंके लिए जो सर्वज्ञप्रणीत तत्त्वका रहस्य दिव्यध्वनिमें श्रवण किये हुए के अनुसार विस्तारसे निरूपित कर रहे थे तथा जो सर्वज्ञतारूपी साम्राज्यके युवराज पदपर मानो विराजमान थे ऐसे गणधरके समीप स्थित हो उन्होंने स्पष्ट शब्दोंसे इच्छानुसार नमस्कार किया, तत्त्वोपदेश सुना और छोटे भाई नन्दाढ्य तथा अन्य अनेक राजाओंके साथ श्रेष्ठ केश, आभूषण, वस्त्र, माला तथा अंगरागादिक बाह्य और राग द्वेष मोह आदिक आभ्यन्तर परिग्रहको छोड़कर निर्ग्रन्थ पदके

१. क० ख० ग० प्रव्रज्यामि, इति । २. म० ग्रन्थं ।

र्हाणि महार्हफलमूल्यानि मूलोत्तरगुणरत्नानि बहुप्रयत्नरक्षणीयान्यक्षूणमञ्चितमनोवाक्कायः पञ्चगुरुसाक्षिकं परिगृह्णानः परमसंयमं दधौ ।

§ २९३. संनिदधे च तदन्तरे सान्द्रचन्द्रिकासब्रह्मचारिचारुनिजशरीरप्रभाविक्षेपेण वलक्षयन्नन्तरिक्षं तत्क्षणे यक्षेन्द्रः । विदधे च विविधां स्तुतिम् । तिरोदधे च कृतज्ञप्राग्रहरः कृतज्ञचरः स सारमेयभवरचितमहोपकारविवरणपरैः परःसहस्रगुणस्तवैः परावर्तमानोऽपि नावं नावं नामं नामं च[1] नूतनतपोधनम्[2] ।

§ २९४. ततश्चायमाश्चर्यकरदुश्चरतपश्चरणचिताभिसंधिर्जीवंधरमहामुनिर्यमे नियमे स्वाध्याये ध्याने चावबद्धो यथाविधि यथाकालं यथादेशं यथायोग्यमप्रमत्तः प्रवर्तमानः, प्रमत्ततायां

मूल्यं येषां तानि बहुभिः प्रयत्नै रक्षणीयानि पालनीयानि मूलोत्तरगुणा एव रत्नानि मूलोत्तरगुणानि अष्टाविंशतिर्मूलगुणाश्चतुरशीतिलक्षप्रमिता उत्तरगुणा अक्षूणं निरतिचारं पञ्चगुरुसाक्षिकं पञ्चपरमेष्ठिसाक्षिपूर्वम् अञ्चिताः प्रशस्ता मनोवाक्काया येषां त्रियोगा यस्य तथाभूतः सन् परिगृह्णानः स्वीकुर्वाणः परमसंयमं सकलचारित्रं दधौ धृतवान् ।

§ २९३. संनिदधे चेति—संनिदधे च निकटस्थो बभूव च तदन्तरे तन्मध्ये सान्द्रचन्द्रिकायाः सघनज्योत्स्नायाः सब्रह्मचारिणी सदृशी या चारुनिजशरीरप्रभा सुन्दरस्वशरीरसुषमा तस्या विक्षेपेण प्रसारेण अन्तरिक्षं गगनं वलक्षयन् धवलयन् तत्क्षणे यक्षेन्द्रः सुदर्शनः । विविधां नैकप्रकारां स्तुतिं च विदधे च चक्रे च । तिरोदधे चान्तर्हितश्च बभूव कृतज्ञप्राग्रहरः कृतमुपकारं मन्यमानानां श्रेष्ठः भूतपूर्वः कृतज्ञः कुक्कुर इति कृतज्ञचरः स सारमेयभवे रात्रिजागरपर्याये रचितो यो महोपकारो महामन्त्रश्रावणरूपस्तस्य विवरणे निरूपणे परास्तैः परःसहस्रगुणस्तवैः सहस्राधिकगुणस्तवनैः परावर्तमानोऽपि निवृत्यागच्छन्नपि नूतनतपोधनं जीवंधरमहामुनिं नावं नावं नुत्वा नुत्वा नामं नामं नत्वा नत्वा च ।

§ २९४. ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च आश्चर्यकरे विस्मयावहे दुश्चरतपश्चरणे कठिनतपस्यायां चितोऽभिसन्धिरभिप्रायो यस्य तथाभूतो जीवंधरमहामुनिः यमे यावज्जीवं परित्यागे नियमे सावधौ त्यागे 'नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते' इति यमनियमयोर्लक्षणम्, स्वाध्याये वाचनापृच्छनादिपञ्चभेदात्मके स्वाध्याये ध्याने च चित्तैकाग्र्ये च 'उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहू-

---

योग्य मोक्षफलके मूल्य स्वरूप एवं अनेक प्रयत्नोंसे रक्षा करनेके योग्य मूलगुण तथा उत्तर गुणरूपी रत्नोंको निरतिचार स्वीकृत करते हुए, उत्तम मन वचन कायसे युक्त हो पंच परमेष्ठीकी साक्षीपूर्वक परमसंयम धारण किया ।

§ २९३. उसी बीचमें उस समय वहाँ सघन चन्द्रिकाके समान सुन्दर अपने शरीरकी प्रभाके विस्तारसे आकाशको धवल करता हुआ यक्षोंका इन्द्र सुदर्शन आ पहुँचा। आकर उसने नाना प्रकारसे स्तुति की। कृत उपकारको माननेवालोंमें श्रेष्ठ वह कुत्तेका जीव यक्ष, कुत्तेकी पर्यायमें कृत महान् उपकारके प्रकट करनेमें तत्पर हजारों गुणोंके स्तवनसे लौट-लौटकर उन नूतन तपस्वीकी बार-बार स्तुति कर तथा बार-बार प्रणाम कर अन्तर्हित हो गया।

§ २९४. तदनन्तर आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले कठिन तपश्चरणमें जिन्होंने अपना अभिप्राय लगा रखा था ऐसे जीवन्धर महामुनि यममें, नियममें, स्वाध्यायमें और ध्यानमें लीन हो विधि, काल, देश और अपनी योग्यताके अनुसार निष्प्रमाद प्रवृत्ति करते थे। यदि कदाचित् उन्हें मत्त इन्द्रियोंकी परतन्त्रतासे प्रमत्त दशाकी शंका होती थी तो वे आहार-

---

१. क० 'च' नास्ति । २. क० ख० ग० नूतनं तपोधनम् ।

कदाचन मत्तेन्द्रियपारतन्त्र्येण परिशङ्कनीयायां परित्यजन्नाहारम्, अनशनेन [1]शरीरावसादे नानुकूल्यमनुष्ठानस्याशने तु स्यादिन्द्रियदर्प इति यथा प्रसर्पति मतिस्तथा काशनं[2] कल्पयन्, शयनासनस्थानेषु नियतस्थानेषु सत्सु तत्र सङ्गस्य प्रसङ्गे जन्तुसंदोहोपद्रवसंदेहे च नियमितदेशः, प्रायेण वृष्यमिति भाष्यमाणं भूयस्तथानुभूयमानमस्तोकरसं च वस्तु प्रस्तुतानुगुणं वर्जयन्, निर्जनस्थाने कृते शयनस्थाने प्रकृतिस्थता स्यादिति विविच्य विविक्तशयनासनं विरचयन्, उदन्यादैन्यकृति नखंपचपांसुमति पथिकप्रयाणपरिपन्थिनि स्विन्नखिन्नदेहिनि मृगतृष्णिकाकरणनिष्णाते निदाघे

र्तात्' इति ध्यानलक्षणम् आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लभेदेन तस्य चत्वारो भेदाः सन्ति अववद्धो लीनो यथाविधि विधिमनतिक्रम्य यथाकालं यथादेशं यथायोग्यं यथार्हम् अप्रमत्तः सावधानः सन् प्रवर्तमानः, कदाचन जातुचित् मत्तेन्द्रियाणां पारतन्त्र्यं परायत्तत्वं तेन प्रमत्ततायां परिशङ्कनीयायां सत्याम् आहारं परित्यजन् अनशनाभिधानं तप कुर्वन्नित्यर्थः। अनशनेन सर्वथाहारत्यागेन शरीरावसादे सति शरीरशैथिल्ये सति अनुष्ठानस्य सामायिकवन्दनादेरावश्यककार्यस्यानुकूल्यमानुरूप्यं न भवेदिति शेषः अशने तु भोजने तु इन्द्रियदर्पो हृषीकोत्तेजनं स्यात् इति यथा येन प्रकारेण मतिर्भावना प्रसर्पति तथा काशनमवमौदर्यं कल्पयन् कुर्वन्, शयनं चासनं च स्थानं चेति शयनासनस्थानानि तेषु स्वापोपवेशनस्थानेषु नियतं स्थानं येषां तेषु सत्सु तत्र तत्तत्स्थानेषु सङ्गस्यासक्तेः प्रसङ्गे जन्तुसंदोहस्योपद्रवा उत्पातास्तेषां संदेहः संशयस्तस्मिंश्च सति नियतो देशो यस्य तथाभूतो नियतीकृतगमनागमनादिदेशो भवन् वृत्तिपरिसंख्यानं विदधत् इत्यर्थः, प्रायेण बाहुल्येन वृष्यं गरिष्ठमिति भाष्यमाणं निगद्यमानं भूयोऽनल्पतरं तथा गरिष्ठत्वेनानुभूयमानम् अस्तोकरसं भूरिरसोपेतं प्रस्तुतानुगुणं प्रकृतानुकूलं च वस्तु वर्जन् त्यजन् रसपरित्यागं कुर्वन्नित्यर्थः, निर्जनस्थाने विविक्तक्षेत्रेऽवस्थाने शयनासनादिके कृते सति प्रकृतिस्थता स्वभावस्थता स्यादिति विविच्य विचार्य विविक्ते पूतविजने स्थाने शयनासने यस्मिंस्तत् विविक्तशयनासनं तन्नामधेयं तपो विरचयन् कुर्वन्, उदन्यया पिपासया दैन्यं कातर्यं करोतीति उदन्यादैन्यकृत् तस्मिन्, नखंपचाः पांसवो धूलयो विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मिन्, पथिकानामध्वगानां प्रयाणस्य गमनस्य परिपन्थिनि विरोधिनि स्विन्नाः स्वेदयुक्ताः खिन्नाश्च खेदयुक्ताश्च देहिनः प्राणिनो यस्मिंस्तस्मिन्, मृगतृष्णिकाया मृगमरीचिकायाः करणे निष्णाते

का बिलकुल त्याग कर देते थे अर्थात् उपवास तप करते थे। जब कभी यह विचार आता था कि सर्वथा अनशन करनेसे शरीरका नाश होता है अतः अनुष्ठानमें अनुकूलता नहीं बैठती और आहार ग्रहण करनेसे इन्द्रियोंमें दर्प उत्पन्न होता है तब वे ऊनोदर करते थे अर्थात् क्षुधासे अल्पाहार ग्रहण करते थे। 'सोना, बैठना और खड़ा होना नियत स्थानोंमें होनेपर संगका प्रसंग तथा जीवसमूहके विघातका सन्देह उन्हीं स्थानोंमें होता है' ऐसा विचारकर उन्होंने अपना शयन-आसन आदिका देश निश्चित कर लिया था।* जो वस्तु प्रायः कर वृष्य—गरिष्ठ कही जाती है पहले जिसका बार-बार उपभोग किया है और जो अधिक रसीली है ऐसी वस्तुको अपने प्रारब्ध तपके अनुरूप वे छोड़ देते थे अर्थात् रस परित्याग नामका तप करते थे। 'निर्जन स्थानमें स्थिति करनेसे स्वभाव स्वस्थ रहता है' यह विचार कर वे विविक्तशय्यासन तप करते थे। जो प्याससे दीनता उत्पन्न करनेवाला है, नखोंको पकानेवाली धूलिसे युक्त है, पथिकोंके प्रस्थानका विरोधी है, जिसमें शरीर पसीनासे युक्त तथा खिन्न हो जाता है, और जो मृगतृष्णाके उत्पन्न करनेमें निपुण है ऐसा ग्रीष्मकाल

१. क॰ शरीरावसादनानुकूल्य–। २. निरशनम् इति टि॰।

*. यहाँ वृत्तिपरिसंख्यान तपके बदले 'नियत देश' बाह्य तपका वर्णन किया गया जान पड़ता है।

सत्यमोघमेघोपरोधशीलं शिलोच्चयमुच्चैर्मनाः समारोहन्ननातपत्रमातपयोगमातन्वानः, अपवरकशरणाश्रयिशरीरिणि[1] दन्तवपुःकम्पकारिणि धारासंपातबधिरितश्रवसि प्रावृडारम्भे वीताम्बरोऽपि विगतहृदयश्रमस्तरुमूलमाश्रयन्, अकाण्डपलितशङ्कावहमूर्धजलीनहिमबिन्दुपिशुनितवार्द्धके वर्षायमाणहिमानीजनितशैत्योद्रेकद्रवीभवदस्थिचर्मणि हेमन्तसमये निर्ममतामङ्गयष्टौ स्पष्टयन्निव केवलमाकाशमिवावकाशीकुर्वन्, एवं दुर्वहबाह्यतपोभिरपवाह्य स्वातन्त्र्यमिन्द्रियाणामात्मस्वातन्त्र्ये निष्पन्ने निष्प्रत्यूहमनन्तरमाभ्यन्तरतपांसि तरसा कुर्वन्, चतुर्विधाराधनपर्यायचतुरङ्गबलश्रेणिकः

दग्धे निदाघे ग्रीष्मकाले सति अमोघमव्यर्थं मेघोपरोधो घनोपरोधः शीलं यस्य तथाभूतं शिलोच्चयं पर्वतम् उच्चैर्मना उदात्तचेताः सन् समारोहन् समुच्चटन् अनातपत्रं छत्ररहितम् आतपयोगं घर्मयोगम् आतन्वानो विस्तारयन्, अपवरकं कुसूलगृहं निवासस्थानं तदेव शरणं रक्षितृस्थानं तस्याश्रयिणः शरीरिणः प्राणिनो यस्मिंस्तस्मिन्, दन्तवपुःकम्पं रदनशरीरवेपथुं करोतीत्येवंशीलस्तस्मिन्, धारासंपातेनासारवृष्ट्या बधिरितानि श्रवणशक्तिशून्यीकृतानि श्रवांसि श्रोत्राणि यस्मिंस्तस्मिन्, प्रावृडारम्भे वर्षारम्भे वीताम्बरोऽपि निरम्बरोऽपि विगतो दूरीभूतो हृदयस्य चेतसः श्रमः खेदो यस्य तथाभूतः सन् तरुमूलं वृक्षमूलम् आश्रयन् तत्र स्थित इत्यर्थः, अकाण्डेऽसमये यत् पलितं जरसा केशानां शौक्ल्यं तस्य शङ्कावहेषु संशयधारकेषु मूर्धजेषु केशेषु लीनाः स्थिता ये हिमबिन्दवस्तुषारशीकरास्तैः पिशुनितं सूचितं वार्धकं वृद्धत्वं यस्मिंस्तस्मिन्, वर्षायमाणया हिमान्या महता हिमेन जनितं समुत्पादितं यच्छैत्यं तस्योद्रेकेणाधिक्येन द्रवीभवत् निस्यन्दीभवद् अस्थिचर्म कीकसत्वग् यस्मिंस्तस्मिन्, हेमन्तसमये शीतकाले अङ्गयष्टौ शरीरे निर्ममतां स्नेहाभावं स्पष्टयन्निव प्रकटयन्निव केवलं मात्रम् आकाशमेव गगनमेव अवकाशीकुर्वन् स्थानीकुर्वन् निरावरणाम्बरे निवसन् इत्यर्थ. ग्रीष्मवर्षाशीतयोगैः कायक्लेशाभिधानं तपो विदधदिति यावत्। एवमनेन प्रकारेण दुर्वहानि कठिनानि यानि बाह्यतपांसि तैः इन्द्रियाणां हृषीकाणां स्वातन्त्र्यं स्वाच्छन्द्यम् अपवाह्य दूरीकृत्य आत्मनः स्वातन्त्र्यं तस्मिन् निष्पन्ने सति अनन्तरं तदनु निष्प्रत्यूहं निर्विघ्नं यथा स्यात्तथा आभ्यन्तरतपांसि प्रायश्चित्तादीनि 'प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्' इति षट् आभ्यन्तरतपांसि तरसा बलेन कुर्वन्. चतुर्विधाराधनानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपांसि पर्याया यस्यास्तथाभूता चतुरङ्गबलश्रेणिर्यस्य सः क्षपकश्रेणिं चारित्रमोहस्य क्षपणायां निमित्तभूतां भावसन्ततिम् आरुह्य

होनेपर वे मेघोंका वास्तविक उपरोध करनेवाले—गगनचुम्बी पर्वतपर उदात्त चित्त हो आरोहण करते हुए बिना किसी छायाके आतापन योगको विस्तृत करते थे। जिसमें प्राणी मध्यगृहकी शरणका आश्रय लेते हैं, जो दाँतों तथा शरीरमें कम्पन उत्पन्न करनेवाला है, और अखण्ड जलधाराके पड़नेसे जिसमें कान बहरे हो रहे हैं ऐसी वर्षा ऋतुके प्रारम्भमें वे वस्त्र रहित होनेपर भी हृदयमें किसी प्रकारके भयका अनुभव नहीं करते हुए वृक्षके नीचे विराजमान रहते थे। असमयमें प्रकट सफेद बालोंकी शंकाको उत्पन्न करनेवाले केशोंमें लीन बर्फके बिन्दुओंसे जिसमें बुढ़ापा सूचित हो रहा है, और वर्षाके समान आचरण करनेवाले बहुत भारी तुषारसे उत्पन्न शीतलताके उद्रेकसे जिसमें हड्डी और चमड़ा द्रवीभूत हो रहा है ऐसे हेमन्तके समय शरीरयष्टिमें ममताके अभावको प्रकट करते हुए के समान वे केवल आकाशको ही अपना अवकाश बना रहे थे—खुले आकाशमें स्थित रहते थे।

१. म० अपवरकाशरणाश्रयिशरीरिणिः। अपवरकम्—कुसूलगृहमिति टि०।

क्षपकश्रेणिमारुह्य प्रक्षयितुं[1] कर्मरिपून्यथाक्रमं प्रक्रममाणः, स्वयं पाणौ कृतेन यत्नकृतावधानत्सरुकेणैकाग्र्यातिशयधारेण वीर्यगुणप्रष्ठपृष्ठेन भावनापर्यायनिशानजनैशित्येन निर्मलज्ञाननिर्माणेन परमकारुण्यपयोगर्भेण [2]बहुलावरणनिचोलोत्खातेन मैत्रीस्नेहोपलिप्तेन रत्नत्रयातिशयरूपेण परमशुक्लध्यानकौक्षेयकेण क्रमेण धर्मवैरिणः सर्वकर्मनिर्माणस्य दुर्मोचस्य मोहनीयकर्ममहाराजस्य मौलभूतत्वादजस्रसहायाः साहस्रीः सहसा नासीरतां प्राप्ताः सप्त प्रकृतीर्निहत्य निरुपमनिजात्मस्वभावविघातिनि घातिकर्मचतुष्टयेऽपि समूलघातं हते, निहतकर्मवैरिणमेनं मुनिराजं पूजयितुं पुञ्जीभूतैरक्रमं शक्रचक्रधरधरणेन्द्रप्रमुखसुरासुरनरखचरैः क्रियमाणार्हमहार्हकल्याणविधौ विधीय-

कर्माण्येव रिपवः शत्रवस्तान् प्रक्षयितुं प्रक्षपयितुं यथाक्रमं प्रक्रममाण उद्युञ्जानः, स्वयं स्वतः पाणौ हस्ते कृतेन धृतेन यत्नेन कृतमवधानमैकाग्र्यमेव त्सरुर्मुष्टिका यस्य तेन, ऐकाग्र्यातिशय एव धारा यस्य तेन, वीर्यगुण एव प्रष्ठपृष्ठं श्रेष्ठपृष्ठं यस्य तेन, भावना पर्यायो यस्य तथाभूतं यत् निशानं तीक्ष्णीकरणसाधनं तज्जं नैशित्यं तैक्ष्ण्यं यस्य तेन, निर्मलज्ञानेन मिथ्यात्वरहितबोधेन निर्माणं यस्य तेन, परमकारुण्यमेव पयो जलं गर्भे यस्य तेन, बहुलावरणमेव निचोलं कोशस्तस्मात् उत्खातेन उद्धृतेन मैत्र्येव स्नेहस्तैलं तेन लिप्तेन, रत्नत्रयातिशयः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राभिधानरत्नत्रयप्रकर्षो रूपं यस्य तेन, परमशुक्लध्यानमेव कौक्षेयकं कृपाणस्तेन क्रमेण धर्मवैरिण आत्मस्वभावशत्रोः सर्वकर्मणां निर्माणं यस्मात्तस्य दुर्मोचस्य दुःखेन मोक्तुं शक्यस्य मोहनीयकर्मैव महाराजो राजाधिराजस्तस्य मौलभूतत्वात् मन्त्र्यादिमूलवर्गत्वात् अजस्रसहाया निरन्तरसहायाः साहस्रीः सहस्रावान्तरभेदयुक्ताः सहसा झटिति नासीरतां प्रमुखभटतां प्राप्ताः सप्त प्रकृतीः मिथ्यात्वं सम्यङ्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वम् अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभाश्चेति सप्त प्रकृतयः निहत्य नाशयित्वा निरुपममनुपमं निजात्मस्वभावं विघातयतीति तथा तस्मिन् घातिकर्मणां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयान्तरायाणां चतुष्टयं तस्मिन्नपि समूलं हत्वेति समूलघातं हते क्षपिते सति, निहताः कर्मवैरिणः कर्मरिपवो येन तथाभूतम् एनं मुनिराजं जीवंधरमहामुनिं पूजयितुमर्चयितुं पुञ्जीभूतैरेकत्रोपस्थितैः अक्रमं युगपत् शक्र इन्द्रः, चक्रधरश्चक्रवर्ती, धरणेन्द्रो भवनवासीन्द्रः ते प्रमुखाः प्रधाना येषु तथाभूता ये

इस प्रकार दुर्वह बाह्य तपोंके द्वारा इन्द्रियोंकी स्वतन्त्रताको दूर कर आत्मस्वतन्त्रताके निष्पन्न होनेपर बिना किसी विघ्न-बाधाके लगातार आभ्यन्तर तपोंको जो बलपूर्वक कर रहे थे, तथा चार प्रकारकी आराधना ही जिनकी चतुरंगिणी सेना थी ऐसे जीवन्धर महामुनि क्षपक श्रेणिपर आरूढ हो कर्म रूपी शत्रुओंका क्षय करनेके लिए यथाक्रमसे उद्यत हो रहे थे। जिसे स्वयं हाथमें धारण किया था, यत्नपूर्वक की हुई निष्प्रमाद वृत्ति ही जिसकी मूठ थी, एकाग्रताका अतिशय ही जिसकी धारा थी, वीर्य गुण ही जिसका श्रेष्ठ पृष्ठ भाग था, भावना रूप सानसे जिसमें तीक्ष्णता उत्पन्न की गयी थी, निर्मल ज्ञानसे जिसकी रचना हुई थी, परम दयाभाव रूप पानी जिसके ऊपर चढ़ाया गया था, अत्यधिक आवरण रूपी म्यानसे जो निकाला गया था, मैत्रीरूपी चिकनाईसे जो उपलिप्त था, और रत्नत्रय ही जिसका अतिशय रूप था ऐसे परम शुक्ल ध्यान रूपी कृपाणसे वे क्रम-क्रमसे धर्मके वैरी, समस्त कर्मोंकी रचना करनेवाले, कठिनाईसे छूटने योग्य मोहनीय कर्मरूपी महाराजकी मूलभूत होनेसे निरन्तर सहायता करनेवाली हजार रूपताको धारण करनेवाली एवं सेनाकी प्रमुखताको प्राप्त सात प्रकृतियोंको नष्ट कर जब अनुपम आत्म-स्वभावके घातक चार घातिया कर्म भी समूल नष्ट हो गये तब कर्मरूपी वैरीको नष्ट करनेवाले इन मुनिराजकी पूजा करनेके लिए एक साथ एकत्रित हुए इन्द्र चक्रवर्ती धरणेन्द्र आदि सुर असुर मनुष्य

१. म० प्रक्षेप्तुं। २. क० बहुलावरण।

माने, ध्यानाग्निसाक्षिकमात्मसामर्थ्यादात्मनैवात्मने वितीर्णां पूर्णनिखिलगुणां प्रगुणरमणीयस्वभाववेषभूषां योषान्तरासंभवदनुभवपौनःपुन्येनाप्यखिन्नामन्योन्यमन्यूनानतिरिक्तरतिशालीनतया समानभर्तृशीलामसीव केवलां कैवल्यवधूं विधिवदुपयम्य सदाप्यनुपरतकाम्ययाप्यनघया तयैवाघातिचतुष्टयेऽपि घातिते प्रतिघरहितसुखहेतुसमृद्धं सिद्धिगृहोदरमासाद्यानवद्यमात्मसंवेद्यमात्मसंभवमात्मस्वभावमात्माह्लादनमनन्तमनन्तरायमनन्तकालस्थितिकमनन्तज्ञानवीर्यदृशात्मकमनन्तकर्मक्षयापेक्षमनन्तपूर्वजननानुपलब्धपूर्वं[1] पुनरनुत्पाद्यमनुपरममनुपममनुत्कर्षमनपकर्षमनुक्षणसुलभं सुखमनुभोभूयते ।

सुरासुरनरखचरा देवदानवमानवविद्याधरास्तैः कल्पोदार्हः पाणिपीडनयोग्यो महार्हकल्याणविधिः तस्मिन् विधीयमाने क्रियमाणे ध्यानमेवाग्निर्ध्यानाग्निः स साक्षी यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा आत्मसामर्थ्यात् आत्मनैव स्वेनैव आत्मने स्वस्मै वितीर्णां दत्तां, पूर्णा निखिलगुणाः समग्रगुणा यस्यास्तां, प्रगुणरमणीया सातिशयसुभगा स्वभाववेशभूषा निसर्गनेपथ्यालङ्कारा यस्यास्ताम्, योषान्तराणामन्यस्त्रीणामसंभवद् यद् अनुभवस्योपभोगस्य पौनःपुन्यं तेनापि अखिन्नां खेदरहिताम्, अन्योन्यं मिथो अन्यूना अहीना अनतिरिक्ता अनधिका या रतिस्तया शालीनतया अधृष्टतया समानं भर्तृशीलं यस्यास्तथाभूतामिव केवलामद्वितीयां कैवल्यवधूं केवलज्ञानयोषां विधिवद् यथाविधि उपयम्य विवाह्य सदापि सर्वदापि अनुपरतं काम्यं यस्यास्तथाभूतयापि अनघया निष्पापया तयैव कैवल्यवध्वैव अघातिचतुष्टयेऽपि वेदनीयायुर्नामगोत्रचतुष्टयेऽपि घातिते क्षपिते प्रतिघरहितं प्रतिपक्षातीतं यत्सुखं तस्य हेतुना समृद्धं सम्पन्नम्, सिद्धिगृहोदरं मुक्तिमन्दिरमध्यम् आसाद्य प्राप्य अनवद्यं निर्दुष्टम् आत्मसंवेद्यं स्वेन संवेदुं योग्यम्, आत्मसंभवं स्वोत्पन्नम्, आत्माह्लादं स्वहर्षकारणम्, अनन्तमन्तातीतम्, अनन्तरायं निर्विघ्नम्, अनन्तकालं स्थितिर्यस्य तत्, अनन्तज्ञानवीर्यदृश आत्मा स्वरूपं यस्य तत्, अनन्तकर्मक्षयमपेक्षत इत्यनन्तकर्मक्षयापेक्षम्, अनन्तेषु पूर्वजननेषु पूर्वजन्मसु पूर्वं प्राग् न लब्धमित्यनन्तपूर्वजननानुपलब्धपूर्वम्, पुनरनन्तरम् अनुत्पाद्यम् उत्पादयितुमनर्हम्, अनुपरमं विनाशरहितम् अनुत्कर्षमुत्कर्षरहितम् अनपकर्षं हानिरहितम् अनुक्षणसुलभं प्रतिक्षणसुलभं सुखम् अनुभोभूयतेऽत्यर्थमनुभवति ।

और विद्याधरोंने विवाहके योग्य महाकल्याण किया और उन्होंने ध्यानरूपी अग्निकी साक्षीपूर्वक उस एकाकी कैवल्य—केवलज्ञान रूपी वधूको विधि-पूर्वक विवाहा कि जो अपनी सामर्थ्यसे अपने आपके द्वारा अपने आपके लिए दी गयी थी, जिसके समस्त गुण पूर्णताको प्राप्त थे, जिसका स्वभाव और वेषभूषा अत्यन्त रमणीय थी, जो दूसरी स्त्रियोंमें सम्भव नहीं होनेवाले अनुभवकी पुनः-पुनः प्रवृत्तिसे भी खिन्न नहीं होती थी और परस्पर हीनाधिकतासे रहित रतिसे सुशोभित होनेके कारण जो पतिके समान ही स्वभावको धारण करनेवाली थी। इच्छाके सदा अनुपरत रहनेपर भी जो निर्दोष थी ऐसी उसी कैवल्य-वधूके द्वारा चार अघातिया कर्मोंके नष्ट होनेपर वे निर्बाध सुखके कारणोंसे समृद्ध सिद्धि रूपी घरके मध्य भागको प्राप्त कर उस सुखका अनुभव करने लगे कि जो निष्पाप था। अपने आपके द्वारा संवेद्य था, आत्मस्वभाव रूप था, आत्माको आह्लाद देनेवाला था, अनन्त था, अन्तरायरहित था, अनन्त काल तक स्थित रहनेवाला था, अनन्त ज्ञान, बल और दर्शन स्वरूप था, अनन्त कर्मोंके क्षयकी अपेक्षा रखनेवाला था, अनन्त पूर्व जन्मोंमें जो पहले कभी भी प्राप्त नहीं हुआ था, जिसे फिर कभी उत्पन्न नहीं करना है, जिसका कभी उपरम—अभाव नहीं होता है, जो अनुपम है, जिसमें कभी न उत्कर्ष होता है और न कभी

१. म० विज्ञान ।

§ २९५. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ मुक्तिश्रीलम्भो नामैकादशो लम्भः ॥

गद्यचिन्तामणिः सम्पूर्णः ॥

§ * २९६. श्रीमद्वादीभसिंहेन गद्यचिन्तामणिः कृतः। स्थेयादोडयदेवेन चिरायास्थानभूषणम् ॥[1]

§ २९७. स्थेयादोडयदेवेन वादीभहरिणा कृतः। गद्यचिन्तामणिर्लोके चिन्तामणिरिवापरः ॥[2]

---

§ २९५. इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते गद्यचिन्तामणौ मुक्तिश्रीलम्भो नामैकादशो लम्भः।

ग्रन्थकर्तृप्रशस्तिः

§ २९६. श्रीमदिति—श्रीमद्वादीभसिंहेन वादिन एवेभा गजास्तेषां सिंहो वादीभसिंहः श्रीमांश्चासौ वादीभसिंहश्चेति श्रीमद्वादीभसिंहस्तेन 'वादीभसिंह' इत्युपाधिधारिणा ओडयदेवेन तन्नाम्नाचार्येण चिराय चिरकालपर्यन्तम् आस्थानभूषणं सभाभूषणं गद्यचिन्तामणिस्तन्नामग्रन्थः कृतो रचितः।

§ २९७. स्थेयादिति—वादीभहरिणा 'वादीभसिंह' इत्युपाधिधारिणा ओडयदेवेन कृतो रचितोऽपरो द्वितीयश्चिन्तामणिरिव गद्यचिन्तामणिः तन्नामग्रन्थो लोके स्थेयात् स्थिरो भूयात्।

टीकाकर्तृ प्रशस्तिः—

द्वितीयज्येष्ठमासस्य कृष्णपक्षस्य सन्निधौ।
चतुर्दश्यां तथा सोमवासरे दिनपोदये ॥१॥
वीरनिर्वाणतः पश्चाद्गतेष्वब्देषु सत्क्रमात्।
सप्ताष्टवेदयुग्मेषु मध्येसागरवासिना ॥२॥
गल्लीलालतनूजेन जानक्युदरसंभुवा।
पारग्रामसमुद्भूत पन्नालालेन धीमता ॥३॥
गद्यचिन्तामणेष्टीका रचिताल्पधियां कृते।
'वासन्ती' संज्ञिता ह्येषा चिरं स्थेयान्मुदे सताम् ॥४॥
सूरिर्वादीभसिंहोऽसावखिलागमवारिधिः।
काव्यशास्त्ररहस्यज्ञः क्षमतां स्खलितं मम ॥५॥

अपकर्ष, तथा जो प्रतिक्षण सुलभ रहता है।

२९५. इस प्रकार श्रीमद्वादीभसिंह सूरि-द्वारा विरचित गद्यचिन्तामणिमें मुक्तिलक्ष्मीकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला ग्यारहवाँ लम्भ पूर्ण हुआ।

२९६. 'जो श्रीसम्पन्न वादीरूपी हाथियोंको जीतनेके लिए सिंहके समान थे ऐसे ओडयदेवके द्वारा रचा हुआ सभाका भूषणस्वरूप यह 'गद्यचिन्तामणि' ग्रन्थ चिरकाल तक स्थिर रहे'।

२९७. 'वादीभसिंह पदके धारक ओडयदेवके द्वारा रचित यह गद्यचिन्तामणि ग्रन्थ दूसरे चिन्तामणिके समान लोकमें स्थिर रहे'।

---

१ म० भूषणः। २ इदं पद्यद्वयं 'क' प्रतौ नास्ति।

* इमौ श्लोकौ तञ्जपुरवर्तिसरस्वतीमहालयस्थयोः पुस्तकयोरेकस्मिन्नेव प्राचीनभूते दृश्येते। अनेन कवेरस्य 'ओडयदेवर्' इत्यपि नामान्तरमासीदिति प्रतिभाति।

परिशिष्टानि

१. क्षत्रचूडालंकारः (गद्यचिन्तामणिसारः)

जम्बूद्वीपलसल्ललामविषये हेमाङ्गदे संबभौ
राजा राजपुरीं पुरीं शुभधरीं सत्यंधरो धारयन् ।
तस्यासीद्विजयाह्वया हि महिषी रक्तः स तस्यां भवन्
काष्ठाङ्गारसखाय राज्यमखिलं दत्त्वा निशान्तं गतः ॥ १ ॥
राज्ञीस्वप्नविबुद्धनैजमरणो ज्ञात्वा च पुत्रोद्भवं
कान्ताश्चाष्ट सुतस्य संगतिमयं प्रापद्विषादाग्ययोः ।
द्वारस्थप्रतिहारसंभ्रमगिरा श्रुत्वा स पापं ततः
काष्ठाङ्गारनृपस्य मुग्धमहिषीं स्वं केकिनाजीगमत् ॥ २ ॥
गत्वा संगरणं विधाय समरक्षेत्रं द्रुतं प्रापयन्
योद्धुं न् कालकरालकालवसतिं ध्यात्वा च मोघं रणम् ।
प्राप्तोऽमन्दसमाधिसन्निधिभरं मृत्वा स नाकं गतः
सायं केकिनिपातिता पितृवने प्रासूत राज्ञी सुतम् ॥ ३ ॥
तं पुत्रं मुनिवाक्यतो मृतसुतं त्यक्त्वा श्मशाने भ्रमन्
वैश्यानां किल नायको निजगृहं प्रीत्या हि नीत्वा ततः ।
रक्षां संविदधे तथा च विजयां प्राप्य यत्याश्रमं
पुण्यप्रेरितदेवता ननु मनाक् संतोषमासादयत् ॥ ४ ॥
सोऽधीतश्रुतसारतत्त्वनिचये विद्यालये ह्येकदा
श्रीमद्भिर्गुरुभी रहः सह निजोदन्तेन संबोधितः ।
त्वं सत्यंधरभूपतेरसि सुतो गन्धोत्कटाऽऽरक्षितः
काष्ठाङ्गार इहाभवत्पितृविनाशेनारिरित्थं तव ॥ ५ ॥
श्रुत्वा क्रोधविडम्बितः करगतं कृत्वा कृपाणं तदा
पुत्रः शत्रुममुं व्यधान्ननु निजं वध्यं क्षणात्प्राणपि ।
पश्चात्सूरिसुधोक्तिशान्तहृदयो ह्यावर्षकालं दधे
नो दास्यामि रिपोर्वधे मन इतीमं संगरं सत्वरम् ॥ ६ ॥
तस्मै सूरिरयं ततो बहुविधं दत्त्वा सदुपदेशनं
भूयश्चापि मुनिर्बभूव सुभगो जातश्च मुक्तिप्रियः ।
पुत्रो जीवकनामको गुरुवियोगाग्निप्रदग्धो भवन्
तत्त्वज्ञानजलेन शान्तदहनः कृत्यं स भेजे पुनः ॥ ७ ।
व्याधा जीवनहारका दृढतमाः कालस्य दूता इवा-
थास्मज्जीवनगोसमूहमखिलं संहृत्य कच्छं गताः ।
इत्थं भूपतिमन्दिराङ्गणगता गोजीविनश्चुक्रुशु-
स्तेनोल्लोहितलोचनेन पृतना संप्रेषिता तन्मुखम् ॥ ८ ॥
सा सेना विजिता पलायितवती व्याधैर्यदा काननाद्
गोपानां वरनायकेन च तदा नन्दाभिधानेन वै ।
देया हाटकसप्तमूर्तिभिरहो पुत्री निजा नाशिने
व्याधानामिति घोषणा निजपुरे संदापितोद्दीपिता ॥ ९ ॥

श्रुत्वेमां परिघोषणां सखिगणैरामण्डितः पण्डितो
गत्वा तत्र निहत्य काननचरानाच्छिद्य गोमण्डलम् ।
आयातो ननु जीवकः प्रणिहितां गोदावरीं देहजां
दत्तां गोपवरेण गीतयशसं पद्मास्यमग्राहयत् ॥ १० ॥

गोविन्दां परिलभ्य भोगभविको भोग्यां सिषेवे स तां
श्रीदत्तोऽथ विचार्य वित्तजननं वित्ते,समुद्रेण वै ।
रत्नद्वीपमगाद् गृहीतविभवः प्रत्यागतो नौकया
छिन्नायां निजनावि र्त.रमगमद् वंशस्य खण्डेन सः ॥ ११ ॥

वेलायां जलधेर्धरेण भ्रमता विद्याधरेणाखिलं
वृत्तं बुद्धिविनिर्मितं प्रगदितं संबोध्य नीतस्ततः ।
नित्यालोकपुरीं पुनर्गरुडवेगेनादृतो भूरिशो
वीणावादिवरस्य मार्गणकृते संप्रार्थितोऽयं वणिक् ॥ १२ ॥

तेनायं बहुमानितो निजपुरीं कन्यां तदीयां पुन-
र्यागत्याथ विधाय च प्रविपुलं स्वायंवरं मण्डपम् ।
वीणावादनलब्धकीर्तिरुचये जीवंधराय क्षणं
तत्रादाद् बहुभूपभूषितदिशे गन्धर्वदत्तां सुताम् ॥ १३ ॥

एवं प्रस्फुटफुल्लकाननधरे पुष्पाकरे ह्यागते
ह्रादिन्यां जलकेलिदत्तमनसस्ते जग्मुरानन्दिताः ।
लोका आत्मसखैः सुशोभितविधो जीवंधरोऽपि व्रजन्
कान्तारं च मुमूर्षवे तदयने मन्त्रं शुने संप्रदात् ॥ १४ ॥

मृत्वासौ सरमासुतः खलु नगे चन्द्रोदये मन्त्रतो
यक्षेन्द्रो ह्यजनिष्ट सत्वरमयं चागत्य जीवंधरम् ।
नत्वा चाथ विनुत्य भक्तिनिभृतो भूयो गतः स्वालयं
चूर्णं तत्र सुहीनमाह गुणवित्स्वर्णमञ्जरीनिर्मितम् ॥ १५ ॥

आगच्छन्वनतो वनेचररिपुर्मार्गे महादन्तिना
व्यापन्नां परिरक्षति स्म स महान् कन्यां वणिग्भूपतेः ।
कालश्चच तयोरनङ्गशबरो बाणान्मुमोचाखिलान्
पश्चात्कीरकदूतकेन नितरां व्याबधि तन्मन्मथः ॥ १६ ॥

दैवाद्योगमवाप्य तौ च निपुणौ मोदं परं प्रापतु-
स्तन्मातङ्गशिरोमणिश्च हननाद् ग्रासं न लेभे तथा ।
काष्ठाङ्गारनृपस्ततश्च नितरां तस्मै विक्रुद्धो भव-
न्नाहूयाथ कुमारमारणमनाश्चाण्डालकालादिशत् ॥ १७ ॥

सन्ध्याबद्धकरः कुमारनृपतिः किञ्चिन्न कुर्वंस्तदा
दध्यौ देवमसौ तदैव स सुरः खे प्रोद्धरन् जीवकम् ।
आदायाथा गतः स्वकीयवसतिं चाण्डालदुष्टास्ततो
भीत्याक्रान्तहृदस्तदेव च शिरः कस्यापि राज्ञे ददुः ॥ १८ ॥

नीत्वा तत्र कुमारकं स हि सुरश्चन्द्रोदयं पर्वतं
संचक्रेऽतिसुधाभिरद्भिरभितः पुण्याभिषेकं ततः ।

ज्ञात्वेमं परिगन्तुमिच्छुरमरो मन्त्रमयं चादिशत्
सोऽयं तेन सुसत्कृतो ह्यनुमतो देशान् दिदृक्षुर्ययौ ॥ १९ ॥
मध्येमार्गमसौ वनाग्निपतितान् दध्यौ गजान् लोकयन्
हस्तिव्याधिविनाशदत्तहृदयः कारुण्यभाग्देवताम् ।
ध्यानानन्तरमेव वारिदगणाः खे प्रोल्लसन्तोऽसिता
वृष्ट्या प्राज्यजलधारया दववं शान्तं द्रुतं चक्रिरे ॥ २० ॥
किंचिद्दूरगतस्ततः खलु वनाज्जीवंधरोऽयं हितः
संभ्रान्तान् द्रुतगामिनोऽसितमुखान् दृष्ट्वा जनान् प्रावदत् ।
ते प्रोचुर्गुणसन्निधान ! विषये हा पल्लवाख्ये चिरं
वास्तव्यस्य नृपस्य तस्य दुहिता पन्नाहिदष्टा हृता ॥ २१ ॥
गत्वा जीवय तत्र तां यदि भवान् कौशल्यमत्राश्रितः
सोऽथाप्याह चलन् दिशन्तु पदवीं गत्वा च भूपालयम् ।
सौन्दर्यैकनिवासिनीं नृपसुतां दृष्ट्वा पपौ सादरं
दैवात्सापि सचेतना किल सती पर्योत्थिता तल्पत. ॥ २२ ॥
तद्भ्रातुश्च पितुः समाग्रहवशात्कन्यां स पद्मां ततो
लब्ध्वा तत्र चिरं वसन् बहुविधं निर्विण्णचित्तस्ततः ।
एकस्यां निशि संचचाल निपुणः प्रच्छन्नकायोऽब्रुवन्
ज्ञात्वा तद्विरहं तदीयललना शोकाब्धिमग्नाभवत् ॥ २३ ॥
सोऽयं भूपतिमार्गितोऽपि विहितो गच्छन्क्वचित्काननै
दृष्ट्वा जैननिकेतनं बहुविधं तुष्टाव भक्त्या भृतः ।
तद्भक्त्या स्फुटितं कपाटयुगलं वाञ्चं तदीयं तदा
ह्यागत्याथ पपात पूतमनसः पादाब्जयुग्मे नरः ॥ २४ ॥
ज्ञात्वा तेन ततो ह्युदन्तमखिलं गत्वा सुभद्रालयं
क्षेमं क्षेमपुरीसमाश्रितमभूत्तत्कन्यकावल्लभः ।
क्षेमश्रीरमणस्ततोऽपि विहितोऽयासीद्यथेच्छं वनं
प्रादात्तत्र सुदानदत्तहृदयो जैनाय भूपां निजाम् ॥ २५ ॥
कान्तारे क्वचिदेकधामनि गतो दृष्ट्वा स्त्रियं पुंश्चली
भूत्वायं हि पराङ्मुखस्तदनु तत्कान्तं रुदन्तं तथा ।
कृत्वा नैकविशोपदेशनिलयं तस्मादृगतश्चाग्रतः
संहृत्याथ कुमारमस्तकुशलं चाम्रं सबाणं ह्ययात् ॥ २६ ॥
पश्चात्प्रार्थनया कुमारकृतया गत्वा तदीयां पुरीं
विप्रा तत्र सुसत्कृतः कृतहितो जीवः सुतान् पाठयन् ।
किंचित्कालमुवास पूतहृदयो ह्यन्ते च राज्ञः सुतां
शुभ्रत्स्मेरमुखीं शुभां कनकमालाख्यां खलु प्राप्तवान् ॥ २७ ॥
नन्दाढ्योऽपि समागत. कथमपि प्रादान्मुदं स्वामिने
तत्रैवाथ बभूव मित्रघटनं जीवस्य जीवंकरम् ।
पद्मास्येन च मातृजीवनकथां विज्ञाय जीवंधरः
स्नेहोन्मत्तमना विहाय महिलां दण्डाटवीं संययौ ॥ २८ ॥

नित्यं शोकभरान्वचेतसमसौ दृष्ट्वा निजां मातरं
तत्रासीत्सुखदुःखपूरितमना मुग्धः क्षणाज्जीवकः ।
स्नेहालापसुधासुदिग्धजननीस्वान्तस्ततः केनचित्
कार्याग्रेण गतः स्वकीयवसतिं भ्रात्रा च मित्रैर्युतः ।। २९ ।।

सोऽयं राजपुरी प्रवेशनिपुणः प्रापद् वणिग्भूपतेः
पुत्रीं चन्द्रमुखीं मनोज्ञरदनां कान्तां ततः कान्तिभाक् ।
नाम्नाहो ! सुरमञ्जरीं गुणधरीमुद्वाह्य संमोदितौ
कृत्वा कार्यपटुः स्वकीयपितरौ क्षिप्रं विदेहं गतः ।। ३० ।।

गोविन्देन हि मातुलेन सहितो मन्त्रं चिरं जीवक-
स्तत्रायं च चकार चारकुशलो मित्रैर्युतो बोहितः ।
आगत्याथ पुनः स मातुलसुतां राज्ञः पुरीं वीर्यभाग्
वैवाहे किल मण्डपे च विधिना जग्राह कौशल्यतः ।। ३१ ।।

कन्योद्वाहनरुष्टदुष्टकुमतिं युद्धाय बद्धोद्यतिं
काष्ठाङ्गारमसौ निहत्य समरे स्वाधीनतां प्राप्नुवन् ।
यक्षेणाभिकृताभिषेकसुमहः संगत्य मात्रा ततः
कान्ताभिः कमनीयकान्तिकलिताभिर्ह्यष्टभिः संयुतः ।। ३२ ।।

कालं दीर्घमजीगमज्जनहितो जैनेन्द्रभक्त्या भृतो
मान्यान्धर्मधरान्मुनीन्नयहितान्संमानयन्सादरम् ।
उद्यानेऽथ विरागकारणमभिप्रेक्ष्यैकदा जीवको
वैराग्याभिभृतस्तपः खलु चरन्मोक्षं सुधीः संययौ ।। ३३ ।।

सागरः
चैत्रशुक्ला ६
विक्रमसंवत् १९९०

रचयिता
पन्नालालो जैनः

२. गद्यचिन्तामणिस्थाः काश्चित्सूक्तयः

'स्नेहप्रयोगमनपेक्ष्य दशां च पात्रं
धुन्वंस्तमांसि सुजनापररत्नदीपः ।
मार्गप्रकाशनकृते यदि नाभविष्यत्
सन्मार्गगामिजनता खलु नाभविष्यत् ।।' ग० चि० पीठिका श्लोक ७

'इयं हि स्वभावसरलनिजहृदयजनिता सर्वविश्वासिता विश्वानर्थकन्दः' पैरा ९ पृष्ठ ३८–३९

'पुराकृतसुकृतेतरकर्मपरिपाकपराधीनायां विपदि विषादस्य कोऽवसरः ?' पैरा १८ पृष्ठ ५०

'विषयासङ्गदोषोऽयं त्वयैव विषयीकृतः ।
साम्प्रतं वा विषप्रख्ये मुञ्चात्मन्विषये स्पृहाम् ।।' पैरा ३१ पृष्ठ ६९

'दुर्लभाः खलु हेयोपादेयपरिज्ञानफलाः शास्त्रावगतोर्निश्चिन्वाना विपश्चितः' पैरा ५५ पृष्ठ १०३

'खलजनकण्टकखिलीकृताः खलु महीभृतामास्थानमण्डपोद्देशाः' पैरा ६० पृष्ठ १०९

'किमस्ति मस्तकमणिं फणिपतेरपहर्तुं समर्थो जनः' पैरा ७८ पृष्ठ १३२

'दारिद्र्यादपि धनार्जने तस्मादपि तद्रक्षणे ततोऽपि परिक्षये परिक्लेशः सहस्रगुणः प्राणिनाम्'
पैरा ७८ पृष्ठ १३३

'धृतिमन्तो हि निजोपान्तगतां पीडामेव पीडयन्तः परपीडामपि विभजेरन्' पैरा ९१ पृष्ठ १४१

'संसारासारभावोऽयमहो साक्षात्कृतोऽधुना ।
यस्मादन्यदुपक्रान्तमन्यदापतितं पुनः ।।' पैरा ९२ पृष्ठ १५०

'प्रज्ञापरिबर्हविरहिता हि पराक्रमा न क्रमन्ते क्षेमाय' पैरा १४५ पृष्ठ २१९

'न शाम्यति हि कर्मोपशमादृते दुर्मोचोऽयं रागरोगः' पैरा १८९ पृष्ठ २८१

'रागान्धो ह्यखिलेन्द्रियेणाप्यदर्शनादन्धादपि महानन्धः' पैरा १८९ पृष्ठ २८४

अरुच्यं तु भैषज्यमपि नोपभुज्यताम्' पैरा २५९ पृष्ठ ३८४

'जीवानामुदय एव न केवलं जीवितमपि बलवदधीनम्' पैरा २७३ पृष्ठ ४०६

'भोगेन हि भुज्यमानेन रज्यमानेनापि त्यज्यते जनः' पैरा २७३ पृष्ठ ४०६

'नियोगतश्चेद् भोगानां वियोगः स्वयं त्यागात्किमिति लोकोऽयं बिभेति ?' पैरा २७३ पृष्ठ ४०७

■

३. व्यक्तिवाचक शब्दकोष

अंजनगिरि–एक हाथी २४९।३६९
अनङ्गतिलका–एक पुंश्चली विद्याधरी १८८।२८३
अनङ्गमाला–काष्ठाङ्गारको एक वेश्या जो आगे चलकर जीवन्धरसे स्नेह करने लगी थी १४४।२१७
अरविन्ददृशा–ब्रह्मा ९।३९
आर्यनन्दी–जीवन्धरके गुरु ४४।८७
ओडयदेव-वादीभसिंहका जन्म-नाम २९६।२९७
कनकमाला–राजा दृढमित्रकी पुत्री, जीवन्धरकी स्त्री १९४।२९२
कमला–सागरदत्त वैश्यकी स्त्री २१३।३१७
कालमेघ–एक हाथीका नाम २४९।३६९
काष्ठाङ्गार–राजा सत्यन्धरका मन्त्री ८।३८
काष्ठाङ्गाररिपु–जीवन्धर १६८।२५४
कुबेरदत्त–सुरमञ्जरीका पिता २२७।३३६
कुबेरमित्र–गुणमालाका पिता १४०।२१४
क्षेमश्री–नरपति देवकी पुत्री १७७।२६८
क्षेमश्रीवल्लभ–जीवन्धर १८५।२७७
गन्धर्वदत्ता–राजा गरुडवेगकी पुत्री ९४।१५३
गन्धर्वदत्तादयित–जीवन्धर १५७।२३९
गन्धोत्कट–राजगृहीका सेठ ३८।७८
गन्धोत्कटनन्दन–जीवन्धर १२८।१९९
गरुडवेग–नित्यालोकका राजा ९४।१५३
गरुडवेगसुता–गन्धर्वदत्ता १०७।१७५
गुणभद्र–नरपतिदेवका भृत्य १७४।२६२
गुणमाला–जीवन्धरकी स्त्री १२७।१९७
गोदावरी–नन्दगोपकी पुत्री ८७।१४३
गोविन्द–जीवन्धरके मामा–विदेहके राजा २३५।३४८।
गोविन्दा–नन्दगोपकी पुत्री ८७।१४३
चम्पकमाला–विजयारानीकी एक दासीके वेषमें स्थित यक्षी ३५।७४
जयलक्ष्मी–एक हस्तिनी २५४।३७७
जीवकस्वामी–जीवन्धर ६६।११८
जीवन्धर–सत्यन्धरके पुत्र (कथानायक) पीठिका श्लोक ९
तथागत–बुद्ध ९।४०
दृढमित्र–हेमाभपुरीका राजा १९१।२८७
धनमित्र–राजा दृढमित्रका पुत्र १९१।२८८
धर–गरुडवेग विद्याधरका मन्त्री ९५।१५५
धर्मदत्त–राजा सत्यन्धरका मन्त्री २५।६०
धारिणी–गरुडवेगकी स्त्री ९४।१५३
नन्दगोप–राजपुरीका प्रधान गोप ७७।१३२
नन्दाढ्य–गन्धोत्कटका निजी पुत्र १९८।२९६
नरपतिदेव–क्षेमपुरीका राजा १७३।२६१
नलिनी–राजा दृढमित्रकी स्त्री १९१।२८८
नवुलि–राजा गोविन्दकी स्त्री २६२।३९३
निर्वृति–सुभद्र सेठकी स्त्री १७७।२६९
पद्ममुख पद्मास्य–जीवन्धरका मित्र ८७।१४३
पद्मा–लोकपालकी पुत्री–जीवन्धरकी स्त्री १५५।२३४
पद्मादयित–जीवन्धर १६५।२४९
पवनवेग–धातकी खण्ड-भूमितिलकका राजा २८३।४२०
पवित्रकुमार–जीवन्धर १९१।२८७
पुष्पसेन–वादीभसिंहके गुरु पीठिका श्लोक ६
प्रियंवदा–गुणमालाकी दासी १३०।२०१
बुद्धिषेण–जीवन्धरका मित्र २१५।३२१
मथन–काष्ठाङ्गारका साला २७।६२
यशोधर–राजा पवनवेगका पुत्र (जीवन्धरका पूर्वभवका नाम) २८३।४२०
लक्ष्मणा–राजा गोविन्दकी पुत्री २६२।३९४
लोकपाल–आर्यनन्दीगुरुका पूर्व नाम ५०।९४
लोकपाल–चन्द्राभनगरका राजा १५५।२३४
वर्धमान–अन्तिम तीर्थंकर पीठिका १०
वादीभसिंह–वादीरूपी हाथियोंको नष्ट करनेके लिए सिंहके समान श्लेषसे गद्यचिन्तामणिके कर्ता। पीठिका ६
विजया–सत्यन्धरकी स्त्री ७।३०
विजयासूनु–जीवन्धर १६३।२४६
विनयमाला–गुणमालाकी माता १४०।२१४
विमला–सागरदत्तकी पुत्री २१२।३१७
श्रीदत्त–राजपुरीका सेठ ८९।१४५
श्रीदत्ततनया–गन्धर्वदत्ता १०४।१७१

सर्वत्र पेराग्राम और पृष्ठोंके अंक दिये गये हैं।

■

४. भौगोलिक शब्दकोष

■

५. पारिभाषिक शब्दकोष

अष्ट प्रातिहार्य २८७।४२९

तीर्थंकरके समवसरणमें निम्नांकित आठ प्रातिहार्य होते हैं—

१ अशोक वृक्ष, २ सिंहासन, ३ छत्रत्रय, ४ भामण्डल, ५ दिव्यध्वनि, ६ पुष्पवृष्टि, ७ चौंसठचमर, ८ दुन्दुभिवाद्य

अष्टमूल गुण २८३।४२२

श्रावकके आठ मूलगुण—अवश्य करने योग्य कार्य ये हैं—

१ मद्यत्याग, २ मांसत्याग, ३ मधुत्याग, ४ अहिंसाणुव्रत, ५ सत्याणुव्रत, ६ अचौर्याणुव्रत, ७ ब्रह्मचर्याणुव्रत, ८ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। ये समन्तभद्रके मतसे हैं। गद्यचिन्तामणिकारने भी इसी मतका उल्लेख किया है। जिनसेनाचार्यने मद्यत्यागको मांसत्यागमें गर्भित कर उसके स्थानपर द्यूतत्यागको रखा है। सोमदेवने मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग और बड़, पीपर, ऊमर, कठूमर तथा अंजीर इन पाँच उदुम्बर फलोंके त्यागको आठ मूलगुण कहा है। पीछे चलकर आशाधरजीने किसी अन्य आचार्यके मतसे निम्नांकित आठ मूलगुण परिगणित किये हैं—१ मद्यत्याग, २ मांसत्याग, ३ मधुत्याग, ४ निशाभोजन त्याग, ५ पंचोदुम्बरफलीत्याग, ६ जीवदया, ७ जलगालन और ८ देवदर्शन

कर्माष्टक ६७।११९

आत्माके रागादि विभाव भावोंका निमित्त पाकर कार्मण वर्गणारूप पुद्गल द्रव्य स्वयं कर्मरूप परिणत हो जाता है उसके मूलभेद आठ हैं—

१ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय; ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और अन्तराय। इनके उत्तर भेद १४८ होते हैं। विशेष परिज्ञानके लिए तत्त्वार्थसूत्रका अष्टमाध्याय देखें।

गणधर पीठिका श्लोक १४

तीर्थंकरके समवसरण–धर्मसभामें जो चार ज्ञानके धारक पदवीधर मुख्यमुनि हैं वे गणधर कहलाते हैं भगवान् महावीर स्वामीके समवसरणमें ११ गणधर थे जिनमें इन्द्रभूति (गौतम) प्रमुख थे।

घर्मादिनिरय २८२।४१४

मेरुपर्वतसे एक हजार योजन नीचेसे लेकर अधोलोक शुरू होता है उसकी ऊँचाई सात राजु है। उसमें ऊपरकी छह राजु प्रमाण ऊँचाईमें सात पृथिवियाँ हैं जिनके रूढिगत नाम १ घर्मा, २ वंशा, ३ मेघा, ४ अंजना, ५ अरिष्टा, ६ मघवा और, ७ माघवी हैं। इन्हींके सार्थक नाम १ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ बालुकाप्रभा, ४ पङ्कप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमःप्रभा और ७ महातमःप्रभा है। ये ही सात नरक कहलाते हैं विशिष्ट अध्ययनके लिए राजवार्तिकका (तृतीयाध्यायप्रारम्भिक भाग) देखें।

चतुराश्रम पीठिका १२

१ ब्रह्मचर्याश्रम, २ गृहस्थाश्रम, ३ वानप्रस्थाश्रम और ४ संन्यासाश्रम ये चार आश्रम हैं। इनके कर्तव्य तथा विधि विधानके विशिष्ट अध्ययनके लिए महापुराण द्वितीय भाग देखें।

चतुर्गति २८२।४१४

१ नरक, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य और ४ देव—ये चार गतियाँ हैं। संसारी जीवकी दशाविशेषको गति कहते हैं।

नियम २९४।४३२

किसी वस्तुका कालकी अवधि लेकर त्याग करना नियम कहलाता है।

मूलमन्त्र १२५।१९६

'णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।' जैनधर्ममें इस मन्त्रका बड़ा प्रभाव है। यह मन्त्रराज है तथा सब विघ्न नष्ट करनेवाला है।

यम २९४।४३२

किसी वस्तुका जीवन पर्यन्तके लिए त्याग करना यम कहलाता है।

व्यसन २८३।४२१

बुरे कार्योंमें मानवकी आसक्तिको व्यसन कहते हैं। ये सात हैं—

१ शिकार, २ परस्त्रीसेवन, ३ चोरी, ४ मदिरापान, ५ द्यूत, ६ मांसभक्षण और ७ वेश्यासेवन।

षडङ्गुलैकलितत्रिहस्ताधिकसप्तकेन २८२।४१५
प्रथम नरकके प्रथम प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ छह अंगुल है। नीचे-नीचेके नरकोंमें दूनी-दूनी होती हुई यह ऊँचाई सातवें नरकमें पाँच सौ धनुष हो जाती है। एक धनुष चार हाथका होता है। प्रस्तारवार वृद्धिका अध्ययन करनेके लिए राजवार्तिक तृतीयाध्याय, हरिवंश पुराण और त्रिलोकप्रज्ञप्ति देखें।

सम्यग्दर्शन ५६।१०३
जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात प्रयोजनभूत तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तत्त्वोंका विशिष्ट अध्ययन करनेके लिए दशाध्याय तत्त्वार्थ सूत्र देखें। अथवा सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। सच्चे देव आदिका स्वरूप जाननेके लिए रत्नकरण्ड-श्रावकाचार देखें।

अथवा परपदार्थोंसे भिन्न आत्माकी दृढ़ प्रतीति होना सम्यग्दर्शन है। इसके विशिष्ट अध्ययनके लिए समयसार देखें।

सम्यग्ज्ञान ५६।१०३
संशय, विपर्यय और अनध्यवसायसे रहित जीवादि पदार्थोंका जानना सम्यग्ज्ञान है।

सम्यक्चारित्र ५६।१०३
संसारके कारणभूत क्रोधादि कषाय तथा हिंसादि पाँच पापोंका त्याग करना सम्यक् चारित्र है।।

■

६. कतिपय विशिष्ट शब्दकोष

अ

अकाण्ड–असमय १।१३
अकाण्डपलित–असमयमें प्रकट बालोंकी सफेदी २९४।४३४
अकुतोभया–सब ओरसे निर्भय ७७।१३१
अग्रजन्मन्–ब्राह्मण १२५।१९४
अङ्गुलीयक–अंगूठो ३७ ७७
अङ्गविवर्तन–करवट १२२।१९०
अचण्डभानवीय–सूर्यकी किरणों-से भिन्न ६०.१०९
अचिरप्रभा–बिजली १८०।२७३
अञ्जनशिखरिदेशीय–अंजन-गिरिके समान ५३।९९
अतिवेलम्–बहुत समय तक १२२।१९१
अतिपेलव–अत्यन्त सुन्दर १४८।२२३
अतिसंधान–अधिक ठगाई ६०।१११
अधरबन्धु–अधरोष्ठके समान ३।१८
अधरता–नीचता, नीचेका ओठ ४।२६
अध्वन्य–पथिक १।१३
अध्युषित–अधिष्ठित १।९
अनङ्गावर्तदुस्तर–कामरूपी भंवरसे दुस्तर ५९।१७८
अनभिनन्दित–अस्वीकृत ३९।७९
अनवद्य:–निर्दोष २२३।३३१
अन्तिकमणिदर्पण–समीपस्थ मणिमय दर्पण २९।६४
अन्तर्वत्नी–गर्भिणी २०।५४
अन्धःसंभार–भोजन सामग्रीका समूह ५३।१००
अनादरनहन–उपेक्षापूर्वक बांधना ३।२४
अनास्था–अनादर ५८।१०७
अनास्थेया–अनादरणीय १६५।२५१
अनिमेषाध्यक्ष–देवोंका स्वामी २७५।४०८
अनिमेषवृन्दारक–इन्द्र २३२।३४२
अनुप्रेक्षा–विचार ७८।१३३
अनुयात्रा–अनुगमन—पीछे चलना १।१४
अनूप–समीपवर्ती प्रदेश १।१३
अनूरुसारथि–सूर्य १३।४३
अनेकप–हाथी १३१।२०३
अपगतासु–मृत ३८।७७
अपचितिविधिज्ञ–पूजाकी विधि जाननेवाला १६९।२५८
अपनीतनिमेषोन्मेष–टिमकार-रहित १११।१७८
अपर्यवसायिन्–समाप्त नहीं होनेवाला अनन्त २६।६१
अपसर्प–गुप्तचर ९७।१५९
अपाङ्गविक्षेप–कटाक्ष संचार २२१।३२८
अपूप–मालपुवा ५४।१००

अभिहित–कथित १।९
अभीशुजात–किरणोंका समूह ६०।१०९
अभ्यागत–अतिथि १।८
अमरमहीरुह–कल्पवृक्ष १।८
अमृतकरमित्र–चन्द्रमाके समान १०४।१७०
अमृताशिन्–देव, सुदर्शनयक्ष १४९।२२५
अम्बक–नेत्र ३।२३
अम्बक युग–नेत्र युगल १२५।१९५
अम्बुजासन–ब्रह्मा ४८।९०
अयुग्मशर–कामदेव ३।२३
अरविन्दसद्मन्–ब्रह्मा ९।३९
अरिशुद्धान्तावशेष–शत्रुके अन्तःपुरको छोड़कर २५०।३७२
अर्णवनेमि–पृथिवी ६२।११३
अर्णवाम्बरा–पृथिवी ३६।७५
अर्यश्रेष्ठ–वैश्यशिरोमणि ९२।१५१
अलक–चूर्णकुन्तल–आगेके बाल ९९।१६४
अलंकर्मीण–कार्य करनेमें समर्थ ७८।१३३
अलिकतट–ललाटतट २१६।३२२
अलिकतट विलुलित–ललाटतट-पर बिखरे हुए ४३।८२
अवरजा–छोटी बहिन १५७।२३७
अवतंसित–सुशोभित १०३।१६८
अवनीरुहपतन–वृक्षका गिरना १५।४८
अविरामम्–निरन्तर १९७।२९३
अव्याजरमणीया–स्वभाव सुन्दरी १९६।२९३
अवृजिन–निष्पाप १६९।२५९
अशिवशिवा–अमाङ्गलिक शृगाली ३५।७३
अश्वीय–घोड़ोंका समूह २२।५५
अष्टापद–स्वर्ण २३।५७
असिततृण करीर–हरे हरे तृणों-के अग्रभाग १।१४
अहर्मुख–प्रातःकाल ६९।१२०
अह्नाय–शीघ्र १३४।२०७

आ

आकल्पान्तर–दूसरा आभूषण ६० १०९
आकल्पभासुरा–आभूषणोंसे सुशोभित २६२।३९१
आकल्पम्–कल्पकाल तक २४३।३६०
आखण्डलकोदण्ड–इन्द्रधनुष १८०।२७१
आच्छोटन–छुड़ाना ३।१८
आढ्यताजात मौढ्य–धनवत्ताके कारण उत्पन्न मूर्खता ६३।११५
आढ्यपरिवृढ–वैश्यपति ४२।८१
आत्मनिष्ठ अरिषड्वर्ग–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य ये छह अन्तरंग शत्रु हैं २६६।३९८
आर्द्राक्षतारोपण–विवाहके समय-एक नेग २६२।३९०
आधिक्षीणा–मानसिक व्यथासे कृश १३२।२०४
आधोरण–महावत १४४।२१७
आधोरणानुगुण्य–महावतकी अनुकूलता २७।६२
आभिजात्य–कुलीनता ९०।१४६
आभिरूप्य–सुन्दरता ९०।१४६
आम्रेडित–पुनरुक्त ९५।१५४
आयल्लक–काम १३७।२०९
आयल्लकभर–कामजन्य उत्कण्ठा-का समूह १७७।२६८
आरणित–शब्दायमान ३।१९
आरसित–शब्द १।१२
आराम–उपवन १।११
आलोकशब्द–जय-जय शब्द २१९।३२५
आलीढ–बाण चलानेका एक आसन १९१।२८७
आवर्ज्यमान–दी जाती हुई ४०।८०
आश्यानता–शुष्कता ४।२५
आशुशुक्षणि–आग २०७।३०७
आस्थान मण्डपोद्देश–सभा-मण्डपका स्थान ६०।११०
आहार्याहरणधिषणा–आभूषण लानेका अभिप्राय २४१।३५४

उ

उटजाङ्गण–झोपड़ीका आंगन १६८।२५५
उड्डीयमान–उड़ते हुए ३।१९
उत्तम्भित–खड़े किये हुए ५१।९६
उत्तरच्छद–विस्तरका चादर १२२।१९०
उत्तमाङ्ग–शिर १००।१६५
उत्कोचोपजीविन्–घूससे जीविका करनेवाला ६४।११६
उत्तप्तहाटक–तपाया सुवर्ण ३।२१,२२
उदश्वित्–छाछ ७७।१३०
उदन्या–प्यास १।१३
उद्गमोत्कण्ठमानकलकण्ठी–फूलोंके लिए बेचैन स्त्रियाँ २१०।३१३
उन्नता–उदार,ऊँची १७९।२७०
उत्पीड–समूह ३५।७३
उन्मस्तक–खूब बढ़ी हुई १५०।२२९
उपघ्न–आश्रय १६५।२५१
उपह्वर–एकान्त स्थान ५६।१०४
उभयसन्निधगत–दोनों ओर स्थित २९।६३

उपरति–अभाव १।९
उपकार्या–कपड़ेके तम्बू २४१।३५६
उपासकाध्ययन–गृहस्थ धर्मका वर्णन करनेवाला सप्तम अंग ५५।१०२
उर्वीधर–पर्वत ४७।९१
उल्लाघता–स्वस्थता १६७।२५३
ऊधस्य–दूध ७७।१२९
ऊरव्यसूनु–वैश्यपुत्र ११६।१८१
ऊष्मल–गरम १६२।२४५

क

कङ्केलि–अशोक १४।४७
कञ्जासनावल्लभ–लक्ष्मीपति २३८।३५०
कठिनता–निर्दयता, कर्कशता ४।२६
कण्ठदघ्न–कण्ठ प्रमाण ७४।१२५
कबन्ध–शिररहित धड़ ११६।१८३
कबरी–चोटी १३।४४
कमलसद्मन्–ब्रह्मा ७।३४
कमला–लक्ष्मी १।११
कमलाकर–लक्ष्मीके हाथ,कमलवन ५।२९
करकोत्कर–ओलोंका समूह १५२।२३१
करणबन्ध–नृत्यके विशिष्ट प्रयोग ४।२६
करवीकृत–टैक्समें दिये हुए ३।१६
करभोरू–करभ (मणिबन्ध कलाईसे लेकर छिगुरी तक हाथकी बाह्य कोर) के समान जाँघोंवाली स्त्रियाँ २७०।४०२
करवाल–तलवार ३१।६६
करशाखा–अंगुली १८६।२७७

कर्ण–अंगदेशका राजा-महाभारतका एक पात्र ५।२९
कर्णधार–खेवट ९१।१४८
कर्णीसुत–चौर्यशास्त्रके प्रवर्तक २७।६२
कर्मण्य–समर्थ २३२।३४२
कर्मान्तिक–नौकर १३९।२१२
करिकरट–हाथियोंके गण्डस्थल ४।२५
करेणुका–हस्तिनी ८।३७
कलकण्ठ–कोयल १२३।१९१
कलशभव–अगस्त्यऋषि ३।१६
कलशभवसहस्र–हजारों अगस्त्य ऋषि ५८।१०६
कलिन्ददुहितृ–यमुना नदी १२१।१८९
कह्लार–श्वेत कमल १।११
कल्याणमय सप्तपुत्रिका–स्वर्णनिर्मित सात पुतलियाँ ७७।१३२
कवचहर दारक–कवच धारण करनेके योग्य अवस्थावाला पुत्र १९७।२९३
कवलित–व्याप्त २३।५७
कशिपु–अन्न वस्त्रादि ९७।१६०
काकपेया–गहरी नदी ७५।१२७
काच–नेत्रका रोग–काचियाबिन्द ५८।१०६
काण्डपटिका–परदाका वस्त्र ३३।७०
कातरता–भीरुता, चंचलता ४।२६
कादम्बकदम्बक–हंसोंका समूह १।११
कानन द्विप प्रतिग्रह–जंगली हाथीके पकड़नेमें २४१।३५५
कापटिकश्रेष्ठ–मायावियोंमें श्रेष्ठ २३९।३५१
काश्यपी–पृथिवी ३१।६९

काष्ठा–दिशा २३।५७
कांदिशीक–भयसे भागा हुआ २४।५८
किंवदन्ती–अफवाह ७५।१२७
किरणमालिन्–सूर्य ३४।७०
कीनाश–यमके समान अत्यन्त क्रूर २०७।३०७
कुक्कुटसंपात्य ग्रामपुर–पास-पास बसे हुए गाँव और नगर २३१।३४०
कुट्मलित–दूर किया गया ३।२१
कुट–घड़ा २४२।३५६
कुटिलता–टेढ़ापन, मायाचारिता ४।२६
कुट्टिनी–वेश्याओंकी दासी २४२।३५७
कुण्डल–हाथका कड़ा १४३।२१६
कुण्डलित–कुण्डल-कर्णाभरणके समान गोल १।१४
कुमार–कार्तिकेय ५।२८
कुलिशपतन–वज्रपात ३।१७
कुवलयानन्दिकरप्रचार–नील कमलोंको आनन्दित करनेवाली किरणोंके प्रचारसे युक्त, पृथिवीमण्डलको हर्षित करनेवाले टैक्सके प्रचारसे युक्त ५।२९
कुवलयैकमोहन–पृथिवीतलको मोहित करनेवाला २२२।३३१
कुशेशयभू–ब्रह्मा ३।१६
कुशेशयासन कुटुम्बिनी–सरस्वती ४६।८९
कुसुमकोदण्ड–कामदेव १२१।१८९
कुसुमशरसहचर–वसन्त ऋतु १२३।१९२
कूर्चकलाप–डाढ़ीके बालोंका समूह २१७

कुल्याकुल्या–लबालब भरी हुई नहर ३।१८
कृकवाकु–मुर्गा १।१०
कृतकशिपु–जो भोजन कर चुका है २१९।३२६
कृतघ्नप्रष्ठ–अत्यन्त कृतघ्न २०६।३०६
कृतज्ञचर–पहलेका कृतज्ञ २५२।३७५
कृतज्ञग्रामहर–कृत उपकारको माननेवालोंमें श्रेष्ठ २५२।३७५
कृतहस्त–कार्य करनेमें समर्थ ७७।१३२
कृपीटयोनि–अग्नि १।१०
केदार–खेत १।१२
केलिशिखावल–क्रीड़ा मयूर ३।२२
केशहस्त–केशपाश ७।२६
केशाकेशिता–बालोंको पकड़कर होनेवाला युद्ध ७५।१२७
केसरसंकटा–केसरसे व्याप्त १।१२
कैरवाकर–कुमुदवन १४।४६
कोकप्रिया–चकवी १६६।२५२
कोशनिहित–म्यानोंमें रखे हुए ४६।८९
कोरक–सुपारीके फूल १।१२
कौक्षेयक–तलवार ९९।१६२
कौटिल्य–मायाचार-टेढ़ापन १७९।२७०
कौतुकागार–रतिगृह १२१।१९०
कौबेरककुभ्–उत्तर दिशा ९३।१९२
क्रमेलक–ऊँट ९२।१५१
क्रेङ्काराराव–काँसेके बरतनोंमें आघात लगनेपर निकलने-वाला शब्द ३।२१
क्षतजवाहिनी–खूनकी नदी ११७।१८४

ख

खड्गकालिन्दी – तलवाररूपी यमुना नदी ५।२७
खरखुरखातधरा–तीक्ष्ण खुरोंसे खुदी पृथिवी २०४।३०३
खिलीकृत–उपद्रुत ६०।१०९
खलूरी–सेनाका अभ्यास स्थान, दलहन-परछी १।१३
खलूरिका–सेनाका अभ्यास स्थान ४६।८९

ग

गगनधुनी–आकाशगंगा ९३।१५१
गगनमुरभिद्–आकाशरूपी विष्णु १४।४६
गजनिमीलन–उपेक्षा १३३।२०६
गणकगण–ज्योतिषियोंका समूह ११९।१८६
गणरात्र–बहुत-सी रात्रियोंका समूह ११९।१८६
गण्डशैल–पहाड़की गोल-गोल चट्टानें १४८।२२२
गीर्वाणगिरि–सुमेरु पर्वत १५२।२३२
गुण–धनुषकी डोरी, दया आदि गुण ९६।१५७
गुणनिका–अभ्यास ४७।९२
गृहमेधिधर्म–गृहस्थ धर्म ५५।१०१
गो–पृथिवी, गाय १।१४
गोपतित्व–पृथिवीका राज्य, बैल-पना ६२।११३
गोमिन्–गायोंका स्वामी १८०।२७२
गोसर्ग–प्रातःकाल १९७।२९६
गोसंख्य–गोपाल ८७।१४२
गोसंख्यप्रकाण्ड–गोपालोंमें श्रेष्ठ ७७।१३२
ग्राम–स्वरोंका समूह १०९।१७६

घ

घनसार–कपूर १९२।२८९
घर्मबिन्दु–पसीना १२२।१९०
घर्माभिधान स्तालक–घर्मा–रत्नप्रभा नामक नरककी भूमि १५०।२२८
घुसृण–केशर १९२।२८९

च

चक्षुष्य–प्रीतिपात्र १७३।२६२
चटुलाचल–चंचलपर्वत ९१।१४८
चण्डांशु–सूर्य ८३।१३७
चतुरङ्गबल–हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे इन चार अंगोंसे सहित सेना ३०।६५
चतुरन्तयान-पालकी १०५।१७३
चतुरुपाय–साम, दान, दण्ड, भेद ८।३८
चञ्चरीकचक्र–भ्रमरसमूह १२३।१९२
चन्द्रशाला–महलका उपरिम-भाग ११।४२
चन्द्रोपक–चँदेवा ९७।१५८
चरु–नैवेद्य २।१५
चमरज–चँवर ९७।१५९
चम्पकषण्ड–चम्पाके वृक्षोंका समूह १।१०
चामीकरकिरीट–स्वर्णमुकुट १५।४८
चामीकरकरण्ड–सोनेकी डिबिया १८१।१८८
चामीकरपर्यङ्क–सुवर्णके पलंग ५१।९७
चिक्रोड–गिलहरी १।१२
चित्रीयाचित–आश्चर्यसे युक्त ५४।१००
चूर्णविगान–चूर्णकी निन्दा १२९।२००

ज

जगदुपरमसमय–प्रलयकाल ३।१६
जगतीभृत्–पर्वत ८।३८
जलसद्मन्–वरुण ७।३६
जलाधिवास–खस १।१३
जम्बालजालमग्न- शेवालके समूहमें फँसा हुआ ५८।१०७
जातरूप–स्वर्ण १६८।२५७
जाम्बूनद–स्वर्ण १४।४७
जिघृक्षा–पकड़नेकी इच्छा १।१२
जोषम्–चुपचाप १०९।१७६

त

तथागत–बुद्ध ९।४०
तदात्वसंपादित–तत्काल बने हुए ५४।१००
तनुतरा–पतली,कृश १७९।२७०
तनुमध्या–पतली कमरवाली १४२।२१६
तपनीयगलन्तिका–सोनेकी झारी ११९।३२६
तरणि–सूर्य १।१३
तरणि–जहाज ९१।१४९
तर्णक–बछड़े १।१४
तल्पिमसविध–शय्याके समीप १६५।२५०
तापताम्यद्दर्वीकर–गरमीसे छट-पटाते हुए साँप १५०।२२७
ताम्बूलदलवीटिका–पानका बीड़ा १२१।१८९
तारापथ–आकाश ४४।८४
तालवृन्तग्राहिणी–पंखा झलने-वाली ५२।९८
तिरीफल–कण्टक, लगाम ७६।१२८
तुहिनकर–चन्द्रमा ३।१९
तुहिनकिरणबिम्ब–चन्द्रमण्डल १७।४९
तुलाकोटि–नूपुर १।११
तुहिनसानुमत्–हिमालय पर्वत ६६।११७
त्रिकरणशुद्धि–मन, वचन, काय-की शुद्धि १६९।२५८
त्रिगुणतिरस्करिणी–तीन तह-वाला परदा १६२।२४४
त्रिविक्रम–नारायण २४५।३६२
त्र्यक्ष–महादेव १४४।२१८
त्र्यम्बक–महादेव ३।२३

द

दम्य–बछड़े ७७।१२९
दम्भोलि–वज्र ८।३७
दरिद्रता–कृशता, निर्धनता ४।२६
दवदहन–वनकी अग्नि १७ ४९
दशनच्छद–ओठ ५६।१०४
दानजलवेणिका–मदरूपी जलका प्रवाह ३।१७
दाधिक–दहीसे बने हुए ५४।१००
दावचित्रभानु–दावानल १५२।२३१
दासेरक–दासीपुत्र २४२।३५७
दिगन्त दन्तावल–दिग्गज ३।१६
दीनार–स्वर्णमुद्रा ९७।१५९
दीपमण्डितदीपदण्ड–दीपकसे-सुशोभित समाई १५७।२४१
दीर्घनिद्रा–मृत्यु ७७।१३१
दुरन्त–खोटे फलवाला २४।५८
दुर्गत–दरिद्र ५१।९६
दुर्जात–दुःख ९५।१५४
दुर्वहभोगभीमभोगी–भारी फनों-से भयंकर साँप १५०।२२९
दुर्विनीत–उद्दण्ड ४।२५
दशवदन–रावण ४।२५
दुर्लक्षित–सुन्दर १।९
दुष्टशाक्वर–दुष्ट बैल २४१।३५४
दूषिका–आँखका कीचर २१६।३२२
दुष्टशाक्वर–दुष्ट बैल १६८।२५६
देहज–कामदेव १४०।२१३
दैवज्ञ–ज्योतिषी १७३।२६२
दोर्दण्ड–भुजदण्ड ३०।६५
दौर्गत्य–दरिद्रता २।१४
द्युमणि–सूर्य १६२।२४४
द्रविण–धन ५५।१०२
द्विगुणितस्तवरकोपधान–दुहरे आवरोंसे युक्त तकिये १०४।१७०
द्विजपति–चन्द्रमा, ब्राह्मण १६१।२४३

ध

धव–पति १६५।२५०
धवलवितान–सफेद चँदेवा ४६।८९
धरणीसुर–ब्राह्मण १२५।१९४
धान्यकूट–अनाजकी राशियाँ २।१४
धाराकलाहलकारासित – लगातार बजनेवाली तुरहियोंका शब्द ४।२५
धौरेय–प्रमुख ७९।१३४

न

नखम्पच–गरम १८०।२७२
नभश्चराधीशसुता–गन्धर्वदत्ता १९८।२९६
नभोग–विद्याधर १८९।२८४
नमुचिमथन–इन्द्र ३।१५
नरेन्द्र–राजा १५५।२३५
नरेन्द्र–विषवैद्य ५६।१०५
नरेन्द्रत्व–राजपना, विषवैद्य-पना, ६२।११३
नर्तनप्रिय–मयूर १९७।२९४
नाफल–शिकारी ५५।१०३
नालनिष्कुषितनलिन–डण्ठलसे तोड़ा हुआ कमल १५४।२३३
निग्राह्य–दण्डनीय १६५।२५१

प

सौखरात्रिक–रात्रि सुखसे बीती ? यह पूछनेवाला १८५।२७८
सौरभेयी–गाय २०५।३०४
सौविदल्ल–अन्तःपुरमें काम करनेवाला वृद्ध कंचुकी ३५।७२
सौहित्य–तृप्ति ५४।१०१
सृणि–अङ्कुश २६।६१
स्कन्धावार–राजधानी १४।१५३
स्तनित–मेघ गर्जना २०७।३०७
स्तवरकनिचोल–आबरा वा वस्त्र ४६।८९
स्थपुटित–नतोन्नत ३५।७२
स्थलपुण्डरीक–सफेद गुलाब ११।१२
स्नुषा–पुत्रवधू २६८।४००
स्निग्धा–स्नेहयुक्त, चिकनी १७९।२७०
स्पर्शन–स्पर्श, दान १७९।२७०
स्फीतफलस्तबक–बड़े बड़े फलों के गुच्छे १६२।२४५
स्फीतपरिकर्म–भारी सजावट १०३।१६९
स्फुटित पाटलीकुसुम–फूले हुए गुलाब १२३।१९२
स्मयापस्मार–अहंकाररूपी मिरगीका रोग ५८।१०६
स्याद्वादवज्र–अनेकान्त वादरूपी वज्र ४४।८७
स्वन्त–अच्छे फलवाला २४।५८

ह

हरिताश्व–सूर्य ४४।८६
हरिताश्वोदयहरित्–पूर्वदिशा ४४।८६
हरिदन्तराल–दिशाओंका मध्यावकाश ११।१२
हरिद्विप–दिग्गज ११७।१८४
हरिविष्टर–सिंहासन २३५।३४७
हर्षकण्टकित–हर्षसे रोमांचित १८।७८
हर्षकाष्ठा–हर्षकी चरमसीमा १४८।२२४
हस्तिपक–महावत २३८।३५०
हाटकपतद्ग्रह–सोनेका पीकदान १२१।१९०
हिमानीबिन्दुदन्तुरित–ओसकी बूंदोंसे व्याप्त १८३।२७५
हीरञ्जरि–रस्सी अथवा जंजीर २१५।३२१

■